तफ़हीमुल-क़ुरआन

हिस्सा-2

(अल-आराफ़–बनी-इसराईल)

मौलाना सैयद-अबुल-आला मौदूदी (रह०)

हिन्दी तर्जमा
मौलाना नसीम अहमद ग़ाज़ी फ़लाही

MARKAZI MAKTABA ISLAMI PUBLISHERS
NEW DELHI
مرکزی مکتبہ اسلامی پبلشرز

तफ़हीमुल-क़ुरआन

हिस्सा-2

(अल-आराफ़ – बनी-इसराईल)

मौलाना सैयद अबुल-आला मौदूदी (रह०)

हिन्दी तर्जमा

मौलाना नसीम अहमद ग़ाज़ी फ़लाही

एम॰ एम॰ आई॰ पब्लिशर्स

नई दिल्ली-110025

TAFHEEMUL QUR'AN, Part-II (Hindi)
इस्लामी साहित्य ट्रस्ट प्रकाशन न० -357
©सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन (All Rights Reserved)

नाम मूल किताब (उर्दू) : तफ़हीमुल-कुरआन हिस्सा-II (उर्दू)
हिन्दी तर्जमा : मौलाना नसीम अहमद ग़ाज़ी फलाही

प्रकाशक: मर्कज़ी मक्तबा इस्लामी पब्लिशर्स
D-307, दावत नगर, अबुल फ़ज़्ल इन्क्लेव,
जामिया नगर, नई दिल्ली-110025
दूरभाष : 26981652, 26984347
E-mail: mmipublishers@gmail.com
Website: www.mmipublishers.net

सफ़हात	:	768
तीसरा संस्करण	:	सितम्बर 2020 ई०
तादाद	:	1100
हदिया	:	₹500.00

मुद्रक : एच० एस० प्रिंटर्स, ट्रोनिका सिटी, यू०पी०

ऑर्डर के लिए सम्पर्क करें E-mail: info@mmipublishers.net
Customer Care No: 7290092403

सूरतों की फ़ेहरिस्त

सूरा नं.	सूरा का नाम	
●	दो लफ़्ज़	4
7.	अल-आराफ़	5
8.	अल-अनफ़ाल	125
9.	अत-तौबा	177
10.	यूनुस	275
11.	हूद	345
12.	यूसुफ़	405
13.	अर-रअ़द	475
14.	इबराहीम	505
15.	अल-हिज्र	533
16.	अन-नह्ल	559
17.	बनी-इसराईल	623
●	इण्डेक्स	695

तफ़हीमुल-क़ुरआन, हिस्सा-2

उर्दू तर्जमा और तफ़सीर

मौलाना सैयद अबुल-आला मौदूदी (रह.)

हिन्दी तर्जमा

मौलाना नसीम अहमद ग़ाज़ी फ़लाही

नज़रसानी और तसहीह वग़ैरा

मुहम्मद इलियास हुसैन

एस. ख़ालिद निज़ामी

कौसर लईक़, मुहम्मद शुऐब

मुहम्मद जावेद

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

'अल्लाह के नाम से जो बड़ा ही मेहरबान और रहम करनेवाला है।'

दो लफ़्ज़

ख़ुदा का शुक्र है कि क़ुरआन मजीद की मशहूर तफ़सीर तफ़हीमुल-क़ुरआन के दूसरे हिस्से का हिन्दी तर्जमा आपके सामने है। इसका पहला हिस्सा छपने के बाद लोगों ने उसे बहुत पसन्द किया और उसी वक़्त से दूसरे हिस्से की माँग होने लगी। इस हिस्से में भी हमारी कोशिश रही है कि इसकी ज़बान भी पहले हिस्से की तरह बहुत आसान हो जो आम लोगों की समझ में आ सके।

इस हिस्से में भी कुछ हाशिए ऐसे दिए गए हैं जो तफ़हीमुल-क़ुरआन (उर्दू) में नहीं हैं। ये हाशिए तर्जमा क़ुरआन मजीद मय मुख़्तसर हवाशी के हैं। उनकी अहमियत और ज़रूरत को देखते हुए यहाँ बढ़ा दिए गए हैं।

इस तर्जमे को मुफ़ीद और बेहतर बनाने में हमें जनाब मुहम्मद इलियास हुसैन, कौसर लईक़, मुहम्मद शुऐब, ख़ालिद निज़ामी, मुहम्मद आबिद हामिदी, जनाब अब्दुल्लाह ख़ान (भोपाल) और मुहम्मद जावेद की बड़ी मदद मिली। जनाब क़ारी अब्दुल-मन्नान साहब ने इसका अरबी मतन पढ़ा है। हम इन सबके बेहद शुक्रगुज़ार हैं और अल्लाह से इनके लिए दुनिया व आख़िरत में भलाई की दुआ करते हैं।

हमारी कोशिश रही है कि इस किताब में प्रूफ़ वग़ैरा की कोई ग़लती न रहे; फिर भी अगर कोई ग़लती नज़र आए तो हमें ज़रूर बताएँ, हम आपके शुक्रगुज़ार होंगे।

क़ुरआन से मुताल्लिक़ इस्तिलाही अलफ़ाज़ की जानकारी के लिए बराए मेहरबानी तफ़हीमुल-क़ुरआन (हिन्दी) का पहला हिस्सा देखें।

नसीम ग़ाज़ी फ़लाही (सेक्रेट्री)
इस्लामी साहित्य ट्रस्ट (रजि.) दिल्ली

7. अल-आराफ़

परिचय

नाम

इस सूरा का नाम आराफ़ इसलिए रखा गया है कि इसमें 'आराफ़' और 'असहाबे-आराफ़' (आराफ़वालों) का ज़िक्र आया है। (देखें—आयत 46 और 48) यानी कि इसे 'सूरा आराफ़' कहने का मतलब यह है कि "वह सूरा जिसमें आराफ़ का ज़िक्र है।"

उतरने का ज़माना

इसके मज़मूनों (विषय-वस्तु) पर ग़ौर करने से साफ़ तौर पर महसूस होता है कि इसके उतरने का ज़माना लगभग वही है जो 'सूरा-6, अनआम' का है। यह बात तो यक़ीन के साथ नहीं कही जा सकती कि यह सूरा पहले उतरी है या सूरा अनआम, मगर इस सूरा में बात कहने का जो अंदाज़ अपनाया गया है उससे साफ़ ज़ाहिर हो रहा है कि इसका ताल्लुक़ उसी दौर से है। लिहाज़ा इसके तारीख़ी पसमंज़र (ऐतिहासिक पृष्ठभूमि) को समझने के लिए उस परिचय पर एक निगाह डाल लेना काफ़ी होगा, जो हमने सूरा-6, अनआम पर लिखा है।

मबाहिस (वार्ताएँ)

इस सूरा की तक़रीर का मर्कज़ी मज़मून (केन्द्रीय विषय) रिसालत की दावत है। सारी गुफ़्तगू का मक़सद यह है कि लोगों को ख़ुदा के भेजे हुए पैग़म्बर की पैरवी करने पर आमादा किया जाए। लेकिन इस दावत में 'इंज़ार' (चेतावनी और डरावे) का रंग ज़्यादा उभरा हुआ पाया जाता है; क्योंकि जो लोग सामने हैं (यानी मक्कावाले) उन्हें समझाते- समझाते एक लम्बा ज़माना गुज़र चुका है और उनका बहरापन, हठधर्मी और मुख़ालिफ़ाना ज़िद इस हद को पहुँच चुकी है कि बहुत जल्द पैग़म्बर को उनसे ख़िताब बन्द करके दूसरों की तरफ़ ध्यान देने का हुक्म मिलनेवाला है। इसलिए समझाने-बुझाने के अन्दाज़ में रिसालत को क़बूल करने की दावत देने के साथ उनको यह भी बताया जा

रहा है कि जो रवैया तुमने अपने पैग़म्बर के मुक़ाबले में इख़्तियार कर रखा है ऐसा ही रवैया तुमसे पहले की क़ौमें अपने पैग़म्बरों के मुक़ाबले में इख़्तियार करके बहुत बुरा अंजाम देख चुकी हैं। फिर चूंकि उनपर हुज्जत (दलील) पूरी होने के क़रीब आ गई है इसलिए तक़रीर के आख़िरी हिस्से में दावत का रुख़ उनसे हटकर अहले-किताब की तरफ़ फिर गया है और एक जगह तमाम दुनिया के लोगों से आम ख़िताब (सम्बोधन) भी किया गया है, जो इस बात की अलामत है कि अब हिजरत क़रीब है और वह दौर, जिसमें नबी का ख़िताब पूरे तौर पर अपने क़रीब के लोगों से हुआ करता है, ख़त्म होने ही वाला है।

तक़रीर के दौरान में चूंकि ख़िताब (बातचीत) का रुख़ यहूदियों की तरफ़ भी फिर गया है इसलिए रिसालत की दावत देने के साथ-साथ इस पहलू को भी ज़ाहिर कर दिया गया है कि पैग़म्बर पर ईमान लाने के बाद उसके साथ मुनाफ़िक़ाना रविश (कपटपूर्ण नीति) अपनाने और समअ व ताअत (सुनने और हुक्म मानने) का अहद बाँधने के बाद उसे तोड़ देने, और हक़ व बातिल के फ़र्क़ से वाक़िफ़ हो जाने के बाद बातिलपरस्ती में डूबे रहने का अंजाम क्या है।

सूरा के आख़िर में नबी (सल्ल॰) और आप (सल्ल॰) के सहाबा (रज़ि॰) को इसके बारे में कुछ अहम हिदायतें दी गई हैं कि तबलीग़ (प्रचार-प्रसार) का काम करते वक़्त किन बातों को सामने रखना ज़रूरी है। ख़ास तौर से उन्हें नसीहत की गई है कि मुख़ालिफ़ों की भड़काऊ बातों और हरकतों और ज़ुल्म-ज़्यादती के मुक़ाबले में सब्र और बरदाश्त से काम लें और जज़्बात के बहाव में बहकर कोई ऐसा क़दम न उठाएँ जो असल मक़सद को नुक़सान पहुँचानेवाला हो।

☆☆☆

آياتها ٢٠٦ ٧ سُوْرَةُ الْأَعْرَافِ مَكِّيَّةٌ ٣٩ ركوعاتها ٢٤

بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ

الۗمّۗصۗ ۝١ كِتٰبٌ اُنْزِلَ اِلَيْكَ فَلَا يَكُنْ فِيْ صَدْرِكَ حَرَجٌ مِّنْهُ لِتُنْذِرَ
بِهٖ وَذِكْرٰى لِلْمُؤْمِنِيْنَ ۝٢ اِتَّبِعُوْا مَآ اُنْزِلَ اِلَيْكُمْ مِّنْ رَّبِّكُمْ وَلَا

7. अल-आराफ़

(मक्का में उतरी, आयतें 206)

अल्लाह के नाम से जो बेइन्तिहा मेहरबान और रहम फ़रमानेवाला है।

(1) अलिफ़-लाम-मीम-सॉद। (2) यह एक किताब है जो तुम्हारी तरफ़ उतारी गई है,[1] इसलिए ऐ नबी! तुम्हारे दिल में इससे कोई झिझक न हो[2], इसके उतारने का मक़सद यह है कि तुम इसके ज़रिए से (इनकारियों को) डराओ और ईमान लानेवाले लोगों को नसीहत हो।[3]

(3) लोगो! जो कुछ तुम्हारे रब की तरफ़ से तुमपर उतारा गया है, उसकी पैरवी करो

1. किताब से मुराद यही सूरा आराफ़ है।
2. यानी बिना किसी झिझक और डर के इसे लोगों तक पहुँचा दो और इस बात की कुछ परवाह न करो कि मुख़ालिफ़त करनेवाले इसके साथ कैसा सुलूक करते हैं। वे बिगड़ते हैं, बिगड़ें। मज़ाक़ उड़ाते हैं, उड़ाएँ। तरह-तरह की बातें बनाते हैं, बनाएँ। दुश्मनी में और ज़्यादा सख़्त होते हैं, हो जाएँ। तुम बेखटके इस पैग़ाम को पहुँचाओ और इसकी तबलीग़ (प्रचार) में ज़रा भी झिझक और डर महसूस न करो।
   जिस मफ़हूम (मतलब) के लिए हमने लफ़्ज़ झिझक इस्तेमाल किया है, अस्ल अरबी इबारत में उसके लिए लफ़्ज़ "ह-र-जुन" इस्तेमाल हुआ है। अरबी लुग़त (शब्दकोश) के मुताबिक़ "हरज" उस घनी झाड़ी को कहते हैं जिसमें से गुज़रना मुश्किल हो। दिल में हरज होने का मतलब यह हुआ कि मुख़ालिफ़तों और रुकावटों के बीच अपना रास्ता साफ़ न पाकर आदमी का दिल आगे बढ़ने से रुके। इसी बात को क़ुरआन मजीद में कई जगहों पर दिल की तंगी भी कहा गया है। जैसे कि "ऐ नबी, हमें मालूम है कि जो बातें ये लोग बनाते हैं, उनसे तुम्हारा दिल तंग होता है।" (क़ुरआन, सूरा-22 हिज्र, आयत-97) यानी तुम्हें परेशानी हो जाती है कि जिन लोगों की ज़िद, हठधर्मी और हक़ की मुख़ालिफ़त का यह हाल है, उन्हें आख़िर किस तरह सीधी राह पर लाया जाए। "तो कहीं ऐसा न हो कि जो कुछ तुमपर उतारा जा रहा है, उसमें से कोई चीज़

تَتَّبِعُوا مِنْ دُوْنِهٖٓ اَوْلِيَآءَ ۭ قَلِيْلًا مَّا تَذَكَّرُوْنَ ③ وَكَمْ مِّنْ قَرْيَةٍ
اَهْلَكْنٰهَا فَجَآءَهَا بَاْسُنَا بَيَاتًا اَوْ هُمْ قَآئِلُوْنَ ④ فَمَا كَانَ دَعْوٰىهُمْ اِذْ

और अपने रब को छोड़कर दूसरे सरपरस्तों की पैरवी न करो,[4] मगर तुम नसीहत कम ही मानते हो।

(4) कितनी ही बस्तियाँ हैं जिन्हें हमने हलाक कर दिया। उनपर हमारा अज़ाब अचानक रात के वक़्त टूट पड़ा, या दिन दहाड़े ऐसे वक़्त आया जबकि वे आराम कर रहे थे। (5) और जब हमारा अज़ाब उनपर आ गया तो उनकी ज़बान पर इसके सिवा

तुम बयान करने से छोड़ दो और इस बात से तुम्हारा दिल तंग हो कि वे तुम्हारे पैग़ाम के जवाब में कहेंगे कि इसपर कोई ख़ज़ाना क्यों न उतरा या इसके साथ कोई फ़रिश्ता क्यों न आया।" (क़ुरआन, सूरा-11 हूद, आयत-12)

3. मतलब यह है कि इस सूरा का अस्ल मक़सद तो है लोगों को डराना यानी रसूल की दावत क़बूल न करने के नतीजों से डराना और ग़ाफ़िलों को चौंकाना और ख़बरदार करना। रही ईमानवालों की याददिहानी तो वह एक अलग फ़ायदा है जो डराने के साथ ही ख़ुद-ब-ख़ुद हासिल हो जाता है।

4. यह इस सूरा का मर्कज़ी मज़मून (केन्द्रीय विषय) है। अस्ल दावत जो ख़ुतबे में दी गई है वह यही है कि इनसान को दुनिया में ज़िन्दगी गुज़ारने के लिए जिस हिदायत और रहनुमाई की ज़रूरत है, अपनी और कायनात (सृष्टि) की हक़ीक़त और अपने वुजूद का मक़सद समझने के लिए जो इल्म उसे दरकार है, और अपने अख़लाक़, तहज़ीब, समाज और रहन-सहन को सही बुनियादों पर क़ायम करने के लिए जिन उसूलों का वह मुहताज है, उन सबके लिए उसे सिर्फ़ तमाम जहानों के रब अल्लाह को अपना रहनुमा मानना चाहिए और सिर्फ़ उसी हिदायत की पैरवी इख़्तियार करनी चाहिए जो अल्लाह ने अपने रसूलों के ज़रिए से भेजी है। अल्लाह को छोड़कर किसी दूसरे रहनुमा से हिदायत चाहना और अपने आपको उसकी रहनुमाई के हवाले कर देना इनसान के लिए बुनियादी तौर पर एक ग़लत रवैया है, जिसका नतीजा हमेशा तबाही की शक्ल में निकला है और हमेशा तबाही की शक्ल ही में निकलेगा।
यहाँ औलिया (सरपरस्तों) का लफ़्ज़ इस मानी में इस्तेमाल हुआ है कि इनसान जिसकी रहनुमाई पर चलता है, उसे अस्ल में अपना वली या सरपरस्त बनाता है, चाहे ज़बान से उसकी तारीफ़ करता हो या उसपर धुत्कार और लानत की बौछार करता हो, चाहे उसकी सरपरस्ती को क़बूल करता हो या पूरे ज़ोर के साथ इससे इनकार करे। (और ज़्यादा तफ़सील के लिए देखें—सूरा-42 शूरा, हाशिया-6)

جَآءَهُمۡ بَأۡسُنَآ اِلَّآ اَنۡ قَالُوۡٓا اِنَّا كُنَّا ظٰلِمِيۡنَ ۞ فَلَنَسۡـَٔلَنَّ الَّذِيۡنَ

कोई बात न थी कि वाक़ई हम ज़ालिम थे।[5]

(6) तो यह ज़रूर होकर रहना है कि हम उन लोगों से पूछगच्छ करें,[6] जिनकी तरफ़

5. यानी तुम्हें सबक़ और इबरत देने के लिए उन क़ौमों की मिसालें मौजूद हैं जो ख़ुदा की हिदायत से मुँह मोड़कर इनसानों और शैतानों की रहनुमाई पर चलीं और आख़िरकार इतनी ज़्यादा बिगड़ीं कि ज़मीन पर उनका वुजूद एक नाक़ाबिले-बर्दाश्त लानत बन गया और ख़ुदा के अज़ाब ने आकर उनकी गन्दगी से दुनिया को पाक कर दिया।
आख़िरी जुमले का मक़सद दो बातों पर ख़बरदार करना है। एक यह कि भरपाई का वक़्त गुज़र जाने के बाद किसी का होश में आना और अपनी ग़लती को मानना बेकार है। बेहद नादान है वह शख़्स और वह क़ौम जो ख़ुदा की दी हुई मुहलत को लापरवाहियों और मौज-मस्तियों में गुम होकर बरबाद कर दे और हक़ की तरफ़ बुलानेवालों की पुकारों को बहरे कानों से सुने जाए और होश में सिर्फ़ उस वक़्त आए जब अल्लाह की पकड़ का मज़बूत हाथ उस पर पड़ चुका हो। दूसरे यह कि लोगों की ज़िन्दगियों में भी और क़ौमों की ज़िन्दगियों में भी एक-दो नहीं अनगिनत मिसालें तुम्हारे सामने गुज़र चुकी हैं कि जब किसी के पापों का घड़ा भर जाता है और वह अपनी मुहलत की हद को पहुँच जाता है, तो फिर ख़ुदा की गिरफ़्त उसे अचानक आ पकड़ती है, और एक बार पकड़ में आ जाने के बाद छुटकारे की कोई राह उसे नहीं मिलती। फिर जब तारीख़ (इतिहास) के दौरान में एक-दो बार नहीं, सैकड़ों और हज़ारों बार यही कुछ हो चुका है तो आख़िर क्या ज़रूरी है कि इनसान इसी ग़लती को बार-बार दोहराता चला जाए और होश में आने के लिए उसी घड़ी का इन्तिज़ार करता रहे, जब होश में आने का कोई फ़ायदा हसरत और पछतावे के सिवा कुछ नहीं होता।

6. पूछ-गच्छ से मुराद क़ियामत के दिन की पूछ-गच्छ है। बुरे काम करनेवाले लोगों और क़ौमों पर दुनिया में जो अज़ाब आता है वह अस्ल में उनके कामों की पूछ-गच्छ नहीं है और न वह उनके जुर्मों की पूरी सज़ा है, बल्कि उसकी हैसियत तो बिलकुल ऐसी है जैसे कोई मुजरिम जो छूटा फिर रहा था, अचानक गिरफ़्तार कर लिया जाए और आगे और ज़्यादा ज़ुल्म व फ़साद करने के मौक़े उससे छीन लिए जाएँ। इनसानी तारीख़ (मानव-इतिहास) इस तरह की गिरफ़्तारियों की अनगिनत मिसालों से भरी पड़ी है और ये मिसालें इस बात की एक खुली अलामत (निशानी) हैं कि इनसान को दुनिया में बे-नकेल के ऊँट की तरह छोड़ नहीं दिया गया है कि जो चाहे करता फिरे, बल्कि ऊपर कोई ताक़त है जो एक ख़ास हद तक उसे ढील देती है। ख़बरदार पर ख़बरदार करती है कि अपनी शरारतों से रुक जाए, और जब वह किसी तरह नहीं मानता तो उसे अचानक पकड़ लेती है। फिर अगर कोई इस तारीख़ी तजरिबे पर ग़ौर करे तो आसानी से यह नतीजा भी निकाल सकता है कि जो हाकिम (शासक) इस कायनात पर हुकूमत कर रहा है, उसने ज़रूर ऐसा एक वक़्त मुक़र्रर किया होगा जब इन सारे मुजरिमों पर अदालत क़ायम होगी

أُرْسِلَ إِلَيْهِمْ وَلَنَسْئَلَنَّ الْمُرْسَلِينَ ۝ فَلَنَقُصَّنَّ عَلَيْهِمْ بِعِلْمٍ وَّمَا
كُنَّا غَآئِبِينَ ۝ وَالْوَزْنُ يَوْمَئِذِ ٍالْحَقُّ ۚ فَمَنْ ثَقُلَتْ مَوَازِيْنُهٗ

हमने पैग़म्बर भेजे हैं और पैग़म्बरों से भी पूछें (कि उन्होंने पैग़ाम पहुँचाने की ज़िम्मेदारी कहाँ तक निभाई और उन्हें इसका क्या जवाब मिला),[7] (7) फिर हम ख़ुद पूरे इल्म के साथ सारी दास्तान उनके आगे पेश कर देंगे, आख़िर हम कहीं ग़ायब तो नहीं थे।
(8) और वज़न उस दिन बिलकुल 'हक़'[8] (सत्य) होगा। जिनके पलड़े भारी होंगे,

और उनसे उनके कामों के बारे में पूछ-गच्छ की जाएगी। यही वजह है कि ऊपर की आयत को जिसमें दुनियावी अज़ाब का ज़िक्र किया गया है, बादवाली आयत के साथ लफ़्ज़ "तो" के साथ जोड़ दिया गया है, यानी इस दुनियावी अज़ाब का बार-बार आना इस बात की एक दलील है कि यक़ीनन आख़िरत की पूछ-गच्छ होगी।

7. इससे मालूम हुआ कि आख़िरत की पूछ-गच्छ सरासर रिसालत ही की बुनियाद पर होगी। एक तरफ़ पैग़म्बरों से पूछा जाएगा कि तुमने इनसानों तक ख़ुदा का पैग़ाम पहुँचाने के लिए क्या कुछ किया। दूसरी तरफ़ जिन लोगों तक रसूलों का पैग़ाम पहुँचा उनसे सवाल किया जाएगा कि इस पैग़ाम के साथ तुमने क्या बरताव किया। जिस शख़्स या जिन इनसानी गरोहों तक नबियों का पैग़ाम न पहुँचा हो, उनके बारे में तो क़ुरआन हमें कुछ नहीं बताता कि उनके मुक़द्दमों का क्या फ़ैसला किया जाएगा। इस मामले में अल्लाह तआला ने अपना फ़ैसला महफ़ूज़ रखा है। लेकिन जिन लोगों और क़ौमों तक पैग़म्बरों की तालीम पहुँच चुकी है, उनके बारे में क़ुरआन साफ़ कहता है कि वे अपने कुफ़्र व इनकार और फ़िस्क़ व नाफ़रमानी के लिए कोई बहाना न पेश कर सकेंगे और उनका अंजाम इसके सिवा कुछ न होगा कि पछतावे और शर्मिन्दगी के साथ हाथ मलते हुए जहन्नम की तरफ़ चल पड़ें।

8. इसका मतलब यह है कि उस दिन ख़ुदा के इनसाफ़ के तराज़ू में वज़न और हक़ (सत्य) दोनों का मतलब एक ही होगा। हक़ के सिवा वहाँ कोई चीज़ वज़नी न होगी और वज़न के सिवा कोई चीज़ हक़ न होगी। जिसके साथ जितना हक़ होगा उतना ही वह वज़नदार होगा। और फ़ैसला जो कुछ भी होगा वज़न के लिहाज़ से होगा, किसी दूसरी चीज़ का ज़र्रा बराबर लिहाज़ न किया जाएगा। बातिल (मिथ्या) की पूरी ज़िन्दगी चाहे दुनिया में कितनी ही लम्बी-चौड़ी रही हो और कितने ही बज़ाहिर शानदार कारनामे उससे जुड़े हों, उस तराज़ू में सरासर बेवज़न ठहरेगी। बातिलपरस्त (मिथ्याचारी) जब उस तराज़ू में तौले जाएँगे तो अपनी आँखों से देख लेंगे कि दुनिया में जो कुछ वे सारी उम्र करते रहे वह सब मक्खी के एक पंख के बराबर भी वज़न नहीं रखता। यही बात है जो सूरा-18 कहफ़ की आयत 103 से 105 में कही गई है कि जो लोग दुनिया की ज़िन्दगी में सब कुछ दुनिया ही के लिए करते रहे और अल्लाह की आयतों से इनकार करके जिन लोगों ने यह समझते हुए काम किया कि आख़िरकार कोई आख़िरत नहीं है

فَاُولٰٓئِكَ هُمُ الْمُفْلِحُوْنَ ﴿٨﴾ وَمَنْ خَفَّتْ مَوَازِيْنُهٗ فَاُولٰٓئِكَ الَّذِيْنَ
خَسِرُوْٓا اَنْفُسَهُمْ بِمَا كَانُوْا بِاٰيٰتِنَا يَظْلِمُوْنَ ﴿٩﴾ وَلَقَدْ مَكَّنّٰكُمْ فِي
الْاَرْضِ وَجَعَلْنَا لَكُمْ فِيْهَا مَعَايِشَ ۭ قَلِيْلًا مَّا تَشْكُرُوْنَ ﴿١٠﴾ وَلَقَدْ ع
خَلَقْنٰكُمْ ثُمَّ صَوَّرْنٰكُمْ ثُمَّ قُلْنَا لِلْمَلٰٓئِكَةِ اسْجُدُوْا لِاٰدَمَ ۤ فَسَجَدُوْٓا

वही कामयाबी पाएँगे। (9) और जिनके पलड़े हलके रहेंगे, वही अपने आपको घाटे में डालनेवाले होंगे[9]; क्योंकि वे हमारी आयतों के साथ ज़ालिमाना बर्ताव करते रहे थे।

(10) हमने तुम्हें ज़मीन में इख़्तियार के साथ बसाया और तुम्हारे लिए यहाँ ज़िन्दगी का सामान जुटाया, मगर तुम लोग कम ही शुक्रगुज़ार होते हो।

(11) हमने तुम्हारी पैदाइश की शुरुआत की, फिर तुम्हारी सूरत बनाई, फिर फ़रिश्तों

और किसी को हिसाब देना नहीं है, इस दुनिया में उनके ज़रिए किए गए कारनामों को आख़िरत में हम कोई वज़न न देंगे।

9. इस विषय को यूँ समझिए कि इनसान ने ज़िन्दगी में जो कुछ किया होगा वह दो पहलुओं (पहलुओं) में बंट जाएगा। एक मुसबत (सकारात्मक) पहलू और दूसरा मनफ़ी (नकारात्मक) पहलू। मुसबत पहलू में सिर्फ़ हक़ को जानना और मानना और हक़ की पैरवी में हक़ ही की ख़ातिर काम करना गिना जाएगा और आख़िरत में अगर कोई चीज़ वज़नी और क़ीमती होगी तो वह बस यही होगी। इसके बर-ख़िलाफ़ हक़ से ग़ाफ़िल होकर या हक़ से मुँह मोड़कर इनसान जो कुछ भी अपने मन की ख़ाहिश या दूसरे इनसानों और शैतानों की पैरवी करते हुए ग़ैर-हक़ (असत्य) की राह में करता है वह सब मनफ़ी पहलू में जगह पाएगा और सिर्फ़ यही नहीं कि यह मनफ़ी पहलू अपने आप में बेक़द्र होगा, बल्कि यह आदमी के मुसबत पहलुओं की क़द्र व अहमियत भी घटा देगा।

तो आख़िरत में इनसान की फ़लाह व कामयाबी का सारा दारोमदार इसपर है कि उसकी ज़िन्दगी में किए गए कामों का मुसबत (सकारात्मक) पहलू उसके मनफ़ी पहलू पर ग़ालिब हो और नुक़सानात में बहुत कुछ दे-दिलाकर भी उसके हिसाब में कुछ न कुछ बचा रह जाए। रहा वह शख़्स जिसकी ज़िन्दगी का मनफ़ी पहलू उसके तमाम मुसबत पहलुओं को दबा ले तो उसका हाल बिलकुल उस दीवालिए कारोबारी का-सा होगा जिसकी सारी दौलत घाटों का भुगतान करने और क़र्ज़ चुकाने में ही खप जाए और फिर भी कुछ न कुछ मुतालबे उसके ज़िम्मे बाक़ी रह जाएँ।

اِلَّآ اِبۡلِيۡسَ ؕ لَمۡ يَكُنۡ مِّنَ السّٰجِدِيۡنَ ۞ قَالَ مَا مَنَعَكَ اَلَّا تَسۡجُدَ اِذۡ
اَمَرۡتُكَ ؕ قَالَ اَنَا خَيۡرٌ مِّنۡهُ ۚ خَلَقۡتَنِىۡ مِنۡ نَّارٍ وَّخَلَقۡتَهٗ مِنۡ طِيۡنٍ ۞

से कहा कि आदम को सजदा करो।[10] इस हुक्म पर सबने सजदा किया, मगर इबलीस सजदा करनेवालों में शामिल न हुआ।

(12) पूछा, "तुझे किस चीज़ ने सजदा करने से रोका, जबकि मैंने तुझको हुक्म दिया था?" बोला, "मैं उससे बेहतर हूँ। तूने मुझे आग से पैदा किया है और उसे मिट्टी से।"

---

10. तक़ाबुल (तुलना) के लिए देखें—सूरा-2 बक़रा की आयतें 30 से 39 तक।

सूरा बक़रा में सजदे का हुक्म देने का ज़िक्र जिन लफ़्ज़ों में आया है उनमें यह शक हो सकता है कि फ़रिश्तों को सजदा करने का हुक्म सिर्फ़ आदम (अलैहि॰) की शख़्सियत के लिए दिया गया था, मगर यहाँ वह शक दूर हो जाता है। यहाँ इस बात को जिस तरह से बयान किया गया है उससे साफ़ मालूम होता है कि आदम (अलैहि॰) को जो सजदा कराया गया था वह आदम होने की हैसियत से नहीं बल्कि, नौए-इनसानी (मानव-जाति) का नुमाइन्दा शख़्स होने की हैसियत से था।

और यह जो कहा कि "हमने तुम्हारी पैदाइश की शुरुआत की, फिर तुम्हारी सूरत बनाई, फिर फ़रिश्तों को हुक्म दिया कि आदम को सजदा करो," इसका मतलब यह है कि हमने पहले तुम्हारी पैदाइश का मंसूबा बनाया, और फिर तुम्हारी पैदाइश का माद्दा (तत्व) तैयार किया, फिर उस माद्दे (तत्व) को इनसानी शक्ल दी, फिर जब एक ज़िन्दा हस्ती की हैसियत से इनसान वुजूद में आ गया तो उसे सजदा करने के लिए फ़रिश्तों को हुक्म दिया। इस आयत का यह मतलब ख़ुद क़ुरआन मजीद में दूसरी जगहों पर बयान हुआ है। मिसाल के तौर पर सूरा-38 सॉद में है, "ख़्याल करो उस वक़्त का जबकि तुम्हारे रब ने फ़रिश्तों से कहा कि मैं एक इनसान मिट्टी से पैदा करनेवाला हूँ; फिर जब मैं उसे पूरी तरह तैयार कर लूँ और उसके अन्दर अपनी रूह से कुछ फूँक दूँ तो तुम सब उसके आगे सजदे में गिर जाना।" (आयत 71-72) इस आयत में वही तीन मरहले (चरण) एक दूसरे अन्दाज़ में बयान किए गए हैं। यानी पहले मिट्टी से एक इनसान को बनाना, फिर उसको ठीक-ठाक करना यानी शक्ल-सूरत बनाना और उसके जिस्म के हिस्सों और उसके अन्दर रखी गई क़ुव्वतों को मुनासिब अन्दाज़ में रखना, फिर उसके अन्दर अपनी रूह से कुछ फूँककर आदम को वुजूद में ले आना। इसी मज़मून को सूरा-15 हिज्र में इस तरह बयान किया गया है, "और ख़याल करो उस वक़्त का जबकि तुम्हारे रब ने फ़रिश्तों से कहा कि मैं ख़मीर उठी हुई मिट्टी के गारे से एक इनसान पैदा करनेवाला हूँ, फिर जब मैं उसे पूरी तरह तैयार कर लूँ और उसके अन्दर अपनी रूह से कुछ फूँक दूँ तो तुम सब उसके आगे सजदे में गिर पड़ना।" (आयत 28-29)

इनसान की पैदाइश की इस शुरुआत को उसकी तफ़सीली कैफ़ियत के साथ समझना हमारे

लिए मुश्किल है। हम इस हक़ीक़त को पूरी तरह नहीं समझ सकते कि ज़मीनी चीज़ (तत्व) से इनसान किस तरह बनाया गया, फिर उसकी शक्ल-सूरत कैसे बनी और उसकी तमाम चीज़ों को मुनासिब अन्दाज़ कैसे दिया और उसके अन्दर रूह फूँकने की शक्ल क्या थी। लेकिन बहरहाल यह बात बिलकुल ज़ाहिर है कि क़ुरआन मजीद इनसानियत के आग़ाज़ (शुरुआत) की कैफ़ियत उन नज़रियों और ख़यालों के ख़िलाफ़ बयान करता है जो मौजूदा ज़माने में डार्विन को माननेवाले साइंस के नाम से पेश करते हैं। इन नज़रियों के मुताबिक़ इनसान ग़ैर-इनसानी और नीम (अर्ध) इनसानी हालत के मुख़्तलिफ़ मरहलों से तरक़्क़ी करता हुआ इनसानियत के दर्जे तक पहुँचा है और इस दरजा-ब-दरजा तरक़्क़ी करने के इस लम्बे मरहले में कोई ख़ास नुक़्ता ऐसा नहीं हो सकता, जहाँ से ग़ैर-इनसानी हालत को ख़त्म ठहराकर 'इनसानी नस्ल' की शुरुआत मान ली जाए। इसके बरख़िलाफ़ क़ुरआन हमें बताता है कि इनसानियत का आग़ाज़ ख़ालिस इनसानियत ही से हुआ है। उसकी तारीख़ (इतिहास) किसी ग़ैर-इनसानी हालत से क़तई कोई रिश्ता नहीं रखती, वह पहले दिन से इनसान ही बनाया गया था और ख़ुदा ने उसके कामिल इनसानी शुऊर के साथ पूरी रौशनी में उसकी ज़मीनी ज़िन्दगी की शुरुआत की थी।

इनसानियत की तारीख़ (इतिहास) के बारे में ये दो अलग-अलग नज़रिये हैं, और इनसे इनसानियत के दो बिलकुल अलग-अलग तसव्वुर पैदा होते हैं। एक तसव्वुर को इख़्तियार कीजिए तो आपको इनसान जानवरों की एक क़िस्म नज़र आएगा। उनकी ज़िन्दगी के तमाम क़ानून, यहाँ तक कि किसी अख़लाक़ी क़ानून के लिए भी आप बुनियादी उसूल उन क़ानूनों में तलाश करेंगे जिनके तहत जानवरों की ज़िन्दगी चल रही है। उसके लिए जानवरों का-सा रवैया अपको बिलकुल एक फ़ितरी रवैया मालूम होगा। ज़्यादा से ज़्यादा जो फ़र्क़ इनसानी रवैये और हैवानी रवैये में आप देखना चाहेंगे वह बस इतना ही होगा कि जानवर जो कुछ मशीनों और ज़िन्दगी में इस्तेमाल होनेवाले दूसरे साज़ो-सामान और तहज़ीबी नक़्शो-निगार के बग़ैर करते हैं, इनसान वही सब कुछ इन चीज़ों के साथ कर ले। इसके बरख़िलाफ़ दूसरा तसव्वुर इख़्तियार करते ही इनसान को जानवर के बजाए "इनसान" होने की हैसियत से देखेंगे। आपकी निगाह में वह "बात करनेवाला जानवर" या "सामाजिक जानवर" (Social Animal) नहीं होगा, बल्कि धरती पर ख़ुदा का ख़लीफ़ा (प्रतिनिधि) होगा। आपके नज़दीक वह चीज़ जो उसे दूसरे जानवरों से अलग करती है, उसका बात कर लेना या उसका सामाजिक होना न होगा, बल्कि उसकी अख़लाक़ी ज़िम्मेदारी और इख़्तियारों की वह अमानत होगी जिसे ख़ुदा ने उसके सुपुर्द किया है और जिसकी बिना पर वह ख़ुदा के सामने जवाबदेह है। इस तरह इनसानियत और उससे जुड़े तमाम मामलों पर आपकी नज़र सोचने के पहले अन्दाज़ से बिलकुल मुख़्तलिफ़ हो जाएगी। आप इनसान के लिए ज़िन्दगी का एक दूसरा ही फ़लसफ़ा (दर्शन) और अख़लाक़ी, सामाजिक और क़ानूनी एतिबार से एक दूसरा ही निज़ाम तलब करने लगेंगे और उस फ़लसफ़े और निज़ाम के उसूल और बुनियादें तलाश करने के लिए आपकी निगाह ख़ुद-ब-ख़ुद पाताल के बजाए आसमान की तरफ़ उठने लगेगी।

एतिराज़ किया जा सकता है कि इनसान के बारे में यह दूसरा तसव्वुर (नज़रिया) चाहे अख़लाक़ी और नफ़सियाती (मनोवैज्ञानिक) हैसियत से कितना ही बुलन्द हो, मगर महज़ इस

قَالَ فَاهْبِطْ مِنْهَا فَمَا يَكُوْنُ لَكَ اَنْ تَتَكَبَّرَ فِيْهَا فَاخْرُجْ اِنَّكَ مِنَ
الصّٰغِرِيْنَ ﴿١٣﴾ قَالَ اَنْظِرْنِيْٓ اِلٰى يَوْمِ يُبْعَثُوْنَ ﴿١٤﴾ قَالَ اِنَّكَ مِنَ
الْمُنْظَرِيْنَ ﴿١٥﴾ قَالَ فَبِمَآ اَغْوَيْتَنِيْ لَاَقْعُدَنَّ لَهُمْ صِرَاطَكَ الْمُسْتَقِيْمَ ﴿١٦﴾

(13) फ़रमाया, "अच्छा, तू यहाँ से नीचे उतर। तुझे हक़ नहीं है कि यहाँ बड़ाई का घमंड करे। निकल जा कि हकीक़त में तू उन लोगों में से है जो ख़ुद अपनी रुसवाई चाहते हैं।"[11] (14) बोला, "मुझे उस दिन तक मोहलत दे जबकि ये सब दोबारा उठाए जाएँगे।" (15) फ़रमाया, "तुझे मोहलत है।" (16) बोला, "अच्छा तो जिस तरह तूने मुझे गुमराही में डाला है, मैं भी अब तेरी सीधी राह पर इन इनसानों की घात में लगा रहूँगा,

ख़याल की ख़ातिर एक नज़िरये को किस तरह रद्द कर दिया जाए जो साइंटिफ़िक दलीलों से साबित है। लेकिन जो लोग यह एतिराज़ करते हैं उनसे हमारा सवाल यह है कि क्या सचमुच इनसान के बारे में डार्विन का यह नज़रिया कि 'वह जानवर से धीरे-धीरे तरक़्क़ी करते हुए इनसान बना', साइंटिफ़िक दलीलों से साबित हो चुका है। साइंस की महज़ सरसरी जानकारी रखनेवाले लोग तो बेशक इस ग़लतफ़हमी में हैं कि यह नज़रिया एक साबित-शुदा इल्मी हक़ीक़त बन चुका है, लेकिन सच्चाई का पता लगानेवाले इस बात को जानते हैं कि अलफ़ाज़ और हड्डियों के लम्बे-चौड़े सरो-सामान के बावजूद अभी तक यह सिर्फ़ एक नज़रिया ही है और इसकी जिन दलीलों को ग़लती से सुबूत की दलीलें कहा जाता है वे अस्ल में इमकान (सम्भावना) की दलीलें हैं, यानी उनकी बिना पर ज़्यादा से ज़्यादा बस इतना ही कहा जा सकता है कि डार्विन के तरक़्क़ी के इस नज़रिये का वैसा ही इमकान है जैसा इस बात का है कि एक-एक इनसान और एक-एक जानवर को अलग-अलग बनाया गया हो।

11. अरबी में लफ़्ज़ 'साग़िरीन' इस्तेमाल हुआ है। 'साग़िर' के मानी हैं– 'वह जो रुसवाई और छोटी हैसियत को ख़ुद इख़्तियार करे'। इसलिए अल्लाह तआला के कहने का मतलब यह था कि बन्दा और मख़लूक़ होने के बावजूद तेरा अपनी बड़ाई के घमण्ड में पड़ना और अपने रब के हुक्म से इस बिना पर बग़ावत करना कि अपनी इज़्ज़त और बड़ाई का जो तसव्वुर तूने ख़ुद क़ायम कर लिया है उसके लिहाज़ से वह हुक्म तुझे अपनी तौहीन करनेवाला नज़र आता है, यह अस्ल में यह मानी रखता है कि तू ख़ुद अपनी रुसवाई चाहता है। बड़ाई का झूठा घमण्ड, इज़्ज़त का बे-बुनियाद दावा और किसी निजी हक़ के बग़ैर अपने आपको ख़ाह-मख़ाह बुज़ुर्गी के मनसब पर समझ बैठना, तुझे बड़ा इज़्ज़तवाला और बुज़ुर्ग नहीं बना सकता बल्कि तुझे छोटा और रुसवा और नीचा ही बनाएगा। और अपनी इस ज़िल्लत व रुसवाई का सबब तू आप ही होगा।

ثُمَّ لَاٰتِيَنَّهُمْ مِّنْۢ بَيْنِ اَيْدِيْهِمْ وَمِنْ خَلْفِهِمْ وَعَنْ اَيْمَانِهِمْ وَعَنْ
شَمَآئِلِهِمْ ؕ وَلَا تَجِدُ اَكْثَرَهُمْ شٰكِرِيْنَ ۝١٧ قَالَ اخْرُجْ مِنْهَا مَذْءُوْمًا

(17) आगे और पीछे, दाएँ और बाएँ, हर तरफ़ से इनको घेरूँगा और तू इनमें से ज़्यादातर लोगों को शुक्रगुज़ार न पाएगा।"[12] (18) फ़रमाया, "निकल जा यहाँ से रुसवा

12. यह वह चैलेंज था जो इबलीस ने ख़ुदा को दिया। उसके कहने का मतलब यह था कि यह मुहलत जो आपने मुझे क़ियामत तक के लिए दी है, इससे फ़ायदा उठाकर मैं यह साबित करने के लिए पूरा ज़ोर लगा दूँगा कि इनसान उस बड़ाई का हक़दार नहीं है जो आपने मेरे मुक़ाबले में उसे दी है। मैं आपको दिखा दूँगा कि यह कैसा ना-शुक्रा, कैसा नमक-हराम और कैसा एहसान-फ़रामोश (कृतघ्न) है।
यह मुहलत जो शैतान ने माँगी और ख़ुदा ने उसे दे दी, इससे मुराद सिर्फ़ वक़्त ही नहीं, बल्कि उस काम का मौक़ा देना भी है जो वह करना चाहता था। यानी उसकी माँग यह थी कि मुझे इनसान को बहकाने और उसकी कमज़ोरियों से फ़ायदा उठाकर उसका निकम्मापन साबित करने का मौक़ा दिया जाए। और यह मौक़ा अल्लाह तआला ने उसे दे दिया। चुनाँचे सूरा-17 बनी-इसराईल, आयत 61 से 65 में उसका बयान है कि अल्लाह तआला ने उसे इख़्तियार दे दिया कि आदम और उसकी औलाद को सीधे रास्ते से हटा देने के लिए जो चालें वह चलना चाहता है, चले। उन चालबाज़ियों से उसे रोका नहीं जाएगा, बल्कि वे सब रास्ते खुले रहेंगे जिनसे वह इनसान को फ़ितने में डालना चाहेगा। लेकिन इसके साथ शर्त यह लगा दी कि "मेरे बन्दों पर तुझे कोई इख़्तियार न होगा।" (सूरा-17 बनी-इसराईल, आयत-65) तू सिर्फ़ यह तो कर सकता है कि उसको ग़लत-फ़हमियों में डाले, झूठी उम्मीदें दिलाए, बुराई और गुमराही को उनके सामने लुभावनी बनाकर पेश करे, लज़्ज़तों और फ़ायदों के हरे-भरे बाग़ दिखाकर उनको ग़लत रास्तों की तरफ़ बुलाए मगर यह ताक़त तुझे नहीं दी जाएगी कि उन्हें हाथ पकड़कर ज़बरदस्ती अपने रास्ते पर खींच ले जाए, और अगर वे ख़ुद सीधे रास्ते पर चलना चाहें तो उन्हें न चलने दे। यही बात सूरा-14 इबराहीम की 22वीं आयत में कही गई है कि क़ियामत में अल्लाह की अदालत में फ़ैसला हो जाने के बाद शैतान अपनी पैरवी करनेवाले इनसानों से कहेगा, "मेरा तुमपर कोई ज़ोर तो था नहीं कि मैंने अपनी पैरवी पर तुम्हें मजबूर किया हो। मैंने इसके सिवा कुछ नहीं किया कि तुम्हें अपनी राह पर बुलाया और तुमने मेरी दावत क़बूल कर ली। लिहाज़ा अब मुझे मलामत न करो, बल्कि अपने आपको मलामत करो।"
और यह जो शैतान ने ख़ुदा पर इलज़ाम लगाया है कि तूने मुझे गुमराही में डाला तो इसका मतलब यह है कि शैतान ने ख़ुदा के हुक्म की जो नाफ़रमानी की उसकी ज़िम्मेदारी वह ख़ुदा पर डालता है। उसको शिकायत है कि आदम को सजदा करने का हुक्म देकर तूने मुझे फ़ितने में डाला और मेरे नफ़्स के तकब्बुर (मन के अहं) को ठेस लगाकर मुझे इस हालत में डाल दिया

مَّدۡحُوۡرًا ؕ لَمَنۡ تَبِعَكَ مِنۡهُمۡ لَاَمۡلَئَنَّ جَهَنَّمَ مِنۡكُمۡ اَجۡمَعِيۡنَ ﴿۱۸﴾
وَيٰۤاٰدَمُ اسۡكُنۡ اَنۡتَ وَزَوۡجُكَ الۡجَـنَّةَ فَكُلَا مِنۡ حَيۡثُ شِئۡتُمَا وَلَا
تَقۡرَبَا هٰذِهِ الشَّجَرَةَ فَتَكُوۡنَا مِنَ الظّٰلِمِيۡنَ ﴿۱۹﴾ فَوَسۡوَسَ لَهُمَا
الشَّيۡطٰنُ لِيُبۡدِىَ لَهُمَا مَا وٗرِىَ عَنۡهُمَا مِنۡ سَوۡاٰتِهِمَا وَقَالَ مَا
نَهٰٮكُمَا رَبُّكُمَا عَنۡ هٰذِهِ الشَّجَرَةِ اِلَّاۤ اَنۡ تَكُوۡنَا مَلَكَيۡنِ اَوۡ تَكُوۡنَا مِنَ
الۡخٰلِدِيۡنَ ﴿۲۰﴾ وَقَاسَمَهُمَاۤ اِنِّىۡ لَـكُمَا لَمِنَ النّٰصِحِيۡنَ ۙ‏ ﴿۲۱﴾ فَدَلّٰٮهُمَا بِغُرُوۡرٍ ۚ
فَلَمَّا ذَاقَا الشَّجَرَةَ بَدَتۡ لَهُمَا سَوۡاٰتُهُمَا وَطَفِقَا يَخۡصِفٰنِ عَلَيۡهِمَا مِنۡ

किया हुआ और ठुकराया हुआ। यक़ीन रख कि इनमें से जो तेरी पैरवी करेंगे, तुझ समेत इन सबसे जहन्नम को भर दूँगा। (19) और ऐ आदम! तू और तेरी बीवी, दोनों इस जन्नत में रहो, जहाँ जिस चीज़ को तुम्हारा जी चाहे खाओ, मगर इस पेड़ के पास न फटकना वरना ज़ालिमों में से हो जाओगे।"

(20) फिर शैतान ने उनको बहकाया ताकि उनकी शर्मगाहें जो एक-दूसरे से छिपाई गई थीं, उनके सामने खोल दे। उसने उनसे कहा, "तुम्हारे रब ने तुम्हें जो इस पेड़ से रोका है, उसकी वजह इसके सिवा कुछ नहीं है कि कहीं तुम फ़रिश्ते न बन जाओ, या तुम्हें हमेशा की ज़िन्दगी हासिल न हो जाए।" (21) और उसने क़सम खाकर उनसे कहा कि मैं तुम्हारा सच्चा ख़ैरख़ाह हूँ। (22) इस तरह धोखा देकर वह उन दोनों को धीरे-धीरे अपने ढब पर ले आया। आख़िरकार जब उन्होंने उस पेड़ का मज़ा चखा तो उनके सतर (गुप्तांग) एक-दूसरे के सामने खुल गए और वे अपने जिस्मों को जन्नत के पत्तों से

कि मैंने तेरी नाफ़रमानी की। मानो उस बेवक़ूफ़ की ख़ाहिश यह थी कि उसके मन की चोरी पकड़ी न जाती बल्कि जिस घमण्ड और जिस सरकशी को उसने अपने अन्दर छिपा रखा था उसपर परदा ही पड़ा रहने दिया जाता। यह एक खुली हुई बेवक़ूफ़ी की बात थी जिसका जवाब देने की कोई ज़रूरत न थी, इसलिए अल्लाह ने सिरे से उसका कोई नोटिस ही नहीं लिया।

وَّرَقِ الْجَنَّةِ ۭ وَنَادٰىهُمَا رَبُّهُمَآ اَلَمْ اَنْهَكُمَا عَنْ تِلْكُمَا الشَّجَرَةِ
وَاَقُلْ لَّكُمَآ اِنَّ الشَّيْطٰنَ لَكُمَا عَدُوٌّ مُّبِيْنٌ ۝ قَالَا رَبَّنَا ظَلَمْنَآ
اَنْفُسَنَا ۫ وَاِنْ لَّمْ تَغْفِرْ لَنَا وَتَرْحَمْنَا لَنَكُوْنَنَّ مِنَ الْخٰسِرِيْنَ ۝

ढाँकने लगे।

तब उनके रब ने उन्हें पुकारा, "क्या मैंने तुम्हें इस पेड़ से न रोका था और न कहा था कि शैतान तुम्हारा खुला दुश्मन है?"

(23) दोनों बोल उठे, "ऐ रब! हमने अपने ऊपर ज़ुल्म किया। अब अगर तूने हमें माफ़ न किया और रहम न किया तो यक़ीनी तौर पर हम तबाह हो जाएँगे।"[13]

---

13. इस क़िस्से से चंद हक़ीक़तों पर रौशनी पड़ती है :

(1) इनसान के अन्दर शर्म व हया का जज़्बा एक फ़ितरी जज़्बा है और इसका सबसे पहला इज़हार उस शर्म के ज़रिए होता है, जो अपने जिस्म के ख़ास हिस्सों को दूसरों के सामने खोलने में इनसान को फ़ितरी तौर पर महसूस होती है। क़ुरआन हमें बताता है कि यह शर्म इनसान के अन्दर तहज़ीबी तरक़्क़ी से बनावटी तौर पर पैदा नहीं हुई है और न यह इनसान की पैदा और हासिल की हुई चीज़ है, जैसा कि शैतान के कुछ शागिर्दों ने गुमान किया है, बल्कि हक़ीक़त में यह फ़ितरी चीज़ है जो पहले दिन से इनसान में मौजूद थी।

(2) शैतान की पहली चाल जो उसने इनसान को इनसानी फ़ितरत की सीधी राह से हटाने के लिए चली, यह थी कि उसकी शर्म व हया के इस जज़्बे पर चोट लगाए और नंगेपन के रास्ते से उसके लिए बेशर्मियों के दरवाज़े खोले और उसको जिंसी मामलों (यौन संबंधों) में गुमराह कर दे। दूसरे लफ़्ज़ों में अपने हरीफ़ (प्रतिद्वंद्वी) के मुक़ाबले में सबसे कमज़ोर मक़ाम जो उसने हमले के लिए तलाश किया वह उसकी ज़िन्दगी का जिंसी पहलू था, और पहली चोट जो उसने लगाई वह उस हिफ़ाज़त करनेवाली दीवार पर लगाई जो शर्म व हया की शक्ल में अल्लाह ने इनसानी फ़ितरत में रखी थी। शैतानों और उनके शागिर्दों की यह रविश आज तक ज्यों की त्यों क़ायम है। "तरक़्क़ी" का कोई काम उनके यहाँ शुरू नहीं हो सकता जब तक कि औरत को बे-पर्दा करके वे बाज़ार में न ला खड़ा करें और उसे किसी-न-किसी तरह नंगा न कर दें।

(3) यह भी इनसान की ऐन फ़ितरत है कि वह बुराई की खुली दावत को कम ही क़बूल करता है। आम तौर से उसे जाल में फाँसने के लिए बुराई की तरफ़ हर बुलानेवाले को ख़ैरख़ाह के भेस ही में आना पड़ता है।

(4) इनसान के अन्दर 'आला और बुलन्द मामलों' मिसाल के तौर पर इनसान होने के मक़ाम से ऊँचे मक़ाम पर पहुँचने या हमेशा की ज़िन्दगी हासिल करने की एक फ़ितरी प्यास मौजूद है और शैतान को उसे फ़रेब देने में पहली कामयाबी इसी ज़रिए से हुई कि उसने इनसान की इस

ख़ाहिश से अपील की। शैतान की सबसे ज़्यादा चलती हुई चाल यह है कि वह आदमी को बुलन्दी पर ले जाने और मौजूदा हालत से बेहतर हालत पर पहुँचा देने की उम्मीद दिलाता है और फिर उसके लिए वह रास्ता पेश करता है जो उसे उलटा पस्ती की तरफ़ ले जाए।

(5) आम तौर पर यह जो मशहूर हो गया है कि शैतान ने पहले हज़रत हव्वा को अपने जाल में फाँसा और फिर उन्हें हज़रत आदम (अलैहि॰) को फाँसने के लिए ज़रिआ बनाया, क़ुरआन इस बात को रद्द करता है। उसका बयान यह है कि शैतान ने दोनों को धोखा दिया और दोनों उससे धोखा खा गए। बज़ाहिर यह बहुत छोटी-सी बात मालूम होती है लेकिन जिन लोगों को मालूम है कि हज़रत हव्वा के बारे में इस मशहूर रिवायत ने दुनिया में औरत के अख़लाक़ी, क़ानूनी और सामाजिक रुतबे को गिराने में कितना ज़बरदस्त हिस्सा लिया है, वही क़ुरआन के इस बयान की अस्ल क़द्र व क़ीमत समझ सकते हैं।

(6) यह गुमान करने के लिए कोई मुनासिब वजह मौजूद नहीं है कि मना किए गए पेड़ का मज़ा चखते ही आदम व हव्वा के सतर (शर्मगाह) का खुल जाना उस पेड़ की किसी ख़ासियत (विशिष्टता) का नतीजा था। हक़ीक़त में यह अल्लाह तआला की नाफ़रमानी के सिवा किसी और चीज़ का नतीजा न था। अल्लाह तआला ने पहले उनका सतर अपने इन्तिज़ाम से ढाँका था। जब उन्होंने हुक्म के ख़िलाफ़ काम किया तो ख़ुदा की हिफ़ाज़त उनसे हटा ली गई, उनका परदा खोल दिया गया और उन्हें ख़ुद उनके अपने नफ़्स (मन) के हवाले कर दिया गया कि अपनी परदादारी का इन्तिज़ाम ख़ुद करें अगर इसकी ज़रूरत समझते हैं, और अगर ज़रूरत न समझें या उसके लिए कोशिश न करें तो ख़ुदा को इसकी कुछ परवाह नहीं कि वे किस हालत में फिरते हैं। यह मानो हमेशा के लिए इस हक़ीक़त का ज़ाहिर करना था कि इनसान जब ख़ुदा की नाफ़रमानी करेगा तो देर या सवेर उसका परदा खुलकर रहेगा। और यह कि इनसान के साथ ख़ुदा की मदद व हिमायत उसी वक़्त तक रहेगी जब तक वह ख़ुदा के हुक्मों पर चलता रहेगा। फ़रमाँबरदारी की हदों से क़दम बाहर निकालने के बाद उसे ख़ुद ही मदद व हिमायत हरगिज़ न मिलेगी, बल्कि उसे ख़ुद उसके अपने नफ़्स (मन) के हवाले कर दिया जाएगा। यह वही बात है जो कई हदीसों में नबी (सल्ल॰) ने बयान की है और इसी के बारे में नबी (सल्ल॰) ने दुआ की है कि

اَللّٰهُمَّ رَحْمَتَكَ اَرْجُوْا فَلَا تَكِلْنِيْ اِلٰى نَفْسِيْ طَرْفَةَ عَيْنٍ

अल्लाहुम-म रह-म-त-क अरजू, फ़ला तकिलनी इला नफ़्सी तर-फ़-त ऐनिन।

"ऐ अल्लाह मैं तेरी रहमत का उम्मीदवार हूँ, तू मुझे एक लम्हे के लिए भी मेरे नफ़्स के हवाले न कर।" (हदीस : अहमद)

(7) शैतान यह साबित करना चाहता था कि इनसान उस बड़ाई का हक़दार नहीं है जो उसके मुक़ाबले में इनसान को दी गई है, लेकिन पहले ही मुक़ाबले में उसे हार का मुँह देखना पड़ा। इसमें शक नहीं कि इस मुक़ाबले में इनसान अपने रब के हुक्म की फ़रमाँबरदारी करने में पूरी तरह कामयाब न हो सका और उसकी यह कमज़ोरी ज़ाहिर हो गई कि वह अपने मुख़ालिफ़ की चाल में आकर फ़रमाँबरदारी की राह से हट सकता है। मगर बहरहाल इस सबसे पहले मुक़ाबले में यह पूरी तरह साबित हो गया कि इनसान अपने अख़लाक़ी मर्तबे में एक अफ़ज़ल मख़लूक़

قَالَ اهْبِطُوا بَعْضُكُمْ لِبَعْضٍ عَدُوٌّ ۚ وَلَكُمْ فِي الْأَرْضِ مُسْتَقَرٌّ

(24) कहा, "उतर जाओ,[14] तुम एक-दूसरे के दुश्मन हो, और तुम्हारे लिए एक ख़ास

(श्रेष्ठ सृष्टि) है। पहली बात यह कि शैतान अपनी बड़ाई का ख़ुद दावेदार था, और इनसान ने इसका दावा ख़ुद नहीं किया बल्कि बड़ाई उसे दी गई। दूसरी यह कि शैतान ने ख़ालिस ग़ुरूर और घमण्ड की बिना पर अल्लाह के हुक्म की नाफ़रमानी आप अपने इख़्तियार से की और इनसान ने नाफ़रमानी ख़ुद नहीं की बल्कि शैतान के बहकाने से वह ऐसा कर बैठा। तीसरी बात यह कि इनसान ने बुराई की खुली दावत को क़बूल नहीं किया, बल्कि बुराई की तरफ़ बुलानेवाले (शैतान) को भलाई की तरफ़ बुलानेवाला बनकर उसके सामने आना पड़ा। वह पस्ती की तरफ़ पस्ती की तलब में नहीं गया, बल्कि इस धोखे में पड़कर गया कि यह रास्ता उसे बुलन्दी की तरफ़ ले जाएगा। चौथी चीज़ यह कि शैतान को ख़बरदार किया गया तो वह अपने क़ुसूर को मानने और बन्दगी की तरफ़ पलट आने के बजाए नाफ़रमानी पर और ज़्यादा जम गया, और जब इनसान को उसके क़ुसूर पर ख़बरदार किया गया तो उसने शैतान की तरह सरकशी नहीं की बल्कि अपनी ग़लती का एहसास होते ही वह शर्मिन्दा हुआ, अपनी ग़लती मानकर बग़ावत से फ़रमाँबरदारी की तरफ़ पलट आया और माफ़ी माँगकर अपने रब की रहमत की गोद में पनाह ढूँढने लगा।

(8) इस तरह शैतान की राह और वह राह जो इनसान के लायक़ है, दोनों एक-दूसरे से बिलकुल अलग ज़ाहिर हो गईं। ख़ालिस शैतानी राह यह है कि बन्दगी से मुँह मोड़े, ख़ुदा के मुक़ाबले में सरकशी इख़्तियार करे, ख़बरदार किए जाने के बावजूद पूरे घमण्ड के साथ अपनी बग़ावत के रवैये पर अड़ा रहे और जो लोग फ़रमाँबरदारी की राह पर चल रहे हों उनको भी बहकाए और बुराई के रास्ते पर लाने की कोशिश करे। इसके बरख़िलाफ़ जो राह इनसान के लायक़ है वह यह है कि अव्वल तो शैतानी बहकावे का मुक़ाबला करे और अपने इस दुश्मन की चालों को समझने और उनसे बचने के लिए हर वक़्त चौकन्ना रहे, लेकिन अगर कभी उसका क़दम बन्दगी और फ़रमाँबरदारी की राह से हट भी जाए तो अपनी ग़लती का एहसास होते ही पछतावे और शर्मिंदगी के साथ फ़ौरन अपने रब की तरफ़ पलटे और उस ग़लती की भरपाई कर दे जो उससे हो गई है। यही वह अस्ल सबक़ है जो अल्लाह तआला इस क़िस्से से यहाँ देना चाहता है। मक़सद ज़ेहन में यह बिठाना है कि जिस राह पर तुम लोग जा रहे हो यह शैतान की राह है। यह तुम्हारा ख़ुदाई हिदायत से बेपरवाह होकर इनसान और जिन्न रूपी शैतानों को अपना दोस्त और सरपरस्त बनाना और बार-बार तुम्हें ख़बरदार किए जाने के बावजूद यह तुम्हारा अपनी ग़लती पर अड़े रहना, यह अस्ल में ख़ालिस शैतानी रवैया है। तुम अपने हमेशा के दुश्मन के फंदे में फँस चुके हो और उससे पूरी तरह हार रहे हो। इसका अंजाम फिर वही है जिससे शैतान ख़ुद दो-चार होनेवाला है। अगर तुम हक़ीक़त में ख़ुद अपने दुश्मन नहीं हो गए हो और कुछ भी होश तुम में बाक़ी है तो सँभलो और वह राह इख़्तियार करो जो आख़िरकार तुम्हारे माँ-बाप आदम और हव्वा ने इख़्तियार की थी।

14. यह न समझा जाए कि हज़रत आदम (अलैहि॰) और हज़रत हव्वा (अलैहि॰) को जन्नत से

وَّمَتَاعٌ اِلٰى حِيْنٍ ﴿٢٤﴾ قَالَ فِيْهَا تَحْيَوْنَ وَ فِيْهَا تَمُوْتُوْنَ وَ مِنْهَا
تُخْرَجُوْنَ ﴿٢٥﴾ يٰبَنِيْٓ اٰدَمَ قَدْ اَنْزَلْنَا عَلَيْكُمْ لِبَاسًا يُّوَارِيْ سَوْاٰتِكُمْ

मुद्दत तक ज़मीन ही में ठहरने की जगह और ज़िन्दगी गुज़ारने का सामान है।"

(25) और फ़रमाया, "वहीं तुमको जीना और वहीं मरना है और उसी में से तुमको आख़िरकार निकाला जाएगा।"

(26) ऐ आदम की औलाद![15] मैंने तुमपर लिबास उतारा है कि तुम्हारे जिस्म के

बाहर उतर जाने का यह हुक्म सज़ा के तौर पर दिया गया था। क़ुरआन में कई जगहों पर इस बात को साफ़-साफ़ बयान कर दिया गया है कि अल्लाह ने उनकी तौबा क़बूल कर ली और उन्हें माफ़ कर दिया। लिहाज़ा इस हुक्म में सज़ा का कोई पहलू नहीं है बल्कि इससे वह मक़सद पूरा करना है जिसके लिए इनसान को पैदा किया गया था। (तशरीह के लिए देखें—सूरा-2 अल-बक़रा, हाशिया, 48 और 53)

15. अब आदम व हव्वा के क़िस्से के एक ख़ास पहलू की तरफ़ ध्यान दिलाकर अरब के लोगों के सामने ख़ुद उनकी अपनी ज़िन्दगी के अन्दर शैतान के बहकावे से पैदा हुए एक बहुत ही नुमायाँ असर की निशानदही की जाती है। ये लोग लिबास को सिर्फ़ ज़ीनत (ख़ूबसूरती) और मौसम के असरात से जिस्म की हिफ़ाज़त के लिए इस्तेमाल करते थे, लेकिन उसकी सबसे पहली बुनियादी ग़रज़, यानी जिस्म के क़ाबिले-शर्म हिस्सों को ढाँकना उनके नज़दीक कोई अहमियत न रखती थी। उन्हें अपने सतर (छिपे अंग) दूसरों के सामने खोल देने में कोई झिझक न होती थी। सबके सामने बेलिबास होकर नहा लेना, राह चलते पाख़ाना-पेशाब करने के लिए बैठ जाना, इज़ार (पाजामा, शलवार वग़ैरा) खुल जाए तो सतर के बे-परदा हो जाने की परवाह न करना, उनके रात-दिन की बातें थीं। इससे भी बढ़कर यह कि उनमें से बहुत-से लोग हज के मौक़े पर काबा के गिर्द बे-लिबास होकर तवाफ़ (परिक्रमा) करते थे और इस मामले में उनकी औरतें उनके मर्दों से भी कुछ ज़्यादा बेशर्म थीं। उनकी निगाह में यह एक मज़हबी काम था और नेक काम समझकर वे ऐसा करते थे। फिर चूँकि यह सिर्फ़ अरबों ही की ख़ुसूसियत (विशिष्टता) न थी, दुनिया की बहुत-सी क़ौमें इस बेहयाई में मुब्तला रही हैं और आज तक हैं। इसलिए ख़िताब अरब के लोगों के लिए ख़ास नहीं है बल्कि आम है, और सारे इनसानों को ख़बरदार किया जा रहा है कि देखो, यह शैतानी बहकावे की एक खुली अलामत तुम्हारी ज़िन्दगी में मौजूद है। तुमने अपने रब की रहनुमाई से बेपरवाह होकर और उसके रसूलों की दावत से मुँह मोड़कर अपने आपको शैतान के हवाले कर दिया और उसने तुम्हें इनसानी फ़ितरत के रास्ते से हटाकर उसी बेहयाई में मुब्तला कर दिया जिसमें वह तुम्हारे पहले बाप और माँ को मुब्तला करना चाहता था। इसपर ग़ौर करो तो यह हक़ीक़त तुमपर खुल जाए कि रसूलों की रहनुमाई के बग़ैर तुम अपनी फ़ितरत के इब्तिदाई मुतालबात तक को न समझ सकते हो और न पूरा कर सकते हो।

وَرِيْشًا ۭ وَلِبَاسُ التَّقْوٰى ۙ ذٰلِكَ خَيْرٌ ۭ ذٰلِكَ مِنْ اٰيٰتِ اللّٰهِ لَعَلَّهُمْ
يَذَّكَّرُوْنَ ۝ يٰبَنِيْٓ اٰدَمَ لَا يَفْتِنَنَّكُمُ الشَّيْطٰنُ كَمَآ اَخْرَجَ اَبَوَيْكُمْ
مِّنَ الْجَنَّةِ يَنْزِعُ عَنْهُمَا لِبَاسَهُمَا لِيُرِيَهُمَا سَوْاٰتِهِمَا ۭ اِنَّهٗ يَرٰىكُمْ هُوَ
وَقَبِيْلُهٗ مِنْ حَيْثُ لَا تَرَوْنَهُمْ ۭ اِنَّا جَعَلْنَا الشَّيٰطِيْنَ اَوْلِيَاۗءَ لِلَّذِيْنَ
لَا يُؤْمِنُوْنَ ۝ وَاِذَا فَعَلُوْا فَاحِشَةً قَالُوْا وَجَدْنَا عَلَيْهَآ اٰبَاۗءَنَا وَاللّٰهُ

क़ाबिले-शर्म हिस्सों को ढाँके और तुम्हारे लिए जिस्म की हिफ़ाज़त और ज़ीनत का ज़रिआ भी हो, और बेहतरीन लिबास तक़वा का लिबास है। यह अल्लाह की निशानियों में से एक निशानी है, शायद कि लोग इससे सबक़ लें। (27) ऐ आदम की औलाद! ऐसा न हो कि शैतान तुम्हें फिर उसी तरह फ़ितने में डाल दे, जिस तरह उसने तुम्हारे माँ-बाप को जन्नत से निकलवाया था और उनके लिबास उनपर से उतरवा दिए थे; ताकि उनकी शर्मगाहें एक-दूसरे के सामने खोले। वह और उसके साथी तुम्हें ऐसी जगह से देखते हैं जहाँ से तुम उन्हें नहीं देख सकते। इन शैतानों को हमने उन लोगों का सरपरस्त बना दिया है जो ईमान नहीं लाते।[16]

(28) ये लोग जब कोई शर्मनाक काम करते हैं तो कहते हैं, हमने अपने बाप-दादा

16. इन आयतों में जो कुछ कहा गया है उससे कुछ अहम हक़ीक़तें निखरकर सामने आ जाती हैं : पहली यह कि लिबास इनसान के लिए बनावटी चीज़ नहीं है, बल्कि इनसानी फ़ितरत की एक अहम माँग है। अल्लाह तआला ने इनसान के जिस्म पर जानवरों की तरह कोई परदा पैदाइशी तौर पर नहीं रखा, बल्कि हया व शर्म का एहसास उसकी फ़ितरत में रख दिया। उसने इनसान के लिए उसके आज़ाए-सिनफ़ी (यौनांगों) को सिर्फ़ यौन-अंग ही नहीं बनाया बल्कि 'सौअत' भी बनाया जिसके मानी अरबी ज़बान में ऐसी चीज़ के हैं जिसको ज़ाहिर करना आदमी नापसन्द करे। फिर इस फ़ितरी शर्म के तक़ाज़े को पूरा करने के लिए उसने कोई बना-बनाया लिबास इनसान को नहीं दे दिया बल्कि उसकी फ़ितरत में लिबास की ज़रूरत डाल दी गई (हमने तुम पर लिबास उतारा। आयत-26) ताकि वह अपनी अक़्ल से काम लेकर अपनी फ़ितरत की इस माँग को समझे और फिर अल्लाह की पैदा की हुई चीज़ों से काम लेकर अपने लिए लिबास तैयार करे।

दूसरी यह कि इस फ़ितरी माँग के मुताबिक़ इनसान के लिए लिबास की अख़लाक़ी ज़रूरत

सबसे पहले है, यानी यह कि वह अपने जिस्म के छिपाने लायक़ हिस्सों को ढाँके। और उसकी तबई (फ़ितरी) ज़रूरत इसके बाद है यानी यह कि उसका लिबास उसके लिए 'रीश' (जिस्म की आराइश और मौसम के असरात से बदन की हिफ़ाज़त का ज़रिआ) हो। इस मामले में भी फ़ितरी तौर पर इनसान का हाल जानवरों के बिलकुल उलट है। उनके लिए परदे की अस्ल ग़रज़ सिर्फ़ उसका 'रीश' होना है। रहा उनका शर्मगाहों को ढाँकना तो उनके आज़ाए-जिंसी (यौनांग) सिरे से 'सौअत' ही नहीं हैं कि उन्हें छिपाने के लिए जानवरों की फ़ितरत में कोई जज़्बा मौजूद होता और उसका तक़ाज़ा पूरा करने के लिए उनके जिस्मों पर कोई लिबास पैदा किया जाता। लेकिन जब इनसानों ने शैतान की रहनुमाई क़बूल की तो मामला फिर उलट गया। उसने अपने उन शागिर्दों को इस ग़लतफ़हमी में डाल दिया कि तुम्हारे लिए लिबास की ज़रूरत बिलकुल उसी तरह है जिस तरह जानवरों को मौसम के असर से बच्चने के और ख़ूबसूरत दिखने के लिए 'रीश' (बालों) की ज़रूरत है, रहा उसका 'सौअत' (शर्मगाह) को छिपानेवाली चीज़ होना, तो यह बिलकुल कोई हैसियत नहीं रखता बल्कि जिस तरह जानवरों के जिंसी हिस्से 'सौअत' नहीं हैं उसी तरह तुम्हारे ये हिस्से भी 'सौअत' नहीं, सिर्फ़ जिंसी हिस्से ही हैं।

तीसरी यह कि इनसान के लिए लिबास का सिर्फ़ सतरपोशी का ज़रिआ होना और उसकी ख़ूबसूरती व हिफ़ाज़त का साधन होना ही काफ़ी नहीं है बल्कि हक़ीक़त में इस मामले में जिस भलाई तक इनसान को पहुँचना चाहिए वह यह है कि उसका लिबास तक़्वा का लिबास हो, यानी पूरी तरह सतर को छिपानेवाला भी हो, ज़ीनत में भी हद से बढ़ा हुआ या आदमी की हैसियत से गिरा हुआ न हो, फ़ख़्र व गुरूर और अपने को बड़ा ज़ाहिर करने और दिखावे की शान के लिए भी न हो, और फिर उन ज़ेहनी बीमारियों की नुमाइन्दगी भी न करता हो जिनकी बिना पर मर्द ज़नानापन इख़्तियार करते हैं। औरतें मर्दानापन की नुमाइश करने लगती हैं, और एक क़ौम दूसरी क़ौम के जैसी बनने की कोशिश करके ख़ुद अपनी रुसवाई का ज़िन्दा इश्तिहार बन जाती है। लिबास के मामले में उस भलाई तक पहुँचना जो कि इसका अस्ल मक़सद है, यह तो किसी तरह उन लोगों के बस में है ही नहीं जिन्होंने पैग़म्बरों (अलैहि.) पर ईमान लाकर अपने आपको बिलकुल ख़ुदा की रहनुमाई के हवाले नहीं कर दिया है। जब वे ख़ुदा की रहनुमाई क़बूल करने से इनकार कर देते हैं तो शैतान उनके सरपरस्त बना दिए जाते हैं, फिर ये शैतान उनको किसी न किसी ग़लती में मुब्तला करके ही छोड़ते हैं।

चौथी यह कि लिबास का मामला भी अल्लाह की उन बेशुमार निशानियों में से एक है जो दुनिया में चारों तरफ़ फैली हुई हैं और हक़ीक़त तक पहुँचने में इनसान की मदद करती हैं, शर्त यह है कि इनसान उनसे ख़ुद सबक़ लेना चाहे। ऊपर जिन हक़ीक़तों की तरफ़ हमने इशारा किया है उन्हें अगर ग़ौर से देखा जाए तो यह बात आसानी से समझ में आ सकती है कि लिबास किस हैसियत से अल्लाह तआला का एक अहम निशान है।

أَمَرَنَا بِهَا ۚ قُلْ إِنَّ اللَّهَ لَا يَأْمُرُ بِالْفَحْشَاءِ ۖ أَتَقُولُونَ عَلَى اللَّهِ مَا لَا
تَعْلَمُونَ ﴿٢٨﴾ قُلْ أَمَرَ رَبِّي بِالْقِسْطِ ۖ وَأَقِيمُوا وُجُوهَكُمْ عِندَ كُلِّ
مَسْجِدٍ وَادْعُوهُ مُخْلِصِينَ لَهُ الدِّينَ ۚ كَمَا بَدَأَكُمْ تَعُودُونَ ﴿٢٩﴾ فَرِيقًا

को इसी तरीक़े पर पाया है और अल्लाह ही ने हमें ऐसा करने का हुक्म दिया है।[17] इनसे कहो, अल्लाह बेशर्मी का हुक्म कभी नहीं दिया करता।[18] क्या तुम अल्लाह का नाम लेकर वे बातें कहते हो जिनके बारे में तुम्हें जानकारी नहीं है (कि वे अल्लाह की तरफ़ से हैं?) (29) ऐ नबी! इनसे कहो, मेरे रब ने तो सच्चाई और इंसाफ़ का हुक्म दिया है, और उसका हुक्म तो यह है कि हर इबादत में अपना रुख़ ठीक रखो और उसी को पुकारो अपने दीन (धर्म) को उसके लिए ख़ालिस रखकर। जिस तरह उसने तुम्हें अब पैदा किया है उसी तरह तुम फिर पैदा किए जाओगे।[19] (30) एक गरोह को तो उसने

17. इशारा है अरबवालों के बेलिबास होकर (काबा का) तवाफ़ करने की तरफ़, जिसका हम ऊपर ज़िक्र कर चुके हैं। वे लोग इसको एक मज़हबी काम समझकर करते थे और उनका ख़याल था कि ख़ुदा ने यह हुक्म दिया है।

18. बज़ाहिर यह एक बहुत ही मुख़्तसर-सा जुमला है मगर हक़ीक़त में इसमें क़ुरआन मजीद ने उन लोगों के जाहिलाना अक़ीदों के ख़िलाफ़ एक बहुत बड़ी दलील पेश की है। दलील के इस तरीक़े (तर्क-शैली) को समझने के लिए दो बातें पहले समझ लेनी चाहिएँ :

एक यह कि अरब के लोग अगरचे अपनी कुछ मज़हबी रस्मों में बेलिबास हो जाते थे और इसे एक मुकद्दस मज़हबी काम समझते थे, लेकिन नंगेपन का अपने में एक शर्मनाक काम होना ख़ुद वे भी मानते थे। चुनांचे कोई शरीफ़ और इज़्ज़तदार अरब इस बात को पसन्द न करता था कि किसी मुहज़्ज़ब मजलिस में, या बाज़ार में, या अपने दोस्तों और रिश्तेदारों के दरमियान बेलिबास हो।

दूसरी यह कि वे लोग नंगेपन को शर्मनाक जानने के बावजूद एक मज़हबी रस्म की हैसियत से अपनी इबादत के मौक़े पर इख़्तियार करते थे और चूंकि अपने मज़हब को ख़ुदा की तरफ़ से समझते थे इसलिए उनका दावा था कि यह रस्म भी ख़ुदा ही की तरफ़ से मुक़र्रर की हुई है। इसपर क़ुरआन मजीद यह दलील देता है कि जो काम बेशर्मी का है और जिसे तुम ख़ुद भी जानते और मानते हो कि बेशर्मी का काम है उसके बारे में तुम यह कैसे मान लेते हो कि ख़ुदा ने इसका हुक्म दिया होगा। किसी बेशर्मी के काम का हुक्म ख़ुदा की तरफ़ से हरगिज़ नहीं हो सकता, और अगर तुम्हारे मज़हब में ऐसा हुक्म पाया जाता है तो यह इस बात की खुली अलामत है कि तुम्हारा मज़हब ख़ुदा की तरफ़ से नहीं है।

19. मतलब यह कि ख़ुदा के दीन को तुम्हारी इन बेहूदा रस्मों से क्या ताल्लुक़। उसने जिस दीन

هُدٰى وَفَرِيْقًا حَقَّ عَلَيْهِمُ الضَّلٰلَةُ ۭ اِنَّهُمُ اتَّخَذُوا الشَّيٰطِيْنَ اَوْلِيَاۗءَ
مِنْ دُوْنِ اللّٰهِ وَيَحْسَبُوْنَ اَنَّهُمْ مُّهْتَدُوْنَ ۞ يٰبَنِيْٓ اٰدَمَ خُذُوْا
زِيْنَتَكُمْ عِنْدَ كُلِّ مَسْجِدٍ وَّكُلُوْا وَاشْرَبُوْا وَلَا تُسْرِفُوْا ۚ اِنَّهٗ لَا يُحِبُّ

सीधा रास्ता दिखा दिया है, मगर दूसरे गरोह पर गुमराही चिपककर रह गई है; क्योंकि उन्होंने अल्लाह के बजाए शैतानों को अपना सरपरस्त बना लिया है और वे समझ रहे हैं कि हम सीधे रास्ते पर हैं।

(31) ऐ आदम की औलाद! हर इबादत के मौक़े पर अपनी ज़ीनत (साज-सज्जा) से आरास्ता रहो[20] और खाओ-पियो और हद से आगे न बढ़ो। अल्लाह हद से आगे

की तालीम दी है उसके बुनियादी उसूल तो ये हैं :

(1) इनसान अपनी ज़िन्दगी को इनसाफ़ और सच्चाई की बुनियाद पर क़ायम करे।

(2) इबादत में अपना रुख़ ठीक रखे, यानी ख़ुदा के सिवा किसी और की बन्दगी की ज़रा-सी मिलावट तक उसकी इबादत में न हो। हक़ीक़ी माबूद (अल्लाह) के सिवा किसी दूसरे की तरफ़ इताअत व ग़ुलामी और इज्ज़ व नियाज़ (विनम्रता) का रुख़ ज़रा न फिरने पाए।

(3) रहनुमाई और मदद व हिमायत और निगहबानी व हिफ़ाज़त के लिए ख़ुदा ही से दुआ माँगे, मगर शर्त यह है कि इस चीज़ की दुआ माँगनेवाला आदमी पहले अपने दीन को ख़ुदा के लिए ख़ालिस कर चुका हो। यह न हो कि ज़िन्दगी का सारा निज़ाम तो कुफ़्र व शिर्क और बुराई और ग़ैरों की बन्दगी पर चलाया जा रहा हो और मदद ख़ुदा से माँगी जाए कि ऐ ख़ुदा यह बग़ावत जो हम तुझसे कर रहे हैं इसमें हमारी मदद फ़रमा।

(4) और इस बात पर यक़ीन रखे कि जिस तरह इस दुनिया में वह पैदा हुआ है उसी तरह एक-दूसरे आलम में भी उसको पैदा किया जाएगा और उसे अपने कामों का हिसाब ख़ुदा को देना होगा।

20. यहाँ ज़ीनत से मुराद मुकम्मल लिबास है। ख़ुदा की इबादत में खड़े होने के लिए सिर्फ़ इतना ही काफ़ी नहीं है कि आदमी सिर्फ़ अपना सतर छिपा ले, बल्कि इसके साथ यह भी ज़रूरी है कि जहाँ तक हो सके वह अपना पूरा लिबास पहने जिससे सतर-पोशी भी हो और ज़ीनत भी। यह हुक्म उस ग़लत रवैये को रद्द करने के लिए है जिसपर जाहिल लोग अपनी इबादतों में अमल करते रहे हैं और आज तक कर रहे हैं। वे समझते हैं कि नंगे या अधनंगे होकर और अपने हुलियों को बिगाड़कर ख़ुदा की इबादत करनी चाहिए। इसके बरख़िलाफ़ ख़ुदा कहता है कि अपनी ज़ीनत से अरास्ता होकर ऐसी हालत में इबादत करनी चाहिए जिसमें नंगापन तो क्या, नाशाइस्तगी और बदतहज़ीबी तक ज़रा भी न झलके।

ع
الْمُسْرِفِيْنَ ۝ قُلْ مَنْ حَرَّمَ زِيْنَةَ اللّٰهِ الَّتِيْٓ اَخْرَجَ لِعِبَادِهٖ
وَالطَّيِّبٰتِ مِنَ الرِّزْقِ ۭ قُلْ هِيَ لِلَّذِيْنَ اٰمَنُوْا فِي الْحَيٰوةِ الدُّنْيَا
خَالِصَةً يَّوْمَ الْقِيٰمَةِ ۭ كَذٰلِكَ نُفَصِّلُ الْاٰيٰتِ لِقَوْمٍ يَّعْلَمُوْنَ ۝

बढ़नेवालों को पसन्द नहीं करता।[21]

(32) ऐ नबी! इनसे कहो, किसने अल्लाह की उस ज़ीनत को हराम कर दिया जिसे अल्लाह ने अपने बन्दों के लिए निकाला था और किसने अल्लाह की दी हुई पाक चीज़ें हराम ठहरा दीं?[22] कहो, ये सारी चीज़ें दुनिया की ज़िन्दगी में भी ईमान लानेवालों के लिए हैं, और क़ियामत के दिन तो ख़ास तौर से उन्हीं के लिए होंगी।[23] इस तरह हम अपनी बातें साफ़-साफ़ बयान करते हैं उन लोगों के लिए जो इल्म रखनेवाले हैं।

21. यानी ख़ुदा को तुम्हारी ख़स्ताहाली और भूखा रहने और पाक और अच्छी रोज़ी से महरूमी पसन्द नहीं है कि उसकी बन्दगी बजा लाने के लिए यह किसी दरजे में भी चाही गई हो, बल्कि उसकी ख़ुशी तो यह है कि तुम उसके बख़्शे हुए उम्दा लिबास पहनो और पाक रोज़ी से फ़ायदा उठाओ। उसकी शरीअत में अस्ल गुनाह यह है कि आदमी उसकी मुक़र्रर की हुई हदों से आगे बढ़ जाए, चाहे यह हद से आगे बढ़ना हलाल को हराम कर लेने की शक्ल में हो या हराम को हलाल कर लेने की शक्ल में।

22. मतलब यह है कि अल्लाह ने तो दुनिया की सारी ज़ीनतें और पाकीज़ा चीज़ें बन्दों ही के लिए पैदा की हैं, इसलिए अल्लाह का मंशा तो बहरहाल यह नहीं हो सकता कि उन्हें बन्दों के लिए हराम कर दे। अब अगर कोई मज़हब या कोई अख़लाक़ी और समाजी-निज़ाम (सामाजिक व्यवस्था) ऐसा है जो उन्हें हराम, या क़ाबिले-नफ़रत, या रूहानी तरक़्क़ी में रुकावट क़रार देता है तो उसका यह काम ख़ुद ही इस बात का खुला सुबूत है कि वह ख़ुदा की तरफ़ से नहीं है। यह भी उन हुज्जतों (दलीलों) में से एक अहम हुज्जत है जो क़ुरआन ने बातिल मज़हबों के रद्द में पेश की हैं, और इसको समझ लेना इस बात को समझने के लिए ज़रूरी है कि क़ुरआन किसी बात को साबित करने या असके लिए दलील पैदा करने का क्या तरीक़ा अपनाता है।

23. यानी हक़ीक़त के लिहाज़ से तो ख़ुदा की पैदा की हुई तमाम चीज़ें दुनिया की ज़िन्दगी में भी ईमानवालों ही के लिए हैं; क्योंकि वही ख़ुदा की वफ़ादार रिआया (प्रजा) हैं और हक़्क़े-नमक सिर्फ़ नमक हलालों ही को पहुँचता है। लेकिन दुनिया का मौजूदा इन्तिज़ाम चूँकि आज़माइश और मुहलत के उसूल पर क़ायम किया गया है, इसलिए यहाँ अकसर ख़ुदा की नेमतें नमक हरामों पर भी तक़्सीम होती रहती हैं और बहुत बार नमक हलालों से बढ़कर उन्हें नेमतों से मालामाल कर दिया जाता है। अलबत्ता आख़िरत में (जहाँ का सारा इन्तिज़ाम ख़ालिस हक़ की बुनियाद पर होगा) ज़िन्दगी के ऐशो-आराम और रोज़ी की पाक चीज़ें सब की सब महज़ नमक

قُلْ اِنَّمَا حَرَّمَ رَبِّیَ الْفَوَاحِشَ مَا ظَهَرَ مِنْهَا وَمَا بَطَنَ وَالْاِثْمَ وَالْبَغْیَ
بِغَیْرِ الْحَقِّ وَاَنْ تُشْرِكُوْا بِاللّٰهِ مَا لَمْ یُنَزِّلْ بِهٖ سُلْطٰنًا وَّاَنْ تَقُوْلُوْا
عَلَى اللّٰهِ مَا لَا تَعْلَمُوْنَ ﴿۳۳﴾ وَلِكُلِّ اُمَّةٍ اَجَلٌ ۚ فَاِذَا جَآءَ اَجَلُهُمْ لَا
یَسْتَاْخِرُوْنَ سَاعَةً وَّلَا یَسْتَقْدِمُوْنَ ﴿۳۴﴾ یٰبَنِیْۤ اٰدَمَ اِمَّا یَاْتِیَنَّكُمْ

(33) ऐ नबी! इनसे कहो कि मेरे रब ने जो चीज़ें हराम की हैं वे तो ये हैं– बेशर्मी के काम– चाहे खुले हों या छिपे[24]– और गुनाह[25] और हक़ के ख़िलाफ़ ज़ुल्म-ज़्यादती[26] और यह कि अल्लाह के साथ तुम किसी को शरीक करो, जिसके लिए उसने कोई दलील नहीं उतारी और यह कि अल्लाह के नाम पर कोई ऐसी बात कहो जिसके बारे में तुम्हें इल्म न हो (कि वह हक़ीक़त में उसी ने कही है)।

(34) हर क़ौम के लिए मोहलत की एक मुद्दत मुक़र्रर है। फिर जब किसी क़ौम की मुद्दत आन पूरी होती है तो एक घड़ी भर भी आगे पीछे नहीं होती,[27] (35) (और यह बात अल्लाह ने पैदाइश के शुरू ही में साफ़ कह दी थी कि) ऐ आदम की औलाद! याद

हलालों के लिए ख़ास होंगी और वे नमक हराम उनमें से कुछ न पा सकेंगे जिन्होंने अपने रब की रोज़ी पर पलने के बाद अपने रब ही के ख़िलाफ़ सरकशी की।

24. तशरीह के लिए देखें—सूरा-6 अल-अनआम, हाशिया 128,131।

25. अस्ल अरबी में लफ़्ज़ 'इस्म' इस्तेमाल हुआ है जिसके अस्ल मानी कोताही के हैं। "आसिमा" उस ऊँटनी को कहते हैं जो तेज़ चल सकती हो मगर जान-बूझकर सुस्त चले। इसी से इस लफ़्ज़ में गुनाह के मानी पैदा हुए हैं, यानी इनसान का अपने रब की इताअत व फ़रमाँबरदारी में क़ुदरत और सकत के बावजूद कोताही करना और उसकी ख़ुशी तक पहुँचने में जान बूझकर ग़लती करना।

26. यानी अपनी हद से आगे बढ़कर ऐसी हदों में क़दम रखना जिनके अन्दर दाख़िल होने का आदमी को हक़ न हो। इस मानी के मुताबिक़ वे लोग भी बाग़ी ठहरते हैं जो ख़ुदा की बन्दगी की हद से निकलकर ख़ुदा के मुल्क में ख़ुदमुख़्ताराना रवैया इख़्तियार करते हैं, और वे भी जो ख़ुदा की ख़ुदाई में अपनी बड़ाई के डंके बजाते हैं और ये भी जो ख़ुदा के बन्दों के हक़ों पर डाका डालते हैं।

27. मुहलत की मुद्दत मुक़र्रर किए जाने का मतलब यह नहीं है कि हर क़ौम के लिए बरसों और महीनों और दिनों के लिहाज़ से एक उम्र मुक़र्रर की जाती हो और उस उम्र के पूरा होते ही उस क़ौम को लाज़िमन ख़त्म कर दिया जाता हो, बल्कि इसका मतलब यह है कि हर क़ौम को

رُسُلٌ مِّنۡكُمۡ يَقُصُّوۡنَ عَلَيۡكُمۡ اٰيٰتِىۡ ۙ فَمَنِ اتَّقٰى وَاَصۡلَحَ فَلَا خَوۡفٌ
عَلَيۡهِمۡ وَلَا هُمۡ يَحۡزَنُوۡنَ ﴿۳۵﴾ وَالَّذِيۡنَ كَذَّبُوۡا بِاٰيٰتِنَا وَاسۡتَكۡبَرُوۡا عَنۡهَاۤ
اُولٰٓئِكَ اَصۡحٰبُ النَّارِ ۚ هُمۡ فِيۡهَا خٰلِدُوۡنَ ﴿۳۶﴾ فَمَنۡ اَظۡلَمُ مِمَّنِ افۡتَرٰى
عَلَى اللّٰهِ كَذِبًا اَوۡ كَذَّبَ بِاٰيٰتِهٖ ؕ اُولٰٓئِكَ يَنَالُهُمۡ نَصِيۡبُهُمۡ مِّنَ الۡكِتٰبِ ؕ
حَتّٰٓى اِذَا جَآءَتۡهُمۡ رُسُلُنَا يَتَوَفَّوۡنَهُمۡ ۙ قَالُوۡۤا اَيۡنَ مَا كُنۡتُمۡ تَدۡعُوۡنَ

रखो, अगर तुम्हारे पास ख़ुद तुम ही में से ऐसे रसूल आएँ जो तुम्हें मेरी आयतें सुना रहे हों, तो जो कोई नाफ़रमानी से बचेगा और अपने रवैए का सुधार कर लेगा, उसके लिए किसी डर और रंज का मौक़ा नही है, (36) और जो लोग हमारी आयतों को झुठलाएँगे और उनके मुक़ाबले में सरकशी अपनाएँगे, वही दोज़ख़वाले होंगे जहाँ वे हमेशा रहेंगे।[28] (37) आख़िर उससे बड़ा ज़ालिम और कौन होगा जो बिलकुल झूठी बातें गढ़कर अल्लाह से जोड़े या अल्लाह की सच्ची आयतों को झुठलाए? ऐसे लोग अपने नसीब के लिखे के मुताबिक़ अपना हिस्सा पाते रहेंगे,[29] यहाँ तक कि वह घड़ी आ जाएगी जब हमारे भेजे हुए फ़रिश्ते उनकी रूहें निकालने के लिए पहुँचेंगे। उस वक़्त वे उनसे पूछेंगे कि "बताओ,

दुनिया में काम करने का जो मौक़ा दिया जाता है उसकी एक अख़लाक़ी हद मुक़र्रर कर दी जाती है। इस मानी में कि उसके कामों में अच्छाई और बुराई का कम-से-कम कितना तनासुब (अनुपात) बरदाश्त किया जा सकता है। जब तक एक क़ौम की बुरी सिफ़ात (अवगुण) उसकी अच्छी सिफ़ात (सदगुणों) के मुक़ाबले में तनासुब की उस आख़िरी हद से नीचे रहती हैं उस वक़्त तक उसे उसकी तमाम बुराइयों के बावजूद मुहलत दी जाती रहती है, और जब बुरी सिफ़ात उस हद से गुज़र जाती हैं तो फिर उस बदकार और बुरी सिफ़ातवाली क़ौम को और ज़्यादा मुहलत नहीं दी जाती। इस बात को समझने के लिए सूरा-71 नूह की आयत 4, 10 और 12 निगाह में रहें।

28. यह बात क़ुरआन मजीद में हर जगह उस मौक़े पर कही गई है जहाँ आदम (अलैहि.) और हव्वा (अलैहि.) के जन्नत से उतारे जाने का ज़िक्र आया है। (देखें—सूरा-2 अल-बक़रा, आयत-38, 39; सूरा-20 ताहा, आयत 123-124) लिहाज़ा यहाँ भी इसको उसी मौक़े से मुताल्लिक़ समझा जाएगा, यानी नौए-इनसानी (मानव-जाति) की ज़िन्दगी का आग़ाज़ जब हो रहा था उसी वक़्त यह बात साफ़ तौर पर समझा दी गई थी। (देखें—सूरा-3 आले-इमरान, हाशिया-69)

29. यानी दुनिया में जितने दिन उनकी मुहलत के मुक़र्रर हैं, यहाँ रहेंगे और जिस क़िस्म की बज़ाहिर अच्छी या बुरी ज़िन्दगी गुज़ारना उनके नसीब में है, गुज़ार लेंगे।

مِنْ دُوْنِ اللّٰهِ ؕ قَالُوْا ضَلُّوْا عَنَّا وَشَهِدُوْا عَلٰۤى اَنْفُسِهِمْ اَنَّهُمْ كَانُوْا
كٰفِرِيْنَ ۝ قَالَ ادْخُلُوْا فِيْۤ اُمَمٍ قَدْ خَلَتْ مِنْ قَبْلِكُمْ مِّنَ الْجِنِّ
وَالْاِنْسِ فِي النَّارِ ؕ كُلَّمَا دَخَلَتْ اُمَّةٌ لَّعَنَتْ اُخْتَهَا ؕ حَتّٰۤى اِذَا ادَّارَكُوْا
فِيْهَا جَمِيْعًا ۙ قَالَتْ اُخْرٰىهُمْ لِاُوْلٰىهُمْ رَبَّنَا هٰۤؤُلَآءِ اَضَلُّوْنَا فَاٰتِهِمْ
عَذَابًا ضِعْفًا مِّنَ النَّارِ ؕ قَالَ لِكُلٍّ ضِعْفٌ وَّلٰكِنْ لَّا تَعْلَمُوْنَ ۝
وَقَالَتْ اُوْلٰىهُمْ لِاُخْرٰىهُمْ فَمَا كَانَ لَكُمْ عَلَيْنَا مِنْ فَضْلٍ فَذُوْقُوا

अब कहाँ हैं तुम्हारे वे माबूद (उपास्य) जिनको तुम अल्लाह के बजाए पुकारते थे?" वे कहेंगे कि "सब हमसे गुम हो गए।" और वे ख़ुद अपने ख़िलाफ़ गवाही देंगे कि हम हक़ीक़त में हक़ के इनकारी थे। (38) अल्लाह फ़रमाएगा, जाओ, तुम भी उसी जहन्नम में चले जाओ जिसमें तुमसे पहले गुज़रे हुए जिन्न और इनसानों के गरोह जा चुके हैं। हर गरोह जब जहन्नम में दाख़िल होगा तो अपने अगले गरोह पर लानत करता हुआ दाख़िल होगा, यहाँ तक कि जब सब वहाँ जमा हो जाएँगे तो हर बादवाला गरोह पहले गरोह के बारे में कहेगा कि ऐ रब! ये लोग थे जिन्होंने हमें गुमराह किया, इसलिए इन्हें आग का दोहरा अज़ाब दे। जवाब में कहा जाएगा, हर एक के लिए दोहरा ही अज़ाब है मगर तुम जानते नहीं हो।[30] (39) और पहला गरोह दूसरे गरोह से कहेगा कि (अगर हम इलज़ाम के क़ाबिल थे) तो तुम्हीं को हम पर क़ौन-सी बड़ाई हासिल थी, अब अपनी

---

30. यानी बहरहाल तुममें से हर गरोह किसी का ख़लफ़ (पीछे आनेवाला) था, तो किसी का सलफ़ (पहले गुज़रा हुआ) भी था। अगर किसी गरोह से पहले के लोगों ने उसके लिए फ़िक्र व अमल की गुमराहियों की विरासत छोड़ी थी तो ख़ुद वह भी अपने बाद में आनेवालों के लिए वैसी ही विरासत छोड़कर दुनिया से रुख़सत हुआ। अगर एक गरोह के गुमराह होने की कुछ ज़िम्मेदारी उसके बुज़ुर्गों पर आनी है तो उसके बाद में आनेवाली नस्लों की गुमराही का अच्छा-ख़ासा बोझ ख़ुद उसपर भी आ पड़ता है। इसी बिना पर फ़रमाया कि हर एक के लिए दोहरा अज़ाब है। एक अज़ाब ख़ुद गुमराही इख़्तियार करने का और दूसरा अज़ाब दूसरों को गुमराह करने का। एक सज़ा अपने जुर्मों की और दूसरी सज़ा इस बात की कि वह दूसरों के लिए पेशगी जुर्मों की मीरास छोड़कर आया है।

हदीस में इसी बात को इस तरह बयान किया गया है कि, "जिसने किसी नई गुमराही की शुरुआत की जो अल्लाह और उसके रसूल के नज़दीक नापसन्दीदा हो, तो उस पर उन सब लोगों के गुनाह की ज़िम्मेदारी पड़ेगी जिन्होंने उसके निकाले हुए तरीक़े पर अमल किया, बग़ैर इसके कि ख़ुद उन अमल करनेवालों की ज़िम्मेदारी में कोई कमी हो।" (हदीस : इब्ने-माजा) दूसरी हदीस में है, "दुनिया में जो इनसान भी ज़ुल्म के साथ क़त्ल किया जाता है उसके ख़ूने-नाहक़ का एक हिस्सा आदम के उस पहले बेटे को पहुँचता है जिसने अपने भाई को क़त्ल किया था क्योंकि इनसान के क़त्ल का रास्ता सबसे पहले उसी ने खोला था।" (हदीस : बुख़ारी) इससे मालूम हुआ कि जो शख़्स या गरोह किसी ग़लत ख़याल या ग़लत रवैये की बुनियाद डालता है वह सिर्फ़ अपनी ही ग़लती का ज़िम्मेदार नहीं होता बल्कि दुनिया में जितने इनसान उससे मुतास्सिर होते हैं उन सबके गुनाह की ज़िम्मेदारी का भी एक हिस्सा उसके हिसाब में लिखा जाता रहता है और जब तक उसकी इस ग़लती के असरात चलते रहते हैं उसके हिसाब में उनको लिखा जाता रहता है। साथ ही इससे यह भी मालूम हुआ कि हर शख़्स अपनी नेकी या बदी का सिर्फ़ अपनी ज़ात की हद तक ही ज़िम्मेदार नहीं है बल्कि इस बात का भी जवाबदेह है कि उसकी नेकी या बदी के क्या असरात दूसरों की ज़िन्दगियों पर पड़े।

मिसाल के तौर पर एक ज़ानी (व्यभिचारी या बलातकारी) को लीजिए। जिन लोगों की तालीम व तरबियत से, जिनकी संगत के असर से, जिनकी बुरी मिसालें देखने से और जिनकी तरग़ीबात (प्रेरणाओं) से उस शख़्स के अन्दर ज़िनाकारी (व्यभिचार या बलातकार) की ख़राबी पैदा हुई वे सब उसके ज़िनाकार बनने में हिस्सेदार हैं और ख़ुद उन लोगों ने जहाँ-जहाँ से इस बदनज़री व बदनीयती और बदकारी की मीरास पाई है वहाँ तक उसकी ज़िम्मेदारी पहुँचती है। यहाँ तक कि यह सिलसिला उस सबसे पहले इनसान तक पहुँचता है जिसने सबसे पहले इनसान को मन की ख़ाहिश की तसकीन का यह ग़लत रास्ता दिखाया। यह उस ज़ानी के हिसाब का वह हिस्सा है जो उसके अपने ज़माने के लोगों और उससे पहले गुज़रे हुए लोगों से ताल्लुक़ रखता है। फिर वह ख़ुद भी अपनी ज़िनाकारी (बदकारी) का ज़िम्मेदार है। उसको भले और बुरे की जो पहचान दी गई थी, उसमें ज़मीर (अन्तरात्मा) की जो ताक़त रखी गई थी, उसके अन्दर अपनी ख़ाहिशों को क़ाबू में रखने की जो क़ुव्वत रखी गई थी, उसको नेक लोगों से ख़ैर (भलाई) और शर (बुराई) का जो इल्म पहुँचा था, उसके सामने भले लोगों की जो मिसालें मौजूद थीं, उसको सिनफ़ी बदअमली (यौन-दुराचार) के बुरे अंजामों की जो जानकारी थी, उनमें से किसी चीज़ से भी उसने फ़ायदा न उठाया और अपने आपको नफ़्स की उस अन्धी ख़ाहिश के हवाले कर दिया जो सिर्फ़ अपनी तसकीन (तृप्ति) चाहती थी चाहे वह किसी तरीक़े से हो। यह उसके हिसाब का वह हिस्सा है जो उसकी अपनी ज़ात से ताल्लुक़ रखता है। फिर यह शख़्स उस बदी को जिसको उसने ख़ुद कमाया था और जिसे ख़ुद अपनी कोशिशों से वह परवरिश करता रहा, दूसरों में फैलाना शुरू करता है। किसी मर्ज़े-ख़बीस (संक्रामक रोग) की छूत कहीं से लगा लाता है और उसे अपनी नस्ल में और ख़ुदा जाने किन-किन नस्लों में फैलाकर नामालूम कितनी ज़िन्दगियों को ख़राब कर देता है। कहीं अपना नुत्फ़ा छोड़ आता है और जिस बच्चे की परवरिश का बोझ उसे ख़ुद उठाना चाहिए था उसे किसी और की कमाई का नाजाइज़ हिस्सेदार,

उसके बच्चों के हुक़ूक़ में ज़बरदस्ती का शरीक, उसकी विरासत में नाहक़ का हक़दार बना देता है और इस हक़तलफ़ी का सिलसिला न जाने कितनी नस्लों तक चलता रहता है। किसी नौजवान लड़की को फुसलाकर बदअख़लाक़ी की राह पर डालता है और उसके अन्दर वे बुरी बातें उभार देता है जो उससे निकलकर न जाने कितने ख़ानदानों और कितनी नस्लों तक पहुँचती हैं और कितने घर बिगाड़ देती हैं। अपनी औलाद, अपने रिश्तेदारों, अपने दोस्तों और अपनी सोसाइटी के दूसरे लोगों के सामने अपने अख़लाक़ की एक बुरी मिसाल पेश करता है और नामालूम कितने आदमियों के चाल-चलन ख़राब करने का सबब बन जाता है, जिसके असरात बाद की नस्लों में लम्बी मुद्दत तक चलते रहते हैं। यह सारा बिगाड़ जो इस शख़्स ने समाज में फैलाया, इनसाफ़ चाहता है कि यह भी उसके हिसाब में लिखा जाए और उस वक़्त तक लिखा जाता रहे जब तक उसकी फैलाई हुई ख़राबियों का सिलसिला दुनिया में चलता रहे। ऐसा ही मामला नेकी के बारे में भी समझ लेना चाहिए। जो नेक विरासत अपने असलाफ़ (बुज़ुर्गों) से हमको मिली है उसका बदला और इनाम उन सब लोगों को पहुँचना चाहिए जो दुनिया के शुरू होने से हमारे ज़माने तक उसको दूसरों तक पहुँचाने के काम में हिस्सा लेते रहे हैं, फिर इस विरासत को लेकर उसे संभालने और तरक़्क़ी देने में जो ख़िदमत हम अंजाम देंगे उसका अच्छा बदला हमें भी मिलना चाहिए। फिर अपनी अच्छी कोशिशों के जो निशान और असरात हम दुनिया में छोड़ जाएँगे उन्हें भी हमारी भलाइयों के हिसाब में उस वक़्त तक बराबर लिखा जाता रहना चाहिए जब तक ये निशान बाक़ी रहें और उनके असरात का सिलसिला इनसानों में चलता रहे और उनके फ़ायदों से ख़ुदा के बन्दे फ़ायदा उठाते रहें।

जज़ा (बदले) की यह सूरत जो क़ुरआन पेश कर रहा है, हर अक़्लवाला इनसान मानेगा कि सही और मुकम्मल इनसाफ़ अगर हो सकता है तो इसी तरह हो सकता है। इस हक़ीक़त को अगर अच्छी तरह समझ लिया जाए तो इसमें उन लोगों की ग़लतफ़हमियाँ भी दूर हो सकती हैं, जिन्होंने जज़ा (बदले) के लिए इसी दुनिया की मौजूदा ज़िन्दगी को काफ़ी समझ लिया है, और उन लोगों की ग़लतफ़हमियाँ भी जो यह गुमान रखते हैं कि इनसान को उसके आमाल का पूरा बदला आवागमन की सूरत में मिल सकता है। दर अस्ल इन दोनों गरोहों ने न तो इस बात को समझा है कि इनसानी आमाल और उनके असरात व नतीजे कितनी दूर तक फैले हुए हैं, न इनसाफ़ के सिलसिले में मिलनेवाले बदले और उसके तक़ाज़ों को। एक इनसान आज अपनी पचास-साठ साल की ज़िन्दगी में जो अच्छे या बुरे काम करता है उनकी ज़िम्मेदारी में न जाने ऊपर की कितनी नस्लें शरीक हैं जो गुज़र चुकीं और आज यह मुमकिन नहीं कि उन्हें इसकी सज़ा या इनाम पहुँच सके। फिर उस शख़्स के वे अच्छे या बुरे आमाल जो वह आज कर रहा है उसकी मौत के साथ ख़त्म नहीं हो जाएँगे, बल्कि उसके आमाल का सिलसिला आनेवाले सैकड़ों वर्षों तक चलता रहेगा, हज़ारों, लाखों बल्कि करोड़ों इनसानों तक फैलेगा और उसके हिसाब का खाता उस वक़्त तक खुला रहेगा जब तक ये असरात चल रहे हैं और फैल रहे हैं। किस तरह मुमकिन है कि आज ही इस दुनिया की ज़िन्दगी में उस शख़्स को उसकी कमाई का पूरा बदला मिल जाए हालाँकि अभी उसकी कमाई के असरात का लाखवाँ हिस्सा भी ज़ाहिर नहीं हुआ है। फिर इस दुनिया की महदूद (सीमित) ज़िन्दगी और उसके महदूद इमकानात सिरे

ع الْعَذَابَ بِمَا كُنْتُمْ تَكْسِبُونَ ۝٣٩ إِنَّ الَّذِينَ كَذَّبُوا بِآيٰتِنَا وَاسْتَكْبَرُوا

कमाई के नतीजे में अज़ाब का मज़ा चखो।[31]

(40) यक़ीन जानो, जिन लोगों ने हमारी आयतों को झुठलाया है और उनके

से इतनी गुंजाइश ही नहीं रखते कि यहाँ किसी को उसके आमाल का पूरा बदला मिल सके। आप किसी ऐसे शख़्स के जुर्म का तसव्वुर कीजिए जो मिसाल के तौर पर दुनिया में एक जंगे-अज़ीम (विश्व युद्ध) की आग भड़काता है और उसकी इस हरकत के अनगिनत बुरे नतीजे हज़ारों साल तक अरबों इनसानों तक फैलते हैं। क्या कोई बड़ी से बड़ी जिस्मानी, अख़लाक़ी, रूहानी या माद्दी (भौतिक) सज़ा भी जो इस दुनिया में दी जा सकती है, उसके इस जुर्म की पूरी मुनसिफ़ाना (न्यायसंगत) सज़ा हो सकती है? इसी तरह क्या दुनिया का कोई बड़े-से-बड़ा इनाम भी, जिसका तसव्वुर आप कर सकते हैं, किसी ऐसे शख़्स के लिए काफ़ी हो सकता है जो तमाम उम्र इनसानों की भलाई के लिए काम करता रहा हो और हज़ारों साल तक अनगिनत इनसान जिसकी कोशिशों के नतीजों से फ़ायदा उठाए चले जा रहे हों। अमल और बदले के मसले को इस पहलू से जो शख़्स देखेगा उसे यक़ीन हो जाएगा कि जज़ा (बदला) के लिए एक दूसरी ही दुनिया चाहिए है जहाँ तमाम अगली और पिछली नस्लें जमा हों, तमाम इनसानों के खाते बन्द हो चुके हों, हिसाब करने के लिए सब कुछ जानने और सबकी ख़बर रखनेवाला एक ख़ुदा इनसाफ़ की कुर्सी पर विराजमान हो, और आमाल का पूरा बदला पाने के लिए इनसान के पास ग़ैर-महदूद (असीमित) ज़िन्दगी और उसके आस-पास इनाम और सज़ा के ग़ैर-महदूद इमकानात मौजूद हों।

फिर इसी पहलू पर ग़ौर करने से आवागमन को माननेवालों की एक और बुनियादी ग़लती भी दूर हो सकती है जिसमें मुब्तला होकर उन्होंने अवागमन का चक्कर पेश किया है। वे इस हक़ीक़त को नहीं समझे कि सिर्फ़ उसकी मुख़्तसर-सी पचास वर्ष की ज़िन्दगी के कारनामे का फल पाने के लिए उससे हज़ारों गुना ज़्यादा लम्बी ज़िन्दगी की ज़रूरत है, इसके बावजूद कि उस पचास साल की ज़िन्दगी के ख़त्म होते ही हमारी एक दूसरी और फिर तीसरी ज़िम्मेदाराना ज़िन्दगी इसी दुनिया में शुरू हो जाए और उन ज़िन्दगियों में भी हम कुछ और ऐसे काम करते चले जाएँ जिनका अच्छा या बुरा फल हमें मिलना ज़रूरी हो। इस तरह तो हिसाब चुकता होने के बजाए और ज़्यादा बढ़ता ही चला जाएगा और उसके चुकता होने की नौबत कभी आ ही न सकेगी।

31. दोज़ख़वालों के इस आपसी झगड़े को क़ुरआन मजीद में कई जगह बयान किया गया है। मिसाल के तौर पर सूरा-34 सबा की 31 से 33वीं आयत में कहा गया है कि "काश तुम देख सको उस मौक़े को जब ये ज़ालिम अपने रब के सामने खड़े होंगे और एक-दूसरे पर बातें बना रहे होंगे। जो लोग दुनिया में कमज़ोर बनाकर रखे गए थे वे उन लोगों से जो बड़े बनकर रहे थे, कहेंगे कि अगर तुम न होते तो हम ईमानवाले होते।" वे बड़े बननेवाले उन कमज़ोर बनाए हुए लोगों को जवाब देंगे, "क्या हमने तुमको हिदायत से रोक दिया था जबकि वह तुम्हारे पास

عَنْهَا لَا تُفَتَّحُ لَهُمْ اَبْوَابُ السَّمَآءِ وَلَا يَدْخُلُوْنَ الْجَنَّةَ حَتّٰى يَلِجَ
الْجَمَلُ فِيْ سَمِّ الْخِيَاطِ ؕ وَكَذٰلِكَ نَجْزِى الْمُجْرِمِيْنَ ۞ لَهُمْ مِّنْ جَهَنَّمَ
مِهَادٌ وَّمِنْ فَوْقِهِمْ غَوَاشٍ ؕ وَكَذٰلِكَ نَجْزِى الظّٰلِمِيْنَ ۞ وَالَّذِيْنَ
اٰمَنُوْا وَعَمِلُوا الصّٰلِحٰتِ لَا نُكَلِّفُ نَفْسًا اِلَّا وُسْعَهَاۤ ۡ اُولٰٓئِكَ اَصْحٰبُ

मुक़ाबले में सरकशी की है, उनके लिए आसमान के दरवाज़े हरगिज़ न खोले जाएँगे। उनका जन्नत में जाना उतना ही नामुमकिन है जितना सूई के नाके से ऊँट का गुज़रना। मुजरिमों को हमारे यहाँ ऐसा ही बदला मिला करता है। (41) उनके लिए तो जहन्नम का बिछौना होगा और जहन्नम ही का ओढ़ना। यह है वह बदला जो हम ज़ालिमों को दिया करते हैं। (42) इसके बरख़िलाफ़ जिन लोगों ने हमारी आयतों को मान लिया है और अच्छे काम किए हैं — और इस बारे में हम हर एक को उसकी ताक़त और क़ुदरत ही

आई थी? नहीं, बल्कि तुम खुद मुजरिम थे।" मतलब यह कि तुम खुद कब हिदायत चाहते थे? अगर हमने तुम्हें दुनिया के लालच देकर अपना बन्दा बनाया तो तुम लालची थे जब ही तो हमारे फंदे में फंसे। अगर हमने तुम्हें ख़रीदा तो तुम खुद बिकने के लिए तैयार थे जब ही तो हम ख़रीद सके। अगर हमने तुम्हें माद्दापरस्ती (भौतिकवाद) और दुनियापरस्ती और क़ौमपरस्ती और ऐसी ही दूसरी गुमराहियों और बदआमालियों में मुब्तला किया तो तुम खुद खुदा से बेज़ार और दुनिया के पुजारी थे, जब ही तो तुम खुदा-परस्ती की तरफ़ बुलानेवालों को छोड़कर हमारी पुकार पर दौड़े चले आए। अगर हमने तुम्हें मज़हबी क़िस्म के फ़रेब दिए तो उन चीज़ों की माँग तो तुम्हारे ही अन्दर मौजूद थी जिन्हें हम पेश करते थे और तुम लपक-लपककर लेते थे। तुम खुदा के बजाए ऐसे हाजतए-रवा (ज़रूरत पूरी करनेवाले) माँगते थे जो तुमसे किसी अख़लाक़ी क़ानून की पाबन्दी का मुतालबा न करें और बस तुम्हारे काम बनाते रहें। हमने वे ज़रूरत पूरी करनेवाले तुम्हें गढ़कर दे दिए। तुमको ऐसे सिफ़ारिशियों की तलाश थी कि तुम ख़ुदा से बेपरवाह होकर दुनिया के लालची बने रहो और खुदा से तुम्हारे क़ुसूर बख़्शवाने का ज़िम्मा वे ले लें। हमने वे सिफ़ारिशी गढ़कर तुम्हें फ़राहम (उपलब्ध) कर दिए। तुम चाहते थे कि खुश्क और बेमज़ा दीनदारी और परहेज़गारी और क़ुरबानी और कोशिश और अमल के बजाए नजात का कोई और रास्ता बताया जाए जिसमें नफ़्स के लिए लज़्ज़तें ही लज़्ज़तें हों और ख़ाहिशों पर पाबन्दी कोई न हो। हमने ऐसे खुशनुमा मज़हब तुम्हारे लिए पैदा कर दिए। ग़रज़ यह कि ज़िम्मेदारी तनहा हमारे ही ऊपर नहीं है, तुम भी बराबर के ज़िम्मेदार हो। हम अगर गुमराही फ़राहम (उपलब्ध) करनेवाले थे तो तुम उसके ख़रीदार थे।

الْجَنَّةِ ۚ هُمْ فِيهَا خٰلِدُوْنَ ۝٤٢ وَنَزَعْنَا مَا فِيْ صُدُوْرِهِمْ مِّنْ غِلٍّ
تَجْرِيْ مِنْ تَحْتِهِمُ الْاَنْهٰرُ ۚ وَقَالُوا الْحَمْدُ لِلّٰهِ الَّذِيْ هَدٰىنَا لِهٰذَا ۗ
وَمَا كُنَّا لِنَهْتَدِيَ لَوْلَآ اَنْ هَدٰىنَا اللّٰهُ ۚ لَقَدْ جَآءَتْ رُسُلُ رَبِّنَا
بِالْحَقِّ ۭ وَنُوْدُوْٓا اَنْ تِلْكُمُ الْجَنَّةُ اُوْرِثْتُمُوْهَا بِمَا كُنْتُمْ تَعْمَلُوْنَ ۝٤٣

के मुताबिक़ ज़िम्मेदार ठहराते हैं— वे जन्नतवाले हैं, जहाँ वे हमेशा रहेंगे। (43) उनके दिलों में एक-दूसरे के ख़िलाफ़ जो कुछ कुदूरत (मलिनता) होगी, उसे हम निकाल देंगे।[32] उनके नीचे नहरे बहती होंगी और वे कहेंगे कि "तारीफ़ अल्लाह ही के लिए है जिसने हमें यह रास्ता दिखाया। हम ख़ुद राह न पा सकते थे अगर अल्लाह हमारी रहनुमाई न करता। हमारे रब के भेजे हुए रसूल हक़ीक़त में हक़ ही लेकर आए थे।" उस वक़्त आवाज़ आएगी कि "यह जन्नत, जिसके तुम वारिस बनाए गए हो, तुम्हें उन कामों के बदले में मिली है जो तुम करते रहे थे।"[33]

32. यानी दुनिया की ज़िन्दगी में उन नेक लोगों के दरमियान अगर कुछ रंजिशें, कड़वाहटें और आपस की ग़लतफ़हमियाँ रही हों तो आख़िरत में वे सब दूर कर दी जाएँगी। उनके दिल एक-दूसरे से साफ़ हो जाएँगे। वे सच्चे दोस्तों की हैसियत से जन्नत में दाख़िल होंगे। उनमें से किसी को यह देखकर तकलीफ़ न होगी कि फ़ुलाँ जो मेरा मुख़ालिफ़ था और फ़ुलाँ जो मुझसे लड़ा था और फ़ुलाँ जिसने मुझपर तनक़ीद (आलोचना) की थी, आज वह भी इस ख़ातिरदारी में मेरे साथ शरीक है। इसी आयत को पढ़कर हज़रत अली (रज़ि०) ने कहा था, "मुझे उम्मीद है कि अल्लाह मेरे और उसमान (रज़ि०) और तलहा (रज़ि०) और ज़ुबैर (रज़ि०) के बीच भी सफ़ाई करा देगा।"

इस आयत को अगर हम ज़्यादा गहरी नज़र से देखें तो यह नतीजा निकाल सकते हैं कि नेक इनसानों के दामन पर इस दुनिया की ज़िन्दगी में जो दाग़ लग जाते हैं अल्लाह तआला उन दाग़ों के साथ उन्हें जन्नत में न ले जाएगा, बल्कि वहाँ दाख़िल करने से पहले अपनी मेहरबानी से उन्हें बिलकुल पाक-साफ़ कर देगा और वे बेदाग़ ज़िन्दगी लिए हुए वहाँ जाएँगे।

33. यह एक निहायत लतीफ़ (सूक्ष्म) मामला है जो वहाँ पेश आएगा। जन्नतवाले इस बात पर न फूलेंगे कि हमने काम ही ऐसे किए थे जिनपर हमें जन्नत मिलनी चाहिए थी, बल्कि वे ज़बान से ख़ुदा की हम्द व सना और शुक्र व एहसानमन्दी का इज़हार कर रहे होंगे और कहेंगे कि ये सब हमारे रब की मेहरबानी है वरना हम किस लायक़ थे। दूसरी तरफ़ अल्लाह तआला उनपर

وَنَادَىٰ أَصْحَٰبُ الْجَنَّةِ أَصْحَٰبَ النَّارِ أَن قَدْ وَجَدْنَا مَا وَعَدَنَا رَبُّنَا
حَقًّا فَهَلْ وَجَدتُّم مَّا وَعَدَ رَبُّكُمْ حَقًّا ۖ قَالُوا نَعَمْ ۚ فَأَذَّنَ مُؤَذِّنٌ
بَيْنَهُمْ أَن لَّعْنَةُ اللَّهِ عَلَى الظَّٰلِمِينَ ﴿٤٤﴾ الَّذِينَ يَصُدُّونَ عَن سَبِيلِ

(44) फिर ये जन्नत के लोग दोज़ख़वालों से पुकारकर कहेंगे, "हमने उन सारे वादों को ठीक पा लिया जो हमारे रब ने हमसे किए थे, क्या तुमने भी उन वादों को ठीक पाया जो तुम्हारे रब ने किए थे?" वे जवाब में कहेंगे, "हाँ।" तब एक पुकारनेवाला उनके बीच पुकारेगा कि "अल्लाह की लानत उन ज़ालिमों पर, (45) जो अल्लाह के रास्ते से

अपना एहसान न जताएगा, बल्कि जवाब में कहेगा कि तुमने यह दरजा अपनी ख़िदमतों के बदले पाया है, यह तुम्हारी अपनी मेहनत की कमाई है जो तुम्हें दी जा रही है, ये भीख के टुकड़े नहीं हैं बल्कि तुम्हारी कोशिश का बदला है, तुम्हारे काम की मज़दूरी है, और वह बाइज़्ज़त रोज़ी है जिसके हक़दार तुम अपने हाथों की क़ुव्वत से बने हो। फिर यह मज़मून इस अन्दाज़े-बयान से और भी ज़्यादा लतीफ़ हो जाता है कि अल्लाह तआला अपने जवाब का ज़िक्र इस तरह साफ़-साफ़ अलफ़ाज़ में नहीं फ़रमाता कि "हम यूँ कहेंगे", बल्कि इन्तिहाई शाने-करीमी के साथ फ़रमाता है कि "जवाब में यह आवाज़ आएगी।"

हक़ीक़त में यही मामला दुनिया में भी ख़ुदा और उसके नेक बन्दों के दरमियान है। ज़ालिमों को जो नेमत दुनिया में मिलती है वे उसपर फ़ख़्र करते हैं, कहते हैं कि यह हमारी क़ाबिलियत और कोशिश का नतीजा है, और इसी बिना पर वे हर नेमत को पाकर और ज़्यादा घमण्डी और बिगाड़ फैलानेवाले बनते चले जाते हैं। उसके बरख़िलाफ़ नेक लोगों को जो नेमत भी मिलती है वे उसे ख़ुदा की मेहरबानी समझते हैं, शुक्र अदा करते हैं, जितने ज़्यादा नवाज़े जाते हैं उतने ही ज़्यादा ख़ातिरदारी करनेवाले, रहमदिल, शफ़क़त करनेवाले और फ़ैयाज़ (दानशील) होते चले जाते हैं। फिर आख़िरत के बारे में भी वे अपने अच्छे कामों का घमण्ड नहीं करते कि हम तो यक़ीनन बख़्शे ही जाएँगे, बल्कि अपनी कोताहियों पर अल्लाह से माफ़ी माँगते हैं, अपने अमल के बजाए ख़ुदा के रहम व फ़ज़्ल से उम्मीदें लगाते हैं और हमेशा डरते ही रहते हैं कि कहीं हमारे हिसाब में लेने के बजाए कुछ देना ही न निकल आए। हदीस की मशहूर किताबें बुख़ारी व मुस्लिम दोनों में रिवायत मौजूद है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "ख़ूब जान लो कि तुम सिर्फ़ अपने अमल के बलबूते पर जन्नत में न पहुँच जाओगे।" लोगों ने पूछा, "ऐ अल्लाह के रसूल! क्या आप भी?" फ़रमाया, "हाँ मैं भी, सिवाए यह कि अल्लाह मुझे अपनी रहमत और अपनी मेहरबानी से ढाँक ले।"

اللّٰهِ وَيَبۡغُوۡنَهَا عِوَجًا ۚ وَهُمۡ بِالۡاٰخِرَةِ كٰفِرُوۡنَ ۝٤٥ وَبَيۡنَهُمَا حِجَابٌ ۚ
وَعَلَى الۡاَعۡرَافِ رِجَالٌ يَّعۡرِفُوۡنَ كُلًّاۢ بِسِيۡمٰهُمۡ ۚ وَنَادَوۡا اَصۡحٰبَ
الۡجَنَّةِ اَنۡ سَلٰمٌ عَلَيۡكُمۡ ۟ لَمۡ يَدۡخُلُوۡهَا وَهُمۡ يَطۡمَعُوۡنَ ۝٤٦ وَاِذَا
صُرِفَتۡ اَبۡصَارُهُمۡ تِلۡقَآءَ اَصۡحٰبِ النَّارِ ۙ قَالُوۡا رَبَّنَا لَا تَجۡعَلۡنَا مَعَ
الۡقَوۡمِ الظّٰلِمِيۡنَ ۝٤٧ وَنَادٰۤى اَصۡحٰبُ الۡاَعۡرَافِ رِجَالًا يَّعۡرِفُوۡنَهُمۡ
بِسِيۡمٰهُمۡ قَالُوۡا مَاۤ اَغۡنٰى عَنۡكُمۡ جَمۡعُكُمۡ وَمَا كُنۡتُمۡ تَسۡتَكۡبِرُوۡنَ ۝٤٨
اَهٰٓؤُلَاۤءِ الَّذِيۡنَ اَقۡسَمۡتُمۡ لَا يَنَالُهُمُ اللّٰهُ بِرَحۡمَةٍ ؕ اُدۡخُلُوا الۡجَنَّةَ لَا

लोगों को रोकते और उसे टेढ़ा करना चाहते थे, और आख़िरत का इनकार करनेवाले थे।"

(46) उन दोनों गरोहों के बीच एक ओट हाइल होगी जिसकी बुलन्दियों (आराफ़) पर कुछ और लोग होंगे। ये हर एक को उसकी अलामतों से पहचानेंगे, और जन्नतवालों से पुकारकर कहेंगे कि "सलामती हो तुमपर"। ये लोग जन्नत में दाख़िल तो नहीं हुए, मगर उसके उम्मीदवार होंगे।[34] (47) और जब उनकी निगाहें दोज़ख़वालों की तरफ़ फिरेंगी तो कहेंगे, "ऐ रब! हमें इन ज़ालिम लोगों में शामिल न करना।" (48) फिर ये बुलन्दियोंवाले (आराफ़) लोग दोज़ख़ के कुछ बड़े-बड़े लोगों को उनकी अलामतों से पहचानकर पुकारेंगे कि "देख लिया तुमने, आज न तुम्हारे जत्थे तुम्हारे किसी काम आए और न वे साज़ो-सामान जिनको तुम बड़ी चीज़ समझते थे। (49) और क्या ये जन्नतवाले वही लोग नहीं हैं जिनके बारे में तुम क़समें खा-खाकर कहते थे कि इनको तो अल्लाह अपनी रहमत में से कुछ भी न देगा? आज उन्हीं से कहा गया कि दाख़िल हो

34. यानी ये असहाबुल-आराफ़ (आराफ़वाले) वे लोग होंगे जिनकी ज़िन्दगी का न तो मुसबत (सकारात्मक) पहलू ही इतना ताक़तवर होगा कि जन्नत में दाख़िल हो सकें और न मनफ़ी (नकारात्मक) पहलू ही इतना ख़राब होगा कि दोज़ख़ में झोंक दिए जाएँ। इसलिए वे जन्नत और दोज़ख़ के दरमियान एक सरहद पर रहेंगे।

خَوْفٌ عَلَيْكُمْ وَلَآ اَنْتُمْ تَحْزَنُوْنَ ۝٤٩ وَنَادٰٓى اَصْحٰبُ النَّارِ اَصْحٰبَ
الْجَنَّةِ اَنْ اَفِيْضُوْا عَلَيْنَا مِنَ الْمَآءِ اَوْ مِمَّا رَزَقَكُمُ اللّٰهُ ؕ قَالُوْٓا اِنَّ اللّٰهَ
حَرَّمَهُمَا عَلَى الْكٰفِرِيْنَ ۝٥٠ الَّذِيْنَ اتَّخَذُوْا دِيْنَهُمْ لَهْوًا وَّلَعِبًا
وَّغَرَّتْهُمُ الْحَيٰوةُ الدُّنْيَا ۚ فَالْيَوْمَ نَنْسٰىهُمْ كَمَا نَسُوْا لِقَآءَ يَوْمِهِمْ
هٰذَا ۙ وَمَا كَانُوْا بِاٰيٰتِنَا يَجْحَدُوْنَ ۝٥١ وَلَقَدْ جِئْنٰهُمْ بِكِتٰبٍ فَصَّلْنٰهُ

जाओ जन्नत में, तुम्हारे लिए न डर है, न रंज।"

(50) और दोज़ख़ के लोग जन्नतवालों को पुकारेंगे कि कुछ थोड़ा-सा पानी हमपर डाल दो या जो रोज़ी अल्लाह ने तुम्हें दी है, उसी में से कुछ फेंक दो। वे जवाब देंगे कि "अल्लाह ने ये दोनों चीज़ें हक़ के उन इनकारियों पर हराम कर दी हैं, (51) जिन्होंने अपने दीन को खेल और तमाशा बना लिया था और जिन्हें दुनिया की ज़िन्दगी ने धोखे में डाल रखा था। अल्लाह फ़रमाता है कि आज हम भी उन्हें उसी तरह भुला देंगे जिस तरह वे इस दिन की मुलाक़ात को भूले रहे और हमारी आयतों का इनकार करते रहे।"[35]

(52) हम इन लोगों के पास एक ऐसी किताब ले आए हैं, जिसे हमने इल्म की

35. जन्नतवालों और दोज़ख़वालों और आराफ़वालों की इस बातचीत से किसी हद तक अन्दाज़ा किया जा सकता है कि आख़िरत की दुनिया में इनसान की क़ुव्वतों का पैमाना कितना ज़्यादा फैल जाएगा, वहाँ आँखों से देखने की कुव्वत इतने बड़े पैमाने पर होगी कि जन्नत और दोज़ख़ और आराफ़ के लोग जब चाहेंगे एक-दूसरे को देख सकेंगे। वहाँ आवाज़ और सुनने की ताक़त भी इतने बड़े पैमाने पर होगी कि इन मुख़्तलिफ़ दुनियाओं के लोग एक-दूसरे से आसानी से सुन-बोल सकेंगे। ये और ऐसे ही दूसरे बयानात जो आख़िरत की दुनिया के बारे में हमें क़ुरआन में मिलते हैं, इस बात का तसव्वुर दिलाने के लिए काफ़ी हैं कि वहाँ ज़िन्दगी के क़ानून हमारी दुनिया के तबई क़ानूनों (भौतिक नियमों) से बिलकुल अलग होंगे, अगरचे हमारी शख़्सियतें यही रहेंगी जो यहाँ हैं। जिन लोगों के दिमाग़ इस तबई दुनिया की हदों में इतने ज़्यादा क़ैद हैं कि मौजूदा ज़िन्दगी और उसके मुख़्तसर पैमानों से ज़्यादा कुशादा किसी चीज़ का तसव्वुर उनमें नहीं समा सकता, वे क़ुरआन और हदीस के इन बयानात को बड़े अचम्भे की निगाह से देखते हैं और बहुत बार तो उनका मज़ाक़ उड़ाकर अपनी कमअक़्ली का और ज़्यादा सुबूत देने लगते हैं। मगर हक़ीक़त यह है कि उन बेचारों का दिमाग़ जितना तंग है, ज़िन्दगी के इमकानात उतने तंग नहीं हैं।

عَلٰى عِلۡمٍ هُدًى وَّرَحۡمَةً لِّقَوۡمٍ يُّؤۡمِنُوۡنَ ۞ هَلۡ يَنۡظُرُوۡنَ اِلَّا تَاۡوِيۡلَهٗ ؕ
يَوۡمَ يَاۡتِىۡ تَاۡوِيۡلُهٗ يَقُوۡلُ الَّذِيۡنَ نَسُوۡهُ مِنۡ قَبۡلُ قَدۡ جَآءَتۡ رُسُلُ
رَبِّنَا بِالۡحَـقِّ‌ ۚ فَهَلۡ لَّنَا مِنۡ شُفَعَآءَ فَيَشۡفَعُوۡا لَنَاۤ اَوۡ نُرَدُّ فَنَعۡمَلَ غَيۡرَ

बुनियाद पर तफ़सीली (विस्तृत) बनाया है[36] और जो ईमान लानेवालों के लिए हिदायत और रहमत है।[37] (53) अब क्या ये लोग इसके सिवा किसी और बात के इन्तिज़ार में हैं कि वह अंजाम सामने आ जाए, जिसकी यह किताब ख़बर दे रही है?[38] जिस दिन वह अंजाम सामने आ गया तो वही लोग, जिन्होंने पहले इसे नज़रअंदाज़ कर दिया था, कहेंगे कि "वाक़ई हमारे रब के रसूल हक़ लेकर आए थे, फिर क्या अब हमें कुछ सिफ़ारिशी

36. यानी इसमें पूरी तफ़सील के साथ बता दिया गया है कि हक़ीक़त क्या है और इनसान के लिए दुनिया की ज़िन्दगी में कौन-सा रवैया दुरुस्त है और ज़िन्दगी के सही ढंग के बुनियादी उसूल क्या हैं, फिर ये तफ़सीलात भी अटकल या गुमान या वहम की बुनियाद पर नहीं, बल्कि ख़ालिस इल्म की बुनियाद पर हैं।

37. मतलब यह है कि सबसे पहले तो इस किताब के मज़ामीन (विषय) और इसकी तालीमात ही अपने आप में इस क़द्र साफ़ हैं कि आदमी अगर इनपर ग़ौर करे तो उसके सामने राहे-हक़ वाज़ेह (स्पष्ट) हो सकती है। फिर इसपर एक और बात यह है कि जो लोग इस किताब को मानते हैं उनकी ज़िन्दगी में अमली तौर पर भी हक़ीक़त को देखा जा सकता है कि यह इनसान की कैसी सही रहनुमाई करती है और यह कितनी बड़ी रहमत है कि इसका असर क़बूल करते ही इनसान की ज़ेहनियत, उसके अख़लाक़ और उसकी सीरत (किरदार) में बेहतरीन इंक़िलाब शुरू हो जाता है। यह इशारा है उन हैरतअंगेज़ असरात की तरफ़ जो इस किताब पर ईमान लाने से सहाबा (नबी सल्ल० के साथियों) की ज़िन्दगी में ज़ाहिर हो रहे थे।

38. दूसरे लफ़्ज़ों में इस मज़मून को यूँ समझिए कि जिस शख़्स को सही और ग़लत का फ़र्क़ निहायत मुनासिब तरीक़े से साफ़-साफ़ बताया जाता है मगर वह नहीं मानता, फिर उसके सामने कुछ लोग सही रास्ते पर चलकर दिखा भी देते हैं कि ग़लत रास्ते पर चलने के ज़माने में वे जैसे कुछ थे उसके मुक़ाबले में सही रास्ता इख़्तियार करके उनकी ज़िन्दगी कितनी बेहतर हो गई है, मगर इससे भी वह कोई सबक़ नहीं लेता, तो इसके मानी ये हैं कि अब वह सिर्फ़ अपने ग़लत रवैये की सज़ा पाकर ही मानेगा कि हाँ यह ग़लत रास्ता था। जो शख़्स न हकीम के अक़्लमन्दी भरे मशवरों को क़बूल करता है और न अपने जैसे बहुत-से बीमारों को हकीम की हिदायतों पर अमल करने की वजह से अच्छे होते देखकर ही कोई सबक़ लेता है, वह अब मौत के बिस्तर पर लेट जाने के बाद ही मानेगा कि वह जिन तरीक़ों पर ज़िन्दगी गुज़ार रहा था वे उसके लिए वाक़ई हलाक कर देनेवाले थे।

الَّذِىۡ كُنَّا نَعۡمَلُ ؕ قَدۡ خَسِرُوۡۤا اَنۡفُسَهُمۡ وَضَلَّ عَنۡهُمۡ مَّا كَانُوۡا
يَفۡتَرُوۡنَ ﴿۵۳﴾ اِنَّ رَبَّكُمُ اللّٰهُ الَّذِىۡ خَلَقَ السَّمٰوٰتِ وَالۡاَرۡضَ فِىۡ سِتَّةِ ع
اَيَّامٍ ثُمَّ اسۡتَوٰى عَلَى الۡعَرۡشِ يُغۡشِى الَّيۡلَ النَّهَارَ يَطۡلُبُهٗ حَثِيۡثًا ۙ

मिलेंगे, जो हमारे हक़ में सिफ़ारिश करें? या हमें दोबारा वापस ही भेज दिया जाए, ताकि जो कुछ हम पहले करते थे उसके बजाए अब दूसरे तरीक़े पर काम करके दिखाएँ?"[39]— उन्होंने अपने आपको घाटे में डाल दिया और वे सारे झूठ जो उन्होंने गढ़ रखे थे, आज उनसे गुम हो गए।

(54) हक़ीक़त में तुम्हारा रब अल्लाह ही है जिसने आसमानों और ज़मीन को छः दिनों में पैदा किया,[40] फिर अपने तख़्ते-सल्तनत (राजसिंहासन) पर जलवा फ़रमा हुआ,[41] जो रात को दिन पर ढाँक देता है और फिर दिन रात के पीछे दौड़ा चला आता है,

39. यानी वे दोबारा इस दुनिया में वापस आने की ख़ाहिश करेंगे और कहेंगे कि जिस हक़ीक़त की हमें ख़बर दी गई थी और उस वक़्त हमने न माना था, अब उसे देख लेने के बाद हम उससे वाक़िफ़ हो गए हैं, लिहाज़ा अगर हमें दुनिया में फिर भेज दिया जाए तो हमारा रवैया वह न होगा जो पहले था। इस दरख़ास्त और इसके जवाबों के लिए देखें—सूरा-6 अनआम, आयत-27-28; सूरा-14 इबराहीम की आयत 44,45; सूरा-32 सजदा की आयत 12,13; सूरा-35 फ़ातिर की आयत-37; सूरा-39 ज़ुमर की आयत-56-59; सूरा-40 मोमिन की आयत-11,12।

40. यहाँ दिन का लफ़्ज़ या तो उसी चौबीस घण्टे के दिन का हम मानी (समानार्थक) है जिसे दुनिया के लोग दिन कहते हैं या फिर यह लफ़्ज़ दौर (Period) के मानी में इस्तेमाल हुआ है, जैसा कि सूरा-22 हज्ज की 47वीं आयत में फ़रमाया, "और हक़ीक़त यह है कि तेरे रब के यहाँ एक दिन हज़ार साल के बराबर है, उस हिसाब से जो तुम लोग लगाते हो।" और सूरा-70 मआरिज की आयत 4 में फ़रमाया कि "फ़रिश्ते और जिबरील उसकी तरफ़ एक दिन में चढ़ते हैं जो 50 हज़ार साल के बराबर है।" इसका सही मतलब अल्लाह तआला ही बेहतर जानता है। (और ज़्यादा तशरीह के लिए देखें—सूरा-41 हा-मीम सजदा, हाशिया-11 से 15)

41. ख़ुदा के तख़्ते-सल्तनत (राजसिंहासन) पर जलवा फ़रमा होने की तफ़सीली कैफ़ियत को समझना हमारे लिए मुश्किल है। बहुत मुमकिन है कि अल्लाह तआला ने कायनात को पैदा करने के बाद किसी जगह को अपनी इस लामहदूद सल्तनत (असीमित राज्य) का मर्कज़ ठहरा कर अपनी तजल्लियात (जलवों) को वहाँ केंद्रित कर दिया हो और उसी का नाम अर्श हो जहाँ से सारी दुनिया पर ज़िन्दगी और क़ुव्वत की बारिश भी हो रही है और मामलों का इन्तिज़ाम भी किया जा रहा है। और यह भी मुमकिन है कि तख़्त (अर्श) से मुराद हुकूमत का इक़्तिदार हो

وَّالشَّمۡسَ وَالۡقَمَرَ وَالنُّجُوۡمَ مُسَخَّرٰتٍۢ بِاَمۡرِهٖ‌ؕ اَلَا لَهُ الۡخَلۡقُ وَالۡاَمۡرُ‌ؕ

जिसने सूरज और चाँद और तारे पैदा किए। सब उसके हुक्म के पाबंद हैं। ख़बरदार

और उसपर जलवा फ़रमा होने से मुराद यह हो कि अल्लाह ने कायनात को पैदा करके उसकी बागडोर अपने हाथ में ले ली। बहरहाल अर्श पर जलवा फ़रमा होने का तफ़सीली मतलब चाहे जो भी हो, क़ुरआन में उसके ज़िक्र का अस्ल मक़सद यह ज़ेहन में बिठाना है कि अल्लाह तआला महज़ कायनात का पैदा करनेवाला ही नहीं है, बल्कि कायनात के निज़ाम को ठीक-ठीक चलानेवाला भी है। वह दुनिया को वुजूद में लाने के बाद उससे बेताल्लुक़ होकर कहीं बैठ नहीं गया है बल्कि अमली तौर पर वही सारे जहान के छोटे-बड़े हिस्से पर हुकूमत कर रहा है। बादशाही व हुक्मरानी के तमाम इख़्तियारात अमली तौर पर उसके हाथ में हैं, हर चीज़ उसके हुक्म की पाबन्द है, ज़र्रा-ज़र्रा उसके हुक्म का ग़ुलाम है और तमाम मौजूद चीज़ों की क़िस्मतें हमेशा के लिए उसके हुक्म से जुड़ी हुई हैं। इस तरह क़ुरआन उस बुनियादी ग़लतफ़हमी की जड़ काटना चाहता है जिसकी वजह से इनसान कभी शिर्क की गुमराही में मुब्तला हुआ है और कभी ख़ुदमुख़्तारी और ख़ुदसरी व सरकशी की गुमराही में। ख़ुदा को कायनात के इन्तिज़ाम से अमली तौर पर बेताल्लुक़ समझ लेने का लाज़िमी नतीजा यह है कि आदमी या तो अपनी क़िस्मत को दूसरों के हाथ में समझे और उनके आगे सिर झुका दे, या फिर अपनी क़िस्मत का मालिक ख़ुद अपने आप को समझे और ख़ुदमुख़्तार बन बैठे।

यहाँ एक बात और ध्यान देने के क़ाबिल है। क़ुरआन मजीद में ख़ुदा और उसकी मख़लूक़ (सृष्टि) के ताल्लुक़ को वाज़ेह करने के लिए इनसानी ज़बान में से ज़्यादातर वे अलफ़ाज़, इस्तिलाहें (परिभाषाएँ), मिसालें और अन्दाज़े-बयान चुने गए हैं जो सल्तनत व बादशाही से ताल्लुक़ रखते हैं। बयान का यह अन्दाज़ क़ुरआन में इस क़द्र नुमायाँ है कि कोई शख़्स जो समझकर क़ुरआन पढ़ता हो इसे महसूस किए बग़ैर नहीं रह सकता। कुछ कम समझ नाक़िदों (आलोचकों) के दूसरों से मुतास्सिर दिमाग़ों ने इससे यह नतीजा निकाला है कि यह किताब जिस ज़माने में तैयार की गई है उस ज़माने में इनसान के ज़ेहन पर शाही निज़ाम छाया हुआ था इसलिए तैयार करनेवाले ने (जिससे मुराद उन ज़ालिमों के नज़दीक मुहम्मद सल्ल. हैं) ख़ुदा को बादशाह के रंग में पेश किया। हालाँकि दर अस्ल क़ुरआन जिस दाइमी (शाश्वत) और हमेशा रहनेवाली हक़ीक़त को पेश कर रहा है वह इसके बरख़िलाफ़ है। यह हक़ीक़त यह है कि ज़मीन और आसमानों में बादशाही सिर्फ़ एक ज़ात की है, और हाकिमियत (Sovereignity) जिस चीज़ का नाम है वह उसी ज़ात के लिए ख़ास है और कायनात का यह निज़ाम एक मुकम्मल मर्कज़ी निज़ाम (केन्द्रीय व्यवस्था) है, जिसमें तमाम इख़्तियारात को वही एक ज़ात इस्तेमाल कर रही है। लिहाज़ा इस निज़ाम में जो शख़्स या गरोह अपनी या किसी और की जुज़्वी या कुल्ली (आंशिक या पूर्ण) हाकिमियत का दायेदार है, वह सिर्फ़ धोखे में पड़ा है। फिर यह बात भी है कि इस निज़ाम के अन्दर रहते हुए इनसान के लिए इसके सिवा कोई दूसरा रवैया सही नहीं हो सकता कि उसी एक ज़ात को मज़हबी मानी में अकेला माबूद भी माने और सियासी और समाजी मानी में अकेला बादशाह (Sovereign) भी तसलीम करे।

تَبٰرَكَ اللّٰهُ رَبُّ الْعٰلَمِيْنَ ۞ اُدْعُوْا رَبَّكُمْ تَضَرُّعًا وَّخُفْيَةً ۭ اِنَّهٗ لَا
يُحِبُّ الْمُعْتَدِيْنَ ۞ وَلَا تُفْسِدُوْا فِي الْاَرْضِ بَعْدَ اِصْلَاحِهَا وَادْعُوْهُ

रहो! उसी की ख़ल्क़ (सृष्टि) है और उसी का हुक्म है।[42] बड़ी बरकतवाला है[43] अल्लाह, सारे जहानों का मालिक और पालनहार। (55) अपने रब को पुकारो गिड़गिड़ाते हुए और चुपके-चुपके, यक़ीनन वह हद से गुज़रनेवालों को पसन्द नहीं करता। (56) ज़मीन में बिगाड़ न फैलाओ, जबकि उसका सुधार हो चुका है[44] और अल्लाह ही को पुकारो डर के

42. यह उसी मज़मून (विषय) की और ज़्यादा तशरीह है जो "इस्तिवा-अलल-अर्श" (अर्श पर जलवा फ़रमा होने) के अलफ़ाज़ में मुख़्तसर तौर पर बयान किया गया था। यानी यह कि ख़ुदा सिर्फ़ पैदा करनेवाला नहीं, हुक्म देनेवाला और हाकिम भी है। उसने अपनी मख़्लूक़ (सृष्टि) को पैदा करके न तो दूसरों के हवाले कर दिया है कि वे उसमें हुक्म चलाएँ और न पूरी मख़्लूक़ को या उसके किसी हिस्से को ख़ुदमुख़्तार बना दिया है कि जिस तरह चाहे ख़ुद काम करे, बल्कि अमली तौर पर तमाम कायनात का इन्तिज़ाम ख़ुदा के अपने हाथ में है। दिन और रात का आना और जाना आप-से-आप नहीं हो रहा है, बल्कि ख़ुदा के हुक्म से हो रहा है, जब चाहे उसे रोक दे और जब चाहे उसके निज़ाम को तब्दील कर दे। सूरज और चाँद और तारे ख़ुद किसी ताक़त के मालिक नहीं हैं, बल्कि उनकी लगाम पूरे तौर पर ख़ुदा के हाथ में है और वे मजबूर ग़ुलामों की तरह बस वही काम किए जा रहे हैं जो ख़ुदा उनसे ले रहा है।

43. बरकत के असल मानी हैं बढ़ोत्तरी, पलने-बढ़ने और फैलने के और इसी के साथ इस लफ़्ज में बुलन्दी, अज़मत और बड़ाई के मानी भी पाए जाते हैं और मज़बूती और जमाव के भी। फिर इन सब मानी के साथ ख़ैर और भलाई का तसव्वुर लाज़िमन शामिल है। इसी लिए अल्लाह के निहायत बाबरकत होने का मतलब यह हुआ कि उसकी ख़ूबियों और भलाइयों की कोई हद नहीं है, बेहद व बेहिसाब भलाइयाँ उसकी ज़ात से फैल रही हैं, और वह बहुत बुलन्द व बरतर हस्ती है, कहीं जाकर उसकी बुलन्दी ख़त्म नहीं होती, और उसकी यह भलाई और बुलन्दी हमेशा बाक़ी रहनेवाली है, वक़्ती नहीं है कि कभी ख़त्म हो जाए, (और ज़्यादा तशरीह के लिए देखें—सूरा-25 फ़ुरक़ान, हाशिये-1-19)

44. "ज़मीन में फ़साद (बिगाड़) न फैलाओ" यानी ज़मीन के इन्तिज़ाम को ख़राब न करो। इनसान का ख़ुदा की बन्दगी से निकलकर अपने नफ़्स की या दूसरों की बन्दगी इख़्तियार करना और ख़ुदा की हिदायत को छोड़कर अपने अख़लाक़, रहन-सहन और समाज को ऐसे उसूलों व क़ानूनों पर क़ायम करना जो ख़ुदा के सिवा किसी और की रहनुमाई से लिए गए हों, यही वह बुनियादी फ़साद और बिगाड़ है जिससे ज़मीन के इन्तिज़ाम में ख़राबी की अनगिनत सूरतें पैदा होती हैं और इसी फ़साद को रोकना क़ुरआन का मक़सद है। फिर इसके साथ क़ुरआन इस हक़ीक़त पर भी ख़बरदार करता है कि ज़मीन के इन्तिज़ाम में अस्ल चीज़ फ़साद नहीं है

خَوۡفًا وَّطَمَعًا ؕ اِنَّ رَحۡمَتَ اللّٰهِ قَرِيۡبٌ مِّنَ الۡمُحۡسِنِيۡنَ ۞ وَهُوَ الَّذِىۡ
يُرۡسِلُ الرِّيٰحَ بُشۡرًاۢ بَيۡنَ يَدَىۡ رَحۡمَتِهٖ ؕ حَتّٰۤى اِذَاۤ اَقَلَّتۡ سَحَابًا ثِقَالًا

साथ और लालच के साथ,[45] यक़ीनन अल्लाह की रहमत नेक किरदार लोगों से क़रीब है।

(57) और वह अल्लाह ही है जो हवाओं को अपनी रहमत के आगे-आगे ख़ुश-ख़बरी लिए हुए भेजता है, फिर जब वे पानी से लदे हुए बादल उठा लेती हैं तो उन्हें

जिसकी इस्लाह हुई, बल्कि अस्ल चीज़ "सलाह" (सुव्यवस्था) है जिसपर फ़साद महज़ इनसान की जिहालत और सरकशी से पैदा होता रहा है। दूसरे लफ़्ज़ों में यहाँ इनसान की ज़िन्दगी की शुरुआत जिहालत, वहशत और शिर्क व बग़ावत और अख़लाक़ी बिगाड़ से नहीं हुई है जिसको दूर करने के लिए बाद में दर्जा-बदर्जा सुधार किए गए हों, बल्कि हक़ीक़त में इनसानी ज़िन्दगी का आग़ाज़ "सलाह" (सुव्यवस्था) से हुआ है और बाद में उस दुरुस्त निज़ाम को ग़लतकार इनसान अपनी बेवक़ूफ़ियों और शरारतों से ख़राब करते रहे हैं। इसी फ़साद व बिगाड़ को मिटाने और ज़िन्दगी के निज़ाम को नए सिरे से दुरुस्त कर देने के लिए अल्लाह तआला समय-समय पर अपने पैग़म्बर भेजता रहा है और उन्होंने हर ज़माने में इनसान को यही दावत दी है कि ज़मीन का इन्तिज़ाम जिस 'सलाह' (सुव्यवस्था) पर क़ायम किया गया था, उसमें बिगाड़ पैदा करने से रुक जाओ।

इस मामले में क़ुरआन का नज़रिया उन लोगों के नज़रिए से बिलकुल अलग है जिन्होंने 'इरतिक़ा' (विकास) का एक ग़लत तसव्वुर (ख़याल) लेकर यह नज़रिया क़ायम किया है कि इनसान अंधेरे से निकलकर दर्जा-ब-दर्जा रौशनी में आया है और उसकी ज़िन्दगी बिगाड़ से शुरू होकर धीरे-धीरे बनी और बनती जा रही है। इसके बरख़िलाफ़ क़ुरआन कहता है कि ख़ुदा ने इनसान को पूरी रौशनी में ज़मीन पर बसाया था और एक सालेह निज़ाम (सुव्यवस्था) से उसकी ज़िन्दगी की शुरुआत की थी। फिर इनसान ख़ुद शैतानी रहनुमाई क़बूल करके बार-बार अंधेरे में जाता रहा और इस सालेह और अच्छे निज़ाम को बिगाड़ता रहा और ख़ुदा बार-बार अपने पैग़म्बरों को इस मक़सद के लिए भेजता रहा कि इसे अंधेरे से रौशनी की तरफ़ आने और बिगाड़ फैलाने से रुके रहने की दावत दें। (सूरा-2 बक़रा, हाशिया-230)

45. इस जुमले से वाज़ेह हो गया कि ऊपर के जुमले में जिस चीज़ को फ़साद कहा गया है वह अस्ल में यही है कि इनसान ख़ुदा के बजाए किसी और को अपना वली, सरपरस्त और कारसाज़ (कार्यसाधक) ठहराकर मदद के लिए पुकारे। और इस्लाह इसके सिवा किसी दूसरी चीज़ का नाम नहीं है कि इनसान अपनी मदद के लिए फिर से सिर्फ़ अल्लाह ही को पुकारने लगे।

سُقْنٰهُ لِبَلَدٍ مَّيِّتٍ فَاَنْزَلْنَا بِهِ الْمَآءَ فَاَخْرَجْنَا بِهٖ مِنْ كُلِّ
الثَّمَرٰتِ ؕ كَذٰلِكَ نُخْرِجُ الْمَوْتٰى لَعَلَّكُمْ تَذَكَّرُوْنَ ﴿٥٧﴾ وَالْبَلَدُ الطَّيِّبُ
يَخْرُجُ نَبَاتُهٗ بِاِذْنِ رَبِّهٖ ۚ وَالَّذِيْ خَبُثَ لَا يَخْرُجُ اِلَّا نَكِدًا ؕ كَذٰلِكَ

किसी मुर्दा ज़मीन की तरफ़ चला देता है और वहाँ पानी बरसाकर (उसी मरी हुई ज़मीन से) तरह-तरह के फल निकाल लाता है। देखो, इस तरह हम मुर्दों को मौत की हालत से निकालते हैं, शायद कि तुम इस मुशाहिदे से सबक़ लो। (58) जो ज़मीन अच्छी होती है, वह अपने रब के हुक्म से ख़ूब फल-फूल लाती है और जो ज़मीन ख़राब होती है, उससे ख़राब पैदावार के सिवा कुछ नहीं निकलता।[46] इसी तरह हम निशानियों को बार-बार

डर और लालच के साथ पुकारने का मतलब यह है कि तुम्हें डर भी हो तो अल्लाह से हो और तुम्हारी उम्मीदें भी अगर किसी से बंधी हों तो सिर्फ़ अल्लाह से बंधी हों। अल्लाह को पुकारो तो इस एहसास के साथ पुकारो कि तुम्हारी क़िस्मत पूरी तरह उसकी मेहरबानी (कृपादृष्टि) पर टिकी है। कामयाबी और ख़ुशनसीबी पा सकते हो तो सिर्फ़ उसकी मदद और रहनुमाई से, वरना जहाँ तुम उसकी मदद से महरूम (वंचित) हुए फिर तुम्हारे लिए तबाही और नाकामी के सिवा कोई दूसरा अंजाम नहीं है।

46. यहाँ एक लतीफ़ (सूक्ष्म) मज़मून बयान हुआ है जिसपर ख़बरदार हो जाना अस्ल मक़सद को समझने के लिए ज़रूरी है। बारिश और उसकी बरकतों के ज़िक्र से इस मक़ाम पर ख़ुदा की क़ुदरत का बयान और मरने के बाद ज़िन्दगी का साबित करना भी मक़सद है और इसके साथ-साथ मिसालों के अन्दाज़ में पैग़म्बरी और उसकी बरकतों का और उसके ज़रिए से अच्छे और बुरे में और पाक व नापाक में फ़र्क़ नुमायाँ हो जाने का नक़्शा दिखाना भी पेशे-नज़र है। रसूल के आने और ख़ुदाई तालीम व हिदायत के उतरने को बारिश की हवाओं के चलने और रहमत के बादल के छा जाने और अमृत भरी बूँदों के बरसने से तशबीह (उपमा) दी गई है। फिर बारिश के ज़रिए से मुर्दा पड़ी हुई ज़मीन के यकायक जी उठने और उसके पेट से ज़िन्दगी के ख़ज़ाने उबल पड़ने को उस हालत के लिए बतौर मिसाल पेश किया गया है जो नबी की तालीम व तरबियत और रहनुमाई से मुर्दा पड़ी हुई इनसानियत के यकायक जाग उठने और उसके सीने से भलाइयों के ख़ज़ाने उबल पड़ने की सूरत में ज़ाहिर होती है। फिर यह बताया गया है कि जिस तरह बारिश के बरसने से ये सारी बरकतें सिर्फ़ उसी ज़मीन को हासिल होती हैं जो हक़ीक़त में ज़रख़ेज़ (उपजाऊ) होती है और महज़ पानी न मिलने की वजह से जिसकी सलाहियतें दबी रहती हैं, इसी तरह रिसालत की इन बरकतों से भी सिर्फ़ वही इनसान फ़ायदा उठाते हैं जो हक़ीक़त में सालेह (नेक और भले) होते हैं और जिनकी सलाहियतों को महज़ रहनुमाई न मिलने की वजह से नुमायाँ होने और काम करने का मौक़ा नहीं मिलता। रहे

نُصَرِّفُ الْاٰیٰتِ لِقَوْمٍ یَّشْكُرُوْنَ ۝۵۸ لَقَدْ اَرْسَلْنَا نُوْحًا اِلٰى قَوْمِهٖ ع

पेश करते हैं उन लोगों के लिए जो शुक्रगुज़ार होनेवाले हैं।

(59) हमने नूह को उसकी क़ौम की तरफ़ भेजा।[47] उसने कहा, "ऐ मेरी क़ौम के

शरारत-पसन्द और बुरे इनसान तो जिस तरह बंजर ज़मीन बारिश से कोई फ़ायदा नहीं उठाती, बल्कि पानी पड़ते ही अपने पेट के छिपे हुए ज़हर को काँटों और झाड़ियों की शक्ल में उगल देती है, इसी तरह पैग़म्बरों के आने से उन्हें भी कोई फ़ायदा नहीं पहुँचता, बल्कि इसके बरख़िलाफ़ उनके अन्दर दबी हुई तमाम ख़बासतें और ख़राबियाँ उभरकर पूरी तरह काम करने लगती हैं।

इसी मिसाल को बाद की बहुत-सी आयतों में लगातार तारीख़ी गवाहियाँ पेश करके वाज़ेह किया गया है कि हर ज़माने में नबी के भेजे जाने के बाद इनसानियत दो हिस्सों में बँटती रही है। एक अच्छा और पाकीज़ा हिस्सा जो पैग़म्बर की तालीम की बरकतों से फला और फूला और अच्छे फल-फूल लाया, दूसरा ख़राब और नापाक हिस्सा जिसने कसौटी के सामने आते ही अपनी सारी खोट नुमायाँ करके रख दी और आख़िरकार उसको ठीक उसी तरह छाँटकर फेंक दिया गया जिस तरह सुनार चाँदी-सोने के खोट को छाँट कर फेंकता है।

47. इस तारीख़ी बयान की शुरुआत हज़रत नूह (अलैहि.) और उनकी क़ौम से की गई है, क्योंकि क़ुरआन के मुताबिक़ जिस बेहतर निज़ामे-ज़िन्दगी पर हज़रत आदम (अलैहि.) अपनी औलाद को छोड़ गए थे उसमें सबसे पहला बिगाड़ हज़रत नूह के दौर में पैदा हुआ और उसके सुधार के लिए अल्लाह तआला ने उनको मुक़र्रर किया।

क़ुरआन के इशारों और बाइबल के साफ़ बयानों से यह बात सही तौर से मालूम हो जाती है कि हज़रत नूह (अलैहि.) की क़ौम उस सरज़मीन (भूभाग) में रहती थी जिसको आज हम इराक़ के नाम से जानते हैं। बाबिल के आसारे-क़दीमा (प्राचीन अवशेषों) में बाइबल के ज़माने से भी पहले के जो कतबात (अभिलेख) मिले हैं उनसे भी इसकी तसदीक़ होती है, उनमें लगभग उसी तरह का एक क़िस्सा लिखा है जिसका ज़िक्र क़ुरआन और तौरात में बयान हुआ है और उसके वाक़ेअ (घटित) होने की जगह 'मौसिल' के आस-पास में बताई गई है। फिर जो रिवायतें कुर्दिस्तान और आरमीनिया में पुराने ज़माने से नस्ल-दर-नस्ल चली आ रही हैं उनसे भी मालूम होता है कि तूफ़ान के बाद हज़रत नूह (अलैहि.) की कश्ती इसी इलाक़े में किसी जगह पर ठहरी थी। मौसिल (Al-Mosul) के उत्तर में इब्ने-उमर नाम के जज़ीरे (द्वीप) के आसपास, आरमीनिया की सरहद पर अरारात पहाड़ के क़रीब में नूह (अलैहि.) के मुख़्तलिफ़ अवशेषों की निशानदेही अब भी की जाती है और नख़चीवान नगर के वासियों में आज तक मशहूर है कि यह शहर सबसे पहले नूह (अलैहि.) ने बसाया था।

हज़रत नूह (अलैहि.) के इस क़िस्से से मिलती-जुलती रिवायतें यूनान, मिस्र, भारत और चीन के प्राचीन लिट्रेचर में भी मिलती हैं और इसके अलावा बर्मा, मलाया, पूर्वी द्वीप समूह, आस्ट्रेलिया, न्यूगिनी और अमेरिका व यूरोप के मुख़्तलिफ़ हिस्सों में भी ऐसी ही रिवायतें क़दीम ज़माने से

فَقَالَ يٰقَوْمِ اعْبُدُوا اللّٰهَ مَا لَكُمْ مِّنْ اِلٰهٍ غَيْرُهٗ ۭ اِنِّيْٓ اَخَافُ عَلَيْكُمْ عَذَابَ يَوْمٍ عَظِيْمٍ ۝ قَالَ الْمَلَاُ مِنْ قَوْمِهٖٓ اِنَّا لَنَرٰىكَ فِيْ ضَلٰلٍ مُّبِيْنٍ ۝ قَالَ يٰقَوْمِ لَيْسَ بِيْ ضَلٰلَةٌ وَّلٰكِنِّيْ رَسُوْلٌ مِّنْ رَّبِّ

भाइयो! अल्लाह की बन्दगी करो, उसके सिवा तुम्हारा कोई ख़ुदा नहीं है।[48] मैं तुम्हारे हक़ में एक हौलनाक दिन के अज़ाब से डरता हूँ।" (60) उसकी क़ौम के सरदारों ने जवाब दिया, "हमें तो यह दिखाई देता है कि तुम खुली गुमराही में पड़े हो।" (61) नूह ने कहा, "ऐ मेरी क़ौम के भाइयो! मैं किसी गुमराही में नहीं पड़ा हूँ, बल्कि मैं सारे

चली आ रही हैं। इससे साफ़ ज़ाहिर होता है कि यह क़िस्सा उस दौर से ताल्लुक़ रखता है जबकि तमाम इनसान किसी एक ही भू-भाग में रहते थे और फिर वहाँ से निकलकर दुनिया के अलग-अलग हिस्सों में फैले। इसी वजह से तमाम क़ौमें अपनी इब्तिदाई तारीख़ (आरंभिक इतिहास) में एक बहुत बड़े तूफ़ान की निशानदेही करती हैं, अगरचे वक़्त गुजरने के साथ-साथ उसकी सही तफ़सीलात उन्होंने भुला दीं और अस्ल वाक़िए पर हर एक ने अपनी-अपनी सोच के मुताबिक़ अफ़सानों और कहानियों का एक भारी ख़ोल (आवरण) चढ़ा दिया।

48. यहाँ और दूसरी जगहों पर हज़रत नूह (अलैहि.) और उनकी क़ौम का जो हाल क़ुरआन मजीद में बयान किया गया है उससे यह बात साफ़ ज़ाहिर होती है कि यह क़ौम न तो अल्लाह के वुजूद का इनकार करती थी, न इससे अनजान थी, न उसे अल्लाह की इबादत से इनकार था, बल्कि अस्ल गुमराही जिसमें वह मुब्तला हो गई थी, शिर्क की गुमराही थी। यानी उसने अल्लाह के साथ दूसरी हस्तियों को ख़ुदाई में शरीक और इबादत के हक़ में हिस्सेदार ठहरा लिया था। फिर इस बुनियादी गुमराही से अनगिनत ख़राबियाँ इस क़ौम में पैदा हो गईं। जो ख़ुद गढ़े हुए माबूद ख़ुदाई में शरीक ठहरा लिए गए थे उनकी नुमाइन्दगी करने के लिए क़ौम में एक ख़ास तबक़ा (वर्ग) पैदा हो गया जो तमाम मज़हबी, सियासी और मआशी (आर्थिक) इख़्तियार का मालिक बन बैठा और उसने इनसानों को ऊँच और नीच तबक़ों में बाँट दिया, समाजी ज़िन्दगी को ज़ुल्म व फ़साद से भर दिया और अख़्लाक़ी बुराइयों के ज़रिए से इनसानियत की जड़ें खोखली कर दीं। हज़रत नूह (अलैहि.) ने इस हालत को बदलने के लिए एक लम्बे समय तक बेहद सब्र और हिक्मत के साथ कोशिश की, मगर आम लोगों को उन लोगों ने अपने फ़रेब के जाल में ऐसा फांस रखा था कि इस्लाह और सुधार की कोई तदबीर असर न कर सकी। आख़िरकार हज़रत नूह (अलैहि.) ने ख़ुदा से दुआ की कि हक़ के इन इनकारियों में से एक को भी ज़मीन पर ज़िन्दा न छोड़, क्योंकि अगर तूने इनमें से किसी को भी छोड़ दिया तो ये तेरे बन्दों को गुमराह करेंगे और इनकी नस्ल से जो भी पैदा होगा बदकार और नमक हराम ही पैदा होगा। (तफ़सील के लिए देखें—सूरा-11 हूद, आयत-25-48; सूरा-26 शुअरा, आयत-105-122; और सूरा-71 नूह, आयत-1-28)

الْعٰلَمِيْنَ ۝٦١ اُبَلِّغُكُمْ رِسٰلٰتِ رَبِّيْ وَاَنْصَحُ لَكُمْ وَاَعْلَمُ مِنَ اللّٰهِ مَا لَا
تَعْلَمُوْنَ ۝٦٢ اَوَعَجِبْتُمْ اَنْ جَآءَكُمْ ذِكْرٌ مِّنْ رَّبِّكُمْ عَلٰى رَجُلٍ مِّنْكُمْ
لِيُنْذِرَكُمْ وَلِتَتَّقُوْا وَلَعَلَّكُمْ تُرْحَمُوْنَ ۝٦٣ فَكَذَّبُوْهُ فَاَنْجَيْنٰهُ وَالَّذِيْنَ
مَعَهٗ فِي الْفُلْكِ وَاَغْرَقْنَا الَّذِيْنَ كَذَّبُوْا بِاٰيٰتِنَا ؕ اِنَّهُمْ كَانُوْا قَوْمًا

जहानों के रब का रसूल हूँ। (62) तुम्हें अपने रब के पैग़ाम पहुँचाता हूँ, तुम्हारा ख़ैरख़ाह हूँ और मुझे अल्लाह की तरफ़ से वह कुछ मालूम है जो तुम्हें मालूम नहीं है। (63) क्या तुम्हें इस बात पर ताज्जुब हुआ कि तुम्हारे पास ख़ुद तुम्हारी अपनी क़ौम के एक आदमी के ज़रिए से तुम्हारे रब की याददिहानी आई, ताकि तुम्हें ख़बरदार करे और तुम ग़लत रवैये से बच जाओ और तुमपर रहम किया जाए?"[49] (64) मगर उन्होंने उसको झुठला दिया। आख़िरकार हमने उसे और उसके साथियों को एक कश्ती में नजात दी और उन लोगों को डुबो दिया, जिन्होंने हमारी आयतों को झुठलाया था।[50] यक़ीनन वे अंधे लोग

49. यह मामला जो हज़रत नूह (अलैहि॰) और उनकी क़ौम के दरमियान पेश आया था, बिलकुल ऐसा ही मामला मक्का में मुहम्मद (सल्ल॰) और आप (सल्ल॰) की क़ौम के दरमियान पेश आ रहा था। जो पैग़ाम हज़रत नूह (अलैहि॰) का था वही हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) का था। जो शक और शुब्हे मक्कावालों के सरदार और ज़िम्मेदार लोग हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) के पैग़म्बर होने में ज़ाहिर करते थे, वही शुब्हात हज़ारों साल पहले नूह (अलैहि॰) की क़ौम के सरदारों ने हज़रत नूह (अलैहि॰) के ख़ुदा का पैग़म्बर होने में ज़ाहिर किए थे। फिर उनके जवाब में जो बातें हज़रत नूह (अलैहि॰) कहते थे, ठीक वही बातें मुहम्मद (सल्ल॰) भी कहते थे। आगे चलकर दूसरे नबियों (अलैहि॰) और उनकी क़ौमों के जो क़िस्से मुसलसल बयान हो रहे हैं उनमें भी वही दिखाया गया है कि हर नबी की क़ौम का रवैया मक्कावालों के रवैये से और हर नबी की बात मुहम्मद (सल्ल॰) की बात से बिलकुल मिलती-जुलती है। इससे क़ुरआन अपने मुख़ातबों को यह समझाना चाहता है कि इनसान की गुमराही हर ज़माने में बुनियादी तौर पर एक ही तरह की रही है, और ख़ुदा के भेजे हुए पैग़म्बरों की दावत भी हर दौर और हर सरज़मीन में एक जैसी रही है। और ठीक इसी तरह उन लोगों का अंजाम भी एक ही जैसा हुआ है और होगा जिन्होंने नबियों की दावत से मुँह मोड़ा और अपनी गुमराही पर अड़े रहे।

50. जो लोग क़ुरआन के अन्दाज़े-बयान से अच्छी तरह वाक़िफ़ नहीं होते, वे अकसर इस शुब्हे में पड़ जाते हैं कि शायद यह सारा मामला बस एक-दो बार की बैठकों में ख़त्म हो गया होगा। नबी उठा और उसने अपना दावा पेश किया, लोगों ने एतिराज़ किए और नबी ने जवाब दिया,

लोगों ने झुठलाया और अल्लाह ने अज़ाब भेज दिया। हालाँकि हक़ीक़त में जिन वाक़िआत को यहाँ समेटकर कुछ लाइनों में बयान कर दिया गया है वे एक बहुत लम्बी मुद्दत में पेश आए थे। क़ुरआन का यह ख़ास अन्दाज़े-बयान है कि वह कोई भी वाक़िआ सिर्फ़ कहानी सुनाने के लिए बयान नहीं करता, बल्कि इसलिए करता है कि उससे सबक़ हासिल किया जाए। इसलिए हर जगह तारीख़ी वाक़िआत के बयान में वह क़िस्से के सिर्फ़ उन अहम हिस्सों को पेश करता है जो उसके मक़सद से कोई ताल्लुक़ रखते हैं, बाक़ी तमाम तफ़सीलात को नज़र-अन्दाज़ कर देता है। फिर अगर किसी क़िस्से को मुख़्तलिफ़ मौक़ों पर मुख़्तलिफ़ मक़सदों के लिए बयान करता है तो हर जगह मक़सद के हिसाब से तफ़सीलात भी मुख़्तलिफ़ तौर पर पेश करता है। मिसाल के तौर पर नूह (अलैहि॰) के इसी क़िस्से को लीजिए, यहाँ उसके बयान का मक़सद यह बताना है कि पैग़म्बर की दावत को झुठलाने का क्या अंजाम होता है। लिहाज़ा इस मक़ाम पर यह ज़ाहिर करने की ज़रूरत नहीं थी कि पैग़म्बर कितनी लम्बी मुद्दत तक अपनी क़ौम को दावत देता रहा। लेकिन जहाँ यह क़िस्सा इस ग़रज़ के लिए बयान हुआ है कि मुहम्मद (सल्ल॰) और आप (सल्ल॰) के साथियों को सब्र की नसीहत की जाए, वहाँ ख़ास तौर पर नूह (अलैहि॰) की दावत की लम्बी मुद्दत का ज़िक्र किया गया है ताकि हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) और आप (सल्ल॰) के साथी अपनी चन्द साल की तबलीग़ी कोशिश और मेहनत का कोई नतीजा न निकलते देखकर बददिल न हों और हज़रत नूह (अलैहि॰) के सब्र को देखें जिन्होंने एक लम्बे समय तक बेहद दिलशिकन (निराशाजनक) हालात में हक़ की तरफ़ बुलाने का काम किया और ज़रा भी हिम्मत न हारी। (देखें—सूरा-29, अनकबूत, आयत-14)

इस मौक़े पर एक और शक भी लोगों के दिलों में खटकता है जिसे दूर कर देना ज़रूरी है। जब एक शख़्स क़ुरआन में बार-बार ऐसे वाक़िआत पढ़ता है कि फ़ुलाँ क़ौम ने नबी को झुठलाया और नबी ने उसे अज़ाब की ख़बर दी और अचानक उसपर अज़ाब आया और क़ौम तबाह हो गई, तो उसके दिल में यह सवाल पैदा होता है कि आख़िर इस तरह के वाक़िआत अब क्यों नहीं पेश आते? हालाँकि क़ौमें गिरती भी हैं और उठती भी हैं, लेकिन इस उठने और गिरने की नौइयत दूसरी होती है। यह तो नहीं होता कि एक नोटिस के बाद ज़लज़ला य तूफ़ान आ जाए या बिजली गिर पड़े और पूरी क़ौम को तबाह करके रख दे। इसका जवाब यह है कि हक़ीक़त में अख़लाक़ी और क़ानूनी एतिबार से उस क़ौम का मामला जिनसे कोई नबी सीधे तौर पर ख़िताब करे, दूसरी तमाम क़ौमों के मामले से बिलकुल अलग होता है। जिस क़ौम में नबी पैदा हुआ हो और वह बग़ैर किसी वास्ते के उसको ख़ुद उसी की अपनी ज़बान में ख़ुदा का पैग़ाम पहुँचाए और अपनी शख़्सियत के अन्दर अपनी सच्चाई का ज़िन्दा नमूना उसके सामने पेश कर दे, उसपर ख़ुदा की दलील और हुज्जत पूरी हो जाती है, उसके लिए बहाना पेश करने की कोई गुंजाइश बाक़ी नहीं रहती और ख़ुदा के पैग़म्बर को आमने-सामने झुठला देने के बाद वह इसकी हक़दार हो जाती है कि उसका फ़ैसला उसी मौक़े पर चुका दिया जाए। मामले की यह नौइयत उन क़ौमों के मामले से बुनियादी तौर पर अलग है जिनके पास ख़ुदा का पैग़ाम सीधे तौर पर न आया हो, बल्कि मुख़्तलिफ़ वास्तों (माध्यमों) से पहुँचा हो। तो अगर अब इस तरह के वाक़िआत पेश नहीं आते जैसे नबियों (अलैहि॰) के ज़माने में पेश आए हैं तो इसमें ताज्जुब की

عَمِيْنَ ﴿٦٤﴾ وَاِلٰى عَادٍ اَخَاهُمْ هُوْدًا ۭ قَالَ يٰقَوْمِ اعْبُدُوا اللّٰهَ مَا لَكُمْ ع ١٥
مِّنْ اِلٰهٍ غَيْرُهٗ ۭ اَفَلَا تَتَّقُوْنَ ﴿٦٥﴾ قَالَ الْمَلَاُ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا مِنْ قَوْمِهٖٓ

थे।

(65) और आद[51] की तरफ़ हमने उनके भाई हूद को भेजा। उसने कहा, "ऐ मेरी क़ौम के भाइयो! अल्लाह की बन्दगी करो, उसके सिवा तुम्हारा कोई ख़ुदा नहीं है। फिर क्या तुम ग़लत रविश से नहीं बचोगे?" (66) उसकी क़ौम के सरदारों ने, जो उसकी बात

कोई बात नहीं, इसलिए कि मुहम्मद (सल्ल०) के बाद पैग़म्बरी का सिलसिला बन्द हो चुका है। अलबत्ता ताज्जुब के क़ाबिल कोई बात हो सकती थी तो यह कि अब भी किसी क़ौम पर उसी तरह का अज़ाब आता जैसा नबियों को उनके सामने झुठलानेवाली क़ौमों पर आता था। मगर इसका यह मतलब भी नहीं है कि अब उन क़ौमों पर अज़ाब आने बन्द हो गए हैं जो ख़ुदा से मुँह मोड़े और फ़िकरी (वैचारिक) व अख़लाक़ी गुमराहियों में मुब्तला हैं। हक़ीक़त यह है कि अब भी ऐसी तमाम क़ौमों पर अज़ाब आते रहते हैं। छोटे-छोटे ख़बरदार करनेवाले अज़ाब भी और बड़े-बड़े फ़ैसला चुका देनेवाले अज़ाब भी। लेकिन कोई नहीं जो नबियों (अलैहि०) और आसमानी किताबों की तरह इन अज़ाबों के अख़लाक़ी मानी की तरफ़ इनसान को ध्यान दिलाए, बल्कि इसके बरख़िलाफ़ न सिर्फ़ ज़ाहिरी चीज़ों पर नज़र रखनेवाले साइंसदानों और हक़ीक़त से अनजान इतिहासकारों और फ़ल्सफ़ियों (दार्शनिकों) का एक बड़ा गरोह इनसानों पर हावी है जो इस क़िस्म के तमाम वाक़िआत की वजह माद्दी क़ानूनों (भौतिक नियमों) या तारीख़ी असबाब (ऐतिहासिक कारणों) को बताकर उसको भुलावे में डालता रहता है और उसे कभी यह समझने का मौक़ा नहीं देता कि ऊपर कोई ख़ुदा भी मौजूद है जो ग़लतकार क़ौमों को पहले मुख़्तलिफ़ तरीक़ों से उनकी ग़लतकारी पर ख़बरदार करता है और जब वे उसकी भेजी हुई चेतावनियों से आँखें बन्द करके अपने ग़लत रवैये पर जमी रहती हैं तो आख़िरकार उन्हें तबाही के गढ़े में फेंक देता है।

51. यह (आद) अरब की सबसे पुरानी क़ौम थी, जिसकी कहानियाँ अरब के लोगों में हर किसी की ज़बान पर थीं। बच्चा-बच्चा उनके नाम से वाक़िफ़ था। उनकी शानो-शौकत की लोग मिसालें देते थे। फिर दुनिया से उनका नामो-निशान तक मिट जाना भी मिसाल बनकर रह गया। इसी शोहरत की वजह से अरबी ज़बान में हर पुरानी चीज़ के लिए "आदी" का लफ़्ज़ बोला जाता है। आसारे-क़दीमा (पुरातत्त्व) को "आदिय्यात" कहते हैं। जिस ज़मीन के मालिक बाक़ी न रहे हों और जो आबाद न होने की वजह से वीरान और ख़ाली पड़ी हो उसे "आदीयुल-अर्ज़" (वह ज़मीन जो इस्तेमाल न की जाती हो) कहा जाता है। क़दीम अरबी शायरी में हमको बहुत ज़्यादा इस क़ौम का ज़िक्र मिलता है। अरब के माहिरीने-अनसाब (वंशावली विशेषज्ञ) भी अपने मुल्क की ख़त्म हो जानेवाली क़ौमों में सबसे पहले इसी क़ौम का नाम लेते हैं। हदीस में आता है कि

إِنَّا لَنَرٰىكَ فِي سَفَاهَةٍ وَّإِنَّا لَنَظُنُّكَ مِنَ الْكٰذِبِيْنَ ﴿٦٦﴾ قَالَ يٰقَوْمِ
لَيْسَ بِيْ سَفَاهَةٌ وَّلٰكِنِّيْ رَسُوْلٌ مِّنْ رَّبِّ الْعٰلَمِيْنَ ﴿٦٧﴾ أُبَلِّغُكُمْ
رِسٰلٰتِ رَبِّيْ وَأَنَا لَكُمْ نَاصِحٌ أَمِيْنٌ ﴿٦٨﴾ أَوَعَجِبْتُمْ أَنْ جَآءَكُمْ ذِكْرٌ مِّنْ
رَّبِّكُمْ عَلٰى رَجُلٍ مِّنْكُمْ لِيُنْذِرَكُمْ ۚ وَاذْكُرُوْٓا إِذْ جَعَلَكُمْ خُلَفَآءَ
مِنْۢ بَعْدِ قَوْمِ نُوْحٍ وَّزَادَكُمْ فِي الْخَلْقِ بَصْۜطَةً ۚ فَاذْكُرُوْٓا اٰلَآءَ اللّٰهِ

मानने से इनकार कर रहे थे, जवाब में कहा, "हम तो तुम्हें बेअक़्ली में गिरफ़्तार समझते हैं और हमें गुमान है कि तुम झूठे हो।" (67) उसने कहा, "ऐ मेरी क़ौम के भाइयो! मैं बेअक़्ली में पड़ा हुआ नहीं हूँ, बल्कि मैं सारे जहानों के रब का रसूल (सन्देशवाहक) हूँ, (68) तुमको अपने रब के पैग़ाम पहुँचाता हूँ और तुम्हारा ऐसा ख़ैरख़ाह हूँ जिसपर भरोसा किया जा सकता है। (69) क्या तुम्हें इस बात पर ताज्जुब हुआ कि तुम्हारे पास ख़ुद तुम्हारी अपनी क़ौम के एक आदमी के ज़रिए से तुम्हारे रब की याददिहानी आई, ताकि वह तुम्हें ख़बरदार करे? भूल न जाओ कि तुम्हारे रब ने नूह की क़ौम के बाद तुमको उसका जानशीन बनाया और तुम्हें ख़ूब हट्टा-कट्टा किया, तो अल्लाह की क़ुदरत के

एक बार नबी (सल्ल॰) की ख़िदमत में बनी-ज़ुहल-बिन-शैबान के एक साहब आए, जो आद के इलाक़े के रहनेवाले थे और उन्होंने वे क़िस्से नबी (सल्ल॰) को सुनाए जो उस क़ौम के बारे में पुराने ज़माने से उनके इलाक़े के लोगों में नक़्ल होते चले आ रहे थे।

क़ुरआन के मुताबिक़ इस क़ौम के बसने की अस्ल जगह अहक़ाफ़ का इलाक़ा था जो हिजाज़, यमन और यमामा के दरमियान "अर-रबउल-ख़ाली" के दक्षिण-पश्चिम में स्थित है। यहीं से फैलकर उन लोगों ने यमन के पश्चिमी तटों और उम्मान व हज़रमौत से इराक़ तक अपनी ताक़त का सिक्का चला दिया था। तारीख़ी हैसियत से इस क़ौम के आसार दुनिया से तक़रीबन मिट चुके हैं, लेकिन दक्षिण अरब में कहीं-कहीं कुछ पुराने खण्डहर मौजूद हैं जिनका ताल्लुक़ आद से बतलाया जाता है। हज़रमौत में एक मक़ाम पर हज़रत हूद (अलैहि॰) की क़ब्र भी मशहूर है। 1837 ई॰ में ब्रिटेन की नौसेना के एक अधिकारी (James R. Wellested) को 'हिस्ने-ग़ुराब' में एक पुराना कतबा (आलेख) मिला था जिसमें हज़रत हूद (अलैहि॰) का ज़िक्र मौजूद है और इबारत से साफ़ मालूम होता है कि ये उन लोगों की तहरीर (लिखावट) है जो हूद (अलैहि॰) की शरीअत को माननेवाले थे। (और ज़्यादा तशरीह के लिए देखें— सूरा-46, अहक़ाफ़, हाशिया-25)

لَعَلَّكُمْ تُفْلِحُونَ ﴿٦٩﴾ قَالُوٓا أَجِئْتَنَا لِنَعْبُدَ ٱللَّهَ وَحْدَهُۥ وَنَذَرَ مَا كَانَ
يَعْبُدُ ءَابَآؤُنَا ۖ فَأْتِنَا بِمَا تَعِدُنَآ إِن كُنتَ مِنَ ٱلصَّٰدِقِينَ ﴿٧٠﴾ قَالَ قَدْ
وَقَعَ عَلَيْكُم مِّن رَّبِّكُمْ رِجْسٌ وَغَضَبٌ ۖ أَتُجَٰدِلُونَنِى فِىٓ أَسْمَآءٍ
سَمَّيْتُمُوهَآ أَنتُمْ وَءَابَآؤُكُم مَّا نَزَّلَ ٱللَّهُ بِهَا مِن سُلْطَٰنٍ ۚ فَٱنتَظِرُوٓا۟ إِنِّى

करिश्मों को याद रखो,[52] उम्मीद है कि कामयाब होगे।" (70) उन्होंने जवाब दिया, "क्या तू हमारे पास इसलिए आया है कि हम अकेले अल्लाह ही की इबादत (बन्दगी) करें और उन्हें छोड़ दें जिनकी इबादत हमारे बाप-दादा करते आए हैं?[53] अच्छा तो ले आ वह अज़ाब (यातना) जिसकी तू हमें धमकी देता है, अगर तू सच्चा है," (71) उसने कहा, "तुम्हारे रब की फिटकार तुमपर पड़ गई और उसका ग़ज़ब टूट पड़ा। क्या तुम मुझसे उन नामों पर झगड़ते हो जो तुमने और तुम्हारे बाप-दादा ने रख लिए हैं,[54] जिनके लिए

52. अस्ल अरबी में लफ़्ज 'आला' इस्तेमाल हुआ है जिसका मतलब नेमतें भी हैं और क़ुदरत के करिश्मे (चमत्कार) भी और (ख़ुदा की) बेहतरीन सिफ़तें और ख़ूबियाँ भी। आयत का पूरा मतलब यह है कि ख़ुदा की नेमतों और उसके एहसानों को भी याद रखो और यह भी न भूलो कि वह तुमसे ये नेमतें छीन लेने की ताक़त भी रखता है।
53. यहाँ यह बात फिर नोट करने के क़ाबिल है कि यह क़ौम भी अल्लाह के वुजूद से अनजान या उसका इनकार करनेवाली न थी और न उसे अल्लाह की इबादत से इनकार था। अस्ल में वह हज़रत हूद (अलैहि॰) की जिस बात को मानने से इनकार करती थी वह सिर्फ़ यह थी कि अकेले अल्लाह की बन्दगी की जाए, किसी दूसरे की बन्दगी उसके साथ शामिल न की जाए।
54. यानी तुम किसी को बारिश का और किसी को हवा का और किसी को दौलत का और किसी को बीमारी का रब कहते हो, हालाँकि इनमें से कोई भी हक़ीक़त में किसी चीज़ का रब नहीं है। इसकी मिसालें मौजूदा ज़माने में भी हमें मिलती हैं। किसी इनसान को लोग 'मुश्किल-कुशा' (मुश्किलें दूर करनेवाला) कहते हैं, हालाँकि मुश्किल दूर करने की कोई ताक़त उसके पास नहीं है। किसी को 'गंज-बख़्श' के नाम से पुकारते हैं, हालाँकि उसके पास कोई 'गंज' (ख़ज़ाना) नहीं कि किसी को दे। किसी के लिए 'दाता' का लफ़्ज़ बोलते हैं, हालाँकि वह किसी चीज़ का मालिक ही नहीं कि 'दाता' बन सके। किसी को 'ग़रीब-नवाज़' का नाम दे दिया गया है, हालाँकि वह बेचारा उस इक्तिदार में कोई हिस्सा नहीं रखता जिसकी बिना पर वह किसी ग़रीब को कुछ दे सके। किसी को 'ग़ौस' (फ़रियाद सुननेवाला) कहा जाता है, हालाँकि वह कोई ज़ोर नहीं रखता कि किसी की फ़रियाद को सुन सके। कहने का मतलब यह है कि हक़ीक़त में ऐसे सब नाम सिर्फ़ नाम ही हैं जिनके पीछे कोई इन नामों के मुताबिक़ ताक़त और सिफ़त

مَعَكُمْ مِّنَ الْمُنْتَظِرِيْنَ ﴿٧١﴾ فَأَنْجَيْنٰهُ وَالَّذِيْنَ مَعَهٗ بِرَحْمَةٍ مِّنَّا
وَقَطَعْنَا دَابِرَ الَّذِيْنَ كَذَّبُوْا بِاٰيٰتِنَا وَمَا كَانُوْا مُؤْمِنِيْنَ ﴿٧٢﴾ — ع ٨ ١٢

अल्लाह ने कोई सनद नहीं उतारी है?[55] अच्छा तो तुम भी इन्तिज़ार करो और मैं भी तुम्हारे साथ इन्तिज़ार करता हूँ। (72) आख़िरकार हमने अपनी मेहरबानी से हूद और उसके साथियों को बचा लिया और उन लोगों की जड़ काट दी, जो हमारी आयतों को झुठला चुके थे और ईमान लानेवाले न थे।"[56]

रखनेवाला नहीं है। जो इनके लिए झगड़ता है वह अस्ल में चन्द नामों के लिए झगड़ता है, न कि किसी हक़ीक़त के लिए।

55. यानी अल्लाह, जिसको तुम ख़ुद भी सबसे बड़ा रब कहते हो, उसने कोई दलील इस बारे में नहीं दी है कि तुम्हारे ये बनावटी ख़ुदा, ख़ुदा और रब होने का हक़ रखते हैं। उसने कहीं यह नहीं फ़रमाया कि मैंने फ़ुलाँ-फ़ुलाँ को अपनी ख़ुदाई का इतना हिस्सा दे दिया है, कोई परवाना उसने किसी को 'मुश्किल दूर करने' या ख़ज़ाने बख़्शने का नहीं दिया। तुमने आप ही अपनी अटकल और गुमान से उसकी ख़ुदाई का जितना हिस्सा जिसको चाहा है दे डाला है।

56. जड़ काट दी, यानी उनको जड़ से उखाड़ फेंका और उनका नामो-निशान तक दुनिया में बाक़ी न छोड़ा। यह बात ख़ुद अरबवालों की तारीख़ी रिवायतों से भी साबित है, और मौजूदा दौर में पुराने ज़माने से मुताल्लिक़ जो नई जानकारियाँ सामने आई हैं उनसे भी साबित होता है कि आदे-ऊला (प्रथम आद) बिलकुल तबाह हो गए और उनकी यादगारें तक दुनिया से मिट गईं। चुनाँचे अरब के इतिहासकार उन्हें अरब की ख़त्म हो जानेवाली क़ौमों में शुमार करते हैं। फिर यह बात भी अरब की तारीख़ी तौर पर तस्लीमशुदा बातों में से है कि आद का सिर्फ़ वह हिस्सा बाक़ी रहा जो हज़रत हूद (अलैहि०) की पैरवी करनेवाला था। आद की इन ही बची हुई नस्लों का नाम तारीख़ में आदे-सानिया (द्वितीय आद) है और हिस्ने-ग़ुराब का वह कतबा (आलेख) जिसका हम अभी-अभी ज़िक्र कर चुके हैं इन ही की यादगारों में से है। इस कतबे में (जिसे लगभग 18 सौ वर्ष ई० पू० की तहरीर समझा जाता है) माहिरीने-आसार (पुरातत्त्व विशेषज्ञों) ने जो इबारत पढ़ी है उसके चन्द जुमले ये हैं—

"हमने एक लम्बा समय इस क़िले में इस शान से गुज़ारा है कि हमारी ज़िन्दगी तंगी व बदहाली से दूर थी, हमारी नहरें नदी के पानी से भरी रहती थीं..... और हमारे हुक्मराँ ऐसे बादशाह थे जो बुरे ख़यालात से पाक और बिगाड़ व बुराई फैलानेवालों पर सख़्त थे, वे हम पर हूद की शरीअत के मुताबिक़ हुकूमत करते थे और बेहतरीन फ़ैसले एक किताब में लिख लिए जाते थे, और हम मोजिज़ात (चमत्कारों) और मौत के बाद दोबारा उठाए जाने पर ईमान रखते थे।"

यह इबारत आज भी क़ुरआन के इस बयान की तसदीक़ कर रही है कि आद की क़दीम शानो-शौकत और ख़ुशहाली के वारिस आख़िरकार वही लोग हुए जो हज़रत हूद (अलैहि०) पर ईमान लाए थे।

وَاِلٰى ثَمُوْدَ اَخَاهُمْ صٰلِحًا ۘ قَالَ يٰقَوْمِ اعْبُدُوا اللّٰهَ مَا لَكُمْ مِّنْ اِلٰهٍ
غَيْرُهٗ ؕ قَدْ جَآءَتْكُمْ بَيِّنَةٌ مِّنْ رَّبِّكُمْ ؕ هٰذِهٖ نَاقَةُ اللّٰهِ لَكُمْ اٰيَةً

(73) और समूद[57] की तरफ़ हमने उनके भाई सालेह को भेजा। उसने कहा, "ऐ मेरी क़ौम के भाइयो! अल्लाह की बन्दगी करो, उसके सिवा तुम्हारा कोई ख़ुदा नहीं है। तुम्हारे पास तुम्हारे रब की खुली दलील आ गई है। यह अल्लाह की ऊँटनी तुम्हारे लिए एक

57. यह अरब की सबसे पुरानी क़ौमों में से दूसरी क़ौम है जो आद के बाद सबसे ज़्यादा मशहूर व मारूफ़ है। क़ुरआन के उतरने से पहले इसके क़िस्से अरबवालों में हर किसी की ज़बान पर रहते थे। जाहिलियत के ज़माने की शेरो-शायरी और तक़रीरों में इसका ज़िक्र बहुत मिलता है। असीरिया के कतबात (आलेखों) और यूनान, स्कन्दरिया और रूम (रोम) के प्राचीन इतिहासकार और भूगोल-शास्त्री भी इसका ज़िक्र करते हैं। मसीह (अलैहि॰) की पैदाइश से कुछ अर्से पहले तक इस क़ौम के कुछ बचे हुए लोग मौजूद थे, चुनाँचे रूम के इतिहासकारों का बयान है कि ये लोग रोमी फ़ौजों में भरती हुए और नब्तियों के ख़िलाफ़ लड़े जिनसे उनकी दुश्मनी थी।

इस क़ौम के बसने की जगह उत्तर-पश्चिम अरब का वह इलाक़ा था जो आज भी 'अल-हिज्र' के नाम से जाना जाता है। मौजूदा ज़माने में मदीना और तबूक के दरमियान हिजाज़ रेलवे पर एक स्टेशन पड़ता है जिसे 'मदाइने-सालेह' कहते हैं। यही समूद की राजधानी थी और क़दीम (पुराने) ज़माने में 'हिज्र' कहलाता था। अब तक वहाँ हज़ारों एकड़ के इलाक़े में वे पत्थर की इमारतें मौजूद हैं जिनको समूद के लोगों ने पहाड़ों में तराश-तराश कर बनाया था। और उस वीरान शहर को देखकर अन्दाज़ा किया जाता है कि किसी वक़्त इस शहर की आबादी चार-पाँच लाख से कम न होगी। क़ुरआन के उतरने के ज़माने में हिजाज़ के तिजारती क़ाफ़िले इन आसारे-क़दीमा के दरमियान से गुज़रा करते थे। नबी (सल्ल॰) तबूक की जंग के मौक़े पर जब इधर से गुज़रे तो आप (सल्ल॰) ने मुसलमानों को ये इबरत की निशानियाँ दिखाई और वह सबक़ दिया जो आसारे-क़दीमा (प्राचीन-अवशेषों) से हर समझदार इनसान को हासिल करना चाहिए। एक जगह आप (सल्ल॰) ने एक कुएँ की निशानदेही करके बताया कि यही वह कुआँ है जिससे हज़रत सालेह (अलैहि॰) की ऊँटनी पानी पीती थी और मुसलमानों को हिदायत की कि सिर्फ़ इसी कुएँ से पानी लेना, बाक़ी कुओं का पानी न पीना। एक पहाड़ी दर्रे को दिखाकर आप (सल्ल॰) ने बताया कि इसी दर्रे से वह ऊँटनी पानी पीने के लिए आती थी। चुनाँचे वह मक़ाम आज भी 'फ़ज्जुन-नाक़ा' (ऊँटनीवाला दर्रा) के नाम से मशहूर है। उनके खण्डहरों में जो मुसलमान सैर करते फिर रहे थे उनको आप (सल्ल॰) ने जमा किया और उनके सामने एक ख़ुतबा दिया जिसमें समूद के अंजाम पर इबरत दिलाई और फ़रमाया कि यह उस क़ौम का इलाक़ा है जिसपर ख़ुदा का अज़ाब नाज़िल हुआ था। लिहाज़ा यहाँ से जल्दी गुज़र जाओ, यह सैर करने की जगह नहीं है, बल्कि रोने का मक़ाम है।

فَذَرُوْهَا تَأْكُلْ فِيْٓ اَرْضِ اللّٰهِ وَلَا تَمَسُّوْهَا بِسُوْٓءٍ فَيَاْخُذَكُمْ عَذَابٌ
اَلِيْمٌ ۝ وَاذْكُرُوْٓا اِذْ جَعَلَكُمْ خُلَفَآءَ مِنْۢ بَعْدِ عَادٍ وَّبَوَّاَكُمْ فِي

निशानी के तौर पर है,[58] इसलिए इसे छोड़ दो कि अल्लाह की धरती में चरती फिरे। इसको किसी बुरे इरादे से हाथ न लगाना, वरना एक दर्दनाक अज़ाब तुम्हें आ लेगा। (74) याद करो वह वक़्त जब अल्लाह ने आद की क़ौम के बाद तुम्हें उसका जानशीन

58. ज़ाहिर इबारत से साफ़ महसूस होता है कि पहले जुमले में अल्लाह की जिस खुली दलील का ज़िक्र किया गया है उससे मुराद यही ऊँटनी है जिसे इस दूसरे जुमले में लफ़्ज़ 'निशानी' कहा गया है। सूरा-26 शुअरा, आयत 154 से 158 में बताया गया है कि समूदवालों ने ख़ुद एक ऐसी निशानी का हज़रत सालेह (अलैहि॰) से मुतालबा किया था, जो इस बात पर खुली दलील हो कि वे अल्लाह की तरफ़ से मुक़र्रर किए हुए हैं और उसी के जवाब में हज़रत सालेह (अलैहि॰) ने ऊँटनी को पेश किया था। इससे यह बात तो पूरी तरह साबित हो जाती है कि ऊँटनी का ज़ाहिर होना मोजिज़े (चमत्कार) के तौर पर था और यह उसी तरह के मोजिज़ों में से था जो कुछ पैग़म्बरों ने अपनी पैग़म्बरी के सुबूत में इनकार करनेवालों की माँग पर पेश किए हैं। साथ ही यह बात भी उस ऊँटनी की, मोजिज़े के तौर पर, पैदाइश पर दलील है कि हज़रत सालेह (अलैहि॰) ने उसे पेश करके इनकार करनेवालों को धमकी दी कि अब इस ऊँटनी की जान के साथ तुम्हारी ज़िन्दगी जुड़ी है। यह आज़ादी के साथ तुम्हारी ज़मीनों में चरती फिरेगी। एक दिन यह अकेली पानी पिएगी और दूसरे दिन पूरी क़ौम के जानवर पिएँगे। और अगर तुमने इसे हाथ लगाया तो अचानक तुमपर ख़ुदा का अज़ाब टूट पड़ेगा। ज़ाहिर है कि इस शान के साथ वही चीज़ पेश की जा सकती थी जिसका ग़ैर-मामूली होना लोगों ने अपनी आँखों से देख लिया हो। फिर यह बात कि एक लम्बे समय तक ये लोग उसके आज़ादी के साथ चरते-फिरने को और इस बात को कि एक दिन अकेली वह पानी पिए और दूसरे दिन उन सब के जानवर पिएँ, न चाहते हुए भी बरदाश्त करते रहे और आख़िर बड़े मशवरों और साज़िशों के बाद उन्होंने उसे क़त्ल किया, जबकि हज़रत सालेह के पास कोई ताक़त न थी जिसका उन्हें कोई डर होता, इस हक़ीक़त पर एक और दलील है कि वे लोग उस ऊँटनी से डरे हुए थे और जानते थे कि उसके पीछे ज़रूर कोई ज़ोर है जिसके बल पर वह हमारे दरमियान दनदनाती फिरती है। मगर क़ुरआन इस बात की कोई तफ़सील बयान नहीं करता कि यह ऊँटनी कैसी थी और किस तरह वुजूद में आई। किसी सहीह हदीस में भी उसके मोजिज़े के तौर पर पैदा होने की कैफ़ियत बयान नहीं की गई है। इसलिए उन रिवायतों को तसलीम करना कुछ ज़रूरी नहीं जो तफ़सीर लिखनेवालों ने उसकी पैदाइश की कैफ़ियत के बारे में बयान की हैं। लेकिन यह बात कि वह किसी-न-किसी तौर पर मोजिज़े की हैसियत रखती थी, क़ुरआन से साबित है।

الْاَرْضِ تَتَّخِذُوْنَ مِنْ سُهُوْلِهَا قُصُوْرًا وَّتَنْحِتُوْنَ الْجِبَالَ بُيُوْتًا ۚ
فَاذْكُرُوْٓا اٰلَآءَ اللّٰهِ وَلَا تَعْثَوْا فِي الْاَرْضِ مُفْسِدِيْنَ ۝٧٤ قَالَ الْمَلَاُ
الَّذِيْنَ اسْتَكْبَرُوْا مِنْ قَوْمِهٖ لِلَّذِيْنَ اسْتُضْعِفُوْا لِمَنْ اٰمَنَ مِنْهُمْ
اَتَعْلَمُوْنَ اَنَّ صٰلِحًا مُّرْسَلٌ مِّنْ رَّبِّهٖ ۭ قَالُوْٓا اِنَّا بِمَآ اُرْسِلَ بِهٖ
مُؤْمِنُوْنَ ۝٧٥ قَالَ الَّذِيْنَ اسْتَكْبَرُوْٓا اِنَّا بِالَّذِيْٓ اٰمَنْتُمْ بِهٖ كٰفِرُوْنَ ۝٧٦
فَعَقَرُوا النَّاقَةَ وَعَتَوْا عَنْ اَمْرِ رَبِّهِمْ وَقَالُوْا يٰصٰلِحُ ائْتِنَا بِمَا تَعِدُنَآ

बनाया और तुमको ज़मीन में यह दरजा दिया कि आज तुम उसके हमवार (समतल) मैदानों में आलीशान महल बनाते और उसके पहाड़ों को मकानों की शक्ल में काटते-छाँटते हो।[59] तो उसकी क़ुदरत के करिश्मों से ग़ाफ़िल न हो जाओ और ज़मीन में बिगाड़ न पैदा करो।"[60]

(75) उसकी क़ौम के सरदारों ने जो बड़े बने हुए थे, कमज़ोर तबक़े के उन लोगों से जो ईमान ले आए थे, कहा, "क्या तुम वाक़ई यह जानते हो कि सालेह अपने रब का पैग़म्बर है?" उन्होंने जवाब दिया, "बेशक जिस पैग़ाम के साथ वह भेजा गया है, उसे हम मानते हैं।" (76) उन बड़ाई के दावेदारों ने कहा, "जिस चीज़ को तुमने माना है, हम उसके इनकारी हैं।"

(77) फिर उन्होंने उस ऊँटनी को मार डाला[61] और पूरी ढिठाई के साथ अपने रब

59. समूद की यह कारीगरी वैसी ही थी जैसी भारत में अजन्ता, एलोरा और कुछ दूसरी जगहों पर पाई जाती है, यानी वे पहाड़ों को तराशकर उसके अन्दर बड़ी-बड़ी शानदार इमारतें बनाते थे, जैसा कि ऊपर बयान हुआ। मदाइने-सालेह में अब तक उनकी कुछ इमारतें ज्यों-की-त्यों मौजूद हैं और इनको देखकर अन्दाज़ा होता है कि इस क़ौम ने इंजीनियरी में कितनी हैरतअंगेज़ तरक़्क़ी की थी।

60. यानी आद के अंजाम से सबक़ लो। जिस ख़ुदा की क़ुदरत ने उस फ़सादी और बिगाड़ फैलानेवाली क़ौम को बरबाद करके तुम्हें उसकी जगह सरबुलन्द किया वही ख़ुदा तुम्हें बरबाद करके तुम्हारी जगह दूसरों को ला सकता है, अगर तुम भी आद की तरह फ़साद व बिगाड़ फैलानेवाले बन जाओ। (तशरीह के लिए देखें—हाशिया-52)

61. हालाँकि ऊँटनी को मारा एक शख़्स ने था, जैसा कि सूरा-54 क़मर और सूरा-91 शम्स में

اِنْ كُنْتَ مِنَ الْمُرْسَلِيْنَ ۝٧٧ فَاَخَذَتْهُمُ الرَّجْفَةُ فَاَصْبَحُوْا فِيْ
دَارِهِمْ جٰثِمِيْنَ ۝٧٨ فَتَوَلّٰى عَنْهُمْ وَقَالَ يٰقَوْمِ لَقَدْ اَبْلَغْتُكُمْ رِسَالَةَ
رَبِّيْ وَنَصَحْتُ لَكُمْ وَلٰكِنْ لَّا تُحِبُّوْنَ النّٰصِحِيْنَ ۝٧٩ وَلُوْطًا اِذْ قَالَ
لِقَوْمِهٖٓ اَتَاْتُوْنَ الْفَاحِشَةَ مَا سَبَقَكُمْ بِهَا مِنْ اَحَدٍ مِّنَ الْعٰلَمِيْنَ ۝٨٠
اِنَّكُمْ لَتَاْتُوْنَ الرِّجَالَ شَهْوَةً مِّنْ دُوْنِ النِّسَآءِ ۭ بَلْ اَنْتُمْ قَوْمٌ

के हुक्म की ख़िलाफ़वर्ज़ी कर डाली और सालेह से कह दिया कि “ले आ वह अज़ाब जिसकी तू हमें धमकी देता है, अगर तू वाक़ई पैग़म्बरों में से है।” (78) आख़िरकार एक दहला देनेवाली आफ़त[62] ने उन्हें आ लिया और वे अपने घरों में औंधे पड़े-के-पड़े रह गए। (79) और सालेह यह कहता हुआ उनकी बस्तियों से निकल गया कि “ऐ मेरी क़ौम! मैंने अपने रब का पैग़ाम तुझे पहुँचा दिया और मैंने तेरा बहुत भला चाहा, मगर मैं क्या करूँ कि तुझे अपना भलाई चाहनेवाला पसन्द ही नहीं है।”

(80) और लूत को हमने पैग़म्बर बनाकर भेजा। फिर याद करो जब उसने अपनी क़ौम[63] से कहा, “क्या तुम ऐसे बेशर्म हो गए हो कि वह गन्दा काम करते हो जो तुमसे पहले दुनिया में किसी ने नहीं किया? (81) तुम औरतों को छोड़कर मर्दों से अपनी

बयान हुआ है, लेकिन चूँकि पूरी क़ौम उस मुजरिम के पीछे थी और वह दरअस्ल इस जुर्म में क़ौम जो चाहती थी उसका एक ज़रिआ था इसलिए इलज़ाम पूरी क़ौम पर लगाया गया है। हर वह गुनाह जो क़ौम की ख़ाहिश के मुताबिक़ किया जाए, या जिसके करने को क़ौम की मरज़ी और पसन्दीदगी हासिल हो, एक क़ौमी गुनाह है, चाहे उसे करनेवाला अकेला एक शख़्स हो। सिर्फ़ यही नहीं, बल्कि क़ुरआन कहता है कि जो गुनाह क़ौम के दरमियान एलानिया किया जाए और क़ौम उसे गवारा करे वह भी क़ौमी गुनाह है।

62. इस आफ़त को यहाँ 'रज्फ़ा' (बेचैन करने, हिला मारनेवाली) कहा गया है और दूसरी जगहों पर इसी के लिए 'सैहा' (चीख़), 'साइक़ा' (बिजली का कड़ाका) और 'ताग़िया' (बहुत ज़ोर की आवाज़) के अलफ़ाज़ इस्तेमाल किए गए हैं।

63. यह क़ौम उस इलाक़े में रहती थी जिसे आजकल ट्रांस जार्डन (Trans Jordan) कहा जाता है और इराक़ व फ़िलस्तीन के बीच स्थित है। बाइबल में इस क़ौम की राजधानी का नाम 'सदूम' बताया गया है जो या तो मृतसागर (Dead Sea) के क़रीब किसी जगह स्थित था या अब

مُّسْرِفُوْنَ ۞ وَمَا كَانَ جَوَابَ قَوْمِهٖٓ اِلَّآ اَنْ قَالُوْٓا اَخْرِجُوْهُمْ مِّنْ

ख़ाहिश पूरी करते हो।[64] हक़ीक़त यह है कि तुम बिलकुल ही हद से गुज़र जानेवाले लोग हो।" (82) मगर उसकी क़ौम का जवाब इसके सिवा कुछ न था कि "निकालो इन लोगों

मृतसागर में डूब चुका है। 'तलमूद' में लिखा है कि 'सदूम' के अलावा उनके चार बड़े-बड़े शहर और भी थे और उन शहरों के बीच का इलाक़ा ऐसा हरा-भरा था कि मीलों तक बस एक बाग़ ही बाग़ था जिसके जमाल (सौन्दर्य) को देखकर इनसान पर मस्ती छाने लगती थी। मगर आज उस क़ौम का नामो-निशान दुनिया से बिलकुल मिट चुका है और यह भी तय नहीं है कि इसकी बस्तियाँ ठीक किस जगह पर बसी हुई थीं। अब सिर्फ़ मृतसागर ही उसकी एक यादगार बाक़ी रह गई है जिसे आज तक 'बहरे-लूत' (लूत-समुद्र) कहा जाता है।

हज़रत लूत (अलैहि.) हज़रत इबराहीम (अलैहि.) के भतीजे थे। अपने चचा के साथ इराक़ से निकले और कुछ मुद्दत तक शाम (सीरिया) व फ़िलस्तीन और मिस्र में घूम-फिरकर दावत व तबलीग़ का तजरिबा हासिल करते रहे। फिर बाक़ायदा (स्थायी रूप से) पैग़म्बरी के मंसब पर मुक़र्रर होकर उस बिगड़ी हुई क़ौम की इस्लाह (सुधार) पर लग गए। सदूमवालों को उनकी क़ौम इस पहलू से कहा गया है कि शायद उनका रिश्तेदारी का ताल्लुक़ इस क़ौम से होगा।

यहूदियों की फेर-बदल की हुई बाइबल में हज़रत लूत की सीरत (जीवनी) पर जहाँ और बहुत-से सियाह धब्बे लगाए गए हैं यहाँ एक धब्बा यह भी है कि वे हज़रत इबराहीम (अलैहि.) से लड़कर सुदूम के इलाक़े में चले गए थे (उत्पत्ति, 13/1-12), मगर क़ुरआन इस ग़लत बयानी को ग़लत ठहराता है। उसका बयान यह है कि अल्लाह ने उन्हें रसूल बनाकर उस क़ौम की तरफ़ भेजा था।

64. क़ुरआन में दूसरी जगहों पर इस क़ौम के कुछ और अख़लाक़ी जुर्मों का भी ज़िक्र आया है, मगर यहाँ उसके सबसे बड़े जुर्म के बयान पर बस किया गया है, जिसकी वजह से ख़ुदा का अज़ाब उसपर उतरा।

यह क़ाबिले-नफ़रत (घृणित) काम जिसकी वजह से यह क़ौम हमेशा के लिए मशहूर हो गई, इसे करने से तो बदकिरदार इनसान कभी न माने, लेकिन यह गर्व सिर्फ़ यूनान को हासिल है कि उसके फ़ल्सफ़ियों (दार्शनिकों) ने इस घिनौने जुर्म को अख़लाक़ी ख़ूबी के मर्तबे तक उठाने की कोशिश की और उसके बाद जो कसर बाक़ी रह गई थी उसे जदीद मग़रिबी तहज़ीब (आधुनिक पश्चिमी संस्कृति) ने पूरा किया कि खुल्लम-खुल्ला उसके हक़ में ज़बरदस्त प्रोपेगण्डा किया गया, यहाँ तक कि कुछ देशों की क़ानून बनानेवाली मजलिसों ने उसे बाक़ायदा जाइज़ ठहरा दिया। हालाँकि यह बिलकुल एक खुली हक़ीक़त है कि हमजिन्सी ताल्लुक़ (समलैंगिकता) क़तई तौर पर फ़ितरत के ख़िलाफ़ है। अल्लाह तआला ने तमाम जानदारों में नर-मादा का फ़र्क़ सिर्फ़ नस्ल को बाक़ी रखने और उसे बढ़ाने के लिए रखा है और इनसानों के अन्दर इसका एक और मक़सद यह भी है कि दोनों सिनफ़ों के लोग (यानी मर्द-औरतें) मिलकर एक ख़ानदान वुजूद में लाएँ

قَرْيَتِكُمْ ۚ إِنَّهُمْ أُنَاسٌ يَتَطَهَّرُونَ ﴿٨٢﴾ فَأَنجَيْنَاهُ وَأَهْلَهُ إِلَّا امْرَأَتَهُ

को अपनी बस्तियों से, बड़े पाक-साफ़ बनते हैं ये।[65] (83) आख़िरकार हमने लूत और

और उससे तमद्दुन (सामाजिक जीवन) की बुनियाद पड़े। इसी मक़सद के लिए मर्द और औरत की दो अलग सिनफ़ें (जातियाँ) बनाई गई हैं, उनमें एक-दूसरे के लिए सिनफ़ी कशिश (यौन-आकर्षण) पैदा की गई है, उनकी जिस्मानी बनावट और नफ़सियाती तरकीब (मनोवैज्ञानिक संरचना) एक-दूसरे के जवाब में मक़ासिदे-ज़ौजियत (दाम्पत्य-उद्देश्यों) के लिए बिलकुल मुनासिब बनाई गई है और उनके एक-दूसरे के प्रति बाहम मिलाप और समरस होने में वह लज़्ज़त रखी गई है जो फ़ितरत के मक़सद को पूरा करने के लिए एक ही वक़्त में इनसान को उस काम पर उभारने और उसकी प्रेरणा देनेवाली भी है और उस ख़िदमत का बदला भी। मगर जो शख़्स फ़ितरत की इस स्कीम के ख़िलाफ़ अमल करके अपने हमजिंस (समलिंगी) से शहवानी लज़्ज़त हासिल करता है वह एक ही वक़्त में कई जुर्मों का करनेवाला होता है। सबसे पहला जुर्म यह है कि वह अपनी और उस शख़्स की जिसके साथ बदकारी (संभोग) करता है उसकी फ़ितरी बनावट और नफ़सियाती तरकीब से जंग करता है और उसमें एक बड़ा बिगाड़ पैदा कर देता है, जिससे दोनों के जिस्म, मन और अख़लाक़ पर बहुत बुरे असरात पड़ते हैं। दूसरा यह कि वह फ़ितरत (प्रकृति) के साथ ग़द्दारी और ख़ियानत करता है, क्योंकि फ़ितरत ने जिस लज़्ज़त को जाति और समाज की ख़िदमत का बदला बनाया था और जिसके हासिल करने को फ़र्ज़, ज़िम्मेदारियों, और हक़ (अधिकारों) के साथ जोड़ दिया था वह उसे किसी ख़िदमत के करने और किसी फ़र्ज़ और हक़ को अदा करने और किसी ज़िम्मेदारी को निभाए बग़ैर चुरा लेता है। तीसरा यह कि वह इनसानी समाज के साथ खुली बेईमानी और बद्दियानती करता है कि समाज के क़ायम किए हुए तमद्दुनी इदारों (सामाजिक संस्थाओं) से फ़ायदा तो उठा लेता है मगर जब उसकी अपनी बारी आती है तो हक़ों और फ़र्ज़ों और ज़िम्मेदारियों का बोझ उठाने के बजाए अपनी क़ुव्वतों को पूरी ख़ुदग़र्ज़ी के साथ ऐसे तरीक़े पर इस्तेमाल करता है जो इज्तिमाई तमद्दुन (सामाजिक-व्यवस्था) व अख़्लाक़ के लिए सिर्फ़ बे-फ़ायदा ही नहीं, बल्कि सीधे-सीधे नुक़सानदेह है। वह अपने आपको नस्ल और ख़ानदान की ख़िदमत के लिए निकम्मा बनाता है, अपने साथ कम-से-कम एक मर्द को ग़ैर-फ़ितरी ज़नानेपन में फंसा देता है और कम-से-कम दो औरतों के लिए भी जिंसी (यौन) भटकाव और अख़लाक़ी पस्ती का दरवाज़ा खोल देता है।

65. इससे मालूम हुआ कि ये लोग सिर्फ़ बेशर्म और बदकिरदार और बद-अख़लाक़ ही न थे, बल्कि अख़लाक़ी पस्ती में इस हद तक गिर गए थे कि उन्हें अपने दरमियान कुछ नेक इनसानों और नेकी की तरफ़ बुलानेवालों और बुराई पर बोलनेवालों का वुजूद तक गवारा न था। वे बुराई में इतने डूब चुके थे कि सुधार के लिए उठनेवाली आवाज़ को भी बरदाश्त न कर सकते थे और पाकी और अच्छाई के उस थोड़े से हिस्से को भी निकाल देना चाहते थे जो उनके घिनौने माहौल में बाक़ी रह गया था। इसी हद को पहुँचने के बाद अल्लाह तआला की तरफ़ से उन्हें

كَانَتْ مِنَ الْغٰبِرِيْنَ ﴿٨٣﴾ وَاَمْطَرْنَا عَلَيْهِمْ مَّطَرًا ۖ فَانْظُرْ كَيْفَ كَانَ
عَاقِبَةُ الْمُجْرِمِيْنَ ﴿٨٤﴾

ع ١٢
١٤

उसके घरवालों को उसकी बीवी को छोड़कर, जो पीछे रह जानेवालों[66] में थी, बचाकर निकाल दिया (84) और उस क़ौम पर बरसाई एक बारिश,[67] फिर देखो कि उन मुजरिमों का क्या अंजाम हुआ।[68]

जड़ से उखाड़ देने का फ़ैसला किया गया, क्योंकि जिस क़ौम की इज्तिमाई ज़िम्मेदारी में पाकीज़गी का ज़रा-सा हिस्सा भी बाक़ी न रह सके, फिर उसके ज़मीन पर ज़िन्दा रहने की कोई वजह नहीं रहती। सड़े हुए फलों के टोकरे में जब तक कुछ अच्छे फल मौजूद हों उस वक़्त तक तो टोकरे को रखा जा सकता है, मगर जब वे फल भी उसमें से निकल जाएँ तो फिर उस टोकरे का इस्तेमाल सिर्फ़ यह रह जाता है कि उसे किसी कूड़े के ढेर पर उलट दिया जाए।

66. क़ुरआन में दूसरी जगहों पर बताया गया है कि हज़रत लूत (अलैहि०) की यह बीवी, जो शायद उसी क़ौम की बेटी थी, अपने हक़ के न माननेवाले रिश्तेदारों की तरफ़दार रही और आख़िर वक़्त तक उसने उनका साथ न छोड़ा। इसलिए अज़ाब से पहले जब अल्लाह तआला ने हज़रत लूत और उनके ईमानदार साथियों को हिजरत कर जाने का हुक्म दिया तो हिदायत कर दी कि उस औरत को साथ न लिया जाए।

67. बारिश से मुराद यहाँ पानी की बारिश नहीं, बल्कि पत्थरों की बारिश है जैसा कि दूसरी जगहों पर क़ुरआन मजीद में बयान हुआ है। साथ ही यह भी क़ुरआन में बयान हुआ है कि उनकी बस्तियाँ उलट दी गईं और उन्हें तलपट कर दिया गया।

68. यहाँ और दूसरे मक़ामात पर क़ुरआन मजीद में सिर्फ़ यह बताया गया है कि लूत (अलैहि०) की क़ौम जिस बुराई (समलैंगिकता) में मुब्तला थी, वह एक बदतरीन गुनाह है जिसपर एक क़ौम अल्लाह तआला के ग़ज़ब (प्रकोप) में गिरफ़्तार हुई। उसके बाद यह बात हमें नबी (सल्ल०) की रहनुमाई से मालूम हुई कि यह एक ऐसा जुर्म है जिससे समाज को पाक रखने की कोशिश करना इस्लामी हुकूमत की ज़िम्मेदारियों में से है और यह कि इस जुर्म के करनेवालों को सख़्त सज़ा दी जानी चाहिए। हदीस में मुख़्तलिफ़ रिवायतें नबी (सल्ल०) के हवाले से बयान की गई हैं, उनमें से किसी में हमको ये अलफ़ाज़ मिलते हैं, "(समलैंगिक कर्म) करनेवाले और जिसके साथ (यह कर्म) किया जाए, दोनों को क़त्ल की सज़ा दो।" किसी में इस हुक्म पर ये अलफ़ाज़ और हैं "…. शादीशुदा हों या ग़ैर-शादी-शुदा।" और किसी में है, "ऊपर और नीचेवाला, दोनों पत्थर मार-मारकर मार डाले जाएँ।" लेकिन चूँकि नबी (सल्ल०) के ज़माने में ऐसा कोई मुक़द्दमा पेश नहीं हुआ, इसलिए क़तई तौर पर यह बात तय न हो सकी कि इसकी सज़ा किस तरह दी जाए। सहाबा किराम (रज़ि०) में से हज़रत अली (रज़ि०) की राय यह है कि मुजरिम तलवार से क़त्ल किया जाए और दफ़्न करने के बजाए उसकी लाश जलाई जाए। यही राय

وَإِلَىٰ مَدْيَنَ أَخَاهُمْ شُعَيْبًا ۗ قَالَ يَٰقَوْمِ اعْبُدُوا اللَّهَ مَا لَكُم مِّنْ

(85) और मदयनवालों [69] की तरफ़ हमने उनके भाई शुऐब को भेजा। उसने कहा,

हज़रत अबू-बक्र (रज़ि.) की भी है। हज़रत उमर (रज़ि.) और हज़रत उसमान (रज़ि.) की राय यह है कि किसी पुरानी इमारत के नीचे उन्हें खड़ा करके वह इमारत उनपर गिरा दी जाए। इब्ने-अब्बास (रज़ि.) का फ़तवा यह है कि बस्ती की सबसे ऊँची इमारत पर से उनको सिर के बल फेंक दिया जाए और ऊपर से पत्थर बरसाए जाएँ। फ़ुक़हा (इस्लामी धर्म-शास्त्रियों) में से इमाम शाफ़िई कहते हैं कि हमजिंसी के अमल (समलैंगिक क्रिया) के दोनों हिस्सेदारों को क़त्ल करना वाजिब है चाहे वे शादीशुदा हों या ग़ैर-शादीशुदा। शअ्बी, ज़ुहरी, मालिक और अहमद (रह.) कहते हैं कि उनकी सज़ा 'रज्म' (पत्थर मार-मारकर मार डालना) है। सईद-बिन-मुसय्यिब, अता, हसन बसरी, इबराहीम नख़ई, सुफ़ियान सौरी और औज़ाई (रह.) की राय में इस जुर्म पर वही सज़ा दी जाएगी जो ज़िना (व्यभिचार) की सज़ा है, यानी ग़ैर-शादीशुदा को सौ कोड़े मारे जाएँगे और देश निकाला कर दिया जाएगा और शादीशुदा को 'रज्म' किया जाएगा। इमाम अबू-हनीफ़ा (रह.) की राय में उसपर कोई 'हद' (क़ुरआन व हदीस के मुताबिक़ साफ़-साफ़ सज़ा) मुक़र्रर नहीं है बल्कि, यह घिनौना काम 'ताज़ीर' का हक़दार है, यानी जैसे हालात व ज़रूरतें हों उनके लिहाज़ से कोई इबरतनाक सज़ा दी जा सकती है। इसकी ताईद में इमाम शाफ़िई की भी एक राय किताबों में लिखी है।

मालूम रहे कि आदमी के लिए यह बात बिलकुल हराम है कि वह ख़ुद अपनी बीवी के साथ क़ौमे-लूत का अमल (गुदा मैथुन) करे। अबू-दाऊद में नबी (सल्ल.) का यह इरशाद बयान हुआ है कि "औरत के साथ यह कर्म (गुदा मैथुन) करनेवाला लानती है।" इब्ने-माजा और मुसनद अहमद में नबी (सल्ल.) के ये अलफ़ाज़ लिखे हैं, "अल्लाह उस मर्द की तरफ़ हरगिज़ रहमत की नज़र से न देखेगा जो औरत के साथ ऐसा कर्म (गुदा मैथुन) करे।" तिरमिज़ी में नबी (सल्ल.) का यह फ़रमाना है कि "जिसने हैज़वाली औरत से हमबिस्तरी की, या औरत के साथ क़ौमे-लूत का अमल (गुदा मैथुन) किया, या काहिन (ज्योतिषी) के पास गया और उसकी पेशनगोइयों (भविष्यवाणियों) को सच समझा, उसने उस तालीम का इनकार किया जो मुहम्मद (सल्ल.) पर नाज़िल हुई है।"

69. मदयन का अस्ल इलाक़ा हिजाज़ के उत्तर-पश्चिम और फ़िलस्तीन के दक्षिण में लाल सागर और अक़बा की खाड़ी के किनारे पर स्थित था, मगर प्रायद्वीप 'सीना' के पूर्वी तट पर भी उसका कुछ सिलसिला फैला हुआ था। यह एक बड़ी तिजारत-पेशा क़ौम थी। पुराने ज़माने में जो तिजारती शाहराह (व्यापारिक राजमार्ग) लाल सागर के किनारे यमन से मक्का और 'यम्बूअ्' होती हुई शाम (सीरिया) तक जाती थी, और एक दूसरी तिजारती शाहराह जो इराक़ से मिस्र की तरफ़ जाती थी, उसके ठीक चौराहे पर इस क़ौम की बस्तियाँ आबाद थीं। इसी वजह से अरब का बच्चा-बच्चा मदयन से वाक़िफ़ था और उसके मिट जाने के बाद भी अरब में उसकी

اِلٰهٍ غَيْرُهٗ ؕ قَدْ جَآءَتْكُمْ بَيِّنَةٌ مِّنْ رَّبِّكُمْ فَاَوْفُوا الْكَيْلَ وَالْمِيْزَانَ
وَلَا تَبْخَسُوا النَّاسَ اَشْيَآءَهُمْ وَلَا تُفْسِدُوْا فِي الْاَرْضِ بَعْدَ

"ऐ क़ौम के भाइयो! अल्लाह की बन्दगी करो, उसके सिवा तुम्हारा कोई ख़ुदा नहीं है, तुम्हारे पास तुम्हारे रब की साफ़ रहनुमाई आ गई है, इसलिए नाप और तौल पूरे करो, लोगों को उनकी चीज़ों में घाटा न दो,[70] और ज़मीन में बिगाड़ न पैदा करो जबकि

शोहरत बरक़रार रही; क्योंकि अरबों के तिजारती क़ाफ़िले मिस्र और सीरिया की तरफ़ जाते हुए रात-दिन उसके आसारे-क़दीमा (प्राचीन अवशेषों) के दरमियान से गुज़रते थे।

मदयन के लोगों के बारे में एक और ज़रूरी बात, जिसको अच्छी तरह समझ लेना चाहिए, यह है कि इन लोगों का ताल्लुक़ अस्ल में हज़रत इबराहीम (अलैहि.) के बेटे 'मिदयान' से जोड़ा जाता है जो उनकी तीसरी बीवी 'क़तूरा' के पेट से थे। पुराने ज़माने के क़ायदे के मुताबिक़ जो लोग किसी बड़े आदमी के साथ जुड़ जाते थे वे धीरे-धीरे उसी की आल-औलाद में गिने जाते और बनी-फ़ुलाँ (यानी फ़ुलाँ की औलाद) कहलाने लगते थे। इसी क़ायदे पर अरब की आबादी का बड़ा हिस्सा बनी-इसमाईल (इसमाईल की औलाद) कहलाया। और याक़ूब (अलैहि.) की औलाद के ज़रिए इस्लाम क़बूल करनेवाले लोग सब के सब बनी-इसराईल (इसराईल की औलाद) के जामे (व्यापक) नाम के तहत खप गए। इसी तरह मदयन के इलाक़े की सारी आबादी भी जो इबराहीम (अलैहि.) के बेटे मिदयान के तहत आई बनी-मिदयान कहलाई और उनके मुल्क का नाम ही मदयन या मदयान मशहूर हो गया। इस तारीख़ी (ऐतिहासिक) हक़ीक़त को जान लेने के बाद यह गुमान करने की कोई वजह बाक़ी नहीं रहती कि इस क़ौम को सच्चे दीन (सत्य-धर्म) की आवाज़ पहली बार हज़रत शुऐब (अलैहि.) के ज़रिए से पहुँची थी। हक़ीक़त में बनी-इसराईल की तरह शुरू में वे भी मुसलमान (यानी ख़ुदा के दीन को माननेवाले) ही थे और शुऐब (अलैहि.) के पैग़म्बर बनाए जाने के वक़्त उनकी हालत एक बिगड़ी हुई मुसलमान क़ौम की-सी थी जैसी मूसा (अलैहि.) के पैग़म्बर बनाए जाने के वक़्त बनी-इसराईल की हालत थी। हज़रत इबराहीम (अलैहि.) के बाद छः-सात सौ बरस तक मुशरिक (अनेकेश्वरवादी) और बदअख़्लाक़ क़ौमों के दरमियान रहते-रहते ये लोग शिर्क भी सीख गए थे और बदअख़्लाक़ियों में भी मुब्तला हो गए, मगर उसके बावजूद ईमान का दावा और उसपर फ़ख़्र (गर्व) बरक़रार था।

70. इससे मालूम हुआ कि इस क़ौम में दो बड़ी ख़राबियाँ पाई जाती थीं, एक शिर्क, दूसरे तिजारती मामलों में बेईमानी। और इन्हीं दोनों चीज़ों के सुधार के लिए हज़रत शुऐब (अलैहि.) पैग़म्बर बनाकर भेजे गए थे।

اِصۡلَاحِهَا ؕ ذٰلِكُمۡ خَيۡرٌ لَّكُمۡ اِنۡ كُنۡتُمۡ مُّؤۡمِنِيۡنَ ۚ ﴿۸۵﴾ وَلَا تَقۡعُدُوۡا بِكُلِّ
صِرَاطٍ تُوۡعِدُوۡنَ وَتَصُدُّوۡنَ عَنۡ سَبِيۡلِ اللّٰهِ مَنۡ اٰمَنَ بِهٖ وَتَبۡغُوۡنَهَا
عِوَجًا ۚ وَاذۡكُرُوۡۤا اِذۡ كُنۡتُمۡ قَلِيۡلًا فَكَثَّرَكُمۡ ۖ وَانۡظُرُوۡا كَيۡفَ كَانَ
عَاقِبَةُ الۡمُفۡسِدِيۡنَ ﴿۸۶﴾ وَاِنۡ كَانَ طَآئِفَةٌ مِّنۡكُمۡ اٰمَنُوۡا بِالَّذِىۡۤ
اُرۡسِلۡتُ بِهٖ وَطَآئِفَةٌ لَّمۡ يُؤۡمِنُوۡا فَاصۡبِرُوۡا حَتّٰى يَحۡكُمَ اللّٰهُ بَيۡنَنَا ۚ
وَهُوَ خَيۡرُ الۡحٰكِمِيۡنَ ﴿۸۷﴾

उसका सुधार हो चुका है।[71] इसी में तुम्हारी भलाई है अगर तुम वाक़ई ईमानवाले हो।[72] (86) और (ज़िन्दगी के) हर रास्ते पर बटमार बनकर न बैठ जाओ कि लोगों को ख़ौफ़ज़दा करने और ईमान लानेवालों को अल्लाह के रास्ते से रोकने लगो और सीधी राह को टेढ़ा करने पर उतर आओ। याद करो वह ज़माना जबकि तुम थोड़े थे, फिर अल्लाह ने तुम्हें बहुत कर दिया, और आँखें खोलकर देखो कि दुनिया में बिगाड़ पैदा करनेवालों का क्या अंजाम हुआ है। (87) अगर तुममें से एक गरोह उस तालीम पर, जिसके साथ मैं भेजा गया हूँ, ईमान लाता है और दूसरा ईमान नहीं लाता, तो सब्र (धैर्य) के साथ देखते रहो, यहाँ तक कि अल्लाह हमारे बीच फ़ैसला कर दे, और वही सबसे बेहतर फ़ैसला करनेवाला है।"

71. इस जुमले का वाज़ेह और साफ़ मतलब इसी सूरा आराफ़ के हाशिया नं. 44, 45 में गुज़र चुका है। यहाँ ख़ास तौर से हज़रत शुऐब (अलैहि.) की इस बात का इशारा इस तरफ़ है कि सच्चे दीन और अच्छे अख़लाक़ पर ज़िन्दगी का जो निज़ाम पिछले पैग़म्बरों की हिदायत व रहनुमाई में क़ायम हो चुका था, अब तुम उसे अपनी एतिक़ादी (आस्था सम्बन्धी) गुमराहियों और अख़लाक़ी बदकारियों से ख़राब न करो।

72. इस जुमले से साफ़ ज़ाहिर होता है कि ये लोग खुद ईमान के दावेदार थे। जैसा कि ऊपर हम इशारा कर चुके हैं, ये अस्ल में बिगड़े हुए मुसलमान थे और एतिक़ादी व अख़लाक़ी बिगाड़ में मुब्तला हो जाने के बावजूद उनके अन्दर न सिर्फ़ ईमान का दावा बाक़ी था, बल्कि उसपर उन्हें फ़ख़्र भी था। इसी लिए हज़रत शुऐब (अलैहि.) ने फ़रमाया कि अगर तुम ईमानवाले हो तो तुम्हारे नज़दीक ख़ैर और भलाई इस बात में होनी चाहिए कि तुम सच्चाई और ईमानदारी को अपनाओ और भलाई और बुराई को जाँचने की तुम्हारी कसौटी उन दुनियापरस्तों से अलग होनी चाहिए जो ख़ुदा और आख़िरत को नहीं मानते।

قَالَ الْمَلَأُ الَّذِينَ اسْتَكْبَرُوا مِن قَوْمِهِ لَنُخْرِجَنَّكَ يَٰشُعَيْبُ
وَالَّذِينَ آمَنُوا مَعَكَ مِن قَرْيَتِنَا أَوْ لَتَعُودُنَّ فِي مِلَّتِنَا ۚ قَالَ أَوَلَوْ
كُنَّا كَارِهِينَ ﴿٨٨﴾ قَدِ افْتَرَيْنَا عَلَى اللَّهِ كَذِبًا إِنْ عُدْنَا فِي مِلَّتِكُم
بَعْدَ إِذْ نَجَّانَا اللَّهُ مِنْهَا ۚ وَمَا يَكُونُ لَنَا أَن نَّعُودَ فِيهَا إِلَّا أَن
يَشَاءَ اللَّهُ رَبُّنَا ۚ وَسِعَ رَبُّنَا كُلَّ شَيْءٍ عِلْمًا ۚ عَلَى اللَّهِ تَوَكَّلْنَا ۚ
رَبَّنَا افْتَحْ بَيْنَنَا وَبَيْنَ قَوْمِنَا بِالْحَقِّ وَأَنتَ خَيْرُ الْفَاتِحِينَ ﴿٨٩﴾

---

(88) उसकी क़ौम के सरदारों ने, जो अपनी बड़ाई के घमंड में पड़े हुए थे, उससे कहा कि "ऐ शुऐब! हम तुझे और उन लोगों को जो तेरे साथ ईमान लाए हैं अपनी बस्ती से निकाल देंगे, वरना तुम लोगों को हमारी मिल्लत (पंथ) में वापस आना होगा।" शुऐब ने जवाब दिया, "क्या ज़बरदस्ती हमें फेरा जाएगा, चाहे हम राज़ी न हों? (89) हम अल्लाह पर झूठ गढ़नेवाले होंगे अगर तुम्हारी मिल्लत (पंथ) में पलट आएँ, जबकि अल्लाह हमें उससे छुटकारा दे चुका है। हमारे लिए तो उसकी तरफ़ पलटना अब किसी तरह भी मुमकिन नहीं, अलावा इसके कि अल्लाह, हमारा रब, ही ऐसा चाहे।[73] हमारे रब का इल्म हर चीज़ पर हावी है। उसी पर हमने भरोसा कर लिया। ऐ रब! हमारे और हमारी क़ौम के बीच ठीक-ठीक फ़ैसला कर दे और तू सबसे अच्छा फ़ैसला करनेवाला है।"

---

73. यह जुमला उसी मानी में है जिसमें "इंशा-अल्लाह" (अगर अल्लाह ने चाहा) के अलफ़ाज़ बोले जाते हैं, और जिसके बारे में सूरा-18 कहफ़ (आयत-23,24) में कहा गया है कि किसी चीज़ के बारे में दावे के साथ यह न कह दिया करो कि मैं ऐसा करूँगा, बल्कि इस तरह कहा करो कि अगर अल्लाह चाहेगा तो ऐसा करूँगा। इसलिए कि ईमानवाला, जो अल्लाह तआला की सुल्तानी व बादशाही की और अपनी बन्दगी व ग़ुलामी की ठीक-ठीक समझ रखता है, कभी अपने बलबूते पर यह दावा नहीं कर सकता कि मैं फ़ुलाँ बात करके रहूँगा या फ़ुलाँ हरकत हरगिज़ न करूँगा, बल्कि वह जब कहेगा तो यूँ कहेगा कि मेरा इरादा ऐसा करने का या न करने का है, लेकिन मेरे इस इरादे के पूरा होने का दारोमदार मेरे मालिक की मरज़ी पर है, वह तौफ़ीक़ बख़्शेगा तो उसमें कामयाब हो जाऊँगा वरना नाकाम रह जाऊँगा।

وَقَالَ الْمَلَاُ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا مِنْ قَوْمِهٖ لَىِٕنِ اتَّبَعْتُمْ شُعَيْبًا اِنَّكُمْ اِذًا
لَّخٰسِرُوْنَ ۝٩٠ فَاَخَذَتْهُمُ الرَّجْفَةُ فَاَصْبَحُوْا فِيْ دَارِهِمْ جٰثِمِيْنَ ۝٩١
الَّذِيْنَ كَذَّبُوْا شُعَيْبًا كَاَنْ لَّمْ يَغْنَوْا فِيْهَا ۚ اَلَّذِيْنَ كَذَّبُوْا شُعَيْبًا
كَانُوْا هُمُ الْخٰسِرِيْنَ ۝٩٢ فَتَوَلّٰى عَنْهُمْ وَقَالَ يٰقَوْمِ لَقَدْ اَبْلَغْتُكُمْ

(90) उसकी क़ौम के सरदारों ने, जो उसकी बात मानने से इनकार कर चुके थे, आपस में कहा, "अगर तुमने शुऐब की पैरवी क़बूल कर ली, तो बर्बाद हो जाओगे।"[74] (91) मगर हुआ यह कि एक दहला देनेवाली आफ़त ने उनको आ लिया और वे अपने घरों में औंधे पड़े के पड़े रह गए। (92) जिन लोगों ने शुऐब को झुठलाया, वे ऐसे मिटे कि मानो कभी उन घरों में बसे ही न थे। शुऐब के झुठलानेवाले ही आख़िरकार बरबाद होकर रहे।[75] (93) और शुऐब यह कहकर उनकी बस्तियों से निकल गया कि "ऐ मेरे

74. इस छोटे-से जुमले पर से सरसरी तौर पर न गुज़र जाइए। यह ठहरकर बहुत सोचने का मक़ाम है। मदयन के सरदार और लीडर अस्ल में यह कह रहे थे और इसी बात का अपनी क़ौम को भी यक़ीन दिला रहे थे कि शुऐब जिस ईमानदारी और सच्चाई की दावत दे रहा है और अख़लाक़ व ईमानदारी के जिन मुस्तक़िल (स्थायी) उसूलों की पाबन्दी कराना चाहता है, अगर उनको मान लिया जाए तो हम तबाह हो जाएँगे। हमारी तिजारत कैसे चल सकती है। अगर हम बिलकुल ही सच्चाई के पाबन्द हो जाएँ और खरे-खरे सौदे करने लगें। और हम जो दुनिया के दो बड़ी तिजारती शाहराह (राजमार्गों) के चौराहे पर बसते हैं, और मिस्र व इराक़ की शानदार तहज़ीबवाली सल्तनतों की सरहद पर आबाद हैं, अगर हम क़ाफ़िलों को छेड़ना बन्द कर दें और किसी को नुक़सान न पहुँचानेवाले और अम्नपसन्द लोग ही बनकर रह जाएँ तो जो मआशी (आर्थिक) और सियासी फ़ायदे हमें अपनी मौजूदा जुग़राफ़ी (भौगोलिक) हैसियत से हासिल हो रहे हैं वे सब ख़त्म हो जाएँगे और आसपास की क़ौमों पर हमारी जो धौंस क़ायम है वह बाक़ी न रहेगी– यह बात सिर्फ़ हज़रत शुऐब (अलैहि॰) की क़ौम के सरदारों तक ही महदूद नहीं है। हर ज़माने में बिगड़े हुए लोगों ने हक़, सच्चाई और ईमानदारी की राह में ऐसे ही ख़तरे महसूस किए हैं। हर दौर के बिगाड़ और फ़साद के लानेवालों का यही ख़याल रहा है कि तिजारत और सियासत (राजनीति) और दूसरे बुनियादी मामले झूठ, बेईमानी और बदअख़लाक़ी के बिना नहीं चल सकते। हर जगह हक़ (सत्य) की दावत के मुक़ाबले में जो ज़बरदस्त बहाने पेश किए हैं उनमें से एक यह भी रहा है कि अगर दुनिया की चलती हुई राहों से हटकर इस दावत की पैरवी की जाएगी तो क़ौम तबाह हो जाएगी।

75. मदयन की यह तबाही एक लम्बे समय से आसपास की क़ौमों में एक मिसाल बनी रही है।

ع
رِسٰلٰتِ رَبِّیْ وَنَصَحْتُ لَكُمْ ۚ فَكَيْفَ اٰسٰى عَلٰى قَوْمٍ كٰفِرِيْنَ ﴿٩٣﴾ وَمَآ
اَرْسَلْنَا فِیْ قَرْيَةٍ مِّنْ نَّبِیٍّ اِلَّآ اَخَذْنَآ اَهْلَهَا بِالْبَاْسَآءِ وَالضَّرَّآءِ لَعَلَّهُمْ
يَضَّرَّعُوْنَ ﴿٩٤﴾ ثُمَّ بَدَّلْنَا مَكَانَ السَّيِّئَةِ الْحَسَنَةَ حَتّٰى عَفَوْا وَّقَالُوْا قَدْ

क़ौम के भाइयो! मैंने अपने रब के पैग़ाम तुम्हें पहुँचा दिए और तुम्हारी ख़ैरख़ाही का हक़ अदा कर दिया। अब मैं उस क़ौम पर कैसे अफ़सोस करूँ जो हक़ को क़बूल करने से इनकार करती है।"[76]

(94) कभी ऐसा नहीं हुआ कि हमने किसी बस्ती में नबी भेजा हो और उस बस्ती के लोगों को पहले तंगी और सख़्ती में न डाला हो, इस ख़्याल से कि शायद वे आजिज़ी (विनम्रता) पर उतर आएँ। (95) फिर हमने उनकी बदहाली को ख़ुशहाली में बदल दिया,

---

चुनाँचे दाऊद (अलैहि॰) की ज़बूर में एक जगह आता है कि ऐ ख़ुदा, फ़ुलाँ-फ़ुलाँ क़ौमों ने तेरे ख़िलाफ़ अहद बाँध लिया है। लिहाज़ा तू उनके साथ वही कर जो तूने मिदयान के साथ किया (83:5 से 9) और यसइयाह पैग़म्बर एक जगह बनी-इसराईल को तसल्ली देते हुए कहते हैं कि आशूरवालों से न डरो, अगरचे वे तुम्हारे लिए मिस्रवालों की तरह ज़ालिम बने जा रहे हैं, लेकिन कुछ देर न गुज़रेगी कि फ़ौजों का रब इनपर अपना कोड़ा बरसाएगा और इनका वही अंजाम होगा जो मिदयान का हुआ (यसइयाह, 10:21 से 26)।

76. ये जितने क़िस्से यहाँ बयान किए गए हैं उनका मक़सद दूसरों की कमियों और ख़राबियों का ज़िक्र करके अरबवालों को ख़ुद उनकी कमियों और ख़राबियों की ओर ध्यान दिलाना है। हर क़िस्सा उस मामले पर पूरा-पूरा उतरता है जो उस वक़्त मुहम्मद (सल्ल॰) और आप (सल्ल॰) की क़ौम के दरमियान पेश आ रहा था। हर क़िस्से में एक फ़रीक़ (पक्ष) नबी है जिसकी तालीम, जिसकी दावत, जिसकी नसीहत व ख़ैरख़ाही और जिसकी सारी बातें बिलकुल वही हैं जो मुहम्मद (सल्ल॰) की थीं। और दूसरा फ़रीक़ हक़ से मुँह मोड़नेवाली क़ौम है जिसकी एतिक़ादी (आस्था सम्बन्धी) गुमराहियाँ, जिसकी अख़लाक़ी ख़राबियाँ, जिसकी जहालत भरी हठधर्मियाँ, जिसके सरदारों का घमण्ड, जिसके इनकारियों का अपनी गुमराही पर अड़े रहना, ग़रज़ सब कुछ वही है जो क़ुरैश में पाया जाता था। फिर हर क़िस्से में हक़ का इनकार करनेवाली क़ौम का जो अंजाम पेश किया गया है उससे अस्ल में क़ुरैश को इबरत दिलाई गई है कि अगर तुमने ख़ुदा के भेजे हुए पैग़म्बर की बात न मानी और अपना हाल सुधारने का जो मौक़ा तुम्हें दिया जा रहा है उसे अन्धी ज़िद में पड़कर खो दिया तो आख़िरकार तुम्हें भी उसी तबाही और बरबादी से दोचार होना होगा जो हमेशा से गुमराही व बिगाड़ पर खड़े रहनेवाली क़ौमों के हिस्से में आती रही है।

مَسَّ اٰبَآءَنَا الضَّرَّآءُ وَالسَّرَّآءُ فَاَخَذْنٰهُمْ بَغْتَةً وَّهُمْ لَا يَشْعُرُوْنَ ﴿٩٥﴾
وَلَوْ اَنَّ اَهْلَ الْقُرٰٓى اٰمَنُوْا وَاتَّقَوْا لَفَتَحْنَا عَلَيْهِمْ بَرَكٰتٍ مِّنَ

यहाँ तक कि वे ख़ूब फले-फूले और कहने लगे कि "हमारे बुज़ुर्गों पर भी अच्छे और बुरे दिन आते ही रहे हैं।" आख़िरकार हमने उन्हें अचानक पकड़ लिया और उन्हें ख़बर तक न हुई।[77] (96) अगर बस्तियों के लोग ईमान लाते और तक़वा (परहेज़गारी) की रविश

77. एक-एक नबी और एक-एक क़ौम का मामला अलग-अलग बयान करने के बाद अब वह आम उसूल बयान किया जा रहा है जो हर ज़माने में अल्लाह तआला ने नबियों (अलैहि॰) को नबी बनाने के मौक़े पर अपनाया है। और वह यह है कि जब किसी क़ौम में कोई नबी भेजा गया तो पहले उस क़ौम के बाहरी माहौल को दावत क़बूल करने के लिए निहायत साज़गार बनाया गया, यानी उसको मुसीबतों और आफ़तों में डाला गया। अकाल, महामारी, कारोबारी घाटे, जंग में हार या इसी तरह की तकलीफ़ें उसपर डाली गईं, ताकि उसका दिल नर्म पड़े, उसकी शेख़ी और घमण्ड से अकड़ी हुई गर्दन ढीली हो, उसकी ताक़त का घमण्ड और दौलत का नशा टूट जाए, अपने असबाब (माल-औलाद) और अपनी क़ुव्वतों और क़ाबिलियतों पर उसका भरोसा कमज़ोर पड़ जाए, उसे महसूस हो कि ऊपर कोई और ताक़त भी है जिसके हाथ में उसकी क़िस्मत की लगाम है और इस तरह उसके कान नसीहत के लिए खुल जाएँ और वह अपने ख़ुदा के सामने आजिज़ी और नरमी के साथ झुक जाने पर आमादा हो जाए। फिर जब इस साज़गार (अनुकूल) माहौल में भी उसका दिल हक़ को क़बूल करने पर आमादा नहीं होता तो उसको ख़ुशहाली के फ़ितने (आज़माइश) में डाल दिया जाता है और यहाँ से उसकी बरबादी की शुरुआत हो जाती है। जब वह नेमतों से मालामाल होने लगती है तो अपने बुरे दिन भूल जाती है और उस क़ौम के टेढ़ी समझ रखनेवाले रहनुमा उसके ज़ेहन में तारीख़ (इतिहास) का यह बेवक़ूफ़ी से भरा तसव्वुर बिठाते हैं कि हालात का उतार-चढ़ाव और क़िस्मत का बनाव और बिगाड़ किसी सूझ-बूझ और हिकमतवाले के इन्तिज़ाम में अख़लाक़ी बुनियादों पर नहीं हो रहा है, बल्कि एक अन्धी तबीअत बिलकुल ग़ैर-अख़लाक़ी वजहों से कभी अच्छे और कभी बुरे दिन लाती ही रहती है। लिहाज़ा मुसीबतों और आफ़तों के आने से कोई अख़लाक़ी सबक़ लेना और किसी नसीहत करनेवाले की नसीहत क़बूल करके ख़ुदा के आगे रोने और गिड़गिड़ाने लगना सिवाए एक तरह की नफ़्सी कमज़ोरी (मन की दुर्बलता) के और कुछ नहीं है। यही वह अहमक़ाना ज़ेहनियत है जिसका नक़्शा नबी (सल्ल॰) ने इस हदीस में खींचा है, "मुसीबत ईमानवाले की तो इस्लाह करती चली जाती है, यहाँ तक कि जब वह इस भट्ठी से निकलता है तो सारी खोट से साफ़ होकर निकलता है; लेकिन मुनाफ़िक़ की हालत बिलकुल गधे की-सी होती है जो कुछ नहीं समझता कि उसके मालिक ने क्यों उसे बाँधा था और क्यों उसे छोड़ दिया।" तो जब किसी क़ौम का यह हाल होता है कि न मुसीबतों से उसका दिल ख़ुदा के आगे

السَّمَآءِ وَالْاَرْضِ وَلٰكِنْ كَذَّبُوْا فَاَخَذْنٰهُمْ بِمَا كَانُوْا يَكْسِبُوْنَ ۝٩٦
اَفَاَمِنَ اَهْلُ الْقُرٰٓى اَنْ يَّاْتِيَهُمْ بَاْسُنَا بَيَاتًا وَّهُمْ نَآئِمُوْنَ ۝٩٧

अपनाते तो हम उनपर आसमान और ज़मीन से बरकतों के दरवाज़े खोल देते, मगर उन्होंने तो झुठलाया, इसलिए हमने उस बुरी कमाई के हिसाब में उन्हें पकड़ लिया जो वे समेट रहे थे। (97) फिर क्या बस्तियों के लोग अब उससे बेख़ौफ़ हो गए हैं कि हमारी पकड़ कभी अचानक उनपर रात के वक़्त न आ जाएगी, जबकि वे सोए पड़े हों? या

झुकता है, न नेमतों पर वह शुक्रगुज़ार होती है, और न किसी हाल में इस्लाह क़बूल करती है तो फिर उसकी बरबादी उसके सिर पर मंडराने लगती है और किसी वक़्त भी वह बरबाद करके रख दी जाती है।

यहाँ यह बात और जान लेनी चाहिए कि इन आयतों में अल्लाह तआला ने अपने जिस ज़ाब्ते का ज़िक्र किया है ठीक यही ज़ाब्ता नबी (सल्ल॰) के पैग़म्बर बनाए जाने के मौक़े पर भी बरता गया। और शामत की मारी क़ौमों के जिस रवैये की तरफ़ इशारा किया गया है, ठीक वही रवैया सूरा-7, आराफ़ के उतरने के ज़माने में क़ुरैशवालों से ज़ाहिर हो रहा था। हदीस में अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद (रज़ि॰) और अब्दुल्लाह-बिन-अब्बास (रज़ि॰) दोनों से रिवायत है कि नबी (सल्ल॰) को पैग़म्बर बनाए जाने के बाद जब क़ुरैश के लोगों ने आप (सल्ल॰) की दावत के ख़िलाफ़ सख़्त रवैया अपनाना शुरू किया तो नबी (सल्ल॰) ने दुआ की कि "ऐ अल्लाह, यूसुफ़ के ज़माने में जैसा सात साल अकाल पड़ा था वैसे ही अकाल से इन लोगों के मुक़ाबले में मेरी मदद कर।" चुनाँचे अल्लाह तआला ने उन्हें सख़्त अकाल में मुब्तला कर दिया और नौबत यहाँ तक पहुँच गई कि लोग मुरदार खाने लगे, चमड़े और हड्डियाँ और ऊन तक खा गए। आख़िरकार मक्का के लोगों ने, जिनमें अबू-सुफ़ियान आगे-आगे था, नबी (सल्ल॰) से दरख़ास्त की कि हमारे लिए ख़ुदा से दुआ कीजिए, मगर जब आप (सल्ल॰) की दुआ से अल्लाह ने वह बुरा वक़्त टाल दिया और भले दिन आए तो उन लोगों की गर्दनें पहले से ज़्यादा अकड़ गईं, और जिनके दिल थोड़े बहुत पसीज गए थे उनको भी क़ौम के बुरे लोगों ने यह कह-कहकर ईमान से रोकना शुरू कर दिया कि "अरे भाई, यह तो ज़माने का उतार-चढ़ाव है। पहले भी आख़िर अकाल पड़ते ही रहे हैं, कोई नई बात तो नहीं है कि इस बार एक लम्बा अकाल पड़ गया। लिहाज़ा इन चीज़ों से धोखा खाकर मुहम्मद के फंदे में न फँस जाना।" (हदीस : बुख़ारी) ये बातें उस ज़माने में हो रही थीं जब यह सूरा-7, आराफ़ उतरी है। इसलिए क़ुरआन मजीद की ये आयतें ठीक अपने मौक़े पर चस्पाँ होती हैं और इसी पसमंज़र (पृष्टभूमि) को निगाह में रखने से इनका मक़सद और मतलब पूरी तरह समझ में आ सकता है। (तफ़सील के लिए देखें— सूरा-10 यूनूस, आयत-21; सूरा-16 नहूल, आयत-112; सूरा-23 मोमिनून, आयत-5 और 76; सूरा-44 दुख़ान, आयत-9-16)

اَوَاَمِنَ اَهۡلُ الۡقُرٰٓى اَنۡ يَّاۡتِيَهُمۡ بَاۡسُنَا ضُحًى وَّهُمۡ يَلۡعَبُوۡنَ ﴿٩٨﴾
اَفَاَمِنُوۡا مَكۡرَ اللّٰهِ‌ۚ فَلَا يَاۡمَنُ مَكۡرَ اللّٰهِ اِلَّا الۡقَوۡمُ الۡخٰسِرُوۡنَ ﴿٩٩﴾ اَوَلَمۡ
يَهۡدِ لِلَّذِيۡنَ يَرِثُوۡنَ الۡاَرۡضَ مِنۡۢ بَعۡدِ اَهۡلِهَاۤ اَنۡ لَّوۡ نَشَآءُ اَصَبۡنٰهُمۡ
بِذُنُوۡبِهِمۡ‌ۚ وَنَطۡبَعُ عَلٰى قُلُوۡبِهِمۡ فَهُمۡ لَا يَسۡمَعُوۡنَ ﴿١٠٠﴾ تِلۡكَ الۡقُرٰى

(98) उन्हें इत्मीनान हो गया है कि हमारा मज़बूत हाथ कभी यकायक उनपर दिन के वक़्त न पड़ेगा, जबकि वे खेल रहे हों? (99) क्या ये लोग अल्लाह की चाल[78] से निडर हैं? हालाँकि अल्लाह की चाल से वही क़ौम निडर होती है जो तबाह होनेवाली हो।

(100) और क्या उन लोगों को, जो पिछले ज़मीनवालों के बाद ज़मीन के वारिस होते हैं, इस सच्ची बात ने कुछ सबक़ नहीं दिया कि अगर हम चाहें तो उनके गुनाहों पर उनको पकड़ सकते हैं?[79] (मगर वे सबक़-आमोज़ सच्ची बातों से ग़फ़लत बरतते हैं) और हम उनके दिलों पर मुहर लगा देते हैं, फिर वे कुछ नहीं सुनते।[80] (101) ये क़ौमें जिनके

78. अस्ल में अरबी लफ़्ज़ 'मक्र' इस्तेमाल हुआ है जिसके मानी अरबी ज़बान में ख़ुफ़िया तदबीर के हैं, यानी किसी शख़्स के ख़िलाफ़ ऐसी चाल चलना कि जब तक उसपर पूरी तरह चोट न पड़ जाए उस वक़्त तक उसे पता न चले कि उसकी शामत आनेवाली है, बल्कि ज़ाहिर हालात को देखते हुए वह यही समझता रहे कि सब अच्छा है।

79. यानी एक गिरनेवाली क़ौम की जगह जो दूसरी क़ौम उठती है उसके लिए अपने से पहलेवाली क़ौम की गिरावट और पतन में काफ़ी रहनुमाई मौजूद होती है। वह अगर अक़्ल से काम ले तो समझ सकती है कि कुछ समय पहले जो लोग इसी जगह सुख-चैन की ज़िन्दगी गुज़ार रहे थे और जिनकी बड़ाई का झण्डा यहाँ लहरा रहा था, उनको सोच और अमल की किन ग़लतियों ने बरबाद किया, और यह भी महसूस कर सकती है कि जिस बालातर इक़्तिदार (सर्वोच्च सत्ता) ने कल उन्हें उनकी ग़लतियों पर पकड़ा था और उनसे यह जगह ख़ाली करा ली थी, वह आज कहीं चला नहीं गया है, न उससे किसी ने यह ताक़त छीन ली है कि इस जगह के मौजूदा बसनेवाले अगर वही ग़लतियाँ करें जो पहले के बसनेवाले कर रहे थे तो वह इनसे भी उसी तरह जगह ख़ाली न करा सकेगा जिस तरह उसने उनसे ख़ाली कराई थी।

80. यानी जब वे तारीख़ (इतिहास) से और इबरतनाक आसार (निशानियों) को देखकर भी सबक़ नहीं लेते और अपने आपको खुद भुलावे में डालते हैं तो फिर ख़ुदा की तरफ़ से भी उन्हें सोचने-समझने और किसी नसीहत करनेवाले की बात सुनना नसीब नहीं होता, ख़ुदा का क़ानूने-फ़ितरत है कि जो अपनी आँखें बन्द कर लेता है उसकी आँखों तक चमकते हुए सूरज

نَقُصُّ عَلَيْكَ مِنْ اَنْبَآئِهَا ۚ وَلَقَدْ جَآءَتْهُمْ رُسُلُهُمْ بِالْبَيِّنٰتِ ۚ فَمَا
كَانُوْا لِيُؤْمِنُوْا بِمَا كَذَّبُوْا مِنْ قَبْلُ ؕ كَذٰلِكَ يَطْبَعُ اللّٰهُ عَلٰى قُلُوْبِ
الْكٰفِرِيْنَ ﴿۱۰۱﴾ وَمَا وَجَدْنَا لِاَكْثَرِهِمْ مِّنْ عَهْدٍ ۚ وَاِنْ وَّجَدْنَآ اَكْثَرَهُمْ
لَفٰسِقِيْنَ ﴿۱۰۲﴾ ثُمَّ بَعَثْنَا مِنْۢ بَعْدِهِمْ مُّوْسٰى بِاٰيٰتِنَآ اِلٰى فِرْعَوْنَ

क़िस्से हम तुम्हें सुना रहे हैं (तुम्हारे सामने मिसाल की शक्ल में मौजूद हैं) उनके रसूल उनके पास खुली-खुली निशानियाँ लेकर आए, मगर जिस चीज़ को वे एक बार झुठला चुके थे, फिर उसे वे माननेवाले न थे। देखो, इस तरह हम हक़ के इनकारियों के दिलों पर मुहर लगा देते हैं।[81] (102) हमने उनमें से ज़्यादातर में अहद की कोई पाबन्दी न पाई, बल्कि ज़्यादातर को नाफ़रमान ही पाया।[82]

(103) फिर उन क़ौमों के बाद (जिनका ज़िक्र ऊपर किया गया) हमने मूसा को अपनी निशानियों के साथ फ़िरऔन और उसकी क़ौम के सरदारों के पास भेजा[83], मगर

की कोई किरण नहीं पहुँच सकती और जो खुद नहीं सुनना चाहता उसे फिर कोई कुछ नहीं सुना सकता।

81. पिछली आयतों में जो कहा गया था कि "हम उनके दिलों पर मुहर लगा देते हैं, फिर वे कुछ नहीं सुनते," इसकी तशरीह अल्लाह तआला ने इस आयत में खुद फ़रमा दी है। इस तशरीह से यह बात वाज़ेह हो जाती है कि दिलों पर मुहर लगाने से मुराद इनसानी ज़ेहन का उस नफ़सिआती क़ानून (मनोवैज्ञानिक नियम) की चपेट में आ जाना है जिसके मुताबिक़ एक जाहिली तास्सुब (पक्षपात) या ज़ाती ग़रज़ों की बिना पर हक़ से मुँह मोड़ लेने के बाद फिर इनसान अपनी ज़िद और हठधर्मी के उलझाव में उलझता ही चला जाता है और किसी दलील, किसी मुशाहिदे (अवलोकन) और किसी तजरिबे से उसके दिल के दरवाज़े हक़ को क़बूल करने के लिए नहीं खुलते।

82. "अहद (वचन और वादे) की कोई पाबन्दी न पाई" यानी किसी भी क़िस्म के अहद का पूरा करनेवाला न पाया, न उस फ़ितरी अहद का जिसमें पैदाइशी तौर पर हर इनसान खुदा का बन्दा और उसी का परवरिश किया हुआ होने की हैसियत से बँधा हुआ है, न उस इज्तिमाई अहद का पाबन्द पाया जिसमें हर इनसान इनसानी बिरादरी का एक मेम्बर (सदस्य) होने की हैसियत से बंधा हुआ है, और न उस ज़ाती अहद को पूरा करनेवाला पाया जो आदमी अपनी मुसीबत और परेशानी के लम्हों में या किसी नेक जज़्बे के मौक़े पर खुदा से अपने आप बाँधा करता है। इन ही तीनों अहदों के तोड़ने को यहाँ नाफ़रमानी (फ़िस्क़) कहा गया है।

83. ऊपर जो क़िस्से बयान हुए हैं उनका मक़सद यह ज़ेहन में बिठाना था कि जो क़ौम खुदा का

وَمَلَا۟ئِهٖ فَظَلَمُوْا بِهَا ۚ فَانْظُرْ كَيْفَ كَانَ عَاقِبَةُ الْمُفْسِدِيْنَ ﴿١٠٣﴾

उन्होंने भी हमारी निशानियों के साथ ज़ुल्म किया[84], तो देखो कि उन बिगाड़ पैदा करनेवालों का क्या अंजाम हुआ।

पैग़ाम पाने के बाद उसे रद्द कर देती है उसे फिर हलाक किए बिना नहीं छोड़ा जाता। इसके बाद अब मूसा (अलैहि.) व फ़िरऔन और बनी-इसराईल का क़िस्सा कई आयतों तक मुसलसल चलता है, जिसमें इस मज़मून (विषय) के अलावा चन्द और अहम सबक़ भी क़ुरैश के इस्लाम-मुख़ालिफ़ों, यहूदियों और ईमान लानेवाले गरोह को दिए गए हैं।

क़ुरैश के इस्लाम-मुख़ालिफ़ों को इस क़िस्से के ज़रिए यह समझाने की कोशिश की गई है कि हक़ की दावत के इब्तिदाई मरहलों में हक़ और बातिल (सत्य और असत्य) की क़ुव्वतों का जो तनासुब (अनुपात) बज़ाहिर नज़र आता है, उससे धोखा न खाना चाहिए। हक़ की तो पूरी तारीख़ (इतिहास) ही इस बात पर गवाह है कि वह क़ौम में एक बल्कि दुनिया में एक की अक़ल्लियत (अल्पसंख्यक स्थिति) से शुरू होता है और बिना किसी सरो-सामान के उस बातिल के ख़िलाफ़ कशमकश शुरू कर देता है जिसके पीछे बड़ी-बड़ी क़ौमों और सल्तनतों की ताक़त होती है, फिर भी आख़िरकार वही ग़ालिब आकर रहता है। साथ ही इस क़िस्से में उनको यह भी बताया गया है कि हक़ की तरफ़ बुलानेवाले के मुक़ाबले में जो चालें चली जाती हैं और जिन तदबीरों से उसकी दावत को दबाने की कोशिश की जाती है वे किस तरह उल्टी पड़ती हैं। और यह कि अल्लाह तआला हक़ का इनकार करनेवालों की हलाकत का आख़िरी फ़ैसला करने से पहले उनको कितनी-कितनी लम्बी मुद्दत तक संभलने और दुरुस्त होने के मौक़े देता चला जाता है और जब किसी डरावे, किसी सबक़आमोज़ वाक़िए और किसी खुली निशानी से भी वे असर नहीं लेते तो फिर वह उन्हें कैसी इबरतनाक सज़ा देता है।

जो लोग नबी (सल्ल.) पर ईमान ले आए थे उनको इस क़िस्से में दोहरा सबक़ दिया गया है। पहला सबक़ इस बात का कि अपनी कम तादाद व कमज़ोरी को और हक़ के मुख़ालिफ़ों की ज़्यादा तादाद और लाव-लश्कर को देखकर उनकी हिम्मत न टूटे और अल्लाह की मदद आने में देर होते देखकर वे मायूस न हों। दूसरा सबक़ इस बात का कि ईमान लाने के बाद जो गरोह यहूदियों का-सा तरीक़ा अपनाता है वह यहूदियों ही की तरह ख़ुदा की लानत में गिरफ़्तार भी होता है।

बनी-इसराईल के सामने उनकी अपनी इबरतनाक तारीख़ (इतिहास) पेश करके उन्हें बातिल परस्ती (असत्यवादिता) के बुरे नतीजों पर ख़बरदार किया गया है और उस पैग़म्बर पर ईमान लाने की दावत दी गई है जो पिछले पैग़म्बरों के लाए हुए दीन को तमाम मिलावटों से पाक करके फिर उसकी असली शक्ल में पेश कर रहा है।

84. निशानियों के साथ ज़ुल्म किया, यानी उनको न माना और उन्हें जादूगरी बताकर टालने की कोशिश की। जिस तरह किसी ऐसे शेअ्र को जो शेअ्रियत (काव्य) का मुकम्मल नमूना हो, तुकबन्दी बताना और उसका मज़ाक़ उड़ाना न सिर्फ़ शेअ्र के साथ बल्कि ख़ुद शाइरी और

وَقَالَ مُوسَىٰ يَٰفِرْعَوْنُ إِنِّي رَسُولٌ مِّن رَّبِّ ٱلْعَٰلَمِينَ ﴿١٠٤﴾ حَقِيقٌ عَلَىٰٓ
أَن لَّآ أَقُولَ عَلَى ٱللَّهِ إِلَّا ٱلْحَقَّ ۚ قَدْ جِئْتُكُم بِبَيِّنَةٍ مِّن رَّبِّكُمْ

(104) मूसा ने कहा, "ऐ फ़िरऔन[85]! मैं कायनात के मालिक की तरफ़ से भेजा हुआ आया हूँ, (105) मेरा रुतबा (मंसब) यही है कि अल्लाह का नाम लेकर कोई बात हक़ के सिवा न कहूँ। मैं तुम लोगों के पास तुम्हारे रब की तरफ़ से तक़र्रुरी (नियुक्ति)

ज़ौके-शेअ्री (काव्य-रुचि) के साथ भी ज़ुल्म है, इसी तरह वे निशानियाँ जो ख़ुद अपने अल्लाह की तरफ़ से होने पर खुली गवाही दे रही हों और जिनके बारे में कोई अक़्लमन्द आदमी यह गुमान तक न कर सकता हो कि जादू के ज़ोर से भी ऐसी निशानियाँ ज़ाहिर हो सकती हैं, बल्कि जिनके बारे में ख़ुद जादू की कला के माहिरों ने गवाही दे दी हो कि वे उनकी कला की पहुँच से दूर हैं, उनको जादू बताना न सिर्फ़ उन निशानियों के साथ, बल्कि अक़्ले-सलीम (सद्बुद्धि) और सच्चाई के साथ भी बहुत बड़ा ज़ुल्म है।

85. लफ़्ज़ 'फ़िरऔन' का मतलब है 'सूरज देवता की औलाद'। क़दीम ज़माने के मिस्रवासी सूरज को, जो उनका महादेव या रब्बे-आला था, 'रअ्' कहते थे और फ़िरऔन का ताल्लुक़ उसी से माना जाता था। मिस्रवालों के अक़ीदे (आस्था) के मुताबिक़ किसी हाकिम की हाकिमियत के लिए इसके सिवा कोई बुनियाद नहीं हो सकती थी कि वह 'रअ्' का जिस्मानी मज़हर (शारीरिक प्रकटन) और ज़मीन पर उसका नुमाइन्दा हो, इसी लिए हर शाही ख़ानदान जो मिस्र में हुकूमत करता था, अपने आपको सूर्यवंशी बनाकर पेश करता, और हर हाकिम जो हुकूमत के तख़्त पर बैठता, 'फ़िरऔन' का लक़ब (उपाधि) इख़्तियार करके मुल्क में बाशिन्दों को यक़ीन दिलाता कि तुम्हारा रब्बे-आला या महादेव मैं हूँ।

यहाँ यह बात और जान लेनी चाहिए कि क़ुरआन में हज़रत मूसा (अलैहि॰) के क़िस्से के सिलसिले में दो फ़िरऔनों का ज़िक्र आता है। एक वह जिसके ज़माने में मूसा (अलैहि॰) पैदा हुए और जिसके घर में उन्होंने परवरिश पाई और दूसरा फ़िरऔन वह जिसके पास मूसा (अलैहि॰) इस्लाम की दावत और बनी-इसराईल की रिहाई की माँग लेकर पहुँचे और जो आख़िरकार समुद्र में डूब गया। मौजूदा ज़माने के तहक़ीक़ करनेवालों (शोधकर्ताओं) का आम रुझान इस तरफ़ है कि पहला फ़िरऔन रअ्मसीस दोम (द्वितीय) था, जिसकी हुकूमत का ज़माना 1292 से 1225 ईसा पूर्व तक रहा है। और दूसरा फ़िरऔन जिसका यहाँ इन आयतों में ज़िक्र हो रहा है मुनफ़तह या मुनफ़्ताह था जो अपने बाप रअ्मसीस दोम की ज़िन्दगी ही में हुकूमत में शरीक हो चुका था और उसके मरने के बाद सल्तनत का मालिक हुआ। यह गुमान बज़ाहिर इस लिहाज़ से मुश्तबह (सन्दिग्ध) मालूम होता है कि इसराईली तारीख़ (इतिहास) के हिसाब से हज़रत मूसा (अलैहि॰) के इन्तिक़ाल की तारीख़ 1272 ई॰ पू॰ है। लेकिन बहरहाल यह तारीख़ी अन्दाज़े ही हैं और मिस्री, इसराईली और ईसवी जंतरियों में तारीख़ को मिलाकर देखने से बिलकुल सही तारीख़ का हिसाब लगाना मुश्किल है।

فَأَرْسِلْ مَعِيَ بَنِيٓ إِسْرَآءِيلَ ﴿١٠٥﴾ قَالَ إِن كُنتَ جِئْتَ بِـَٔايَةٍ فَأْتِ بِهَآ
إِن كُنتَ مِنَ ٱلصَّٰدِقِينَ ﴿١٠٦﴾ فَأَلْقَىٰ عَصَاهُ فَإِذَا هِيَ ثُعْبَانٌ مُّبِينٌ ﴿١٠٧﴾
وَنَزَعَ يَدَهُۥ فَإِذَا هِيَ بَيْضَآءُ لِلنَّٰظِرِينَ ﴿١٠٨﴾ قَالَ ٱلْمَلَأُ مِن قَوْمِ

की खुली दलील लेकर आया हूँ, इसलिए तू बनी-इसराईल को मेरे साथ भेज दे।"[86] (106) फ़िरऔन ने कहा, "अगर तू कोई निशानी लाया है और अपने दावे में सच्चा है तो उसे पेश कर।" (107) मूसा ने अपनी लाठी फेंकी और यकायक वह एक जीता-जागता अजगर था। (108) उसने अपनी जेब से हाथ निकाला और सब देखनेवालों के सामने वह चमक रहा था।[87] (109) इसपर फ़िरऔन की क़ौम के सरदारों ने आपस

86. हज़रत मूसा (अलैहि॰) दो चीज़ों की दावत लेकर फ़िरऔन के पास भेजे गए थे। एक यह कि वह अल्लाह की बन्दगी (इस्लाम) क़बूल करे, दूसरे यह कि बनी-इसराईल की क़ौम को, जो पहले से मुसलमान थी, अपने ज़ुल्म के पंजे से रिहा कर दे। क़ुरआन में इन दोनों दावतों का कहीं एक साथ ज़िक्र किया गया है और कहीं मौक़े के लिहाज़ से सिर्फ़ एक ही बयान को काफ़ी समझा गया है।

87. ये दो निशानियाँ हज़रत मूसा (अलैहि॰) को इस बात के सुबूत में दी गई थीं कि वे उस ख़ुदा के नुमाइन्दे हैं जो कायनात का बनानेवाला और उसपर हुकूमत करनेवाला है। जैसा कि इससे पहले भी हम इशारा कर चुके हैं। पैग़म्बरों ने जब कभी अपने आपको रब्बुल-आलमीन की तरफ़ से भेजे गए शख़्स की हैसियत से पेश किया तो लोगों ने उनसे यही माँग की कि अगर तुम वाक़ई रब्बुल-आलमीन के नुमाइन्दे हो तो तुम्हारे हाथों से कोई ऐसा वाक़िआ सामने आना चाहिए जो फ़ितरत के उसूलों के आम क़ायदे से हटकर हो और जिससे साफ़ ज़ाहिर हो रहा हो कि सारे जहान के रब ने तुम्हारी सच्चाई साबित करने के लिए ख़ुद दख़ल देकर निशानी के तौर पर यह वाक़िआ कर दिखाया है। इसी माँग के जवाब में पैग़म्बरों (अलैहि॰) ने वे निशानियाँ दिखाई हैं जिनको क़ुरआन की इस्तिलाह (परिभाषा) में 'आयात' और मज़हबी मामलों को अक़्ली दलीलों से साबित करनेवालों की इस्तिलाह में 'मोजिज़ात' कहा जाता है। ऐसी निशानियों या मोजिज़ों को जो लोग फ़ितरी क़ानूनों के तहत होनेवाले आम वाक़िआत ठहराने की कोशिश करते हैं वे हक़ीक़त में अल्लाह की किताब को मानने और न मानने के दरमियान एक ऐसी हालत इख़्तियार करते हैं जिसे किसी तरह मुनासिब और माक़ूल नहीं समझा जा सकता। इसलिए कि क़ुरआन जिस जगह साफ़ तौर पर ऐसे वाक़िए का ज़िक्र कर रहा है जो आम तौर पर पेश नहीं आते वहाँ मौक़ा और महल के बिलकुल ख़िलाफ़ एक आम वाक़िआ बनाने की कोशिश महज़ भोंडेपन से बात बताना है जिसकी ज़रूरत सिर्फ़ उन लोगों को पेश आती है जो एक तरफ़ तो किसी ऐसी किताब पर ईमान नहीं लाना चाहते जो आम क़ायदे से हटकर

فِرْعَوْنَ اِنَّ هٰذَا لَسٰحِرٌ عَلِيْمٌ ﴿١٠٩﴾ يُّرِيْدُ اَنْ يُّخْرِجَكُمْ مِّنْ اَرْضِكُمْ

में कहा कि “यक़ीनन यह आदमी बड़ा माहिर जादूगर है, (110) तुम्हें तुम्हारी ज़मीन से

होनेवाले वाक़िआत का ज़िक्र करती हो और दूसरी तरफ़ पैदाइशी तौर पर बाप-दादा के मज़हब पर एतिक़ाद रखने की वजह से उस किताब का इनकार भी नहीं करना चाहते जो हक़ीक़त में आम क़ायदे से हटे हुए वाक़िआत का ज़िक्र करती है।

मोजिज़ों (चमत्कारों) के सिलसिले में अस्ल बुनियादी सवाल सिर्फ़ यह है कि क्या अल्लाह तआला कायनात के निज़ाम को एक क़ानून पर चला देने के बाद अलग-थलग हो चुका है और अब इस चलते हुए निज़ाम में कभी किसी मौक़े पर दख़ल (हस्तक्षेप) नहीं दे सकता? या वह अमली तौर पर अपनी सल्तनत की दरबारी व इन्तिज़ाम की बागडोर अपने हाथ में रखता है और हर पल उसके हुक्म इस सल्तनत में लागू होते रहते हैं और उसको हर वक़्त इख़्तियार हासिल है कि चीज़ों की शक्लों और वाक़िआत की आम रफ़्तार में थोड़ी या पूरे तौर पर जैसी चाहे और जब चाहे तबदीली कर दे? जो लोग इस सवाल के जवाब में पहली बात को मानते हैं उनके लिए मोजिज़ों को मानना नामुमकिन है, क्योंकि मोजिज़ा न उनके ख़ुदा के तसव्वुर से मेल खाता है और न कायनात के तसव्वुर से। लेकिन ऐसे लोगों के लिए मुनासिब यही है कि वे क़ुरआन की तफ़सीर व तशरीह करने के बजाए उसका साफ़-साफ़ इनकार कर दें, क्योंकि क़ुरआन ने तो पुरज़ोर आवाज़ में ख़ुदा को किसी लगे बंधे क़ायदे का पाबन्द समझनेवाले तसव्वुर को ग़लत बताते हुए उसे तमाम इख़्तियारात का मालिक क़रार दिया है। इसके बरख़िलाफ़ जो शख़्स क़ुरआन की दलीलों से मुत्मइन होकर दूसरे तसव्वुर को क़बूल कर ले उसके लिए मोजिज़े को समझना और मान लेना कुछ मुश्किल नहीं रहता। ज़ाहिर है कि जब आपका अक़ीदा ही यह होगा कि अज़दहे (अजगर) जिस तरह पैदा हुआ करते हैं उसी तरह वे पैदा हो सकते हैं, उसके सिवा किसी दूसरे ढंग पर कोई अज़दहा पैदा कर देना ख़ुदा की क़ुदरत से बाहर है, तो आप मजबूर हैं कि ऐसे शख़्स के बयान को पूरी तरह झुठला दें जो आपको ख़बर दे रहा हो कि एक लाठी अज़दहे में तबदील हुई और फिर अज़दहे से लाठी बन गई। लेकिन इसके ख़िलाफ़ अगर आपका अक़ीदा यह हो कि बेजान माद्दे (तत्त्व) में ख़ुदा के हुक्म से ज़िन्दगी पैदा होती है और ख़ुदा जिस माद्दे को जैसी चाहे ज़िन्दगी दे सकता है, उसके लिए ख़ुदा के हुक्म से लाठी का अज़दहा बनना उतना ही हैरत में न डालनेवाला वाक़िया है जितना उसी ख़ुदा के हुक्म से अण्डे के अन्दर भरे हुए चन्द बेजान माद्दों का अज़दहा बन जाना हैरत में न डालनेवाला वाक़िआ है। सिर्फ़ यह फ़र्क़ है कि एक वाक़िआ हमेशा पेश आता रहता है और दूसरा वाक़िआ सिर्फ़ तीन बार पेश आया, एक को हैरत में न आनेवाला वाक़िआ और दूसरे को हैरत में डाल देनेवाला वाक़िआ बना देने के लिए काफ़ी नहीं है।

فَمَاذَا تَأْمُرُوْنَ ﴿١١٠﴾ قَالُوْٓا اَرْجِهْ وَاَخَاهُ وَاَرْسِلْ فِي الْمَدَآئِنِ حٰشِرِيْنَ ﴿١١١﴾

बे-दख़ल करना चाहता है[88], अब कहो, क्या कहते हो?" (111) फिर उन सबने फ़िरऔन को सलाह दी कि इसे और इसके भाई को इन्तिज़ार में रखिए और तमाम शहरों में

88. यहाँ सवाल पैदा होता है कि अगर एक ग़ुलाम क़ौम का एक बे-सरो-सामान आदमी एकाएक उठकर फ़िरऔन जैसे बादशाह के दरबार में जा खड़ा होता है जो सीरिया से लेकर लीबिया तक और रोम (रूम) के समुद्रतटों से हब्शा तक के शानदार मुल्क का न सिर्फ़ बेलगाम बादशाह बल्कि माबूद (उपास्य) बना हुआ था, तो महज़ उसके इस काम से कि उसने एक लाठी को अज़दहा (अज़गर) बना दिया इतनी बड़ी सल्तनत को यह ख़तरा कैसे पैदा हो जाता है कि यह अकेला इनसान मिस्र की हुकूमत का तख़्ता उलट देगा और शाही ख़ानदान को हुक्मराँ तबक़े (शासक वर्ग) समेत मुल्क की हुकूमत से बे-दख़ल कर देगा? फिर यह सियासी इंक़िलाब का ख़तरा आख़िर पैदा ही क्यों हुआ। जबकि उस शख़्स ने सिर्फ़ पैग़म्बरी का दावा और बनी-इसराईल की रिहाई की माँग ही पेश की थी, और किसी क़िस्म की सियासी बातचीत सिरे से छेड़ी ही न थी?

इस सवाल का जवाब यह है कि मूसा (अलैहि॰) का पैग़म्बरी का दावा अपने अन्दर ख़ुद ही यह मतलब रखता था कि वे अस्ल में ज़िन्दगी के पूरे निज़ाम को पूरी तरह बदलना चाहते हैं जिसमें यक़ीनन मुल्क का सियासी निज़ाम भी शामिल है। किसी शख़्स का अपने आपको रब्बुल-आलमीन के नुमाइन्दे की हैसियत से पेश करना लाज़िमी तौर पर इस बात की ज़मानत बन जाता है कि वह इनसानों से पूरी तरह अपने हुक्मों पर चलने की माँग करता है, क्योंकि रब्बुल-आलमीन का नुमाइन्दा कभी दूसरे की फ़रमाँबरदारी करने और उसकी प्रजा बनकर रहने के लिए नहीं आता, बल्कि दूसरों से इताअत कराने और उनका निगराँ बनने के लिए आया करता है और ख़ुदा के इनकारी व नाफ़रमान शख़्स की हुकूमत को मान लेना उसकी पैग़म्बरी की हैसियत के बिलकुल ख़िलाफ़ है। यही वजह है कि हज़रत मूसा (अलैहि॰) की ज़बान से पैग़म्बरी का दावा सुनते ही फ़िरऔन और उसके दरबारियों के सामने सियासी, मआशी और तमद्दुनी इंक़िलाब का ख़तरा पैदा हो गया। रही यह बात कि हज़रत मूसा (अलैहि॰) के इस दावे को मिस्र के शाही दरबार में इतनी अहमियत ही क्यों दी गई, जबकि उनके साथ एक भाई के सिवा कोई सहायक और मददगार और सिर्फ़ एक साँप बन जानेवाली लाठी, और एक चमकनेवाले हाथ के सिवा नबी की हैसियत से भेजे जाने का कोई निशान न था? तो मेरे नज़दीक इसके दो बड़े सबब हैं। एक यह कि हज़रत मूसा (अलैहि॰) की शख़्सियत से फ़िरऔन और उसके दरबारी अच्छी तरह वाक़िफ़ थे, उनकी पाकीज़ा और मज़बूत सीरत, उनकी ग़ैर-मामूली क़ाबिलियत और रहनुमाई और हुकूमत करने की पैदाइशी सलाहियत के बारे में सब जानते थे। तलमूद और यूसीफ़ूस की रिवायतें अगर सही हैं तो हज़रत मूसा (अलैहि॰) ने इन पैदाइशी क़ाबिलियतों के अलावा फ़िरऔन के यहाँ उलूम व फ़ुनून (ज्ञान-विज्ञान) और हुक्मरानी व सिपहसालारी की वह पूरी तालीम व तरबियत भी हासिल की थी जो शाही ख़ानदान के लोगों

يَأْتُوكَ بِكُلِّ سٰحِرٍ عَلِيمٍ ﴿١١٢﴾ وَجَآءَ السَّحَرَةُ فِرْعَوْنَ قَالُوٓا إِنَّ لَنَا
لَأَجْرًا إِن كُنَّا نَحْنُ الْغٰلِبِينَ ﴿١١٣﴾ قَالَ نَعَمْ وَإِنَّكُمْ لَمِنَ الْمُقَرَّبِينَ ﴿١١٤﴾

हरकारे भेज दीजिए (112) कि हर फ़न के माहिर जादूगर को आपके पास ले आएँ।[89] (113) चुनाँचे जादूगर फ़िरऔन के पास आ गए। उन्होंने कहा, "अगर हम ग़ालिब रहे तो हमें इसका इनाम तो ज़रूर मिलेगा?" (114) फ़िरऔन ने जवाब दिया, "हाँ, और तुम

को दी जाती थी, और उस ज़माने में जबकि वे शहज़ादे की हैसियत से रह रहे थे हब्शा की मुहिम (अभियान) पर जाकर वे अपने आपको एक बेहतरीन जनरल भी साबित कर चुके थे। फिर जो थोड़ी-बहुत कमज़ोरियाँ शाही महलों में परवरिश पाने और फ़िरऔनी निज़ाम के अन्दर हुकूमत के मनसबों पर रहने की वजह से उनमें पाई जाती थीं, वे भी आठ-दस साल मदयन के इलाक़े में रेगिस्तानी ज़िन्दगी गुज़ारने और बकरियाँ चराने की बदौलत दूर हो चुकी थीं और अब फ़िरऔनी दरबार के सामने ऐसा पुख़्ता उम्र का संजीदा और दुनिया से बेनियाज़ आदमी, जो दुनिया देखे हुए था, पैग़म्बरी का दावा लिए खड़ा था जिसकी बात को किसी भी हालत में हवा का झोंका समझकर उड़ाया न जा सकता था। दूसरी वजह यह थी कि लाठी और चमकते हुए हाथ की निशानियाँ देखकर फ़िरऔन और उसके दरबारी बुरी तरह रौब में आ चुके थे और उनको तक़रीबन यह यक़ीन हो गया था कि यह शख़्स हक़ीक़त में कोई फ़ौक़ुल-फ़ितरी क़ुव्वत (पराभौतिक शक्ति) अपने पीछे रखता है। उनका हज़रत मूसा (अलैहि॰) को एक तरफ़ जादूगर भी कहना और फिर दूसरी तरफ़ यह अन्देशा भी ज़ाहिर करना कि यह हमको इस सरज़मीन की हुकूमत से बेदख़ल करना चाहता है, एक आपस में टकरानेवाला बयान था और उस बौखलाहट का सुबूत था जो उनपर पैग़म्बरी के इस सबसे पहले मुज़ाहरे (प्रदर्शन) से छा गई थी, अगर हक़ीक़त में वे हज़रत मूसा (अलैहि॰) को जादूगर समझते तो हरगिज़ उनसे किसी सियासी इंक़िलाब का अन्देशा न करते; क्योंकि जादू के बलबूते पर कभी दुनिया में कोई सियासी इंक़िलाब नहीं हुआ है।

89. फ़िरऔनी दरबारियों की इस बात से साफ़ मालूम होता है कि उनके ज़ेहन में ख़ुदाई निशान और जादू के नुमायाँ फ़र्क़ का तसव्वुर बिलकुल साफ़ तौर पर मौजूद था। वे जानते थे कि ख़ुदाई निशान से हक़ीक़ी तबदीली पैदा होती है और जादू महज़ नज़र और मन को मुतास्सिर (प्रभावित) करके चीज़ों में एक ख़ास तरह की तबदीली महसूस कराता है। इसी बिना पर उन्होंने हज़रत मूसा (अलैहि॰) के पैग़म्बरी के दावे को रद्द करने के लिए कहा कि यह शख़्स जादूगर है, यानी लाठी हक़ीक़त में साँप नहीं बन गई कि उसे ख़ुदाई निशान माना जाए, बल्कि सिर्फ़ हमें ऐसा नज़र आया कि मानो साँप था, जैसा कि हर जादूगर कर लेता है। फिर उन्होंने मशवरा दिया कि पूरे मुल्क के माहिर जादूगरों को बुलाया जाए और उनके ज़रिए से लाठियों और रस्सियों को साँपों में बदलकर लोगों को दिखाया जाए; ताकि आम लोगों के दिलों में इस

قَالُوْا يٰمُوْسٰٓى اِمَّآ اَنْ تُلْقِيَ وَاِمَّآ اَنْ نَّكُوْنَ نَحْنُ الْمُلْقِيْنَ ﴿۱۱۵﴾ قَالَ
اَلْقُوْا ۚ فَلَمَّآ اَلْقَوْا سَحَرُوْٓا اَعْيُنَ النَّاسِ وَاسْتَرْهَبُوْهُمْ وَجَآءُوْ بِسِحْرٍ
عَظِيْمٍ ﴿۱۱۶﴾ وَاَوْحَيْنَآ اِلٰى مُوْسٰٓى اَنْ اَلْقِ عَصَاكَ ۚ فَاِذَا هِيَ تَلْقَفُ مَا
يَاْفِكُوْنَ ﴿۱۱۷﴾ فَوَقَعَ الْحَقُّ وَبَطَلَ مَا كَانُوْا يَعْمَلُوْنَ ﴿۱۱۸﴾ فَغُلِبُوْا هُنَالِكَ
وَانْقَلَبُوْا صٰغِرِيْنَ ﴿۱۱۹﴾ وَاُلْقِيَ السَّحَرَةُ سٰجِدِيْنَ ﴿۱۲۰﴾ قَالُوْٓا اٰمَنَّا بِرَبِّ

राज-दरबार में क़रीबी होगे।" (115) फिर उन्होंने मूसा से कहा, "तुम फेंकते हो या हम फेंकें?" (116) मूसा ने जवाब दिया, "तुम ही फेंको।" उन्होंने जो अपने अंछर फेंके तो निगाहों पर जादू और दिलों में डर पैदा कर दिया और बड़ा ही ज़बरदस्त जादू बना लाए। (117) हमने मूसा को इशारा किया कि फेंक अपनी लाठी। उसका फेंकना था कि देखते ही देखते वह उनके उस झूठे तिलिस्म (जादू) को निगलती चली गई।[90]

(118) इस तरह जो हक़ था, वह हक़ साबित हुआ और जो कुछ उन्होंने बना रखा था, वह बातिल (असत्य) होकर रह गया। (119) फ़िरऔन और उसके साथी मुक़ाबले के मैदान में हार गए और (कामयाब होने के बजाए) उलटे रुसवा हो गए। (120) और जादूगरों का हाल यह हुआ कि मानो किसी चीज़ ने अन्दर से उन्हें सजदे में गिरा दिया। (121) कहने लगे, "हमने मान लिया रब्बुल-आलमीन (सारे जहानों के

पैग़म्बराना मोजिज़े से जो डर बैठ गया है यह अगर पूरे तौर पर दूर न हो तो कम से कम शक ही में बदल जाए।

90. यह गुमान करना सही नहीं है कि असा (मूसा अलैहि. की लाठी) उन लाठियों और रस्सियों को निगल गया जो जादूगरों ने फेंकी थी और साँप और अज़दहे (अजगर) बनी दिखाई दे रही थीं। क़ुरआन जो कुछ कह रहा है वह यह है कि असा ने साँप बनकर उनके उस फ़रेब में डालनेवाले जादू को निगलना शुरू कर दिया जो उन्होंने तैयार किया था। इसका साफ़ मतलब यह मालूम होता है कि यह साँप जिधर-जिधर गया वहाँ से जादू का वह असर ख़त्म होता चला गया जिसकी वजह से लाठियाँ और रस्सियाँ साँपों की तरह लहराती नज़र आती थीं, और उस (असा) के एक ही बार घूमने से जादूगरों की हर लाठी, लाठी और हर रस्सी, रस्सी बनकर रह गई। (और ज़्यादा तशरीह के लिए देखें— सूरा-20, ताहा, हाशिया-42)

الْعٰلَمِيْنَ ﴿١٢١﴾ رَبِّ مُوْسٰى وَهٰرُوْنَ ﴿١٢٢﴾ قَالَ فِرْعَوْنُ اٰمَنْتُمْ بِهٖ قَبْلَ
اَنْ اٰذَنَ لَكُمْ ۚ اِنَّ هٰذَا لَمَكْرٌ مَّكَرْتُمُوْهُ فِي الْمَدِيْنَةِ لِتُخْرِجُوْا مِنْهَآ
اَهْلَهَا ۚ فَسَوْفَ تَعْلَمُوْنَ ﴿١٢٣﴾ لَاُقَطِّعَنَّ اَيْدِيَكُمْ وَاَرْجُلَكُمْ مِّنْ
خِلَافٍ ثُمَّ لَاُصَلِّبَنَّكُمْ اَجْمَعِيْنَ ﴿١٢٤﴾ قَالُوْٓا اِنَّآ اِلٰى رَبِّنَا مُنْقَلِبُوْنَ ﴿١٢٥﴾
وَمَا تَنْقِمُ مِنَّآ اِلَّآ اَنْ اٰمَنَّا بِاٰيٰتِ رَبِّنَا لَمَّا جَآءَتْنَا ۚ رَبَّنَآ اَفْرِغْ

रब) को, (122) उस रब को जिसे मूसा और हारून मानते हैं।"[91]

(123) फ़िरऔन ने कहा, "तुम उसपर ईमान ले आए, इससे पहले कि मैं तुम्हें इजाज़त दूँ? यक़ीनन यह कोई ख़ुफ़िया साज़िश थी जो तुम लोगों ने इस राजधानी में की, ताकि इसके मालिकों को हुकूमत से बेदख़ल कर दो। अच्छा, तो इसका नतीजा अब तुम्हें मालूम हुआ जाता है। (124) मैं तुम्हारे हाथ-पाँव उलटी दिशाओं से कटवा दूँगा और इसके बाद तुम सबको सूली पर चढ़ाऊँगा।"

(125) उन्होंने जवाब दिया, "बहरहाल हमें पलटना अपने रब ही की तरफ़ है। (126) तू जिस बात पर हमसे बदला लेना चाहता है, वह इसके सिवा कुछ नहीं कि हमारे रब की निशानियाँ जब हमारे सामने आ गईं तो हमने उन्हें मान लिया। ऐ रब! हमपर

91. इस तरह अल्लाह तआला ने फ़िरऔनियों की चाल को उलटकर उन्हीं पर पलट दिया। उन्होंने पूरे मुल्क के माहिर जादूगरों को बुलाकर सबके सामने इसलिए जादू का मुज़ाहिरा (प्रदर्शन) कराया था कि आम लोगों को हज़रत मूसा (अलैहि॰) के जादूगर होने का यक़ीन दिलाएँ या कम-से-कम शक ही में डाल दें। लेकिन इस मुक़ाबले में हार खा जाने के बाद ख़ुद उनके अपने बुलाए हुए माहिर जादूगरों ने एक आवाज़ में फ़ैसला कर दिया कि हज़रत मूसा (अलैहि॰) जो चीज़ पेश कर रहे हैं वह हरगिज़ जादू नहीं है, बल्कि यक़ीनन सारे जहानों के रब की ताक़त का करिश्मा है जिसके आगे किसी जादू का ज़ोर नहीं चल सकता। ज़ाहिर है कि जादू को ख़ुद जादूगरों से बढ़कर और कौन जान सकता था। लिहाज़ा जब उन्होंने अमली तजरिबे और आज़माइश के बाद गवाही दे दी कि यह जादू नहीं है तो फिर फ़िरऔन और उसके दरबारियों के लिए मुल्क के आम लोगों को यह यक़ीन दिलाना बिलकुल नामुमकिन हो गया कि मूसा (अलैहि॰) सिर्फ़ एक जादूगर है।

عَلَيْنَا صَبْرًا وَّ تَوَفَّنَا مُسْلِمِيْنَ ﴿۱۲۶﴾ وَقَالَ الْمَلَاُ مِنْ قَوْمِ فِرْعَوْنَ ع ۱۸
اَتَذَرُ مُوْسٰى وَقَوْمَهٗ لِيُفْسِدُوْا فِى الْاَرْضِ وَيَذَرَكَ وَاٰلِهَتَكَ ؕ قَالَ
سَنُقَتِّلُ اَبْنَآءَهُمْ وَنَسْتَحْىٖ نِسَآءَهُمْ ۚ وَاِنَّا فَوْقَهُمْ قٰهِرُوْنَ ﴿۱۲۷﴾

सब्र की बारिश कर और हमें दुनिया से उठा तो इस हाल में कि हम तेरे फ़रमाँबरदार हों।"[92]

(127) फ़िरऔन से उसकी क़ौम के सरदारों ने कहा, "क्या तू मूसा और उसकी क़ौम को यूँ ही छोड़ देगा कि देश में बिगाड़ फैलाएँ और वह तेरी और तेरे माबूदों की बन्दगी छोड़ बैठे?" फ़िरऔन ने जवाब दिया, "मैं उनके बेटों को क़त्ल कराऊँगा और उनकी औरतों को जीता रहने दूँगा[93], हमारी हुकूमत की पकड़ उनपर मज़बूत है।"

92. फ़िरऔन ने पाँसा पलटते देखकर आख़िरी चाल चली थी कि इस सारे मामले को मूसा (अलैहि॰) और जादूगरों की साज़िश ठहरा दे और जादूगरों को जिस्मानी अज़ाब (शारीरिक यातना) और क़त्ल की धमकी देकर उनसे अपने इस इलज़ाम को क़बूल करा ले। लेकिन यह चाल भी उलटी पड़ी। जादूगरों ने अपने आपको हर सज़ा के लिए पेश करके साबित कर दिया कि उनका मूसा (अलैहि॰) की सच्चाई पर ईमान लाना किसी साज़िश का नहीं, बल्कि सच्चे दिल से हक़ को क़बूल करने का नतीजा था। अब उस (फ़िरऔन) के लिए इसके सिवा कोई रास्ता न बचा कि हक़ और इनसाफ़ का ढोंग जो वह रचाना चाहता था उसे छोड़कर साफ़-साफ़ ज़ुल्मो-सितम शुरू कर दे।

इस मक़ाम पर यह बात भी देखने के क़ाबिल है कि चन्द लम्हों के अन्दर ईमान ने उन जादूगरों के किरदार में कितना बड़ा इंक़िलाब पैदा कर दिया। अभी थोड़ी देर पहले इन्हीं जादूगरों के घटियापन और पस्ती का यह हाल था कि अपने बाप-दादा के धर्म की मदद व हिमायत के लिए घरों से चलकर आए थे और फ़िरऔन से पूछ रहे थे कि अगर हमने अपने मज़हब को मूसा के हमले से बचा लिया तो सरकार से हमें इनाम तो मिलेगा ना? या अब जो ईमान की नेमत नसीब हुई तो उन्हीं की हक़-परस्ती और बुलन्द-हिम्मती इस हद को पहुँच गई कि थोड़ी देर पहले जिस बादशाह के आगे लालच के मारे बिछे जा रहे थे अब उसकी बड़ाई, ताक़त और जाहो-जलाल को ठोकर मार रहे हैं और उन बुरी-से-बुरी सज़ाओं को भुगतने के लिए तैयार हैं जिनकी धमकी वह दे रहा है, मगर उस हक़ को छोड़ने को तैयार नहीं हैं जिसकी सच्चाई उनपर खुल चुकी है।

93. वाज़ेह रहे कि सितम का एक ज़माना वह था जो हज़रत मूसा (अलैहि॰) की पैदाइश से पहले रअमसीस दोम के ज़माने में जारी हुआ था, और सितम का दूसरा दौर यह है जो हज़रत मूसा (अलैहि॰) को पैग़म्बरी मिलने के बाद शुरू हुआ। दोनों में यह बात शामिल है कि बनी-इसराईल

قَالَ مُوسٰى لِقَوْمِهِ اسْتَعِيْنُوْا بِاللّٰهِ وَاصْبِرُوْا ۚ اِنَّ الْاَرْضَ لِلّٰهِ ۙ
يُوْرِثُهَا مَنْ يَّشَآءُ مِنْ عِبَادِهٖ ؕ وَالْعَاقِبَةُ لِلْمُتَّقِيْنَ ﴿۱۲۸﴾ قَالُوْٓا اُوْذِيْنَا
مِنْ قَبْلِ اَنْ تَاْتِيَنَا وَمِنْۢ بَعْدِ مَا جِئْتَنَا ؕ قَالَ عَسٰى رَبُّكُمْ اَنْ
يُّهْلِكَ عَدُوَّكُمْ وَيَسْتَخْلِفَكُمْ فِى الْاَرْضِ فَيَنْظُرَ كَيْفَ تَعْمَلُوْنَ ﴿۱۲۹﴾
وَلَقَدْ اَخَذْنَآ اٰلَ فِرْعَوْنَ بِالسِّنِيْنَ وَنَقْصٍ مِّنَ الثَّمَرٰتِ لَعَلَّهُمْ
يَذَّكَّرُوْنَ ﴿۱۳۰﴾ فَاِذَا جَآءَتْهُمُ الْحَسَنَةُ قَالُوْا لَنَا هٰذِهٖ ۚ وَاِنْ تُصِبْهُمْ
سَيِّئَةٌ يَّطَّيَّرُوْا بِمُوْسٰى وَمَنْ مَّعَهٗ ؕ اَلَآ اِنَّمَا طٰٓئِرُهُمْ عِنْدَ اللّٰهِ وَلٰكِنَّ

(128) मूसा ने अपनी क़ौम से कहा, “अल्लाह से मदद माँगो और सब्र करो, ज़मीन अल्लाह की है, अपने बन्दों में से जिसको चाहता है उसका वारिस बना देता है, और आख़िरी कामयाबी उन्हीं के लिए है जो उससे डरते हुए काम करें।” (129) उसकी क़ौम के लोगों ने कहा, “तेरे आने से पहले भी हम सताए जाते थे और अब तेरे आने पर भी सताए जा रहे हैं।” उसने जवाब दिया, “क़रीब है वह वक़्त कि तुम्हारा रब तुम्हारे दुश्मन को हलाक कर दे और तुमको ज़मीन में ‘ख़लीफ़ा’ बनाए, फिर देखे कि तुम कैसे अमल करते हो?”

(130) हमने फ़िरऔन के लोगों को कई साल तक क़हत (अकाल) और पैदावार की कमी में डाले रखा कि शायद उनको होश आए। (131) मगर उनका हाल यह था कि जब अच्छा वक़्त आता तो कहते कि हम इसी के हक़दार हैं, और जब बुरा वक़्त आता तो मूसा और उसके साथियों को अपने लिए अपशकुन ठहराते, हालाँकि हक़ीक़त में

के बेटों को क़त्ल कराया गया और उनकी बेटियों को जीता छोड़ दिया; गया ताकि धीरे-धीरे उनकी नस्ल ख़त्म हो जाए और यह क़ौम दूसरी क़ौमों में गुम होकर रह जाए। शायद वह कतबा (आलेख) इसी दौर का है जो 1896 ई॰ में मिस्र के क़दीम आसार (प्राचीन अवशेष) की खुदाई के दौरान मिला था और जिसमें यही फ़िरऔन मुनफ़ताह अपने कारनामों और फ़त्हों (विजयों) का ज़िक्र करने के बाद लिखता है कि, “और इसराईल को मिटा दिया गया, उसका बीज तक बाक़ी नहीं।” (ज़्यादा तफ़सील के लिए देखें— सूरा-40, मोमिन, आयत-25)

اَكۡثَرَهُمۡ لَا يَعۡلَمُوۡنَ ﴿۱۳۱﴾ وَقَالُوۡا مَهۡمَا تَاۡتِنَا بِهٖ مِنۡ اٰيَةٍ لِّتَسۡحَرَنَا بِهَا ۙ
فَمَا نَحۡنُ لَكَ بِمُؤۡمِنِيۡنَ ﴿۱۳۲﴾ فَاَرۡسَلۡنَا عَلَيۡهِمُ الطُّوۡفَانَ وَالۡجَرَادَ
وَالۡقُمَّلَ وَالضَّفَادِعَ وَالدَّمَ اٰيٰتٍ مُّفَصَّلٰتٍ فَاسۡتَكۡبَرُوۡا وَكَانُوۡا
قَوۡمًا مُّجۡرِمِيۡنَ ﴿۱۳۳﴾ وَلَمَّا وَقَعَ عَلَيۡهِمُ الرِّجۡزُ قَالُوۡا يٰمُوۡسَى ادۡعُ لَنَا

उनका अपशकुन तो अल्लाह के पास था, मगर उनमें से ज़्यादातर नहीं जानते थे। (132) उन्होंने मूसा से कहा कि "तू हमपर जादू चलाने के लिए भले ही कोई निशानी ले आए, हम तो तेरी बात माननेवाले नहीं हैं।"[94] (133) आख़िरकार हमने उनपर तूफ़ान भेजा,[95] टिड्डी दल छोड़े, सुरसुरियाँ[96] फैलाईं, मेंढक निकाले और ख़ून बरसाया। ये सब निशानियाँ अलग-अलग करके दिखाईं, मगर वे सरकशी दिखाते चले गए और वे बड़े ही मुजरिम लोग थे। (134) जब कभी उनपर आफ़त आ पड़ती तो कहते, "ऐ मूसा! तुझे

94. यह इन्तिहाई हठधर्मी और बात बनाना था कि फ़िरऔन के दरबारी उस चीज़ को भी जादू ठहरा रहे थे जिसके बारे में वे ख़ुद भी यक़ीन के साथ जानते थे कि वह जादू का नतीजा नहीं हो सकती। शायद कोई बेवक़ूफ़ आदमी भी यह न मानेगा कि एक पूरे मुल्क में अकाल पड़ जाना और धरती की पैदावार में लगातार कमी होना किसी जादू का करिश्मा हो सकता है। इसी बिना पर क़ुरआन मजीद कहता है कि "जब हमारी निशानियाँ खुले तौर पर उनकी निगाहों के सामने आईं तो उन्होंने कहा कि यह तो खुला जादू है, हालाँकि उनके दिल अन्दर से मान चुके थे, मगर उन्होंने सिर्फ़ ज़ुल्म और सरकशी की राह से उनका इनकार किया।" (सूरा-27, नम्ल, आयत- 13-14)

95. शायद बारिश का तूफ़ान मुराद है जिसमें ओले भी बरसे थे। अगरचे तूफ़ान दूसरी चीज़ों का भी हो सकता है लेकिन बाइबल में ओलों की बारिश के तूफ़ान का ही ज़िक्र है, इसलिए हम इसी मानी व मतलब को अहमियत देते हैं।

96. अस्ल में अरबी लफ़्ज़ "क़ुम्मल" इस्तेमाल हुआ है जिसके कई मतलब हैं। जूँ, छोटी मक्खी, छोटी टिड्डी, मच्छर, सुरसुरी वग़ैरा। शायद यह जामेअ् (व्यापक) लफ़्ज़ इसलिए इस्तेमाल किया गया है कि एक साथ जुओं और मच्छरों ने आदमियों पर और सुरसुरियों (घुन के कीड़ों) ने अनाज के ढेरों पर हमला किया होगा। (तक़ाबुल के लिए देखें— बाइबल की किताब निष्कासन, अध्याय 7 से 12। इसके अलावा देखें सूरा-43, ज़ुख़रुफ़, हाशिया-43)

رَبَّكَ بِمَا عَهِدَ عِنْدَكَ ۚ لَئِنْ كَشَفْتَ عَنَّا الرِّجْزَ لَنُؤْمِنَنَّ لَكَ
وَلَنُرْسِلَنَّ مَعَكَ بَنِيٓ إِسْرَآءِيلَ ﴿١٣٤﴾ فَلَمَّا كَشَفْنَا عَنْهُمُ الرِّجْزَ إِلَىٰٓ
أَجَلٍ هُمْ بَالِغُوهُ إِذَا هُمْ يَنْكُثُونَ ﴿١٣٥﴾ فَانْتَقَمْنَا مِنْهُمْ فَأَغْرَقْنٰهُمْ
فِي الْيَمِّ بِأَنَّهُمْ كَذَّبُوا بِاٰيٰتِنَا وَكَانُوا عَنْهَا غٰفِلِينَ ﴿١٣٦﴾ وَأَوْرَثْنَا الْقَوْمَ
الَّذِينَ كَانُوا يُسْتَضْعَفُونَ مَشَارِقَ الْأَرْضِ وَمَغَارِبَهَا الَّتِي بٰرَكْنَا
فِيهَا ۖ وَتَمَّتْ كَلِمَتُ رَبِّكَ الْحُسْنٰى عَلٰى بَنِيٓ إِسْرَآءِيلَ ۙ بِمَا صَبَرُوا ۖ
وَدَمَّرْنَا مَا كَانَ يَصْنَعُ فِرْعَوْنُ وَقَوْمُهُ وَمَا كَانُوا يَعْرِشُونَ ﴿١٣٧﴾

अपने रब की तरफ़ से जो मंसब हासिल है उसकी बिना पर हमारे लिए दुआ कर। अगर अब के तू हमपर से यह आफ़त टलवा दे तो हम तेरी बात मान लेंगे और बनी-इसराईल को तेरे साथ भेज देंगे।" (135) मगर जब हम उनपर से अपना अज़ाब एक मुक़र्रर वक़्त के लिए, जिसको वे बहरहाल पहुँचनेवाले थे, हटा लेते तो वे यकायक अपने वादे से फिर जाते। (136) तब हमने उनसे बदला लिया और उन्हें समन्दर में डुबो दिया; क्योंकि उन्होंने हमारी निशानियों को झुठलाया था और उनसे बेपरवाह हो गए थे। (137) और उनकी जगह हमने उन लोगों को जो कमज़ोर बनाकर रखे गए थे, उस सरज़मीन के पूरब व पश्चिम का वारिस बना दिया जिसे हमने बरकतों से मालामाल किया था।[97] इस तरह बनी-इसराईल के हक़ में तेरे रब का भलाई का वादा पूरा हुआ; क्योंकि उन्होंने सब्र से काम लिया था और फ़िरऔन और उसकी क़ौम का वह सब कुछ बरबाद कर दिया जो वे बनाते और चढ़ाते थे।

97. यानी बनी-इसराईल को फ़िलस्तीन की सरज़मीन का वारिस बना दिया। कुछ लोगों ने इसका मतलब यह लिया है कि बनी-इसराईल खुद मिस्र की सरज़मीन के मालिक बना दिए गए। लेकिन इस मतलब को मान लेने के लिए न तो क़ुरआन करीम के इशारे काफ़ी वाज़ेह (स्पष्ट) हैं और न तारीख़ (इतिहास) व आसार (अवशेषों) ही से इसकी कोई गवाही मिलती है। इसलिए इस मतलब को मानने में हमें झिझक है। (देखें— सूरा-18, कहफ़, हाशिया-57; सूरा-26 शुअरा, हाशिया-45)

وَجٰوَزْنَا بِبَنِيْٓ اِسْرَآءِيْلَ الْبَحْرَ فَاَتَوْا عَلٰى قَوْمٍ يَّعْكُفُوْنَ عَلٰٓى
اَصْنَامٍ لَّهُمْ ۚ قَالُوْا يٰمُوْسَى اجْعَلْ لَّنَآ اِلٰهًا كَمَا لَهُمْ اٰلِهَةٌ ۭ قَالَ اِنَّكُمْ
قَوْمٌ تَجْهَلُوْنَ ۝١٣٨ اِنَّ هٰٓؤُلَآءِ مُتَبَّرٌ مَّا هُمْ فِيْهِ وَبٰطِلٌ مَّا كَانُوْا

(138) बनी-इसराईल को हमने समन्दर से गुज़ार दिया, फिर वे चले और रास्ते में एक ऐसी क़ौम पर उनका गुज़र हुआ जो अपने कुछ बुतों की गिरवीदा (मोहित) बनी हुई थी। कहने लगे, "ऐ मूसा! हमारे लिए भी कोई ऐसा माबूद बना दे जैसे इन लोगों के माबूद हैं।"[98] मूसा ने कहा, "तुम लोग बड़ी नासमझी की बात करते हो। (139) ये लोग जिस तरीक़े की पैरवी कर रहे हैं, वह तो बरबाद होनेवाला है और जो अमल वे कर रहे

98. बनी-इसराईल ने जिस जगह से लाल सागर को पार किया वह शायद मौजूदा स्वेज़ और इस्माईलिया के बीच कोई जगह थी, जहाँ से गुज़रकर ये लोग प्रायद्वीप 'सीना' के दक्षिणी इलाक़े की तरफ़ समुद्र तट के किनारे-किनारे चले। उस ज़माने में प्रायद्वीप सीना का पश्चिमी और उत्तरी हिस्सा मिस्र की सल्तनत में शामिल था। दक्षिण के इलाक़े में मौजूदा शहर तूर और अबू-ज़नीमा के बीच तांबे और फ़िरोज़े (नीलमणि) की खदानें थीं, जिनसे मिस्र के लोग बहुत फ़ायदा उठाते थे और उन खदानों की हिफ़ाज़त के लिए मिस्रियों ने कुछ जगहों पर छावनियाँ क़ायम कर रखी थीं। इन ही छावनियों में से एक छावनी 'मफ़्क़ा' के मक़ाम पर थी जहाँ मिस्रियों का एक बहुत बड़ा बुतख़ाना था जिसके आसार अब भी प्रायद्वीप के दक्षिण-पश्चिमी इलाक़े में पाए जाते हैं। इसके क़रीब एक और मक़ाम भी था जहाँ क़दीम ज़माने से सामी क़ौमों की चाँद देवी का मन्दिर था। शायद इन्हीं मक़ामात में से किसी के पास से गुज़रते हुए बनी-इसराईल को, जिनपर मिस्रवालों की ग़ुलामी ने उनके असरात का अच्छा ख़ासा ठप्पा लगा रखा था, एक बनावटी ख़ुदा की ज़रूरत महसूस हुई होगी।

बनी-इसराईल की ज़ेहनियत को मिस्रवालों की ग़ुलामी ने जैसा कुछ बिगाड़ दिया था, उसका अन्दाज़ा इस बात से आसानी से किया जा सकता है कि मिस्र से निकल आने के 70 वर्ष बाद हज़रत मूसा (अलैहि०) के पहले ख़लीफ़ा यूशअ्-बिन-नून अपनी आख़िरी तक़रीर में बनी-इसराईल के आम लोगों से ख़िताब करते हुए फ़रमाते हैं :

"तुम ख़ुदावन्द का डर रखो और नेक-नीयती और सच्चाई के साथ उसकी परस्तिश करो और उन देवताओं को दूर कर दो जिनकी परस्तिश तुम्हारे बाप-दादा बड़े दरिया के पार और मिस्र में करते थे और ख़ुदावन्द की परस्तिश करो। और अगर ख़ुदावन्द की परस्तिश तुमको बुरी मालूम होती हो तो आज ही तुम उसे जिसकी परस्तिश करोगे चुन लो..... अब रही मेरी और मेरे घराने की बात सो हम तो ख़ुदावन्द ही की परस्तिश करेंगे।" (येशू, 24:14-15)

इससे अन्दाज़ा होता है कि 40 साल तक हज़रत मूसा (अलैहि०) की और 28 साल तक हज़रत

يَعْمَلُوْنَ ﴿١٣٩﴾ قَالَ اَغَيْرَ اللّٰهِ اَبْغِيْكُمْ اِلٰهًا وَّهُوَ فَضَّلَكُمْ عَلَى
الْعٰلَمِيْنَ ﴿١٤٠﴾ وَاِذْ اَنْجَيْنٰكُمْ مِّنْ اٰلِ فِرْعَوْنَ يَسُوْمُوْنَكُمْ سُوْٓءَ
الْعَذَابِ ۚ يُقَتِّلُوْنَ اَبْنَآءَكُمْ وَيَسْتَحْيُوْنَ نِسَآءَكُمْ ۭ وَفِيْ ذٰلِكُمْ بَلَاۗءٌ
مِّنْ رَّبِّكُمْ عَظِيْمٌ ﴿١٤١﴾ وَوٰعَدْنَا مُوْسٰى ثَلٰثِيْنَ لَيْلَةً وَّاَتْمَمْنٰهَا بِعَشْرٍ فَتَمَّ ع ١٦/٦
مِيْقَاتُ رَبِّهٖٓ اَرْبَعِيْنَ لَيْلَةً ۚ وَقَالَ مُوْسٰى لِاَخِيْهِ هٰرُوْنَ اخْلُفْنِيْ فِيْ

हैं, वह सरासर बातिल है।" (140) फिर मूसा ने कहा, "क्या मैं अल्लाह के सिवा कोई और माबूद तुम्हारे लिए तलाश करूँ? हालाँकि वह अल्लाह ही है जिसने तुम्हें दुनिया-भर की क़ौमों पर बड़ाई दी है। (141) और (अल्लाह फ़रमाता है) वह वक़्त याद करो जब हमने फ़िरऔनवालों से तुम्हें नजात दी, जिनका हाल यह था कि तुम्हें सख़्त अज़ाब में डाले रखते थे, तुम्हारे बेटों को क़त्ल करते और तुम्हारी औरतों को ज़िन्दा रहने देते थे, और इसमें तुम्हारे रब की तरफ़ से तुम्हारी बड़ी आज़माइश थी।"

(142) हमने मूसा को तीस रात व दिन के लिए (सीना पहाड़ पर) तलब किया और बाद में दस दिन और बढ़ा दिए। इस तरह उसके रब की मुक़र्रर की हुई मुद्दत पूरे चालीस दिन हो गई।[99] मूसा ने चलते हुए अपने भाई हारून से कहा कि "मेरे पीछे तुम

यूशअ् की तरबियत व रहनुमाई में ज़िन्दगी बसर कर लेने के बाद भी यह क़ौम अपने अन्दर से उन असरात को न निकाल सकी जो मिस्र के फ़िरऔनों की बन्दगी के दौर में उसकी नस-नस के अन्दर उतर गए थे। फिर भला यह कैसे मुमकिन था कि मिस्र से निकलने के बाद फ़ौरन ही जो बुतकदा (मूर्ति-स्थल) सामने आ गया था उसको देखकर इन बिगड़े हुए मुसलमानों में से बहुतों की पेशानियाँ (मस्तक) उस आस्ताने पर सजदा करने के लिए बेताब न हो जातीं जिसपर वे अपने पिछले आक़ाओं को माथा रगड़ते हुए देख चुके थे।

99. मिस्र से निकलने के बाद जब बनी-इसराईल की ग़ुलामोंवाली पाबन्दियाँ ख़त्म हो गईं और उन्हें एक ख़ुदमुख़्तार क़ौम की हैसियत हासिल हो गई तो ख़ुदा के हुक्म के तहत हज़रत मूसा (अलैहि॰) 'सीना' नाम के पहाड़ पर तलब किए गए, ताकि उन्हें बनी-इसराईल के लिए शरीअत (धर्म-विधान) दी जाए। चुनाँचे यह तलबी (बुलाया जाना), जिसका यहाँ ज़िक्र हो रहा है, इस सिलसिले की पहली तलबी थी और इसके लिए चालीस दिन की मुद्दत इसलिए मुक़र्रर की गई थी कि हज़रत मूसा (अलैहि॰) एक पूरा चिल्ला (चालीस दिन) पहाड़ पर गुज़ारें और रोज़े रखकर,

قَوۡمِیۡ وَاَصۡلِحۡ وَلَا تَتَّبِعۡ سَبِیۡلَ الۡمُفۡسِدِیۡنَ ﴿۱۴۲﴾ وَلَمَّا جَآءَ مُوۡسٰی
لِمِیۡقَاتِنَا وَكَلَّمَهٗ رَبُّهٗ ۙ قَالَ رَبِّ اَرِنِیۡۤ اَنۡظُرۡ اِلَیۡكَ ؕ قَالَ لَنۡ تَرٰىنِیۡ
وَلٰكِنِ انۡظُرۡ اِلَی الۡجَبَلِ فَاِنِ اسۡتَقَرَّ مَكَانَهٗ فَسَوۡفَ تَرٰىنِیۡ ۚ فَلَمَّا تَجَلّٰی

मेरी क़ौम में मेरी जानशीनी करना और ठीक काम करते रहना और बिगाड़ पैदा करनेवालों के तरीक़े पर न चलना।"[100] (143) जब वह हमारे मुक़र्रर किए हुए वक़्त पर पहुँचा और उसके रब ने उससे बात की तो उसने दुआ की कि "ऐ रब! मुझे देखने की ताक़त दे कि मैं तुझे देखूँ।" फ़रमाया, "तू मुझे नहीं देख सकता। हाँ, ज़रा सामने के पहाड़ की तरफ़ देख, अगर वह अपनी जगह क़ायम रह जाए तो ज़रूर तू मूझे देख

रात-दिन इबादत और ग़ौर व फ़िक्र करके और दिल व दिमाग़ को यकसू (एकाग्र) करके उस भारी बात को क़बूल करने और हासिल करने की ताक़त अपने अन्दर पैदा करें, जो उनपर ख़ुदा की तरफ़ से उतारी जानेवाली थी।

हज़रत मूसा (अलैहि.) ने इस हुक्म को पूरा करने के लिए 'सीना' पहाड़ पर जाते वक़्त बनी-इसराईल को उस मक़ाम पर छोड़ा था, जो मौजूदा नक़्शे (मानचित्र) में बनी-सालेह और सीना पहाड़ के दरमियान 'वादियुश-शेख़' के नाम से जाना जाता है। इस वादी (घाटी) का वह हिस्सा जहाँ बनी-इसराईल ने पड़ाव किया था आजकल 'मैदानुर्राहा' कहलाता है। वादी के एक सिरे पर वह पहाड़ स्थित है जहाँ मक़ामी रिवायत के मुताबिक़ हज़रत सालेह (अलैहि.) समूद के इलाक़े से हिजरत करके तशरीफ़ ले आए थे। आज वहाँ उनकी यादगार में एक मस्जिद बनी हुई है। दूसरी तरफ़ एक और पहाड़ी 'जबले-हारून' नाम की है, जहाँ कहा जाता है कि जब बनी-इसराईल ने बछड़े की पूजा की तो इससे नाराज़ होकर हज़रत हारून (अलैहि.) इसी पहाड़ी पर जा बैठे थे। तीसरी तरफ़ सीना का बुलन्द पहाड़ है जिसका ऊपरी हिस्सा अकसर बादलों से ढका रहता है और जिसकी बुलन्दी 7359 फ़ुट है, इस पहाड़ की चोटी पर आज तक वह गुफा आम लोगों के लिए देखने लायक़ मक़ाम बनी हुई है जहाँ हज़रत मूसा (अलैहि.) ने ख़ुदा के हुक्म से चालीस दिन गुज़ारे थे। उसके क़रीब मुसलमानों की एक मस्जिद और ईसाइयों का एक गिरजाघर मौजूद है और पहाड़ के दामन में रूमी बादशाह 'जस्टनीन' के ज़माने की एक ख़ानक़ाह आज तक मौजूद है। (तफ़सील के लिए देखें– सूरा-27, नम्ल, हाशिया 9 और 10)

100. हज़रत हारून (अलैहि.) अगरचे हज़रत मूसा (अलैहि.) से तीन साल बड़े थे, लेकिन पैग़म्बरी के काम में हज़रत मूसा के मातहत और मददगार थे। उनकी पैग़म्बरी मुस्तक़िल (स्थायी रूप से) न थी, बल्कि हज़रत मूसा (अलैहि.) ने अल्लाह तआला से दरख़ास्त करके उनको अपने वज़ीर की हैसियत से माँगा था जैसा कि आगे चलकर क़ुरआन मजीद में साफ़-साफ़ बयान हुआ है।

رَبُّهٗ لِلْجَبَلِ جَعَلَهٗ دَكًّا وَّخَرَّ مُوْسٰى صَعِقًا ۚ فَلَمَّاۤ اَفَاقَ قَالَ سُبْحٰنَكَ
تُبْتُ اِلَيْكَ وَاَنَا اَوَّلُ الْمُؤْمِنِيْنَ ﴿۱۴۳﴾ قَالَ يٰمُوْسٰۤى اِنِّى اصْطَفَيْتُكَ
عَلَى النَّاسِ بِرِسٰلٰتِىْ وَبِكَلَامِىْ ۖ فَخُذْ مَاۤ اٰتَيْتُكَ وَكُنْ مِّنَ
الشّٰكِرِيْنَ ﴿۱۴۴﴾ وَكَتَبْنَا لَهٗ فِى الْاَلْوَاحِ مِنْ كُلِّ شَىْءٍ مَّوْعِظَةً
وَّتَفْصِيْلًا لِّكُلِّ شَىْءٍ ۚ فَخُذْهَا بِقُوَّةٍ وَّاْمُرْ قَوْمَكَ يَاْخُذُوْا بِاَحْسَنِهَا ۗ
سَاُورِيْكُمْ دَارَ الْفٰسِقِيْنَ ﴿۱۴۵﴾ سَاَصْرِفُ عَنْ اٰيٰتِىَ الَّذِيْنَ يَتَكَبَّرُوْنَ

सकेगा।" चुनाँचे जब उसके रब ने पहाड़ पर तजल्ली की (आलोकित हुआ) तो उसे चकनाचूर कर दिया और मूसा ग़श खाकर गिर पड़ा। जब होश आया तो बोला, "पाक है तेरी ज़ात (सत्ता), मैं तेरे सामने तौबा करता हूँ और सबसे पहला ईमान लोनेवाला मैं हूँ।" (144) फ़रमाया, "ऐ मूसा! मैंने तमाम लोगों पर तरजीह देकर तुझे चुना कि मेरी पैग़म्बरी करे और मुझसे हमकलाम हो (यानी बातचीत करे)। तो जो कुछ मैं तुझे दूँ, उसे ले और शुक्र अदा कर।"

(145) इसके बाद हमने मूसा को ज़िन्दगी के हर शोबे (भाग) के बारे में नसीहत और हर पहलू के बारे में वाज़ेह हिदायत तख़्तियों पर लिखकर दे दी[101] और उससे कहा, "इन हिदायतों को मज़बूत हाथों से संभाल और अपनी क़ौम को हुक्म दे कि इनके बेहतर मफ़हूम की पैरवी करें,[102] बहुत जल्द मैं तुम्हें नाफ़रमानों के घर दिखाऊँगा।[103] (146) मैं अपनी निशानियों से उन लोगों की निगाहें फेर दूँगा, जो नाहक़ ज़मीन में बड़े

101. बाइबल में साफ़ तौर से बयान किया गया है कि ये दोनों तख़्तियाँ पत्थर की सिलें थी और उन तख़्तियों पर लिखने का काम बाइबल और क़ुरआन दोनों में अल्लाह तआला से जोड़ा गया है। हमारे पास कोई ऐसा ज़रिआ नहीं जिससे हम यह बात ठीक तौर से जान सकें कि क्या इन तख़्तियों पर लिखने का काम अल्लाह तआला ने सीधे तौर पर अपनी क़ुदरत से किया था, या किसी फ़रिश्ते से यह ख़िदमत ली थी या ख़ुद हज़रत मूसा का हाथ इस्तेमाल किया था। तक़ाबुल (तुलना) के लिए देखें— बाइबल, किताब निष्कासन, अध्याय-31, आयत-18; अध्याय-32, आयत-15,16 और इस्तिस्ना, अध्याय-5, आयत-6-22)

102. यानी अल्लाह के हुक्मों का वह साफ़ और सीधा मतलब लें जो आसानी से हर वह शख़्स समझ लेगा जिसकी नीयत में बिगाड़ या जिसके दिल में टेढ़ न हो। यह पाबन्दी इसलिए लगाई

فِي الْأَرْضِ بِغَيْرِ الْحَقِّ ۖ وَإِنْ يَرَوْا كُلَّ آيَةٍ لَا يُؤْمِنُوا بِهَا ۚ وَإِنْ يَرَوْا
سَبِيلَ الرُّشْدِ لَا يَتَّخِذُوهُ سَبِيلًا ۚ وَإِنْ يَرَوْا سَبِيلَ الْغَيِّ يَتَّخِذُوهُ
سَبِيلًا ۚ ذَٰلِكَ بِأَنَّهُمْ كَذَّبُوا بِآيَاتِنَا وَكَانُوا عَنْهَا غَافِلِينَ ﴿١٤٦﴾ وَالَّذِينَ
كَذَّبُوا بِآيَاتِنَا وَلِقَاءِ الْآخِرَةِ حَبِطَتْ أَعْمَالُهُمْ ۚ هَلْ يُجْزَوْنَ إِلَّا مَا

बनते हैं,[104] वे भले ही कोई निशानी देख लें, कभी उसपर ईमान न लाएँगे। अगर सीधा रास्ता उनके सामने आए तो उसे न अपनाएँगे और अगर टेढ़ा रास्ता दिखाई दे तो उसपर चल पड़ेंगे, इसलिए कि उन्होंने हमारी निशानियों को झुठलाया और उनसे बेपरवाई करते रहे। (147) हमारी निशानियों को जिस किसी ने झुठलाया और आख़िरत की पेशी का इनकार किया, उसके सारे आमाल (कर्म) अकारथ हो गए।[105] क्या लोग इसके सिवा

गई कि जो लोग हुक्मों के सीधे-साधे अलफ़ाज़ में से क़ानूनी एंच-पेंच और हीलों के रास्ते और फ़ितनों की गुंजाइश निकालते हैं, कहीं उनके बाल की खाल निकालने को अल्लाह की किताब की पैरवी न समझ लिया जाए।

103. यानी आगे चलकर तुम लोग उन क़ौमों के आसारे-क़दीमा (पुरातत्त्व) पर से गुज़रोगे जिन्होंने ख़ुदा की बन्दगी व इताअत से मुँह मोड़ा और ग़लत रवैये पर जमे रहे। उन आसार को देखकर तुम्हें ख़ुद मालूम हो जाएगा कि ऐसा रवैया अपनाने का क्या अंजाम होता है।

104. यानी मेरा क़ानूने-फ़ितरत (प्राकृतिक नियम) यही है कि ऐसे लोग किसी इबरतनाक चीज़ से इबरत और किसी सबक़आमोज़ (शिक्षाप्रद) चीज़ से सबक़ हासिल नहीं कर सकते।
"बड़ा बनना" या "तकब्बुर (घमण्ड) करना" क़ुरआन मजीद इस मानी में इस्तेमाल करता है कि बन्दा अपने आपको बन्दगी के मक़ाम से बहुत ऊँचा समझने लगे और ख़ुदा के हुक्मों की कुछ परवाह न करे, और ऐसा रवैया अपनाए मानो कि वह न ख़ुदा का बन्दा है और न ख़ुदा उसका रब है। इस ख़ुदसरी और सरकशी की कोई हक़ीक़त एक ग़लत और नामुनासिब घमण्ड के सिवा कुछ नहीं है, क्योंकि ख़ुदा की ज़मीन में रहते हुए एक बन्दे को किसी तरह यह हक़ पहुँचता ही नहीं कि किसी और का बन्दा बनकर रहे, इसी लिए कहा कि, "वे बिना किसी हक़ के धरती में बड़े बनते हैं।"

105. बरबाद हो गए यानी फले-फूले नहीं, बेफ़ायदा और बेकार निकले। इसलिए कि ख़ुदा के यहाँ इनसानी कोशिश व अमल के कामयाब होने का दारोमदार बिलकुल दो बातों पर है। एक यह कि वह कोशिश व अमल ख़ुदा के शरई क़ानून की पाबन्दी में हो। दूसरी यह कि इस कोशिश व अमल में दुनिया के बजाए आख़िरत की कामयाबी मक़सद हो। ये दो शर्तें जहाँ पूरी न होंगी वहाँ लाज़िमी तौर पर किया-धरा अकारथ जाएगा। जिसने ख़ुदा से हिदायत लिए बग़ैर बल्कि

كَانُوْا يَعْمَلُوْنَ ﴿١٤٧﴾ وَاتَّخَذَ قَوْمُ مُوْسٰى مِنْۢ بَعْدِهٖ مِنْ حُلِيِّهِمْ عِجْلًا
جَسَدًا لَّهٗ خُوَارٌ ؕ اَلَمْ يَرَوْا اَنَّهٗ لَا يُكَلِّمُهُمْ وَلَا يَهْدِيْهِمْ سَبِيْلًا ۘ
اِتَّخَذُوْهُ وَكَانُوْا ظٰلِمِيْنَ ﴿١٤٨﴾ وَلَمَّا سُقِطَ فِيْۤ اَيْدِيْهِمْ وَرَاَوْا اَنَّهُمْ قَدْ

कुछ और बदला पा सकते हैं कि जैसा करें वैसा भरें?"

(148) मूसा के पीछे[106] उसकी क़ौम के लोगों ने अपने गहनों से एक बछड़े का पुतला बनाया, जिसमें से बैल की-सी आवाज़ निकलती थी। क्या उन्हें नज़र न आता था कि वह न उनसे बोलता है, न किसी मामले में उनकी रहनुमाई करता है? मगर फिर भी उन्होंने उसे माबूद बना लिया, और वे बड़े ज़ालिम[107] थे। (149) फिर जब उनके धोखा

उससे मुँह मोड़कर बग़ावती अन्दाज़ में दुनिया में काम किया, ज़ाहिर है कि वह ख़ुदा से किसी अज्र की उम्मीद रखने का किसी तरह हक़दार नहीं हो सकता। और जिसने सब कुछ दुनिया ही के लिए किया, और आख़िरत के लिए कुछ न किया, खुली बात है कि आख़िरत में उसे कोई फल पाने की उम्मीद न रखनी चाहिए और कोई वजह नहीं कि वहाँ वह किसी तरह का फल पाए। अगर मेरी अपनी ज़मीन को (जिसका मैं मालिक हूँ) कोई शख़्स मेरी मरज़ी के ख़िलाफ़ इस्तेमाल करता रहा है तो वह मुझसे सज़ा पाने के सिवा आख़िर और क्या पाने का हक़दार हो सकता है? और अगर उस ज़मीन पर अपने ग़ासिबाना (अनाधिकृत) क़ब्ज़े के ज़माने में उसने सारा काम ख़ुद ही इस इरादे से किया हो कि जब तक अस्ल मालिक उसकी बेजा जुर्रत और हरकत (दुस्साहस) की अनदेखी कर रहा है, उसी वक़्त तक वह उससे फ़ायदा उठाएगा और मालिक के क़ब्ज़े में ज़मीन वापस चली जाने के बाद वह ख़ुद भी किसी फ़ायदे की उम्मीद नहीं रखता है, तो आख़िर क्या वजह है कि मैं उस नाजाइज़ क़ब्ज़ा करनेवाले से अपनी ज़मीन वापस लेने के बाद ज़मीन की पैदावार में से कोई हिस्सा ख़्वाहमख़्वाह उसे दूँ?

106. यानी उन चालीस दिनों के दौरान में जबकि हज़रत मूसा (अलैहि.) अल्लाह तआला के बुलाने पर सीना पहाड़ पर गए हुए थे और यह क़ौम पहाड़ के नीचे मैदानुर्राहा में ठहरी हुई थी।

107. बनी-इसराईल ने मिस्र में रहते हुए मिस्रवालों से जो बुरे असरात क़बूल किए थे, उनमें से यह दूसरी ख़राबी थी जो सामने आई कि मिस्र में गाय की पूजा और उसे मुक़द्दस समझने का जो रिवाज था उससे यह क़ौम इतनी ज़्यादा मुतास्सिर हो चुकी थी कि क़ुरआन कहता है, "उनके दिलों में बछड़ा बसकर रह गया था।" सबसे ज़्यादा हैरत की बात यह है कि अभी मिस्र से निकले हुए उनको सिर्फ़ तीन महीने ही गुज़रे थे। समुद्र का फटना, फ़िरऔन का डूबना, इन लोगों का ख़ैरियत के साथ उस ग़ुलामी के बन्धन से निकल आना जिसके टूटने की कोई उम्मीद न थी और इस सिलसिले के दूसरे वाक़िआत अभी बिलकुल ताज़ा थे, और उन्हें अच्छी तरह

ضَلُّوا ۙ قَالُوا لَئِنْ لَّمْ يَرْحَمْنَا رَبُّنَا وَيَغْفِرْ لَنَا لَنَكُوْنَنَّ مِنَ
الْخٰسِرِيْنَ ﴿١٤٩﴾ وَلَمَّا رَجَعَ مُوْسٰٓى اِلٰى قَوْمِهٖ غَضْبَانَ اَسِفًا ۙ قَالَ بِئْسَمَا
خَلَفْتُمُوْنِيْ مِنْۢ بَعْدِيْ ۚ اَعَجِلْتُمْ اَمْرَ رَبِّكُمْ ۚ وَاَلْقَى الْاَلْوَاحَ وَاَخَذَ
بِرَاْسِ اَخِيْهِ يَجُرُّهٗٓ اِلَيْهِ ۭ قَالَ ابْنَ اُمَّ اِنَّ الْقَوْمَ اسْتَضْعَفُوْنِيْ
وَكَادُوْا يَقْتُلُوْنَنِيْ ڮ فَلَا تُشْمِتْ بِيَ الْاَعْدَاۗءَ وَلَا تَجْعَلْنِيْ مَعَ الْقَوْمِ
الظّٰلِمِيْنَ ﴿١٥٠﴾ قَالَ رَبِّ اغْفِرْ لِيْ وَلِاَخِيْ وَاَدْخِلْنَا فِيْ رَحْمَتِكَ ڮ وَاَنْتَ

खाने का तिलिस्म (भ्रम) टूट गया और उन्होंने देख लिया कि हक़ीक़त में वे गुमराह हो गए हैं, तो कहने लगे कि "अगर हमारे रब ने हमपर रहम न किया और हमें माफ़ न किया तो हम बरबाद हो जाएँगे।" (150) उधर से मूसा गुस्से और रंज में भरा हुआ अपनी क़ौम की तरफ़ पलटा। आते ही उसने कहा, "बहुत बुरी जानशीनी की तुम लोगों ने मेरे बाद! क्या तुमसे इतना सब्र न हो सका कि अपने रब के हुक्म का इन्तिज़ार कर लेते?" और तख़्तियाँ फेंक दीं और अपने भाई (हारून) के सर के बाल पकड़कर उसे खींचा। हारून ने कहा, "ऐ मेरी माँ के बेटे! इन लोगों ने मुझे दबा लिया और क़रीब था कि मुझे मार डालते, तो तू दुश्मनों को मुझपर हँसने का मौक़ा न दे और इस ज़ालिम गरोह के साथ मुझे शामिल न कर।"[108] (151) तब मूसा ने कहा, "ऐ रब! मुझे और मेरे

मालूम था कि यह जो कुछ हुआ सिर्फ़ अल्लाह की क़ुदरत से हुआ है, किसी दूसरे की ताक़त और कोशिश का इसमें कुछ दख़ल न था। मगर इसपर भी उन्होंने पहले तो पैग़म्बर से एक बनावटी ख़ुदा की माँग की और फिर पैग़म्बर के पीठ मोड़ते ही ख़ुद एक बनावटी ख़ुदा बना डाला। यही वह हरकत है जिसपर बनी-इसराईल के कुछ नबियों ने अपनी क़ौम की मिसाल उस बदकार औरत से दी है जो अपने शौहर के सिवा हर दूसरे मर्द से दिल लगाती हो और जो पहली रात में भी बेवफ़ाई से न चूकी हो।

108. यहाँ क़ुरआन मजीद ने बहुत बड़े इलज़ाम से हज़रत हारून (अलैहि.) का बरी होना साबित किया है, जो यहूदियों ने ज़बरदस्ती उनपर थोप रखा था। बाइबल में बछड़े की परस्तिश और पूजा का क़िस्सा इस तरह बयान किया गया है कि जब हज़रत मूसा (अलैहि.) को पहाड़ से उतरने में देर लगी तो बनी-इसराईल ने बेसब्र होकर हज़रत हारून से कहा कि हमारे लिए एक माबूद बना दो, और हज़रत हारून ने उनकी माँग के मुताबिक़ सोने का एक बछड़ा बना दिया

ع
اَرۡحَمُ الرّٰحِمِيۡنَ ۝۱۵۱ اِنَّ الَّذِيۡنَ اتَّخَذُوا الۡعِجۡلَ سَيَنَالُهُمۡ غَضَبٌ مِّنۡ

भाई को माफ़ कर और हमें अपनी रहमत में दाख़िल कर, तू सबसे बढ़कर रहम करनेवाला है।" (152) (जवाब में कहा गया कि) "जिन लोगों ने बछड़े को माबूद बनाया,

जिसे देखते ही बनी-इसराईल पुकार उठे कि ऐ इसराईल, यही तेरा वह ख़ुदा है जो तुझे मिस्र देश से निकालकर लाया है। फिर हज़रत हारून ने उसके लिए एक क़ुरबानगाह (बलिवेदी) बनाई और एलान करके दूसरे दिन सभी बनी-इसराईल को इकट्ठा किया और उसके आगे क़ुरबानियाँ चढ़ाईं। (निष्कासन, अध्याय-32, आयत-1-6) क़ुरआन मजीद में कई जगहों पर साफ़ अलफ़ाज़ में इस ग़लत बात को रद्द किया गया है और सही वाक़िआ यह बताया गया है कि इस संगीन जुर्म का करनेवाला ख़ुदा का नबी हारून नहीं, बल्कि ख़ुदा का बाग़ी सामरी था। (तफ़सील के लिए देखें— सूरा-20, ताहा, आयत-90-94)

ज़ाहिर में यह बात बड़ी हैरत-अंगेज़ मालूम होती है कि बनी-इसराईल जिन लोगों को ख़ुदा का पैग़म्बर मानते हैं उनमें से किसी की सीरत (किरदार) को भी उन्होंने दाग़दार किए बग़ैर नहीं छोड़ा है, और दाग़ भी ऐसे सख़्त लगाए हैं जो अख़लाक़ व शरीअत की निगाह में बदतरीन जुर्म गिने जाते हैं, जैसे शिर्क, जादूगरी, ज़िना (व्यभिचार), झूठ, दगाबाज़ी और ऐसे ही दूसरे बड़े गुनाह जिनमें मुब्तला होना पैग़म्बर तो बहुत दूर एक मामूली मोमिन (ईमानवाला) और शरीफ़ इनसान के लिए भी बहुत शर्मनाक है। यह बात अपने आप में बहुत अजीब है, लेकिन बनी-इसराईल की अख़लाक़ी तारीख़ (नैतिक इतिहास) पर ग़ौर करने से मालूम हो जाता है कि हक़ीक़त में इस क़ौम के मामले में यह कोई ताज्जुब की बात नहीं है। यह क़ौम जब अख़लाक़ी व मज़हबी तौर पर गिरावट का शिकार हुई और आम लोगों से गुज़रकर उनके ख़ास लोगों तक को, यहाँ तक कि उलमा और मशाइख़ (धार्मिक विद्वानों और मठाधीशों) और दीनी ओहदेदारों को भी गुमराहियों और बदअख़लाक़ियों का सैलाब बहा ले गया तो उनके मुजरिम ज़मीर (अन्तरात्मा) ने अपनी इस हालत के लिए बहाने तराशने शुरू किए और इसी सिलसिले में उन्होंने उन तमाम जुर्मों को, जो ये ख़ुद करते थे, नबियों (अलैहि॰) से जोड़ डाला; ताकि यह कहा जा सके, कि जब नबी तक इन चीज़ों से न बच सके तो भला और कौन बच सकता है। इस मामले में यहूदियों का हाल हिन्दुओं से मिलता-जुलता है। हिन्दुओं में भी जब अख़लाक़ी गिरावट इन्तिहा को पहुँच गई तो वह लिट्रेचर तैयार हुआ जिसमें देवताओं की, ऋषियों-मुनियों और अवतारों की, कहने का मतलब यह कि जो सबसे बलन्द आइडियल (आदर्श) क़ौम के सामने हो सकते थे उन सबकी ज़िन्दगियाँ बदअख़लाक़ी के तारकोल से काली कर डाली गईं ताकि यह कहा जा सके कि जब ऐसी-ऐसी ऊँची हस्तियाँ इन बुराइयों में पड़ सकती हैं तो भला हम मामूली और ख़त्म हो जानेवाले इनसान इनमें पड़े बिना कैसे रह सकते हैं, और फिर जब ये काम इतने ऊँचे मर्तबोंवालों के लिए भी शर्मनाक नहीं हैं, तो हमारे लिए क्यों हों?

رَّبِّهِمْ وَذِلَّةٌ فِي الْحَيٰوةِ الدُّنْيَا ۚ وَكَذٰلِكَ نَجْزِي الْمُفْتَرِيْنَ ﴿١٥٢﴾ وَالَّذِيْنَ
عَمِلُوا السَّيِّاٰتِ ثُمَّ تَابُوْا مِنْۢ بَعْدِهَا وَاٰمَنُوْٓا ۚ اِنَّ رَبَّكَ مِنْۢ بَعْدِهَا
لَغَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ﴿١٥٣﴾ وَلَمَّا سَكَتَ عَنْ مُّوْسَى الْغَضَبُ اَخَذَ الْاَلْوَاحَ ۚۖ
وَفِيْ نُسْخَتِهَا هُدًى وَّرَحْمَةٌ لِّلَّذِيْنَ هُمْ لِرَبِّهِمْ يَرْهَبُوْنَ ﴿١٥٤﴾ وَاخْتَارَ
مُوْسٰى قَوْمَهٗ سَبْعِيْنَ رَجُلًا لِّمِيْقَاتِنَا ۚ فَلَمَّآ اَخَذَتْهُمُ الرَّجْفَةُ قَالَ
رَبِّ لَوْ شِئْتَ اَهْلَكْتَهُمْ مِّنْ قَبْلُ وَاِيَّايَ ۖ اَتُهْلِكُنَا بِمَا فَعَلَ
السُّفَهَآءُ مِنَّا ۚ اِنْ هِيَ اِلَّا فِتْنَتُكَ ۖ تُضِلُّ بِهَا مَنْ تَشَآءُ وَتَهْدِيْ مَنْ

वे ज़रूर ही अपने रब के ग़ज़ब के शिकार होकर रहेंगे और दुनिया की ज़िन्दगी में रुसवा होंगे। झूठ गढ़नेवालों को हम ऐसी ही सज़ा देते हैं (153) और जो लोग बुरे अमल करें, फिर तौबा कर लें और ईमान ले आएँ, तो यक़ीनन इस तौबा और ईमान के बाद तेरा रब माफ़ करनेवाला और रहम करनेवाला है।"

(154) फिर जब मूसा का ग़ुस्सा ठंडा हुआ तो उसने वे तख़्तियाँ उठा लीं जिनके लेख में हिदायत और रहमत थी उन लोगों के लिए जो अपने रब से डरते हैं, (155) और उसने अपनी क़ौम के सत्तर आदमियों को चुना, ताकि वे (उसके साथ) हमारे मुक़र्रर किए वक़्त पर हाज़िर हों।[109] जब उन लोगों को एक भारी ज़लज़ले (भूकम्प) ने आ पकड़ा तो मूसा ने कहा, "ऐ मेरे सरकार! आप चाहते तो पहले ही इनको और मुझे हलाक कर सकते थे। क्या आप उस क़ुसूर में, जो हममें से कुछ नासमझों ने किया था, हम सबको हलाक कर देंगे? यह तो आप की डाली हुई एक आज़माइश थी जिसके ज़रिए से आप जिसे चाहते हैं गुमराही में डाल देते हैं और जिसे चाहते हैं हिदायत दे देते हैं।[110] हमारे

109. यह तलबी इस मक़सद के लिए हुई थी कि क़ौम के 70 नुमाइन्दे सीना पहाड़ पर ख़ुदा के सामने हाज़िर होकर क़ौम की तरफ़ से बछड़े की पूजा के जुर्म की माफ़ी माँगें और नए सिरे से इताअत और फ़रमाबरदारी करने का अहद करें। बाइबल और तलमूद में इस बात का ज़िक्र नहीं है। अलबत्ता यह ज़िक्र है कि जो तख़्तियाँ हज़रत मूसा (अलैहि.) ने फेंककर तोड़ दी थीं उनके बदले दूसरी तख़्तियाँ देने के लिए उनको सीना पर बुलाया गया था। (निष्कासन, अध्याय-34)

110. मतलब यह है कि हर आज़माइश का मौक़ा इनसानों के दरमियान फ़ैसला करनेवाला होता

تَشَآءُ اَنْتَ وَلِيُّنَا فَاغْفِرْ لَنَا وَارْحَمْنَا وَاَنْتَ خَيْرُ الْغٰفِرِيْنَ ﴿۱۵۵﴾
وَاكْتُبْ لَنَا فِيْ هٰذِهِ الدُّنْيَا حَسَنَةً وَّفِي الْاٰخِرَةِ اِنَّا هُدْنَآ اِلَيْكَ ؕ قَالَ
عَذَابِيْٓ اُصِيْبُ بِهٖ مَنْ اَشَآءُ ۚ وَرَحْمَتِيْ وَسِعَتْ كُلَّ شَيْءٍ ؕ فَسَاَكْتُبُهَا
لِلَّذِيْنَ يَتَّقُوْنَ وَيُؤْتُوْنَ الزَّكٰوةَ وَالَّذِيْنَ هُمْ بِاٰيٰتِنَا يُؤْمِنُوْنَ ﴿۱۵۶﴾
اَلَّذِيْنَ يَتَّبِعُوْنَ الرَّسُوْلَ النَّبِيَّ الْاُمِّيَّ الَّذِيْ يَجِدُوْنَهٗ مَكْتُوْبًا

सरपरस्त तो आप ही हैं, तो हमें माफ़ कर दीजिए और हमपर रहम कीजिए, आप सबसे बढ़कर माफ़ करनेवाले हैं। (156) और हमारे लिए इस दुनिया की भलाई भी लिख दीजिए और आख़िरत की भी। हम आपकी तरफ़ पलट आए।" जवाब में कहा गया, "सज़ा तो मैं जिसे चाहता हूँ देता हूँ, मगर मेरी रहमत हर चीज़ पर छाई हुई है।"[111]
और उसे मैं उन लोगों के हक़ में लिखूँगा जो नाफ़रमानी से बचेंगे, ज़कात देंगे और मेरी आयतों पर ईमान लाएँगे।"

(157) (तो आज यह रहमत उन लागों का हिस्सा है) जो इस पैग़म्बर, उम्मी नबी

है। वह छाज की तरह मिले-जुले लोगों के एक गरोह में से काम के आदमियों और नाकारा आदमियों को फटककर अलग कर देता है। यह अल्लाह तआला की हिकमत का ही तक़ाज़ा है कि ऐसे मौक़े वक़्त-वक़्त पर आते रहें। इन मौक़ों पर जो कामयाबी की राह पाता है वह अल्लाह ही की मेहरबानी व रहनुमाई से पाता है और जो नाकाम होता है वह उसकी मेहरबानी और रहनुमाई से महरूम होने की बदौलत नाकाम होता है। अगरचे अल्लाह की तरफ़ से मेहरबानी और रहनुमाई मिलने और न मिलने के लिए भी एक ज़ाब्ता (नियम) है जो सरासर हिकमत और इनसाफ़ पर बना है, लेकिन बहरहाल यह हक़ीक़त अपनी जगह साबित है कि आदमी का आज़माइश के मौक़ों पर कामयाबी की राह पाने, या न पाने का दारोमदार अल्लाह की तौफ़ीक़ व हिदायत पर है।

111. यानी अल्लाह तआला जिस तरीक़े पर ख़ुदाई कर रहा है उसमें अस्ल चीज़ ग़ज़ब (प्रकोप) नहीं है जिसमें कभी-कभी रहम और मेहरबानी की शान भी दिखाई दे जाती हो, बल्कि अस्ल चीज़ रहम (दया) है जिसपर सारी कायनात का निज़ाम क़ायम है और इसमें ग़ज़ब सिर्फ़ उस वक़्त ज़ाहिर होता है जब बन्दों की सरकशी हद से बढ़ जाती है।

عِنْدَهُمْ فِي التَّوْرٰىةِ وَالْاِنْجِيْلِ يَاْمُرُهُمْ بِالْمَعْرُوْفِ وَيَنْهٰهُمْ عَنِ

की पैरवी इख़्तियार करें[112] जिसका ज़िक्र उन्हें अपने यहाँ तौरात और इंजील में लिखा

112. हज़रत मूसा (अलैहि॰) की दुआ का जवाब ऊपर के जुमले पर ख़त्म हो गया था। उसके बाद अब मौक़े के लिहाज़ से फ़ौरन बनी-इसराईल को मुहम्मद (सल्ल॰) की पैरवी की दावत दी गई है। तक़रीर का मक़सद यह है कि तुमपर ख़ुदा की रहमत उतरने के लिए जो शर्तें मूसा (अलैहि॰) के ज़माने में लगाई गई थीं वही आज तक क़ायम हैं और अस्ल में यह उन्हीं शर्तों का तक़ाज़ा है कि तुम इस पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) पर ईमान लाओ। तुमसे कहा गया था कि ख़ुदा की रहमत उन लोगों का हिस्सा है जो नाफ़रमानी से बचें तो आज सबसे बड़ी बुनियादी नाफ़रमानी यह है कि जिस पैग़म्बर को ख़ुदा ने भेजा है उसकी रहनुमाई तस्लीम करने से इनकार किया जाए। लिहाज़ा जब तक इस नाफ़रमानी से परहेज़ न करोगे तक़्वा (परहेज़गारी) की जड़ ही सिरे से क़ायम न होगी, चाहे छोटी-छोटी और ग़ैर-बुनियादी बातों में तुम कितना ही तक़्वा करते रहो। तुमसे कहा गया था कि अल्लाह की रहमत में से हिस्सा पाने के लिए ज़कात भी एक शर्त है। तो आज किसी माल के ख़र्च होने पर उस वक़्त तक उसे ज़कात नहीं कहा जा सकता जब तक सच्चे दीन को क़ायम करने की उस जिद्दोजुहद का साथ न दिया जाए जो इस पैग़म्बर की रहनुमाई में हो रही है। लिहाज़ा जब तक इस राह में माल ख़र्च न करोगे ज़कात की बुनियाद ही ठीक न होगी चाहे, तुम कितनी ही ख़ैरात और नज़्रो-नियाज़ करते रहो। तुमसे कहा गया था कि अल्लाह ने अपनी रहमत सिर्फ़ उन लोगों के लिए लिखी है जो अल्लाह की आयतों पर ईमान लाएँ। तो आज जो आयतें इस पैग़म्बर पर उतर रही हैं उनका इनकार करके तुम किसी तरह भी अल्लाह की आयतों के माननेवाले नहीं कहला सकते। लिहाज़ा जब तक इनपर ईमान न लाओगे यह आख़िरी शर्त भी पूरी न होगी चाहे तौरात पर ईमान रखने का तुम कितना ही दावा करते रहो।

यहाँ नबी (सल्ल॰) के लिए "उम्मी" का लफ़्ज़ इस्तेमाल हुआ है जो अपने अन्दर ख़ास मानी रखता है। बनी-इसराईल अपने सिवा दूसरी क़ौमों को उम्मी (Gentiles) कहते थे और उनका क़ौमी फ़ख़्र व ग़ुरूर किसी उम्मी की पेशवाई क़बूल करना तो दूर, इसपर भी तैयार न था कि उम्मियों के लिए अपने बराबर इनसानी हुक़ूक़ ही मान लें। चुनाँचे क़ुरआन ही में आता है कि वे कहते थे– "उम्मियों (ग़ैर-यहूदी लोगों) के मामले में हमारी कोई पकड़ नहीं है।" (सूरा-3 आले-इमरान, आयत-75)। तो अल्लाह तआला उन्हीं की इस्तिलाह (परिभाषा) इस्तेमाल करके फ़रमाता है कि अब तो इसी उम्मी के साथ तुम्हारी क़िस्मत जुड़ी है, इसकी पैरवी क़बूल करोगे तो मेरी रहमत में से हिस्सा पाओगे वरना वही ग़ज़ब तुम्हारे लिए मुक़द्दर है जिसमें सदियों से गिरफ़्तार चले आ रहे हो।

الْمُنْكَرِ وَيُحِلُّ لَهُمُ الطَّيِّبٰتِ وَيُحَرِّمُ عَلَيْهِمُ الْخَبٰٓئِثَ وَيَضَعُ عَنْهُمْ
اِصْرَهُمْ وَالْاَغْلٰلَ الَّتِيْ كَانَتْ عَلَيْهِمْ ؕ فَالَّذِيْنَ اٰمَنُوْا بِهٖ وَعَزَّرُوْهُ
وَنَصَرُوْهُ وَاتَّبَعُوا النُّوْرَ الَّذِيْٓ اُنْزِلَ مَعَهٗٓ ۙ اُولٰٓئِكَ هُمُ الْمُفْلِحُوْنَ ﴿١٥٧﴾ ع
قُلْ يٰٓاَيُّهَا النَّاسُ اِنِّيْ رَسُوْلُ اللّٰهِ اِلَيْكُمْ جَمِيْعًا الَّذِيْ لَهٗ مُلْكُ
السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ ۚ لَآ اِلٰهَ اِلَّا هُوَ يُحْيٖ وَيُمِيْتُ ۠ فَاٰمِنُوْا بِاللّٰهِ
وَرَسُوْلِهِ النَّبِيِّ الْاُمِّيِّ الَّذِيْ يُؤْمِنُ بِاللّٰهِ وَكَلِمٰتِهٖ وَاتَّبِعُوْهُ لَعَلَّكُمْ

हुआ मिलता है।[113] वह उन्हें नेकी का हुक्म देता है, बुराई से रोकता है, उनके लिए पाक चीज़ें हलाल और नापाक चीज़ें हराम करता है,[114] और उनपर से वह बोझ उतारता है जो उनपर लदे हुए थे और उन बन्धनों को खोलता है जिनमें वे जकड़े हुए थे,[115] इसलिए जो लोग उसपर ईमान ले आएँ और उसकी हिमायत और मदद करें और उस रौशनी की पैरवी करें जो उसके साथ उतारी गई है, वही कामयाब होनेवाले हैं। (158) ऐ नबी! कहो कि "ऐ इनसानो! मैं तुम सबकी तरफ़ उस ख़ुदा का पैग़म्बर हूँ जो ज़मीन और आसमानों की बादशाही का मालिक है, उसके सिवा कोई ख़ुदा नहीं है, वही ज़िन्दगी बख़्शता है और वही मौत देता है, तो ईमान लाओ अल्लाह पर और उसके भेजे हुए उम्मी नबी पर जो अल्लाह और उसके हुक्मों को मानता है, और पैरवी करो उसकी, उम्मीद है कि तुम

113. मिसाल के तौर पर तौरात और इंजील के नीचे लिखे मक़ामात देखें— जहाँ मुहम्मद (सल्ल॰) के आने के बारे में साफ़ इशारे मौजूद हैं : व्यवस्था विवरण, अध्याय-18, आयत-15 से 19; मत्ती, अध्याय-21, आयत-33 से 46; यूहन्ना, अध्याय-1, आयत-19 से 21; यूहन्ना, अध्याय-14, आयत-15 से 17 और 25 से 30; यूहन्ना, अध्याय-15, आयत-25,26; यूहन्ना, अध्याय-16, आयत-7 से 15।

114. यानी जिन पाक चीज़ों को उन्होंने हराम कर रखा है, वह उन्हें हलाल ठहराता है और जिन नापाक चीज़ों को ये लोग हलाल किए बैठे हैं उन्हें वह हराम ठहराता है।

115. यानी उनके फ़क़ीहों (धर्म-शास्त्रियों) ने क़ानून में बाल की खाल निकाल-निकालकर, उनके रूहानी पेशवाओं ने अपनी ख़ुद ओढ़ी हुई परहेज़गारी में हद से आगे बढ़ जाने से, और उनके जाहिल अवाम ने अपने अंधविश्वासों और ख़ुद गढ़े हुए क़ायदे-क़ानूनों से उनकी ज़िन्दगी को जिन बोझों तले दबा रखा है और जिन जकड़बन्दियों में कस रखा है, यह पैग़म्बर वे सारे बोझ उतार देता है और वे तमाम बन्दिशें तोड़कर ज़िन्दगी को आज़ाद कर देता है।

تَهْتَدُوْنَ ﴿١٥٨﴾ وَمِنْ قَوْمِ مُوْسٰٓى اُمَّةٌ يَّهْدُوْنَ بِالْحَقِّ وَبِهٖ يَعْدِلُوْنَ ﴿١٥٩﴾
وَقَطَّعْنٰهُمُ اثْنَتَيْ عَشْرَةَ اَسْبَاطًا اُمَمًا ۭ وَاَوْحَيْنَآ اِلٰى مُوْسٰٓى اِذِ
اسْتَسْقٰىهُ قَوْمُهٗٓ اَنِ اضْرِبْ بِّعَصَاكَ الْحَجَرَ ۚ فَانْۢبَجَسَتْ مِنْهُ اثْنَتَا

सीधा रास्ता पा लोगे।"

(159) मूसा[116] की क़ौम में एक गरोह ऐसा भी था जो हक़ के मुताबिक़ हिदायत करता और हक़ ही के मुताबिक़ इनसाफ़ करता था।[117] (160) और हमने उस क़ौम को बारह घरानों में बाँटकर उन्हें मुस्तक़िल गरोहों की शक्ल दे दी थी।[118] और जब मूसा से उसकी क़ौम ने पानी माँगा तो हमने उसको इशारा किया कि फ़ुलाँ चट्टान पर अपनी

116. बात का सिलसिला तो अस्ल में बनी-इसराईल के बारे में चल रहा था। बीच में मौक़े के लिहाज़ से मुहम्मद (सल्ल.) की पैग़म्बरी पर ईमान लाने की दावत अलग से एक बात के तौर पर आ गई। अब फिर तक़रीर का रुख़ उसी मज़मून (विषय) की तरफ़ फिर रहा है जो पिछली बहुत-सी आयतों से बयान हो रहा है।

117. ज़्यादातर तर्जमा करनेवालों ने इस आयत का तर्जमा यूँ किया है कि मूसा की क़ौम में एक गरोह ऐसा है जो हक़ के मुताबिक़ हिदायत और इनसाफ़ करता है, यानी उनके नज़दीक इस आयत में बनी-इसराईल की वह अख़लाक़ी व ज़ेहनी हालत बयान की गई है जो क़ुरआन उतरने के वक़्त थी। लेकिन मौक़ा व महल (सन्दर्भ) को देखते हुए हम इस बात को तरजीह (प्राथमिकता) देते हैं कि इस आयत में बनी-इसराईल का वह हाल बयान हुआ है जो हज़रत मूसा (अलैहि.) के ज़माने में था, और उसका मक़सद यह ज़ाहिर करना है कि जब इस क़ौम में बछड़े की पूजा का जुर्म किया गया और ख़ुदा की तरफ़ से इसपर पकड़ हुई तो उस वक़्त सारी क़ौम बिगड़ी हुई न थी, बल्कि उसमें एक अच्छी-ख़ासी तादाद नेक लोगों की मौजूद थी।

118. इशारा है बनी-इसराईल की उस तंज़ीम (संगठन) की तरफ़ जो सूरा-5 माइदा, आयत-12 में बयान हुई है और जिसकी पूरी तफ़सील बाइबल की किताब 'गिनती' में मिलती है। इससे मालूम होता है कि हज़रत मूसा (अलैहि.) ने अल्लाह तआला के हुक्म से सीना पहाड़ के जंगल (बयाबान) में बनी-इसराईल की मर्दुम-शुमारी (जनगणना) कराई, फिर उनके 12 घरानों को जो हज़रत याक़ूब के दस बेटों और हज़रत यूसुफ़ के दो बेटों की नस्ल से थे, अलग-अलग गरोहों की शक्ल में मुनज़्ज़म (संगठित) किया, और हर गरोह पर एक-एक सरदार मुक़र्रर किया; ताकि वह उनके अन्दर अख़लाक़ी, मज़हबी, सामाजिक और फ़ौजी हैसियत से नज़्म (अनुशासन) क़ायम रखे और शरीअत के हुक्मों को लागू करता रहे। और हज़रत याक़ूब के बारहवें बेटे लावी की औलाद को जिसकी नस्ल से हज़रत मूसा और हारून थे, एक अलग जमाअत की

عَشْرَةَ عَيْنًا ۖ قَدْ عَلِمَ كُلُّ أُنَاسٍ مَّشْرَبَهُمْ ۚ وَظَلَّلْنَا عَلَيْهِمُ الْغَمَامَ
وَأَنزَلْنَا عَلَيْهِمُ الْمَنَّ وَالسَّلْوَىٰ ۖ كُلُوا مِن طَيِّبَاتِ مَا رَزَقْنَاكُمْ ۚ وَمَا

लाठी मारो, चुनाँचे उस चट्टान से यकायक बारह सोते फूट निकले और हर गरोह ने अपने पानी लेने की जगह तय कर ली। हमने उनपर बादल का साया किया और उनपर मन्न व सलवा उतारा[119] — खाओ वे पाक चीज़ें जो हमने तुमको दी हैं, मगर इसके बाद

शक्ल में मुनज़्ज़म किया; ताकि वे उन सब क़बीलों के बीच हक़ (सत्य) का दीप जलाए रखने की ख़िदमत अंजाम देती रहे।

119. ऊपर जिस तनज़ीम (संगठन) का ज़िक्र किया गया है उसमें वह उन एहसानों में से एक थी जो अल्लाह ने बनी-इसराईल पर किए। इसके बाद अब और तीन एहसानों का ज़िक्र किया गया है। एक यह कि प्रायद्वीप सीना के रेगिस्तानी इलाक़े में उनके लिए पानी पहुँचाने का ग़ैर-मामूली इन्तिज़ाम किया गया। दूसरा यह कि उनको धूप की तपिश से बचाने के लिए आसमान पर बादल छा दिया गया। तीसरा यह कि उनके लिए ख़ुराक (खाद्य-सामग्री) पहुँचाने का ग़ैर-मामूली इन्तिज़ाम 'मन्न' व 'सलवा' उतारने की शक्ल में किया गया। ज़ाहिर है कि अगर ज़िन्दगी की इस तीन सबसे अहम ज़रूरतों का बन्दोबस्त न किया जाता तो यह क़ौम जिसकी तादाद कई लाख तक पहुँची हुई थी, उस इलाक़े में भूख-प्यास से बिलकुल ख़त्म हो जाती। आज भी कोई शख़्स वहाँ जाए तो यह देखकर हैरान रह जाएगा कि अगर यहाँ पन्द्रह-बीस लाख आदमियों का एक बड़ा ही शानदार क़ाफ़िला अचानक आ ठहरे तो उसके लिए पानी, खाने और साए का आख़िर क्या इन्तिज़ाम हो सकता है। मौजूदा ज़माने में पूरे प्रायद्वीप की आबादी 55 हज़ार से ज़्यादा नहीं है और आज इस इक्कीसवीं सदी में भी अगर कोई हुकूमत वहाँ पाँच-छः लाख फ़ौज ले जाना चाहे तो उसका इन्तिज़ाम संभालनेवालों को खाने-पीने की चीज़ें मुहय्या कराने की फ़िक्र में सिर में दर्द हो जाएगा। यही वजह है कि मौजूदा ज़माने के बहुत-से तहक़ीक़ात करनेवालों (शोध कर्ताओं) ने, जो न आसमानी किताब को मानते हैं और न मोजिज़ों को तस्लीम करते हैं, यह मानने से इनकार कर दिया है कि बनी-इसराईल सीना के प्रायद्वीप के उस हिस्से से गुज़रे होंगे जिसका ज़िक्र बाइबल और क़ुरआन में हुआ है। उनका गुमान है कि शायद ये वाक़िआत फ़िलस्तीन के दक्षिणी और अरब के उत्तरी हिस्से में पेश आए होंगे। प्रायद्वीप सीना के क़ुदरती और मआशी भौगोलिक हालात को देखते हुए वह इस बात को तसव्वुर से बिलकुल परे समझते हैं कि इतनी बड़ी क़ौम यहाँ सालों एक-एक जगह पड़ाव करती हुई गुज़र सकी थी, ख़ास तौर से जबकि मिस्र की तरफ़ से उसकी रसद (खाद्य-सामग्री) के आने का रास्ता भी कटा हुआ था और दूसरी तरफ़ ख़ुद उस प्रायद्वीप के पूरब और उत्तर में 'अमालिक़ा' के क़बीले उसको रोकने पर आमादा थे। इन बातों को सामने रखने से सही तौर पर अन्दाज़ा किया जा सकता है कि इन कुछ मुख़्तसर (संक्षिप्त) आयतों में अल्लाह तआला ने बनी-इसराईल पर अपने जिन एहसानों का

ظَلَمُوْنَا وَلٰكِنْ كَانُوْٓا اَنْفُسَهُمْ يَظْلِمُوْنَ ۝١٦٠ وَاِذْ قِيْلَ لَهُمُ اسْكُنُوْا
هٰذِهِ الْقَرْيَةَ وَكُلُوْا مِنْهَا حَيْثُ شِئْتُمْ وَقُوْلُوْا حِطَّةٌ وَّادْخُلُوا الْبَابَ
سُجَّدًا نَّغْفِرْ لَكُمْ خَطِيْٓـٰٔتِكُمْ ۭ سَنَزِيْدُ الْمُحْسِنِيْنَ ۝١٦١ فَبَدَّلَ الَّذِيْنَ
ظَلَمُوْا مِنْهُمْ قَوْلًا غَيْرَ الَّذِيْ قِيْلَ لَهُمْ فَاَرْسَلْنَا عَلَيْهِمْ رِجْزًا مِّنَ
ع السَّمَاۗءِ بِمَا كَانُوْا يَظْلِمُوْنَ ۝١٦٢ وَسْـَٔلْهُمْ عَنِ الْقَرْيَةِ الَّتِيْ كَانَتْ

उन्होंने जो कुछ किया तो हमपर ज़ुल्म नहीं किया, बल्कि आप अपने ही ऊपर ज़ुल्म करते रहे।

(161) याद करो[120] वह वक़्त जब उनसे कहा गया था कि "इस बस्ती में जाकर बस जाओ और इसकी पैदावार से अपनी मरज़ी के मुताबिक़ रोज़ी हासिल करो और 'हित्ततुन-हित्ततुन' कहते जाओ और शहर के दरवाज़े में सजदा करते हुए दाख़िल हो, हम तुम्हारी ग़लतियाँ माफ़ करेंगे और नेक रवैया रखनेवालों पर और ज़्यादा मेहरबानी करेंगे।" (162) मगर जो लोग उनमें से ज़ालिम थे, उन्होंने उस बात को जो उनसे कही गई थी, बदल डाला, और नतीजा यह निकला कि हमने उनके ज़ुल्म के बदले में उनपर आसमान से अज़ाब भेज दिया।"[121]

(163) और ज़रा इनसे उस बस्ती का हाल भी पूछो जो समन्दर के किनारे पर

ज़िक्र किया है वे हक़ीक़त में कितने बड़े एहसान थे, और उसके बाद यह कितनी बड़ी एहसान-फ़रामोशी और नाशुक्री थी कि अल्लाह की मेहरबानियों की ऐसी खुली और साफ़ निशानियाँ देख लेने के बाद भी यह क़ौम लगातार उन नाफ़रमानियों और ग़द्दारियों को करती रही जिनसे उसकी तारीख़ (इतिहास) भरी पड़ी है। (तक़ाबुल के लिए देखें– सूरा-2, बक़रा, हाशिया-72,73 और 76)

120. अब बनी-इसराईल की तारीख़ (इतिहास) के उन वाक़िआत की तरफ़ इशारा किया जा रहा है, जिनसे ज़ाहिर होता है कि ऊपर बयान किए गए अल्लाह तआला के एहसानों का जवाब ये लोग कैसी-कैसी मुजरिमाना बेबाकियों के साथ देते रहे और फिर किस तरह लगातार तबाही के गढ़े में गिरते चले गए।

121. तशरीह के लिए देखें– सूरा-2, बक़रा, हाशिया-74,75

حَاضِرَةَ الْبَحْرِ ۘ إِذْ يَعْدُوْنَ فِي السَّبْتِ إِذْ تَأْتِيهِمْ حِيتَانُهُمْ يَوْمَ
سَبْتِهِمْ شُرَّعًا وَّيَوْمَ لَا يَسْبِتُوْنَ ۙ لَا تَأْتِيهِمْ ۚ كَذٰلِكَ ۚ نَبْلُوْهُمْ بِمَا

थी।[122] इन्हें याद दिलाओ वह घटना कि वहाँ के लोग सब्त (सनीचर) के दिन अल्लाह के हुक्म के ख़िलाफ़ काम करते थे और यह कि मछलियाँ सब्त ही के दिन उभर-उभरकर सतह पर उनके सामने आती थीं।[123] और सब्त के सिवा बाक़ी दिनों में नहीं आती थीं। यह इसलिए होता था कि हम उनकी नाफ़रमानियों के सबब उनको आज़माइश में डाल

---

122. तहक़ीक़ करनेवालों का ज़्यादा रुझान इस तरफ़ है कि यह मक़ाम 'ऐला' या 'ऐलात' या 'ऐलवत' था जहाँ अब इसराईल की यहूदी रियासत (राज्य) ने इसी नाम की एक बन्दरगाह बनाई है और जिसके क़रीब ही उर्दुन (जार्डन) की मशहूर बन्दरगाह 'अक़बा' है। यह 'क़ुलज़ुम' नाम के समुद्र की उस शाख़ के आख़िरी सिरे पर क़ायम है जो प्रायद्वीप सीना के पूर्वी और अरब के पश्चिमी तट के बीच एक लम्बी खाड़ी की शक्ल में दिखाई देती है। बनी-इसराईल की तरक़्क़ी के ज़माने में यह बड़ा अहम तिजारती मर्कज़ (केन्द्र) था। हज़रत सुलैमान (अलैहि॰) ने 'क़ुलज़ुम' समुद्र के अपने जंगी व तिजारती बेड़े का सद्र मक़ाम (मुख्यालय) इसी शहर को बनाया था।

जिस वाक़िए की तरफ़ यहाँ इशारा किया गया है उसके बारे में यहूदियों की पाक किताबों में कोई ज़िक्र हमें नहीं मिलता और उनका इतिहास भी इस बारे में ख़ामोश है, मगर क़ुरआन मजीद में जिस अन्दाज़ से इस वाक़िए को यहाँ और सूरा-2 बक़रा में बयान किया गया है उससे साफ़ ज़ाहिर होता है कि क़ुरआन उतरने के दौर में बनी-इसराईल आम तौर पर इस वाक़िए से अच्छी तरह वाक़िफ़ थे, और यह हक़ीक़त है कि मदीना के यहूदियों ने, जो नबी (सल्ल॰) की मुख़ालिफ़त का कोई मौक़ा हाथ से जाने नहीं देते थे, क़ुरआन के इस बयान पर बिलकुल कोई एतिराज़ नहीं किया।

123. "सब्त" हफ़्ता (शनिवार) के दिन को कहते हैं। यह दिन बनी-इसराईल के लिए मुक़द्दस (पाक और क़ाबिले-एहतिराम) ठहराया गया था और अल्लाह तआला ने उसे अपने और इसराईल की औलाद के दरमियान पीढ़ियों तक क़ायम रहनेवाले अहद का निशान ठहराते हुए ताकीद की थी कि उस दिन कोई दुनियावी काम न किया जाए, घरों में आग तक न जलाई जाए, जानवरों और लौंडी, ग़ुलामों तक से कोई काम न लिया जाए और यह कि जो शख़्स इस ज़ाब्ते की ख़िलाफ़वर्ज़ी करे उसे क़त्ल कर दिया जाए। लेकिन बनी-इसराईल ने आगे चलकर इस क़ानून की खुल्लम-खुल्ला ख़िलाफ़वर्ज़ी शुरू कर दी। यर्मियाह नबी के ज़माने में (जो 628 और 586 ई॰ पू॰ के बीच गुज़रे हैं) ख़ास यरुशलम के फाटकों से लोग 'सब्त' के दिन तिजारत का माल वग़ैरा ले-लेकर गुज़रते थे। इसपर यर्मियाह नबी ने ख़ुदा की तरफ़ से यहूदियों को धमकी दी कि अगर तुम लोगों ने शरीअत की इस खुल्लम-खुल्ला ख़िलाफ़वर्ज़ी को न छोड़ा तो यरुशलम को आग के हवाले कर दिया जाएगा। (यर्मियाह, 17:21 से 27)। इसी की शिकायत

كَانُوْا يَفْسُقُوْنَ ﴿١٦٣﴾ وَ اِذْ قَالَتْ اُمَّةٌ مِّنْهُمْ لِمَ تَعِظُوْنَ قَوْمَا اللّٰهُ
مُهْلِكُهُمْ اَوْ مُعَذِّبُهُمْ عَذَابًا شَدِيْدًا ؕ قَالُوْا مَعْذِرَةً اِلٰى رَبِّكُمْ
وَلَعَلَّهُمْ يَتَّقُوْنَ ﴿١٦٤﴾ فَلَمَّا نَسُوْا مَا ذُكِّرُوْا بِهٖۤ اَنْجَيْنَا الَّذِيْنَ يَنْهَوْنَ
عَنِ السُّوْٓءِ وَاَخَذْنَا الَّذِيْنَ ظَلَمُوْا بِعَذَابٍ بَئِيْسٍ بِمَا كَانُوْا
يَفْسُقُوْنَ ﴿١٦٥﴾ فَلَمَّا عَتَوْا عَنْ مَّا نُهُوْا عَنْهُ قُلْنَا لَهُمْ كُوْنُوْا قِرَدَةً

रहे थे।[124] (164) और इन्हें यह भी याद दिलाओ कि जब उनमें से एक गरोह ने दूसरे गरोह से कहा था कि "तुम ऐसे लोगों को क्यों नसीहत करते हो जिन्हें अल्लाह हलाक करनेवाला या कड़ी सज़ा देनेवाला है" तो उन्होंने जवाब दिया था कि "हम यह सब कुछ तुम्हारे रब के सामने अपने को बेक़ुसूर साबित करने लिए करते हैं और इस उम्मीद पर करते हैं कि शायद ये लोग उसकी नाफ़रमानी से बचने लगें।" (165) आख़िरकार जब वे उन हिदायतों को बिलकुल ही भुला बैठे, जो उन्हें याद कराई गई थीं, तो हमने उन लोगों को बचा लिया जो बुराई से रोकते थे और बाक़ी सब लोगों को, जो ज़ालिम थे, उनकी नाफ़रमानियों पर सख़्त अज़ाब में पकड़ लिया।[125] (166) फिर जब वे पूरी सरकशी के साथ वही काम किए चले गए जिससे उन्हें रोका गया था तो हमने कहा, "बन्दर हो

हिज़क़ीएल नबी भी करते हैं जिनका दौर 595 और 536 ई॰ पू॰ के बीच गुज़रा है। चुनाँचे उनकी किताब में सब्त की बेहुरमती (अनादर) को यहूदियों के क़ौमी जुर्मों में से एक बड़ा जुर्म क़रार दिया गया है। (हिज़क़ीएल, 20: 12 से 24)। इन हवालों से यह गुमान किया जा सकता है कि क़ुरआन मजीद यहाँ जिस वाक़िए का ज़िक्र कर रहा है वह भी शायद इसी दौर का वाक़िआ होगा।

124. अल्लाह तआला बन्दों की आज़माइश के लिए जो तरीक़े इख़्तियार करता है उनमें से एक तरीक़ा यह भी है कि जब किसी शख़्स या गरोह के अन्दर फ़रमाँबरदारी से मुहँ मोड़ने और नाफ़रमानी का रुझान बढ़ने लगता है तो उसके सामने नाफ़रमानी के मौक़ों का दरवाज़ा खोल दिया जाता है, ताकि उसके वे मैलान और रुझान जो अन्दर छिपे हुए हैं खुलकर पूरी तरह उजागर हो जाएँ और जिन जुर्मों से वह अपने दामन को ख़ुद दाग़दार करना चाहता है उनसे वह सिर्फ़ इसलिए बचा न रह जाए कि उन्हें करने के मौक़े उसे न मिल रहे हों।

125. इस बयान से मालूम हुआ कि उस बस्ती में तीन तरह के लोग मौजूद थे, एक वे जो धड़ल्ले से अल्लाह के हुक्मों की ख़िलाफ़वर्ज़ी कर रहे थे। दूसरे वे जो ख़ुद तो ख़िलाफ़वर्ज़ी नहीं करते

خٰسِئِينَ ۝ وَاِذْ تَاَذَّنَ رَبُّكَ لَيَبْعَثَنَّ عَلَيْهِمْ اِلٰى يَوْمِ الْقِيٰمَةِ مَنْ

जाओ रुसवा और बेइज़्ज़त।"[126]

(167) और याद करो जबकि तुम्हारे रब ने एलान कर दिया[127] कि "वह क़ियामत तक बराबर ऐसे लोग बनी-इसराईल पर मुसल्लत करता रहेगा जो उनको सबसे बुरा

थे, मगर इस ख़िलाफ़वर्ज़ी को ख़ामोशी के साथ बैठे देख रहे थे और नसीहत करनेवालों से कहते थे कि इन कमबख़्तों को नसीहत करने का क्या फ़ायदा। तीसरे वे जिनकी ईमानी ग़ैरत (स्वाभिमान) अल्लाह की हदों की इस खुल्लम-खुल्ला बेहुरमती को बरदाश्त न कर सकती थी और वे यह सोचकर नेकी का हुक्म देने और बुराई से रोकने में सरगर्म (सक्रिय) थे कि शायद वे मुजरिम लोग उनकी नसीहत से सीधे रास्ते पर आ जाएँ और अगर वे सीधे रास्ते पर न भी आएँ, तब भी हम अपनी हद तक तो अपना फ़र्ज़ अदा करके ख़ुदा के सामने बरी होने का सुबूत पेश कर ही दें। इस सूरते-हाल में जब उस बस्ती पर अल्लाह का अज़ाब आया तो क़ुरआन मजीद कहता है कि इन तीनों गरोहों में से सिर्फ़ तीसरा गरोह ही उससे बचाया गया; क्योंकि उसी ने ख़ुदा के सामने (लोगों को सुधार न पाने की) अपनी मजबूरी पेश करने की फ़िक्र की थी और वही था जिसने (दूसरों के जुर्मों से) ख़ुद के बरी होने का सुबूत जुटा रखा था। बाक़ी दोनों गरोहों की गिनती ज़ालिमों में हुई और वे अपने जुर्म की हद तक अज़ाब में मुब्तला हुए।

क़ुरआन की तफ़सीर लिखनेवाले कुछ मुफ़स्सिरों (टीकाकारों) ने यह ख़याल ज़ाहिर किया है कि अल्लाह तआला ने पहले गरोह के अज़ाब में डालने की और तीसरे गरोह के नजात पाने की बात साफ़ तौर से बयान की है, लेकिन दूसरे गरोह के बारे में ख़ामोशी इख़्तियार की है। लिहाज़ा उसके बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि वे नजात पानेवालों में से था या अज़ाब पानेवालों में से। फिर एक रिवायत इब्ने-अब्बास (रज़ि॰) से यह बयान हुई है कि वे पहले इस बात के क़ायल थे कि दूसरा गरोह अज़ाब में घिरनेवालों में से था, बाद में उनके शागिर्द इकरिमा ने उनको मुत्मइन कर दिया कि दूसरा गरोह नजात पानेवालों में शामिल था। लेकिन क़ुरआन के बयान पर जब हम ग़ौर करते हैं तो मालूम होता है कि हज़रत इब्ने-अब्बास का पहला ख़याल ही सही था। ज़ाहिर है कि किसी बस्ती पर ख़ुदा का अज़ाब आने की सूरत में पूरी बस्ती दो ही गरोहों में बँट सकती है, एक वह जो अज़ाब में मुब्तला हो और दूसरा वह जो बचा लिया जाए। अब अगर क़ुरआन के बताने के मुताबिक़ बचनेवाला गरोह सिर्फ़ तीसरा था, तो ज़रूर ही पहले और दूसरे दोनों गरोह न बचनेवालों में शामिल होंगे। इसी की ताईद "तुम्हारे रब के सामने अपनी मजबूरी पेश करने के लिए" (आयत-164) के जुमले से भी होती है, जिसकी तसदीक़ (पुष्टि) बाद के जुमले में ख़ुद अल्लाह तआला ने कर दी है। इससे साफ़ ज़ाहिर होता है कि जिस बस्ती में खुल्लम-खुल्ला अल्लाह के हुक्मों की ख़िलाफ़वर्ज़ी हो रही हो वह सारी की सारी क़ौम क़ाबिले-गिरफ़्त है और उसका कोई भी वासी सिर्फ़ इस बिना पर पकड़

يَسُومُهُمْ سُوٓءَ الْعَذَابِ ۗ إِنَّ رَبَّكَ لَسَرِيعُ الْعِقَابِ ۖ وَإِنَّهُۥ لَغَفُورٌ
رَّحِيمٌ ﴿١٦٧﴾ وَقَطَّعْنَٰهُمْ فِى الْأَرْضِ أُمَمًا ۖ مِّنْهُمُ الصَّٰلِحُونَ وَمِنْهُمْ دُونَ

अज़ाब देंगे।"[128] यक़ीनन तुम्हारा रब सज़ा देने में तेज़ है और यक़ीनन वह माफ़ी और रहम से भी काम लेनेवाला है।

(168) हमने उनको ज़मीन में टुकड़े-टुकड़े करके बहुत-सी क़ौमों में बाँट दिया। कुछ लोग उनमें नेक थे और कुछ उससे अलग। और हम उनको अच्छी और बुरी हालतों से

से नहीं बच सकता कि उसने ख़ुद ख़िलाफ़वर्ज़ी नहीं की, बल्कि उसे ख़ुदा के सामने अपनी सफ़ाई पेश करने के लिए लाज़िमन इस बात का सुबूत पेश करना होगा कि वह अपनी ताक़त भर लोगों के सुधार और हक़ को क़ायम करने की कोशिश करता रहा था। फिर क़ुरआन और हदीस के दूसरे बयानों से भी हमको ऐसा ही मालूम होता है कि इज्तिमाई जराइम (सामाजिक अपराधों) के मामले में अल्लाह का क़ानून यही है। चुनाँचे क़ुरआन में फ़रमाया गया है, "डरो उस फ़ितने से जिसके वबाल में ख़ास तौर से सिर्फ़ वही लोग गिरफ्तार नहीं होंगे जिन्होंने तुममें से ज़ुल्म किया हो।" (सूरा-8 अनफ़ाल, आयत-25) और इसकी तशरीह में नबी (सल्ल.) फ़रमाते हैं, "अल्लाह तआला ख़ास लोगों के जुर्मों पर आम लोगों को सज़ा नहीं देता जब तक आम लोगों की यह हालत न हो जाए कि वे अपनी आँखों के सामने बुरे काम होते देखें, और वे उन कामों के ख़िलाफ़ अपनी नाराज़ी ज़ाहिर करने की क़ुदरत (सामर्थ्य) रखते हों और फिर भी किसी नाराज़ी का इज़्हार न करें। तो जब लोगों का यह हाल हो जाता है तो अल्लाह ख़ास व आम सबको अज़ाब में मुब्तला कर देता है।" (हदीस : मुसनद अहमद)

इसके अलावा जो आयतें इस वक़्त हमारे पेशेनज़र हैं उनसे यह भी मालूम होता है कि उस बस्ती पर ख़ुदा का अज़ाब दो क़िस्तों में उतरा था। पहली क़िस्त वह जिसे 'अज़ाबे-बईस' (सख़्त अज़ाब) कहा गया है, और दूसरी क़िस्त वह जिसमें नाफ़रमानी पर अड़े रहनेवालों को बन्दर बना दिया गया। हम ऐसा समझते हैं कि पहली क़िस्त के अज़ाब में पहले दोनों गरोह शामिल थे, और दूसरी क़िस्त का अज़ाब सिर्फ़ पहले गरोह को दिया गया था, (अल्लाह ही बेहतर जानता है, अगर मेरा ख़याल सही है तो यह अल्लाह की तरफ़ से होगा और अगर मैं ग़लती पर हूँ तो यह मेरी अपनी ग़लती होगी। अल्लाह माफ़ करने और रहम करनेवाला है)।

126. तशरीह के लिए देखें– सूरा-2 बक़रा, हाशिया-83।

127. असल अरबी में लफ़्ज़ 'तअज़्ज़-न' इस्तेमाल हुआ है जिसका मतलब तक़रीबन वही है जो नोटिस देने या ख़बरदार कर देने का है।

128. इस बात से बनी-इसराईल को लगभग आठवीं सदी ई. पू. से बराबर ख़बरदार किया जा रहा था। चुनाँचे यहूदियों की मुक़द्दस किताबों के मजमूए (संग्रह) में यशायाह और यर्मियाह और उनके बाद आनेवाले नबियों की तमाम किताबों में इसी बात से ख़बरदार किया गया है। फिर

ذٰلِكَ ۚ وَبَلَوْنٰهُمْ بِالْحَسَنٰتِ وَالسَّيِّاٰتِ لَعَلَّهُمْ يَرْجِعُوْنَ ﴿۱۶۸﴾ فَخَلَفَ
مِنْۢ بَعْدِهِمْ خَلْفٌ وَّرِثُوا الْكِتٰبَ يَاْخُذُوْنَ عَرَضَ هٰذَا الْاَدْنٰى
وَيَقُوْلُوْنَ سَيُغْفَرُ لَنَا ۚ وَاِنْ يَّاْتِهِمْ عَرَضٌ مِّثْلُهٗ يَاْخُذُوْهُ ۚ اَلَمْ يُؤْخَذْ
عَلَيْهِمْ مِّيْثَاقُ الْكِتٰبِ اَنْ لَّا يَقُوْلُوْا عَلَى اللّٰهِ اِلَّا الْحَقَّ وَدَرَسُوْا مَا

आज़माइश में डालते रहे कि शायद ये पलट आएँ। (169) फिर अगली नस्लों के बाद ऐसे नालायक़ लोगों ने उनकी जगह ली जो अल्लाह की किताब के वारिस होकर इस हक़ीर (तुच्छ) दुनिया के फ़ायदे समेटते हैं और कह देते हैं कि उम्मीद है हमें माफ़ कर दिया जाएगा, और अगर दुनिया की वही दौलत सामने आती है तो फिर लपककर उसे ले लेते हैं।[129] क्या इनसे किताब का अहद नहीं लिया जा चुका है कि अल्लाह के नाम पर वही बात कहें जो हक़ हो? और ये ख़ुद पढ़ चुके हैं जो किताब में लिखा है।[130]

इसी बात से ईसा (अलैहि॰) ने उन्हें ख़बरदार किया जैसा कि इनजीलों में उनकी कई तक़रीरों से ज़ाहिर है। आख़िर में क़ुरआन ने इसकी तसदीक़ (पुष्टि) की। अब यह बात क़ुरआन और उससे पहले की आसमानी किताबों की सच्चाई पर एक खुली गवाही है कि उस वक़्त से लेकर आज तक तारीख़ (इतिहास) में कोई दौर ऐसा नहीं गुज़रा है, जिसमें यहूदी क़ौम दुनिया में कहीं न कहीं रौंदी और कुचली न जाती रही हो।

129. यानी गुनाह करते हैं और जानते हैं कि गुनाह है, मगर इस भरोसे पर गुनाह करते हैं कि हमारी किसी न किसी तरह बख़्शिश हो ही जाएगी; क्योंकि हम ख़ुदा के चहेते हैं और चाहे हम कुछ भी करें बहरहाल हमारी मग़फ़िरत होनी ज़रूरी है। इसी ग़लतफ़हमी का नतीजा है कि गुनाह करने के बाद न वे शर्मिन्दा होते हैं, न तौबा करते हैं; बल्कि जब फिर वैसे ही गुनाह का मौक़ा आता है तो फिर उसमें पड़ जाते हैं। बदनसीब लोग उस किताब के वारिस हुए जो उनको दुनिया का इमाम (पेशवा) बनानेवाली थी, मगर उनके मन की तंगी और घटिया सोच ने उस क़ीमती और कारगर नुस्ख़े को लेकर दुनिया की मामूली दौलत कमाने से ज़्यादा बुलन्द किसी चीज़ का हौसला न किया और बजाए इसके कि दुनिया में इनसाफ़ और सच्चाई के अलमबरदार और भलाई व सुधार के रहनुमा बनते, सिर्फ़ दुनिया के पुजारी बनकर रह गए।

130. यानी ये ख़ुद जानते हैं कि तौरात में कहीं भी इस बात का ज़िक्र नहीं है कि बनी-इसराईल को बग़ैर किसी शर्त और पूछ-गछ के नजात (मुक्ति) हासिल होगी। न ख़ुदा ने कभी उनसे यह कहा और न उनके पैग़म्बरों ने कभी उनको यह इत्मीनान दिलाया कि तुम जो चाहो करते फिरो,

فِيْهِ ۗ وَالدَّارُ الْاٰخِرَةُ خَيْرٌ لِّلَّذِيْنَ يَتَّقُوْنَ ۗ اَفَلَا تَعْقِلُوْنَ ﴿١٦٩﴾ وَالَّذِيْنَ
يُمَسِّكُوْنَ بِالْكِتٰبِ وَاَقَامُوا الصَّلٰوةَ ۗ اِنَّا لَا نُضِيْعُ اَجْرَ الْمُصْلِحِيْنَ ﴿١٧٠﴾
وَاِذْ نَتَقْنَا الْجَبَلَ فَوْقَهُمْ كَاَنَّهٗ ظُلَّةٌ وَّظَنُّوْٓا اَنَّهٗ وَاقِعٌۢ بِهِمْ ۚ خُذُوْا
ع مَآ اٰتَيْنٰكُمْ بِقُوَّةٍ وَّاذْكُرُوْا مَا فِيْهِ لَعَلَّكُمْ تَتَّقُوْنَ ﴿١٧١﴾

आख़िरत की क़ियामगाह (निवास-स्थान) तो अल्लाह से डरनेवालों के लिए ही बेहतर है।[131] क्या तुम इतनी-सी बात नहीं समझते? (170) जो लोग किताब की पाबन्दी करते हैं और जिन्होंने नमाज़ क़ायम कर रखी है, यक़ीनन ऐसे नेक किरदार लोगों का बदला हम बर्बाद नहीं करेंगे। (171) इन्हें वह वक़्त भी कुछ याद है जबकि हमने पहाड़ को हिलाकर उनपर इस तरह छा दिया था कि मानो वह छतरी है और यह समझ रहे थे कि वह उनपर आ पड़ेगा और उस वक़्त हमने उनसे कहा था कि जो किताब हम तुम्हें दे रहे हैं उसे मज़बूती के साथ थामो और जो कुछ उसमें लिखा है, उसे याद रखो। उम्मीद है कि तुम ग़लत राह पर चलने से बचे रहोगे।[132]

बहरहाल तुम्हारी मग़फ़िरत ज़रूर होगी। फिर आख़िर उन्हें क्या हक़ है कि ख़ुदा से वह बात जोड़ दें जो ख़ुद ख़ुदा ने कभी नहीं कही, हालाँकि उनसे यह अहद लिया गया था कि ख़ुदा के नाम से हक़ के ख़िलाफ़ कोई बात न कहेंगे।

131. इस आयत के दो तर्जमे हो सकते हैं। एक वह जो हमने क़ुरआन के तर्जमे में इख़्तियार किया है। दूसरा यह कि "ख़ुदा से डरनेवाले लोगों के लिए तो आख़िरत का ठिकाना ही बेहतर है।" पहले तर्जमे के लिहाज़ से मतलब यह होगा कि मग़फ़िरत पर किसी की निजी या ख़ानदानी ठेकेदारी नहीं है, यह किसी तरह मुमकिन नहीं है कि तुम काम तो वे करो जो सज़ा देने के लायक़ हों, मगर तुम्हें आख़िरत में जगह मिल जाए अच्छी, सिर्फ़ इसलिए कि तुम यहूदी या इसराईली हो। अगर तुममें कुछ भी अक़्ल मौजूद हो तो तुम ख़ुद समझ सकते हो कि आख़िरत में अच्छा मक़ाम सिर्फ़ उन्हीं लोगों को मिल सकता है जो दुनिया में ख़ुदा से डरकर काम करें। रहा दूसरा तर्जमा तो उसके लिहाज़ से मतलब यह होगा कि दुनिया और उसके फ़ायदों को आख़िरत के मुक़ाबले ज़्यादा अहमियत देना तो सिर्फ़ उन लोगों का काम है जो ख़ुदा से न डरते हों। ख़ुदा से डरनेवाले लोग तो लाज़िमी तौर पर दुनिया के फ़ायदों के मुक़ाबले में आख़िरत के फ़ायदे को और दुनिया के ऐश के मुक़ाबले आख़िरत की भलाई को तरजीह देते हैं।

132. इशारा है उस वाक़िए (घटना) की तरफ़ जो मूसा (अलैहि.) को गवाही-नामे की पत्थर की तख़्तियाँ दिए जाने के मौक़े पर सीना पहाड़ के दामन में पेश आई थी। बाइबल में इस घटना

وَإِذْ أَخَذَ رَبُّكَ مِنْ بَنِيٓ ءَادَمَ مِن ظُهُورِهِمْ ذُرِّيَّتَهُمْ وَأَشْهَدَهُمْ
عَلَىٰٓ أَنفُسِهِمْ أَلَسْتُ بِرَبِّكُمْ ۖ قَالُوا۟ بَلَىٰ ۛ شَهِدْنَآ ۛ أَن تَقُولُوا۟ يَوْمَ

(172) और[133] ऐ नबी! लोगों को याद दिलाओ वह वक़्त जबकि तुम्हारे रब ने बनी-आदम की पीठों से उनकी नस्ल को निकाला था और उन्हें ख़ुद उनके ऊपर गवाह बनाते हुए पूछा था, "क्या मैं तुम्हारा रब नहीं हूँ?" उन्होंने कहा, "ज़रूर आप ही हमारे

को इन अलफ़ाज़ में बयान किया गया है—
"और मूसा लोगों को ख़ेमे की जगह से बाहर लाया कि ख़ुदा से मिलाए और वे पहाड़ के नीचे आ खड़े हुए और सीना पहाड़ ऊपर से नीचे तक धुएँ से भर गया; क्योंकि ख़ुदायन्द आग की लपट में होकर उस पर उतरा और धुआँ तन्दूर के धुएँ की तरह ऊपर को उठ रहा था और वह सारा पहाड़ ज़ोर से हिल रहा था।" (निष्कासन, 19:17, 18)
इस तरह अल्लाह तआला ने बनी-इसराईल से किताब की पाबन्दी का अहद लिया और अहद लेते हुए ज़ाहिरी तौर से उनपर ऐसा माहौल बना दिया जिससे उन्हें ख़ुदा के जलाल (प्रताप) और उसकी अज़मत व बरतरी और उसके अहद की अहमियत का पूरा-पूरा एहसास हो और वे कायनात के उस बादशाह के साथ अहद बाँधने को कोई मामूली बात न समझें। इससे यह गुमान न करना चाहिए कि वे ख़ुदा के साथ मीसाक़ (अहद) बाँधने पर आमादा न थे और उन्हें ज़बरदस्ती ख़ौफ़ज़दा करके इसपर आमादा किया गया। सच्चाई यह है कि वे सब-के-सब ईमानवाले थे और पहाड़ के दामन में अहद बाँधने ही के लिए गए थे, मगर अल्लाह तआला ने मामूली तौर पर उनसे अहद व इक़रार (वचन व स्वीकृति) लेने के बजाए मुनासिब जाना कि इस अहद व इक़रार की अहमियत उनको अच्छी तरह महसूस करा दी जाए ताकि इक़रार करते वक़्त उन्हें यह एहसास रहे कि वे किस क़ादिरे-मुतलक़ (सर्वशक्तिमान) हस्ती से इक़रार कर रहे हैं और उसके साथ अहद की ख़िलाफ़वर्ज़ी करने का अंजाम क्या कुछ हो सकता है।
यहाँ पहुँचकर बनी-इसराईल से ख़िताब ख़त्म हो जाता है और बाद की आयत में बात का रुख़ आम इनसानों की तरफ़ फिरता है जिनमें ख़ास तौर पर बात का रुख़ उन लोगों की तरफ़ है जिन्हें नबी (सल्ल.) ख़ुद सीधे तौर पर ख़िताब कर रहे थे।

133. ऊपर के बयान का सिलसिला इस बात पर ख़त्म हुआ था कि अल्लाह तआला ने बनी-इसराईल से बन्दगी व इताअत का अहद लिया था। अब आम इनसानों की तरफ़ ख़िताब करके उन्हें बताया जा रहा है कि बनी-इसराईल ही की कोई ख़ुसूसियत नहीं है, हक़ीक़त में तुम सब अपने ख़ालिक़ (पैदा करनेवाले) के साथ एक मीसाक़ (अहद) में बंधे हुए हो और तुम्हें एक दिन जवाबदेही करनी है कि तुमने इस अहद की कहाँ तक पाबन्दी की।

الْقِيٰمَةِ اِنَّا كُنَّا عَنْ هٰذَا غٰفِلِيْنَ ﴿١٧٢﴾ اَوْ تَقُوْلُوْٓا اِنَّمَآ اَشْرَكَ اٰبَآؤُنَا مِنْ

रब हैं, हम इसपर गवाही देते हैं।"[134] यह हमने इसलिए किया कि कहीं तुम क़ियामत के दिन यह न कह दो कि "हम तो इस बात से बेख़बर थे।" (173) या यह न कहने लगो

134. जैसा कि कई हदीसों से मालूम होता है यह मामला आदम को पैदा करने के मौक़े पर पेश आया था। उस वक़्त जिस तरह फ़रिश्तों को जमा करके पहले इनसान (आदम) को सजदा कराया गया था और ज़मीन पर इनसान को ख़लीफ़ा (प्रतिनिधि) बनाए जाने का एलान किया गया था, उसी तरह आदम की पूरी नस्ल को भी, जो क़ियामत तक पैदा हानेवाली थी अल्लाह तआला ने एक साथ वुजूद और शुऊर (समझ) देकर अपने सामने हाज़िर किया था और उनसे अपने रब होने की गवाही ली थी। इस आयत की तफ़सीर में हज़रत उबई-बिन-कअ़ब (रज़ि॰) ने शायद नबी (सल्ल॰) से फ़ायदा उठाके जो कुछ बयान किया है वह इस बात की बेहतरीन तशरीह है। वे फ़रमाते हैं –

"अल्लाह तआला ने सबको जमा किया और (एक-एक क़िस्म या एक-एक दौर के) लोगों को अलग-अलग गरोहों की शक्ल में रखकर उन्हें इनसानी सूरत और बोलने की ताक़त दी, फिर उनसे अह्द लिया और उन्हें आप अपने आप पर गवाह बनाते हुए पूछा, 'क्या मैं तुम्हारा रब नहीं हूँ?' उन्होंने जवाब में कहा, 'ज़रूर! आप हमारे रब हैं!' तब अल्लाह ने फ़रमाया कि 'मैं तुमपर ज़मीन व आसमान सबको और ख़ुद तुम्हारे बाप आदम को गवाह ठहराता हूँ, ताकि तुम क़ियामत के दिन यह न कह सको कि हमको इसकी जानकारी न थी। ख़ूब जान लो कि मेरे सिवा कोई इबादत का हक़दार नहीं है और मेरे सिवा कोई रब नहीं है। तुम मेरे साथ किसी को शरीक न ठहराना। मैं तुम्हारे पास अपने पैग़म्बर भेजूँगा जो तुमको यह अह्द और मीसाक़, जो तुम मेरे साथ बाँध रहे हो, याद दिलाएँगे और तुमपर अपनी किताबें भी उतारूँगा।' इसपर सब इनसानों ने कहा कि हम गवाह हुए, आप ही हमारे रब और आप ही हमारे माबूद हैं, आप के सिवा न कोई हमारा रब, है न कोई माबूद।" (हदीस : मुसनद अहमद)

कुछ लोग समझते हैं कि यहाँ मिसाल के अन्दाज़ में इस बात को पेश किया गया है। उनका ख़याल यह है कि अस्ल में यहा क़ुरआन मजीद सिर्फ़ यह बात ज़ेहन में बिठाना चाहता है कि अल्लाह के रब होने का इक़रार इनसानी फ़ितरत में मौजूद है, और इस बात को यहाँ ऐसे अन्दाज़ से बयान किया गया है कि मानो यह एक वाक़िआ था जो ज़ाहिरी दुनिया में पेश आया, लेकिन हम इस मतलब को सही नहीं समझते। क़ुरआन और हदीस दोनों में उसे बिलकुल एक वाक़िए के तौर पर बयान किया गया है और सिर्फ़ वाक़िआ बयान करने पर ही बस नहीं किया गया, बल्कि यह भी कहा गया है कि क़ियामत के दिन आदम की औलाद पर दलील क़ायम करते हुए इस अज़ली (आदि) अह्द व इक़रार को सनद (सुबूत) में पेश किया जाएगा। लिहाज़ा कोई वजह नहीं कि हम यह मान लें कि यह सिर्फ़ मिसाल का अन्दाज़ है। हमारे नज़दीक यह वाक़िआ बिलकुल उसी तरह पेश आया था जिस तरह ज़ाहिरी दुनिया में

قَبْلُ وَكُنَّا ذُرِّيَّةً مِّنْ بَعْدِهِمْ ۚ اَفَتُهْلِكُنَا بِمَا فَعَلَ الْمُبْطِلُوْنَ ﴿١٧٣﴾
وَكَذٰلِكَ نُفَصِّلُ الْاٰيٰتِ وَلَعَلَّهُمْ يَرْجِعُوْنَ ﴿١٧٤﴾ وَاتْلُ عَلَيْهِمْ نَبَاَ

कि "शिर्क की शुरुआत तो हमारे बाप-दादा ने हमसे पहले की थी और हम बाद को उनकी नस्ल से पैदा हुए। फिर क्या आप हमें उस ग़लती में पकड़ते हैं जो ग़लत काम करनेवालों ने की थी?"[135] (174) देखो इस तरह हम निशानियाँ वाज़ेह तौर पर पेश

वाक़िआत पेश आया करते हैं। अल्लाह तआला ने हक़ीक़त में उन तमाम इनसानों को जिन्हें वह क़ियामत तक पैदा करने का इरादा रखता था, एक ही वक़्त में ज़िन्दगी और समझ और बोलने की ताक़त अता करके अपने सामने हाज़िर किया था, और हक़ीक़त में उन्हें इस हक़ीक़त से पूरी तरह आगाह कर दिया था कि उनका कोई रब और कोई माबूद उसकी पाक और आला हस्ती के सिवा नहीं है, और उनके लिए ज़िन्दगी का कोई सही तरीक़ा उसकी बन्दगी व फ़रमाँबरदारी (इस्लाम) के सिवा नहीं है। तमाम इनसानों के उस एक साथ जमा हो जाने को अगर कोई शख़्स नामुमकिन समझता है तो यह सिर्फ़ उसकी सोच के दायरे के तंग होने का नतीजा है, वरना हक़ीक़त में तो इनसानी नस्ल की मौजूदा तदरीजी (क्रमागत) पैदाइश जितनी मुमकिन नज़र आती है, उतनी ही अज़ल (इनसान की पैदाइश के दिन) में उनका एक साथ ज़ाहिर होना और क़ियामत के दिन उन सबका फिर इकट्ठा होना भी मुमकिन है। फिर यह बात पूरी तरह समझ में आनेवाली मालूम होती है कि इनसान जैसी अक़्ल व समझ रखनेवाली और (संसाधनों के) इस्तेमाल और इख़्तियार की मालिक मख़लूक़ को धरती का ख़लीफ़ा (ख़ुदा के प्रतिनिधि) की हैसियत से मुक़र्रर करते वक़्त अल्लाह तआला उसे हक़ीक़त से बाख़बर कर दे और उससे अपनी वफ़ादारी का इक़रार (Oath of allegiance) ले। इस मामले का पेश आना ताज्जुब की बात नहीं, अलबत्ता अगर यह पेश न आता तो ज़रूर ताज्जुब की बात होती।

135. इस आयत में वह मक़सद बयान किया गया है जिसके लिए अज़ल (आदिकाल) में अह्द की पूरी नस्ल से इक़रार किया गया था। और वह यह है कि इनसानों में से जो लोग अपने ख़ुदा से बग़ावत (का रवैया) इख़्तियार करें, वे अपने इस जुर्म के पूरी तरह ज़िम्मेदार ठहरें। उन्हें अपनी सफ़ाई में न तो जानकारी न होने का बहाना पेश करने का मौक़ा मिले और न वे अपने से पहले गुज़री हुई नस्लों पर अपनी गुमराही की ज़िम्मेदारी डालकर ख़ुद जवाबदेही से बच सकें, मानो दूसरे अलफ़ाज़ में अल्लाह तआला इस अज़ली (आदिकालिक और पैदाइशी) अहद को इस बात पर दलील ठहराता है कि इनसानों में से हर शख़्स इनफ़िरादी (व्यक्तिगत) तौर पर अल्लाह के एक अकेले माबूद और एक अकेले रब होने की गवाही अपने अन्दर लिए हुए है और इस बिना पर यह कहना ग़लत है कि कोई शख़्स पूरी तरह बेख़बर होने की वजह से एक गुमराह माहौल में परवरिश पाने की वजह से अपनी गुमराही की ज़िम्मेदारी से पूरी तरह बरी हो सकता है।

अब सवाल पैदा होता है कि अगर यह अज़ली अहद हक़ीक़त में अमल में आया भी था तो क्या उसकी याद हमारे शुऊर (चेतना) और याद्दाश्त में महफ़ूज़ है, क्या हममें से कोई शख़्स भी यह जानता है कि इनसानी नस्ल की शुरुआत में वह अपने ख़ुदा के सामने पेश किया गया था और उससे "अलस्तु बि रब्बिकुम" (क्या मैं तुम्हारा रब नहीं हूँ) का सवाल हुआ था और उसने "बला" (क्यों नहीं) कहा था? अगर नहीं तो फिर इस इक़रार को जिसकी याद हमारे शुऊर (चेतना) और याद्दाश्त से मिट चुकी है, हमारे ख़िलाफ़ हुज्जत (दलील) कैसे क़रार दिया जा सकता है?

उसका जवाब यह है कि अगर उस अहद का नक़्श (छाप) इनसान के शुऊर और याद्दाश्त में ताज़ा रहने दिया जाता तो इनसान का दुनिया की मौजूदा इम्तिहानगाह (परीक्षा-स्थल) में भेजा जाना सिरे से बेकार हो जाता; क्योंकि उसके बाद तो आज़माइश व इम्तिहान के कोई मानी ही बाक़ी न रह जाते। लिहाज़ा इस नक़्श को शुऊर व याददाशत में तो ताज़ा नहीं रखा गया, लेकिन वह तहतश-शुऊर (अवचेतन-मन, Sub-concious mind) और विजदान (अन्तर्ज्ञान, Intuition) में यक़ीनन महफ़ूज़ है। इसका हाल वही है जो हमारे तमाम दूसरे तहतश-शुऊर और विजदान में छिपे इल्मों (ज्ञानों) का है। तहज़ीब व तमद्दुन और अख़्लाक़ व मामलात के तमाम शोबों में इनसान की तरफ़ से आज तक जो कुछ भी सामने आया है, वह सब हक़ीक़त में इनसान के अन्दर इमकान की शक्ल में (Potentially) मौजूद था। बाहरी मुहर्रिकात (प्रेरकों) और दाख़िली तहरीकात ने मिल-जुलकर अगर कुछ किया है तो सिर्फ़ इतना कि जो कुछ सिर्फ़ इमकान की शक्ल में था उसे अमली तौर पर ला दिया। यह एक हक़ीक़त है कि कोई तालीम, कोई तरबियत, कोई माहौली असर और कोई अन्दरूनी तहरीक इनसान के अन्दर कोई चीज़ भी, जो उसके अन्दर इमकान की शक्ल में मौजूद न हो, हरगिज़ पैदा नहीं कर सकती। और इसी तरह ये सब असर डालनेवाली चीज़ें अगर अपना तमाम ज़ोर भी लगा दें तो उनमें यह ताक़त नहीं है कि उन चीज़ों में से, जो इनसान के अन्दर इमकान की शक्ल में मौजूद हैं, किसी चीज़ को बिलकुल मिटा दें। ज़्यादा-से-ज़्यादा जो कुछ वे कर सकते हैं वह सिर्फ़ यह है कि उसे अस्ल फ़ितरत से हटा दें। लेकिन वह चीज़ हर तरह से बिगाड़ने और मिटाने के बावजूद अन्दर मौजूद रहेगी, बाहर आने के लिए ज़ोर लगाती रहेगी और बाहरी पुकार का जवाब देने के लिए तैयार रहेगी। यह मामला जैसा कि हमने अभी बयान किया, उन तमाम इल्मों के साथ आम है जो हमारे तहतश-शुऊर (अवचेतन) और विजदान (अन्तर्ज्ञान) में मौजूद होते हैं।

वे सब हमारे अन्दर इमकान की शक्ल में मौजूद हैं, और उनके मौजूद होने का यक़ीनी सुबूत उन चीज़ों से हमें मिलता है, जो अमल की सूरत में हमसे ज़ाहिर होती हैं।

इन सबके ज़ाहिर होने के लिए बाहरी तौर पर तज़कीर (याददिहानी), तालीम, तरबियत और तशकील (स्वरूप देने) की ज़रूरत होती है, और जो कुछ हमसे ज़ाहिर होता है वह मानो अस्ल में बाहरी पुकार का वह जवाब है जो हमारे अन्दर की मौजूद क़ुव्वतों और ताक़तों की तरफ़ से मिलता है।

इन सबको अन्दर की ग़लत ख़ाहिशें और बाहर के ग़लत असरात दबाकर, परदा डालकर दूसरी तरफ़ मोड़कर और कुचलकर के ऐसा तो कर सकती हैं कि वे महसूस न हों, मगर पूरी तरह

मिटा नहीं सकतीं, और इसी लिए अन्दरूनी एहसास और बाहरी कोशिश दोनों से इस्लाह और तबदीली (Conversion) मुमकिन होती है।

ठीक-ठीक यही कैफ़ियत उस विजदानी इल्म (अन्तर्ज्ञान) की भी है जो हमें कायनात में अपनी हक़ीक़ी हैसियत और कायनात के बनानेवाले (ख़ुदा) के साथ अपने ताल्लुक़ के बारे में हासिल है :

इसके मौजूद होने का सुबूत यह है कि ये इनसानी ज़िन्दगी के हर दौर में, ज़मीन के हर ख़ित्ते (भू-भाग) में, हर बस्ती, हर पीढ़ी और हर नस्ल में उभरता रहा है और कभी दुनिया की कोई ताक़त उसे मिटा देने में कामयाब नहीं हो सकी है।

इसके हक़ीक़त के मुताबिक़ होने का सुबूत यह है कि जब कभी वह उभरकर अमली तौर पर हमारी ज़िन्दगी में कारफ़रमा हुआ है उसने अच्छे और मुफ़ीद नतीजे ही पैदा किए हैं।

इसको उभरने और ज़ाहिर होने और इसको सूरत इख़्तियार करने के लिए एक बाहरी पुकार की हमेशा ज़रूरत रही है। चुनाँचे नबी (अलैहि॰) और आसमानी किताबें और उनकी पैरवी करनेवाले और हक़ की तरफ़ बुलानेवाले सब-के-सब यही काम करते रहे हैं। इसी लिए उनको क़ुरआन में मुज़क्किर (याद दिलानेवाले), ज़िक्र, तज़किरा (याद्दाशत) और उनके काम को तज़कीर (याददिहानी) के अलफ़ाज़ से बयान किया गया है, जिसके मानी ये हैं कि पैग़म्बर और किताबें और हक़ की दावत देनेवाले लोग इनसान के अन्दर कोई नई चीज़ पैदा नहीं करते, बल्कि उसी चीज़ को उभारते और ताज़ा करते हैं जो उनके अन्दर पहले से मौजूद थी।

नफ़्से-इनसानी (मानव-मन) की तरफ़ से हर ज़माने में इस याददिहानी का जवाब उसे हाँ में मिलना इस बात का एक और सुबूत है कि अन्दर हक़ीक़त में कोई इल्म छिपा हुआ था जो अपने पुकारनेवाले की आवाज़ पहचानकर जवाब देने के लिए उभर आया।

फिर इसे जहालत और जाहिलियत और मन की ख़ाहिशों और तास्सुबात (पक्षपातों) और जिन्नों और इनसानों की गुमराह करनेवाली तालीमात व तरग़ीबात (प्रेरणाओं) ने हमेशा दबाने और छिपाने और दूसरी ओर मोड़ने और कुचलने की कोशिश की है जिसके नतीजे में शिर्क, दहरियत (दुनियापरस्ती), इलहाद (नास्तिकता), ज़न्दिक़ा (कुफ़्र का रवैया अपनाना) और अख़्लाक़ी व अमली बिगाड़ पैदा होता रहा है। लेकिन गुमराही की इन सारी ताक़तों की एकजुट कोशिश के बावजूद इस इल्म का पैदाइशी नक़्श इनसान के दिल की तख़्ती पर किसी-न-किसी हद तक मौजूद रहा है और इसी लिए तज़कीर (याददिहानी) व तजदीद (ताज़ा करने) की कोशिशें उसे उभारने में कामयाब होती रही हैं।

इसमें शक नहीं कि दुनिया की मौजूदा ज़िन्दगी में जो लोग हक़ और हक़ीक़त के इनकार पर अड़े हैं वे अपनी हुज्जतबाज़ियों (कुतर्कों) से इस पैदाइशी नक़्श के वुजूद का इनकार कर सकते हैं या कम-से-कम उसे मुश्तबह (सन्दिग्ध) साबित कर सकते हैं। लेकिन जिस दिन 'यौमे-हिसाब' आएगा उस दिन उनका ख़ालिक़ उनके शुऊर (चेतना) व याददाश्त में अज़ल (पैदाइश) के दिन के उस इकट्ठे होने की याद ताज़ा कर देगा, जबकि उन्होंने उसको अपना एक अकेला माबूद और एक अकेला रब तस्लीम किया था। फिर वह इस बात का सुबूत भी उनके अपने मन में ही जुटा देगा कि इस अह्द का नक़्श उनके नफ़्स (मन) में बराबर मौजूद रहा और यह भी वह

الَّذِيٓ اٰتَيۡنٰهُ اٰيٰتِنَا فَانۡسَلَخَ مِنۡهَا فَاَتۡبَعَهُ الشَّيۡطٰنُ فَكَانَ مِنَ
الۡغٰوِيۡنَ ۝١٧٥ وَلَوۡ شِئۡنَا لَرَفَعۡنٰهُ بِهَا وَلٰكِنَّهٗۤ اَخۡلَدَ اِلَى الۡاَرۡضِ وَاتَّبَعَ

करते हैं।[136] और इसलिए पेश करते हैं कि ये लोग पलट आएँ।[137]

(175) और ऐ नबी! इनके सामने उस शख़्स का हाल बयान करो जिसको हमने अपनी आयतों का इल्म दिया था,[138] मगर वह उनकी पाबन्दियों से निकल भागा। आख़िरकार शैतान उसके पीछे पड़ गया, यहाँ तक कि वह भटकनेवालों में शामिल होकर रहा। (176) अगर हम चाहते तो उसे उन आयतों के ज़रिए से बुलन्दी अता करते, मगर

उनकी अपनी ज़िन्दगी ही के रिकार्ड से सूबूतों और गवाहियों की बुनियाद पर दिखा देगा कि उन्होंने किस-किस तरह इस नक्श को दबाया, कब-कब और किन-किन मौक़ों पर उनके दिल से उसे सच कहने की आवाज़ें उठीं, अपनी और अपने आस-पास की गुमराहियों पर उनके विजदान (अन्तर्ज्ञान) ने कहाँ-कहाँ और किस-किस वक़्त इनकार की आवाज़ बुलन्द की, हक़ की तरफ़ बुलानेवालों की दावत का जवाब देने के लिए उनके अन्दर का छिपा हुआ इल्म कितनी-कितनी बार और किस-किस जगह उभरने पर आमादा हुआ, और फिर वह अपने तास्सुबात (पक्षपात) और अपने मन की ख़ाहिशों की बिना पर कैसे-कैसे हीलों और बहानों से उसको फ़रेब देते और ख़ामोश कर देते रहे। वह वक़्त, जबकि ये सारे राज़ खुलेंगे, हुज्जतबाज़ियों का न होगा, बल्कि साफ़-साफ़ जुर्म क़बूल करने का होगा। इसी लिए क़ुरआन मजीद कहता है कि उस वक़्त मुजरिम लोग यह नहीं कहेंगे कि हम जाहिल थे या ग़ाफ़िल थे, बल्कि यह कहने पर मजबूर होंगे कि हम काफ़िर थे, यानी हमने जान-बूझकर हक़ का इनकार किया। "उस वक़्त वे ख़ुद अपने ख़िलाफ़ गवाही देंगे कि वे इनकारी थे।" (सूरा-6 अनआम, आयत-130)

136. यानी हक़ को अच्छी तरह पहचानने के जो निशानात इनसान के अपने वुजूद के अन्दर मौजूद हैं उनका साफ़-साफ़ पता देते हैं।

137. यानी बग़ावत और मुँह मोड़ने का रवैया छोड़कर बन्दगी और फ़रमाँबरदारी के रवैये की तरफ़ वापस हों।

138. इन अलफ़ाज़ से ऐसा महसूस होता है कि वह ज़रूर कोई ख़ास शख़्स होगा जिसकी तरफ़ इशारा किया गया है। लेकिन अल्लाह और उसके रसूल की यह इन्तिहाई अख़लाक़ी बुलन्दी है कि वे जब कभी किसी की बुराई को मिसाल में पेश करते हैं तो आम तौर पर उसका नाम नहीं बताते, बल्कि उसकी शख़्सियत पर परदा डालकर सिर्फ़ उसकी बुरी मिसाल का ज़िक्र कर देते हैं, ताकि उसकी रुसवाई किए बिना अस्ल मक़सद हासिल हो जाए। इसी लिए न क़ुरआन में बताया गया है और न किसी सहीह हदीस में कि वह शख़्स, जिसकी मिसाल यहाँ दी गई है, कौन था। क़ुरआन की तफ़सीर बयान करनेवालों ने पैग़म्बर के ज़माने और उससे पहले की तारीख़ (इतिहास) के मुख़्तलिफ़ लोगों पर इस मिसाल को चस्पाँ किया है। कोई

هَوٰىهُ ۚ فَمَثَلُهٗ كَمَثَلِ الْكَلْبِ ۚ اِنْ تَحْمِلْ عَلَيْهِ يَلْهَثْ اَوْ تَتْرُكْهُ يَلْهَثْ ؕ
ذٰلِكَ مَثَلُ الْقَوْمِ الَّذِيْنَ كَذَّبُوْا بِاٰيٰتِنَا ۚ فَاقْصُصِ الْقَصَصَ لَعَلَّهُمْ
يَتَفَكَّرُوْنَ ﴿١٧٦﴾ سَآءَ مَثَلَا ۨالْقَوْمُ الَّذِيْنَ كَذَّبُوْا بِاٰيٰتِنَا وَاَنْفُسَهُمْ

वह तो ज़मीन ही की तरफ़ झुककर रह गया और अपनी मन की ख़्वाहिश ही के पीछे पड़ा रहा। इसलिए उसकी हालत कुत्ते की-सी हो गई कि तुम उसपर हमला करो तब भी ज़बान लटकाए रहे और उसे छोड़ दो तब भी ज़बान लटकाए रहे।[139] यही मिसाल है उन लोगों की जो हमारी आयतों को झुठलाते हैं।

तुम ये क़िस्से इनको सुनाते रहो, शायद कि ये कुछ ग़ौर-फ़िक्र करें। (177) बड़ी ही बुरी मिसाल है ऐसे लोगों की जिन्होंने हमारी आयतों को झुठलाया, और वे आप अपने

बलअम-बिन-बाऊरा का नाम लेता है, कोई उमय्या-बिन-अबी-सलत का और कोई सैफ़ी-बिन-राहिब का। लेकिन हक़ीक़त यह है कि वह ख़ास शख़्स तो परदे में है जो इस मिसाल में सामने था, अलबत्ता यह मिसाल हर उस शख़्स पर चस्पाँ होती है जिसमें यह सिफ़त पाई जाती हो।

139. इन दो मुख़्तसर से जुमलों में बड़ी अहम बात बयान हुई है जिसे ज़रा तफ़सील के साथ समझ लेना चाहिए।

वह शख़्स जिसकी मिसाल यहाँ पेश की गई है, अल्लाह की आयतों का इल्म रखता था, यानी हक़ीक़त से वाक़िफ़ था। इस इल्म का नतीजा यह होना चाहिए था कि वह उस रवैए से बचता जिसको वह ग़लत जानता था और वह रवैया इख़्तियार करता जो उसे मालूम था कि सही है। इसी इल्म के मुताबिक़ अमल की बदौलत अल्लाह तआला उसको इनसानियत के बुलन्द दर्जों पर तरक़्क़ी देता। लेकिन वह दुनिया के फ़ायदों और लज़्ज़तों और आराइशों की तरफ़ झुक पड़ा, मन की ख़्वाहिशों की माँगों का मुक़ाबला करने के बजाए उसने उनके आगे हथियार डाल दिए, (आख़िरत की कामयाबी देनेवाले) आला दरजे के कामों की तलब में दुनिया के लोभ व लालच से ऊपर उठकर सोचने के बजाए वह इस लोभ व लालच से ऐसा मग़लूब (प्रभावित) हुआ कि अपने सब ऊँचे इरादों और अपनी अक़्ली व अख़्लाक़ी तरक़्क़ी के सारे इमकानात (संभावनाओं) को बिलकुल ही छोड़ बैठा और उन तमाम हदबन्दियों को तोड़कर निकल भागा जिनकी देखभाल का तक़ाज़ा ख़ुद उसका इल्म कर रहा था। फिर जब वह सिर्फ़ अपनी अख़्लाक़ी कमज़ोरी की वजह से जानते-बूझते हक़ से मुँह मोड़कर भागा तो शैतान जो क़रीब ही उसकी घात में लगा हुआ था, उसके पीछे लग गया और बराबर उसे एक पस्ती (पतन) से दूसरी पस्ती की तरफ़ ले जाता रहा, यहाँ तक कि ज़ालिम ने उसे उन लोगों के गरोह में पहुँचाकर ही दम लिया जो उसके फंदे में फँसकर पूरी तरह अपनी अक्ल व होश की दौलत गुम कर चुके हैं।

كَانُوْا يَظْلِمُوْنَ ﴿١٧٧﴾ مَنْ يَّهْدِ اللّٰهُ فَهُوَ الْمُهْتَدِيْ ۚ وَمَنْ يُّضْلِلْ فَاُولٰٓئِكَ
هُمُ الْخٰسِرُوْنَ ﴿١٧٨﴾ وَلَقَدْ ذَرَاْنَا لِجَهَنَّمَ كَثِيْرًا مِّنَ الْجِنِّ وَالْاِنْسِ ۖ لَهُمْ
قُلُوْبٌ لَّا يَفْقَهُوْنَ بِهَا ۡ وَلَهُمْ اَعْيُنٌ لَّا يُبْصِرُوْنَ بِهَا ۡ وَلَهُمْ

ही ऊपर ज़ुल्म करते रहे हैं। (178) जिसे अल्लाह रास्ता दिखाए, बस वही सीधा रास्ता पाता है और जिसको अल्लाह अपनी रहनुमाई से महरूम कर दे, वही नाकाम होकर रहता है। (179) और यह हक़ीक़त है कि बहुत-से जिन्न और इनसान ऐसे हैं जिनको हमने जहन्नम ही के लिए पैदा किया है।[140] उनके पास दिल हैं, मगर वे उनसे सोचते नहीं। उनके पास आँखें हैं, मगर वे उनसे देखते नहीं। उनके पास कान हैं, मगर वे उनसे सुनते

इसके बाद अल्लाह तआला उस शख़्स की हालत को कुत्ते से तशबीह (उपमा) देता है जिसकी हर वक़्त लटकी हुई ज़बान और टपकती हुई राल लालच की एक न बुझनेवाली आग कभी न मुत्मइन होनेवाली नीयत का पता देती है। तशबीह (उपमा) की बुनियाद वही है जिसकी वजह से हम अपनी उर्दू-हिन्दी ज़बान में ऐसे शख़्स को जो दुनिया के लालच में अंधा हो रहा हो, दुनिया का कुत्ता कहते हैं। कुत्ते की फ़ितरत क्या है? हिर्स और लालच। चलते-फिरते उसकी नाक ज़मीन सूँघने ही में लगी रहती है कि शायद कहीं से खाने की ख़ुशबू आ जाए। उसे पत्थर मारिए तब भी उसकी यह उम्मीद दूर नहीं होती कि शायद यह चीज़ जो फेंकी गई है कोई हड्डी या रोटी का कोई टुकड़ा हो। पेट का बन्दा एक बार तो लपककर उसको भी दाँतों से पकड़ ही लेता है। उससे बेरुख़ी बरतिए तब भी वह लालच का मारा उम्मीदों की एक दुनिया दिल में लिए, ज़बान लटकाए, हाँपता-काँपता खड़ा ही रहेगा। सारी दुनिया को वह बस पेट ही की निगाह से देखता है। कहीं कोई बड़ी-सी लाश पड़ी हो, जो कई कुत्तों के खाने को काफ़ी हो, तो एक कुत्ता उसमें से सिर्फ़ अपना हिस्सा लेने पर बस न करेगा बल्कि उसे सिर्फ़ अपने ही लिए ख़ास रखना चाहेगा और किसी दूसरे कुत्ते को उसके पास न फटकने देगा। पेट की इस भूख के बाद अगर कोई चीज़ उसपर छाई रहती है तो वह है जिंस की भूख (यौन-पिपासा)। अपने सारे जिस्म में से एक शर्मगाह (यौनांग) ही वह चीज़ है जिससे वह दिलचस्पी रखता है और उसी को सूँघने और चाटने में लगा रहता है। लिहाज़ा तशबीह (उपमा) का मक़सद यह है कि दुनियापरस्त आदमी जब इल्म और ईमान की रस्सी तुड़ाकर भागता है और नफ़्स की अंधी ख़ाहिशों के हाथ में अपनी बागडोर दे देता है तो फिर कुत्ते की हालत को पहुँचे बिना नहीं रहता, यानी सिर्फ़ पेट और शर्मगाह के चक्कर में लगा रहनेवाला।

140. इसका यह मतलब नहीं है कि हमने उनको पैदा ही इस मक़सद के लिए किया था कि वे जहन्नम में जाएँ और उनको वुजूद में लाते वक़्त ही यह इरादा कर लिया था कि इन्हें दोज़ख़ का ईंधन बनाना है, बल्कि इसका सही मतलब यह है कि हमने तो इनको पैदा किया था दिल,

اٰذَانٌ لَّا يَسْمَعُوْنَ بِهَا ؕ اُولٰٓئِكَ كَالْاَنْعَامِ بَلْ هُمْ اَضَلُّ ؕ اُولٰٓئِكَ هُمُ
الْغٰفِلُوْنَ ﴿۱۷۹﴾ وَلِلّٰهِ الْاَسْمَآءُ الْحُسْنٰى فَادْعُوْهُ بِهَا ۪ وَذَرُوا الَّذِيْنَ
يُلْحِدُوْنَ فِيْٓ اَسْمَآئِهٖ ؕ سَيُجْزَوْنَ مَا كَانُوْا يَعْمَلُوْنَ ﴿۱۸۰﴾ وَمِمَّنْ خَلَقْنَآ
اُمَّةٌ يَّهْدُوْنَ بِالْحَقِّ وَبِهٖ يَعْدِلُوْنَ ﴿۱۸۱﴾ وَالَّذِيْنَ كَذَّبُوْا بِاٰيٰتِنَا ع

नहीं। वे जानवरों की तरह हैं, बल्कि उनसे भी ज़्यादा गए गुज़रे। ये वे लोग हैं जो ग़फ़लत में खोए गए हैं।

(180) अल्लाह अच्छे नामों[141] का हक़दार है। उसको अच्छे ही नामों से पुकारो और उन लोगों को छोड़ दो जो उसके नाम रखने में सही रास्ते से हट जाते हैं। जो कुछ वे करते रहे हैं, उसका बदला वे पाकर रहेंगे।[142] (181) हमारे पैदा किए हुओं में एक गरोह ऐसा भी है जो ठीक-ठीक हक़ के मुताबिक़ रास्ता दिखाता और हक़ के मुताबिक़ इनसाफ़ करता है। (182) रहे वे लोग जिन्होंने हमारी आयतों को झुठला दिया है, तो उन्हें हम

दिमाग़, आँखें और कान देकर, मगर ज़ालिमों ने इनसे कोई काम न लिया और अपने ग़लत कामों की बदौलत आख़िरकार जहन्नम का ईंधन बनकर रहे। इस बात को कहने के लिए वह अन्दाज़े-बयान इख़्तियार किया गया है जो इनसानी ज़बान में इन्तिहाई अफ़सोस और हसरत के मौक़े पर इस्तेमाल किया जाता है। मिसाल के तौर पर अगर किसी माँ के कई एक जवान-जवान बेटे लड़ाई में जाकर मौत के मुँह में चले गए हों तो वह लोगों से कहती है कि मैंने उन्हें इसलिए पाल-पोसकर बड़ा किया था कि लोहे और आग के खेल में ख़त्म हो जाएँ। इस बात के कहने से उसका मक़सद यह नहीं होता कि वाक़ई उसके पालने-पोसने का मक़सद यही था, बल्कि इस हसरत भरे अन्दाज़ में दरअस्ल वह कहना यह चाहती है कि मैंने तो इतनी मेहनतों से अपना ख़ूने-जिगर पिला-पिलाकर इन बच्चों को पाला था, मगर ख़ुदा इन लड़नेवाले फ़सादियों से समझे कि मेरी मेहनत और क़ुरबानी के फल यूँ मिट्टी में मिल कर रहे।

141. अब तक़रीर ख़त्म होने के क़रीब है इसलिए बात ख़त्म करने पर नसीहत और मलामत के मिले-जुले अन्दाज़ में लोगों को उनकी कुछ खुली गुमराहियों पर ख़बरदार किया जा रहा है और साथ ही पैग़म्बर की दावत के मुक़ाबले में इनकार करने और मज़ाक़ उड़ाने का जो रवैया उन्होंने इख़्तियार कर रखा था, उसकी ग़लती समझाते हुए उसके बुरे अंजाम से उन्हें ख़बरदार किया जा रहा है।

142. इनसान अपनी ज़बान में चीज़ों के जो नाम रखता है वे दर अस्ल उस तसव्वुर (कल्पना) की बुनियाद पर होते हैं जो उसके ज़ेहन में उन चीज़ों के बारे में हुआ करता है। तसव्वुर की ख़राबी नाम की ख़राबी के रूप में ज़ाहिर होती है और नाम की ख़राबी तसव्वुर की ख़राबी की दलील

سَنَسْتَدْرِجُهُمْ مِّنْ حَيْثُ لَا يَعْلَمُوْنَ ﴿١٨٢﴾ وَاُمْلِيْ لَهُمْ ۚ اِنَّ كَيْدِيْ
مَتِيْنٌ ﴿١٨٣﴾ اَوَلَمْ يَتَفَكَّرُوْا ۜ مَا بِصَاحِبِهِمْ مِّنْ جِنَّةٍ ۚ اِنْ هُوَ اِلَّا نَذِيْرٌ

धीर-धीरे ऐसे तरीक़े से तबाही की तरफ़ ले जाएँगे कि उन्हें ख़बर तक न होगी।
(183) मैं उनको ढील दे रहा हूँ, मेरी चाल का कोई तोड़ नहीं है।
(184) और क्या इन लोगों ने कभी सोचा नहीं? इनके साथी पर जुनून (उन्माद) का कोई असर नहीं है। वह तो एक ख़बरदार करनेवाला है जो (बुरा अंजाम सामने आने से

होती है। फिर चीज़ों के साथ इनसान का ताल्लुक़ और मामला भी लाज़िमी तौर पर उस तसव्वुर ही के मुताबिक़ हुआ करता है जो वह अपने ज़ेहन में उनके बारे में रखता है। तसव्वुर की ख़राबी ताल्लुक़ की ख़राबी में ज़ाहिर होती है और तसव्वुर का सही और ठीक होना ताल्लुक़ के सही और ठीक होने में नुमायाँ होकर रहता है। यह हक़ीक़त जिस तरह दुनिया की तमाम चीज़ों के मामले में सही है, उसी तरह अल्लाह के मामले में भी सही है। अल्लाह के लिए नाम (चाहे वे नाम उसकी ज़ात के मुताल्लिक़ हों या उसकी सिफ़तों से मुताल्लिक़) रखने में इनसान जो ग़लती भी करता है वह अस्ल में अल्लाह की ज़ात व सिफ़ात के बारे में उसके अक़ीदे की ग़लती का नतीजा होती है। फिर ख़ुदा के बारे में अपने तसव्वुर और अक़ीदे में इनसान जितनी और जैसी ग़लती करता है, उतनी ही और वैसी ही ग़लती उससे अपनी ज़िन्दगी के पूरे अख़लाक़ी रवैये को ढालने में भी होती है; क्योंकि इनसान के अख़लाक़ी रवैये के सामने आने का पूरा दारोमदार उस तसव्वुर पर है जो उसने ख़ुदा के बारे में और ख़ुदा के साथ अपने और कायनात के ताल्लुक़ के बारे में क़ायम किया हो। इसी लिए फ़रमाया कि ख़ुदा के नाम रखने में ग़लती करने से बचो, ख़ुदा के लिए अच्छे नाम ही मुनासिब हैं और उसे उन्हीं नामों से याद करना चाहिए, उसके नाम रखने में 'इलहाद' का अंजाम बहुत बुरा है।
"अच्छे नामों" से मुराद वे नाम हैं जिनसे ख़ुदा की बड़ाई और बरतरी, उसके तक़द्दुस और पाकीज़गी और उसकी कमाल (पराकाष्ठा) के दरजे को पहुँची हुई सिफ़तों का इज़हार होता हो। 'इलहाद' के मानी हैं बीच से हट जाना, सीधे रुख़ से फिर जाना। तीर जब ठीक निशाने पर बैठने के बजाए किसी दूसरी तरफ़ जा लगता है तो अरबी में कहते हैं "अल-हदस-सहमुल-हदफ़" यानी तीर ने निशाने से इलहाद किया। ख़ुदा के नाम रखने में इलहाद यह है कि ख़ुदा को ऐसे नाम दिए जाएँ जो उसके मर्तबे से कमतर हों, जो उसके अदब के ख़िलाफ़ हों, जिनसे ऐब और कमियाँ उससे जुड़ती हों, या जिनसे उसकी पाक व आला ज़ात के बारे में किसी ग़लत अक़ीदे का इज़हार होता हो। साथ ही यह भी इलहाद ही है कि मख़लूक़ात में से किसी के लिए ऐसा नाम रखा जाए जो सिर्फ़ ख़ुदा ही के लिए मुनासिब हो। फिर यह जो फ़रमाया कि अल्लाह के नाम रखने में जो लोग इलहाद करते हैं उनको छोड़ दो। तो इसका मतलब यह है कि अगर ये लोग सीधी तरह समझाने से नहीं समझते तो इनकी कजबहसियों (कुतर्कों) में तुमको उलझने की कोई ज़रूरत नहीं, अपनी गुमराही का अंजाम वे ख़ुद देख लेंगे।

مُّبِيْنٌ ۝١٨٤ اَوَلَمْ يَنْظُرُوْا فِيْ مَلَكُوْتِ السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ وَمَا خَلَقَ
اللّٰهُ مِنْ شَيْءٍ ۙ وَّاَنْ عَسٰٓى اَنْ يَّكُوْنَ قَدِ اقْتَرَبَ اَجَلُهُمْ ۚ فَبِاَيِّ
حَدِيْثٍۢ بَعْدَهٗ يُؤْمِنُوْنَ ۝١٨٥ مَنْ يُّضْلِلِ اللّٰهُ فَلَا هَادِيَ لَهٗ ۭ وَيَذَرُهُمْ

पहले) साफ़-साफ़ ख़बरदार कर रहा है। (185) क्या इन लोगों ने आसमानों और ज़मीन के इन्तिज़ाम पर कभी ध्यान नहीं दिया और किसी चीज़ को भी, जो अल्लाह ने पैदा की है, आँखें खोलकर नहीं देखा?[143] और क्या यह भी उन्होंने नहीं सोचा कि शायद इनकी ज़िन्दगी की मोहलत पूरी होने का वक़्त क़रीब आ लगा हो?[144] फिर आख़िर पैग़म्बर की इस चेतावनी के बाद और कौन-सी बात ऐसी हो सकती है जिसपर ये ईमान लाएँ? (186)– जिसको अल्लाह रास्ता दिखाने से महरूम कर दे, उसके लिए फिर कोई रास्ता

143. साथी से मुराद मुहम्मद (सल्ल॰) हैं। आप (सल्ल॰) उन्हीं लागों में पैदा हुए, उन्हीं के दरमियान रहे-बसे, बच्चे से जवान और जवान से बूढ़े हुए। पैग़म्बरी से पहले सारी क़ौम आप (सल्ल॰) को एक बेहद अच्छी फ़ितरत और सही दिमाग़वाले आदमी की हैसियत से जानती थी। पैग़म्बरी के बाद जब आप (सल्ल॰) ने ख़ुदा का पैग़ाम पहुँचाना शुरू किया तो अचानक आपको मजनून और दीवाना कहने लगी। ज़ाहिर है कि आप (सल्ल॰) को मजनून कहना उन बातों की बिना पर न था जो आप (सल्ल॰) नबी होने से पहले करते थे, बल्कि सिर्फ़ उन्हीं बातों पर कहा जा रहा था जिनकी आप (सल्ल॰) ने नबी होने के बाद तबलीग़ शुरू की। इसी वजह से फ़रमाया जा रहा है कि इन लोगों ने कभी सोचा भी है, आख़िर इन बातों में से कौन-सी बात जुनून की है? कौन-सी बात बेतुकी, बे-बुनियाद और अक्ल में न आनेवाली है? अगर ये आसमान और ज़मीन के निज़ाम पर ग़ौर करते, या ख़ुदा की बनाई हुई किसी चीज़ को भी ठहरकर देखते तो इन्हें ख़ुद मालूम हो जाता कि शिर्क को ग़लत बताने, तौहीद को सही कहने, रब की बन्दगी की दावत देने और इनसान की ज़िम्मेदारी व जवाबदेही के बारे में जो कुछ उनका भाई उन्हें समझा रहा है, उसकी सच्चाई पर कायनात का यह पूरा निज़ाम और अल्लाह का बनाया हुआ ज़र्रा-ज़र्रा गवाही दे रहा है।

144. यानी नादान इतना भी नहीं सोचते कि मौत का वक़्त किसी को मालूम नहीं है, कुछ पता नहीं कि कब किसकी मुहलत पूरी हो जाए। फिर अगर इनमें से किसी का आख़िरी वक़्त आ गया और अपने रवैये में सुधार के लिए जो मुहलत उसे मिली हुई है वह इन्हीं गुमराहियों और बुरे कामों में बरबाद हो गई तो आख़िर उसका अंजाम क्या होगा!

فِیْ طُغْیَانِہِمْ یَعْمَهُوْنَ ﴿۱۸۶﴾ یَسْـَٔلُوْنَكَ عَنِ السَّاعَةِ اَیَّانَ مُرْسٰىهَا ؕ
قُلْ اِنَّمَا عِلْمُهَا عِنْدَ رَبِّیْ ۚ لَا یُجَلِّیْهَا لِوَقْتِهَاۤ اِلَّا هُوَ ؔؕ ثَقُلَتْ فِی
السَّمٰوٰتِ وَ الْاَرْضِ ؕ لَا تَاْتِیْكُمْ اِلَّا بَغْتَةً ؕ یَسْـَٔلُوْنَكَ كَاَنَّكَ
حَفِیٌّ عَنْهَا ؕ قُلْ اِنَّمَا عِلْمُهَا عِنْدَ اللّٰهِ وَ لٰكِنَّ اَكْثَرَ النَّاسِ لَا
یَعْلَمُوْنَ ﴿۱۸۷﴾ قُلْ لَّاۤ اَمْلِكُ لِنَفْسِیْ نَفْعًا وَّ لَا ضَرًّا اِلَّا مَا شَآءَ اللّٰهُ ؕ
وَ لَوْ كُنْتُ اَعْلَمُ الْغَیْبَ لَا سْتَكْثَرْتُ مِنَ الْخَیْرِ ۛۚ وَ مَا مَسَّنِیَ السُّوْٓءُ ۛۚ
اِنْ اَنَا اِلَّا نَذِیْرٌ وَّ بَشِیْرٌ لِّقَوْمٍ یُّؤْمِنُوْنَ ﴿۱۸۸﴾

दिखानेवाला नहीं है, और अल्लाह उन्हें उनकी सरकशी ही में भटकता हुआ छोड़ देता है।

(187) ये लोग तुमसे पूछते हैं कि आख़िर वह क़ियामत की घड़ी कब आएगी? कहो, "इसका इल्म मेरे रब ही के पास है। उसे अपने वक़्त पर वही ज़ाहिर करेगा। आसमानों और ज़मीन में वह बड़ा सख़्त वक़्त होगा, वह तुमपर अचानक आ जाएगा।" ये लोग उसके बारे में तुमसे इस तरह पूछते हैं मानो कि तुम उसकी खोज में लगे हुए हो। कहो, "इसका इल्म तो सिर्फ़ अल्लाह को है, मगर ज़्यादातर लोग इस हक़ीक़त को नहीं जानते।" (188) ऐ नबी! इनसे कहो कि "मैं अपने आप के लिए किसी फ़ायदे और नुक़सान का इख़्तियार नहीं रखता। अल्लाह ही जो कुछ चाहता है वह होता है, और अगर मुझे ग़ैब (परोक्ष) का इल्म होता तो मैं बहुत-से फ़ायदे अपने लिए हासिल कर लेता और मुझे कभी कोई नुक़सान न पहुँचता।[145] मैं तो सिर्फ़ ख़बरदार करनेवाला और ख़ुशख़बरी देनेवाला हूँ उन लोगों के लिए जो मेरी बात मानें।"

---

145. मतलब यह है कि क़ियामत की ठीक तारीख़ वही बता सकता है जिसे ग़ैब का इल्म हो, और मेरा हाल यह है कि मैं कल के बारे में भी नहीं जानता कि मेरे साथ या मेरे बाल-बच्चों के साथ क्या कुछ होनेवाला है। तुम ख़ुद समझ सकते हो कि अगर यह इल्म मुझे हासिल होता तो मैं कितने नुक़सानों से वक़्त से पहले ही आगाह होकर बच जाता और कितने फ़ायदे सिर्फ़ पहले से जान लेनेवाले इल्म की बदौलत अपनी ज़ात के लिए समेट लेता। फिर यह तुम्हारी कितनी बड़ी नादानी है कि तुम मुझसे पूछते हो कि क़ियामत कब आएगी?

هُوَ الَّذِىۡ خَلَقَكُمۡ مِّنۡ نَّفۡسٍ وَّاحِدَةٍ وَّجَعَلَ مِنۡهَا زَوۡجَهَا
لِيَسۡكُنَ اِلَيۡهَا‌ ۚ فَلَمَّا تَغَشّٰٮهَا حَمَلَتۡ حَمۡلًا خَفِيۡفًا فَمَرَّتۡ بِهٖ‌ ۚ فَلَمَّاۤ
اَثۡقَلَتۡ دَّعَوَا اللّٰهَ رَبَّهُمَا لَـئِنۡ اٰتَيۡتَـنَا صَالِحًا لَّنَكُوۡنَنَّ مِنَ
الشّٰكِرِيۡنَ‏ ﴿۱۸۹﴾ فَلَمَّاۤ اٰتٰٮهُمَا صَالِحًا جَعَلَا لَهٗ شُرَكَآءَ فِيۡمَاۤ اٰتٰٮهُمَا‌ ۚ
فَتَعٰلَى اللّٰهُ عَمَّا يُشۡرِكُوۡنَ‏ ﴿۱۹۰﴾ اَيُشۡرِكُوۡنَ مَا لَا يَخۡلُقُ شَيۡـئًا وَّهُمۡ

---

(189) वह अल्लाह ही है जिसने तुम्हें एक जान से पैदा किया और उसी की जिन्स (जाति) से उसका जोड़ा बनाया, ताकि उसके पास सुकून हासिल करे। फिर जब मर्द ने औरत को ढाँक लिया, तो उसे एक हल्का-सा हमल (गर्भ) ठहर गया जिसे लिए-लिए वह चलती-फिरती रही। फिर जब वह बोझल हो गई तो दोनों ने मिलकर अल्लाह, अपने रब, से दुआ की कि अगर तूने हमको अच्छा-सा बच्चा दिया, तो हम तेरे शुक्रगुज़ार होंगे। (190) मगर जब अल्लाह ने उनको एक भला-चंगा बच्चा दे दिया तो वे उसकी इस देन में दूसरों को उसका भागीदार ठहराने लगे। अल्लाह बहुत बुलन्द व बरतर है उन शिर्क (बहुदेववाद) की बातों से जो ये लोग करते हैं।[146] (191) कैसे नासमझ हैं ये लोग कि उनको अल्लाह का शरीक ठहराते हैं जो किसी चीज़ को पैदा नहीं करते, बल्कि ख़ुद पैदा

---

146. यहाँ मुशरिकों की जाहिलाना गुमराहियों पर तनक़ीद (आलोचना) की गई है। तक़रीर का मक़सद यह है कि नौए-इनसानी (मानव-जाति) को सबसे पहले वुजूद में लानेवाला अल्लाह तआला है जिससे ख़ुद मुशरिक लोग भी इनकार नहीं करते। फिर हर इनसान को वुजूद में लानेवाला भी अल्लाह तआला ही है और इस बात को भी मुशरिक लोग जानते हैं। औरत के रहम (गर्भाशय) में वीर्य को ठहराना, फिर उस ज़रा से गर्भ को परवरिश करके एक ज़िन्दा बच्चे की सूरत देना, फिर उस बच्चे के अन्दर तरह-तरह की क़ुव्वतें और क़ाबिलियतें डालना और उसको सही-सलामत इनसान बनाकर पैदा करना, यह सब कुछ अल्लाह तआला के इख़्तियार में है। अगर अल्लाह औरत के पेट में बन्दर या साँप या कोई और अजीब शक्ल का हैवान पैदा कर दे, या बच्चे को पेट ही में अन्धा, बहरा, लंगड़ा, लूला बना दे या उसकी जिस्मानी व ज़ेहनी और नफ़सानी (मनोवृत्ति संबंधी) क़ुव्वतों में कोई कमी रख दे, तो किसी में यह ताक़त नहीं है कि अल्लाह की उस बनावट को बदल डाले। इस हक़ीक़त से मुशरिक लोग भी उसी तरह वाक़िफ़ हैं जिस तरह एक ख़ुदा के माननेवाले। चुनाँचे यही वजह है कि गर्भ के समय में सारी

उम्मीदें अल्लाह ही से बंधी होती हैं कि वही सही-सलामत बच्चा पैदा करेगा। लेकिन उसपर भी जहालत व नादानी की इन्तिहा का यह हाल है कि जब उम्मीद पूरी होती है और चाँद-सा बच्चा मिल जाता है तो शुक्रिए के लिए नज़्रें और नियाज़ें किसी देवी, किसी अवतार, किसी वली और किसी हज़रत के नाम पर चढ़ाई जाती हैं और बच्चे को ऐसे नाम दिए जाते हैं कि मानो वह ख़ुदा के सिवा किसी और की मेहरबानी का नतीजा है। मिसाल के तौर पर हुसैन बख़्श, पीर बख़्श, अबदुर-रसूल, अब्दुल-उज़्ज़ा और अब्दे-शम्स वग़ैरा।

इस तक़रीर को समझने में एक बड़ी ग़लतफ़हमी पैदा हुई है जिसे ज़ईफ़ (कमज़ोर) रिवायतों ने और ज़्यादा बढ़ाया है। चूँकि शुरू में नौए-इनसानी (मानव-जाति) की पैदाइश एक जान से होने का ज़िक्र आया है जिससे मुराद हज़रत आदम (अलैहि॰) हैं, और फिर तुरन्त ही एक मर्द व औरत का ज़िक्र शुरू हो गया है जिन्होंने पहले तो अल्लाह से सही-सलामत बच्चे की पैदाइश के लिए दुआ की और जब बच्चा पैदा हो गया तो अल्लाह की देन में दूसरों को शरीक ठहरा लिया, इसलिए लोगों ने यह समझा कि ये शिर्क करनेवाले मियाँ-बीवी ज़रूर हज़रत आदम और हव्वा (अलैहि॰) ही होंगे। इस ग़लतफ़हमी पर रिवायतों का एक ख़ोल (आवरण) चढ़ गया और एक पूरा क़िस्सा गढ़ दिया गया कि हज़रत हव्वा के बच्चे पैदा हो-होकर मर जाते थे, आख़िरकार एक बच्चे की पैदाइश के मौक़े पर शैतान ने उनको बहकाकर इस बात पर आमादा कर दिया कि उसका नाम अब्दुल-हारिस (शैतान का बन्दा) रख दें। ग़ज़ब यह है कि इन रिवायतों में से कुछ की सनद नबी (सल्ल॰) तक भी पहुँचा दी गई है। लेकिन हक़ीक़त में ये तमाम रिवायतें ग़लत हैं और क़ुरआन की इबारत भी इनकी ताईद नहीं करती। क़ुरआन जो कुछ कह रहा है वह सिर्फ़ यह है कि इनसानों का पहला जोड़ा जिससे इनसानी पैदाइश की शुरुआत हुई, उसका पैदा करनेवाला भी अल्लाह ही था, कोई दूसरा उसके पैदा करने में शरीक न था, और फिर हर मर्द व औरत के मिलाप से जो औलाद पैदा होती है उसका पैदा करनेवाला भी अल्लाह ही है जिसका इक़रार तुम सब लोगों के दिलों में मौजूद है। चुनाँचे इसी इक़रार की बदौलत तुम उम्मीद व नाउम्मीदी की हालत में जब दुआ माँगते हो तो अल्लह ही से माँगते हो, लेकिन बाद में जब उम्मीदें पूरी हो जाती हैं तो तुम्हें शिर्क की सूझती है। इस तक़रीर में किसी ख़ास मर्द और ख़ास औरत का ज़िक्र नहीं है, बल्कि मुशरिकों में से हर मर्द और हर औरत का हाल बयान किया गया है।

इस मक़ाम पर एक और बात भी बयान कर देने के क़ाबिल है। इन आयतों में अल्लाह तआला ने जिन लोगों को बुरा कहा है वे अरब के मुशरिक लोग थे और उनका क़ुसूर यह था कि वे सही-सलामत औलाद पैदा होने के लिए तो ख़ुदा ही से दुआ माँगते थे, मगर जब बच्चा पैदा हो जाता था तो अल्लाह की इस देन में दूसरों को शुक्रिए का हिस्सेदार ठहरा लेते थे। इसमें शक नहीं कि यह हालत भी बहुत ही बुरी थी, लेकिन अब जो शिर्क हम तौहीद के दावेदारों में पा रहे हैं वह इससे भी बदतर है। ये ज़ालिम तो औलाद भी ग़ैरों से ही माँगते हैं, हमल (गर्भ) के ज़माने में मन्नतें भी ग़ैरों के नाम ही की मानते हैं और बच्चा पैदा होने के बाद नियाज़ (भेंट) भी उन्हीं के आस्तानों पर चढ़ाते हैं। इसपर भी जाहिलियत के ज़माने के अरबवासी मुशरिक थे और ये मुवह्हिद (एक ख़ुदा को माननेवाले) हैं, उनके लिए जहन्नम वाजिब थी और इनके लिए

يُخْلَقُوْنَ ﴿١٩١﴾ وَلَا يَسْتَطِيْعُوْنَ لَهُمْ نَصْرًا وَّلَآ اَنْفُسَهُمْ يَنْصُرُوْنَ ﴿١٩٢﴾
وَاِنْ تَدْعُوْهُمْ اِلَى الْهُدٰى لَا يَتَّبِعُوْكُمْ ۭ سَوَآءٌ عَلَيْكُمْ اَدَعَوْتُمُوْهُمْ
اَمْ اَنْتُمْ صَامِتُوْنَ ﴿١٩٣﴾ اِنَّ الَّذِيْنَ تَدْعُوْنَ مِنْ دُوْنِ اللّٰهِ عِبَادٌ
اَمْثَالُكُمْ فَادْعُوْهُمْ فَلْيَسْتَجِيْبُوْا لَكُمْ اِنْ كُنْتُمْ صٰدِقِيْنَ ﴿١٩٤﴾ اَلَهُمْ

किए जाते हैं, (192) जो न उनकी मदद कर सकते हैं और न आप अपनी मदद ही पर क़ुदरत रखते हैं। (193) अगर तुम उन्हें सीधी राह पर आने की दावत दो तो वे तुम्हारे पीछे न आएँ। तुम चाहे उन्हें पुकारो या चुप रहो, दोनों शक्लों में तुम्हारे लिए बराबर ही रहे।[147] (194) तुम लोग अल्लाह को छोड़कर जिन्हें पुकारते हो वे तो सिर्फ़ बन्दे हैं, जैसे तुम बन्दे हो। इनसे दुआएँ माँग देखो, ये तुम्हारी दुआओं का जवाब दें अगर इनके बारे

नजात की गारंटी है, उनकी गुमराहियों पर तनक़ीद (आलोचना) की ज़बानें तेज़ हैं, मगर इनकी गुमराहियों पर कोई तनक़ीद कर बैठे तो मज़हबी दरबारों में बेचैनी की लहर दौड़ जाती है। इसी हालत पर मौलाना अलताफ़ हुसैन 'हाली' (रह.) ने अपनी मुसद्दस में अफ़सोस का इज़हार किया है :

करे ग़ैर गर बुत की पूजा तो काफ़िर
जो ठहराए बेटा ख़ुदा का तो काफ़िर
झुके आग पर बहरे-सजदा तो काफ़िर
कवाकिब में माने करिशमा तो काफ़िर
मगर मोमिनों पर कुशादा हैं राहें
परस्तिश करें शौक़ से जिसकी चाहें
नबी को जो चाहें ख़ुदा कर दिखाएँ
इमामों का रुत्बा नबी से बढ़ाएँ
मज़ारों पे जा-जा के नज़्रें चढ़ाएँ
शहीदों से जा-जा के माँगें दुआएँ
न तौहीद में कुछ ख़लल इससे आए
न इस्लाम बिगड़े न ईमान जाए।

147. यानी इन मुशरिकों के झूठे माबूदों का हाल यह है कि सीधी राह दिखाना और अपने माननेवालों की रहनुमाई करना तो अलग रहा, वे बेचारे तो किसी रहनुमा की पैरवी करने के क़ाबिल भी नहीं, यहाँ तक कि किसी पुकारनेवाले की पुकार का जवाब तक नहीं दे सकते।

اَرْجُلٌ يَّمْشُوْنَ بِهَآ ۡ اَمْ لَهُمْ اَيْدٍ يَّبْطِشُوْنَ بِهَآ ۡ اَمْ لَهُمْ اَعْيُنٌ
يُّبْصِرُوْنَ بِهَآ ۡ اَمْ لَهُمْ اٰذَانٌ يَّسْمَعُوْنَ بِهَا ؕ قُلِ ادْعُوْا شُرَكَآءَكُمْ ثُمَّ
كِيْدُوْنِ فَلَا تُنْظِرُوْنِ ﴿۱۹۵﴾ اِنَّ وَلِیِّۧ اللّٰهُ الَّذِیْ نَزَّلَ الْكِتٰبَ ۖ وَهُوَ
يَتَوَلَّى الصّٰلِحِيْنَ ﴿۱۹۶﴾ وَالَّذِيْنَ تَدْعُوْنَ مِنْ دُوْنِهٖ لَا يَسْتَطِيْعُوْنَ
نَصْرَكُمْ وَلَآ اَنْفُسَهُمْ يَنْصُرُوْنَ ﴿۱۹۷﴾ وَاِنْ تَدْعُوْهُمْ اِلَى الْهُدٰى لَا

में तुम्हारे ख़याल सही हैं। (195) क्या ये पाँव रखते हैं कि उनसे चलें? क्या ये हाथ रखते हैं कि उनसे पकड़ें? क्या ये आँखें रखते हैं कि उनसे देखें? क्या ये कान रखते हैं कि उनसे सुनें?[148] ऐ नबी! इनसे कहो कि "बुला लो अपने ठहराए हुए साझीदारों को, फिर तुम सब मिलकर मेरे ख़िलाफ़ तदबीरें करो और मुझे हरगिज़ मोहलत न दो, (196) मेरा हिमायती व मददगार वह अल्लाह है जिसने यह किताब उतारी है, और वह नेक आदमियों की हिमायत करता है।[149] (197) इसके बरख़िलाफ़ तुम जिन्हें अल्लाह को छोड़कर पुकारते हो, वे न तुम्हारी मदद कर सकते हैं और न ख़ुद अपनी मदद ही करने के क़ाबिल हैं, (198) बल्कि अगर तुम उन्हें सीधी राह पर आने के लिए कहो तो वे

148. यहाँ एक बात साफ़ तौर पर समझ लेनी चाहिए। मुशरिकाना मज़हबों में तीन चीज़ें अलग-अलग पाई जाती हैं– एक तो वे बुत, तस्वीरें या अलामतें (पूजा के प्रतीक) जो पूजा के केन्द्र (Objects of Worship) होती हैं। दूसरे वे लोग या रूहें या अलामतें जो दर अस्ल माबूद क़रार दी जाती हैं और जिनकी नुमाइन्दगी बुतों और तस्वीरें वग़ैरा की शक्ल में की जाती हैं। तीसरे वे अक़ीदे (अवधारणाएँ) जो इन मुशरिकाना इबादतों व कामों की तह में काम कर रहे होते हैं। क़ुरआन मुख़्तलिफ़ तरीक़ों से इन तीनों चीज़ों पर चोट करता है। इस मक़ाम पर उसकी तनक़ीद का रुख़ पहली चीज़ की तरफ़ है यानी उन बुतों पर एतिराज़ किया गया है जिनके सामने मुशरिक लोग अपनी इबादत की रस्में अदा करते और अपनी अरज़ियाँ और नियाज़ें (भेंटें) पेश करते थे।

149. यह जवाब है मुशरिकों की उन धमकियों का जो वे नबी (सल्ल०) को देते थे। वे कहते थे कि अगर तुम हमारे इन माबूदों की मुख़ालिफ़त करने से न रुके और उनकी तरफ़ से लोगों के अक़ीदे इसी तरह ख़राब करते रहे तो तुमपर उनका ग़ज़ब (प्रकोप) टूट पड़ेगा और वे तुम्हें उलटकर रख देंगे।

يَسۡمَعُوۡا ؕ وَتَرٰىهُمۡ يَنۡظُرُوۡنَ اِلَيۡكَ وَهُمۡ لَا يُبۡصِرُوۡنَ ﴿۱۹۸﴾ خُذِ الۡعَفۡوَ
وَاۡمُرۡ بِالۡعُرۡفِ وَاَعۡرِضۡ عَنِ الۡجٰهِلِيۡنَ ﴿۱۹۹﴾ وَاِمَّا يَنۡزَغَنَّكَ مِنَ
الشَّيۡطٰنِ نَزۡغٌ فَاسۡتَعِذۡ بِاللّٰهِ ؕ اِنَّهٗ سَمِيۡعٌ عَلِيۡمٌ ﴿۲۰۰﴾ اِنَّ الَّذِيۡنَ اتَّقَوۡا
اِذَا مَسَّهُمۡ طٰۤـئِفٌ مِّنَ الشَّيۡطٰنِ تَذَكَّرُوۡا فَاِذَا هُمۡ مُّبۡصِرُوۡنَ ﴿۲۰۱﴾ ۚ
وَاِخۡوَانُهُمۡ يَمُدُّوۡنَهُمۡ فِى الۡغَىِّ ثُمَّ لَا يُقۡصِرُوۡنَ ﴿۲۰۲﴾

तुम्हारी बात सुन भी नहीं सकते। देखने में तुमको ऐसा नज़र आता है कि वे तुम्हारी तरफ़ देख रहे हैं, मगर हक़ीक़त में वे कुछ भी नहीं देखते।"

(199) ऐ नबी! नर्मी और माफ़ी का तरीक़ा अपनाओ, भलाई के लिए कहते जाओ और जाहिलों से न उलझो। (200) अगर कभी शैतान तुम्हें उकसाए तो अल्लाह की पनाह माँगो, वह सब कुछ सुननेवाला और जाननेवाला है। (201) हक़ीक़त में जो लोग (अल्लाह से) डरनेवाले हैं, उनका हाल तो यह होता है कि कभी शैतान के असर से कोई बुरा ख़याल अगर उन्हें छू भी जाता है तो फ़ौरन चौकन्ने हो जाते हैं और फिर उन्हें साफ़ नज़र आने लगता है कि उनके लिए काम का सही तरीक़ा क्या है। (202) रहे उनके (यानी शैतानों के) भाई-बन्द, तो वे उन्हें उनके टेढ़पन में खींचे लिए चले जाते हैं और उन्हें भटकाने में कोई कमी नहीं करते।[150]

150. इन आयतों में नबी (सल्ल॰) को दावत व तबलीग़ और हिदायत व इस्लाह की हिकमत के कुछ अहम नुक्ते बताए गए हैं और मक़सूद सिर्फ़ नबी (सल्ल॰) ही को तालीम देना नहीं है, बल्कि आप (सल्ल॰) के ज़रिए से उन सब लोगों को यही हिक्मत सिखाना है जो नबी (सल्ल॰) के बाद उनके नुमाइन्दे बनकर दुनिया को सीधी राह दिखाने के लिए उठें। इन बातों को सिलसिलावार देखना चाहिए :

(1) हक़ की तरफ़ बुलानेवाले के लिए जो सिफ़तें (ख़ूबियाँ) सबसे ज़्यादा ज़रूरी हैं उनमें से एक यह है कि उसे नर्ममिज़ाज, बरदाशत करनेवाला और बड़े दिल का होना चाहिए। उसको अपने साथियों के लिए शफ़ीक़ (स्नेही), आम लोगों के लिए रहीम (रहम करनेवाला) और अपने मुख़ालिफ़ों के लिए हलीम (सहनशील) होना चाहिए। उसको अपने साथियों की कमज़ोरियों को भी बरदाशत करना चाहिए और अपने मुख़ालिफ़ों की सख़्तियों को भी। उसे सख़्त-से-सख़्त गुस्सा दिलानेवाले मौक़ों पर भी अपने मिज़ाज को ठण्डा रखना चाहिए। निहायत नागवार बातों

को भी कुशादा दिल के साथ टाल देना चाहिए, मुख़ालिफ़ों की तरफ़ से कैसी ही सख़्त बातें की जाएँ, बुहतान लगाए जाएँ, तकलीफ़ें दी जाएँ और शरारत भरी रुकावटें खड़ी की जाएँ, उसको दरगुज़र ही से काम लेना चाहिए। सख़्त रवैया, रूखापन, कड़वी बात बोलना और गुस्से में बदला लेने की सोचना इस काम के लिए ज़हर के बराबर है और इससे काम बिगड़ता है, बनता नहीं है। इसी चीज़ को नबी (सल्ल॰) ने यूँ बयान किया है कि मेरे रब ने मुझे हुक्म दिया है कि "गुस्से और ख़ुशी दोनों हालतों में इनसाफ़ की बात कहूँ, जो मुझसे रूठे मैं उससे जुड़ूँ, जो मुझे मेरे हक़ से महरूम करे मैं उसे उसका हक़ दूँ, जो मेरे साथ ज़ुल्म करे मैं उसको माफ़ कर दूँ।" और इसी चीज़ की हिदायत नबी (सल्ल॰) उन लोगों को करते थे जिन्हें आप (सल्ल॰) दीन के काम पर अपनी तरफ़ से भेजते थे। आप (सल्ल॰) कहते थे, "ख़ुशख़बरी सुनाओ, नफ़रत न दिलाओ, और आसानी पैदा करो और तंगी में न डालो।" (हदीस : मुस्लिम) और इसी चीज़ की तारीफ़ अल्लाह तआला ने नबी (सल्ल॰) के हक़ में की है, "यह अल्लाह की रहमत है कि तुम इन लोगों के लिए नर्म हो, यानी जहाँ तुम जाओ वहाँ तुम्हारा आना लोगों के लिए ख़ुशी की बात हो, न कि नफ़रत का सबब। और लोगों के लिए तुम सहूलत पैदा करनेवाले बनो न कि तंगी और सख़्ती करनेवाले। वरना अगर तुम सख़्तमिज़ाज और संगदिल होते तो ये सब लोग तुम्हारे आस-पास से छंट जाते।" (क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-159)

(2) हक़ की दावत की कामयाबी का गुर यह है कि आदमी फ़ल्सफ़ियों की तरह पेचीदा बातें करने और बारीक नुक्तों पर बहस करने के बजाए लोगों को मारूफ़ यानी उन सीधी और साफ़ भलाइयों की नसीहत करे जिन्हें आम तौर से सारे ही इनसान भला जानते हैं या जिनकी भलाई को समझने के लिए वह आम अक़्ल (Common Sense) काफ़ी होती है जो हर इनसान को हासिल है। इस तरह हक़ की तरफ़ बुलानेवाले की पुकार आम और ख़ास सब लागों को मुतास्सिर करती है और हर सुननेवाले के कान से दिल तक पहुँचने की राह ख़ुद निकाल लेती है। ऐसी जानी-पहचानी भलाइयों की दावत के ख़िलाफ़ जो लोग शोर व हंगामा करते हैं वे ख़ुद अपनी नाकामी और उस दावत की कामयाबी का सामान जुटाते हैं; क्योंकि आम इनसान, चाहे वे कितने ही तास्सुबात (पक्षपात) में मुब्तला हों, जब यह देखते हैं कि एक तरफ़ एक शरीफ़ मिज़ाज और बुलन्द अख़लाक़वाला इनसान है जो सीधी-सीधी भलाइयों की दावत दे रहा है और दूसरी तरफ़ बहुत-से लोग उसकी मुख़ालिफ़त में हर क़िस्म की अख़लाक़ व इनसानियत से गिरी हुई तदबीरें इस्तेमाल कर रहे हैं तो धीरे-धीरे उनके दिल ख़ुद-ब-ख़ुद हक़ की मुख़ालिफ़त करनेवालों की तरफ़ से फिरते और हक़ की तरफ़ बुलानेवाले की तरफ़ खिंचते चले जाते हैं, यहाँ तक कि आख़िरकार मुक़ाबले के मैदान में सिर्फ़ वे लोग रह जाते हैं जिनके ज़ाती फ़ायदे बातिल निज़ाम के क़ायम रहने ही से जुड़े हों, या फिर जिनके दिलों में बुज़ुर्गों की तक़लीद और जाहिलाना तास्सुबात ने किसी रौशनी के क़बूल करने की सलाहियत बाक़ी ही न छोड़ी हो। यही वह हिक्मत थी जिसकी बदौलत नबी (सल्ल॰) को अरब में कामयाबी हासिल हुई और फिर आप (सल्ल॰) के बाद थोड़ी ही मुद्दत में इस्लाम का सैलाब क़रीब के मुल्कों पर इस तरह फैल गया कि कहीं सौ फ़ीसदी और कहीं 80 और 90 फ़ीसदी क़ौम मुसलमान हो गए।

(3) इस दावत के काम में जहाँ यह बात ज़रूरी है कि भलाई के चाहनेवालों को भलाइयों की नसीहत की जाए वहाँ यह बात भी उतनी ही ज़रूरी है कि जाहिलों से न उलझा जाए, चाहे वे उलझने और उलझाने की कितनी ही कोशिशें करें। हक़ की दावत देनेवाले को इस मामले में बहुत सावधानी से काम लेना चाहिए कि उसे सिर्फ़ उन लोगों से बात करनी चाहिए जो सही ढंग से उसकी बात को समझने के लिए तैयार हों। और जब कोई शख़्स जिहालत पर उतर आए और हुज्जतबाज़ी, झगड़ालूपन और लानत-मलामत शुरू कर दे तो हक़ की दावत देनेवाले को उसके सामने आने से इनकार कर देना चाहिए। इसलिए कि इस झगड़े में उलझने से कुछ मिलनेवाला नहीं है, और नुक़सान यह है कि दावत व तबलीग़ का काम करनेवाले की जिस क़ुव्वत को दावत के फैलाने और लोगों के सुधार में लगना चाहिए वह इस फ़ुज़ूल काम में लगकर बरबाद हो जाती है।

(4) नम्बर 3 में जो हिदायत की गई है उसी के सिलसिले में एक और हिदायत यह है कि जब कभी हक़ की दावत देनेवाला मुख़ालिफ़त करनेवालों के ज़ुल्म और उनकी शरारतों और उनके जाहिलाना एतिराज़ों और इलज़ामों पर अपनी तबीअत में ग़ुस्सा (उत्तेजना) महसूस करे तो उसे फ़ौरन समझ लेना चाहिए कि यह शैतान की उकसाहट है, और उसी वक़्त ख़ुदा से पनाह माँगनी चाहिए कि अपने बन्दे को इस जोश में बह निकलने से बचाए और ऐसा बेक़ाबू न होने दे कि वह इस्लाम की दावत को नुक़सान पहुँचानेवाली कोई हरकत कर बैठे। हक़ की तरफ़ बुलाने का काम बहरहाल ठण्डे दिल से ही हो सकता है और वही क़दम सही उठ सकता है जो जज़्बात में बहकर नहीं बल्कि मौक़ा और जगह देखकर, ख़ूब सोच-समझकर उठाया जाए। लेकिन शैतान, जो इस काम को बढ़ते और फैलते हुए कभी नहीं देख सकता, हमेशा इस कोशिश में लगा रहता है कि अपने भाई-बन्धुओं से हक़ की दावत देनेवाले पर तरह-तरह के हमले कराए और फिर हर हमले पर हक़ की ओर बुलानेवाले को उकसाए कि इस हमले का जवाब तो ज़रूर होना चाहिए। यह अपील जो शैतान हक़ की ओर बुलानेवाले के मन से करता है अकसर बड़ी-बड़ी धोखा देनेवाली बहानेबाज़ियों और मज़हबी सुधारों के खोल में लिपटी हुई होती है। लेकिन इसकी तह में सिवाए नफ़सानियत (आत्म-तुष्टि) के और कोई चीज़ नहीं होती। इसी लिए आख़िरी दो आयतों में फ़रमाया कि जो लोग मुत्तक़ी (यानी ख़ुदा से डरनेवाले और बुराई से बचने के ख़ाहिशमन्द) हैं वे तो अपने मन में शैतान की किसी उकसाहट का असर और किसी बुरे ख़याल की खटक महसूस करते ही फ़ौरन चौकन्ने हो जाते हैं और फिर उन्हें साफ़ नज़र आ जाता है कि इस मौक़े पर इस्लाम की दावत की भलाई किस रवैये के अपनाने में है और हक़परस्ती का तक़ाज़ा क्या है। रहे वे लोग जिनके काम में नफ़सानियत पाई जाती है और इस वजह से जिनका शैतानों के साथ भाईचारे का ताल्लुक़ है, तो वे शैतान की उकसाहटों के मुक़ाबले में नहीं ठहर सकते और उसके बहकावे में आकर ग़लत राह पर चल निकलते हैं। फिर जिस-जिस घाटी में शैतान चाहता है उन्हें लिए फिरता और कहीं जाकर उनके क़दम नहीं रुकते। मुख़ालिफ़ की हर गाली के जवाब में उनके पास गाली और हर चाल के जवाब में उससे बढ़कर चाल मौजूद होती है।

इस बात के कहने का एक आम मौक़ा भी है और वह यह कि तक़वावाले लोगों का तरीक़ा

وَاِذَا لَمْ تَاْتِهِمْ بِاٰيَةٍ قَالُوْا لَوْلَا اجْتَبَيْتَهَا ؕ قُلْ اِنَّمَآ اَتَّبِعُ مَا يُوْحٰٓى اِلَيَّ
مِنْ رَّبِّيْ ۚ هٰذَا بَصَآئِرُ مِنْ رَّبِّكُمْ وَهُدًى وَّرَحْمَةٌ لِّقَوْمٍ يُّؤْمِنُوْنَ ﴿٢٠٣﴾
وَاِذَا قُرِئَ الْقُرْاٰنُ فَاسْتَمِعُوْا لَهٗ وَاَنْصِتُوْا لَعَلَّكُمْ تُرْحَمُوْنَ ﴿٢٠٤﴾

(203) ऐ नबी! जब तुम इन लोगों के सामने कोई निशानी (यानी मोजज़ा) पेश नहीं करते तो ये कहते हैं कि तुमने अपने लिए कोई निशानी क्यों न चुन ली?[151] इनसे कहो, "मैं तो सिर्फ़ उस वह्य की पैरवी करता हूँ जो मेरे रब ने मेरी तरफ़ भेजी है। ये बसीरत की रौशनियाँ (आँखें खोल देनेवाली दलीलें) हैं तुम्हारे रब की तरफ़ से और हिदायत और रहमत है उन लोगों के लिए जो इसे अपनाएँ।"[152] (204) जब क़ुरआन तुम्हारे सामने

आमतौर पर अपनी ज़िन्दगी में उन लोगों से अलग होता है जो तक़वा की सिफ़त से ख़ाली हैं। जो लोग हक़ीक़त में ख़ुदा से डरनेवाले हैं और दिल से चाहते हैं कि बुराई से बचें, उनका हाल यह होता है कि बुरे ख़याल का एक ज़रा-सा ग़ुबार भी अगर उनके दिल को छू जाता है तो उन्हें वैसी ही खटक महसूस होने लगती हैं जैसी खटक उंगली में फांस चुभ जाने या आँख में किसी ज़र्रे (कण) के गिर जाने से महसूस होती है। चूँकि वे बुरे ख़यालात, बुरी ख़ाहिशें और बुरी नीयतों के आदी नहीं होते इस वजह से वे चीज़ें उनके लिए उसी तरह उनके मिज़ाज के ख़िलाफ़ होती हैं जिस तरह उंगली के लिए फांस या आँख के लिए ज़र्रा (कण) या एक अच्छे मिज़ाज और सफ़ाई-पसन्द आदमी के लिए कपड़ों पर स्याही का एक दाग़ या गन्दगी की एक छींट। फिर जब ये खटक उन्हें महसूस हो जाती है तो उनकी आँखें खुल जाती हैं और उनका ज़मीर जागकर बुराई के इस ग़ुबार को अपने ऊपर से झाड़ देने में लग जाता है। इसके बरख़िलाफ़ जो लोग न ख़ुदा से डरते हैं, न बुरे कामों से बचना चाहते हैं और जिनका ताल्लुक़ शैतान से जुड़ा हुआ है, उनके मन में बुरे ख़यालात, बुरे इरादे, बुरे मक़सद पकते रहते हैं और वे इन गंदी चीज़ों से कोई बेचैनी अपने अन्दर महसूस नहीं करते।

151. हक़ के इनकारियों के इस सवाल में एक खुले ताने का अन्दाज़ पाया जाता था। यानी उनके कहने का मतलब यह था कि जिस तरह तुम नबी बन बैठे हो उसी तरह कोई मोजिज़ा (चमत्कार) भी छाँटकर अपने लिए बना लाए होते। लेकिन आगे देखिए कि इस ताने का जवाब किस शान से दिया जाता है।

152. यानी मेरा मंसब यह नहीं है कि जिस चीज़ की माँग हो या जिस की मैं ख़ुद ज़रूरत महसूस करूँ उसे ख़ुद ईजाद या गढ़कर पेश कर दूँ। मैं तो एक रसूल हूँ और मेरा मंसब सिर्फ़ यह है कि जिसने मुझे भेजा है उसकी हिदायत पर अमल करूँ। मोजिज़े के बजाय मेरे भेजनेवाले ने जो चीज़ मेरे पास भेजी है वह यह क़ुरआन है। इसके अन्दर सीधी राह दिखाने और हिदायत देनेवाली रौशनियाँ मौजूद हैं और इसकी सबसे नुमायाँ ख़ूबी यह है कि जो लोग इसको मान लेते

وَاذْكُرْ رَّبَّكَ فِيْ نَفْسِكَ تَضَرُّعًا وَّخِيْفَةً وَّدُوْنَ الْجَهْرِ مِنَ الْقَوْلِ
بِالْغُدُوِّ وَالْاٰصَالِ وَلَا تَكُنْ مِّنَ الْغٰفِلِيْنَ ۝٢٠٥ اِنَّ الَّذِيْنَ عِنْدَ رَبِّكَ

पढ़ा जाए तो उसे ध्यान से सुनो और चुप रहो, शायद कि तुमपर भी रहमत हो जाए।[153]

(205) ऐ नबी! अपने रब को सुबह व शाम याद किया करो मन ही मन में गिड़गिड़ाते और डरते हुए, और ज़बान से भी हल्की आवाज़ के साथ। तुम उन लोगों में से न हो जाओ जो ग़फ़लत में पड़े हुए हैं।[154] (206) जिन फ़रिश्तों को तुम्हारे रब के

हैं उनको ज़िन्दगी का सीधा रास्ता मिल जाता है और उनके अच्छे अख़लाक़ में अल्लाह की रहमत के आसार साफ़ ज़ाहिर होने लगते हैं।

153. यानी यह जो तास्सुब और हठधर्मी की वजह से तुम लोग क़ुरआन की आवाज़ सुनते ही कानों में उंगलियाँ ठूँस लेते हो और शोर-ग़ुल मचाते हो, ताकि न ख़ुद सुनो और न कोई दूसरा सुन सके, इस रवैये को छोड़ दो और ग़ौर से सुनो तो सही की इसमें तालीम क्या दी गई है। क्या अजब कि इस तालीम से वाक़िफ़ हो जाने के बाद तुम ख़ुद भी उसी रहमत के हिस्सेदार बन जाओ जो ईमान लानेवालों को हासिल हो चुकी है। मुख़ालिफ़त करनेवालों की ताने भरी बात के जवाब में यह ऐसा लतीफ़ (कोमल) और मीठा और ऐसा दिलों को जीत लेनेवाला अन्दाज़े-तबलीग़ है कि इसकी ख़ूबी को किसी भी तरह बयान नहीं किया जा सकता। जो शख़्स तबलीग़ की हिक्मत सीखना चाहता हो वह अगर ग़ौर करे तो इस जवाब में बड़े सबक़ पा सकता है।

इस अयात का अस्ल मक़सद तो वही है जो हमने ऊपर बयान किया है, लेकिन अस्ल मक़सद के साथ-साथ इससे यह हुक्म भी निकलता है कि जब ख़ुदा का कलाम (क़ुरआन) पढ़ा जा रहा हो तो लोगों को अदब से ख़ामोश हो जाना चाहिए और ध्यान से उसे सुनना चाहिए। इसी से यह बात भी निकलती है कि इमाम जब नमाज़ में क़ुरआन की तिलावत कर रहा हो तो उसके पीछे नमाज़ पढ़नेवालों को ख़ामोशी के साथ उसको सुनना चाहिए। लेकिन इस मसले में इमामों (फ़ुक़हा और आलिमों) के दरमियान इख़्तिलाफ़ (मतभेद) पाया जाता है। इमाम अबू-हनीफ़ा (रह.) और उनके साथियों का मसलक (मत) यह है कि इमाम की क़िरअत (क़ुरआन पढ़ना) चाहे जहरी (आवाज़ के साथ) हो या सिर्री (बिना आवाज़ के), मुक़्तदियों को ख़ामोश ही रहना चाहिए। इमाम मालिक (रह.) और इमाम अहमद (रह.) की राय यह है कि सिर्फ़ जहरी क़िरअत की सूरत में नमाज़ियों को ख़ामोश रहना चाहिए। लेकिन इमाम शाफ़िई (रह.) इस तरफ़ गए हैं कि जहरी और सिर्री दोनों सूरतों में मुक़्तदी को क़िरअत करनी चाहिए, क्योंकि कुछ हदीसों की बिना पर वे समझे हैं कि जो शख़्स नमाज़ में सूरा फ़ातिहा न पढ़े उसकी नमाज़ नहीं होती।

154. याद करने से मुराद नमाज़ भी है और दूसरी क़िस्म की याद भी, चाहे वह ज़बान से हो या ख़याल से। सुबह व शाम से मुराद यही दोनों वक़्त भी हैं और इन वक़्तों में अल्लाह की याद

لَا يَسْتَكْبِرُوْنَ عَنْ عِبَادَتِهٖ وَيُسَبِّحُوْنَهٗ وَلَهٗ يَسْجُدُوْنَ ۩ ﴿٢٠٦﴾

यहाँ क़ुरबत (सान्निध्य) का मक़ाम हासिल है वे कभी अपनी बड़ाई के घमंड में आकर उसकी इबादत से मुँह नहीं मोड़ते,[155] और उसकी तसबीह (महिमागान) करते हैं,[156] और उसके आगे झुके रहते हैं।[157]

का मक़सद नमाज़ है, और सुबह-शाम का लफ्ज़ "हर वक़्त" और हमेशा के मानी में भी इस्तेमाल होता है और इसका मक़सद हमेशा ख़ुदा की याद में मशग़ूल रहना है। यह आख़िरी नसीहत है जो ख़ुतबे को ख़त्म करते हुए की गई है और इसकी ग़रज़ यह बयान की गई है कि तुम्हारा हाल कहीं ग़ाफ़िलों और बेपरवाहों का-सा न हो जाए। दुनिया में जो कुछ गुमराही फैली है और इनसान के अख़लाक़ और कामों में जो बिगाड़ भी पैदा हुआ है उसका सबब सिर्फ़ यह है कि इनसान इस बात को भूल जाता है कि ख़ुदा उसका रब है और वह ख़ुदा का बन्दा है और दुनिया में उसको आज़माइश के लिए भेजा गया है और दुनिया की ज़िन्दगी ख़त्म होने के बाद उसे अपने रब को हिसाब देना होगा। तो जो शख़्स सीधी राह पर चलना और दुनिया को उसपर चलाना चाहता हो उसको इस बात का बहुत ज़्यादा ध्यान रखना चाहिए कि इस भूल में कहीं वह ख़ुद न पड़ जाए। इसी लिए नमाज़ और अल्लाह का ज़िक्र (याद) और हर वक़्त अल्लाह की तरफ़ ध्यान लगाए रखने की बार-बार ताकीद की गई है।

155. मतलब यह है कि बड़ाई का घमण्ड और बन्दगी से मुँह मोड़ना शैतानों का काम है और इसका नतीजा नीचे गिरना और बेइज़्ज़त होना है। इसके बरख़िलाफ़ ख़ुदा के आगे झुकना और बन्दगी में जमे रहना फ़रिश्तोंवाला काम है और इसका नतीजा तरक़्क़ी व बुलन्दी और ख़ुदा से क़रीब होना है। अगर तुम यह तरक़्क़ी चाहते हो तो अपने रवैये को शैतानों के बजाए फ़रिश्तों के रवैये के मुताबिक़ बनाओ।

156. तसबीह करते हैं, यानी वे अल्लाह तआला का बे-ऐब और बे-नुक़्स (त्रुटिरहित) और बे-ख़ता होना, हर क़िस्म की कमज़ोरियों से उसका पाक होना मानते हैं और दिल से यह भी मानते हैं कि कोई भी उसका शरीक, उसके बराबर और उसके जैसा नहीं है। हमेशा इन बातों के एलान व इज़हार में मशग़ूल रहते हैं।

157. इस मक़ाम पर हुक्म है कि जो शख़्स इस आयत को पढ़े या सुने वह सजदा करे, ताकि उसका हाल अल्लाह के प्यारे फ़रिश्तों जैसा हो जाए और सारी कायनात का इन्तिज़ाम चलानेवाले कारकुन (फ़रिश्ते) जिस ख़ुदा के आगे झुके हुए हैं उसी के आगे वह भी उन सबके साथ झुक जाए और अपने अमल से फ़ौरन यह साबित कर दे कि वह न तो किसी घमण्ड में मुब्तला है और न ख़ुदा की बन्दगी से मुँह मोड़नेवाला है।

क़ुरआन मजीद में ऐसी 14 जगहें हैं जहाँ सजदे की आयतें आई हैं। इन आयतों पर सजदा करने के बारे में तो तमाम फ़क़ीह और उलमा एक राय हैं, मगर इसके वाजिब होने में इख़्तिलाफ़ (मतभेद) है। इमाम अबू-हनीफ़ा (रह॰) सजदा-ए-तिलावत को वाजिब कहते हैं और

दूसरे आलिमों ने इसको सुन्नत क़रार दिया है। नबी (सल्ल॰), कभी एक बड़े मजमअ् (भीड़) में क़ुरआन पढ़ते और उसमें जब सजदे की आयत आती तो आप (सल्ल॰) ख़ुद भी सजदे में गिर जाते थे और जो शख़्स जहाँ होता वहीं सजदे में गिर जाता था, यहाँ तक कि किसी को सजदा करने के लिए जगह न मिलती तो वह अपने आगेवाले शख़्स की पीठ पर सिर रख देता। यह भी रिवायतों में आया है कि नबी (सल्ल॰) ने फ़तहे-मक्का के मौक़े पर क़ुरआन पढ़ा और उसमें जब सजदे की आयत आई तो जो लोग ज़मीन पर खड़े थे उन्होंने ज़मीन पर सजदा किया और जो घोड़ों और ऊँटों पर सवार थे वे अपनी सवारियों पर ही झुक गए। कभी नबी (सल्ल॰) ने ख़ुतबे के दौरान में सजदे की आयत पढ़ी है तो मिंबर से उतरकर सजदा किया है और फिर ऊपर जाकर ख़ुतबा शुरू कर दिया है।

इस सजदे के लिए आम उलमा वही शर्तें लगाते हैं जो नमाज़ की शर्तें हैं, यानी वुज़ू किए हुए होना, काबा की तरफ़ मुँह होना और नमाज़ की तरह सजदे में ज़मीन पर सिर रखना। लेकिन जितनी हदीसें क़ुरआन की तिलावत के सिलसिले में सजदों के बारे में हमको मिली हैं उनमें कहीं इन शर्तों के लिए कोई दलील मौजूद नहीं है। उनसे तो यही मालूम होता है कि सजदे की आयत सुनकर जो शख़्स जहाँ, जिस हाल में है झुक जाए, चाहे वुज़ू किए हुए हो या न हो, चाहे काबा की तरफ़ मुँह करना मुमकिन हो या न हो, चाहे ज़मीन पर सिर रखने का मौक़ा हो या न हो। गुज़रे हुए बुज़ुर्ग आलिमों में भी हमको ऐसी शख़्सियतें मिलती हैं जिनका अमल इस तरीक़े पर था। चुनाँचे इमाम बुख़ारी (रह॰) ने हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर (रज़ि॰) के बारे में लिखा है कि वे वुज़ू के बिना तिलावत का सजदा करते थे। और अबू-अब्दुर्रहमान सुलमी के बारे में फ़तहुल-बारी में लिखा है कि वे रास्ते में चलते हुए क़ुरआन मजीद पढ़ते जाते थे और अगर कहीं सजदे की आयत आ जाती तो बस सिर झुका लेते थे, चाहे वुज़ू से हों या न हों, और चाहे उनका मुँह काबा की तरफ़ हो या न हो। इन वजहों से हम समझते हैं कि अगरचे ज़्यादा एहतियात का मसलक आम आलिमों ही का है, लेकिन अगर कोई शख़्स जमहूर के मसलक के ख़िलाफ़ अमल करे तो उसे मलामत भी नहीं की जा सकती, क्योंकि जमहूर की राय की ताईद में नबी (सल्ल॰) से साबित कोई सुन्नत मौजूद नहीं है जिससे यह बात साबित हो और गुज़रे हुए बुज़ुर्ग आलिमों में ऐसे लोग पाए गए हैं जिनका अमल जमहूर के मसलक से अलग था।

☆☆☆

8. अल-अनफ़ाल

परिचय

उतरने का ज़माना

यह सूरा सन् दो हिजरी में बद्र की जंग के बाद नाज़िल हुई है और इसमें इस्लाम और कुफ़्र की इस पहली जंग का तफ़सील से ज़ाइज़ा लिया गया है। जहाँ तक सूरा के मज़मून (विषय-वस्तु) पर ग़ौर करने से अन्दाज़ा होता है कि शायद यह एक ही तक़रीर है जो एक ही वक़्त में उतारी गई होगी। मगर हो सकता है कि इसकी कुछ आयतें बद्र की जंग ही से पैदा हुए मसलों के ताल्लुक़ से बाद में उतरी हों और फिर उनको सिलसिला-ए-तक़रीर में मुनासिब जगहों पर दर्ज करके एक मुसलसल तक़रीर बना दिया गया हो। बहरहाल सूरा में जो बात बयान की गई है उस में कहीं कोई ऐसा जोड़ नज़र नहीं आता जिससे यह समझा जा सके कि यह अलग-अलग दो-तीन ख़ुतबों (तक़रीरों) का मजमूआ है।

तारीख़ी पसमंज़र (ऐतिहासिक पृष्ठभूमि)

इससे पहले कि इस सूरा के बारे में कुछ बयान किया जाए, बद्र की जंग और उससे ताल्लुक़ रखनेवाले हालात पर एक तारीख़ी नज़र डाल लेनी चाहिए।

नबी (सल्ल॰) की दावत शुरुआती दस-बारह साल में, जबकि आप (सल्ल॰) मक्का में मुक़ीम थे, इस हैसियत से अपनी मज़बूती और दुरुस्तगी साबित कर चुकी थी कि एक तरफ़ उसकी पीठ पर एक बुलन्द सीरत (उच्च चरित्र), आला ज़र्फ़ (विशाल हृदय) और सूझ-बूझ रखनेवाला अलम्बरदार मौजूद था जो अपनी शख़्सियत का पूरा सरमाया इस काम में लगा चुका था और उसके रवैये से यह हक़ीक़त पूरी तरह नुमायाँ हो चुकी थी कि वह इस दावत (पैग़ाम) को इन्तिहाई कामयाबी की मंज़िल तक पहुँचाने के लिए अटल इरादा रखता है। और इस मक़सद की राह में हर ख़तरे का सामना करने और हर मुश्किल का मुक़ाबला करने के लिए तैयार है। दूसरी तरफ़ इस दावत में ख़ुद ऐसी कशिश थी कि वह दिलों और दिमाग़ों में उतरती चली जा रही थी और जिहालत व जाहिलियत और तास्सुबात (पक्षपात) के घेरे उसकी राह रोकने में नाकाम साबित हो रहे थे। इसी वजह से अरब के पुराने जाहिली निज़ाम की हिमायत करनेवाले लोग, जो शुरू

में इसको हलका और बेक़ीमत समझते थे, मक्की दौर के आख़िरी ज़माने में उसे एक बड़ा ख़तरा समझने लगे थे और अपना पूरा ज़ोर उसे कुचल देने में लगा देना चाहते थे। लेकिन उस वक़्त तक कुछ पहलुओं से उस दावत में बहुत कुछ कमी बाक़ी थी।

(1) यह बात अभी पूरी तरह साबित नहीं हुई थी कि उसको ऐसे पैरवी करनेवालों की एक काफ़ी तादाद हासिल हो गई है जो सिर्फ़ उसके माननेवाले ही नहीं हैं, बल्कि उसके उसूलों से सच्चा इश्क़ भी रखते हैं। उसको ग़ालिब और लागू करने की कोशिश में अपनी सारी क़ुव्वतें और अपनी ज़िन्दगी का सारा सरमाया खपा देने के लिए तैयार हैं, और उसके लिए अपनी हर चीज़ क़ुरबान कर देने के लिए दुनिया भर से लड़ जाने के लिए, यहाँ तक कि अपने सबसे प्यारे रिश्तों को भी काट फेंकने के लिए तैयार हैं। हालाँकि मक्का में इस्लाम के माननेवालों ने क़ुरैश के ज़ुल्म व सितम बरदाश्त करके अपने ईमान में सच्चे होने और इस्लाम के साथ अपने ताल्लुक़ की मज़बूती का अच्छा-ख़ासा सुबूत दे दिया था, मगर अभी यह साबित होने के लिए बहुत-सी आज़माइशें बाक़ी थीं कि इस्लाम की दावत को जान की बाज़ी लगा देनेवाले पैरुओं (अनुयाइयों) का वह गरोह हासिल हो गया है जिसके नज़दीक अपने असली मक़सद (लक्ष्य) के मुक़ाबले में कोई चीज़ भी ज़्यादा प्यारी और पसन्दीदा नहीं है।

(2) इस दावत (पैग़ाम) की आवाज़ हालाँकि सारे मुल्क में फैल गई थी लेकिन इसके असरात बिखरे हुए थे, इसकी हासिल की हुई क़ुव्वत सारे मुल्क मैं तितर-बितर थी और इसको वह इज्तिमाई ताक़त हासिल न हुई थी जो पुराने जमे हुए जाहिलियत के निज़ाम से फ़ैसलाकुन मुक़ाबला करने के लिए ज़रूरी थी।

(3) इस दावत ने ज़मीन में किसी जगह भी जड़ नहीं पकड़ी थी, बल्कि अभी तक वह सिर्फ़ हवा में अपना असर दिखा रही थी। मुल्क का कोई इलाक़ा ऐसा नहीं था जहाँ वह क़दम जमाकर अपनी बात और दावे को मज़बूत करती और फिर आगे बढ़ने की कोशिश करती। उस वक़्त तक जो मुसलमान जहाँ भी था उसकी हैसियत कुफ़्र व शिर्क के निज़ाम में बिलकुल ऐसी थी जैसे ख़ाली पेट में कुनैन, कि पेट हर वक़्त उसे उगल देने के लिए ज़ोर लगा रहा हो।

(4) उस वक़्त तक इस दावत (पैग़ाम) को अमली ज़िन्दगी के मामले अपने हाथ में लेकर चलाने का मौक़ा नहीं मिला था। न यह अपना तमद्दुन (संस्कृति) क़ायम कर सकी थी, न इसने अपना निज़ामे-मईशत व मुआशरत (आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था) और निज़ामे-सियासत (राजनीतिक व्यवस्था) बनाया था और न दूसरी ताक़तों से

इसके जंग और सुलह के मामले पेश आए थे। इसलिए न तो उन अख़लाक़ी उसूलों का मुज़ाहिरा हो सका था, जिनपर यह दावत ज़िन्दगी के पूरे निज़ाम को क़ायम करना और चलाना चाहती थी और न यही बात आज़माइश की कसौटी पर अच्छी तरह नुमायाँ हुई थी कि इस दावत का पैग़म्बर और उसकी पैरवी करनेवालों का गरोह जिस चीज़ की तरफ़ दुनिया को दावत दे रहा है उस पर अमल करने में वह ख़ुद कितना सच्चा है।

बाद के वाक़िआत ने वे मौक़े पैदा कर दिए जिनसे ये चारों कमियाँ पूरी हो गईं।

मक्की दौर के आख़िरी तीन-चार सालों से मदीना (यसरिब) में इस्लाम के सूरज की किरणें मुसलसल पहुँच रही थीं और वहाँ के लोग बहुत-सी वजहों से अरब के दूसरे क़बीलों के मुक़ाबले में ज़्यादा आसानी के साथ उस रौशनी को क़बूल करते जा रहे थे। आख़िरकार पैग़म्बरी के बारहवें साल हज के मौक़े पर 75 लोगों का एक वफ़्द (प्रतिनिधिमण्डल) नबी (सल्ल॰) से रात के अंधेरे में मिला और उसने न सिर्फ़ यह कि इस्लाम क़बूल किया, बल्कि आप (सल्ल॰) को और आप (सल्ल॰) की पैरवी करनेवालों को अपने शहर में जगह देने पर भी रज़ामन्दी ज़ाहिर की। यह इस्लाम की तारीख़ में एक इंक़िलाबी मौक़ा था जिसे अल्लाह ने अपनी मेहरबानी से फ़राहम किया और नबी (सल्ल॰) ने हाथ बढ़ाकर पकड़ लिया। मदीनावाले नबी (सल्ल॰) को सिर्फ़ एक पनाहगुज़ीं (शरणार्थी) की हैसियत से नहीं, बल्कि अल्लाह के नायब (उत्तराधिकारी) और अपने रहनुमाँ और फ़रमाँरवा की हैसियत से बुला रहे थे। और इस्लाम की पैरवी करनेवालों को उनका बुलावा इसलिए न था कि वे एक अजनबी सरज़मीन में सिर्फ़ मुहाजिर (शरणार्थी) होने की हैसियत से जगह पा लें, बल्कि मक़सद यह था कि अरब के मुख़्तलिफ़ क़बीलों और इलाक़ों में जो मुसलमान बिखरे हुए हैं वे मदीना में जमा होकर और मदीना के मुसलमानों के साथ मिलकर एक मुनज़्ज़म (सुसंगठित) समाज बना लें। इस तरह मदीना (यसरिब) ने असल में अपने आपको 'मदीनतुल- इस्लाम' (इस्लाम की नगरी) की हैसियत से पेश किया और नबी (सल्ल॰) ने उसे क़बूल करके अरब में पहला दारुल-इस्लाम बना लिया।

इस पेशकश के मआनी जो कुछ थे इससे मदीनावाले अनजान न थे। इसका साफ़ मतलब यह था कि एक छोटा-सा क़स्बा अपने आप को पूरे मुल्क की तलवारों और मआशी व तमद्दुनी (आर्थिक एवं सांस्कृतिक) बाइकॉट के मुक़ाबले में पेश कर रहा था। चुनाँचे बैअते-अक़बा के मौक़े पर रात की उस मजलिस में इस्लाम के उन अव्वलीन (सबसे पहले) मददगारों (अनसार) ने इस नतीजे को ख़ूब अच्छी तरह समझ-बूझकर नबी

(सल्ल॰) के हाथ में हाथ दिया था। ठीक उस वक़्त जबकि बैअत हो रही थी, मदीना के वफ़्द के एक नौजवान मेम्बर असअद-बिन-ज़ुरारा (रज़ि॰) ने, जो पूरे वफ़्द में सबसे कम उम्र थे, उठकर कहा—

"ठहरो, ऐ मदीनावालो, हम लोग जो इनके पास आए हैं तो यह समझते हुए आए हैं कि ये अल्लाह के रसूल हैं और आज इन्हें यहाँ से निकालकर ले जाना तमाम अरब से दुश्मनी मोल लेना है। इसके नतीजे में तुम्हारे नौनिहाल क़त्ल होंगे और तलवारें तुमपर बरसेंगी। इसलिए अगर तुम इसको बरदाश्त करने की ताक़त अपने अन्दर पाते हो तो इनका हाथ पकड़ो, और इसका बदला अल्लाह के ज़िम्मे है। और अगर तुम्हें अपनी जानें प्यारी हैं तो फिर छोड़ दो और साफ़-साफ़ मजबूरी और लाचारी ज़ाहिर कर दो; क्योंकि इस वक़्त मजबूरी और लाचारी ज़ाहिर कर देना अल्लाह के नज़दीक ज़्यादा क़ाबिले-क़बूल हो सकता है।" (अहमद-बिन-हंबल, मुसनद, जिल्द-3)

इसी बात को वफ़्द के एक दूसरे शख़्स अब्बास-बिन-उबादा-बिन नज़ला ने दोहराया—

"जानते हो इस शख़्स से किस चीज़ पर बैअ़त कर रहे हो? (आवाज़ें आईं कि हाँ, जानते हैं) तुम इसके हाथ पर बैअ़त करके दुनिया भर से लड़ाई मोल ले रहे हो। इसलिए अगर तुम्हारा ख़याल यह हो कि जब तुम्हारे माल तबाही के और तुम्हारे अशराफ़ (इज़्ज़तदार लोग) हलाकत के ख़तरे में पड़ जाएँ तो तुम उसे दुश्मनों के हवाले कर दोगे तो बेहतर है कि आज ही इसे छोड़ दो; क्योंकि ख़ुदा की क़सम! यह दुनिया और आख़िरत की रुसवाई है, और अगर तुम्हारा इरादा यह है कि जो बुलावा तुम इस शख़्स को दे रहे हो उसको अपने मालों की तबाही और अपने इज़्ज़तदार लोगों की हलाकत के बावजूद निबाहोगे तो बेशक इसका हाथ थाम लो कि ख़ुदा की क़सम! यह दुनिया और आख़िरत की भलाई है।"

इसपर वफ़्द के तमाम लोगों ने एक आवाज़ में कहा, "हम इन्हें लेकर अपने मालों को तबाही और अपने इज़्ज़तदार लोगों को हलाकत के ख़तरे में डालने के लिए तैयार हैं।"

तब वह मशहूर बैअ़त की गई जिसे तारीख़ में बैअ़ते-अक़बा-सानिया (अक़बा की दूसरी बैअ़त) कहते हैं।

दूसरी तरफ़ मक्कावालों के लिए यह मामला जो मानी रखता था वह भी किसी से छिपा हुआ न था। असल में इस तरह मुहम्मद (सल्ल॰) को, जिनकी ज़बरदस्त शख़्सियत और ग़ैर-मामूली क़ाबिलियतों को क़ुरैश के लोग जान चुके थे, एक ठिकाना हासिल हो

रहा था और उनकी क़ियादत और रहनुमाई में इस्लाम की पैरवी करनेवाले लोग, जिनके हौसले, मज़बूती और जान क़ुरबान कर देने के जज़्बे को भी क़ुरैश एक हद तक आज़मा चुके थे, एक मुनज़्ज़म जत्थे की सूरत में जमा हुए जाते थे। यह पुराने निज़ाम के लिए मौत का पैग़ाम था। इसी के साथ मदीना जैसे मक़ाम पर मुसलमानों की उस ताक़त के जमा होने से क़ुरैश के लोगों को और भी ज़्यादा ख़तरा यह था कि यमन से शाम (सीरिया) की तरफ़ जो तिजारती रास्ता लाल सागर के किनारे-किनारे जाता था, जिसके महफ़ूज़ रहने पर क़ुरैश और दूसरे बड़े-बड़े मुशरिक क़बीलों की मआशी (आर्थिक) ज़िन्दगी का दारोमदार था, वह मुसलमानों के निशाने पर आ रहा था और इस शह-रग पर हाथ डालकर मुसलमान जाहिली निज़ाम की ज़िन्दगी दुश्वार कर सकते थे। सिर्फ़ मक्कावालों की वह तिजारत, जो इस रास्ते के बल पर चल रही थी, ढाई लाख अशरफ़ी सालाना तक पहुँचती थी। ताइफ़ और दूसरी जगहों की तिजारत उसके अलावा थी।

क़ुरैश इन नतीजों को ख़ूब समझते थे। जिस रात अक़बा की बैअत हुई उसी रात इस मामले की भनक मक्कावालों के कानों में पड़ी, और पड़ते ही खलबली मच गई। पहले तो उन्होंने मदीनावालों को नबी (सल्ल॰) से तोड़ने की कोशिश की। फिर जब मुसलमान एक-एक दो-दो करके मदीना की तरफ़ हिजरत करने लगे और क़ुरैश को यक़ीन हो गया कि अब मुहम्मद (सल्ल॰) भी वहीं चले जाएँगे तो वे इस ख़तरे को रोकने के लिए आख़िरी तदबीर इख़्तियार करने पर आमादा हो गए। नबी (सल्ल॰) के हिजरत करने से कुछ ही दिन पहले क़ुरैश की मजलिसे-शूरा (सलाहकार समिति की बैठक) हुई, जिसमें बड़ी बात-चीत और बहस के बाद आख़िरकार यह तय पा गया कि बनी-हाशिम के सिवा क़ुरैश के तमाम ख़ानदानों का एक-एक आदमी छाँटा जाए, और ये सब लोग मिलकर मुहम्मद (सल्ल॰) को क़त्ल करें, ताकि बनी-हाशिम के लिए तमाम ख़ानदानों से अकेले लड़ना मुश्किल हो जाए और वे इन्तिक़ाम के बजाए ख़ूँ-बहा (ख़ून का माली बदला) क़बूल करने पर मजबूर हो जाएँ। लेकिन अल्लाह की मेहरबानी और नबी (सल्ल॰) का अल्लाह पर भरोसा और बेहतरीन तदबीर से उनकी यह चाल नाकाम हो गई और नबी (सल्ल॰) ख़ैरियत के साथ मदीना पहुँच गए। इस तरह जब क़ुरैश को हिजरत के रोकने में नाकामी हुई तो उन्होंने मदीना के सरदार अब्दुल्लाह-बिन-उबई को (जिसे हिजरत से पहले मदीनावाले अपना बादशाह बनाने की तैयारी कर चुके थे और जिसकी तमन्नाओं पर, नबी (सल्ल॰) के मदीना पहुँच जाने और औस व ख़ज़रज की बड़ी तादाद के मुसलमान हो जाने से, पानी फिर चुका था) ख़त लिखा कि "तुम लोगों ने हमारे आदमी को अपने यहाँ पनाह दी है, हम ख़ुदा की क़सम खाते हैं कि या तो तुम ख़ुद

उससे लड़ो या उसे निकाल दो, वरना हम सब तुमपर हमला कर देंगे और तुम्हारे मर्दों को क़त्ल और औरतों को लौंडियाँ बना लेंगे।" अब्दुल्लाह-बिन-उबई इसपर कुछ शरारत करने पर तैयार हुआ, मगर नबी (सल्ल॰) ने वक़्त पर उसकी शरारत की रोकथाम कर दी। फिर सअ्द-बिन-मुआज़ मदीना के एक रईस उमरे के लिए मक्का गए। वहाँ ठीक ख़ाना-ए-काबा के दरवाज़े पर अबू-जहल ने उनको टोककर कहा, "तुम तो हमारे दीन से फिरे हुए लोगों को पनाह दो और उनकी मदद और हिमायत का दम भरो और हम तुम्हें इत्मीनान से मक्का में तवाफ़ करने दें? अगर तुम उमैया-बिन-ख़लफ़ के मेहमान न होते तो ज़िन्दा यहाँ से नहीं जा सकते थे।" सअ्द ने जवाब में कहा, "ख़ुदा की क़सम, अगर तुमने मुझे इस चीज़ से रोका तो मैं तुम्हें उस चीज़ से रोक दूँगा जो तुम्हारे लिए इससे ज़्यादा सख़्त है, यानी मदीना पर से तुम्हारा गुज़रना।" यह मानो मक्कावालों की तरफ़ से इस बात का एलान था कि बैतुल्लाह (ख़ाना-ए-काबा) की ज़ियारत की राह मुसलमानों पर बन्द है और उसका जवाब मदीनावालों की तरफ़ से यह था कि शाम (सीरिया) की तिजारत का रास्ता इस्लाम के मुख़ालिफ़ों के लिए ख़तरे से भरा है।

हक़ीक़त में उस वक़्त मुसलमानों के लिए इसके सिवा कोई चारा भी न था कि इस तिजारती रास्ते पर अपनी पकड़ मज़बूत करें ताकि क़ुरैश और वे दूसरे क़बीले जिनका फ़ायदा उस रास्ते से जुड़ा हुआ था इस्लाम और मुसलमानों के साथ अपनी दुश्मनी भरी और रुकावटें खड़ी करनेवाली पॉलिसी पर दोबारा ग़ौर करने के लिए मजबूर हो जाएँ। चुनाँचे मदीना पहुँचते ही नबी (सल्ल॰) ने नई इस्लामी सोसाइटी के इब्तिदाई नज़्म व इन्तिज़ाम और मदीना के चारों तरफ़ की यहूदी आबादियों के साथ मामला तय करने के बाद सबसे पहले जिस चीज़ पर तवज्जोह दी वह इसी रास्ते का मामला था। इस मामले में नबी (सल्ल॰) ने दो अहम तदबीरें अपनाईं।

एक यह कि मदीना और लाल सागर के किनारे के बीच उस आम रास्ते से मिले हुए जो क़बीले आबाद थे उनके साथ बातचीत शुरू की, ताकि वे इस बात पर समझौता कर लें कि वे दोस्ताना तौर पर इस्लामी सोसायटी के साथ रहेंगे या कम-से-कम इस बात पर समझौता करलें कि वे ग़ैर-जानिबदार (तटस्थ) रहेंगे। चुनाँचे इसमें नबी (सल्ल॰) को पूरी कामयाबी हुई। सबसे पहले जुहैना से नातरफ़दार (तटस्थ) रहने का समझौता हुआ, जो साहिल के क़रीब पहाड़ी इलाक़े में एक अहम क़बीला था। फिर सन् एक हिजरी के आख़िर में बनी-ज़मरा से जिनका इलाक़ा यंबुअ और ज़ुल-उशैरह से मिला हुआ था, इस बात का समझौता हुआ कि वे दुश्मन से हिफ़ाज़त के वक़्त हमारा साथ देंगे। फिर सन् दो हिजरी के दरमियान में बनी-मुदलिज भी इस समझौते में शरीक हो गए; क्योंकि वे बनी-ज़मरा के पड़ोसी थे और उनके बीच समझौता भी था। इसपर यह भी हुआ कि

इस्लाम की तबलीग़ से इन क़बीलों में इस्लाम की मदद करनेवालों और उसपर चलनेवालों की भी एक अच्छी ख़ासी तादाद पैदा हो गई।

दूसरी तदबीर नबी (सल्ल.) ने यह अपनाई कि क़ुरैश के क़ाफ़िलों को ख़बरदार करने के लिए इस आम रास्ते पर लगातार छोटे-छोटे दस्ते भेजने शुरू किए और कुछ दस्तों के साथ आप (सल्ल.) ख़ुद भी गए। पहले साल इस तरह के चार दस्ते गए जो मग़ाज़ी[1] की किताबों में 'सरिय्या-ए-हमज़ा', सरिय्या-ए-उबैदा-बिन-हारिस, 'सरिय्या[2]-ए-साद-बिन-अबी-वक़्क़ास' और ग़ज़्वतुल-अबवा' के नाम से जाने जाते हैं। और दूसरे साल के शुरू के महीनों में दो और ताख़्तें (हमलावर दस्ते) इसी तरफ़ रवाना की गईं, जिनको अहले-मग़ाज़ी ग़ज़्वा-ए-बुवात और ग़ज़्वा-ए-ज़ुल-उशैरा के नाम से याद करते हैं। इन तमाम मुहिमों की दो ख़ुसूसियतें सामने रहनी चाहिए। एक यह कि उनमें से किसी में न तो ख़ूँरेज़ी और ख़ून-ख़राबा हुआ और न कोई क़ाफ़िला लूटा गया, जिससे यह साफ़ ज़ाहिर होता है कि इन मुहिमों का अस्ल मक़सद क़ुरैश के लोगों को यह बताना था कि अब हवा का रुख़ बदल चुका है। दूसरी यह कि इनमें से किसी मुहिम में भी नबी (सल्ल.) ने मदीनावालों का कोई आदमी नहीं लिया, बल्कि तमाम दस्तों में सिर्फ़ मक्का से आए हुए मुसलमानों (मुहाजिरों) को ही रखा गया, ताकि जहाँ तक हो सके यह कशमकश क़ुरैश के अपने ही घरवालों तक सिमटी रहे और दूसरे क़बीलों के उसमें उलझने से आग फैल न जाए। उधर से मक्कावाले भी मदीना की तरफ़ तबाही मचानेवाले ग़ारतगर दस्ते भेजते रहे। चुनाँचे इन्ही में से एक दस्ते ने कुर्ज़-बिन-जाबिर अलफ़िहरी की रहनुमाई में ठीक मदीना के क़रीब डाका मारा और मदीनावालों के जानवर लूट लिए। क़ुरैश के लोगों की कोशिश इस सिलसिले में यह रही कि दूसरे क़बीलों को भी इस कश्मकश में उलझा दें। फिर यह कि उन्होंने बात को सिर्फ़ धमकी तक महदूद नहीं रखा, बल्कि लूट-मार तक नौबत पहुँचा दी।

हालात यहाँ तक पहुँच चुके थे कि शाबान दो हिजरी (फ़रवरी या मार्च 623 ई.) में क़ुरैश के लोगों का एक बहुत बड़ा क़ाफ़िला, जिसके साथ तक़रीबन पचास हज़ार अशरफ़ी का माल था और उस क़ाफ़िले में तीस-चालीस से ज़्यादा मुहाफ़िज़ (Guard) न थे, शाम (सीरिया) से मक्का की तरफ़ लौटते हुए उस इलाक़े में पहुँचा जहाँ मदीना के

1. वह किताब जिसमें ग़ाज़ियों (जंग में लड़नेवालों) के कारनामों का ज़िक्र हो।
2. इस्लामी इतिहास की ज़बान में सरिय्या उस जंगी मुहिम को कहते हैं जो नबी (सल्ल.) किसी सहाबी की रहनुमाई में भेजा करते थे और ग़ज़वा उस मुहिम को कहते हैं जिसकी सरबराही ख़ुद नबी (सल्ल.) किया करते थे।

लोग उसपर आसानी से अपना हाथ डाल सकते थे। चूँकि माल ज़्यादा था, मुहाफ़िज़ (Guard) कम थे और पिछले हालात को देखते हुए ख़तरा ज़्यादा था कि कहीं मुसलमानों का कोई ताक़तवर दस्ता उसपर छापा न मार दे, इसलिए क़ाफ़िले के सरदार अबू-सुफ़ियान ने इस ख़तरे भरे इलाक़े में पहुँचते ही एक आदमी को मक्का की तरफ़ दौड़ा दिया, ताकि वहाँ से मदद ले आए। उस आदमी ने मक्का पहुँचते ही अरब के पुराने क़ायदे के मुताबिक़ अपने ऊँट के कान काटे, उसकी नाक चीर दी, कजावे को उलटकर रख दिया और अपनी क़मीस आगे-पीछे से फाड़कर शोर मचाना शुरू कर दिया कि "ऐ क़ुरैशवालो! अपने तिजारती क़ाफ़िले की ख़बर लो, तुम्हारे माल जो अबू-सुफ़ियान के साथ हैं, मुहम्मद अपने आदमी लेकर उनके पीछे पड़ गया है। मुझे उम्मीद नहीं कि तुम उन्हें पा सकोगे। दौड़ो, दौड़ो मदद के लिए।" इसपर सारे मक्का में जोश पैदा हो गया। क़ुरैश के तमाम बड़े-बड़े सरदार जंग के लिए तैयार हो गए। तक़रीबन एक हज़ार लड़ाके मर्द, जिनमें से 600 के पास ज़िरहें (कवच) थीं और जिनमें सौ सवारों का दस्ता भी शामिल था, पूरी शानो-शौकत के साथ लड़ने के लिए चले। उनका मक़सद सिर्फ़ यही नहीं था कि अपने क़ाफ़िले को बचा लाएँ, बल्कि वे इस इरादे से निकले थे कि इस आए दिन के ख़तरे को हमेशा के लिए ख़त्म कर दें और मदीना में यह मुख़ालिफ़ ताक़त जो अभी नई-नई जमा होना शुरू हुई है, उसे कुचल डालें और इस तरफ़ के क़बीलों पर इतना रौब डाल दें कि आगे के लिए यह तिजारती रास्ता बिलकुल महफ़ूज़ हो जाए।

अब नबी (सल्ल॰) ने, जो हालात से हमेशा बाख़बर रहते थे, महसूस किया कि फ़ैसले की घड़ी आ पहुँची है और यह ठीक वह वक़्त है जबकि एक दिलेराना क़दम न उठाया गया तो इस्लामी तहरीक हमेशा के लिए बेजान हो जाएगी, बल्कि नामुकिन नहीं कि इस तहरीक के लिए सिर उठाने का फिर कोई मौक़ा ही बाक़ी न रहे। नए दारुल-हिजरत में आए अभी पूरे दो साल भी नहीं हुए हैं। मुहाजिर बे-सरो-सामान, अनसार अभी नातजरिबेकार, यहूदी क़बीले भी मुख़ालिफ़त पर आमादा, ख़ुद मदीना में मुनाफ़िक़ों और मुशरिकों का एक अच्छा-ख़ासा तबक़ा मौजूद और आसपास के तमाम क़बीले क़ुरैश से डरे हुए भी और मज़हबी एतिबार से उनके हमदर्द भी। ऐसे हालात में अगर क़ुरैश के लोग मदीना पर हमला कर दें तो हो सकता है कि मुसलमानों की मुट्ठी भर जमाअत का ख़ातिमा हो जाए। लेकिन अगर वे हमला न करें और सिर्फ़ अपने बूते पर क़ाफ़िले को बचाकर ही निकाल ले जाएँ और मुसलमान दुबके बैठे रहें तब भी एक दम मुसलमानों की ऐसी हवा उखड़ेगी कि अरब का बच्चा-बच्चा उनपर दिलेर हो जाएगा और उनके लिए मुल्क भर में फिर कोई पनाह लेने की जगह बाक़ी न रहेगी। आसपास

के सारे क़बीले क़ुरैश के इशारों पर काम करना शुरू कर देंगे। मदीना के यहूदी और मुनाफ़िक़ व मुशरिक लोग खुल्लमखुल्ला सिर उठाएँगे और दारुल-हिजरत (मदीना) में जीना मुश्किल कर देंगे। मुसलमानों का कोई रोब और असर न होगा कि उसकी वजह से किसी को उनकी जान, माल और इज़्ज़त पर हाथ डालने में झिझक हो। इस वजह से नबी (सल्ल०) ने मज़बूत इरादा कर लिया कि जो ताक़त भी इस वक़्त मिली हुई है उसे लेकर निकलें और मैदान में फ़ैसला करें कि जीने का बलबूता किसमें है और किसमें नहीं है।

इस फ़ैसलाकुन (निर्णायक) क़दम उठाने का इरादा करके नबी (सल्ल०) ने अनसार और मुहाजिरों को जमा किया और उनके सामने सारी पोज़ीशन साफ़-साफ़ रख दी कि एक तरफ़ उत्तर (North) में तिजारती क़ाफ़िला है और दूसरी तरफ़ दक्षिण (South) से क़ुरैश का लश्कर चला आ रहा है। अल्लाह का वादा है कि इन दोनों में से कोई एक तुम्हें मिल जाएगा, बताओ तुम किसके मुक़ाबले पर चलना चाहते हो। जवाब में एक बड़े गरोह की तरफ़ से यह ख़ाहिश ज़ाहिर की गई कि क़ाफ़िले पर हमला किया जाए। लेकिन नबी (सल्ल०) के पेशे नज़र कुछ और था। इसलिए आप (सल्ल०) ने सवाल दोहराया। इसपर मुहाजिर सहाबा में से मिक़्दाद-बिन-अम्र ने उठकर कहा कि "ऐ अल्लाह के रसूल, जिधर आपका रब आपको हुक्म दे रहा है, उसी तरफ़ चलिए। हम आपके साथ हैं, जिस तरफ़ भी आप जाएँ। हम बनी-इसराईल की तरह यह कहनेवाले नहीं हैं कि जाओ तुम और तुम्हारा ख़ुदा दोनों लड़ें, हम तो यहाँ बैठे हैं। नहीं, हम कहते हैं कि चलिए आप और आपका ख़ुदा दोनों लड़ें और हम आपके साथ जानें लड़ाएँगे जब तक हममें से एक आँख भी काम कर रही हैं।" मगर लड़ाई का फ़ैसला अनसार की राय मालूम किए बग़ैर नहीं किया जा सकता था; क्योंकि अभी तक फ़ौजी कार्यवाइयों में उनसे कोई मदद नहीं ली गई थी और उनके लिए यह आज़माइश का पहला मौक़ा था कि इस्लाम की हिमायत का जो वादा उन्होंने पहले दिन किया था उसे वे कहाँ तक निभाने के लिए तैयार हैं। इसलिए नबी (सल्ल०) ने सीधे तौर पर उनको मुख़ातब किए बग़ैर फिर अपना सवाल दोहराया। इसपर सअ्द-बिन-मुआज़ उठे और उन्होंने कहा कि शायद आपका इशारा हमारी तरफ़ है? नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "हाँ।" उन्होंने कहा, "हम आप पर ईमान लाए हैं, आपकी तसदीक़ (पुष्टि) कर चुके हैं कि आप जो कुछ लाए हैं वह हक़ है। और आप की बात सुनने और आपकी इताअत करने का पुख़्ता वादा कर चुके हैं। इसलिए ऐ अल्लाह के रसूल, जो कुछ आपने इरादा कर लिया है उसे कर गुज़रिए। क़सम है उस ज़ात की जिसने आपको हक़ के साथ भेजा है! अगर आप हमें लेकर सामने समन्दर पर जा पहुँचें और उसमें उतर जाएँ तो हम आपके साथ कूदेंगे

और हममें से एक भी पीछे न रहेगा। हमको यह हरगिज़ नागवार नहीं है कि आप कल हमें लेकर दुश्मन से जा भिड़ें। हम जंग में साबित-क़दम रहेंगे, मुक़ाबिले में सच्ची जाँनिसारी दिखाएँगे और कुछ दूर नहीं कि अल्लाह आपको हमसे वह कुछ दिखवा दे जिसे देखकर आपकी आँखें ठण्डी हो जाएँ। इसलिए अल्लाह की बरकत के भरोसे पर आप हमें ले चलें।''

इन तक़रीरों के बाद फ़ैसला हो गया कि क़ाफ़िले के बजाए क़ुरैशी लश्कर के मुक़ाबले पर चलना चाहिए। लेकिन यह फ़ैसला कोई मामूली फ़ैसला नहीं था। जो लोग इस तंग वक़्त में लड़ाई के लिए उठे थे उनकी तादाद तीन सौ से कुछ ज़्यादा थी। (जिनमें 86 मुहाजिर, 61 औस क़बीले के और 170 ख़ज़रज क़बीले के थे।) जिनमें सिर्फ़ दो-तीन के पास घोड़े थे और बाक़ी आदमियों के लिए 70 ऊँटों से ज़्यादा न थे जिनपर तीन-तीन, चार-चार लोग बारी-बारी से सवार होते थे। लड़ाई का सामान भी बिलकुल नाकाफ़ी था। सिर्फ़ 60 आदमियों के पास ज़िरहें थीं। इसी लिए कुछ सरफ़रोश फ़िदाइयों के सिवा ज़्यादातर आदमी, जो इस ख़तरनाक मुहिम में शरीक थे, दिलों में सहम रहे थे और उन्हें ऐसा महसूस होता था कि जानते-बूझते मौत के मुँह में जा रहे हैं। मसलिहतपरस्त (ज़ाहिर में फ़ायदा देखने वाले) लोग, जो हालाँकि इस्लाम के दायरे में दाख़िल हो चुके थे लेकिन ऐसे ईमान के क़ायल न थे जिसमें जान व माल का नुक़सान हो, इस मुहिम को दीवानगी कह रहे थे और उनका ख़याल था कि दीनी जज़्बे ने इन लोगों को पागल बना दिया है। मगर नबी और सच्चे ईमानवाले यह समझ चुके थे कि यह वक़्त जान की बाज़ी लगाने ही का है, इसलिए अल्लाह के भरोसे पर वे निकल खड़े हुए और उन्होंने सीधा जुनूब-मग़रिब (South-West) का रास्ता पकड़ा जिधर से क़ुरैश का लश्कर आ रहा था। हालाँकि अगर शुरू में क़ाफ़िले को लूटना मक़सद होता तो उत्तर-पश्चिम (North-West) का रास्ता पकड़ा जाता।[1]

---

1. यहाँ यह बात क़ाबिले-ज़िक्र है कि जंगे-बद्र के बयान में तारीख़ और मुहम्मद (सल्ल.) की सीरत (पवित्र जीवनी) लिखनेवालों ने उन रिवायतों पर भरोसा कर लिया है जो हदीस और मग़ाज़ी की किताबों में बयान हुई हैं। लेकिन उन रिवायतों का बड़ा हिस्सा क़ुरआन के ख़िलाफ़ है और भरोसे के क़ाबिल नहीं है। सिर्फ़ ईमान ही की बिना पर हम जंगे-बद्र के बारे में क़ुरआन के बयान को सबसे ज़्यादा भरोसेमन्द समझने पर मजबूर नहीं हैं, बल्कि तारीख़ी हैसियत से भी आज इस जंग के बारे में अगर कोई भरोसेमन्द बयान मौजूद है तो वह यही सूरा अनफ़ाल है, क्योंकि यह लड़ाई के फ़ौरन बाद ही नाज़िल हुई थी और ख़ुद इस जंग में शरीक होनेवालों ने, चाहे वे मुख़ालिफ़ हों या मुवाफ़िक़, इसको सुना और पढ़ा था। अल्लाह अपनी पनाह में रखे, इसमें कोई एक बात भी वाक़िए के ख़िलाफ़ होती तो हज़ारों ज़बानें उसको रद्द कर डालतीं।

17 रमज़ान को बद्र के मक़ाम पर दोनों गरोहों का मुक़ाबला हुआ। जिस वक़्त दोनों लश्कर एक-दूसरे के मुक़ाबले पर आए और नबी (सल्ल०) ने देखा कि तीन दुश्मनों के मुक़ाबले में एक मुसलमान है और उस एक के पास भी हथियार पूरी तरह नहीं हैं तो ख़ुदा के आगे दुआ के लिए हाथ फैला दिए और बहुत ही गिड़गिड़ाकर कहना शुरू किया, "ख़ुदाया! ये हैं क़ुरैश, अपने खोखले साज़ो-सामान के साथ आए हैं ताकि तेरे रसूल को झूठा साबित करें। ख़ुदावन्दा! बस अब आ जाए तेरी वह मदद जिसका तूने मुझसे वादा किया था। ऐ ख़ुदा! अगर आज यह मुट्ठी भर जमाअत हलाक हो गई तो ज़मीन पर फिर तेरी इबादत न होगी।"

इस लड़ाई में सबसे ज़्यादा इम्तिहान उन मुसलमानों का था जो मक्का से हिजरत करके आए थे, जिनके अपने भाई-बन्धु सामने लड़ने के लिए खड़े थे। किसी का बाप, किसी का बेटा, किसी का चचा, किसी का मामूँ, किसी का भाई उसकी अपनी तलवार के निशाने पर आ रहा था और अपने हाथों अपने जिगर के टुकड़े काटने पड़ रहे थे। इस कड़ी आज़माइश से सिर्फ़ वही लोग गुज़र सकते थे जिन्होंने पूरी संजीदगी के साथ हक़ से रिश्ता जोड़ा हो और जो बातिल के साथ सारे रिश्ते काट डालने पर तुल गए हों। और अनसार का इम्तिहान भी कुछ कम सख़्त न था। अब तक तो उन्होंने अरब के सबसे ताक़तवर क़बीले क़ुरैश और उसके दोस्त क़बीलों की दुश्मनी सिर्फ़ इसी हद तक मोल ली थी कि उनकी मरज़ी के ख़िलाफ़ मुसलमानों को अपने यहाँ पनाह दे दी थी। लेकिन अब तो वे इस्लाम की हिमायत में उनके ख़िलाफ़ लड़ने भी जा रहे थे, जिसके मानी ये थे कि एक छोटी-सी बस्ती, जिसकी आबादी कुछ हज़ार लोगों से ज़्यादा नहीं है, सारे अरब देश से लड़ाई मोल ले रही है। यह हिम्मत सिर्फ़ वही लोग कर सकते थे जो किसी सच्चाई पर ऐसा ईमान और यक़ीन रखते हों कि उसके लिए अपने निजी फ़ायदों की उन्हें ज़रा भी परवाह न रही हो। आख़िरकार उन लोगों के ईमान की सच्चाई अल्लाह की तरफ़ से नुसरत और मदद का इनाम हासिल करने में कामयाब हो गई और क़ुरैश के लोग अपने ताक़त के सारे घमंड के बावजूद उन बे-सरो-सामान फ़िदाइयों के हाथों शिकस्त खा गए। उनके सत्तर आदमी मारे गए, सत्तर क़ैद हुए और उनका सरो-सामान ग़नीमत में मुसलमानों के हाथ आया। क़ुरैश के बड़े-बड़े सरदार, जो उनके ख़ास लोग थे और इस्लाम की मुख़ालिफ़ तहरीक के कर्ता धर्ता थे, इस लड़ाई में ख़त्म हो गए और इस फ़ैसलाकुन जीत ने अरब में इस्लाम को एक ऐसी ताक़त बना दिया जिसे नज़रअन्दाज़ नहीं किया जा सकता। जैसा कि एक मग़रिबी मुहक़्क़िक़ (पश्चिमी विद्वान) ने लिखा है, "जंगे-बद्र से पहले इस्लाम सिर्फ़ एक मज़हब और रियासत था, मगर जंगे-बद्र के बाद वह रियासत का मज़हब, बल्कि ख़ुद रियासत बन गया।"

मबाहिस (विषय वार्ता)

यह है वह अज़ीमुश्शान जंग जिसपर क़ुरआन की इस सूरा में तबसिरा (समीक्षा) किया गया है। मगर इस तबसिरे का अन्दाज़ उन सभी तबसिरों से अलग है जो दुनियावी बादशाह अपनी फ़ौज की जीत और कामयाबी के बाद किया करते हैं।

इसमें सबसे पहले उन कमियों की निशानदेही की गई है जो अख़लाक़ी हैसियत से अभी मुसलमानों में बाक़ी थीं, ताकि वे कोशिश करें कि आइन्दा उन कमियों को दूर करके मुकम्मल बन सकें।

फिर उनको बताया गया है कि इस जीत में अल्लाह की मदद का कितना बड़ा हिस्सा था, ताकि वे अपनी हिम्मत और बहादुरी पर न फूलें बल्कि अल्लाह पर भरोसा और अल्लाह और उसके रसूल की इताअत का सबक़ लें।

फिर उस अख़लाक़ी मक़सद को वाज़ेह किया गया है जिसके लिए मुसलमानों को हक़ और बातिल की यह कशमकश क़ायम करनी है और उन अख़लाक़ी सिफ़ात को वाज़ेह किया गया है जिनसे इस कशमकश में उन्हें कामयाबी हासिल हो सकती है।

फिर मुशरिकों, मुनाफ़िक़ों, यहूदियों और उन लोगों को जो जंग में क़ैद होकर आए थे, निहायत ही सबक़-आमोज़ अन्दाज़ में ख़िताब किया गया है।

फिर उन मालों के बारे में, जो जंग में हाथ आए थे, मुसलमानों को हिदायत की गई है कि उन्हें अपना माल न समझें बल्कि अल्लाह का माल समझें, जो कुछ अल्लाह इसमें से उनका हिस्सा मुक़र्रर करे उसे शुक्रिए के साथ क़बूल कर लें और जो हिस्सा अल्लाह अपने काम और अपने ग़रीब बन्दों की मदद के लिए मुक़र्रर करे उसको ख़ुशी और शौक़ से गवारा कर लें।

फिर जंग व सुलह के क़ानून के बारे में वे अख़लाक़ी हिदायतें दी गई हैं जिनको वाज़ेह करना इस मरहले में दावते-इस्लामी के दाख़िल हो जाने के बाद ज़रूरी था, ताकि मुसलमान अपनी सुलह व जंग में जाहिलियत के तरीक़ों से बचें और दुनिया पर उनकी अख़लाक़ी बरतरी क़ायम हो और दुनिया को मालूम हो जाए कि इस्लाम पहले दिन से अख़लाक़ पर अमली ज़िन्दगी की बुनियाद रखने की जो दावत दे रहा है उसकी शक्ल वाक़ई अमली ज़िन्दगी में क्या है।

फिर इस्लामी रियासत (राज्य) के दस्तूरी क़ानून की कुछ दफ़आत (Articles) बयान की गई हैं, जिनसे दारुल-इस्लाम के मुसलमान बाशिन्दों की क़ानूनी हैसियत उन मुसलमानों से अलग कर दी गई है जो दारुल-इस्लाम की हदों से बाहर रहते हों।

☆☆☆

ایاتها ۷۵ ٨ سُوْرَةُ الْاَنْفَالِ مَدَنِيَّةٌ ٨٨ رکوعاتها ١٠

بِسۡمِ اللّٰهِ الرَّحۡمٰنِ الرَّحِیۡمِ

يَسْـَٔلُوْنَكَ عَنِ الْاَنْفَالِ ؕ قُلِ الْاَنْفَالُ لِلّٰهِ وَالرَّسُوْلِ ۚ فَاتَّقُوا اللّٰهَ وَاَصْلِحُوْا ذَاتَ بَيْنِكُمْ ۪ وَاَطِيْعُوا اللّٰهَ وَرَسُوْلَهٗۤ اِنْ كُنْتُمْ مُّؤْمِنِيْنَ ① اِنَّمَا الْمُؤْمِنُوْنَ الَّذِيْنَ اِذَا ذُكِرَ اللّٰهُ وَجِلَتْ قُلُوْبُهُمْ وَاِذَا تُلِيَتْ

8. अल-अनफ़ाल

(मदीना में उतरी— आयतें-75)

अल्लाह के नाम से जो बे इन्तिहा मेहरबान और रहम फ़रमानेवाला है।

(1) तुमसे अनफ़ाल (लड़ाई में हासिल माल) के बारे में पूछते हैं? कहो, "ये अनफ़ाल तो अल्लाह और उसके रसूल के हैं, तो तुम लोग अल्लाह से डरो और अपने आपस के ताल्लुक़ात ठीक-ठाक रखो और अल्लाह और उसके रसूल की फ़रमाँबरदारी करो, अगर तुम ईमानवाले हो[1]" (2) सच्चे ईमानवाले तो वे लोग हैं जिनके दिल अल्लाह का ज़िक्र सुनकर काँप उठते हैं और जब अल्लाह की आयतें उनके सामने पढ़ी जाती हैं तो उनका

1. इस जंग के तबसिरे (समीक्षा) के सिलसिलें में पहले कुछ ज़रूरी बात बयान करते हुए यह अजीब बात बयान की गई है। बद्र में ग़नीमत का माल क़ुरैश के लश्कर से हासिल हुआ था, उसके बँटवारे पर मुसलमानों के बीच झगड़ा पैदा हो गया। चूँकि इस्लाम क़बूल करने के बाद उन लोगों को पहली बार इस्लामी झण्डे के नीचे लड़ने का तजुरिबा हुआ था, इसलिए उनको मालूम न था कि इस मज़हब में जंग और इससे पैदा होनेवाले मसलों के बारे में क्या क़ानून है। कुछ शुरुआती हिदायतें सूरा-2 बक़रा और सूरा-47 मुहम्मद में दी जा चुकी थीं, लेकिन 'तहज़ीबे-जंग' (युद्ध आचार-संहिता) की बुनियाद अभी रखनी बाक़ी थी। बहुत-से तमद्दुनी (सांस्कृतिक) मामलों की तरह मुसलमान अभी तक जंग के मामले में भी अकसर पुरानी जाहिलियत ही के तसव्वुरात लिए हुए थे। इस वजह से बद्र की लड़ाई में काफ़िरों की हार के बाद जिन लोगों ने, जो कुछ ग़नीमत का माल हासिल किया था, वे अरब के पुराने तरीक़े के मुताबिक़ अपने आपको इसका मालिक समझ बैठे थे। लेकिन एक दूसरा गरोह जिसने ग़नीमत की तरफ़ रुख़ करने के बजाए दुश्मनों का पीछा किया था, इस बात का दावा करने लगा कि

इस माल में हमारा बराबर का हिस्सा है; क्योंकि अगर हम दुश्मन का पीछा करके उसे दूर तक भगा न देते और तुम्हारी तरह ग़नीमत पर टूट पड़ते, तो मुमकिन था कि दुश्मन फिर पलटकर हमला कर देता और जीत हार में बदल जाती। एक तीसरे गरोह ने भी, जो अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) की हिफ़ाज़त कर रहा था, अपना दावा पेश किया। उसका कहना यह था कि सबसे बढ़कर क़ीमती ख़िदमत तो इस जंग में हमने अंजाम दी है। अगर हम अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) के आसपास अपनी जानों का घेरा बनाए हुए न रहते और नबी (सल्ल॰) को कोई नुक़सान पहुँच जाता, तो जीत ही कब हासिल हो सकती थी कि कोई ग़नीमत का माल हाथ आता और उसके बँटवारे का सवाल पैदा होता। मगर माल अमली तौर पर जिस गरोह के क़ब्ज़े में था उसकी मिल्कियत मानो किसी सुबूत की मोहताज न थी और वह दलील का यह हक़ मानने के लिए तैयार न था कि सूरते-हाल इसके ज़ोर से बदल जाए। आख़िरकार इस इख़्तिलाफ़ में कड़वाहट पैदा होनी शुरू हो गई और ज़बानों से दिलों तक बदमज़गी (कड़वाहट) फैलने लगी।

यह था वह नफ़्सियाती (मनोवैज्ञानिक) मौक़ा जिसे अल्लाह तआला ने सूरा अनफ़ाल नाज़िल करने के लिए चुना और जंग पर अपने तबसिरे (समीक्षा) की शुरुआत इसी मसले से की। फिर पहली ही आयत जो उतरी उसी में सवाल का जवाब मौजूद था। कहा, "तुमसे अनफ़ाल के बारे में पूछते हैं?" यह इन मालों को 'ग़नाइम' के बजाए 'अनफ़ाल' कहना अपने-आप में मसले का फ़ैसला अपने अन्दर रखता था। अनफ़ाल जमा (बहुवचन) है नफ़ूल की। अरबी ज़बान में नफ़ूल उस चीज़ को कहते हैं जो वाजिब से या हक़ से ज़्यादा हो। जब यह मातहत की तरफ़ से हो तो इससे मुराद वह रज़ाकाराना (Voluntary) ख़िदमत होती है जो एक ग़ुलाम अपने मालिक के लिए फ़र्ज़ से बढ़कर ख़ुद-ब-ख़ुद करता है। और जब यह मालिक और आक़ा की तरफ़ से हो तो इससे मुराद वह बख़्शिश या इनाम होता है जो आक़ा अपने ग़ुलाम को उसके हक़ से ज़्यादा देता है। इसलिए कहने का मतलब यह हुआ कि यह सारी हुज्जतबाज़ी और बहसें, यह झगड़ा, यह पूछगछ क्या ख़ुदा के बख़्शे हुए इनामों के बारे में हो रही है? अगर यह बात है तो तुम लोग इनके मालिक और मुख़तार क्यों बने जा रहे हो कि ख़ुद उनके बँटवारे का फ़ैसला करो। माल जिसका दिया हुआ है वही फ़ैसला करेगा कि किसे दिया जाए और किसे नहीं, और जिसको भी दिया जाए उसे कितना दिया जाए।

यह जंग के सिलसिले में एक बहुत बड़ा अख़लाक़ी सुधार था। मुसलमान की जंग दुनिया के माद्दी (भौतिक) फ़ायदे बटोरने के लिए नहीं है, बल्कि दुनिया के अख़लाक़ी और तमद्दुनी (सांस्कृतिक) बिगाड़ को हक़ के उसूल के मुताबिक़ दुरुस्त करने के लिए है, जिसे मजबूरन उस वक़्त अपनाया जाता है जबकि मुख़ालिफ़ क़ुव्वतें दावतो-तबलीग़ के ज़रिए से इस्लाह और सुधार को नामुमकिन बना दें। इसलिए इस्लाह करनेवालों की नज़र अपने मक़सद पर होनी चाहिए, न कि उन फ़ायदों पर जो मक़सद के लिए कोशिश करते हुए इनाम के तौर पर अल्लाह की मेहरबानी से हासिल हों। इन फ़ायदों से अगर शुरू ही में उनकी नज़र न हटा दी जाए तो बहुत जल्दी अख़लाक़ी गिरावट ज़ाहिर होकर यही फ़ायदे मक़सद क़रार पा जाएँ।

फिर यह जंग के सिलसिले में एक बहुत बड़ा इन्तिज़ामी सुधार भी था। पुराने ज़माने में तरीक़ा

عَلَيۡهِمۡ اٰيٰتُهٗ زَادَتۡهُمۡ اِيۡمَانًا وَّعَلٰى رَبِّهِمۡ يَتَوَكَّلُوۡنَ ۞ الَّذِيۡنَ
يُقِيۡمُوۡنَ الصَّلٰوةَ وَمِمَّا رَزَقۡنٰهُمۡ يُنۡفِقُوۡنَ ۞ اُولٰٓٮِٕكَ هُمُ الۡمُؤۡمِنُوۡنَ

ईमान बढ़ जाता है[2] और वे अपने रब पर भरोसा रखते हैं, (3) जो नमाज़ क़ायम करते हैं और जो कुछ हमने उनको दिया है उसमें से (हमारे रास्ते में) ख़र्च करते हैं। (4) ऐसे

यह था कि जो माल जिसके हाथ लगता वही उसका मालिक ठहरता। फिर बादशाह या कमांडर ग़नीमतों के तमाम माल पर क़ाबिज़ हो जाता। पहली सूरत में ज़्यादातर ऐसा होता था कि जीतनेवाली फ़ौजों के बीच ग़नीमत के मालों पर सख़्त नाचाक़ी (मनमुटाव) और अनबन पैदा हो जाती और कभी-कभी तो उनकी ख़ानाजंगी जीत को हार में बदल देती। दूसरी सूरत में सिपाहियों को चोरी की बीमारी लग जाती थी और वे ग़नीमत के माल को छिपाने की कोशिश करते थे। क़ुरआन ने अनफ़ाल को अल्लाह और रसूल का माल ठहराकर पहले तो यह क़ायदा मुक़र्रर कर दिया कि ग़नीमत का सारा माल लाकर ज्यों-का-त्यों ज़िम्मेदार के सामने रख दिया जाए और एक सूई तक छिपाकर न रखी जाए। फिर आगे चलकर इस माल के बँटवारे का क़ानून बना दिया कि पाँचवाँ हिस्सा ख़ुदा के काम और उसके ग़रीब बन्दों की मदद के लिए बैतुलमाल में रख लिया जाए और बाक़ी चार हिस्से उस पूरी फ़ौज में बाँट दिए जाएँ जो लड़ाई में शरीक हुई हो। इस तरह वे दोनों ख़राबियाँ दूर हो गईं, जो जाहिलियत के तरीक़े में थीं।
इस जगह पर एक लतीफ़ (सूक्ष्म) नुकता और भी ज़हन में रहना चाहिए। यहाँ अनफ़ाल के क़िस्से को सिर्फ़ इतनी बात कहकर ख़त्म कर दिया है कि ये अल्लाह और उसके रसूल के हैं। बँटवारे के मसले को यहाँ नहीं छेड़ा गया, ताकि पहले सुपुर्दगी और फ़रमाँबरदारी पूरी हो जाए। फिर कुछ आयतों के बाद आयत-41 में बताया गया कि इन मालों को किस तरह बाँटा जाए। इसी लिए यहाँ इन्हें 'अनफ़ाल' कहा गया है और आयत-41 में जब बँटवारे का हुक्म बयान करने की नौबत आई तो उन्हीं मालों को 'ग़नीमत का माल' कहा गया।

2. यानी हर ऐसे मौक़े पर जबकि अल्लाह का कोई हुक्म आदमी के सामने आए और वह उसको हक़ मानकर फ़रमाँबरदारी में सिर झुका दे, आदमी के ईमान में बढ़ोत्तरी होती है। हर उस मौक़े पर जबकि कोई चीज़ आदमी की मरज़ी के ख़िलाफ़ उसकी राय और तसव्वुरात व नज़रियों (कल्पनाओं एवं धारणाओं) के ख़िलाफ़, उसकी जानी-पहचानी आदतों के ख़िलाफ़, उसके फ़ायदों और उसकी लज़्ज़त और सुख-चैन के ख़िलाफ़, उसकी मुहब्बतों और दोस्तियों के ख़िलाफ़ अल्लाह की किताब और उसके रसूल की हिदायत में मिले और आदमी उसको मानकर अल्लाह और रसूल के फ़रमान को बदलने के बजाए अपने आप को बदल डाले और उसको क़बूल करने के लिए तकलीफ़ बरदाश्त करे तो इससे आदमी के ईमान में बढ़ोत्तरी होती है। इसके बरख़िलाफ़ अगर ऐसा करने से आदमी बचे तो उसके ईमान की जान निकलनी शुरू हो जाती

حَقًّا ۚ لَهُمْ دَرَجَٰتٌ عِندَ رَبِّهِمْ وَمَغْفِرَةٌ وَرِزْقٌ كَرِيمٌ ۝٤ كَمَآ أَخْرَجَكَ
رَبُّكَ مِنۢ بَيْتِكَ بِٱلْحَقِّ وَإِنَّ فَرِيقًا مِّنَ ٱلْمُؤْمِنِينَ لَكَٰرِهُونَ ۝٥
يُجَٰدِلُونَكَ فِى ٱلْحَقِّ بَعْدَمَا تَبَيَّنَ كَأَنَّمَا يُسَاقُونَ إِلَى ٱلْمَوْتِ وَهُمْ

ही लोग सच्चे ईमानवाले हैं। उनके लिए उनके रब के पास बड़े दर्जे हैं, ग़लतियों से माफ़ी है[3] और बेहतरीन रोज़ी है। (5) (लड़ाई में हासिल इस माल के मामले में भी वैसी ही सूरत सामने आ रही है जैसी उस वक़्त सामने आई थी, जबकि) तेरा रब तुझे हक़ के साथ तेरे घर से निकाल लाया था और ईमानवालों में से एक गरोह को यह सख़्त नागवार था। (6) वे उस हक़ के मामले में तुझसे झगड़ रहे थे, हालाँकि वह साफ़-साफ़ नुमायाँ हो चुका था। उनका हाल यह था कि मानो वे आँखों देखे मौत की तरफ़ हाँके

है। तो मालूम हुआ कि ईमान कोई एक जगह ठहरी और जमी हुई चीज़ नहीं है, और हक़ मानने और न मानने का बस एक ही दर्जा नहीं है कि अगर आदमी ने न माना तो वह बस एक ही न मानना रहा, और अगर उसने मान लिया तो वह भी बस एक ही मान लेना हुआ। नहीं, बल्कि मानना और इनकार करना दोनों में नीचे जाने और ऊपर उठने की सलाहियत है। हर इनकार की कैफ़ियत घट भी सकती है और बढ़ भी सकती है। और इसी तरह हर इक़रार और मानने में बढ़ोत्तरी भी हो सकती है और गिरावट भी। अलबत्ता फ़िक़्ही अहकाम (धर्म विधान) के पहलू से समाजी निज़ाम में हक़ों और हैसियतों का जब तअय्युन (निर्धारण) किया जाएगा तो मानने और न मानने दोनों के बस एक ही दर्जे का एतिबार किया जाएगा। इस्लामी सोसाइटी में तमाम माननेवालों के दस्तूरी हुक़ूक़ और वाजिबात बराबर होंगे चाहे उनके बीच मानने के दर्जों में कितना ही फ़र्क़ हो। और सब न माननेवाले एक ही दर्जे में होंगे। चाहे उनमें कुफ़्र के पहलू से दर्जों का कितना ही फ़र्क़ हो।

3. क़ुसूर और ग़लतियाँ बड़े-से-बड़े और अच्छे-से-अच्छे ईमानवाले से भी हो सकती हैं और हुई हैं। और जब तक इनसान इनसान है यह नामुमकिन है कि उसका आमालनामा सरासर नेक कामों से ही भरा हुआ हो और ग़लती, कोताही और कमी से बिलकुल ख़ाली रहे। मगर अल्लाह तआला की रहमतों में से यह भी एक बड़ी रहमत है कि जब इनसान बन्दगी की लाज़िमी शर्तें पूरी कर देता है तो अल्लाह उसकी कोताहियों को अनदेखा कर देता है और उसके काम और उसकी ख़िदमतें जिस बदले की हक़दार होती हैं, उससे कुछ ज़्यादा बदला अपनी मेहरबानी से देता है। वरना अगर क़ायदा यह तय किया जाता कि हर ग़लती की सज़ा और हर ख़िदमत का इनाम अलग-अलग दिया जाए तो कोई बड़े-से-बड़ा नेक आदमी भी सज़ा से नहीं बच सकता।

يَنۡظُرُوۡنَ ۞ وَاِذۡ يَعِدُكُمُ اللّٰهُ اِحۡدَى الطَّآٮِٕفَتَيۡنِ اَنَّهَا لَـكُمۡ وَتَوَدُّوۡنَ
اَنَّ غَيۡرَ ذَاتِ الشَّوۡكَةِ تَكُوۡنُ لَـكُمۡ وَيُرِيۡدُ اللّٰهُ اَنۡ يُّحِقَّ الۡحَـقَّ بِكَلِمٰتِهٖ

जा रहे हैं।[4]

(7, 8) याद करो वह मौक़ा जबकि अल्लाह तुमसे वादा कर रहा था कि दोनों गरोहों में से एक तुम्हें मिल जाएगा।[5] तुम चाहते थे कि कमज़ोर गरोह तुम्हें मिले[6], मगर अल्लाह का इरादा यह था कि अपनी बातों से हक़ को हक़ कर दिखाए और काफ़िरों की जड़ काट दे, ताकि हक़, हक़ होकर रहे और बातिल, बातिल होकर रह जाए, भले ही

4. यानी जिस तरह उस वक़्त ये लोग ख़तरे का सामना करने से घबरा रहे थे, हालाँकि हक़ की माँग उस वक़्त यही थी कि ख़तरे के मुँह में चले जाएँ, उसी तरह आज इन्हें ग़नीमत का माल हाथ से छोड़ना बुरा मालूम हो रहा है। हालाँकि हक़ की माँग यही है कि वे इसे छोड़ें और हुक्म का इन्तिज़ार करें। दूसरा मतलब यह भी हो सकता है कि अगर अल्लाह की इताअत और फ़रमाँबरदारी करोगे और अपने मन की ख़ाहिश के बजाए रसूल का कहना मानोगे तो वैसा ही अच्छा नतीजा देखोगे जैसा अभी बद्र की लड़ाई के मौक़े पर देख चुके हो कि तुम्हें क़ुरैश के लश्कर के मुक़ाबले पर जाना सख़्त नागवार था और उसे तुम हलाकत का पैग़ाम समझ रहे थे। लेकिन जब तुमने अल्लाह और उसके रसूल के हुक्म को माना तो यही ख़तरनाक काम तुम्हारे लिए ज़िन्दगी का पैग़ाम साबित हुआ।
क़ुरआन का यह कहना उन रिवायतों को भी रद्द कर रहा है जो बद्र की लड़ाई के सिलसिले में आम तौर पर सीरत और मग़ाज़ी में बयान की जाती हैं, यानी यह कि शुरू में नबी (सल्ल॰) और मुसलमान क़ाफ़िले को लूटने के लिए मदीना से रवाना हुए थे। फिर कुछ ही मंज़िल आगे जाकर जब मालूम हुआ कि क़ुरैश का लश्कर क़ाफ़िले की हिफ़ाज़त के लिए आ रहा है, तब यह मशवरा किया गया कि क़ाफ़िले पर हमला किया जाए या लश्कर का मुक़ाबला? इस बयान के बरख़िलाफ़ क़ुरआन यह बता रहा है कि जिस वक़्त नबी (सल्ल॰) अपने घर से निकले थे उसी वक़्त यह हक़ बात आपकी नज़र के सामने थी कि क़ुरैश के लश्कर से फ़ैसलाकुन मुक़ाबला किया जाए। और यह मशवरा भी उसी वक़्त हुआ था कि क़ाफ़िले और लश्कर में से किसको हमले के लिए चुना जाए, और इसके बावजूद कि मोमिनों पर यह हक़ीक़त वाज़ेह हो चुकी थी कि लश्कर ही से निमटना ज़रूरी है, फिर भी उनमें से एक गरोह उससे बचने के लिए हुज्जत करता रहा। और आख़िरकार जब आख़िरी राय यह तय पा गई कि लश्कर ही की तरफ़ चलना चाहिए तो यह गरोह मदीना से यह ख़याल करता हुआ चला कि हम सीधे मौत के मुँह में हाँके जा रहे हैं।
5. यानी तिजारती क़ाफ़िला या क़ुरैश का लश्कर।
6. यानी क़ाफ़िला जिसके साथ सिर्फ़ तीस-चालीस मुहाफ़िज़ (Guards) थे।

وَيَقْطَعَ دَابِرَ الْكٰفِرِيْنَ ۙ لِيُحِقَّ الْحَقَّ وَيُبْطِلَ الْبَاطِلَ وَلَوْ كَرِهَ
الْمُجْرِمُوْنَ ۚ ﴿٨﴾ اِذْ تَسْتَغِيْثُوْنَ رَبَّكُمْ فَاسْتَجَابَ لَكُمْ اَنِّيْ مُمِدُّكُمْ
بِاَلْفٍ مِّنَ الْمَلٰٓئِكَةِ مُرْدِفِيْنَ ﴿٩﴾ وَمَا جَعَلَهُ اللّٰهُ اِلَّا بُشْرٰى وَلِتَطْمَئِنَّ
بِهٖ قُلُوْبُكُمْ ۚ وَمَا النَّصْرُ اِلَّا مِنْ عِنْدِ اللّٰهِ ؕ اِنَّ اللّٰهَ عَزِيْزٌ حَكِيْمٌ ﴿١٠﴾ ع اِذْ
يُغَشِّيْكُمُ النُّعَاسَ اَمَنَةً مِّنْهُ وَيُنَزِّلُ عَلَيْكُمْ مِّنَ السَّمَآءِ مَآءً

मुजरिमों को यह कितना ही नागवार हो।[7]

(9) और वह मौक़ा जबकि तुम अपने रब से फ़रियाद कर रहे थे। जवाब में उसने फ़रमाया कि मैं तुम्हारी मदद के लिए लगातार एक हज़ार फ़रिश्ते भेज रहा हूँ। (10) यह बात अल्लाह ने तुम्हें सिर्फ़ इसलिए बता दी कि तुम्हें ख़ुशख़बरी हो और तुम्हारे दिल इससे मुत्मइन हो जाएँ वरना मदद तो जब भी होती है, अल्लाह ही की तरफ़ से होती है, यक़ीनन अल्लाह ज़बरदस्त और हिकमतवाला है।

(11) और वह वक़्त जबकि अल्लाह अपनी तरफ़ से ऊँघ की शक्ल में तुमपर इत्मीनान और बेख़ौफ़ी की हालत तारी कर रहा था[8] और आसमान से तुम्हारे ऊपर पानी

---

7. इससे अन्दाज़ा होता है कि उस वक़्त हक़ीक़त में सूरते-हाल क्या पेश आई होगी। जैसा कि हमने सूरा के परिचय में बयान किया है, क़ुरैश के लश्कर के निकल आने से अस्ल में सवाल यह पैदा हो गया था कि इस्लाम की दावत और जाहिली निज़ाम (व्यवस्था) दोनों में से किसको अरब में ज़िन्दा रहना है। अगर मुसलमान उस वक़्त मर्दानगी के साथ मुक़ाबले के लिए न निकलते तो इस्लाम के लिए ज़िन्दगी का कोई मौक़ा बाक़ी न रहता। इसके बरख़िलाफ़ मुसलमानों के निकलने और पहले ही भरपूर वार में क़ुरैश की ताक़त पर सख़्त चोट लगा देने से वे हालात पैदा हुए जिनकी वजह से इस्लाम को क़दम जमाने का मौक़ा मिल गया और फिर उसके मुक़ाबले में जाहिली निज़ाम लगातार शिकस्त खाता ही चला गया।
8. यही तजरिबा मुसलमानों को उहुद की लड़ाई में पेश आया जैसा कि सूरा-3 आले-इमरान की आयत-154 में गुज़र चुका है। और दोनों मौक़ों पर वजह वही एक थी कि जो मौक़ा ज़बरदस्त ख़ौफ़ और घबराहट का था उस वक़्त अल्लाह ने मुसलमानों के दिलों को ऐसे इत्मीनान से भर दिया कि उन्हें ऊँघ (नींद) आने लगी।

لِّيُطَهِّرَكُمْ بِهٖ وَيُذْهِبَ عَنْكُمْ رِجْزَ الشَّيْطٰنِ وَلِيَرْبِطَ عَلٰى قُلُوْبِكُمْ
وَيُثَبِّتَ بِهِ الْاَقْدَامَ ﴿١١﴾ اِذْ يُوْحِيْ رَبُّكَ اِلَى الْمَلٰٓئِكَةِ اَنِّيْ مَعَكُمْ
فَثَبِّتُوا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا ۭ سَاُلْقِيْ فِيْ قُلُوْبِ الَّذِيْنَ كَفَرُوا الرُّعْبَ
فَاضْرِبُوْا فَوْقَ الْاَعْنَاقِ وَاضْرِبُوْا مِنْهُمْ كُلَّ بَنَانٍ ﴿١٢﴾ ذٰلِكَ بِاَنَّهُمْ
شَآقُّوا اللّٰهَ وَرَسُوْلَهٗ ۚ وَمَنْ يُّشَاقِقِ اللّٰهَ وَرَسُوْلَهٗ فَاِنَّ اللّٰهَ شَدِيْدُ

बरसा रहा था, ताकि तुम्हें पाक करे और तुमसे शैतान की डाली हुई गन्दगी दूर करे और तुम्हारी हिम्मत बँधाए और इसके ज़रिए से तुम्हारे क़दम जमा दे।[9]

(12) और वह वक्त जबकि तुम्हारा रब फ़रिश्तों को इशारा कर रहा था कि "मैं तुम्हारे साथ हूँ, तुम ईमानवालों को जमाए रखो, मैं अभी इन काफ़िरों के दिलों में रौब डाले देता हूँ, तो तुम उनकी गरदनों पर मारो और जोड़-जोड़ पर चोट लगाओ।"[10] (13) यह इसलिए कि उन लोगों ने अल्लाह और उसके रसूल का मुक़ाबला किया, और जो अल्लाह और उसके रसूल का मुक़ाबला करे, अल्लाह उसके लिए बड़ी सख़्त पकड़

---

9. यह उस रात का वाक़िआ है जिसकी सुबह को बद्र की लड़ाई पेश आई। इस बारिश के तीन फ़ायदे हुए। एक यह कि मुसलमानों को पानी काफ़ी मिल गया और उन्होंने फ़ौरन हौज़ बना-बनाकर बारिश का पानी रोक लिया। दूसरे यह कि मुसलमान चूँकि घाटी के ऊपरी हिस्से पर थे इसलिए बारिश की वजह से रेत जम गई और ज़मीन इतनी मज़बूत हो गई कि क़दम अच्छी तरह जम सकें और चलने-फिरने में आसानी हो सके। तीसरे यह कि दुश्मनों का लश्कर नीचे के हिस्से में था इसलिए वहाँ इस बारिश की वजह से कीचड़ हो गई और पाँव धँसने लगे। शैतान की डाली हुई नजासत और गन्दगी से मुराद वह डर और घबराहट की कैफ़ियत थी जिसमें मुसलमान शुरू में मुब्तला थे।
10. जो उसूली बातें हमको क़ुरआन के ज़रिए से मालूम हैं उनकी बुनियाद पर हम यह समझते हैं कि फ़रिश्तों से लड़ाई में यह काम नहीं लिया गया होगा कि वे ख़ुद लड़ने और मारने का काम करें, बल्कि शायद उसकी सूरत यह होगी कि दुश्मनों पर मुसलमान जो वार करें वह फ़रिश्तों की मदद से ठीक बैठे और चोट गहरी लगे। और अल्लाह ही बेहतर जानता है कि सही बात क्या है।

الْعِقَابِ ⑬ ذٰلِكُمْ فَذُوْقُوْهُ وَاَنَّ لِلْكٰفِرِيْنَ عَذَابَ النَّارِ ⑭ يٰۤاَيُّهَا
الَّذِيْنَ اٰمَنُوْۤا اِذَا لَقِيْتُمُ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا زَحْفًا فَلَا تُوَلُّوْهُمُ الْاَدْبَارَ ⑮
وَمَنْ يُّوَلِّهِمْ يَوْمَىٕذٍ دُبُرَهٗۤ اِلَّا مُتَحَرِّفًا لِّقِتَالٍ اَوْ مُتَحَيِّزًا اِلٰى
فِئَةٍ فَقَدْ بَآءَ بِغَضَبٍ مِّنَ اللّٰهِ وَمَاْوٰىهُ جَهَنَّمُ ؕ وَبِئْسَ الْمَصِيْرُ ⑯

करनेवाला है[11]— (14) यह है[12] तुम लोगों की सज़ा, अब इसका मज़ा चखो और तुम्हें मालूम हो कि हक़ का इनकार करनेवालों के लिए दोज़ख़ का अज़ाब है।

(15) ऐ लोगो जो ईमान लाए हो! जब तुम्हारा एक फ़ौज की सूरत में काफ़िरों (दुश्मनों) से मुक़ाबला हो तो उनके मुक़ाबले में पीठ न फेरो। (16) जिसने ऐसे मौक़े पर पीठ फेरी — अलावा इसके कि जंगी चाल के तौर पर ऐसा करे या किसी दूसरी टुकड़ी से जा मिलने के लिए — तो वह अल्लाह के ग़ज़ब में घिर जाएगा। उसका ठिकाना जहन्नम होगा और वह पलटने की बहुत बुरी जगह है।[13]

11. यहाँ तक बद्र की लड़ाई के जिन वाक़िआत को एक-एक करके याद दिलाया गया है उसका मक़सद असल में लफ़्ज़ 'अनफ़ाल' के सही मानी को वाज़ेह करना है। शुरू में कहा गया था कि ग़नीमत के इस माल को अपनी मेहनत का फल समझकर इसके मालिक और मुख़्तार कहाँ बने जाते हो, यह तो असल में ख़ुदा की देन है और देनेवाला ख़ुद ही अपने माल का मुख़्तार है। अब इसके सुबूत में ये वाक़िआत गिनाए गए हैं कि इस जीत में ख़ुद ही हिसाब लगाकर देख लो कि तुम्हारी अपनी सख़्त मेहनत, जुरअत और हिम्मत का कितना हिस्सा था और अल्लाह की मेहरबानी का कितना हिस्सा।

12. ख़िताब का रुख़ अचानक काफ़िरों (हक़ के इनकारियों) की तरफ़ फिर गया है, जिनके सज़ा के हक़दार होने का ज़िक्र ऊपर के जुमले में हुआ था।

13. दुश्मन के सख़्त दबाव पर पॉलिसी के तहत पीछे हटना (Orderly Retreat) नाजायज़ नहीं है, जबकि इसका मक़सद अपने पीछे के मरकज़ (केन्द्र) की तरफ़ पलटना या अपनी ही फ़ौज के किसी दूसरे हिस्से से जा मिलना हो। अलबत्ता जो चीज़ हराम की गई है वह भगदड़ (Rout) है जो किसी जंगी मक़सद के लिए नहीं, बल्कि सिर्फ़ बुज़दिली और हार मान लेने की वजह से होती है और इसलिए हुआ करती है कि भगोड़े आदमी को अपने मक़सद के मुक़ाबले में जान ज़्यादा प्यारी होती है। जंग के मैदान से इस भागने को बड़े गुनाहों में गिना गया है। चुनाँचे नबी (सल्ल०) फ़रमाते हैं कि तीन गुनाह ऐसे हैं कि इनके साथ कोई नेकी फ़ायदा नहीं देती।

فَلَمۡ تَقۡتُلُوۡهُمۡ وَلٰكِنَّ اللّٰهَ قَتَلَهُمۡ‌ ۖ وَمَا رَمَيۡتَ اِذۡ رَمَيۡتَ وَلٰكِنَّ
اللّٰهَ رَمٰى‌ ۚ وَلِيُبۡلِىَ الۡمُؤۡمِنِيۡنَ مِنۡهُ بَلَاۤءً حَسَنًا‌ ؕ اِنَّ اللّٰهَ سَمِيۡعٌ عَلِيۡمٌ ﴿۱۷﴾
ذٰلِكُمۡ وَاَنَّ اللّٰهَ مُوۡهِنُ كَيۡدِ الۡكٰفِرِيۡنَ ﴿۱۸﴾ اِنۡ تَسۡتَفۡتِحُوۡا فَقَدۡ
جَآءَكُمُ الۡفَتۡحُ‌ ۚ وَاِنۡ تَنۡتَهُوۡا فَهُوَ خَيۡرٌ لَّكُمۡ‌ ۚ وَاِنۡ تَعُوۡدُوۡا نَعُدۡ‌ ۚ وَلَنۡ

(17) तो सच यह है कि तुमने उन्हें क़त्ल नहीं किया, बल्कि अल्लाह ने उनको क़त्ल किया और (ऐ नबी!) तूने नहीं फेंका, बल्कि अल्लाह ने फेंका।[14] (और ईमानवालों के हाथ जो इस काम में इस्तेमाल किए गए) तो यह इसलिए था कि अल्लाह ईमानवालों को एक बेहतरीन आज़माइश से कामयाबी के साथ गुज़ार दे, यक़ीनन अल्लाह सुनने और जाननेवाला है। (18) यह मामला तो तुम्हारे साथ है और काफ़िरों के साथ मामला यह है कि अल्लाह उनकी चालों को कमज़ोर करनेवाला है। (19) (इन काफ़िरों से कह दो,) “अगर तुम फ़ैसला चाहते थे तो लो, फ़ैसला तुम्हारे सामने आ गया।[15] अब बाज़ आ

एक शिर्क, दूसरे माँ-बाप का हक़ मारना, तीसरे अल्लाह के रास्ते में होनेवाली जंग से भाग जाना। इसी तरह एक और हदीस में नबी (सल्ल॰) ने सात बड़े गुनाहों का ज़िक्र किया है, जो इनसान के लिए तबाह कर देनेवाले और उसकी आख़िरत के अंजाम को बरबाद करनेवाले हैं। उनमें से एक यह गुनाह भी है कि आदमी कुफ़्र और इस्लाम की जंग में काफ़िरों के आगे पीठ फेरकर भागे। इस काम को इतना बड़ा गुनाह ठहराने की वजह सिर्फ़ यही नहीं है कि यह एक बुज़दिली का काम है, बल्कि इसकी वजह यह है कि एक आदमी का भगोड़ापन कभी-कभी एक पूरी पलटन को और एक पलटन का भगोड़ापन एक पूरी फ़ौज को बदहवास करके भगा देता है। और फिर जब एक बार किसी फ़ौज में भगदड़ मच जाए तो कहा नहीं जा सकता कि तबाही किस हद पर जाकर रुकेगी। इस तरह की भगदड़ सिर्फ़ फ़ौज ही के लिए तबाह करनेवाली नहीं है, बल्कि उस देश के लिए भी तबाह करनेवाली है जिसकी फ़ौज ऐसी शिकस्त खाए।

14. बद्र की लड़ाई में जब मुसलमानों और इस्लाम-दुश्मनों के लश्कर का मुक़ाबला हुआ और लड़ाई छिड़ जाने का मौक़ा आ गया तो नबी (सल्ल॰) ने मुट्ठी भर रेत हाथ में लेकर ‘शाहितिल वुजूह’ (यानी उनके चेहरे झुलस जाएँ) कहते हुए दुश्मनों की तरफ़ फेंकी और उसके साथ ही नबी (सल्ल॰) के इशारे से मुसलमानों ने एक ही साथ दुश्मनों पर हमला किया। यहाँ उसी घटना की तरफ़ इशारा है। मतलब यह है कि हाथ तो रसूल का था मगर चोट अल्लाह की तरफ़ से थी।

15. मक्का से रवाना होते वक़्त मुशरिकों ने काबा के परदे पकड़कर दुआ माँगी थी कि ऐ ख़ुदा,

تُغْنِيَ عَنْكُمْ فِئَتُكُمْ شَيْـًٔا وَّلَوْ كَثُرَتْ ۙ وَاَنَّ اللّٰهَ مَعَ الْمُؤْمِنِيْنَ ﴿١٩﴾
يٰۤاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْۤا اَطِيْعُوا اللّٰهَ وَرَسُوْلَهٗ وَلَا تَوَلَّوْا عَنْهُ وَاَنْتُمْ
تَسْمَعُوْنَ ﴿٢٠﴾ وَلَا تَكُوْنُوْا كَالَّذِيْنَ قَالُوْا سَمِعْنَا وَهُمْ لَا يَسْمَعُوْنَ ﴿٢١﴾
اِنَّ شَرَّ الدَّوَآبِّ عِنْدَ اللّٰهِ الصُّمُّ الْبُكْمُ الَّذِيْنَ لَا يَعْقِلُوْنَ ﴿٢٢﴾ وَلَوْ
عَلِمَ اللّٰهُ فِيْهِمْ خَيْرًا لَّاَسْمَعَهُمْ ۭ وَلَوْ اَسْمَعَهُمْ لَتَوَلَّوْا وَّهُمْ

जाओ तो तुम्हारे ही लिए बेहतर है, वरना फिर पलटकर उसी बेवक़ूफ़ी को दोहराओगे तो हम भी उसी सज़ा को दोहराएँगे और तुम्हारा जत्था, भले ही वह कितना ही बड़ा हो, तुम्हारे कुछ काम न आ सकेगा। अल्लाह ईमानवालों के साथ है।"

(20) ऐ लोगो जो ईमान लाए हो! अल्लाह और उसके रसूल की फ़रमाँबरदारी करो और हुक्म सुनने के बाद उससे मुँह न फेरो। (21) उन लोगों की तरह न हो जाओ जिन्होंने कहा कि हमने सुना, हालाँकि वे नहीं सुनते।[16] (22) यक़ीनन ख़ुदा के नज़दीक सबसे बुरे क़िस्म के जानवर वे बहरे-गूँगे लोग हैं[17] जो अक़्ल से काम नहीं लेते। (23) अगर अल्लाह को मालूम होता कि इनमें कुछ भी भलाई है तो वह ज़रूर ही उन्हें सुनने की तौफ़ीक़ देता। (लेकिन भलाई के बिना) अगर वह उनको सुनवाता तो वे

दोनों गरोहों में से जो बेहतर है उसको फ़तह नसीब कर। और अबू-जहल ने ख़ास तौर से कहा था कि ऐ ख़ुदा, हममें से जो हक़ पर हो उसे फ़तह दे और जो ज़ुल्म और बातिल पर हो उसे रुसवा कर दे। चुनाँचे अल्लाह ने उनकी मुँह माँगी दुआएँ ज्यों-की-त्यों पूरी कर दीं और फ़ैसला करके बता दिया कि दोनों में से कौन अच्छा और हक़ पर है।

16. यहाँ सुनने से मुराद वह सुनना है जो मानने और क़बूल करने के मआनी में होता है। इशारा उन मुनाफ़िक़ों की तरफ़ है जो ईमान का इक़रार तो करते थे, मगर अहकाम की इताअत और फ़रमाँबरदारी से मुँह मोड़ जाते थे।

17. यानी जो न हक़ सुनते हैं, न हक़ बोलते हैं। जिनके कान और जिनके मुँह हक़ के लिए बहरे और गूँगे हैं।

مُّعْرِضُوْنَ ﴿٢٣﴾ يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوا اسْتَجِيْبُوْا لِلّٰهِ وَلِلرَّسُوْلِ اِذَا
دَعَاكُمْ لِمَا يُحْيِيْكُمْ ۚ وَاعْلَمُوْٓا اَنَّ اللّٰهَ يَحُوْلُ بَيْنَ الْمَرْءِ وَقَلْبِهٖ وَاَنَّهٗٓ
اِلَيْهِ تُحْشَرُوْنَ ﴿٢٤﴾ وَاتَّقُوْا فِتْنَةً لَّا تُصِيْبَنَّ الَّذِيْنَ ظَلَمُوْا مِنْكُمْ
خَآصَّةً ۚ وَاعْلَمُوْٓا اَنَّ اللّٰهَ شَدِيْدُ الْعِقَابِ ﴿٢٥﴾ وَاذْكُرُوْٓا اِذْ اَنْتُمْ قَلِيْلٌ

कतराते हुए मुँह फेर जाते।[18]

(24) ऐ लोगो जो ईमान लाए हो! अल्लाह और उसके रसूल की पुकार को आगे बढ़कर क़बूल करो, जबकि रसूल तुम्हें उस चीज़ की तरफ़ बुलाए जो तुम्हें ज़िन्दगी देनेवाली है, और जान रखो कि अल्लाह आदमी और उसके दिल के बीच आड़ है और उसी की तरफ़ तुम समेटे जाओगे[19]। (25) और बचो उस फ़ितने से जिसकी शामत, ख़ास तौर पर उन्हीं लोगों तक महदूद न रहेगी जिन्होंने तुममें से गुनाह किया हो[20], और जान रखो कि अल्लाह सख़्त सज़ा देनेवाला है। (26) याद करो वह वक़्त जबकि तुम

18. यानी जब उन लोगों के अन्दर ख़ुद हक़परस्ती और हक़ के लिए काम करने का जज़्बा नहीं है तो उन्हें अगर हुक्म को पूरा करने में जंग के लिए निकल आने की तौफ़ीक़ दे भी दी जाती तो ये ख़तरे का मौक़ा देखते ही बे-झिझक भाग निकलते और उनका साथ तुम्हारे लिए फ़ायदेमन्द साबित होने के बजाए उल्टा नुक़सानदेह साबित होता।

19. निफ़ाक़ (कपटाचार) के रवैये से इनसान को बचाने के लिए अगर कोई सबसे ज़्यादा असरदार तदबीर है तो वह सिर्फ़ यह है कि दो अक़ीदे आदमी के मन में बैठ जाएँ। एक यह कि मामला उस ख़ुदा के साथ है जो दिलों के हाल तक जानता है और राज़ों (भेदों) का ऐसा जाननेवाला है कि आदमी अपने दिल में जो नीयतें, जो ख़ाहिशें, जो ग़र्ज़ व मक़सद और जो ख़यालात छिपाकर रखता है उन्हें भी वह जानता है। दूसरे यह कि जाना हर हाल में अल्लाह के सामने है, उससे बचकर कहीं भाग नहीं सकते। ये दो अक़ीदे जितने ज़्यादा मज़बूत होंगे उतना ही इनसान निफ़ाक़ से दूर रहेगा। इसी लिए मुनाफ़िक़त के ख़िलाफ़ वअ़ज़ और नसीहत के सिलसिले में क़ुरआन इन दो अक़ीदों का ज़िक्र बार-बार करता है।

20. इससे मुराद वे इज्तिमाई फ़ितने हैं जो आम वबा (महामारी) की तरह ऐसी शामत लाते हैं जिसमें सिर्फ़ गुनाह करनेवाले ही गिरफ़्तार नहीं होते, बल्कि वे लोग भी मारे जाते हैं जो गुनाहगार सोसाइटी में रहना गवारा करते रहे हों। मिसाल के तौर पर इसको यूँ समझिए कि जब तक किसी शहर में गन्दगियाँ कहीं-कहीं इनफ़िरादी (व्यक्तिगत) तौर पर कुछ जगहों पर रहती हैं, उनका असर महदूद (Limited) रहता है और उनसे वे ख़ास तरह के लोग ही मुतास्सिर

مُّسْتَضْعَفُوْنَ فِي الْاَرْضِ تَخَافُوْنَ اَنْ يَّتَخَطَّفَكُمُ النَّاسُ فَاٰوٰىكُمْ
وَاَيَّدَكُمْ بِنَصْرِهٖ وَرَزَقَكُمْ مِّنَ الطَّيِّبٰتِ لَعَلَّكُمْ تَشْكُرُوْنَ ۝٢٦

थोड़े थे, ज़मीन में तुमको बे-ज़ोर समझा जाता था, तुम डरते रहते थे कि कहीं लोग तुम्हें मिटा न दें। फिर अल्लाह ने तुम्हें पनाह लेने की जगह जुटा दी। अपनी मदद से तुम्हारे हाथ मज़बूत किए और तुम्हें अच्छी रोज़ी पहुँचाई, शायद कि तुम शुक्रगुज़ार बनो।[21]

(प्रभावित) होते हैं जिन्होंने अपने जिस्म और घर को गन्दगी से लथपथ कर रखा हो। लेकिन जब वहाँ गन्दगी आम हो जाती है और कोई गरोह भी सारे शहर में ऐसा नहीं होता जो इस ख़राबी को रोकने और सफ़ाई का इन्तिज़ाम करने की कोशिश करे तो फिर हवा, ज़मीन और पानी हर चीज़ में ज़हर फैल जाता है, और इसके नतीजे में जो वबा आती है उसकी लपेट में गन्दगी फैलानेवाले और गन्दा रहनेवाले और गन्दे माहौल में ज़िन्दगी बसर करनेवाले सभी आ जाते हैं। इसी तरह अख़लाक़ी गन्दगियों का हाल भी यह है कि अगर वे इनफ़िरादी (व्यक्तिगत) तौर पर कुछ लोगों में मौजूद रहें और नेक सोसाइटी के रौब और डर से दबी रहें तो उनके नुक़सान महदूद (सीमित) रहते हैं। लेकिन जब सोसाइटी का इज्तिमाई ज़मीर (सामूहिक अन्तरात्मा) कमज़ोर हो जाता है, जब अख़लाक़ी बुराइयों को दबाकर रखने की ताक़त उसमें नहीं रहती, जब उसके बीच बुरे, बेशर्म और बद-अख़लाक़ लोग अपने नफ़्स (मन) की गन्दगियों को खुले आम उछालने और फैलाने लगते हैं, और जब अच्छे लोग बे-अमली (Passive attitude) इख़्तियार करके अपनी इनफ़िरादी अच्छाई को काफ़ी समझने लगते हैं और इज्तिमाई बुराइयों पर चुप्पी साध लेते हैं, तो मजमूई तौर पर पूरी सोसाइटी की शामत आ जाती है और वह आम फ़ितना बरपा होता है, जिसमें चने के साथ घुन भी पिस जाता है।

इसलिए अल्लाह के फ़रमान का मंशा यह है कि रसूल जिस इस्लाह (सुधार) और रहनुमाई के काम के लिए उठा है और तुम्हें जिस ख़िदमत में हाथ बँटाने के लिए बुला रहा है उसी में हक़ीक़त में शख़्सी और इज्तिमाई दोनों हैसियतों से तुम्हारे लिए ज़िन्दगी है। अगर इसमें सच्चे दिल से ख़ुलूस के साथ हिस्सा न लोगे और उन बुराइयों को जो सोसाइटी में फैली हुई हैं बरदाश्त करते रहोगे तो वह आम फ़ित्ना बरपा होगा जिसकी आफ़त सबको लपेट में ले लेगी, चाहे बहुत-से लोग तुम्हारे बीच ऐसे मौजूद हों जो अमली तौर पर बुराई करने और बुराई फैलाने के ज़िम्मेदार न हों, बल्कि अपनी निजी ज़िन्दगी में भलाई ही लिए हुए हों। यह वही बात है जिसको सूरा-7 आराफ़ की आयत-163 से 166 में 'असहाबुस्सब्त' की तारीख़ी मिसाल पेश करते हुए बयान किया जा चुका है, और यही वह नज़रिया है जिसे इस्लाम की इस्लाही और सुधारवादी जंग का बुनियादी नज़रिया कहा जा सकता है।

21. यहाँ शुक्रगुज़ारी का लफ़्ज़ ग़ौर करने के क़ाबिल है। ऊपर की तक़रीर के सिलसिले को नज़र में रखा जाए तो साफ़ ज़ाहिर हो जाता है कि इस मौक़े पर शुक्रगुज़ारी का मतलब सिर्फ़ इतना

يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لَا تَخُوْنُوا اللّٰهَ وَالرَّسُوْلَ وَتَخُوْنُوْٓا اَمٰنٰتِكُمْ وَاَنْتُمْ
تَعْلَمُوْنَ ﴿٢٧﴾ وَاعْلَمُوْٓا اَنَّمَآ اَمْوَالُكُمْ وَاَوْلَادُكُمْ فِتْنَةٌ ۙ وَّاَنَّ اللّٰهَ
عِنْدَهٗٓ اَجْرٌ عَظِيْمٌ ﴿٢٨﴾ يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْٓا اِنْ تَتَّقُوا اللّٰهَ يَجْعَلْ لَّكُمْ ع

(27,28) ऐ लोगो जो ईमान लाए हो! जानते-बूझते अल्लाह और उसके रसूल के साथ ख़ियानत (विश्वासघात) न करो, अपनी अमानतों में[22] ग़द्दारी करनेवाले न बनो, और जान रखो कि तुम्हारे माल और तुम्हारी औलाद हक़ीक़त में आज़माइश का सामान हैं[23] और अल्लाह के पास अज्र (बदला) देने के लिए बहुत कुछ है। (29) ऐ लोगो जो ईमान

ही नहीं है कि लोग अल्लाह के इस एहसान को मानें कि उसने इस कमज़ोरी की हालत से उन्हें निकाला और मक्का की ख़तरे से भरी ज़िन्दगी से बचाकर अमन की जगह ले आया, जहाँ पाक रोज़ियाँ मिल रही हैं, बल्कि इसके साथ यह बात भी इसी शुक्रगुज़ारी के मतलब में दाख़िल है कि मुसलमान उस ख़ुदा की और उसके रसूल की फ़रमाँबरदारी करें जिसने ये एहसान उनपर किए हैं, और रसूल के मिशन में ख़ुलूस और जाँनिसारी के साथ काम करें, और इस काम में जो ख़तरे, हलाकतें और मुसीबतें पेश आएँ उनका मर्दानगी के साथ मुक़ाबला उसी ख़ुदा के भरोसे पर करते चले जाएँ, जिसने इससे पहले इनको ख़तरों से ख़ैरियत और हिफ़ाज़त के साथ निकाला है, और यक़ीन रखें कि जब वे ख़ुदा का काम ख़ुलूस के साथ करेंगे तो ख़ुदा ज़रूर उनकी हिफ़ाज़त और सरपरस्ती करेगा। इसलिए यह बात मतलूब नहीं है कि आदमी शुक्रगुज़ारी का सिर्फ़ इक़रार कर ले, बल्कि यह बात भी मतलूब है कि वह अमली तौर पर भी शुक्रगुज़ार बने। एहसान को मान लेने के बावजूद एहसान करनेवाले को ख़ुश करने के लिए कोशिश न करना और उसकी ख़िदमत में मुख़लिस न होना और इसके बारे में यह शक रखना कि न मालूम आगे भी वह एहसान करेगा या नहीं, हरगिज़ शुक्रगुज़ारी नहीं है बल्कि उलटी नाशुक्री है।

22. 'अपनी अमानतों' से मुराद वे तमाम ज़िम्मेदारियाँ हैं जो किसी पर भरोसा (Trust) करके उसके सुपुर्द की जाएँ, चाहे वे वादे को निभाने की ज़िम्मेदारियाँ हों, या इज्तिमाई समझौतों की, या जमाअत के राज़ों की, या शख़्सी (निजी) व जमाअती मालों की, या किसी ऐसे ओहदे और मंसब की जो किसी आदमी पर भरोसा करते हुए जमाअत उसके हवाले करे। (और ज़्यादा तशरीह के लिए देखें— तफ़हीमुल-क़ुरआन, हिस्सा-2, सूरा-4 निसा, हाशिया-88)

23. इनसान के सच्चे ईमान में जो चीज़ आम तौर से ख़लल डालती है और जिसकी वजह से इनसान अकसर मुनाफ़िक़त, ग़द्दारी और ख़यानत में पड़ जाता है वह अपने माली फ़ायदों और अपनी औलाद के फ़ायदों से उसकी हद से बढ़ी हुई दिलचस्पी होती है। इसी लिए कहा गया कि यह माल और औलाद, जिनकी मुहब्बत में गिरफ़्तार होकर तुम आम तौर से सच्चाई से हट

فُرْقَانًا وَّيُكَفِّرْ عَنْكُمْ سَيِّاٰتِكُمْ وَيَغْفِرْ لَكُمْ ؕ وَاللّٰهُ ذُو الْفَضْلِ
الْعَظِيْمِ ۝٢٩ وَاِذْ يَمْكُرُ بِكَ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا لِيُثْبِتُوْكَ اَوْ يَقْتُلُوْكَ اَوْ

लाए हो! अगर तुम ख़ुदातरसी अपनाओगे तो अल्लाह तुम्हारे लिए कसौटी जुटा देगा[24] और तुम्हारी बुराइयों को तुमसे दूर करेगा, और तुम्हारे क़सूर माफ़ करेगा। अल्लाह बड़ा फ़ज़्ल करनेवाला है।

(30) वह वक़्त भी याद करने के क़ाबिल है जबकि हक़ का इनकार करनेवाले तेरे खिलाफ़ तदबीरें सोच रहे थे कि तुझे क़ैद कर दें या क़त्ल कर डालें या देश निकाला दे

जाते हो, अस्ल में यह दुनिया की इम्तिहानगाह में तुम्हारे लिए आज़माइश के सामान हैं। जिसे तुम बेटा या बेटी कहते हो, हक़ीक़त की ज़बान में वह अस्ल में इम्तिहान का एक पर्चा है, और जिसे तुम जायदाद या कारोबार कहते हो वह भी हक़ीक़त में एक दूसरा इम्तिहान का पर्चा है। ये चीज़ें तुम्हारे हवाले की ही इसलिए गई हैं कि इनके ज़रिए से तुम्हें जाँचकर देखा जाए कि तुम कहाँ तक हक़्क़ों और हदों का लिहाज़ करते हो, कहाँ तक ज़िम्मेदारियों का बोझ लादे हुए जज़्बात की कशिश के बावजूद सीधे रास्ते पर चलते हो, और कहाँ तक अपने मन को, जो इन दुनियावी चीज़ों की मुहब्बत में जकड़ा हुआ होता है, इस तरह क़ाबू में रखते हो कि पूरी तरह हक़ के बन्दे बने रहो और इन चीज़ों के हुक़ूक़ इस हद तक अदा भी करते रहो जिस हद तक हक़ मुकर्रर करनेवाले ने खुद इनका हक़ होना मुक़र्रर किया है।

24. कसौटी उस चीज़ को कहते हैं जो खरे और खोटे के फ़र्क़ को साफ़ तौर पर दिखा देती है। यही मतलब अरबी लफ्ज़ 'फ़ुरक़ान' का भी है। इसी लिए हमने इसका तर्जमा इस लफ्ज़ से किया है। अल्लाह के फ़रमान का मंशा यह है कि अगर तुम दुनिया में अल्लाह से डरते हुए काम करो और तुम्हारी दिली ख़ाहिश यह हो कि तुमसे कोई ऐसी हरकत न होने पाए जो अल्लाह की खुशी के ख़िलाफ़ हो, तो अल्लाह तुम्हारे अन्दर सही और ग़लत को पहचानने की ताक़त पैदा कर देगा, जिससे क़दम-क़दम पर तुम्हें ख़ुद यह मालूम होता रहेगा कि कौन-सा रवैया सही है और कौन-सा ग़लत। किस रवैये में ख़ुदा की ख़ुशी है और किस में उसकी नाराज़ी। ज़िन्दगी के हर मोड़, हर दोराहे, हर उतार-चढ़ाव पर तुम्हारी अन्दरूनी बसीरत (अन्तरदृष्टि) तुम्हें बताने लगेगी कि किधर क़दम उठाना चाहिए और किधर न उठाना चाहिए, कौन-सी राह हक़ है और अल्लाह की तरफ़ जाती है और कौन-सी राह बातिल (हक़ के ख़िलाफ़) है और शैतान से मिलाती है।

يُخْرِجُوْكَ ۚ وَيَمْكُرُوْنَ وَيَمْكُرُ اللّٰهُ ۚ وَاللّٰهُ خَيْرُ الْمٰكِرِيْنَ ۝ وَاِذَا تُتْلٰى
عَلَيْهِمْ اٰيٰتُنَا قَالُوْا قَدْ سَمِعْنَا لَوْ نَشَآءُ لَقُلْنَا مِثْلَ هٰذَآ ۙ اِنْ هٰذَآ اِلَّآ

दें।[25] वे अपनी चालें चल रहे थे और अल्लाह अपनी चाल चल रहा था, और अल्लाह सबसे बेहतर चाल चलनेवाला है। (31) जब उनको हमारी आयतें सुनाई जाती थीं तो कहते थे कि "हाँ सुन लिया हमने, हम चाहें तो ऐसी ही बातें हम भी बना सकते हैं, ये

25. यह उस मौक़े का ज़िक्र है जबकि क़ुरैश का यह अंदेशा यक़ीन की हद को पहुँच चुका था कि अब मुहम्मद (सल्ल.) भी मदीना चले जाएँगे। उस वक़्त वे आपस में कहने लगे कि अगर यह शख़्स मक्का से निकल गया तो फिर ख़तरा हमारे क़ाबू से बाहर हो जाएगा। चुनाँचे उन्होंने नबी (सल्ल.) के मामले में एक आख़िरी फ़ैसला करने के लिए 'दारुन्नदवा' (काउंसिल हाउस) में क़ौम के तमाम ज़िम्मेदारों और सरदारों को जमा किया और इस बात पर आपस में मशवरा किया कि इस ख़तरे की रोकथाम किस तरह की जाए। एक गरोह की राय यह थी कि इस शख़्स को बेड़ियाँ पहनाकर एक जगह क़ैद कर दिया जाए और जीते जी रिहा न किया जाए। लेकिन इस राय को क़बूल न किया गया; क्योंकि कहनेवालों ने कहा कि अगर हमने इसे क़ैद कर दिया तो इसके जो साथी क़ैदख़ाने से बाहर होंगे ये बराबर अपना काम करते रहेंगे और जब ज़रा भी ताक़त पकड़ लेंगे तो इसे छुड़ाने के लिए अपनी जान की बाज़ी लगाने से भी पीछे न हटेंगे। दूसरे गरोह की राय यह थी कि इसे अपने यहाँ से निकाल दो। फिर जब यह हमारे बीच न रहेगा तो हमें इससे कुछ बहस नहीं कि कहाँ रहता है और क्या करता है, बहरहाल इसके वुजूद से हमारी ज़िन्दगी के निज़ाम में ख़लल पड़ना तो बन्द हो जाएगा। लेकिन इसे भी यह कहकर रद्द कर दिया गया कि यह शख़्स जादू बयान आदमी है, दिलों को मोहने में इसे बला का कमाल हासिल है, अगर यह यहाँ से निकल गया तो न मालूम अरब के किन-किन क़बीलों को अपना पैरौ (अनुयायी) बना लेगा और फिर कितनी ताक़त हासिल करके अरब के दिल (मक्का) को अपने इक़्तिदार (सत्ता) में लाने के लिए तुम पर हमला कर देगा। आख़िरकार अबू-जहल ने यह राय पेश की कि हम अपने तमाम क़बीलों में से एक-एक ऊँचे ख़ानदान का फ़ुर्तीला और मुस्तइद नौजवान चुनें और ये सब मिलकर एक साथ मुहम्मद पर टूट पड़ें और उसे क़त्ल कर डालें। इस तरह मुहम्मद का ख़ून तमाम क़बीलों पर बँट जाएगा और बनू-अब्दे-मनाफ़ के लिए नामुमकिन हो जाएगा कि सबसे लड़ सकें। इसलिए मजबूर होकर ख़ूँबहा (ख़ून के माली बदले) पर फ़ैसला करने के लिए राज़ी हो जाएँगे। इस राय को सबने पसन्द किया, क़त्ल के लिए आदमी भी चुन लिए गए और क़त्ल का वक़्त भी मुक़र्रर कर दिया गया। यहाँ तक कि जो रात इस काम के लिए चुनी गई थी उसमें ठीक वक़्त पर क़ातिलों का गरोह अपनी ड्यूटी पर पहुँच भी गया, लेकिन उनका हाथ पड़ने से पहले नबी (सल्ल.) उनकी आँखों में धूल झोंककर निकल गए और उनकी बनी-बनाई तदबीर ठीक वक़्त पर नाकाम होकर रह गई।

أَسَاطِيرُ الْأَوَّلِينَ ﴿٣١﴾ وَإِذْ قَالُوا اللَّهُمَّ إِنْ كَانَ هَٰذَا هُوَ الْحَقَّ مِنْ
عِنْدِكَ فَأَمْطِرْ عَلَيْنَا حِجَارَةً مِنَ السَّمَاءِ أَوِ ائْتِنَا بِعَذَابٍ أَلِيمٍ ﴿٣٢﴾
وَمَا كَانَ اللَّهُ لِيُعَذِّبَهُمْ وَأَنْتَ فِيهِمْ ۚ وَمَا كَانَ اللَّهُ مُعَذِّبَهُمْ وَهُمْ
يَسْتَغْفِرُونَ ﴿٣٣﴾ وَمَا لَهُمْ أَلَّا يُعَذِّبَهُمُ اللَّهُ وَهُمْ يَصُدُّونَ عَنِ

तो वही पुरानी कहानियाँ हैं जो पहले से लोग कहते चले आ रहे हैं।" (32) और वह बात भी याद है जो उन्होंने कही थी कि "ऐ ख़ुदा! अगर यह हक़ीक़त में हक़ है और तेरी तरफ़ से है तो हमपर आसमान से पत्थर बरसा दे या कोई दर्दनाक अज़ाब हमपर ले आ।"[26] (33) उस वक़्त तो अल्लाह उनपर अज़ाब उतारनेवाला न था, जबकि तू उनके बीच मौजूद था। और न अल्लाह का यह क़ायदा है कि लोग तौबा कर रहे हों और वह उनको अज़ाब दे दे।[27] (34) लेकिन अब क्यों न वह उनपर अज़ाब ले आए, जबकि वे

26. यह बात वे दुआ के तौर पर नहीं कहते थे, बल्कि चैलेंज के अन्दाज़ में कहते थे। यानी उनका मतलब यह था कि अगर वाक़ई में यह हक़ होता और अल्लाह की तरफ़ से होता तो इसके झुठलाने का नतीजा यह होना चाहिए था कि हमपर आसमान से पत्थर बरसते और दर्दनाक अज़ाब हमारे ऊपर टूट पड़ता। मगर जब ऐसा नहीं होता तो इसका मतलब यह है कि यह न हक़ है, न अल्लाह की तरफ़ से है।

27. यह उनके उस सवाल का जवाब है जो उनकी ऊपरवाली ज़ाहिरी दुआ में छिपा हुआ था। इस जवाब में बताया गया है कि अल्लाह ने मक्की दौर में क्यों अज़ाब नहीं भेजा। इसकी पहली वजह यह थी कि जब तक नबी किसी बस्ती में मौजूद हो और हक़ की तरफ़ दावत दे रहा हो उस वक़्त तक बस्ती के लोगों को मोहलत दी जाती है और अज़ाब भेजकर वक़्त से पहले उनसे अपने सुधार करने का मौक़ा छीन नहीं लिया जाता। इसकी दूसरी वजह यह है कि जब तक बस्ती में से ऐसे लोग बराबर निकलते चले आ रहे हों जो अपनी पिछली ग़फ़लत और ग़लत रविश से ख़बरदार होकर अल्लाह से माफ़ी की दरख़ास्त करते हों और आगे के लिए अपने रवैये की इस्लाह कर लेते हों, उस वक़्त तक कोई मुनासिब वजह नहीं है कि अल्लाह ख़ाह-मख़ाह उस बस्ती को तबाह करके रख दे। अलबत्ता अज़ाब का असली वक़्त वह होता है जब नबी उस बस्ती पर हुज्जत पूरी करने के बाद मायूस होकर वहाँ से निकल जाए या निकाल दिया जाए या क़त्ल कर डाला जाए, और वह बस्ती अपने रवैये से साबित कर दे कि वह किसी नेक शख़्स को अपने बीच बरदाश्त करने के लिए तैयार नहीं है।

الْمَسْجِدِ الْحَرَامِ وَمَا كَانُوٓا اَوْلِيَآءَهٗ ؕ اِنْ اَوْلِيَآؤُهٗٓ اِلَّا الْمُتَّقُوْنَ
وَلٰكِنَّ اَكْثَرَهُمْ لَا يَعْلَمُوْنَ ﴿٣٤﴾ وَمَا كَانَ صَلَاتُهُمْ عِنْدَ الْبَيْتِ
اِلَّا مُكَآءً وَّتَصْدِيَةً ؕ فَذُوْقُوا الْعَذَابَ بِمَا كُنْتُمْ تَكْفُرُوْنَ ﴿٣٥﴾

मस्जिदे-हराम (काबा) का रास्ता रोक रहे हैं, हालाँकि वे उस मस्जिद के जाइज़ मुतवल्ली (प्रबन्धक) नहीं हैं। इसके जाइज़ मुतवल्ली तो सिर्फ़ परहेज़गार ही हो सकते हैं, मगर ज़्यादातर लोग इस बात को नहीं जानते। (35) अल्लाह के घर के पास उन लोगों की नमाज़ क्या होती है, बस सीटियाँ बजाते और तालियाँ पीटते हैं।[28] इसलिए अब लो, इस अज़ाब का मज़ा चखो अपने उस हक़ के इनकार के बदले में जो तुम करते रहे हो।[29]

28. यह इशारा उस ग़लतफ़हमी के रद्द में है जो लोगों के दिलों में छिपी हुई थी और जिससे आम तौर पर अरबवाले धोखा खा रहे थे। वे समझते थे कि क़ुरैश चूँकि बैतुल्लाह (काबा) के मुजाविर और मुतवल्ली (प्रबंधक और संरक्षक) हैं और वहाँ इबादत बजा लाते हैं इसलिए उनपर अल्लाह का फ़ज़्ल है। इसके रद्द में फ़रमाया कि सिर्फ़ मीरास में इंतिज़ाम और देखभाल की ज़िम्मेदारी से कोई शख़्स या गरोह किसी इबादतगाह का जाइज़ मुजाविर व मुतवल्ली नहीं हो सकता। जाइज़ मुजाविर व मुतवल्ली तो सिर्फ़ ख़ुदातरस और परहेज़गार लोग ही हो सकते हैं, और इन लोगों का हाल यह है कि एक जमाअत को, जो ख़ालिस ख़ुदा की इबादत करनेवाली है, उस इबादतगाह में आने से रोकते हैं जो ख़ालिस ख़ुदा की इबादत ही के लिए वक़्फ़ की गई थी। इस तरह ये मुतवल्ली और ख़ादिम बनकर रहने के बजाए इस इबादतगाह के मालिक बन बैठे हैं और अपने-आपको इस बात का मुख़तार समझने लगे हैं कि जिससे ये नाराज़ हों उसे इबादतगाह में न आने दें। यह हरकत इस बात की खुली दलील है कि न वे ख़ुदातरस हैं और न परहेज़गार। रही उनकी इबादत जो वे बैतुल्लाह में करते हैं तो उसके अन्दर न आजिज़ी और ख़ाकसारी है, न अल्लाह की तरफ़ तवज्जोह है, न अल्लाह का ज़िक्र है, बस एक बेमानी शोर-गुल और खेल-तमाशा है जिसका नाम इन्होंने इबादत रख छोड़ा है। अल्लाह के घर की ऐसी सिर्फ़ नाम की ख़िदमत और ऐसी झूठी इबादत पर आख़िर ये अल्लाह की मेहरबानी के हक़दार कैसे हो गए? और यह चीज़ उन्हें अल्लाह के अज़ाब से किस तरह महफ़ूज़ रख सकती है?

29. वे समझते थे कि अल्लाह का अज़ाब सिर्फ़ आसमान से पत्थरों की शक्ल में या किसी और तरह की फ़ितरी ताक़तों के उफ़ान ही की शक्ल में आया करता है। मगर यहाँ उन्हें बताया गया है कि बद्र की लड़ाई में उनकी फ़ैसलाकुन हार, जिसकी वजह से इस्लाम के लिए ज़िन्दगी का और जाहिलियत के पुराने निज़ाम के लिए मौत का फ़ैसला हुआ है, असूल में उनके हक़ में अल्लाह का अज़ाब ही है।

إِنَّ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا يُنْفِقُوْنَ أَمْوَالَهُمْ لِيَصُدُّوْا عَنْ سَبِيْلِ اللّٰهِ ۚ
فَسَيُنْفِقُوْنَهَا ثُمَّ تَكُوْنُ عَلَيْهِمْ حَسْرَةً ثُمَّ يُغْلَبُوْنَ ۗ وَالَّذِيْنَ كَفَرُوْا
إِلَىٰ جَهَنَّمَ يُحْشَرُوْنَ ﴿٣٦﴾ لِيَمِيْزَ اللّٰهُ الْخَبِيْثَ مِنَ الطَّيِّبِ وَيَجْعَلَ
الْخَبِيْثَ بَعْضَهُ عَلَىٰ بَعْضٍ فَيَرْكُمَهُ جَمِيْعًا فَيَجْعَلَهُ فِيْ جَهَنَّمَ ۚ أُولٰٓئِكَ
هُمُ الْخٰسِرُوْنَ ﴿٣٧﴾ قُلْ لِّلَّذِيْنَ كَفَرُوْٓا إِنْ يَّنْتَهُوْا يُغْفَرْ لَهُمْ مَّا قَدْ ع ١٨
سَلَفَ ۚ وَإِنْ يَّعُوْدُوْا فَقَدْ مَضَتْ سُنَّتُ الْأَوَّلِيْنَ ﴿٣٨﴾ وَقَاتِلُوْهُمْ
حَتّٰى لَا تَكُوْنَ فِتْنَةٌ وَّيَكُوْنَ الدِّيْنُ كُلُّهُ لِلّٰهِ ۚ فَإِنِ انْتَهَوْا فَإِنَّ اللّٰهَ

---

(36) जिन लोगों ने हक़ को मानने से इनकार किया है वे अपने माल अल्लाह के रास्ते से रोकने के लिए ख़र्च कर रहे हैं और अभी और ख़र्च करते रहेंगे, लेकिन आख़िरकार यही कोशिशें उनके लिए पछतावे का सबब बनेंगी। फिर वे मग़लूब होंगे, फिर ये कुफ़्र करनेवाले (अधर्मी लोग) जहन्नम की तरफ़ घेर लाए जाएँगे, (37) ताकि अल्लाह गन्दगी को पाकीज़गी से छाँटकर अलग करे और हर तरह की गन्दगी को मिलाकर इकट्ठा करे, फिर उस पुलिन्दे को जहन्नम में झोंक दे। यही लोग असली दीवालिए हैं।[30]

(38) ऐ नबी! इनकार करनेवालों से कहो कि अगर अब भी बाज़ आ जाएँ तो जो कुछ पहले हो चुका है उसे माफ़ कर दिया जाएगा, लेकिन अगर ये उसी पिछले रवैये को दोहराएँगे तो पिछली क़ौमों के साथ जो कुछ हो चुका है वह सबको मालूम है।

(39, 40) ऐ लोगो जो ईमान लाए हो! इन काफ़िरों से जंग करो, यहाँ तक कि फ़ितना बाक़ी न रहे और दीन पूरे का पूरा अल्लाह के लिए हो जाए।[31] फिर अगर वे

---

30. इससे बढ़कर दीवालियापन और क्या हो सकता है कि इनसान जिस राह में अपना सारा वक़्त, सारी मेहनत, सारी क़ाबिलियत और पूरी ज़िन्दगी का सरमाया खपा दे उसकी इन्तिहा पर पहुँचकर उसे मालूम हो कि वह उसे सीधे तबाही की तरफ़ ले आई है और इस राह में जो कुछ उसने खपाया है उसपर कोई सूद या फ़ायदा पाने के बजाए उसे उल्टा जुर्माना भुगतना पड़ेगा।

31. यहाँ फिर मुसलमानों की जंग के उसी एक मक़सद को दोहराया गया है जो इससे पहले सूरा-2, बक़रा की आयत-193 में बयान किया गया था। इस मक़सद का सलबी (नकारात्मक) पहलू यह

بِمَا يَعْمَلُونَ بَصِيرٌ ﴿٣٩﴾ وَإِنْ تَوَلَّوْا فَاعْلَمُوا أَنَّ اللَّهَ مَوْلَاكُمْ نِعْمَ
الْمَوْلَىٰ وَنِعْمَ النَّصِيرُ ﴿٤٠﴾
وَاعْلَمُوا أَنَّمَا غَنِمْتُمْ مِنْ شَيْءٍ فَأَنَّ لِلَّهِ خُمُسَهُ وَلِلرَّسُولِ وَلِذِي ركوع ١٠
الْقُرْبَىٰ وَالْيَتَامَىٰ وَالْمَسَاكِينِ وَابْنِ السَّبِيلِ إِنْ كُنْتُمْ آمَنْتُمْ بِاللَّهِ وَمَا

फ़ितने से रुक जाएँ तो उनके आमाल को देखनेवाला अल्लाह है। और अगर वे न मानें तो जान रखो कि अल्लाह तुम्हारा सरपरस्त है, और वह सबसे अच्छा हिमायती और मददगार है।

(41) और तुम्हें मालूम हो कि जो कुछ ग़नीमत का माल तुमने हासिल किया है, उसका पाँचवाँ हिस्सा अल्लाह और उसके रसूल और नातेदारों और यतीमों और मुहताजों और मुसाफ़िरों के लिए है[32], अगर तुम ईमान लाए हो अल्लाह पर और उस चीज़ पर जो

है कि फ़ितना बाक़ी न रहे, और ईजाबी जुज़ (सकारात्मक) पहलू यह कि दीन बिलकुल अल्लाह के लिए हो जाए। बस यही एक अख़लाक़ी मक़सद ऐसा है जिसके लिए लड़ना ईमानवालों के लिए जाइज़, बल्कि फ़र्ज़ है। इसके सिवा किसी दूसरे मक़सद की लड़ाई जाइज़ नहीं है और न ईमानवालों को ज़ेबा (शोभनीय) है कि उसमें किसी तरह हिस्सा लें। (तशरीह के लिए देखें—सूरा-2, अल-बक़रा, हाशिया-204 और 205)

32. यहाँ ग़नीमत के उस माल के बँटवारे का क़ानून बताया है जिसके बारे में तक़रीर के शुरू में कहा गया था कि यह अल्लाह का इनाम है, जिसके बारे में फ़ैसला करने का इख़्तियार अल्लाह और उसके रसूल ही को हासिल है। अब वह फ़ैसला बयान कर दिया गया है और वह यह है कि लड़ाई के बाद तमाम सिपाही हर तरह का ग़नीमत का माल लाकर अमीर या इमाम के सामने रख दें और कोई चीज़ छिपाकर न रखें। फिर इस माल में से पाँचवाँ हिस्सा उन मक़सदों के लिए निकाल लिया जाए जो आयत में बयान हुए हैं, और बाक़ी चार हिस्से उन सब लोगों में बाँट दिए जाएँ जिन्होंने जंग में हिस्सा लिया हो। चुनाँचे इस आयत के मुताबिक़ नबी (सल्ल.) हमेशा लड़ाई के बाद एलान किया करते थे कि "ये ग़नीमत के माल तुम्हारे ही लिए हैं, मेरी अपनी ज़ात का इनमें कोई हिस्सा नहीं है सिवाए ख़ुम्स यानी पाँचवें हिस्से के, और वह पाँचवाँ हिस्सा भी तुम्हारे ही समाजी फ़ायदों और ज़रूरतों पर ख़र्च कर दिया जाता है। इसलिए एक-एक सूई और एक-एक धागा तक लाकर रख दो, कोई छोटी या बड़ी चीज़ छिपाकर न रखो कि ऐसा करना शर्मनाक है और उसका नतीजा दोज़ख़ है।"

इस बँटवारे में अल्लाह और रसूल का हिस्सा एक ही है और इसका मक़सद यह है कि पाँचवे

اَنۡزَلۡنَا عَلٰی عَبۡدِنَا یَوۡمَ الۡفُرۡقَانِ یَوۡمَ الۡتَقَی الۡجَمۡعٰنِ ؕ وَاللّٰہُ عَلٰی کُلِّ
شَیۡءٍ قَدِیۡرٌ ﴿۴۱﴾ اِذۡ اَنۡتُمۡ بِالۡعُدۡوَۃِ الدُّنۡیَا وَہُمۡ بِالۡعُدۡوَۃِ الۡقُصۡوٰی
وَالرَّکۡبُ اَسۡفَلَ مِنۡکُمۡ ؕ وَلَوۡ تَوَاعَدۡتُّمۡ لَاخۡتَلَفۡتُمۡ فِی الۡمِیۡعٰدِ ۙ وَلٰکِنۡ
لِّیَقۡضِیَ اللّٰہُ اَمۡرًا کَانَ مَفۡعُوۡلًا ۬ۙ لِّیَہۡلِکَ مَنۡ ہَلَکَ عَنۡۢ بَیِّنَۃٍ وَّیَحۡیٰی

फ़ैसले के दिन यानी दोनों फ़ौजों की मुठभेड़ के दिन, हमने अपने बन्दे पर उतारी थी[33] (तो यह हिस्सा ख़ुशी से अदा करो)। अल्लाह हर चीज़ पर क़ुदरत रखता है।

(42) याद करो वह वक़्त जबकि तुम घाटी के इस तरफ़ थे और वे दूसरी तरफ़ पड़ाव डाले हुए थे और क़ाफ़िला तुमसे नीचे (तट) की तरफ़ था। अगर कहीं पहले से तुम्हारे और उनके बीच मुक़ाबले का मामला तय हो चुका होता तो तुम ज़रूर इस मौक़े पर पहलू बचा जाते, लेकिन जो कुछ सामने आया, वह इसलिए था कि जिस बात का फ़ैसला अल्लाह कर चुका था उसे रौशनी में ले आए, ताकि जिसे हलाक होना है वह

हिस्से का एक जुज़ अल्लाह का बोलबाला करने और दीने-हक़ को क़ायम करने के काम में ख़र्च किया जाए।

रिश्तेदारों से मुराद नबी (सल्ल.) की ज़िन्दगी में तो नबी (सल्ल.) ही के रिश्तेदार थे, क्योंकि जब आप अपना सारा वक़्त दीन के काम में ख़र्च करते थे और अपनी रोज़ी-रोटी के लिए कोई काम करना आप (सल्ल.) के लिए मुमकिन न रहा था तो ज़रूरी तौर पर इसका इन्तिज़ाम होना चाहिए था कि आप (सल्ल.) की और आप (सल्ल.) के घरवालों और उन दूसरे रिश्तेदारों की, जिनकी देखभाल और सरपरस्ती आप (सल्ल.) के ज़िम्मे थी, ज़रूरतें पूरी हों। इसलिए पाँचवें हिस्से में नबी (सल्ल.) के रिश्तेदारों का हिस्सा रखा गया। लेकिन इस बात में इख़्तिलाफ़ है कि नबी (सल्ल.) की वफ़ात के बाद रिश्तेदारों का यह हिस्सा किसे पहुँचता है। एक गरोह की राय यह है कि नबी (सल्ल.) के बाद यह हिस्सा मंसूख़ (निरस्त) हो गया। दूसरे गरोह की राय है कि नबी (सल्ल.) के बाद यह हिस्सा उस शख़्स के रिश्तेदारों को पहुँचेगा जो नबी (सल्ल.) की जगह ख़िलाफ़त (इज्तिमाई रहनुमाई और हुकूमत चलाने) की ख़िदमत अंजाम दे। तीसरे गरोह के नज़दीक यह हिस्सा नबी (सल्ल.) के ख़ानदान के मोहताजों में तक़सीम किया जाता रहेगा। जहाँ तक मैं तहक़ीक़ कर सका हूँ, ख़ुलफ़ा-ए-राशिदीन के ज़माने में इसी तीसरी राय पर अमल होता था।

33. यानी वह ताईद और मदद जिसकी वजह से तुम्हें फ़तह हासिल हुई।

مَنْ حَيَّ عَنْ بَيِّنَةٍ ۭ وَاِنَّ اللّٰهَ لَسَمِيْعٌ عَلِيْمٌ ۝ ۴۲ اِذْ يُرِيْكَهُمُ اللّٰهُ فِيْ
مَنَامِكَ قَلِيْلًا ۭ وَلَوْ اَرٰىكَهُمْ كَثِيْرًا لَّفَشِلْتُمْ وَلَتَنَازَعْتُمْ فِي الْاَمْرِ
وَلٰكِنَّ اللّٰهَ سَلَّمَ ۭ اِنَّهٗ عَلِيْمٌۢ بِذَاتِ الصُّدُوْرِ ۝ ۴۳ وَاِذْ يُرِيْكُمُوْهُمْ اِذِ
الْتَقَيْتُمْ فِيْٓ اَعْيُنِكُمْ قَلِيْلًا وَّيُقَلِّلُكُمْ فِيْٓ اَعْيُنِهِمْ لِيَقْضِيَ اللّٰهُ اَمْرًا
كَانَ مَفْعُوْلًا ۭ وَاِلَى اللّٰهِ تُرْجَعُ الْاُمُوْرُ ۝ ۴۴ يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْٓا اِذَا ع

रौशन दलील के साथ हलाक हो और जिसे ज़िन्दा रहना है, वह रौशन दलील के साथ ज़िन्दा रहे।[34] यक़ीनन अल्लाह सुनने और जाननेवाला है।[35]

(43) और याद करो वह वक़्त जबकि ऐ नबी! अल्लाह उनको तुम्हारे ख़्वाब (सपने) में थोड़ा दिखा रहा था।[36] अगर कहीं वह तुम्हें उनकी तादाद ज़्यादा दिखा देता तो ज़रूर तुम लोग हिम्मत हार जाते और लड़ाई के मामले में झगड़ा शुरू कर देते, लेकिन अल्लाह ही ने इससे तुम्हें बचाया, यक़ीनन वह सीनों का हाल तक जानता है।

(44) और याद करो जबकि मुक़ाबले के वक़्त अल्लाह ने तुम लोगों की निगाहों में दुश्मनों को थोड़ा दिखाया और उनकी निगाहों में तुम्हें कम करके पेश किया, ताकि जो बात होनी थी उसे अल्लाह सामने ले आए, और आख़िरकार सारे मामले अल्लाह ही की तरफ़ पलटते हैं।

---

34. यानी साबित हो जाए कि जो ज़िन्दा रहा उसे ज़िन्दा ही रहना चाहिए था और जो हलाक हुआ उसे हलाक ही होना चाहिए था। यहाँ ज़िन्दा रहनेवाले और हलाक होनेवाले से मुराद लोग नहीं हैं, बल्कि इस्लाम और जाहिलियत हैं।

35. यानी ख़ुदा अन्धा, बहरा, बे-ख़बर ख़ुदा नहीं है, बल्कि देखने और जाननेवाला है। उसकी ख़ुदाई में अन्धाधुन्ध काम नहीं हो रहा है।

36. यह उस वक़्त की बात है जब नबी (सल्ल॰) मुसलमानों को लेकर मदीना से निकल रहे थे या रास्ते में किसी मंज़िल पर थे और यह पक्के तौर पर मालूम नहीं हुआ था कि दुश्मनों का लश्कर अस्ल में कितना है। उस वक़्त नबी (सल्ल॰) ने ख़ाब में उस लश्कर को देखा और जो मंज़र आप (सल्ल॰) के सामने पेश किया गया उससे आप (सल्ल॰) ने अन्दाज़ा लगाया कि दुश्मनों की तादाद कुछ बहुत ज़्यादा नहीं है। यही ख़ाब आप (सल्ल॰) ने मुसलमानों को सुना दिया और उससे हिम्मत पाकर मुसलमान आगे बढ़ते चले गए।

لَقِيْتُمْ فِئَةً فَاثْبُتُوْا وَاذْكُرُوا اللّٰهَ كَثِيْرًا لَّعَلَّكُمْ تُفْلِحُوْنَ ۝٤٥
وَاَطِيْعُوا اللّٰهَ وَرَسُوْلَهٗ وَلَا تَنَازَعُوْا فَتَفْشَلُوْا وَتَذْهَبَ رِيْحُكُمْ
وَاصْبِرُوْا ۭ اِنَّ اللّٰهَ مَعَ الصّٰبِرِيْنَ ۝٤٦ وَلَا تَكُوْنُوْا كَالَّذِيْنَ خَرَجُوْا مِنْ
دِيَارِهِمْ بَطَرًا وَّرِئَاۗءَ النَّاسِ وَيَصُدُّوْنَ عَنْ سَبِيْلِ اللّٰهِ ۭ وَاللّٰهُ بِمَا
يَعْمَلُوْنَ مُحِيْطٌ ۝٤٧ وَاِذْ زَيَّنَ لَهُمُ الشَّيْطٰنُ اَعْمَالَهُمْ وَقَالَ لَا غَالِبَ

(45) ऐ लोगो जो ईमान लाए हो! जब किसी गरोह से तुम्हारा मुक़ाबला हो तो जमे रहो और अल्लाह को बहुत ज़्यादा याद करो, उम्मीद है कि तुम्हें कामयाबी मिलेगी। (46) और अल्लाह और उसके रसूल की फ़रमाँबरदारी करो और आपस में झगड़ो नहीं, वरना तुम्हारे अन्दर कमज़ोरी पैदा हो जाएगी और तुम्हारी हवा उखड़ जाएगी। सब्र से काम लो[37], यक़ीनन अल्लाह सब्र करनेवालों के साथ है (47) और उन लोगों के-से रंग-ढंग न अपनाओ जो अपने घरों से इतराते और लोगों को अपनी शान दिखाते हुए निकले और जिनका रवैया यह है कि अल्लाह के रास्ते से रोकते हैं।[38] जो कुछ वे कर रहे हैं वह अल्लाह की पकड़ से बाहर नहीं है।

(48) ज़रा ख़याल करो उस वक़्त का जबकि शैतान ने उन लोगों की करतूत उनकी

37. यानी अपने जज़्बात और ख़ाहिशात को क़ाबू में रखो। जल्दबाज़ी, घबराहट, डर, लालच और नामुनासिब जोश से बचो। ठण्डे दिल और जँची-तुली क़ुव्वते-फ़ैसला के साथ काम करो। ख़तरे और मुश्किलें सामने हों तो तुम्हारे क़दम लड़खड़ाने न पाएँ। भड़कानेवाले मौक़े पेश आएँ तो ग़ुस्से और ग़ज़ब का जोश तुमसे कोई बे-मौक़ा हरकत न कराने पाए। मुसीबतों का हमला हो और हालात बिगड़ते नज़र आ रहे हों तो बेचैनी में तुम्हारे हवास बेक़ाबू न हो जाएँ। मक़सद को हासिल करने के शौक़ से बेक़रार होकर या किसी कमज़ोर तदबीर को सरसरी नज़र में कारगर देखकर तुम्हारे इरादे जल्दबाज़ी का शिकार न हों। और अगर कभी दुनियावी फ़ायदे और मुनाफ़े और मन की लज़्ज़तों को उभारनेवाली चीज़ें तुम्हें अपनी तरफ़ लुभा रही हों, तो उनके मुक़ाबले में भी तुम्हारा मन इस दर्जे कमज़ोर न हो कि बेइख़्तियार उनकी तरफ़ खिंच जाओ। ये सारे मतलब सिर्फ़ एक लफ़्ज़ 'सब्र' में छिपे हुए हैं, और अल्लाह फ़रमाता है कि जो लोग इन तमाम हैसियतों से सब्र करनेवाले हों, मेरी हिमायत और मदद उन्हीं को हासिल है।

38. इशारा है क़ुरैश के इस्लाम-दुश्मनों की तरफ़, जिनका लश्कर मक्का से इस शान से निकला था कि गाने-बजानेवाली लौंडियाँ साथ थीं, जगह-जगह ठहरकर नाच और रंगरलियाँ, शराब-नोशी की

لَكُمُ الْيَوْمَ مِنَ النَّاسِ وَإِنِّي جَارٌ لَّكُمْ ۚ فَلَمَّا تَرَاءَتِ الْفِئَتَانِ نَكَصَ

निगाहों में ख़ुशनुमा बनाकर दिखाई थीं और उनसे कहा था कि आज कोई तुमपर ग़ालिब नहीं हो सकता और यह कि मैं तुम्हारे साथ हूँ। मगर जब दोनों गरोहों का

महफ़िलें बरपा करते जा रहे थे, जो-जो क़बीले और बस्तियाँ रास्ते में मिलती थीं उनपर अपनी ताक़त, शौकत और अपनी तादाद की कसरत और अपने सरो-सामान का रौब जमाते थे और डींगे मारते थे कि भला हमारे मुक़ाबले में कौन सिर उठा सकता है। यह तो थी उनकी अख़लाक़ी हालत! और इसपर यह लानत भी थी कि उनके निकलने का मक़सद उनके अख़लाक़ से भी ज़्यादा नापाक था। वे इसलिए जान व माल की बाज़ी लगाने नहीं निकले थे कि हक़ और सच्चाई और इनसाफ़ का झण्डा ऊँचा हो, बल्कि इसलिए निकले थे कि ऐसा न होने पाए, और वह अकेला गरोह भी जो दुनिया में इस हक़ के मक़सद के लिए उठा है ख़त्म कर दिया जाए ताकि इस झण्डे को उठानेवाला दुनिया भर में कोई न रहे। इसपर मुसलमानों को तंबीह की जा रही है कि तुम कहीं ऐसे न बन जाना। तुम्हें अल्लाह ने ईमान और हक़परस्ती की जो नेमत दी है उसका तक़ाज़ा यह है कि तुम्हारे अख़लाक़ भी पाकीज़ा और अच्छे हों और जंग का तुम्हारा मक़सद भी पाक हो।

यह हिदायत उसी ज़माने के लिए न थी, आज के लिए भी है और हमेशा के लिए है। इस्लाम के दुश्मनों की फ़ौजों का जो हाल उस वक़्त था वही आज भी है। क़हबाख़ाने (वेश्यालय) और बेहयाई के अड्डे और शराब के पीपे उनके साथ एक लाज़मी हिस्से की तरह लगे रहते हैं। छिपे तौर पर नहीं बल्कि खुल्लम-खुल्ला बहुत ही बेशरमी के साथ वे औरतों और शराब का ज़्यादा-से-ज़्यादा राशन माँगते हैं और उनके सिपाहियों को ख़ुद अपनी क़ौम ही से यह मुतालबा करने में कोई झिझक नहीं होती कि वे अपनी बेटियों को बड़ी-से-बड़ी तादाद में उनकी नफ़सानी ख़ाहिशों का खिलौना बनने के लिए पेश करें। फिर भला कोई दूसरी क़ौम इनसे क्या उम्मीद कर सकती है कि ये उसको अपनी अख़लाक़ी गन्दगी का कूड़ाघर बनाने में कोई कसर उठा रखेंगे। रहा उनका घमंड और फ़ख़्र तो उनके हर सिपाही और हर अफ़सर की चाल-ढाल और बातचीत के अन्दाज़ में साफ़ देखा जा सकता है। और उनमें से हर क़ौम के ज़िम्मेदार की बातों में 'आज तुमपर कोई ग़ालिब नहीं हो सकता और ताक़त में हमसे बढ़कर कौन है!' की डींगे सुनी जा सकती हैं। इन अख़लाक़ी गन्दगियों से ज़्यादा नापाक उनके जंग के मक़सद हैं। उनमें से हर एक बहुत ही मक्कारी के साथ दुनिया को यक़ीन दिलाता है कि उसके पेशे-नज़र इनसानियत की कामयाबी के सिवा और कुछ नहीं है। मगर हक़ीक़त में उनके सामने बस इनसानियत की फ़लाह और कामयाबी ही नहीं है, बाक़ी सब कुछ है। उनकी लड़ाई का अस्ल मक़सद यह होता है कि ख़ुदा ने अपनी ज़मीन में जो कुछ सारे इनसानों के लिए पैदा किया है उसपर अकेले उनकी क़ौम का क़ब्ज़ा हो और दूसरे उसके चाकर और ग़ुलाम बनकर रहें। तो ईमानवालों को क़ुरआन की यह हमेशा रहनेवाली हिदायत है कि इन ख़ुदा के नाफ़रमानों और बुरे लोगों के तौर-तरीक़ों से भी बचें और उन नापाक मक़सदों में भी अपनी जान व माल खपाने से बचें, जिनके लिए ये लोग लड़ते हैं।

عَلٰى عَقِبَيْهِ وَقَالَ اِنِّىْ بَرِىْٓءٌ مِّنْكُمْ اِنِّىْٓ اَرٰى مَا لَا تَرَوْنَ اِنِّىْٓ اَخَافُ
اللّٰهَ ؕ وَاللّٰهُ شَدِيْدُ الْعِقَابِ ﴿۴۸﴾ اِذْ يَقُوْلُ الْمُنٰفِقُوْنَ وَالَّذِيْنَ فِىْ
قُلُوْبِهِمْ مَّرَضٌ غَرَّ هٰٓؤُلَآءِ دِيْنُهُمْ ؕ وَمَنْ يَّتَوَكَّلْ عَلَى اللّٰهِ فَاِنَّ اللّٰهَ
عَزِيْزٌ حَكِيْمٌ ﴿۴۹﴾ وَلَوْ تَرٰٓى اِذْ يَتَوَفَّى الَّذِيْنَ كَفَرُوا ۙ الْمَلٰٓئِكَةُ يَضْرِبُوْنَ
وُجُوْهَهُمْ وَاَدْبَارَهُمْ ۚ وَذُوْقُوْا عَذَابَ الْحَرِيْقِ ﴿۵۰﴾ ذٰلِكَ بِمَا قَدَّمَتْ
اَيْدِيْكُمْ وَاَنَّ اللّٰهَ لَيْسَ بِظَلَّامٍ لِّلْعَبِيْدِ ﴿۵۱﴾ كَدَاْبِ اٰلِ فِرْعَوْنَ ۙ

आमना-सामना हुआ तो वह उल्टे पाँव फिर गया और कहने लगा कि मेरा-तुम्हारा साथ नहीं है। मैं वह कुछ देख रहा हूँ जो तुम लोग नहीं देखते। मुझे अल्लाह से डर लगता है, और अल्लाह बड़ी कड़ी सज़ा देनेवाला है। (49) जबकि मुनाफ़िक़ (कपटाचारी) और वे सब लोग जिनके दिलों को रोग लगा हुआ है, कह रहे थे कि इन लोगों को तो इनके दीन (धर्म) ने ख़ब्त (सनक) में डाल रखा है[39], हालाँकि अगर कोई अल्लाह पर भरोसा करे तो यक़ीनन अल्लाह बड़ा ज़बरदस्त और हिक्मतवाला है। (50, 51) काश तुम उस हालत को देख सकते जबकि फ़रिश्ते इनकार करनेवाले मक़तूलों (वधितों) की जानें निकाल रहे थे! वे उनके चेहरों और उनके कूल्हों पर चोटें लगाते जाते थे, और कहते जाते थे, "लो, अब जलने की सज़ा भुगतो। यह वह बदला है जिसका सामान तुम्हारे अपने हाथों ने पेशगी जुटा रखा था, वरना अल्लाह तो अपने बन्दों पर ज़ुल्म करनेवाला नहीं है।" (52) यह मामला उनके साथ उसी तरह पेश आया जिस तरह फ़िरऔनियों

---

39. यानी मदीना के मुनाफ़िक़ और वे सब लोग जो दुनिया-परस्ती और ख़ुदा से ग़फ़लत के मर्ज़ में गिरफ़्तार थे, यह देखकर कि मुसलमानों की मुट्ठी भर बेसरो-सामान जमाअत क़ुरैश जैसी ज़बरदस्त ताक़त से टकराने के लिए जा रही है, आपस में कहते थे कि ये लोग अपने दीनी जोश में दीवाने हो गए हैं। इस लड़ाई में इनकी तबाही यक़ीनी है, मगर इस नबी ने कुछ ऐसा मन्तर उनपर फूँक रखा है कि इनकी अक़्ल मारी गई है और आँखों देखे ये मौत के मुँह में चले जा रहे हैं।

وَالَّذِيْنَ مِنْ قَبْلِهِمْ ۭ كَفَرُوْا بِاٰيٰتِ اللّٰهِ فَاَخَذَهُمُ اللّٰهُ بِذُنُوْبِهِمْ ۭ اِنَّ
اللّٰهَ قَوِيٌّ شَدِيْدُ الْعِقَابِ ﴿٥٢﴾ ذٰلِكَ بِاَنَّ اللّٰهَ لَمْ يَكُ مُغَيِّرًا نِّعْمَةً
اَنْعَمَهَا عَلٰي قَوْمٍ حَتّٰي يُغَيِّرُوْا مَا بِاَنْفُسِهِمْ ۙ وَاَنَّ اللّٰهَ سَمِيْعٌ عَلِيْمٌ ﴿٥٣﴾
كَدَاْبِ اٰلِ فِرْعَوْنَ ۙ وَالَّذِيْنَ مِنْ قَبْلِهِمْ ۭ كَذَّبُوْا بِاٰيٰتِ رَبِّهِمْ
فَاَهْلَكْنٰهُمْ بِذُنُوْبِهِمْ وَاَغْرَقْنَآ اٰلَ فِرْعَوْنَ ۚ وَكُلٌّ كَانُوْا ظٰلِمِيْنَ ﴿٥٤﴾
اِنَّ شَرَّ الدَّوَاۗبِّ عِنْدَ اللّٰهِ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا فَهُمْ لَا يُؤْمِنُوْنَ ﴿٥٥﴾ اَلَّذِيْنَ
عٰهَدْتَّ مِنْهُمْ ثُمَّ يَنْقُضُوْنَ عَهْدَهُمْ فِيْ كُلِّ مَرَّةٍ وَّهُمْ لَا يَتَّقُوْنَ ﴿٥٦﴾

और उनसे पहले के दूसरे लोगों के साथ पेश आता रहा है कि उन्होंने अल्लाह की आयतों को मानने से इनकार किया और अल्लाह ने उनके गुनाहों पर उन्हें पकड़ लिया। अल्लाह क़ुव्वत रखता है और सख़्त सज़ा देनेवाला हैं (53) यह अल्लाह के उस तरीक़े के मुताबिक़ हुआ कि वह किसी नेमत को, जो उसने किसी क़ौम को दी हो, उस वक़्त तक नहीं बदलता जब तक कि वह क़ौम ख़ुद अपने तरीक़े को नहीं बदल देती।[40] अल्लाह सब कुछ सुनने और जाननेवाला है। (54) आले-फ़िरऔन (फ़िरऔनियों) और उनसे पहले की क़ौमों के साथ जो कुछ पेश आया, वह इसी ज़ाब्ते के मुताबिक़ था। उन्होंने अपने रब की आयतों को झुठलाया, तब हमने उनके गुनाहों के बदले में उन्हें हलाक किया और फ़िरऔनियों को डुबो दिया! ये सब ज़ालिम लोग थे।

(55) यक़ीनन अल्लाह के नज़दीक ज़मीन पर चलनेवाली मख़्लूक़ में सबसे बुरे वे लोग हैं जिन्होंने हक़ को मानने से इनकार कर दिया, फिर किसी तरह वे उसे क़बूल करने पर तैयार नहीं हैं। (56) (ख़ास तौर से) उनमें से वे लोग जिनके साथ तूने समझौता किया, फिर वे हर मौक़े पर उसको तोड़ते हैं और ज़रा भी ख़ुदा से नहीं

---

40. यानी जब तक कोई क़ौम अपने आपको पूरी तरह अल्लाह की नेमत की ग़ैर-मुस्तहिक़ (अयोग्य) नहीं बना देती अल्लाह उससे अपनी नेमत छीना नहीं करता।

فَإِمَّا تَثْقَفَنَّهُمْ فِي الْحَرْبِ فَشَرِّدْ بِهِم مَّنْ خَلْفَهُمْ لَعَلَّهُمْ

डरते।[41] (57) इसलिए अगर ये लोग तुम्हें लड़ाई में मिल जाएँ तो उनकी ऐसी ख़बर लो कि उनके बाद दूसरे लोग जो ऐसा रवैया अपनानेवाले हों, उनके होश उड़ जाएँ।[42]

41. यहाँ ख़ास तौर पर इशारा है यहूदियों की तरफ़। नबी (सल्ल.) ने मदीना में आने के बाद सबसे पहले इन ही के साथ इस बात का मुआहिदा किया था कि आपस में अच्छे पड़ोसी बनकर रहेंगे और एक-दूसरे की मदद करेंगे, अपनी हद तक पूरी कोशिश की थी कि उनसे ख़ुशगवार ताल्लुक़ क़ायम रहें। फिर दीनी हैसियत से भी आप (सल्ल.) यहूदियों को मुशरिकों के मुक़ाबले में अपने से ज़्यादा क़रीब समझते थे और हर मामले में मुशरिकों के मुक़ाबले में किताबवाले ही के तरीक़े को तरजीह देते थे। लेकिन यहूदियों के आलिमों और ज़िम्मेदारों को ख़ालिस तौहीद (विशुद्ध एकेश्वरवाद) और अच्छे अख़लाक़ की वह तबलीग़ और अक़ीदे व अमली गुमराहियों पर वह तनक़ीद और दीने-हक़ को क़ायम करने की वह कोशिश, जो नबी (सल्ल.) कर रहे थे, एक आन न भाती थी और उनकी बराबर कोशिश यह थी कि यह नई तहरीक किसी तरह कामयाब न होने पाए। इसी मक़सद के लिए वे मदीना के मुनाफ़िक़ मुसलमानों से साँठ-गाँठ करते थे। इसी के लिए वे औस और ख़ज़रज के लोगों में उन पुरानी दुश्मनियों को भड़काते थे जो इस्लाम से पहले उनके बीच ख़ून-ख़राबे का सबब हुआ करती थीं। इसी के लिए क़ुरैश और दूसरे इस्लाम के मुख़ालिफ़ क़बीलों से उनकी ख़ुफ़िया साज़िशें चल रही थीं और ये सब हरकतें दोस्ती के उस मुआहिदे के बावुजूद हो रही थीं जो नबी (सल्ल.) और उनके बीच लिखा जा चुका था। जब बद्र की लड़ाई हुई तो शुरू में उनको उम्मीद थी कि क़ुरैश की पहली ही चोट इस तहरीक को ख़त्म कर देगी। लेकिन जब नतीजा उनकी उम्मीदों के ख़िलाफ़ निकला तो उनके सीनों की हसद की आग और ज़्यादा भड़क उठी। उन्होंने इस अन्देशे से कि बद्र की फ़तह कहीं इस्लाम की ताक़त को एक मुस्तक़िल ख़तरा न बना दे, अपनी मुख़ालिफ़ाना कोशिशों को और तेज़ कर दिया। यहाँ तक कि उनका एक लीडर कअब-बिन-अशरफ़ (जो क़ुरैश की हार सुनते ही चीख़ उठा था कि आज ज़मीन का पेट हमारे लिए उसकी पीठ से बेहतर है) ख़ुद मक्का गया और वहाँ उसने जोश दिलानेवाले और भड़कानेवाले मरसिये (शोक गीत) कह-कहकर क़ुरैश को बदला लेने का जोश दिलाया। इसपर भी उन लोगों ने बस न की। यहूदियों के बनी-क़ैनुक़ाअ क़बीला ने नबी (सल्ल.) से किए गए इस मुआहिदे के ख़िलाफ़ कि वे आपस में अच्छे पड़ोसी की तरह रहेंगे, उन मुसलमान औरतों को छेड़ना शुरू किया जो उनकी बस्ती में किसी काम से जाती थीं। और जब नबी (सल्ल.) ने उनको इस हरकत पर मलामत की, तो उन्होंने जवाब में धमकी दी कि "ये क़ुरैश नहीं हैं, हम लड़ने-मरनेवाले लोग हैं और लड़ना जानते हैं। हमारे मुक़ाबिले में आओगे, तब तुम्हें पता चलेगा कि मर्द कैसे होते हैं।"

42. इसका मतलब यह है कि अगर किसी क़ौम से हमारा मुआहिदा हो और फिर वह अपनी मुआहिदाना ज़िम्मेदारियों को पीछे डालकर हमारे ख़िलाफ़ किसी जंग में हिस्सा ले, तो हम भी

يَذَّكَّرُوْنَ ۝ وَاِمَّا تَخَافَنَّ مِنْ قَوْمٍ خِيَانَةً فَانْۢبِذْ اِلَيْهِمْ عَلٰى سَوَآءٍ ؕ
اِنَّ اللّٰهَ لَا يُحِبُّ الْخَآئِنِيْنَ ۝ وَلَا يَحْسَبَنَّ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا سَبَقُوْا ؕ
اِنَّهُمْ لَا يُعْجِزُوْنَ ۝ وَاَعِدُّوْا لَهُمْ مَّا اسْتَطَعْتُمْ مِّنْ قُوَّةٍ وَّمِنْ

उम्मीद है कि अहद तोड़नेवालों के इस अंजाम से वे सबक़ लेंगे! (58) और अगर कभी तुम्हें किसी क़ौम से ख़ियानत का डर हो तो उसके समझौते को एलानिया उसके आगे फेंक दो।[43] यक़ीनन अल्लाह ख़ियानत करनेवालों को पसन्द नहीं करता। (59) हक़ के इनकारी इस ग़लतफ़हमी में न रहें कि वे बाज़ी ले गए, यक़ीनन वे हमको हरा नहीं सकते।

(60) और तुम लोग, जहाँ तक तुम्हारा बस चले, ज़्यादा-से-ज़्यादा ताक़त और तैयार

मुआहिदे की अख़लाक़ी ज़िम्मेदारियों से बरी हो जाएँगे और हमें हक़ होगा कि उससे जंग करें। फिर अगर किसी क़ौम से हमारी लड़ाई हो रही हो और हम देखें कि दुश्मन के साथ एक ऐसी क़ौम के लोग भी जंग में शरीक हैं जिससे हमारा मुआहिदा है, तो हम उनको क़त्ल करने और उनसे दुश्मन का-सा मामला करने में हरगिज़ कोई झिझक न दिखाएँगे, क्योंकि उन्होंने अपनी इंफ़िरादी (व्यक्तिगत) हैसियत में अपनी क़ौम के मुआहिदे की ख़िलाफ़वर्ज़ी करके अपने आपको इसका हक़दार नहीं रहने दिया है कि उनकी जान व माल के मामले में इस मुआहिदे का एहतिराम किया जाए, जो हमारे और उनकी क़ौम के बीच है।

43. इस आयत के मुताबिक़ हमारे लिए यह किसी तरह जायज़ नहीं है कि अगर किसी शख़्स या गरोह या मुल्क से हमारा मुआहिदा हो और हमें उसके रवैये से यह शिकायत पैदा हो जाए कि वह अहद की पाबन्दी में कोताही बरत रहा है, या यह अन्देशा पैदा हो जाए कि वह मौक़ा पाते ही हमारे साथ ग़द्दारी कर बैठेगा, तो हम अपनी जगह ख़ुद फ़ैसला कर लें कि हमारे और उसके बीच मुआहिदा नहीं रहा और यकायक उसके साथ वह रवैया इख़्तियार करना शुरू कर दें जो मुआहिदा न होने की सूरत ही में किया जा सकता हो। इसके बरख़िलाफ़ हमें इस बात का पाबन्द किया गया है कि जब ऐसी सूरत पेश आए तो हम कोई मुख़ालिफ़ाना कार्रवाई करने से पहले दूसरे गरोह को साफ़-साफ़ बता दें कि हमारे और तुम्हारे बीच अब मुआहिदा बाक़ी नहीं रहा, ताकि मुआहिदा तोड़ने की जानकारी जैसी हमको हासिल है वैसी ही उसको भी हो जाए और वह इस ग़लतफ़हमी में न रहे कि मुआहिदा अब भी बाक़ी है। अल्लाह के इसी फ़रमान के मुताबिक़ नबी (सल्ल॰) ने इस्लाम की बैनुल-अक़वामी (अन्तर्राष्ट्रीय) पॉलिसी का यह मुस्तक़िल उसूल ठहरा दिया था कि "जिसका किसी क़ौम से मुआहिदा हो उसे चाहिए कि मुआहिदे की

मुद्दत ख़त्म होने से पहले अहद का बन्द न खोले। या नहीं तो उनका अहद बराबरी को ध्यान में रखते हुए उनकी तरफ़ फेंक दे।" फिर इसी क़ायदे को नबी (सल्ल०) ने और ज़्यादा फैलाकर तमाम मामलों में आम उसूल यह क़ायम किया था कि जो "तुझसे ख़ियानत करे, तू उससे ख़ियानत न कर।" और यह उसूल सिर्फ़ तक़रीरों में बयान करने और किताबों में लिखने के लिए नहीं था, बल्कि अमली ज़िन्दगी में भी इसकी पाबन्दी की जाती थी। चुनाँचे एक बार जब अमीर मुआविया (रज़ि०) ने अपनी हुकूमत के दौर में रोम (रूम) की सरहद पर फ़ौजों को इस मक़सद से जमा करना शुरू किया कि मुआहिदे की मुद्दत ख़त्म होते ही यकायक रूमी इलाक़े पर हमला कर दिया जाए तो उनकी इस कार्रवाई पर अम्र-बिन-अंबसा (रज़ि०) सहाबी ने सख़्त एहतिजाज (विरोध) किया और नबी (सल्ल०) की यही हदीस सुनाकर कहा कि मुआहिदे की मुद्दत के अन्दर यह दुश्मनी का रवैया इख़्तियार करना ग़द्दारी है। आख़िरकार अमीर मुआविया को इस उसूल के आगे सर झुका देना पड़ा और सरहद पर फ़ौज को जमा होने से रोक दिया गया।

एकतरफ़ा मुआहिदे को तोड़ डालने और जंग का एलान किए बग़ैर हमला कर देने का तरीक़ा पुराने ज़माने की जाहिलियत में भी था और मौजूदा ज़माने की मुहज़्ज़ब (सुसभ्य) जाहिलियत में भी इसका रिवाज मौजूद है। चुनाँचे इसकी सबसे ताज़ा मिसालें दूसरी जंगे-अज़ीम (द्वितीय विश्व युद्ध) में रूस पर जर्मनी के हमले और ईरान के ख़िलाफ़ रूस और ब्रिटेन की फ़ौजी कार्यवाई में देखी गई हैं। आम तौर पर इस कार्रवाई के लिए यह बहाना पेश किया जाता है कि हमले से पहले ख़बर देने से दूसरा गरोह होशियार हो जाता और सख़्त मुक़ाबला करता, या अगर हम हमला न करते तो हमारा दुश्मन फ़ायदा उठा लेता। लेकिन इस क़िस्म के बहाने अगर अख़लाक़ी ज़िम्मेदारियों को ख़त्म कर देने के लिए काफ़ी हों तो फिर कोई गुनाह ऐसा नहीं है जो किसी न किसी बहाने न किया जा सकता हो। हर चोर, हर डाकू, हर ज़ानी (व्यभिचारी), हर क़ातिल, हर जालसाज़ अपने जुर्मों के लिए ऐसी ही कोई मसलिहत बयान कर सकता है। लेकिन यह अजीब बात है कि ये लोग बैनुल-अक़वामी (अन्तर्राष्ट्रीय) सोसाइटी में क़ौमों के लिए उन बहुत-से कामों को जाइज़ समझते हैं जो ख़ुद उनकी निगाह में हराम हैं, जबकि वे क़ौमी सोसाइटी में लोगों की ओर से किए जाएँ।

इस मौक़े पर यह जान लेना भी ज़रूरी है कि इस्लामी क़ानून सिर्फ़ एक सूरत में बिना ख़बर दिए हमला करने को जाइज़ रखता है, और वह सूरत यह है कि दूसरा गरोह खुल्लम-खुल्ला मुआहिदे को तोड़ चुका हो और उसने साफ़ तौर पर हमारे ख़िलाफ़ दुश्मनाना कार्यवाही की हो। ऐसी सूरत में यह ज़रूरी नहीं रहता कि हम उसे ऊपर ज़िक्र की गई आयत के मुताबिक़ मुआहिदे के तोड़ने का नोटिस दें, बल्कि हमें उसके ख़िलाफ़ बिना ख़बर दिए जंगी कार्यवाही करने का हक़ हासिल हो जाता है। इस्लाम के फ़क़ीहों (धर्मशास्त्रियों) ने यह इस्तिसनाई (अपवादी) हुक्म नबी (सल्ल०) के इस काम से निकाला है कि क़ुरैश ने जब बनी-ख़ुज़ाआ के मामले में हुदैबिया की सुलह को खुल्लम-खुल्ला तोड़ दिया तो नबी (सल्ल०) ने फिर उन्हें मुआहिदा तोड़ने का नोटिस देने की कोई ज़रूरत नहीं समझी, बल्कि बग़ैर नोटिस दिए मक्का

पर चढ़ाई कर दी। लेकिन अगर किसी मौक़े पर हम इस क़ायदा-ए-इस्तिसना (अपवादी नियम) से फ़ायदा उठाना चाहें तो ज़रूरी है कि वे तमाम हालात हमारे सामने रहें जिनमें नबी (सल्ल.) ने यह कार्यवाही की थी, ताकि पैरवी हो तो नबी (सल्ल.) के पूरे रवैये की हो, न कि इसके किसी एक मुफ़ीद हिस्से की, जिससे अपना कोई मतलब हासिल हो रहा हो। हदीस और सीरत की किताबों से जो कुछ साबित है वह यह है कि—

(1) क़ुरैश के अहद (सन्धि) की ख़िलाफ़वर्ज़ी ऐसी साफ़ और वाज़ेह थी कि इस बात में कुछ कहने की गुंजाइश नहीं थी कि अहद टूट चुका है। ख़ुद क़ुरैश के लोग भी इस बात को मानते थे कि हक़ीक़त में मुआहिदा टूट गया है। उन्होंने ख़ुद अबू-सुफ़ियान को मुआहिदा को ताज़ा करने के लिए मदीना भेजा था, जिसका साफ़ मतलब यह था कि उनके नज़दीक भी मुआहिदा बाक़ी नहीं रहा था। फिर भी यह ज़रूरी नहीं है कि अहद तोड़नेवाली क़ौम ख़ुद भी अपने अहद तोड़ने की बात तस्लीम करे। अलबत्ता यह यक़ीनी तौर पर ज़रूरी है कि अहद का तोड़ा जाना बिलकुल साफ़ और वाज़ेह हो और उसमें कोई शक व गुमान न हो।

(2) नबी (सल्ल.) ने उनकी तरफ़ से मुआहिदा टूट जाने के बाद फिर अपनी तरफ़ से साफ़ तौर पर या इशारे में ऐसी कोई बात नहीं की जिससे यह समझा जा सकता हो कि इस बदअहदी के बावजूद नबी (सल्ल.) अभी तक उनको एक ऐसी क़ौम समझते हैं जिससे कोई मुआहिदा हुआ है और उनके साथ नबी (सल्ल.) के मुआहिदाना ताल्लुक़ात अब भी क़ायम हैं। तमाम रिवायतें यह बताती हैं और इसमें किसी का इख़्तिलाफ़ नहीं है कि जब अबू-सुफ़ियान ने मदीना आकर मुआहिदे को ताज़ा करने की दरख़ास्त की तो नबी (सल्ल.) ने उसे क़बूल नहीं किया।

(3) क़ुरैश के ख़िलाफ़ जंगी कार्रवाई नबी (सल्ल.) ने ख़ुद की और खुल्लम-खुल्ला की। किसी ऐसी फ़रेबकारी का शायबा तक आपके रवैये में नहीं पाया जाता कि आप (सल्ल.) ने बज़ाहिर सुलह और छिपे तौर पर जंग का कोई तरीक़ा इस्तेमाल किया हो।

यह इस मामले में नबी (सल्ल.) का बहतरीन नमूना है, इसलिए ऊपर ज़िक्र की गई आयत के आम हुक्म से हटकर अगर कोई कार्रवाही की जा सकती है तो ऐसे ही ख़ास हालात में की जा सकती है और इसी तरह सीधे-सीधे शरीफ़ाना तरीक़े से की जा सकती है, जो नबी (सल्ल.) ने इख़्तियार किया था।

इससे भी आगे यह कि अगर किसी ऐसी क़ौम से, जिससे हमारा मुआहिदा है, किसी मामले में हमारा झगड़ा हो जाए और हम देखें कि बातचीत या बैनुल-अक़वामी सालिसी (अन्तर्राष्ट्रीय मध्यस्थता) के ज़रिए से वह झगड़ा तय नहीं होता, या यह कि दूसरा गरोह उसको ताक़त के बल पर तय करने पर तुला हुआ है, तो हमारे लिए यह बिलकुल जाइज़ है कि हम उसको तय करने में ताक़त इस्तेमाल करें, लेकिन ऊपर ज़िक्र की गई आयत हमपर यह अख़लाक़ी ज़िम्मेदारी डालती है कि हमारा यह ताक़त का इस्तेमाल साफ़-साफ़ एलान के बाद होना चाहिए और खुल्लम-खुल्ला होना चाहिए। चोरी-छिपे ऐसी जंगी कार्रवाइयाँ करना, जिनका एलानिया इक़रार करने के लिए हम तैयार न हों, एक बदअख़लाक़ी है जिसकी तालीम इस्लाम ने हमको नहीं दी है।

رِّبَاطِ الْخَيْلِ تُرْهِبُوْنَ بِهٖ عَدُوَّ اللّٰهِ وَعَدُوَّكُمْ وَاٰخَرِيْنَ مِنْ دُوْنِهِمْ ۚ
لَا تَعْلَمُوْنَهُمْ ۚ اَللّٰهُ يَعْلَمُهُمْ ۗ وَمَا تُنْفِقُوْا مِنْ شَيْءٍ فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ
يُوَفَّ اِلَيْكُمْ وَاَنْتُمْ لَا تُظْلَمُوْنَ ﴿٦٠﴾ وَاِنْ جَنَحُوْا لِلسَّلْمِ فَاجْنَحْ لَهَا
وَتَوَكَّلْ عَلَى اللّٰهِ ۗ اِنَّهٗ هُوَ السَّمِيْعُ الْعَلِيْمُ ﴿٦١﴾ وَاِنْ يُّرِيْدُوْٓا اَنْ يَّخْدَعُوْكَ
فَاِنَّ حَسْبَكَ اللّٰهُ ۗ هُوَ الَّذِيْٓ اَيَّدَكَ بِنَصْرِهٖ وَبِالْمُؤْمِنِيْنَ ﴿٦٢﴾ وَاَلَّفَ

बंधे रहनेवाले घोड़े उनके मुक़ाबले के लिए जुटाए रखो[44], ताकि उसके ज़रिए से अल्लाह के और अपने दुश्मनों को और उन दूसरे दुश्मनों को ख़ौफ़ज़दा कर दो जिन्हें तुम नहीं जानते, मगर अल्लाह जानता है। अल्लाह की राह में जो कुछ तुम ख़र्च करोगे उसका पूरा-पूरा बदला तुम्हारी तरफ़ पलटाया जाएगा और तुम्हारे साथ हरगिज़ ज़ुल्म न होगा।

(61) और ऐ नबी! अगर दुश्मन सुलह और सलामती की तरफ़ झुकें तो तुम भी उसके लिए तैयार हो जाओ और अल्लाह पर भरोसा करो। यक़ीनन वही सब कुछ सुनने और जाननेवाला है (62, 63) और अगर वे धोखे की नीयत रखते हों तो तुम्हारे लिए अल्लाह काफ़ी है[45] वही तो है जिसने अपनी मदद से और ईमानवालों के ज़रिए तुम्हारी

44. इससे मतलब यह है कि तुम्हारे पास जंग के सामान और एक मुस्तक़िल फ़ौज (Standing Army) हर वक़्त तैयार रहनी चाहिए, ताकि ज़रूरत पड़ने पर फ़ौरन जंगी कार्रवाई कर सको। यह न हो कि ख़तरा सिर पर आने के बाद घबराहट में जल्दी-जल्दी रज़ाकार (स्वयंसेवी Volunteers) और हथियार और रसद का सामान जमा करने की कोशिश की जाए और इस बीच में कि यह तैयारी मुकम्मल हो, दुश्मन अपना काम कर जाए।

45. यानी बैनुल-अक़वामी (अन्तर्राष्ट्रीय) मामलों में तुम्हारी पॉलिसी बुज़दिलाना नहीं होनी चाहिए, बल्कि ख़ुदा के भरोसे पर बहादुरी और दिलेरी की होनी चाहिए। दुश्मन जब सुलह की बातचीत की ख़ाहिश करे, बे-झिझक उसके लिए तैयार हो जाओ और सुलह के लिए हाथ बढ़ाने से इस बिना पर इनकार न करो कि वह नेक नीयती के साथ सुलह नहीं करना चाहता, बल्कि ग़द्दारी का इरादा रखता है। किसी की नीयत बहरहाल यक़ीनी तौर पर मालूम नहीं हो सकती। अगर यह वाक़ई सुलह ही की नीयत रखता हो तो तुम ख़ाह-मख़ाह उसकी नीयत पर शक करके ख़ूनख़राबे (जंग) को लम्बा क्यों खींचो। और अगर वह धोखे की नीयत रखता हो तो तुम्हें ख़ुदा के भरोसे पर बहादुर होना चाहिए। सुलह के लिए बढ़नेवाले हाथ के जवाब में हाथ बढ़ाओ, ताकि तुम्हारी अख़लाक़ी बरतरी साबित हो, और लड़ाई के लिए उठनेवाले हाथ को अपने बाज़ू

بَيْنَ قُلُوْبِهِمْ ۭ لَوْ اَنْفَقْتَ مَا فِي الْاَرْضِ جَمِيْعًا مَّآ اَلَّفْتَ بَيْنَ
قُلُوْبِهِمْ وَلٰكِنَّ اللّٰهَ اَلَّفَ بَيْنَهُمْ ۭ اِنَّهٗ عَزِيْزٌ حَكِيْمٌ ﴿٦٣﴾ يٰٓاَيُّهَا النَّبِيُّ
حَسْبُكَ اللّٰهُ وَمَنِ اتَّبَعَكَ مِنَ الْمُؤْمِنِيْنَ ﴿٦٤﴾ يٰٓاَيُّهَا النَّبِيُّ حَرِّضِ ع
الْمُؤْمِنِيْنَ عَلَى الْقِتَالِ ۭ اِنْ يَّكُنْ مِّنْكُمْ عِشْرُوْنَ صٰبِرُوْنَ يَغْلِبُوْا

हिमायत की और ईमानवालों के दिल एक-दूसरे के साथ जोड़ दिए। तुम धरती की सारी दौलत भी ख़र्च कर डालते तो इन लोगों के दिल न जोड़ सकते थे, मगर वह अल्लाह है जिसने इन लोगों के दिल जोड़े,[46] यक़ीनन वह बड़ा ज़बरदस्त और हिक्मतवाला है। (64) ऐ नबी! तुम्हारे लिए और तुम्हारी पैरवी करनेवाले ईमानवालों के लिए तो बस अल्लाह काफ़ी है।

(65) ऐ नबी! ईमानवालों को जंग पर उभारो, अगर तुममें से बीस आदमी सब्र करनेवाले हों तो वे दो सौ पर ग़ालिब होंगे और अगर सौ आदमी ऐसे हों तो हक़ के

की क़ुव्वत से तोड़कर फेंक दो, ताकि कभी कोई ग़द्दार क़ौम तुम्हें नर्म चारा समझने की हिम्मत न करे।

46. इशारा है उस भाईचारे, उलफ़त और मुहब्बत की तरफ़ जो अल्लाह ने ईमान लानेवाले अरब के लोगों के बीच पैदा करके उनको एक मज़बूत जत्था बना दिया था, हालाँकि इस जत्थे के लोग उन अलग-अलग क़बीलों से निकले हुए थे जिनके बीच सदियों से दुश्मनियाँ चली आ रही थीं। ख़ास तौर से अल्लाह की यह मेहरबानी औस और ख़ज़रज के मामले में तो सबसे ज़्यादा नुमायाँ थी। ये दोनों क़बीले दो ही साल पहले तक एक-दूसरे के ख़ून के प्यासे थे और मशहूर जंग बुआस को कुछ ज़्यादा दिन नहीं गुज़रे थे, जिसमें औस ने ख़ज़रज को और ख़ज़रज ने औस को मानो ज़मीन से मिटा देने का पक्का इरादा कर लिया था। ऐसी सख़्त दुश्मनियों को दो-तीन साल के अन्दर गहरी दोस्ती और बिरादरी में बदल देना और उन एक-दूसरे से नफ़रत करनेवाले लोगों को जोड़कर ऐसी एक सीसा पिलाई दीवार बना देना, जैसी कि नबी (सल्ल.) के ज़माने में इस्लामी जमाअत थी, यक़ीनन इनसान की ताक़त से बाहर था और दुनियावी असबाब की मदद से यह अज़ीमुश्शान कारनामा अंजाम नहीं पा सकता था। इसलिए अल्लाह तआला फ़रमाता है कि जब हमारी ताईद और मदद ने यह कुछ कर दिखाया है तो आइन्दा भी तुम्हारी नज़र दुनियावी असबाब (सामान) पर नहीं बल्कि, ख़ुदा की ताईद (हिमायत) पर होनी चाहिए कि जो कुछ काम बनेगा उसी से बनेगा।

مِائَتَيْنِ ۚ وَإِنْ يَكُنْ مِنْكُمْ مِائَةٌ يَغْلِبُوا أَلْفًا مِنَ الَّذِينَ كَفَرُوا
بِأَنَّهُمْ قَوْمٌ لَا يَفْقَهُونَ ﴿٦٥﴾ الْآنَ خَفَّفَ اللَّهُ عَنْكُمْ وَعَلِمَ أَنَّ فِيكُمْ
ضَعْفًا ۚ فَإِنْ يَكُنْ مِنْكُمْ مِائَةٌ صَابِرَةٌ يَغْلِبُوا مِائَتَيْنِ ۚ وَإِنْ يَكُنْ
مِنْكُمْ أَلْفٌ يَغْلِبُوا أَلْفَيْنِ بِإِذْنِ اللَّهِ ۗ وَاللَّهُ مَعَ الصَّابِرِينَ ﴿٦٦﴾

इनकारियों में से हज़ार आदमियों पर भारी होंगे, क्योंकि वे ऐसे लोग हैं जो समझ नहीं रखते।[47] (66) अच्छा, अब अल्लाह ने तुम्हारा बोझ हल्का किया और उसे मालूम हुआ कि अभी तुममें कमज़ोरी है, इसलिए अगर तुममें से सौ आदमी सब्र करनेवाले हों तो वे दो सौ पर और हज़ार आदमी ऐसे हों तो दो हज़ार पर अल्लाह के हुक्म से ग़ालिब होंगे[48], और अल्लाह उन लोगों के साथ है जो सब्र करनेवाले हैं।

47. आजकल की इस्तिलाह (परिभाषा) में जिस चीज़ को अन्दरूनी क़ुव्वत या अख़लाक़ी क़ुव्वत (Morale) कहते हैं, अल्लाह ने उसी को जानना और समझ-बूझ (Understanding) कहा है और यह लफ़्ज़ इस मानी और मतलब के लिए नई इस्तिलाह से ज़्यादा साइंटिफ़िक है। जो शख़्स अपने मक़सद का सही शुऊर रखता हो और ठण्डे दिल से ख़ूब सोच-समझकर इसलिए लड़ रहा हो कि जिस चीज़ के लिए वह जान की बाज़ी लगाने आया है वह उसकी इनफ़िरादी ज़िन्दगी से ज़्यादा क़ीमती है और उसके ख़त्म हो जाने के बाद जीना बेक़ीमत है, वह बेशुऊरी के साथ लड़नेवाले आदमी से कई गुनी ज़्यादा ताक़त रखता है। हालाँकि जिस्मानी ताक़त में दोनों के बीच कोई फ़र्क़ न हो। फिर जिस शख़्स को हक़ीक़त का शुऊर हासिल हो, जो अपनी हस्ती और ख़ुदा की हस्ती और ख़ुदा के साथ अपने ताल्लुक़ और दुनिया की ज़िन्दगी की हक़ीक़त और मौत की हक़ीक़त और मौत के बाद की ज़िन्दगी की हक़ीक़त को अच्छी तरह जानता हो, और जिसे हक़ और बातिल के फ़र्क़ और बातिल के ग़ल्बे के नतीजों की भी सही जानकारी हो, उसकी ताक़त को तो वे लोग भी नहीं पहुँच सकते जो क़ौमियत या वतनियत या तबक़ाती झगड़ों का शुऊर लिए हुए मैदान में आएँ। इसी लिए कहा गया है कि एक समझ-बूझ रखनेवाले मोमिन और एक ग़ैर-मोमिन के बीच हक़ीक़त के शुऊर होने और शुऊर न होने की वजह से फ़ितरी तौर पर एक और दस की निस्बत है। लेकिन यह निस्बत सिर्फ़ समझ-बूझ से क़ायम नहीं होती बल्कि उसके साथ सब्र की सिफ़त भी एक लाज़िमी शर्त है।

48. इसका यह मतलब नहीं है कि पहले एक और दस की निस्बत थी और अब चूँकि तुममें कमज़ोरी आ गई है इसलिए एक और दो की निस्बत क़ायम कर दी गई है, बल्कि इसका सही मतलब यह है कि उसूली और मेयारी हैसियत से तो ईमानवालों और ग़ैर-ईमानवालों के बीच

مَا كَانَ لِنَبِيٍّ أَنْ يَكُونَ لَهُ أَسْرَىٰ حَتَّىٰ يُثْخِنَ فِي الْأَرْضِ ۚ تُرِيدُونَ
عَرَضَ الدُّنْيَا ۖ وَاللَّهُ يُرِيدُ الْآخِرَةَ ۗ وَاللَّهُ عَزِيزٌ حَكِيمٌ ﴿٦٧﴾ لَوْلَا كِتَابٌ
مِنَ اللَّهِ سَبَقَ لَمَسَّكُمْ فِيمَا أَخَذْتُمْ عَذَابٌ عَظِيمٌ ﴿٦٨﴾ فَكُلُوا مِمَّا
غَنِمْتُمْ حَلَالًا طَيِّبًا ۚ وَاتَّقُوا اللَّهَ ۚ إِنَّ اللَّهَ غَفُورٌ رَحِيمٌ ﴿٦٩﴾ ع

---

(67) किसी नबी के लिए यह सही नहीं है कि उसके पास क़ैदी हों जब तक कि वह ज़मीन में दुश्मनों को अच्छी तरह कुचल न दे। तुम लोग दुनिया के फ़ायदे चाहते हो, हालाँकि अल्लाह के सामने आख़िरत है, और अल्लाह ग़ालिब और हिक्मतवाला है। (68) अगर अल्लाह का लिखा पहले न लिखा जा चुका होता तो जो कुछ तुम लोगों ने लिया है उसके बदले में तुमको बड़ी सज़ा दी जाती। (69) तो जो कुछ तुमने माल हासिल किया है, उसे खाओ कि वह हलाल (वैध) और पाक है और अल्लाह से डरते रहो।[49] यक़ीनन अल्लाह माफ़ करनेवाला और रहम करनेवाला है।

एक और दस ही की निस्बत है, लेकिन चूँकि अभी तुम लोगों की अख़लाक़ी तरबियत मुकम्मल नहीं हुई है और अभी तक तुम्हारा शुऊर और तुम्हारी समझ-बूझ का पैमाना बुलूग़ (परिपक्वता) की हद को नहीं पहुँचा है, इसलिए फ़ौरी तौर पर तुमसे यह मुतालबा किया जाता है कि अपने से दो गुनी ताक़त से टकराने में तो तुम्हें कोई झिझक नहीं होनी चाहिए। ख़याल रहे कि यह फ़रमान सन् 2 हिजरी का है जबकि मुसलमानों में बहुत-से लोग अभी ताज़ा-ताज़ा ही इस्लाम में दाख़िल हुए थे और उनकी तरबियत शुरुआती हालत में थी। बाद में जब नबी (सल्ल.) की रहनुमाई में ये लोग मज़बूती को पहुँच गए तो हक़ीक़त में उनके और दुश्मनों के बीच एक और दस की ही निस्बत क़ायम हो गई। चुनाँचे नबी (सल्ल.) के आख़िरी दौर और ख़ुलफ़ा-ए-राशिदीन के ज़माने की लड़ाइयों में बार-बार इसका तजरिबा हुआ है।

49. इस आयत की तफ़सीर में मतलब बयान करनेवालों ने जो रिवायतें बयान की हैं ये ये हैं कि बद्र की लड़ाई में क़ुरैश के लश्कर के जो लोग गिरफ़्तार हुए थे उनके बारे में बाद में मशविरा हुआ कि उनके साथ क्या सुलूक किया जाए। हज़रत अबू-बक्र (रज़ि.) ने राय दी की फ़िदया (जुर्माना) लेकर छोड़ दिया जाए, और हज़रत उमर (रज़ि.) ने कहा कि क़त्ल कर दिया जाए। नबी (सल्ल.) ने हज़रत अबू-बक्र (रज़ि.) की राय क़बूल की और फ़िदये का मामला तय कर लिया। इसपर अल्लाह ने गुस्सा ज़ाहिर करते हुए ये आयतें नाज़िल कीं। मगर मुफ़स्सिरीन आयत के उस टुकड़े का कोई मतलब नहीं बता सके हैं कि "अगर अल्लाह का लेख पहले न

लिखा जा चुका होता।'' वे कहते हैं कि इससे मुराद तक़दीरे-इलाही है, या यह कि अल्लाह पहले ही यह इरादा कर चुका था कि मुसलमानों के लिए ग़नीमतों को हलाल कर देगा। लेकिन यह ज़ाहिर है कि जब तक क़ानूनी तौर से वह्य के ज़रिए से किसी चीज़ की इजाज़त न दी गई हो, इसका लेना जाइज़ नहीं हो सकता। तो नबी (सल्ल॰) समेत पूरी इस्लामी जमाअत इस मतलब की रू से गुनाहगार क़रार पाती है और ऐसे मतलब को अख़बारे-अहाद (कुछ रावियों के ज़रिए बयान की गई रिवायतों) के भरोसे पर क़बूल कर लेना एक बड़ी ही सख़्त बात है।

मेरे नज़दीक इस मक़ाम की सही तफ़सीर यह है कि जंगे-बद्र से पहले सूरा मुहम्मद में जंग के बारे में जो शुरुआती हिदायतें दी गई थीं, उनमें यह कहा गया था कि ''जब इन इनकार करनेवालों से तुम्हारी मुठभेड़ हो तो पहला काम गरदनें मारना है, यहाँ तक कि जब तुम उनको अच्छी तरह कुचल दो तब क़ैदियों को मज़बूत बाँधो, इसके बाद (तुम्हें इख़्तियार है कि) एहसान करो या फ़िदिया (अर्थदण्ड) का मामला कर लो, यहाँ तक कि लड़ाई अपने हथियार डाल दे।'' (क़ुरआन, 47:4) इस फ़रमान में जंगी क़ैदियों से फ़िदया वुसूल करने की इजाज़त तो दे दी गई थी, लेकिन उसके साथ शर्त यह लगाई गई थी कि पहले दुश्मन की ताक़त को अच्छी तरह कुचल दिया जाए फिर क़ैदी पकड़ने की फ़िक्र की जाए। इस फ़रमान के मुताबिक़ मुसलमानों ने बद्र में जो क़ैदी गिरफ़्तार किए और उसके बाद उनसे जो फ़िदया वुसूल किया वह था तो इजाज़त के मुताबिक़, मगर ग़लती यह हुई कि 'दुश्मन की ताक़त को कुचल देने' की जो शर्त पहले रखी गई थी उसे पूरा करने में कोताही की गई। जंग में जब क़ुरैश की फ़ौज भाग निकली तो मुसलमानों का एक बड़ा गरोह ग़नीमत लूटने और दुश्मनों के आदमियों को पकड़-पकड़कर बाँधने में लग गया और बहुत कम आदमियों ने दुश्मनों का कुछ दूर तक पीछा किया। हालाँकि अगर मुसलमान पूरी ताक़त से उनका पीछा करते तो क़ुरैश की ताक़त का उसी दिन ख़ातिमा हो गया होता। इसी पर अल्लाह ग़ुस्सा ज़ाहिर कर रहा है, और यह ग़ुस्सा नबी (सल्ल॰) पर नहीं है, बल्कि मुसलमानों पर है। अल्लाह के कहने का मंशा यह है कि ''तुम लोग अभी नबी के मिशन को अच्छी तरह नहीं समझे हो। नबी का अस्ल काम यह नहीं है कि फ़िदये और ग़नीमतें वुसूल करके ख़ज़ाने भरे, बल्कि उसके मक़सद से जो चीज़ सीधे तौर पर ताल्लुक़ रखती है वह सिर्फ़ यह है कि कुफ़्र की ताक़त टूट जाए। मगर तुम लोगों पर बार-बार दुनिया का लालच ग़ालिब हो जाता है। पहले दुश्मन की अस्ल ताक़त के बजाए क़ाफ़िले पर हमला करना चाहा, फिर दुश्मन का सिर कुचलने के बजाए ग़नीमत लूटने और क़ैदी पकड़ने में लग गए, फिर ग़नीमत पर झगड़ने लगे। अगर हम पहले फ़िदया वुसूल करने की इजाज़त न दे चुके होते तो इसपर तुम्हें सख़्त सज़ा देते। ख़ैर अब जो कुछ तुमने लिया है वह खा लो, मगर आइन्दा ऐसी रविश (हरकत) से बचते रहो जो अल्लाह के नज़दीक नापसन्दीदा है।'' मैं इस राय पर पहुँच चुका था कि इमाम जस्सास की किताब अहकामुल-क़ुरआन में यह देखकर मुझे और ज़्यादा इत्मीनान हासिल हुआ कि इमाम साहिब भी इस तावील को कम-से-कम क़ाबिले-लिहाज़ ज़रूर क़रार देते हैं। फिर सीरत इब्ने-हिशाम में यह रिवायत नज़र से गुज़री कि जिस वक़्त मुजाहिदीने-इस्लाम माले-ग़नीमत लूटने और दुश्मनों के आदमियों को पकड़-पकड़कर बाँधने में लगे हुए थे, नबी (सल्ल॰) ने देखा कि हज़रत साद-बिन-मुआज़ के चेहरे पर कुछ नापसन्दीदगी

يٰۤاَيُّهَا النَّبِيُّ قُلْ لِّمَنْ فِيْۤ اَيْدِيْكُمْ مِّنَ الْاَسْرٰۤى ۙ اِنْ يَّعْلَمِ اللّٰهُ فِيْ
قُلُوْبِكُمْ خَيْرًا يُّؤْتِكُمْ خَيْرًا مِّمَّاۤ اُخِذَ مِنْكُمْ وَيَغْفِرْ لَكُمْ ؕ وَاللّٰهُ غَفُوْرٌ
رَّحِيْمٌ ۝٧٠ وَاِنْ يُّرِيْدُوْا خِيَانَتَكَ فَقَدْ خَانُوا اللّٰهَ مِنْ قَبْلُ فَاَمْكَنَ
مِنْهُمْ ؕ وَاللّٰهُ عَلِيْمٌ حَكِيْمٌ ۝٧١ اِنَّ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَهَاجَرُوْا وَجٰهَدُوْا
بِاَمْوَالِهِمْ وَاَنْفُسِهِمْ فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ وَالَّذِيْنَ اٰوَوْا وَّنَصَرُوْۤا اُولٰٓئِكَ
بَعْضُهُمْ اَوْلِيَآءُ بَعْضٍ ؕ وَالَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَلَمْ يُهَاجِرُوْا مَا لَكُمْ مِّنْ

---

(70) ऐ नबी! तुम लोगों के क़ब्ज़े में जो क़ैदी हैं उनसे कहो, अगर अल्लाह को मालूम हुआ कि तुम्हारे दिलों में कुछ भलाई है तो वह तुम्हें उससे बढ़-चढ़कर देगा जो तुमसे लिया गया है, और तुम्हारी ग़लतियाँ माफ़ करेगा। अल्लाह माफ़ करनेवाला और रहम करनेवाला है। (71) लेकिन अगर वे तेरे साथ ख़ियानत का इरादा रखते हैं तो इससे पहले वे अल्लाह के साथ ख़ियानत कर चुके हैं, तो उसी की सज़ा अल्लाह ने उन्हें दी कि वे तेरे क़ाबू में आ गए। अल्लाह सब कुछ जानता और गहरी समझवाला है।

(72) जिन लोगों ने ईमान अपनाया और हिजरत की (घर-बार छोड़ा) और अल्लाह की राह में अपनी जानें लड़ाईं और अपने माल खपाए, और जिन लोगों ने हिजरत करनेवालों को जगह दी और उनकी मदद की, वही अस्ल में एक-दूसरे के वली (सरपरस्त) हैं। रहे वे लोग जो ईमान तो ले आए मगर हिजरत करके (दारुल-इस्लाम यानी इस्लामी राज्य में) आ नहीं गए तो उनसे तुम्हारा 'विलायत' (सरपरस्ती) का कोई

के आसार हैं। नबी (सल्ल.) ने उनसे पूछा कि "ऐ साद, मालूम होता है कि लोगों कि यह कार्रवाई तुम्हें पसन्द नहीं आ रही है।" उन्होंने जवाब दिया कि "जी हाँ, ऐ अल्लाह के रसूल, यह पहली लड़ाई है कि जिसमें अल्लाह ने मुशरिकों को शिकस्त दिलवाई है, इस मौक़े पर इन्हें क़ैदी बनाकर उनकी जानें बचा लेने से ज़्यादा बेहतर यह था कि उनको ख़ूब कुचल डाला जाता।" (देखें—सीरत इब्ने-हिशाम, जिल्द-2, पेज 280 और 281)

وَلَايَتِهِمْ مِّنْ شَيْءٍ حَتّٰى يُهَاجِرُوْا ۚ وَاِنِ اسْتَنْصَرُوْكُمْ فِي الدِّيْنِ

ताल्लुक़ नहीं है, जब तक कि वे हिजरत करके न आ जाएँ।[50] हाँ, अगर वे दीन के

50. यह आयत इस्लाम के दस्तूरी (संवैधानिक) क़ानून की एक अहम दफ़ा (धारा) है। इसमें यह उसूल मुक़र्रर किया गया है कि 'विलायत' (सरपरस्ती) का ताल्लुक़ सिर्फ़ उन मुसलमानों के बीच होगा जो या तो दारुल-इस्लाम के बाशिन्दे हों, या अगर बाहर से आएँ तो हिजरत करके आ जाएँ। बाक़ी रहे वे मुसलमान जो इस्लामी रियासत (State) की हद से बाहर हों तो उनके साथ मज़हबी भाईचारा तो ज़रूर क़ायम रहेगा, लेकिन 'विलायत' का ताल्लुक़ बाक़ी न होगा। और इसी तरह उन मुसलमानों से भी यह विलायत का ताल्लुक़ न रहेगा जो हिजरत करके न आएँ, बल्कि दारुल-कुफ़्र की रिआया होने की हैसियत से दारुल-इस्लाम में आएँ। 'विलायत' का लफ़्ज़ अरबी ज़बान में हिमायत, नुसरत, मदद, पुश्तपनाही, दोस्ती, क़राबत, सरपरस्ती और इससे मिलते-जुलते मानी के लिए बोला जाता है। और इस आयत के सियाक़ व सबाक़ (सन्दर्भ) में साफ़ तौर पर इससे मुराद वह रिश्ता है जो एक रियासत का अपने शहरियों से, और शहरियों का अपनी रियासत से, और ख़ुद शहरियों का आपस में होता है। इसलिए यह आयत 'दस्तूरी व सियासी विलायत' को इस्लामी रियासत की ज़मीनी हदों तक महदूद कर देती है, और उन हदों से बाहर के मुसलमानों को इस ख़ास रिश्ते से बाहर रखती है। इस विलायत के न होने के क़ानूनी नतीजे बहुत फैले हुए हैं, जिनकी तफ़सील बयान करने का यहाँ मौक़ा नहीं है। मिसाल के तौर पर सिर्फ़ इतना इशारा काफ़ी होगा कि इस विलायत के न होने की बिना पर दारुल-कुफ़्र और दारुल-इस्लाम के मुसलमान एक-दूसरे के वारिस नहीं हो सकते, एक-दूसरे के क़ानूनी वली (Guardian) नहीं बन सकते, आपस में शादी-बयाह नहीं कर सकते और इस्लामी हुकूमत किसी ऐसे मुसलमान को अपने यहाँ ज़िम्मेदारी का पद नहीं दे सकती जिसने दारुल-कुफ़्र से शहरियत का ताल्लुक़ न तोड़ा हो। इसके अलावा यह आयत इस्लामी हुकूमत की ख़ारिजी सियासत (विदेश-राजनीति Foreign Politics) पर भी बड़ा असर डालती है। इसके मुताबिक़ इस्लामी हुकूमत की ज़िम्मेदारी उन मुसलमानों तक महदूद है जो उसकी हदों के अन्दर रहते हैं। बाहर के मुसलमानों के लिए किसी ज़िम्मेदारी का भार उसके सिर नहीं है। यही वह बात है जो नबी (सल्ल॰) ने इस हदीस में कही है कि "मैं किसी ऐसे मुसलमान की हिमायत और हिफ़ाज़त का ज़िम्मेदार नहीं हूँ जो मुशरिकों के बीच रहता हो।" इस तरह इस्लामी क़ानून ने उस झगड़े की जड़ काट दी है जो आम तौर से बैनुल-अक़वामी (अन्तर्राष्ट्रीय) पेचीदगियों का सबब बनता है; क्योंकि जब कोई हुकूमत अपनी हदों से बाहर रहनेवाली कुछ अक़लियतों (Minorities) की ज़िम्मेदारी अपने सिर ले लेती है तो उसकी वजह से ऐसी उलझनें पड़ जाती हैं जिनको बार-बार की लड़ाइयाँ भी नहीं सुलझा सकतीं।

فَعَلَيْكُمُ النَّصْرُ اِلَّا عَلٰى قَوْمٍ بَيْنَكُمْ وَبَيْنَهُمْ مِّيْثَاقٌ ۭ وَاللّٰهُ بِمَا
تَعْمَلُوْنَ بَصِيْرٌ ۝ وَالَّذِيْنَ كَفَرُوْا بَعْضُهُمْ اَوْلِيَاۗءُ بَعْضٍ ۭ اِلَّا تَفْعَلُوْهُ

मामले में तुमसे मदद माँगे तो उनकी मदद करना तुमपर ज़रूरी है, लेकिन किसी ऐसी क़ौम के ख़िलाफ़ नहीं जिससे तुम्हारा समझौता हो।[51] जो कुछ तुम करते हो अल्लाह उसे देखता है। (73) जो लोग हक़ के इनकारी हैं, वे एक-दूसरे की हिमायत करते हैं। अगर

51. ऊपर की आयत में दारुल-इस्लाम से बाहर रहनेवाले मुसलमानों को ''सियासी विलायत'' (सियासी सरपस्ती) के रिश्ते से ख़ारिज क़रार दिया गया था। अब यह आयत इस बात की वज़ाहत करती है कि इस रिश्ते से ख़ारिज होने के बावजूद वे ''दीनी उख़ूवत'' (दीनी भाईचारा) के रिश्ते से बाहर नहीं हैं। अगर कहीं उनपर ज़ुल्म हो रहा हो और वे इस्लामी बिरादरी के ताल्लुक़ की बुनियाद पर दारुल-इस्लाम की हुकूमत और उसके बाशिन्दों से मदद माँगें तो उनका फ़र्ज़ है कि अपने उन मज़लूम भाइयों की मदद करें। लेकिन उसके बाद और ज़्यादा वज़ाहत करते हुए कहा गया कि इन दीनी भाइयों की मदद का फ़र्ज़ अन्धाधुन्ध अंजाम नहीं दिया जाएगा, बल्कि बैनुल-अक़वामी ज़िम्मेदारियों और अख़लाक़ी हदों का पास और लिहाज़ रखते हुए ही अंजाम दिया जा सकेगा। अगर ज़ुल्म करनेवाली क़ौम से दारुल-इस्लाम के समझौते की बिना पर ताल्लुक़ात हों तो इस सूरत में मज़लूम मुसलमानों की कोई ऐसी मदद नहीं की जा सकेगी जो उन ताल्लुक़ात की अख़लाक़ी ज़िम्मेदारियों के ख़िलाफ़ पड़ती हो।

आयत में मुआहिदे के लिए 'मीसाक़' लफ़्ज़ इस्तेमाल हुआ है। इसका माद्दा 'वसूक़' है जो अरबी ज़बान की तरह उर्दू ज़बान में भी भरोसे और एतिमाद के लिए इस्तेमाल होता है। मीसाक़ हर उस चीज़ को कहेंगे जिसकी बुनियाद पर कोई क़ौम आम तरीक़े से यह भरोसा करने में हक़ बजानिब हो कि हमारे और इसके बीच जंग नहीं है, यह बात और है कि हमारा उसके साथ वाज़ेह तौर पर लड़ाई न करने का अहद व समझौता हुआ हो या न हुआ हो।

फिर आयत में 'बैनकुम व बैनहुम मीसाक़' के अलफ़ाज़ इस्तेमाल हुए हैं। यानी 'तुम्हारे और उनके बीच मुआहिदा हो।'' इससे यह साफ़ पता चलता है कि दारुल-इस्लाम की हुकूमत ने जो मुआहिदाना ताल्लुक़ात किसी ग़ैर-मुस्लिम हुकूमत से क़ायम किए हों वे सिर्फ़ दो हुकूमतों के ताल्लुक़ात ही नहीं हैं बल्कि दो क़ौमों के ताल्लुक़ात भी हैं और उनकी अख़लाक़ी ज़िम्मेदारियों में मुसलमान हुकूमत के साथ मुसलमान क़ौम और उसके लोग भी शरीक हैं। इस्लामी शरीअत इस बात को बिलकुल जाइज़ नहीं रखती कि मुस्लिम हुकूमत जो मामले किसी मुल्क या क़ौम से तय करे उनकी अख़लाक़ी ज़िम्मेदारियों से मुसलमान क़ौम या उसके लोग आज़ाद रहें। अलबत्ता दारुल-इस्लाम की हुकूमत के मुआहिदों की पाबन्दियाँ सिर्फ़ उन मुसलमानों पर ही लागू होंगी जो इस हुकूमत के दायरा-ए-अमल (कार्यक्षेत्र) में रहते हों। इस दायरे से बाहर दुनिया के बाक़ी मुसलमान किसी तरह भी उन ज़िम्मेदारियों में शरीक न होंगे। यही वजह है कि हुदैबिया में जो

تَكُنْ فِتْنَةٌ فِي الْأَرْضِ وَفَسَادٌ كَبِيرٌ ﴿٧٣﴾ وَالَّذِينَ آمَنُوا وَهَاجَرُوا
وَجَاهَدُوا فِي سَبِيلِ اللَّهِ وَالَّذِينَ آوَوا وَّنَصَرُوا أُولَٰئِكَ هُمُ
الْمُؤْمِنُونَ حَقًّا ۚ لَّهُم مَّغْفِرَةٌ وَرِزْقٌ كَرِيمٌ ﴿٧٤﴾ وَالَّذِينَ آمَنُوا مِن
بَعْدُ وَهَاجَرُوا وَجَاهَدُوا مَعَكُمْ فَأُولَٰئِكَ مِنكُمْ ۚ وَأُولُو الْأَرْحَامِ

तुम यह न करोगे तो ज़मीन में फ़ितना (उपद्रव) और बड़ा फ़साद पैदा होगा।[52]

(74, 75) जो लोग ईमान लाए और जिन्होंने अल्लाह की राह में घर-बार छोड़े और जिद्दोजुहद की और जिन्होंने पनाह दी और मदद की, वही सच्चे ईमानवाले हैं। उनके लिए ग़लतियों की माफ़ी है और बेहतरीन रोज़ी है। और जो लोग बाद में ईमान लाए और घर-बार छोड़कर आ गए और तुम्हारे साथ मिलकर जिद्दोजुहद करने लगे, वे भी तुम ही में शामिल हैं, मगर अल्लाह की किताब में ख़ून के रिश्तेदार

सुलह नबी (सल्ल॰) ने मक्का के इस्लाम-दुश्मनों से की थी उसकी बुनियाद पर कोई पाबन्दी हज़रत अबू-बुसैर और अबू-जन्दल और उन दूसरे मुसलमानों पर लागू नहीं हुई जो दारुल-इस्लाम की रिआया न थे।

52. आयत के इस टुकड़े का ताल्लुक़ अगर सबसे क़रीबवाले टुकड़े से माना जाए तो मतलब यह होगा कि जिस तरह इस्लाम के दुश्मन एक-दूसरे की हिमायत करते हैं अगर तुम ईमानवाले उसी तरह आपस में एक-दूसरे की हिमायत न करो तो ज़मीन में फ़ितना और बहुत बड़ा फ़साद बरपा होगा। और अगर इसका ताल्लुक़ उन तमाम हिदायतों से माना जाए जो आयत-72 से यहाँ तक दी गई हैं, तो इसे कहने का मतलब यह होगा कि अगर दारुल-इस्लाम के मुसलमान एक-दूसरे के वली न बनें, और अगर हिजरत कर के दारुल-इस्लाम में न आनेवाले और दारुल-कुफ़्र में ठहरे रहनेवाले मुसलमानों को दारुल-इस्लामवाले अपनी सियासी विलायत से ख़ारिज न समझें, और अगर बाहर के मज़लूम मुसलमानों के मदद माँगने पर उनकी मदद न की जाए, और अगर उसके साथ-साथ इस क़ायदे की पाबन्दी भी न की जाए कि जिस क़ौम से मुसलमानों का मुआहिदा हो उसके ख़िलाफ़ मदद माँगनेवाले मुसलमानों की मदद न की जाएगी, और अगर मुसलमान इस्लाम दुश्मनों से दोस्ती और सरपरस्ती का ताल्लुक़ ख़त्म न करें, तो ज़मीन में फ़ितना और बहुत बड़ा फ़साद बरपा होगा।

بَعۡضُهُمۡ اَوۡلٰى بِبَعۡضٍ فِىۡ كِتٰبِ اللّٰهِ‌ؕ اِنَّ اللّٰهَ بِكُلِّ شَىۡءٍ عَلِيۡمٌ ۝75 ع

एक-दूसरे के ज़्यादा हक़दार हैं।[53] यक़ीनन अल्लाह हर चीज़ को जानता है।

53. मुराद यह है कि इस्लामी भाइचारे की बुनियाद पर मीरास तक़सीम न होगी और न वे हक़ जो ख़ानदानी और ससुराली रिश्ते के ताल्लुक़ की बुनियाद पर लागू होते हैं, दीनी भाइयों को एक-दूसरे के मामले में हासिल होंगे। इन मामलों में इस्लामी ताल्लुक़ के बजाए रिश्तेदारी का ताल्लुक़ ही क़ानूनी हक़ों की बुनियाद रहेगा। यह बात इस बिना पर कही गई है कि हिजरत के बाद नबी (सल्ल॰) ने मुहाजिरों और अनसार के बीच जो भाईचारा कराया था उसकी वजह से कुछ लोग यह समझ रहे थे कि ये दीनी भाई एक-दूसरे के वारिस भी होंगे।

☆☆☆

[illegible]

[illegible]

[illegible]

☆☆☆

[illegible]

9. अत-तौबा

परिचय

नाम

यह सूरा दो नामों से मशहूर है। एक 'अत-तौबा', दूसरे 'अल-बराअत'। 'तौबा' इस लिहाज़ से कि इसमें एक जगह कुछ ईमानवालों की ग़लतियों की माफ़ी का ज़िक्र है और 'बराअत' इस लिहाज़ से कि इसके शुरू में मुशरिकों के बारे में अपनी ज़िम्मेदारी से बरी होने का एलान है।

बिसमिल्लाह न लिखने की वजह

इस सूरा के शुरू में 'बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम' नहीं लिखी जाती। इसकी बहुत-सी वजहें मुफ़स्सिरों ने बयान की हैं, जिनमें बहुत कुछ इख़्तिलाफ़ है। मगर सही बात वही है जो (क़ुरआन के बहुत बड़े आलिम और मुफ़स्सिर) इमाम राज़ी (रह॰) ने लिखी है कि नबी (सल्ल॰) ने ख़ुद इसके शुरू में 'बिसमिल्लाह' नहीं लिखवाई थी, इसलिए सहाबा (रज़ि॰) ने भी नहीं लिखी और बाद के लोग भी इसी की पैरवी करते रहे। यह इस बात का एक और सुबूत है कि क़ुरआन को नबी (सल्ल॰) से ज्यों का त्यों लेने और जैसा दिया गया था, वैसा ही इसको महफ़ूज़ रखने में कितनी ज़्यादा एहतियात और एहतिमाम से काम लिया गया है।

उतरने का ज़माना और सूरा के हिस्से

इस सूरा में तीन तक़रीरें हैं—

पहली तक़रीर सूरा के शुरू से आयत-27 तक चलती है। इसके उतरने का ज़माना ज़ी-क़ादा 9 हिजरी (631 ई॰) या उसके लगभग है। नबी (सल्ल॰) उस साल हज़रत अबू-बक्र को हाजियों का अमीर मुक़र्रर करके मक्का रवाना कर चुके थे कि यह तक़रीर नाज़िल हुई और नबी (सल्ल॰) ने फ़ौरन हज़रत अली (रज़ि॰) को उनके पीछे, भेजा ताकि हज के मौक़े पर तमाम अरब के नुमाइन्दा इज्तिमा में इसे सुनाएँ और इसके मुताबिक़ जो रवैया पेश किया गया था उसका एलान कर दें।

दूसरी तक़रीर आयत-38 से आयत-72 तक चलती है और यह रजब 9 हिजरी (631 ई॰) या उससे कुछ पहले नाज़िल हुई, जबकि नबी (सल्ल॰) तबूक की जंग की तैयारी कर रहे थे। इसमें ईमानवालों को जिहाद पर उभारा गया है और उन लोगों को सख़्ती के

साथ मलामत की गई है जो निफ़ाक़ (कपट) या ईमान की कमज़ोरी या सुस्ती और काहिली की वजह से ख़ुदा की राह में जान व माल का नुक़सान बरदाश्त करने से जी चुरा रहे थे।

तीसरी तक़रीर आयत-73 से शुरू होकर सूरा के साथ ख़त्म होती है और यह तबूक की जंग से वापसी पर नाज़िल हुई। इसमें बहुत-सी आयतें ऐसी भी हैं जो उन्हीं दिनों में मुख़्तलिफ़ मौक़ों पर उतरीं और बाद में नबी (सल्ल॰) ने अल्लाह से इशारा पाकर उन सबको एक जगह करके तक़रीर के एक सिलसिले में पिरो दिया। मगर चूँकि वे एक ही मज़मून (विषय) और वाक़िआत के एक ही सिलसिले से ताल्लुक़ रखती हैं इसलिए तक़रीर के रब्त में कोई ख़लल नहीं पाया जाता। इसमें मुनाफ़िक़ों की हरकतों पर उन्हें ख़बरदार किया गया है, तबूक की मुहिम से पीछे रह जानेवालों को डाँट और फिटकार लगाई गई है और उन सच्चे ईमानवालों पर मलामत के साथ माफ़ी का एलान किया गया है जो अपने ईमान में सच्चे तो थे, मगर अल्लाह के रास्ते में जिहाद में हिस्सा लेने से रुके रहे थे।

उतरने की तरतीब के लिहाज़ से पहली तक़रीर सबसे आख़िर में आनी चाहिए थी, लेकिन मज़मून की अहमियत के लिहाज़ से वही इस लायक़ थी कि उसे पहले रखा जाए, इसलिए क़ुरआन मजीद की तरतीब में नबी (सल्ल॰) ने इसको पहले रखा और बाक़ी दोनों तक़रीरों को बाद में।

तारीख़ी पसमंज़र (ऐतिहासिक पृष्ठभूमि)

उतरने का ज़माना तय हो जाने के बाद हमें इस सूरा के तारीख़ी पसमंज़र पर एक निगाह डाल लेनी चाहिए। वाक़िआत के जिस सिलसिले से इसके मज़मूनों का ताल्लुक़ है उसकी शुरुआत हुदैबिया की सुलह (सन्धि) से होती है। हुदैबिया तक छः साल की मुसलसल जिद्दोजुहद का नतीजा इस शक्ल में सामने आ चुका था कि अरब के लगभग एक तिहाई हिस्से में इस्लाम एक मुनज़्ज़म (सुसंगठित) सोसाइटी का दीन, एक मुकम्मल तहज़ीब व तमद्दुन (सभ्यता और संस्कृति) और एक मुकम्मल बाइख़्तियार रियासत (Sovereign State) बन गया था। हुदैबिया की सुलह जब हुई तो इस दीन को यह मौक़ा भी हासिल हो गया कि अपने असरात पहले के मुक़ाबले अब ज़्यादा अम्न और इत्मीनान के माहौल में चारों तरफ़ फैला सके। (तफ़सील के लिए देखें—सूरा-5, माइदा और सूरा-48 फ़तह का **परिचय**) उसके बाद वाक़िआत की रफ़्तार ने दो बड़े रास्ते इख़्तियार किए जिनसे आगे चलकर निहायत अहम नतीजे सामने आए। इनमें से एक का ताल्लुक़ अरब से था और दूसरे का रूम (रोम) की सल्तनत से।

अरब फ़तह किया गया

अरब में हुदैबिया के बाद दावत और तबलीग़ और अपनी ताक़त को मज़बूत करने के लिए जो तदबीरें इख़्तियार की गईं, उनकी वजह से दो साल के अन्दर ही इस्लाम का दायर-ए-असर इतना फैल गया और उसकी ताक़त इतनी ज़बरदस्त हो गई कि पुरानी जाहिलियत उसके मुक़ाबले में बे-बस होकर रह गई। आख़िरकार जब क़ुरैश के ज़्यादा जोशीले लोगों ने बाज़ी को हारते हुए देखा तो उन्हें बरदाश्त न हुआ और उन्होंने हुदैबिया के मुआहिदे को तोड़ डाला। वे उस बन्दिश से आज़ाद होकर इस्लाम से एक आख़िरी फ़ैसलाकुन मुक़ाबला करना चाहते थे। लेकिन नबी (सल्ल॰) ने उनके इस अहद को तोड़ डालने के बाद उनको संभलने का कोई मौक़ा नहीं दिया और अचानक मक्का पर हमला करके रमज़ान 8 हिजरी (629 ई॰) में उसे फ़तह कर लिया। (देखें—सूरा-8 अनफ़ाल, हाशिया-43) इसके बाद पुराने जाहिली निज़ाम ने अपनी आख़िरी साँस हुनैन के मैदान में ली, जहाँ हवाज़िन, सक़ीफ़, नज़्र, जुशम और कुछ दूसरे जाहिलियत-परस्त क़बीलों ने अपनी सारी ताक़त लाकर झोंक दी, ताकि उस इस्लाही इंक़िलाब को रोकें जो मक्का की फ़तह के बाद पूरा होने के मरहले पर पहुँच चुका था। लेकिन यह हरकत भी नाकाम हुई और हुनैन की हार के साथ अरब की क़िस्मत का आख़िरी फ़ैसला हो गया कि उसे अब दारुल-इस्लाम बनकर रहना है। इस वाक़िए पर पूरा एक साल भी न गुज़रने पाया कि अरब का ज़्यादातर हिस्सा इस्लाम के दायरे में आ गया और जाहिली निज़ाम के सिर्फ़ कुछ इधर-उधर बिखरे हुए लोग देश के मुख़्तलिफ़ हिस्सों में बाक़ी रह गए। इस कामयाबी के मुकम्मल होने में उन वाक़िआत से और ज़्यादा मदद मिली जो उत्तर में रूमी सल्तनत की सरहद पर उसी ज़माने में पेश आ रहे थे। वहाँ जिस जुरअत के साथ नबी (सल्ल॰) 30 हज़ार का ज़बरदस्त लश्कर लेकर गए और रूमियों ने आप (सल्ल॰) के मुक़ाबले में न आकर जो कमज़ोरी दिखाई उसने तमाम अरब पर आप (सल्ल॰) की और आपके दीन की धाक बिठा दी और उसका नतीजा इस शक्ल में ज़ाहिर हुआ कि तबूक से वापस आते ही नबी (सल्ल॰) के पास अरब के कोने-कोने से लोग आने शुरू हो गए और वे इस्लाम और फ़रमाँबरदारी का इक़रार करने लगे। हदीस के आलिमों —मुहद्दिसीन— ने इस मौक़े पर जिन क़बीलों और मुल्क के सरबराहों —शासकों— का ज़िक्र किया है उनकी कुल तादाद 70 तक पहुँचती है, जो अरब के उत्तर-दक्षिण, पूर्व-पश्चिम हर इलाक़े से आए थे।) चुनाँचे इसी कैफ़ियत को क़ुरआन में बयान किया गया है कि "जब अल्लाह की मदद आ गई और फ़तह (जीत) नसीब हुई

और तूने देख लिया कि लोग फ़ौज-दर-फ़ौज इस्लाम में दाख़िल हो रहे हैं।" (सूरा-110 नस्र, आयत-1-2)

तबूक की लड़ाई

रूमी सल्तनत के साथ कशमकश की शुरुआत मक्का फ़तह होने से पहले ही हो चुकी थी। नबी (सल्ल॰) ने हुदैबिया के बाद इस्लाम की दावत फैलाने के लिए जो नुमाइन्दे अरब के मुख़्तलिफ़ हिस्सों में भेजे थे उनमें से एक शुमाल (उत्तर) की तरफ़ शाम की सरहद से लगे हुए क़बीलों में भी गया था। ये लोग ज़्यादातर ईसाई थे और रूमी सल्तनत के असर में थे। इन लोगों ने ज़ातुत्-तलह (या ज़ाते-अतलाह) के मक़ाम पर इस वफ़द के 15 आदमियों को क़त्ल कर दिया और सिर्फ़ वफ़्द के सरदार कअ़ब-बिन-उमैर ग़िफ़ारी बचकर वापस आए। उसी ज़माने में नबी (सल्ल॰) ने बसरा के सरदार शुरहबील-बिन-अम्र के नाम भी इस्लाम की दावत का पैग़ाम भेजा था, मगर उसने आप (सल्ल॰) के एलची हारिस-बिन-उमैर को क़त्ल कर दिया। यह सरदार भी ईसाई था और सीधे तौर पर रूम के बादशाह के अहकाम का ताबेअ़ था। इन वजहों से नबी (सल्ल॰) ने जुमादल-ऊला 8 हिजरी में तीन हज़ार मुजाहिदों की एक फ़ौज शाम की सरहद की तरफ़ भेजी, ताकि आइन्दा के लिए यह इलाक़ा मुसलमानों के लिए पुरअमन हो जाए और यहाँ के लोग मुसलमानों को बेज़ोर समझकर उनपर ज़्यादती करने की हिम्मत न करें। यह फ़ौज जब मआन के क़रीब पहुँची तो मालूम हुआ कि शुरहबील-बिन-अम्र एक लाख का लश्कर लेकर मुक़ाबले के लिए आ रहा है, खुद रूमी बादशाह हिम्स के मक़ाम पर मौजूद है और उसने अपने भाई थ्योडोर की सरदारी में एक लाख फ़ौज और रवाना की है। लेकिन इन ख़ौफ़नाक ख़बरों के बावजूद तीन हज़ार सरफ़रोशों का यह छोटा-सा दस्ता आगे बढ़ता चला गया और मुअ्ता के मक़ाम पर शुरहबील की एक लाख फ़ौज से जा टकराया। इस दिलेरी और बहादुरी का नतीजा यह होना चाहिए था कि इस्लामी फ़ौज बिलकुल पिस जाती, लेकिन सारा अरब और शरक़े-औसत (Middle East) यह देखकर हैरान रह गया कि एक और तैंतीस (33) के इस मुक़ाबले में भी इस्लाम दुश्मन मुसलमानों पर ग़ालिब न आ सके। यही चीज़ थी जिसने शाम और उससे लगे हुए उन अरबी क़बीलों को जो किसी न किसी हद तक आज़ाद थे, बल्कि इराक़ के क़रीब रहनेवाले नजदी क़बीलों को भी, जो किसरा (ईरानी बादशाह) के असर में थे, इस्लाम की तरफ़ फेर दिया और वे हज़ारों की तादाद में मुसलमान हो गए। बनी-सुलैम (जिनके सरदार अब्बास-बिन-मिरदास सुलमी थे) और अश्जअ और ग़तफ़ान और ज़ुबयान और

फ़ज़ारह के लोग इसी ज़माने में इस्लाम में दाख़िल हुए। और इसी ज़माने में रूम की सल्तनत की अरबी फ़ौजों का कमाण्डर फ़रवह-बिन-अम्र-अल-जुज़ामी मुसलमान हुआ जिसने अपने ईमान का ऐसा ज़बरदस्त सुबूत दिया कि आस-पास के सारे इलाक़े उसे देखकर दंग रह गए। क़ैसर (रूमी बादशाह) को जब फ़रवह के इस्लाम क़बूल करने की ख़बर मिली तो उसने उन्हें गिरफ़्तार कराके अपने दरबार में बुलवाया और उनसे कहा कि दो चीज़ों में से एक चुन लो। या तो इस्लाम को छोड़ दो, जिसके नतीजे में तुमको न सिर्फ़ रिहा किया जाएगा, बल्कि तुम्हें अपने ओहदे पर भी बहाल कर दिया जाएगा। या फिर इस्लाम को अपनाए रखो जिसके नतीजे में तुम्हें मौत की सज़ा दी जाएगी। उन्होंने ठण्डे दिल से इस्लाम को चुन लिया और राहे-हक़ के रास्ते में जान दे दी। यही वाक़िआत थे जिन्होंने क़ैसर को उस "ख़तरे" की हक़ीक़ी अहमियत महसूस कराई जो अरब से उठकर उसकी सल्तनत की तरफ़ बढ़ रहा था।

दूसरे ही साल क़ैसर ने मुसलमानों को मुअ्ता की जंग की सज़ा देने के लिए शाम (Syria) की सरहद पर फ़ौजी तैयारियाँ शुरू कर दीं और उसके मातहत ग़स्सानी और दूसरे अरब सरदार फ़ौजें इकट्ठी करने लगे। नबी (सल्ल.) इससे बे-ख़बर न थे। आप (सल्ल.) हर वक़्त हर उस छोटी-से-छोटी बात से भी ख़बरदार रहते थे जिसका इस्लामी तहरीक (आन्दोलन) पर कुछ भी अच्छा या बुरा असर पड़ता हो। आप (सल्ल.) ने उन तैयारियों के मानी फ़ौरन समझ लिए और बिना किसी देरी के क़ैसर की अज़ीमुश्शान ताक़त से टकराने का फ़ैसला कर लिया। इस मौक़े पर ज़र्रा बराबर भी कमज़ोरी दिखाई जाती तो सारा बना-बनाया काम बिगड़ जाता। एक तरफ़ अरब की दम तोड़ती हुई जाहिलियत, जिसपर हुनैन में आख़िरी चोट लगाई जा चुकी थी, फिर जी उठती। दूसरी तरफ़ मदीना के मुनाफ़िक़ जो अबू-आमिर राहिब के वास्ते से ग़स्सान के ईसाई बादशाह और ख़ुद क़ैसर के साथ अन्दरूनी साज़-बाज़ रखते थे और जिन्होंने अपनी शरारतों और रेशादवानियों पर दीनदारी का परदा डालने के लिए मदीना से लगी हुई मस्जिदे-ज़िरार बना रखी थी, बग़ल में छुरा घोंप देते। सामने से क़ैसर, जिसका दबदबा ईरानियों को शिकस्त देने के बाद तमाम दूर और पास के इलाक़ों पर छा गया था, हमला कर देता। और इन तीन ज़बरदस्त ख़तरों के एकजुट होकर किए जानेवाले हमले में इस्लाम की जीती हुई, बाज़ी यकायक मात खा जाती। इसलिए बावजूद इसके कि मुल्क में सूखा पड़ा हुआ था, गर्मी का मौसम पूरे शबाब पर था, फ़सलें पकने के क़रीब थीं, सवारियों और सरो-सामान का इन्तिज़ाम सख़्त मुश्किल था, सरमाए की बहुत कमी थी और दुनिया की दो सबसे बड़ी ताक़तों में से एक का मुक़ाबला सामने था, ख़ुदा के नबी ने यह देखकर

कि यह हक़ की दावत के लिए ज़िन्दगी और मौत के फ़ैसले की घड़ी है, इसी हाल में जंग की तैयारी का आम एलान कर दिया। पहले तमाम जंगों में तो नबी (सल्ल॰) का तरीक़ा यह था कि आख़िर वक़्त तक किसी को नहीं बताते थे कि किधर जाना है और किससे मुक़ाबिला करना है, बल्कि मदीना से निकलने के बाद भी मंज़िले-मक़सूद की तरफ़ सीधा रास्ता इख़्तियार करने के बजाए फेर के रास्ते से जाते थे। लेकिन इस मौक़े पर आप (सल्ल॰) ने यह परदा भी नहीं रखा और साफ़-साफ़ बता दिया कि रूम (रोम) से मुक़ाबला है और शाम की तरफ़ जाना है।

यह मौक़ा कितना नाज़ुक था इसको अरब में सभी महसूस कर रहे थे। पुरानी जाहिलियत के बचे-खुचे आशिक़ों के लिए यह उम्मीद की एक आख़िरी किरण थी और रूम और इस्लाम की इस टक्कर के नतीजे पर वे बेचैनी के साथ निगाहें लगाए हुए थे; क्योंकि वे ख़ुद भी जानते थे कि इसके बाद फिर कहीं से उम्मीद की झलक नहीं दिखाई देनी है। मुनाफ़िक़ों ने भी अपनी आख़िरी बाज़ी इसी पर लगा दी थी और वे अपनी मस्जिदे-ज़िरार बनाकर इस इन्तिज़ार में थे कि शाम की जंग में इस्लाम की क़िस्मत का पाँसा पलटे तो इधर मुल्क के अन्दर वे अपने फ़ितने का झण्डा बुलन्द करें। यही नहीं बल्कि उन्होंने इस मुहिम को नाकाम करने के लिए तमाम मुमकिन तदबीरें भी इस्तेमाल कर डालीं। इधर सच्चे ईमानवालों को भी पूरा एहसास था कि जिस तहरीक के लिए 22 साल से वे सर को हथेली पर रखे हुए हैं इस वक़्त उसकी क़िस्मत दाँव पर है, इस मौक़े पर जुरअत दिखाने का मतलब यह है कि इस तहरीक के लिए सारी दुनिया पर छा जाने का दरवाज़ा खुल जाए, और कमज़ोरी दिखाने का मतलब यह है कि अरब में भी उसकी बिसात उलट जाए। चुनाँचे इसी एहसास के साथ उन हक़ के फ़िदाइयों ने इन्तिहाई जोश-ख़रोश से जंग की तैयारी की। सरोसामान जुटाने में हर एक ने अपनी सकत से बढ़कर हिस्सा लिया। हज़रत उसमान और हज़रत अब्दुर्रहमान-बिन-औफ़ (रज़ि॰) ने बड़ी-बड़ी रक़में पेश कीं। हज़रत उमर (रज़ि॰) ने अपनी उम्र भर की कमाई का आधा हिस्सा लाकर रख दिया। हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) ने अपनी सारी पूँजी दे दी। ग़रीब सहाबियों ने मेहनत-मज़दूरी करके जो कुछ कमाया लाकर हाज़िर कर दिया। औरतों ने अपने ज़ेवर उतार-उतारकर दे दिए। सरफ़रोश वालंटियरों के लश्कर-के-लश्कर हर तरफ़ से उमड़-उमड़कर आने शुरू हुए और उन्होंने तक़ाज़ा किया कि हथियारों और सवारियों का इन्तिज़ाम हो तो हमारी जानें क़ुरबान होने को हाज़िर हैं। जिनको सवारियाँ न मिल सकीं वे रोते थे और अपने सच्चे दिल की बेताबियों का इज़हार इस तरह करते थे कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) का दिल भर आता था। यह मौक़ा अमली तौर पर ईमान और

निफ़ाक़ के फ़र्क़ की कसौटी बन गया था, यहाँ तक कि उस वक़्त पीछे रह जाने के मानी ये थे कि इस्लाम के साथ आदमी के ताल्लुक़ की सच्चाई ही शक में पड़ जाए। चुनाँचे तबूक की तरफ़ जाते हुए सफ़र के दौरान में जो-जो शख़्स पीछे रह जाता था सहाबा किराम नबी (सल्ल॰) को उसकी ख़बर देते थे और जवाब में नबी (सल्ल॰) फ़ौरन कहते थे कि "जाने दो, अगर उसमें कुछ भलाई है तो अल्लाह उसे फिर तुम्हारे साथ ला मिलाएगा और अगर कुछ दूसरी हालत है तो शुक्र करो कि अल्लाह ने उसकी झूठी दोस्ती और झूठी वफ़ादारी से तम्हें छुटकारा दे दिया।"

रजब 9 हिजरी में नबी (सल्ल॰) तीस (30) हज़ार मुजाहिदों के साथ शाम (Syria) की तरफ़ रवाना हुए जिनमें दस हज़ार सवार थे। ऊँटों की इतनी कमी थी कि एक-एक ऊँट पर कई-कई आदमी बारी-बारी सवार होते थे। इसपर गर्मी की शिद्दत और पानी की कमी भी थी। मगर जिस पक्के और सच्चे इरादे का सुबूत इस नाज़ुक मौक़े पर मुसलमानों ने दिया उसका नतीजा तबूक पहुँकर उन्हें नक़्द मिल गया। वहाँ पहुँचकर उन्हें मालूम हुआ कि क़ैसर और उसके लोगों ने मुक़ाबले पर आने के बजाए अपनी फ़ौजें सरहद से हटा ली हैं और अब कोई दुश्मन मौजूद नहीं है कि उससे जंग की जाए। सीरत लिखनेवाले आम तौर से इस वाक़िए को इस अन्दाज़ से लिख जाते हैं कि मानो ख़बर ही सिरे से ग़लत निकली जो नबी (सल्ल॰) को रूमी फ़ौजों के जमा होने के बारे में मिली थी। हालाँकि असल में वाक़िआ यह था कि क़ैसर ने फ़ौज को जमा करना शुरू किया था, लेकिन जब नबी (सल्ल॰) उसकी तैयारियाँ मुकम्मल होने से पहले ही मुक़ाबले पर पहुँच गए तो उसने सरहद से फ़ौज हटा लेने के सिवा कोई चारा न पाया। मुअ्ता की जंग में 3 हज़ार और एक लाख के मुक़ाबले की जो शान वह देख चुका था उसके बाद उसमें इतनी हिम्मत न थी कि ख़ुद नबी (सल्ल॰) की सरबराही में जहाँ 30 हज़ार फ़ौज आ रही हो वहाँ वह लाख दो लाख आदमी लेकर मैदान में आ जाता।

क़ैसर के यूँ पीछे हट जाने से जो अख़लाक़ी फ़तह हासिल हुई उसको नबी (सल्ल॰) ने इस मरहले पर काफ़ी समझा और बजाए इसके कि तबूक से आगे बढ़कर शाम की सरहद में दाख़िल होते, आप (सल्ल॰) ने इस बात को तरजीह दी कि इस फ़तह से जितने ज़्यादा मुमकिन हों सियासी और फ़ौजी फ़ायदे हासिल कर लें। चुनाँचे आप (सल्ल॰) ने तबूक में 20 दिन ठहरकर उन बहुत-सी छोटी-छोटी रियासतों को जो रूमी सल्तनत और दारूल-इस्लाम के बीच में थीं और अब तक रूमियों के असर में थीं, फ़ौजी दबाव से इस्लामी सल्तनत का बाजगुज़ार (ख़िराज या कर देनेवाला) और फ़रमाँबरदार बना लिया। इस सिलसिले में दूमतुल-जन्दल के ईसाई सरदार उकैदिर-बिन-अब्दुल-मलिक किन्दी, ऐला

के ईसाई सरदार यूहन्ना-बिन-रूबा और इसी तरह मक़ना, जरबा और अज़रुह के ईसाई सरदार भी जिज़्या अदा करके मदीना के ताबे हो गए और इसका नतीजा यह हुआ कि इस्लामी हदें और हुकूमत सीधे तौर पर रूमी सल्तनत की सरहद तक पहुँच गई और जिन अरब क़बीलों को रूमी बादशाह अब तक अरब के ख़िलाफ़ इस्तेमाल करते थे, अब उनका ज़्यादातर हिस्सा रूमियों के मुक़ाबले पर मुसलमानों का मददगार बन गया। फिर इसका सबसे बड़ा फ़ायदा यह हुआ कि रूमी सल्तनत के साथ एक लम्बी कशमकश में उलझ जाने से पहले इस्लाम को अरब पर अपनी पकड़ मज़बूत कर लेने का पूरा मौक़ा मिल गया। बग़ैर लड़ाई और जंग के हासिल होनेवाली तबूक की इस फ़तह ने अरब में उन लोगों की कमर तोड़ दी जो अब तक पुरानी जाहिलियत के बहाल होने की उम्मीद लगाए बैठे थे, चाहे वे खुले तौर पर मुशरिक हों या दिखावे के लिए तो वे मुसलमान बन गए हों लेकिन अंदर से हों मुनाफ़िक़ (इस्लाम-दुश्मन)। इस आख़िरी मायूसी ने उनमें से ज़्यादातर लोगों के लिए इसके सिवा कोई चारा न रहने दिया कि इस्लाम के दामन में पनाह लें और अगर ख़ुद ईमान की दौलत से मालामाल न भी हुए तो कम-से-कम उनकी आइन्दा नस्लें बिलकुल इस्लाम में घुल-मिल जाएँ। इसके बाद जो सिर्फ़ नाम के कुछ थोड़े से लोग शिर्क और जाहिलियत पर जमे रह गए वे इतने बे-बस हो गए थे, कि उस इस्लाही इंक़िलाब के पूरा होने में कुछ भी रुकावट न हो सकते थे जिसके लिए अल्लाह ने अपने रसूल को भेजा था।

मसाइल (समस्याएँ) और मबाहिस (वार्ताएँ)

इस पसमंज़र (पृष्ठभूमि) को निगाह में रखने के बाद हम बहुत आसानी के साथ उन बड़े-बड़े मसलों और मामलों को जान सकते हैं जो उस वक़्त सामने थे और जिनपर इस सूरा तौबा में बात की गई है :

(1) अब चूँकि अरब का इंतिज़ाम पूरे तौर पर ईमानवालों के हाथ में आ गया था और तमाम मुख़ालिफ़ ताक़तें बेबस हो चुकी थीं इसलिए वह पॉलिसी साफ़ तौर पर सामने आ जानी चाहिए थी जो अरब को पूरे तौर पर दारुल-इस्लाम बनाने के लिए इख़्तियार करनी ज़रूरी थी। चुनाँचे वे नीचे लिखी शक्ल में पेश की गई :

(अ) अरब से शिर्क (अनेकेश्वरवाद) को बिलकुल मिटा दिया जाए और पुराने मुशरिकाना निज़ाम को पूरे तौर पर जड़ से उखाड़ फेंका जाए, ताकि इस्लाम का यह मरकज़ (केंद्र) हमेशा के लिए ख़ालिस इस्लामी मरकज़ हो जाए और कोई दूसरी चीज़ इसके इस्लामी मिज़ाज में न तो ख़लल डाल सके और न किसी ख़तरे के मौक़े पर अन्दरूनी फ़ितने-फ़साद का सबब बन सके। इसी मक़सद के

लिए मुशरिकों से बराअत (अलगाव) और उनके साथ मुआहिदों के ख़ातिमे का एलान किया गया।

(ब) काबा का इन्तिज़ाम ईमानवालों के हाथ में आ जाने के बाद यह बिलकुल नामुनासिब था कि जो घर ख़ालिस ख़ुदा की परस्तिश और इबादत के लिए वक़्फ़ किया गया था उसमें बराबर शिर्क होता रहे और उसका इंतिज़ाम और उसकी ख़िदमत व निगरानी भी मुशरिकों के ज़िम्मे रहे। इसलिए हुक्म दिया गया कि आइन्दा काबा का इंतिज़ाम और उसकी ख़िदमत व निगरानी भी एक ख़ुदा को माननेवालों के ज़िम्मे रहनी चाहिए और अल्लाह के घर की हदों में शिर्क और जाहिलियत की तमाम रस्में भी ताक़त के बल पर बन्द कर देनी चाहिएँ, बल्कि अब मुशरिक लोग इस घर के क़रीब फटकने भी न पाएँ, ताकि हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) के बनाए हुए इस घर में शिर्क का कोई इमकान और अंदेशा बाक़ी न रहे।

(स) अरब की तमद्दुनी (सांस्कृतिक) ज़िन्दगी में जाहिली रस्मों के जो निशान अभी तक बाक़ी थे उनका नए इस्लामी दौर में जारी रहना किसी तरह दुरुस्त नहीं था। इसलिए इनको जड़ से उखाड़ फेंकने की तरफ़ तवज्जोह दिलाई गई। नसी का क़ायदा उन रस्मों में सबसे ज़्यादा बदनुमा था। इसलिए इस पर सीधे तौर पर चोट की गई और इसी चोट से मुसलमानों को बता दिया गया कि बाक़ी आसार और जाहिलियत के निशानों के साथ उन्हें क्या करना चाहिए।

(2) अरब में इस्लाम का मिशन पूरा हो जाने के बाद दूसरा अहम मरहला जो सामने था वह यह था कि अरब के बाहर दीने-हक़ का दायर-ए-असर (प्रभाव-क्षेत्र) फैलाया जाए। इस मामले में रूम और ईरान की सियासी ताक़त सबसे बड़ी रुकावट थी और बहुत-ही ज़रूरी था कि अरब के काम से फ़ारिग़ होते ही उससे टकराव हो। इसलिए आगे चलकर दूसरे ग़ैर-मुस्लिम सियासी व तमद्दुनी (राजनीतिक व सांस्कृतिक) निज़ामों से भी इसी तरह सामना होना था। इसलिए मुसलमानों को हिदायत की गई कि अरब के बाहर जो लोग दीने-हक़ के पैरो नहीं हैं उनकी ख़ुद-मुख़्ताराना फ़रमाँरवाई को तलवार के ज़ोर से ख़त्म कर दो, यहाँ तक कि वे इस्लामी हुकूमत के ताबे होकर रहना क़बूल कर लें। जहाँ तक उनके इस सच्चे दीन पर ईमान लाने का ताल्लुक़ है तो उनको इख़्तियार है कि ईमान लाएँ या न लाएँ, लेकिन उनको यह हक़ नहीं है कि ख़ुदा की ज़मीन पर अपना हुक्म जारी करें और इनसानी सोसाइटियों की बागडोर अपने हाथ में रखकर अपनी गुमराहियों को

अल्लाह की मख़्लूक़ पर और उनकी आनेवाली नस्लों पर ज़बरदस्ती मुसल्लत करते रहें। ज़्यादा-से-ज़्यादा जिस आज़ादी के इस्तेमाल का उन्हें इख़्तियार दिया जा सकता है वह बस उसी हद तक है कि ख़ुद अगर गुमराह रहना चाहते हैं तो रहें, बशर्ते कि जिज़्या देकर इस्लामी हुकूमत के फ़रमाँबरदार बने रहें।

(3) तीसरा अहम मसला मुनाफ़िक़ों का था जिनके साथ अब तक वक़्ती मसलिहतों के लिहाज़ से अनदेखी और माफ़ी का मामला किया जा रहा था। अब चूँकि बाहरी ख़तरों का दबाव कम हो गया था, बल्कि मानो रहा ही नहीं था, इसलिए हुक्म दिया गया है कि आइन्दा इनके साथ कोई नरमी न की जाए और वही सख़्त बरताव इन छिपे हुए हक़ के दुश्मनों के साथ भी हो जो खुले दुश्मनों के साथ होता है। चुनांचे यही पॉलिसी थी जिसके मुताबिक़ नबी (सल्ल.) ने ग़ज़्वा-ए-तबूक की तैयारी के ज़माने में स्वैलिम के घर में आग लगवा दी, जहाँ मुनाफ़िक़ों का एक गरोह इस मक़सद से जमा होता था कि मुसलमानों को जंग में शरीक होने से रोकने की कोशिश करे, और इसी पॉलिसी के तहत तबूक से वापस आते ही नबी (सल्ल.) ने पहला काम यह किया कि मस्जिदे-ज़िरार को ढाने और जला देने का हुक्म दे दिया।

(4) सच्चे ईमानवालों में अब तक जो थोड़ी-बहुत इरादे की कमज़ोरी बाक़ी थी उसका इलाज भी ज़रूरी था, क्योंकि इस्लाम आलमगीर (विश्वव्यापी) जिद्दोजुहद के मरहले में दाख़िल होनेवाला था और इस मरहले में, जबकि अकेले मुस्लिम अरब को पूरी ग़ैर-मुस्लिम दुनिया से टकराना था, कमज़ोर ईमान से बढ़कर कोई अन्दरूनी ख़तरा इस्लामी जमाअत के लिए नहीं हो सकता था। इसलिए जिन लोगों ने तबूक के मौक़े पर सुस्ती और कमज़ोरी दिखाई थी उनको बहुत ही शिद्दत के साथ मलामत की गई, पीछे रह जानेवालों के इस अमल को कि वे बिना किसी मुनासिब वजह के पीछे रह गए बजाए ख़ुद एक मुनाफ़िक़ाना रवैया और ईमान में उनके सच्चे न होने का एक खुला सुबूत क़रार दिया गया, और आइन्दा के लिए पूरी सफ़ाई के साथ यह बात वाज़ेह कर दी गई कि अल्लाह का बोलबाला करने की जिद्दोजुहद और कुफ़्र और इस्लाम की कशमकश ही वह असली कसौटी है जिस पर ईमानवाले के ईमान का दावा परखा जाएगा। जो इस कशमकश में इस्लाम के लिए जान और माल और वक़्त और मेहनत खपाने से जी चुराएगा उसका ईमान भरोसेमन्द ही न होगा और इस पहलू की कसर किसी दूसरे मज़हबी या दीनी अमल से पूरी न हो सकेगी।

इन बातों को सामने रखकर सूरा तौबा को पढ़ा जाए तो उसके तमाम मज़ामीन (विषय) आसानी के साथ समझ में आ सकते हैं।

ایاتها ۱۲۹ ۹ سُوْرَةُ التَّوْبَةِ مَدَنِيَّةٌ ۱۱۳ رکوعاتها ۱۶

بَرَآءَةٌ مِّنَ اللّٰهِ وَ رَسُوْلِهٖٓ اِلَى الَّذِيْنَ عٰهَدْتُّمْ مِّنَ الْمُشْرِكِيْنَ ۝١
فَسِيْحُوْا فِى الْاَرْضِ اَرْبَعَةَ اَشْهُرٍ وَّاعْلَمُوْٓا اَنَّكُمْ غَيْرُ مُعْجِزِى اللّٰهِ

9. अत-तौबा

(मदीना में उतरी— आयतें 129)

(1) बराअत (यानी समझौता ख़त्म करने) का एलान[1] है, अल्लाह और उसके रसूल की तरफ़ से उन मुशरिकों को जिनसे तुमने समझौते किए थे।[2] (2) तो तुम लोग मुल्क में चार महीने और चल-फिर लो[3] और जान रखो कि तुम अल्लाह को बेबस करनेवाले

1. जैसा कि हम सूरा के परिचय में बयान कर चुके हैं, यह ख़ुतबा आयत-37 तक 9 हिजरी में उस वक़्त नाज़िल हुआ था जब नबी (सल्ल॰) हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) को हज के लिए रवाना कर चुके थे। उनके पीछे जब ये आयतें नाज़िल हुईं तो सहाबा किराम ने नबी (सल्ल॰) से कहा कि उसे अबू-बक्र के पास भेज दीजिए ताकि वे हज में इसको सुना दें। लेकिन आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि इस अहम मामले का एलान मेरी तरफ़ से मेरे ही घर के किसी आदमी को करना चाहिए। चुनाँचे आप (सल्ल॰) ने हज़रत अली (रज़ि॰) को इस काम पर लगाया और साथ ही हिदायत कर दी कि हाजियों के आम मजमे में इसे सुनाने के बाद नीचे लिखी चार बातों का एलान भी कर दें—
(i) जन्नत में कोई ऐसा शख़्स दाख़िल नहीं होगा जो दीने-इस्लाम को क़बूल करने से इनकार करे।
(ii) इस साल के बाद कोई मुशरिक हज के लिए न आए।
(iii) बैतुल्लाह (काबा) के चारों तरफ़ नंगे होकर तवाफ़ करना मना है।
(iv) जिन लोगों के साथ अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) का मुआहिदा बाक़ी है, यानी जिन्होंने अहद नहीं तोड़ा है उनके मुआहिदे को मुद्दत पूरी होने तक बाक़ी रखा जाएगा।
इस मक़ाम पर यह जान लेना भी फ़ायदे से ख़ाली न होगा कि मक्का की फ़तह के बाद दौरे-इस्लामी का पहला हज 8 हिजरी में पुराने तरीक़े पर हुआ। फिर 9 हिजरी में यह दूसरा हज मुसलमानों ने अपने तरीक़े पर किया और मुशरिकों ने अपने तरीक़े पर। इसके बाद तीसरा हज 10 हिजरी में ख़ालिस इस्लामी तरीक़े पर हुआ और यही वह मशहूर हज है जिसे हज्जतुल-वदाअ कहते हैं। नबी (सल्ल॰) पहले दो साल हज के लिए नहीं गए। तीसरे साल जब बिलकुल शिर्क मिट गया तब आप (सल्ल॰) ने हज अदा किया।
2. सूरा-8 अनफ़ाल की आयत-58 में गुज़र चुका है कि जब तुम्हें किसी क़ौम से ख़ियानत (अहद

के तोड़ने और ग़द्दारी) का अन्देशा हो तो खुल्लम-खुल्ला उसका मुआहिदा उसकी तरफ़ फेंक दो और उसे ख़बरदार कर दो कि अब हमारा तुमसे कोई मुआहिदा बाक़ी नहीं है। इस एलान के बग़ैर किसी ऐसी क़ौम के ख़िलाफ़ जिसके साथ मुआहिदा हो चुका हो, जंगी कारवाई शुरू कर देना ख़ुद ख़ियानत करना है। इसी अख़लाक़ी ज़ाबिते के मुताबिक़ मुआहिदे के तोड़े जाने का यह आम एलान उन तमाम क़बीलों के ख़िलाफ़ किया गया जो अहदो-पैमान के बावजूद हमेशा इस्लाम के ख़िलाफ़ साज़िशें करते रहे थे और मौक़ा पाते ही अहद की पाबन्दी को उठाकर रख देते और दुश्मनी पर उतर आते थे। यह कैफ़ियत बनी-किनाना और बनी-ज़मरा और शायद एक-आध और क़बीले के सिवा बाक़ी उन तमाम क़बीलों की थी जो उस वक़्त तक शिर्क पर क़ायम थे।

बराअत (मुक्ति) के इस एलान से अरब में शिर्क और मुशरिकीन का वुजूद मानो अमली तौर पर क़ानून के ख़िलाफ़ हो गया और उनके लिए सारे मुल्क में पनाह लेने की कोई जगह न रही; क्योंकि मुल्क का ज़्यादातर हिस्सा इस्लामी हुकूमत के तहत आ चुका था। ये लोग तो अपनी जगह इस बात के इन्तिज़ार में थे कि रूम और फ़ारस की तरफ़ से इस्लामी सल्तनत को जब कोई ख़तरा पैदा हो, या नबी (सल्ल.) की वफ़ात हो जाए, तो यकायक अहद तोड़कर मुल्क में ख़ाना-जंगी बरपा कर दें। लेकिन अल्लाह और उसके रसूल ने उनके लिए इन्तिज़ार की उस घड़ी के आने से पहले ही चाल उलट दी और बराअत (मुक्ति) का एलान करके उनके लिए इसके सिवा कोई रास्ता बाक़ी न रहने दिया कि या तो लड़ने पर तैयार हो जाएँ और इस्लामी ताक़त से टकराकर अपना वुजूद ही ख़त्म कर डालें या मुल्क छोड़कर निकल जाएँ, या फिर इस्लाम क़बूल करके अपने आपको और अपने इलाक़े को उस निज़ाम के हवाले कर दें जो मुल्क के ज़्यादातर हिस्से को पहले ही अपने इंतिज़ाम में ले चुका था।

इस अज़ीमुश्शान तदबीर की पूरी हिकमत उसी वक़्त समझ में आ सकती है जबकि हम इस्लाम से फिरने की उस साज़िश या फ़ितने को नज़र में रखें जो इस वाक़िए के डेढ़ साल बाद ही नबी (सल्ल.) की वफ़ात पर मुल्क के मुख़्तलिफ़ हिस्सों में बरपा हुआ और जिसने इस्लाम के नए तामीर हुए महल को एकदम हिलाकर रख दिया। अगर कहीं 9 हिजरी के इस एलाने-बराअत से शिर्क की मुनज़्ज़म (सुसंगठित) ताक़त ख़त्म न कर दी गई होती और पूरे मुल्क पर इस्लामी क़ानून की ताक़त का ग़लबा पहले ही मुकम्मल न हो चुका होता, तो इस्लाम से फिरने की शक्ल में जो फ़ितना हज़रत अबू-बक्र (रज़ि.) की ख़िलाफ़त (शासन) के शुरू में उठा था उससे कम-से-कम दस गुना ज़्यादा ताक़त के साथ बग़ावत और ख़ाना-जंगी का फ़ितना उठता और शायद इस्लामी तारीख़ की शक्ल अपनी मौजूदा सूरत से बिलकुल ही अलग होती।

3. यह एलान 10 ज़िल-हिज्जा, 9 हिजरी को हुआ था। उस वक़्त से 10 रबीउस्सानी 10 हिजरी तक चार महीने की मुहलत उन लोगों को दी गई कि इस दौरान में अपनी पोज़ीशन पर अच्छी तरह ग़ौर कर लें। लड़ना हो तो लड़ाई के लिए तैयार हो जाएँ, मुल्क छोड़ना हो तो अपनी पनाहगाह तलाश कर लें, इस्लाम क़बूल करना हो तो सोच-समझकर क़बूल कर लें।

وَاَنَّ اللّٰهَ مُخْزِی الْكٰفِرِیْنَ ۝٢ وَاَذَانٌ مِّنَ اللّٰهِ وَرَسُوْلِهٖۤ اِلَى النَّاسِ
یَوْمَ الْحَجِّ الْاَكْبَرِ اَنَّ اللّٰهَ بَرِیْٓءٌ مِّنَ الْمُشْرِكِیْنَ ۙ۬ وَرَسُوْلُهٗ ؕ فَاِنْ تُبْتُمْ
فَهُوَ خَیْرٌ لَّكُمْ ۚ وَاِنْ تَوَلَّیْتُمْ فَاعْلَمُوْۤا اَنَّكُمْ غَیْرُ مُعْجِزِی اللّٰهِ ؕ وَبَشِّرِ
الَّذِیْنَ كَفَرُوْا بِعَذَابٍ اَلِیْمٍ ۝٣ اِلَّا الَّذِیْنَ عٰهَدْتُّمْ مِّنَ الْمُشْرِكِیْنَ ثُمَّ
لَمْ یَنْقُصُوْكُمْ شَیْـًٔا وَّلَمْ یُظَاهِرُوْا عَلَیْكُمْ اَحَدًا فَاَتِمُّوْۤا اِلَیْهِمْ
عَهْدَهُمْ اِلٰى مُدَّتِهِمْ ؕ اِنَّ اللّٰهَ یُحِبُّ الْمُتَّقِیْنَ ۝٤ فَاِذَا انْسَلَخَ الْاَشْهُرُ

नहीं हो, और यह कि अल्लाह हक़ के इनकारियों को रुसवा करनेवाला है।

(3-4) आम इत्तिला है अल्लाह और उसके रसूल की तरफ़ 'बड़े हज' के दिन[4] सब लोगों के लिए कि अल्लाह शिर्क करनेवालों से बरी है और उसका रसूल भी। अब अगर तुम लोग तौबा कर लो तो तुम्हारे ही लिए बेहतर है और जो मुँह फेरते हो तो ख़ूब समझ लो कि तुम अल्लाह को बेबस करनेवाले नहीं हो। और ऐ नबी! इनकार करनेवालों को सख़्त अज़ाब की ख़ुशख़बरी सुना दो, सिवाए उन मुशरिकों के जिनसे तुमने समझौते किए, फिर उन्होंने अपने अहद को पूरा करने में तुम्हारे साथ कोई कमी नहीं की और न तुम्हारे ख़िलाफ किसी की मदद की, तो ऐसे लोगों के साथ तुम भी समझौते की मुद्दत तक वफ़ा करो; क्योंकि अल्लाह मुत्तक़ियों (परहेज़गारों) ही को पसन्द करता है।[5]

---

4. यानी दस (10) ज़िल-हिज्जा, जिसे यौमुन-नहर कहते हैं। सहीह हदीस में आया है कि हिज्जतुल-वदाअ में नबी (सल्ल॰) ने ख़ुतबा देते हुए वहाँ मौजूद लोगों से पूछा कि यह कौन-सा दिन है? लोगों ने कहा कि यौमुन्-नहर है। कहा, "यह हज्जे-अकबर का दिन है।" हज्जे-अकबर (बड़ा हज) का लफ़्ज़ असगर (छोटा हज) के मुक़ाबले में है। अहले-अरब उमरे को छोटा हज कहते हैं। इसके मुक़ाबले में वह हज जो ज़िल-हिज्जा की मुक़र्ररा तारीख़ों में किया जाता है, हज्जे-अकबर कहलाता है।
5. यानी यह बात तक़वा (परहेज़गारी) के ख़िलाफ़ होगी कि जिन्होंने तुम्हारे साथ किया गया कोई अहद नहीं तोड़ा है उनसे तुम अहद तोड़ो। अल्लाह के नज़दीक पसन्दीदा सिर्फ़ वही लोग हैं जो हर हाल में तक़वा पर क़ायम रहें।

الْحُرُمُ فَاقْتُلُوا الْمُشْرِكِيْنَ حَيْثُ وَجَدْتُّمُوْهُمْ وَخُذُوْهُمْ
وَاحْصُرُوْهُمْ وَاقْعُدُوْا لَهُمْ كُلَّ مَرْصَدٍ ۚ فَاِنْ تَابُوْا وَاَقَامُوا الصَّلٰوةَ
وَاٰتَوُا الزَّكٰوةَ فَخَلُّوْا سَبِيْلَهُمْ ۗ اِنَّ اللّٰهَ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ۝٥ وَاِنْ اَحَدٌ مِّنَ
الْمُشْرِكِيْنَ اسْتَجَارَكَ فَاَجِرْهُ حَتّٰى يَسْمَعَ كَلٰمَ اللّٰهِ ثُمَّ اَبْلِغْهُ مَاْمَنَهٗ ۗ
ع ذٰلِكَ بِاَنَّهُمْ قَوْمٌ لَّا يَعْلَمُوْنَ ۝٦ كَيْفَ يَكُوْنُ لِلْمُشْرِكِيْنَ عَهْدٌ عِنْدَ

(5) तो जब हराम (प्रतिष्ठत) महीने बीत जाएँ[6] तो मुशरिकों को क़त्ल करो जहाँ पाओ और उन्हें पकड़ो और घेरो और हर घात में उनकी ख़बर लेने के लिए बैठो। फिर अगर वे तौबा कर लें और नमाज़ क़ायम करें और ज़कात दें तो उन्हें छोड़ दो।[7] अल्लाह माफ़ करनेवाला और रहम करनेवाला है। (6) और अगर मुशरिकों में से कोई आदमी पनाह माँगकर तुम्हारे पास आना चाहे (ताकि अल्लाह का कलाम सुने) तो उसे पनाह दे दो, यहाँ तक कि वह अल्लाह का कलाम सुन ले। फिर उसे उसकी महफ़ूज़ जगह तक पहुँचा दो। ऐसा इसलिए करना चाहिए कि ये लोग इल्म नहीं रखते।[8]

(7) इन मुशरिकों के लिए अल्लाह और उसके रसूल के नज़दीक कोई समझौता

6. यहाँ हराम महीनों से मुराद वे महीने नहीं हैं जो हज और उमरे के लिए हराम क़रार दिए गए हैं, बल्कि इस जगह वे चार महीने मुराद हैं जिनकी मुशरिकों को मुहलत दी गई थी। चूँकि इस मुहलत के ज़माने में मुसलमानों के लिए जाइज़ नहीं था कि मुशरिकों पर हमलावर हो जाते इसलिए इन्हें हराम महीने कहा गया है।
7. यानी कुफ़्र अैर शिर्क से सिर्फ़ तौबा कर लेने पर मामला ख़त्म नहीं होगा बल्कि इन्हें अमली तौर पर नमाज़ क़ायम करनी और ज़कात देनी होगी। इसके बग़ैर यह नहीं माना जाएगा कि उन्होंने कुफ़्र को छोड़कर इस्लाम इख़्तियार कर लिया है। इसी आयत को हज़रत अबू-बक्र (रज़ि.) ने उस ज़माने में दलील बनाया था जब इस्लाम से फिर जाने की साज़िश और फ़ितना बरपा हुआ था। नबी (सल्ल.) की वफ़ात के बाद जिन लोगों ने फ़ितना बरपा किया था उनमें से एक गरोह कहता था कि हम इस्लाम के इनकारी नहीं हैं, नमाज़ भी पढ़ने के लिए तैयार हैं, मगर ज़कात नहीं देंगे। सहाबा किराम को आम तौर से यह परेशानी थी कि आख़िर ऐसे लोगों के ख़िलाफ़ तलवार कैसे उठाई जा सकती है? मगर हज़रत अबू-बक्र (रज़ि.) ने इसी आयत का हवाला देकर कहा कि हमें तो इन लोगों को छोड़ देने का हुक्म सिर्फ़ उस सूरत में दिया गया था जबकि ये शिर्क से तौबा करें, नमाज़ क़ायम करें और ज़कात दें, मगर जब ये तीन शर्तों में से एक शर्त उड़ाए देते हैं तो फिर इन्हें हम कैसे छोड़ दें।
8. यानी जंग के दौरान अगर कोई दुश्मन तुमसे दरख़ास्त करे कि मैं इस्लाम को समझना चाहता हूँ

اللّٰهِ وَعِنْدَ رَسُوْلِهٖٓ اِلَّا الَّذِيْنَ عٰهَدْتُّمْ عِنْدَ الْمَسْجِدِ الْحَرَامِ ۚ فَمَا
اسْتَقَامُوْا لَكُمْ فَاسْتَقِيْمُوْا لَهُمْ ۭ اِنَّ اللّٰهَ يُحِبُّ الْمُتَّقِيْنَ ۝ كَيْفَ
وَاِنْ يَّظْهَرُوْا عَلَيْكُمْ لَا يَرْقُبُوْا فِيْكُمْ اِلًّا وَّلَا ذِمَّةً ۭ يُرْضُوْنَكُمْ
بِاَفْوَاهِهِمْ وَتَاْبٰى قُلُوْبُهُمْ ۚ وَاَكْثَرُهُمْ فٰسِقُوْنَ ۝ اِشْتَرَوْا بِاٰيٰتِ اللّٰهِ
ثَمَنًا قَلِيْلًا فَصَدُّوْا عَنْ سَبِيْلِهٖ ۭ اِنَّهُمْ سَاۗءَ مَا كَانُوْا يَعْمَلُوْنَ ۝ لَا

आख़िर कैसे हो सकता है?— अलावा उन लोगों के जिनसे तुमने मस्जिदे-हराम (काबा) के पास समझौता किया था[9]; तो जब तक वे तुम्हारे साथ सीधे रहें, तुम भी उनके साथ सीधे रहो; क्योंकि अल्लाह मुत्तक़ियों (परहेज़गारों) को पसन्द करता है— (8) मगर इनके सिवा दूसरे मुशरिकों के साथ कोई समझौता कैसे हो सकता है, जबकि उनका हाल यह है कि तुमपर क़ाबू पा जाएँ तो न तुम्हारे मामले में किसी रिश्तेदारी का लिहाज़ करें, न किसी समझौते की ज़िम्मेदारी का? वे अपनी ज़बानों से तुमको राज़ी करने की कोशिश करते हैं, मगर दिल उनके इनकार करते हैं[10] और उनमें से ज़्यादातर फ़ासिक़ हैं।[11] (9) उन्होंने अल्लाह की आयतों के बदले थोड़ी-सी क़ीमत क़बूल कर ली[12] फिर अल्लाह के रास्ते में रुकावट बनकर खड़े हो गए।[13] बहुत

तो मुसलमानों को चाहिए कि उसे अमान देकर अपने यहाँ आने का मौक़ा दें और उसे समझाएँ, फिर अगर वह क़बूल न करे तो उसे अपनी हिफ़ाज़त में उसके ठिकाने तक वापस पहुँचा दें। इस्लामी फ़िक़्ह में ऐसे शख़्स को जो अमान लेकर दारुल-इस्लाम में आए मुस्तामिन कहा जाता है।

9. यानी बनी-कनाना, बनी-ख़ुज़ाआ और बनी-ज़मरा।

10. यानी बज़ाहिर तो वे सुलह की शर्तें तय करते हैं, मगर दिल में बद-अहदी का इरादा होता है और इसका सुबूत तजरिबे से इस तरह मिलता है कि जब कभी उन्होंने मुआहिदा किया, तोड़ने ही के लिए किया।

11. यानी ऐसे लोग हैं जिन्हें न अख़लाक़ी ज़िम्मेदारियों का एहसास है और न अख़लाक़ की पाबन्दियों के तोड़ने में कोई झिझक।

12. यानी एक तरफ़ अल्लाह की आयतें इनको भलाई और दियानतदारी और क़ानूने-हक़ की पाबन्दी का बुलावा दे रही थीं। दूसरी तरफ़ दुनियावी ज़िन्दगी के वे कुछ ही दिनों के फ़ायदे थे

يَرْقُبُوْنَ فِيْ مُؤْمِنٍ اِلًّا وَّلَا ذِمَّةً ۭ وَاُولٰۗىِٕكَ هُمُ الْمُعْتَدُوْنَ ۝۱۰ فَاِنْ
تَابُوْا وَاَقَامُوا الصَّلٰوةَ وَاٰتَوُا الزَّكٰوةَ فَاِخْوَانُكُمْ فِي الدِّيْنِ ۭ وَنُفَصِّلُ
الْاٰيٰتِ لِقَوْمٍ يَّعْلَمُوْنَ ۝۱۱ وَاِنْ نَّكَثُوْٓا اَيْمَانَهُمْ مِّنْۢ بَعْدِ عَهْدِهِمْ
وَطَعَنُوْا فِيْ دِيْنِكُمْ فَقَاتِلُوْٓا اَىِٕمَّةَ الْكُفْرِ ۙ اِنَّهُمْ لَآ اَيْمَانَ لَهُمْ لَعَلَّهُمْ

बुरे करतूत थे जो ये करते रहे। (10) किसी ईमानवाले के मामले में न ये नातेदारी की परवाह करते हैं और न किसी समझौते की ज़िम्मेदारी की, और ज़्यादती हमेशा इन्हीं की तरफ़ से हुई है। (11) तो अगर ये तौबा कर लें और नमाज़ क़ायम करें और ज़कात दें तो तुम्हारे दीनी-भाई हैं, और जाननेवालों के लिए हम अपने अहकाम वाज़ेह किए देते हैं[14]। (12) और अगर समझौता करने के बाद ये फिर अपनी क़समों को तोड़ डालें और तुम्हारे दीन (धर्म) पर हमले करने शुरू कर दें तो कुफ़्र (अधर्म) के अलमबरदारों से जंग

जो नफ़्स की ख़ाहिश की बे-लगाम पैरवी से हासिल होते थे। इन लोगों ने इन दोनों चीज़ों को तौला और फिर पहली को छोड़कर दूसरी चीज़ को अपने लिए चुन लिया।

13. यानी इन ज़ालिमों ने इतने ही पर बस नहीं किया कि हिदायत के बजाए गुमराही को ख़ुद अपने लिए पसन्द कर लिया, बल्कि इससे आगे बढ़कर इन्होंने कोशिश यह की कि हक़ की दावत का काम किसी तरह चलने न पाए, नेकी और भलाई की इस पुकार को कोई सुनने न पाए, बल्कि वे मुँह ही बन्द कर दिए जाएँ जिनसे यह पुकार बुलन्द होती है। जिस ज़िन्दगी के सालेह और अच्छे निज़ाम को अल्लाह ज़मीन में क़ायम करना चाहता था उसको क़ायम होने से रोकने के लिए उन्होंने एड़ी-चोटी का ज़ोर लगा दिया और उन लागों पर ज़िन्दगी को तंग कर दिया जो इस निज़ाम को हक़ पाकर उसकी पैरवी कर रहे थे।

14. यहाँ फिर यह बात समझाई गई है कि नमाज़ और ज़कात के बिना सिर्फ़ तौबा कर लेने से वे तुम्हारे दीनी भाई नहीं बन जाएँगे।

और यह जो कहा गया कि अगर ऐसा करें तो वे तुम्हारे दीनी भाई हैं तो इसका मतलब यह है कि ये शर्तें पूरी करने का नतीजा सिर्फ़ यही नहीं होगा कि तुम्हारे लिए इनपर हाथ उठाना और इनके जान और माल पर हाथ डालना हराम हो जाएगा, बल्कि इससे और आगे बढ़कर इसका फ़ायदा यह भी होगा कि इस्लामी सोसाइटी में इनको बराबर के हक़ हासिल हो जाएँगे। समाजी, तमद्दुनी (सांस्कृतिक) और क़ानूनी हैसियत से वे तमाम दूसरे मुसलमानों की तरह होंगे। कोई चीज़ उनकी तरक़्क़ी की राह में रुकावट न होगी।

يَنْتَهُوْنَ ﴿١٢﴾ اَلَا تُقَاتِلُوْنَ قَوْمًا نَّكَثُوْٓا اَيْمَانَهُمْ وَ هَمُّوْا بِاِخْرَاجِ
الرَّسُوْلِ وَهُمْ بَدَءُوْكُمْ اَوَّلَ مَرَّةٍ ۭ اَتَخْشَوْنَهُمْ ۚ فَاللّٰهُ اَحَقُّ اَنْ

करो, क्योंकि उनकी क़समों का कोई एतिबार नहीं, शायद कि (फिर तलवार ही के ज़ोर से) वे बाज़ आएँगे।[15]

(13) क्या तुम[16] न लड़ोगे ऐसे लोगों से जो अपनी क़समें तोड़ते रहे हैं और जिन्होंने रसूल को मुल्क से निकाल देने का इरादा किया था और ज़्यादती की शुरुआत करनेवाले वही थे? क्या तुम उनसे डरते हो? अगर तुम ईमानवाले हो तो अल्लाह इसका ज़्यादा

15. इस जगह मौक़ा-महल ख़ुद बता रहा है कि क़सम और अहदो-पैमान से मुराद कुफ़्र छोड़कर इस्लाम क़बूल कर लेने का अहद है। इसलिए कि उन लोगों से अब कोई और मुआहिदा करने का तो कोई सवाल बाक़ी ही नहीं रहा था। पिछले सारे मुआहिदे वे तोड़ चुके थे। उनके अहद को तोड़ने की बिना पर ही अल्लाह और उसके रसूल की तरफ़ से बराअत (मुक्ति) का एलान उन्हें साफ़-साफ़ सुनाया जा चुका था। यह भी फ़रमा दिया गया था कि आख़िर ऐसे लोगों के साथ कोई मुआहिदा कैसे किया जा सकता है। और यह फ़रमान भी जारी हो चुका था कि अब इन्हें सिर्फ़ इसी सूरत में छोड़ा जा सकता है कि ये कुफ़्र और शिर्क से तौबा करके नमाज़ क़ायम करने और ज़कात अदा करने की पाबन्दी क़बूल कर लें। इसलिए यह आयत मुर्तदों (इस्लाम से फिर जानेवालों) से जंग के मामले में बिलकुल वाज़ेह है। असल में इसमें इस्लाम से फिर जाने की उस साज़िश और फ़ितने की तरफ़ इशारा है जो डेढ़ साल बाद हज़रत अबू-बक्र सिद्दीक़ (रज़ि॰) की ख़िलाफ़त के शुरू में बरपा हुआ। हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) ने इस मौक़े पर जो रवैया इख़्तियार किया वह ठीक उस हिदायत के मुताबिक़ था जो इस आयत में पहले ही दी जा चुकी थी। (और ज़्यादा तशरीह के लिए देखें—मेरी किताब 'मुर्तद की सज़ा इस्लामी क़ानून में')।

16. अब तक़रीर का रुख़ मुसलमानों की तरफ़ फिरता है और उनको जंग पर उभारने और दीन के मामले में किसी रिश्ते-नाते और किसी दुनयावी मसलिहत का लिहाज़ न करने की ज़ोरदार नसीहत की जाती है। तक़रीर के इस हिस्से की पूरी रूह को समझने के लिए फिर एक बार उस सूरते-हाल को सामने रख लेना चाहिए जो उस वक़्त सामने थी। इसमें शक नहीं कि इस्लाम अब मुल्क के एक बड़े हिस्से पर छा गया था और अरब में कोई ऐसी बड़ी ताक़त न रही थी जो उसको मुक़ाबिले की दावत दे सकती हो, लेकिन फिर भी जो फ़ैसलाकुन क़दम और बहुत-ही इंक़िलाबी क़दम इस मौक़े पर उठाया जा रहा था उसके अन्दर बहुत-से ख़तरनाक पहलू ज़ाहिरबीन निगाहों को नज़र आ रहे थे :

एक तो यह कि तमाम मुशरिक क़बीलों को एक ही साथ मुआहिदों को ख़त्म करने का चैलेंज दे देना, फिर मुशरिकीन के हज करने पर पाबन्दी, काबे के इंतिज़ाम और ख़िदमत के मुबारक काम

تَخْشَوْهُ اِنْ كُنْتُمْ مُّؤْمِنِيْنَ ﴿١٣﴾ قَاتِلُوْهُمْ يُعَذِّبْهُمُ اللّٰهُ بِاَيْدِيْكُمْ

हक़दार है कि उससे डरो। (14-15) उनसे लड़ो, अल्लाह तुम्हारे हाथों से उनको सज़ा

को मुशरिकों से छीनकर मुसलमानों के हवाले कर देना और जाहिलियत की रस्मों का पूरे तौर से ख़ातिमा यह मानी रखता था कि एक बार सारे मुल्क में आग-सी लग जाए और मुशरिक और मुनाफ़िक़ लोग अपने ख़ून की आख़िरी बूँद तक अपने फ़ायदों और तास्सुबात (दुराग्रहों) की हिफ़ाज़त के लिए बहा देने पर आमादा हो जाएँ।

दूसरे यह कि हज को सिर्फ़ अहले-तौहीद (एकेश्वरवादियों) के लिए ख़ास कर देने और मुशरिकों पर काबा का रास्ता बन्द कर देने के मानी ये थे कि मुल्क की आबादी का एक अच्छा-ख़ासा हिस्सा, जो अभी मुशरिक था, काबा की तरफ़ आने-जाने से बाज़ आ जाए जो सिर्फ़ मज़हबी हैसियत ही से नहीं, बल्कि मआशी (आर्थिक) हैसियत से भी अरब में ग़ैर-मामूली हैसियत रखता था और जिसपर उस ज़माने में अरब की मआशी ज़िन्दगी (आर्थिक जीवन) का बहुत बड़ा दारोमदार था।

तीसरे यह कि जो लोग हुदैबिया की सुलह और मक्का की फ़तह के बाद ईमान लाए थे उनके लिए यह मामला बड़ी सख़्त आज़माइश का था; क्योंकि उनके बहुत-से भाई-बन्धु, रिश्तेदार अभी तक मुशरिक थे और उनमें ऐसे लोग भी थे जिनके फ़ायदे पुराने जाहिल निज़ाम के मंसबों से जुड़े हुए थे। अब जो बज़ाहिर अरब के तमाम मुशरिकों के तहस-नहस कर डालने की तैयारी की जा रही थी तो इसके मानी ये थे कि ये नए मुसलमान ख़ुद अपने हाथों अपने ख़ानदानों और अपने जिगर-गोशों को ख़ाक में मिला दें और उनके मक़ाम और मंसब और सदियों से क़ायम चली आ रही उनके इम्तियाज़ात का ख़ातिमा कर दें।

हालाँकि असल में इनमें से कोई ख़तरा भी अमली तौर पर सामने नहीं आया। एलाने-बराअत से मुल्क में बड़े पैमाने पर जंग की आग भड़कने के बजाए यह नतीजा सामने आया कि अरब के तमाम आस-पास से बचे-खुचे मुशरिक क़बीलों और अमीरों और बादशाहों के वुफ़ूद आने शुरू हो गए, जिन्होंने नबी (सल्ल०) के सामने इस्लाम और इताअत का अहद किया और उनके इस्लाम क़बूल कर लेने पर नबी (सल्ल०) ने हर एक को उसकी पोज़ीशन पर बहाल रखा। लेकिन जिस वक़्त इस नई पॉलिसी का एलान किया जा रहा था उस वक़्त तो बहरहाल कोई भी इस नतीजे को पेशगी नहीं देख सकता था। फिर यह कि इस एलान के साथ ही अगर मुसलमान इसे ताक़त के बल पर लागू करने के लिए पूरी तरह तैयार न हो जाते तो शायद यह नतीजा सामने भी न आता। इसलिए ज़रूरी था कि मुसलमानों को इस मौक़े पर अल्लाह के रास्ते में जिहाद की पुरजोश नसीहत की जाती और उनके ज़ेहन से उन तमाम अन्देशों को दूर किया जाता जो इस पॉलिसी पर अमल करने में उनको नज़र आ रहे थे और उनको हिदायात की जाती कि अल्लाह की मरज़ी को पूरा करने में उन्हें किसी चीज़ की परवाह नहीं करनी चाहिए। यही बात इस तक़रीर का मौज़ू (विषय) है।

وَيُخْزِهِمْ وَ يَنْصُرْكُمْ عَلَيْهِمْ وَ يَشْفِ صُدُوْرَ قَوْمٍ مُّؤْمِنِيْنَ ⑭
وَيُذْهِبْ غَيْظَ قُلُوْبِهِمْ ۚ وَيَتُوْبُ اللّٰهُ عَلٰى مَنْ يَّشَآءُ ۚ وَاللّٰهُ عَلِيْمٌ
حَكِيْمٌ ⑮ اَمْ حَسِبْتُمْ اَنْ تُتْرَكُوْا وَلَمَّا يَعْلَمِ اللّٰهُ الَّذِيْنَ جٰهَدُوْا
مِنْكُمْ وَلَمْ يَتَّخِذُوْا مِنْ دُوْنِ اللّٰهِ وَلَا رَسُوْلِهٖ وَلَا الْمُؤْمِنِيْنَ
وَلِيْجَةً ۚ وَاللّٰهُ خَبِيْرٌۢ بِمَا تَعْمَلُوْنَ ⑯ مَا كَانَ لِلْمُشْرِكِيْنَ اَنْ يَّعْمُرُوْا ع

दिलवाएगा और उन्हें बेइज़्ज़त और रुसवा करेगा और उनके मुक़ाबले में तुम्हारी मदद करेगा और बहुत-से ईमानवालों के दिल ठंडे करेगा और उनके दिलों की जलन मिटा देगा और जिसे चाहेगा तौबा की तौफ़ीक़ (सुअवसर) भी देगा।[17] अल्लाह सब कुछ जाननेवाला और हिकमतवाला है। (16) क्या तुम लोगों ने यह समझ रखा है कि यूँ ही छोड़ दिए जाओगे, हालाँकि अभी अल्लाह ने यह तो देखा ही नहीं कि तुममें से कौन वे लोग हैं जिन्होंने (उसकी राह में) जान लगाई और अल्लाह और रसूल और ईमानवालों के सिवा किसी को जिगरी दोस्त न बनाया[18], जो कुछ तुम करते हो अल्लाह उसकी ख़बर रखता है।

(17) मुशरिकों का यह काम नहीं है कि वे अल्लाह की मस्जिदों के इंतिज़ाम

17. यह एक हल्का सा इशारा है उस इमकान की तरफ़ जो आगे चलकर वाक़िए की सूरत में सामने आया। मुसलमान जो यह समझ रहे थे कि बस इस एलान के साथ ही मुल्क में ख़ून की नदियाँ बह जाएँगी, उनकी इस ग़लतफ़हमी को दूर करने के लिए इशारे में उन्हें बताया गया है कि यह पॉलिसी इख़्तियार करने में जहाँ इसका इमकान है कि जंग का हंगामा बरपा होगा, वहाँ इसका भी इमकान है कि लोगों को तौबा की तौफ़ीक़ नसीब हो जाएगी। लेकिन इस इशारे को ज़्यादा नुमायाँ इसलिए नहीं किया गया कि ऐसा करने से एक तरफ़ तो मुसलमानों की जंग की तैयारी हल्की पड़ जाती और दूसरी तरफ़ मुशरिकों के लिए उस धमकी का पहलू भी हल्का हो जाता जिसने उन्हें पूरी संजीदगी के साथ अपनी पोज़ीशन की नज़ाकत पर ग़ौर करने और आख़िरकार इस्लामी निज़ाम में समा जाने पर आमादा किया।

18. इस आयत में ख़िताब उन नए लोगों से है जो क़रीब के ज़माने में इस्लाम लाए थे। उनसे कहा जा रहा है कि जब तक तुम इस आज़माइश से गुज़रकर यह साबित न कर दोगे कि वाक़ई तुम ख़ुदा और उसके दीन को अपनी जान और माल और अपने भाई-बन्धुओं से बढ़कर प्यारा रखते हो, तुम सच्चे मोमिन नहीं कहलाए जा सकते। अब तक तो ज़ाहिर के लिहाज़ से तुम्हारी पोज़ीशन यह है कि इस्लाम चूँकि सच्चे मोमिन और पहले ईमान लानेवाले लोगों की जी जान से की गई कोशिशों से ग़ालिब आ गया और मुल्क पर छा गया, इसलिए तुम मुसलमान हो गए।

مَسٰجِدَ اللّٰهِ شٰهِدِيْنَ عَلٰۤى اَنْفُسِهِمْ بِالْكُفْرِ ؕ اُولٰٓئِكَ حَبِطَتْ اَعْمَالُهُمْ ۖۚ
وَفِى النَّارِ هُمْ خٰلِدُوْنَ ۝١٧ اِنَّمَا يَعْمُرُ مَسٰجِدَ اللّٰهِ مَنْ اٰمَنَ بِاللّٰهِ
وَالْيَوْمِ الْاٰخِرِ وَاَقَامَ الصَّلٰوةَ وَاٰتَى الزَّكٰوةَ وَلَمْ يَخْشَ اِلَّا اللّٰهَ
فَعَسٰۤى اُولٰٓئِكَ اَنْ يَّكُوْنُوْا مِنَ الْمُهْتَدِيْنَ ۝١٨ اَجَعَلْتُمْ سِقَايَةَ الْحَآجِّ
وَعِمَارَةَ الْمَسْجِدِ الْحَرَامِ كَمَنْ اٰمَنَ بِاللّٰهِ وَالْيَوْمِ الْاٰخِرِ وَجٰهَدَ فِىْ

करनेवाले और ख़ादिम बनें, जबकि अपने ऊपर वे ख़ुद कुफ़्र (इनकार) की गवाही दे रहे हैं।[19] उनका तो सारा किया-धरा अकारथ हो गया[20], और जहन्नम में उन्हें हमेशा रहना है। (18) अल्लाह की मस्जिदों के आबादकार (मुजाविर व ख़ादिम) तो वही लोग हो सकते हैं जो अल्लाह और आख़िरत के दिन को मानें और नमाज़ क़ायम करें, ज़कात दें और अल्लाह के सिवा किसी से न डरें। इन्हीं से यह उम्मीद है कि सीधी राह चलेंगे। (19) क्या तुम लोगों ने हाजियों को पानी पिलाने और मस्जिदे-हराम की मुजावरी करने को उस शख़्स के काम के बराबर ठहरा लिया है जो ईमान लाया अल्लाह पर और

---

19. यानी जो मस्जिदें एक ख़ुदा की इबादत के लिए बनी हों, उनके मुतवल्ली, मुजाविर, ख़ादिम और आबाद करनेवाले बनने के लिए वे लोग किसी तरह मुनासिब नहीं हो सकते जो ख़ुदा के साथ ख़ुदावन्दी की सिफ़ात, हुक़ूक़ और इख़्तियारात में दूसरों को शरीक करते हों। फिर जबकि वे ख़ुद भी तौहीद (एकेश्वरवाद) की दावत क़बूल करने से इनकार कर चुके हों और उन्होंने साफ़-साफ़ कह दिया हो कि हम अपनी बन्दगी और इबादत को एक ख़ुदा के लिए ख़ास कर देना क़बूल नहीं करेंगे, तो आख़िर इन्हें क्या हक़ है कि किसी ऐसी इबादतगाह के मुतवल्ली (ज़िम्मेदार) बने रहें जो सिर्फ़ ख़ुदा की इबादत के लिए बनाई गई थी।
यहाँ हालाँकि बात आम कही गई है और अपनी हक़ीक़त के लिहाज़ से यह आम है भी, लेकिन ख़ास तौर पर यहाँ इसका ज़िक्र करने से मक़सद यह है कि ख़ाना काबा और मस्जिदे-हराम के इंतिज़ाम और ख़िदमत का मुबारक काम मुशरिकों से छीन लिया जाए और उसे हमेशा के लिए अहले-तौहीद (एकेश्वरवादियों) के हवाले कर दिया जाए।

20. यानी जो थोड़ी-बहुत वाक़ई ख़िदमत इन्होंने बैतुल्लाह (काबा) की अंजाम दी तो वह भी इस वजह से ख़त्म हो गई कि ये लोग इसके साथ शिर्क और जाहिलाना तरीक़ों की मिलावट करते रहे। इनकी थोड़ी भलाई को इनकी बहुत बड़ी बुराई खा गई।

سَبِيۡلِ اللّٰهِ ؕ لَا يَسۡتَوٗنَ عِنۡدَ اللّٰهِ ؕ وَاللّٰهُ لَا يَهۡدِى الۡقَوۡمَ الظّٰلِمِيۡنَ ۘ ﴿١٩﴾ وقف لازم
اَلَّذِيۡنَ اٰمَنُوۡا وَهَاجَرُوۡا وَجٰهَدُوۡا فِىۡ سَبِيۡلِ اللّٰهِ بِاَمۡوَالِهِمۡ
وَاَنۡفُسِهِمۡ ۙ اَعۡظَمُ دَرَجَةً عِنۡدَ اللّٰهِ ؕ وَاُولٰۤٮِٕكَ هُمُ الۡفَآٮِٕزُوۡنَ ﴿٢٠﴾
يُبَشِّرُهُمۡ رَبُّهُمۡ بِرَحۡمَةٍ مِّنۡهُ وَرِضۡوَانٍ وَّجَنّٰتٍ لَّهُمۡ فِيۡهَا نَعِيۡمٌ
مُّقِيۡمٌ ۙ ﴿٢١﴾ خٰلِدِيۡنَ فِيۡهَاۤ اَبَدًا ؕ اِنَّ اللّٰهَ عِنۡدَهٗۤ اَجۡرٌ عَظِيۡمٌ ﴿٢٢﴾ يٰۤاَيُّهَا الَّذِيۡنَ
اٰمَنُوۡا لَا تَتَّخِذُوۡۤا اٰبَآءَكُمۡ وَاِخۡوَانَكُمۡ اَوۡلِيَآءَ اِنِ اسۡتَحَبُّوا الۡكُفۡرَ

आख़िरत के दिन पर और जिसने जान खपाई अल्लाह की राह में?[21] अल्लाह के नज़दीक तो ये दोनों बराबर नहीं हैं, और अल्लाह ज़ालिमों की रहनुमाई नहीं करता।
(20) अल्लाह के यहाँ तो उन्हीं लोगों का दर्जा बड़ा है जो ईमान लाए और जिन्होंने उसकी राह में घर-बार छोड़े और जान व माल से जिहाद किया, वही कामयाब हैं। (21)
उनका रब उन्हें अपनी रहमत और ख़ुशनूदी और ऐसी जन्नतों की ख़ुशख़बरी देता है जहाँ उनके लिए हमेशा रहनेवाले ऐश के सामान हैं। (22) इनमें वे हमेशा रहेंगे। यक़ीनन अल्लाह के पास ख़िदमतों का बदला देने को बहुत कुछ है।

(23) ऐ लोगो जो ईमान लाए हो! अपने बापों और भाइयों को भी अपना साथी न

---

21. यानी किसी ज़ियारतगाह की सज्जादा-नशीनी, मुजाविरी और कुछ नुमाइशी मज़हबी आमाल को बजा लाना, जिसपर दुनिया को सिर्फ़ ऊपरी नज़र से देखनेवाले लोग आम तौर पर इज़्ज़त और बुज़ुर्गी की बुनियाद पर रखते हैं, ख़ुदा के नज़दीक कोई क़द्र व क़ीमत नहीं रखती। असली क़द्र व क़ीमत ईमान और ख़ुदा की राह में क़ुरबानी की है। यह सिफ़ात जिस आदमी के अन्दर पाई जाए वह क़ीमती है। चाहे वह किसी ऊँचे ख़ानदान से ताल्लुक़ न रखता हो, और किसी क़िस्म की ख़ास चीज़ें उसके साथ लगी हुई न हों। लेकिन जो लोग इन ख़ूबियों से ख़ाली हैं वे सिर्फ़ इसलिए कि बुज़ुर्गों की औलाद हैं, सज्जादा-नशीनी इनके ख़ानदान में मुद्दतों से चली आ रही है और ख़ास-ख़ास मौक़ों पर कुछ मज़हबी रस्मों की नुमाइश वे बड़ी शान के साथ कर दिया करते हैं, न किसी मर्तबे के हक़दार हो सकते हैं और न यह जायज़ हो सकता है कि ऐसे बे-हक़ीक़त "विरासत में चले आ रहे" हुक़ूक़ को तसलीम करके मुक़द्दस मक़ामात और मज़हबी इदारे इन नालायक़ लोगों के हाथों में रहने दिए जाएँ।

عَلَى الْإِيمَانِ ۚ وَمَنْ يَتَوَلَّهُمْ مِنْكُمْ فَأُولَٰئِكَ هُمُ الظَّالِمُونَ ﴿٢٣﴾ قُلْ
إِنْ كَانَ آبَاؤُكُمْ وَأَبْنَاؤُكُمْ وَإِخْوَانُكُمْ وَأَزْوَاجُكُمْ وَعَشِيرَتُكُمْ
وَأَمْوَالٌ اقْتَرَفْتُمُوهَا وَتِجَارَةٌ تَخْشَوْنَ كَسَادَهَا وَمَسَاكِنُ تَرْضَوْنَهَا
أَحَبَّ إِلَيْكُمْ مِنَ اللَّهِ وَرَسُولِهِ وَجِهَادٍ فِي سَبِيلِهِ فَتَرَبَّصُوا حَتَّىٰ يَأْتِيَ
اللَّهُ بِأَمْرِهِ ۗ وَاللَّهُ لَا يَهْدِي الْقَوْمَ الْفَاسِقِينَ ﴿٢٤﴾ لَقَدْ نَصَرَكُمُ اللَّهُ فِي ع ٣ ٨ ٩
مَوَاطِنَ كَثِيرَةٍ ۙ وَيَوْمَ حُنَيْنٍ ۙ إِذْ أَعْجَبَتْكُمْ كَثْرَتُكُمْ فَلَمْ تُغْنِ

बनाओ अगर वे ईमान पर कुफ़्र को तरजीह दें। तुममें से जो उनको साथी बनाएँगे, वही ज़ालिम होंगे। (24) ऐ नबी! कह दो कि अगर तुम्हारे बाप और तुम्हारे बेटे और तुम्हारे भाई और तुम्हारी बीवियाँ और तुम्हारे रिश्ते-नातेदार और तुम्हारे वे माल जो तुमने कमाए हैं, और तुम्हारे वे कारोबार जिनके ठंडे पड़ जाने का तुमको डर है और तुम्हारे वे घर जो तुमको पसन्द हैं, तुमको अल्लाह और उसके रसूल और उसकी राह में जिहाद से ज़्यादा प्यारे हैं तो इन्तिज़ार करो, यहाँ तक कि अल्लाह अपना फ़ैसला तुम्हारे सामने ले आए,[22] और अल्लाह फ़ासिक़ लोगों (नाफ़रमानों) की रहनुमाई नहीं किया करता।

(25) अल्लाह इससे पहले बहुत-से मौक़ों पर तुम्हारी मदद कर चुका है। अभी हुनैन की लड़ाई के दिन (उसकी मदद की शान तुम देख चुके हो)[23], उस दिन तुम्हें अपनी

---

22. यानी तुम्हें हटाकर सच्ची दीनदारी की नेमत और उसकी अलम्बरदारी का शर्फ़ (श्रेय) और रुश्दो-हिदायत (सन्मार्ग) की पेशवाई का मंसब किसी और गरोह को अता कर दे।

23. जो लोग इस बात से डरते थे कि एलाने-बराअत की ख़तरनाक पॉलिसी पर अमल करने से तमाम अरब के गोशे-गोशे में जंग की आग भड़क उठेगी और इसका मुक़ाबला करना मुश्किल होगा, उनसे कहा जा रहा है कि इन अन्देशों से क्यों डरे जाते हो, जो ख़ुदा इससे बहुत ज़्यादा सख़्त ख़तरों के मौक़ों पर तुम्हारी मदद कर चुका है वह अब भी तुम्हारी मदद को मौजूद है। अगर इस काम का दारोमदार तुम्हारी ताक़त पर होता तो मक्का ही से आगे न बढ़ता, वरना बद्र में तो ज़रूर ही ख़त्म हो जाता। मगर इसकी पीठ पर तो अल्लाह की ताक़त है और पिछले तजरिबे तुमपर साबित कर चुके हैं कि अल्लाह ही की ताक़त अब तक इसको तरक़्क़ी देती रही है। इसलिए यक़ीन रखो कि आज भी वही इसे तरक़्क़ी देगा।

عَنْكُمْ شَيْـًٔا وَّضَاقَتْ عَلَيْكُمُ الْاَرْضُ بِمَا رَحُبَتْ ثُمَّ وَلَّيْتُمْ
مُّدْبِرِيْنَ ۝٢٥ ثُمَّ اَنْزَلَ اللّٰهُ سَكِيْنَتَهٗ عَلٰى رَسُوْلِهٖ وَعَلَى الْمُؤْمِنِيْنَ
وَاَنْزَلَ جُنُوْدًا لَّمْ تَرَوْهَا ۚ وَعَذَّبَ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا ؕ وَذٰلِكَ جَزَآءُ
الْكٰفِرِيْنَ ۝٢٦ ثُمَّ يَتُوْبُ اللّٰهُ مِنْۢ بَعْدِ ذٰلِكَ عَلٰى مَنْ يَّشَآءُ ؕ وَاللّٰهُ غَفُوْرٌ
رَّحِيْمٌ ۝٢٧ يٰۤاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْۤا اِنَّمَا الْمُشْرِكُوْنَ نَجَسٌ فَلَا يَقْرَبُوا

तादाद के ज़्यादा होने का घमण्ड था, लेकिन वह तुम्हारे कुछ काम न आई और ज़मीन आपने फैलाव के बावजूद तुमपर तंग हो गई और तुम पीठ फेरकर भाग निकले। (26) फिर अल्लाह ने अपनी 'सकीनत' (प्रशांति) अपने रसूल पर और ईमानवालों पर उतारी और वे सेनाएँ उतारीं जो तुमको नज़र न आती थीं, और हक़ के इनकारियों को सज़ा दी कि यही बदला है उन लोगों के लिए जो हक़ का इनकार करें। (27) फिर (तुम यह भी देख चुके हो कि) इस तरह सज़ा देने के बाद अल्लाह जिसको चाहता है, तौबा की तौफ़ीक़ भी बख़्श देता है[24], अल्लाह माफ़ करनेवाला और रहम करनेवाला है।

(28) ऐ लोगो जो ईमान लाए हो, मुशरिकीन नापाक हैं, इसलिए इस साल के बाद

हुनैन की जंग जिसका यहाँ ज़िक्र किया गया है शव्वाल 8 हिजरी में इन आयतों के नाज़िल होने से सिर्फ़ 12-13 महीने पहले मक्का और ताइफ़ के बीच हुनैन की वादी में हुई थी। इस जंग में मुसलमानों की तरफ़ से 12 हज़ार फ़ौज थी, जो इससे पहले कभी किसी इस्लामी जंग में इकट्ठी नहीं हुई थी और दूसरी तरफ़ दुश्मन उनसे बहुत कम थे। लेकिन इसके बावजूद क़बीला हवाज़िन के तीरन्दाज़ों ने उनका मुँह फेर दिया और इस्लामी लश्कर बुरी तरह तितर-बितर होकर पस्पा हुआ। उस वक़्त सिर्फ़ नबी (सल्ल.) और चन्द मुट्ठी भर जाँबाज़ सहाबी थे जिनके क़दम अपनी जगह जमे रहे और उन्हीं के जमे रहने का नतीजा था कि दोबारा फ़ौज की तरतीब क़ायम हो सकी और आख़िरकार फ़तह मुसलमानों के हाथ रही। वरना मक्का की फ़तह से जो कुछ हासिल हुआ था उससे बहुत ज़्यादा हुनैन में खो देना पड़ता।

24. जंगे-हुनैन में फ़तह हासिल करने के बाद नबी (सल्ल.) ने शिकस्त खाए हुए दुश्मनों के साथ जिस कुशादादिली और मेहरबानी का बरताव किया उसका नतीजा यह हुआ कि उनमें से ज़्यादातर आदमी मुसलमान हो गए। इस मिसाल से मुसलमानों को यह बताना मक़सद है कि तुमने यही क्यों समझ रखा है कि बस अब अरब के सारे मुशरिक तहस-नहस कर डाले जाएँगे। नहीं, पहले के तजरिबों को देखते हुए तो तुमको यह उम्मीद होनी चाहिए कि जब जाहिली

الْمَسْجِدَ الْحَرَامَ بَعْدَ عَامِهِمْ هٰذَا ۚ وَإِنْ خِفْتُمْ عَيْلَةً فَسَوْفَ
يُغْنِيكُمُ اللّٰهُ مِنْ فَضْلِهٖٓ إِنْ شَآءَ ۚ إِنَّ اللّٰهَ عَلِيمٌ حَكِيمٌ ﴿٢٨﴾ قَاتِلُوا
الَّذِينَ لَا يُؤْمِنُونَ بِاللّٰهِ وَلَا بِالْيَوْمِ الْاٰخِرِ وَلَا يُحَرِّمُونَ مَا حَرَّمَ

ये मस्जिदे-हराम के क़रीब न फटकने पाएँ,[25] और अगर तुम्हें तंगदस्ती का डर है तो नामुमकिन नहीं कि अल्लाह चाहे तो तुम्हें अपनी मेहरबानी से मालामाल कर दे। अल्लाह जाननेवाला और हिक्मतवाला है।

(29) जंग करो किताबवालों में से उन लोगों के ख़िलाफ़ जो अल्लाह और आख़िरत के दिन पर ईमान नहीं लाते[26] और जो कुछ अल्लाह और उसके रसूल ने हराम क़रार

निज़ाम को बढ़ावा देने और उसके बाक़ी रहने की कोई उम्मीद लोगों को बाक़ी न रहेगी और वे सहारे ख़त्म हो जाएँगे जिनकी वजह से ये अब तक जाहिलियत से चिमटे हुए हैं तो ख़ुद-ब-ख़ुद ये इस्लाम की रहमत के दामन में पनाह लेने के लिए आ जाएँगे।

25. यानी आइन्दा के लिए उनका हज और उनकी ज़ियारत ही बन्द नहीं बल्कि मस्जिदे-हराम (ख़ाना-काबा) की हदों में उनका दाख़िल होना भी बन्द है; ताकि शिर्क और जाहिलीयत को फिर से पैर फैलाने का कोई इमकान बाक़ी न रहे।
'नापाक' होने से मुराद यह नहीं है कि वे अपनी ज़ात में नापाक हैं, बल्कि इसका मतलब यह है कि उनके एतिक़ाद (धारणाएँ), उनके अख़्लाक़, उनके आमाल और उनकी ज़िन्दगी के जाहिलाना तरीक़े नापाक हैं और इसी गन्दगी की बिना पर हरम की हदों में इनका दाख़िला बन्द किया गया है। इमाम अबू-हनीफ़ा के नज़दीक इससे मुराद सिर्फ़ यह है कि वे हज और उमरा और जाहिलियत की रस्मों को अदा करने के लिए हरम की हदों में नहीं जा सकते। इमाम शाफ़ई (रह.) के नज़दीक इस हुक्म का मंशा यह है कि वे मस्जिदे-हराम में जा ही नहीं सकते। और इमाम मालिक (रह.) यह राय रखते हैं कि सिर्फ़ मस्जिदे-हराम ही नहीं, बल्कि किसी मस्जिद में भी उनका दाख़िल होना दुरुस्त नहीं। लेकिन यह आख़िरी राय दुरुस्त नहीं है; क्योंकि नबी (सल्ल.) ने ख़ुद मस्जिदे-नबवी में उन लोगों को आने की इजाज़त दी थी।

26. हालाँकि अहले-किताब ख़ुदा और आख़िरत पर ईमान रखने का दावा करते हैं लेकिन अस्ल में न वे ख़ुदा पर ईमान रखते हैं, न आख़िरत पर। ख़ुदा पर ईमान रखने के मानी ये नहीं कि आदमी बस इस बात को मान ले कि ख़ुदा है, बल्कि इसके मानी ये हैं कि आदमी ख़ुदा को एक अकेला इलाह (माबूद) और एक अकेला रब तस्लीम करे और उसकी ज़ात, उसकी सिफ़ात, उसके हुक़ूक़ और उसके इख़्तियारात में न ख़ुद साझीदार बने, न किसी को साझीदार ठहराए, लेकिन ईसाई और यहूदी दोनों इस जुर्म को करते हैं, जैसा कि बादवाली आयतों में साफ़-साफ़

اللهُ وَرَسُوْلُهٗ وَلَا يَدِيْنُوْنَ دِيْنَ الْحَقِّ مِنَ الَّذِيْنَ اُوْتُوا الْكِتٰبَ
حَتّٰى يُعْطُوا الْجِزْيَةَ عَنْ يَّدٍ وَّهُمْ صٰغِرُوْنَ ۝٢٩ ع

दिया है उसे हराम नहीं करते[27] और दीने-हक़ को अपना दीन नहीं बनाते। (इनसे लड़ो) यहाँ तक कि वे अपने हाथ से जिज़या (रक्षा-कर) दें और छोटे (अधीनस्थ) बनकर रहें।[28]

बयान किया गया है। इसलिए उनका ख़ुदा को मानना कोई मानी नहीं रखता है और उसे हरगिज़ अल्लाह पर ईमान नहीं कहा जा सकता। इसी तरह आख़िरत को मानने के मानी सिर्फ़ यही नहीं हैं कि आदमी यह बात मान ले कि हम मरने के बाद फिर उठाए जाएँगे, बल्कि इसके साथ यह मानना भी ज़रूरी है कि वहाँ कोई कोशिश-सिफ़ारिश, कोई फ़िदया और किसी बुज़ुर्ग से जुड़ा होना काम न आएगा और न कोई किसी का कफ़्फ़ारा बन सकेगा। ख़ुदा की अदालत में बेलाग इनसाफ़ होगा और आदमी के ईमान और अमल के सिवा किसी चीज़ का लिहाज़ न किया जाएगा। इस अक़ीदे के बग़ैर आख़िरत को मानने का कोई हासिल नहीं है। लेकिन यहूदियों और ईसाइयों ने इस पहलू से अपने अक़ीदे को ख़राब कर लिया है। इसलिए इनका आख़िरत पर ईमान भी क़ाबिले-क़बूल नहीं है।

27. यानी उस शरीअत को अपनी ज़िन्दगी का क़ानून नहीं बनाते जो अल्लाह ने अपने रसूल के ज़रिए से नाज़िल की है।

28. यानी लड़ाई का मक़सद यह नहीं है कि वे ईमान ले आएँ और दीने-हक़ की पैरवी करनेवाले बन जाएँ, बल्कि इसका मक़सद यह है कि उनकी ख़ुदमुख़्तारी और बालादस्ती ख़त्म हो जाए। वे ज़मीन में हाकिम और हुक्मराँ बनकर न रहें बल्कि ज़मीन के निज़ामे-ज़िन्दगी की बागडोर और फ़रमाँरवाई और सरदारी के इख़्तियारात उन लोगों के हाथों में हों जो दीने-हक़ की पैरवी करनेवाले हों और वे उनके मातहत पैरवी करनेवाले और फ़रमाँबरदार बनकर रहें।

जिज़्या बदल है उस अमान और उस हिफ़ाज़त का जो ज़िम्मियों (ग़ैर-मुस्लिमों) को इस्लामी हुकूमत में दी जाएगी। इसके आलावा वह इस बात की पहचान भी है कि ये लोग हुक्म के मानने पर राज़ी हैं। 'हाथ से जिज़्या देने' का मतलब सीधी तरह फ़रमाँबरदारी की शान के साथ जिज़्या अदा करना है। और छोटे बनकर रहने का मतलब यह है कि ज़मीन में बड़े वे न हों बल्कि वे ईमानवाले बड़े हों जो अल्लाह की तरफ़ से ख़िलाफ़त (प्रतिनिधि होने) कर फ़र्ज़ अंजाम दे रहे हों।

शुरू में यह हुक्म यहूदियों और ईसाइयों के बारे में दिया गया था, लेकिन आगे चलकर ख़ुद नबी (सल्ल॰) ने मजूस (आग की पूजा करनेवालों) से जिज़्या लेकर उन्हें ज़िम्मी बनाया और उसके बाद सहाबा किराम ने मुत्तफ़िक़ होकर अरब से बाहर की तमाम क़ौमों पर इस हुक्म को आम कर दिया।

यह जिज़्या वह चीज़ है जिसके लिए उन्नीसवीं सदी के ज़िल्लत भरे दौर में मुसलमानों की तरफ़

وَقَالَتِ الْيَهُوْدُ عُزَيْرُ ابْنُ اللّٰهِ وَقَالَتِ النَّصٰرَى الْمَسِيْحُ ابْنُ اللّٰهِ ۚ ذٰلِكَ قَوْلُهُمْ بِاَفْوَاهِهِمْ ۚ يُضَاهِئُوْنَ قَوْلَ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا مِنْ قَبْلُ ؕ

(30) यहूदी कहते हैं कि उज़ैर अल्लाह का बेटा है[29], और ईसाई कहते हैं कि मसीह अल्लाह का बेटा है। ये बेहक़ीक़त बातें हैं जो वे अपनी ज़बानों से निकालते हैं उन लोगों

से बड़ी-बड़ी सफ़ाइयाँ पेश की गई हैं और उस दौर की यादगार कुछ लोग अब भी मौजूद हैं, जो सफ़ाई देने में लगे हुए हैं। लेकिन ख़ुदा का दीन इससे बहुत ऊपर है कि उसे ख़ुदा के बाग़ियों के सामने सफ़ाइयाँ पेश करने की कोई ज़रूरत हो। सीधी और साफ़ बात यह है कि जो लोग ख़ुदा के दीन को इख़्तियार नहीं करते और अपनी या दूसरों की निकाली हुई ग़लत राहों पर चलते हैं वे हद-से-हद बस इतनी ही आज़ादी के हक़दार हैं कि ख़ुद जो ग़लती करना चाहते हैं करें, लेकिन उन्हें इसका बिलकुल कोई हक़ नहीं है कि ख़ुदा की ज़मीन पर किसी जगह भी हुकूमत और फ़रमाँरवाई की बागडोर उनके हाथों में हो और वे इनसानों की समाजी ज़िन्दगी का निज़ाम अपनी गुमराहियों के मुताबिक़ क़ायम करें और चलाएँ। यह चीज़ जहाँ कहीं उनको हासिल होगी, फ़साद पैदा होगा। ईमानवालों की ज़िम्मेदारी होगी कि उनको इससे बेदख़ल करने और उन्हें सालेह निज़ाम का फ़रमाँबरदार बनाने की कोशिश करें। अब रहा यह सवाल कि यह जिज़या आख़िर किस चीज़ की क़ीमत है, तो इसका जवाब यह है कि यह उस आज़ादी की क़ीमत है जो उन्हें इस्लामी हुकूमत के तहत अपनी गुमराहियों पर क़ायम रहने के लिए दी जाती है, और इस क़ीमत को उस सालेह निज़ामे-हुकूमत के इंतिज़ाम और बंदोबस्त पर ख़र्च होना चाहिए जो उन्हें इस आज़ादी के इस्तेमाल की इजाज़त देता है और उनके हक़ों की हिफ़ाज़त करता है। और इसका बड़ा फ़ायदा यह है कि जिज़्या अदा करते वक़्त हर साल ज़िम्मियों में यह एहसास ताज़ा होता रहेगा कि ख़ुदा की राह में ज़कात देने की ख़ुशक़िस्मती से महरूमी और उसके बजाए गुमराहियों पर क़ायम रहने की क़ीमत अदा करना कितनी बड़ी बदक़िस्मती है जिसमें वे पड़े हुए हैं।

29. उज़ैर से मुराद अज़रा (Ezra) हैं, जिनको यहूदी अपने दीन का मुजद्दिद (धर्म को ज़िन्दा करनेवाला) मानते हैं। इनका ज़माना 450 ईसा पूर्व के लगभग बताया जाता है। इसराईली रिवायतों के मुताबिक़ हज़रत सुलैमान (अलैहि.) के बाद बनी-इसराईल पर आज़माइशों का ज़माना भी आया। उसमें न सिर्फ़ यह कि तौरात दुनिया से गुम हो गई थी, बल्कि बाबिल की ग़ुलामी ने इसराईली नस्लों को अपनी शरीअत, अपनी रिवायतों और अपनी क़ौमी ज़बान इबरानी तक से अनजान कर दिया था। आख़िरकार इन्ही उज़ैर या अज़रा ने बाइबल के पुराने नियम को मुरत्तब (संकलित) किया और शरीअत को ज़िन्दा किया। इसी वजह से बनी-इसराईल उनकी बहुत इज़्ज़त करते हैं और यह इज़्ज़त इस हद तक बढ़ गई कि कुछ यहूदी गरोहों ने इनको अल्लाह का बेटा तक बना दिया। यहाँ क़ुरआन के कहने का मक़सद यह नहीं है कि

قٰتَلَهُمُ اللّٰهُ ۚ اَنّٰى يُؤْفَكُوْنَ ۞ اِتَّخَذُوْٓا اَحْبَارَهُمْ وَرُهْبَانَهُمْ اَرْبَابًا
مِّنْ دُوْنِ اللّٰهِ وَالْمَسِيْحَ ابْنَ مَرْيَمَ ۚ وَمَآ اُمِرُوْٓا اِلَّا لِيَعْبُدُوْٓا اِلٰهًا
وَّاحِدًا ۚ لَآ اِلٰهَ اِلَّا هُوَ ۚ سُبْحٰنَهٗ عَمَّا يُشْرِكُوْنَ ۞ يُرِيْدُوْنَ اَنْ يُّطْفِـُٔوْا
نُوْرَ اللّٰهِ بِاَفْوَاهِهِمْ وَيَاْبَى اللّٰهُ اِلَّآ اَنْ يُّتِمَّ نُوْرَهٗ وَلَوْ كَرِهَ الْكٰفِرُوْنَ

की देखा-देखी जो इनसे पहले कुफ़्र (अधर्म) में पड़े हुए थे।[30] अल्लाह की मार इनपर, ये कहाँ से धोखा खा रहे हैं। (31) इन्होंने अपने उलमा और दरवेशों को अल्लाह के सिवा अपना रब (प्रभु) बना लिया है[31] और इसी तरह मरयम के बेटे मसीह को भी, हालाँकि उनको एक माबूद (उपास्य) के सिवा किसी की बन्दगी करने का हुक्म नहीं दिया गया था, वह जिसके सिवा कोई इबादत का हक़दार नहीं, पाक है वह उन शिर्क भरी बातों से जो ये लोग करते हैं। (32) ये लोग चाहते हैं कि अल्लाह की रौशनी को अपनी फूँकों से बुझा दें। मगर अल्लाह अपनी रौशनी को मुकम्मल किए बग़ैर माननेवाला नहीं है, चाहे

तमाम यहूदियों ने मिलकर अज़रा काहिन को ख़ुदा का बेटा बनाया है, बल्कि मक़सद यह बताना है कि ख़ुदा के बारे में यहूदियों के अक़ीदों में जो ख़राबी पैदा हुई, वह इस हद तक तरक़्क़ी कर गई कि अज़रा को ख़ुदा का बेटा कहनेवाले भी उनमें पैदा हुए।

30. यानी मिस्र, यूनानी, रूम, ईरान और दूसरे मुल्कों में जो क़ौमें पहले गुमराह हो चुकी थीं उनके फ़लसफ़ों (दर्शनों), औहाम (अन्धविश्वासों) और तख़य्युलात (परिकल्पनाओं) से मुतास्सिर होकर इन लोगों ने भी वैसे ही गुमराही के अक़ीदे घढ़ लिए। (तशरीह के लिए देखें— तफ़हीमुल-क़ुरआन, हिस्सा-1, सूरा-5 माइदा, हाशिया-101)

31. हदीस में आता है कि हज़रत अदी-बिन-हातिम ने, जो पहले ईसाई थे, जब नबी (सल्ल.) के पास हाज़िर होकर इस्लाम क़बूल किया तो उन्होंने और बहुत-से सवालों के अलावा एक सवाल यह भी किया था कि इस आयत में हमपर अपने उलमा और दरवेशों को ख़ुदा बना लेने का जो इलज़ाम लगाया गया है उसकी असलियत क्या है? जवाब में नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया कि क्या यह हक़ीक़त नहीं है कि जो कुछ ये लोग हराम क़रार देते हैं उसे तुम हराम मान लेते हो और जो कुछ ये हलाल क़रार देते हैं उसे हलाल मान लेते हो? उन्होंने कहा कि यह तो ज़रूर हम करते रहे हैं। नबी (सल्ल.) ने कहा कि बस यही उनको ख़ुदा बना लेना है। इससे मालूम हुआ कि अल्लाह की किताब की सनद के बग़ैर जो लोग इनसानी ज़िन्दगी के लिए जाइज़ और नाजाइज़ की हदें मुक़र्रर करते हैं वे असल में ख़ुद अपने तौर पर ख़ुदाई के मक़ाम पर जा बैठते हैं और जो क़ानून बनाने के उनके इस हक़ को तस्लीम करते हैं वे उन्हें ख़ुदा बनाते हैं।

﴿٣٢﴾ هُوَ الَّذِيٓ اَرْسَلَ رَسُوْلَهٗ بِالْهُدٰى وَدِيْنِ الْحَقِّ لِيُظْهِرَهٗ عَلَى الدِّيْنِ
كُلِّهٖ ۙ وَلَوْ كَرِهَ الْمُشْرِكُوْنَ ﴿٣٣﴾ يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْٓا اِنَّ كَثِيْرًا مِّنَ
الْاَحْبَارِ وَالرُّهْبَانِ لَيَاْكُلُوْنَ اَمْوَالَ النَّاسِ بِالْبَاطِلِ وَيَصُدُّوْنَ
عَنْ سَبِيْلِ اللّٰهِ ۭ وَالَّذِيْنَ يَكْنِزُوْنَ الذَّهَبَ وَالْفِضَّةَ وَلَا يُنْفِقُوْنَهَا

इनकार करनेवालों को कितना ही यह नापसंद हो। (33) वह अल्लाह ही है जिसने अपने रसूल को हिदायत और सच्चे दीन के साथ भेजा है, ताकि उसे दीन की पूरी जिंस पर ग़ालिब कर दे[32] चाहे मुशरिकों को यह कितना ही नागवार हो। (34) ऐ लोगो जो ईमान लाए हो, इन किताबवालों के ज़्यादातर विद्वानों और सन्तों का हाल यह है कि वे लोगों के माल ग़लत तरीक़ों से खाते हैं और उन्हें अल्लाह की राह से रोकते हैं।[33] दर्दनाक

ये दोनों इलज़ाम, यानी किसी को ख़ुदा का बेटा क़रार देना और किसी को शरीअत बनाने का हक़ दे देना, इस बात के सुबूत में पेश किए गए हैं कि ये लोग अल्लाह पर ईमान के दावे में झूठे हैं। ख़ुदा की हस्ती को चाहे ये मानते हों, मगर उनका ख़ुदाई का तसव्वुर इतना ग़लत है कि इसकी वजह से इनका ख़ुदा को मानना न मानने के बराबर हो गया है।

32. असल अरबी में 'अद्-दीन' का लफ़्ज़ इस्तेमाल हुआ है जिसका तर्जमा हमने 'जिंसे-दीन' किया है। दीन का लफ़्ज़ जैसा कि हम पहले भी बयान कर चुके हैं, अरबी ज़बान में ज़िन्दगी के उस निज़ाम या तरीक़े के लिए इस्तेमाल होता है जिसके क़ायम करनेवाले को सनद (प्रमाण) और क़ाबिले-तस्लीम करके और इस बात को तस्लीम करके कि उसकी पैरवी और फ़रमाँबरदारी ज़रूरी है उसकी पैरवी की जाए। इसलिए रसूल (सल्ल॰) को नबी बनाए जाने का मक़सद इस आयत में यह बताया गया है कि जिस हिदायत और दीने-हक़ को वह ख़ुदा की तरफ़ से लाया है उसे दीन की हैसियत रखनेवाले तमाम तरीक़ों और निज़ामों पर ग़ालिब कर दे। दूसरे अलफ़ाज़ में रसूल को दुनिया में इसलिए नहीं भेजा गया कि ज़िन्दगी का जो निज़ाम वह लेकर आया है वह किसी दूसरे निज़ामे-ज़िन्दगी का ताबे (अधीन) और उससे मग़लूब बनकर और उसकी दी हुई रिआयतों और गुंजाइशों में सिमटकर रहे, बल्कि वह ज़मीन और आसमान के बादशाह का नुमाइन्दा (प्रतिनिधि) बनकर आता है और अपने बादशाह के निज़ामे-हक़ को ग़ालिब देखना चाहता है। अगर कोई दूसरा निज़ामे-ज़िन्दगी दुनिया में रहे भी तो उसे ख़ुदाई निज़ाम की बख़्शी हुई गुंजाइशों में सिमटकर रहना चाहिए जैसा कि जिज़्या अदा करने की सूरत में ज़िम्मियों का ज़िन्दगी का निज़ाम रहता है। (देखें—तफ़हीमुल-क़ुरआन, सूरा-39 ज़ुमर, हाशिया-3 मोमिन, हाशिया-43 सूरा-40 शूरा, हाशिया-20)

33. यानी ज़ालिम सिर्फ़ यही सितम नहीं करते कि फ़तवे बेचते हैं, रिश्वतें खाते हैं, नज़राने लूटते

فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ ۙ فَبَشِّرْهُمْ بِعَذَابٍ اَلِيْمٍ ﴿۳۴﴾ يَّوْمَ يُحْمٰى عَلَيْهَا فِيْ نَارِ
جَهَنَّمَ فَتُكْوٰى بِهَا جِبَاهُهُمْ وَجُنُوْبُهُمْ وَظُهُوْرُهُمْ ؕ هٰذَا مَا كَنَزْتُمْ
لِاَنْفُسِكُمْ فَذُوْقُوْا مَا كُنْتُمْ تَكْنِزُوْنَ ﴿۳۵﴾ اِنَّ عِدَّةَ الشُّهُوْرِ عِنْدَ اللّٰهِ
اثْنَا عَشَرَ شَهْرًا فِيْ كِتٰبِ اللّٰهِ يَوْمَ خَلَقَ السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضَ مِنْهَآ
اَرْبَعَةٌ حُرُمٌ ؕ ذٰلِكَ الدِّيْنُ الْقَيِّمُ ۙ فَلَا تَظْلِمُوْا فِيْهِنَّ اَنْفُسَكُمْ وَقَاتِلُوا

सज़ा की ख़ुशख़बरी दो उनको जो सोने और चाँदी जमा करके रखते हैं और उन्हें अल्लाह की राह में ख़र्च नहीं करते। (35) एक दिन आएगा कि इसी सोने-चाँदी पर जहन्नम की आग दहकाई जाएगी और फिर इसी से उन लोगों की पेशानियों और पहलुओं और पीठों को दाग़ा जाएगा—यह है वह ख़ज़ाना जो तुमने अपने लिए जमा किया था, लो अब अपनी समेटी हुई दौलत का मज़ा चखो।

(36) हक़ीक़त यह है कि महीनों की तादाद जब से अल्लाह ने आसमानों और ज़मीन को पैदा किया है अल्लाह के रजिस्टर में 12 ही है।[34] और उनमें से चार महीने हराम (आदर के) हैं। यही ठीक ज़ाब्ता है, इसलिए इन चार महीनों में अपने ऊपर ज़ुल्म

हैं, ऐसे-ऐसे मज़हबी क़ानून और रस्में गढ़ते हैं जिनसे लोग अपनी नजात (मुक्ति) इनसे ख़रीदें और उनका मरना-जीना और शादी व ग़म कुछ भी इनको खिलाए बग़ैर न हो सके और वे अपनी क़िस्मतें बनाने और बिगाड़ने का ठेकेदार इनको समझ लें; बल्कि इससे भी आगे बढ़कर अपने इन्ही मक़सदों की ख़ातिर ये लोग अल्लाह की मख़लूक़ को गुमराहियों के चक्कर में फँसाए रखते हैं और जब भी कोई हक़ की दावत सुधार और इस्लाह के लिए उठती है तो सबसे पहले यही अपनी आलिमाना धोखेबाज़ियों और मक्कारियों के हथियार ले-लेकर इसका रास्ता रोकने खड़े हो जाते हैं।

34. यानी जबसे अल्लाह ने चाँद, सूरज और ज़मीन को पैदा किया है उसी वक़्त से यह हिसाब भी चला आ रहा है कि महीने में एक ही बार चाँद 'हिलाल' (नया चाँद) बनकर निकलता है और इस हिसाब से साल के 12 ही महीने बनते हैं। यह बात इसलिए कही गई है कि अरब के लोग नसी की ख़ातिर महीने की तादाद 13 या 14 बना लेते थे, ताकि जिस मुहतरम महीने को उन्होंने हलाल कर लिया हो उसे साल की जन्तरी में खपा सकें। इस सिलसिले में वज़ाहत आगे आ रही है।

الْمُشْرِكِيْنَ كَآفَّةً كَمَا يُقَاتِلُوْنَكُمْ كَآفَّةً ۭ وَاعْلَمُوْٓا اَنَّ اللّٰهَ مَعَ
الْمُتَّقِيْنَ ٣٦ اِنَّمَا النَّسِيْۗءُ زِيَادَةٌ فِي الْكُفْرِ يُضَلُّ بِهِ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا
يُحِلُّوْنَهٗ عَامًا وَّيُحَرِّمُوْنَهٗ عَامًا لِّيُوَاطِــُٔوْا عِدَّةَ مَا حَرَّمَ اللّٰهُ فَيُحِلُّوْا
مَا حَرَّمَ اللّٰهُ ۭ زُيِّنَ لَهُمْ سُوْۗءُ اَعْمَالِهِمْ ۭ وَاللّٰهُ لَا يَهْدِي الْقَوْمَ

न करो।[35] और मुशरिकों से सब मिलकर लड़ो जिस तरह वे सब मिलकर तुमसे लड़ते हैं[36], और जान रखो कि अल्लाह मुत्तक़ियों (परहेज़गारों) ही के साथ है। (37) नसी तो कुफ़्र (अधर्म) में एक और कुफ़्र भरी हरकत है जिससे ये कुफ़्र करनेवाले गुमराही में डाले जाते हैं। किसी साल एक महीने को हलाल कर लेते हैं और किसी साल उसको हराम कर देते हैं, ताकि अल्लाह के हराम किए हुए महीनों की तादाद पूरी भी कर दें और अल्लाह का हराम किया हुआ हलाल भी कर लें।[37] उनके बुरे काम उनके लिए ख़ुशनुमा

35. यानी जिन फ़ायदों की वजह से इन महीनों में जंग करना हराम किया गया है उनको बरबाद न करो और उन दिनों में बद-अमनी फैलाकर अपने ऊपर ज़ुल्म न करो। चार हराम (मुहतरम) महीनों से मुराद हैं— 'ज़ी-क़ादा', 'ज़िल-हिज्जा' और मुहर्रम हज के लिए और 'रजब' उमरे के लिए।

36. यानी अगर मुशरिक इन महीनों में भी लड़ने से बाज़ न आएँ तो जिस तरह वे एक होकर तुमसे लड़ते हैं तुम भी एक होकर उनसे लड़ो। सूरा-2 बक़रा, आयत-194 इस आयत की तफ़सीर करती है।

37. अरब में नसी (महीने को हटाने की रस्म) दो तरह की थी। इसकी एक सूरत तो यह थी कि जंग, लड़ाई-झगड़े, लूटपाट करने और ख़ून का बदला लेने के लिए किसी हराम महीने को हलाल क़रार दे लेते थे और उसके बदले में किसी हलाल महीने को हराम करके हराम महीनों की तादाद पूरी कर देते थे। दूसरी सूरत यह थी कि क़मरी (चाँद के) साल को शमसी (सूरज के) साल के मुताबिक़ करने के लिए उसमें कबीसा (लौंद) का एक महीना बढ़ा देते थे, ताकि हज हमेशा एक ही मौसम में आता रहे और वे उन परेशानियों से बच जाएँ जो चाँद के हिसाब के मुताबिक़ मुख़्तलिफ़ मौसमों में हज के घूमते रहने से पेश आती हैं। इस तरह 33 साल तक हज अपने असली वक़्त के ख़िलाफ़ दूसरी तारीख़ों में होता रहता था और सिर्फ़ चौंतीसवें साल एक बार अस्ल ज़िलहिज्जा की 9-10 तारीख़ को अदा होता था। यही वह बात है जो हिज्जतुलवदा के मौक़े पर नबी (सल्ल॰) ने अपने ख़ुतबे (तक़रीर) में कही थी कि "यानी इस साल हज का वक़्त गर्दिश करता हुआ ठीक अपनी उस तारीख़ पर आ गया है जो क़ुदरती हिसाब से उसकी

الْكٰفِرِيْنَ ﴿٣٧﴾ يٰۤاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا مَا لَكُمْ اِذَا قِيْلَ لَكُمُ انْفِرُوْا فِيْ ع

बना दिए गए हैं, और अल्लाह हक़ के इनकारियों को हिदायत नहीं दिया करता।

(38) ऐ लोगो[38] जो ईमान लाए हो! तुम्हें क्या हो गया कि जब तुमसे अल्लाह की

असल तारीख़ है।"

इस आयत में नसी को हराम और नाजाइज़ क़रार देकर अरब के जाहिलों के उन दोनों मक़सदों को बातिल कर दिया गया है। पहला मक़सद तो ज़ाहिर है कि साफ़ तौर पर एक गुनाह था। उसके तो मानी ही ये थे कि ख़ुदा के हराम किए हुए को हलाल भी कर लिया जाए और फिर बहाने बनाकर क़ानून की पाबन्दी की ज़ाहिरी शक्ल भी बनाकर रख दी जाए। रहा दूसरा मक़सद तो सरसरी निगाह में वह मासूम और मसलिहत से भरा नज़र आता है, लेकिन हक़ीक़त में वह भी ख़ुदा के क़ानून से बदतरीन बग़ावत थी। अल्लाह ने अपने लागू किए हुए फ़राइज़ के लिए सूरज के हिसाब के बजाए चाँद का हिसाब जिस अहम फ़ायदों की बिना पर इख़्तियार किया है उनमें से एक यह भी है कि उसके बन्दे ज़माने की तमाम गर्दिशों में, हर क़िस्म के हालात और कैफ़ियतों में उसके हुक्मों को पूरा करने के आदी हों। मिसाल के तौर पर रमज़ान है, तो वह कभी गर्मी में और कभी बरसात में और कभी सर्दियों में आता है और ईमानवाले इन सब बदलते हुए हालात में रोज़े रखकर फ़रमाँबरदारी का सुबूत भी देते हैं और बेहतरीन अख़लाक़ी तरबियत भी पाते हैं। इसी तरह हज भी चाँद की तारीख़ों के हिसाब से मुख़्तलिफ़ मौसमों में आता है और उन सब तरह के अच्छे और बुरे हालात में ख़ुदा की ख़ुशी के लिए सफ़र करके बन्दे अपने ख़ुदा की आज़माइश में पूरे भी उतरते हैं और बन्दगी में पुख़्तगी भी हासिल करते हैं। अब अगर कोई गरोह अपने सफ़र और अपनी तिजारत और अपने मेलों-ठेलों की सहूलत की ख़ातिर हज को किसी ख़ुशगवार मौसम में हमेशा के लिए क़ायम कर दे, तो यह ऐसा ही है जैसे मुसलमान कोई कांफ्रेंस करके तय कर लें कि आइन्दा से रमज़ान का महीना दिसम्बर या जनवरी के मुताबिक़ कर दिया जाएगा। इसके साफ़ मानी ये हैं कि बन्दों ने अपने ख़ुदा से बग़ावत की और ख़ुदमुख़्तार बन बैठे। इसी चीज़ का नाम कुफ़्र है। इसके आलावा एक आलमगीर दीन जो सब इनसानों के लिए है, आख़िर किस सूरज के महीने को रोज़े और हज के लिए मुक़र्रर करे? जो महीना भी मुक़र्रर किया जाएगा वह ज़मीन के तमाम बसनेवालों के लिए बराबर सहूलत का मौसम नहीं हो सकता। कहीं वह गर्मी का ज़माना होगा और कहीं सर्दी का। कहीं वह बारिशों का मौसम होगा और कहीं ख़ुश्की का। कहीं फ़सलें काटने का ज़माना होगा और कहीं बोने का।

यह बात भी सामने रहे कि नसी को ख़त्म करने का यह एलान सन् 9 हिजरी के हज के मौक़े पर किया गया। और अगले साल 10 हिजरी का हज ठीक उन तारीख़ों में हुआ जो चाँद के हिसाब के मुताबिक़ थीं। उसके बाद से आज तक हज अपनी सही तारीख़ों में हो रहा है।

38. यहाँ से वह ख़ुतबा शुरू होता है जो तबूक की जंग की तैयारी के ज़माने में नाज़िल हुआ था।

سَبِيْلِ اللّٰهِ اثَّاقَلْتُمْ اِلَى الْاَرْضِ ؕ اَرَضِيْتُمْ بِالْحَيٰوةِ الدُّنْيَا مِنَ
الْاٰخِرَةِ ۚ فَمَا مَتَاعُ الْحَيٰوةِ الدُّنْيَا فِى الْاٰخِرَةِ اِلَّا قَلِيْلٌ ﴿٣٨﴾ اِلَّا
تَنْفِرُوْا يُعَذِّبْكُمْ عَذَابًا اَلِيْمًا ۙ وَّيَسْتَبْدِلْ قَوْمًا غَيْرَكُمْ وَلَا تَضُرُّوْهُ

राह में निकलने के लिए कहा गया तो तुम ज़मीन से चिमटकर रह गए? क्या तुमने आख़िरत के मुक़ाबले में दुनिया की ज़िन्दगी को पसन्द कर लिया? ऐसा है तो तुम्हें मालूम हो कि दुनिया की ज़िन्दगी का यह सब सरो-सामान आख़िरत में बहुत थोड़ा निकलेगा।[39] (39) तुम न उठोगे तो ख़ुदा तुम्हें दर्दनाक सज़ा देगा[40], और तुम्हारी जगह

39. इसके दो मतलब हो सकते हैं। एक यह कि आख़िरत की कभी ख़त्म न होनेवाली ज़िन्दगी और वहाँ के बे हदो-हिसाब साज़ो-सामान को जब तुम देखोगे तब तुम्हें मालूम होगा कि दुनिया की थोड़ी-सी मुहलत में लुत्फ़ और मज़े लेने के जो बड़े-से-बड़े इमकानात (सम्भावनाएँ) तुमको हासिल थे और ज़्यादा-से-ज़्यादा ऐश के जो साधन तुमको मिले हुए थे वे इन ग़ैर-महदूद (असीम) इमकानात और उस बड़ी और नेमतों भरी जन्नत के मुक़ाबले में कुछ भी हैसियत नहीं रखते। और उस वक़्त तुमको अपने इस अंजाम को न जानने और कम-निगाही पर अफ़सोस होगा कि तुमने क्यों हमारे समझाने के बावुजूद दुनिया के वक़्ती और थोड़े से फ़ायदे की ख़ातिर अपने आपको उन हमेशा-हमेश की नेमतों और हमेशा रहनेवाले और ज़्यादा फ़ायदों से महरूम कर लिया। दूसरे यह कि ज़िन्दगी का सरमाया आख़िरत की दुनिया में काम आनेवाली चीज़ नहीं है। यहाँ तुम चाहे कितना ही सरो-सामान इकट्ठा कर लो, मौत की आख़िरी हिचकी के साथ हर चीज़ से तुम्हें हाथ धोना पड़ेगा, और मौत की सरहद की दूसरी तरफ़ जो दुनिया है वहाँ इनमें से कोई चीज़ भी तुम्हारे साथ न जाएगी। वहाँ इसका कोई हिस्सा अगर तुम पा सकते हो तो सिर्फ़ वही जिसे तुमने अल्लाह की ख़ुशी पर क़ुरबान किया हो और जिसकी मुहब्बत पर तुमने ख़ुदा और उसके दीन की मुहब्बत को तरजीह दी हो।

40. इसी से यह मसला निकला है कि जब तक जंगी ख़िदमत के लिए आम बुलावा न हो, या जब तक किसी इलाक़े की मुस्लिम आबादी या मुसलमानों के किसी गरोह को जिहाद के लिए निकलने का हुक्म न दिया जाए, उस वक़्त तक तो जिहाद फ़र्ज़े-किफ़ाया रहता है, यानी अगर कुछ लोग उसे अदा करते रहें तो बाक़ी लोगों पर से वह फ़र्ज़ टल जाता है, लेकिन जब मुसलमानों के सरदार की तरफ़ से मुसलमानों को जिहाद का आम बुलावा हो जाए, या किसी ख़ास गरोह या ख़ास इलाक़े की आबादी को बुलावा दे दिया जाए तो फिर जिन्हें बुलावा दिया गया हो उनपर जिहाद फ़र्ज़े-ऐन है (यानी हर शख़्स पर उसका करना फ़र्ज़ है), यहाँ तक कि जो शख़्स किसी हक़ीक़ी मजबूरी के बग़ैर न निकले उसका ईमान तक भरोसेमन्द नहीं है।

شَيْـًٔا ۗ وَاللّٰهُ عَلٰى كُلِّ شَيْءٍ قَدِيْرٌ ۝٣٩ اِلَّا تَنْصُرُوْهُ فَقَدْ نَصَرَهُ اللّٰهُ اِذْ
اَخْرَجَهُ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا ثَانِيَ اثْنَيْنِ اِذْ هُمَا فِي الْغَارِ اِذْ يَقُوْلُ
لِصَاحِبِهٖ لَا تَحْزَنْ اِنَّ اللّٰهَ مَعَنَا ۚ فَاَنْزَلَ اللّٰهُ سَكِيْنَتَهٗ عَلَيْهِ وَاَيَّدَهٗ
بِجُنُوْدٍ لَّمْ تَرَوْهَا وَجَعَلَ كَلِمَةَ الَّذِيْنَ كَفَرُوا السُّفْلٰى ۗ وَكَلِمَةُ اللّٰهِ هِيَ

किसी और गरोह को उठाएगा[41] और तुम ख़ुदा का कुछ भी न बिगाड़ सकोगे, उसे हर चीज़ पर क़ुदरत हासिल है। (40) तुमने अगर नबी की मदद न की तो कुछ परवाह नहीं, अल्लाह उसकी मदद उस वक़्त कर चुका है जब इनकार करनेवालों ने उसे निकाल दिया था, जब वह सिर्फ़ दो में का दूसरा था, जब वे दोनों ग़ार (गुफा) में थे, जब वह अपने साथी से कह रहा था कि "ग़म न कर, अल्लाह हमारे साथ है।"[42] उस वक़्त अल्लाह ने उसपर अपनी तरफ़ से दिल का सुकून उतारा और उसकी मदद ऐसी फ़ौजों से की जो तुमको दिखाई न पड़ती थीं और इनकार करनेवालों का बोल नीचा कर दिया, और

41. यानी ख़ुदा के काम का दारोमदार कुछ तुम्हारे ऊपर नहीं है कि तुम करोगे तो होगा वरना न होगा। हक़ीक़त में यह तो ख़ुदा का फ़ज़्ल और एहसान है कि वह तुम्हें अपने दीन की ख़िदमत का सुनहरा मौक़ा दे रहा है। अगर तुम अपनी नादानी से इस मौक़े को गँवा दोगे तो ख़ुदा किसी और क़ौम को इसकी तौफ़ीक़ बख़्श देगा और तुम नामुराद रह जाओगे।

42. यह उस मौक़े का ज़िक्र है जब मक्का के इस्लाम-दुश्मनों ने नबी (सल्ल.) के क़त्ल का पक्का इरादा कर लिया था और आप ठीक उस रात को, जो क़त्ल के लिए तय की गई थी, मक्का से निकलकर मदीना की तरफ़ हिजरत कर गए थे। मुसलमानों की बड़ी तादाद दो-दो, चार-चार करके पहले ही मदीना जा चुकी थी। मक्का में सिर्फ़ वही मुसलमान रह गए थे जो बिलकुल बे-बस थे या मुनाफ़िक़ाना (कपटाचारपूर्ण) ईमान रखते थे और उनपर कोई भरोसा नहीं किया जा सकता था। इस हालत में जब नबी (सल्ल.) को मालूम हुआ कि आपके क़त्ल का फ़ैसला हो चुका है तो आप (सल्ल.) सिर्फ़ एक साथी हज़रत अबू-बक्र (रज़ि.) को साथ लेकर मक्का से निकले, और इस ख़याल से कि आपका पीछा ज़रूर किया जाएगा, आप (सल्ल.) ने मदीना का रास्ता छोड़कर (जो शिमाल यानी उत्तर की तरफ़ था) जुनूब (दक्षिण) का रास्ता इख़्तियार किया। यहाँ तीन दिन तक नबी (सल्ल.) सौर गुफा में छिपे रहे। ख़ून के प्यासे दुश्मन आपको हर तरफ़ ढूँढते फिर रहे थे। मक्का के चारों तरफ़ की घाटियों का कोई कोना उन्होंने ऐसा नहीं छोड़ा जहाँ आप (सल्ल.) को तलाश न किया हो। इसी सिलसिले में एक बार उनमें से कुछ लोग ठीक गुफा के मुँह तक भी पहुँच गए जिसमें आप (सल्ल.) छिपे हुए थे। हज़रत अबू-बक्र (रज़ि.) को बहुत डर लगा कि अगर इन लोगों में से किसी ने ज़रा आगे बढ़कर गुफा में झाँक लिया तो वह

الْعُلْيَا ۗ وَاللّٰهُ عَزِيْزٌ حَكِيْمٌ ۝٤٠ اِنْفِرُوْا خِفَافًا وَّ ثِقَالًا وَّ جَاهِدُوْا
بِاَمْوَالِكُمْ وَاَنْفُسِكُمْ فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ ۗ ذٰلِكُمْ خَيْرٌ لَّكُمْ اِنْ كُنْتُمْ
تَعْلَمُوْنَ ۝٤١ لَوْ كَانَ عَرَضًا قَرِيْبًا وَّسَفَرًا قَاصِدًا لَّاتَّبَعُوْكَ وَلٰكِنْ
بَعُدَتْ عَلَيْهِمُ الشُّقَّةُ ۗ وَسَيَحْلِفُوْنَ بِاللّٰهِ لَوِ اسْتَطَعْنَا لَخَرَجْنَا
مَعَكُمْ ۚ يُهْلِكُوْنَ اَنْفُسَهُمْ ۚ وَاللّٰهُ يَعْلَمُ اِنَّهُمْ لَكٰذِبُوْنَ ۝٤٢ عَفَا اللّٰهُ ع ٦ ٥ ١٢
عَنْكَ ۚ لِمَ اَذِنْتَ لَهُمْ حَتّٰى يَتَبَيَّنَ لَكَ الَّذِيْنَ صَدَقُوْا وَتَعْلَمَ

अल्लाह का बोल तो ऊँचा ही है, अल्लाह ज़बरदस्त और गहरी सूझ-बूझवाला है।

(41) निकलो, चाहे हलके हो या बोझल[43] और जिहाद करो अल्लाह की राह में अपने मालों और अपनी जानों के साथ, यह तुम्हारे लिए अच्छा है अगर तुम जानो।

(42) ऐ नबी! अगर फ़ायदा आसानी से हासिल हो जानेवाला होता और सफ़र हलका होता तो वे ज़रूर तुम्हारे पीछे चलने पर तैयार हो जाते, मगर उनपर तो यह रास्ता बहुत कठिन हो गया।[44] अब वे अल्लाह की क़सम खा-खाकर कहेंगे कि अगर हम चल सकते तो यक़ीनन तुम्हारे साथ चलते। वे अपने आपको तबाही में डाल रहे हैं। अल्लाह ख़ूब जानता है कि वे झूठे हैं।

(43) ऐ नबी! अल्लाह तुम्हें माफ़ करे, तुमने क्यों उन्हें छूट दे दी? (तुम्हें चाहिए था कि ख़ुद छूट न देते) ताकि तुमपर खुल जाता कि कौन लोग सच्चे हैं, और झूठों को भी

हमें देख लेगा। लेकिन नबी (सल्ल॰) के इत्मीनान में ज़रा फ़र्क़ नहीं आया और आप (सल्ल॰) ने यह कहकर हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) को तसल्ली दी कि "ग़म न करो, अल्लाह हमारे साथ है।"

43. हल्के और बोझिल के अलफ़ाज़ का मतलब बहुत फैला हुआ है। मतलब यह है कि जब निकलने का हुक्म हो चुका है तो हर हाल में तुमको निकलना चाहिए चाहे दिल चाहता हो या नहीं, चाहे तंगी में हो या ख़ुशहाली में, चाहे बहुत कुछ साज़ो-सामान के साथ हो, चाहे बेसरो-सामानी के साथ, चाहे हालात मुवाफ़िक़ हों या नामुवाफ़िक़, चाहे जवान और तन्दुरुस्त हो, चाहे ज़ईफ़ और कमज़ोर।

44. यानी यह देखकर कि मुक़ाबला रूम जैसी ताक़त से है और ज़माना सख़्त गर्मी का है और मुल्क में सूखा पड़ा हुआ है और नए साल की फ़सलें, जिनसे आस लगी हुई थी, कटने के क़रीब हैं, उनको तबूक का सफ़र बहुत ही भारी महसूस होने लगा।

الْكٰذِبِيْنَ ۞ لَا يَسْتَاْذِنُكَ الَّذِيْنَ يُؤْمِنُوْنَ بِاللّٰهِ وَالْيَوْمِ الْاٰخِرِ اَنْ
يُّجَاهِدُوْا بِاَمْوَالِهِمْ وَاَنْفُسِهِمْ ۭ وَاللّٰهُ عَلِيْمٌۢ بِالْمُتَّقِيْنَ ۞ اِنَّمَا
يَسْتَاْذِنُكَ الَّذِيْنَ لَا يُؤْمِنُوْنَ بِاللّٰهِ وَالْيَوْمِ الْاٰخِرِ وَارْتَابَتْ
قُلُوْبُهُمْ فَهُمْ فِيْ رَيْبِهِمْ يَتَرَدَّدُوْنَ ۞ وَلَوْ اَرَادُوا الْخُرُوْجَ لَاَعَدُّوْا
لَهٗ عُدَّةً وَّلٰكِنْ كَرِهَ اللّٰهُ انْۢبِعَاثَهُمْ فَثَبَّطَهُمْ وَقِيْلَ اقْعُدُوْا مَعَ

तुम जान लेते।[45] (44) जो लोग अल्लाह और आख़िरत के दिन पर ईमान रखते हैं वे तो तुमसे कभी यह दरख़ास्त न करेंगे कि उन्हें अपनी जान व माल के साथ जिहाद करने से माफ़ रखा जाए। अल्लाह मुत्तक़ियों (परहेज़गारों) को ख़ूब जानता है। (45) ऐसी दरख़ास्त तो सिर्फ़ वही लोग करते हैं जो अल्लाह और आख़िरत के दिन पर ईमान नहीं रखते, जिनके दिलों में शक है और वे अपने शक ही में आगे-पीछे (दुविधाग्रस्त) हो रहे हैं।[46]

(46) अगर वाक़ई में उनका इरादा निकलने का होता तो वे इसके लिए कुछ तैयारी करतें, लेकिन अल्लाह को उनका उठना पसन्द ही न था[47], इसलिए उसने उन्हें सुस्त कर

45. कुछ मुनाफ़िक़ों ने बनावटी बहाने और मजबूरियाँ पेश करके नबी (सल्ल.) से मुहलत माँगी थी और नबी (सल्ल.) ने भी अपनी नर्म-मिज़ाजी की वजह से यह जानने के बावजूद कि वे सिर्फ़ बहाने कर रहे हैं उनको छूट दे दी थी। इसको अल्लाह ने पसन्द नहीं किया और आप (सल्ल.) को तंबीह की कि ऐसी नरमी मुनासिब नहीं है। छूट दे देने की वजह से इन मुनाफ़िक़ों को अपने निफ़ाक़ पर परदा डालने का मौक़ा मिल गया। अगर उन्हें छूट न दी जाती और फिर ये घर बैठे रहते तो इनका ईमान का दावा बे-नक़ाब हो जाता।

46. इससे मालूम हुआ कि कुफ़्र और इस्लाम की कशमकश एक कसौटी है जो खरे ईमानवाले और खोटे ईमान के दावेदार के फ़र्क़ को साफ़ खोलकर रख देती है। जो शख़्स इस कशमकश में दिल और जान से इस्लाम की हिमायत करे और अपनी सारी ताक़त और तमाम ज़रिओं को इसको ऊँचा करने की कोशिश में खपा दे और किसी क़ुरबानी से वह पीछे न हटे वही सच्चा ईमानवाला है। इसके बरख़िलाफ़ जो इस कशमकश में इस्लाम का साथ देने से जी चुराए और कुफ़्र की सरबुलन्दी का ख़तरा सामने देखते हुए भी इस्लाम की सरबुलन्दी के लिए जान और माल की बाज़ी खेलने से बचे उसकी यह रविश ख़ुद उस हक़ीक़त को साफ़ कर देती है कि उसके दिल में ईमान नहीं है।

47. यानी बददिली के साथ उठना अल्लाह को पसन्द न था; क्योंकि जब वे जिहाद में शरीक होने

الْقٰعِدِيْنَ ۝٤٦ لَوْ خَرَجُوْا فِيْكُمْ مَّا زَادُوْكُمْ اِلَّا خَبَالًا وَّلَاَاوْضَعُوْا
خِلٰلَكُمْ يَبْغُوْنَكُمُ الْفِتْنَةَ ۚ وَفِيْكُمْ سَمّٰعُوْنَ لَهُمْ ۗ وَاللّٰهُ عَلِيْمٌۢ
بِالظّٰلِمِيْنَ ۝٤٧ لَقَدِ ابْتَغَوُا الْفِتْنَةَ مِنْ قَبْلُ وَقَلَّبُوْا لَكَ الْاُمُوْرَ حَتّٰى
جَآءَ الْحَقُّ وَظَهَرَ اَمْرُ اللّٰهِ وَهُمْ كٰرِهُوْنَ ۝٤٨ وَمِنْهُمْ مَّنْ يَّقُوْلُ ائْذَنْ
لِّيْ وَلَا تَفْتِنِّيْ ۭ اَلَا فِي الْفِتْنَةِ سَقَطُوْا ۭ وَاِنَّ جَهَنَّمَ لَمُحِيْطَةٌۢ

दिया और कह दिया गया कि बैठ रहो बैठनेवालों के साथ। (47) अगर वे तुम्हारे साथ निकलते तो तुम्हारे अन्दर ख़राबी के सिवा किसी चीज़ को न बढ़ाते, वे तुम्हारे बीच फ़ितना पैदा करने के लिए दौड़-धूप करते और तुम्हारे गरोह का हाल यह है कि अभी उसमें बहुत-से ऐसे लोग मौजूद हैं जो उनकी बातें कान लगाकर सुनते हैं, अल्लाह इन ज़ालिमों को ख़ूब जानता है। (48) इससे पहले भी इन लोगों ने फ़ितना पैदा करने की कोशिशें की हैं और तुम्हें नाकाम करने के लिए यह हर तरह की तदबीरों का उलट-फेर कर चुके हैं, यहाँ तक कि उनकी मरज़ी के खिलाफ़ हक़ आ गया और अल्लाह का काम होकर रहा।

(49) इनमें से कोई है जो कहता है कि "मुझे छूट दे दीजिए और मुझको फ़ितने में न डालिए"[48]— सुन रखो! फ़ितने ही में तो ये लोग पड़े हुए हैं[49] और जहन्नम ने इन

के जज़्बे और नीयत से ख़ाली थे और उनके अन्दर दीन की सरबुलन्दी के लिए जान लड़ाने की कोई ख़ाहिश नहीं थी, तो वे सिर्फ़ मुसलमानों की शर्मा-शर्मी से बददिली के साथ या किसी शरारत की नीयत से मुस्तैदी के साथ उठते और ये चीज़ हज़ार ख़राबियों की वजह होती जैसा कि बादवाली आयत में साफ़ तौर से कह दिया गया है।

48. जो मुनाफ़िक़ बहाने कर के पीछे ठहर जाने की इजाज़तें माँग रहे थे उनमें से कुछ ऐसे बे-ख़ौफ़ भी थे जो ख़ुदा की राह से क़दम पीछे हटाने के लिए मज़हबी और अख़लाक़ी क़िस्म के बहाने तराशते थे। चुनांचे उनमें से एक शख़्स जद्द-बिन-क़ैस के बारे में रिवायतों में आया है कि उसने नबी (सल्ल.) की ख़िदमत में आकर कहा कि मैं एक हुस्नपरस्त आदमी हूँ, मेरी क़ौम के लोग मेरी इस कमज़ोरी को जानते हैं कि औरत के मामले में मुझसे सब्र नहीं हो सकता। डरता हूँ कि कहीं रूमी औरतों को देखकर मेरा क़दम फिसल न जाए। इसलिए आप मुझे फ़ितने में न डालें और इस जिहाद में शरीक होने से मुझे छुट्टी दे दें।

49. यानी नाम तो फ़ितने से बचने का लेते हैं मगर असल में निफ़ाक़ और झूठ और दिखावे का

بِالۡكٰفِرِيۡنَ ۝٤٩ اِنۡ تُصِبۡكَ حَسَنَةٌ تَسُؤۡهُمۡ‌ۚ وَاِنۡ تُصِبۡكَ مُصِيۡبَةٌ
يَّقُوۡلُوۡا قَدۡ اَخَذۡنَاۤ اَمۡرَنَا مِنۡ قَبۡلُ وَيَتَوَلَّوۡا وَّهُمۡ فَرِحُوۡنَ ۝٥٠ قُلۡ لَّنۡ
يُّصِيۡبَنَاۤ اِلَّا مَا كَتَبَ اللّٰهُ لَنَا‌ ۚ هُوَ مَوۡلٰٮنَا ‌ۚ وَعَلَى اللّٰهِ فَلۡيَتَوَكَّلِ
الۡمُؤۡمِنُوۡنَ ۝٥١ قُلۡ هَلۡ تَرَبَّصُوۡنَ بِنَاۤ اِلَّاۤ اِحۡدَى الۡحُسۡنَيَيۡنِ‌ؕ وَنَحۡنُ

काफ़िरों को घेर रखा है।[50]

(50) तुम्हारा भला होता है तो इनको रंज होता है और तुमपर कोई मुसीबत आती है तो ये मुँह फेरकर ख़ुश-ख़ुश पलटते हैं और कहते जाते हैं कि अच्छा हुआ हमने पहले ही अपना मामला ठीक कर लिया था। (51) इनसे कहो, "हमें हरगिज़ कोई (बुराई या भलाई) नहीं पहुँचती, मगर वह जो अल्लाह ने हमारे लिए लिख दी है अल्लाह ही हमारा मौला (कारसाज़) है, और ईमानवालों को उसी पर भरोसा करना चाहिए।"[51]

(52) उनसे कहो, "तुम हमारे मामले में जिस चीज़ का इंतिज़ार कर रहे हो वह

फ़ितना इनपर बुरी तरह मुसल्लत है। अपने नज़दीक ये समझते हैं कि छोटे-छोटे फ़ितनों के इमकान से परेशानी और डर का इज़हार करके ये बड़े मुत्तक़ी (परहेज़गार) साबित हुए जा रहे हैं। हालाँकि असल में कुफ़्र और इस्लाम की फ़ैसलाकुन कशमकश के मौक़े पर इस्लाम की हिमायत से पहलू बचाकर ये इतने बड़े फ़ितने में पड़ रहे हैं जिससे बढ़कर किसी फ़ितने का तसव्वुर नहीं किया जा सकता।

50. यानी तक़वा (परहेज़गारी) की इस नुमाइश ने इनको जहन्नम से दूर नहीं किया, बल्कि निफ़ाक़ की इस लानत ने इन्हें जहन्नम के चंगुल में उल्टा फँसा दिया।

51. यहाँ दुनियापरस्त और ख़ुदापरस्त की सोच और ज़ेहनियत के फ़र्क़ को वाज़ेह (स्पष्ट) किया गया है। दुनियापरस्त जो कुछ करता है अपने नफ़्स (मन) की ख़ुशी के लिए करता है और उसके नफ़्स की ख़ुशी का दारोमदार कुछ दुनयावी फ़ायदों को हासिल करने पर होता है। ये मक़सद और फ़ायदे उसे हासिल हो जाएँ तो वह फूल जाता है और हासिल न हों तो उसपर मायूसी छा जाती है। फिर उसका सहारा मुकम्मल तौर पर माद्दी असबाब पर होता है। वे साज़गार हों तो उसका दिल बढ़ने लगता है और नासाज़गार होते नज़र आएँ तो उसकी हिम्मत टूट जाती है। इसके बरख़िलाफ़ ख़ुदापरस्त इनसान जो कुछ करता है, अल्लाह की ख़ुशी के लिए करता है और इस काम में उसका भरोसा अपनी क़ुव्वत या माद्दी असबाब पर नहीं बल्कि अल्लाह की ज़ात पर होता है। हक़ की राह में काम करते हुए उसपर मुसीबतें आएँ या कामयाबियों की बारिश हो, दोनों सूरतों में वह यही समझता है कि जो कुछ अल्लाह की मरज़ी

نَتَرَبَّصُ بِكُمْ اَنْ يُّصِيْبَكُمُ اللّٰهُ بِعَذَابٍ مِّنْ عِنْدِهٖۤ اَوْ بِاَيْدِيْنَا ۖ

इसके सिवा और क्या है कि दो भलाइयों में से एक भलाई है।[52] और हम तुम्हारे मामले में जिस चीज़ का इंतिज़ार कर रहे हैं वह यह है कि अल्लाह ख़ुद तुमको सज़ा देता है या

है वह पूरी हो रही है। मुसीबतें उसका दिल नहीं तोड़ सकतीं और कामयाबियाँ उसको इतराहट में नहीं डाल सकतीं; क्योंकि पहले तो दोनों को वह अपने हक़ में ख़ुदा की तरफ़ से समझता है और उसे हर हाल में यह फ़िक्र होती है कि ख़ुदा की डाली हुई आज़माइश से ख़ैरियत के साथ गुज़र जाए। दूसरे उसके सामने दुनयावी मक़सद नहीं होते कि उनके लिहाज़ से वह अपनी कामयाबी या नाकामी का अन्दाज़ा करे। उसके सामने तो बस एक ही मक़सद अल्लाह की रज़ा और ख़ुशी होता है और इस मक़सद से उसके क़रीब या दूर होने का पैमाना किसी दुनियावी कामयाबी का हासिल होना या न होना नहीं है, बल्कि सिर्फ़ यह बात है कि ख़ुदा की राह में जान और माल की बाज़ी लगाने की जो ज़िम्मेदारी उसपर थी उसे उसने कहाँ तक पूरी की। अगर यह फ़र्ज़ उसने अदा कर दिया हो तो चाहे दुनिया में वह बाज़ी बिलकुल ही हार चुका हो, लेकिन उसे पूरा भरोसा रहता है कि जिस ख़ुदा के लिए उसने माल खपाया और जान दी है वह उसके बदले को बरबाद करनेवाला नहीं है। फिर दुनियावी सरो-सामान से यह आस ही नहीं लगाता कि उनकी साज़गारी या नासाज़गारी उसको ख़ुश या रंजीदा करे। उसका सारा भरोसा ख़ुदा पर होता है जिसके हाथ में असबाब और सरो-सामान की दुनिया है, वही हाकिम है और उसके भरोसे पर वह नासाज़गार हालात में भी उसी हिम्मत और हौसले के साथ काम किए जाता है जिसका इज़हार दुनियावालों से सिर्फ़ साज़गार हालात ही में हुआ करता है। इसलिए अल्लाह कहता है कि इन दुनियापरस्त मुनाफ़िक़ों से कह दो कि हमारा मामला तुम्हारे मामले से बुनियादी तौर पर अलग है। तुम्हारी ख़ुशी और रंज के क़ानून कुछ और हैं और हमारे कुछ और। तुम इत्मीनान और बेइत्मीनानी किसी और ज़रिए से हासिल करते हो और हम किसी और ज़रिए से।

52. मुनाफ़िक़ लोग अपनी आदत के मुताबिक़ इस मौक़े पर भी कुफ़्र और इस्लाम की इस कशमकश में हिस्सा लेने के बजाए अपनी समझ में बड़ी सूझ-बूझ के साथ दूर बैठे हुए यह देखना चाहते थे कि इस कशमकश का अंजाम क्या होता है, नबी (सल्ल०) और उनके साथी फ़तह हासिल करके आते हैं या रूमियों की फ़ौजी ताक़त से टकराकर चूर-चूर हो जाते हैं। इसका जवाब उन्हें यह दिया गया जिन दो नतीजों में से एक के ज़ाहिर होने का तुम्हें इन्तिज़ार है, ईमानवालों के लिए तो ये दोनों ही सरासर भलाई हैं। वे अगर कामयाब हों तो इसका भलाई होना तो ज़ाहिर ही है, लेकिन अगर अपने मक़सद की राह में जानें लड़ाते हुए ये सब-के-सब मिट्टी में मिल जाएँ तब भी दुनिया की निगाह में चाहे यह इन्तिहाई नाकामी हो मगर हक़ीक़त में यह भी एक दूसरी कामयाबी है। इसलिए कि मोमिन की कामयाबी और नाकामी का मेयार यह

فَتَرَبَّصُوْٓا اِنَّا مَعَكُمْ مُّتَرَبِّصُوْنَ ﴿٥٢﴾ قُلْ اَنْفِقُوْا طَوْعًا اَوْ كَرْهًا لَّنْ
يُّتَقَبَّلَ مِنْكُمْ ۭاِنَّكُمْ كُنْتُمْ قَوْمًا فٰسِقِيْنَ ﴿٥٣﴾ وَمَا مَنَعَهُمْ اَنْ تُقْبَلَ
مِنْهُمْ نَفَقٰتُهُمْ اِلَّآ اَنَّهُمْ كَفَرُوْا بِاللّٰهِ وَبِرَسُوْلِهٖ وَلَا يَاْتُوْنَ الصَّلٰوةَ
اِلَّا وَهُمْ كُسَالٰى وَلَا يُنْفِقُوْنَ اِلَّا وَهُمْ كٰرِهُوْنَ ﴿٥٤﴾ فَلَا تُعْجِبْكَ
اَمْوَالُهُمْ وَلَآ اَوْلَادُهُمْ ۭ اِنَّمَا يُرِيْدُ اللّٰهُ لِيُعَذِّبَهُمْ بِهَا فِي الْحَيٰوةِ

हमारे हाथों दिलवाता है। अच्छा तो अब तुम भी इंतिज़ार करो और हम भी तुम्हारे साथ इंतिज़ार करते हैं।"

(53) इनसे कहो, "तुम अपने माल चाहे राज़ी-ख़ुशी ख़र्च करो या नागवारी के साथ[53], बहरहाल वे क़बूल न किए जाएँगे, क्योंकि तुम फ़ासिक़ (नाफ़रमान) लोग हो।" (54) उनके दिए हुए माल क़बूल न होने की कोई वजह इसके सिवा नहीं है कि उन्होंने अल्लाह और उसके रसूल से कुफ़्र किया है। नमाज़ के लिए आते हैं तो कसमसाते हुए आते हैं और ख़ुदा के रास्ते में ख़र्च करते हैं, तो न चाहते हुए ख़र्च करते हैं। (55) इनके माल व दौलत और इनकी औलाद की ज़्यादती को देखकर धोखा न खाओ। अल्लाह तो यह चाहता है कि इन ही चीज़ों के ज़रिए से इनको दुनिया की ज़िन्दगी में भी अज़ाब में

नहीं है कि उसने कोई मुल्क फ़तह किया या नहीं, या कोई हुकूमत क़ायम कर दी या नहीं, बल्कि उसका मेयार यह है कि उसने अपने ख़ुदा के कलिमे को बुलन्द करने के लिए अपने दिल और दिमाग़ और जिस्म और जान की सारी ताक़तें लड़ा दीं या नहीं। यह काम अगर उसने कर दिया तो हक़ीक़त में कामयाब है, चाहे दुनिया के एतिबार से उसकी कोशिश का नतीजा ज़ीरो ही क्यों न हो।

53. कुछ मुनाफ़िक़ ऐसे भी थे कि अपने आपको ख़तरे में डालने के लिए तो तैयार न थे, मगर यह भी नहीं चाहते थे कि इस जिहाद और उसकी कोशिश से बिलकुल अलग-थलग रहकर मुसलमानों की निगाह में अपनी सारी साख खो दें और अपने निफ़ाक़ को एलानिया ज़ाहिर कर दें। इसलिए वे कहते थे कि हम जंगी ख़िदमात अंजाम देने से तो इस वक़्त छुट्टी चाहते हैं, लेकिन माल से मदद करने के लिए हाज़िर हैं।

الدُّنْيَا وَتَزْهَقَ اَنْفُسُهُمْ وَهُمْ كٰفِرُوْنَ ۝٥٥ وَيَحْلِفُوْنَ بِاللّٰهِ اِنَّهُمْ
لَمِنْكُمْ ؕ وَمَا هُمْ مِّنْكُمْ وَلٰكِنَّهُمْ قَوْمٌ يَّفْرَقُوْنَ ۝٥٦ لَوْ يَجِدُوْنَ مَلْجَاً

डाल दे[54] और ये जान भी दें तो हक़ के इनकार ही की हालत में दें।[55]

(56) वे अल्लाह की क़सम खा-खाकर कहते हैं कि हम तुम्हीं में से हैं, हालाँकि वे हरगिज़ तुममें से नहीं हैं। अस्ल में तो वे ऐसे लोग हैं जो तुमसे डरे हुए हैं। (57) अगर

54. यानी इस माल और औलाद की मुहब्बत में गिरफ़्तार होकर जो मुनाफ़िक़ाना रवैया इन्होंने अपनाया है, इसकी वजह से मुस्लिम समाज में ये बहुत ही रुसवा और बे-इज़्ज़त होकर रहेंगे और रियासत व हुकूमत की वह सारी शान और इज़्ज़त व नामवरी और बड़ाई और चौधराहट, जो अब तक अरबी समाज में उनको हासिल रही है, नए इस्लामी समाजी निज़ाम में वह मिट्टी में मिल जाएगी। मामूली-मामूली ग़ुलाम और ग़ुलामज़ादे और मामूली किसान और चरवाहे, जिन्होंने सच्चे ईमान का सुबूत दिया है, इस नए निज़ाम में इज़्ज़तदार होंगे और ख़ानदानी चौधरी अपनी दुनियापरस्ती की वजह से बे इज़्ज़त होकर रह जाएँगे।

इस कैफ़ियत का एक दिलचस्प नमूना वह वाक़िआ है जो एक बार हज़रत उमर (रज़ि.) की मजलिस में पेश आया। क़ुरैश के कुछ बड़े-बड़े शैख़, जिनमें सुहैल-बिन-अम्र और हारिस-बिन-हिशाम जैसे लोग भी थे, हज़रत उमर से मिलने गए। वहाँ यह सूरत पेश आई कि अनसार और मुहाजरीन में से कोई मामूली आदमी भी आता तो हज़रत उमर (रज़ि.) उसे अपने पास बुलाकर बैठाते और इन शैख़ों से कहते कि इसके लिए जगह ख़ाली करो। थोड़ी देर में नौबत यह आई कि ये लोग सरकते-सरकते मजलिस के किनारे पहुँच गए। बाहर निकल, कर हारिस-बिन-हिशाम ने साथियों से कहा कि तुम लोगों ने देखा आज हमारे साथ क्या सुलूक हुआ है? सुहैल-बिन-अम्र ने कहा, इसमें उमर का कुछ क़ुसूर नहीं, क़ुसूर हमारा है कि जब हमें इस दीन की तरफ़ दावत दी गई तो हमने मुँह मोड़ा और ये लोग इसकी तरफ़ दौड़कर आए। फिर ये दोनों साहिब दोबारा हज़रत उमर (रज़ि.) के पास हाज़िर हुए और कहा कि आज हमने आपका सुलूक देखा, और हम जानते हैं कि यह हमारी अपनी कोताहियों का नतीजा है, मगर अब इसकी भरपाई की भी कोई सूरत है? हज़रत उमर (रज़ि.) ने ज़बान से कुछ जवाब नहीं दिया और सिर्फ़ रूमी सरहद की तरफ़ इशारा कर दिया। मतलब यह था कि अब जिहाद के मैदान में जान-माल खपाओ तो शायद वह पोज़िशन फिर हासिल हो जाए जिसे खो चुके हो।

55. यानी इस ज़िल्लत और रुसवाई से बढ़कर मुसीबत उनके लिए यह होगी कि जिन मुनाफ़िक़ाना आदतों को ये अपने अन्दर पाल रहे हैं उनकी वजह से इन्हें मरते दम तक सच्चे ईमान की तौफ़ीक़ नसीब नहीं होगी और अपनी दुनिया ख़राब कर लेने के बाद ये इस हाल में दुनिया से रुख़सत होंगे कि आख़िरत भी ख़राब, बल्कि बहुत ख़राब होगी।

اَوْ مَغٰرٰتٍ اَوْ مُدَّخَلًا لَّوَلَّوْا اِلَيْهِ وَهُمْ يَجْمَحُوْنَ ۝٥٧ وَمِنْهُمْ مَّنْ
يَّلْمِزُكَ فِي الصَّدَقٰتِ ۚ فَاِنْ اُعْطُوْا مِنْهَا رَضُوْا وَاِنْ لَّمْ يُعْطَوْا مِنْهَآ

वे कोई पनाहगाह पा लें, या कोई खोह या घुस बैठने की जगह, तो भागकर उसमें जा छिपें।[56]

(58) ऐ नबी! इनमें से कुछ लोग सदक़ो के बँटवारे में तुमपर एतिराज़ करते हैं। अगर इस माल में से उन्हें कुछ दे दिया जाए तो ख़ुश हो जाएँ और न दिया जाए तो

56. मदीना के ये मुनाफ़िक़ ज़्यादातर बल्कि तमामतर मालदार और ज़्यादा उम्रवाले लोग थे। इब्ने-कसीर ने 'अल-बिदाया वन्निहाया' में उनकी जो लिस्ट दी है उसमें सिर्फ़ एक नौजवान का ज़िक्र मिलता है और ग़रीब इनमें से कोई भी नहीं— ये लोग मदीना में जायदादें और फैले हुए कारोबार रखते थे और दुनिया देखे होने की वजह से वे मसलिहत-परस्त बन गए थे। इस्लाम जब मदीना में पहुँचा और आबादी के एक बड़े हिस्से ने पूरे दिल की सच्चाई और ईमानी जोश के साथ उसे क़बूल कर लिया, तो इन लोगों ने अपने आपको एक अजीब बेचैनी और उलझन में पड़ा हुआ पाया। उन्होंने देखा कि एक तरफ़ तो ख़ुद उनके अपने क़बीलों की भारी तादाद बल्कि उनके बेटों और बेटियों तक को इस नए दीन ने ईमान के नशे में डुबा दिया है। उनके ख़िलाफ़ अगर वे कुफ़्र और इनकार पर क़ायम रहते हैं तो उनकी हुकूमत, इज़्ज़त, शोहरत सब ख़ाक में मिली जाती है। यहाँ तक कि उनके अपने घरों में उनके ख़िलाफ़ बग़ावत बरपा हो जाने का अन्देशा है। दूसरी तरफ़ इस दीन का साथ देने के मानी यह हैं कि वे सारे अरब से बल्कि आस-पास की क़ौमों और सल्तनतों से भी लड़ाई मोल लेने के लिए तैयार हो जाएँ। अपने मन और ख़ाहिशों की बन्दगी ने मामले के इस पहलू पर नज़र करने की सलाहियत तो उनके अन्दर बाक़ी ही नहीं रहने दी थी कि हक़ और सच्चाई अपने आप में कोई क़ीमती चीज़ है जिसके इश्क़ में इनसान ख़तरे मोल ले सकता है और जान-माल की क़ुरबानियाँ बरदाश्त कर सकता है, दुनिया के सारे मामलों और मसलों पर सिर्फ़ फ़ायदों और मसलिहत ही के लिहाज़ से निगाह डालने के आदी हो चुके थे। इसलिए उनको अपने फ़ायदों कि हिफ़ाज़त की बेहतरीन सूरत यही नज़र आई कि ईमान का दावा करें; ताकि अपनी क़ौम के दरमियान अपनी ज़ाहिरी इज़्ज़त और अपनी जायदादों और अपने कारोबार को बरक़रार रख सकें, मगर सच्चे दिल से ईमान न इख़्तियार करें ताकि उन ख़तरों और नुक़सान से दो-चार न हों जो सच्चाई की राह इख़्तियार करने से लाज़िमी तौर पर पेश आने थे। उनकी इसी ज़ेहनी कैफ़ियत को यहाँ इस तरह बयान किया गया है कि हक़ीक़त में ये लोग तुम्हारे साथ नहीं हैं, बल्कि नुक़सान के ख़ौफ़ ने इन्हें ज़बरदस्ती तुम्हारे साथ बाँध दिया है। जो चीज़ इन्हें इस बात पर मजबूर करती है कि अपने-आपको मुसलमानों में शुमार कराएँ वह सिर्फ़ यह डर है कि मदीना में रहते हुए एलानिया ग़ैर-मुस्लिम बनकर रहें तो इज़्ज़त और वक़ार ख़त्म होता है और बीवी-बच्चों तक से ताल्लुक़ात ख़त्म हो जाते हैं। मदीना को छोड़ दें तो अपनी जायदादों और तिजारतों से हाथ धोना पड़ता है

إِذَا هُمْ يَسْخَطُونَ ۝٥٨ وَلَوْ أَنَّهُمْ رَضُوا مَا آتَاهُمُ اللَّهُ وَرَسُولُهُ ۥ
وَقَالُوا حَسْبُنَا اللَّهُ سَيُؤْتِينَا اللَّهُ مِنْ فَضْلِهِ وَرَسُولُهُ ۥ إِنَّا إِلَى اللَّهِ

बिगड़ने लगते हैं।[57] (59) क्या ही अच्छा होता कि अल्लाह और रसूल ने जो कुछ भी उन्हें दिया था उसपर वे राज़ी रहते[58] और कहते कि "अल्लाह हमारे लिए काफ़ी है, वह अपनी मेहरबानी से हमें और बहुत कुछ देगा और उसका रसूल भी हमपर मेहरबानी

और उनके अन्दर कुफ़्र के लिए भी इतना इख़लास नहीं है कि उसकी ख़ातिर वे उन नुक़सानों को बरदाश्त करने पर तैयार हो जाएँ। इस उलझन ने उन्हें कुछ ऐसा फाँस रखा है कि मजबूर होकर मदीना में बैठे हुए हैं, न चाहते हुए नमाज़ें पढ़ रहे हैं और ज़कात का 'जुर्माना' भुगत रहे हैं। वरना आए दिन जिहाद और आए दिन किसी न किसी ख़ौफ़नाक दुश्मन के मुक़ाबले और आए दिन जान और माल की क़ुरबानियों की माँग की जो "मुसीबत" इनपर पड़ी हुई है उससे बचने के लिए इतने बेचैन हैं कि अगर कोई सुराख़ या बिल भी ऐसा नज़र आ जाए जिसमें इन्हें अमन (शान्ति) मिलने की उम्मीद हो तो ये भागकर उसमें घुस बैठें।

57. अरब में यह पहला मौक़ा था कि मुल्क के तमाम उन बाशिन्दों पर जो एक मुक़र्रर तादाद से ज़्यादा माल रखते थे, बाक़ायदा ज़कात लागू की गई थी और वे उनकी खेती की पैदावार से, उनके मवेशियों से, उनके तिजारत के मालों से उनके मअ्दनियात (खनिजों) से, और उनके सोने-चाँदी के ज़ख़ीरों से ढाई फ़ीसदी, पाँच फ़ीसदी, दस फ़ीसदी और 20 फ़ीसदी की मुख़्तलिफ़ दरों के मुताबिक़ वुसूल की जाती थी। ज़कात के ये सब माल एक मुनज़्ज़म तरीक़े से वुसूल किए जाते। इस तरह नबी (सल्ल.) के पास मुल्क के आस-पास से इतनी दौलत सिमटकर आती और आप (सल्ल.) के हाथों ख़र्च होती थी जो अरब के लोगों ने कभी इससे पहले किसी एक शख़्स के हाथों जमा होते और तक़सीम होते नहीं देखी थी। दुनियापरस्त मुनाफ़िक़ों के मुँह में इस दौलत को देखकर पानी भर-भर आता था। वे चाहते थे कि इस बहते हुए दरिया से उनको ख़ूब पेट भरकर पीने का मौक़ा मिले, मगर यहाँ पिलानेवाला ख़ुद अपने ऊपर और अपने रिश्तेदारों पर उस दरिया के एक-एक क़तरे को हराम कर चुका था और कोई यह उम्मीद नहीं कर सकता था कि उसके हाथों से हक़दार लोगों के सिवा किसी और के होंठों तक जाम पहुँच सकेगा। यही वजह है कि मुनाफ़िक़ नबी (सल्ल.) की सदक़ों के बँटवारे को देख-देखकर दिलों में घुटते थे और बँटवारे के मौक़े पर आप (सल्ल.) को तरह-तरह के इलज़ाम से ताने दिया करते थे। अस्ल शिकायत तो उन्हें यह थी कि इस माल पर हमें हाथ साफ़ करने का मौक़ा नहीं दिया जाता, मगर इस अस्ल शिकायत को छिपाकर वे इलज़ाम यह रखते थे कि माल का बँटवारा इनसाफ़ से नहीं किया जाता और इसमें तरफ़दारी से काम लिया जाता है।

58. यानी ग़नीमत के माल में से जो हिस्सा नबी (सल्ल.) उनको देते हैं इसपर मुतमइन रहते, और ख़ुदा के फ़ज़्ल से जो कुछ ये ख़ुद कमाते हैं और ख़ुदा के दिए हुए आमदनी के ज़रिओं से जो

ع ۱۴

رٰغِبُوْنَ ﴿٥٩﴾ اِنَّمَا الصَّدَقٰتُ لِلْفُقَرَآءِ وَالْمَسٰكِيْنِ وَالْعٰمِلِيْنَ عَلَيْهَا
وَالْمُؤَلَّفَةِ قُلُوْبُهُمْ وَفِي الرِّقَابِ وَالْغٰرِمِيْنَ وَفِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ وَابْنِ

करेगा[59], हम अल्लाह ही की तरफ़ नज़र जमाए हुए हैं!"[60] (60) ये सदक़े तो अस्ल में फ़क़ीरो[61] और मिस्कीनों[62] के लिए हैं और उन लोगों के लिए जो सदक़ों के काम पर मुक़र्रर हो[63], और उनके लिए जिनका मन मोहना हो[64], साथ ही यह गरदनों के छुड़ाने[65] और क़र्ज़दारों की मदद करने में[66] और अल्लाह के रास्ते में[67] और मुसाफ़िर की मदद

ख़ुशहाली इन्हें मिली है उसको अपने लिए काफ़ी समझते।

59. यानी ज़कात के अलावा जो माल हुकूमत के ख़ज़ाने में आएँगे उनसे हक़ के मुताबिक़ हम लोगों को उसी तरह फ़ायदा उठाने का मौक़ा हासिल रहेगा जिस तरह अब तक रहा है।

60. यानी हमारी नज़र दुनिया और उसकी मामूली दौलत पर नहीं, बल्कि अल्लाह और उसके फ़ज़्ल और करम पर है। उसी की ख़ुशी हम चाहते हैं। उसी से उम्मीद रखते हैं। जो कुछ वह दे उसपर ख़ुश हैं।

61. फ़क़ीर से मुराद हर वह शख़्स है जो अपनी मईशत (रोज़ी) के लिए दूसरों की मदद का मोहताज हो। यह लफ़्ज़ तमाम ज़रूरतमन्दों के लिए आम है चाहे वे जिस्मानी कमी या बुढ़ापे की वजह से मुस्तक़िल तौर पर मदद के मोहताज हो गए हों या किसी वक़्ती वजह से इस वक़्त मदद के मोहताज हों, और अगर उन्हें सहारा मिल जाए तो आगे चलकर ख़ुद अपने पाँव पर खड़े हो सकते हों, मिसाल के तौर पर यतीम बच्चे, बेवा औरतें, बेरोज़गार लोग और वे लोग जो वक़्ती हादिसों के शिकार हो गए हों।

62. मिसकीन लफ़्ज़ मस्कनत से बना है और 'मस्कनत के लफ़्ज़ में आजिज़ी, मजबूरी, बेचारगी और नीचा होने के मानी शामिल हैं। इस लिहाज़ से मिसकीन वे लोग हैं जो ज़रूरतमंदों के मुक़ाबले में ज़्यादा ख़स्ता हाल हों। नबी (सल्ल.) ने इस लफ़्ज़ की तशरीह करते हुए ख़ुसूसियत के साथ ऐसे लोगों को मदद का हक़दार ठहराया है जो अपनी ज़रूरतों के मुताबिक़ ज़रिए (साधन) न पा रहे हों और सख़्त तंग हाल हों, मगर न तो उनकी ख़ुद्दारी किसी के आगे हाथ फैलाने की इजाज़त देती हो और न उनकी ज़ाहिरी पोज़ीशन ऐसी हो कि कोई उन्हें ज़रूरतमन्द समझकर उनकी मदद के लिए हाथ बढ़ाए। चुनाँचे हदीस में इसकी तशरीह इस तरह की गई है कि "मिसकीन वह है जो अपनी ज़रूरत भर माल नहीं पाता, और न पहचाना जाता है कि उसकी मदद की जाए, और न खड़ा होकर लोगों से माँगता है।" मानो वह एक ऐसा शरीफ़ आदमी है जो ग़रीब हो।

63. यानी वे लोग जो सदक़ात वुसूल करने और वुसूल किए गए माल की हिफ़ाज़त करने और उनका हिसाब-किताब लिखने और उन्हें तक़सीम करने में हुकूमत की तरफ़ से इस्तेमाल किए जाएँ। ऐसे लोग चाहे फ़क़ीर और मिसकीन न हों, उनकी तनख़ाहें बहरहाल सदक़ात ही की मद

से दी जाएँगी। ये अलफ़ाज़ और इसी सूरा की आयत-103 के अलफ़ाज़ "ऐ नबी, तुम इनके मालों में से सदक़ा लो" इस बात की दलील हैं कि ज़कात की वुसूलयाबी और तक़सीम इस्लामी हुकूमत की ज़िम्मेदारियों में से है।

इस सिलसिले में यह बात क़ाबिले-ज़िक्र है कि नबी (सल्ल॰) ने अपनी ज़ात और अपने ख़ानदान (यानी बनी-हाशिम) पर ज़कात का माल लेना हराम क़रार दिया था, चुनाँचे आप (सल्ल॰) ने ख़ुद भी सदक़ात की वुसूलयाबी और तक़सीम का काम हमेशा बिना मुआविज़े के किया और दूसरे बनी-हाशिम के लिए भी यह क़ायदा मुक़र्रर कर दिया कि अगर वे इस ख़िदमत को बिना मुआविज़ा अंजाम दें तो जायज़ है, लेकिन मुआवज़ा लेकर इस शोबे (विभाग) की कोई ख़िदमत करना उनके लिए जाइज़ नहीं है। आप (सल्ल॰) के ख़ानदान के लोग अगर साहिबे-निसाब हों तो ज़कात देना उनपर फ़र्ज़ है, लेकिन अगर वे ग़रीब और मोहताज या क़र्ज़दार या मुसाफ़िर हों तो ज़कात लेना उनके लिए हराम है। अलबत्ता इस बात में उलमा की राए अलग-अलग हैं कि ख़ुद बनी-हाशिम की ज़कात बनी-हाशिम ले सकते हैं या नहीं। इमाम अबू-यूसुफ़ की राय यह है कि ले सकते हैं। लेकिन ज़्यादातर फ़ुक़हा इसको भी जाइज़ नहीं मानते।

64. अस्ल अरबी में तालीफ़े-क़ल्ब इस्तेमाल हुआ है जिसके मानी दिल मोहना है। इस हुक्म से मक़सद यह है कि जो लोग इस्लाम की मुख़ालिफ़त में सरगर्म हों और माल देकर उनकी दुश्मनी के जोश को ठण्डा किया जा सकता हो, या जो लोग इस्लाम दुश्मनों के कैम्प में ऐसे हों कि अगर माल से उन्हें तोड़ा जाए तो टूटकर मुसलमानों के मददगार बन सकते हों, या जो लोग नए-नए इस्लाम में दाख़िल हुए हों और उनकी पिछली दुश्मनियों या उनकी कमज़ोरियों को देखते हुए अन्देशा हो कि अगर माल से उनकी मदद न की गई तो फिर कुफ़्र की तरफ़ पलट जाएँगे, ऐसे लोगों को मुस्तक़िल वज़ीफ़े या वक़्ती तोहफ़े देकर इस्लाम का हिमायती और मददगार या फ़रमाँबरदार, या अगर दुश्मन भी रहें तो कम-से-कम ऐसा बना लिया जाए कि वे कोई नुक़सान न पहुँचाएँ। इस मद पर ग़नीमत के माल और आमदनी के दूसरे ज़रिओं से भी माल ख़र्च किया जा सकता है और अगर ज़रूरत हो तो ज़कात से भी उनकी मदद की जा सकती है। और ऐसे लोगों के लिए यह शर्त नहीं है कि वे फ़क़ीर और मिस्कीन या मुसाफ़िर हों तब ही उनकी मदद ज़कात से की जा सकती है, बल्कि वे मालदार और रईस होने पर भी ज़कात दिए जाने के हक़दार हैं।

इस बात पर तो सभी उलमा और फ़ुक़हा का इत्तिफ़ाक़ है कि नबी (सल्ल॰) के ज़माने में बहुत-से लोगों को 'तालीफ़े-क़ल्ब' (दिल मोहने) के लिए वज़ीफ़े और तोहफ़े दिए जाते थे, लेकिन इस बात में इख़्तिलाफ़ हो गया है कि क्या आप (सल्ल॰) के बाद भी यह मद बाक़ी रही या नहीं। इमाम अबू-हनीफ़ा और उनके साथियों की राए यह है कि हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) और हज़रत उमर (रज़ि॰) के ज़माने से यह मद ख़त्म हो गई है और अब 'तालीफ़े-क़ल्ब' के लिए कुछ देना जाइज़ नहीं है। इमाम शाफ़ई (रह॰) की राए यह है कि फ़ासिक़ मुसलमानों को 'तालीफ़े-क़ल्ब' के लिए ज़कात की मद से दिया जा सकता है मगर ग़ैर-मुस्लिमों को नहीं। और कुछ दूसरे फ़ुक़हा और आलिमों का कहना है कि 'मुअल्लफ़तिल-क़ुलूब' का हिस्सा अब भी बाक़ी है अगर उसकी ज़रूरत हो।

इमाम अबू-हनीफ़ा और उनके माननेवाले अपनी बात की दलील में यह वाक़िया पेश करते हैं कि नबी (सल्ल॰) के इंतिक़ाल के बाद उऐना-बिन-हिस्न और अक़रअ-बिन-हाबिस हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) के पास आए और उन्होंने एक ज़मीन उनसे माँगी। हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) ने उनको तोहफ़े का फ़रमान लिख दिया। उन्होंने चाहा कि और ज़्यादा पुख़्तगी के लिए दूसरे सहाबा भी इस फ़रमान पर गवाही के लिए दस्तख़त कर दें। चुनाँचे गवाहियाँ भी हो गईं। मगर जब ये लोग हज़रत उमर (रज़ि॰) के पास गवाही लेने गए तो उन्होंने फ़रमान को पढ़कर उसे उनकी आँखों के सामने ही फाड़ दिया और उनसे कहा कि बेशक नबी (सल्ल॰) तुम लोगों की तालीफ़े-क़ल्ब के लिए तुम्हें दिया करते थे, मगर वह इस्लाम की कमज़ोरी का ज़माना था। अब अल्लाह ने इस्लाम को तुम जैसे लोगों से बेनियाज़ कर दिया है। इसपर वे हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) के पास शिकायत लेकर आए और आपको ताना भी दिया कि ख़लीफ़ा आप हैं या उमर? लेकिन न तो हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) ही ने उसपर कोई नोटिस लिया और न दूसरे सहाबा में से ही किसी ने हज़रत उमर (रज़ि॰) की इस राए से इख़्तिलाफ़ किया। इससे हनफ़ी आलिम यह दलील लाते हैं कि जब मुसलमान ज़्यादा तादाद में हो गए और उनको यह ताक़त हासिल हो गई कि अपने बलबूते पर खड़े हो सकें तो वह सबब बाक़ी नहीं रहा जिसकी वजह से शुरू में 'तालीफ़े-क़ल्ब' का हिस्सा रखा गया था। इसलिए इसपर सभी सहाबा का इत्तिफ़ाक़ है कि यह हिस्सा हमेशा के लिए ख़त्म हो गया।

इमाम शाफ़ई (रह॰) की दलील यह है कि तालीफ़े-क़ल्ब के लिए ग़ैर-मुस्लिमों को ज़कात का माल देना नबी (सल्ल॰) से साबित नहीं है। जितने वाक़िआत हदीस में हमको मिलते हैं उन सबसे यही मालूम होता है कि नबी (सल्ल॰) ने ग़ैर-मुस्लिमों को तालीफ़े-क़ल्ब के लिए जो कुछ दिया ग़नीमत के माल में से दिया, न कि ज़कात के माल में से।

हमारे नज़दीक हक़ यह है कि तालीफ़े-क़ल्ब की मद क़ियामत तक के लिए ख़त्म हो जाने की कोई दलील नहीं है। इसमें कोई शक नहीं कि हज़रत उमर (रज़ि॰) ने जो कुछ कहा वह बिलकुल सही था। अगर इस्लामी हुकूमत तालीफ़े-क़ल्ब के लिए माल ख़र्च करने की ज़रूरत न समझती हो तो किसी ने उसपर फ़र्ज़ नहीं किया है कि ज़रूर ही इस मद में कुछ न कुछ ख़र्च करे। लेकिन अगर किसी वक़्त इसकी ज़रूरत महसूस हो तो अल्लाह ने उसके लिए जो गुंजाइश रखी है, उसे बाक़ी रहना चाहिए। हज़रत उमर (रज़ि॰) और सहाबा किराम (रज़ि॰) का जिस बात पर इत्तिफ़ाक़ हुआ था वह सिर्फ़ यह था कि उनके ज़माने में जो हालात थे, उनमें तालीफ़े-क़ल्ब के लिए किसी को कुछ देने की वे हज़रात ज़रूरत महसूस नहीं करते थे। इससे यह नतीजा निकालने की कोई माक़ूल वजह नहीं है कि सहाबा (रज़ि॰) के इत्तिफ़ाक़ ने उस मद को क़ियामत तक के लिए ख़त्म कर दिया, जो क़ुरआन में कुछ अहम दीनी मसलिहतों के लिए रखी गई थी।

रही इमाम शाफ़ई की राय तो वह इस हद तक तो सही मालूम होती है कि जब हुकूमत के पास दूसरी आमदनी की मदों से काफ़ी माल मौजूद हो तो उसे तालीफ़े-क़ल्ब की मद पर ज़कात का माल ख़र्च न करना चाहिए। लेकिन जब ज़कात के माल से इस काम में मदद लेने की ज़रूरत पेश आ जाए तो फिर यह फ़र्क़ करने की कोई वजह नहीं कि फ़ासिक़ मुसलमानों पर उसे ख़र्च

किया जाए और ग़ैर-मुस्लिमों पर न किया जाए। इसलिए कि क़ुरआन में तालीफ़े-क़ल्ब का जो हिस्सा रखा गया है वह उनके ईमान के दावे की बुनियाद पर नहीं है, बल्कि इस बुनियाद पर है कि इस्लाम को अपने फ़ायदों के लिए उनकी तालीफ़े-क़ल्ब की ज़रूरत है और वे इस तरह के लोग हैं कि उनकी तालीफ़े-क़ल्ब सिर्फ़ माल ही के ज़रिए से हो सकती है। यह ज़रूरत और यह बात जहाँ भी पेश आए वहाँ मुसलमानों का ज़िम्मेदार ज़रूरत पड़ने पर ज़कात का माल ख़र्च करने का क़ुरआन की हिदायत के मुताबिक़ इख़्तियार रखता है। नबी (सल्ल॰) ने अगर इस मद से ग़ैर-मुस्लिमों को कुछ नहीं दिया तो इसकी वजह यह थी कि आपके पास दूसरी मदों का माल मौजूद था। वरना अगर आपके नज़दीक ग़ैर-मुस्लिमों पर इस मद का माल ख़र्च करना जाइज़ न होता, तो आप इस बात को ज़रूर वाज़ेह करते।

65. गर्दनें छुड़ाने से मुराद यह है कि ग़ुलामों को आज़ाद कराने में ज़कात का माल ख़र्च किया जाए। इसकी दो सूरतें हैं। एक यह कि जिस ग़ुलाम ने अपने मालिक से यह मुआहिदा किया हो कि अगर मैं इतनी रक़म तुम्हें अदा कर दूँ तो तुम मुझे आज़ाद कर दो, उसे आज़ादी की क़ीमत अदा करने में मदद की जाए। दूसरे यह कि ख़ुद ज़कात की मद से ग़ुलाम ख़रीदकर आज़ाद किए जाएँ। इनमें से पहली सूरत पर तो सभी फ़ुक़हा और आलिम एक राय हैं, लेकिन दूसरी सूरत को हज़रत अली (रज़ि॰), सईद-बिन-जुबैर, लैस, सौरी, इबराहीम नख़ई, शअबी, मुहम्मद-बिन-सिरीन, हनफ़ी उलमा और शाफ़ई उलमा नाजाइज़ कहते हैं और इब्ने-अब्बास, हसन बसरी, मालिक, अहमद और अबू-सौर जाइज़ ठहराते हैं।

66. यानी ऐसे क़र्ज़दार जो अगर अपने माल से अपना पूरा क़र्ज़ चुका दें तो उनके पास निसाब (इतना माल जिससे ज़कात फ़र्ज़ हो जाती है) की मिक़दार से कम माल बच सकता हो। वे चाहे कमानेवाले हों या बेरोज़गार और चाहे समाज में उनको फ़क़ीर समझा जाता हो या मालदार, दोनों सूरतों में उनकी मदद ज़कात की मद से की जा सकती है। मगर बहुत-से फ़ुक़हा की राए यह है कि जिस आदमी ने बुरे कामों और फ़ुज़ूल-ख़र्चियों में अपना माल उड़ाकर अपने आपको क़र्ज़दारी में फँसा लिया हो उसकी मदद न की जाए, जब तक कि वह तौबा न कर ले।

67. 'अल्लाह के रास्ते' का लफ़्ज़ आम है। तमाम वे नेकी के काम, जिनमें अल्लाह की ख़ुशी हो, इस लफ़्ज़ के मानी में शामिल हैं। इसी वजह से कुछ लोगों ने यह राय ज़ाहिर की है कि इस हुक्म के मुताबिक़ ज़कात का माल हर तरह के नेक कामों में ख़र्च किया जा सकता है। लेकिन सही बात यह है और पहले के ज़्यादातर बुज़ुर्ग उलमा इस बात को मानते हैं कि यहाँ 'अल्लाह के रास्ते में' से मुराद 'अल्लाह के रास्ते में जिहाद' है। यानी वह जिद्दोजुहद जिसका मक़सद कुफ़्र के निज़ाम को मिटाना और उसकी जगह इस्लामी निज़ाम को क़ायम करना हो। इस जिद्दोजुहद में जो लोग काम करें, उनके सफ़र ख़र्च के लिए, सवारी के लिए, हथियार और सरो-सामान जुटाने के लिए ज़कात से मदद दी जा सकती है, चाहे वे अपने तौर पर खाते-पीते लोग हों और अपनी निजी ज़रूरतों के लिए उनको मदद की ज़रूरत न हो। इसी तरह जो लोग अपनी मरज़ी और ख़ुशी से अपनी तमाम ख़िदमतें और अपना तमाम वक़्त, वक़्ती तौर पर या मुस्तक़िल तौर पर, इस काम के लिए दे दें उनकी ज़रूरतें पूरी करने के लिए भी ज़कात से वक़्ती या मुस्तक़िल तौर पर मददें दी जा सकती हैं।

السَّبِيْلِ ۭ فَرِيْضَةً مِّنَ اللّٰهِ ۭ وَاللّٰهُ عَلِيْمٌ حَكِيْمٌ ۝ وَمِنْهُمُ الَّذِيْنَ
يُؤْذُوْنَ النَّبِيَّ وَيَقُوْلُوْنَ هُوَ اُذُنٌ ۭ قُلْ اُذُنُ خَيْرٍ لَّكُمْ يُؤْمِنُ بِاللّٰهِ

में[68] इस्तेमाल करने के लिए हैं। एक फ़रीज़ा है अल्लाह की तरफ़ से, और अल्लाह सब कुछ जाननेवाला और गहरी सूझ-बूझवाला है।

(61) इनमें से कुछ लोग हैं जो अपनी बातों से नबी को दुख देते हैं और कहते हैं कि यह आदमी कानों का कच्चा है।[69] कहो, "वह तुम्हारी भलाई के लिए ऐसा

यहाँ यह बात और समझ लेनी चाहिए कि शुरू के बुज़ुर्ग उलमा की किताबों में आम तौर से इस मौक़े पर ग़ज़्व का लफ़्ज़ इस्तेमाल हुआ है जो 'क़िताल' या जंग का हममानी है, इसलिए लोग यह समझने लगते हैं कि ज़कात के ख़र्च करने की मदों में अल्लाह की राह में ख़र्च करने की जो मद रखी गई है वह सिर्फ़ क़िताल यानी जंग के लिए ख़ास है। लेकिन हक़ीक़त में अल्लाह की राह में जिहाद, क़िताल या जंग से कुशादा चीज़ का नाम है और इसको उन तमाम कोशिशों के लिए बोला जाता है जो कुफ़्र (अधर्म) के बोल को पस्त और ख़ुदा के बोल को बुलन्द करने और अल्लाह के दीन को एक निज़ामे-ज़िन्दगी की हैसियत से क़ायम करने के लिए की जाएँ, चाहे वे कोशिशें इस्लाम की तरफ़ बुलाने और उसको फैलाने के शुरुआती मरहले में हों या क़िताल या जंग के आख़िरी मरहले में।

68. मुसाफ़िर भले ही अपने घर का ख़ुशहाल हो, लेकिन सफ़र की हालत में अगर वह मदद का मुहताज हो जाए तो उसकी मदद ज़कात की मद से की जाएगी।
यहाँ कुछ फ़ुक़हा (धर्मशास्त्रियों) ने यह शर्त लगाई है कि जिस आदमी का सफ़र गुनाह के कामों के लिए न हो सिर्फ़ वही इस आयत के मुताबिक़ मदद का हक़दार है। मगर क़ुरआन और हदीस में ऐसी कोई शर्त मौजूद नहीं है, और दीन की उसूली तालीमात से हमको यह मालूम होता है कि जो आदमी मदद का मोहताज हो उसकी मदद करने में उसकी गुनाहगारी रुकावट नहीं होनी चाहिए, बल्कि सही मानी में गुनाहगारों और अख़लाक़ी पस्ती में गिरे हुए लोगों के सुधार का बहुत बड़ा ज़रिआ यह है कि मुसीबत के वक़्त उनको सहारा दिया जाए और अच्छे सुलूक से उनके नफ़्स को पाक करने की कोशिश की जाए।

69. मुनाफ़िक़ लोग नबी (सल्ल.) पर जो झूठे ऐब लगाते थे उनमें से एक यह बात भी थी कि नबी (सल्ल.) हर आदमी की सुन लेते थे और हर एक को अपनी बात कहने का मौक़ा दिया करते थे। यह ख़ूबी उनकी नज़र में एक ऐब था। कहते थे कि आप कानों के कच्चे हैं, जिसका जी चाहता है आपके पास पहुँच जाता है, जिस तरह चाहता है आपके कान भरता है और आप उसकी बात मान लेते हैं। इस इलज़ाम की चर्चा ज़्यादातर इस वजह से की जाती थी कि सच्चे ईमानवाले इन मुनाफ़िक़ों की साज़िशों और उनकी शरारतों और उनकी मुख़ालिफ़ाना बातचीत का हाल नबी (सल्ल.) तक पहुँचा दिया करते थे और इसपर ये लोग जल-भुनकर कहते थे कि

وَيُؤْمِنُ لِلْمُؤْمِنِيْنَ وَرَحْمَةٌ لِّلَّذِيْنَ اٰمَنُوْا مِنْكُمْ ۚ وَالَّذِيْنَ يُؤْذُوْنَ
رَسُوْلَ اللّٰهِ لَهُمْ عَذَابٌ اَلِيْمٌ ﴿٦١﴾ يَحْلِفُوْنَ بِاللّٰهِ لَكُمْ لِيُرْضُوْكُمْ ۚ
وَاللّٰهُ وَرَسُوْلُهٗۤ اَحَقُّ اَنْ يُّرْضُوْهُ اِنْ كَانُوْا مُؤْمِنِيْنَ ﴿٦٢﴾ اَلَمْ يَعْلَمُوْۤا
اَنَّهٗ مَنْ يُّحَادِدِ اللّٰهَ وَرَسُوْلَهٗ فَاَنَّ لَهٗ نَارَ جَهَنَّمَ خَالِدًا فِيْهَا ۭ ذٰلِكَ

है[70], अल्लाह पर ईमान रखता है और ईमानवालों पर भरोसा करता है।[71] और सरासर रहमत है उन लोगों के लिए जो तुममें से ईमानदार हैं, और जो लोग अल्लाह के रसूल को दुख देते हैं उनके लिए दर्दनाक सज़ा है।"

(62) ये लोग तुम्हारे सामने क़समें खाते हैं ताकि तुम्हें राज़ी करें, हालाँकि अगर ये ईमानवाले हैं तो अल्लाह और रसूल इसके ज़्यादा हक़दार हैं कि ये उनको राज़ी करने की फ़िक्र करें। (63) क्या इन्हें मालूम नहीं है कि जो अल्लाह और उसके रसूल का मुक़ाबला करता है, उसके लिए दोज़ख़ की आग है जिसमें वह हमेशा रहेगा? यह बहुत बड़ी

आप हम जैसे शरीफ़ों और इज़्ज़तदारों के ख़िलाफ़ हर कंगले और हर फ़क़ीर की दी हुई ख़बरों पर यक़ीन कर लेते हैं।

70. जवाब में एक जामे (व्यापक और सारगर्भित) बात कही गई है जो अपने अन्दर दो पहलू रखती है। एक यह कि वह फ़साद और बिगाड़ की बातें सुननेवाला शख़्स नहीं है, बल्कि सिर्फ़ उन्हीं बातों पर ध्यान देता है जिनमें भलाई और अच्छाई है और जिनकी तरफ़ ध्यान देना उम्मत की बेहतरी और दीन की मस्लेहत के लिए मुफ़ीद होता है। दूसरे यह कि उसका ऐसा होना तुम्हारे ही लिए भलाई है। अगर वह हर एक की सुन लेनेवाला और सब्र और बरदाश्त से काम लेनेवाला आदमी न होता तो ईमान के वे झूठे दावे और मेल-मिलाप और भाइचारे की वे दिखावे की बातें और ख़ुदा की राह से भागने के लिए वे झूठे बहाने जो तुम किया करते हो उन्हें सब्र से सुनने के बजाए तुम्हारी ख़बर ले डालता और तुम्हारे लिए मदीना में जीना मुश्किल हो जाता। इसलिए इसकी यह ख़ूबी तो तुम्हारे हक़ में अच्छी है न कि बुरी।

71. यानी तुम्हारा यह ख़याल ग़लत है कि वह हर एक की बात पर यक़ीन कर लेता है, वह चाहे सुनता सबकी हो मगर भरोसा सिर्फ़ उन्हीं लोगों पर करता है जो सच्चे ईमानवाले हैं। तुम्हारी जिन शरारतों की ख़बरें उस तक पहुँचीं और उसने उनपर यक़ीन किया वह बदअख़लाक़ चुगलख़ोरों की पहुँचाई हुई न थीं, बल्कि नेक ईमानवालों की पहुँचाई हुई थीं और इसी क़ाबिल थीं कि उनपर भरोसा किया जाता।

الْخِزْيُ الْعَظِيمُ ﴿٦٣﴾ يَحْذَرُ الْمُنٰفِقُوْنَ اَنْ تُنَزَّلَ عَلَيْهِمْ سُوْرَةٌ تُنَبِّئُهُمْ
بِمَا فِيْ قُلُوْبِهِمْ ۚ قُلِ اسْتَهْزِءُوْا ۚ اِنَّ اللّٰهَ مُخْرِجٌ مَّا تَحْذَرُوْنَ ﴿٦٤﴾ وَلَئِنْ
سَاَلْتَهُمْ لَيَقُوْلُنَّ اِنَّمَا كُنَّا نَخُوْضُ وَنَلْعَبُ ۚ قُلْ اَبِاللّٰهِ وَاٰيٰتِهٖ
وَرَسُوْلِهٖ كُنْتُمْ تَسْتَهْزِءُوْنَ ﴿٦٥﴾ لَا تَعْتَذِرُوْا قَدْ كَفَرْتُمْ بَعْدَ اِيْمَانِكُمْ ۚ

रुसवाई है।

(64) ये मुनाफ़िक़ डर रहे हैं कि कहीं मुसलमानों पर कोई ऐसी सूरा न उतर आए जो उनके दिलों के भेद खोलकर रख दे।[72] ऐ नबी! इनसे कहो, "और मज़ाक़ उड़ाओ! अल्लाह उस चीज़ को खोल देनेवाला है जिसके खुल जाने से तुम डरते हो।" (65) अगर इनसे पूछो कि तुम क्या बातें कर रहे थे, तो झट कह देंगे कि हम तो हँसी-मज़ाक़ और दिल्लगी कर रहे थे।[73] इनसे कहो, "क्या तुम्हारी हँसी-दिल्लगी अल्लाह और उसकी आयतों और उसके रसूल ही के साथ थी? (66) अब बहाने न बनाओ। तुमने ईमान

72. ये लोग नबी (सल्ल॰) के रसूल होने पर सच्चा ईमान तो नहीं रखते थे, लेकिन जो तजरिबे उन्हें पिछले आठ-नौ सालों के दौरान हो चुके थे उनकी बिना पर उन्हें इस बात का यक़ीन हो चुका था कि आप (सल्ल॰) के पास फ़ितरत से परे मालूमात का कोई न कोई ज़रिआ ज़रूर है, जिससे आपको उनके छिपे भेदों तक की ख़बर पहुँच जाती है, और कई बार क़ुरआन में (जिसे वे नबी सल्ल॰ की अपनी लिखी किताब समझते थे) आप उनके निफ़ाक़ और उनकी साज़िशों को बेनक़ाब करके रख देते हैं।

73. तबूक की मुहिम के ज़माने में मुनाफ़िक़ लोग अकसर अपनी मजलिसों में बैठकर नबी (सल्ल॰) और मुसलमानों का मज़ाक़ उड़ाते थे और अपने मज़ाक़ से उन लोगों की हिम्मतें तोड़ने की कोशिश करते थे, जिन्हें वे नेक-नियती के साथ जिहाद पर तैयार पाते थे। चुनाँचे रिवायतों में इन लोगों की बहुत-सी बातें नक़्ल हुई हैं। मिसाल के तौर पर एक मजलिस में कुछ मुनाफ़िक़ बैठे गप्प लड़ा रहे थे। एक ने कहा, ''अजी, क्या रूमियों को भी तुमने कुछ अरबों की तरह समझ रखा है? कल देख लेना कि ये सब सूरमा जो लड़ने के लिए आए हैं, रस्सियों में बँधे हुए होंगे।'' दूसरा बोला, ''मज़ा हो जो ऊपर से सौ-सौ कोड़े भी लगाने का हुक्म हो जाए।'' एक और मुनाफ़िक़ ने नबी (सल्ल॰) को लड़ाई की सरगर्म तैयारियाँ करते देखकर अपने यार-दोस्तों से कहा, ''आपको देखिए, आप रूम व शाम के क़िले फ़तह करने चले हैं।''

إِنْ نَّعْفُ عَنْ طَآئِفَةٍ مِّنْكُمْ نُعَذِّبْ طَآئِفَةً بِأَنَّهُمْ كَانُوْا مُجْرِمِيْنَ ﴿٦٦﴾
اَلْمُنٰفِقُوْنَ وَالْمُنٰفِقٰتُ بَعْضُهُمْ مِّنْۢ بَعْضٍ ۘ يَأْمُرُوْنَ بِالْمُنْكَرِ
وَيَنْهَوْنَ عَنِ الْمَعْرُوْفِ وَيَقْبِضُوْنَ اَيْدِيَهُمْ ۭ نَسُوا اللّٰهَ فَنَسِيَهُمْ ۭ اِنَّ

लाने के बाद इनकार किया है। अगर हमने तुममें से एक गरोह को माफ़ कर भी दिया तो दूसरे गरोह को तो हम ज़रूर सज़ा देंगे, क्योंकि वह मुजरिम है।"[74]

(67) मुनाफ़िक़ मर्द और मुनाफ़िक़ औरतें, सब एक-दूसरे के हमरंग हैं, बुराई का हुक्म देते हैं और भलाई से मना करते हैं और अपने हाथ भलाई से रोके रखते हैं।[75] ये अल्लाह को भूल गए तो अल्लाह ने भी इन्हें भुला दिया। यक़ीनन ये मुनाफ़िक़ ही

74. यानी मज़ाक़ उड़ानेवाले वे कम अक़्ल लोग तो माफ़ भी किए जा सकते हैं, जो सिर्फ़ इसलिए ऐसी बातें करते और उनमें दिलचस्पी लेते हैं कि उनके नज़दीक दुनिया में कोई चीज़ संजीदा है ही नहीं, लेकिन जिन लोगों ने जान-बूझकर ये बातें इसलिए की हैं कि वे रसूल और उसके लाए हुए दीन को अपने ईमान के दावे के बावजूद एक मज़ाक़ समझते हैं और जिनके इस मज़ाक का असली मक़सद यह है कि ईमानवालों की हिम्मतें टूटें और वे पूरी ताक़त के साथ जिहाद की तैयारी न कर सकें, उनको तो कभी माफ़ नहीं किया जा सकता, क्योंकि वे मज़ाक़ उड़ानेवाले नहीं, बल्कि मुजरिम हैं।

75. ये बातें उन मुनाफ़िक़ों के अन्दर पाई जाती हैं। इन सबको बुराई से दिलचस्पी और भलाई से दुश्मनी होती है। कोई आदमी बुरा काम करना चाहे तो उनकी हमदर्दियाँ, उनके मशवरे, उनकी हौसला-अफ़ज़ाइयाँ, उनकी मदद, उनकी सिफ़ारिशें, उनकी तारीफ़ें सब इसके लिए वक़्फ़ (समर्पित) होंगी। दिल व जान से खुद इस बुरे काम में शरीक होंगे, दूसरों को उसमें हिस्सा लेने पर उभारेंगे, करनेवाले की हिम्मत बढ़ाएँगे और उनकी हर अदा से यह ज़ाहिर होगा कि इस बुराई के परवान चढ़ने ही से कुछ उनके दिल को राहत और उनकी आँखों को ठंडक पहुँचती है। इसके बरख़िलाफ़ कोई भला काम हो रहा हो तो उसकी ख़बर से उनको सदमा होता है, उसे सोचकर उनका दिल दुखता है। उसकी तजवीज़ (प्रस्ताव) तक उन्हें गवारा नहीं होती, उसकी तरफ़ किसी को बढ़ते देखते हैं तो उनकी रूह बेचैन होने लगती है। हर मुमकिन तरीक़े से उसकी राह में रोड़े अटकाते हैं और हर तरीक़े से यह कोशिश करते हैं कि किसी तरह वह इस नेकी से बाज़ आ जाए, और बाज़ नहीं आता तो इस काम में कामयाब न हो सके। फिर यह भी इन सबकी मिली-जुली आदत है कि नेकी के काम में ख़र्च करने के लिए उनका हाथ कभी नहीं खुलता, चाहे वे कंजूस हों या बड़े ख़र्च करनेवाले, बहरहाल उनकी दौलत या तो तिजोरियों के लिए होती है या फिर हराम रास्तों से आती और हराम ही रास्तों में बह जाती है। बुराई के लिए चाहे वे अपने वक़्त के क़ारून हों, मगर नेकी के लिए इनसे ज़्यादा 'ग़रीब' कोई नहीं होता।

الْمُنٰفِقِيْنَ هُمُ الْفٰسِقُوْنَ ﴿٦٧﴾ وَعَدَ اللّٰهُ الْمُنٰفِقِيْنَ وَالْمُنٰفِقٰتِ
وَالْكُفَّارَ نَارَ جَهَنَّمَ خٰلِدِيْنَ فِيْهَا ؕ هِيَ حَسْبُهُمْ ۚ وَلَعَنَهُمُ اللّٰهُ ۚ وَلَهُمْ
عَذَابٌ مُّقِيْمٌ ﴿٦٨﴾ كَالَّذِيْنَ مِنْ قَبْلِكُمْ كَانُوْٓا اَشَدَّ مِنْكُمْ قُوَّةً وَّاَكْثَرَ
اَمْوَالًا وَّاَوْلَادًا ؕ فَاسْتَمْتَعُوْا بِخَلَاقِهِمْ فَاسْتَمْتَعْتُمْ بِخَلَاقِكُمْ كَمَا
اسْتَمْتَعَ الَّذِيْنَ مِنْ قَبْلِكُمْ بِخَلَاقِهِمْ وَ خُضْتُمْ كَالَّذِيْ خَاضُوْا ؕ
اُولٰٓئِكَ حَبِطَتْ اَعْمَالُهُمْ فِي الدُّنْيَا وَالْاٰخِرَةِ ۚ وَاُولٰٓئِكَ هُمُ
الْخٰسِرُوْنَ ﴿٦٩﴾ اَلَمْ يَاْتِهِمْ نَبَاُ الَّذِيْنَ مِنْ قَبْلِهِمْ قَوْمِ نُوْحٍ وَّعَادٍ
وَّثَمُوْدَ ۙ وَقَوْمِ اِبْرٰهِيْمَ وَاَصْحٰبِ مَدْيَنَ وَالْمُؤْتَفِكٰتِ ؕ اَتَتْهُمْ رُسُلُهُمْ

फ़ासिक़ (नाफ़रमान) हैं। (68) इन मुनाफ़िक़ मर्दों और औरतों और काफ़िरों (इनकार करनेवालों) के लिए अल्लाह ने जहन्नम की आग का वादा किया है, जिसमें वह हमेशा रहेंगे, वही इनके लिए मुनासिब है। उनपर अल्लाह की फिटकार है और उनके लिए क़ायम रहनेवाला अज़ाब है— (69) तुम लोगों[76] के रंग-ढंग वही हैं जो तुमसे पहले के लोगों के थे। वे तुमसे ज़्यादा ताक़तवर और तुमसे बढ़कर माल और औलादवाले थे। फिर उन्होंने दुनिया में अपने हिस्से के मज़े लूट लिए और तुमने भी अपने हिस्से के मज़े उसी तरह लूटे जैसे उन्होंने लूटे थे, और वैसी ही बहसों में तुम भी पड़े जैसी बहसों में वे पड़े थे। तो उनका अंजाम यह हुआ कि दुनिया और आख़िरत में उनका सब किया-धरा अकारथ गया और वही घाटे में हैं— (70) क्या[77] इन लोगों को अपने अगलों का इतिहास नहीं पहुँचा? नूह की क़ौम, आद, समूद और इबराहीम (अलैहि॰) की क़ौम, मदयन के लोग और वे बस्तियाँ जिन्हें उलट दिया गया[78], उनके रसूल उनके पास खुली-

76. मुनाफ़िक़ों का ग़ायबाना ज़िक्र (परोक्ष वर्णन) करते-करते अचानक उनसे सीधे तौर पर ख़िताब शुरू हो गया है।
77. यहाँ से फिर इनका ग़ायबाना ज़िक्र (परोक्ष वर्णन) शुरू हो गया।
78. इशारा है लूत की क़ौम की बस्तियों की तरफ़।

بِالْبَيِّنٰتِ ۚ فَمَا كَانَ اللّٰهُ لِيَظْلِمَهُمْ وَلٰكِنْ كَانُوْٓا اَنْفُسَهُمْ يَظْلِمُوْنَ ﴿٧٠﴾
وَالْمُؤْمِنُوْنَ وَالْمُؤْمِنٰتُ بَعْضُهُمْ اَوْلِيَآءُ بَعْضٍ ۘ يَاْمُرُوْنَ
بِالْمَعْرُوْفِ وَيَنْهَوْنَ عَنِ الْمُنْكَرِ وَيُقِيْمُوْنَ الصَّلٰوةَ وَيُؤْتُوْنَ
الزَّكٰوةَ وَيُطِيْعُوْنَ اللّٰهَ وَرَسُوْلَهٗ ۗ اُولٰٓئِكَ سَيَرْحَمُهُمُ اللّٰهُ ۗ اِنَّ اللّٰهَ

وقف لازم

खुली निशानियाँ लेकर आए, फिर यह अल्लाह का काम न था कि उनपर ज़ुल्म करता, मगर वह आप ही अपने ऊपर ज़ुल्म करनेवाले थे।[79]

(71) ईमानवाले मर्द और ईमानवाली औरतें, ये सब एक-दूसरे के साथी हैं, भलाई का हुक्म देते और बुराई से रोकते हैं, नमाज़ क़ायम करते हैं, ज़कात देते हैं और अल्लाह और उसके रसूल की इताअ़त करते हैं।[80] ये वे लोग हैं जिनपर अल्लाह की रहमत उतरकर रहेगी, यक़ीनन अल्लाह सबपर ग़ालिब और हिकमतवाला व बड़ी सूझ-बूझवाला

79. यानी उनकी तबाही और बरबादी इस वजह से नहीं हुई कि अल्लाह को उनके साथ कोई दुश्मनी थी और वह चाहता था कि उन्हें तबाह करे, बल्कि असल में उन्होंने ख़ुद ही अपने लिए ज़िन्दगी का वह तरीक़ा पसन्द किया जो उन्हें बरबादी की तरफ़ ले जानेवाला था। अल्लाह ने तो उन्हें सोचने और समझने और संभलने का पूरा मौक़ा दिया, उन्हें समझाने-बुझाने के लिए रसूल भेजे, रसूलों के ज़रिए से उनको ग़लत रास्ते पर चलने के बुरे नतीजों से डराया और उन्हें खोल-खोलकर निहायत वाज़ेह तरीक़े से बता दिया कि उनके लिए कामयाबी का रास्ता कौन-सा है और हलाकत और बरबादी का कौन-सा? मगर जब उन्होंने हालत के सुधार के किसी मौक़े से फ़ायदा न उठाया और हलाकत और तबाही की राह पर चलने ही पर अड़े रहे, तो यक़ीनन उनका वह अंजाम होना था जो आख़िरकार होकर रहा और यह ज़ुल्म उनपर अल्लाह ने नहीं किया, बल्कि उन्होंने ख़ुद अपने ऊपर किया।

80. जिस तरह मुनाफ़िक़ एक अलग उम्मत हैं, उसी तरह ईमानवाले भी एक अलग उम्मत हैं। हालाँकि ईमान का ज़ाहिरी इक़रार और इस्लाम की पैरवी का बाहरी इज़हार दोनों गरोहों में पाया जाता है, लेकिन दोनों के मिज़ाज, अख़लाक़, आदत और सोच-विचार और अमल का तरीक़ा एक-दूसरे से बिलकुल अलग है। जहाँ ज़बान पर ईमान का दावा है, लेकिन दिल सच्चे ईमान से ख़ाली हैं, वहाँ ज़िन्दगी का सारा रंग-ढंग ऐसा है जो अपनी एक-एक अदा से ईमान के दावे को झुठला रहा है। ऊपर के लेबल पर तो लिखा है कि यह मुश्क (कस्तूरी) है, मगर लेबल के नीचे जो कुछ है वह अपने पूरे वुजूद से साबित कर रहा है कि ये गोबर के सिवा कुछ नहीं। इसके बरख़िलाफ़ जहाँ ईमान अपनी अस्ल हक़ीक़त के साथ मौजूद है वहाँ मुश्क अपनी सूरत से,

عَزِيْزٌ حَكِيْمٌ ﴿٧١﴾ وَعَدَ اللّٰهُ الْمُؤْمِنِيْنَ وَالْمُؤْمِنٰتِ جَنّٰتٍ تَجْرِيْ مِنْ
تَحْتِهَا الْاَنْهٰرُ خٰلِدِيْنَ فِيْهَا وَ مَسٰكِنَ طَيِّبَةً فِيْ جَنّٰتِ عَدْنٍ ؕ
وَرِضْوَانٌ مِّنَ اللّٰهِ اَكْبَرُ ؕ ذٰلِكَ هُوَ الْفَوْزُ الْعَظِيْمُ ﴿٧٢﴾ يٰۤاَيُّهَا النَّبِيُّ
جَاهِدِ الْكُفَّارَ وَالْمُنٰفِقِيْنَ وَاغْلُظْ عَلَيْهِمْ ؕ وَمَاْوٰىهُمْ جَهَنَّمُ ؕ

है। (72) इन ईमानवाले मर्दों और औरतों से अल्लाह का वादा है कि उन्हें ऐसे बाग़ देगा जिनके नीचे नहरें बहती होंगी और वे उनमें हमेशा रहेंगे। इन सदाबहार बाग़ों में उनके लिए पाकीज़ा रहने की जगहें होंगी, और सबसे बढ़कर यह कि अल्लाह की ख़ुशनूदी उन्हें हासिल होगी। यही बड़ी कामयाबी है।

(73) ऐ नबी![81] इनकार करनेवालों और मुनाफ़िक़ों दोनों का पूरी ताक़त से मुक़ाबला करो और उनके साथ सख़्ती से पेश आओ।[82] आख़िरकार उनका ठिकाना

अपनी ख़ुशबू से, अपनी ख़ासियतों से हर आज़माइश और मामले में अपना मुश्क होना खोले दे रहा है। इस्लाम और ईमान का जो नाम लागों में मशहूर है उसने बज़ाहिर दोनों गरोहों को एक उम्मत बना रखा है, मगर हक़ीक़त में मुनाफ़िक़ मुसलमानों का अख़लाक़ी मिज़ाज और उनकी तबीयत का रंग-ढंग कुछ और है और सच्चे मुसलमानों का कुछ और। इसी वजह से मुनाफ़िक़ाना आदतें रखनेवाले मर्द और औरतें एक अलग जत्था बन गए हैं जिनको अल्लाह से ग़फ़लत, बुराई से दिलचस्पी, नेकी से दूरी और भलाई के कामों में शामिल न होने की इन ख़ुसूसियतों ने, जो इन सबके अन्दर पाई जाती हैं, एक-दूसरे से जोड़ रखा है और ईमानवालों से अमली तौर पर अलग कर दिया है। और दूसरी तरफ़ सच्चे मोमिन मर्द और औरतें एक दूसरा गरोह बन गए हैं जिसके सारे लोगों में ये ख़ुसूसियतें हैं कि नेकी से वे दिलचस्पी रखते हैं, बुराई से नफ़रत करते हैं और ख़ुदा की याद उनके लिए ग़िज़ा की तरह ज़िन्दगी की लाज़िमी ज़रूरतों में शामिल है। अल्लाह के रास्ते में ख़र्च करने के लिए उनके दिल और हाथ खुले हुए हैं और अल्लाह और रसूल की फ़रमाँबरदारी करना उनकी ज़िन्दगी का तरीक़ा और पहचान है। उन सभी के अन्दर पाए जानेवाले इस अख़लाक़ी मिज़ाज और ज़िन्दगी के तरीक़े ने उन्हें आपस में एक-दूसरे से जोड़ दिया है और मुनाफ़िक़ों के गरोह से तोड़ दिया है।

81. यहाँ से वह तीसरी तक़रीर शुरू होती है जो तबूक की मुहिम के बाद उतरी थी।

82. इस वक़्त तक मुनाफ़िक़ों के साथ ज़्यादातर दरगुज़र और माफ़ी का मामला हो रहा था, और इसकी दो वजहें थीं। एक यह कि मुसलमानों की ताक़त अभी इतनी मज़बूत नहीं हुई थी कि बाहर के दुश्मनों से लड़ने के साथ-साथ घर के दुश्मनों से भी लड़ाई मोल ले लेते। दूसरे यह कि

इनमें से जो लोग शक और शुब्हे में पड़े हुए थे उनको ईमान और यक़ीन हासिल करने के लिए काफ़ी मौक़ा देना मक़सद था। ये दोनों वजहें अब बाक़ी नहीं रही थीं। मुसलमानों की ताक़त अब तमाम अरब को अपनी गिरफ़्त में ले चुकी थी और अरब से बाहर की ताक़तों से कशमकश का सिलसिला शुरू हो रहा था इसलिए इन आस्तीन के साँपों का सर कुचलना अब मुमकिन भी था और ज़रूरी भी हो गया था, ताकि ये लोग बाहरी ताक़तों से साँठ-गाँठ करके मुल्क में कोई अन्दरूनी ख़तरा न खड़ा कर सकें। फिर उन लोगों को पूरे 9 साल तक सोचने, समझने और दीने-हक़ को परखने का मौक़ा भी दिया जा चुका था जिससे वे फ़ायदा उठा सकते थे, अगर उनमें वाक़ई में भलाई की कोई चाहत होती। इसके बाद उनके साथ और ज़्यादा छूट की कोई वजह नहीं थी। इसलिए हुक्म हुआ कि काफ़िरों के साथ-साथ अब इन मुनाफ़िक़ों के ख़िलाफ़ भी जिहाद शुरू कर दिया जाए और जो नर्म रवैया अब तक इनके मामले में अपनाया जाता रहा है उसे ख़त्म करके अब इनके साथ सख़्त बरताव किया जाए।

मुनाफ़िक़ों के ख़िलाफ़ जिहाद और सख़्त बरताव से मुराद यह नहीं है कि उनसे जंग की जाए। अस्ल में इससे मुराद यह है कि उनकी मुनाफ़िक़ाना रवैये की जो अनदेखी अब तक की गई है, जिसकी वजह से ये मुसलमानों में मिले-जुले रहे, और आम मुसलमान उनको अपनी ही सोसाइटी का एक हिस्सा समझते रहे और उनको जमाअत के मामलों में दख़ल देने और सोसाइटी में अपने निफ़ाक़ का ज़हर फैलाने का मौक़ा मिलता रहा, उसको आइन्दा के लिए ख़त्म कर दिया जाए। अब जो शख़्स भी मुसलमानों में शामिल रहकर मुनाफ़िक़ाना रवैया इख़्तियार करे और जिसके रवैये से भी यह ज़ाहिर हो कि वह अल्लाह और रसूल और ईमानवालों का सच्चा दोस्त नहीं है, उसे खुल्लम-खुल्ला बेनक़ाब किया जाए, एलानिया उसको मलामत की जाए, सोसाइटी में उसके लिए इज़्ज़त और भरोसे का कोई मक़ाम बाक़ी न रहने दिया जाए, समाज में उसका बाइकॉट हो, जमाअती मशवरों से उसे अलग रखा जाए, अदालतों में उसकी गवाही भरोसेमन्द न हो, पदों और मंसबों का दरवाज़ा उसके लिए बन्द रहे, महफ़िलों में उसे कोई मुँह न लगाए, हर मुसलमान उससे ऐसा बरताव करे जिससे उसको ख़ुद मालूम हो जाए कि मुसलमानों की पूरी आबादी में कहीं भी उसकी कोई इज़्ज़त नहीं और किसी दिल में भी उसके लिए इज़्ज़त और एहतिराम की थोड़ी भी जगह नहीं। फिर अगर उनमें से कोई शख़्स कोई खुली ग़द्दारी करे तो उसके जुर्म पर पर्दा न डाला जाए, न उसे माफ़ किया जाए, बल्कि सरेआम उस पर मुक़द्दमा चलाया जाए और उसे उसकी मुनासिब सज़ा दी जाए।

यह एक बहुत ही अहम हिदायत थी जो इस मरहले पर मुसलमानों को दी जानी ज़रूरी थी। इसके बग़ैर इस्लामी सोसाइटी को पस्ती और गिरावट के अन्दरूनी असबाब से महफ़ूज़ नहीं रखा जा सकता था। कोई जमाअत जो अपने अन्दर मुनाफ़िक़ों और ग़द्दारों की परवरिश करती हो और जिसमें घरेलू साँप इज़्ज़त और हिफ़ाज़त के साथ आस्तीनों में बिठाए जाते हों, अख़लाक़ी गिरावट और आख़िरकार मुकम्मल तबाह हुए बग़ैर नहीं रह सकती। निफ़ाक़ का हाल ताऊन (Plague) की बीमारी जैसा है और मुनाफ़िक़ वह चूहा है जो इस बीमारी के जरासीम (कीटाणु) लिए फिरता है। उसको आबादी में आज़ादी के साथ चलने-फिरने का मौक़ा देना मानो पूरी आबादी को मौत के ख़तरे में डालना है। एक मुनाफ़िक़ को मुसलमानों की सोसाइटी में

وَبِئْسَ الْمَصِيْرُ ﴿٧٣﴾ يَحْلِفُوْنَ بِاللّٰهِ مَا قَالُوْا ۖ وَلَقَدْ قَالُوْا كَلِمَةَ الْكُفْرِ
وَكَفَرُوْا بَعْدَ إِسْلَامِهِمْ وَهَمُّوْا بِمَا لَمْ يَنَالُوْا ۚ وَمَا نَقَمُوْا إِلَّا أَنْ

जहन्नम है, और वह सबसे बुरी ठहरने की जगह है। (74) ये लोग अल्लाह की क़सम खा-खाकर कहते हैं कि हमने वह बात नहीं कही, हालाँकि उन्होंने ज़रूर वह कुफ़्र (अधर्म) की बात कही है।[83] उन्होंने इस्लाम लाने के बाद कुफ़्र किया और उन्होंने वह कुछ करने का इरादा किया जिसे कर न सके।[84] यह उनका सारा गुस्सा इसी बात पर है

इज़्ज़त और एहतिराम का मर्तबा हासिल होने के मानी ये हैं कि हज़ारों आदमी ग़द्दारी और मुनाफ़िक़त पर दलेर हो जाएँ और यह ख़याल आम हो जाए कि इस सोसाइटी में इज़्ज़त पाने के लिए इख़लास, ख़ैरख़ाही, और सच्चा ईमान कुछ ज़रूरी नहीं है, बल्कि ईमान के झूठे दावे के साथ ख़ियानत और बेवफ़ाई का रवैया अपनाकर भी यहाँ आदमी फल-फूल सकता है। यही बात है जिसे नबी (सल्ल.) ने इस छोटे-से हिकमत भरे जुमले में बयान की है कि "जिस शख़्स ने किसी ऐसे शख़्स की इज़्ज़त और एहतिराम किया जो दीन में नई-नई चीज़ें पैदा करता है, वह असल में इस्लाम की इमारत ढाने में मददगार हुआ।"

83. वह बात क्या थी जिसकी तरफ़ यहाँ इशारा किया गया है? उसके बारे में कोई यक़ीनी मालूमात हम तक नहीं पहुँची हैं। अलबत्ता रिवायतों में बहुत-सी ऐसी काफ़िराना बातों का ज़िक्र आया है जो उस ज़माने में मुनाफ़िक़ों ने की थीं। मिसाल के तौर पर एक मुनाफ़िक़ के बारे में आता है कि उसने अपने रिश्तेदारों में से एक मुसलमान नौजवान के साथ बात करते हुए कहा कि "अगर वाक़ई वह सब कुछ सच है जो यह शख़्स (यानी नबी सल्ल.) पेश करता है तो हम सब गधों से भी बदतर हैं।" एक और रिवायत में है कि तबूक के सफ़र में एक जगह नबी (सल्ल.) की ऊँटनी गुम हो गई। मुसलमान उसको तलाश करते फिर रहे थे। इसपर मुनाफ़िक़ों के एक गरोह ने अपनी मजलिस में बैठकर ख़ूब मज़ाक़ उड़ाया और आपस में कहा कि "ये हज़रत आसमान की ख़बरें तो ख़ूब सुनाते हैं, मगर इनको अपनी ऊँटनी की कुछ ख़बर नहीं कि वह इस वक़्त कहाँ है।"

84 यह इशारा है उन साज़िशों की तरफ़ जो मुनाफ़िक़ों ने तबूक की मुहिम के सिलसिले में की थीं। उनमें से पहली साज़िश का वाक़िआ मुहद्दिसों ने इस तरह बयान किया है कि तबूक से वापसी पर जब मुसलमानों का लश्कर एक ऐसी जगह के क़रीब पहुँचा जहाँ से पहाड़ों के बीच रास्ता गुज़रता था तो कुछ मुनाफ़िक़ों ने आपस में तय किया कि रात के वक़्त किसी घाटी में से गुज़रते हुए नबी (सल्ल.) को खड्ड में फेंक देंगे। नबी (सल्ल.) को इसकी ख़बर मिल गई। आप (सल्ल.) ने तमाम लश्करवालों को हुक्म दिया कि वादी के रास्ते से निकल जाएँ और आप (सल्ल.) ख़ुद सिर्फ़ अम्मार-बिन-यासिर (रज़ि.) और हुज़ैफ़ा-बिन-यमान (रज़ि.) को लेकर घाटी के अन्दर से होकर चले। बीच रास्ते में अचानक मालूम हुआ कि दस-बारह मुनाफ़िक़ ढाटे बाँधे हुए

اَغْنٰىهُمُ اللّٰهُ وَرَسُوْلُهٗ مِنْ فَضْلِهٖ ۚ فَاِنْ يَّتُوْبُوْا يَكُ خَيْرًا لَّهُمْ ۚ وَاِنْ
يَّتَوَلَّوْا يُعَذِّبْهُمُ اللّٰهُ عَذَابًا اَلِيْمًا ۙ فِى الدُّنْيَا وَالْاٰخِرَةِ ۚ وَمَا لَهُمْ فِى
الْاَرْضِ مِنْ وَّلِيٍّ وَّلَا نَصِيْرٍ ﴿٧٤﴾ وَمِنْهُمْ مَّنْ عٰهَدَ اللّٰهَ لَئِنْ اٰتٰىنَا مِنْ
فَضْلِهٖ لَنَصَّدَّقَنَّ وَلَنَكُوْنَنَّ مِنَ الصّٰلِحِيْنَ ﴿٧٥﴾ فَلَمَّآ اٰتٰىهُمْ مِّنْ فَضْلِهٖ

न कि अल्लाह और उसके रसूल ने अपनी मेहरबानी से उनको धनी कर दिया है![85] अब अगर ये अपने इस रवैये से बाज़ आ जाएँ तो इन्हीं के लिए बेहतर है, और अगर ये बाज़ न आए तो अल्लाह इनको बड़ी दर्दनाक सज़ा देगा। दुनिया में भी और आख़िरत में भी, और ज़मीन में कोई नहीं जो इनका हिमायती और मददगार हो।

(75) इनमें से कुछ ऐसे भी हैं जिन्होंने अल्लाह से अहद किया था कि अगर उसने अपनी मेहरबानी से हमको नवाज़ा तो हम ख़ैरात (दान) देंगे और अच्छे बनकर रहेंगे। (76) मगर जब अल्लाह ने अपनी मेहरबानी से उनको दौलतमन्द बना दिया तो वे कंजूसी

पीछे-पीछे आ रहे हैं। यह देखकर हज़रत हुज़ैफ़ा (रज़ि॰) उनकी तरफ़ लपके, ताकि उनके ऊँटों को मार-मारकर उनके मुँह फेर दें। मगर वे दूर ही से हज़रत हुज़ैफ़ा (रज़ि॰) को आते देखकर डर गए और इस ख़ौफ़ से कि कहीं हम पहचान न लिए जाएँ फ़ौरन भाग निकले।

दूसरी साज़िश जिसका इस सिलसिले में ज़िक्र किया गया है, यह है कि मुनाफ़िक़ों को रूमियों के मुक़ाबले से नबी (सल्ल॰) और आप के वफ़ादार साथियों के ख़ैरियत से बचकर वापस आ जाने की उम्मीद न थी, इसलिए उन्होंने आपस में तय कर लिया था कि ज्यों ही उधर कोई हादिसा पेश आए, इधर मदीना में अब्दुल्लाह-बिन-उबय्य के सर पर शाही ताज रख दिया जाए।

85. नबी (सल्ल॰) की हिजरत से पहले मदीना अरब के क़स्बों में से एक मामूली क़स्बा था और औस और ख़ज़रज के क़बीले माल या इज़्ज़त के लिहाज़ से कोई ऊँचा दर्जा नहीं रखते थे। मगर जब नबी (सल्ल॰) वहाँ पहुँचे और अनसार ने आप (सल्ल॰) का साथ देकर अपने आपको ख़तरे में डाल दिया तो आठ-नौ साल के अन्दर-अन्दर यही बीच के दर्जे का क़सबा तमाम अरब की राजधानी बन गया। वहीं औस और ख़ज़रज के किसान हुकूमत के मंसबदार (पदाधिकारी) बन गए और हर तरफ़ से फ़तह, ग़नीमतें और तिजारत की बरकतें इस मर्कज़ी शहर पर बारिश की तरह बरसने लगीं। अल्लाह इसी पर इन्हें शर्म दिला रहा है कि हमारे नबी पर तुम्हारा यह गुस्सा क्या इसी क़ुसूर के बदले में है कि इसकी बदौलत ये नेमतें तुम्हें दी गईं!

بَخِلُوا بِهٖ وَتَوَلَّوْا وَّهُمْ مُّعْرِضُوْنَ ۝٧٦ فَاَعْقَبَهُمْ نِفَاقًا فِيْ قُلُوْبِهِمْ اِلٰى
يَوْمِ يَلْقَوْنَهٗ بِمَآ اَخْلَفُوا اللّٰهَ مَا وَعَدُوْهُ وَبِمَا كَانُوْا يَكْذِبُوْنَ ۝٧٧ اَلَمْ
يَعْلَمُوْٓا اَنَّ اللّٰهَ يَعْلَمُ سِرَّهُمْ وَنَجْوٰىهُمْ وَاَنَّ اللّٰهَ عَلَّامُ الْغُيُوْبِ ۝٧٨
اَلَّذِيْنَ يَلْمِزُوْنَ الْمُطَّوِّعِيْنَ مِنَ الْمُؤْمِنِيْنَ فِي الصَّدَقٰتِ وَالَّذِيْنَ لَا
يَجِدُوْنَ اِلَّا جُهْدَهُمْ فَيَسْخَرُوْنَ مِنْهُمْ ۭ سَخِرَ اللّٰهُ مِنْهُمْ ۡ وَلَهُمْ

पर उतर आए और अपने अहद से ऐसे फिरे कि उन्हें इसकी परवाह तक नहीं है।[86] (77) नतीजा यह निकला कि उनकी इस बद-अहदी की वजह से जो उन्होंने अल्लाह के साथ की और उस झूठ की वजह से जो वे बोलते रहे, अल्लाह ने उनके दिलों में निफ़ाक़ बिठा दिया जो उसके सामने उनकी पेशी के दिन तक उनका पीछा न छोड़ेगा।(78) क्या ये लोग जानते नहीं हैं कि अल्लाह को उनके छिपे भेद और उनकी छिपी कानाफूसियाँ तक मालूम हैं, और वह तमाम ग़ैब की बातों से पूरी तरह बाख़बर है? (79) (वह ख़ूब जानता है उन कंजूस दौलतमन्दों को) जो राज़ी-ख़ुशी से देनेवाले ईमानवालों की माली क़ुरबानियों पर बातें छाँटते हैं और उन लोगों का मज़ाक़ उड़ते हैं जिनके पास (अल्लाह की राह में देने के लिए) उसके सिवा कुछ नहीं है जो वे अपने ऊपर मशक़्क़त बरदाश्त करके देते हैं।[87] अल्लाह इन मज़ाक़ उड़ानेवालों का मज़ाक़ उड़ाता है और इनके लिए

86. ऊपर की आयत में इन मुनाफ़िक़ों की नेमतों की जिस नाशुक्री और एहसान करनेवाले की जिस नाक़द्री पर मलामत की गई थी उसका एक और सुबूत ख़ुद उन्हीं की ज़िन्दगियों से पेश करके यहाँ वाज़ेह किया गया है कि असल में ये लोग आदी मुजरिम हैं, इनके अख़लाक़ी ज़ाब्ते में शुक्र, नेमतों को तसलीम करने और वादे का लिहाज़ रखने जैसी ख़ूबियों का कहीं नामो-निशान तक नहीं पाया जाता।

87. तबूक की मुहिम के मौक़े पर जब नबी (सल्ल.) ने चन्दे की अपील की तो बड़े-बड़े मालदार मुनाफ़िक़ हाथ रोककर बैठे रहे। मगर जब सच्चे ईमानवाले बढ़-चढ़कर चन्दा देने लगे तो इन लोगों ने उनपर बातें छाँटनी शुरू कीं। कोई हैसियतवाला मुसलमान अपनी हैसियत के मुताबिक़ या उससे बढ़कर कोई बड़ी रक़म पेश करता तो ये उसपर दिखावे का इलज़ाम लगाते, और अगर कोई ग़रीब मुसलमान अपना और अपने बाल-बच्चों का पेट काटकर कोई छोटी-सी रक़म हाज़िर करता, या रात भर मेहनत-मज़दूरी करके कुछ खजूरें हासिल करता और वही लाकर पेश

عَذَابٌ اَلِيْمٌ ﴿٧٩﴾ اِسْتَغْفِرْ لَهُمْ اَوْ لَا تَسْتَغْفِرْ لَهُمْ ۭ اِنْ تَسْتَغْفِرْ لَهُمْ
سَبْعِيْنَ مَرَّةً فَلَنْ يَّغْفِرَ اللّٰهُ لَهُمْ ۭ ذٰلِكَ بِاَنَّهُمْ كَفَرُوْا بِاللّٰهِ وَرَسُوْلِهٖ ۭ
وَاللّٰهُ لَا يَهْدِي الْقَوْمَ الْفٰسِقِيْنَ ﴿٨٠﴾ فَرِحَ الْمُخَلَّفُوْنَ بِمَقْعَدِهِمْ ع ٨/١١
خِلٰفَ رَسُوْلِ اللّٰهِ وَكَرِهُوْٓا اَنْ يُّجَاهِدُوْا بِاَمْوَالِهِمْ وَاَنْفُسِهِمْ فِيْ
سَبِيْلِ اللّٰهِ وَقَالُوْا لَا تَنْفِرُوْا فِي الْحَرِّ ۭ قُلْ نَارُ جَهَنَّمَ اَشَدُّ حَرًّا ۭ لَوْ
كَانُوْا يَفْقَهُوْنَ ﴿٨١﴾ فَلْيَضْحَكُوْا قَلِيْلًا وَّلْيَبْكُوْا كَثِيْرًا ۚ جَزَاۗءًۢ بِمَا
كَانُوْا يَكْسِبُوْنَ ﴿٨٢﴾ فَاِنْ رَّجَعَكَ اللّٰهُ اِلٰى طَاۗىِٕفَةٍ مِّنْهُمْ فَاسْتَاْذَنُوْكَ
لِلْخُرُوْجِ فَقُلْ لَّنْ تَخْرُجُوْا مَعِيَ اَبَدًا وَّلَنْ تُقَاتِلُوْا مَعِيَ عَدُوًّا ۭ اِنَّكُمْ

दर्दनाक सज़ा है। (80) ऐ नबी! तुम चाहे ऐसे लोगों के लिए माफ़ी की दरख़ास्त करो या न करो, अगर तुम सत्तर बार भी इन्हें माफ़ कर देने की दरख़ास्त करोगे तो अल्लाह इन्हें हरगिज़ माफ़ न करेगा, इसलिए कि इन्होंने अल्लाह और उसके रसूल के साथ कुफ़्र किया है, और अल्लाह फ़ासिक़ (नाफ़रमान) को नजात का रास्ता नहीं दिखाता।

(81) जिन लोगों को पीछे रह जाने की इजाज़त दे दी गई थी वे अल्लाह के रसूल का साथ न देने और घर बैठे रहने पर ख़ुश हुए और उन्हें गवारा न हुआ कि अल्लाह की राह में जान व माल से जिहाद करें। उन्होंने लोगों से कहा कि "इस सख़्त गर्मी में न निकलो।" उनसे कहो कि जहन्नम की आग इससे ज़्यादा गर्म है, काश उन्हें इसकी समझ होती! (82) अब चाहिए कि ये लोग हँसना कम करें और रोएँ ज़्यादा, इसलिए कि जो बुराई ये कमाते रहे हैं उसका बदला ऐसा ही है (कि इन्हें इसपर रोना चाहिए)। (83) अगर अल्लाह इनके बीच तुम्हें वापस ले जाए और आगे इनमें से कोई गरोह जिहाद के लिए निकलने की तुमसे इजाज़त माँगे तो साफ़ कह देना, "अब तुम मेरे साथ हरगिज़ नहीं चल सकते और न मेरे साथ किसी दुश्मन से लड़ सकते हो, तुमने पहले बैठ

कर देता, तो ये उसपर आवाज़े कसते कि लो, यह टिड्डी की टाँग भी आ गई है, ताकि इससे रूम (रोम) के क़िले फ़तह किए जाएँ।

رَضِيتُم بِالْقُعُودِ أَوَّلَ مَرَّةٍ فَاقْعُدُوا مَعَ الْخَالِفِينَ ﴿٨٣﴾ وَلَا تُصَلِّ عَلَىٰ
أَحَدٍ مِّنْهُم مَّاتَ أَبَدًا وَلَا تَقُمْ عَلَىٰ قَبْرِهِ ۖ إِنَّهُمْ كَفَرُوا بِاللَّهِ وَرَسُولِهِ
وَمَاتُوا وَهُمْ فَاسِقُونَ ﴿٨٤﴾ وَلَا تُعْجِبْكَ أَمْوَالُهُمْ وَأَوْلَادُهُمْ ۚ إِنَّمَا
يُرِيدُ اللَّهُ أَن يُعَذِّبَهُم بِهَا فِي الدُّنْيَا وَتَزْهَقَ أَنفُسُهُمْ وَهُمْ

रहने को पसन्द किया था, तो अब घर बैठनेवालों ही के साथ बैठे रहो।"

(84) और आगे इनमें से जो कोई मरे उसकी जनाज़े की नमाज़ भी तुम हरगिज़ न पढ़ना और न कभी उसकी क़ब्र पर खड़े होना, क्योंकि उन्होंने अल्लाह और उसके रसूल के साथ कुफ़्र किया है और वे मरे हैं इस हाल में कि वे फ़ासिक़ (नाफ़रमान) थे।[88] (85) उनकी मालदारी और औलाद की ज़्यादती तुमको धोखे में न डाले। अल्लाह ने तो इरादा कर लिया है कि इस माल और औलाद के ज़रिए से उनको इसी दुनिया में सज़ा दे

88. तबूक से वापसी पर कुछ ज़्यादा मुद्दत न गुज़री थी कि अब्दुल्लाह-बिन-उबय्य, मुनाफ़िक़ों का सरदार, मर गया। उसके बेटे अब्दुल्लाह, जो सच्चे मुसलमानों में से थे, नबी (सल्ल॰) की ख़िदमत में आए और अपने बाप के कफ़न में लगाने के लिए आपका कुर्ता माँगा। नबी (सल्ल॰) ने दिल की पूरी कुशादगी के साथ कुर्ता दे दिया। फिर उन्होंने दरख़ास्त की कि आप ही इसकी जनाज़े की नमाज़ पढ़ाएँ। आप (सल्ल॰) इसके लिए भी तैयार हो गए। हज़रत उमर (रज़ि॰) ने ज़ोर देकर कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल, क्या आप उस शख़्स पर जनाज़े की नमाज़ पढ़ेंगे जो ये और ये हरकतें कर चुका है? मगर नबी (सल्ल॰) उनकी ये सब बातें सुनकर मुस्कराते रहे और अपनी उस रहमत की बिना पर जो दोस्त-दुश्मन सबके लिए आम थी, आप ने उस बदतरीन दुश्मन के हक़ में भी मग़फ़िरत की दुआ करने में झिझक नहीं दिखाई। आख़िर जब आप नमाज़ पढ़ाने खड़े ही हो गए तो यह आयत नाज़िल हुई और सीधे तौर पर अल्लाह के हुक्म से आपको रोक दिया गया; क्योंकि अब यह हमेशा के लिए पॉलिसी तय की जा चुकी थी कि मुसलमानों की जमाअत में मुनाफ़िक़ों को किसी तरह पनपने न दिया जाए और कोई ऐसा काम न किया जाए जिससे इस गरोह की हिम्मत और हौसला बढ़े।

इसी से यह मसला निकला है कि फ़ासिक़ों, फ़ाजिरों और फ़िस्क़ में मशहूर लोगों की जनाज़े की नमाज़ मुसलमानों के इमाम और ज़िम्मेदार लोगों को न पढ़ानी चाहिए, न पढ़नी चाहिए। इन आयतों के बाद नबी (सल्ल॰) का तरीक़ा यह हो गया था कि जब आपको किसी जनाज़े पर जाने के लिए कहा जाता तो आप पहले मरनेवाले के बारे में मालूमात कर लेते थे कि किस क़िस्म का आदमी था, और अगर मालूम होता कि बुरे चलन का आदमी था तो आप उसके घरवालों से कह देते थे कि तुम्हें इख़्तियार है, जिस तरह चाहो इसे दफ़्न कर दो।

كٰفِرُوْنَ۝۸۵ وَاِذَآ اُنْزِلَتْ سُوْرَةٌ اَنْ اٰمِنُوْا بِاللّٰهِ وَجَاهِدُوْا مَعَ رَسُوْلِهِ
اسْتَاْذَنَكَ اُولُوا الطَّوْلِ مِنْهُمْ وَقَالُوْا ذَرْنَا نَكُنْ مَّعَ الْقٰعِدِيْنَ ۝۸۶
رَضُوْا بِاَنْ يَّكُوْنُوْا مَعَ الْخَوَالِفِ وَطُبِعَ عَلٰى قُلُوْبِهِمْ فَهُمْ لَا
يَفْقَهُوْنَ ۝۸۷ لٰكِنِ الرَّسُوْلُ وَالَّذِيْنَ اٰمَنُوْا مَعَهٗ جٰهَدُوْا بِاَمْوَالِهِمْ
وَاَنْفُسِهِمْ ۭ وَاُولٰۗىِٕكَ لَهُمُ الْخَيْرٰتُ ۡ وَاُولٰۗىِٕكَ هُمُ الْمُفْلِحُوْنَ ۝۸۸ اَعَدَّ
اللّٰهُ لَهُمْ جَنّٰتٍ تَجْرِيْ مِنْ تَحْتِهَا الْاَنْهٰرُ خٰلِدِيْنَ فِيْهَا ۭ ذٰلِكَ الْفَوْزُ

और उनकी जानें इस हाल में निकलें कि वे काफ़िर हों।

(86) जब कभी कोई सूरा इस मज़मून की उतरी कि अल्लाह को मानो और उसके रसूल के साथ मिलकर जिहाद करो तो तुमने देखा कि जो लोग इनमें से क़ुदरत रखनेवाले थे वही तुमसे दरख़ास्त करने लगे कि इन्हें जिहाद में शरीक होने से माफ़ रखा जाए और उन्होंने कहा कि हमें छोड़ दीजिए कि हम बैठनेवालों के साथ रहें। (87) इन लोगों ने घर बैठनेवालियों में शामिल होना पसन्द किया और उनके दिलों पर ठप्पा लगा दिया गया, इसलिए उनकी समझ में अब कुछ नहीं आता।[89] (88) इसके बरख़िलाफ़ रसूल ने और उन लोगों ने जो रसूल के साथ ईमान लाए थे अपनी जान व माल से जिहाद किया, और अब सारी भलाइयाँ उन्हीं के लिए हैं और वही कामयाबी पानेवाले हैं। (89) अल्लाह ने उनके लिए ऐसे बाग़ तैयार कर रखे हैं जिनके नीचे नहरें बह रही हैं, इनमें वे हमेशा

---

89. यानी हालाँकि यह बड़े शर्म के क़ाबिल बात है कि अच्छे-ख़ासे हट्टे-कट्टे, तन्दुरुस्त, हैसियतवाले लोग, ईमान का दावा रखने के बावुजूद काम का वक़्त आने पर मैदान में निकलने के बजाए घरों में घुस बैठें और औरतों में जा शामिल हों, लेकिन चूँकि इन लोगों ने ख़ुद जान-बूझकर अपने लिए यही रवैया पसन्द किया था, इसलिए फ़ितरत के क़ानून के मुताबिक़ इनसे वह पाकीज़ा एहसासात छीन लिए गए जिनकी बदौलत आदमी ऐसे गिरे हुए तौर-तरीक़े इख़्तियार करने में शर्म महसूस किया करता है।

ع ٩ ١٤

الْعَظِيْمُ ۝٨٩ وَجَآءَ الْمُعَذِّرُوْنَ مِنَ الْاَعْرَابِ لِيُؤْذَنَ لَهُمْ وَ قَعَدَ
الَّذِيْنَ كَذَبُوا اللّٰهَ وَرَسُوْلَهٗ سَيُصِيْبُ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا مِنْهُمْ عَذَابٌ
اَلِيْمٌ ۝٩٠ لَيْسَ عَلَى الضُّعَفَآءِ وَلَا عَلَى الْمَرْضٰى وَلَا عَلَى الَّذِيْنَ لَا
يَجِدُوْنَ مَا يُنْفِقُوْنَ حَرَجٌ اِذَا نَصَحُوْا لِلّٰهِ وَرَسُوْلِهٖ مَا عَلَى

रहेंगे। यह है अज़ीमुश्शान कामयाबी!

(90) बद्दू अरबों[90] में से भी बहुत-से लोग आए जिन्होंने बहाने किए, ताकि उन्हें भी पीछे रह जाने की इजाज़त दी जाए। इस तरह बैठ रहे वे लोग जिन्होंने अल्लाह और उसके रसूल से ईमान का झूठा अहद किया था। इन बद्दुओं में से जिन लोगों ने कुफ़्र (नाफ़रमानी) का तरीक़ा अपनाया है[91] बहुत जल्द वे दर्दनाक सज़ा से दोचार होंगे।

(91) कमज़ोर, बूढ़े और बीमार लोग और वे लोग जो जिहाद में शरीक होने के लिए रास्ते का ख़र्च नहीं पाते, अगर पीछे रह जाएँ तो कोई हरज नहीं, जबकि वे सच्चे दिल

90. बदवी (देहाती) अरबों से मुराद मदीना के आसपास रहनेवाले देहाती और रेगिस्तानी अरब लोग हैं जिन्हें आम तौर पर बद्दू कहा जाता है।

91. मुनाफ़िक़ाना (कपटपूर्ण) ईमान का इज़हार, जिसकी तह में हक़ीक़त में हक़ का इक़रार करना, अपने आपको उसके हवाले करना, उसको सच्चे दिल से मानना और उसकी पैरवी न हो, और जिसके ज़ाहिरी इक़रार के बावजूद इनसान ख़ुदा और उसके दीन के मुक़ाबले में अपने फ़ायदों और अपनी दुनियावी दिलचस्पियों को ज़्यादा प्यारा रखता हो, अस्ल हक़ीक़त के एतिबार से कुफ़्र और इनकार ही है। ख़ुदा के यहाँ ऐसे लोगों के साथ वही मामला होगा जो इनकार करनेवालों और बाग़ियों के साथ होगा, चाहे दुनिया में इस तरह के लोग काफ़िर न ठहराए जा सकते हों और उनके साथ मुसलमानों ही का-सा मामला होता रहे। इस दुनिया की ज़िन्दगी में जिस क़ानून पर मुस्लिम सोसाइटी का निज़ाम क़ायम किया गया है और जिस ज़ाबिते की बिना पर इस्लामी हुकूमत और उसके क़ाज़ी (न्यायाधीश) अहकाम और आदेश लागू करते हैं, इसके लिहाज़ से तो मुनाफ़िक़त पर कुफ़्र या कुफ़्र का शुब्हा होने का हुक्म सिर्फ़ उन्हीं सूरतों में लगाया जा सकता है, जबकि इनकार और बग़ावत या ग़द्दारी और बेवफ़ाई का इज़हार साफ़ तौर पर हो जाए। इसलिए मुनाफ़िक़त की बहुत-सी सूरतें और हालतें ऐसी रह जाती हैं जो इस्लामी अदालत में कुफ़्र के हुक्म से बच जाती हैं। लेकिन शरई अदालत में किसी मुनाफ़िक़ का कुफ़्र के हुक्म से बच निकलना यह मानी नहीं रखता कि अल्लाह की अदालत में भी वह इस हुक्म और इसकी सज़ा से बच निकलेगा।

الْمُحْسِنِيْنَ مِنْ سَبِيْلٍ ۚ وَاللّٰهُ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ۝٩١ وَّلَا عَلَى الَّذِيْنَ اِذَا مَآ

के साथ अल्लाह और उसके रसूल के वफ़ादार हों।[92] ऐसे बेहतरीन काम करनेवालों पर एतिराज की कोई गुंजाइश नहीं है और अल्लाह माफ़ करनेवाला और रहम करनेवाला है।

92. इससे मालूम हुआ कि जो लोग ज़ाहिर में माज़ूर और मजबूर हों उनके लिए भी सिर्फ़ कमज़ोरी और बीमारी या सिर्फ़ नादारी माफ़ी के लिए काफ़ी नहीं है, बल्कि उनकी ये मजबूरियाँ सिर्फ़ उस सूरत में उनके लिए माफ़ी की वजह हो सकती हैं जबकि वे अल्लाह और उसके रसूल के सच्चे वफ़ादार हों, वरना अगर वफ़ादारी मौजूद न हो तो कोई शख़्स सिर्फ़ इसलिए माफ़ नहीं किया जा सकता कि वह फ़र्ज़ के अदा करने के मौक़े पर बीमार या नादार था। अल्लाह सिर्फ़ ज़ाहिर को नहीं देखता है कि ऐसे सब लोग जो बीमारी का मेडिकल सर्टिफ़िकेट या बुढ़ापे और जिस्मानी कमी की मजबूरी पेश कर दें, उसके यहाँ बराबर मजबूर क़रार दिए जाएँ और उनपर से पूछ-गच्छ ख़त्म हो जाए। वह तो उनमें से एक-एक शख़्स के दिल का जाइज़ा लेगा, उसके पूरे छिपे और ज़ाहिर के बरताव को देखेगा, और यह जाँचेगा कि उसकी मजबूरी और माज़ूरी एक वफ़ादार बन्दे की-सी मजबूरी थी या एक ग़द्दार और बाग़ी की-सी। एक शख़्स है कि जब उसने फ़र्ज़ की पुकार सुनी तो दिल में लाख-लाख शुक्र अदा किया कि "बड़े अच्छे मौक़े पर मैं बीमार हो गया वरना यह बला किसी तरह टाले न टलती और ख़ाह-मख़ाह मुसीबत भुगतनी पड़ती।" दूसरे शख़्स ने यही पुकार सुनी तो तिलमिला उठा कि "हाय! कैसे मौक़े पर इस कमबख़्त बीमारी ने आ दबोचा, जो वक़्त मैदान में निकलकर ख़िदमत अंजाम देने का था वह किस बुरी तरह यहाँ बिस्तर पर बरबाद हो रहा है।" एक ने अपने लिए तो ख़िदमत से बचने का बहाना पाया ही था, मगर उसके साथ उसने दूसरों को भी उससे रोकने की कोशिश की। दूसरा हालाँकि ख़ुद बीमारी के बिस्तर पर मजबूर पड़ा हुआ था, मगर वह बराबर अपने रिश्तेदारों, दोस्तों और भाइयों को जिहाद का जोश दिलता रहा और अपने तीमारदारों से भी कहता रहा कि "मेरा अल्लाह मालिक है, दवा-दारू का इन्तिज़ाम किसी-न-किसी तरह हो ही जाएगा, मुझ अकेले इनसान के लिए तुम इस क़ीमती वक़्त को बरबाद न करो जिसे दीने-हक़ की ख़िदमत में ख़र्च होना चाहिए।" एक ने बीमारी के बहाने से घर बैठकर जंग का सारा ज़माना बददिली फैलाने, बुरी ख़बरें उड़ाने, जंगी कोशिशों को ख़राब करने और मुजाहिदों के पीछे उनके घर बिगाड़ने में लगाया। दूसरे ने यह देखकर कि मैदान में जाने के मुबारक मौक़े से वह महरूम रह गया है, अपनी हद तक पूरी कोशिश की कि घर के मोर्चे (Home-front) को मज़बूत रखने में जो ज़्यादा-से-ज़्यादा ख़िदमत उससे बन आए उसे अंजाम दे। ज़ाहिर के एतिबार से तो ये दोनों ही मजबूर हैं। मगर अल्लाह की निगाह में ये दो अलग-अलग तरह के मजबूर किसी तरह बराबर नहीं हो सकते। अल्लाह के यहाँ माफ़ी अगर है, तो सिर्फ़ दूसरे शख़्स के लिए। रहा पहला शख़्स तो वह अपनी मजबूरी के बावजूद ग़द्दारी और बेवफ़ाई का मुजरिम है।

اَتَوْكَ لِتَحْمِلَهُمْ قُلْتَ لَآ اَجِدُ مَآ اَحْمِلُكُمْ عَلَيْهِ ۠ تَوَلَّوْا وَّاَعْيُنُهُمْ
تَفِيْضُ مِنَ الدَّمْعِ حَزَنًا اَلَّا يَجِدُوْا مَا يُنْفِقُوْنَ ۝٩٢ اِنَّمَا السَّبِيْلُ
عَلَى الَّذِيْنَ يَسْتَاْذِنُوْنَكَ وَهُمْ اَغْنِيَآءُ ۚ رَضُوْا بِاَنْ يَّكُوْنُوْا مَعَ الْخَوَالِفِ ۙ
وَطَبَعَ اللّٰهُ عَلٰى قُلُوْبِهِمْ فَهُمْ لَا يَعْلَمُوْنَ ۝٩٣

---

(92) इसी तरह उन लोगों पर भी कोई एतिराज़ का मौक़ा नहीं है जिन्होंने ख़ुद आकर तुमसे दरख़्वास्त की थी कि हमारे लिए सवारियाँ जुटाई जाएँ और जब तुमने कहा कि मैं तुम्हारे लिए सवारियों का इंतिजाम नहीं कर सकता तो वे मजबूर होकर वापस गए, और हाल यह था कि उनकी आँखों से आँसू बह रहे थे और उन्हें इस बात का बड़ा दुख था कि वे अपने ख़र्च पर जिहाद में शरीक होने की ताक़त नहीं रखते।[93] (93) अलबत्ता एतिराज़ उन लोगों पर है जो मालदार हैं और फिर भी तुमसे दरख़ास्ते करते हैं कि उन्हें जिहाद में शरीक होने से माफ़ रखा जाए। उन्होंने घर बैठनेवालियों में शामिल होना पसन्द किया और अल्लाह ने उनके दिलों पर ठप्पा लगा दिया, इसलिए अब ये कुछ नहीं जानते (कि अल्लाह के यहाँ उनके इस रवैये का क्या नतीजा निकलनेवाला है)।

---

93. ऐसे लोग जो दीन की ख़िदमत के लिए बेताब हों और अगर किसी हक़ीक़ी मजबूरी की वजह से या ज़राए और साधन न पाने की वजह से अमली तौर पर ख़िदमत न कर सकें तो उनके दिल को इतना ही सख़्त सदमा हो जितना किसी दुनियापरस्त को रोज़गार छूट जाने या किसी बड़े नफ़े के मौक़े से महरूम रह जाने पर हुआ करता है, उनकी गिनती अल्लाह के यहाँ ख़िदमत अंजाम देनेवालों ही में होगी, हालाँकि उन्होंने अमली तौर पर कोई ख़िदमत अंजाम न दी हो। इसलिए कि वे चाहे हाथ-पाँव से काम न कर सके हों, लेकिन दिल से तो वे ख़िदमत में लगे ही रहे हैं। यही बात है जो तबूक की जंग से वापसी पर सफ़र के बीच में नबी (सल्ल॰) ने अपने साथियों को ख़िताब करते हुए कही थी कि "मदीना में कुछ लोग ऐसे हैं कि तुमने कोई वादी तय नहीं की और कोई कूच नहीं किया जिसमें वे तुम्हारे साथ-साथ न रहे हों।" सहाबा (रज़ि॰) ने ताज्जुब से कहा, "क्या मदीना ही में रहते हुए?" नबी (सल्ल॰) ने कहा, "हाँ, मदीने ही में रहते हुए; क्योंकि मजबूरी ने उन्हें रोक लिया था वरना वे ख़ुद रुकनेवाले न थे।"

يَعْتَذِرُوْنَ اِلَيْكُمْ اِذَا رَجَعْتُمْ اِلَيْهِمْ ۭ قُلْ لَّا تَعْتَذِرُوْا لَنْ نُّؤْمِنَ
لَكُمْ قَدْ نَبَّاَنَا اللّٰهُ مِنْ اَخْبَارِكُمْ ۭ وَسَيَرَى اللّٰهُ عَمَلَكُمْ وَرَسُوْلُهٗ ثُمَّ
تُرَدُّوْنَ اِلٰى عٰلِمِ الْغَيْبِ وَالشَّهَادَةِ فَيُنَبِّئُكُمْ بِمَا كُنْتُمْ تَعْمَلُوْنَ ۝٩٤
سَيَحْلِفُوْنَ بِاللّٰهِ لَكُمْ اِذَا انْقَلَبْتُمْ اِلَيْهِمْ لِتُعْرِضُوْا عَنْهُمْ ۭ فَاَعْرِضُوْا
عَنْهُمْ ۭ اِنَّهُمْ رِجْسٌ ۡ وَّمَاْوٰىهُمْ جَهَنَّمُ ۚ جَزَاۗءًۢ بِمَا كَانُوْا يَكْسِبُوْنَ ۝٩٥
يَحْلِفُوْنَ لَكُمْ لِتَرْضَوْا عَنْهُمْ ۚ فَاِنْ تَرْضَوْا عَنْهُمْ فَاِنَّ اللّٰهَ لَا يَرْضٰى
عَنِ الْقَوْمِ الْفٰسِقِيْنَ ۝٩٦ اَلْاَعْرَابُ اَشَدُّ كُفْرًا وَّنِفَاقًا وَّاَجْدَرُ اَلَّا

---

(94) तुम जब पलटकर उनके पास पहुँचोगे तो ये तरह-तरह के बहाने पेश करेंगे, मगर तुम साफ़ कह देना कि "बहाने न करो, हम तुम्हारी किसी बात पर भरोसा न करेंगे। अल्लाह ने हमको तुम्हारे हालात बता दिए हैं। अब अल्लाह और उसका रसूल तुम्हारे रवैए को देखेगा, फिर तुम उसकी तरफ़ पलटाए जाओगे जो खुले और छिपे सबका जाननेवाला है, और वह तुम्हें बता देगा कि तुम क्या कुछ करते रहे हो।" (95) तुम्हारी वापसी पर ये तुम्हारे सामने क़समें खाएँगे, ताकि तुम उन्हें अनदेखा कर जाओ। तो बेशक तुम उन्हें अनदेखा ही कर लो[94], क्योंकि ये गन्दगी हैं और इनकी अस्ली जगह जहन्नम है, जो इनकी कमाई के बदले में इन्हें मिलेगी। (96) ये तुम्हारे सामने क़समें खाएँगे ताकि तुम इनसे राज़ी हो जाओ, हालाँकि अगर तुम इनसे राज़ी हो भी गए तो अल्लाह हरगिज़ ऐसे नाफ़रमान लोगों से राज़ी न होगा।

(97) ये अरब बद्दू कुफ़्र (इनकार) व निफ़ाक़ (कपटाचार) में ज़्यादा सख़्त हैं और

---

94. पहले जुमले में सर्फ़े-नज़र (अनदेखी करने) से मुराद माफ़ कर देना है और दूसरे जुमले में ताल्लुक़ ख़त्म करना। यानी वे तो चाहते हैं कि तुम उनसे पूछ-गच्छ न करो, मगर बेहतर यह है कि तुम उनसे कोई वास्ता ही न रखो और समझ लो कि तुम उनसे कट गए और वे तुमसे।

يَعْلَمُوْا حُدُوْدَ مَآ اَنْزَلَ اللّٰهُ عَلٰى رَسُوْلِهٖ ۗ وَاللّٰهُ عَلِيْمٌ حَكِيْمٌ ۝ وَمِنَ الْاَعْرَابِ مَنْ يَّتَّخِذُ مَا يُنْفِقُ مَغْرَمًا وَّيَتَرَبَّصُ بِكُمُ الدَّوَآئِرَ ۗ

इनके मामले में इस बात के इमकान ज़्यादा हैं कि उस दीन की हदों से नावाक़िफ़ रहें जो अल्लाह ने अपने रसूल पर उतारा है।[95] अल्लाह सब कुछ जानता है और हिकमतवाला और सूझ-बूझवाला है। (98) इन बद्दुओं में ऐसे-ऐसे लोग मौजूद हैं जो अल्लाह के रास्ते में कुछ ख़र्च करते हैं तो उसे अपने ऊपर ज़बरदस्ती की चट्टी (जुर्माना)

95. जैसा कि हम पहले बयान कर चुके हैं यहाँ बदवी अरबों से मुराद वे देहाती और रेगिस्तानी अरब लोग हैं जो मदीना के आस-पास आबाद थे। ये लोग मदीना में एक मज़बूत और मुनज़्ज़म (सुसंगठित) ताक़त को उठते देखकर पहले तो मरऊब (घबराए) हुए। फिर इस्लाम और कुफ़्र की लड़ाइयों के दौरान में एक मुद्दत तक मौक़े को देखने और इब्नुलवक़्ती (अवसरवादिता) की रविश पर चलते रहे। फिर जब इस्लामी हुकूमत का ग़लबा हिजाज़ और नजद के एक बड़े हिस्से पर हो गया और मुख़ालिफ़ क़बीलों का ज़ोर उसके मुक़ाबले में टूटने लगा तो इन लोगों ने वक़्त की मसलिहत इसी में देखी कि इस्लाम के दायरे में दाख़िल हो जाएँ। लेकिन इनमें कम लोग ऐसे थे जो इस दीन को दीने-हक़ समझकर सच्चे दिल से ईमान लाए हों और सच्चे तरीक़े से उसके तक़ाज़ों को पूरा करने पर आमादा हों। ज़्यादातर बदवियों के लिए इस्लाम क़बूल करने की हैसियत ईमान और अक़ीदे की नहीं, बल्कि सिर्फ़ मसलिहत और पॉलिसी की थी। उनकी ख़ाहिश यह थी कि उनके हिस्से में सिर्फ़ वे फ़ायदे आ जाएँ जो बरसरे-इक़्तिदार (सत्ताधारी) जमाअत की मिम्बरशिप इख़्तियार करने से हासिल हुआ करते हैं। मगर वे अख़लाक़ी बन्दिशें जो इस्लाम उनपर लगाता था, वे नमाज़-रोज़े की पाबन्दियाँ जो इस दीन को क़बूल करते ही उनपर लग जाती थीं, वे ज़कात जो बाक़ायदा तहसीलदारों के ज़रिए से उनके नख़लिसतानों और उनके ग़ल्लों से वुसूल की जाती थी, वह नज़्मो-ज़ब्त (Discipline) जिसके शिकंजे में वे अपनी तारीख़ में पहली बार कसे गए थे, वे जान-माल की क़ुरबानियाँ जो लूट-मार की लड़ाइयों में नहीं, बल्कि ख़ालिस अल्लाह की राह के जिहाद में आए दिन उनसे तलब की जा रही थीं, ये सारी चीज़ें उनको शिद्दत के साथ नागवार थीं और वे उनसे पीछा छुड़ाने के लिए हर तरह की चालबाज़ियाँ और बहानेबाज़ियाँ करते रहते थे। उनको इससे कुछ बहस नहीं थी कि हक़ क्या है और उनकी और तमाम इनसानों की हक़ीक़ी फ़लाह और कामयाबी किस चीज़ में है। उन्हें जो कुछ भी दिलचस्पी थी वह अपने मआशी मफ़ाद (आर्थिक हित), अपने आराम, अपनी ज़मीनों, अपने ऊँटों और बकरियों और अपने ख़ेमे के आस-पास की महदूद दुनिया से थी। उससे हटकर किसी चीज़ के साथ वे उस तरह की अक़ीदत तो रख सकते थे जैसी पीरों और फ़क़ीरों से रखी जाती है कि ये उनके आगे नज़्रो-नियाज़ पेश करें और वे उसके बदले रोज़गार की तरक़्क़ी और आफ़तों से महफ़ूज़ रहने और ऐसे ही दूसरे मक़सदों के लिए उनको तावीज़-गण्डे दें और उनके

عَلَيْهِمْ دَآئِرَةُ السَّوْءِ ۗ وَاللّٰهُ سَمِيْعٌ عَلِيْمٌ ﴿٩٨﴾ وَمِنَ الْاَعْرَابِ مَنْ
يُّؤْمِنُ بِاللّٰهِ وَالْيَوْمِ الْاٰخِرِ وَيَتَّخِذُ مَا يُنْفِقُ قُرُبٰتٍ عِنْدَ اللّٰهِ

समझते हैं[96] और तुम्हारे हक़ में ज़माने की गरदिशों (कालचक्र) का इंतिज़ार कर रहे हैं (कि तुम किसी चक्कर में फँसो तो वे अपनी गरदन से इस निज़ाम की पैरवी का पट्टा उतार फेंकें जिसमें तुमने उन्हें कस दिया है)। हालाँकि बुराई के चक्कर ने ख़ुद उनको अपनी लपेट में ले लिया है और अल्लाह सब कुछ सुनता और जानता है। (99) और इन्हीं बद्दुओं में कुछ लोग ऐसे भी हैं जो अल्लाह और आख़िरत के दिन पर ईमान रखते हैं और जो कुछ ख़र्च करते हैं उसे अल्लाह के यहाँ क़रीब होने का और रसूल की तरफ़

लिए दुआएँ करें। लेकिन ऐसे ईमान और अक़ीदे के लिए वे तैयार न थे जो उनकी पूरी तमद्दुनी (सांस्कृतिक), मआशी (आर्थिक) और समाजी ज़िन्दगी को अख़लाक़ और क़ानून के ज़ाबिते में कस दे और इससे भी बढ़कर एक आलमगीर (Universal) सुधारवादी मिशन के लिए उनसे जान और माल की क़ुरबानियों की भी माँग करे।

उनकी इसी हालत को यहाँ इस तरह बयान किया गया है कि शहरियों के मुक़ाबले ये देहाती और रेगिस्तानी लोग ज़्यादा मुनाफ़िक़ाना रवैया रखते हैं और हक़ से इनकार की कैफ़ियत उनके अन्दर ज़्यादा पाई जाती है। फिर उसकी वजह भी बता दी है कि शहरी लोग तो इल्मवालों और सच्चे लोगों की सोहबत से फ़ायदा उठाकर कुछ दीन को और उसकी हदों को जान भी लेते हैं, मगर ये बदवी चूँकि सारी-सारी उम्र बिलकुल एक मआशी हैवान की तरह दिन-रात रोज़ी-रोटी के फेर ही में पड़े रहते हैं और हैवानी ज़िन्दगी की ज़रूरतों से ऊपर उठकर किसी चीज़ की तरफ़ तवज्जोह करने का इन्हें मौक़ा ही नहीं मिलता। इसलिए दीन और उसकी हदों से उनके अनजान रहने के इमकानात ज़्यादा हैं।

यहाँ इस हक़ीक़त की तरफ़ भी इशारा कर देना नामुनासिब न होगा कि इन आयतों के उतरने से लगभग दो साल बाद हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) की ख़िलाफ़त (शासन) के शुरुआती दौर में इस्लाम से फिर जाने और ज़कात न देने का जो तूफ़ान बरपा हुआ था उसकी वजहों में एक बड़ी वजह यही थी जिसका ज़िक्र इन आयतों में किया गया है।

96. मतलब यह है कि जो ज़कात इनसे वुसूल की जाती है उसे ये एक जुर्माना समझते हैं। मुसाफ़िरों की मेहमान-नवाज़ी और मेहमानदारी का जो हक़ इनके ज़िम्मे किया गया है वह इनको बुरी तरह खलता है। और अगर किसी जंग के मौक़े पर ये कोई चन्दा देते हैं तो अपने दिली जज़्बे से अल्लाह को ख़ुश करने की ख़ातिर नहीं देते, बल्कि न चाहते हुए अपनी वफ़ादारी का यक़ीन दिलाने के लिए देते हैं।

وَصَلَوٰتِ الرَّسُوْلِ ۭ اَلَآ اِنَّهَا قُرْبَةٌ لَّهُمْ ۭ سَيُدْخِلُهُمُ اللّٰهُ فِيْ رَحْمَتِهٖ ۭ
اِنَّ اللّٰهَ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ﴿٩٩﴾ وَالسّٰبِقُوْنَ الْاَوَّلُوْنَ مِنَ الْمُهٰجِرِيْنَ
وَالْاَنْصَارِ وَالَّذِيْنَ اتَّبَعُوْهُمْ بِاِحْسَانٍ ۙ رَّضِيَ اللّٰهُ عَنْهُمْ
وَرَضُوْا عَنْهُ وَاَعَدَّ لَهُمْ جَنّٰتٍ تَجْرِيْ تَحْتَهَا الْاَنْهٰرُ خٰلِدِيْنَ فِيْهَآ
اَبَدًا ۭ ذٰلِكَ الْفَوْزُ الْعَظِيْمُ ﴿١٠٠﴾ وَمِمَّنْ حَوْلَكُمْ مِّنَ الْاَعْرَابِ
مُنٰفِقُوْنَ ڔ وَمِنْ اَهْلِ الْمَدِيْنَةِ ڀ مَرَدُوْا عَلَي النِّفَاقِ ۣ لَا تَعْلَمُهُمْ ۭ
نَحْنُ نَعْلَمُهُمْ ۭ سَنُعَذِّبُهُمْ مَّرَّتَيْنِ ثُمَّ يُرَدُّوْنَ اِلٰى عَذَابٍ عَظِيْمٍ ﴿١٠١﴾

से रहमत की दुआएँ लेने का ज़रिआ बनाते हैं। हाँ, वह ज़रूर उनके लिए क़रीब होने का ज़रिआ है और अल्लाह ज़रूर उनको अपनी रहमत में दाख़िल करेगा, यक़ीनन अल्लाह माफ़ करनेवाला और रहम करनेवाला है।

(100) वे मुहाजिर और अनसार जिन्होंने सबसे पहले ईमान की दावत को क़बूल करने में पहल की, साथ ही वे जो बाद में सच्चाई के साथ उनके पीछे आए, अल्लाह उनसे राज़ी हुआ और वे अल्लाह से राज़ी हुए, अल्लाह ने उनके लिए ऐसे बाग़ तैयार कर रखे हैं जिनके नीचे नहरें बहती होंगी और वे उनमें हमेशा रहेंगे। यही अज़ीमुश्शान कामयाबी है।

(101) तुम्हारे आस-पास में जो बद्दू रहते हैं उनमें बहुत-से मुनाफ़िक़ (कपटाचारी) हैं और इसी तरह ख़ुद मदीना के बाशिन्दों में भी मुनाफ़िक़ मौजूद हैं जो निफ़ाक़ में पक्के हो गए हैं। तुम उन्हें नहीं जानते, हम उन्हें जानते हैं।[97] क़रीब है वह वक़्त जब हम उनको दोहरी सज़ा देंगे[98], फिर वे और ज़्यादा बड़ी सज़ा के लिए वापस लाए जाएँगे।

---

97. यानी अपने निफ़ाक़ को छिपाने में वे इतने माहिर हो गए हैं कि ख़ुद नबी (सल्ल॰) भी अपनी कमाल दर्जे की फ़िरासत और सूझ-बूझ के बावजूद इनको नहीं पहचान सकते थे।

98. दोहरी सज़ा से मुराद यह है कि एक तरफ़ तो वह दुनिया जिसकी मुहब्बत में पड़कर उन्होंने ईमान और इख़लास के बजाय मुनाफ़िक़त और ग़द्दारी का रवैया इख़्तियार किया है, इनके हाथ

وَاٰخَرُوْنَ اعْتَرَفُوْا بِذُنُوْبِهِمْ خَلَطُوْا عَمَلًا صَالِحًا وَّاٰخَرَ سَيِّئًا ۭعَسَى
اللّٰهُ اَنْ يَّتُوْبَ عَلَيْهِمْ ۭاِنَّ اللّٰهَ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ۝۱۰۲ خُذْ مِنْ اَمْوَالِهِمْ
صَدَقَةً تُطَهِّرُهُمْ وَتُزَكِّيْهِمْ بِهَا وَصَلِّ عَلَيْهِمْ ۭ اِنَّ صَلٰوتَكَ سَكَنٌ
لَّهُمْ ۭ وَاللّٰهُ سَمِيْعٌ عَلِيْمٌ ۝۱۰۳ اَلَمْ يَعْلَمُوْٓا اَنَّ اللّٰهَ هُوَ يَقْبَلُ التَّوْبَةَ عَنْ
عِبَادِهٖ وَيَاْخُذُ الصَّدَقٰتِ وَاَنَّ اللّٰهَ هُوَ التَّوَّابُ الرَّحِيْمُ ۝۱۰۴ وَقُلِ
اعْمَلُوْا فَسَيَرَى اللّٰهُ عَمَلَكُمْ وَرَسُوْلُهٗ وَالْمُؤْمِنُوْنَ ۭ وَسَتُرَدُّوْنَ اِلٰى

(102) कुछ और लोग हैं जिन्होंने अपनी ग़लतियों को मान लिया है। उनका अमल मिला-जुला है, कुछ भला है और कुछ बुरा। नामुमकिन नहीं कि अल्लाह उनपर फिर मेहरबान हो जाए, क्योंकि वह माफ़ करनेवाला और रहम करनेवाला है। (103) ऐ नबी! तुम इनके मालों में से सदक़ा लेकर इन्हें पाक करो और (नेकी की राह में) इन्हें बढ़ाओ और इनके हक़ में रहमत की दुआ करो, क्योंकि तुम्हारी दुआ इनके लिए सुकून की वजह होगी, अल्लाह सबकुछ सुनता और जानता है। (104) क्या इन लोगों को मालूम नहीं है कि वह अल्लाह ही है जो अपने बन्दों की तौबा क़बूल करता है और इनकी ख़ैरात (सदक़े) को क़बूल करता है, और यह कि अल्लाह बहुत माफ़ करनेवाला और रहम करनेवाला है? (105) और ऐ नबी! इन लोगों से कह दो कि तुम अमल करो, अल्लाह और उसका रसूल और ईमानवाले सब देखेंगे कि तुम्हारा रवैया अब क्या रहता है।[99] फिर

से जाएगी और यह माल और इज़्ज़त हासिल करने के बजाए उल्टी रुसवाई व नाकामी पाएँगे। दूसरी तरफ़ जिस मिशन को ये नाकाम देखना और अपनी चालबाज़ियों से नाकाम करना चाहते हैं वह इनकी ख़ाहिशों और कोशिशों के बरख़िलाफ़ इनकी आँखों के सामने परवान चढ़ेगा।

99. यहाँ ईमान के झूठे दावेदारों और गुनहगार ईमानवालों का फ़र्क़ साफ़-साफ़ वाज़ेह कर दिया गया है। जो शख़्स ईमान का दावा करता है मगर हक़ीक़त में ख़ुदा और उसके दीन और ईमानवालों की जमाअत के साथ कोई खुलूस नहीं रखता उसके इख़लास न होने का सुबूत अगर उसके रवैये से मिल जाए तो उसके साथ सख़्ती का बरताव किया जाएगा। ख़ुदा की राह में ख़र्च करने के लिए वह कोई माल पेश करे तो उसे रद्द कर दिया जाएगा। मर जाए तो न मुसलमान उसकी जनाज़े की नमाज़ पढ़ेंगे और न कोई मोमिन उसके लिए मग़फ़िरत की दुआ

करेगा चाहे, वह उसका बाप या भाई ही क्यों न हो। बरख़िलाफ़ इसके जो शख़्स ईमानवाला हो और वह कोई ग़ैर-मुख़लिसाना रवैया इख़्तियार कर ले, वह अगर अपनी ग़लती को मान ले तो उसको माफ़ भी किया जाएगा, उसके सदक़ात भी क़बूल किए जाएँगे और उसके लिए रहमत की दुआ भी की जाएगी। अब रही यह बात कि किस शख़्स को ग़ैर-मुख़लिसाना रवैया अपनाने के बावजूद मुनाफ़िक़ के बजाए सिर्फ़ गुनाहगार मोमिन समझा जाएगा तो यह तीन मेयारों से परखी जाएगी जिनकी तरफ़ इन आयतों में इशारा किया गया है—

(1) वह अपने क़ुसूर के लिए झूठे बहाने और हील-हवाले और ग़लत वजहें पेश नहीं करेगा, बल्कि जो क़ुसूर हुआ है उसे सीधी तरह साफ़-साफ़ मान लेगा।

(2) उसके पिछले रवैये पर निगाह डालकर देखा जाएगा कि यह इख़लास के न होने का आदी मुजरिम तो नहीं है। अगर पहले वह जमाअत का एक नेक आदमी रहा है और उसकी ज़िन्दगी के कारनामों में मुख़लिसाना ख़िदमात, ईसार और क़ुरबानी और नेकियों में बाज़ी ले जाने का रिकार्ड मौजूद है तो मान लिया जाएगा कि इस वक़्त जो ग़लती उससे हुई है वह ईमान और इख़लास के न होने का नतीजा नहीं है, बल्कि सिर्फ़ एक कमज़ोरी है जो वक़्ती तौर पर सामने आ गई है।

(3) उसके आइन्दा रवैये पर निगाह रखी जाएगी कि क्या उसका ग़लती को मान लेना सिर्फ़ ज़बानी है या हक़ीक़त में उसके अन्दर शर्मिन्दगी का कोई गहरा एहसास मौजूद है। अगर वह अपने क़ुसूर की तलाफ़ी और भरपाई के लिए बेताब नज़र आए और उसकी बात-बात से ज़ाहिर हो कि ईमान की जिस कमी का निशान उसकी ज़िन्दगी में उभर आया था उसे मिटाने और उसकी भरपाई करने की वह सख़्त कोशिश कर रहा है, तो समझा जाएगा कि वह हक़ीक़त में शर्मिन्दा है और यह शर्मिन्दगी ही उसके ईमान और इख़लास की दलील होगी।

मुहद्दिसीन (हदीस के आलिमों) ने इन आयतों के उतरने की वजहों में जो वाक़िआ बयान किया है उससे यह मज़मून आईने की तरह रौशन हो जाता है। वे कहते हैं कि ये आयतें अबू-लुबाबा-बिन-अब्दुल-मुंज़िर और उनके छः साथियों के मामले में नाज़िल हुई थीं। अबू-लुबाबा उन लोगों में से थे जो बैअते-उक़बा के मौक़े पर हिजरत से पहले इस्लाम लाए थे। फिर बद्र की जंग, उहुद की जंग और दूसरी जंगों में बराबर शरीक रहे। मगर तबूक के मौक़े पर नफ़्स की कमज़ोरी ने ग़ल्बा किया और ये किसी जाइज़ और शरई मजबूरी के बग़ैर ही बैठे रह गए। ऐसे ही सच्चे और मुख़लिस इनके दूसरे साथी भी थे और उनसे भी यह कमज़ोरी ज़ाहिर हो गई। जब नबी (सल्ल.) तबूक की मुहिम से वापस आए और उन लोगों को मालूम हुआ कि पीछे रह जानेवालों के बारे में अल्लाह और रसूल की क्या राय है तो उन्हें सख़्त शर्मिन्दगी हुई। इससे पहले कि कोई पूछ-गच्छ होती उन्होंने ख़ुद ही अपने आपको एक सुतून से बाँध लिया और कहा कि हमपर सोना और खाना हराम है जब तक हम माफ़ न कर दिए जाएँ, या फिर हम मर जाएँ। चुनाँचे कई रोज़ वे इसी तरह बिना कुछ खाए-पिए और बिना सोए बँधे रहे, यहाँ तक कि बेहोश होकर गिर पड़े। आख़िरकार जब उन्हें बताया गया कि अल्लाह और रसूल ने तुम्हें माफ़ कर दिया तो उन्होंने नबी (सल्ल.) से कहा कि हमारी तौबा में यह भी शामिल है कि जिस घर

عٰلِمِ الْغَيْبِ وَالشَّهَادَةِ فَيُنَبِّئُكُمْ بِمَا كُنْتُمْ تَعْمَلُوْنَ ﴿١٠٥﴾ وَاٰخَرُوْنَ
مُرْجَوْنَ لِاَمْرِ اللّٰهِ اِمَّا يُعَذِّبُهُمْ وَاِمَّا يَتُوْبُ عَلَيْهِمْ ۭ وَاللّٰهُ عَلِيْمٌ

तुम उसकी तरफ़ पलटाए जाओगे जो खुले और छिपे सबको जानता है और वह तुम्हें बता देगा कि तुम क्या करते रहे हो।[100]

(106) कुछ दूसरे लोग हैं जिनका मामला अभी ख़ुदा के हुक्म पर ठहरा हुआ है, चाहे उन्हें सज़ा दे और चाहे उनपर नए सिरे से मेहरबान हो जाए। अल्लाह सब कुछ

के ऐशो-आराम ने हमें फ़र्ज़ से ग़ाफ़िल किया उसे और अपने तमाम माल को अल्लाह की राह में दे दें। मगर नबी (सल्ल०) ने कहा कि सारा माल देने की ज़रूरत नहीं, सिर्फ़ एक तिहाई काफ़ी है। चुनाँचे वह उन्होंने उसी वक़्त अल्लाह के रास्ते में वक़्फ़ कर दिया। इस क़िस्से पर ग़ौर करने से साफ़ मालूम हो जाता है कि अल्लाह के यहाँ माफ़ी किस क़िस्म की कमज़ोरियों के लिए है। ये सब हज़रात आदी ग़ैर-मुख़लिस न थे, बल्कि इनकी ज़िन्दगी का पिछला कारनामा उनके सच्चे ईमान पर दलील था। उनमें से किसी ने बहाने नहीं घड़े, बल्कि अपनी ग़लतियों को ख़ुद ही ग़लती मान लिया। उन्होनें ग़लती को तस्लीम करने के साथ अपने रवैये से यह साबित कर दिया कि वे वाक़ई बहुत शर्मिन्दा और अपने इस गुनाह की भरपाई के लिए सख़्त बेचैन हैं। इस सिलसिले में एक और मुफ़ीद नुक्ते (Point) पर भी निगाह रहनी चाहिए जो इन आयतों में बयान हुआ है। वह यह कि गुनाहों की भरपाई के लिए ज़बान और दिल की तौबा के साथ-साथ अमली तौबा भी होनी चाहिए, और अमली तौबा की एक शक्ल यह है कि आदमी अल्लाह की राह में माल ख़ैरात करे। इस तरह वह गन्दगी जो नफ़्स में परवरिश पा रही थी और जिसकी बदौलत आदमी से गुनाह हुआ था, दूर हो जाती है और भलाई और नेकी की तरफ़ पलटने की ताक़त बढ़ती है। गुनाह करने के बाद इसको मान लेना ऐसा है जैसे एक आदमी जो गढ़े में गिर गया था, अपने गिरने को ख़ुद महसूस कर ले। फिर उसका अपने गुनाह पर शर्मिन्दा होना यह मानी रखता है कि वह इस गढ़े को अपने लिए बहुत ही बुरी जगह समझता है और अपनी इस हालत से सख़्त तकलीफ़ में है। फिर उसका सदक़ा और ख़ैरात और दूसरी नेकियों से इसकी भरपाई की कोशिश करना मानो गढ़े से निकलने के लिए हाथ-पाँव मारना है।

100. मतलब यह है कि आख़िरकार मामला उस अल्लाह के साथ है जिससे कोई चीज़ छिप नहीं सकती। इसलिए मान लीजिए कि अगर कोई आदमी दुनिया में अपने निफ़ाक़ को छिपाने में कामयाब हो जाए और इनसान जिन-जिन मेयारों पर किसी के ईमान और इख़लास को परख सकते हैं उन सबपर भी पूरा उतर जाए तो यह न समझना चाहिए कि वह निफ़ाक़ (कपट) की सज़ा पाने से बच निकला है।

حَكِيْمٌ ۝١٠٦ وَالَّذِيْنَ اتَّخَذُوْا مَسْجِدًا ضِرَارًا وَّكُفْرًا وَّتَفْرِيْقًا بَيْنَ
الْمُؤْمِنِيْنَ وَاِرْصَادًا لِّمَنْ حَارَبَ اللّٰهَ وَرَسُوْلَهٗ مِنْ قَبْلُ ۭ وَلَيَحْلِفُنَّ
اِنْ اَرَدْنَآ اِلَّا الْحُسْنٰى ۭ وَاللّٰهُ يَشْهَدُ اِنَّهُمْ لَكٰذِبُوْنَ ۝١٠٧ لَا تَقُمْ فِيْهِ
اَبَدًا ۭ لَمَسْجِدٌ اُسِّسَ عَلَى التَّقْوٰى مِنْ اَوَّلِ يَوْمٍ اَحَقُّ اَنْ تَقُوْمَ فِيْهِ ۭ
فِيْهِ رِجَالٌ يُّحِبُّوْنَ اَنْ يَّتَطَهَّرُوْا ۭ وَاللّٰهُ يُحِبُّ الْمُطَّهِّرِيْنَ ۝١٠٨ اَفَمَنْ

जानता है और हिकमतवाला और सूझ-बूझवाला है।[101]

(107) कुछ और लोग हैं जिन्होंने एक मस्जिद बनाई इस मक़सद के लिए कि (हक़ के पैग़ाम को) नुक़सान पहुँचाएँ और (अल्लाह की बन्दगी करने के बजाए) कुफ़्र (नाफ़रमानी) करें और ईमानवालों में फूट डालें और (इस दिखावे की इबादतगाह को) उस आदमी के लिए घात लगाने की जगह बनाएँ, जो इससे पहले अल्लाह और उसके रसूल के ख़िलाफ़ जंग कर चुका है। वे ज़रूर क़समें खा-खाकर कहेंगे कि हमारा इरादा तो भलाई के सिवा किसी दूसरी चीज़ का न था मगर अल्लाह गवाह है कि वे बिलकुल झूठे हैं। (108) तुम हरगिज़ उस इमारत में खड़े न होना। जो मस्जिद पहले दिन से तक़वा परहेज़गारी पर क़ायम की गई थी वही इसके लिए ज़्यादा मुनासिब है कि तुम उसमें (इबादत के लिए) खड़े हो, उसमें ऐसे लोग हैं जो पाक रहना पसन्द करते हैं और अल्लाह को पाकी अपनानेवाले ही पसन्द हैं।[102] (109) फिर तुम्हारा क्या

---

101. ये लोग ऐसे थे जिनका मामला शक में पड़ा हुआ था। न इनके मुनाफ़िक़ होने का फ़ैसला किया जा सकता था, न गुनाहगार मोमिन होने का। इन दोनों चीज़ों की निशानियाँ अभी पूरी तरह नहीं उभरी थीं। इसलिए अल्लाह ने इनके मामले को मुल्तवी रखा। न इस मानी में कि हक़ीक़त में ख़ुदा के सामने मामला शक में पड़ा हुआ था, बल्कि इस मानी में कि मुसलमानों को किसी शख़्स या गरोह के मामले में अपना रवैया उस वक़्त तक तय नहीं करना चाहिए जब तक उसकी पोज़ीशन ऐसी निशानियों से साफ़ न हो जाए जो ग़ैबी इल्म से नहीं, बल्कि अक़्ल और समझ से जाँची जा सकती हों।

102. नबी (सल्ल॰) के मदीना पहुँचने से पहले ख़ज़रज क़बीले में अबू-आमिर नाम का एक शख़्स था, जो जाहिलियत के ज़माने में ईसाई राहिब (संन्यासी) बन गया था। उसकी गिनती

अहले-किताब के आलिमों में होती थी और रहबानियत की वजह से उसके इल्मी वक़ार के साथ-साथ उसकी दरवेशी का सिक्का भी मदीने और आस-पास के जाहिल अरबों में बैठा हुआ था। जब नबी (सल्ल॰) मदीना पहुँचे तो उसकी बुज़ुर्गी वहाँ ख़ूब चल रही थी। मगर यह इल्म और दरवेशी उसके अन्दर हक़ को पहचानने और हक़ पर उभारने के बजाए उलटी उसके लिए एक ज़बरदस्त परदा बन गई और इस परदे का नतीजा यह हुआ कि नबी (सल्ल॰) के आने के बाद वह ईमान की नेमत से ही महरूम न रहा, बल्कि आप (सल्ल॰) को अपनी बुज़ुर्गी का मुख़ालिफ़ और अपने दरवेशी कारोबार का दुश्मन समझकर आपकी और आपके काम की मुख़ालिफ़त पर आमादा हो गया। पहले दो साल तक तो उसे यह उम्मीद रही कि क़ुरैश के इस्लाम-दुश्मनों की ताक़त ही इस्लाम को मिटाने के लिए काफ़ी साबित होगी। लेकिन बद्र की जंग में जब क़ुरैश ने बुरी तरह मात खाई तो उससे बरदाश्त न हो सका। उसी साल वह मदीना से निकल खड़ा हुआ और उसने क़ुरैश और दूसरे अरब क़बीलों में इस्लाम के ख़िलाफ़ प्रोपगेंडा शुरू कर दिया। उहुद की जंग जिन लोगों की कोशिशों से बरपा हुई उनमें यह भी शामिल था और कहा जाता है कि उहुद के मैदाने-जंग में उसी ने वे गढ़े खुदवाए थे जिनमें से एक में नबी (सल्ल॰) गिरकर ज़ख़्मी हुए। फिर अहज़ाब की जंग में जो लश्कर हर तरफ़ से मदीना पर चढ़ आए थे उनको चढ़ा लाने में भी उसका हिस्सा नुमाया था। उसके बाद हुनैन की जंग तक जितनी लड़ाइयाँ अरब के मुशरिकों और मुसलमानों के बीच हुईं उन सबमें ये ईसाई दरवेश इस्लाम के ख़िलाफ़ शिर्क का सरगर्म हिमायती रहा। आख़िरकार उसे इस बात से मायूसी हो गई कि अरब की कोई ताक़त इस्लाम के सैलाब को रोक सकेगी। इसलिए अरब को छोड़कर उसने रूम (रोम) का रुख़ किया, ताकि रूमी बादशाह (क़ैसर) को इस 'ख़तरे' से आगाह करे जो अरब से सर उठा रहा था। यह वही मौक़ा था जब मदीना में ये ख़बरें पहुँचीं कि क़ैसर अरब पर चढ़ाई की तैयारियाँ कर रहा है और उसी की रोक-थाम के लिए नबी (सल्ल॰) को तबूक की मुहिम पर जाना पड़ा।

अबू-आमिर राहिब की इन तमाम सरगर्मियों में मदीना के मुनाफ़िक़ों का एक गरोह उसके साथ साज़िश में शरीक था और उस आख़िरी राय में भी ये लोग उसके साथ थे कि वह अपने मज़हबी असर को इस्तेमाल करके इस्लाम के ख़िलाफ़ रूम के बादशाह और उत्तरी अरब के ईसाई मुल्कों से फ़ौजी मदद हासिल करे। जब वह रूम की तरफ़ रवाना होने लगा तो उसके और उन मुनाफ़िक़ों के बीच यह क़रारदाद हुई कि मदीना में ये लोग अपनी एक अलग मस्जिद बना लेंगे, ताकि आम मुसलमानों से बचकर मुनाफ़िक़ मुसलमानों की अलग जत्थाबन्दी इस तरह की जा सके कि उसपर मज़हब का परदा पड़ा रहे और आसानी से उसपर कोई शक न किया जा सके, और वहाँ न सिर्फ़ यह कि मुनाफ़िक़ लोग मुनज़्ज़म (संगठित) हो सकें और आइन्दा कार्रवाइयों के लिए मशवरे कर सकें, बल्कि अबू-आमिर के पास से जो एजेंट ख़बरें और हिदायतें लेकर आएँ वे भी भरोसेमन्द फ़क़ीरों और मुसाफ़िरों की हैसियत से इस मस्जिद में ठहर सकें। यह थी वह नापाक साज़िश जिसके तहत वह मस्जिद तैयार की गई थी जिसका इन आयतों में ज़िक्र किया गया है।

मदीना में उस वक़्त दो मस्जिदें थीं। एक मस्जिदे-क़ुबा जो शहर के बाहरी हिस्सों में थी। दूसरी

اَسَّسَ بُنْيَانَهٗ عَلٰى تَقْوٰى مِنَ اللّٰهِ وَرِضْوَانٍ خَيْرٌ اَمْ مَّنْ اَسَّسَ
بُنْيَانَهٗ عَلٰى شَفَا جُرُفٍ هَارٍ فَانْهَارَ بِهٖ فِيْ نَارِ جَهَنَّمَ ؕ وَاللّٰهُ لَا يَهْدِى

ख़याल है कि अच्छा इनसान वह है जिसने अपनी इमारत की बुनियाद अल्लाह के डर और उसकी ख़ुशनूदी चाहने पर रखी हो या वह जिसने अपनी इमारत एक वादी की खोखली कमज़ोर कगार पर[103] उठाई और वह उसे लेकर सीधी जहन्नम की आग में जा

मस्जिदे-नबवी जो शहर के अन्दर थी। इन दो मस्जिदों की मौजूदगी में एक तीसरी मस्जिद बनाने की कोई ज़रूरत नहीं थी, और वह ज़माना ऐसी बेवक़ूफ़ी भरी मज़हबियत का न था कि मस्जिद के नाम से एक इमारत बना देना अपने आप में नेकी और सवाब का काम हो, यह देखे बग़ैर कि इसकी ज़रूरत है या नहीं, बल्कि इसके बरख़िलाफ़ एक नई मस्जिद बनने के मानी ये थे कि मुसलमानों की जमाअत में ख़ाह-मख़ाह तफ़रीक़ और अलगाव पैदा हो जिसे एक सालेह इस्लामी निज़ाम किसी तरह गवारा नहीं कर सकता। इसी लिए ये लोग मजबूर हुए कि अपनी अलग मस्जिद बनाने से पहले उसकी ज़रूरत साबित करें। चुनाँचे उन्होंने नबी (सल्ल.) के सामने इस नई तामीर के लिए ज़रूरत पेश की कि बारिश में और जाड़े की रातों में आम लोगों को और ख़ास तौर से कमज़ोरों और मजबूरों को, जो इन दोनों मस्जिदों से दूर रहते हैं, पाँचों वक़्त हाज़िरी देनी मुश्किल होती है। इसलिए हम सिर्फ़ नमाज़ियों की आसानी के लिए यह एक नई मस्जिद बनाना चाहते हैं।

इन पाकीज़ा इरादों की नुमाइश के साथ जब यह मस्जिदे-ज़िरार बनकर तैयार हुई तो ये शरारती लोग नबी (सल्ल.) की ख़िदमत में हाज़िर हुए और आप (सल्ल.) से दरख़ास्त की कि आप एक बार ख़ुद नमाज़ पढ़ाकर हमारी मस्जिद का इफ़्तिताह (उद्घाटन) कर दें। मगर आप (सल्ल.) ने यह कहकर टाल दिया कि "इस वक़्त मैं जंग की तैयारी में लगा हुआ हूँ और एक बड़ी मुहिम सामने है। इस मुहिम से वापस आकर देखूँगा।" उसके बाद नबी (सल्ल.) तबूक की तरफ़ रवाना हो गए और आपके पीछे ये लोग इस मस्जिद में अपनी जत्थेबन्दी और साज़िश करते रहे, यहाँ तक कि उन्होंने यहाँ तक तय कर लिया कि उधर रूमियों के हाथों मुसलमानों का ख़ातिमा हो और इधर ये फ़ौरन ही अब्दुल्लाह-बिन-उबय्य के सर पर शाही ताज रख दें। लेकिन तबूक में जो मामला पेश आया उसने उनकी सारी उम्मीदों पर पानी फेर दिया। वापसी पर जब नबी (सल्ल.) मदीना के क़रीब ज़ी-अदान के मक़ाम पर पहुँचे तो ये आयतें नाज़िल हुईं और आप (सल्ल.) ने उसी वक़्त कुछ आदमियों को मदीना की तरफ़ भेज दिया, ताकि आपके शहर में दाख़िल होने से पहले-पहले वे मस्जिदे-ज़िरार को ढा दें।

103. अस्ल अरबी में लफ़्ज़ 'जुरुफ़' इस्तेमाल हुआ है जिसको अरबी ज़बान में किसी नदी या दरिया के उस किनारे के नाम से जाना जाता है जिसके नीचे की मिट्टी को पानी ने काट-काट कर बहा दिया हो और ऊपर का हिस्सा बेसहारा खड़ा हो। जो लोग अपने अमल की बुनियाद

الْقَوْمَ الظّٰلِمِيْنَ ۝١٠٩ لَا يَزَالُ بُنْيَانُهُمُ الَّذِيْ بَنَوْا رِيْبَةً فِيْ
قُلُوْبِهِمْ اِلَّآ اَنْ تَقَطَّعَ قُلُوْبُهُمْ ۭ وَاللّٰهُ عَلِيْمٌ حَكِيْمٌ ۝١١٠

गिरी? ऐसे ज़ालिम लोगों को अल्लाह कभी सीधी राह नहीं दिखाता।[104] (110) यह इमारत जो उन्होंने बनाई है, हमेशा उनके दिलों में बेयक़ीनी की जड़ बनी रहेगी (जिसके निकलने की अब कोई शक्ल नहीं) अलावा इसके कि उनके दिल ही टुकड़े-टुकड़े हो जाएँ।[105] अल्लाह बहुत ख़बर रखनेवाला और हिकमत व सूझ-बूझवाला है।

ख़ुदा से बेख़ौफ़ी और उसकी ख़ुशी से बेनियाज़ी पर रखते हैं उनकी ज़िन्दगी की तामीर की मिसाल यहाँ उस इमारत से दी गई है जिसकी बुनियाद ऐसे ही किसी खोखले और बेसहारा दरिया के किनारे पर उठाई गई हो। यह एक ऐसी बेनज़ीर मिसाल है जिससे ज़्यादा बेहतर तरीक़े से इस सूरते-हाल का नक़्शा नहीं खींचा जा सकता। इसके पूरे मानी और मतलब ज़ेहन में बिठाने के लिए यूँ समझिए कि दुनियवी ज़िन्दगी की वह ज़ाहिरी सतह जिसपर मोमिन, मुनाफ़िक़, काफ़िर, नेक, गुनाहगार, यानी तमाम इनसान काम करते हैं, मिट्टी की उस ऊपरी तह के जैसी है जिसपर दुनिया में सारी इमारतें बनाई जाती हैं। यह तह अपने अन्दर ख़ुद कोई पायदारी और मज़बूती नहीं रखती, बल्कि उसकी पायदारी और मज़बूती का दारोमदार इसपर है कि उसके नीचे ठोस ज़मीन मौजूद हो। अगर कोई तह ऐसी हो जिसके नीचे की ज़मीन किसी चीज़, जैसे दरिया के पानी से कट चुकी हो तो जो अनजान इनसान उसकी ज़ाहिरी हालत से धोखा खाकर उसपर अपना मकान बनाएगा उसे वह उसके मकान समेत ले बैठेगी और वह न सिर्फ़ ख़ुद हलाक होगा, बल्कि उस नापायदार बुनियाद पर भरोसा करके अपना जो कुछ ज़िन्दगी का सरमाया वह इस इमारत में जमा करेगा वह भी बरबाद हो जाएगा। बिलकुल इसी मिसाल के मुताबिक़ दुनिया की ज़िन्दगी की वह ज़ाहिरी सतह भी जिसपर हम सब अपनी ज़िन्दगी के कारनामों की इमारत उठाते हैं, बजाए ख़ुद कोई मज़बूती और ठहराव नहीं रखती, बल्कि उसकी मज़बूती और पायदारी का दारोमदार इस बात पर है कि उसके नीचे ख़ुदा के ख़ौफ़, उसके सामने जवाबदेही के एहसास और उसकी मरज़ी की फ़रमाँबरदारी की ठोस चट्टान मौजूद हो। जो नादान आदमी सिर्फ़ दुनिया के ज़ाहिरी पहलू पर भरोसा कर लेता है और दुनिया में अल्लाह से बेख़ौफ़ और उसकी रज़ा से बेपरवा होकर काम करता है वह असल में ख़ुद अपनी तामीर ज़िन्दगी के नीचे से उसकी बुनियादों को खोखला कर देता है और उसका आख़िरी अंजाम इसके सिवा कुछ नहीं कि यह बेबुनियाद सतह, जिस पर उसने अपनी उम्र भर का अमली सरमाया जमा किया है एक दिन अचानक गिर जाए और उसे उसके पूरे सरमाए समेत ले बैठे।

104. 'सीधी राह' यानी वह राह जिससे इनसान बामुराद होता और हक़ीक़ी कामयाबी की मंज़िल पर पहुँचता है।

105. यानी उन लोगों ने मुनाफ़िक़ाना मक्कारी और दग़ाबाज़ी के इतने बड़े जुर्म करके अपने दिलों को हमेशा-हमेशा के लिए ईमान की सलाहियत से महरूम कर लिया है और बेईमानी का रोग

إِنَّ اللَّهَ اشْتَرٰى مِنَ الْمُؤْمِنِيْنَ اَنْفُسَهُمْ وَاَمْوَالَهُمْ بِاَنَّ لَهُمُ الْجَنَّةَ ۭ
يُقَاتِلُوْنَ فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ فَيَقْتُلُوْنَ وَيُقْتَلُوْنَ ۣ وَعْدًا عَلَيْهِ حَقًّا فِي

(111) हक़ीक़त यह है कि अल्लाह ने ईमानवालों से उनके जान और उनके माल जन्नत के बदले में ख़रीद लिए हैं।[106] वे अल्लाह की राह में लड़ते और मारते और मरते हैं। उनसे (जन्नत का वादा) अल्लाह के ज़िम्मे एक पक्का वादा है, तौरात और

इस तरह उनके दिलों के रेशे-रेशे में पेवस्त हो गया है कि जब तक उनके दिल बाक़ी हैं यह रोग भी उनमें मौजूद रहेगा। ख़ुदा से कुफ़्र और नाफ़रमानी करने के लिए जो शख़्स एलानिया बुतख़ाना बनाए या उसके दीन से लड़ने के लिए खुल्लम-खुल्ला मोर्चे और दमदमे तैयार करे, उसकी हिदायत तो किसी-न-किसी वक़्त मुमकिन है, क्योंकि उसके अन्दर सच्चाई, इख़लास और अख़लाक़ी जुरअत और हिम्मत का वह जौहर तो बुनियादी तौर पर महफ़ूज़ रहता है जो हक़परस्ती के लिए भी उसी तरह काम आ सकता है जिस तरह बातिलपरस्ती के काम आता है। लेकिन जो बुज़दिल, झूठा और मक्कार इनसान कुफ़्र के लिए मस्जिद बनाए और ख़ुदा के दीन से लड़ने के लिए ख़ुदापरस्ती का फ़रेब से भरा लबादा ओढ़े उसकी सीरत को तो निफ़ाक़ की दीमक खा चुकी होती है। उसमें यह ताक़त ही कहाँ बाक़ी रह सकती है कि सच्चे ईमान का बोझ सिहार सके।

106. यहाँ ईमान के उस मामले को जो ख़ुदा और बन्दे के बीच तय होता है, बैअ् (ख़रीदना) कहा गया है। इसके मानी ये हैं कि ईमान सिर्फ़ एक ऐसा अक़ीदा नहीं है जिसका ताल्लुक़ क़ुदरत और फ़ितरत से परे की बातों से हो, बल्कि हक़ीक़त में वह एक मुआहिदा (अनुबन्ध) है जिसके मुताबिक़ बन्दा अपना नफ़्स और अपना माल अल्लाह के हाथ बेच देता है और उसके बदले में अल्लाह की तरफ़ से इस वादे को क़बूल कर लेता है कि मरने के बाद दूसरी ज़िन्दगी में वह उसे जन्नत देगा। इस अहम मज़मून में शामिल बातों को समझने के लिए ज़रूरी है कि सबसे पहले इस ख़रीदने-बेचने के मामले की हक़ीक़त को अच्छी तरह ज़ेहन में बिठा लिया जाए।

जहाँ तक असल हक़ीक़त का ताल्लुक़ है, उसके लिहाज़ से तो इनसान की जान और माल का मालिक अल्लाह ही है, क्योंकि वही उसका और उन सारी चीज़ों का पैदा करनेवाला है जो उसके पास हैं और उसी ने वह सब कुछ उसे बख़्शा है जिसको वह इस्तेमाल कर रहा है। इसलिए इस हैसियत से तो ख़रीदने और बेचने का कोई सवाल पैदा ही नहीं होता। न इनसान का अपना कुछ है कि वह उसे बेचे, न कोई चीज़ ख़ुदा की मिल्कियत से बाहर है कि वह उसे ख़रीदे। लेकिन एक चीज़ इनसान के अन्दर ऐसी भी है जिसे अल्लाह ने पूरे तौर पर उसके हवाले कर दी है, और वह है उसका इख़्तियार, यानी उसका अपने इन्तिख़ाब और इरादे में आज़ाद होना (Free will and Freedom of choice)। इस इख़्तियार की बिना पर असल हक़ीक़त तो नहीं बदलती, मगर इनसान को इस बात की ख़ुदमुख़्तारी हासिल हो जाती है कि

चाहे तो हक़ीक़त को तस्लीम करे वरना इनकार कर दे। दूसरे लफ़्ज़ों में इस इख़्तियार के मानी ये नहीं हैं कि इनसान हक़ीक़त में अपने नफ़्स का और अपने ज़ेहन और जिस्म की क़ुव्वतों का और उन इक़्तिदारों का जो उसे दुनिया में हासिल हैं, मालिक हो गया है और उसे यह हक़ मिल गया है कि इन चीज़ों को जिस तरह चाहे इस्तेमाल करे। बल्कि उसके मानी सिर्फ़ ये हैं कि उसे इस बात की आज़ादी दे दी गई है कि ख़ुदा की तरफ़ से किसी ज़ोर-ज़बरदस्ती के बग़ैर वह ख़ुद ही अपनी ज़ात पर और अपनी हर चीज़ पर अल्लाह के मालिकाना हक़ों को मानना चाहे तो माने वरना आप ही अपना मालिक बन बैठे और अपने आप में यह ख़याल कर ले कि वह अल्लाह से बेनियाज़ होकर अपने इख़्तियार की हदों में अपनी मंशा के मुताबिक़ इस्तेमाल करने का हक़ रखता है। यही वह मक़ाम है जहाँ से बैअ् (ख़रीदने-बेचने) का सवाल पैदा होता है। असूल में यह ख़रीदना-बेचना इस मानी में नहीं है कि जो चीज़ इनसान की है अल्लाह उसे ख़रीदना चाहता है बल्कि इस मामले की सही नौइयत यह है कि जो चीज़ ख़ुदा की है, और जिसे उसने अमानत के तौर पर इनसान के हवाले किया है और जिसमें अमानतदार रहने या ख़्यानत करनेवाला बन जाने की आज़ादी उसने इनसान को दे रखी है, उसके बारे में वह इनसान से माँग करता है कि तू ख़ुशी के साथ (न कि मजबूरी में) मेरी चीज़ को मेरी ही चीज़ मान ले, और ज़िन्दगी भर इसमें ख़ुदमुख़्तार मालिक की हैसियत से नहीं बल्कि अमानतदार होने की हैसियत से इस्तेमाल करना क़बूल कर ले, और ख़ियानत की जो आज़ादी तुझे मैं ने दी है ख़ुद-ब-ख़ुद छोड़ दे। इस तरह अगर तू दुनिया की मौजूदा वक़्ती ज़िन्दगी में अपनी ख़ुदमुख़्तारी को (जो तेरी हासिल की हुई नहीं है बल्कि मेरी दी हुई है) मेरे हाथ बेच देगा तो मैं तुझे बाद की हमेशा-हमेशा की ज़िन्दगी में उसकी क़ीमत जन्नत की सूरत में अदा करूँगा। जो इनसान अल्लाह के साथ ख़रीदने-बेचने का यह मामला तय कर ले वह ईमानवाला है, और ईमान असूल में इसी ख़रीदने-बेचने का दूसरा नाम है। और जो शख़्स इससे इनकार कर दे, या इक़रार करने के बावजूद ऐसा रवैया अपनाए जो ख़रीदने-बेचने का मामला न करने की सूरत ही में इख़्तियार किया जा सकता है, वह काफ़िर है और इस ख़रीदने-बेचने ही से बचने का इस्तिलाही (पारिभाषिक) नाम कुफ़्र है।

ख़रीदने-बेचने की इस हक़ीक़त को समझ लेने के बाद इसमें शामिल दूसरी बातों पर ग़ौर कीजिए :

(1) इस मामले में अल्लाह ने इनसान को दो बहुत बड़ी आज़माइशों में डाला है। पहली आज़माइश इस बात की कि आज़ाद छोड़ दिए जाने पर यह इतनी शराफ़त दिखाता है या नहीं कि मालिक ही को मालिक समझे और नमकहरामी और बग़ावत पर न उतर आए। दूसरी आज़माइश इस बात की कि यह अपने अल्लाह पर इतना भरोसा करता है या नहीं कि जो क़ीमत आज नक़्द नहीं मिल रही है बल्कि मरने के बाद दूसरी ज़िन्दगी में जिसके अदा करने का ख़ुदा की तरफ़ से वादा है, उसके बदले अपनी आज की ख़ुदमुख़्तारी और उसके मज़े बेच देने पर ख़ुशी के साथ राज़ी हो जाए।

(2) दुनिया में जिस फ़िक़्ही क़ानून (शरीअत के क़ानून) पर इस्लामी सोसाइटी बनती है उसके मुताबिक़ तो ईमान बस चन्द अक़ीदों के इक़रार का नाम है जिसके बाद शरीअत का कोई

क़ाज़ी किसी के ग़ैर-मोमिन या मिल्लत से ख़ारिज होने का हुक्म नहीं लगा सकता, जब तक इस बात का कोई साफ़ और वाज़ेह सुबूत उसे न मिल जाए कि वह अपने इक़रार में झूठा है। लेकिन अल्लाह के यहाँ जो ईमान भरोसेमन्द है उसकी हक़ीक़त यह है कि बन्दा ख़याल और अमल दोनों में अपनी आज़ादी और ख़ुदमुख़्तारी को ख़ुदा के हाथ बेच दे और उसके हक़ में अपने मिल्कियत के दावे को पूरे तौर से छोड़ दे। इसलिए अगर कोई शख़्स इस्लाम के कलिमे का इक़रार करता हो और नमाज़ और रोज़े वग़ैरा अहकाम का भी पाबन्द हो लेकिन अपने जिस्म और जान का, अपने दिल और दिमाग़ और बदन की क़ुव्वतों का, अपने माल और वसाइल और ज़रीओं (संसाधनों) का, और अपने क़ब्ज़े और इख़्तियार की सारी चीज़ों का मालिक अपने आप ही को समझता हो और उनको अपनी मंशा के मुताबिक़ इस्तेमाल करने की आज़ादी अपने लिए महफ़ूज़ रखता हो, तो हो सकता है कि दुनिया में वह मोमिन समझा जाता रहे, मगर अल्लाह के यहाँ यक़ीनन वह ग़ैर-मोमिन ही क़रार पाएगा, क्योंकि उसने ख़ुदा के साथ वह बैअ् (ख़रीदने-बेचने) का मामला सिरे से किया ही नहीं जो क़ुरआन के मुताबिक़ ईमान की अस्ल हक़ीक़त है। जहाँ ख़ुदा की मरज़ी हो वहाँ जान और माल खपाने से बचना और जहाँ उसकी मरज़ी न हो वहाँ जान और माल खपाना, ये दोनों रवैये ऐसे हैं जो इस बात का आख़िरी फ़ैसला कर देते हैं कि ईमान का दावा करनेवाले ने या तो जान और माल को ख़ुदा के हाथ बेचा नहीं है, या ख़रीदने-बेचने का मुआहदा कर लेने के बाद भी वह बेची हुई चीज़ को बदस्तूर अपनी समझ रहा है।

(3) ईमान की यह हक़ीक़त ज़िन्दगी के इस्लामी रवैये और ग़ैर-इस्लामी रवैये को शुरू से आख़िर तक बिलकुल एक-दूसरे से जुदा कर देती है। मुस्लिम जो सही मानी में ख़ुदा पर ईमान लाया हो, अपनी ज़िन्दगी के हर हिस्से में ख़ुदा की मरज़ी का फ़रमाँबरदार बनकर काम करता है और उसके रवैये में किसी जगह भी ख़ुदमुख़तारी का रंग नहीं आने पाता। सिवाए इसके कि वक़्ती तौर पर किसी वक़्त उसपर ग़फ़लत छा जाए और वह ख़ुदा के साथ अपने ख़रीदने-बेचने के मुआहदे को भूलकर कोई ख़ुद-मुख़्ताराना हरकत कर बैठे। इसी तरह जो गरोह ईमानवालों से मिलकर बना हो वह इज्तिमाई तौर पर भी कोई पॉलिसी, कोई सियासत, कोई तहज़ीब व तमद्दुन (संस्कृति और सभ्यता) का तरीक़ा, कोई मआशी (आर्थिक) व समाजी तरीक़ा और कोई बैनुल-अक़वामी (अन्तर्राष्ट्रीय) रवैया अल्लाह की मरज़ी और उसके क़ानून और शरीअत की पाबन्दी से आज़ाद होकर इख़्तियार नहीं कर सकता। और अगर किसी वक़्ती ग़फ़लत की वजह से इख़्तियार कर भी जाए तो जिस वक़्त ख़बरदार होगा उसी वक़्त वह आज़ादी का रवैया छोड़कर बन्दगी के रवैये की तरफ़ पलट आएगा। अल्लाह से आज़ाद होकर काम करना और अपने मन और मन से ताल्लुक़ रखनेवाली बातों के बारे में ख़ुद यह फ़ैसला करना कि हम क्या करें और क्या न करें बहरहाल ज़िन्दगी का एक ग़ैर-इस्लामी रवैया है चाहे उसपर चलनेवाले लोग 'मुसलमान' के नाम से पुकारे जाएँ या 'ग़ैर-मुस्लिम' के नाम से।

(4) इस ख़रीदने-बेचने के मुताबिक़ से ख़ुदा की जिस मरज़ी की पैरवी आदमी पर ज़रूरी हो जाती है वह आदमी की अपनी तय की गई मरज़ी नहीं, बल्कि वह मरज़ी है जो अल्लाह ख़ुद

बताए। अपने आप किसी चीज़ को ख़ुदा की मर्ज़ी ठहरा लेना और उसकी पैरवी करना अल्लाह की मरज़ी की नहीं, बल्कि अपनी ही मरज़ी की पैरवी है और यह ख़रीदने-बेचने के मुआहिदे के बिलकुल ख़िलाफ़ है। अल्लाह के साथ अपने ख़रीदने-बेचने के मुआहिदे पर सिर्फ़ वही शख़्स और वही गरोह क़ायम समझा जाएगा जो अपनी पूरी ज़िन्दगी का रवैया अल्लाह की किताब और उसके पैग़म्बर की हिदायत से हासिल करता हो।

ये इस ख़रीदने-बेचने के तहत आनेवाली बातें हैं और इनको समझ लेने के बाद यह बात भी ख़ुद-ब-ख़ुद समझ में आ जाती है कि इस ख़रीदने-बेचने के मामले में क़ीमत (यानी जन्नत) को मौजूदा दुनियावी ज़िन्दगी के ख़ातिमे तक क्यों टाला गया है। ज़ाहिर है कि जन्नत सिर्फ़ इस इक़रार का मुआवज़ा नहीं है कि "बेचनेवाले ने अपनी जान और माल को अल्लाह के हाथ बेच दिया" बल्कि वह इस अमल का मुआवज़ा है कि "बेचनेवाला अपनी दुनियावी ज़िन्दगी में इस बेची हुई चीज़ पर ख़ुद-मुख़ताराना अमल-दख़ल छोड़ दे और अल्लाह का अमीन बनकर उसकी मरज़ी के मुताबिक़ अमल-दख़ल करे।" इसलिए यह बिक्री मुकम्मल ही उस वक़्त होगी जबकि बेचनेवाले की दुनियावी ज़िन्दगी ख़त्म हो जाए और हक़ीक़त में यह साबित हो कि उसने ख़रीदने-बेचने का मुआहदा करने के बाद से अपनी दुनियावी ज़िन्दगी के आख़िरी लम्हे तक ख़रीदने-बेचने की शर्तें पूरी की हैं। इससे पहले वह इनसाफ़ के मुताबिक़ क़ीमत पाने का हक़दार नहीं हो सकता।

इन बातों के वाज़ेह हो जाने के साथ यह भी जान लेना चाहिए कि बयान के इस सिलसिले में यह मज़मून किस मुनासिबत से आया है। ऊपर से तक़रीर का जो सिलसिला चल रहा था उसमें उन लोगों का ज़िक्र था जिन्होंने ईमान लाने का इक़रार किया था, मगर जब इम्तिहान का नाज़ुक मौक़ा आया तो उनमें से कुछ सुस्ती की बिना पर, कुछ इख़लास की कमी की वजह से और कुछ ख़ालिस मुनाफ़िक़त की राह से अल्लाह और उसके दीन की ख़ातिर अपने वक़्त, अपने माल, अपने फ़ायदों और अपनी जान को क़ुरबान करने से बचे रहे। इसलिए इन अलग-अलग तरीक़े के लोगों और तबक़ों के रवैये पर तंक़ीद करने के बाद अब उनको साफ़-साफ़ बताया जा रहा है कि वह ईमान, जिसे क़बूल करने का तुमने इक़रार किया है, सिर्फ़ यह मान लेने का नाम नहीं है कि अल्लाह है और वह एक है, बल्कि सच्ची बात यह है कि वह इस बात का इक़रार है कि अल्लाह ही तुम्हारी जान और माल का मालिक है। इसलिए यह इक़रार करने के बाद अगर तुम इस जान और माल को अल्लाह के हुक्म पर क़ुरबान करने से जी चुराते हो और दूसरी तरफ़ अपने नफ़्स (मन) की क़ुव्वतों को और अपने ज़रिओं को अल्लाह की मरज़ी के ख़िलाफ़ इस्तेमाल करते हो, तो यह इस बात की दलील है कि तुम अपने इक़रार में झूठे हो। सच्चे ईमानवाले सिर्फ़ वे लोग हैं जो वाक़ई अपनी जान और माल अल्लाह के हाथ बेच चुके हैं और उसी को इन चीज़ों का मालिक समझते हैं। जहाँ उसका हुक्म होता है वहाँ उन्हें बेदरेग़ क़ुरबान करते हैं, और जहाँ उसका हुक्म नहीं होता वहाँ नफ़्स की ताक़तों का कोई छोटा-सा हिस्सा और माली ज़रिओं का कोई ज़रा-सा हिस्सा भी ख़र्च करने के लिए तैयार नहीं होते।

التَّوْرٰىةِ وَالْاِنْجِيْلِ وَالْقُرْاٰنِ ۭ وَمَنْ اَوْفٰى بِعَهْدِهٖ مِنَ اللّٰهِ

इंजील और क़ुरआन में।[107] और कौन है जो अल्लाह से बढ़कर अपने वादे का पूरा

107. इस बात पर बहुत एतिराज़ किए गए हैं कि जिस वादे का यहाँ ज़िक्र है वह तौरात और इंजील में मौजूद नहीं है। मगर जहाँ तक इंजील का ताल्लुक़ है, ये एतिराज़ बेबुनियाद हैं। जो इंजीलें इस वक़्त दुनिया में मौजूद हैं उनमें हज़रत मसीह (अलैहिस्सलाम) की बहुत-सी बातें हमें ऐसी मिलती हैं जो इस आयत की हम-मानी हैं, जैसे :

"मुबारक हैं वे जो सच्चाई पर चलने की वजह से सताए गए हैं, क्योंकि आसमान की बादशाही उन्हीं की है।" (मत्ती-5 : 10)

"जो कोई अपनी जान बचाता है उसे खोएगा जो कोई मेरी वजह से अपनी जान खोता है उसे बचाएगा।" (मत्ती 10 : 39)

"जिस किसी ने घरों या भाइयों या बहनों या बाप या माँ या बच्चों या खेतों को मेरे नाम की ख़ातिर छोड़ दिया है उसको सौ गुना मिलेगा और हमेशा की ज़िन्दगी का वारिस होगा।" (मत्ती 19 : 29)

अलबत्ता तौरात जिस सूरत में इस वक़्त मौजूद है उसमें बेशक यह मज़मून नहीं पाया जाता, और यही मज़मून क्या! वह तो मौत के बाद की ज़िन्दगी और हिसाब के दिन और आख़िरत में इनाम व सज़ा के तसव्वुर ही से ख़ाली है। हालाँकि यह अक़ीदा (धारणा) हमेशा से दीने-हक़ का लाजिमी हिस्सा रहा है। लेकिन मौजूदा तौरात में इस मज़मून के न पाए जाने से यह नतीजा निकालना ठीक नहीं है कि वाक़ई में तौरात इससे ख़ाली थी। हक़ीक़त यह है कि यहूद अपने गिरावट के ज़माने में कुछ ऐसे माद्दापरस्त और दुनिया की ख़ुशहाली के भूखे हो गए थे कि उनके नज़दीक नेमत और इनाम के कोई मानी इसके सिवा न रहे थे कि वह इसी दुनिया में हासिल हो। इसी लिए अल्लाह की किताब में बन्दगी और इताअत के बदले जिन-जिन इनामों के वादे उनसे किए गए थे उन सबको वे दुनिया ही में उतार लाए और जन्नत की हर तारीफ़ को उन्होंने फ़िलस्तीन की सरज़मीन पर चस्पाँ कर दिया जिसके वे उम्मीदवार थे। मिसाल के तौर पर तौरात में बहुत-सी जगहों पर हमको यह बात मिलती है–

"सुन ऐ इसराईल! ख़ुदावन्द हमारा ख़ुदा एक ही ख़ुदावन्द है। तू अपने सारे दिल और अपनी सारी जान और अपनी सारी ताक़त से ख़ुदावन्द, अपने ख़ुदा से मुहब्बत कर।" (व्यवस्थाविवरण 6:4,5)

और यह कि–

"क्या वह तुम्हारा बाप नहीं जिसने तुमको ख़रीदा है? उसी ने तुमको बनाया और क़ियाम बख़्शा।" (व्यवस्थाविवरण 32:6)

लेकिन अल्लाह के इस ताल्लुक़ का जो बदला बयान हुआ है वह यह है कि तुम उस मुल्क के मालिक हो जाओगे जिसमें दूध और शहद बहता है, यानी फ़िलस्तीन। इसकी असल वजह यह है कि तौरात जिस सूरत में इस वक़्त पाई जाती है अव्वल तो वह पूरी नहीं है और फिर उसके

فَاسْتَبْشِرُوْا بِبَيْعِكُمُ الَّذِيْ بَايَعْتُمْ بِهٖ ۭ وَذٰلِكَ هُوَ الْفَوْزُ الْعَظِيْمُ ﴿١١١﴾
اَلتَّاۗىِٕبُوْنَ الْعٰبِدُوْنَ الْحٰمِدُوْنَ السَّاۗىِٕحُوْنَ الرّٰكِعُوْنَ السّٰجِدُوْنَ

करनेवाला हो? तो ख़ुशियाँ मनाओ अपने इस सौदे पर जो तुमने अल्लाह से चुका लिया है, यही सबसे बड़ी कामयाबी है। (112) अल्लाह की तरफ़ बार-बार पलटनेवाले[108], उसकी बन्दगी बजा लानेवाले, उसकी तारीफ़ के गुण गानेवाले, उसके लिए ज़मीन में

अन्दर सिर्फ़ ख़ालिस कलामे-इलाही ही नहीं है बल्कि इसमें बहुत-सा तफ़सीरी कलाम ख़ुदा के कलाम के साथ-साथ शामिल कर दिया गया है। इसके अन्दर यहूदियों की क़ौमी रिवायतें, उनके नस्ली पूर्वाग्रहों, उनके अन्ध-विश्वास, उनकी आरज़ुओं और तमन्नाओं, उनकी ग़लतफ़हमियों और उनके फ़िक़ही इज्तिहादों का एक अच्छा-ख़ासा हिस्सा एक ही सिलसिला-ए-इबारत में कलामे-इलाही के साथ कुछ इस तरह रल-मिल गया है कि ज़्यादातर जगहों पर असल कलाम को उन ज़ायद बातों से छाँटकर अलग करना बिलकुल नामुमकिन हो जाता है। (देखें— सूरा-3 आले-इमरान, टिप्पणी-2)

108. मूल अरबी में लफ़्ज़ 'अत-ताइबून' इस्तेमाल हुआ है जिसका लफ़्ज़ी तर्जमा 'तौबा करनेवाले' है। लेकिन जिस अंदाज़ में यह लफ़्ज़ इस्तेमाल किया गया है उससे साफ़ ज़ाहिर है कि तौबा करना ईमानवालों की मुस्तक़िल सिफ़ात में से है, इसलिए इसका सही मतलब यह है कि वे एक ही बार तौबा नहीं करते, बल्कि हमेशा तौबा करते रहते हैं। और तौबा के असल मानी रुजू करने या पलटने के हैं, इसलिए इस लफ़्ज़ की हक़ीक़ी रूह ज़ाहिर करने के लिए हमने इसका तशरीही तर्जमा इस तरह किया है कि "वे अल्लाह की तरफ़ बार-बार पलटते हैं।" ईमानवाला हालाँकि अपने पूरे शुऊर और इरादे के साथ अल्लाह से अपनी जान और माल के ख़रीदने-बेचने का मामला तय करता है, लेकिन चूँकि ज़ाहिर हाल के लिहाज़ से महसूस यही होता है कि जान उसकी अपनी है और माल उसका अपना है, और यह बात कि इस जान और माल का असल मालिक अल्लाह है एक महसूस बात नहीं, बल्कि सिर्फ़ एक माक़ूल और मुनासिब बात है इसलिए ईमानवाले की ज़िन्दगी में बार-बार ऐसे मौक़े आते रहते हैं, जबकि वह वक़्ती तौर पर अल्लाह के साथ अपने ख़रीदने-बेचने के मामले को भूल जाता है और उससे ग़ाफ़िल होकर कोई ख़ुद-मुख़्ताराना रवैया इख़्तियार कर बैठता है। मगर एक सच्चे ईमानवाले की ख़ूबी यह है कि जब भी उसकी यह वक़्ती भूल दूर होती है और वह अपनी ग़फ़लत से चौंकता है और उसको यह महसूस हो जाता है कि ग़ैर-शुऊरी तौर पर वह अपने अहद की ख़िलाफ़वर्ज़ी कर गुज़रा है, तो उसे शर्मिन्दगी होती है। शर्मिन्दगी के साथ वह अपने ख़ुदा की तरफ़ पलटता है, माफ़ी माँगता है और अपने अहद को फिर से ताज़ा कर लेता है। यही बार-बार की तौबा और यही रह-रहकर अल्लाह की तरफ़ पलटना और हर ग़लती के बाद वफ़ादारी की राह पर वापस आना ही इस बात की ज़मानत है कि आदमी का ईमान दाइमी और मज़बूत है। वरना इनसान जिन

الْاٰمِرُوْنَ بِالْمَعْرُوْفِ وَالنَّاهُوْنَ عَنِ الْمُنْكَرِ وَالْحٰفِظُوْنَ لِحُدُوْدِ اللّٰهِ

गर्दिश करने (घूमने-फिरने) वाले[109], उसके आगे झुकने और सजदे करनेवाले, नेकी का हुक्म देनेवाले, बदी से रोकनेवाले और अल्लाह की हदों की हिफ़ाज़त करनेवाले[110], (इस

इनसानी कमज़ोरियों के साथ पैदा किया गया है, उनकी मौजूदगी में तो यह बात इसके बस में नहीं है कि ख़ुदा के हाथ एक बार जान और माल बेच देने के बाद हमेशा कामिल शुऊरी हालत में वह इस ख़रीद-बिक्री के तक़ाज़ों को पूरा करता रहे और किसी वक़्त भी ग़फ़लत और भूल इस पर तारी न होने पाए। इसी लिए अल्लाह ईमानवाले की तारीफ़ में यह नहीं फ़रमाता कि वह बन्दगी की राह पर आकर कभी उससे फिसलता ही नहीं, बल्कि उसकी तारीफ़ के क़ाबिल ख़ूबी यह क़रार देता है कि वह फिसल-फिसलकर बार-बार उसी राह की तरफ़ आता है, और यही वह बड़ी-से-बड़ी ख़ूबी है जिसपर इनसान क़ुदरत रखता है।

फिर इस मौक़े पर ईमानवालों की ख़ूबियों में सबसे पहले तौबा का ज़िक्र करने की एक और मसलिहत भी है। ऊपर से बात का जो सिलसिला चला आ रहा है उसमें ख़िताब उन लोगों से है जिनसे ईमान के ख़िलाफ़ काम हो रहे थे। इसलिए उनको ईमान की हक़ीक़त और उसका बुनियादी तक़ाज़ा बताने के बाद अब यह ताकीद की जा रही है कि ईमान लानेवालों में लाज़िमी तौर पर जो ख़ूबियाँ होनी चाहिएँ उनमें से सबसे पहली ख़ूबी यह है कि जब भी उनका क़दम बन्दगी की राह से फिसल जाए वे फ़ौरन उसकी तरफ़ पलट आएँ, न यह कि अपने फिसलने पर जमे रहें और ज़्यादा दूर निकलते चले जाएँ।

109. अस्ल अरबी में लफ़्ज़ 'अस-साइहून' इस्तेमाल हुआ है जिसका मतलब क़ुरआन के कुछ आलिमों ने रोज़ा रखनेवाले बताया है। लेकिन 'सयाहत' के मानी रोज़ा मजाज़ी (लाक्षणिक) मानी हैं। अस्ल लुग़त (शब्दकोश) में इसके ये मानी नहीं हैं। और जिस हदीस में यह बयान किया गया है कि नबी (सल्ल॰) ने ख़ुद इस लफ़्ज़ के ये मानी बताए हैं, इस हदीस को नबी (सल्ल॰) से जोड़ना ठीक नहीं है। इसलिए हम इसको अस्ल लुग़वी मानी (शाब्दिक अर्थ) ही में लेना ज़्यादा सही समझते हैं। फिर जिस तरह क़ुरआन में बहुत-से मौक़ों पर ख़ाली इनफ़ाक़ का लफ़्ज़ इस्तेमाल हुआ है, जिसके मानी ख़र्च करने के हैं और मुराद उससे अल्लाह की राह में ख़र्च करना है, उसी तरह यहाँ भी सयाहत से मुराद सिर्फ़ घूमना-फिरना नहीं है, बल्कि ऐसे मक़सदों के लिए ज़मीन में घूमना-फिरना है जो पाक और बुलन्द हों और जिनमें अल्लाह की ख़ुशी चाही गई हो। जैसे दीन को क़ायम करने के लिए जिहाद, जो इलाक़े कुफ़्र की चपेट में आ गए हैं वहाँ से हिजरत, दीन की दावत, लोगों की इस्लाह व सुधार, सही और नेक इल्म की तलब, कायनात में फैली अल्लाह की निशानियों को देखना और उनपर ग़ौर करना और हलाल रिज़्क़ की तलाश। इस सिफ़त को यहाँ ईमानवालों की सिफ़ात में ख़ास तौर पर इसलिए बयान किया गया है कि जो लोग ईमान का दावा करने के बावजूद जिहाद की पुकार पर घरों से नहीं निकलते थे, उनको यह बताया जाए कि सच्चा ईमानवाला ईमान का दावा करके अपनी जगह

وَبَشِّرِ الْمُؤْمِنِيْنَ ﴿١١٢﴾ مَا كَانَ لِلنَّبِيِّ وَالَّذِيْنَ اٰمَنُوْٓا اَنْ يَّسْتَغْفِرُوْا
لِلْمُشْرِكِيْنَ وَلَوْ كَانُوْٓا اُولِيْ قُرْبٰى مِنْۢ بَعْدِ مَا تَبَيَّنَ لَهُمْ اَنَّهُمْ اَصْحٰبُ
الْجَحِيْمِ ﴿١١٣﴾ وَمَا كَانَ اسْتِغْفَارُ اِبْرٰهِيْمَ لِاَبِيْهِ اِلَّا عَنْ مَّوْعِدَةٍ وَّعَدَهَآ

शान के होते हैं वे ईमानवाले जो अल्लाह से ख़रीदने-बेचने का यह मामला तय करते हैं) और ऐ नबी! इन ईमानवालों को ख़ुशख़बरी दे दो।

(113) नबी को और उन लोगों को जो ईमान लाए हैं, उनके लिए मुनासिब नहीं कि मुशरिकों के लिए माफ़ी की दुआ करें, चाहे वे उनके रिश्तेदार ही क्यों न हों, जबकि उनपर यह बात खुल चुकी है कि वे जहन्नम के हक़दार हैं।[111] (114) इबराहीम ने अपने बाप के लिए जो माफ़ी की दुआ की थी वह तो इस वादे की वजह से थी जो उसने

चैन से बैठा नहीं रह जाता, बल्कि वह ख़ुदा के दीन को क़बूल करने के बाद उसका बोलबाला करने के लिए उठ खड़ा होता है और उसके तक़ाज़े पूरे करने के लिए दुनिया में दौड़-धूप और कोशिश करता फिरता है।

110. यानी अल्लाह ने अक़ीदों, इबादतों, अख़लाक़, रहन-सहन, तमद्दुन, (सभ्यता) मईशत, (आर्थिक मामलों) सियासत, अदालत और सुलह व जंग के मामलों में जो हदें मुक़र्रर कर दी हैं वे उनका पूरी पाबन्दी के साथ लिहाज़ रखते हैं, अपने इनफ़िरादी और इजतिमाई अमल को उन्हीं हदों के अन्दर महदूद रखते हैं, और कभी उनसे आगे बढ़कर न तो मनमानी कार्यवाइयाँ करने लगते हैं और न ख़ुदाई क़ानूनों के बजाए ख़ुद के बनाए हुए क़ानूनों या इनसानी बनावट के दूसरे क़ानूनों को अपनी ज़िन्दगी का नियम और ज़ाबिता बनाते हैं। इसके अलावा ख़ुदा की हदों की हिफ़ाज़त में यह मतलब भी शामिल है कि इन हदों को क़ायम किया जाए और इन्हें टूटने न दिया जाए। इसलिए सच्चे ईमानवालों की तारीफ़ सिर्फ़ इतनी ही नहीं है कि वे ख़ुद अल्लाह की हदों की पाबन्दी करते हैं, बल्कि इससे बढ़कर उनकी यह सिफ़त भी है कि वे दुनिया में अल्लाह की मुक़र्रर की हुई हदों को क़ायम करने की कोशिश करते हैं, उनकी निगहबानी करते हैं और अपना पूरा ज़ोर इसी कोशिश में लगा देते हैं कि ये हदें टूटने न पाएँ।

111. किसी शख़्स के लिए माफ़ी की दरख़ास्त लाज़िमी तौर पर यह मानी रखती है कि पहले तो हम उसके साथ हमदर्दी और मुहब्बत रखते हैं। दूसरे यह कि हम उसके क़ुसूर को माफ़ी के क़ाबिल समझते हैं। ये दोनों बातें उस शख़्स के मामले में तो ठीक हैं, जो वफ़ादारों की लिस्ट में शामिल हो और सिर्फ़ गुनाहगार हो। लेकिन जो शख़्स खुला हुआ बाग़ी हो उसके साथ हमदर्दी और मुहब्बत रखना और उसके जुर्म को माफ़ी के क़ाबिल समझना न सिर्फ़ यह कि उसूली तौर पर ग़लत है, बल्कि इससे ख़ुद हमारी अपनी वफ़ादारी शक के घेरे में आ जाती है। और अगर

إِيَّاهُ ۚ فَلَمَّا تَبَيَّنَ لَهُ أَنَّهُ عَدُوٌّ لِّلَّهِ تَبَرَّأَ مِنْهُ ۚ إِنَّ إِبْرَاهِيمَ لَأَوَّاهٌ حَلِيمٌ ﴿١١٤﴾

अपने बाप से किया था[112], मगर जब उसपर यह बात खुल गई कि उसका बाप अल्लाह का दुश्मन है तो वह उससे बेज़ार हो गया। हक़ यह है कि इबराहीम बड़ा नर्म दिलवाला और अल्लाह से डरनेवाला और बरदाश्त करनेवाला आदमी था।[113]

हम सिर्फ़ इस बुनियाद पर कि वह हमारा रिश्तेदार है, यह चाहें कि उसे माफ़ कर दिया जाए, तो इसके मानी ये हैं कि हमारे नज़दीक रिश्तेदारी का ताल्लुक़ ख़ुदा की वफ़ादारी के तक़ाज़ों के मुक़ाबले में ज़्यादा क़ीमती है, और यह कि ख़ुदा और उसके दीन के साथ हमारी मुहब्बत बेलाग नहीं है, और यह कि जो लाग हमने ख़ुदा के बाग़ियों के साथ लगा रखी है हम चाहते हैं कि ख़ुदा ख़ुद भी इसी लाग को क़बूल कर ले और हमारे रिश्तेदार को तो ज़रूर बख़्श दे, चाहे इसी जुर्म को करनेवाले दूसरे मुजरिमों को जहन्नम में झोंक दे। ये तमाम बातें ग़लत हैं, इख़लास और वफ़ादारी के ख़िलाफ़ हैं और उस ईमान के मनाफ़ी हैं, जिसका तक़ाज़ा यह है कि ख़ुदा और उसके दीन के साथ हमारी मुहब्बत बिलकुल बेलाग हो, ख़ुदा का दोस्त हमारा दोस्त हो और उसका दुश्मन हमारा दुश्मन। इसी बिना पर अल्लाह ने यह नहीं फ़रमाया कि "मुशरिकों के लिए मग़फ़िरत की दुआ न करो।" बल्कि यूँ फ़रमाया है कि "तुम्हारे लिए यह मुनासिब नहीं है कि तुम इनके लिए मग़फ़िरत की दुआ करो।" यानी हमारे मना करने से अगर तुम बाज़ रहे तो कुछ बात नहीं, तुम में तो ख़ुद वफ़ादारी का एहसास इतना तेज़ होना चाहिए कि जो हमारा बाग़ी है उसके साथ हमदर्दी रखना और उसके जुर्म को माफ़ी के क़ाबिल समझना तुमको अपने लिए नामुनासिब महसूस हो।

यहाँ इतना और समझ लेना चाहिए कि ख़ुदा के बाग़ियों के साथ जिस हमदर्दी से रोका गया है वह सिर्फ़ वह हमदर्दी है जो दीन के मामले में दख़लअन्दाज़ होती हो। रही इनसानी हमदर्दी और दुनियावी ताल्लुक़ात में रिश्ते-नातों का ख़याल रखना, आपसी हमदर्दी और मदद और मुहब्बत और प्यार का बरताव तो इसके लिए कोई रोक-टोक नहीं है, बल्कि यह तो पसन्दीदा है। रिश्तेदार चाहे ग़ैर-मुस्लिम हों या ईमानवाले, उसके दुनियावी हुक़ूक़ ज़रूर अदा किए जाएँगे। मुसीबत के मारे इनसान की बहरहाल मदद की जाएगी। ज़रूरतमन्द आदमी को हर सूरत में सहारा दिया जाएगा। बीमार और ज़ख़्मी के साथ हमदर्दी में कोई कसर उठा न रखी जाएगी। यतीम के सिर पर यक़ीनन मुहब्बत का हाथ रखा जाएगा। ऐसे मामलों में हरगिज़ यह फ़र्क़ नहीं किया जाएगा कि कौन मुस्लिम है और कौन ग़ैरमुस्लिम।

112. इशारा है उस बात की तरफ़ जो अपने मुशरिक बाप से ताल्लुक़ात ख़त्म करते हुए हज़रत इबराहीम नें कही थी कि—

"आपको सलाम है, मैं आपके लिए अपने रब से दुआ करूँगा कि आपको माफ़ कर दे, वह मेरे ऊपर बहुत ही मेहरबान है।" (क़ुरआन, सूरा-19 मरयम, आयत-47)

"मैं आपके लिए माफ़ी ज़रूर चाहूँगा, और मेरे इख़्तियार में कुछ नहीं है कि आपको अल्लाह की

وَمَا كَانَ اللّٰهُ لِيُضِلَّ قَوْمًا بَعْدَ اِذْ هَدٰىهُمْ حَتّٰى يُبَيِّنَ لَهُمْ مَّا
يَتَّقُوْنَ ۭ اِنَّ اللّٰهَ بِكُلِّ شَيْءٍ عَلِيْمٌ ﴿١١٥﴾ اِنَّ اللّٰهَ لَهٗ مُلْكُ السَّمٰوٰتِ

(115) अल्लाह का यह तरीक़ा नहीं है कि लोगों को हिदायत देने के बाद फिर गुमराही में डाल दे जब तक कि उन्हें साफ़-साफ़ बता न दे कि उन्हें किन चीज़ों से बचना चाहिए।[114] हक़ीक़त में अल्लाह हर चीज़ का इल्म रखता है। (116) और यह भी

पकड़ से बचवा लूँ।" (क़ुरआन, सूरा-60 मुम्तहिना, आयत-4)
चुनाँचे इसी वादे की बुनियाद पर हज़रत इबराहीम ने अपने बाप के लिए यह दुआ माँगी थी कि—"और मेरे बाप को माफ़ कर दे, बेशक वह गुमराह लोगों में से था, और उस दिन मुझे रुस्वा न कर जबकि सब इनसान उठाए जाएँगे, जबकि न माल किसी के कुछ काम आएगा न औलाद, नजात सिर्फ़ वह पाएगा जो अपने ख़ुदा के सामने बग़ावत से पाक दिल लेकर हाज़िर हुआ हो।" (क़ुरआन, सूरा-26 शुअरा, आयत-86-89)
यह दुआ अव्वल तो खुद बहुत ही एहतियात के साथ की गई थी। मगर इसके बाद जब हज़रत इबराहीम की नज़र उस तरफ़ गई कि मैं जिस शख़्स के लिए दुआ कर रहा हूँ वह तो ख़ुदा का खुल्लम-खुल्ला बाग़ी था और उसके दीन से सख़्त दुश्मनी रखता था, तो वे उससे भी रुक गए और एक सच्चे वफ़ादार ईमानवाले की तरह उन्होंने बाग़ी की हमदर्दी से साफ़-साफ़ अपने को अलग कर लिया, हालाँकि वह बाग़ी उनका बाप था जिसने कभी मुहब्बत से उनको पाला-पोसा था।

113. असल अरबी में 'अव्वाहुन' और 'हलीमुन' के लफ़्ज़ इस्तेमाल हुए हैं। अव्वाहुन के मानी हैं बहुत आहें भरनेवाला, आँसू बहानेवाला, डरनेवाला, हसरत करनेवाला। और हलीम उस शख़्स को कहते हैं जो अपने मिज़ाज पर क़ाबू रखता हो, न ग़ुस्से और दुश्मनी और मुख़ालिफ़त में आपे से बाहर हो, न मुहब्बत और दोस्ती और ताल्लुक़ जोड़ने में एतिदाल की हद से आगे बढ़ जाए। ये दोनों लफ़्ज़ इस जगह पर दोहरे मानी दे रहे हैं। हज़रत इबराहीम ने अपने बाप के लिए मग़फ़िरत की दुआ की; क्योंकि वे बहुत ही नर्मदिल आदमी थे, इस ख़याल से काँप उठे थे कि मेरा यह बाप जहन्नम का ईंधन बन जाएगा। और हलीम थे, उस ज़ुल्म और सितम के बावजूद जो उनके बाप ने इस्लाम से उनको रोकने के लिए उन पर ढाया था, उनकी ज़बान उसके हक़ में दुआ ही के लिए खुली। फिर उन्होंने यह देखकर कि उनका बाप ख़ुदा का दुश्मन है उससे अलग हो गए; क्योंकि वे ख़ुदा से डरनेवाले इनसान थे और किसी की मुहब्बत में हद से बढ़ जानेवाले न थे।

114. यानी अल्लाह पहले यह बता देता है कि लोगों को किन ख़यालों, किन कामों और किन तरीक़ों से बचना चाहिए। फिर जब वे बाज़ नहीं आते और ग़लत सोचने और ग़लत करने ही पर अड़े रहते हैं तो अल्लाह भी उनकी हिदायत और रहनुमाई से हाथ खींच लेता है और उसी

وَالْاَرْضِ ۭ يُحْيٖ وَيُمِيْتُ ۭ وَمَا لَكُمْ مِّنْ دُوْنِ اللّٰهِ مِنْ وَّلِيٍّ وَّلَا
نَصِيْرٍ ۝١١٦ لَقَدْ تَّابَ اللّٰهُ عَلَى النَّبِيِّ وَالْمُهٰجِرِيْنَ وَالْاَنْصَارِ الَّذِيْنَ
اتَّبَعُوْهُ فِيْ سَاعَةِ الْعُسْرَةِ مِنْۢ بَعْدِ مَا كَادَ يَزِيْغُ قُلُوْبُ فَرِيْقٍ مِّنْهُمْ

सच है कि अल्लाह ही के क़ब्ज़े में आसमानों और ज़मीन की सल्तनत है, उसी के इख़्तियार में ज़िन्दगी और मौत है, और तुम्हारा कोई हिमायती व मददगार ऐसा नहीं है जो तुम्हें उससे बचा सके।

(117) अल्लाह ने माफ़ कर दिया नबी को और उन मुहाजिरीन और अनसार को जिन्होंने बड़ी तंगी के वक़्त में नबी का साथ दिया[115] हालाँकि इनमें से कुछ लोगों के दिल टेढ़ की तरफ़ झुक चले थे[116], (मगर जब वे इस टेढ़ के पीछे न चले, बल्कि नबी

ग़लत राह पर उन्हें धकेल देता है, जिस पर वे ख़ुद जाना चाहते हैं।

ख़ुदा का यह फ़रमान एक ऐसा बुनियादी उसूल बयान करता है जिससे क़ुरआन की वे तमाम जगहें अच्छी तरह समझी जा सकती हैं जहाँ हिदायत देने और गुमराह करने के काम को अल्लाह ने अपने से जोड़ा है। ख़ुदा का हिदायत देना यह है कि वह सोचने और अमल का सही तरीक़ा अपने नबियों और अपनी किताबों के ज़रिए से लोगों के सामने वाज़ेह तौर पर पेश कर देता है, फिर जो लोग इस तरीक़े पर ख़ुद चलने के लिए आमादा हों उन्हें उसका मौक़ा बख़्शता है। और ख़ुदा का गुमराही में डालना यह है कि जो सोचने और काम करने का सही तरीक़ा उसने बता दिया है अगर उसके ख़िलाफ़ चलने ही पर कोई अड़ा रहे और सीधा न चलना चाहे तो ख़ुदा उसको ज़बरदस्ती सही रास्ते को देखनेवाला और सही रास्ते पर चलनेवाला नहीं बनाता, बल्कि जिधर वह ख़ुद जाना चाहता है उसी तरफ़ उसको जाने का मौक़ा दे देता है।

बात का जो ख़ास सिलसिल चला आ रहा है उसमें यह बात जिस ताल्लुक़ से बयान हुई है वह पिछली तक़रीर और बाद की तक़रीर पर ग़ौर करने से आसानी के साथ समझ में आ सकती है। यह एक तरह का ख़बरदार करना है जो बहुत ही मुनासिब तरीक़े से पिछले बयान का ख़ातिमा भी ठहराया जा सकता है और आगे जो बयान आ रहा है उसकी शुरुआत भी।

115. यानी तबूक की मुहिम के सिलसिले में जो छोटी-छोटी ग़लतियाँ नबी (सल्ल.) और आप के सहाबा से हुईं उन सबको अल्लाह ने उनकी बड़ी-बड़ी ख़िदमतों का लिहाज़ करते हुए माफ़ कर दिया। नबी (सल्ल.) से जो चूक हुई थी उसका ज़िक्र आयत-43 में गुज़र चुका है, यानी यह कि जिन लोगों ने ताक़त रखने के बावजूद जंग से पीछे रह जाने की इजाज़त माँगी थी, उनको आप (सल्ल.) ने इजाज़त दे दी थी।

116. यानी कुछ सच्चे सहाबा भी इस सख़्त वक़्त में जंग पर जाने से किसी-न-किसी हद तक जी

ثُمَّ تَابَ عَلَيْهِمْ ۚ إِنَّهُ بِهِمْ رَءُوفٌ رَّحِيمٌ ﴿١١٧﴾ وَعَلَى الثَّلَاثَةِ الَّذِينَ
خُلِّفُوا حَتَّىٰ إِذَا ضَاقَتْ عَلَيْهِمُ الْأَرْضُ بِمَا رَحُبَتْ وَضَاقَتْ
عَلَيْهِمْ أَنفُسُهُمْ وَظَنُّوا أَن لَّا مَلْجَأَ مِنَ اللَّهِ إِلَّا إِلَيْهِ ثُمَّ تَابَ
عَلَيْهِمْ لِيَتُوبُوا ۚ إِنَّ اللَّهَ هُوَ التَّوَّابُ الرَّحِيمُ ﴿١١٨﴾ ع

का साथ ही दिया तो) अल्लाह ने उन्हें माफ़ कर दिया।[117] बेशक उसका मामला इन लोगों के साथ मुहब्बत और मेहरबानी का है (118) और उन तीनों को भी उसने माफ़ किया जिनके मामले को टाल दिया गया था।[118] जब ज़मीन अपने सारे फैलाव के बावजूद उनपर तंग हो गई और उनकी जानें भी उनपर बोझ होने लगीं और उन्होंने जान लिया कि अल्लाह से बचने के लिए कोई पनाहगाह ख़ुद अल्लाह ही की रहमत के दामन के सिवा नहीं है, तो अल्लाह अपनी मेहरबानी से उनकी तरफ़ पलटा, ताकि वे उसकी तरफ़ पलट आएँ यक़ीनन वह बड़ा माफ़ करनेवाला और रहम करनेवाला है।[119]

चुराने लगे थे, मगर चूँकि उनके दिलों में ईमान था और वे सच्चे दिल से दीने-हक़ के साथ मुहब्बत रखते थे, इसलिए आख़िरकार उन्होंने अपनी इस कमज़ोरी पर क़ाबू पा लिया।

117. यानी अब अल्लाह इस बात पर उनकी पकड़ न करेगा कि उनके दिलों में टेढ़ की तरफ़ यह झुकाव क्यों पैदा हुआ था, इसलिए कि अल्लाह उस कमज़ोरी पर पकड़ नहीं करता जिसे इनसान ने ख़ुद सुधार लिया हो।

118. नबी (सल्ल.) जब तबूक से मदीना वापस आए तो वे लोग मजबूरी बयान करने के लिए हाज़िर हुए जो पीछे रह गए थे। उनमें 80 से कुछ ज़्यादा मुनाफ़िक़ थे और तीन सच्चे ईमानवाले भी थे। मुनाफ़िक़ झूठे बहाने पेश करते गए और नबी (सल्ल.) उनकी मजबूरी क़बूल करते चले गए। फिर इन तीनों की बारी आई और इन्होंने साफ़-साफ़ अपनी ग़लतियों को मान लिया। नबी (सल्ल.) ने इन तीनों के मामले में फ़ैसले को आगे के लिए टाल दिया और आम मुसलमानों को हुक्म दे दिया कि जब तक अल्लाह का हुक्म न आए इनसे किसी तरह का समाजी ताल्लुक़ न रखा जाए। इसी मामले का फ़ैसला करने के लिए यह आयत नाज़िल हुई। (यहाँ यह बात सामने रहे कि इन तीन सहाबियों का मामला उन सात सहाबियों से अलग है जिनका ज़िक्र हाशिया-99 में गुज़र चुका है। उन्होंने पूछताछ से पहले ख़ुद अपने आपको सज़ा दे ली थी।)

119. ये तीनों सहाबी कअ्ब-बिन-मालिक, हिलाल-बिन-उमैया और मुरारह-बिन-रुबैअ थे। जैसा कि ऊपर हम बयान कर चुके हैं तीनों सच्चे मोमिन थे। इससे पहले अपने इख़लास का बहुत बार

सुबूत दे चुके थे। क़ुरबानियाँ कर चुके थे। आख़िर के दो सहाबी तो बद्र की लड़ाई में शरीक होनेवालों में से थे, जिनका सच्चा ईमान हर शक और शुब्हे से परे था। और पहले सहाबी हालाँकि बद्र की लड़ाई में शरीक नहीं थे, लेकिन बद्र के सिवा हर लड़ाई में नबी (सल्ल॰) के साथ रहे। इन ख़िदमात के बावजूद जो सुस्ती इस नाज़ुक मौक़े पर, जबकि तमाम जंग के क़ाबिल ईमानवालों को जंग के लिए निकल आने का हुक्म दिया गया था, इन लोगों ने दिखाई उसपर सख़्त पकड़ की गई। नबी (सल्ल॰) ने तबूक से वापस आकर मुसलमानों को हुक्म दे दिया कि कोई इनसे सलाम-कलाम न करे। 40 दिन के बाद उनकी बीवियों को भी उनसे अलग रहने की ताकीद कर दी गई। सच तो यह है कि मदीना की बस्ती में उनकी वही हालत हो गई थी, जिसकी तस्वीर इस आयत में खींची गई है। आख़िरकार जब इनके बॉइकाट को पचास (50) दिन हो गए तब माफ़ी का यह हुक्म नाज़िल हुआ।

इन तीनों सहाबियों में से हज़रत कअ्ब-बिन-मालिक ने अपना क़िस्सा बहुत तफ़सील के साथ बयान किया है जो बहुत ही सबक़आमोज़ (शिक्षाप्रद) है। अपने बुढ़ापे के ज़माने में जबकि वे नाबीना (नेत्रहीन) हो चुके थे, उन्होंने अपने बेटे अब्दुल्लाह से जो उनका हाथ पकड़कर उन्हें चलाया करते थे, यह क़िस्सा ख़ुद बयान किया—

"तबूक की मुहिम की तैयारी के ज़माने में नबी (सल्ल॰) जब कभी मुसलमानों से जंग में शिरकत की अपील करते थे, मैं अपने दिल में इरादा कर लेता था कि चलने की तैयारी करूँगा, मगर फिर वापस आकर सुस्ती कर जाता था और कहता था कि अभी क्या है, जब चलने का वक़्त आएगा तो तैयार होते क्या देर लगती है। इसी तरह बात टलती रही, यहाँ तक कि लश्कर की रवानगी का वक़्त आ गया और मैं तैयार न था। मैंने दिल में कहा कि लश्कर को चलने दो, मैं एक-दो दिन बाद रास्ते ही में उससे जा मिलूँगा। मगर फिर वही सुस्ती रुकावट बनी, यहाँ तक कि वक़्त निकल गया।

उस ज़माने में जबकि मैं मदीना में रहा मेरा दिल यह देख-देखकर बेहद कुढ़ता था कि मैं पीछे जिन लोगों के साथ रह गया हूँ वे या तो मुनाफ़िक़ हैं या वे बूढ़े और मजबूर लोग जिनको अल्लाह ने कमज़ोर और बेबस रखा है।

जब नबी (सल्ल॰) तबूक से वापस आ गए तो मामूल के मुताबिक़ आप (सल्ल॰) ने पहले मस्जिद आकर दो रकअत नमाज़ पढ़ी, फिर लोगों से मुलाक़ात के लिए बैठे। इस मजलिस में मुनाफ़िक़ों ने आ-आकर झूठे बहाने लम्बी-चौड़ी क़समों के साथ पेश करने शुरू किए। ये 80 से ज़्यादा आदमी थे। नबी (सल्ल॰) ने उनमें से एक-एक की बनावटी बातें सुनीं। उनके ज़ाहिरी बहानों को क़बूल कर लिया और उनके बातिन (अन्दरून) को ख़ुदा पर छोड़कर फ़रमाया, ख़ुदा तुम्हें माफ़ करे। फिर मेरी बारी आई। मैंने आगे बढ़कर सलाम किया। आप मेरी तरफ़ देखकर मुस्कुराए और फ़रमाया, "तशरीफ़ लाइए! आपको किस चीज़ ने रोका था?" मैंने कहा कि "ख़ुदा की क़सम, अगर मैं दुनियावालों में से किसी के सामने हाज़िर हुआ होता तो ज़रूर कोई न कोई बात बनाकर उसको राज़ी करने की कोशिश करता, बातें बनानी तो मुझे भी आती हैं, मगर मैं आपके बारे में यक़ीन रखता हूँ कि अगर इस वक़्त कोई झूठा बहाना पेश करके मैंने आपको राज़ी कर भी लिया तो अल्लाह ज़रूर आपको मुझसे फिर नाराज़ कर देगा। अलबत्ता

अगर सच कहूँ तो चाहे आप नाराज़ ही क्यों न हों, मुझे उम्मीद है कि अल्लाह मेरे लिए माफ़ी की कोई सूरत पैदा फ़रमा देगा। सच्ची बात यह है कि मेरे पास कोई बहाना नहीं है जिसे पेश कर सकूँ, मैं जाने पर पूरी क़ुदरत रखता था।" इसपर नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया, "यह शख़्स है जिसने सच्ची बात कही। अच्छा, उठ जाओ और इन्तिज़ार करो यहाँ तक कि अल्लाह तुम्हारे मामले में कोई फ़ैसला करे।" मैं उठा और अपने क़बीले के लोगों में जा बैठा। यहाँ सब-के-सब मेरे पीछे पड़ गए और मुझे बहुत मलामत की कि तूने कोई बहाना क्यों न कर दिया। ये बातें सुनकर मेरा मन भी कुछ आमादा होने लगा कि फिर हाज़िर होकर कोई बात बना दूँ। मगर जब मुझे मालूम हुआ कि दो और नेक आदमियों (मुरारा-बिन-रुबैअ और हिलाल-बिन-उमैया) ने भी वही सच्ची बात कही है जो मैंने कही थी, तो मुझे तसल्ली हो गई और मैं अपनी सच्चाई पर जमा रहा।

उसके बाद नबी (सल्ल.) ने आम हुक्म दे दिया कि हम तीनों आदमियों से कोई बात न करे। वे दोनों तो घर बैठ गए, मगर मैं निकलता था, जमाअत के साथ नमाज़ पढ़ता था, बाज़ारों में चलता-फिरता था और कोई मुझसे बात न करता था। ऐसा मालूम होता था कि यह ज़मीन बिलकुल बदल गई है, मैं यहाँ अजनबी हूँ और इस बस्ती में कोई भी मेरा जानकार नहीं। मस्जिद में नमाज़ के लिए जाता तो आम दिनों की तरह नबी (सल्ल.) को सलाम करता था, मगर बस इन्तिज़ार ही करता रह जाता था कि जवाब के लिए आप (सल्ल.) के होंठ हिलें। नमाज़ में नज़रें चुराकर नबी (सल्ल.) को देखता था कि आप (सल्ल.) की निगाहें मुझपर कैसी पड़ती हैं। मगर वहाँ हाल यह था कि जब तक मैं नमाज़ पढ़ता आप (सल्ल.) मेरी तरफ़ देखते रहते, और जहाँ मैंने सलाम फेरा कि आप (सल्ल.) ने मेरी तरफ़ से नज़र हटाई। एक दिन मैं घबराकर अपने चचेरे भाई और बचपन के दोस्त अबू-क़तादा के पास गया और उनके बाग़ की दीवार पर चढ़कर उन्हें सलाम किया। मगर उस अल्लाह के बन्दे ने सलाम का जवाब तक न दिया। मैंने कहा, "अबू-क़तादा! मैं तुमको ख़ुदा की क़सम देकर पूछता हूँ, क्या मैं ख़ुदा और उसके रसूल से मुहब्बत नहीं रखता?" वे ख़ामोश रहे। मैंने फिर पूछा। वे फिर ख़ामोश रहे। तीसरी बार जब मैंने क़सम देकर यही सवाल किया तो उन्होंने बस इतना कहा कि "अल्लाह और उसका रसूल ही बेहतर जानता है।" इसपर मेरी आँखों से आँसू निकल आए और मैं दीवार से उतर आया। उन्हीं दिनों एक बार मैं बाज़ार से गुज़र रहा था कि शाम के नबतियों में से एक शख़्स मुझे मिला और उसने ग़स्सान के बादशाह का ख़त रेशम में लिपटा हुआ मुझे दिया। मैंने खोल कर पढ़ा तो उसमें लिखा था कि "हमने सुना है तुम्हारे साहिब ने तुमपर सितम तोड़ रखा है, तुम कोई गिरे-पड़े आदमी नहीं हो, न इस लायक़ हो कि तुम्हें खो दिया जाए, हमारे पास आ जाओ, हम तुम्हारी क़द्र करेंगे।" मैंने कहा, यह एक और बला नाज़िल हुई, और उसी वक़्त उस ख़त को चूल्हे में झोंक दिया।

चालीस दिन इस हालत पर गुज़र चुके थे कि नबी (सल्ल.) का आदमी हुक्म लेकर आया कि अपनी बीवी से भी अलग हो जाओ। मैंने पूछा, क्या तलाक़ दे दूँ? जवाब मिला, नहीं, बस अलग रहो। चुनाँचे मैंने अपनी बीवी से कह दिया कि तुम अपने मायके चली जाओ और इन्तिज़ार करो, यहाँ तक कि अल्लाह इस मामले का फ़ैसला कर दे।

पचासवें दिन सुबह की नमाज़ के बाद मैं अपने मकान की छत पर बैठा हुआ था और अपनी जान से बेज़ार हो रहा था कि अचानक किसी शख़्स ने पुकारकर कहा, "मुबारक हो कअ्ब-बिन-मालिक!" मैं यह सुनते ही सजदे में गिर गया और मैंने जान लिया कि मेरी माफ़ी का हुक्म हो गया है। फिर तो फ़ौज-दर-फ़ौज लोग भागे चले आ रहे थे और हर एक-दूसरे से पहले पहुँचकर मुझको मुबारकबाद दे रहा था कि तेरी तौबा क़बूल हो गई। मैं उठा और सीधा मस्जिदे-नबवी की तरफ़ चला। देखा कि नबी (सल्ल॰) का चेहरा ख़ुशी से दमक रहा है। मैंने सलाम किया तो फ़रमाया, "तुझे मुबारक हो, यह दिन तेरी ज़िन्दगी में सबसे बेहतर है।" मैंने पूछा, यह माफ़ी नबी (सल्ल॰) की तरफ़ से है या अल्लाह की तरफ़ से? फ़रमाया, अल्लाह की तरफ़ से, और ये आयतें सुनाईं। मैंने कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल, मेरी तौबा में यह भी शामिल है कि मैं अपना सारा माल अल्लाह के रास्ते में सदक़ा कर दूँ। फ़रमाया कि "कुछ रहने दो कि यह तुम्हारे लिए बेहतर है।" मैंने इस हिदायत के मुताबिक़ अपना ख़ैबर का हिस्सा रख लिया। बाक़ी सब सदक़ा कर दिया। फिर मैंने अल्लाह से अहद किया कि जिस सच्ची बात के कहने के बदले में अल्लाह ने मुझे माफ़ी दी है उसपर तमाम उमर क़ायम रहूँगा, चुनाँचे आज तक मैंने कोई बात जान-बूझकर सच्चाई के ख़िलाफ़ नहीं कही और अल्लाह से उम्मीद रखता हूँ कि आगे भी मुझे इससे बचाएगा।"

यह क़िस्सा अपने अन्दर बहुत-से सबक़ रखता है जो हर ईमानवाले के दिल में नक़्श होने चाहिएँ—

सबसे पहली बात तो इससे यह मालूम हुई कि कुफ़्र और इस्लाम की कशमकश का मामला कितना अहम और कितना नाज़ुक है कि इस कशमकश में कुफ़्र का साथ देना तो बहुत दूर की बात, जो शख़्स इस्लाम का साथ देने में, बदनीयती से भी नहीं नेक नीयती से, तमाम उम्र भी नहीं किसी एक मौक़े ही पर, कोताही बरत जाता है उसकी भी ज़िन्दगी भर की इबादत गुज़ारियाँ और दीनदारियाँ ख़तरे में पड़ जाती हैं, यहाँ तक कि ऐसे बड़े-बड़े इज़्ज़तदार लोग भी गिरफ़्त से नहीं बचते जो बद्र व उहुद और अहज़ाब व हुनैन की सख़्त लड़ाइयों में जाँबाज़ी के जौहर दिखा चुके थे और जिनके इख़लास और ईमान में ज़र्रा बराबर भी शक नहीं था।

दूसरी बात जो इससे कुछ कम अहम नहीं, यह है कि फ़र्ज़ के अदा करने में सुस्ती दिखाना कोई मामूली चीज़ नहीं है बल्कि कई बार सिर्फ़ सुस्ती ही सुस्ती में आदमी कोई ऐसी ग़लती कर जाता है जिसकी गिनती बड़े गुनाहों में होती है, और उस वक़्त यह बात उसे पकड़ से नहीं बचा सकती कि उसने उस ग़लती को बदनीयती से नहीं किया था।

फिर यह क़िस्सा उस समाज की रूह को बड़ी ख़ूबी के साथ हमारे सामने बेनक़ाब करता है जो नबी (सल्ल॰) की अगुवाई में बना था। एक तरफ़ मुनाफ़िक़ हैं जिनकी ग़द्दारियाँ सबपर खुली हुई हैं, मगर उनकी ज़ाहिरी बहानेबाज़ियाँ सुन ली जाती हैं और उनको माफ़ कर दिया जाता है; क्योंकि उनसे ख़ुलूस की उम्मीद ही कब थी कि अब उसके न होने की शिकायत की जाती। दूसरी तरफ़ एक आज़माया हुआ मोमिन है जिसकी जाँनिसारी पर शुब्हे तक की गुंजाइश नहीं, और वह झूठी बातें भी नहीं बनाता, साथ-साथ ग़लतियों को मान लेता है मगर उसपर ग़ज़ब की बारिश बरसा दी जाती है, न इस वजह से कि उसके मोमिन होने में कोई शुब्हा हो गया है,

बल्कि इस वजह से कि मोमिन होकर उसने वह काम क्यों किया जो मुनाफ़िक़ों के करने का था। मतलब यह था कि ज़मीन के नमक तो तुम हो, तुम से भी अगर नमकीनी हासिल न हुई तो फिर और नमक कहाँ से आएगा। फिर मज़े की बात यह है कि इस सारे मामले में लीडर जिस शान से सज़ा देता है और लीडर की पैरवी करनेवाला जिस शान से इस सज़ा को भुगतता है, और पूरी जमाअत जिस शान से इस सज़ा को लागू करती है, उसका हर पहलू बेमिसाल है और यह फ़ैसला करना मुश्किल हो जाता है कि किसकी ज़्यादा तारीफ़ की जाए। लीडर बहुत ही सख़्त सज़ा दे रहा है मगर ग़ुस्से और नफ़रत के साथ नहीं, गहरी मुहब्बत के साथ दे रहा है। बाप की तरह ग़ुस्सैल निगाहों का एक गोशा हर वक़्त यह ख़बर दिए जाता है कि तुझसे दुश्मनी नहीं है, बल्कि तेरी ग़लती पर तेरी ही वजह से दिल दुखा है। तू ठीक हो जाए तो यह सीना तुझे चिमटा लेने के लिए बेचैन है। पैरौ सज़ा की सख़्ती पर तड़प रहा है मगर सिर्फ़ यही नहीं कि उसका क़दम इताअत के रास्ते से एक पल के लिए भी नहीं डगमगाता, और सिर्फ़ यही नहीं कि उसपर ग़ुरूरे-नफ़्स और हमीयते-जाहिलिया (अज्ञानपूर्ण पक्षपात) का कोई दौरा नहीं पड़ता और खुल्लम-खुल्ला तकब्बुर पर उतर आना तो दूर की बात, वह दिल में अपने महबूब लीडर के ख़िलाफ़ कोई शिकायत तक नहीं आने देता, बल्कि इसके बरख़िलाफ़ वह लीडर की मुहब्बत में और ज़्यादा डूब गया है। सज़ा के इन पूरे पचास दिनों में उसकी नज़रें सबसे ज़्यादा बेताबी के साथ जिस चीज़ की तलाश में रहीं वह यह थी कि सरदार की आँखों में थोड़ी-सी भी तवज्जोह बाक़ी है या नहीं जो उसकी उम्मीदों का आख़िरी सहारा है। मानो वह एक सूखे का मारा किसान था जिसकी उम्मीद का सारा सरमाया बस एक ज़रा-सी वह बदली थी जो आसमान के किनारे पर नज़र आती थी। फिर जमाअत को देखिए तो उसके डिसिप्लिन और उसकी नेक अख़लाक़ी स्प्रिट पर इनसान हैरान रह जाता है। डिसिप्लिन का यह हाल कि उधर लीडर की ज़बान से बायकॉट का हुक्म निकला, इधर पूरी जमाअत ने मुजरिम से निगाहें फेर लीं। सबके सामने तो बहुत दूर की बात, तनहाई तक में भी कोई क़रीब-से-क़रीब रिश्तेदार और कोई गहरे-से-गहरा दोस्त भी उससे बात नहीं करता। बीवी तक उससे अलग हो जाती है। ख़ुदा का वास्ता दे-देकर पूछता है कि मेरे ख़ुलूस में तो तुमको शक नहीं है, मगर वे लोग भी जो मुद्दत से इसको सच्चा और मुख़लिस जानते थे, साफ़ कह देते हैं कि हम से नहीं, अल्लाह और उसके रसूल से अपने ख़ुलूस की सनद हासिल करो। दूसरी तरफ़ अख़लाक़ी स्प्रिट इतनी बुलन्द और पाकीज़ा कि एक शख़्स की चढ़ी हुई कमान उतरते ही मुर्दार खानेवालों का कोई गरोह उसका गोश्त नोचने और उसे फाड़ खाने के लिए नहीं लपकता, बल्कि सज़ा के इस पूरे ज़माने में जमाअत का एक-एक आदमी अपने इस सज़ा में गिरफ़्तार भाई की मुसीबत पर रंजीदा और उसको फिर से उठाकर गले लगा लेने के लिए बेताब रहता है और माफ़ी का एलान होते ही लोग दौड़ पड़ते हैं कि जल्दी-से-जल्दी पहुँचकर उससे मिलें और उसे ख़ुशख़बरी पहुँचाएँ। यह नमूना है उस नेक समाज का जिसे क़ुरआन दुनिया में क़ायम करना चाहता है।

इस पसमंज़र (पृष्ठभूमि) में जब हम इस आयत को देखते हैं तो हमपर यह बात वाज़ेह हो जाती है कि इन सहाबियों को अल्लाह के दरबार से जो माफ़ी मिली है और इस माफ़ी के

يَاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوا اتَّقُوا اللّٰهَ وَ كُوْنُوْا مَعَ الصّٰدِقِيْنَ ﴿١١٩﴾ مَا كَانَ
لِاَهْلِ الْمَدِيْنَةِ وَمَنْ حَوْلَهُمْ مِّنَ الْاَعْرَابِ اَنْ يَّتَخَلَّفُوْا عَنْ

(119) ऐ लोगो जो ईमान लाए हो! अल्लाह से डरो और सच्चे लोगों का साथ दो।
(120) मदीना के रहनेवालों और आस-पास के बद्दुओं के लिए यह हरगिज़ मुनासिब न

अन्दाज़े-बयान में जो रहमत और मुहब्बत टपकी पड़ रही है उसकी वजह उनका यह इख़लास है जिसका सुबूत उन्होंने पचास दिन की सख़्त सज़ा के दौरान में दिया था। अगर ग़लती करके वे अकड़ते और अपने लीडर की नाराज़ी का जवाब ग़ुस्से और दुश्मनी से देते और सज़ा मिलने पर उस तरह बिफरते जिस तरह किसी ख़ुदपरस्त इनसान का नफ़्स (मन) का घमंड ज़ख़्म खाकर बिफरा करता है, और बायकॉट के दौरान में उनका रवैया यह होता कि हमें जमाअत से कट जाना गवारा है मगर अपनी ख़ुदी के बुत पर चोट खाना गवारा नहीं है, और अगर यह सज़ा का पूरा ज़माना वे इस दौड़-धूप में गुज़ारते कि जमाअत के अन्दर बददिली फैलाएँ और बददिल लोगों को ढूँढ-ढूँढकर अपने साथ मिलाएँ ताकि एक जत्था तैयार हो, तो माफ़ी कैसी, उन्हें तो यक़ीनी तौर पर जमाअत से काट फेंका जाता और इस सज़ा के बाद उनकी अपनी मुँह माँगी सज़ा उनको यह दी जाती कि जाओ अब अपनी ख़ुदी के बुत ही को पूजते रहो, हक़ के बोलबाला करने की जिद्दोजुहद में हिस्सा लेने की ख़ुशनसीबी अब तुम्हारे नसीब में कभी न आएगी। लेकिन इन तीनों सहाबियों ने इस सख़्त आज़माइश के मौक़े पर यह रास्ता नहीं अपनाया, हालाँकि यह रास्ता भी उनके लिए खुला हुआ था। इसके बरख़िलाफ़ उन्होंने वह रवैया अपनाया जो अभी आप देख आए हैं। इस रवैये को अपनाकर उन्होंने साबित कर दिया कि ख़ुदापरस्ती ने उनके सीने में कोई बुत बाक़ी नहीं छोड़ा है जिसे वे पूजें, और अपनी पूरी शख़्सियत को उन्होंने अल्लाह की राह की जिद्दोजुहद में झोंक दिया है, और वे अपनी वापसी की कश्तियाँ इस तरह जलाकर इस्लामी जमाअत में आए हैं कि अब यहाँ से पलटकर कहीं और नहीं जा सकते। यहाँ की ठोकरें खाएँगे मगर यहीं मरेंगे और खपेंगे। किसी दूसरी जगह बड़ी-से-बड़ी इज़्ज़त भी मिलती हो तो यहाँ की रुसवाई छोड़कर उसे लेने न जाएँगे। इसके बाद अगर उन्हें उठाकर सीने से लगा न लिया जाता तो और क्या किया जा सकता था। यही वजह है कि अल्लाह उनकी माफ़ी का ज़िक्र इतने प्यार भरे अन्दाज़ में फ़रमाता है कि "हम उनकी तरफ़ पलटे ताकि वे हमारी तरफ़ पलट आएँ।" इन कुछ लफ़्ज़ों में इस हालत की तस्वीर खींच दी गई है कि आक़ा और मालिक ने पहले तो उन बन्दों से नज़र फेर ली थी, मगर जब वे भागे नहीं, बल्कि दिल हारकर उसी के दर पर बैठ गए तो उनकी वफ़ादारी की शान देखकर आक़ा से ख़ुद न रहा गया। मुहब्बत के जोश में बेक़रार होकर यह ख़ुद निकल आया, ताकि उन्हें दरवाज़े से उठा लाए।

رَّسُوْلِ اللّٰهِ وَلَا يَرْغَبُوْا بِاَنْفُسِهِمْ عَنْ نَّفْسِهٖ ؕ ذٰلِكَ بِاَنَّهُمْ لَا
يُصِيْبُهُمْ ظَمَاٌ وَّلَا نَصَبٌ وَّلَا مَخْمَصَةٌ فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ وَلَا يَطَـُٔوْنَ
مَوْطِئًا يَّغِيْظُ الْكُفَّارَ وَلَا يَنَالُوْنَ مِنْ عَدُوٍّ نَّيْلًا اِلَّا كُتِبَ لَهُمْ بِهٖ
عَمَلٌ صَالِحٌ ؕ اِنَّ اللّٰهَ لَا يُضِيْعُ اَجْرَ الْمُحْسِنِيْنَ ﴿١٢٠﴾ وَلَا يُنْفِقُوْنَ نَفَقَةً
صَغِيْرَةً وَّلَا كَبِيْرَةً وَّلَا يَقْطَعُوْنَ وَادِيًا اِلَّا كُتِبَ لَهُمْ لِيَجْزِيَهُمُ
اللّٰهُ اَحْسَنَ مَا كَانُوْا يَعْمَلُوْنَ ﴿١٢١﴾ وَمَا كَانَ الْمُؤْمِنُوْنَ لِيَنْفِرُوْا كَآفَّةً ؕ
فَلَوْلَا نَفَرَ مِنْ كُلِّ فِرْقَةٍ مِّنْهُمْ طَآئِفَةٌ لِّيَتَفَقَّهُوْا فِي الدِّيْنِ
وَلِيُنْذِرُوْا قَوْمَهُمْ اِذَا رَجَعُوْۤا اِلَيْهِمْ لَعَلَّهُمْ يَحْذَرُوْنَ ﴿١٢٢﴾ ———

था कि अल्लाह के रसूल को छोड़कर घर बैठे रहते और उसकी तरफ़ से बेपरवाह होकर अपने-अपने नफ़्स (जान) की फ़िक्र में लग जाते। इसलिए कि ऐसा कभी न होगा कि अल्लाह की राह में भूख-प्यास और जिस्मानी मशक़्क़त की कोई तकलीफ़ वे झेलें और हक़ के इनकारियों को जो राह नापसन्द है उसपर कोई क़दम वे उठाएँ, और किसी दुश्मन से (हक़ की दुश्मनी का) कोई बदला वे लें और उसके बदले उनके हक़ में एक नेक अमल न लिखा जाए। यक़ीनन अल्लाह के यहाँ बेहतरीन काम करनेवालों का मेहनताना मारा नहीं जाता है। (121) इसी तरह यह भी कभी न होगा कि (अल्लाह के रास्ते में) थोड़ा या बहुत कोई ख़र्च वे उठाएँ और (जिहाद की कोशिश में) कोई घाटी वे पार करें और उनके हक़ में उसे लिख न लिया जाए, ताकि अल्लाह उनके इस अच्छे कारनामे का बदला उन्हें दे।

(122) और यह कुछ ज़रूरी न था कि ईमानवाले सारे-के-सारे ही निकल खड़े होते, मगर ऐसा क्यों न हुआ कि उनकी आबादी के हर हिस्से में से कुछ लोग निकलकर आते और दीन की समझ पैदा करते और वापस जाकर अपने इलाक़े के बाशिन्दों को ख़बरदार करते, ताकि वे (ग़ैर-इस्लामी रवैये से) परहेज़ करते।[120]

120. इस आयत का मंशा समझने के लिए इसी सूरा की आयत-97 सामने रखनी चाहिए जिसमें फ़रमाया गया है कि–

"बदवी अरब कुफ़्र व निफ़ाक़ में ज़्यादा सख़्त हैं और उनके मामले में इस बात के इमकान ज़्यादा हैं कि उस दीन की हदों से अनजान रहें जो अल्लाह ने अपने रसूल पर नाज़िल किया है।"

वहाँ सिर्फ़ इतनी बात बयान करने को काफ़ी समझा गया था कि दारुल-इस्लाम की देहाती आबादी का बड़ा हिस्सा निफ़ाक़ के रोग में इस वजह से गिरफ़्तार है कि ये सारे-के-सारे लोग जिहालत में पड़े हुए हैं, इल्म के मरकज़ से जुड़े न होने और इल्म रखनेवालों का साथ मयस्सर न आने की वजह से अल्लाह के दीन की हदें उनको मालूम नहीं हैं। अब यह फ़रमाया जा रहा है कि देहाती आबादियों को इस हालत में पड़ा न रहने दिया जाए, बल्कि उनकी जिहालत को दूर करने और उनके अन्दर इस्लामी शुऊर पैदा करने का अब बाक़ायदा इन्तिज़ाम होना चाहिए। इस मक़सद के लिए यह कुछ ज़रूरी नहीं है कि तमाम देहाती अरब अपने-अपने घरों से निकल-निकलकर मदीने आ जाएँ और यहाँ इल्म हासिल करें। इसके बजाए होना यह चाहिए कि हर देहाती इलाक़े और हर बस्ती और क़बीले से कुछ आदमी निकलकर इल्म के मरकज़ों, जैसे मदीना और मक्का और ऐसे ही दूसरी जगहों में आएँ और यहाँ दीन की समझ पैदा करें, फिर अपनी-अपनी बस्तियों में वापस जाएँ और आम लोगों के अन्दर बेदारी फैलाने की कोशिश करें।

यह एक बहुत ही अहम हिदायत थी जो इस्लामी तहरीक (आन्दोलन) को मज़बूत करने के लिए ठीक मौक़े पर दी गई। शुरू में जबकि इस्लाम अरब में बिलकुल नया-नया था और बहुत ही सख़्त मुख़ालिफ़त के माहौल में धीरे-धीरे फैल रहा था, इस हिदायत की कोई ज़रूरत न थी, क्योंकि उस वक़्त तो इस्लाम क़बूल करता ही वह शख़्स था जो पूरी तरह उसे समझ लेता था और हर पहलू से उसको जाँच-परख कर इत्मीनान कर लेता था। मगर जब यह तहरीक कामयाबी के मरहलों में दाख़िल हुई और ज़मीन में उसका इक्तिदार क़ायम हो गया तो आबादियाँ-की-आबादियाँ, फ़ौज-की-फ़ौज इसमें शामिल होने लगीं, जिनके अन्दर कम लोग ऐसे थे जो इस्लाम को उसके तमाम तक़ाज़ों के साथ समझ-बूझकर इसपर ईमान लाते थे। वरना ज़्यादातर लोग सिर्फ़ वक़्त के सैलाब में बे समझे-बूझे बहे चले आ रहे थे। नवमुस्लिम आबादी का यह तेज़ रफ़्तार फैलाव बज़ाहिर तो इस्लाम के लिए ताक़त पहुँचाने का काम कर रहा था, क्योंकि इस्लाम की पैरवी करनेवालों की तादाद बढ़ रही थी। लेकिन हक़ीक़त में इस्लामी निज़ाम के लिए ऐसी आबादी किसी काम की न थी, बल्कि उल्टी नुक़सानदेह थी जो इस्लाम के शुऊर से ख़ाली हो और इस निज़ाम की अख़लाक़ी माँगों को पूरी करने के लिए तैयार न हो। चुनाँचे यह नुक़सान तबूक की मुहिम की तैयारी के मौक़े पर खुलकर सामने आ गया था। इसलिए ठीक वक़्त पर अल्लाह ने हिदायत दी कि इस्लामी तहरीक का यह फैलाव जिस तेज़ी के साथ हो रहा है उसी के मुताबिक़ उसकी मज़बूती की तदबीर भी होनी चाहिए, और वह यह है कि आबादी के हर हिस्से में से कुछ लोगों को लेकर तालीम व तरबियत (शिक्षण-प्रशिक्षण) दी जाए, फिर वे अपने-अपने इलाक़ों में वापस जाकर आम लोगों की तालीम व तरबियत का फ़र्ज़ अदा करें, यहाँ तक कि मुसलमानों की पूरी आबादी में इस्लाम का शुऊर और अल्लाह की हदों का इल्म फैल जाए।

يَاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا قَاتِلُوا الَّذِيْنَ يَلُوْنَكُمْ مِّنَ الْكُفَّارِ وَلْيَجِدُوْا

(123) ऐ लोगो जो ईमान लाए हो! जंग करो हक़ के उन इनकारियों से जो तुमसे

यहाँ इतनी बात और समझ लेनी चाहिए कि आम तालीम (सार्वजनिक शिक्षा) के जिस इन्तिज़ाम का हुक्म इस आयत में दिया गया है उसका असूल मक़सद आम लोगों को सिर्फ़ पढ़ा-लिखा बनाना और उनमें किताब को पढ़ लेने की क़िस्म का इल्म फैलाना नहीं था, बल्कि वाज़ेह तौर पर उसका असली मक़सद यह तय किया गया था कि लोगों में दीन की समझ पैदा हो और उनको इस हद तक होशियार और ख़बरदार कर दिया जाए कि वे ग़ैर-इस्लामी ज़िन्दगी के रवैये से बचने लगें। यह मुसलमानों की तालीम का वह मक़सद है जो हमेशा-हमेशा के लिए अल्लाह ने ख़ुद मुक़र्रर कर दिया है और हर तालीमी निज़ाम को उसी लिहाज़ से जाँचा जाएगा कि वह इस मक़सद को कहाँ तक पूरा करता है। इसका यह मतलब नहीं है कि इस्लाम लोगों में किताब को पढ़ लेने और दुनियावी इल्म को आम करना नहीं चाहता, बल्कि इसका मतलब यह है कि इस्लाम लोगों में ऐसी तालीम को आम करना चाहता है जो ऊपर बताए गए मक़सद तक पहुँचाती हो। वरना एक-एक शख़्स अगर अपने वक़्त का आइंस्टाइन और फ़्रायड हो जाए लेकिन दीन की समझ से दूर हो और ज़िन्दगी के ग़ैर-इस्लामी रवैये में भटका हुआ हो तो इस्लाम ऐसी तालीम पर लानत भेजता है।

इस आयत में अरबी लफ़्ज़ 'लि-य-त-फ़क़्क़हू फ़िद्-दीन' (दीन में समझ पैदा करते हैं) जो इस्तेमाल हुआ है उससे बाद के लोगों में एक अजीब ग़लतफ़हमी पैदा हो गई जिसके ज़हरीले असरात एक ज़माने से मुसलमानों की मज़हबी तालीम, बल्कि उनकी मज़हबी ज़िन्दगी पर भी बुरी तरह पड़ रहे हैं। अल्लाह ने तो 'तफ़क़्क़ुहु फ़िद्-दीन' को तालीम का असूल मक़सद बताया था जिसके मानी हैं दीन को समझना, उसके निज़ाम में सूझ-बूझ हासिल करना, उसके मिज़ाज और उसकी रूह को जानना और इस क़ाबिल हो जाना कि सोचने और अमल करने के हर पहलू और ज़िन्दगी के हर शोबे में इनसान यह जान सके कि सोच का कौन-सा तरीक़ा और अमल का कौन-सा तरीक़ा दीन की रूह के मुताबिक़ है। लेकिन आगे चलकर जो क़ानूनी इल्म इस्तिलाहन फ़िक़्ह के नाम से जाना जाने लगा और जो धीरे-धीरे इस्लामी ज़िन्दगी की सिर्फ़ ज़ाहिरी शक्ल (रूह के मुक़ाबले में) का तफ़सीली इल्म बनकर रह गया, लोगों ने लफ़्ज़ फ़िक़्ह के दोनों जगह पाए जाने की वजह से समझ लिया कि बस यही वह चीज़ है जिसका हासिल करना अल्लाह के हुक्म के मुताबिक़ तालीम का असूल मक़सद है। हालाँकि वह पूरा मक़सद नहीं, बल्कि मक़सद का एक हिस्सा था। इस बड़ी ग़लतफ़हमी से जो नुक़सान दीन और दीन के माननेवालों को पहुँचे, उनका जाइज़ा लेने के लिए तो एक मोटी किताब चाहिए, मगर यहाँ हम इसपर ख़बरदार करने के लिए मुख़्तसर तौर पर इतना इशारा किए देते हैं कि मुसलमानों की मज़हबी तालीम को जिस चीज़ ने दीन की रूह से ख़ाली करके सिर्फ़ दीन के जिस्म और दीन की शक्ल की तशरीह पर महदूद कर दिया और आख़िरकार जिस चीज़ की वजह से मुसलमानों की ज़िन्दगी में एक निरी बेजान ज़ाहिरदारी, दीनदारी की आख़िरी मंज़िल बनकर रह गई, वह बड़ी हद तक यही ग़लतफ़हमी है।

فِيكُمْ غِلْظَةً ۚ وَاعْلَمُوٓا اَنَّ اللّٰهَ مَعَ الْمُتَّقِيْنَ ﴿١٢٣﴾ وَاِذَا مَآ اُنْزِلَتْ

करीब हैं[121] और चाहिए कि वे तुम्हारे अन्दर सख़्ती पाएँ[122], और जान लो कि अल्लाह मुत्तक़ियों (परहेज़गारों) के साथ है।[123] (124-125) जब कोई नई सूरा उतरती है तो

121. आयत के ज़ाहिर अलफ़ाज़ से जो मतलब निकलता है वह यह है कि दारुल-इस्लाम के जिस हिस्से से इस्लाम के दुश्मनों का जो इलाक़ा मिला हुआ हो, उसके ख़िलाफ़ जंग करने की सबसे पहली ज़िम्मेदारी उसी हिस्से के मुसलमानों पर आती है। लेकिन अगर आगे के सिलसिला-ए-कलाम के साथ मिलाकर इस आयत को पढ़ा जाए तो मालूम होता है कि यहाँ 'काफ़िरों' से मुराद वे मुनाफ़िक़ लोग हैं जिनका इनकारे-हक़ पूरी तरह नुमायाँ हो चुका था और जिनके इस्लामी सोसाइटी में घुले-मिले रहने से सख़्त नुक़सान पहुँच रहे थे। आयत-73 में, जहाँ तक़रीर के इस सिलसिले की शुरुआत हुई थी, पहली बात यही कही गई थी कि अब इन आस्तीन के साँपों की जड़ काटने के लिए बाक़ायदा जिहाद शुरू कर दिया जाए। वही बात अब तक़रीर के ख़त्म होने पर ताकीद के लिए फिर दोहराई गई है, ताकि मुसलमान इसकी अहमियत को महसूस करें और इन मुनाफ़िक़ों के मामले में उन नस्ली, ख़ानदानी और समाजी ताल्लुक़ात की परवाह न करें, जो उनके और इनके बीच ताल्लुक़ की वजह बने हुए थे। वहाँ उनके ख़िलाफ़ 'जिहाद' करने का हुक्म दिया गया था। यहाँ उससे ज़्यादा सख़्त लफ़्ज़ 'क़िताल' इस्तेमाल किया गया है, जिससे मुराद यह है कि इनकी पूरी तरह जड़ें उखाड़ फेंकी जाएँ, इनकी जड़ों को उखाड़ फेंकने में कोई कसर उठा न रखी जाए। वहाँ 'कुफ़्फ़ार' और मुनाफ़िक़ दो अलग लफ़्ज़ बोले गए थे। यहाँ एक ही लफ़्ज़ कुफ़्फ़ार को काफ़ी समझा गया है, ताकि इन लोगों का इनकारे-हक़, जो खुले तौर पर साबित हो चुका था, इनके ऊपरी तौर पर मान लेने और ईमान ले आने के परदे में छिपकर किसी रिआयत का हक़दार न समझ लिया जाए।

122. यानी अब वह नरम सुलूक ख़त्म हो जाना चाहिए, जो अब तक इनके साथ होता रहा है। यही बात आयत-73 में कही गई थी कि 'इनके साथ सख़्ती से पेश आओ।'

123. यहाँ दो बातों पर यकसाँ तौर पर ख़बरदार किया गया है। एक यह कि इन हक़ के इनकारियों के मामले में अगर तुमने अपनी शख़्सी और ख़ानदानी और मआशी ताल्लुक़ात का लिहाज़ किया तो यह हरकत तक़वा (परहेज़गारी) के ख़िलाफ़ होगी; क्योंकि मुत्तक़ी (परहेज़गार) होना और ख़ुदा के दुश्मनों से लाग लगाए रखना दोनों बातें एक-दूसरे के ख़िलाफ़ हैं। इसलिए ख़ुदा की मदद अपने साथ शामिल रखना चाहते हो तो इस लाग-लपेट से पाक रहो। दूसरे यह कि यह सख़्ती और जंग का जो हुक्म दिया जा रहा है इसका यह मतलब नहीं है कि इनके साथ सख़्ती करने में अख़लाक़ और इनसानियत की भी सारी हदें तोड़ डाली जाएँ। तुम्हारी हर कारवाई में अल्लाह की हदों और उसकी हिदायतों की पाबन्दी लाज़मी तौर पर होनी चाहिए। इसको अगर तुमने छोड़ दिया तो इसके मानी ये होंगे कि अल्लाह तुम्हारा साथ छोड़ दे।

سُوْرَةٌ فَمِنْهُمْ مَّنْ يَّقُوْلُ اَيُّكُمْ زَادَتْهُ هٰذِهٖۤ اِيْمَانًا ۚ فَاَمَّا الَّذِيْنَ
اٰمَنُوْا فَزَادَتْهُمْ اِيْمَانًا وَّهُمْ يَسْتَبْشِرُوْنَ ۝١٢٤ وَاَمَّا الَّذِيْنَ فِيْ
قُلُوْبِهِمْ مَّرَضٌ فَزَادَتْهُمْ رِجْسًا اِلٰى رِجْسِهِمْ وَمَاتُوْا وَهُمْ
كٰفِرُوْنَ ۝١٢٥ اَوَلَا يَرَوْنَ اَنَّهُمْ يُفْتَنُوْنَ فِيْ كُلِّ عَامٍ مَّرَّةً اَوْ مَرَّتَيْنِ
ثُمَّ لَا يَتُوْبُوْنَ وَلَا هُمْ يَذَّكَّرُوْنَ ۝١٢٦ وَاِذَا مَاۤ اُنْزِلَتْ سُوْرَةٌ نَّظَرَ

उनमें से कुछ लोग (मज़ाक़ के तौर पर मुसलमानों से) पूछते हैं कि “कहो तुममें से किसके ईमान में इससे बढ़ोत्तरी हुई?” (इसका जवाब यह है कि) जो लोग ईमान लाए हैं उनके ईमान में तो हक़ीक़त में (हर उतरनेवाली सूरा ने) बढ़ोत्तरी ही की है और वे इससे ख़ुश हैं, अलबत्ता जिन लोगों के दिलों को (निफ़ाक़ का) रोग लगा हुआ था उनकी पिछली गंदगी पर (हर नई सूरा ने) एक और गन्दगी बढ़ा दी[124] और वे मरते दम तक कुफ़्र ही में पड़े रहे। (126) क्या ये लोग देखते नहीं कि हर साल एक-दो बार ये आज़माइश में डाले जाते हैं?[125] मगर इसपर भी न तौबा करते हैं, न कोई सबक़ लेते हैं। (127) जब कोई सूरा उतरती है तो ये लोग आँखों-ही-आँखों में एक-दूसरे से बातें करते

---

124. ईमान और कुफ़्र और निफ़ाक़ में कमी-बेशी का क्या मतलब है, इसको जानने के लिए देखें— सूरा-8 अनफ़ाल, हाशिया-2।

125. यानी कोई साल ऐसा नहीं गुज़र रहा है जबकि एक-दो बार ऐसे हालात न पेश आ जाते हों जिनमें इनका ईमान का दावा आज़माइश की कसौटी पर कसा न जाता हो और उसकी खोट का भेद खुल न जाता हो। कभी क़ुरआन में कोई ऐसा हुक्म आ जाता है जिससे इनकी मन की ख़ाहिश पर कोई नई पाबन्दी लग जाती है, कभी दीन की कोई ऐसी माँग सामने आ जाती है जिससे इनके फ़ायदों को चोट पहुँचती है, कभी कोई अन्दरूनी झगड़ा ऐसा पैदा हो जाता है जिसमें यह इम्तिहान छिपा होता है कि इनको अपने दुनियवी ताल्लुक़ात और अपनी शख़्सी और ख़ानदानी और क़बायली दिलचस्पियों के मुक़ाबले अल्लाह और उसका रसूल और उसका दीन कितना प्यारा है। कभी कोई जंग ऐसी पेश आ जाती है जिसमें यह आज़माइश होती है कि ये जिस दीन पर ईमान लाने का दावा कर रहे हैं उसकी ख़ातिर जान, माल, वक़्त और मेहनत की कितनी क़ुरबानी करने के लिए तैयार हैं। ऐसे तमाम मौक़ों पर सिर्फ़ यही नहीं कि मुनाफ़िक़त की वह गन्दगी जो इनके झूठे इक़रार के नीचे छिपी हुई है खुलकर सबके सामने आ जाती है,

بَعْضُهُمْ اِلٰى بَعْضٍ ۭ هَلْ يَرٰىكُمْ مِّنْ اَحَدٍ ثُمَّ انْصَرَفُوْا ۭ صَرَفَ اللّٰهُ
قُلُوْبَهُمْ بِاَنَّهُمْ قَوْمٌ لَّا يَفْقَهُوْنَ ﴿١٢٧﴾ لَقَدْ جَاۗءَكُمْ رَسُوْلٌ مِّنْ

हैं कि कहीं कोई तुमको देख तो नहीं रहा है, फिर चुपके से निकल भागते हैं।[126] अल्लाह ने उनके दिल फेर दिए हैं, क्योंकि ये नासमझ लोग हैं।[127]

(128) देखो! तुम लोगों के पास एक रसूल आया है जो ख़ुद तुम ही में से है,

---

बल्कि हर बार जब ये ईमान के तक़ाज़ों से मुँह मोड़कर भागते हैं तो इनके अन्दर की गन्दगी पहले से कुछ ज़्यादा बढ़ जाती है।

126. क़ायदा यह था कि जब कोई सूरा नाज़िल होती थी तो नबी (सल्ल.) मुसलमानों को इकट्ठा होने का एलान कराते और फिर उनके सामने उस सूरा को तक़रीर के तौर पर सुनाते थे। इस महफ़िल में ईमानवालों का हाल तो यह होता था कि पूरा ध्यान लगाकर उस तक़रीर को सुनते और उसमें डूब जाते थे, लेकिन मुनाफ़िक़ों का रंग-ढंग कुछ और था। वे तो इसलिए जाते थे कि हाज़िरी का हुक्म था और अगर वे वहाँ हाज़िर न होते तो इसके मानी अपने निफ़ाक़ के राज़ को ख़ुद खोल देने के थे। मगर इस ख़ुतबे से इनको कोई दिलचस्पी न होती थी। बहुत ही बददिली के साथ उकताए हुए बैठे रहते थे और अपने-आप को हाज़िर लोगों में गिनवा लेने के बाद इन्हें बस यह फ़िक्र लगी रहती थी कि किसी तरह जल्दी-से-जल्दी यहाँ से भाग निकलें। इनकी इसी हालत की तस्वीर यहाँ खींची गई है।

127. यानी ये बेवक़ूफ़ ख़ुद अपने फ़ायदों को नहीं समझते। अपनी फ़लाह और कामयाबी से ग़ाफ़िल और अपनी बेहतरी से बेफ़िक्र हैं। इनको एहसास नहीं है कि कितनी बड़ी नेमत है जो इस क़ुरआन और इस पैग़म्बर के ज़रिए से इनको दी जा रही है। अपनी छोटी-सी दुनिया और इसकी बहुत ही घटिया क़िस्म की दिलचस्पियों में ये कुएँ के मेंढक ऐसे डूबे हैं कि उस अज़ीमुश्शान इल्म और उस ज़बरदस्त रहनुमाई की क़द्र और क़ीमत इनकी समझ में नहीं आती, जिसकी वजह से ये अरब के रेगिस्तान के इस तंग और अन्धयारे कोने से उठकर तमाम इनसानी दुनिया के इमाम और पेशवा बन सकते हैं और इस ख़त्म हो जानेवाली दुनिया ही में नहीं, बल्कि बाद की न ख़त्म होनेवाली और हमेशा रहनेवाली ज़िन्दगी में भी हमेशा-हमेशा के लिए कामयाब हो सकते हैं। इस नादानी और बेवक़ूफ़ी का फ़ितरी नतीजा यह है कि अल्लाह ने इन्हें फ़ायदा हासिल करने के मुबारक मौक़े से महरूम कर दिया। जब कामयाबी और ताक़त व बड़ाई का यह ख़ज़ाना मुफ़्त में लुट रहा होता है और ख़ुशनसीब लोग उसे दोनों हाथों से लूट रहे होते हैं उस वक़्त इन बदनसीबों के दिल किसी और तरफ़ लगे होते हैं और इन्हें ख़बर तक नहीं होती कि किस दौलत से महरूम रह गए।

اَنۡفُسِكُمۡ عَزِيۡزٌ عَلَيۡهِ مَا عَنِتُّمۡ حَرِيۡصٌ عَلَيۡكُمۡ بِالۡمُؤۡمِنِيۡنَ رَءُوۡفٌ
رَّحِيۡمٌ ﴿۱۲۸﴾ فَاِنۡ تَوَلَّوۡا فَقُلۡ حَسۡبِىَ اللّٰهُ ۖ لَاۤ اِلٰهَ اِلَّا هُوَ ؕ عَلَيۡهِ تَوَكَّلۡتُ
وَهُوَ رَبُّ الۡعَرۡشِ الۡعَظِيۡمِ ﴿۱۲۹﴾

ع ۱۶/۵

तुम्हारा नुक़सान में पड़ना उसके लिए तक़लीफ़देह है, तुम्हारी कामयाबी का वह हरीस (लालसा रखनेवाला) है, ईमान लानेवालों के लिए वह मेहरबान और रहमदिल है—(129) अब अगर ये लोग तुमसे मुँह फेरते हैं तो ऐ नबी, इनसे कह दो कि "मेरे लिए अल्लाह काफ़ी है, कोई माबूद नहीं मगर वह, उसी पर मैंने भरोसा किया और वह मालिक है अर्शे-अज़ीम (महान् सिंहासन) का।"

☆☆☆

10. सूरा यूनुस

परिचय

नाम

इस सूरा का नाम जैसा कि क़ुरआन का तरीक़ा है सिर्फ़ अलामत के तौर पर आयत-98 से लिया गया है जिसमें इशारे के तौर पर हज़रत यूनुस (अलैहि०) का ज़िक्र आया है। सूरा में जो बातें बयान की गई हैं उनमें हज़रत यूनुस (अलैहि०) का क़िस्सा बयान करना मक़सद नहीं है।

उतरने की जगह

रिवायतों से मालूम होता है और सूरा के अस्ल मज़मून (विषय) से इसकी ताईद होती है कि यह सूरा मक्का में उतरी है। कुछ लोगों का ख़याल है कि इसकी कुछ आयतें मदनी दौर की हैं, लेकिन यह अन्दाज़ा सिर्फ़ एक सरसरी तौर पर लगाया गया है, कलाम के सिलसिले पर ग़ौर करने से साफ़ महसूस हो जाता है कि यह मुख़्तलिफ़ तक़रीरों या मुख़्तलिफ़ मौक़ों पर उतरी हुई आयतों का मजमूआ (संग्रह) नहीं है, बल्कि शुरू से आख़िर तक एक ही मरबूत (क्रमबद्ध) तक़रीर है जो एक ही वक़्त में उतरी होगी, और इस सूरा में जो बातें बताई गई हैं उनसे साफ़ पता चलता है कि यह मक्की दौर की बातें हैं।

उतरने का ज़माना

यह सूरा किस ज़माने में उतरी इसके बारे में कोई रिवायत हमें नहीं मिली। लेकिन मज़मून से ऐसा ही ज़ाहिर होता है कि यह सूरा मक्का में क़ियाम के आख़िरी दौर में उतरी होगी; क्योंकि इसमें जो बातें बयान की गई हैं उसके अन्दाज़ से साफ़ तौर पर महसूस होता है कि इस्लाम की दावत के मुख़ालिफ़ लोगों की तरफ़ से उसे रोकने की कोशिश पूरी शिद्दत इख़्तियार कर चुकी है, वे नबी और नबी की पैरवी करनेवालों को अपने दरमियान बरदाश्त करने के लिए तैयार नहीं6 हैं। उनसे अब यह उम्मीद बाक़ी नहीं रही है कि समझाने-बुझाने से सीधी राह पर आ जाएँगे, और अब उन्हें उस अंजाम से ख़बरदार करने का मौक़ा आ गया है जो नबी को आख़िरी और क़तई तौर पर रद्द

कर देने की सूरत में उन्हें लाज़मी तौर पर देखना होगा। मज़मून की यही ख़ुसूसियतें हमें बताती हैं कि कौन सी सूरतें मक्का के आख़िरी दौर से ताल्लुक़ रखती हैं। लेकिन इस सूरा में हिजरत की तरफ़ भी कोई इशारा नहीं पाया जाता, इसलिए इसका ज़माना उन सूरतों से पहले का समझना चाहिए जिनमें कोई न कोई छिपा हुआ इशारा हमको हिजरत के बारे में मिलता है— उतरने का ज़माना तय हो जाने के बाद तारीख़ी पसमंज़र (ऐतिहासिक पृष्ठभूमि) बयान करने की ज़रूरत बाक़ी नहीं रहती, क्योंकि इस दौर का तारीख़ी पसमंज़र सूरा-6 अनआम और सूरा-7 आराफ़ के परिचयों में बयान किया जा चुका है।

मज़मून (विषय)

तक़रीर का मौज़ू (विषय) दावत देना, समझाना-बुझाना और ख़बरदार करना है। बात का आग़ाज़ इस तरह होता है कि लोग इस बात पर हैरान हैं कि एक इनसान ख़ुदा का पैग़म्बर होने की हैसियत से उनके सामने पैग़ाम पेश कर रहा है और उसे ख़ामख़ाह जादूगरी का इलज़ाम दे रहे हैं, हालाँकि जो बात वह पेश कर रहा है उसमें कोई चीज़ भी न तो अजीब ही है और न जादू-टोने ही से ताल्लुक़ रखती है। वह तो दो अहम हक़ीक़तों से तुमको आगाह कर रहा है। एक यह कि जो ख़ुदा इस कायनात का पैदा करनेवाला है और इसका इन्तिज़ाम अमली तौर पर चला रहा है सिर्फ़ वही तुम्हारा मालिक और आक़ा है और तन्हा उसी का हक़ यह है कि तुम उसकी बन्दगी करो। दूसरे यह कि मौजूदा दुनियावी ज़िन्दगी के बाद ज़िन्दगी का एक और दौर आनेवाला है जिसमें तुम दोबारा पैदा किए जाओगे, अपनी मौजूदा ज़िन्दगी के पूरे कारनामे का हिसाब दोगे और इस बुनियादी सवाल पर इनाम या सज़ा पाओगे कि तुमने उसी ख़ुदा को अपना मालिक मानकर उसकी मरज़ी के मुताबिक़ नेक रवैया अपनाया या उसके ख़िलाफ़ अमल करते रहे। ये दोनों हक़ीक़तें जो वह तुम्हारे सामने पेश कर रहा है, वे अपने आप में ख़ुद हक़ीक़त हैं, चाहे तुम मानो या न मानो। वह तुम्हें दावत देता है कि तुम उन्हें मान लो और अपनी ज़िन्दगी को उनके मुताबिक़ बना लो। उसकी यह दावत अगर तुम क़बूल करोगे तो तुम्हारा अपना अंजाम बेहतर होगा वरना खुद ही बुरा नतीजा देखोगे।

मबाहिस (वार्ताएँ)

इन इब्तिदाई ज़रूरी बातों के बाद नीचे लिखी बहसें एक ख़ास तरतीब के साथ समाने आती हैं :

(1) वे दलीलें जो रब के एक होने और आख़िरत की ज़िन्दगी के सिलसिले में ऐसे लोगों

को अक्ल व ज़मीर (अन्तरात्मा) का इत्मीनान दे सकती हैं जो जाहिलाना तास्सुब में मुब्तला न हों और जिन्हें बहस की हार-जीत के बजाए अस्ल फ़िक्र इस बात की हो कि ख़ुद ग़लत अन्दाज़ से देखने और उसके बुरे नतीजों से बचें।

(2) उन ग़लतफ़हमियों को दूर करना और उन ग़फ़लतों पर ख़बरदार करना जो लोगों को तौहीद और आख़िरत का अक़ीदा मान लेने में रुकावट बन रही थीं (और हमेशा बना करती हैं)।

(3) उन शुब्हों और एतिराज़ों का जवाब जो मुहम्मद (सल्ल॰) की पैग़म्बरी और आप (सल्ल॰) के लाए हुए पैग़ाम के बारे में पेश किए जाते थे।

(4) दूसरी ज़िन्दगी में जो कुछ पेश आनेवाला है उसकी पहले से ख़बर, ताकि इनसान उससे होशियार होकर अपने आज के तर्ज़े-अमल को ठीक कर ले और बाद में पछताने की नौबत न आए।

(5) इस बात पर ख़बरदार करना कि दुनिया की मौजूदा ज़िन्दगी अस्ल में इम्तिहान की ज़िन्दगी है और इस इम्तिहान के लिए तुम्हारे पास बस इतनी ही मुहलत है जब तक कि तुम इस दुनिया में साँस ले रहे हो। इस वक़्त को अगर तुमने बरबाद कर दिया और नबी की हिदायत क़बूल करके इम्तिहान की कामयाबी का सामान न किया तो फिर कोई दूसरा मौक़ा तुम्हें मिलना नहीं है। इस नबी का आना और इस क़ुरआन के ज़रिए तुमको हक़ीक़त का इल्म पहुँचाया जाना वह बेहतरीन और एक ही मौक़ा है जो तुम्हें मिल रहा है। इससे फ़ायदा न उठाओगे तो बाद की कभी ख़त्म न होनेवाली ज़िन्दगी में हमेशा-हमेशा पछताओगे।

(6) उन खुली-खुली जहालतों और गुमराहियों पर इशारा जो लोगों की ज़िन्दगी में सिर्फ़ इस वजह से पाई जा रही थीं कि वे ख़ुदाई हिदायत के बग़ैर जी रहे थे।

इस सिलसिले में नूह (अलैहि॰) का क़िस्सा मुख़्तसर और मूसा (अलैहि॰) का क़िस्सा ज़रा तफ़सील के साथ बयान किया गया है, जिसका मक़सद चार बातें ज़ेहन में बिठानी हैं। एक यह कि मुहम्मद (सल्ल॰) के साथ जो सुलूक तुम लोग कर रहे हो वह उससे मिलता-जुलता है जो नूह और मूसा (अलैहि॰) के साथ तुमसे पहले के लोग कर चुके हैं और यक़ीन रखो कि इस रवैए का जो अंजाम वे देख चुके हैं वही तुम्हें भी देखना पड़ेगा। दूसरी यह कि मुहम्मद (सल्ल॰) और उनके साथियों को आज जिस बेबसी व कमज़ोरी के हाल में तुम देख रहे हो उससे कहीं यह न समझ लेना कि सूरते-हाल हमेशा यही रहेगी। तुम्हें पता नहीं है कि उन लोगों का रखवाला वही ख़ुदा है जो मूसा व हारून का रखवाला था और वह ऐसे तरीक़े से हालात का पांसा पलट देता है जिस तक किसी

की निगाह नहीं पहुँच सकती। तीसरी यह कि संभलने के लिए जो मुहलत ख़ुदा तुम्हें दे रहा है उसे अगर तुमने बरबाद कर दिया और फिर फ़िरऔन की तरह ख़ुदा की पकड़ में आ जाने के बाद बिलकुल आख़िरी लम्हे पर तौबा की तो माफ़ नहीं किए जाओगे। चौथी यह कि जो लोग मुहम्मद (सल्ल॰) पर ईमान लाए थे, वे मुख़ालिफ़ माहौल की इतनी ज़्यादा शिद्दत और उसके मुक़ाबले में अपनी बेचारगी देखकर मायूस न हों और उन्हें मालूम हो कि इन हालात में उनको किस तरह काम करना चाहिए। साथ ही वे इस बात पर भी ख़बरदार हो जाएँ कि जब अल्लाह तआला अपनी मेहरबानी से उनको इस हालत से निकाल दे तो कहीं वे उस रास्ते पर न चल पड़ें जो बनी-इसराईल ने मिस्र से नजात पाकर अपनाया था।

आख़िर में एलान किया गया है कि यह अक़ीदा और यह मसलक है जिसपर चलने की अल्लाह ने अपने पैग़म्बर को हिदायत की है। इसमें ज़रा-सा भी कोई रद्दो-बदल नहीं किया जा सकता, जो इसे क़बूल करेगा वह अपना भला करेगा और जो इसको छोड़कर ग़लत राहों में भटकेगा वह अपना ही कुछ बिगाड़ेगा।

☆☆☆

ایاتها ۱۰۹ ۱۰ سُورَةُ يُونُسَ مَكِّيَّةٌ ۵۱ رکوعاتها ۱۱

بِسۡمِ اللّٰهِ الرَّحۡمٰنِ الرَّحِيۡمِ ○

الٓرٰ تِلۡكَ اٰيٰتُ الۡكِتٰبِ الۡحَكِيۡمِ ① اَكَانَ لِلنَّاسِ عَجَبًا اَنۡ اَوۡحَيۡنَاۤ اِلٰى
رَجُلٍ مِّنۡهُمۡ اَنۡ اَنۡذِرِ النَّاسَ وَبَشِّرِ الَّذِيۡنَ اٰمَنُوۡۤا اَنَّ لَهُمۡ قَدَمَ
صِدۡقٍ عِنۡدَ رَبِّهِمۡ قَالَ الۡكٰفِرُوۡنَ اِنَّ هٰذَا لَسِحۡرٌ مُّبِيۡنٌ ②

10. यूनुस

(मक्का में उतरी— आयतें 109)

अल्लाह के नाम से जो बेइन्तिहा मेहरबान और रहम फ़रमानेवाला है।

(1) अलिफ़-लाम-रा, ये उस किताब की आयतें हैं जो हिक्मत और इल्म से भरी हैं।[1] (2) क्या लोगों के लिए यह एक अजीब बात हो गई कि हमने ख़ुद उन्हीं में से एक आदमी पर वह्य भेजी कि (ग़फ़लत में पड़े हुए) लोगों को चौंका दे और जो मान लें, उनको ख़ुशख़बरी दे दे कि उनके लिए उनके रब के पास सच्ची इज़्ज़त और सरबुलन्दी है?[2] (इसपर) इनकारियों ने कहा कि यह आदमी तो खुला जादूगर है।[3]

1. इस शुरुआती जुमले में एक हल्की-सी तंबीह (चेतावनी) छिपी है। नादान लोग यह समझ रहे थे कि पैग़म्बर क़ुरआन के नाम से जो कलाम उनको सुना रहा है वह सिर्फ़ ज़बान की जादूगरी है, शायर की ख़याली उड़ान है और कुछ काहिनों की तरह ऊपरी दुनिया की बातचीत है। इसपर उन्हें ख़बरदार किया जा रहा है कि जो कुछ तुम गुमान कर रहे हो यह वह चीज़ नहीं है। यह तो हिक्मतवाली किताब की आयतें हैं, इनकी तरफ़ ध्यान न दोगे तो हिकमत से महरूम रह जाओगे।
2. यानी आख़िर इसमें ताज्जुब की बात क्या है? इनसानों को होशियार करने के लिए इनसान न मुक़र्रर किया जाता तो क्या फ़रिश्ता या जिन्न या जानवर मुक़र्रर किया जाता? और अगर इनसान हक़ीक़त से ग़ाफ़िल होकर ग़लत तरीक़े से ज़िन्दगी बसर कर रहे हैं तो ताज्जुब की बात यह है कि उनका पैदा करनेवाला और पालनहार उन्हें उनके हाल पर छोड़ दे या यह कि वह उनकी हिदायत व रहनुमाई के लिए कोई इन्तिज़ाम करे? और अगर ख़ुदा की तरफ़ से कोई हिदायत आए तो इज़्ज़त और कामयाबी उनके लिए होनी चाहिए जो उसे मान लें या उनके

إِنَّ رَبَّكُمُ اللّٰهُ الَّذِىْ خَلَقَ السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضَ فِىْ سِتَّةِ اَيَّامٍ ثُمَّ

(3) हक़ीक़त यह है कि तुम्हारा रब वही ख़ुदा है जिसने आसमानों और ज़मीन को

लिए जो उसे रद्‌द कर दें? लिहाज़ा ताज्जुब करनेवालों को सोचना चाहिए कि आख़िर वह बात क्या है जिसपर वे ताज्जुब कर रहे हैं।

3. यानी जादूगर की फबती तो उन्होंने उसपर कस दी मगर यह न सोचा कि वह चस्पाँ (फ़िट) भी होती है या नहीं। सिर्फ़ यह बात कि कोई शख़्स आला दरजे की ख़िताबत (तक़रीर करने की सलाहियत) से काम लेकर दिलों और दिमाग़ों को जीत रहा है, उसपर यह इलज़ाम लगा देने के लिए तो काफ़ी नहीं हो सकती कि वह जादूगरी कर रहा है। देखना यह है कि इस तक़रीर में वह बात क्या कहता है, किस ग़रज़ के लिए तक़रीर की क़ुव्वत को इस्तेमाल कर रहा है, और जो असरात उसकी तक़रीर से ईमान लानेवालों की ज़िन्दगी पर पड़ रहे हैं वे किस क़िस्म के हैं। तक़रीर करनेवाला किसी नाजाइज़ मक़सद के लिए जादूबयानी की ताक़त इस्तेमाल करता है तो वह एक मुँहफट, बेलगाम, ग़ैर-ज़िम्मेदार तक़रीर करनेवाला होता है। हक़ और सच्चाई और इनसाफ़ से आज़ाद होकर हर वह बात कह डालता है जो बस सुननेवालों पर असर डाल सके, चाहे वह बात अपने आप में कितनी ही झूठी, बढ़ा-चढ़ाकर कही गई और इनसाफ़ के ख़िलाफ़ हो। उसकी बातें हिकमत भरी नहीं, लोगों को धोखा देनेवाली होती हैं। उनमें कोई सही सोच और सही नज़रिया होने के बजाय ऐसी बातें होती हैं जिनमें आपस में टकराव और टेढ़पन होता है। एतिदाल (सन्तुलन) के बजाए बेएतिदाली हुआ करती है। वह तो बस अपना सिक्का जमाने के लिए बातें बनाता है या फिर लोगों को लड़ाने और एक गरोह को दूसरे के मुक़ाबले में उभारने के लिए लच्छेदार तक़रीर करके मदहोश करता है, उसके असर से लोगों में न कोई अख़लाक़ी बुलन्दी पैदा होती है, न उनकी ज़िन्दगी में कोई फ़ायदेमन्द तब्दीली आती है और न कोई अच्छी सोच या बेहतर अमली हालत वुजूद में आती है, बल्कि लोगों की तरफ़ से पहले से ज़्यादा बुरी आदत सामने आती हैं। मगर यहाँ तुम देख रहे हो कि पैग़म्बर जो कलाम पेश कर रहा है उसमें हिक्मत है, एक मुनासिब निज़ामे-फ़िक्र (सन्तुलित विचारधारा) है, इन्तिहाई दरजे का एतिदाल और हक़ व सच्चाई की सख़्त पाबन्दी है, लफ़्ज़-लफ़्ज़ जँचा-तुला और बात-बात काँटे की तौल पूरी है। उसकी बातों में अल्लाह के बन्दों की इस्लाह के सिवा किसी दूसरी ग़रज़ की निशानदेही नहीं कर सकते। जो कुछ वह कहता है, उसमें उसकी अपनी ज़ाती या ख़ानदानी या क़ौमी या किसी क़िस्म की दुनियावी ग़रज़ का हल्का-सा असर नहीं पाया जाता। वह सिर्फ़ यह चाहता है कि लोग जिस ग़फ़लत में पड़े हुए हैं उसके बुरे नतीजों से उनको ख़बरदार करे और उन्हें उस तरीक़े की तरफ़ बुलाए जिसमें उनका अपना भला है। फिर उसकी तक़रीर से जो असरात पड़े हैं वे भी जादूगरों के असरात से बिलकुल अलग हैं। यहाँ जिसने भी उसका असर क़बूल किया है उसकी ज़िन्दगी सँवर गई है, वह पहले से ज़्यादा बेहतर अख़लाक़ का इनसान बन गया है और सारे रवैये में नेकी और भलाई की शान नुमायाँ हो गई है। अब तुम ख़ुद ही सोच लो, क्या जादूगर ऐसी ही बातें करते हैं और उनका जादू ऐसे ही नतीजे दिखाया करता है?

اسْتَوٰى عَلَى الْعَرْشِ يُدَبِّرُ الْاَمْرَ ۭ مَا مِنْ شَفِيْعٍ اِلَّا مِنْۢ بَعْدِ اِذْنِهٖ ۭ ذٰلِكُمُ اللّٰهُ رَبُّكُمْ فَاعْبُدُوْهُ ۭ اَفَلَا تَذَكَّرُوْنَ ۝ اِلَيْهِ مَرْجِعُكُمْ

छः दिनों में पैदा किया, फिर तख़्ते-सल्तनत पर जलवागर (आसीन) होकर कायनात का इन्तिज़ाम चला रहा है।[4] कोई शफ़ाअत (सिफ़ारिश) करनेवाला नहीं है सिवाए इसके कि उसकी इजाज़त के बाद शफ़ाअत करे।[5] यही अल्लाह तुम्हारा रब है, इसलिए तुम उसी की इबादत करो।[6] फिर क्या तुम होश में न आओगे?[7]

4. यानी पैदा करके वह मुअत्तल नहीं हो गया, बल्कि अपनी पैदा की हुई कायनात के तख़्ते-सल्तनत (राज्य-सिंहासन) पर वह ख़ुद बिराजमान हुआ और अब सारे जहान का इन्तिज़ाम अमली तौर पर उसी के हाथ में है। नादान लोग समझते हैं कि ख़ुदा ने कायनात को पैदा करके यूँ ही छोड़ दिया है कि ख़ुद जिस तरह चाहे चलती रहे, या दूसरों के हवाले कर दिया है कि वे उसे जैसे चाहें इस्तेमाल करें। इसके बरख़िलाफ़ क़ुरआन यह हक़ीक़त पेश करता है कि अल्लाह तआला अपनी तख़लीक़ (सृष्टि) के इस पूरे कारख़ाने पर आप ही हुकूमत कर रहा है, तमाम इख़्तियारात उसके अपने हाथ में हैं, सारी सत्ता की बागडोर उसके क़ब्ज़े में है, कायनात के गोशे-गोशे में हर वक़्त, हर आन जो कुछ हो रहा है सीधे तौर पर उसके हुक्म या इजाज़त से हो रहा है, इस दुनिया के साथ उसका ताल्लुक़ सिर्फ़ इतना ही नहीं है कि वह कभी इसे वुजूद में लाया था, बल्कि हर वक़्त वही इसकी तदबीर और इसका इन्तिज़ाम करनेवाला है, उसी के क़ायम रखने से यह क़ायम है और उसी के चलाने से यह चल रहा है। (देखिए—सूरा-7 आराफ़, हाशिया 40-41)

5. यानी दुनिया की तदबीर व इन्तिज़ाम में किसी दूसरे का दख़ल देना तो दूर की बात, कोई इतना इख़्तियार भी नहीं रखता कि ख़ुदा से सिफ़ारिश करके उसका कोई फ़ैसला बदलवा दे या किसी की क़िस्मत बनवा दे या बिगड़वा दे। ज़्यादा से ज़्यादा कोई जो कुछ कर सकता है वह बस इतना है कि ख़ुदा से दुआ करे, मगर उसकी दुआ का क़बूल होना या न होना बिलकुल ख़ुदा की मरज़ी पर है। ख़ुदा की ख़ुदाई में इतना ज़ोरदार कोई नहीं है कि उसकी बात चलकर रहे और उसकी सिफ़ारिश टल न सके और वह अर्श का पाया पकड़कर बैठ जाए और अपनी बात मनवाकर ही रहे।

6. ऊपर के तीन जुमलों में इस अस्ल हक़ीक़त को बयान किया गया था कि हक़ीक़त में ख़ुदा ही तुम्हारा रब है। अब यह बताया जा रहा है कि इस हक़ीक़त की मौजूदगी में तुम्हारा रवैया क्या होना चाहिए। जब हक़ीक़त यह है कि रब और पालनहार पूरे तौर पर ख़ुदा ही है तो इसका लाज़िमी तक़ाज़ा यह है कि तुम सिर्फ़ उसी की इबादत करो, फिर जिस तरह 'रब' का लफ़्ज़ अपने अन्दर तीन मतलब रखता है, यानी परवरदिगार, मालिक व आक़ा और हाकिम, इसी तरह इसके मुक़ाबले में 'इबादत' के लफ़्ज़ में भी तीन मतलब शामिल हैं यानी परस्तिश, ग़ुलामी और

جَمِيۡعًا ؕ وَعۡدَ اللّٰهِ حَقًّا ؕ اِنَّهٗ يَبۡدَؤُا الۡخَلۡقَ ثُمَّ يُعِيۡدُهٗ لِيَجۡزِىَ الَّذِيۡنَ
اٰمَنُوۡا وَعَمِلُوا الصّٰلِحٰتِ بِالۡقِسۡطِ ؕ وَالَّذِيۡنَ كَفَرُوۡا لَهُمۡ شَرَابٌ مِّنۡ

(4) उसी की तरफ़ तुम सबको पलटकर जाना है।[8] यह अल्लाह का पक्का वादा है। बेशक पैदाइश की शुरुआत वही करता है, फिर वही दोबारा पैदा करेगा[9], ताकि जो लोग ईमान लाए और जिन्होंने अच्छे काम किए उनको पूरे इनसाफ़ के साथ बदला दे और जिन्होंने इनकार का तरीक़ा अपनाया, वे खौलता हुआ पानी पिएँ और दर्दनाक सज़ा

इताअत व फ़रमाँबरदारी।

खुदा के एक अकेले पालनहार होने से यह ज़रूरी हो जाता है कि इनसान उसी का शुक्रगुज़ार हो, उसी से दुआएँ माँगे और उसी के आगे मुहब्बत व अक़ीदत (श्रद्धा) से सिर झुकाए, यह इबादत का पहला मतलब है।

खुदा के एक अकेले मालिक व आक़ा (स्वामी) होने से यह ज़रूरी हो जाता है कि इनसान उसका बन्दा व ग़ुलाम बनकर रहे, उसके मुक़ाबले में खुदमुख़्ताराना रवैया न इख़्तियार करे और उसके सिवा किसी और की ज़ेहनी या अमली (वैचारिक अथवा व्यावहारिक) ग़ुलामी क़बूल न करे। यह इबादत का दूसरा मतलब है।

खुदा के एक अकेले हाकिम होने से यह ज़रूरी हो जाता है कि इनसान उसके हुक्म की इताअत करे और उसके क़ानून की पैरवी करे। न खुद अपना हाकिम बने और न उसके सिवा किसी दूसरे की हाकिमियत को तस्लीम करे। यह इबादत का तीसरा मतलब है।

7. यानी जब हक़ीक़त तुम्हारे सामने खोल दी गई है और तुमको साफ़-साफ़ बता दिया गया है कि इस हक़ीक़त की मौजूदगी में तुम्हारे लिए सही रवैया क्या है तो क्या अब भी तुम्हारी आँखें न खुलेंगी और उन्हीं ग़लतफ़हमियों में पड़े रहोगे जिनकी बिना पर तुम्हारी ज़िन्दगी का पूरा रवैया अब तक हक़ीक़त के ख़िलाफ़ रहा है?

8. यह नबी की तालीम का दूसरा बुनियादी उसूल है। पहली बुनियादी बात यह कि तुम्हारा रब सिर्फ़ अल्लाह है, लिहाज़ा उसी की इबादत करो और दूसरी बुनियादी बात यह कि तुम्हें इस दुनिया से वापस जाकर अपने रब को हिसाब देना है।

9. इस जुमले में दावा और दलील दोनों मौजूद हैं। दावा यह है कि खुदा दोबारा इनसान को पैदा करेगा और इसपर दलील यह दी गई है कि उसी ने पहली बार इनसान को पैदा किया। जो शख़्स यह मानता हो कि खुदा ने पैदाइश की शुरुआत की है (और इससे सिवाए उन नास्तिकों के और कौन इनकार कर सकता है, जो सिर्फ़ पादरियों के मज़हब से भागने के लिए ऐसे बेवक़ूफ़ी भरे नज़रिए को ओढ़ने पर आमादा हो गए कि ख़ल्क़ —(सृष्टि)— तो है, मगर उसका पैदा करनेवाला कोई नहीं है।) वह इस बात को नामुमकिन या समझ से परे नहीं ठहरा सकता कि वही खुदा इसे दोबारा पैदा करेगा।

حَمِيْمٍ وَّعَذَابٌ اَلِيْمٌۢ بِمَا كَانُوْا يَكْفُرُوْنَ ۝٤ هُوَ الَّذِيْ جَعَلَ الشَّمْسَ
ضِيَآءً وَّالْقَمَرَ نُوْرًا وَّقَدَّرَهٗ مَنَازِلَ لِتَعْلَمُوْا عَدَدَ السِّنِيْنَ
وَالْحِسَابَ ۭ مَا خَلَقَ اللّٰهُ ذٰلِكَ اِلَّا بِالْحَقِّ ۚ يُفَصِّلُ الْاٰيٰتِ لِقَوْمٍ
يَّعْلَمُوْنَ ۝٥ اِنَّ فِي اخْتِلَافِ الَّيْلِ وَالنَّهَارِ وَمَا خَلَقَ اللّٰهُ فِي السَّمٰوٰتِ
وَالْاَرْضِ لَاٰيٰتٍ لِّقَوْمٍ يَّتَّقُوْنَ ۝٦ اِنَّ الَّذِيْنَ لَا يَرْجُوْنَ لِقَآءَنَا

भुगतें उस हक़ के इनकार के बदले में जो वे करते रहे।[10]

(5) वही है जिसने सूरज को उजियाला बनाया और चाँद को चमक दी और चाँद के घटने-बढ़ने की मंज़िलें ठीक-ठीक मुक़र्रर कर दीं, ताकि तुम उससे वर्षों और तारीख़ों के हिसाब मालूम करो। अल्लाह ने यह सब कुछ खेल के तौर पर नहीं बल्कि मक़सद के साथ ही बनाया है। वह अपनी निशानियों को खोल-खोलकर पेश कर रहा है उन लोगों के लिए जो इल्म रखते हैं। (6) यक़ीनन रात और दिन के उलट-फेर में और हर उस चीज़ में जो अल्लाह ने ज़मीन और आसमानों में पैदा की है, निशानियाँ हैं उन लोगों के लिए जो (ग़लत देखने और ग़लत रास्ते पर चलने से) बचना चाहते हैं।[11]

(7) हक़ीक़त यह है कि जो लोग हमसे मिलने की उम्मीद नहीं रखते और दुनिया

10. यह वह ज़रूरत है जिसकी बिना पर अल्लाह तआला इनसान को दोबारा पैदा करेगा। ऊपर जो दलील दी गई वह यह बात साबित करने के लिए काफ़ी थी कि दोबारा पैदा करना मुमकिन है और उसे नामुमकिन समझना ठीक नहीं है। अब यह बताया जा रहा है कि यह दोबारा पैदाइश अक्ल व इनसाफ़ के लिहाज़ से ज़रूरी है और यह ज़रूरत दोबारा पैदाइश के सिवा किसी दूसरे तरीक़े से पूरी नहीं हो सकती। ख़ुदा को अपना एक अकेला रब बनाकर जो लोग सही बन्दगी का रवैया अपनाएँ वे इसके हक़दार हैं कि उन्हें अपने इस सही रवैये का पूरा-पूरा इनाम मिले। और जो लोग हक़ीक़त से इनकार करके इसके ख़िलाफ़ ज़िन्दगी गुज़ारें वे भी इसके हक़दार हैं कि वे अपने इस ग़लत रवैये का बुरा नतीजा देखें। यह ज़रूरत अगर मौजूदा दुनियावी ज़िन्दगी में पूरी नहीं हो रही है (और हर शख़्स जो हठधर्म नहीं है, जानता है कि नहीं हो रही है) तो उसे पूरा करने के लिए यक़ीनी तौर पर दोबारा ज़िन्दगी मिलना ज़रूरी है। (और ज़्यादा तशरीह के लिए देखें—सूरा-7 आराफ़, हाशिया-30 व सूरा-11 हूद, हाशिया-105)

11. यह आख़िरत के अक़ीदे की तीसरी दलील है। कायनात में अल्लाह तआला के जो काम हर तरफ़ नज़र आ रहे हैं, जिनके बड़े-बड़े निशानात सूरज और चाँद, और दिन-रात के आने-जाने

की शक्ल में हर शख़्स के सामने मौजूद हैं, उनसे इस बात का निहायत वाज़ेह सुबूत मिलता है कि दुनिया के इस शानदार कारख़ाने का बनानेवाला कोई बच्चा नहीं है जिसने सिर्फ़ खेलने के लिए यह सब कुछ बनाया हो और फिर दिल भर लेने के बाद यूँ ही इस घरौंदे को तोड़-फोड़ डाले। साफ़ तौर पर नज़र आ रहा है कि उसका हर काम मुनज़्ज़म (व्यवस्थित) है, उसके हर काम में हिक्मत है, मस्लहतें हैं और ज़र्रे-ज़र्रे की पैदाइश में एक गहरा मक़सद पाया जाता है। तो जब वह हिक्मतवाला है और उसकी हिक्मत की निशानियाँ और अलामतें तुम्हारे सामने साफ़-साफ़ मौजूद हैं, तो उससे तुम कैसे यह उम्मीद रखते हो कि वह इनसान को अक़्ल और अख़लाक़ी एहसास और आज़ादाना ज़िम्मेदारी और इस्तेमाल के इख़्तियारात देने के बाद उसकी ज़िन्दगी के कामों का हिसाब कभी न लेगा और अक़्ली व अख़लाक़ी ज़िम्मेदारी की बुनियाद पर इनाम और सज़ा का जो हक़ लाज़िमी तौर पर पैदा होता है उसे यूँ ही बेकार छोड़ देगा।

इस तरह इन आयतों में आख़िरत का अक़ीदा पेश करने के साथ उसकी तीन दलीलें ठीक-ठीक अक़्ली तरतीब के साथ दी गई हैं :

पहली यह कि दूसरी ज़िन्दगी मुमकिन है; क्योंकि पहली ज़िन्दगी का होना एक हक़ीक़त की शक्ल में मौजूद है।

दूसरी यह कि दूसरी ज़िन्दगी की ज़रूरत है; क्योंकि मौजूदा ज़िन्दगी में इनसान अपनी अख़लाक़ी ज़िम्मेदारी को सही या ग़लत तौर पर जिस तरह अदा करता है और उससे सज़ा और इनाम का जो हक़ पैदा होता है उसकी बुनियाद पर अक़्ल और इनसाफ़ का तक़ाज़ा यही है कि एक और ज़िन्दगी हो जिसमें हर शख़्स अपने अख़लाक़ी रवैये का वह नतीजा देखे जिसका वह हक़दार है।

तीसरी यह कि जब अक़्ल व इनसाफ़ के लिहाज़ से दूसरी ज़िन्दगी की ज़रूरत है तो यह ज़रूरत यक़ीनन पूरी की जाएगी, क्योंकि इनसान और कायनात का पैदा करनेवाला हिक्मतवाला है और हिक्मतवाले से यह उम्मीद नहीं की जा सकती कि हिक्मत व इनसाफ़ जिस चीज़ की माँग करते हों उसे वह वुजूद में न लाए।

ग़ौर से देखा जाए तो मालूम होगा कि मरने के बाद की ज़िन्दगी को दलीलों के ज़रिए साबित करने के लिए यही तीन दलीलें दी जा सकती हैं और यही काफ़ी भी हैं। इन दलीलों के बाद अगर किसी चीज़ की कमी बाक़ी रह जाती है तो वह सिर्फ़ यह है कि इनसान को आँखों से दिखा दिया जाए कि जो चीज़ मुमकिन है, जिसके वुजूद में आने की ज़रूरत भी है, और जिसको वुजूद में लाना ख़ुदा की हिक्मत का तक़ाज़ा भी है, वह देख यह तेरे सामने मौजूद है। लेकिन यह कमी बहरहाल दुनियावी ज़िन्दगी में पूरी नहीं की जाएगी, क्योंकि देखकर ईमान लाना कोई मतलब नहीं रखता। अल्लाह तआला इनसान का जो इम्तिहान लेना चाहता है वह तो है ही यह कि वह महसूस होने और दिखाई देने से परे हक़ीक़तों को ख़ालिस ग़ौर व फ़िक्र और सही दलीलों के ज़रिए से मानता है या नहीं।

इस सिलसिले में एक और अहम बात भी बयान कर दी गई है जिसपर गहराई से ग़ौर करने की ज़रूरत है। फ़रमाया कि "अल्लाह अपनी निशानियों को खोल-खोलकर पेश कर रहा है उन लोगों के लिए जो इल्म रखते हैं।" और "अल्लाह की पैदा की हुई हर चीज़ में निशानियाँ हैं उन लोगों के लिए जो ग़लत सोचने और ग़लत रास्ते पर चलने से बचना चाहते हैं।" इसका मतलब

وَرَضُوْا بِالْحَيٰوةِ الدُّنْيَا وَاطْمَاَنُّوْا بِهَا وَالَّذِيْنَ هُمْ عَنْ اٰيٰتِنَا
غٰفِلُوْنَ ۙ﴿۷﴾ اُولٰٓئِكَ مَاْوٰىهُمُ النَّارُ بِمَا كَانُوْا يَكْسِبُوْنَ ﴿۸﴾ اِنَّ الَّذِيْنَ
اٰمَنُوْا وَعَمِلُوا الصّٰلِحٰتِ يَهْدِيْهِمْ رَبُّهُمْ بِاِيْمَانِهِمْ ۚ تَجْرِيْ مِنْ

की ज़िन्दगी ही पर राज़ी और मुत्मइन हो गए हैं, और जो लोग हमारी निशानियों से ग़ाफ़िल हैं, (8) उनका आख़िरी ठिकाना जहन्नम होगा, उन बुराइयों के बदले में जिन्हें वे (अपने इस ग़लत अक़ीदे और ग़लत रवैये की वजह से) करते रहे।[12]

(9) और यह भी हक़ीक़त है कि जो लोग ईमान लाए (यानी जिन्होंने उन सच्चाइयों को मान लिया जो इस किताब में पेश की गई हैं) और अच्छे काम करते रहे, उन्हें उनका

यह है कि अल्लाह तआला ने निहायत हिक्मत के साथ ज़िन्दगी के मज़ाहिर में हर तरफ़ वे निशानियाँ फैला रखी हैं जो इन मज़ाहिर के पीछे छिपी हुई हक़ीक़तों की साफ़-साफ़ निशानदेही कर रही हैं। लेकिन इन निशानियों से हक़ीक़त तक सिर्फ़ वे लोग पहुँच पाते हैं जिनके अन्दर ये दो ख़ूबियाँ मौजूद हों –

एक यह कि वह जाहिलाना तास्सुबात (अज्ञानतापूर्ण दुराग्रह) से पाक होकर इल्म हासिल करने के उन ज़रिओं से काम लें जो अल्लाह ने इनसान को दिए हैं।

दूसरी यह कि उनके अन्दर ख़ुद यह ख़ाहिश मौजूद हो कि ग़लती से बचें और सही रास्ता इख़्तियार करें।

12. यहाँ फिर दावे के साथ-साथ उसकी दलील भी इशारे में बयान कर दी गई है। दावा यह है कि आख़िरत के अक़ीदे के इनकार का लाज़िमी और क़तई नतीजा जहन्नम है, और दलील यह है कि इस अक़ीदे का इनकार करके या इसके बारे में ख़ाली ज़ेहन होकर इनसान वे बुराइयाँ कमाता है जिनकी सज़ा जहन्नम के सिवा और कुछ नहीं हो सकती। यह एक हक़ीक़त है और हज़ारों साल के इनसानी रवैये का तजरिबा इसपर गवाह है। जो लोग ख़ुदा के सामने अपने आपको ज़िम्मेदार और जवाबदेह नहीं समझते, जो इस बात का कोई अन्देशा नहीं रखते कि उन्हें आख़िरकार ख़ुदा को अपनी पूरी ज़िन्दगी के कामों का हिसाब देना है, जो इस मनगढ़ंत नज़रिए पर काम करते हैं कि ज़िन्दगी बस यही दुनिया की ज़िन्दगी है, जिनके नज़दीक कामयाबी व नाकामी का पैमाना सिर्फ़ यह है कि इस दुनिया में आदमी ने कितनी ज़्यादा ख़ुशहाली, आराम, शोहरत और ताक़त हासिल की, और जो अपने इन्हीं माद्दापरस्तीवाले (भौतिकतावादी) ख़यालों की बुनियाद पर अल्लाह की आयतों (निशानियों) को ध्यान देने के क़ाबिल नहीं समझते, उनकी पूरी ज़िन्दगी ग़लत होकर रह जाती है। वे दुनिया में बेनकेल के ऊँट की तरह बनकर रहते हैं, उनके अख़लाक़ और सिफ़ात बहुत बुरी होती हैं, वे ख़ुदा की

ज़मीन को ज़ुल्म और फ़साद और बुराइयों से भर देते हैं और इस बिना पर जहन्नम के हक़दार बन जाते हैं।

यह आख़िरत के अक़ीदे पर एक और क़िस्म की दलील है। पहली तीन दलीलें अक़्ली दलीलों में से थीं, और यह दलील तजरिबे की बुनियाद पर दी जानेवाली दलीलों में से है। यहाँ उसे सिर्फ़ इशारे में बयान किया गया है, मगर क़ुरआन में कई जगहों पर हमें उसकी तफ़सील मिलती है। इस दलील का ख़ुलासा यह है कि इनसान का इनफ़िरादी (व्यक्तिगत) रवैया और इनसानी गरोहों का इज्तिमाई रवैया कभी उस वक़्त तक ठीक नहीं होता जब तक यह समझ और यक़ीन इनसानी सीरत की बुनियाद में समा न जाए कि हमको ख़ुदा के सामने अपने कामों का जवाब देना है। अब ग़ौरतलब यह है कि आख़िर ऐसा क्यों है? क्या वजह है कि इस एहसास और यक़ीन के ख़त्म या कमज़ोर होते ही इनसानी सीरत और किरदार की गाड़ी बुराई के रास्ते पर चल पड़ती है। अगर आख़िरत का अक़ीदा अस्ल हक़ीक़त के मुताबिक़ न होता और उसका इनकार हक़ीक़त के ख़िलाफ़ न होता तो मुमकिन न था कि इस इक़रार व इनकार के ये नतीजे लाज़मी तौर से लगातार हमारे तजरिबे में आते। एक ही चीज़ से लगातार सही नतीजों का निकलना और उसके न होने से नतीजों का हमेशा ग़लत हो जाना इस बात का पक्का सुबूत है कि वह चीज़ अपनी जगह सही है।

इसके जवाब में कभी-कभी यह दलील दी जाती है कि आख़िरत का इनकार करनेवाले बहुत-से लोग ऐसे हैं जिनका फ़ल्सफ़ा-ए-अख़लाक़ (नैतिक दर्शन) और दस्तूरे-अमल (कार्य-नीति) सरासर नास्तिकता और माद्दापरस्ती (भौतिकवाद) पर मबनी (आधारित) है, फिर भी वे अच्छी-ख़ासी पाक सीरत (स्वच्छ चरित्र) रखते हैं और उनसे ज़ुल्म व फ़साद और बुराई व बेहयाई जैसा कोई काम नहीं होता, बल्कि वे अपने मामलों में नेक और ख़ुदा के बन्दों के ख़िदमतगुज़ार होते हैं लेकिन इस दलील की कमज़ोरी ज़रा-सा ग़ौर करने से ही वाज़ेह हो जाती है। तमाम माद्दापरस्ताना (भौतिकतावादी) लादीनी (अधार्मिक) फ़लसफ़ों और निज़ामाते-फ़िक्र (वैचारिक व्यवस्थाओं) की जाँच-पड़ताल करके देख लिया जाए। कहीं उन अख़लाक़ी ख़ूबियों और अमली नेकियों के लिए कोई बुनियाद न मिलेगी जिनके लिए इन "नेक काम करनेवालों" नास्तिकों की तारीफ़ की जाती है। किसी दलील से यह साबित नहीं किया जा सकता कि इन लादीनी फ़लसफ़ों (अधार्मिक दर्शनों) में सच्चाई, अमानतदारी, ईमानदारी, वादों को पूरा करने, इनसाफ़, रहम, फ़य्याज़ी (दानशीलता), त्याग, हमदर्दी, मन पर कंट्रोल (आत्मसंयम), पाकदामनी, हक़ को पहचानने और हक़ों को अदा करने के लिए उभारने और आमादा करनेवाली चीज़ें मौजूद हैं। ख़ुदा और आख़िरत को नज़रअन्दाज़ कर देने के बाद अख़लाक़ (नैतिकता) के लिए अगर कोई क़ाबिले-अमल निज़ाम बन सकता है तो वह सिर्फ़ फ़ायदा हासिल करने (Utilitarianism) की बुनियादों पर बन सकता है। बाक़ी तमाम अख़लाक़ी फ़लसफ़े सिर्फ़ ख़याली और किताबों में लिखी बातें हैं, न कि अमली। और सिर्फ़ फ़ायदा हासिल करने की सोच जो अख़लाक़ पैदा करती है उसे चाहे कितना ही बढ़ा दिया जाए, बहरहाल वह इससे आगे नहीं जाती कि आदमी वह काम करे जिसका कोई फ़ायदा इस दुनिया में उसकी ज़ात की तरफ़ या उस समाज की तरफ़ जिससे वह ताल्लुक़ रखता है, पलटकर आने की उम्मीद हो। यह वह चीज़ है जो फ़ायदे

تَحْتِهِمُ الْاَنْهٰرُ فِيْ جَنّٰتِ النَّعِيْمِ ۝٩ دَعْوٰىهُمْ فِيْهَا سُبْحٰنَكَ اللّٰهُمَّ

रब उनके ईमान की वजह से सीधी राह चलाएगा, नेमत भरी जन्नतों में उनके नीचे नहरें बहेंगी।[13] (10) वहाँ उनकी आवाज़ यह होगी कि 'पाक है तू ऐ ख़ुदा!' उनकी दुआ यह

की उम्मीद और नुक़सान के डर की बिना पर इनसान से सच और झूठ, अमानत और ख़ियानत, ईमानदारी और बेईमानी, वफ़ादारी और धोखा, इनसाफ़ और ज़ुल्म, ग़रज़ मौक़े के हिसाब से हर नेकी और उसके उलट काम करा सकती है। इन अख़लाक़ी बातों का बेहतरीन नमूना मौजूदा ज़माने की अंग्रेज़ क़ौम है जिसको अकसर इस बात की मिसाल में पेश किया जाता है कि ज़िन्दगी का माद्दापरस्ताना नज़रिया रखने और आख़िरत के तसव्वुर से ख़ाली होने के बावजूद इस क़ौम के लोग आमतौर से दूसरों से ज़्यादा सच्चे, खरे, ईमानदार, वादे के पाबन्द, इनसाफ़-पसन्द और मामलों में भरोसे के क़ाबिल हैं। लेकिन हक़ीक़त यह है कि सिर्फ़ फ़ायदा हासिल करने के लिए अख़लाक़ी बातों को अपनाने की नापायदारी का सबसे नुमायाँ अमली सुबूत हमको इसी क़ौम के किरदार में मिलता है। अगर वाक़ई में अंग्रेज़ों की सच्चाई, इनसाफ़-पसन्दी, सीधे रास्ते पर चलना और वादे की पाबन्दी इस यक़ीन और भरोसे की बुनियाद पर होती कि ये ख़ूबियाँ अपने आप में मुस्तक़िल अख़लाक़ी ख़ूबिया हैं तो आख़िर यह किस तरह मुमकिन था कि एक-एक अंग्रेज़ तो अपने ज़ाती किरदार में ये ख़ूबियाँ रखता मगर सारी क़ौम मिलकर जिन लोगों को अपना नुमाइन्दा और अपने इज्तिमाई मामलों का ज़िम्मेदार बनाती है वह बड़े पैमाने पर उसकी सल्तनत और उसके बैनुल-अक़वामी (अन्तर्राष्ट्रीय) मामलों के चलाने में खुल्लम-खुल्ला झूठ, वादाख़िलाफ़ी, ज़ुल्म, बेइनसाफ़ी और बेईमानी से काम लेते और पूरी क़ौम का भरोसा उन्हें हासिल रहता? क्या यह इस बात का खुला सुबूत नहीं है कि ये लोग हमेशा क़ायम रहनेवाली अख़लाक़ी क़द्रों (नैतिक मूल्यों) को माननेवाले नहीं हैं, बल्कि दुनियावी फ़ायदे और नुक़सान के लिहाज़ से एक ही वक़्त में दो मुख़ालिफ़ अख़लाक़ी रवैये इख़्तियार करते हैं और कर सकते हैं?

फिर भी अगर ख़ुदा और आख़िरत का इनकार करनेवाला कोई शख़्स दुनिया में ऐसा मौजूद है जो मुस्तक़िल तौर पर कुछ नेकियों का पाबन्द और कुछ बुराइयों से बचता है तो हक़ीक़त में उसकी यह नेकी और परहेज़गारी ज़िन्दगी के उसके माद्दापरस्ताना नज़रिए का नतीजा नहीं हैं, बल्कि उन मज़हबी असरात का नतीजा है जो अनजाने तौर पर उसके मन में बैठे हैं। उसका अख़लाक़ी सरमाया मज़हब से चुराया हुआ है और उसको वह ग़लत तरीक़े से बेदीनी में इस्तेमाल कर रहा है; क्योंकि वह अपनी बेदीनी और माद्दापरस्ती के ख़ज़ाने में इस बात की निशानदही हरगिज़ नहीं कर सकता कि यह सरमाया उसने कहाँ से लिया है।

13. इस जुमले पर से सरसरी तौर पर न गुज़र जाइए। इसके मज़मून (विषय) की तरतीब गहरी तवज्जोह चाहती है :

उन लोगों को आख़िरत की ज़िन्दगी में जन्नत क्यों मिलेगी?— इसलिए कि वे दुनिया की ज़िन्दगी में सीधी राह चले। हर काम में, ज़िन्दगी के हर हिस्से में, हर इनफ़िरादी (व्यक्तिगत)

وَتَحِيَّتُهُمْ فِيهَا سَلَٰمٌ ۚ وَءَاخِرُ دَعْوَىٰهُمْ أَنِ ٱلْحَمْدُ لِلَّهِ رَبِّ ٱلْعَٰلَمِينَ ﴿١٠﴾ ع

होगी कि 'सलामती हो' और उनकी हर बात इस बात पर ख़त्म होगी कि "सारी तारीफ़ अल्लाह रब्बुल-आलमीन ही के लिए है।"[14]

और इज्तिमाई (सामाजिक) मामले में उन्होंने सही तरीक़ा इख़्तियार किया और ग़लत तरीक़ों को छोड़ दिया।

ये हर-हर क़दम पर, ज़िन्दगी के हर मोड़ और हर दोराहे पर, उनको सही और ग़लत, हक़ और बातिल, सीधी और टेढ़ी पहचान कैसे हासिल हुई? और फिर उस पहचान के मुताबिक़ सीधे रास्ते पर जमे रहने और टेढ़े रास्ते से बचने की ताक़त उन्हें कहाँ से मिली? – उनके रब की तरफ़ से, क्योंकि इल्मी रहनुमाई और अमली तौफ़ीक़ सिर्फ़ उसी के देने से मिलती है।

उनका रब उन्हें यह हिदायत और यह तौफ़ीक़ क्यों देता रहा? – उनके ईमान की वजह से।

ये नतीजे जो ऊपर बयान हुए हैं किस ईमान के नतीजे हैं?– उस ईमान के नहीं जो सिर्फ़ मान लेने के मानी में हो, बल्कि उस ईमान के जो सीरत व किरदार की रूह बन जाए और जिसकी ताक़त से अख़लाक़ व आमाल में भलाई और ख़ैर ज़ाहिर होने लगे। अपनी जिस्मानी ज़िन्दगी में आप ख़ुद देखते हैं कि ज़िन्दगी को बाक़ी रखने, तन्दुरुस्ती, काम करने की ताक़त और ज़िन्दगी की लज़्ज़तों को हासिल करने का दारोमदार सही तरह की ख़ुराक पर होता है, लेकिन ये नतीजे उस ख़ुराक के नहीं होते जो सिर्फ़ खा लेने के मानी में हो, बल्कि उस ख़ुराक के होते हैं जो पचने के बाद ख़ून बने और नस-नस में पहुँचकर जिस्म के हर हिस्से को वह ताक़त पहुँचाए जिससे वह अपने हिस्से का काम ठीक-ठीक करने लगे। बिलकुल इसी तरह अख़लाक़ी ज़िन्दगी में भी हिदायत पाने, सही देखने, सही रास्ते पर चलने और आख़िरकार नजात और कामयाबी को हासिल करने का दारोमदार सही अक़ीदों पर है, मगर ये नतीजे उन अक़ीदों के नहीं हैं जो सिर्फ़ ज़बान पर जारी हों या दिलो-दिमाग़ के किसी कोने में बेकार पड़े हुए हों, बल्कि उन अक़ीदों के हैं जो मन के अन्दर अच्छी तरह बैठ जाएँ और आदमी के सोचने के अन्दाज़, तबीअत के मिज़ाज और उसका ज़ौक़ व शौक़ बन जाएँ और सीरत व किरदार और ज़िन्दगी के रवैए की सूरत में नुमायाँ हों। ख़ुदा के फ़ितरी क़ानून में वह शख़्स जो खाकर भी न खानेवाले की तरह रहे, उन इनामों का हक़दार नहीं होता जो खाकर पचा जानेवाले के लिए रखे गए हैं। फिर क्यों उम्मीद की जाए कि उसके अख़लाक़ी क़ानून में वह शख़्स जो मानकर न माननेवाले की तरह रहे, उन इनामों का हक़दार हो सकता है जो मानकर नेक बननेवाले के लिए रखे गए हैं?

14. यहाँ इशारे में एक बात यह बताई गई है कि दुनिया की इम्तिहानगाह से कामयाब होकर निकलने और नेमत भरी जन्नतों में पहुँच जाने के बाद यह नहीं होगा कि ये लोग बस वहाँ पहुँचते ही ऐश और राहत के सामान पर भूखों की तरह टूट पड़ेंगे और हर तरफ़ से "लाओ हूरें, लाओ शराब और गाने-बजाने का सामान" की आवाज़ें आने लगेंगी, जैसा कि जन्नत का नाम

وَلَوْ يُعَجِّلُ اللّٰهُ لِلنَّاسِ الشَّرَّ اسْتِعْجَالَهُمْ بِالْخَيْرِ لَقُضِيَ اِلَيْهِمْ
اَجَلُهُمْ ۭ فَنَذَرُ الَّذِيْنَ لَا يَرْجُوْنَ لِقَاۗءَنَا فِيْ طُغْيَانِهِمْ يَعْمَهُوْنَ ⑪

(11) अगर कहीं[15] अल्लाह लोगों के साथ बुरा मामला करने में भी उतनी ही जल्दी करता जितनी वे दुनिया की भलाई माँगने में जल्दी करते हैं, तो उनके काम की मोहलत कभी की ख़त्म कर दी गई होती। (मगर हमारा यह तरीक़ा नहीं है) इसलिए हम उन लोगों को जो हमसे मिलने की उम्मीद नहीं रखते, उनकी सरकशी में भटकने के लिए छूट

सुनते ही कुछ टेढ़ी समझ के लोगों के ज़ेहन में इसका नक्शा घूमने लगता है, बल्कि हक़ीक़त में ईमानवाले लोग दुनिया में ऊँचे ख़यालात और बेहतरीन अख़लाक़ को अपनाकर, अपने जज़्बात को सँवारकर, अपनी ख़ाहिशों को सुधारकर और अपने अख़लाक़ व सीरत को पाक-साफ़ बनाकर अपने अन्दर जिस क़िस्म की बुलन्द और बेहतरीन शख़्सियतें अपने अन्दर पैदा करेंगे, वही दुनिया के माहौल से अलग, जन्नत के पाकीज़ा-तरीन माहौल में और ज़्यादा निखरकर उभर आएँगी और उनकी वही ख़ूबियाँ जो दुनिया में उन्होंने पैदा की थीं वहाँ अपनी पूरी शान के साथ उनकी सीरत में सामने आएँगी। उनका सबसे ज़्यादा पसंदीदा काम वही अल्लाह की तारीफ़ और उसकी पाकी बयान करना होगा जिसके वे दुनिया में आदी थे, और उनकी सोसाइटी में वही एक-दूसरे की सलामती चाहने का जज़्बा काम कर रहा होगा जिसे दुनिया में उन्होंने अपने इज्तिमाई रवैये की रूह बनाया था।

15. ऊपर के शुरुआती जुमलों के बाद अब नसीहत और समझाने-बुझानेवाली तक़रीर शुरू होती है। इस तक़रीर को पढ़ने से पहले इसके पसमंज़र (पृष्ठभूमि) के बारे में दो बातें सामने रखनी चाहिए—

एक यह कि इस तक़रीर से थोड़ी मुद्दत पहले वह लगातार चलनेवाला और सख़्त मुश्किलों में डालनेवाला अकाल ख़त्म हुआ था, जिसकी मुसीबत से मक्कावाले चीख़ उठे थे। उस अकाल के वक़्त में क़ुरैश के घमण्डियों की अकड़ी हुई गर्दन बहुत झुक गई थी। दुआएँ माँगते और रोते-गिड़गिड़ाते थे, बुतपरस्ती में कमी आ गई थी, एक ख़ुदा की तरफ़ ज़्यादा झुकाव होने लगा था, और नौबत यह आ गई थी कि आख़िर अबू-सुफ़ियान ने आकर नबी (सल्ल.) से दरख़ास्त की कि आप ख़ुदा से इस बला को टालने के लिए दुआ करें। मगर जब अकाल ख़त्म हो गया, बारिशें होने लगीं और ख़ुशहाली का दौर आया तो उन लोगों की वही सरकशियाँ और बदआमालियाँ और दीने-हक़ (इस्लाम) के ख़िलाफ़ वही सरगर्मियाँ फिर शुरू हो गईं और जो दिल ख़ुदा की तरफ़ रुजू करने लगे थे, वे फिर अपनी पिछली गफ़लतों में डूब गए। (देखें—क़ुरआन, सूरा-16 नह्ल, आयत-113; सूरा-23 मोमिनून, आयतें-75 से 77; सूरा-44 दुख़ान, आयतें-10 से 16)

दूसरी यह कि नबी (सल्ल.) जब कभी उन लोगों को हक़ का इनकार करने की सज़ा से डराते

وَإِذَا مَسَّ الْإِنْسَانَ الضُّرُّ دَعَانَا لِجَنْبِهِ أَوْ قَاعِدًا أَوْ قَائِمًا ۚ فَلَمَّا
كَشَفْنَا عَنْهُ ضُرَّهُ مَرَّ كَأَنْ لَمْ يَدْعُنَا إِلَىٰ ضُرٍّ مَسَّهُ ۚ كَذَٰلِكَ زُيِّنَ
لِلْمُسْرِفِينَ مَا كَانُوا يَعْمَلُونَ ﴿١٢﴾ وَلَقَدْ أَهْلَكْنَا الْقُرُونَ مِنْ قَبْلِكُمْ

दे देते हैं। (12) इनसान का हाल यह है कि जब उसपर कोई मुश्किल वक़्त आता है तो खड़े और बैठे और लेटे हमको पुकारता है, मगर जब हम उसकी मुसीबत टाल देते हैं तो ऐसा चल निकलता है कि मानो उसने कभी अपने किसी बुरे वक़्त पर हमको पुकारा ही न था। इस तरह हद से गुज़र जानेवालों के लिए उनके करतूत लुभावने बना दिए गए हैं। (13) लोगो! तुमसे पहले की क़ौमों[16] को हमने तबाह कर दिया जब उन्होंने ज़ुल्म का

तो ये लोग जवाब में कहते थे कि तुम अल्लाह के जिस अज़ाब की धमकियाँ देते हो वह आख़िर आ क्यों नहीं जाता। उसके आने में देर क्यों लग रही है?

इसी पर कहा जा रहा है कि ख़ुदा लोगों पर रहम करने में जितनी जल्दी करता है उनको सज़ा देने और उनके गुनाहों पर पकड़ लेने में उतनी जल्दी नहीं करता। तुम चाहते हो कि जिस तरह उसने तुम्हारी दुआएँ सुनकर अकाल की मुसीबत जल्दी से दूर कर दी, उसी तरह वह तुम्हारे चैलेंज सुनकर और तुम्हारी सरकशियाँ देखकर अज़ाब भी फ़ौरन भेज दे। लेकिन ख़ुदा का तरीक़ा यह नहीं है। लोग चाहे जितनी ही सरकशियाँ किए जाएँ वह उनको पकड़ने से पहले संभलने का काफ़ी मौक़ा देता है। बराबर ख़बरदार करता है और रस्सी ढीली छोड़े रखता है, यहाँ तक कि जब रिआयत की हद हो जाती है तब अमल की सज़ा का क़ानून लागू किया जाता है। यह तो है ख़ुदा का तरीक़ा और इसके बरख़िलाफ़ तंगदिल इनसानों का तरीक़ा वह है जो तुमने अपनाया कि जब मुसीबत आई तो ख़ुदा याद आने लगा, बिलबिलाना और गिड़गिड़ाना शुरू कर दिया, और जहाँ राहत का वक़्त आया कि सब कुछ भूल गए। यही वे अलामतें हैं जिनसे क़ौमें अपने आपको अल्लाह के अज़ाब का हक़दार बनाती हैं।

16. अस्ल अरबी में लफ़्ज़ 'क़र्न' इस्तेमाल हुआ है जिससे मुराद आम तौर पर तो अरबी ज़बान में 'एक दौर के लोग' होते हैं, लेकिन क़ुरआन मजीद में जिस अन्दाज़ से मुख़्तलिफ़ जगहों पर इस लफ़्ज़ को इस्तेमाल किया गया है उससे ऐसा महसूस होता है कि 'क़र्न' से मुराद वह क़ौम है जो अपने दौर में बुलन्दी पर पूरे तौर पर या, कुछ मामलों में दुनिया की रहनुमाई के काम पर लगाई गई हो। ऐसी क़ौम की तबाही लाज़िमी तौर पर यही मतलब नहीं रखती कि उसकी नस्ल को बिलकुल ही ख़त्म कर दिया जाए, बल्कि उसका बुलन्दी और रहनुमाई के मक़ाम से गिरा दिया जाना, उसकी तहज़ीब व तमद्दुन का तबाह हो जाना, उसकी पहचान का मिट जाना और उसके हिस्सों का बिखरकर दूसरी क़ौमों में गुम हो जाना, यह भी बरबादी ही की एक शक्ल है।

لَمَّا ظَلَمُوا ۙ وَجَآءَتْهُمْ رُسُلُهُمْ بِالْبَيِّنٰتِ وَمَا كَانُوا لِيُؤْمِنُوا ۭ
كَذٰلِكَ نَجْزِى الْقَوْمَ الْمُجْرِمِيْنَ ﴿١٣﴾ ثُمَّ جَعَلْنٰكُمْ خَلٰٓئِفَ فِى الْاَرْضِ
مِنْۢ بَعْدِهِمْ لِنَنْظُرَ كَيْفَ تَعْمَلُوْنَ ﴿١٤﴾ وَاِذَا تُتْلٰى عَلَيْهِمْ اٰيَاتُنَا
بَيِّنٰتٍ ۙ قَالَ الَّذِيْنَ لَا يَرْجُوْنَ لِقَآءَنَا ائْتِ بِقُرْاٰنٍ غَيْرِ هٰذَآ اَوْ بَدِّلْهُ ۭ

रवैया[17] अपनाया और उनके रसूल उनके पास खुली-खुली निशानियाँ लेकर आए और उन्होंने ईमान लाकर ही न दिया। इस तरह हम मुजरिमों को उनके जुर्मों का बदला दिया करते हैं। (14) अब उनके बाद हमने तुमको ज़मीन में उनकी जगह दी है, ताकि देखें कि तुम कैसे काम करते हो।[18]

(15) जब उन्हें हमारी साफ़-साफ़ बातें सुनाई जाती हैं तो वे लोग जो हमसे मिलने की उम्मीद नहीं रखते, कहते हैं कि "इसके बजाए कोई और क़ुरआन लाओ या इसमें कुछ फेर-बदल करो।"[19] ऐ नबी! उनसे कहो, "मेरा यह काम नहीं है कि अपनी तरफ़ से

17. यह लफ़्ज़ 'ज़ुल्म' उन महदूद मानी में नहीं है जो आमतौर पर इससे मुराद लिए जाते हैं, बल्कि इनमें वे सारे गुनाह शामिल हैं जो इनसान बन्दगी की हद से गुज़रकर करता है। (तशरीह के लिए देखें-सूरा-2, बक़रा, हाशिया-49)

18. ख़याल रहे कि ख़िताब अरबवासियों से हो रहा है और उनसे यह कहा जा रहा है कि पिछली क़ौमों को अपने-अपने ज़माने में काम करने का मौक़ा दिया गया था, मगर उन्होंने आख़िरकार ज़ुल्म व बग़ावत की राह अपनाई और जो पैग़म्बर उनको सीधी राह दिखाने के लिए भेजे गए थे उनकी बात उन्होंने न मानी, इसलिए वे हमारे इम्तिहान में नाकाम हुईं और मैदान से हटा दी गईं। अब ऐ अरबवालो! तुम्हारी बारी आई है। तुम्हें उनकी जगह काम करने का मौक़ा दिया जाता है। तुम उस इम्तिहानगाह में खड़े हो जिससे तुमसे पहले के लोग नाकाम होकर निकाले जा चुके हैं। अगर तुम नहीं चाहते कि तुम्हारा अंजाम भी वही हो जो उनका हुआ तो इस मौक़े से, जो तुम्हें दिया जा रहा है, सही फ़ायदा उठाओ, पिछली क़ौमों के इतिहास से सबक़ लो और उन ग़लतियों को न दोहराओ जो उनकी तबाही की वजह बनीं।

19. उनकी यह बात सबसे पहले तो उनके इस मनगढ़त ख़याल की वजह से थी कि मुहम्मद (सल्ल.) जो कुछ पेश कर रहे हैं यह ख़ुदा की तरफ़ से नहीं है, बल्कि उनके अपने दिमाग़ का गढ़ा हुआ है और उसको ख़ुदा का कलाम बनाकर सिर्फ़ इसलिए पेश किया है कि उनकी बात का वज़न बढ़ जाए। दूसरे अरबवासियों का मतलब यह था कि यह तुमने तौहीद और आख़िरत

قُلْ مَا يَكُونُ لِيٓ أَنْ أُبَدِّلَهُۥ مِن تِلْقَآئِ نَفْسِيٓ ۖ إِنْ أَتَّبِعُ إِلَّا مَا يُوحَىٰٓ
إِلَيَّ ۖ إِنِّيٓ أَخَافُ إِنْ عَصَيْتُ رَبِّي عَذَابَ يَوْمٍ عَظِيمٍ ﴿١٥﴾ قُل لَّوْ شَآءَ
ٱللَّهُ مَا تَلَوْتُهُۥ عَلَيْكُمْ وَلَآ أَدْرَىٰكُم بِهِۦ ۖ فَقَدْ لَبِثْتُ فِيكُمْ عُمُرًا مِّن

इसमें कोई तब्दीली कर लूँ। मैं तो बस उस वह्य की पैरवी करनेवाला हूँ जो मेरे पास भेजी जाती है। अगर मैं अपने रब की नाफ़रमानी करूँ तो मुझे एक बड़े भयानक दिन के अज़ाब का डर है।"[20] (16) और कहो, "अगर अल्लाह की मरज़ी यही होती तो मैं यह क़ुरआन तुम्हें कभी न सुनाता और अल्लाह तुम्हें इसकी ख़बर तक न देता। आख़िर

और अख़लाक़ी पाबन्दियों की बहस क्यों छेड़ दी, अगर रहनुमाई के लिए उठे हो तो कोई ऐसी चीज़ पेश करो जिससे क़ौम का भला हो और उसकी दुनिया बनती नज़र आए। फिर भी अगर तुम अपने इस पैग़ाम को बिलकुल नहीं बदलना चाहते तो कम-से-कम इसमें इतनी लचक ही पैदा करो कि हमारे और तुम्हारे दरमियान कुछ कमी-ज़्यादती पर समझौता हो सके। कुछ हम तुम्हारी मानें, कुछ तुम हमारी मान लो। तुम्हारी तौहीद में कुछ हमारे शिर्क के लिए, तुम्हारी ख़ुदापरस्ती में कुछ हमारी नफ़्सपरस्ती और दुनियापरस्ती के लिए और आख़िरत के बारे में तुम्हारे अक़ीदे में कुछ हमारी इन उम्मीदों के लिए भी गुंजाइश निकलनी चाहिए कि दुनिया में हम जो चाहें करते रहें, आख़िरत में हमारी किसी-न-किसी तरह नजात ज़रूर हो जाएगी। फिर तुम्हारे ये पक्के और अटल अख़लाक़ी उसूल भी हमारे लिए क़बूल करने के क़ाबिल नहीं हैं। उनमें कुछ हमारी जानिबदारियों के लिए, कुछ हमारे रस्मो-रिवाज के लिए, कुछ हमारे शख़्सी और क़ौमी फ़ायदों के लिए और कुछ हमारी मन की ख़ाहिशों के लिए भी जगह निकलनी चाहिए। क्यों न ऐसा हो कि दीन की माँगों का एक मुनासिब दायरा हमारी और तुम्हारी रज़ामन्दी से तय हो जाए और उसमें हम ख़ुदा का हक़ अदा कर दिया करें। उसके बाद हमें आज़ाद छोड़ दिया जाए कि जिस-जिस तरह अपनी दुनिया के काम चलाना चाहते हैं, चलाएँ। मगर तुम यह ग़ज़ब कर रहे हो कि पूरी ज़िन्दगी को और सारे मामलों को तौहीद व आख़िरत के अक़ीदे और शरीअत के बन्धनों से कस देना चाहते हो।

20. यह ऊपर की दोनों बातों का जवाब है। इसमें यह भी कह दिया गया कि मैं इस किताब का लिखनेवाला नहीं हूँ, बल्कि यह वह्य के ज़रिए से मेरे पास आई है जिसमें किसी फेर-बदल का मुझे इख़्तियार नहीं। और यह भी कि इस मामले में समझौते का बिलकुल भी कोई इमकान नहीं है, क़बूल करना हो तो इस पूरे दीन को ज्यों-का-त्यों क़बूल करो वरना पूरे को रद्द कर दो।

قَبۡلِهٖ ؕ اَفَلَا تَعۡقِلُوۡنَ ﴿۱۶﴾ فَمَنۡ اَظۡلَمُ مِمَّنِ افۡتَرٰی عَلَی اللّٰهِ کَذِبًا اَوۡ

इससे पहले मैं एक उम्र तुम्हारे बीच बिता चुका हूँ, क्या तुम अक़्ल से काम नहीं लेते?[21]
(17) फिर उससे बढ़कर ज़ालिम और कौन होगा जो एक झूठी बात गढ़कर अल्लाह से

21. यह एक ज़बरदस्त दलील है उनके इस ख़याल के रद्द में कि मुहम्मद (सल्ल.) क़ुरआन को ख़ुद अपने दिल से गढ़कर ख़ुदा की तरफ़ जोड़ रहे हैं और मुहम्मद (सल्ल.) के इस दावे की ताईद में कि वे ख़ुद इनके लिखनेवाले नहीं हैं, बल्कि यह ख़ुदा की तरफ़ से वह्य के ज़रिए से उनपर उतर रहा है। दूसरी तमाम दलीलें तो किसी हद तक दूर की चीज़ थीं, मगर मुहम्मद (सल्ल.) की ज़िन्दगी तो उन लोगों के सामने की चीज़ थी। नबी (सल्ल.) ने नुबूवत से पहले पूरे चालीस साल उनके बीच गुज़ारे थे, उनके शहर में पैदा हुए, उनकी आँखों के सामने बचपन गुज़ारा, जवान हुए, अधेड़ उम्र को पहुँचे। रहना-सहना, मिलना-जुलना, लेन-देन, शादी-ब्याह ग़रज़ हर तरह का समाजी ताल्लुक़ उन्हीं के साथ था और आप (सल्ल.) की ज़िन्दगी का कोई पहलू उनसे छिपा हुआ न था। ऐसी जानी-बूझी और देखी-भाली चीज़ से ज़्यादा खुली गवाही और क्या हो सकती थी।

नबी (सल्ल.) की इस ज़िन्दगी में दो बातें बिलकुल ज़ाहिर थीं, जिन्हें मक्का के लोगों में से एक-एक शख़्स जानता था :

एक यह कि नुबूवत से पहले की पूरी चालीस साल की ज़िन्दगी में आप (सल्ल.) ने कोई ऐसी तालीम, तरबियत और संगत नहीं पाई जिससे आप (सल्ल.) को वे जानकारियाँ हासिल होतीं जिनके चश्मे (स्रोत) अचानक पैग़म्बरी के दावे के साथ ही आप (सल्ल.) की ज़बान से निकलने शुरू हो गए। उससे पहले कभी आप उन मसाइल से दिलचस्पी लेते हुए, उन बातों पर चर्चा करते हुए और उन ख़यालात का इज़हार करते हुए नहीं देखे गए जो अब क़ुरआन की इन एक के बाद एक उतरनेवाली सूरतों में चर्चा में आ रहे थे। हद यह है कि इस पूरे चालीस साल के दौरान में कभी आप (सल्ल.) के किसी गहरे दोस्त और किसी बहुत क़रीबी रिश्तेदार ने भी आप (सल्ल.) की बातों और आप (सल्ल.) के अमल में कोई ऐसी चीज़ महसूस नहीं की जिसे उस शानदार दावत और पैग़ाम की तमहीद (भूमिका) कहा जा सकता हो, जो आप (सल्ल.) ने अचानक चालीसवें साल को पहुँचकर देना शुरू कर दिया। यह इस बात का खुला सुबूत था कि क़ुरआन आप (सल्ल.) के अपने दिमाग़ की पैदावार नहीं है, बल्कि बाहर से आपके अन्दर आई हुई चीज़ है। इसलिए कि इनसानी दिमाग़ अपनी उम्र के किसी मरहले में भी ऐसी कोई चीज़ पेश नहीं कर सकता जिसके बढ़ने और फलने-फूलने के साफ़-साफ़ निशानात उससे पहले के मरहलों में न पाए जाते हों। यही वजह है कि मक्का के कुछ चालाक लोगों ने जब ख़ुद यह महसूस कर लिया कि क़ुरआन को आप (सल्ल.) के दिमाग़ की उपज ठहराना खुले तौर पर एक बेकार का इलज़ाम है तो आख़िर को उन्होंने यह कहना शुरू कर दिया कि कोई और शख़्स है जो मुहम्मद (सल्ल.) को ये बातें सिखा देता है। लेकिन यह दूसरी बात पहली बात से भी ज़्यादा

كَذَّبَ بِاٰيٰتِهٖ ؕ اِنَّهٗ لَا يُفْلِحُ الْمُجْرِمُوْنَ ۝۱۷ وَيَعْبُدُوْنَ مِنْ دُوْنِ اللّٰهِ

जोड़े या अल्लाह की सच्ची आयतों को झूठा क़रार दे।[22] यक़ीनन मुजरिम कभी कामयाबी नहीं पा सकते।"[23]

(18) ये लोग अल्लाह के सिवा उनकी इबादत कर रहे हैं जो उनको न नुक़सान

बेकार थी; क्योंकि मक्का तो एक तरफ़, पूरे अरब में कोई इस क़ाबिलियत का आदमी न था जिसपर उंगली रखकर कह दिया जाता कि यह इस कलाम (वाणी) को लिखनेवाला है या हो सकता है। ऐसी क़ाबिलियत का आदमी किसी सोसायटी में छिपा कैसे रह सकता है?

दूसरी बात जो नबी (सल्ल०) की पिछली ज़िन्दगी में बिलकुल नुमायाँ थी, वह यह थी कि झूठ, फ़रेब, जालसाज़ी, मक्कारी, चालाकी और इस तरह की दूसरी सिफ़तों में से किसी का हल्का-सा असर तक मुहम्मद (सल्ल०) की ज़िन्दगी में न पाया जाता था। पूरी सोसायटी में कोई ऐसा न था जो यह कह सकता हो कि एक समाज में चालीस साल तक एक ही जगह रहने पर मुहम्मद (सल्ल०) से किसी ऐसी सिफ़त का तजरिबा उसे हुआ है। इसके बरख़िलाफ़ जिन-जिन लोगों से भी आप (सल्ल०) का मामला हुआ था वह आप (सल्ल०) को एक बहुत ही सच्चे, बेदाग़ और भरोसे के क़ाबिल (अमीन) इनसान की हैसियत ही से जानते थे। पैग़म्बरी से पाँच साल पहले काबा तामीर के सिलसिले में वह मशहूर वाक़िआ पेश आ चुका था जिसमें हजरे-असवद (काला पत्थर) को उसकी जगह पर लगाने के मामले पर क़ुरैश के कई ख़ानदान झगड़ पड़े थे और आपस में तय हुआ था कि कल सुबह पहला शख़्स जो हरम में दाख़िल होगा उसी को पंच मान लिया जाएगा। दूसरे दिन वह शख़्स मुहम्मद (सल्ल०) थे जो वहाँ दाख़िल हुए। आप (सल्ल०) को देखते ही सब लोग पुकार उठे, "यह बिलकुल सच्चा आदमी है। हम इसपर राज़ी हैं। यह तो मुहम्मद है।" इस तरह आप (सल्ल०) को नबी और पैग़म्बर बनाने से पहले अल्लाह तआला क़ुरैश के पूरे क़बीले से भरे मजमे में आप (सल्ल०) के "अमीन" (अमानतदार) होने की गवाही ले चुका था। अब यह गुमान करने की क्या गुंजाइश थी कि जिस शख़्स ने सारी उम्र कभी अपनी ज़िन्दगी के किसी छोटे-से-छोटे मामले में भी झूठ, छल और फ़रेब से काम न लिया था वह अचानक इतना बड़ा झूठ और ऐसा बड़ा छल-फ़रेब लेकर उठ खड़ा हुआ कि अपने ज़ेहन से कुछ बातें गढ़ लीं और उनको पूरे ज़ोर और दावे के साथ ख़ुदा की तरफ़ जोड़ने लगा।

इसी बिना पर अल्लाह तआला नबी (सल्ल०) से कहता है कि उनके इस बेहूदा इलज़ाम के जवाब में उनसे कहो कि ऐ अल्लाह के बन्दो, कुछ अक़्ल से तो काम लो, मैं कोई बाहर से आया हुआ अजनबी आदमी नहीं हूँ, तुम्हारे बीच इससे पहले एक उम्र गुज़ार चुका हूँ, मेरी पिछली ज़िन्दगी को देखते हुए तुम कैसे यह उम्मीद मुझसे कर सकते हो कि मैं ख़ुदा की तालीम और उसके हुक्म के बग़ैर यह क़ुरआन तुम्हारे सामने पेश कर सकता था। (और ज़्यादा तशरीह के लिए देखें-सूरा-28 क़सस, हाशिया-109)

22. यानी अगर ये आयतें ख़ुदा की नहीं हैं और मैं इन्हें ख़ुद गढ़ करके अल्लाह की आयतों की हैसियत से पेश कर रहा हूँ तो मुझसे बड़ा ज़ालिम कोई नहीं। और अगर ये वाक़ई अल्लाह की

आयतें हैं और तुम इनको झुठला रहे हो तो फिर तुमसे बड़ा भी कोई ज़ालिम नहीं।

23. कुछ नादान लोग 'फ़लाह' (कामयाबी) को लम्बी उम्र या दुनियावी ख़ुशहाली, या दुनियावी तरक़्क़ी के मानी में ले लेते हैं, और फिर इस आयत से यह नतीजा निकालना चाहते हैं कि जो शख़्स नुबूवत और पैग़म्बरी का दावा करके जीता रहे, या दुनिया में फले-फूले, या उसकी दावत को बढ़ावा मिले, उसे सच्चा नबी मान लेना चाहिए; क्योंकि उसने फ़लाह पाई। अगर वह सच्चा नबी न होता तो झूठा दावा करते ही मार डाला जाता, या भूखों मार दिया जाता और दुनिया में उसकी बात चलने ही न पाती, लेकिन यह बेवक़ूफ़ी की दलील सिर्फ़ वही शख़्स दे सकता है जो न तो क़ुरआनी लफ़्ज़ (पारिभाषिक शब्द) 'फ़लाह' का मतलब जानता हो, न मुहलत देने के उस क़ानून से वाक़िफ़ हो जो क़ुरआन के बयान के मुताबिक़ अल्लाह तआला ने मुजरिमों के लिए मुक़र्रर किया है, और न यही समझता हो कि इस सिलसिले बयान में यह जुमला किस मानी में आया है।

सबसे पहले तो यह बात कि "मुजरिम फ़लाह नहीं पा सकते" इस मौक़े से इस हैसियत से कही ही नहीं गई कि यह किसी के नुबूवत के दावे को परखने का पैमाना है जिससे आप लोग जाँचकर ख़ुद फ़ैसला कर लें कि जो नुबूवत का दावेदार 'फ़लाह' पा रहा हो उसके दावे को मानें और जो फ़लाह न पा रहा हो उसका इनकार कर दें, बल्कि यहाँ तो यह बात इस मानी में कही गई है कि "मैं यक़ीन के साथ जानता हूँ कि मुजरिमों को फ़लाह हासिल नहीं हो सकती, इस लिए मैं ख़ुद तो यह जुर्म नहीं कर सकता कि नुबूवत का झूठा दावा करूँ, अलबत्ता तुम्हारे बारे में मुझे यक़ीन है कि तुम सच्चे नबी को झुठलाने का जुर्म कर रहे हो, इसलिए तुम्हें फ़लाह और कामयाबी नहीं मिलेगी।"

फिर 'फ़लाह' का लफ़्ज़ भी क़ुरआन में दुनियावी फ़लाह (सांसारिक सफलता) के महदूद मानी में नहीं आया है, बल्कि इससे मुराद वह पायदार कामयाबी है जिसका नतीजा किसी घाटे की सूरत में निकलनेवाला न हो, इस बात से अलग हटकर कि दुनियावी ज़िन्दगी के इस इब्तिदाई मरहले में उसके अन्दर कामयाबी का कोई पहलू हो या न हो। हो सकता है कि गुमराही की तरफ़ बुलानेवाला एक शख़्स दुनिया में मज़े से जिए, ख़ूब फले-फूले और उसकी गुमराही को ख़ूब बढ़ावा मिले, मगर यह क़ुरआन की ज़बान में फ़लाह नहीं, सरासर घाटा है और यह भी हो सकता है कि हक़ (सत्य) की तरफ़ बुलानेवाला एक शख़्स दुनिया में सख़्त मुसीबतों से दोचार हो, दुखों की ज़्यादती से निढाल होकर या ज़ालिमों के ज़ुल्मों का शिकार होकर दुनिया से जल्दी रुख़सत हो जाए, और कोई उसे मानकर न दे, मगर यह क़ुरआन की ज़बान में घाटा नहीं, हक़ीक़ी फ़लाह और कामयाबी है।

इसके अलावा क़ुरआन में जगह-जगह यह बात पूरी तरह खोलकर बयान की गई है कि अल्लाह तआला मुजरिमों को पकड़ने में जल्दी नहीं किया करता, बल्कि उन्हें संभलने के लिए काफ़ी मुहलत देता है, और अगर वे इस मुहलत से नाजाइज़ फ़ायदा उठाकर और ज़्यादा बिगड़ते हैं तो अल्लाह की तरफ़ से उनको ढील दी जाती है और बहुत बार तो उनको नेमतों से नवाज़ा जाता है, ताकि वे अपने नफ़्स की छिपी हुई तमाम शरारतों को पूरी तरह सामने ले आएँ और अपने अमल की बिना पर उस सज़ा के हक़दार हो जाएँ जिसके वे अपनी बुरी सिफ़तों की वजह से

مَا لَا یَضُرُّھُمْ وَلَا یَنْفَعُھُمْ وَیَقُوْلُوْنَ ھٰۤؤُلَآءِ شُفَعَآؤُنَا عِنْدَ اللّٰہِ ؕ قُلْ اَتُنَبِّـُٔوْنَ اللّٰہَ بِمَا لَا یَعْلَمُ فِی السَّمٰوٰتِ وَلَا فِی الْاَرْضِ ؕ سُبْحٰنَہٗ وَتَعٰلٰی

पहुँचा सकते हैं, न फ़ायदा, और कहते यह हैं कि ये अल्लाह के यहाँ हमारे सिफ़ारिशी हैं। ऐ नबी! इनसे कहो, "क्या तुम अल्लाह को उस बात की ख़बर देते हो जिसे वह न आसमानों में जानता है, न ज़मीन में?"[24] पाक है वह और बुलन्द और बरतर है उस

हक़ीक़त में हक़दार हैं। तो अगर किसी झूठे दावेदार की रस्सी को ढील दी जा रही हो और उसपर दुनियावी 'फ़लाह' की बरसात बरस रही हो तो बहुत बड़ी भूल होगी अगर उसकी इस हालत को उसके हिदायत पर होने की दलील समझा जाए। मुहलत देने और नवाज़े जाने से मुताल्लिक ख़ुदा का क़ानून जिस तरह तमाम मुजरिमों के लिए आम है उसी तरह नुबूवत के झूठे दावेदारों के लिए भी है और उनके इससे अलग होने की कोई दलील नहीं है। फिर शैतान को क़ियामत तक के लिए जो मुहलत अल्लाह तआला ने दी है उसमें भी इस इस्तिसना (अपवाद) का कहीं कोई ज़िक्र नहीं है कि तेरे और तो सारे फ़रेब चलने दिए जाएँगे, लेकिन अगर तू अपनी तरफ़ से कोई 'नबी' खड़ा करेगा तो यह फ़रेब न चलने दिया जाएगा।

मुमकिन है कोई शख़्स हमारी इस बात के जवाब में वे आयतें पेश करे जो सूरा-69 हाक़्क़ा आयत, 44 से 47 में बयान हुई हैं कि "अगर मुहम्मद ने ख़ुद गढ़कर कोई बात हमारे नाम से कही होती तो हम उसका हाथ पकड़ लेते और उसके दिल की नस काट डालते।" लेकिन आयत में जो बात कही गई है वह तो यह है कि जो शख़्स वाक़ई में ख़ुदा की तरफ़ से नबी बनाया गया हो वह अगर झूठी बात गढ़कर वह्य की हैसियत से पेश करे तो फ़ौरन पकड़ा जाए। इससे यह दलील देना कि नुबूवत का जो झूठा दावेदार पकड़ा नहीं जा रहा है वह ज़रूर सच्चा है, एक धोखे के सिवा कुछ नहीं है, जिसके लिए ग़लत दलील का सहारा लिया जा रहा है। मुहलत देने और नवाज़े जाने से मुताल्लिक़ ख़ुदा के क़ानून में जो इस्तिसना (अपवाद) इस आयत से साबित हो रहा है वह सिर्फ़ सच्चे नबी के लिए है। इससे यह नतीजा नहीं निकलता कि जो शख़्स नुबूवत का झूठा दावा करे वह भी इससे अलग किया गया है। ज़ाहिर बात है कि सरकारी कर्मचारियों के लिए हुकूमत ने जो क़ानून बनाया हो वह सिर्फ़ उन्हीं लोगों के लिए होगा जो वाक़ई सरकारी कर्मचारी हों। रहे वे लोग जो जाली तौर पर अपने आपको एक सरकारी अधिकारी के रूप में पेश करें तो उनपर नौकरी का क़ानून लागू न होगा, बल्कि उनके साथ वही सूलूक किया जाएगा जो फ़ौजदारी क़ानून के तहत आम बदमाशों और मुजरिमों के साथ किया जाता है। इसके अलावा सूरा हाक़्क़ा की उस आयत में जो कुछ कहा गया है वह भी इस मक़सद के लिए नहीं कहा गया कि लोगों को नबी के परखने का यह पैमाना बताया जाए कि अगर ग़ैब के परदे से कोई सामने आकर उसके दिल की नस अचानक काट ले तो समझें झूठा है वरना मान लें कि सच्चा है। नबी के सच्चे या झूठे होने की जाँच अगर उसकी

عَمَّا يُشْرِكُوْنَ ۞ وَمَا كَانَ النَّاسُ اِلَّآ اُمَّةً وَّاحِدَةً فَاخْتَلَفُوْا ۭ وَلَوْلَا
كَلِمَةٌ سَبَقَتْ مِنْ رَّبِّكَ لَقُضِيَ بَيْنَهُمْ فِيْمَا فِيْهِ يَخْتَلِفُوْنَ ۞
وَيَقُوْلُوْنَ لَوْلَآ اُنْزِلَ عَلَيْهِ اٰيَةٌ مِّنْ رَّبِّهٖ ۚ فَقُلْ اِنَّمَا الْغَيْبُ لِلّٰهِ

शिर्क से जो ये लोग करते हैं।

(19) शुरू में सारे इनसान एक ही उम्मत (समुदाय) थे, बाद में उन्होंने अलग-अलग अक़ीदे और मसलक (पंथ) बना लिए[25], और अगर तेरे रब की तरफ़ से पहले ही एक बात तय न कर ली गई होती तो जिस चीज़ में वे आपस में इख़्तिलाफ़ कर रहे हैं, उसका फ़ैसला कर दिया जाता।[26]

(20) और यह जो वे कहते हैं कि इस नबी पर उसके रब की तरफ़ से कोई निशानी

सीरत, उसके काम और उस चीज़ से जो वह पेश कर रहा हो, मुमकिन न होती तो ऐसे नामुनासिब और ग़लत पैमाने तय करने की ज़रूरत पेश आ सकती थी।

24. किसी चीज़ का अल्लाह के इल्म में न होने का मतलब यह है कि वह सिरे से मौजूद ही नहीं है, इसलिए कि सब कुछ जो मौजूद है अल्लाह के इल्म में है। लिहाज़ा सिफ़ारिशियों के सिरे से न होने के लिए यह एक निहायत लतीफ़ (सूक्ष्म) अन्दाज़े-बयान है कि अल्लाह तआला तो जानता नहीं कि ज़मीन या आसमानो में कोई उसके सामने तुम्हारी सिफ़ारिश करनेवाला है, फिर यह तुम किन सिफ़ारिशियों की उसको ख़बर दे रहे हो?

25. तशरीह के लिए देखें—सूरा-2 बक़रा, हाशिया-230; सूरा-6 अनआम, हाशिया-24।

26. यानी अगर अल्लाह तआला ने पहले ही यह फ़ैसला न कर लिया होता कि हक़ीक़त को इनसानों के हवास (चेतना) से छिपा रखकर उनकी अक़्ल व समझ और ज़मीर व विजदान (अन्तरात्मा और अन्तर्ज्ञान) को आज़माइश में डाला जाएगा और जो इस आज़माइश में नाकाम होकर ग़लत राह पर जाना चाहेंगे उन्हें उस राह पर जाने और चलने का मौक़ा दिया जाएगा, तो हक़ीक़त को आज ही बेनक़ाब करके सारे इख़्तिलाफ़ात (मतभेदों) का फ़ैसला किया जा सकता था।

यहाँ यह बात एक बड़ी ग़लतफ़हमी को दूर करने के लिए बयान की गई है। आमतौर पर आज भी लोग इस उलझन में हैं और क़ुरआन उतरने के वक़्त भी थे कि दुनिया में बहुत से मज़हब (धर्म) पाए जाते हैं और हर मज़हबवाला अपने ही मज़हब को सही समझता है। ऐसी हालत में आख़िर यह फ़ैसला किस तरह होगा कि कौन हक़ पर है और कौन नहीं? इसके बारे में कहा जा रहा है कि मज़हबों का यह इख़्तिलाफ़ दरअस्ल बाद की पैदावार है। शुरू में तमाम इनसानों का मज़हब एक था और वही मज़हब हक़ था, फिर उस हक़ में इख़्तिलाफ़ करके लोग

ع

فَانْتَظِرُوْا اِنِّیْ مَعَكُمْ مِّنَ الْمُنْتَظِرِیْنَ ۝٢٠ وَاِذَآ اَذَقْنَا النَّاسَ رَحْمَةً
مِّنْۢ بَعْدِ ضَرَّآءَ مَسَّتْهُمْ اِذَا لَهُمْ مَّكْرٌ فِیْۤ اٰیَاتِنَا ؕ قُلِ اللّٰهُ اَسْرَعُ

क्यों न उतारी गई,[27] तो इनसे कहो, "ग़ैब" (परोक्ष) का मालिक और मुख़्तार (अधिकारी) तो अल्लाह ही है, अच्छा, इन्तिज़ार करो, मैं भी तुम्हारे साथ इन्तिज़ार करता हूँ।"[28]

(21) लोगों का हाल यह है कि मुसीबत के बाद जब हम उनको रहमत का मज़ा

अलग-अलग अक़ीदे और मज़हब बनाते चले गए। अब अगर मज़हबों की इस लड़ाई का फ़ैसला तुम्हारे नज़दीक अक़्ल व समझ के सही इस्तेमाल के बजाए सिर्फ़ इसी तरह हो सकता है कि ख़ुदा ख़ुद सच को बेनक़ाब करके सामने ले आए तो यह मौजूदा दुनियावी ज़िन्दगी में नहीं होगा। दुनिया की यह ज़िन्दगी तो है ही इम्तिहान के लिए, और यहाँ सारा इम्तिहान इसी बात का है कि तुम हक़ को देखे बग़ैर अक़्ल व समझ से काम लेते हुए उसे पहचानते हो या नहीं।

27. यानी इस बात की निशानी कि यह वाक़ई सच्चा नबी है और जो कुछ पेश कर रहा है वह बिलकुल दुरुस्त है। इस सिलसिले में यह बात सामने रहे कि निशानी के लिए उनकी यह माँग कुछ इस बिना पर न थी कि वे सच्चे दिल से हक़ की दावत को क़बूल करने और उसके तक़ाज़ों के मुताबिक़ अपने अख़लाक़ को, आदतों को, समाज और रहन-सहन के निज़ाम को, ग़रज़ अपनी पूरी ज़िन्दगी को ढाल लेने के लिए तैयार थे और बस इस वजह से ठहरे हुए थे कि नबी की बात को सच्चा साबित करनेवाली कोई निशानी अभी उन्होंने ऐसी नहीं देखी थी जिससे उन्हें उसकी नुबूवत का यक़ीन आ जाए। अस्ल बात यह थी कि निशानी की यह माँग सिर्फ़ ईमान न लाने के लिए एक बहाने के रूप में पेश की जाती थी, जो कुछ भी उनको दिखाया जाता उसके बाद वे यही कहते कि कोई निशानी तो हमको दिखाई ही नहीं गई। इसलिए कि वे ईमान लाना चाहते ही न थे। दुनियावी ज़िन्दगी के ज़ाहिरी पहलू को इख़्तियार करने में यह जो आज़ादी उन्हें मिली हुई थी कि मन की ख़ाहिशों और दिलचस्पियों के मुताबिक़ जिस तरह चाहें काम करें और जिस चीज़ में लज़्ज़त या फ़ायदा महसूस करें उसके पीछे लग जाएँ, इसको छोड़कर ये ऐसी ग़ैबी हक़ीक़तों (परोक्ष सम्बन्धी तथ्यों यानी तौहीद और आख़िरत) को मानने के लिए तैयार न थे जिन्हें मान लेने के बाद उनको अपनी ज़िन्दगी का सारा निज़ाम मुस्तक़िल अख़लाक़ी उसूलों की बन्दिश में बाँधना पड़ जाता।

28. यानी जो कुछ अल्लाह ने उतारा है वह तो मैंने पेश कर दिया, और जो उसने नहीं उतारा वह मेरे और तुम्हारे लिए 'ग़ैब' है जिसपर सिवाए ख़ुदा के किसी का इख़्तियार नहीं, वह चाहे तो उतारे और न चाहे तो न उतारे। अब अगर तुम्हारा ईमान लाना इसी पर टिका है कि जो कुछ ख़ुदा ने नहीं उतारा है वह उतरे तो उसके इन्तिज़ार में बैठे रहो, मैं भी देखूँगा कि तुम्हारी यह ज़िद पूरी की जाती है या नहीं।

مَكْرًا ۗ إِنَّ رُسُلَنَا يَكْتُبُونَ مَا تَمْكُرُونَ ﴿٢١﴾ هُوَ الَّذِي يُسَيِّرُكُمْ فِي
الْبَرِّ وَالْبَحْرِ ۖ حَتَّىٰ إِذَا كُنتُمْ فِي الْفُلْكِ وَجَرَيْنَ بِهِم بِرِيحٍ طَيِّبَةٍ
وَفَرِحُوا بِهَا جَاءَتْهَا رِيحٌ عَاصِفٌ وَجَاءَهُمُ الْمَوْجُ مِن كُلِّ مَكَانٍ

चखाते हैं तो फ़ौरन ही वे हमारी निशानियों के मामले में चालबाज़ियाँ शुरू कर देते हैं।[29] इनसे कहो, "अल्लाह अपनी चाल में तुमसे ज़्यादा तेज़ है। उसके फ़रिश्ते तुम्हारी सब मक्कारियों को लिख रहे हैं।"[30] (22) वह अल्लाह ही है जो तुमको ख़ुश्की और तरी (थल-जल) में चलाता है। चुनाँचे जब तुम नावों में सवार होकर मुवाफ़िक़ (अनुकूल) हवा पर ख़ुशी-ख़ुशी सफ़र कर रहे होते हो और फिर यकायक मुख़ालिफ़ हवा का ज़ोर होता है

29. यह फिर उसी अकाल की तरफ़ इशारा है जिसका ज़िक्र आयत नं. 11 और 12 में गुज़र चुका है। मतलब यह है कि तुम निशानी आख़िर किस मुँह से माँगते हो। अभी जो अकाल तुमपर गुज़रा है उसमें तुम अपने उन माबूदों (उपास्यों) से मायूस हो गए थे जिन्हें तुमने अल्लाह के यहाँ अपना सिफ़ारिशी ठहरा रखा था और जिनके बारे में कहा करते थे कि फ़ुलाँ आस्ताने की नियाज़ तो अचूक नुस्ख़ा है, और फ़ुलाँ दरगाह पर चढ़ावा चढ़ाने की देर है कि मुराद पूरी हो जाती है। तुमने देख लिया कि सिर्फ़ नाम के इन ख़ुदाओं के हाथ में कुछ नहीं है और सारे इख़्तियारात का मालिक सिर्फ़ अल्लाह है। इसी वजह से तो आख़िरकार तुम अल्लाह ही से दुआएँ माँगने लगे थे। क्या यह काफ़ी निशानी न थी कि तुम्हें उस तालीम के हक़ होने का यक़ीन आ जाता जो मुहम्मद (सल्ल॰) तुमको दे रहे हैं? मगर उस निशानी को देखकर तुमने क्या किया? ज्यों ही कि अकाल दूर हुआ और रहमत की बारिश ने तुम्हारी मुसीबत ख़त्म कर दी, तुमने उस बला के आने और फिर उसके दूर होने के बारे में हज़ार तरह की वजहें बयान करनी और तावीलें (चालबाज़ियाँ) करनी शुरू कर दीं, ताकि तौहीद के मानने से बच सको और अपने शिर्क पर जमे रह सको। अब जिन लोगों ने अपने ज़मीर (अन्तरात्मा) को इस हद तक ख़राब कर लिया हो उन्हें आख़िर कौन-सी निशानी दिखाई जाए और उसके दिखाने से फ़ायदा क्या है?

30. अल्लाह की चाल से मुराद यह है कि अगर तुम हक़ीक़त को नहीं मानते और उसके मुताबिक़ अपना रवैया दुरुस्त नहीं करते तो वह तुम्हें उसी बग़ावतवाले रास्ते पर चलते रहने की छूट दे देगा, तुमको जीते जी अपने रिज़्क़ और नेमतों से नवाज़ता रहेगा जिससे तुम्हारी ज़िन्दगी का नशा यूँ ही तुम्हें मस्त किए रखेगा, और इस मस्ती के दौरान में जो कुछ तुम करोगे वह सब अल्लाह के फ़रिश्ते ख़ामोशी के साथ बैठे लिखते रहेंगे, यहाँ तक कि अचानक मौत का पैग़ाम आ जाएगा और तुम अपने करतूतों का हिसाब देने के लिए पकड़ लिए जाओगे।

وَظَنُّوْٓا اَنَّهُمْ اُحِيْطَ بِهِمْ ۙ دَعَوُا اللّٰهَ مُخْلِصِيْنَ لَهُ الدِّيْنَ ۚ لَئِنْ اَنْجَيْتَنَا
مِنْ هٰذِهٖ لَنَكُوْنَنَّ مِنَ الشّٰكِرِيْنَ ﴿٢٢﴾ فَلَمَّآ اَنْجٰىهُمْ اِذَا هُمْ يَبْغُوْنَ
فِى الْاَرْضِ بِغَيْرِ الْحَقِّ ؕ يٰٓاَيُّهَا النَّاسُ اِنَّمَا بَغْيُكُمْ عَلٰٓى اَنْفُسِكُمْ ۙ
مَّتَاعَ الْحَيٰوةِ الدُّنْيَا ۫ ثُمَّ اِلَيْنَا مَرْجِعُكُمْ فَنُنَبِّئُكُمْ بِمَا كُنْتُمْ
تَعْمَلُوْنَ ﴿٢٣﴾ اِنَّمَا مَثَلُ الْحَيٰوةِ الدُّنْيَا كَمَآءٍ اَنْزَلْنٰهُ مِنَ السَّمَآءِ
فَاخْتَلَطَ بِهٖ نَبَاتُ الْاَرْضِ مِمَّا يَاْكُلُ النَّاسُ وَالْاَنْعَامُ ؕ حَتّٰٓى اِذَآ
اَخَذَتِ الْاَرْضُ زُخْرُفَهَا وَازَّيَّنَتْ وَظَنَّ اَهْلُهَآ اَنَّهُمْ قٰدِرُوْنَ

और हर तरफ़ से मौजों के थपेड़े लगते हैं और मुसाफ़िर समझ लेते हैं कि तूफ़ान में घिर गए, उस वक़्त सब अपने दीन को अल्लाह ही के लिए ख़ालिस करके उससे दुआएँ माँगते हैं कि "अगर तूने हमें इस बला से नजात दे दी तो हम शुक्रगुज़ार बन्दे बनेंगे।"[31]
(23) मगर जब वह उनको बचा लेता है तो फिर वही लोग सच्चाई से मुँह मोड़कर धरती में बग़ावत करने लगते हैं। लोगो! तुम्हारी यह बग़ावत उल्टी तुम्हारे ही ख़िलाफ़ पड़ रही है। (24) दुनिया के कुछ दिनों के मज़े हैं (लूट लो), फिर हमारी तरफ़ तुम्हें पलटकर आना है, उस वक़्त हम तुम्हें बता देंगे कि तुम क्या कुछ करते रहे हो। दुनिया की यह ज़िन्दगी (जिसके नशे में मस्त होकर तुम हमारी निशानियों से ग़फ़लत बरत रहे हो) उसकी मिसाल ऐसी है जैसे आसमान से हमने पानी बरसाया तो ज़मीन की पैदावार, जिसे आदमी और जानवर सब खाते हैं, ख़ूब घनी हो गई, फिर ठीक उस वक़्त जबकि ज़मीन अपनी बहार पर थी और खेतियाँ बनी-सँवरी खड़ी थीं और उनके मालिक समझ रहे थे

---

31. यह तौहीद के हक़ होने की निशानी हर इनसान के नफ़्स (अन्तर्मन) में मौजूद है। जब तक हालात ठीक-ठाक रहते हैं, इनसान ख़ुदा को भूला और दुनिया की ज़िन्दगी पर फूला रहता है। जहाँ हालात ख़राब हुए और वे सब सहारे जिनके बल पर वह जी रहा था टूट गए, फिर कट्टर मुशरिक (बहुदेववादी) और सख़्त-से-सख़्त नास्तिक के दिल से भी यह गवाही उबलनी शुरू हो जाती है कि इस सारे आलम पर कोई ख़ुदा हुकूमत कर रहा है और वह एक ही ग़ालिब (प्रभुत्वशाली) और ताक़तवर ख़ुदा है। (देखें — सूरा-6 अनआम, हाशिया-29)

عَلَيْهَآ ۙ اَتٰىهَآ اَمْرُنَا لَيْلًا اَوْ نَهَارًا فَجَعَلْنٰهَا حَصِيْدًا كَاَنْ لَّمْ تَغْنَ
بِالْاَمْسِ ؕ كَذٰلِكَ نُفَصِّلُ الْاٰيٰتِ لِقَوْمٍ يَّتَفَكَّرُوْنَ ﴿۲۴﴾ وَاللّٰهُ يَدْعُوْٓا
اِلٰى دَارِ السَّلٰمِ ؕ وَيَهْدِيْ مَنْ يَّشَآءُ اِلٰى صِرَاطٍ مُّسْتَقِيْمٍ ﴿۲۵﴾ لِلَّذِيْنَ
اَحْسَنُوا الْحُسْنٰى وَزِيَادَةٌ ؕ وَلَا يَرْهَقُ وُجُوْهَهُمْ قَتَرٌ وَّلَا ذِلَّةٌ ؕ اُولٰٓئِكَ
اَصْحٰبُ الْجَنَّةِ ۚ هُمْ فِيْهَا خٰلِدُوْنَ ﴿۲۶﴾ وَالَّذِيْنَ كَسَبُوا السَّيِّاٰتِ جَزَآءُ
سَيِّئَةٍ بِمِثْلِهَا ۙ وَتَرْهَقُهُمْ ذِلَّةٌ ؕ مَا لَهُمْ مِّنَ اللّٰهِ مِنْ عَاصِمٍ ۚ كَاَنَّمَآ

कि अब हम उनसे फ़ायदा उठाने की क़ुदरत रखते हैं, यकायक रात को या दिन को हमारा हुक्म आ गया और हमने उसे ऐसा ग़ारत करके रख दिया कि मानो कल वहाँ कुछ था ही नहीं। इस तरह हम निशानियाँ खोल-खोलकर पेश करते हैं उन लोगों के लिए जो सोचने-समझनेवाले हैं। (25) (तुम इस ख़त्म हो जानेवाली ज़िन्दगी के धोखे में मुब्तला हो रहे हो) और अल्लाह तुम्हें 'दारुस्सलाम' (सलामती के घर) की तरफ़ बुला रहा है।[32] (हिदायत उसके इख़्तियार में है) जिसे वह चाहता है, सीधा रास्ता दिखा देता है। (26) जिन लोगों ने भलाई का तरीक़ा अपनाया, उनके लिए भलाई है और साथ में मेहरबानी भी[33], उनके चेहरों पर कालिख और रुसवाई न छाएगी। वे जन्नत के हक़दार हैं जहाँ वे हमेशा रहेंगे। (27) और जिन लोगों ने बुराइयाँ कमाई, उनकी बुराई जैसी है वैसा ही वे बदला पाएँगे।[34] रुसवाई उनपर छा जाएगी, कोई अल्लाह से उनको

---

32. यानी दुनिया में ज़िन्दगी गुज़ारने के उस तरीक़े की तरफ़ जो आख़िरत की ज़िन्दगी में तुमको दारुस्सलाम का हक़दार बनाए। दारुस्सलाम से मुराद है जन्नत और इसके मानी हैं सलामती का घर, वह जगह जहाँ कोई आफ़त, कोई नुक़सान, कोई दुख और कोई तकलीफ़ न हो।
33. यानी उनको सिर्फ़ उनकी नेकी के मुताबिक़ ही बदला नहीं मिलेगा, बल्कि अल्लाह अपने फ़ज़्ल से उनको और इनाम भी देगा।
34. यानी नेकी करनेवालों के बरख़िलाफ़ बुरे काम करनेवालों के साथ मामला यह होगा कि जितनी बुराई होगी, उतनी ही सज़ा दी जाएगी। ऐसा न होगा कि जुर्म से ज़र्रा बराबर भी ज़्यादा सज़ा दी जाए। (और ज़्यादा तशरीह के लिए देखें— सूरा-27 नम्ल, हाशिया-109 अ)

أُغْشِيَتْ وُجُوهُهُمْ قِطَعًا مِّنَ الَّيْلِ مُظْلِمًا ۚ أُولَٰٓئِكَ أَصْحٰبُ النَّارِ ۖ
هُمْ فِيهَا خٰلِدُونَ ﴿٢٧﴾ وَيَوْمَ نَحْشُرُهُمْ جَمِيعًا ثُمَّ نَقُولُ لِلَّذِينَ أَشْرَكُوا
مَكَانَكُمْ أَنتُمْ وَشُرَكَآؤُكُمْ ۚ فَزَيَّلْنَا بَيْنَهُمْ ۖ وَقَالَ شُرَكَآؤُهُم مَّا
كُنتُمْ إِيَّانَا تَعْبُدُونَ ﴿٢٨﴾ فَكَفَىٰ بِاللَّهِ شَهِيدًا بَيْنَنَا وَبَيْنَكُمْ إِن كُنَّا
عَنْ عِبَادَتِكُمْ لَغٰفِلِينَ ﴿٢٩﴾ هُنَالِكَ تَبْلُوا كُلُّ نَفْسٍ مَّا أَسْلَفَتْ

बचानेवाला न होगा, उनके चेहरों पर ऐसा अंधेरा छाया हुआ होगा[35] जैसे रात के काले परदे उनपर पड़े हुए हों। वे दोज़ख़ के हक़दार हैं, जहाँ वे हमेशा रहेंगे। (28) जिस दिन हम उन सबको एक साथ (अपनी अदालत में) इकट्ठा करेंगे, फिर उन लोगों से जिन्होंने शिर्क किया है, कहेंगे कि ठहर जाओ तुम भी और तुम्हारे बनाए हुए शरीक भी, फिर हम उनके बीच से अजनबियत का परदा हटा देंगे[36] और उनके शरीक कहेंगे कि "तुम हमारी इबादत तो नहीं करते थे। (29) हमारे और तुम्हारे बीच अल्लाह की गवाही काफ़ी है कि (तुम अगर हमारी इबादत करते भी थे तो) हम तुम्हारी उस इबादत से बिलकुल बेख़बर थे।"[37] (30) उस वक़्त हर शख़्स अपने किए का मज़ा चख लेगा, सब अपने सच्चे

---

35. वह अंधेरा जो मुजरिमों के चेहरे पर पकड़े जाने और बचाव से मायूस हो जाने के बाद छा जाता है।

36. अस्ल अरबी में 'फ़ज़य्यलना बैनहुम' के अलफ़ाज़ हैं। इसका मतलब कुछ मुफ़स्सिरों (टीकाकारों) ने यह लिया है कि हम उनका आपसी रब्त और ताल्लुक़ तोड़ देंगे, ताकि किसी ताल्लुक़ की बिना पर वे एक-दूसरे का लिहाज़ न करें। लेकिन यह मतलब मुहावरे के मुताबिक़ नहीं है। अरबी मुहावरे के हिसाब से इसका सही मतलब यह है कि हम उनके बीच मे फ़र्क़ पैदा कर देंगे या उनको एक-दूसरे से अलग कर देंगे। इसी मतलब को बयान करने के लिए हमने यह तर्ज़े-बयान इख़्तियार किया है कि "उनके बीच अजनबियत का परदा हटा देंगे," यानी मुशरिक लोग और उनके माबूद आमने-सामने खड़े होंगे और दोनों गरोहों की अलग हैसियत एक-दूसरे पर ज़ाहिर होगी, मुशरिक जान लेंगे कि ये हैं वे जिनकी हम दुनिया में इबादत करते थे, और उनके माबूद जान लेंगे कि ये वे हैं जो हमारी इबादत किया करते थे।

37. यानी वे तमाम फ़रिश्ते जिनको दुनिया में देवी और देवता ठहराकर पूजा गया, और वे तमाम जिन्न, रूहें, गुज़रे हुए लोग, बाप-दादा, पैग़म्बर, वली, शहीद वग़ैरा जिनको ख़ुदाई सिफ़तों में

रुकूअ़ 4

وَرُدُّوٓا۟ إِلَى ٱللَّهِ مَوْلَىٰهُمُ ٱلْحَقِّ ۖ وَضَلَّ عَنْهُم مَّا كَانُوا۟ يَفْتَرُونَ ﴿٣٠﴾
قُلْ مَن يَرْزُقُكُم مِّنَ ٱلسَّمَآءِ وَٱلْأَرْضِ أَمَّن يَمْلِكُ ٱلسَّمْعَ
وَٱلْأَبْصَـٰرَ وَمَن يُخْرِجُ ٱلْحَىَّ مِنَ ٱلْمَيِّتِ وَيُخْرِجُ ٱلْمَيِّتَ مِنَ ٱلْحَىِّ
وَمَن يُدَبِّرُ ٱلْأَمْرَ ۚ فَسَيَقُولُونَ ٱللَّهُ ۚ فَقُلْ أَفَلَا تَتَّقُونَ ﴿٣١﴾ فَذَٰلِكُمُ
ٱللَّهُ رَبُّكُمُ ٱلْحَقُّ ۖ فَمَاذَا بَعْدَ ٱلْحَقِّ إِلَّا ٱلضَّلَـٰلُ ۖ فَأَنَّىٰ تُصْرَفُونَ ﴿٣٢﴾

मालिक की तरफ़ फेर दिए जाएँगे और वे सारे झूठ जो उन्होंने गढ़ रखे थे, गुम हो जाएँगे।

(31) इनसे पूछो, कौन तुमको आसमान और ज़मीन से रोज़ी देता है? ये सुनने और देखने की ताक़त किसके इख़्तियार में है? कौन बेजान में से जानदार को और जानदार में से बेजान को निकालता है? कौन इस दुनिया के निज़ाम की तदबीर कर रहा है? वे ज़रूर कहेंगे कि अल्लाह। कहो, फिर तुम (हक़ीक़त के ख़िलाफ़ चलने से) परहेज़ नहीं करते? (32) तब तो यही अल्लाह तुम्हारा हक़ीक़ी रब है।[38] फिर हक़ (सत्य) के बाद गुमराही के सिवा और क्या बाक़ी रह गया? आख़िर यह तुम किधर फिराए जा रहे हो?[39]

शरीक ठहराकर वे हक़ उन्हें अदा किए गए जो दर-अस्ल ख़ुदा के हक़ थे, वहाँ अपनी परस्तिश करनेवालों से साफ़ कह देंगे कि हमें तो पता तक न था कि तुम हमारी इबादत कर रहे हो। तुम्हारी कोई दुआ, कोई दरख़्वास्त, कोई पुकार और फ़रियाद, कोई नज़्रो-नियाज़, कोई चढ़ावे की चीज़, तुम्हारी तरफ़ से कोई तारीफ़ और बड़ाई बयान करना और हमारे नाम की जाप हम तक नहीं पहुँची और न तुम्हारा हमें कोई सजदा करना, हमारे आस्ताने को चूमना-चाटना और दरगाह के चक्कर लगाना हम तक पहुँचा है।

38. यानी अगर ये सारे काम अल्लाह के हैं, जैसा कि तुम ख़ुद मानते हो, तब तो तुम्हारा हक़ीक़ी परवरदिगार, मालिक, स्वामी और तुम्हारी बन्दगी व इबादत का हक़दार अल्लाह ही हुआ। ये दूसरे जिनका इन कामों में कोई हिस्सा नहीं आख़िर वे रब होने में कहाँ से साझीदार हो गए?

39. ख़याल रहे कि ख़िताब आम लोगों से है और उनसे सवाल यह नहीं किया जा रहा है कि "तुम किधर फिरे जाते हो" बल्कि यह है कि "तुम किधर फिराए जा रहे हो।" इससे साफ़ ज़ाहिर है कि कोई ऐसा गुमराह करनेवाला शख़्स या गरोह मौजूद है जो लोगों को सही रुख़ से हटाकर ग़लत रुख़ पर फेर रहा है। इसी बिना पर लोगों से यह कहा जा रहा है कि तुम अन्धे बनकर

كَذٰلِكَ حَقَّتْ كَلِمَتُ رَبِّكَ عَلَى الَّذِيْنَ فَسَقُوْٓا اَنَّهُمْ لَا يُؤْمِنُوْنَ ﴿٣٣﴾
قُلْ هَلْ مِنْ شُرَكَآىِٕكُمْ مَّنْ يَّبْدَؤُا الْخَلْقَ ثُمَّ يُعِيْدُهٗ ؕ قُلِ اللّٰهُ يَبْدَؤُا

(33) (ऐ नबी! देखो,) इस तरह नाफ़रमानी करनेवालों पर तुम्हारे रब की बात सच्ची हो गई कि वे मानकर न देंगे।[40]

(34) इनसे पूछो, "तुम्हारे ठहराए हुए शरीकों में कोई है जो पैदाइश की शुरुआत भी करता हो और फिर उसे दोहराए भी?"— कहो, "वह सिर्फ़ अल्लाह है जो पैदाइश की इब्तिदा भी करता है और उसे दोहराता भी है,"[41] फिर तुम यह किस उलटी राह पर

ग़लत रहनुमाई करनेवालों के पीछे क्यों चले जा रहे हो, अपनी अक़्ल से काम लेकर सोचते क्यों नहीं कि जब हक़ीक़त यह है, तो आख़िर यह तुमको किधर चलाया जा रहा है। सवाल करने का यह अन्दाज़ जगह-जगह ऐसे मौक़ों पर क़ुरआन में अपनाया गया है, और हर जगह गुमराह करनेवालों का नाम लेने के बजाए उनको परदे में छिपा दिया गया है, ताकि उनकी पैरवी करनेवाले ठण्डे दिल से अपने मामले पर ग़ौर कर सकें, और किसी को यह कहकर उन्हें भड़काने और उनका दिमाग़ी तवाज़ुन (सन्तुलन) बिगाड़ देने का मौक़ा न मिले कि देखो ये तुम्हारे बुज़ुर्गों और पेशवाओं पर चोटें की जा रही हैं। इसमें इस बात का कि तबलीग़ कैसे की जाए, एक अहम नुक्ता छिपा है जिससे ग़ाफ़िल न रहना चाहिए।

40. यानी ऐसी खुली-खुली और सबकी समझ में आ जानेवाली दलीलों से बात समझाई जाती है, लेकिन जिन्होंने न मानने का फ़ैसला कर लिया है वे अपनी ज़िद की बिना पर किसी तरह मानकर नहीं देते।

41. पैदाइश की शुरुआत के बारे में तो शिर्क करनेवाले मानते ही थे कि यह सिर्फ़ अल्लाह का काम है, उनके ठहराए हुए साझीदारों में से किसी का इस काम में कोई हिस्सा नहीं। रहा दोबारा पैदा करना, तो ज़ाहिर है कि जो शुरू में पैदा करनेवाला है वही दोबारा भी पैदा कर सकता है, मगर जो शुरू ही में पैदा करने की क़ुदरत न रखता हो वह किस तरह दोबारा पैदा करने की क़ुदरत रख सकता है। यह बात अगरचे साफ़ तौर पर एक अक़्ल में आनेवाली बात है, और ख़ुद शिर्क करनेवालों के दिल भी अन्दर से इसकी गवाही देते थे कि बात बिलकुल ठिकाने की है, लेकिन उन्हें इसका इक़रार करने में इस वजह से झिझक थी कि उसे मान लेने के बाद आख़िरत का इनकार मुश्किल हो जाता है। यही वजह है कि ऊपर के सवालों पर तो अल्लाह ने फ़रमाया कि वे ख़ुद कहेंगे कि ये काम अल्लाह के हैं, मगर यहाँ इसके बजाए नबी (सल्ल०) से कहा जाता है कि तुम डंके की चोट पर कहो कि यह शुरू में पैदा करने और दोबारा पैदा करने का काम भी अल्लाह ही का है।

الْخَلْقَ ثُمَّ يُعِيدُهُ فَأَنَّىٰ تُؤْفَكُونَ ﴿٣٤﴾ قُلْ هَلْ مِن شُرَكَائِكُم مَّن
يَهْدِي إِلَى الْحَقِّ ۚ قُلِ اللَّهُ يَهْدِي لِلْحَقِّ ۗ أَفَمَن يَهْدِي إِلَى الْحَقِّ أَحَقُّ
أَن يُتَّبَعَ أَمَّن لَّا يَهِدِّي إِلَّا أَن يُهْدَىٰ ۖ فَمَا لَكُمْ كَيْفَ تَحْكُمُونَ ﴿٣٥﴾

चलाए जा रहे हो?[42]

(35) इनसे पूछो, तुम्हारे ठहराए हुए शरीकों में कोई ऐसा भी है जो हक़ की तरफ़ रहनुमाई करता हो?[43] — कहो, वह सिर्फ़ अल्लाह है जो हक़ की तरफ़ रहनुमाई करता है। फिर भला बताओ, जो हक़ की तरफ़ रहनुमाई करता है वह इसका ज़्यादा हक़दार है कि उसकी पैरवी की जाए या वह जो ख़ुद राह नहीं पाता, सिवाए इसके कि उसकी रहनुमाई की जाए? आख़िर तुम्हें हो क्या गया है, कैसे उलटे-उलटे फ़ैसले करते हो?

---

42. यानी जब तुम्हारी शुरुआत का सिरा भी अल्लाह के हाथ में है और इन्तिहा का सिरा भी उसी के हाथ में, तो ख़ुद अपना भला चाहनेवाले बनकर ज़रा सोचो कि आख़िर तुम्हें यह क्या समझाया जा रहा है कि इन दोनों सिरों के बीच में अल्लाह के सिवा किसी और को तुम्हारी बन्दगियों और नियाज़मन्दियों का हक़ पहुँच गया है।

43. यह एक बहुत ही अहम सवाल है जिसको ज़रा तफ़सील के साथ समझ लेना चाहिए। दुनिया में इनसान की ज़रूरतों का दायरा सिर्फ़ इसी हद तक महदूद नहीं है कि उसको खाने-पीने, पहनने और ज़िन्दगी बसर करने का सामान हासिल हो और आफ़तों, मुसीबतों और नुक़सानों से वह महफ़ूज़ रहे, बल्कि उसकी एक ज़रूरत (और हक़ीक़त में सबसे बड़ी ज़रूरत) यह भी है कि उसे दुनिया में ज़िन्दगी गुज़ारने का सही तरीक़ा मालूम हो और वह जाने कि अपने आपके साथ, अपनी क़ुव्वतों और क़ाबिलियतों के साथ, उस सरो-सामान के साथ जो ज़मीन पर उसके इस्तेमाल में हैं, उन अनगिनत इनसानों के साथ जिनसे अलग-अलग हैसियतों में उसको साबिक़ा पेश आता है, और मजमूई तौर पर इस कायनात के निज़ाम के साथ जिसके मातहत रहकर ही बहरहाल उसको काम करना है, वह क्या और किस तरह मामला करे जिससे उसकी ज़िन्दगी मजमूई हैसियत से कामयाब हो और उसकी कोशिशें और मेहनतें ग़लत राहों में ख़र्च होकर तबाही व बरबादी पर ख़त्म न हों। इसी सही तरीक़े का नाम 'हक़' है, और जो रहनुमाई इस तरीक़े की तरफ़ इनसान को ले जाए वही 'हक़' की हिदायत' है। अब क़ुरआन तमाम मुशरिकों से और उन सब लोगों से, जो पैग़म्बर की तालीम को मानने से इनकार करते हैं, यह पूछता है कि तुम ख़ुदा के सिवा जिन-जिनकी बन्दगी करते हो उनमें कोई है जो तुम्हारे लिए 'सच्ची हिदायत' हासिल करने का ज़रिआ बनता हो या बन सकता हो? — ज़ाहिर है कि इसका जवाब

'नहीं' के सिवा और कुछ नहीं है। इसलिए कि इनसान ख़ुदा के सिवा जिनकी बन्दगी करता है वे दो बड़ी क़िस्मों में बँटे हैं –

एक वे देवियाँ, देवता और ज़िन्दा या मुर्दा इनसान जिनकी परस्तिश की जाती है। सो उनकी तरफ़ तो इनसान इस मक़सद के लिए रुख़ करता है कि ग़ैर-फ़ितरी तरीक़े से वे उसकी ज़रूरतें पूरी करें और उनको आफ़तों से बचाएँ। रही सही रास्ते की हिदायत, तो वह न कभी उनकी तरफ़ से आई, न कभी किसी मुशरिक ने उसके लिए उनकी तरफ़ रुख़ किया, और न कोई मुशरिक यह कहता है कि उसके ये माबूद (उपास्य) उसे अख़लाक़, समाज, रहन-सहन, तहज़ीबो-तमद्दुन, रोज़ी कमाने और कारोबार करने, सियासत, क़ानून, अदालत वग़ैरा के उसूल सिखाते हैं।

दूसरे वे इनसान जिनके बनाए हुए उसूलों और क़ानूनों की पैरवी और इताअत की जाती है, सो वे रहनुमा तो ज़रूर हैं मगर सवाल यह है कि क्या वाक़ई में वे 'हक़ के रहनुमा' भी हैं या हो सकते हैं? क्या उनमें से किसी का इल्म भी उन तमाम हक़ीक़तों पर हावी है जिनको जानना इनसानी ज़िन्दगी के सही उसूल बनाने के लिए ज़रूरी है? क्या उनमें से किसी की नज़र भी उस पूरे दायरे पर फैलती है जिसमें इनसानी ज़िन्दगी से ताल्लुक़ रखनेवाले मसाइल फैले हुए हैं? क्या उनमें से कोई भी उन कमज़ोरियों से, उन तास्सुबात (पक्षपातों) से, उन व्यक्तिगत या गरोही दिलचस्पियों से, उन मक़सदों और ख़ाहिशों से, और उन रुझानों और मैलानों से परे है जो इनसानी समाज के लिए मुंसिफ़ाना (न्यायपूर्ण) क़ानून बनाने में रुकावट होते हैं? अगर जवाब 'न' में है, और ज़ाहिर है कि कोई सही दिमाग़ का आदमी इन सवालों का जवाब 'हाँ' में नहीं दे सकता, तो आख़िर ये लोग 'हक़ की हिदायत देनेवाले' कैसे हो सकते हैं?

इसी बिना पर क़ुरआन यह सवाल करता है कि लोगो, तुम्हारे इन मज़हबी माबूदों और सामाजिक ख़ुदाओं में कोई ऐसा भी है जो सीधी राह की तरफ़ तुम्हारी रहनुमाई करनेवाला हो? ऊपर के सवालात के साथ मिलकर यह आख़िरी सवाल दीन व मज़हब के पूरे मसले का फ़ैसला कर देता है। इनसान की सारी ज़रूरतें दो ही क़िस्म की हैं। एक क़िस्म की ज़रूरतें ये हैं कि कोई उसका पालनहार हो, कोई ऐसा हो जिसकी वह पनाह चाहे, कोई दुआओं का सुननेवाला और ज़रूरतों का पूरा करनेवाला हो जिसका मुस्तक़िल सहारा इस असबाब (कारणों और साधनों) की दुनिया के कमज़ोर सहारों के बीच रहते हुए वह थाम सके। सो ऊपर के सवालों ने फ़ैसला कर दिया कि इस ज़रूरत को पूरा करनेवाला ख़ुदा के सिवा कोई नहीं है। दूसरी क़िस्म की ज़रूरतें ये हैं कि कोई ऐसा रहनुमा हो जो दुनिया में ज़िन्दगी गुज़ारने के सही उसूल बताए और जिसके दिए हुए ज़िन्दगी के क़ानूनों की पैरवी पूरे एतिमाद व इत्मीनान के साथ की जा सके। सो इस आख़िरी सवाल ने उसका फ़ैसला भी कर दिया कि वह भी सिर्फ़ ख़ुदा ही है। इसके बाद ज़िद और हठधर्मी के सिवा कोई चीज़ बाक़ी नहीं रह जाती जिसकी बिना पर इनसान शिर्क की तालीम देनेवाले मज़हबों और समाज, अख़लाक़ और सियासत के ग़ैर-मज़हबी (Secular) उसूलों से चिमटा रहे।

وَمَا يَتَّبِعُ اَكْثَرُهُمْ اِلَّا ظَنًّا ؕ اِنَّ الظَّنَّ لَا يُغْنِىْ مِنَ الْحَقِّ شَيْـًٔا ؕ اِنَّ
اللّٰهَ عَلِيْمٌۢ بِمَا يَفْعَلُوْنَ ﴿۳۶﴾ وَمَا كَانَ هٰذَا الْقُرْاٰنُ اَنْ يُّفْتَرٰى مِنْ دُوْنِ
اللّٰهِ وَلٰكِنْ تَصْدِيْقَ الَّذِىْ بَيْنَ يَدَيْهِ وَتَفْصِيْلَ الْكِتٰبِ لَا رَيْبَ
فِيْهِ مِنْ رَّبِّ الْعٰلَمِيْنَ ﴿۳۷﴾ اَمْ يَقُوْلُوْنَ افْتَرٰىهُ ؕ قُلْ فَاْتُوْا بِسُوْرَةٍ

(36) हक़ीक़त यह है कि इनमें से ज़्यादातर लोग सिर्फ़ अटकल और गुमान के पीछे चले जा रहे हैं।[44] हालाँकि गुमान हक़ की ज़रूरत को कुछ भी पूरा नहीं करता। जो कुछ ये कर रहे हैं, अल्लाह उसको ख़ूब जानता है।

(37) और यह क़ुरआन वह चीज़ नहीं है जो अल्लाह की वह्य और तालीम के बग़ैर गढ़ लिया जाए, बल्कि यह तो जो कुछ पहले आ चुका था उसकी तसदीक़ (पुष्टि) और 'अल-किताब' (विशिष्ट किताब) की तफ़सील है।[45] इसमें कोई शक नहीं कि यह कायनात के बादशाह की तरफ़ से है।

(38) क्या ये लोग कहते हैं कि पैग़म्बर ने इसे ख़ुद रच लिया है? कहो, "अगर तुम

44. यानी जिन्होंने मज़हब बनाए, जिन्होंने फ़लसफ़े (दर्शन) गढ़े, और जिन्होंने ज़िन्दगी के क़ानून पेश किए उन्होंने भी यह सब कुछ इल्म की बुनियाद पर नहीं, बल्कि गुमान और अटकलों की बुनियाद पर किया, और जिन्होंने उन मज़हबी और दुनियावी रहनुमाओं की पैरवी की उन्होंने भी जानकर और समझकर नहीं, बल्कि सिर्फ़ इस गुमान की बिना पर उनकी पैरवी इख़्तियार कर ली कि ऐसे बड़े-बड़े लोग जब यह कहते हैं और बाप-दादा उनको मानते चले आ रहे हैं और एक दुनिया उनकी पैरवी कर रही है तो ज़रूर ठीक ही कहते होंगे।

45. "जो कुछ पहले आ चुका था उसकी तसदीक़ (पुष्टि) है" यानी शुरू से जो उसूली तालीम नबियों (अलैहि॰) के ज़रिए इनसान को भेजी जाती रही हैं, यह क़ुरआन उनसे हटकर कोई नई चीज़ नहीं पेश कर रहा है, बल्कि उन्हीं की तसदीक़ कर रहा है और उनको सही ठहरा रहा है, अगर यह किसी नए मज़हब की बुनियाद डालनेवाले के दिमाग़ की उपज का नतीजा होता तो इसमें ज़रूर यह कोशिश पाई जाती कि पुरानी सच्ची बातों के साथ कुछ अपना निराला रंग भी मिलाकर अपनी अलग शान ज़ाहिर की जाए।

"अल-किताब की तफ़सील है," यानी उन उसूली तालीमात को जो तमाम आसमानी किताबों का ख़ुलासा (अल-किताब) हैं, उसमें फैलाकर दलीलों और सुबूतों के साथ, नसीहत और समझाने-बुझाने, और उनका मतलब बताने के साथ बयान किया गया है, साथ ही यह भी बताया गया है कि ये तालीमात अमली हालात पर कैसे फ़िट बैठती हैं।

مِّثْلِهٖ وَادْعُوْا مَنِ اسْتَطَعْتُمْ مِّنْ دُوْنِ اللّٰهِ اِنْ كُنْتُمْ صٰدِقِيْنَ ۝٣٨ بَلْ
كَذَّبُوْا بِمَا لَمْ يُحِيْطُوْا بِعِلْمِهٖ وَلَمَّا يَاْتِهِمْ تَاْوِيْلُهٗ ؕ كَذٰلِكَ كَذَّبَ
الَّذِيْنَ مِنْ قَبْلِهِمْ فَانْظُرْ كَيْفَ كَانَ عَاقِبَةُ الظّٰلِمِيْنَ ۝٣٩ وَمِنْهُمْ

अपने इस इलज़ाम में सच्चे हो तो एक सूरा इस जैसी रच लाओ और एक ख़ुदा को छोड़कर जिस-जिसको बुला सकते हो, मदद के लिए बुला लो।"[46] (39) अस्ल यह है कि जो चीज़ इनके इल्म की पकड़ में नहीं आई और जिसका नतीजा भी इनके सामने नहीं आया, उसको इन्होंने (ख़ामख़ाह अटकल-पच्चू) झुठला दिया।[47] इसी तरह तो इनसे पहले के लोग भी झुठला चुके हैं, फिर देख लो उन ज़ालिमों का क्या अंजाम हुआ। (40) इनमें

46. आमतौर पर लोग समझते हैं कि यह चैलेंज सिर्फ़ क़ुरआन की असरदार ज़बान और बेहतरीन अन्दाज़े-बयान और उनकी अदबी ख़ूबियों के लिहाज़ से था। एजाज़े-क़ुरआन पर यानी क़ुरआन की ज़बान और अन्दाज़े-बयान में जो हैरतअंगेज़ चमत्कार पाया जाता है उसपर जिस अन्दाज़ में बहसें की गई हैं उससे यह ग़लतफ़हमी पैदा होनी कुछ नामुमकिन भी नहीं है, लेकिन क़ुरआन का मक़ाम इससे बहुत बुलन्द है कि वह अपने अनोखे और बेमिसाल होने के दावे की बुनियाद महज़ अपनी लफ़्ज़ी ख़ूबसूरती पर रखे। बेशक क़ुरआन अपनी ज़बान के लिहाज़ से भी लाजवाब है, मगर वह अस्ल चीज़ जिसकी बिना पर यह कहा गया है कि इनसानी दिमाग़ ऐसी किताब तैयार नहीं कर सकता, उसके मज़ामीन (विषय) और उसकी तालीमात हैं। इसमें एजाज़ के जो-जो पहलू हैं और जिन वजहों से उनका अल्लाह की तरफ़ से होना यक़ीनी और इनसान का ऐसी चीज़ तैयार कर पाना नामुमकिन है उनको ख़ुद क़ुरआन में मुख़्तलिफ़ मौक़ों पर बयान कर दिया गया है और हम ऐसे तमाम मक़ामात की तशरीह (व्याख्या) पहले भी करते रहे हैं और आगे भी करेंगे। इस लिए यहाँ बात लम्बी हो जाने के डर से इस बहस से परहेज़ किया जा रहा है। (तशरीह के लिए देखें—सूरा-52 तूर, हाशिया-26,27)

47. अल्लाह की किताब क़ुरआन को या तो इस बुनियाद पर झुठलाया जा सकता था कि उन लोगों को इस किताब का एक जाली किताब होना तहक़ीक़ी तौर पर मालूम होता। या फिर यह झुठलाना इस बिना पर सही हो सकता था कि जो हक़ीक़तें इसमें बयान की गई हैं और जो ख़बरें इसमें दी गई हैं वे ग़लत साबित हो जातीं। लेकिन झुठलाने की इन दोनों वजहों में से कोई वजह भी यहाँ मौजूद नहीं है। न कोई शख़्स यह कह सकता है कि वह इल्म की बिना पर जानता है कि यह किताब गढ़कर ख़ुदा की तरफ़ से जोड़ दी गई है। न किसी ने ग़ैब के परदे के पीछे झाँककर यह देख लिया है कि वाक़ई बहुत-से ख़ुदा मौजूद हैं और यह किताब, ख़ामख़ाह एक ख़ुदा की ख़बर सुना रही है, या वाक़ई में ख़ुदा और फ़रिश्तों और वह्य वग़ैरा

ع مَّنْ يُّؤْمِنُ بِهٖ وَمِنْهُمْ مَّنْ لَّا يُؤْمِنُ بِهٖ ؕ وَرَبُّكَ اَعْلَمُ بِالْمُفْسِدِيْنَ ۝٤٠
وَاِنْ كَذَّبُوْكَ فَقُلْ لِّيْ عَمَلِيْ وَلَكُمْ عَمَلُكُمْ ۚ اَنْتُمْ بَرِيْٓـُٔوْنَ مِمَّآ اَعْمَلُ
وَاَنَا بَرِيْٓءٌ مِّمَّا تَعْمَلُوْنَ ۝٤١ وَمِنْهُمْ مَّنْ يَّسْتَمِعُوْنَ اِلَيْكَ ؕ اَفَاَنْتَ

से कुछ लोग ईमान लाएँगे और कुछ नहीं लाएँगे, और तेरा रब उन बिगाड़ पैदा करनेवालों को ख़ूब जानता है।[48] (41) अगर ये तुझे झुठलाते हैं तो कह दो कि "मेरा अमल मेरे लिए है और तुम्हारा अमल तुम्हारे लिए, जो कुछ मैं करता हूँ उसकी ज़िम्मेदारी से तुम बरी हो और जो कुछ तुम कर रहे हो उसकी ज़िम्मेदारी से मैं बरी हूँ।"[49]
(42) इनमें बहुत-से लोग हैं जो तेरी बातें सुनते हैं, मगर क्या तू बहरों को सुनाएगा चाहे

की कोई हक़ीक़त नहीं है और इस किताब में ख़ामख़ाह यह अफ़साना बना लिया गया है। न किसी ने मरकर यह देख लिया है कि दूसरी ज़िन्दगी और उसके हिसाब-किताब और इनाम व सज़ा की सारी ख़बरें जो इस किताब में दी गई हैं ग़लत हैं। लेकिन इसके बावजूद शक और गुमान की बुनियाद पर इस शान से उसे झुठलाया जा रहा है कि मानो इल्मी तौर पर उसके जाली और ग़लत होने की जाँच-पड़ताल कर ली गई है।

48. ईमान न लानेवालों के बारे में कहा जा रहा है कि "ख़ुदा इन बिगाड़ फैलानेवालों को ख़ूब जानता है।" यानी वे दुनिया का मुँह तो ये बातें बनाकर बन्द कर सकते हैं कि साहब हमारी समझ में बात नहीं आती इसलिए नेक नीयती के साथ हम इसे नहीं मानते, लेकिन ख़ुदा जो दिल और अन्दरून के छिपे राज़ों को जानता है, वह उनमें से एक-एक शख़्स के बारे में जानता है कि किस-किस तरह उसने अपने दिलो-दिमाग़ पर ताले लगाए, अपने आपको ग़फ़लतों में गुम किया, अपने दिल और अन्दरून की आवाज़ को दबाया, अपने दिल में हक़ की गवाही को उभरने से रोका, अपने ज़ेहन से हक़ को क़बूल करने की सलाहियत को मिटाया, सुनकर न सुना, समझते हुए न समझने की कोशिश की और हक़ के मुक़ाबले में अपने तास्सुबात (पक्षपातों) को, अपने दुनियावी फ़ायदे को, बातिल और नाहक़ बातों से उलझे अपने मक़सदों को और अपने मन की ख़ाहिशों और चाहतों को तरजीह दी। इसी बिना पर वे 'भोले-भाले गुमराह' नहीं हैं, बल्कि हक़ीक़त में बिगाड़ फैलानेवाले हैं।

49. यानी ख़ामख़ाह झगड़े और उलटी-सीधी बहसें करने की कोई ज़रूरत नहीं। अगर मैं झूठ गढ़ रहा हूँ तो अपने अमल का मैं ख़ुद ज़िम्मेदार हूँ, तुमपर इसकी कोई ज़िम्मेदारी नहीं और अगर तुम सच्ची बात को झुठला रहे हो तो मेरा कुछ नहीं बिगाड़ते, अपना ही कुछ बिगाड़ रहे हो।

تُسۡمِعُ الصُّمَّ وَلَوۡ كَانُوۡا لَا يَعۡقِلُوۡنَ ۝٤٢ وَمِنۡهُمۡ مَّنۡ يَّنۡظُرُ اِلَيۡكَ‌ؕ
اَفَاَنۡتَ تَهۡدِى الۡعُمۡىَ وَلَوۡ كَانُوۡا لَا يُبۡصِرُوۡنَ ۝٤٣ اِنَّ اللّٰهَ لَا يَظۡلِمُ

वे कुछ न समझते हों?[50] (43) इनमें बहुत-से लोग हैं जो तुझे देखते हैं, मगर क्या तू अंधों को राह बताएगा चाहे उन्हें कुछ न सूझता हो?[51] (44) हक़ीक़त यह है कि

50. एक सुनना तो इस तरह का होता है जैसे जानवर भी आवाज़ सुन लेते हैं। दूसरा सुनना वह होता है जिसमें मानी और मतलब की तरफ़ ध्यान हो और यह आमादगी पाई जाती हो कि बात अगर सही और अक़्ल में आनेवाली होगी तो उसे मान लिया जाएगा। जो लोग किसी तास्सुब (पक्षपात) में पड़े हों, और जिन्होंने पहले से फ़ैसला कर लिया हो कि अपने बाप-दादा से चले आ रहे अक़ीदों और दलीलों के ख़िलाफ़ और अपने नफ़्स की पसन्द और चाहतों के ख़िलाफ़ कोई बात, चाहे वह कितनी ही सही और मुनासिब हो, मानकर न देंगे, वे सब कुछ सुनकर भी कुछ नहीं सुनते। इसी तरह वे लोग भी कुछ सुनकर नहीं देते जो दुनिया में जानवरों की तरह ग़फ़लत की ज़िन्दगी गुज़ारते हैं और चरने-चुगने के सिवा किसी चीज़ से कोई दिलचस्पी नहीं रखते, या नफ़्स की लज़्ज़तों और ख़ाहिशों के पीछे ऐसे मस्त होते हैं कि उन्हें इस बात की कोई फ़िक्र ही नहीं होती कि हम यह जो कुछ कर रहे हैं, यह सही भी है या नहीं। ऐसे सब लोग कानों के तो बहरे नहीं होते मगर दिल के बहरे होते हैं।

51. यहाँ भी वही बात कही गई है जो ऊपर के जुमले में है। सिर की आँखें खुली होने से कुछ फ़ायदा नहीं, उनसे तो जानवर भी आख़िर देखता ही है। अस्ल चीज़ दिल की आँखों का खुला होना है। यह चीज़ अगर किसी शख़्स को हासिल न हो तो वह सब कुछ देखकर भी कुछ नहीं देखता।

इन दोनों आयतों में ख़िताब तो नबी (सल्ल.) से है मगर मलामत उन लोगों को की जा रही है जिनकी इस्लाह और सुधार की आप कोशिश में लगे हुए थे और इस मलामत का मक़सद भी सिर्फ़ मलामत करना नहीं है, बल्कि तंज़ (व्यंग्य) का तीर व नश्तर इसलिए चुभोया जा रहा है कि उनकी सोई हुई इनसानियत उसकी चुभन से कुछ जागे और उनकी आँखों और कानों से उनके दिल तक जानेवाला रास्ता खुले, ताकि सही और मुनासिब बात और दर्द भरी नसीहत वहाँ तक पहुँच सके। यह अन्दाज़े-बयान कुछ इस तरह का है जैसे कोई नेक आदमी बिगड़े हुए लोगों के दरमियान निहायत बुलन्द अख़लाक़ी सीरत के साथ रहता हो और बेहद ख़ुलूस और दर्दमन्दी के साथ उनको उनकी उस गिरी हुई हालत का एहसास दिला रहा हो जिसमें वे पड़े हुए हैं और बहुत ही मुनासिब तरीक़े और बड़ी संजीदगी के साथ उन्हें समझाने की कोशिश कर रहा हो कि उनके ज़िन्दगी गुज़ारने के तरीक़े में क्या ख़राबी है और ज़िन्दगी गुज़ारने का सही तरीक़ा क्या है। मगर कोई न तो उसकी पाकीज़ा ज़िन्दगी से सबक़ लेता हो, न उसकी इन भलाई

النَّاسَ شَيْـًٔا وَّلٰكِنَّ النَّاسَ اَنْفُسَهُمْ يَظْلِمُوْنَ ﴿٤٤﴾ وَيَوْمَ يَحْشُرُهُمْ
كَاَنْ لَّمْ يَلْبَثُوْٓا اِلَّا سَاعَةً مِّنَ النَّهَارِ يَتَعَارَفُوْنَ بَيْنَهُمْ ۭ قَدْ خَسِرَ
الَّذِيْنَ كَذَّبُوْا بِلِقَاۗءِ اللّٰهِ وَمَا كَانُوْا مُهْتَدِيْنَ ﴿٤٥﴾ وَاِمَّا نُرِيَنَّكَ بَعْضَ

अल्लाह लोगों पर ज़ुल्म नहीं करता, लोग ख़ुद ही अपने ऊपर ज़ुल्म करते हैं।[52] (45) (आज ये दुनिया की ज़िन्दगी में मस्त हैं) और जिस दिन अल्लाह इनको इकट्ठा करेगा तो (यही दुनिया की ज़िन्दगी इन्हें ऐसी महसूस होगी) मानो यह सिर्फ़ एक घड़ी भर आपस में जान-पहचान करने को ठहरे थे।[53] (उस वक़्त साबित हो जाएगा कि) हक़ीक़त में भारी घाटे में रहे वे लोग जिन्होंने अल्लाह से मिलने को झुठलाया[54] और हरगिज़ वे सीधे रास्ते पर न थे। (46) जिन बुरे नतीजों से हम इन्हें डरा रहे हैं, उनका

चाहनेवाली नसीहतों की तरफ़ ध्यान देता हो। इस हालत में ठीक उस वक़्त जबकि वह उन लोगों को समझाने में लगा हो और वे उसकी बातों को सुनी-अनसुनी किए जा रहे हों, उसका कोई दोस्त आकर उससे कहे कि अरे यह तुम किन बहरों को सुना रहे हो और किन अन्धों को रास्ता दिखाना चाहते हो, उनके तो दिल के कान बन्द हैं और उनकी सीने की आँखें फूटी हुई हैं। यह बात कहने से उस दोस्त का मंशा यह नहीं होगा कि वह नेक आदमी अपनी सुधार और इस्लाह की कोशिश से रुक जाए, बल्कि अस्ल में उसकी ग़रज़ यह होगी कि शायद इस तंज़ और मलामत ही से इन नींद के मारों को कुछ होश आ जाए।

52. यानी अल्लाह ने तो उन्हें कान भी दिए हैं और आँखें भी और दिल भी। उसने अपनी तरफ़ से कोई ऐसी चीज़ उनको देने में कंजूसी नहीं की है जो हक़ व बातिल का फ़र्क़ देखने और समझने के लिए ज़रूरी थी। मगर लोगों ने ख़ाहिशों की बन्दगी और दुनिया के इश्क़ में पड़कर आप ही अपनी आँखें फोड़ ली हैं, अपने कान बहरे कर लिए हैं और अपने दिलों को इतना ख़राब कर लिया है कि उनमें भले-बुरे की समझ और ज़मीर (अन्तरात्मा) की ज़िन्दगी का कोई असर बाक़ी न रहा।

53. यानी जब एक तरफ़ आख़िरत की कभी ख़त्म न होनेवाली ज़िन्दगी उनके सामने होगी और दूसरी तरफ़ ये पलटकर अपनी दुनिया की ज़िन्दगी पर निगाह डालेंगे तो उन्हें आनेवाले वक़्त के मुक़ाबले में अपना गुज़ारा हुआ यह वक़्त बहुत ही मामूली लगेगा। उस वक़्त उनको अन्दाज़ा होगा कि उन्होंने अपनी पिछली ज़िन्दगी में थोड़ी-सी लज़्ज़तों और फ़ायदों की ख़ातिर अपनी इस हमेशा रहनेवाली ज़िन्दगी को ख़राब करके कितनी बेवक़ूफ़ी का काम किया है।

54. यानी इस बात को कि एक दिन अल्लाह के सामने हाज़िर होना है।

الَّذِىۡ نَعِدُهُمۡ اَوۡ نَتَوَفَّيَنَّكَ فَاِلَيۡنَا مَرۡجِعُهُمۡ ثُمَّ اللّٰهُ شَهِيۡدٌ عَلٰى مَا
يَفۡعَلُوۡنَ ﴿۴۶﴾ وَلِكُلِّ اُمَّةٍ رَّسُوۡلٌ‌ ۚ فَاِذَا جَآءَ رَسُوۡلُهُمۡ قُضِىَ بَيۡنَهُمۡ
بِالۡقِسۡطِ وَهُمۡ لَا يُظۡلَمُوۡنَ ﴿۴۷﴾ وَيَقُوۡلُوۡنَ مَتٰى هٰذَا الۡوَعۡدُ اِنۡ كُنۡتُمۡ
صٰدِقِيۡنَ ﴿۴۸﴾ قُلْ لَّاۤ اَمۡلِكُ لِنَفۡسِىۡ ضَرًّا وَّلَا نَفۡعًا اِلَّا مَا شَآءَ اللّٰهُ‌ ؕ

कोई हिस्सा हम तेरे जीते-जी दिखा दें या इससे पहले ही तुझे उठा लें, बहरहाल इन्हें आना हमारी ही तरफ़ है, और जो कुछ ये कर रहे हैं उसपर अल्लाह गवाह है।

(47) हर उम्मत (समुदाय) के लिए एक रसूल है[55], फिर जब किसी उम्मत के पास उसका रसूल आ जाता है तो उसका फ़ैसला पूरे इनसाफ़ के साथ चुका दिया जाता है और उसपर ज़रा भी ज़ुल्म नहीं किया जाता।[56]

(48) कहते हैं, अगर तुम्हारी यह धमकी सच्ची है तो आख़िर यह कब पूरी होगी? (49) कहो, "मेरे इख़्तियार में ख़ुद अपना फ़ायदा और नुक़सान भी नहीं, सब कुछ

---

55. 'उम्मत' का लफ़्ज़ यहाँ सिर्फ़ क़ौम के मानी में नहीं है, बल्कि एक रसूल के आने के बाद उसकी दावत जिन-जिन लोगों तक पहुँचे वे सब उसकी उम्मत हैं। साथ ही इसके लिए यह भी ज़रूरी नहीं है कि रसूल उनके बीच ज़िन्दा मौजूद हो, बल्कि रसूल के बाद भी जब तक उसकी तालीम मौजूद रहे और हर शख़्स के लिए यह मालूम करना मुमकिन हो कि वह हक़ीक़त में किस चीज़ की तालीम देता था, उस वक़्त तक दुनिया के सब लोग उसकी उम्मत ही कहलाएँगे और उनपर वह हुक्म साबित होगा जो आगे बयान किया जा रहा है। इस लिहाज़ से मुहम्मद (सल्ल.) के आने के बाद सारी दुनिया के इनसान आप (सल्ल.) की उम्मत हैं और उस वक़्त तक रहेंगे जब तक क़ुरआन अपनी ख़ालिस सूरत (विशुद्ध रूप) में मौजूद रहेगा। इसी वजह से आयत में यह नहीं कहा गया कि "हर क़ौम में एक रसूल है" बल्कि कहा यह गया है कि "हर उम्मत के लिए एक रसूल है।"

56. मतलब यह है कि रसूल की दावत का किसी इनसानी गरोह तक पहुँचना मानो उस गरोह पर अल्लाह की हुज्जत (दलील) का पूरा हो जाना है। उसके बाद सिर्फ़ फ़ैसला ही बाक़ी रह जाता है। किसी और तरह से हुज्जत पूरी करने की ज़रूरत बाक़ी नहीं रहती और यह फ़ैसला बहुत ज़्यादा इनसाफ़ के साथ किया जाता है। जो लोग रसूल की बात मान लें और अपना रवैया ठीक कर लें वे अल्लाह की रहमत के हक़दार ठहरते हैं और जो उसकी बात न मानें वे अज़ाब के हक़दार हो जाते हैं। चाहे वह अज़ाब दुनिया और आख़िरत दोनों में दिया जाए या सिर्फ़ आख़िरत में।

لِكُلِّ اُمَّةٍ اَجَلٌ ۚ اِذَا جَآءَ اَجَلُهُمْ فَلَا يَسْتَاْخِرُوْنَ سَاعَةً وَّلَا
يَسْتَقْدِمُوْنَ ﴿٤٩﴾ قُلْ اَرَءَيْتُمْ اِنْ اَتٰىكُمْ عَذَابُهٗ بَيَاتًا اَوْ نَهَارًا مَّاذَا
يَسْتَعْجِلُ مِنْهُ الْمُجْرِمُوْنَ ﴿٥٠﴾ اَثُمَّ اِذَا مَا وَقَعَ اٰمَنْتُمْ بِهٖ ۭ اٰۗلْـٰٔنَ وَقَدْ
كُنْتُمْ بِهٖ تَسْتَعْجِلُوْنَ ﴿٥١﴾ ثُمَّ قِيْلَ لِلَّذِيْنَ ظَلَمُوْا ذُوْقُوْا عَذَابَ الْخُلْدِ ۚ

अल्लाह की मरज़ी पर टिका है।[57] हर उम्मत के लिए मोहलत की एक मुद्दत है, जब यह मुद्दत पूरी हो जाती है तो घड़ी भर के लिए भी आगे-पीछे नहीं होती।"[58] (50) इनसे कहो, "कभी तुमने यह भी सोचा कि अगर अल्लाह का अज़ाब अचानक रात को या दिन को आ जाए (तो तुम क्या कर सकते हो?)।" आख़िर यह ऐसी कौन-सी चीज़ है जिसके लिए मुजरिम जल्दी मचाएँ? (51) क्या जब वह तुमपर आ पड़े उसी वक़्त तुम उसे मानोगे? — अब बचना चाहते हो? हालाँकि तुम ख़ुद ही उसके जल्दी आने की माँग कर रहे थे। (52) फिर ज़ालिमों से कहा जाएगा कि अब हमेशा के अज़ाब का मज़ा चखो,

57. यानी मैंने यह कब कहा था कि यह फ़ैसला मैं चुकाऊँगा और न माननेवालों को मैं अज़ाब दूँगा, इसलिए मुझसे क्या पूछते हो कि फ़ैसला चुकाए जाने की धमकी कब पूरी होगी। धमकी तो अल्लाह ने दी है, वही फ़ैसला चुकाएगा और उसी के इख़्तियार में है कि फ़ैसला कब करे और किस शक्ल में उसको तुम्हारे सामने लाए।

58. मतलब यह है कि अल्लाह तआला जल्दबाज़ नहीं है। उसका यह तरीक़ा नहीं है कि जिस वक़्त रसूल की दावत किसी शख़्स या गरोह को पहुँची उसी वक़्त जो ईमान ले आया वह तो बस रहमत का हक़दार ठहरा और जिस किसी ने उसको मानने से इनकार किया या मानने में उसे हिचकिचाहट हुई उसपर फ़ौरन अज़ाब का फ़ैसला लागू कर दिया गया। नहीं, अल्लाह का क़ायदा यह है कि अपना पैग़ाम पहुँचाने के बाद वह हर शख़्स को उसकी इन्फ़िरादी (व्यक्तिगत) हैसियत के मुताबिक़ और हर गरोह और क़ौम को उसकी इज्तिमाई हैसियत के मुताबिक़, सोचने-समझने और संभलने के लिए काफ़ी वक़्त देता है। यह मुहलत का ज़माना कई बार सदियों तक लम्बा होता है और इस बात को अल्लाह ही बेहतर जानता है कि किसको कितनी मुहलत मिलनी चाहिए। फिर जब वह मुहलत, जो सरासर इनसाफ़ के साथ उसके लिए रखी गई थी, पूरी हो जाती है और वह शख़्स या गरोह बग़ावत के अपने रवैये से नहीं रुकता, तब अल्लाह तआला उसपर अपना फ़ैसला लागू करता है। यह फ़ैसले का वक़्त अल्लाह की मुक़र्रर की हुई मुद्दतों से न एक घड़ी पहले आ सकता है और न वक़्त आ जाने के बाद एक पल के लिए टल सकता है।

هَلْ تُجْزَوْنَ اِلَّا بِمَا كُنْتُمْ تَكْسِبُوْنَ ﴿٥٢﴾ وَيَسْتَنْۢبِـُٔوْنَكَ اَحَقٌّ هُوَ ؕ قُلْ
اِيْ وَرَبِّيْۤ اِنَّهٗ لَحَقٌّ ؕ وَمَاۤ اَنْتُمْ بِمُعْجِزِيْنَ ﴿٥٣﴾ وَلَوْ اَنَّ لِكُلِّ نَفْسٍ ظَلَمَتْ
مَا فِي الْاَرْضِ لَافْتَدَتْ بِهٖ ؕ وَاَسَرُّوا النَّدَامَةَ لَمَّا رَاَوُا الْعَذَابَ ۚ
وَقُضِيَ بَيْنَهُمْ بِالْقِسْطِ وَهُمْ لَا يُظْلَمُوْنَ ﴿٥٤﴾ اَلَاۤ اِنَّ لِلّٰهِ مَا فِي
السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ ؕ اَلَاۤ اِنَّ وَعْدَ اللّٰهِ حَقٌّ وَّلٰكِنَّ اَكْثَرَهُمْ لَا
يَعْلَمُوْنَ ﴿٥٥﴾ هُوَ يُحْيٖ وَيُمِيْتُ وَاِلَيْهِ تُرْجَعُوْنَ ﴿٥٦﴾ يٰۤاَيُّهَا النَّاسُ قَدْ

जो कुछ तुम कमाते रहे हो उसके बदले के सिवा और क्या बदला तुमको दिया जा सकता है?

(53) फिर पूछते हैं, क्या हक़ीक़त में यह सच है जो तुम कह रहे हो? कहो, "मेरे रब की क़सम! यह बिलकुल सच है और तुम इतना बलबूता नहीं रखते कि उसे ज़ाहिर होने से रोक दो?" (54) अगर हर उस आदमी के पास, जिसने ज़ुल्म किया है, ज़मीन की दौलत भी हो तो उस अज़ाब से बचने के लिए वह उसे फ़िदया (अर्थदण्ड) में देने पर तैयार हो जाएगा। जब ये लोग उस अज़ाब को देख लेंगे तो दिल-ही-दिल में पछताएँगे[59], मगर उनके बीच पूरे इनसाफ़ से फ़ैसला किया जाएगा, कोई ज़ुल्म उनपर न होगा। (55) सुनो! आसमानों और ज़मीन में जो कुछ है, अल्लाह का है। सुन रखो! अल्लाह का वादा सच्चा है, मगर ज़्यादातर इनसान जानते नहीं हैं। (56) वही ज़िन्दगी देता है और वही मौत देता है और उसी की तरफ़ तुम सबको पलटना है।

---

59. जिस चीज़ को उम्र भर झुठलाते रहे, जिसे झूठ समझकर सारी ज़िन्दगी ग़लत कामों में खपा गए और जिसकी ख़बर देनेवाले पैग़म्बरों को तरह-तरह के इलज़ाम देते रहे, वही चीज़ जब उनकी उम्मीदों के बिलकुल ख़िलाफ़ अचानक सामने आ खड़ी होगी तो उनके पैरों तले से ज़मीन निकल जाएगी। उनका ज़मीर (अन्तरात्मा) उन्हें ख़ुद बता देगा कि जब हक़ीक़त यह थी तो जो कुछ वे दुनिया में करके आए हैं उसका अंजाम अब क्या होना है। अपनी करनी का उनके पास कोई इलाज न होगा। ज़बानें बन्द होंगी और शर्मिन्दगी व पछतावे से दिल अन्दर-ही-अन्दर बैठे जा रहे होंगे। जिस शख़्स ने अंदाज़े व अटकलों के सौदे पर अपनी सारी पूँजी लगा दी हो और किसी ख़ैरख़ाह (हितैषी) की बात मानकर न दी हो, वह दीवाला निकलने के बाद ख़ुद अपने सिवा और किस की शिकायत कर सकता है।

جَآءَتْكُمْ مَّوْعِظَةٌ مِّنْ رَّبِّكُمْ وَشِفَآءٌ لِّمَا فِي الصُّدُوْرِ ۙ وَهُدًى
وَّرَحْمَةٌ لِّلْمُؤْمِنِيْنَ ۝٥٧ قُلْ بِفَضْلِ اللّٰهِ وَبِرَحْمَتِهٖ فَبِذٰلِكَ فَلْيَفْرَحُوْا ۭ
هُوَ خَيْرٌ مِّمَّا يَجْمَعُوْنَ ۝٥٨ قُلْ اَرَءَيْتُمْ مَّآ اَنْزَلَ اللّٰهُ لَكُمْ مِّنْ رِّزْقٍ

(57) लोगो, तुम्हारे पास तुम्हारे रब की तरफ़ से नसीहत आ गई है। यह वह चीज़ है जो दिलों की बीमारियों का इलाज है और जो उसे क़बूल कर लें, उनके लिए रहनुमाई और रहमत है। (58) ऐ नबी! कहो कि "यह अल्लाह का फ़ज़्ल और उसकी मेहरबानी है कि यह चीज़ उसने भेजी, इसपर तो लोगों को ख़ुशी मनानी चाहिए, यह उन सब चीज़ों से बेहतर है जिन्हें लोग समेट रहे हैं।" (59) ऐ नबी! इनसे कहो, "तुम लोगों ने कभी यह भी सोचा है कि जो रोज़ी[60] अल्लाह ने तुम्हारे लिए उतारी थी उसमें से तुमने ख़ुद ही

60. उर्दू ज़बान में 'रिज़्क़' लफ़्ज़ का इस्तेमाल सिर्फ़ खाने-पीने की चीज़ों के लिए होता है। इसी वजह से लोग समझते हैं कि यहाँ पकड़ सिर्फ़ उस क़ानूनसाज़ी पर की गई है जो खाने-पीने की छोटी-सी दुनिया में मज़हबी अंधविश्वासों या रस्मो-रिवाज की बुनियाद पर लोगों ने कर डाली है। इस ग़लतफ़हमी में जाहिल लोग ही नहीं, बल्कि पढ़े-लिखे लोग और उलमा तक मुब्तला हैं। हालाँकि अरबी ज़बान में 'रिज़्क़' सिर्फ़ खाने-पीने की चीज़ों के मानी तक महदूद नहीं है, बल्कि देन और बख़्शिश और नसीब के मानी में आम है। अल्लाह तआला ने जो कुछ भी दुनिया में इनसान को दिया है वह सब उसका रिज़्क़ है, यहाँ तक कि औलाद भी रिज़्क़ है। अस्माउर्रिजाल की किताबों में बहुत-से रावियों (उल्लेखकर्ताओं) के नाम 'रिज़्क़' और 'रुज़ैक़' और 'रिज़्क़ुल्लाह' मिलते हैं जिसके मानी लगभग यही हैं जो उर्दू-हिन्दी में 'अल्लाह दिए' के मानी हैं। मशहूर दुआ है "अल्लाहुम-म अरिनल हक़्क़-क़ हक़्क़न वरज़ुक़्नत्तिबाअहू" यानी "ऐ अल्लाह, हमपर हक़ खोल और हमें उसपर चलने की तौफ़ीक़ दे" मुहावरे में बोला जाता है "रूज़ि-क़ इल्मन" यानी "फ़ुलाँ शख़्स को इल्म दिया गया है।" हदीस में है कि अल्लाह तआला हर हामिला (गर्भवती) के पेट में एक फ़रिश्ता भेजता है और वह पैदा होनेवाले का रिज़्क़ और उसकी उम्र की मुद्दत और उसका काम लिख देता है। ज़ाहिर है कि यहाँ रिज़्क़ से मुराद सिर्फ़ वह ख़ुराक ही नहीं है जो बच्चे को आइन्दा मिलनेवाली है, बल्कि वह सब कुछ है जो उसे दुनिया में दिया जाएगा। ख़ुद क़ुरआन में है– "व मिम्मा रज़क़नाहुम युन्फ़िक़ून" यानी "जो कुछ हमने उनको दिया है उसमें से ख़र्च करते हैं।" लिहाज़ा रिज़्क़ को सिर्फ़ खाने-पीने की चीज़ों की हदों तक महदूद समझना और यह समझ लेना कि अल्लाह तआला को सिर्फ़ उन पाबन्दियों और आज़ादियों पर एतिराज़ है जो खाने-पीने की चीज़ों के मामले में लोगों ने अपने आप अपना ली हैं, बहुत बड़ी ग़लती है और यह कोई मामूली ग़लती नहीं है। इसकी बदौलत ख़ुदा के दीन

فَجَعَلْتُمْ مِّنْهُ حَرَامًا وَّحَلٰلًا ؕ قُلْ آٰللّٰهُ اَذِنَ لَكُمْ اَمْ عَلَى اللّٰهِ
تَفْتَرُوْنَ ۝ وَمَا ظَنُّ الَّذِيْنَ يَفْتَرُوْنَ عَلَى اللّٰهِ الْكَذِبَ يَوْمَ الْقِيٰمَةِ ؕ

किसी को हराम और किसी को हलाल ठहरा लिया!"[61] इनसे पूछो, "अल्लाह ने तुम्हें इसकी इजाज़त दी थी? या तुम अल्लाह पर झूठ गढ़ रहे हो?"[62] (60) जो लोग अल्लाह पर यह झूठ गढ़ते हैं उनका क्या गुमान है कि क़ियामत के दिन उनसे क्या मामला

(धर्म) की एक बहुत बड़ी उसूली तालीम लोगों की निगाहों से ओझल हो गई है। यह इसी ग़लती का तो नतीजा है कि खाने-पीने की चीज़ों के मामले में हलाल व हराम और जाइज़-नाजाइज़ का मामला तो एक दीनी मामला समझा जाता है, लेकिन रहन-सहन के बहुत-से मामलों में अगर यह उसूल तय कर लिया जाए कि इनसान खुद अपने लिए हदें मुक़र्रर करने का हक़ रखता है, और इसी बुनियाद पर ख़ुदा और उसकी किताब से बेपरवाह होकर क़ानूनसाज़ी की जाने लगे, तो आम आदमी तो दूर की बात, दीन के आलिम, मुफ़्ती, क़ुरआन के मुफ़स्सिरीन (टीकाकार) और हदीसों की गहरी जानकारी रखनेवालों तक को यह एहसास नहीं होता कि यह चीज़ भी दीन से उसी तरह टकराती है, जिस तरह खाने-पीने की चीज़ों में अल्लाह की शरीअत से बेपरवाह होकर जाइज़-नाजाइज़ की हदें अपने आप तय कर लेना।

61. यानी तुम्हें कुछ एहसास भी है कि यह कितना सख़्त बाग़ियाना (विद्रोहपूर्ण) जुर्म है जो तुम कर रहे हो। रिज़्क़ अल्लाह का है और तुम खुद अल्लाह के हो, फिर यह हक़ आख़िर तुम्हें कहाँ से मिल गया कि तुम उन चीज़ों में, जिनका मालिक अल्लाह है, अपने इस्तेमाल और फ़ायदे के लिए खुद हदबन्दियाँ मुक़र्रर करो? कोई नौकर अगर यह दावा करे कि मालिक के माल में अपने इस्तेमाल और इख़्तियारात की हदें उसे खुद मुक़र्रर कर लेने का हक़ है और इस मामले में मालिक के कुछ बोलने की सिरे से कोई ज़रूरत ही नहीं है, तो उसके बारे में तुम्हारी क्या राय है? तुम्हारा अपना नौकर अगर तुम्हारे घर में और तुम्हारे घर की सब चीज़ों में अपने अमल और इस्तेमाल के लिए इस आज़ादी और खुदमुख़्तारी का दावा करे तो तुम उसके साथ क्या सुलूक करोगे?— उस नौकर का मामला तो दूसरा ही है जो सिरे से यही नहीं मानता कि वह किसी का नौकर है और कोई उसका मालिक भी है और यह किसी और का माल है जो उसके इस्तेमाल में है। उस बदमाश नाजाइज़ क़ब्ज़ा करनेवाले की पोज़ीशन पर यहाँ बहस नहीं हो रही है। यहाँ सवाल उस नौकर की पोज़ीशन का है, जो खुद मान रहा है कि वह किसी का नौकर है और यह भी मानता है कि माल उसी का है जिसका वह नौकर है और फिर कहता है कि इस माल में अपने इस्तेमाल की हदें मुक़र्रर कर लेने का हक़ मुझे आप ही हासिल है और मालिक से कुछ पूछने की ज़रूरत नहीं है।

62. यानी तुम्हारी यह पोज़ीशन सिर्फ़ उसी सूरत में सही हो सकती थी कि मालिक ने खुद तुमको इख़्तियार दे दिया होता कि मेरे माल को तुम जिस तरह चाहो इस्तेमाल करो। अपने अमल और

ع ٦ ١٢ إِنَّ اللّٰهَ لَذُوْ فَضْلٍ عَلَى النَّاسِ وَلٰكِنَّ اَكْثَرَهُمْ لَا يَشْكُرُوْنَ ﴿٦٠﴾

وَمَا تَكُوْنُ فِيْ شَاْنٍ وَّمَا تَتْلُوْا مِنْهُ مِنْ قُرْاٰنٍ وَّلَا تَعْمَلُوْنَ مِنْ عَمَلٍ

اِلَّا كُنَّا عَلَيْكُمْ شُهُوْدًا اِذْ تُفِيْضُوْنَ فِيْهِ ؕ وَمَا يَعْزُبُ عَنْ رَّبِّكَ مِنْ

مِّثْقَالِ ذَرَّةٍ فِي الْاَرْضِ وَلَا فِي السَّمَآءِ وَلَآ اَصْغَرَ مِنْ ذٰلِكَ وَلَآ

اَكْبَرَ اِلَّا فِيْ كِتٰبٍ مُّبِيْنٍ ﴿٦١﴾ اَلَآ اِنَّ اَوْلِيَآءَ اللّٰهِ لَا خَوْفٌ عَلَيْهِمْ وَلَا

होगा? अल्लाह तो लोगों पर मेहरबानी की नज़र रखता है, मगर ज़्यादातर लोग ऐसे हैं जो शुक्र नहीं करते।[63]

(61) ऐ नबी! तुम जिस हाल में भी होते हो और क़ुरआन में से जो कुछ भी सुनाते हो, और लोगो! तुम भी जो कुछ करते हो, उस सबके दौरान में हम तुमको देखते रहते हैं। कोई ज़र्रा बराबर चीज़ आसमान और ज़मीन में ऐसी नहीं है, न छोटी, न बड़ी, जो तेरे रब की नज़र से छिपी हो और एक साफ़ दफ़्तर (रजिस्टर) में दर्ज न हो।[64] (62-63) सुनो! जो अल्लाह के दोस्त हैं, जो ईमान लाए और जिन्होंने तक़्वा (परहेज़गारी)

इस्तेमाल की हदें, क़ानून, ज़ाब्ते सब कुछ बना लेने के तमाम हुक़ूक़ मैंने तुम्हें सौंप दिए। अब सवाल यह है कि क्या तुम्हारे पास वाक़ई इसकी कोई सनद (प्रमाण) है कि मालिक ने तुमको ये इख़्तियार दे दिए हैं या तुम बिना किसी सनद के यह दावा कर रहे हो कि वे तमाम हुक़ूक़ तुम्हें सौंप चुका है? अगर पहली सूरत है तो मेहरबानी करके वह सनद दिखाओ, वरना दूसरी सूरत में यह खुली बात है कि तुम बग़ावत पर झूठ और झूठी बातें गढ़ने का जुर्म भी कर रहे हो।

63. यानी यह तो मालिक की बहुत ही बड़ी मेहरबानी है कि वह नौकर को ख़ुद बताता है कि मेरे घर में और मेरे माल में और ख़ुद अपने नफ़्स (वुजूद) में तू कौन-सा रवैया इख़्तियार करेगा तो मेरी ख़ुशनूदी और इनाम और तरक़्क़ी तुझे हासिल होगी, और किस रवैये से मेरा ग़ुस्सा, सज़ा और तनज़्ज़ुल (पतन) तेरे हिस्से में आएगा। मगर बहुत-से बेवक़ूफ़ नौकर ऐसे हैं जो इस मेहरबानी का शुक्रिया अदा नहीं करते। मानो उनके नज़दीक होना यह चाहिए था कि मालिक उनको बस अपने घर में लाकर छोड़ देता और सब माल उनके इख़्तियार में दे देने के बाद छिपकर देखता रहता है कि कौन-सा नौकर क्या करता है, फिर जो भी उसकी मरज़ी के ख़िलाफ़ – जिसका किसी नौकर को इल्म नहीं – कोई काम करता तो उसे वह सज़ा दे डालता। हालाँकि अगर मालिक ने अपने नौकरो को इतने सख़्त इम्तिहान में डाला होता तो उनमें से किसी का भी सज़ा से बच जाना मुमकिन न था।

64. यहाँ इस बात का ज़िक्र करने का मक़सद नबी को तसल्ली देना और नबी के मुख़ालिफ़ों को

هُمْ يَحْزَنُوْنَ ﴿٦٢﴾ اَلَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَكَانُوْا يَتَّقُوْنَ ﴿٦٣﴾ لَهُمُ الْبُشْرٰى فِى
الْحَيٰوةِ الدُّنْيَا وَفِى الْاٰخِرَةِ ۭ لَا تَبْدِيْلَ لِكَلِمٰتِ اللّٰهِ ۭ ذٰلِكَ هُوَ الْفَوْزُ
الْعَظِيْمُ ﴿٦٤﴾ وَلَا يَحْزُنْكَ قَوْلُهُمْ ۘ اِنَّ الْعِزَّةَ لِلّٰهِ جَمِيْعًا ۭ هُوَ السَّمِيْعُ
الْعَلِيْمُ ﴿٦٥﴾ اَلَآ اِنَّ لِلّٰهِ مَنْ فِى السَّمٰوٰتِ وَمَنْ فِى الْاَرْضِ ۭ وَمَا يَتَّبِعُ
الَّذِيْنَ يَدْعُوْنَ مِنْ دُوْنِ اللّٰهِ شُرَكَاۗءَ ۭ اِنْ يَّتَّبِعُوْنَ اِلَّا الظَّنَّ وَاِنْ
هُمْ اِلَّا يَخْرُصُوْنَ ﴿٦٦﴾ هُوَ الَّذِيْ جَعَلَ لَكُمُ الَّيْلَ لِتَسْكُنُوْا فِيْهِ

का रवैया अपनाया, उनके लिए किसी डर और दुख का मौक़ा नहीं है। (64) दुनिया और आख़िरत दोनों ज़िन्दगियों में उनके लिए ख़ुशख़बरी ही ख़ुशख़बरी है। अल्लाह की बातें बदल नहीं सकतीं। यही बड़ी कामयाबी है। (65) ऐ नबी! जो बातें ये लोग तुझपर बनाते हैं वे तुझे दुखी न करें, इज़्ज़त सारी की सारी ख़ुदा के इख़्तियार में है, और वह सब कुछ सुनता और जानता है।

(66) जान लो! आसमानों के बसनेवाले हों या ज़मीन के, सब-के-सब अल्लाह के ममलूक (अधीन) हैं, और जो लोग अल्लाह के सिवा कुछ (अपने ख़ुद के गढ़े हुए) शरीकों को पुकार रहे हैं, वे निरे वहम और गुमान के पीछे चलनेवाले हैं और सिर्फ़ अटकल से काम लेते हैं। (67) वह अल्लाह ही है जिसने तुम्हारे लिए रात बनाई कि

ख़बरदार करना है। एक तरफ़ नबी से कहा जा रहा है कि हक़ के पैग़ाम को पहुँचाने और अल्लाह के बन्दों की इस्लाह में जो मेहनत और जी-तोड़ कोशिश तुम कर रहे हो और जिस सब्र व बरदाश्त से तुम काम कर रहे हो वह हमारी नज़र में है। ऐसा नहीं है कि इस ख़तरों से भरे काम पर हमने तुमको तुम्हारे हाल पर छोड़ दिया हो। जो कुछ तुम कर रहे हो वह भी हम देख रहे हैं और जो कुछ तुम्हारे साथ हो रहा है उससे भी हम बे-ख़बर नहीं हैं। दूसरी तरफ़ नबी के मुख़ालिफ़ों को अगाह किया जा रहा है कि हक़ की दावत देनेवाले और लोगों का भला चाहनेवाले एक शख़्स की इस्लाह व सुधार की कोशिशों में रोड़े अटकाकर तुम कहीं यह न समझ लेना कि कोई तुम्हारी इन हरकतों को देखनेवाला नहीं है और कभी तुम्हारे इन करतूतों की पूछ-गच्छ न होगी। ख़बरदार रहो, वह सब कुछ जो तुम कर रहे हो, ख़ुदा के रजिस्टर में दर्ज हो रहा है।

وَالنَّهَارَ مُبْصِرًا ۭ اِنَّ فِيْ ذٰلِكَ لَاٰيٰتٍ لِّقَوْمٍ يَّسْمَعُوْنَ ۝

उसमें सुकून हासिल करो और दिन को रौशन बनाया। इसमें निशानियाँ हैं उन लोगों के लिए जो (खुले कानों से पैग़म्बर के पैग़ाम को) सुनते हैं।[65]

65. यह एक ऐसी बात है जिसे बहुत मुख़्तसर लफ़्ज़ों में बयान किया गया है हालाँकि यह बात बहुत वज़ाहत चाहती है। फ़ल्सफ़ियाना तजस्सुस (दार्शनिकोंवाली जिज्ञासा), जिसका मक़सद यह पता चलाना है कि इस कायनात में जो कुछ हम देखते और महसूस करते हैं, उसके पीछे कोई हक़ीक़त छिपी है या नहीं और है तो वह क्या है? दुनिया में उन सब लोगों के लिए जो वह्य व इलहाम से सीधे तौरपर (Direct) हक़ीक़त का इल्म नहीं पाते, मज़हब के बारे में राय क़ायम करने का एक अकेला ज़रिआ है। कोई शख़्स भी चाहे वह दहरियत (नास्तिकता) अपनाए या शिर्क (बहुदेववाद) या ख़ुदापरस्ती (एकेश्वरवाद), बहरहाल एक न एक तरह का फ़ल्सफ़ियाना तजस्सुस किए बिना मज़हब के बारे में किसी नतीजे पर नहीं पहुँच सकता और पैग़म्बरों ने जो मज़हब पेश किया है उसकी जाँच भी अगर हो सकती है तो इसी तरह हो सकती है कि आदमी अपनी कोशिश भर, फ़ल्सफ़ियाना ग़ौर व फ़िक्र करके इत्मीनान हासिल करने की कोशिश करे कि पैग़म्बर हमें कायनात में नज़र आनेवाली चीज़ों के पीछे जिस हक़ीक़त के छिपे होने का पता दे रहे हैं वह दिल को लगती है या नहीं। इस तजस्सुस (जिज्ञासा) के सही या ग़लत होने का पूरा दारोमदार तजस्सुस के तरीक़े पर है। उसके ग़लत होने से ग़लत राय और सही होने से सही राय क़ायम होती है। अब ज़रा जाइज़ा लेकर देखिए कि दुनिया के मुख़्तलिफ़ गरोहों ने इस तजस्सुस के लिए कौन-कौन से तरीक़े अपनाए हैं :

मुशरिकों ने ख़ालिस वहम पर अपनी तलाश की बुनियाद रखी है।

इशराक़ियों (ज्योतिषियों) और जोगियों ने अगरचे मुराक़बा (ध्यान-योग) का ढोंग रचाया है और दावा किया है कि "हम ज़ाहिर के पीछे झाँककर बातिन (अन्दरून) को देख लेते हैं," लेकिन अस्ल में उन्होंने अपनी इस ख़ुफ़िया मालूमात हासिल करने की बुनियाद गुमान पर रखी है। वह मुराक़बा (ध्यान) अस्ल में अपने गुमान का करते हैं, और जो कुछ वे कहते हैं कि "हमें नज़र आता है" उसकी हक़ीक़त इसके सिवा कुछ नहीं है कि गुमान से जो ख़याल उन्होंने क़ायम कर लिया है उसी पर अपने ख़याल को जमा देते हैं और फिर उसपर ज़ेहन का दबाव डालने से उनको वही ख़याल चलता-फिरता नज़र आने लगता है।

फ़ल्सफ़ी (दार्शनिक) कहे जानेवाले लोगों ने गुमान को हक़ीक़त का पता लगाने की बुनियाद बनाया है जो अस्ल में तो गुमान ही है, लेकिन इस गुमान के लंगड़ेपन को महसूस करके उन्होंने अक़्ली दलीलों और बनावटी अक़्लपसंदी की बैसाखियों पर इसे चलाने की कोशिश की है और इसका नाम 'क़ियास' (अनुमान) रख दिया है।

साइंसदानों ने अगरचे साइंस के दायरे में तहक़ीक़ात के लिए इल्मी तरीक़ा अपनाया, मगर तबई और क़ुदरती दुनिया के परे की हदों में क़दम रखते ही वे भी इल्मी तरीक़े को छोड़कर क़ियास

व गुमान और अन्दाज़े व अटकलों के पीछे चल पड़े।
फिर इन सब गरोहों के अंधविश्वासों और गुमानों को किसी-न-किसी तरह तास्सुब (पक्षपात) की बीमारी भी लग गई जिसने उन्हें दूसरे की बात न सुनने और अपने ही मनपसन्द रास्ते पर मुड़ने और मुड़ जाने के बाद मुड़े रहने पर मजबूर कर दिया।
तजस्सुस (जिज्ञासा) के इस तरीक़े को क़ुरआन बुनियादी तौर पर ग़लत ठहराता है। वह कहता है कि तुम लोगों की गुमराही की अस्ल वजह यही है कि तुम हक़ीक़त की तलाश की बुनियाद गुमान और अटकलों पर रखते हो और फिर तास्सुब की वजह से किसी की सही और मुनासिब बातें सुनने के लिए भी आमादा नहीं होते। इसी दोहरी ग़लती का नतीजा यह है कि तुम्हारे लिए ख़ुद हक़ीक़त को पा लेना तो नामुमकिन था ही, नबियों के ज़रिए पेश किए गए दीन को जाँच कर सही राय पर पहुँचना भी नामुमकिन हो गया।
इसके मुक़ाबले में क़ुरआन ने फ़ल्सफ़ियाना तहक़ीक़ के लिए सही इल्मी व अक़्ली तरीक़ा यह बताया है कि पहले तुम हक़ीक़त के बारे में उन लोगों का बयान खुले कानों से, बिना तास्सुब (पक्षपात) सुनो जो दावा करते हैं कि हम क़ियास व गुमान, मुराक़बा व इस्तिदराज (चमत्कार) की बुनियाद पर नहीं, बल्कि 'इल्म' की बुनियाद पर तुम्हें बता रहे हैं कि हक़ीक़त यह है। फिर कायनात में जो निशानियाँ (क़ुरआन की ज़बान में 'निशानात') तुम्हारे देखने और तजरिबे में आती हैं उनपर ग़ौर करो, उनकी गवाहियों को इकट्ठा करके देखो और तलाश करते चले जाओ कि इस ज़ाहिर के पीछे जिस हक़ीक़त की निशानदही ये लोग कर रहे हैं उसकी तरफ़ इशारा करनेवाली अलामतें तुमको इसी ज़ाहिर में मिलती हैं या नहीं। अगर ऐसी अलामतें नज़र आएँ और उनके इशारे भी वाज़ेह हों तो फिर कोई वजह नहीं कि तुम ख़ामख़ाह उन लोगों को झुठलाओ जिनका बयान निशानियों की गवाहियों के मुताबिक़ पाया जा रहा है— यही तरीक़ा इस्लाम के फ़ल्सफ़े की बुनियाद है जिसे छोड़कर अफ़सोस है कि मुसलमान फ़ल्सफ़ी (दार्शनिक) भी अफ़लातून और अरस्तू के नक़्शे-क़दम पर चल पड़े।
क़ुरआन में जगह-जगह न सिर्फ़ इस तरीक़े की ताकीद की गई है, बल्कि ख़ुद कायनात की निशानियों को पेश कर-कर के उनसे नतीजा निकालने और हक़ीक़त तक पहुँचने की मानो बाक़ायदा तरबियत दी गई है ताकि सोचने और तलाश करने का यह ढंग ज़ेहनों में बैठ जाए। चुनाँचे इस आयत में भी मिसाल के तौर पर सिर्फ़ दो निशानियों की तरफ़ ध्यान दिलाया गया है, यानी रात और दिन। रात और दिन का यह आना-जाना अस्ल में सूरज और ज़मीन की निस्बतों में इन्तिहाई बाज़ाब्ता तब्दीली की वजह से सामने आता है। यह एक आलमगीर नाज़िम और सारी कायनात पर ग़ालिब इक़्तिदार रखनेवाले हाकिम के वुजूद की खुली अलामत है। इसमें वाज़ेह हिक्मत और मक़सदियत भी नज़र आती है; क्योंकि ज़मीन पर मौजूद तमाम चीज़ों की बेशुमार मस्लहतें रात-दिन के इसी उलट-फेर से जुड़ी हैं। इसमें ख़ुदा की परवरदिगारी और रहमत की साफ़ और खुली अलामतें भी पाई जाती हैं; क्योंकि इससे यह सुबूत मिलता है कि जिसने ज़मीन पर ये सारी चीज़ें पैदा की हैं वह ख़ुद ही इनके वुजूद की ज़रूरतें भी पूरी करता है। इससे यह भी मालूम होता है कि वह आलमगीर नाज़िम एक है, और यह भी कि वह

قَالُوا اتَّخَذَ اللّٰهُ وَلَدًا سُبْحٰنَهٗ ؕ هُوَ الْغَنِيُّ ؕ لَهٗ مَا فِي السَّمٰوٰتِ وَمَا فِي الْاَرْضِ ؕ اِنْ عِنْدَكُمْ مِّنْ سُلْطٰنٍ بِهٰذَا ؕ اَتَقُوْلُوْنَ عَلَى اللّٰهِ مَا لَا تَعْلَمُوْنَ ﴿٦٨﴾ قُلْ اِنَّ الَّذِيْنَ يَفْتَرُوْنَ عَلَى اللّٰهِ الْكَذِبَ لَا يُفْلِحُوْنَ ﴿٦٩﴾

(68) लोगों ने कह दिया कि अल्लाह ने किसी को बेटा बनाया है।[66] सुबूहानल्लाह![67] वह तो बेनियाज़ (निस्पृह) है, आसमानों और ज़मीन में जो कुछ है सब उसकी मिल्कियत है।[68] तुम्हारे पास इस बात के लिए आख़िर दलील क्या है? क्या तुम अल्लाह के बारे में वे बातें कहते हो जो तुम्हारे इल्म में नहीं हैं? (69) ऐ नबी! कह दो कि जो लोग अल्लाह पर झूठ बाँधते हैं, वे हरगिज़ कामयाबी नहीं पा सकते।

खिलंडरा नहीं, बल्कि हिकमतवाला है और बामक़सद काम करता है, और यह भी कि वही एहसान करनेवाला और पालने-पोसनेवाला होने की हैसियत से इबादत का हक़दार है, और यह भी कि रात-दिन के उलट-फेर के तहत जो कोई भी है वह रब और पालनहार नहीं है, बल्कि उस पालनहार के ज़रिए ख़ुद उसका पालन-पोषण हो रहा है, वह मालिक नहीं ग़ुलाम है। इन आसारी गवाहियों के मुक़ाबले में मुशरिकों ने गुमान और अटकलों से जो मज़हब बना लिए हैं, वे आख़िर किस तरह सही हो सकते हैं।

66. ऊपर की आयतों में लोगों की इस जाहिलियत पर टोका गया था कि अपने मज़हब की बुनियाद इल्म के बजाए गुमान और अटकल पर रखते हैं और फिर किसी इल्मी तरीक़े से यह पता लगाने की भी कोशिश नहीं करते कि हम जिस मज़हब पर चले जा रहे हैं उसकी कोई दलील भी है या नहीं। अब इसी सिलसिले में ईसाइयों और कुछ दूसरे धर्मवालों की इस नादानी पर टोका गया है कि उन्होंने सिर्फ़ गुमान से किसी को ख़ुदा का बेटा ठहरा लिया।

67. 'सुब्हानल्लाह' कलिमा ताज्जुब के तौर पर कभी हैरत ज़ाहिर करने के लिए भी बोला जाता है, और कभी उसके हक़ीक़ी मानी ही मुराद होते हैं, यानी यह कि "अल्लाह तआला हर ऐब से पाक है।" यहाँ यह कलिमा दोनों मानी दे रहा है। इसका मक़सद लोगों के यह कहने पर हैरत का इज़हार भी है और इसका मक़सद उनकी बात के जवाब में यह कहना भी है कि अल्लाह तो बेऐब है, किसी को उसका बेटा बताना किस तरह सही हो सकता है।

68. यहाँ उनकी इस बात के रद्द में तीन बातें कही गई हैं : एक यह कि अल्लाह बेऐब (दोषमुक्त) है, दूसरी यह कि वह बेनियाज़ (निस्पृह) है। तीसरी यह कि आसमान और ज़मीन में मौजूद सारी चीज़ें उसकी मिल्कियत हैं। ये मुख़्तसर जवाब थोड़ी-सी तशरीह (व्याख्या) से आसानी से

مَتَاعٌ فِي الدُّنْيَا ثُمَّ إِلَيْنَا مَرْجِعُهُمْ ثُمَّ نُذِيقُهُمُ الْعَذَابَ الشَّدِيدَ

(70) दुनिया की कुछ दिनों की ज़िन्दगी में मज़े कर लें, फिर हमारी तरफ़ उनको पलटना है, फिर हम इस कुफ़्र (इनकार) के बदले, जिसे वे कर रहे हैं, उनको सख़्त अज़ाब का

समझ में आ सकते हैं :

ज़ाहिर बात है कि बेटा या तो सगा और नस्ली हो सकता है या फिर गोद लिया हुआ। अगर ये लोग किसी को ख़ुदा का बेटा सगा या नस्ली मानी में ठहराते हैं तो इसका मतलब यह है कि ये लोग ख़ुदा को उस जानदार की तरह समझते हैं जो शख़्सी हैसियत से ख़त्म हो जानेवाला होता है और जिसके वुजूद का सिलसिला इसके बिना क़ायम नहीं रह सकता कि उसकी कोई जिंस (जाति) हो और उस जिंस से कोई उसका जोड़ा हो और उन दोनों के जिंसी मिलाप से उसकी औलाद हो, जिसके ज़रिए से उसका वुजूद और उसका नाम व काम बाक़ी रहे। और अगर ये लोग इस मानी में ख़ुदा का बेटा ठहराते हैं कि उसने किसी को गोद लेकर बेटा बनाया है तो यह दो हालत से ख़ाली नहीं। या तो उन्होंने ख़ुदा को उस इनसान के जैसा समझ लिया है जो बेऔलाद होने की वजह से अपनी जिंस के किसी शख़्स को इसलिए बेटा बनाता है कि वह उसका वारिस हो और उस नुक़सान का, जो उसे बेऔलाद रह जाने की वजह से पहुँच रहा है, नाम के लिए ही सही, कुछ तो भरपाई कर दे। या फिर उनका गुमान यह है कि ख़ुदा भी इनसान की तरह जज़्बाती रुझान रखता है और अपने बेशुमार बन्दों में से किसी एक के साथ उसको कुछ ऐसी मुहब्बत हो गई कि उसने उसे बेटा बना लिया है।

इन तीनों सूरतों में से जो सूरत भी हो, बहरहाल इस अक़ीदे के बुनियादी तसव्वुरात (मौलिक अवधारणाओं) में ख़ुदा पर बहुत-से ऐबों, बहुत-सी कमज़ोरियों, बहुत-सी कमियों और बहुत-सी ज़रूरतों की तोहमत लगी हुई हैं। इसी बिना पर पहले जुमले में कहा गया कि अल्लाह तआला इन तमाम ऐबों, कमियों और कमज़ोरियों से पाक है जो तुम उससे जोड़ रहे हो। दूसरे जुमले में कहा गया कि वह उन ज़रूरतों से भी बेनियाज़ है जिनकी वजह से ख़त्म हो जानेवाले इनसानों को औलाद की या बेटा बनाने की ज़रूरत पेश आती है और तीसरे जुमले में साफ़ कह दिया गया कि ज़मीन व आसमान में सब अल्लाह के बन्दे और उसकी मिल्कियत हैं। उनमें से किसी के साथ भी अल्लाह का ऐसा कोई ख़ास ज़ाती ताल्लुक़ नहीं है कि सबको छोड़कर उसे वह अपना बेटा या इकलौता या जानशीन (उत्तराधिकारी) क़रार दे ले। ख़ूबियों की बुनियाद पर बेशक अल्लाह कुछ बाज़ बन्दों से कुछ के मुक़ाबले ज़्यादा मुहब्बत रखता है, मगर इस मुहब्बत के ये मानी नहीं है कि किसी बन्दे को बन्दगी के मक़ाम से उठाकर ख़ुदाई में साझेदारी का मक़ाम दे दिया जाए। ज़्यादा-से-ज़्यादा इस मुहब्बत का तक़ाज़ा बस वह है जो इससे पहले की एक आयत में बयान कर दिया गया है कि "जो ईमान लाए और जिन्होंने तक़वा (परहेज़गारी) का रवैया अपनाया उनके लिए किसी ख़ौफ़ और रंज का मौक़ा नहीं। दुनिया और आख़िरत दोनों में उनके लिए ख़ुशख़बरी-ही-ख़ुशख़बरी है।"

بِمَا كَانُوا يَكْفُرُونَ ۝٧٠ وَاتْلُ عَلَيْهِمْ نَبَأَ نُوحٍ ۘ إِذْ قَالَ لِقَوْمِهِ يَٰقَوْمِ
إِن كَانَ كَبُرَ عَلَيْكُم مَّقَامِي وَتَذْكِيرِي بِـَٔايَٰتِ ٱللَّهِ فَعَلَى ٱللَّهِ تَوَكَّلْتُ
فَأَجْمِعُوٓا أَمْرَكُمْ وَشُرَكَآءَكُمْ ثُمَّ لَا يَكُنْ أَمْرُكُمْ عَلَيْكُمْ غُمَّةً ثُمَّ

मज़ा चखाएँगे।

(71) इनको नूह[69] का क़िस्सा सुनाओ, उस वक़्त का क़िस्सा जब उसने अपनी क़ौम से कहा था कि "ऐ क़ौम के भाइयो! अगर मेरा तुम्हारे बीच रहना और अल्लाह की आयतों को सुना-सुनाकर तुम्हें ग़फ़लत से जगाना तुम्हारे लिए बरदाश्त से बाहर हो गया है, तो मेरा भरोसा अल्लाह पर है। तुम अपने ठहराए हुए शरीकों को साथ लेकर सबकी रज़ामन्दी से एक फ़ैसला कर लो और जो मंसूबा तुम्हारे सामने हो उसको ख़ूब सोच-समझ लो, ताकि उसका कोई पहलू तुम्हारी निगाह से छिपा न रहे। फिर मेरे ख़िलाफ़

69. यहाँ तक तो उन लोगों को मुनासिब दलीलों और दिल को लगनेवाली नसीहतों के साथ समझाया गया था कि उनके अक़ीदे और ख़यालात और तरीक़ों में ग़लती क्या है और वह क्यों ग़लत है, और उसके मुक़ाबले में सही राह क्या है और वह क्यों सही है। अब उनके उस रवैये की तरफ़ ध्यान दिया जाता है जो वह इस सीधी-सीधी और साफ़-साफ़ नसीहत और समझाने-बुझाने के जवाब में अपना रहे थे। दस-ग्यारह साल से उनका रवैया यह था कि वे बजाए इसके कि इस मुनासिब तनक़ीद (आलोचना) और सही रहनुमाई पर ग़ौर करके अपनी गुमराहियों पर दोबारा ग़ौर करते, उलटे उस शख़्स की जान के दुश्मन हो गए थे जो इन बातों को अपनी किसी ज़ाती ग़रज़ के लिए नहीं, बल्कि उन्हीं के भले के लिए पेश कर रहा था। वे दलीलों का जवाब पत्थरों से और नसीहतों का जवाब गालियों से दे रहे थे। अपनी बस्ती में ऐसे शख़्स का वुजूद उनके लिए सख़्त नागवार, बल्कि नाक़ाबिले-बरदाश्त हो गया था जो ग़लत को ग़लत कहनेवाला हो और सही बात बताने की कोशिश करता हो। उनकी माँग यह थी कि हम अन्धों के बीच जो आँखोंवाला पाया जाता है वह हमारी आँखें खोलने के बजाए अपनी आँखें ही बन्द कर ले, वरना हम ज़बरदस्ती उसकी आँखें फ़ोड़ देंगे; ताकि आँखों की रौशनी जैसी चीज़ हमारी सरज़मीन में न पाई जाए। यह रवैया जो उन्होंने अपना रखा था, उसपर कुछ और कहने के बजाए अल्लाह तआला अपने नबी को हुक्म देता है कि इन्हें नूह (अलैहि०) का क़िस्सा सुना दो। इसी क़िस्से में वे अपने और तुम्हारे मामले का जवाब भी पा लेंगे।

اقْضُوْٓا اِلَيَّ وَلَا تُنْظِرُوْنِ ﴿٧١﴾ فَاِنْ تَوَلَّيْتُمْ فَمَا سَاَلْتُكُمْ مِّنْ اَجْرٍ ۭ اِنْ
اَجْرِيَ اِلَّا عَلَي اللّٰهِ ۙ وَاُمِرْتُ اَنْ اَكُوْنَ مِنَ الْمُسْلِمِيْنَ ﴿٧٢﴾ فَكَذَّبُوْهُ
فَنَجَّيْنٰهُ وَمَنْ مَّعَهٗ فِي الْفُلْكِ وَجَعَلْنٰهُمْ خَلٰۗىِٕفَ وَاَغْرَقْنَا الَّذِيْنَ
كَذَّبُوْا بِاٰيٰتِنَا ۚ فَانْظُرْ كَيْفَ كَانَ عَاقِبَةُ الْمُنْذَرِيْنَ ﴿٧٣﴾ ثُمَّ بَعَثْنَا
مِنْۢ بَعْدِهٖ رُسُلًا اِلٰى قَوْمِهِمْ فَجَاۗءُوْهُمْ بِالْبَيِّنٰتِ فَمَا كَانُوْا لِيُؤْمِنُوْا
بِمَا كَذَّبُوْا بِهٖ مِنْ قَبْلُ ۭ كَذٰلِكَ نَطْبَعُ عَلٰي قُلُوْبِ الْمُعْتَدِيْنَ ﴿٧٤﴾

उसको अमल में ले आओ और मुझे हरगिज़ मोहलत न दो।[70] (72) तुमने मेरी नसीहत से मुँह मोड़ा (तो मेरा क्या नुक़सान किया), मैं तुमसे किसी बदले का तलबगार न था, मेरा बदला तो अल्लाह के ज़िम्मे है। और मुझे हुक्म दिया गया है कि (चाहे कोई माने या न माने) मैं ख़ुद अल्लाह का फ़रमाँबरदार बनकर रहूँ।" (73) — उन्होंने उसे झुठलाया और नतीजा यह हुआ कि हमने उसे और उन लोगों को, जो उसके साथ नाव में थे, बचा लिया और उन्हीं को ज़मीन में जानशीन (उत्तराधिकारी) बनाया और उन सब लोगों को डुबो दिया, जिन्होंने हमारी आयतों को झुठलाया था। तो देख लो कि जिन्हें ख़बरदार किया गया था (और फिर भी उन्होंने मानकर न दिया) उनका क्या अंजाम हुआ।

(74) फिर नूह के बाद हमने कितने ही पैग़म्बरों को उनकी क़ौमों की तरफ़ भेजा और वे उनके पास खुली-खुली निशानियाँ लेकर आए, मगर जिस चीज़ को उन्होंने पहले झुठला दिया था उसे फिर मानकर न दिया, इस तरह हम हद से गुज़र जोनेवालों के दिलों पर ठप्पा लगा देते हैं।[71]

---

70. यह चैलेंज था कि मैं अपने काम से नहीं रुकूँगा, तुम मेरे ख़िलाफ़ जो कुछ करना चाहते हो कर गुज़रो, मेरा भरोसा अल्लाह पर है। (देखें—सूरा-11 हूद, आयत- 55)

71. हद से गुज़र जानेवाले लोग वे हैं जो एक बार ग़लती कर जाने के बाद फिर अपनी बात की पच और ज़िद और हठधर्मी की वजह से अपनी उसी ग़लती पर अड़े रहते हैं और जिस बात को मानने से एक बार इनकार कर चुके हैं। उसे फिर किसी समझाने-बुझाने, किसी नसीहत और किसी मुनासिब-से-मुनासिब दलील से भी मानकर नहीं देते। ऐसे लोगों पर आख़िरकार ख़ुदा की ऐसी फिटकार पड़ती है कि उन्हें फिर कभी सीधे रास्ते पर आने का मौक़ा नहीं मिलता।

ثُمَّ بَعَثْنَا مِنْ بَعْدِهِمْ مُّوْسٰى وَهٰرُوْنَ اِلٰى فِرْعَوْنَ وَمَلَا۟ئِهٖ بِاٰيٰتِنَا
فَاسْتَكْبَرُوْا وَكَانُوْا قَوْمًا مُّجْرِمِيْنَ ۝ فَلَمَّا جَآءَهُمُ الْحَقُّ مِنْ عِنْدِنَا
قَالُوْٓا اِنَّ هٰذَا لَسِحْرٌ مُّبِيْنٌ ۝ قَالَ مُوْسٰٓى اَتَقُوْلُوْنَ لِلْحَقِّ لَمَّا

(75) फिर उन[72] के बाद हमने मूसा और हारून को अपनी निशानियों के साथ फ़िरऔन और उसके सरदारों की तरफ़ भेजा, मगर उन्होंने अपनी बड़ाई का घमण्ड किया[73], और वे मुजरिम लोग थे। (76) जब हमारे पास से हक़ उनके सामने आया तो उन्होंने कह दिया कि यह तो खुला जादू है।[74] (77) मूसा ने कहा, "तुम हक़ को यह

72. इस मौक़े पर उन हाशियों को सामने रखा जाए जो हमने सूरा-7 आराफ़ (आयत-100 से 171) में मूसा (अलैहि॰) व फ़िरऔन के क़िस्से पर लिखे हैं। जिन बातों की तशरीह वहाँ की जा चुकी है उन्हें यहाँ दोहराया न जाएगा।

73. यानी उन्होंने अपनी दौलत व हुकूमत और शान-शौकत के नशे में मदहोश होकर अपने आपको बन्दगी के मक़ाम से बहुत ऊँचा समझ लिया और इताअत व फ़रमाँबरदारी में सिर झुका देने के बजाए अकड़ दिखाई।

74. यानी हज़रत मूसा का पैग़ाम सुनकर वही कुछ कहा जो मक्का के इस्लाम-दुश्मनों ने मुहम्मद (सल्ल॰) का पैग़ाम सुनकर कहा था कि "यह शख़्स तो खुला जादूगर है।" (देखें—इसी सूरा यूनुस की दूसरी आयत)

यहाँ बात के सिलसिले को निगाह में रखने से यह बात साफ़ तौर पर ज़ाहिर हो जाती है कि हज़रत मूसा (अलैहि॰) व हारून (अलैहि॰) भी अस्ल में उसी काम पर लगाए गए थे जिसपर हज़रत नूह (अलैहि॰) और उनके बाद के तमाम पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) तक लगाए जाते रहे हैं। इस सूरा में शुरू से एक ही मज़मून (विषय) चला आ रहा है और वह यह कि सिर्फ़ सारे जहानों के रब अल्लाह को अपना रब और इलाह (उपास्य) मानो और यह तस्लीम करो कि तुमको इस ज़िन्दगी के बाद दूसरी ज़िन्दगी में अल्लाह के सामने हाज़िर होना और अपने अमल का हिसाब देना है। फिर जो लोग पैग़म्बर की इस दावत को मानने से इनकार कर रहे थे, उनको समझाया जा रहा है कि न सिर्फ़ तुम्हारी फ़लाह का, बल्कि हमेशा से तमाम इनसानों की फ़लाह का दारोमदार इसी एक बात पर रहा है कि तौहीद और आख़िरत के इस अक़ीदे की दावत को, जिसे हर ज़माने में ख़ुदा के पैग़म्बरों ने पेश किया है, क़बूल किया जाए और अपना पूरा निज़ामे-ज़िन्दगी इसी बुनियाद पर क़ायम कर लिया जाए। फ़लाह सिर्फ़ उन्होंने पाई जिन्होंने यह काम किया, और जिस क़ौम ने भी इससे इनकार किया वह आख़िरकार तबाह होकर रही। यही इस सूरा का मर्कज़ी मज़मून (केन्द्रीय विषय) है, और इस पसमंज़र ही में जब तारीख़ी मिसालों के तौर पर दूसरे नबियों का ज़िक्र आया है तो लाज़िमन उसके यही मानी हैं कि जो

جَآءَكُمْ ۖ أَسِحْرٌ هٰذَا ۖ وَلَا يُفْلِحُ السّٰحِرُونَ ﴿٧٧﴾ قَالُوٓا أَجِئْتَنَا لِتَلْفِتَنَا

कहते हो जबकि वह तुम्हारे सामने आ गया? क्या यह जादू है? हालाँकि जादूगर कामयाबी नहीं पाया करते।"[75] (78) उन्होंने जवाब में कहा, "क्या तू इसलिए आया है

दावत इस सूरा में दी गई है वही उन तमाम नबियों की दावत थी, और उसी को लेकर हज़रत मूसा (अलैहि०) व हारून (अलैहि०) भी फ़िरऔन और उसकी क़ौम के सरदारों के पास गए थे। अगर सच्चाई वह होती जो कुछ लोगों ने समझी है कि हज़रत मूसा (अलैहि०) व हारून (अलैहि०) का मिशन एक ख़ास क़ौम को दूसरी क़ौम की ग़ुलामी से आज़ाद कराना था, तो इस पसमंज़र में इस वाक़िए को तारीख़ी मिसाल के तौर पर पेश करना बिलकुल बेजोड़ होता। इसमें शक नहीं कि इन दोनों हज़रात के मिशन का एक हिस्सा यह भी था कि बनी-इसराईल (एक मुसलमान क़ौम) को एक काफ़िर क़ौम के पंजे से (अगर वह अपने कुफ़्र पर क़ायम रहे) आज़ाद कराएँ। लेकिन यह एक दूसरा मक़सद था न कि भेजे जाने का अस्ल मक़सद। असल मक़सद तो वही था जो क़ुरआन के मुताबिक़ तमाम नबियों के भेजे जाने का मक़सद रहा है और सूरा-79 नाज़िआत में जिसको साफ़ तौर पर बयान भी कर दिया गया है कि, "फ़िरऔन के पास जा, क्योंकि वह बन्दगी की हद से गुज़र गया है और उससे कह क्या तू इसके लिए तैयार है कि सुधर जाए, और मैं तुझे तेरे रब की तरफ़ रहनुमाई करूँ, तो तू उससे डरे?" मगर चूँकि फ़िरऔन और उसके दरबारियों ने इस दावत को क़बूल नहीं किया और आख़िरकार हज़रत मूसा (अलैहि०) को यही करना पड़ा कि अपनी मुसलमान क़ौम को उसके चंगुल से निकाल ले जाएँ, इसलिए उनके मिशन का यही हिस्सा इतिहास में नुमायाँ हो गया और क़ुरआन में भी इसको वैसा ही नुमायाँ करके पेश किया गया जैसा कि वह हक़ीक़त में इतिहास में मौजूद है। जो शख़्स क़ुरआन की तफ़सीलात को उसके उसूलों से अलग करके देखने की ग़लती न करता हो, बल्कि उन्हीं उसूलों के मातहत करके ही देखता और समझता हो, वह कभी इस ग़लतफ़हमी में नहीं पड़ सकता कि एक क़ौम की रिहाई, किसी नबी को भेजे जाने का अस्ल मक़सद और दीने-हक़ की बात सिर्फ़ उसका एक दूसरा मक़सद हो सकता है। (और ज़्यादा तशरीह के लिए देखें— सूरा-20 ताहा, आयत- 44-52; सूरा-48 ज़ुख़रुफ़, आयत- 46-56; सूरा-73 मुज़म्मिल, आयत- 15-16)

75. मतलब यह है कि देखने में जादू और मोजिज़े के दरमियान जो एक जैसी बात नज़र आती है उसकी बिना पर तुम लोगों ने बेझिझक इसे जादू बता दिया। मगर नादानो! तुमने यह न देखा कि जादूगर किस किरदार और अख़लाक़ के लोग होते हैं और किन मक़सदों के लिए जादूगरी किया करते हैं। क्या किसी जादूगर का यही काम होता है कि बिना किसी ग़रज़ के और बेधड़क एक ज़ालिम बादशाह के दरबार में आए और उसे उसकी गुमराही पर मलामत करे और ख़ुदा-परस्ती और रूह की पाकी इख़्तियार करने की दावत दे? तुम्हारे यहाँ कोई जादूगर आया होता तो पहले दरबारियों के पास ख़ुशामदें करता फिरता कि ज़रा दरबार में मुझे अपने कमालात दिखाने का मौक़ा दिलवा दो, फिर जब वह दरबार में पहुँच जाता तो आम चापलूसों से भी कुछ

عَمَّا وَجَدْنَا عَلَيْهِ اٰبَآءَنَا وَتَكُوْنَ لَكُمَا الْكِبْرِيَآءُ فِى الْاَرْضِ ؕ وَمَا نَحْنُ
لَكُمَا بِمُؤْمِنِيْنَ ﴿۷۸﴾ وَقَالَ فِرْعَوْنُ ائْتُوْنِىْ بِكُلِّ سٰحِرٍ عَلِيْمٍ ﴿۷۹﴾ فَلَمَّا
جَآءَ السَّحَرَةُ قَالَ لَهُمْ مُّوْسٰٓى اَلْقُوْا مَآ اَنْتُمْ مُّلْقُوْنَ ﴿۸۰﴾ فَلَمَّآ اَلْقَوْا
قَالَ مُوْسٰى مَا جِئْتُمْ بِهِ ۙ السِّحْرُ ؕ اِنَّ اللّٰهَ سَيُبْطِلُهٗ ؕ اِنَّ اللّٰهَ لَا يُصْلِحُ

कि हमें उस तरीक़े से फेर दे, जिसपर हमने अपने बाप-दादा को पाया है और ज़मीन में बड़ाई तुम दोनों की क़ायम हो जाए?[76] तुम्हारी बात तो हम माननेवाले नहीं हैं।" (79) और फ़िरऔन ने (अपने आदमियों से) कहा कि "हर फ़न (कला) में माहिर जादूगर को मेरे पास हाज़िर करो।"

(80) जब जादूगर आ गए तो मूसा ने उनसे कहा, "जो कुछ तुम्हें फेंकना है, फेंको।" (81) फिर जब उन्होंने अपने अंछर फेंक दिए तो मूसा ने कहा, "यह जो कुछ तुमने फेंका है, यह जादू है।[77] अल्लाह अभी इसे बातिल किए देता है। मुफ़सिदों (बिगाड़

बढ़कर ज़िल्लत और रुसवाई के साथ सलामियाँ पेश करता, चीख़-चीख़कर उम्र और रुतबे के बढ़ने की दुआएँ देता, बड़ी ख़ुशामदों के साथ दरख़ास्त करता कि सरकार कुछ ताबेदार ग़ुलाम के कमालात भी देखें, और जब तुम उसके तमाशे देख लेते तो हाथ फैला देता कि हुज़ूर कुछ इनाम मिल जाए।

इस पूरी बात को सिर्फ़ एक जुमले में समेट दिया है कि जादूगर फ़लाह (कामयाबी व नजात) पाए हुए इनसान नहीं हुआ करते।

76. ज़ाहिर है कि अगर हज़रत मूसा व हारून की अस्ल माँग बनी-इसराईल की रिहाई होती तो फ़िरऔन और उसके दरबारियों को यह अन्देशा करने की कोई ज़रूरत न थी कि इन दोनों बुज़ुर्गों की दावत फैलने से मिस्र की धरती का दीन (धर्म) बदल जाएगा और देश में हमारे बजाए उनकी बड़ाई क़ायम हो जाएगी। उनके इस अन्देशे की वजह तो यही थी कि हज़रत मूसा (अलैहि.) मिस्रवालों को अल्लाह की बन्दगी की तरफ़ दावत दे रहे थे और इससे वह मुशरिकाना निज़ाम (बहुदेववादी व्यवस्था) ख़तरे में था जिसपर फ़िरऔन की बादशाही और उसके सरदारों की सरदारी और मज़हबी पेशवाओं की पेशवाई क़ायम थी (और ज़्यादा तशरीह के लिए देखें—सूरा-7 आराफ़, हाशिया-66; सूरा-40 अल-मोमिन, हाशिया-43)

77. यानी जादू वह न था जो मैंने दिखाया था, जादू यह है जो तुम दिखा रहे हो।

عَمَلَ الْمُفْسِدِيْنَ ۝٨١ وَيُحِقُّ اللّٰهُ الْحَقَّ بِكَلِمٰتِهٖ وَلَوْ كَرِهَ الْمُجْرِمُوْنَ ۝٨٢ ع
فَمَآ اٰمَنَ لِمُوْسٰٓى اِلَّا ذُرِّيَّةٌ مِّنْ قَوْمِهٖ عَلٰى خَوْفٍ مِّنْ فِرْعَوْنَ

पैदा करनेवालों) के काम को अल्लाह सुधरने नहीं देता (82) और अल्लाह अपने फ़रमानों से हक़ को हक़ कर दिखाता है, चाहे मुजरिमों को वह कितना ही नागवार हो।"

(83) (फिर देखो कि) मूसा को उसकी क़ौम में से कुछ 'नौजवानों'[78] के सिवा किसी

78. अस्ल अरबी में लफ़्ज़ "ज़ुर्रियतुन" इस्तेमाल हुआ है जिसके मानी औलाद के हैं। हमने इसका तर्जमा 'नव जवान' किया है। मगर दरअस्ल इस ख़ास लफ़्ज़ के इस्तेमाल से जो बात क़ुरआन मजीद बयान करना चाहता है, वह यह है कि उस ख़तरों भरे ज़माने में हक़ का साथ देने और हक़ के अलमबरदार को अपना रहनुमा तस्लीम करने की जुर्रत कुछ लड़कों और लड़कियों ने तो की, मगर माओं और बापों और क़ौम के बुज़ुर्ग लोगों को इसकी तौफ़ीक़ नसीब न हुई। उनपर मसुलहतपरस्ती और दुनियावी फ़ायदों की बन्दगी और आफ़ियत और सुकून की चाहत कुछ इस तरह छाई रही कि वे ऐसे हक़ का साथ देने पर राज़ी न हुए जिसका रास्ता उनको ख़तरों से भरा नज़र आ रहा था, बल्कि वे उलटे नौजवानों ही को रोकते रहे कि मूसा के क़रीब न जाओ, वरना तुम ख़ुद भी फ़िरऔन के ग़ज़ब का शिकार होगे और हमपर भी आफ़त लाओगे।

यह बात ख़ासतौर पर क़ुरआन ने नुमायाँ करके इसलिए पेश की है कि मक्का की आबादी में से भी मुहम्मद (सल्ल॰) का साथ देने के लिए जो लोग आगे बढ़े थे वे क़ौम के बड़े-बूढ़े और बड़ी उम्र के लोग न थे, बल्कि कुछ बाहिम्मत नवजवान ही थे। वे शुरू के मुसलमान जो इन आयतों के उतरने के वक़्त सारी क़ौम की सख़्त मुख़ालिफ़त के मुक़ाबले में इस्लामी सच्चाई की हिमायत कर रहे थे और ज़ुल्मो-सितम के इस तूफ़ान में जिनके सीने इस्लाम के लिए ढाल बने हुए थे, उनमें मसुलहतपरस्त बूढ़ा कोई न था, सब के सब जवान लोग ही थे। अली-बिन-अबी-तालिब (रज़ि॰), ज़ाफ़र तय्यार (रज़ि॰), ज़ुबैर (रज़ि॰), सअद-बिन-अबी-वक़्क़ास (रज़ि॰), मुसअब-बिन-उमैर (रज़ि॰), अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद (रज़ि॰) जैसे लोग इस्लाम क़बूल करने के वक़्त 20 साल से कम उम्र के थे। अब्दुर्रहमान-बिन-औफ़ (रज़ि॰), बिलाल (रज़ि॰) और सुहैब (रज़ि॰) की उम्रें 20 और 30 के बीच थीं। अबू-उबैदा-बिन-जर्राह (रज़ि॰), ज़ैद-बिन-हारिसा (रज़ि॰), उसमान-बिन-अफ़्फ़ान (रज़ि॰) और उमर फ़ारूक़ (रज़ि॰) 30 और 35 साल के बीच की उम्र के थे। उनसे ज़्यादा उम्र के अबू-बक्र सिद्दीक़ (रज़ि॰) थे और उनकी उम्र भी ईमान लाने के वक़्त 38 साल से ज़्यादा न थी। शुरू के मुसलमानों में सिर्फ़ एक सहाबी का नाम हमें मिलता है जिनकी उम्र नबी (सल्ल॰) से ज़्यादा थी, यानी हज़रत उबैदा-बिन-हारिस मुत्तलिबी (रज़ि॰), और शायद पूरे गरोह में एक ही सहाबी नबी (सल्ल॰) की उम्र के थे, यानी अम्मार-बिन-यासिर (रज़ि॰)।

وَمَلَا۟ئِهِمْ اَنْ يَّفْتِنَهُمْ ۚ وَاِنَّ فِرْعَوْنَ لَعَالٍ فِي الْاَرْضِ ۚ وَاِنَّهٗ لَمِنَ

ने न माना[79], फ़िरऔन के डर से और ख़ुद अपनी क़ौम के बड़े लोगों के डर से (जिन्हें डर था कि) फ़िरऔन उनको अज़ाब में मुब्तला करेगा, और सच तो यह है कि फ़िरऔन ज़मीन में ग़ल्बा (प्रभुत्त्व) रखता था और वह उन लोगों में से था, जो किसी हद पर

79. अस्ल अरबी में "फ़मा आम-न लिमूसा" के अलफ़ाज़ हैं। इससे कुछ लोगों को शक हुआ कि शायद बनी-इसराईल सब के सब काफ़िर थे और शुरू में उनमें से सिर्फ़ कुछ आदमी ईमान लाए। लेकिन ईमान के साथ जब "लाम" (ल) का 'सिला' (उपसर्ग) आता है वह आमतौर से इताअत और फ़रमाँबरदारी के मानी देता है, यानी किसी की बात मानना और उसके कहे पर चलना। लिहाज़ा अस्ल में इन अलफ़ाज़ का मतलब यह है कि कुछ नवजवानों को छोड़कर बनी-इसराईल की पूरी क़ौम में से कोई भी इस बात पर आमादा न हुआ कि हज़रत मूसा को अपना रहनुमा और पेशवा मानकर उनकी पैरवी करने लगता और इस्लाम की इस दावत के काम में उनका साथ देता। फिर बाद के जुमले ने इस बात को वाज़ेह कर दिया कि उनके इस रवैये की असल वजह यह न थी कि उन्हें हज़रत मूसा के सच्चे होने और उनकी दावत के हक़ होने में कोई शक था, बल्कि इसकी वजह सिर्फ़ यह थी कि वे और ख़ासतौर से उनके बड़े और इज़्ज़तदार लोग, हज़रत मूसा का साथ देकर अपने आपको फ़िरऔन की सख़्तियों के ख़तरे में डालने के लिए तैयार न थे। अगरचे ये लोग नस्ली और मज़हबी दोनों हैसियतों से इबराहीम, इसहाक़, याक़ूब और यूसुफ़ (अलैहि॰) के उम्मती थे और इस बिना पर ज़ाहिर है कि सब मुसलमान थे, लेकिन एक लम्बे समय की अख़लाक़ी गिरावट ने और उस कमहिम्मती ने जो दूसरों के मातहत रहने के सबब से पैदा हुई थी, उनमें इतना बलबूता बाक़ी न छोड़ा था कि कुफ़्र और गुमराही की हुकूमत के मुक़ाबले में ईमान व हिदायत का अलम लेकर ख़ुद उठते, या जो उठा था उसका साथ देते।

हज़रत मूसा और फ़िरऔन की इस कशमकश में आम इसराईलियों का रवैया क्या था, इसका अन्दाज़ा बाइबल की इस इबारत से हो सकता है :

"जब वे फ़िरऔन के पास से निकले आ रहे थे तो उनको मूसा और हारून मुलाक़ात के लिए रास्ते पर खड़े मिले। तब उन्होंने उनसे कहा कि ख़ुदावन्द ही देखे और तुम्हारा इनसाफ़ करे, तुमने तो हमको फ़िरऔन और उसके ख़ादिमों की निगाह में ऐसा घिनौना किया है कि हमारे क़त्ल के लिए उनके हाथ में तलवार दे दी है।" (निष्कासन, 5:20, 21)

तलमूद में लिखा है कि बनी-इसराईल मूसा और हारून (अलैहि॰) से कहते थे :

"हमारी मिसाल तो ऐसी है जैसे एक भेड़िये ने बकरी को पकड़ा और चरवाहे ने आकर उसको बचाने की कोशिश की और दोनों की कशमकश में बकरी के टुकड़े उड़ गए। बस इसी तरह तुम्हारी और फ़िरऔन की खींचतान में हमारा काम तमाम होकर रहेगा।" (एच.पोलानू, मुंतख़ब तलमूद, पृष्ठ-152)

الْمُسْرِفِيْنَ ﴿٨٣﴾ وَقَالَ مُوْسٰى يٰقَوْمِ اِنْ كُنْتُمْ اٰمَنْتُمْ بِاللّٰهِ فَعَلَيْهِ
تَوَكَّلُوْٓا اِنْ كُنْتُمْ مُّسْلِمِيْنَ ﴿٨٤﴾ فَقَالُوْا عَلَى اللّٰهِ تَوَكَّلْنَا ۚ رَبَّنَا لَا تَجْعَلْنَا
فِتْنَةً لِّلْقَوْمِ الظّٰلِمِيْنَ ﴿٨٥﴾ وَنَجِّنَا بِرَحْمَتِكَ مِنَ الْقَوْمِ الْكٰفِرِيْنَ ﴿٨٦﴾

रुकते नहीं हैं।[80]

(84) मूसा ने अपनी क़ौम से कहा कि "लोगो! अगर तुम वाक़ई अल्लाह पर ईमान रखते हो तो उसपर भरोसा करो अगर मुसलमान हो।"[81] (85) उन्होंने जवाब दिया,[82] "हमने अल्लाह ही पर भरोसा किया। ऐ हमारे रब! हमें ज़ालिम लोगों के लिए फ़ितना[83] न बना (86) और अपनी रहमत से हमको काफ़िरों (इनकार करनेवालों) से छुटकारा दे।"

इन्हीं बातों की तरफ़ सूरा-आराफ़ में भी इशारा किया गया है कि बनी-इसराईल ने हज़रत मूसा से कहा कि तेरे आने से पहले भी हम सताए जाते थे और अब तेरे आने पर भी सताए जा रहे हैं। (सूरा-7 आराफ़, आयत—129)

80. अस्ल अरबी में लफ़्ज़ "मुसरिफ़ीन" इस्तेमाल हुआ है जिसके मानी हैं हद को पार करनेवाले। मगर इस लफ़्ज़ी तर्जमे से इसकी असूल यहाँ नुमायाँ नहीं होती, मुसरिफ़ीन से मुराद अस्ल में वे लोग हैं जो अपने मतलब के लिए किसी बुरे-से-बुरे तरीक़े को भी अपनाने में नहीं झिझकते। किसी ज़ुल्म और किसी बदअख़लाक़ी और किसी वहशीपन और बर्बरता का जुर्म करने से नहीं चूकते। अपनी ख़ाहिशों के पीछे किसी भी हद तक जा सकते हैं। उनके लिए कोई हद नहीं जिसपर जाकर वे रुक जाएँ।

81. ज़ाहिर है कि ये अलफ़ाज़ किसी काफ़िर क़ौम को मुख़ातब करके नहीं कहे जा सकते थे। हज़रत मूसा का यह कहना साफ़ बता रहा है कि बनी-इसराईल की पूरी क़ौम उस वक़्त मुसलमान थी और हज़रत मूसा उनको यह नसीहत कर रहे थे कि अगर तुम वाक़ई मुसलमान हो, जैसा कि तुम्हारा दावा है, तो फ़िरऔन की ताक़त से न डरो, बल्कि अल्लाह की ताक़त पर भरोसा करो।

82. यह जवाब उन नवजवानों का था जो मूसा (अलैहि.) का साथ देने पर आमादा हुए थे। यहाँ 'क़ालू' (उन्होंने कहा) में कहनेवाली क़ौम नहीं, बल्कि 'ज़ुर्रियत' है जैसा कि बात के मौक़ा-महल (सन्दर्भ) से ख़ुद ज़ाहिर है।

83. इन सच्चे ईमानवाले नवजवानों की यह दुआ कि "हमें ज़ालिम लोगों के लिए फ़ितना न बना" अपने अन्दर बड़े मानी और मतलब रखता है। जब हर तरफ़ गुमराही का ग़लबा और बोलबाला होता है और इस हालत में जब कुछ लोग हक़ को क़ायम करने के लिए उठते हैं, तो उन्हें तरह-तरह के ज़ालिमों से वास्ता पेश आता है। एक तरफ़ बातिल (असत्य) के असूली

وَاَوۡحَيۡنَاۤ اِلٰى مُوۡسٰى وَاَخِيۡهِ اَنۡ تَبَوَّاٰ لِقَوۡمِكُمَا بِمِصۡرَ بُيُوۡتًا وَّاجۡعَلُوۡا

(87) और हमने मूसा और उसके भाई को इशारा किया कि "मिस्र में कुछ मकान अपनी क़ौम के लिए हासिल कर लो और अपने उन मकानों को क़िब्ला ठहरा लो और

अलमबरदार होते हैं जो पूरी ताक़त से इन हक़ की दावत देनेवालों को कुचल देना चाहते हैं। दूसरी तरफ़ सिर्फ़ नाम के हक़परस्तों का एक अच्छा-ख़ासा गरोह होता है जो हक़ को मानने का दावा तो करता है मगर बातिल (असत्य) की ज़ालिमाना फ़रमाँरवाई (सत्ता) के मुक़ाबले में हक़ को क़ायम करने की कोशिश को ग़ैर-ज़रूरी, बेकार या बेवक़ूफ़ी समझता है और उसकी पूरी कोशिश यह होती है कि अपनी इस ख़ियानत (बेईमानी) को जो वह हक़ के साथ कर रहा है किसी-न-किसी तरह दुरुस्त साबित कर दे और उन लोगों को उलटा ग़लत साबित करके अपने अन्दर की उस बेचैनी को मिटाए जो उनकी सच्चे दीन को क़ायम करने की दावत से उसके दिल की गहराइयों में खुले तौर पर या छिपे तौर पर पैदा होती है। तीसरी तरफ़ आम लोग होते हैं जो अलग खड़े तमाशा देख रहे होते हैं और उनका वोट आख़िरकार उसी ताक़त के हक़ में पड़ा करता है जिसका पलड़ा भारी रहे, चाहे वह ताक़त सही हो या ग़लत। इस सूरतेहाल में हक़ की तरफ़ बुलानेवाले इन लोगों की हर नाकामी, हर मुसीबत, हर ग़लती, हर कमज़ोरी और ख़राबी इन मुख़्तलिफ़ गरोहों के लिए मुख़्तलिफ़ तौर से फ़ितना बन जाती है। वे कुचल डाले जाएँ या हार जाएँ तो पहला गरोह कहता है कि हक़ हमारे साथ था, न कि इन बेवक़ूफ़ों के साथ जो नाकाम हो गए। दूसरा गरोह कहता है कि देख लिया! हम न कहते थे कि ऐसी बड़ी-बड़ी ताक़तों से टकराने का नतीजा कुछ क़ीमती जानों के जाने के सिवा कुछ न होगा, और आख़िरकार इस तबाही में अपने आपको डालने का शरीअत ने हमें पाबन्द ही कब किया था, दीन की कम-से-कम ज़रूरी माँगें तो उन अक़ीदों व आमाल से पूरी हो ही रही थीं जिसकी इजाज़त वक़्त के फ़िरऔनों ने दे रखी थी। तीसरा गरोह फ़ैसला कर देता है कि हक़ वही है जो ग़ालिब रहा। इसी तरह अगर वे अपनी दावत के काम में कोई ग़लती कर जाएँ, या मुसीबतों और मुश्किलों को बरदाश्त न कर पाने की वजह से कमज़ोरी दिखा जाएँ, या उनसे, बल्कि उनके किसी एक आदमी से भी अख़लाक़ी एतिबार से कोई ग़लती हो जाए, तो बहुत-से लोगों के लिए बातिल (असत्य) से चिमटे रहने के हज़ार बहाने निकल आते हैं और फिर उस दावत की नाकामी के बाद लम्बे समय तक किसी दूसरी दावत के उठने का इमकान बाक़ी नहीं रहता। तो यह अपने अन्दर बहुत-से मानी और मतलब रखनेवाली दुआ थी जो मूसा (अलैहि॰) के उन साथियों ने माँगी थी कि ऐ ख़ुदा, हमपर ऐसी मेहरबानी कर कि हम ज़ालिमों के लिए फ़ितना बनकर न रह जाएँ। यानी हमको ग़लतियों से, ख़राबियों से, कमज़ोरियों से बचा और हमारी कोशिश को दुनिया में कामयाब कर दे, ताकि हमारा वुजूद तेरे बन्दों के लिए भलाई का ज़रिआ बने, न कि ज़ालिमों के लिए बुराई का ज़रिआ।

بُيُوْتَكُمْ قِبْلَةً وَّاَقِيْمُوا الصَّلٰوةَ ۗ وَبَشِّرِ الْمُؤْمِنِيْنَ ﴿٨٧﴾ وَقَالَ مُوْسٰى
رَبَّنَآ اِنَّكَ اٰتَيْتَ فِرْعَوْنَ وَمَلَاَهٗ زِيْنَةً وَّاَمْوَالًا فِى الْحَيٰوةِ الدُّنْيَا ۙ

नमाज़ क़ायम करो[84] और ईमानवालों को ख़ुशख़बरी दे दो।"[85]

(88) मूसा ने[86] दुआ की, "ऐ हमारे रब! तूने फ़िरऔन और उसके सरदारों को

84. इस आयत के मतलब व मानी में क़ुरआन के मुफ़स्सिरों (टीकाकारों) के बीच इख़्तिलाफ़ है। इसके अलफ़ाज़ पर और इस माहौल पर जिसमें ये अलफ़ाज़ कहे गए थे, ग़ौर करने से मैं यह समझता हूँ कि शायद मिस्र में हुकूमत की ज़्यादती से और ख़ुद बनी-इसराईल की अपनी ईमानी कमज़ोरी की वजह से इसराईली और मिस्री मुसलमानों के यहाँ जमाअत से नमाज़ पढ़ने का निज़ाम ख़त्म हो चुका था, और यह उनके बिखराव और उनकी दीनी रूह पर मौत छा जाने की एक बहुत बड़ी वजह थी। इसलिए हज़रत मूसा को हुक्म दिया गया कि इस निज़ाम को नए सिरे से क़ायम करें और मिस्र में कुछ मकान इस मक़सद के लिए बनवा लें या बने हुए मकान को इसके लिए ख़ास कर लें कि वहाँ इज्तिमाई नमाज़ अदा की जाया करे; क्योंकि एक बिगड़ी हुई और बिखरी हुई मुसलमान क़ौम में दीनी रूह को फिर से ज़िन्दा करने और उसकी बिखरी हुई ताक़त को फिर से इकट्ठा करने के लिए इस्लामी तरीक़े पर जो कोशिश भी की जाएगी उसका पहला क़दम लाज़िमन यही होगा कि उसमें जमाअत से नमाज़ अदा करने का निज़ाम क़ायम किया जाए। इन मकानों को 'क़िब्ला' ठहराने का मतलब मेरे नज़दीक यह है कि उन मकानों को सारी क़ौम के लिए मर्कज़ ठहराया जाए, जहाँ से क़ौम के सभी लोग राब्ते में रहें और इसके बाद ही "नमाज़ क़ायम करो" कहने का मतलब यह है कि अलग-अलग रहकर अपनी-अपनी जगह नमाज़ पढ़ लेने के बजाए लोग इन तयशुदा जगहों पर जमा होकर नमाज़ पढ़ा करें, क्योंकि क़ुरआन की ज़बान में "नमाज़ क़ायम करना" जिस चीज़ का नाम है उसके मानी में लाज़िमन जमाअत से नमाज़ पढ़ना भी शामिल है।

85. यानी ईमानवालों पर मायूसी, रोब खाने और उदासी की जो कैफ़ियत इस वक़्त छाई हुई है उसे दूर करो। उन्हें पुरउम्मीद बनाओ। उनकी हिम्मत बँधाओ और उनका हौसला बढ़ाओ। "ख़ुशख़बरी देने" के लफ़्ज़ में ये सब मानी शामिल हैं।

86. ऊपर की आयतें हज़रत मूसा की दावत के शुरुआती दौर से ताल्लुक़ रखती हैं और यह दुआ मिस्र में ठहरने के ज़माने के बिलकुल आख़िरी दिनों की है। बीच में कई साल की लम्बी दूरी है, जिसकी तफ़सीलात को यहाँ नज़रअन्दाज़ कर दिया गया है। दूसरी जगहों पर क़ुरआन मजीद में इस बीच के दौर का भी तफ़सीली हाल बयान हुआ है।

رَبَّنَا لِيُضِلُّوْا عَنْ سَبِيْلِكَ ۚ رَبَّنَا اطْمِسْ عَلٰٓى اَمْوَالِهِمْ وَاشْدُدْ عَلٰى
قُلُوْبِهِمْ فَلَا يُؤْمِنُوْا حَتّٰى يَرَوُا الْعَذَابَ الْاَلِيْمَ ﴿٨٨﴾ قَالَ قَدْ اُجِيْبَتْ
دَّعْوَتُكُمَا فَاسْتَقِيْمَا وَلَا تَتَّبِعٰٓنِّ سَبِيْلَ الَّذِيْنَ لَا يَعْلَمُوْنَ ﴿٨٩﴾

दुनिया की ज़िन्दगी में ज़ीनत[87] और माल[88] दे रखे हैं। ऐ रब! क्या यह इसलिए है कि वे लोगों को तेरी राह से भटकाएँ? ऐ रब! इनके माल ग़ारत कर दे और इनके दिलों पर ऐसी मुहर कर दे कि ईमान न लाएँ जब तक दर्दनाक अज़ाब न देख लें।"[89]
(89) अल्लाह ने जवाब में फ़रमाया, "तुम दोनों की दुआ क़बूल की गई। जमे रहो और उन लोगों की हरगिज़ पैरवी न करो जो इल्म नहीं रखते।"[90]

87. यानी ठाठ, शान-शौकत और तहज़ीब व तमद्दुन (सभ्यता व संस्कृति) की वह ख़ुशनुमाई जिसकी वजह से दुनिया उनपर और उनके तौर-तरीक़ों पर रीझती है और हर शख़्स का दिल चाहता है कि वैसा ही बन जाए, जैसे वे हैं।

88. यानी ज़रिए और वसाइल (साधन और संसाधन) जिनकी बहुतायत की वजह से वे अपनी तदबीरों को अमल में लाने के लिए हर तरह की आसानियाँ रखते हैं और जिनकी कमी की वजह से हक़परस्त अपनी तदबीरों को अमल में नहीं ला पाते हैं।

89. जैसा कि अभी हम बता चुके हैं, यह दुआ हज़रत मूसा ने मिस्र में रहने के ज़माने के बिलकुल आख़िरी वक़्त में की थी, और उस वक़्त की थी जब एक के बाद एक निशानियाँ देख लेने और दीन की हुज्जत पूरी हो जाने के बाद भी फ़िरऔन और उसके दरबारी हक़ (इस्लाम) की दुश्मनी पर इन्तिहाई हठधर्मी के साथ जमे रहे। ऐसे मौक़े पर पैग़म्बर जो बद्दुआ करता है वह ठीक-ठीक वही होती है, जो कुफ़्र पर अड़े रहनेवालों के बारे में ख़ुद अल्लाह तआला का फ़ैसला है, यानी यह कि फिर उन्हें ईमान की तौफ़ीक़ (सुअवसर) न बख़्शी जाए।

90. जो लोग हक़ीक़त को नहीं जानते और अल्लाह तआला की मसलहतों (निहित उद्देश्यों) को नहीं समझते वे बातिल के मुक़ाबले में हक़ की कमज़ोरी और हक़ को क़ायम करने के लिए कोशिश करनेवालों की लगातार नाकामियाँ, और बातिल के पेशवाओं के ठाठ और उनकी दुनियावी कामयाबियाँ देखकर यह गुमान करने लगते हैं कि शायद अल्लाह तआला को यही मंज़ूर है कि उसके बाग़ी दुनिया पर छाए रहें, और शायद अल्लाह तआला ख़ुद बातिल के मुक़ाबले में हक़ की ताईद और मदद करना नहीं चाहता। फिर वे नादान लोग आख़िरकार अपनी बदगुमानियों की बिना पर यह नतीजा निकाल बैठते हैं कि हक़ को क़ायम करने की कोशिश करना बेकार का काम है और अब मुनासिब यही है कि उस ज़रा-सी दीनदारी पर राज़ी होकर बैठ रहा जाए जिसकी इजाज़त कुफ़्र और बुराई की हुकूमत में मिल रही हो। इस आयत

وَجٰوَزْنَا بِبَنِيْٓ اِسْرَآءِيْلَ الْبَحْرَ فَاَتْبَعَهُمْ فِرْعَوْنُ وَجُنُوْدُهٗ بَغْيًا
وَّعَدْوًا ۭ حَتّٰٓي اِذَآ اَدْرَكَهُ الْغَرَقُ ۙ قَالَ اٰمَنْتُ اَنَّهٗ لَآ اِلٰهَ اِلَّا الَّذِيْٓ
اٰمَنَتْ بِهٖ بَنُوْٓا اِسْرَآءِيْلَ وَاَنَا مِنَ الْمُسْلِمِيْنَ ۝90 آٰلْــٰٔنَ وَقَدْ عَصَيْتَ
قَبْلُ وَكُنْتَ مِنَ الْمُفْسِدِيْنَ ۝91 فَالْيَوْمَ نُنَجِّيْكَ بِبَدَنِكَ لِتَكُوْنَ
لِمَنْ خَلْفَكَ اٰيَةً ۭ وَاِنَّ كَثِيْرًا مِّنَ النَّاسِ عَنْ اٰيٰتِنَا لَغٰفِلُوْنَ ۝92

(90) और हम बनी-इसराईल को समन्दर से गुज़ार ले गए। फिर फ़िरऔन और उसके लश्कर ज़ुल्म और ज़्यादती के मक़सद से उनके पीछे चले— यहाँ तक कि जब फ़िरऔन डूबने लगा तो बोल उठा, "मैंने मान लिया कि हक़ीक़ी ख़ुदा उसके सिवा कोई नहीं है जिसपर बनी-इसराईल ईमान लाए, और मैं भी फ़रमाँबरदारी में सिर झुका देनेवालों में से हूँ।"[91] (91) (जवाब दिया गया) "अब ईमान लाता है! हालाँकि इससे पहले तक तू नाफ़रमानी करता रहा और बिगाड़ पैदा करनेवालों में से था। (92) अब तो हम सिर्फ़ तेरी लाश ही को बचाएँगे, ताकि तू बाद की नस्लों के लिए इबरत की निशानी बने।[92] अगरचे बहुत-से इनसान ऐसे हैं जो हमारी निशानियों से ग़फ़लत बरतते हैं।"[93]

में अल्लाह तआला ने हज़रत मूसा को और उनकी पैरवी करनेवालों को इसी ग़लती से बचने की ताकीद की है। अल्लाह के कहने का मंशा यह है कि सब्र के साथ इन्हीं मुख़ालिफ़ हालात में काम किए जाओ, कहीं ऐसा न हो कि तुम्हें भी वही ग़लतफ़हमी हो जाए जो ऐसे हालात में जाहिलों और नादानों को आमतौर से हो जाया करती है।

91. बाइबल में इस वाक़िए का कोई ज़िक्र नहीं है, मगर तलमूद में बयान हुआ है कि डूबते वक़्त फ़िरऔन ने कहा, "मैं तुझपर ईमान लाता हूँ, ऐ ख़ुदावन्द! तेरे सिवा कोई ख़ुदा नहीं।"

92. आज तक वह मक़ाम जज़ीरानुमाए (प्रायद्वीप) 'सीना' के मग़रिबी (पश्चिमी) तट पर मौजूद है जहाँ फ़िरऔन की लाश समुद्र में तैरती हुई पाई गई थी, उसको मौजूदा ज़माने में 'जबले-फ़िरऔन' (फ़िरऔन पर्वत) कहते हैं और उसी के क़रीब एक गर्म चश्मा (स्रोत) है जिसे मक़ामी आबादी ने 'हम्मामे-फ़िरऔन' का नाम दे रखा है। यह अबू-ज़मीमा से कुछ मील ऊपर उत्तर की तरफ़ है और इलाक़े के लोग इसी जगह की निशानदही करते हैं कि फ़िरऔन की लाश यहाँ पड़ी हुई मिली थी।

अगर यह डूबनेवाला वही फ़िरऔन मुनफ़ता है जिसको मौजूदा ज़माने की खोज ने मूसा (अलैहि॰) के ज़मानेवाला फ़िरऔन बताया है तो उसकी लाश आज तक क़ाहिरा के म्यूज़ियम में

وَلَقَدْ بَوَّأْنَا بَنِيٓ إِسْرَآءِيلَ مُبَوَّأَ صِدْقٍ وَّرَزَقْنٰهُمْ مِّنَ الطَّيِّبٰتِ ۚ فَمَا
اخْتَلَفُوْا حَتّٰى جَآءَهُمُ الْعِلْمُ ۗ إِنَّ رَبَّكَ يَقْضِىْ بَيْنَهُمْ يَوْمَ الْقِيٰمَةِ
فِيْمَا كَانُوْا فِيْهِ يَخْتَلِفُوْنَ ﴿٩٣﴾ فَإِنْ كُنْتَ فِىْ شَكٍّ مِّمَّآ أَنْزَلْنَآ إِلَيْكَ
فَسْـَٔلِ الَّذِيْنَ يَقْرَءُوْنَ الْكِتٰبَ مِنْ قَبْلِكَ ۚ لَقَدْ جَآءَكَ الْحَقُّ مِنْ

(93) हमने बनी-इसराईल को बहुत अच्छा ठिकाना दिया[94] और ज़िन्दगी के बड़े अच्छे वसाइल (साधन) उन्हें दिए। फिर उन्होंने आपस में इख़्तिलाफ़ नहीं किया, मगर उस वक़्त जबकि इल्म उनके पास आ चुका था।[95] यक़ीनन तेरा रब क़ियामत के दिन उनके बीच उस चीज़ का फ़ैसला कर देगा जिसमें वे इख़्तिलाफ़ करते रहे हैं।

(94) अब अगर तुझे उस हिदायत की तरफ़ से कुछ भी शक हो, जो हमने तुझपर उतारी है, तो उन लोगों से पूछ ले जो पहले से किताब पढ़ रहे हैं। हक़ीक़त में यह तेरे

मौजूद है। 1907 ई॰ में सर ग्रांटन इलीट स्मिथ ने उसकी 'ममी' पर से जब पट्टियाँ खोली थीं तो उसकी लाश पर नमक की एक तह जमी हुई पाई गई थी जो खारे पानी में उसके डूबने की एक खुली अलामत थी।

93. यानी हम तो सबक़ और नसीहत लेनेवाली निशानियाँ दिखाए ही जाएँगे, अगरचे ज़्यादातर इनसानों का हाल यह है कि किसी बड़ी-से-बड़ी इबरतनाक निशानी को देखकर भी उनकी आँखें नहीं खुलतीं।

94. यानी मिस्र से निकलने के बाद फ़िलस्तीन की सरज़मीन।

95. मतलब यह है कि बाद में उन्होंने अपने दीन (धर्म) में जो अलग-अलग गरोह बना लिए और नए-नए मज़हब निकाले उसकी वजह यह नहीं थी कि उनको हक़ीक़त का इल्म नहीं दिया गया था और न जानने की वजह से उन्होंने मजबूरन ऐसा किया, बल्कि हक़ीक़त में यह सब कुछ उनके अपने मन की शरारतों का नतीजा था। ख़ुदा की तरफ़ से तो उन्हें साफ़ तौर पर बता दिया गया था कि दीने-हक़ यह है, ये उसके उसूल हैं, ये उसके तक़ाज़े और माँगें हैं, यह कुफ़्र व इस्लाम के बीच फ़र्क़ करनेवाली हदें हैं, इताअत और फ़रमाँबरदारी इसको कहते हैं, गुनाह इसका नाम है, इन चीज़ों की पूछ-गच्छ ख़ुदा के यहाँ होनी है, और ये वे क़ानून हैं जिनकी बुनियाद पर दुनिया में तुम्हारी ज़िन्दगी क़ायम होनी चाहिए। मगर इन साफ़-साफ़ हिदायतों के बावजूद उन्होंने एक दीन के बीसियों दीन बना डाले और ख़ुदा की दी हुई बुनियादों को छोड़कर कुछ दूसरी ही बुनियादों पर अपने मज़हबी फ़िरक़ों की इमारतें खड़ी कर लीं।

رَّبِّكَ فَلَا تَكُونَنَّ مِنَ الْمُمْتَرِيْنَ ﴿٩٤﴾ وَلَا تَكُونَنَّ مِنَ الَّذِيْنَ كَذَّبُوْا
بِاٰيٰتِ اللّٰهِ فَتَكُوْنَ مِنَ الْخٰسِرِيْنَ ﴿٩٥﴾ اِنَّ الَّذِيْنَ حَقَّتْ عَلَيْهِمْ كَلِمَتُ
رَبِّكَ لَا يُؤْمِنُوْنَ ﴿٩٦﴾ وَلَوْ جَآءَتْهُمْ كُلُّ اٰيَةٍ حَتّٰى يَرَوُا الْعَذَابَ
الْاَلِيْمَ ﴿٩٧﴾ فَلَوْلَا كَانَتْ قَرْيَةٌ اٰمَنَتْ فَنَفَعَهَآ اِيْمَانُهَآ اِلَّا قَوْمَ يُوْنُسَ

पास हक़ ही आया है तेरे रब की तरफ़ से, इसलिए तू शक करनेवालों में से न हो
(95) और उन लोगों में न शामिल हो जिन्होंने अल्लाह की आयतों को झुठलाया है,
वरना तू नुक़सान उठानेवालों में से होगा।[96]

(96-97) हक़ीक़त यह है कि जिन लोगों पर तेरे रब की बात साबित हो गई है[97],
उनके सामने चाहे कोई निशानी आ जाए, वे कभी ईमान लाकर नहीं देते, जब तक कि
दर्दनाक अज़ाब सामने आता न देख लें। (98) फिर क्या ऐसी कोई मिसाल है कि एक
बस्ती अज़ाब देखकर ईमान लाई हो और उसका ईमान उसके लिए फ़ायदेमन्द साबित
हुआ हो? यूनुस की क़ौम के सिवा[98] (उसकी कोई मिसाल नहीं), वह क़ौम जब ईमान ले

96. यह ख़िताब बज़ाहिर नबी (सल्ल॰) से है मगर अस्ल में बात उन लोगों को सुनानी मक़सद है जो आप (सल्ल॰) की दावत में शक कर रहे थे। और अहले-किताब का हवाला इसलिए दिया गया है कि अरब के अवाम तो आसमानी किताबों के इल्म से अनजान थे, उनके लिए यह आवाज़ एक नई आवाज़ थी, मगर अहले-किताब के उलमा (धर्म-ज्ञाताओं) में से जो लोग दीनदार और इनसाफ़-पसंद थे वे इस बात की तसदीक़ कर सकते थे कि जिस चीज़ की दावत क़ुरआन दे रहा है यह वही चीज़ है जिसकी दावत तमाम पिछले पैग़म्बर देते रहे हैं।

97. यानी यह कहना कि जो लोग ख़ुद हक़ के तलबगार नहीं होते, और जो अपने दिलों पर ज़िद, तास्सुब (पक्षपात) और हठधर्मी के ताले चढ़ाए रखते हैं, और जो दुनिया के मोह में डूबे और अंजाम से बेफ़िक्र होते हैं, उन्हें ईमान की तौफ़ीक़ नहीं मिलती।

98. यूनुस (अलैहि॰) (जिनका नाम बाइबल में युनाह है और जिनका ज़माना 860-784 ई॰ पूर्व के दरमियान बताया जाता है) अगरचे इसराईली नबी थे, मगर उनको अशूर (असीरिया) वालों की रहनुमाई के लिए इराक़ भेजा गया था और इसी बिना पर अशूरियों को यहाँ यूनुस की क़ौम कहा गया है। इस क़ौम का मरकज़ उस ज़माने में नैनवा का मशहूर शहर था जिसके दूर तक फैले खण्डहर आज तक दजला नदी के पूर्वी किनारे पर मौजूद शहर मौसिल के ठीक सामने पाए जाते हैं और इसी इलाक़े में "यूनुस नबी" के नाम से एक जगह भी मौजूद है। इस क़ौम की

لَمَّآ اٰمَنُوْا كَشَفْنَا عَنْهُمْ عَذَابَ الْخِزْيِ فِي الْحَيٰوةِ الدُّنْيَا
وَمَتَّعْنٰهُمْ اِلٰى حِيْنٍ ﴿٩٨﴾ وَلَوْ شَآءَ رَبُّكَ لَاٰمَنَ مَنْ فِي الْاَرْضِ كُلُّهُمْ

आई थी तो अलबत्ता हमने उसपर से दुनिया की ज़िन्दगी में रुसवाई का अज़ाब टाल दिया था[99] और उसको एक मुद्दत तक ज़िन्दगी से फ़ायदा उठाते रहने का मौक़ा दे दिया था।[100]

(99) अगर तेरे रब की मरज़ी यह होती (की ज़मीन में सब ईमानवाले और

तरक़्क़ी का अन्दाज़ा इससे हो सकता है कि इसकी राजधानी नैनवा लगभग 60 मील के इलाक़े में फैली हुई थी।

99. क़ुरआन में इस क़िस्से की तरफ़ तीन जगह सिर्फ़ इशारे किए गए हैं, कोई तफ़सील नहीं दी गई है (देखें—सूरा-21 अंबिया, आयतें-87-88; सूरा-37 साफ्फ़ात, आयतें-139-148; सूरा-68 क़लम आयतें-48-50), इसलिए यक़ीन के साथ नहीं कहा जा सकता कि यह क़ौम किन ख़ास वजहों से ख़ुदा के इस क़ानून से अलग की गई कि "अज़ाब का फ़ैसला हो जाने के बाद किसी का ईमान उसके लिए फ़ायदेमन्द नहीं होता।" बाइबल में यूनाह के नाम से जो मुख़्तसर-सा सहीफ़ा (Chapter) है उसमें कुछ तफ़सील तो मिलती है मगर वह बिलकुल भरोसे के क़ाबिल नहीं है; क्योंकि अव्वल तो न वह आसमानी सहीफ़ा है, न ख़ुद यूनुस (अलैहि॰) का अपना लिखा हुआ है, बल्कि उनके चार-पाँच सौ साल बाद किसी नामालूम आदमी ने उसे यूनुस (अलैहि॰) के इतिहास के तौर पर लिखकर मुक़द्दस किताबों के मजमूए (संग्रह) में शामिल कर दिया है। दूसरे उसमें कुछ बिलकुल बेमानी बातें भी पाई जाती हैं जो मानने के क़ाबिल नहीं हैं। फिर भी क़ुरआन के इशारों और यूनुस के सहीफ़ों की तफ़सीलात पर ग़ौर करने से वही बात सही मालूम होती है जो क़ुरआन के मुफ़स्सिरों (टीकाकारों) ने बयान की है कि हज़रत यूनुस (अलैहि॰) चूँकि अज़ाब की ख़बर देने के बाद अल्लाह की इजाज़त के बग़ैर अपनी जगह छोड़कर चले गए थे, इसलिए जब अज़ाब की निशानियाँ देखकर आशूरियों ने तौबा की तो अल्लाह तआला ने उन्हें माफ़ कर दिया। क़ुरआन मजीद में ख़ुदाई दस्तूर के जो उसूल और ज़ाब्ते बयान किए गए हैं उनमें एक मुस्तक़िल दफ़ा (स्थायी धारा) यह भी है कि अल्लाह तआला किसी क़ौम को उस वक़्त तक अज़ाब नहीं देता जब तक उसपर अपनी हुज्जत पूरी नहीं कर लेता। चुनाँचे जब नबी (युनूस अलैहि॰) ने उस क़ौम की मुहलत के आख़िरी वक़्त तक नसीहत का सिलसिला जारी न रखा और अल्लाह के मुक़र्रर किए हुए वक़्त से पहले अपने आप ही वह हिजरत कर गया, तो अल्लाह तआला के इनसाफ़ ने उसकी क़ौम को अज़ाब देना गवारा न किया; क्योंकि उसपर हुज्जत पूरी करने की क़ानूनी शर्तें पूरी न हुई थीं। (और ज़्यादा तशरीह के लिए देखें—तफ़सीर सूरा-37 साफ़्फ़ात, हाशिया-85)

100. जब यह क़ौम ईमान ले आई तो उसकी मुहलत के वक़्त में इज़ाफ़ा कर दिया गया। बाद में

جَمِيْعًا ۭ اَفَاَنْتَ تُكْرِهُ النَّاسَ حَتّٰى يَكُوْنُوْا مُؤْمِنِيْنَ ۝ وَمَا كَانَ
لِنَفْسٍ اَنْ تُؤْمِنَ اِلَّا بِاِذْنِ اللّٰهِ ۭ وَيَجْعَلُ الرِّجْسَ عَلَى الَّذِيْنَ لَا

फ़रमाँबरदार ही हों) तो सारे ज़मीनवाले ईमान ले आए होते।[101] फिर क्या तू लोगों को मजबूर करेगा कि वे ईमानवाले हो जाएँ?[102] (100) कोई जानदार अल्लाह की इजाज़त के

उसने फिर ख़याल और अमल की गुमराहियाँ अपनानी शुरू कर दीं। नाहूम नबी (720-698 ईसा पूर्व) ने उसे ख़बरदार किया, मगर कोई असर न हुआ। फिर सफ़नियाह नबी (640-609 ईसा पूर्व) ने उसको आख़िरी तौर पर ख़बरदार किया, वह भी कारगर न हुई। आख़िरकार लगभग 612 ईसा पूर्व के ज़माने में अल्लाह तआला ने मेडियावालों को उसपर हुक्मराँ बना दिया। मेडिया का बादशाह बाबिलवालों की मदद से अशूर के इलाक़े पर चढ़ आया। अशूरी फ़ौज को हार का मुँह देखना पड़ा। और वह नैनवा में क़ैद हो गई। कुछ मुद्दत तक उसने जमकर मुक़ाबला किया फिर दजला नदी के उफ़ान ने शहर की दीवार तोड़ दी और हमलावर अन्दर घुस गए। पूरा शहर जलाकर राख कर दिया गया। आसपास के इलाक़े का भी यही अंजाम हुआ। अशूर का बादशाह ख़ुद अपने महल में आग लगाकर जल मरा और इसके साथ ही अशूरी सल्तनत और तहज़ीब (सभ्यता) भी हमेशा के लिए ख़त्म हो गई। मौजूदा ज़माने में आसारे-क़दीमा (प्राचीन अवशेषों) की जो खुदाइयाँ इस इलाक़े में हुई हैं उनमें आगज़नी के निशानात बहुत ज़्यादा पाए जाते हैं।

101. यानी अगर अल्लाह की ख़्वाहिश यह होती कि उसकी धरती में सिर्फ़ फ़रमाँबरदार लोग ही बसें और कुफ़्र व नाफ़रमानी का सिरे से कोई वुजूद ही न हो तो उसके लिए न यह मुश्किल था कि वह ज़मीन के सभी वासियों को ईमानवाला और अपना फ़रमाँबरदार पैदा करता और न यही मुश्किल था कि सबके दिल अपने एक ही क़ुदरती इशारे से ईमान व अपनी फ़रमाँबरदारी की तरफ़ फेर देता। मगर इनसानों को पैदा करने में जो हिकमत भरा मक़सद पेशे-नज़र है वह ख़त्म हो जाता अगर वह लोगों को पैदाइशी तौर पर और क़ानूनी तौर पर ईमान और फ़रमाँबरदारी के लिए मजबूर कर देता। (यानी उन्हें मानने व न मानने की आज़ादी नहीं देता) इसलिए अल्लाह तआला ख़ुद ही इनसानों को ईमान लाने या न लाने और फ़रमाँबरदारी करने या न करने में आज़ाद रखना चाहता है।

102. इसका यह मतलब नहीं है कि नबी (सल्ल॰) लोगों को ज़बरदस्ती ईमानवाला बनाना चाहते थे, और अल्लाह तआला आप (सल्ल॰) को ऐसा करने से रोक रहा था। दरअस्ल इस जुमले में वही अन्दाज़ अपनाया गया है जो क़ुरआन में बहुत-सी जगहों पर हमें मिलता है कि ख़िताब बज़ाहिर तो नबी (सल्ल॰) से होता है मगर अस्ल में उसका मक़सद लोगों को वह बात सुनानी होती है जो नबी को मुख़ातब करके कही जाती है। यहाँ कहने का जो मक़सद है वह यह है कि ऐ लोगो! हुज्जत और दलील से हिदायत व गुमराही का फ़र्क़ खोलकर रख देने और सीधा रास्ता

يَعۡقِلُوۡنَ ۝١٠٠ قُلِ انۡظُرُوۡا مَاذَا فِى السَّمٰوٰتِ وَالۡاَرۡضِ ؕ وَمَا تُغۡنِى

बिना ईमान नहीं ला सकता।[103] और अल्लाह का तरीक़ा यह है कि जो लोग अक़्ल से काम नहीं लेते वह उनपर गन्दगी डाल देता है।[104]

(101) इनसे कहो, "ज़मीन और आसमानों में जो कुछ है उसे आँखें खोलकर

साफ़-साफ़ दिखा देने का जो हक़ था वह तो हमारे नबी ने पूरा-पूरा अदा कर दिया है। अब अगर तुम ख़ुद सीधे रास्ते पर चलना नहीं चाहते और तुम्हारे सीधे रास्ते पर आने का दारोमदार सिर्फ़ इसी पर है कि कोई तुम्हें ज़बरदस्ती सीधे रास्ते पर लाए, तो तुम्हें मालूम होना चाहिए कि नबी के सुपुर्द यह काम नहीं किया गया है। ऐसा ज़ोर-ज़बरदस्तीवाला ईमान अगर अल्लाह को मंज़ूर होता तो उसके लिए उसे नबी भेजने की ज़रूरत ही क्या थी, यह काम तो वह ख़ुद जब चाहता कर सकता था।

103. यानी जिस तरह तमाम नेमतें अकेले अल्लाह के इख़्तियार में हैं और कोई शख़्स किसी नेमत को भी अल्लाह के हुक्म के बिना न तो ख़ुद हासिल कर सकता है, न किसी दूसरे शख़्स को दे सकता है, उसी तरह इस नेमत का दारोमदार भी कि कोई शख़्स ईमान लाए और सीधे रास्ते की तरफ़ हिदायत पाए अल्लाह के हुक्म पर है। कोई शख़्स न इस नेमत को अल्लाह के हुक्म के बिना ख़ुद पा सकता है, और न किसी इनसान के इख़्तियार में यह है कि जिसको चाहे यह नेमत दे दे। तो नबी अगर सच्चे दिल से यह चाहे भी कि लोगों को मोमिन बना दे तो नहीं बना सकता। इसके लिए अल्लाह का हुक्म और उसकी तौफ़ीक़ दरकार है।

104. यहाँ साफ़ बता दिया गया कि अल्लाह का हुक्म और उसकी तौफ़ीक़ (सुअवसर प्रदान करना) कोई अंधी बाँट नहीं है कि बिना किसी हिक्मत और बिना किसी मुनासिब ज़ाब्ते के यूँ ही जिसको चाहा ईमान की नेमत पाने का मौक़ा दिया और जिसे चाहा इस मौक़े से महरूम कर दिया, बल्कि इसका एक निहायत हिक्मत से भरा ज़ाब्ता है, और वह यह है कि जो शख़्स हक़ीक़त की तलाश में बेलाग तरीक़े से अपनी अक्ल को ठीक-ठीक इस्तेमाल करता है उसके लिए तो अल्लाह की तरफ़ से हक़ीक़त तक पहुँचने के असबाब और ज़रिए उसकी कोशिश और तलब के हिसाब से मुहैया कर दिए जाते हैं, और उसी को सही इल्म पाने और ईमान लाने की तौफ़ीक़ दी जाती है। रहे वे लोग जो हक़ के तलबगार ही नहीं हैं और जो अपनी अक्ल को तास्सुब (पक्षपात) के फंदों में फाँसे रखते हैं, या हक़ीक़त की तलाश में सिरे से अक्ल का इस्तेमाल ही नहीं करते, तो अल्लाह ने उनकी क़िस्मत में जहालत और गुमराही और ग़लत देखने और ग़लत काम करने की गन्दगियों के सिवा और कुछ नहीं रखा है। वे अपने आपको इन्हीं गन्दगियों के लायक़ बनाते हैं और यही उनके नसीब में लिखी जाती हैं।

الْاٰيٰتُ وَالنُّذُرُ عَنْ قَوْمٍ لَّا يُؤْمِنُوْنَ ﴿١٠١﴾ فَهَلْ يَنْتَظِرُوْنَ اِلَّا مِثْلَ
اَيَّامِ الَّذِيْنَ خَلَوْا مِنْ قَبْلِهِمْ ۭ قُلْ فَانْتَظِرُوْٓا اِنِّىْ مَعَكُمْ مِّنَ
الْمُنْتَظِرِيْنَ ﴿١٠٢﴾ ثُمَّ نُنَجِّيْ رُسُلَنَا وَالَّذِيْنَ اٰمَنُوْا كَذٰلِكَ ۚ حَقًّا عَلَيْنَا
نُنْجِ الْمُؤْمِنِيْنَ ﴿١٠٣﴾ قُلْ يٰٓاَيُّهَا النَّاسُ اِنْ كُنْتُمْ فِيْ شَكٍّ مِّنْ دِيْنِيْ فَلَآ ع

देखो।" और जो लोग ईमान लाना ही नहीं चाहते उनके लिए निशानियाँ और ख़बरदार करना आख़िर क्या फ़ायदेमन्द हो सकते हैं?[105] (102) अब ये लोग इसके सिवा और किस चीज़ के इन्तिज़ार में हैं कि वही बुरे दिन देखें जो इनसे पहले गुज़रे हुए लोग देख चुके हैं? उनसे कहो, "अच्छा इन्तिज़ार करो, मैं भी तुम्हारे साथ इन्तिज़ार करता हूँ।" (103) फिर (जब ऐसा वक़्त आता है तो) हम अपने रसूलों को और उन लोगों को बचा लिया करते हैं जो ईमान लाए हों। हमारा यही तरीक़ा है। हमपर यह हक़ है कि ईमानवालों को बचा लें।

(104) ऐ नबी! कह दो[106] कि "लोगो, अगर तुम अभी तक मेरे दीन के बारे में

105. यह उनकी उस माँग का आख़िरी और क़तई जवाब है जो वे ईमान लाने के लिए शर्त के तौर पर पेश करते थे कि हमें कोई निशानी दिखाई जाए जिससे हमको यक़ीन आ जाए कि तुम ख़ुदा के सच्चे पैग़म्बर हो। इसके जवाब में कहा जा रहा है कि अगर तुम्हारे अन्दर हक़ की तलब और हक़ को क़बूल करने की आमादगी हो तो वे बेहद व बेहिसाब निशानियाँ जो ज़मीन और आसमान में हर तरफ़ फैली हुई हैं, तुम्हें मुहम्मद (सल्ल॰) के पैग़ाम के सच्चे होने का इत्मीनान दिलाने के लिए काफ़ी से ज़्यादा हैं। सिर्फ़ आँखें खोलकर उन्हें देखने की ज़रूरत है। लेकिन अगर यह तलब और यह आमादगी ही तुम्हारे अन्दर मौजूद नहीं है तो फिर कोई निशानी भी, चाहे वह कैसी भी चमत्कारों से भरी और अजीब और हैरतअंगेज़ हो, तुमको ईमान की नेमत से मालामाल नहीं कर सकती। हर मोजिज़े को देखकर तुम फ़िरऔन और उसकी क़ौम के सरदारों की तरह कहोगे कि यह तो जादूगरी है। इस मर्ज़ में जो लोग गिरफ़्तार होते हैं उनकी आँखें सिर्फ़ उस वक़्त खुला करती हैं जब ख़ुदा का ग़ज़ब और उसका अज़ाब अपनी हौलनाक सख़्ती के साथ उनपर टूट पड़ता है जिस तरह फ़िरऔन की आँखें डूबते वक़्त खुली थीं। मगर ठीक गिरफ़्तारी के मौक़े पर जो तौबा की जाए उसकी कोई क़ीमत नहीं।

106. जिस मज़मून (विषय) से बात की शुरुआत की गई थी उसी पर अब बात को ख़त्म किया जा रहा है। तक़ाबुल (तुलना) के लिए पहले रुकूअ् (आयत : 1-10) के मज़मून पर फिर एक नज़र डाल ली जाए।

اَعۡبُدُ الَّذِيۡنَ تَعۡبُدُوۡنَ مِنۡ دُوۡنِ اللّٰهِ وَلٰكِنۡ اَعۡبُدُ اللّٰهَ الَّذِىۡ
يَتَوَفّٰٮكُمۡ ۖۚ وَاُمِرۡتُ اَنۡ اَكُوۡنَ مِنَ الۡمُؤۡمِنِيۡنَ ۝ وَاَنۡ اَقِمۡ وَجۡهَكَ

किसी शक में हो तो सुन लो कि तुम अल्लाह के सिवा जिनकी बन्दगी करते हो, मैं उनकी बन्दगी नहीं करता, बल्कि सिर्फ़ उसी अल्लाह की बन्दगी करता हूँ जिसके क़ब्ज़े में तुम्हारी मौत है।[107] मुझे हुक्म दिया गया है कि मैं ईमान लानेवालों में से हूँ

107. अस्ल अरबी में लफ़्ज़ "य-त-वफ़्फ़ाकुम" है जिसका लफ़्ज़ी तर्जमा है "जो तुम्हें मौत देता है"। लेकिन इस लफ़्ज़ी तर्जमे से असल रूह ज़ाहिर नहीं होती। यह कहने का असल मतलब यह है कि "वह जिसके क़ब्ज़े में तुम्हारी जान है, जो तुमपर ऐसा मुकम्मल हाकिमाना इख़्तियार रखता है कि जब तक उसकी मरज़ी हो उसी वक़्त तक तुम जी सकते हो और जिस वक़्त उसका इशारा हो जाए उसी वक़्त तुम्हें अपनी जान उसके हवाले कर देनी पड़ती है। मैं सिर्फ़ उसी की परस्तिश और उसी की बन्दगी और ग़ुलामी को और उसी की इताअत और फ़रमाँबरदारी को तस्लीम करता हूँ।" यहाँ इतना और समझ लेना चाहिए कि मक्का के मुशरिक लोग यह मानते थे और आज भी हर क़िस्म के मुशरिक (बहुदेववादी) यह मानते हैं कि मौत सिर्फ़ अल्लाह, सारे जहान के रब, के इख़्तियार में है, उसपर किसी दूसरे का क़ाबू नहीं है। यहाँ तक कि जिन बुज़ुर्गों को ये मुशरिक ख़ुदाई सिफ़तों और इख़्तियारों में साझीदार ठहराते हैं उनके बारे में भी वे मानते हैं कि इनमें से कोई ख़ुद अपनी मौत का वक़्त नहीं टाल सका है। चुनाँचे बयान करने के लिए अल्लाह तआला की अनगिनत सिफ़तों में से किसी दूसरी सिफ़त का ज़िक्र करने के बजाए यह ख़ास सिफ़त कि "वह जो तुम्हें मौत देता है" यहाँ इसलिए चुनी गई है कि अपना मसलक (पक्ष) बयान करने के साथ-साथ उसके सही होने की दलील भी दे दी जाए। यानी सबको छोड़कर मैं उसकी बन्दगी इसलिए करता हूँ कि ज़िन्दगी और मौत पर अकेले उसी का इख़्तियार है। और उसके सिवा दूसरों की बन्दगी आख़िर क्यों करूँ जबकि वह ख़ुद अपनी ज़िन्दगी और मौत पर भी क़ुदरत नहीं रखते, कहाँ यह कि किसी और की ज़िन्दगी और मौत पर उनको इख़्तियार हो। फिर बात को कहने की ख़ूबी देखिए कि "वह मुझे मौत देनेवाला है" कहने के बजाए "वह जो तुम्हें मौत देता है" कहा गया। इस तरह एक ही लफ़्ज़ में बयान करने का मक़सद, उसकी दलील और मक़सद की तरफ़ दावत देना, तीनों फ़ायदे जमा कर दिए गए हैं। अगर यह कहा जाता कि, "मैं उसकी बन्दगी करता हूँ जो मुझे मौत देनेवाला है" तो इससे सिर्फ़ यही मानी निकलते कि "मुझे उसकी बन्दगी करनी ही चाहिए।" अब जो यह कहा कि "मैं उसकी बन्दगी करता हूँ जो तुम्हें मौत देनेवाला है" तो इससे यह मानी निकले कि मुझे ही नहीं, तुमको भी उसकी बन्दगी करनी चाहिए और तुम यह ग़लती कर रहे हो कि उसके सिवा दूसरों की बन्दगी किए जाते हो।

لِلدِّيْنِ حَنِيْفًا ۚ وَلَا تَكُوْنَنَّ مِنَ الْمُشْرِكِيْنَ ﴿١٠٥﴾ وَلَا تَدْعُ مِنْ دُوْنِ
اللّٰهِ مَا لَا يَنْفَعُكَ وَلَا يَضُرُّكَ ۚ فَإِنْ فَعَلْتَ فَإِنَّكَ إِذًا مِّنَ

(105) और मुझसे फ़रमाया गया है कि तू यकसू (एकाग्र) होकर अपने आपको ठीक-ठीक इस दीन पर क़ायम कर दे,[108] और हरगिज़-हरगिज़ मुशरिकों में से न हो।[109] (106) और अल्लाह को छोड़कर किसी ऐसी हस्ती को न पुकार जो तुझे न फ़ायदा पहुँचा

108. इस माँग की शिद्दत क़ाबिले-ग़ौर है। बात इन लफ़्ज़ों में भी अदा हो सकती थी कि "तू इस दीन (धर्म) को अपना ले" या "इस दीन पर चल" या "इस दीन की पैरवी करनेवाला बन जा।" मगर अल्लाह तआला को बयान के ये सब अन्दाज़ ढीले-ढाले नज़र आए। इस दीन की जैसी सख़्त और ठुकी और कसी हुई पैरवी चाहिए इसका इज़हार इन कमज़ोर अलफ़ाज़ से न हो सकता था। लिहाज़ा अपनी माँग इन अलफ़ाज़ में पेश की कि "अपना चेहरा जमा दे।" इसका मतलब यह है कि तेरा रुख़ एक ही तरफ़ क़ायम हो, डगमगाता और हिलता-डुलता न हो। कभी पीछे और कभी आगे और कभी दाएँ और कभी बाएँ न मुड़ता रहे। बिलकुल नाक की सीध उसी रास्ते पर नज़र जमाए हुए चल जो तुझे दिखा दिया गया है। यह बन्दिश अपने आप में ख़ुद बहुत चुस्त थी, मगर इसपर भी बस न किया गया। इसपर एक और बन्दिश 'हनीफ़ा' की बढ़ाई गई। हनीफ़ उसको कहते हैं जो सब तरफ़ से मुड़कर एक तरफ़ का हो गया हो। इसका मतलब यह है कि इस दीन को, ख़ुदा की बन्दगी के इस तरीक़े को, इस ज़िन्दगी के ढंग को कि परस्तिश, बन्दगी, ग़ुलामी, इताअत, फ़रमाँबरदारी सब कुछ सिर्फ़ अल्लाह, सारे जहान के रब, ही की की जाए, ऐसी यकसूई (एकाग्रता) के साथ अपनाकर कि किसी दूसरे तरीक़े की तरफ़ ज़र्रा बराबर मैलान व रुझान भी न हो, इस राह पर आकर उन ग़लत रास्तों से कुछ भी लगाव बाक़ी न रहे जिन्हें तू छोड़कर आया है और उन टेढ़े रास्तों पर एक ग़लत अन्दाज़े-निगाह भी न पड़े जिनपर दुनिया चली जा रही है।

109. यानी उन लोगों में हरगिज़ शामिल न हो जो अल्लाह की ज़ात में, उसकी सिफ़ात में, उसके हक़्क़ों और उसके इख़्तियारात में किसी तौर पर अल्लाह के सिवा दूसरों को शरीक करते हैं। चाहे अल्लाह के अलावा उनका अपना नफ़्स (मन) हो, या कोई दूसरा इनसान हो, या इनसानों का कोई गरोह हो, या कोई रूह हो, जिन्न हो, फ़रिश्ता हो, या कोई माद्दी या ख़याली या वहमी वुजूद हो। तो माँग सिर्फ़ इस बात को अपनाने की सूरत में ही नहीं है कि ख़ालिस तौहीद (विशुद्ध एकेश्वाद) का रास्ता पूरी मज़बूती के साथ इख़्तियार करो बल्कि इस बात को छोड़ देने की सूरत में भी है कि उन लोगों से अलग हो जा जो किसी शक्ल और ढंग का शिर्क करते हों। अक़ीदे ही में नहीं अमल में भी, इन्फ़िरादी (व्यक्तिगत) तर्ज़े-ज़िन्दगी ही में नहीं, इज्तिमाई निज़ामे-हयात (जीवन-व्यवस्था) में भी, इबादतगाहों ही में नहीं दर्सगाहों (पाठशालाओं) में भी, अदालतों में भी, क़ानून साज़ इदारों में भी, सियासत के गलियारों में, मआशी दुनिया (आर्थिक

الظّٰلِمِيْنَ ﴿١٠٦﴾ وَاِنْ يَّمْسَسْكَ اللّٰهُ بِضُرٍّ فَلَا كَاشِفَ لَهٗۤ اِلَّا هُوَ ۚ وَاِنْ
يُّرِدْكَ بِخَيْرٍ فَلَا رَآدَّ لِفَضْلِهٖ ؕ يُصِيْبُ بِهٖ مَنْ يَّشَآءُ مِنْ عِبَادِهٖ ؕ وَهُوَ
الْغَفُوْرُ الرَّحِيْمُ ﴿١٠٧﴾ قُلْ يٰۤاَيُّهَا النَّاسُ قَدْ جَآءَكُمُ الْحَقُّ مِنْ رَّبِّكُمْ ۚ

सकती है, न नुक़सान। अगर तू ऐसा करेगा तो ज़ालिमों में से होगा। (107) अगर अल्लाह तुझे किसी मुसीबत में डाले तो ख़ुद उसके सिवा कोई नहीं जो इस मुसीबत को टाल दे, और अगर वह तेरे हक़ में किसी भलाई का इरादा करे तो उसकी मेहरबानी को फेरनेवाला भी कोई नहीं है। वह अपने बन्दों में से जिसको चाहता है अपने फ़ज़्ल (मेहरबानी) से नवाज़ता है और वह माफ़ करनेवाला और रहम करनेवाला है।"

(108) ऐ नबी! कह दो कि "लोगो! तुम्हारे पास तुम्हारे रब की तरफ़ से हक़ आ

जगत्) में भी, ग़रज़ उन लोगों के तरीक़े से अपना तरीक़ा अलग कर ले, जिन्होंने अपने नज़रियों और कामों का पूरा निज़ाम खुदापरस्ती और नाखुदापरस्ती की मिलावट पर क़ायम कर रखा है। तौहीद (एकेश्वरवाद) पर चलनेवाला ज़िन्दगी के किसी पहलू और किसी मैदान में भी शिर्क (बहुदेववाद) की राह पर चलनेवालों के साथ क़दम-से-क़दम मिलाकर नहीं चल सकता, यह तो बहुत दूर की बात है कि आगे वे हों और पीछे ये और फिर भी उसकी तौहीदपरस्ती के तक़ाज़े इत्मीनान से पूरे होते रहें।

फिर माँग बड़े और खुले शिर्क ही से बचने की नहीं है, बल्कि छोटे व छिपे हुए शिर्क से भी पूरी तरह और सख़्ती के साथ बचने की है। बल्कि छिपा शिर्क ज़्यादा ख़ौफ़नाक है और उससे होशियार रहने की और भी ज़्यादा ज़रूरत है। कुछ नादान लोग "शिर्के-ख़फ़ी" (छिपे शिर्क) को "शिर्के-ख़फ़ीफ़" (हल्का-सा शिर्क) समझते हैं और उनका गुमान यह है कि इसका मामला इतना अहम नहीं है जितना "शिर्के-जली" (खुले शिर्क) का है। हालाँकि 'ख़फ़ी' के मानी 'ख़फ़ीफ़' के नहीं हैं, छिपे और पोशीदा होने के हैं। अब यह सोचने की बात है कि जो दुश्मन मुँह खोलकर दिन-दहाड़े सामने आ जाए वह ज़्यादा ख़तरनाक है या वह जो आस्तीन में छिपा हो या दोस्त के लिबास में गले मिल रहा हो? बीमारी वह ज़्यादा जानलेवा है जिसकी अलामतें बिलकुल नुमाया हों या वह जो लम्बे समय तक तन्दुरुस्ती के धोखे में रखकर अन्दर-ही-अन्दर सेहत की जड़ खोखली करती रहे? जिस शिर्क को हर शख़्स पहली नज़र में देखकर कह दे कि यह शिर्क है, उससे तो दीने-तौहीद का टकराव बिलकुल खुला हुआ है। मगर जिस शिर्क को समझने के लिए गहरी निगाह और तौहीद के तक़ाज़ों की गहरी समझ चाहिए, वह अपनी न दिखाई देनेवाली जड़ें दीन के निज़ाम में इस तरह फैलाता है कि तौहीद के माननेवाले आम लोगों को उनकी ख़बर तक नहीं होती और धीरे-धीरे ऐसे महसूस न होनेवाले तरीक़े से दीन (धर्म) के मग़ज़ को खा जाता है कि कहीं ख़तरे की घंटी बजने की नौबत ही नहीं आती।

فَمَنِ اهْتَدٰى فَاِنَّمَا يَهْتَدِيْ لِنَفْسِهٖ ۚ وَمَنْ ضَلَّ فَاِنَّمَا يَضِلُّ عَلَيْهَا ۚ
وَمَاۤ اَنَا عَلَيْكُمْ بِوَكِيْلٍ ۝١٠٨ وَاتَّبِعْ مَا يُوْحٰۤى اِلَيْكَ وَاصْبِرْ حَتّٰى
١١ ع ١٢ يَحْكُمَ اللّٰهُ ۚ وَهُوَ خَيْرُ الْحٰكِمِيْنَ ۝١٠٩

चुका है। अब जो सीधी राह अपनाए, उसका सीधे रास्ते पर चलना उसी के लिए फ़ायदेमन्द है और जो गुमराह रहे उसकी गुमराही उसी के लिए तबाह करनेवाली है, और मैं तुम्हारे ऊपर कोई हवालेदार नहीं हूँ।" (109) और ऐ नबी! तुम उस हिदायत की पैरवी किए जाओ जो तुम्हारी तरफ़ वह्य के ज़रिए से भेजी जा रही है, और सब्र करो यहाँ तक कि अल्लाह फ़ैसला कर दे, और वही सबसे अच्छा फ़ैसला करनेवाला है।

☆☆☆

11. हूद

परिचय

उतरने का ज़माना

इस सूरा के मज़मून (विषय) पर ग़ौर करने से ऐसा महसूस होता है कि यह उसी दौर में उतरी होगी, जिसमें सूरा-10 यूनुस उतरी थी। हो सकता है कि यह उसके साथ फ़ौरन ही उतरी हो; क्योंकि तक़रीर का मौज़ू (विषय) वही है, मगर ख़बरदार करने का अन्दाज़ उससे ज़्यादा सख़्त है।

हदीस में आता है कि हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) ने नबी (सल्ल॰) से अर्ज़ किया, "मैं देखता हूँ कि आप बूढ़े होते जा रहे हैं, इसकी क्या वजह है?" जवाब में नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "मुझको सूरा हूद और उस जैसे मज़मूनवाली सूरतों ने बूढ़ा कर दिया है।" इससे अन्दाज़ा होता है कि नबी (सल्ल॰) के लिए वह ज़माना कैसा सख़्त होगा, जबकि एक तरफ़ क़ुरैश के इस्लाम-दुश्मन अपने तमाम हथियारों से हक़ की दावत को कुचल देने की कोशिश कर रहे थे और दूसरी तरफ़ अल्लाह तआला की तरफ़ से अज़ाब से लगातार ख़बरदार किया जा रहा था। इन हालात में आप (सल्ल॰) को हर वक़्त यह अन्देशा घुलाए देता होगा कि कहीं अल्लाह की दी हुई मुहलत ख़त्म न हो जाए और वह आख़िरी घड़ी न आ जाए जबकि अल्लाह किसी क़ौम को अज़ाब में पकड़ लेने का फ़ैसला कर देता है। इस सूरा को पढ़ते हुए सचमुच ऐसा महसूस होता है कि जैसे एक सैलाब का बाँध टूटने को है और उस लापरवाह आबादी को, जो इस सैलाब की चपेट में आनेवाली है, आख़िरी बार ख़बरदार किया जा रहा है।

मज़मून (विषय) और मबाहिस (वार्ताएँ)

तक़रीर का मज़मून, जैसा कि अभी बयान किया जा चुका है, वही है जो सूरा-10 यूनुस का था यानी दावत, समझाना-बुझाना और ख़बरदार करना। लेकिन फ़र्क़ यह है कि सूरा यूनुस के मुक़ाबले यहाँ दावत मुख़्तसर है, समझाने-बुझाने में दलीलें कम और नसीहत और तलक़ीन ज़्यादा है और तफ़सील और ज़ोरदार तरीक़े से ख़बरदार किया गया है।

दावत यह है कि पैग़म्बर की बात मानो, शिर्क करना छोड़ दो, सबकी बन्दगी

छोड़कर अल्लाह के बन्दे बनो और अपनी दुनियावी ज़िन्दगी का सारा निज़ाम आख़िरत की जवाबदेही के एहसास पर क़ायम करो।

समझाया यह जा रहा है कि दुनिया की ज़िन्दगी के ज़ाहिरी पहलू पर भरोसा करके जिन क़ौमों ने अल्लाह के रसूलों की दावत को ठुकराया है वह इससे पहले बहुत ही बुरा अंजाम देख चुकी हैं। अब क्या ज़रूरी है कि तुम भी उसी रास्ते पर चलो, जिसे तारीख़ (इतिहास) के लगातार तजरिबे पूरी तरह तबाही का रास्ता साबित कर चुके हैं।

ख़बरदार इस बात पर किया जा रहा है कि अज़ाब आने में जो देर लग रही है यह देर अस्ल में एक मुहलत है जो अल्लाह अपनी मेहरबानी से तुम्हें दे रहा है। इस मुहलत के अन्दर अगर तुम न संभले तो वह अज़ाब आएगा जो किसी के टाले न टल सकेगा और ईमानवालों की मुट्ठी भर जामअत को छोड़कर तुम्हारी सारी क़ौम को दुनिया से मिटा देगा।

इस मज़मून को अदा करने के लिए सीधे-सीधे ख़िताब के मुक़ाबले नूह की क़ौम, आद, समूद, लूत की क़ौम, असहाबे-मदयन और फ़िरऔन की क़ौम के क़िस्सों से ज़्यादा काम लिया गया है। इन क़िस्सों में ख़ास-तौर पर जो बात नुमायाँ की गई है वह यह है कि .ख़ुदा जब फ़ैसला चुकाने पर आता है तो फिर बिलकुल बेलाग तरीक़े से चुकाता है। इसमें किसी के साथ रत्ती भर रियायत नहीं होती। उस वक़्त यह नहीं देखा जाता कि कौन किसका बेटा और किसका रिश्तेदार है। अल्लाह की रहमत सिर्फ़ उसके हिस्से में आती है जो सीधे रास्ते पर आ गया हो, वरना अल्लाह के ग़ज़ब से न किसी पैग़म्बर का बेटा बचता है और न किसी पैग़म्बर की बीवी, यही नहीं बल्कि जब ईमान और कुफ़्र (इनकार) का दो टूक फ़ैसला हो रहा हो तो दीन की फ़ितरत यह चाहती है कि .ख़ुद ईमानवाला भी बाप और बेटे और शौहर और बीवी के रिश्तों को भूल जाए और .ख़ुदा के इनसाफ़ की तलवार की तरह बिलकुल बेलाग होकर एक सच्चाई के रिश्ते के सिवा हर दूसरे रिश्ते को काट फेंके। ऐसे मौक़े पर .ख़ून और नसब की रिश्तेदारियों का कण भर भी लिहाज़ कर जाना इस्लाम की रूह के ख़िलाफ़ है। यही वह तालीम थी जिस का पूरा-पूरा मुज़ाहरा (प्रदर्शन) तीन-चार साल बाद मक्का के मुहाजिर मुसलमानों ने बद्र की जंग में करके दिखा दिया।

☆☆☆

ايَاتُهَا ۱۲۳ ۞ ۱۱ سُوْرَةُ هُوْدٍ مَّكِّيَّةٌ ۵۲ ۞ رُكُوْعَاتُهَا ۱۰

بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ ۝

الٓرٰ ۚ كِتٰبٌ اُحْكِمَتْ اٰيٰتُهٗ ثُمَّ فُصِّلَتْ مِنْ لَّدُنْ حَكِيْمٍ خَبِيْرٍ ۝١ اَلَّا
تَعْبُدُوْٓا اِلَّا اللّٰهَ ۭ اِنَّنِيْ لَكُمْ مِّنْهُ نَذِيْرٌ وَّبَشِيْرٌ ۝٢ وَّاَنِ اسْتَغْفِرُوْا
رَبَّكُمْ ثُمَّ تُوْبُوْٓا اِلَيْهِ يُمَتِّعْكُمْ مَّتَاعًا حَسَنًا اِلٰٓى اَجَلٍ مُّسَمًّى وَّيُؤْتِ

11. हूद

(मक्का में उतरी—आयतें 123)

अल्लाह के नाम से जो निहायत मेहरबान और रहम करनेवाला है

(1) अलिफ़-लाम-रा। फ़रमान है[1], जिसकी आयतें पुख़्ता और तफ़सील से बयान हुई हैं[2], एक हिक्मतवाली और ख़बर रखनेवाली हस्ती की तरफ़ से, (2) कि तुम बन्दगी न करो, मगर सिर्फ़ अल्लाह की। मैं उसकी तरफ़ से तुमको ख़बरदार करनेवाला भी हूँ और ख़ुशख़बरी देनेवाला भी। (3) और यह कि तुम अपने रब से माफ़ी चाहो और उसकी तरफ़ पलट आओ, तो वह एक ख़ास मुद्दत तक तुमको अच्छा सामाने-ज़िन्दगी देगा[3]

1. अस्ल अरबी में लफ़्ज़ 'किताब' इस्तेमाल हुआ है। 'किताब' का तर्जमा यहाँ अन्दाज़े-बयान को देखते हुए 'फ़रमान' किया गया है। अरबी ज़बान में यह लफ़्ज़ किताब और लिखी हुई चीज़ ही के मानी में नहीं आता, बल्कि हुक्म और शाही फ़रमान के मानी में भी आता है और ख़ुद क़ुरआन में कई जगहों पर यह लफ़्ज़ इसी मानी में इस्तेमाल हुआ है।
2. यानी इस फ़रमान में जो बातें बयान की गई हैं वे पक्की और अटल हैं। ख़ूब नपी-तुली हैं। निरी लफ़्फ़ाज़ी (शब्दजाल) नहीं हैं। तक़रीर की जादूगरी और ख़याल की शायरी नहीं है। ठीक-ठीक हक़ीक़त बयान की गई है और इसका एक लफ़्ज़ भी ऐसा नहीं जो हक़ीक़त से कम या ज़्यादा हो। फिर ये आयतें तफ़सीली भी हैं, इनमें एक-एक बात खोल-खोलकर साफ़ तरीक़े से बयान की गई है। बयान उलझा हुआ, गुंजलक और ग़ैर-वाज़ेह नहीं है। हर बात को अलग-अलग, साफ़-साफ़ समझाकर बताया गया है।
3. यानी दुनिया में तुम्हारे ठहरने के लिए जो वक़्त मुक़र्रर है उस वक़्त तक वह तुमको बुरी तरह नहीं, बल्कि अच्छी तरह रखेगा। उसकी नेमतें तुम पर बरसेंगी। उसकी बरकतों से मालामाल

كُلَّ ذِىْ فَضْلٍ فَضْلَهٗ ۭ وَاِنْ تَوَلَّوْا فَاِنِّىْٓ اَخَافُ عَلَيْكُمْ عَذَابَ
يَوْمٍ كَبِيْرٍ ۝ اِلَى اللّٰهِ مَرْجِعُكُمْ ۚ وَهُوَ عَلٰى كُلِّ شَىْءٍ قَدِيْرٌ ۝

और हर साहिबे-फ़ज़्ल (श्रेष्ठ) को उसका फ़ज़्ल (श्रेष्ठता) अता करेगा[4]। लेकिन अगर तुम मुँह फेरते हो तो मैं तुम्हारे हक़ में एक हौलनाक दिन के अज़ाब से डरता हूँ। (4) तुम सबको अल्लाह की तरफ़ पलटना है और वह सब कुछ कर सकता है।

होगे। ख़ुशहाल और मालदार रहोगे। ज़िन्दगी में अम्न और चैन हासिल होगा। रुसवाई और बेइज़्ज़ती के साथ नहीं, बल्कि इज़्ज़त और एहतिराम के साथ जियोगे। यही मज़मून दूसरे मौक़े पर इस तरह बयान हुआ है कि, "जो शख़्स भी ईमान के साथ नेक अमल करेगा, चाहे वह मर्द हो, या औरत, हम उसको पाकीज़ा ज़िन्दगी बसर कराएँगे।" (क़ुरआन, सूरा-16 नहल, आयत-97) इसका मक़सद लोगों की उस आम ग़लतफ़हमी को दूर करना है जो शैतान ने हर नासमझ दुनियापरस्त आदमी के कान में फूँक रखी है कि ख़ुदातरसी, सच्चाई और ज़िम्मेदारी के एहसास का तरीक़ा अपनाने से आदमी की आख़िरत बनती हो तो बनती हो, मगर दुनिया ज़रूर बिगड़ जाती है। और यह कि ऐसे लोगों के लिए दुनिया में भूख-प्यास की तकलीफ़ सहने और तंगहाल रहने के सिवा कोई ज़िन्दगी नहीं है। अल्लाह तआला इस ख़्याल को ग़लत बताते हुए फ़रमाता है कि इस सीधे और सही रास्ते पर चलने से तुम्हारी सिर्फ़ आख़िरत ही नहीं, बल्कि दुनिया भी बनेगी। आख़िरत की तरह इस दुनिया की हक़ीक़ी इज़्ज़त व कामयाबी भी ऐसे ही लोगों के लिए है जो सच्ची ख़ुदापरस्ती के साथ नेकियों भरी ज़िन्दगी गुज़ारें, जिनके अख़लाक़ पाकीज़ा हों, जिनके मामलात दुरुस्त हों, जिनपर हर मामले में भरोसा किया जा सके, जिनसे हर शख़्स भलाई की उम्मीद रखता हो, जिनसे किसी इनसान को या किसी क़ौम को बुराई का अन्देशा न हो।

इसके अलावा अस्ल अरबी में इस्तेमाल हुए "मताउन हसनुन" (अच्छा सामाने-ज़िन्दगी) के अलफ़ाज़ में एक और पहलू भी है जो निगाह से ओझल न रह जाना चाहिए। दुनिया का सामाने-ज़िन्दगी क़ुरआन मजीद के मुताबिक़ दो क़िस्म का है। एक वह सरो-सामान है जो ख़ुदा से फिरे हुए लोगों को फ़ितने में डालने के लिए दिया जाता है और जिससे धोखा खाकर ऐसे लोग अपने आपको दुनियापरस्ती और ख़ुदा को भूल जाने में और ज़्यादा गुम कर देते हैं। यह माल बज़ाहिर तो नेमत है, मगर अस्ल में ख़ुदा की फिटकार और उसके अज़ाब की शुरुआत है। क़ुरआन मजीद इसको "मताउन ग़ुरूर" (धोखे का सामान) के अलफ़ाज़ से याद करता है। दूसरा वह सरो-सामान है जिससे इनसान ख़ुशहाल और ताक़तवर होकर अपने ख़ुदा का और ज़्यादा शुक्रगुज़ार बनता है, ख़ुदा और उसके बन्दों के और ख़ुद अपने नफ़्स के हक़्क़ों को ज़्यादा अच्छी तरह अदा करता है, ख़ुदा के दिए हुए वसाइल (संसाधनों) से ताक़त पाकर दुनिया में भलाई

أَلَآ إِنَّهُمْ يَثْنُونَ صُدُورَهُمْ لِيَسْتَخْفُوا۟ مِنْهُ ۚ أَلَا حِينَ يَسْتَغْشُونَ
ثِيَابَهُمْ يَعْلَمُ مَا يُسِرُّونَ وَمَا يُعْلِنُونَ ۚ إِنَّهُۥ عَلِيمٌۢ بِذَاتِ ٱلصُّدُورِ ﴿٥﴾
وَمَا مِن دَآبَّةٍ فِى ٱلْأَرْضِ إِلَّا عَلَى ٱللَّهِ رِزْقُهَا وَيَعْلَمُ مُسْتَقَرَّهَا

---

(5) देखो, ये लोग अपने सीनों को मोड़ते हैं ताकि उससे छिप जाएँ।[5] ख़बरदार! जब ये कपड़ों से अपने आपको ढाँपते हैं, अल्लाह इनके छिपे को भी जानता है और खुले को भी। वह तो उन भेदों को भी जानता है जो सीनों में हैं। (6) ज़मीन में चलनेवाला कोई जानदार ऐसा नहीं है जिसकी रोज़ी अल्लाह के ज़िम्मे न हो और जिसके बारे में वह न

और बेहतरी की तरक़्क़ी और बुराई और बिगाड़ को पूरी तरह ख़त्म करने के लिए ज़्यादा असरदार कोशिश करने लगता है। यह क़ुरआन की ज़बान में "मताउन हसनुन" है, यानी ऐसा अच्छा सामाने-ज़िन्दगी जो सिर्फ़ दुनिया के ऐश ही पर ख़त्म नहीं हो जाता, बल्कि नतीजे में आख़िरत के ऐश का भी ज़रिआ बनता है।

4. यानी जो शख़्स अख़लाक़ व आमाल में जितना भी आगे बढ़ेगा अल्लाह उसको उतना ही बड़ा दर्जा देगा। अल्लाह के यहाँ किसी की ख़ूबी पर पानी नहीं फेरा जाता। उसके यहाँ जिस तरह बुराई की क़द्र नहीं है उसी तरह भलाई की नाक़द्री भी नहीं है। उसकी सल्तनत का दस्तूर यह नहीं है कि क़ाबिल लोगों के तो पैर में बेड़ियाँ डाल दी जाएँ और नालायक़ों को इनाम में सोने के मेडल दिए जाएँ। वहाँ तो जो शख़्स भी अपनी सीरत व किरादार से अपने आपको जिस इज़्ज़त और इनाम का हक़दार साबित कर देगा वह इज़्ज़त और इनाम उसको ज़रूर दिया जाएगा।

5. मक्का में जब नबी (सल्ल॰) की दावत और पैग़ाम की चर्चा हुई तो बहुत-से लोग वहाँ ऐसे थे जो मुख़ालिफ़त में तो बहुत ज़्यादा सरगर्म न थे, मगर आप (सल्ल॰) की दावत से सख़्त बेज़ार थे। उन लोगों का रवैया यह था कि आप से कतराते थे, आप (सल्ल॰) की किसी बात को सुनने के लिए तैयार न थे, कहीं आप (सल्ल॰) को बैठे देखते तो उलटे पाँव फिर जाते, दूर से आप (सल्ल॰) को आते देख लेते तो रुख़ बदल देते या कपड़े की ओट में मुँह छिपा लेते, ताकि आमना-सामना न हो जाए और आप (सल्ल॰) उन्हें मुख़ातब करके कुछ अपनी बातें न कहने लगें। इसी क़िस्म के लोगों की तरफ़ यहाँ इशारा किया है कि ये लोग सच्चाई का सामना करने से घबराते हैं और शुतुर्मुर्ग की तरह मुँह छिपाकर समझते हैं कि वह हक़ीक़त ही ग़ायब हो गई है जिससे उन्होंने मुँह छिपाया है। हालाँकि हक़ीक़त अपनी जगह मौजूद है और वह यह भी देख रही है कि बेवक़ूफ़ उससे बचने के लिए मुँह छिपाए बैठे हैं।

وَمُسْتَوْدَعَهَا ۚ كُلٌّ فِيْ كِتٰبٍ مُّبِيْنٍ ۞ وَهُوَ الَّذِيْ خَلَقَ السَّمٰوٰتِ
وَالْاَرْضَ فِيْ سِتَّةِ اَيَّامٍ وَّكَانَ عَرْشُهٗ عَلَى الْمَآءِ لِيَبْلُوَكُمْ اَيُّكُمْ
اَحْسَنُ عَمَلًا ۚ وَلَئِنْ قُلْتَ اِنَّكُمْ مَّبْعُوْثُوْنَ مِنْۢ بَعْدِ الْمَوْتِ لَيَقُوْلَنَّ

जानता हो कि कहाँ वह रहता है और कहाँ वह सौंपा जाता है[6], सब कुछ एक साफ़ दफ़्तर में दर्ज है।

(7) और वही है जिसने आसमानों और ज़मीन को छः दिनों में पैदा किया— जबकि इससे पहले उसका अर्श (सिंहासन) पानी पर था[7]— ताकि तुमको आज़माकर देखे कि तुममें कौन बेहतर अमल करनेवाला है।[8] अब अगर ऐ नबी! तुम कहते हो कि लोगो!

6. यानी जिस ख़ुदा के इल्म का हाल यह है कि एक-एक चिड़िया का घोंसला और एक-एक कीड़े का बिल उसको मालूम है और वह उसी की जगह पर उसको सामाने-ज़िन्दगी पहुँचा रहा है, और जिसको हर वक़्त इसकी ख़बर है कि कौन-सा जानदार कहाँ रहता है और कहाँ उसकी मौत होती है, उसके बारे में अगर तुम यह समझते हो कि इस तरह मुँह छिपा-छिपाकर या कानों में उँगलियाँ ठूँसकर या आँखों पर पर्दा डालकर तुम उसकी पकड़ से बच जाओगे तो तुम बिलकुल नादान हो। हक़ की तरफ़ बुलानेवाले से तुमने मुँह छिपा भी लिया तो आख़िर इससे क्या मिलनेवाला है? क्या ख़ुदा से भी तुम छिप गए? क्या ख़ुदा यह नहीं देख रहा है कि एक शख़्स तुम्हें हक़ बात से बाख़बर करने में लगा हुआ है और तुम यह कोशिश कर रहे हो कि किसी तरह उसकी कोई बात तुम्हारे कान में न पड़ने पाए।

7. ऊपर से चली आ रही बात से हटकर दरमियान में यह बात शायद लोगों के इस सवाल के जवाब में कही गई है कि आसमान और ज़मीन अगर पहले न थे और बाद में पैदा किए गए तो पहले क्या था? इस सवाल को यहाँ नक़्ल किए बिना उसका जवाब इस मुख़्तसर से जुमले में दे दिया गया है कि पहले पानी था। हम नहीं कह सकते कि इस पानी से मुराद क्या है। यही पानी जिसे हम इस नाम से जानते हैं? या यह लफ़्ज़ सिर्फ़ अलामत के तौर पर माद्दे (भौतिक तत्त्व) की उस तरल (Fluid) हालत के लिए इस्तेमाल किया गया है जो मौजूदा सूरत में ढाले जाने से पहले थी? रहा यह कहना कि ख़ुदा का अर्श पहले पानी पर था, तो उसका मतलब हमारी समझ में यह आता है कि ख़ुदा की सल्तनत पानी पर थी।

8. इस बात को कहने का मतलब यह है कि अल्लाह तआला ने ज़मीन और आसमान को इसलिए पैदा किया कि उसका मक़सद तुमको (यानी इनसान को) पैदा करना था, और तुम्हें इसलिए पैदा किया कि तुमपर अख़लाक़ी ज़िम्मेदारी का बोझ डाला जाए, तुमको ख़िलाफ़त (उत्तराधिकार) के इख़्तियार दिए जाएँ और फिर देखा जाए कि तुममें से कौन इन इख़्तियारात

الَّذِيْنَ كَفَرُوْٓا اِنْ هٰذَآ اِلَّا سِحْرٌ مُّبِيْنٌ ۝ وَلَئِنْ اَخَّرْنَا عَنْهُمُ
الْعَذَابَ اِلٰٓى اُمَّةٍ مَّعْدُوْدَةٍ لَّيَقُوْلُنَّ مَا يَحْبِسُهٗ ؕ اَلَا يَوْمَ يَاْتِيْهِمْ
لَيْسَ مَصْرُوْفًا عَنْهُمْ وَحَاقَ بِهِمْ مَّا كَانُوْا بِهٖ يَسْتَهْزِءُوْنَ ۝ وَلَئِنْ
اَذَقْنَا الْاِنْسَانَ مِنَّا رَحْمَةً ثُمَّ نَزَعْنٰهَا مِنْهُ ۚ اِنَّهٗ لَيَئُوْسٌ كَفُوْرٌ ۝
وَلَئِنْ اَذَقْنٰهُ نَعْمَآءَ بَعْدَ ضَرَّآءَ مَسَّتْهُ لَيَقُوْلَنَّ ذَهَبَ السَّيِّاٰتُ عَنِّيْ ؕ

मरने के बाद तुम दोबारा उठाए जाओगे तो हक़ के इनकारी फ़ौरन बोल उठते हैं कि यह तो खुली जादूगरी है।[9] (8) और अगर हम एक ख़ास मुद्दत तक उनकी सज़ा को टालते हैं तो वे कहने लगते हैं कि आख़िर किस चीज़ ने उसे रोक रखा है? सुनो, जिस दिन उस सज़ा का वक़्त आ गया तो वह किसी के फेरे न फिर सकेगा, और वही चीज़ उनको आ घेरेगी जिसका वे मज़ाक़ उड़ा रहे हैं।

(9) अगर कभी हम इनसान को अपनी रहमत से नवाज़ने के बाद फिर उससे महरूम कर देते हैं तो वह मायूस होता है और नाशुक्री करने लगता है। (10) और अगर उस मुसीबत के बाद जो उसपर आई थी, हम उसे नेमत का मज़ा चखाते हैं तो कहता है

को और इस अख़लाक़ी ज़िम्मेदारी के बोझ को किस तरह संभालता है। अगर इस पैदा करने का यह मक़सद न होता, अगर इख़्तियारात देने के बावजूद किसी इम्तिहान का, किसी हिसाब लेने और पूछ-गच्छ का और किसी इनाम और सज़ा का कोई सवाल न होता, और अगर इनसान को अख़लाक़ी ज़िम्मेदारी रखते हुए भी यूँ ही बेनतीजा मरकर मिट्टी हो जाना ही होता, तो फिर पैदा करने का, यह सारा काम बिलकुल एक बेमक़सद खेल था और इन सबको वुजूद में लाने की हैसियत एक बेकार काम के सिवा कुछ न थी।

9. यानी इन लोगों की नादानी का यह हाल है कि कायनात को एक खिलंडरे का घरौंदा और अपने आपको उसके जी बहलाने का खिलौना समझे बैठे हैं और इस बेवक़ूफ़ी के ख़याल में इतने मगन हैं कि जब तुम उन्हें ज़िन्दगी के इस कारख़ाने का संजीदा मक़सद, और ख़ुद उनके वुजूद का सही मक़सद समझाते हो तो क़हक़हा लगाते हैं और तुमपर फब्ती कसते हैं कि यह शख़्स तो जादू की-सी बातें करता है।

إِنَّهُۥ لَفَرِحٌ فَخُورٌ ۝١٠ إِلَّا ٱلَّذِينَ صَبَرُوا۟ وَعَمِلُوا۟ ٱلصَّٰلِحَٰتِ أُو۟لَٰٓئِكَ لَهُم

कि मेरे तो सारे दिलद्दर पार हो गए, फिर वह फूला नहीं समाता और अकड़ने लगता है।[10] (11) इस ऐब से पाक अगर कोई हैं तो बस वे लोग जो सब्र करनेवाले[11] और

10. यह इनसान के छिछोरेपन, तंगनज़री और छोटी सोच का हाल है जिसको ज़िन्दगी में हर वक़्त देखा जा सकता है और जिसको आमतौर पर लोग अपने नफ़्स (मन) का हिसाब लेकर ख़ुद अपने अन्दर भी महसूस कर सकते हैं। आज ख़ुशहाल और ताक़तवर हैं तो अकड़ रहे हैं और फ़ख़्र कर रहे हैं। सावन के अन्धे की तरह हर तरफ़ हरा-ही-हरा नज़र आ रहा है और ख़याल तक नहीं आता कि कभी इस बहार पर पतझड़ भी आ सकता है। कल किसी मुसीबत के फेर में आ गए तो बिलबिला उठे, हसरत और नाउम्मीदी की तस्वीर बनकर रह गए, और बहुत तिलमिलाए तो ख़ुदा को गालियाँ देकर और उसकी ख़ुदाई पर ताने मारकर ग़म ग़लत करने लगे। फिर जब बुरा वक़्त गुज़र गया और भले दिन आए तो वही अकड़, वही डींगें और नेमत के नशे में वही सरमस्तियाँ फिर शुरू हो गईं।

इनसान की इस गिरी हुई सिफ़त (गुण) का यहाँ क्यों ज़िक्र हो रहा है? इसका मक़सद एक बहुत ही लतीफ़ (सूक्ष्म और अच्छे) अन्दाज़ में लोगों को इस बात पर ख़बरदार करना है कि आज इत्मीनान के माहौल में जब हमारा पैग़म्बर तुम्हें ख़बरदार करता है कि ख़ुदा की नाफ़रमानियाँ करते रहोगे तो तुमपर अज़ाब आएगा, और तुम उसकी यह बात सुनकर एक ज़ोर का ठट्ठा मारते हो और कहते हो कि, "दीवाने, देखता नहीं कि हमपर नेमतों की बारिश हो रही है, हर तरफ़ हमारी बड़ाई के फुरेरे उड़ रहे हैं, इस वक़्त तुझे दिन-दहाड़े यह डरावना ख़ाब कैसे नज़र आ गया कि कोई अज़ाब हमपर टूट पड़नेवाला है", तो दरअस्ल पैग़म्बर की नसीहत के जवाब में तुम्हारा यह ठट्ठा इसी नीच सिफ़त का एक बहुत ही गिरा हुआ मुज़ाहिरा है। ख़ुदा तो तुम्हारी गुमराहियों और बदकारियों के बावजूद सिर्फ़ अपने रहमो-करम से तुम्हारी सज़ा में देर कर रहा है, ताकि तुम किसी तरह संभल जाओ। मगर तुम इस मुहलत के ज़माने में यह सोच रहे हो कि हमारी ख़ुशहाली कैसी पायेदार बुनियादों पर क़ायम है और हमारा यह चमन कैसा सदाबहार है कि इसपर पतझड़ आने का कोई ख़तरा ही नहीं।

11. यहाँ सब्र के एक और मतलब पर रौशनी पड़ती है, सब्र की सिफ़त उस छिछोरेपन के बरख़िलाफ़ है जिसका ज़िक्र ऊपर किया गया है। सब्र करनेवाला वह शख़्स है जो ज़माने के बदलते हुए हालात में अपने दिमाग़ के तवाज़ुन (सन्तुलन) को बनाए रखे। वक़्त की हर गर्दिश से असर लेकर अपने मिज़ाज का रंग बदलता न चला जाए, बल्कि एक दुरुस्त और सही रवैये पर हर हाल में क़ायम रहे। अगर कभी हालात ठीक हों, और वह दौलतमन्दी, इक्तिदार और नामवरी के आसमानों पर चढ़ा चला जा रहा हो तो बड़ाई के नशे में मस्त होकर बहकने न लगे और अगर किसी दूसरे वक़्त मुसीबतों और मुश्किलों की चक्की उसे पीसे डाल रही हो तो इनसानियत के अपने जौहर को उसमें बरबाद न कर दे। ख़ुदा की तरफ़ से आज़माइश चाहे

مَّغْفِرَةٌ وَّاَجْرٌ كَبِيْرٌ ﴿١١﴾ فَلَعَلَّكَ تَارِكٌۢ بَعْضَ مَا يُوْحٰٓى اِلَيْكَ وَضَآئِقٌۢ
بِهٖ صَدْرُكَ اَنْ يَّقُوْلُوْا لَوْلَآ اُنْزِلَ عَلَيْهِ كَنْزٌ اَوْ جَآءَ مَعَهٗ مَلَكٌ ؕ اِنَّمَآ
اَنْتَ نَذِيْرٌ ؕ وَاللّٰهُ عَلٰى كُلِّ شَيْءٍ وَّكِيْلٌ ﴿١٢﴾ اَمْ يَقُوْلُوْنَ افْتَرٰىهُ ؕ قُلْ

अच्छे काम करनेवाले हैं। और वही हैं जिनके लिए माफ़ी भी है और बड़ा बदला भी।[12]

(12) तो ऐ पैग़म्बर! कहीं ऐसा न हो कि तुम उन चीज़ों में से किसी चीज़ को (बयान करने से) छोड़ दो जो तुम्हारी तरफ़ वह्य की जा रही हैं और इस बात पर दिल तंग हो कि वे कहेंगे, "इस शख़्स पर कोई ख़ज़ाना क्यों न उतारा गया?" या यह कि "इसके साथ कोई फ़रिश्ता क्यों न आया?" तुम तो सिर्फ़ ख़बरदार करनेवाले हो, आगे हर चीज़ का हवालेदार अल्लाह है।[13]

(13) क्या ये कहते हैं कि पैग़म्बर ने यह किताब ख़ुद गढ़ ली है? कहो, "अच्छा,

---

नेमत की सूरत में आए या मुसीबत की सूरत में, दोनों हालतों में उसकी बरदाश्त और सहन करने की सिफ़त अपने हाल पर क़ायम रहे और उसकी समाई का बर्तन किसी चीज़ की भी छोटी या बड़ी मिक़दार से छलक न पड़े।

12. यानी अल्लाह ऐसे लोगों के क़ुसूर माफ़ भी करता है और उनकी भलाइयों पर बदला भी देता है।

13. इस बात का मतलब समझने के लिए उन हालात को सामने रखना चाहिए जिनमें यह कहा गया है मक्का एक ऐसे क़बीले का मरकज़ है जो तमाम अरब पर अपने मज़हबी इक्तिदार, अपनी दौलत और तिजारत और अपने सियासी दबदबे की वजह से छाया हुआ है। ठीक इस हालत में जबकि ये लोग अपने इन्तिहाई, उरूज (उत्थान) पर हैं उस बस्ती का एक आदमी उठता है और एलानिया कहता है कि जिस मज़हब के तुम पेशवा हो वह सरासर गुमराही है, जिस सामाजिक निज़ाम के तुम सरदार हो वह अपनी जड़ तक गला और सड़ा हुआ निज़ाम है, ख़ुदा का अज़ाब तुम पर टूट पड़ने के लिए तुला खड़ा है और तुम्हारे लिए इससे बचने की कोई सूरत इसके सिवा नहीं है कि उस सच्चे मज़हब और बेहतरीन निज़ाम को क़बूल कर लो जो मैं ख़ुदा की तरफ़ से तुम्हारे सामने पेश कर रहा हूँ। उस शख़्स के साथ उसकी पाक सीरत (पवित्र आचरण) और उसकी सही और मुनासिब बातों के सिवा कोई ऐसी ग़ैर-मामूली चीज़ नहीं है जिससे आम लोग उसे अल्लाह की तरफ़ से भेजा हुआ समझें और आसपास के हालात में भी मज़हब व अख़लाक़ और समाज की गहरी बुनियादी ख़राबियों के सिवा कोई ऐसी नज़र

فَأْتُوا بِعَشْرِ سُوَرٍ مِّثْلِهِ مُفْتَرَيَاتٍ وَّادْعُوا مَنِ اسْتَطَعْتُمْ مِّنْ دُوْنِ
اللّٰهِ اِنْ كُنْتُمْ صٰدِقِيْنَ ﴿١٣﴾ فَاِنْ لَّمْ يَسْتَجِيْبُوْا لَكُمْ فَاعْلَمُوْٓا اَنَّمَآ

यह बात है तो इस जैसी गढ़ी हुई दस सूरतें तुम बना लाओ और अल्लाह के सिवा और जो-जो (तुम्हारे माबूद) हैं उनको मदद के लिए बुला सकते हो तो बुला लो अगर तुम (उन्हें माबूद समझने में) सच्चे हो। (14) अब अगर वह (तुम्हारे माबूद) तुम्हारी मदद को नहीं पहुँचते, तो जान लो कि यह अल्लाह के इल्म से उतरी है और यह कि अल्लाह के

आनेवाली अलामत नहीं है जो अज़ाब उतरने की निशानदेही करती हो। बल्कि इसके बरख़िलाफ़ तमाम नुमायाँ अलामतें यही ज़ाहिर कर रही हैं कि इन लोगों पर ख़ुदा की (और उनके अक़ीदे के मुताबिक़) देवताओं की बड़ी मेहरबानी है और जो कुछ वे कर रहे हैं ठीक ही कर रहे हैं। ऐसे हालात में यह बात कहने का नतीजा यह होता है, और इसके सिवा कुछ हो भी नहीं सकता, कि कुछ बहुत ही सही दिमाग़ रखनेवाले और हक़ीक़त तक पहुँचनेवाले लोगों के सिवा बस्ती के सब लोग उसके पीछे पड़ जाते हैं। कोई ज़ुल्मो-सितम से उसको दबाना चाहता है, कोई झूठे इल्ज़ामात और ओछे एतिराज़ात से उसकी हवा उखाड़ने की कोशिश करता है। कोई तास्सुब भरी बेरुख़ी से उसकी हिम्मत तोड़ता है और कोई मज़ाक़ उड़ाकर, आवाज़ें और फब्तियाँ कसकर और ठट्ठे लगाकर उसकी बातों को हवा में उड़ा देना चाहता है। यह इस्तिक़बाल (स्वागत) जो कई साल तक उस शख़्स की दावत का होता रहता है, जैसा कुछ दिल तोड़नेवाला और मायूस करनेवाला हो सकता है, ज़ाहिर है। बस यही सूरतेहाल है जिसमें अल्लाह तआला अपने पैग़म्बर की हिम्मत बंधाने के लिए नसीहत करता है कि अच्छे हालात में फूल जाना और बुरे हालात में मायूस हो जाना छिछोरे लोगों का काम है। हमारी निगाह में क़ीमती इनसान वह है जो नेक हो और नेकी के रास्ते पर सब्र और मज़बूती और हिम्मत के साथ चलनेवाला हो। इसलिए जिस तास्सुब से, जिस बेरुख़ी से, जिस मज़ाक़ और ठट्ठे से और जिन जहालत भरे एतिराज़ों से तुम्हारा मुक़ाबला किया जा रहा है उनकी वजह से तुम्हारे क़दम ज़रा भी डगमगाने न पाएँ। जो सच्चाई तुमको वह्य के ज़रिए बताई गई है, उसके इज़्हार व एलान में और उसकी तरफ़ दावत देने में तुम्हें बिलकुल भी कोई झिझक न हो। तुम्हारे दिल में कभी यह ख़याल तक न आए कि फ़ुलाँ बात कैसे कहूँ जबकि लोग सुनते ही उसका मज़ाक़ उड़ाने लगते हैं, और फ़ुलाँ हक़ीक़त का इज़्हार कैसे करूँ जबकि कोई उसे सुनने तक को तैयार नहीं है। कोई माने या न माने, तुम जिसे हक़ (सच) पाते हो बग़ैर कमी-बेशी के और निडर होकर बयान किए जाओ, आगे सब मामले अल्लाह के हवाले हैं।

اُنْزِلَ بِعِلْمِ اللّٰهِ وَاَنْ لَّاۤ اِلٰهَ اِلَّا هُوَ ۚ فَهَلْ اَنْتُمْ مُّسْلِمُوْنَ ﴿۱۴﴾ مَنْ كَانَ
يُرِيْدُ الْحَيٰوةَ الدُّنْيَا وَزِيْنَتَهَا نُوَفِّ اِلَيْهِمْ اَعْمَالَهُمْ فِيْهَا وَهُمْ فِيْهَا

सिवा कोई हक़ीक़ी माबूद नहीं है। फिर क्या तुम (इस सच्ची बात के आगे) फ़रमाँबरदारी के साथ सिर झुकाते हो?"[14]

(15) जो लोग बस इसी दुनिया की ज़िन्दगी और उसकी लुभावनी चीज़ों की तलब रखते हैं[15], उनके किए-धरे का सारा फल हम यहीं उनको दे देते हैं और इसमें उनके

14. यहाँ एक ही दलील से क़ुरआन के अल्लाह का कलाम होने का सुबूत भी दिया गया है और तौहीद का सुबूत भी। दलील में जो कुछ कहा गया है उसका ख़ुलासा यह है—

(1) अगर तुम्हारे नज़दीक यह इनसानी कलाम है तो इनसान को ऐसे कलाम पर क़ुदरत (सामर्थ्य) होनी चाहिए, लिहाज़ा तुम्हारा यह दावा कि मैंने इसे ख़ुद गढ़ लिया है सिर्फ़ उसी सूरत में सही हो सकता है कि तुभ ऐसी एक किताब लिखकर दिखाओ। लेकिन अगर बार-बार चुनौती देने पर भी तुम सब मिलकर ऐसी मिसाल पेश नहीं कर सकते तो मेरा यह दावा सही है कि मैं इस किताब का लिखनेवाला नहीं हूँ, बल्कि यह अल्लाह के इल्म से उतरी है।

(2) फिर जबकि इस किताब में तुम्हारे माबूदों की भी खुल्लम-खुल्ला मुख़ालिफ़त की गई है और साफ़-साफ़ कहा गया है कि इनकी इबादत छोड़ दो; क्योंकि ख़ुदा होने में इनका कोई हिस्सा नहीं है, तो ज़रूर है कि तुम्हारे माबूदों को भी (अगर सचमुच उनमें कोई ताक़त है) मेरे दावे को झूठा साबित करने और इस किताब के जैसी दूसरी किताब पेश करने में तुम्हारी मदद करनी चाहिए। लेकिन अगर वे इस फ़ैसले की घड़ी में भी तुम्हारी मदद नहीं करते और तुम्हारे अन्दर कोई ऐसी ताक़त नहीं फूँकते कि तुम इस किताब का बदल तैयार कर सको, तो इससे साफ़ साबित हो जाता है कि तुमने बिना वजह इनको माबूद बना रखा है, वरना हक़ीक़त में इनके अन्दर कोई क़ुदरत और ख़ुदाई सिफ़त (गुण) का हल्का-सा अंश तक नहीं है जिस की बुनियाद पर वे माबूद होने के हक़दार हों।

इस आयत से एक बात यह भी मालूम होती है कि यह सूरा नाज़िल होने की तरतीब के एतिबार से सूरा-10 यूनुस से पहले की है, यहाँ दस सूरतें बनाकर लाने का चैलेंज दिया गया है और जब वे उसका जवाब न दे सके तो फिर सूरा यूनुस में कहा गया कि अच्छा एक ही सूरा इसकी तरह की बना लाओ। (सूरा-10 यूनुस, आयत-38, हाशिया-46)

15. बात के इस सिलसिले में यह बात इस मुनासिबत (अनुकूलता) से कही गई है कि क़ुरआन की दावत को जिस क़िस्म के लोग उस ज़माने में रद्द कर रहे थे और आज भी रद्द कर रहे हैं वे ज़्यादातर वही थे और हैं जिनके दिलो-दिमाग़ पर दुनियापरस्ती छाई हुई है। ख़ुदा के पैग़ाम को

لَا يُبْخَسُوْنَ ﴿١٥﴾ اُولٰٓئِكَ الَّذِيْنَ لَيْسَ لَهُمْ فِى الْاٰخِرَةِ اِلَّا النَّارُ ۖ
وَحَبِطَ مَا صَنَعُوْا فِيْهَا وَبٰطِلٌ مَّا كَانُوْا يَعْمَلُوْنَ ﴿١٦﴾

साथ कोई कमी नहीं की जाती। (16) मगर आख़िरत में ऐसे लोगों के लिए आग के सिवा कुछ नहीं है।[16] (वहाँ मालूम हो जाएगा कि) जो कुछ उन्होंने दुनिया में बनाया, वह सब मिट्टी में मिल गया और अब उनका सारा किया-धरा सिर्फ़ बातिल है।

रद्द करने के लिए जो दलीलबाज़ियाँ वे करते हैं वे सब तो बाद की चीज़ें हैं। पहली चीज़ जो इस इनकार की अस्ल वजह है वह उनके मन का यह फ़ैसला है कि दुनिया और उसके माद्दी (भौतिक) फ़ायदों से बढ़कर कोई चीज़ क़ाबिले-क़द्र नहीं है, और यह कि इन फ़ायदों से मालामाल होने के लिए उनको पूरी आज़ादी हासिल रहनी चाहिए।

16. यानी जिसके सामने सिर्फ़ दुनिया और उसका फ़ायदा हो, वह अपनी दुनिया बनाने की जैसी कोशिश यहाँ करेगा वैसा ही उसका फल उसे यहाँ मिल जाएगा। लेकिन जबकि आख़िरत उसके सामने नहीं है और उसके लिए उसने कोई कोशिश भी नहीं की है तो कोई वजह नहीं कि दुनिया हासिल करने की उसकी कोशिशों के कामयाब होने का सिलसिला आख़िरत तक चले। वहाँ फल पाने का इमकान तो सिर्फ़ उसी सूरत में हो सकता है जबकि दुनिया में आदमी की कोशिश उन कामों के लिए हों जो आख़िरत में भी फ़ायदा पहुँचानेवाली हों। मिसाल के तौर पर अगर एक शख़्स चाहता है कि एक शानदार मकान उसे रहने के लिए मिले और वह उसके लिए उन तदबीरों को अमल में लाता है जिनसे यहाँ मकान बना करते हैं तो ज़रूर एक आलीशान महल बनकर तैयार हो जाएगा और उसकी कोई ईंट भी सिर्फ़ इस वजह से जमने से इनकार न करेगी कि हक़ का एक इनकारी उसे जमाने की कोशिश कर रहा है। लेकिन उस शख़्स को अपना यह महल और उसका सारा सरो-सामान मौत की आख़िरी हिचकी के साथ ही इस दुनिया में छोड़ देना पड़ेगा और उसकी कोई चीज़ भी वह अपने साथ दूसरी दुनिया में न ले जा सकेगा। अगर उसने आख़िरत में महल बनाने के लिए कुछ नहीं किया है तो कोई मुनासिब वजह नहीं कि उसका यह महल वहाँ उसके साथ जाए। वहाँ कोई महल वह पा सकता है तो सिर्फ़ इस सूरत में पा सकता है, जबकि दुनिया में उसकी कोशिश उन कामों में हो जिनसे अल्लाह के क़ानून के मुताबिक़ आख़िरत का महल बना करता है।

अब सवाल किया जा सकता है कि इस दलील का तक़ाज़ा तो सिर्फ़ इतना है कि वहाँ उसे कोई महल न मिले। मगर यह क्या बात है कि महल की जगह वहाँ उसे आग मिलेगी? इसका जवाब यह है (और यह क़ुरआन ही का जवाब है जो अलग-अलग मौक़ों पर उसने दिया है) कि जो शख़्स आख़िरत को नज़र-अन्दाज़ करके सिर्फ़ दुनिया के लिए काम करता है वह लाज़िमी और फ़ितरी तौर पर ऐसे तरीक़ों से काम करता है जिनसे आख़िरत में महल की जगह आग का अलाव तैयार होता है। (देखिए—सूरा-10 यूनुस, हाशिया-12)

اَفَمَنْ كَانَ عَلٰى بَيِّنَةٍ مِّنْ رَّبِّهٖ وَيَتْلُوْهُ شَاهِدٌ مِّنْهُ وَمِنْ قَبْلِهٖ كِتٰبُ
مُوْسٰٓى اِمَامًا وَّرَحْمَةً ؕ اُولٰٓئِكَ يُؤْمِنُوْنَ بِهٖ ؕ وَمَنْ يَّكْفُرْ بِهٖ مِنَ
الْاَحْزَابِ فَالنَّارُ مَوْعِدُهٗ ۚ فَلَا تَكُ فِيْ مِرْيَةٍ مِّنْهُ ۗ اِنَّهُ الْحَقُّ مِنْ رَّبِّكَ
وَلٰكِنَّ اَكْثَرَ النَّاسِ لَا يُؤْمِنُوْنَ ﴿۱۷﴾ وَمَنْ اَظْلَمُ مِمَّنِ افْتَرٰى عَلَى اللّٰهِ

(17) फिर भला वह शख़्स जो अपने रब की तरफ़ से एक साफ़ गवाही रखता था[17], इसके बाद एक गवाह भी पालनहार की तरफ़ से (इस गवाही की ताईद) आ गया[18] और पहले मूसा की किताब रहनुमा और रहमत के तौर पर आई हुई भी मौजूद थी, (क्या वह भी दुनियापरस्तों की तरह इससे इनकार कर सकता है?) ऐसे लोग तो उसपर ईमान ही लाएँगे[19] और इनसानी गरोहों में से जो कोई उसका इनकार करे तो उसके लिए जिस जगह का वादा है, वह दोज़ख़ है। इसलिए ऐ पैग़म्बर! तुम इस चीज़ की तरफ़ से किसी शक में न पड़ना, यह हक़ है तुम्हारे रब की तरफ़ से, मगर ज़्यादातर लोग नहीं मानते।

(18) और उस आदमी से बढ़कर ज़ालिम और कौन होगा जो अल्लाह पर झूठ

17. यानी जिसको ख़ुद अपने वुजूद में और ज़मीन और आसमानों की बनावट में और कायनात के निज़ाम (व्यवस्था) में इस बात की खुली गवाही मिल रही थी कि इस दुनिया का ख़ालिक़ (पैदा करनेवाला), मालिक, परवरदिगार और हाकिम सिर्फ़ एक ख़ुदा है, और फिर इन्हीं गवाहियों और सुबूतों को देखकर जिसका दिल यह गवाही भी पहले ही से दे रहा था कि इस ज़िन्दगी के बाद कोई और ज़िन्दगी ज़रूर होनी चाहिए जिसमें इनसान अपने ख़ुदा को अपने आमाल का हिसाब दे और अपने किए का इनाम और सज़ा पाए।

18. यानी क़ुरआन, जिसने आकर उस फ़ितरी व अक़्ली गवाही को दुरुस्त ठहराया और उसे बताया कि सचमुच हक़ीक़त वही है जिसका निशान बाहरी दुनिया और अपने अन्दर की निशानियों में तूने पाया है।

19. ऊपर से जो बात चली आ रही है उसके लिहाज़ से इस आयत का मतलब यह है कि जो लोग दुनिया की ज़िन्दगी के ज़ाहिरी पहलू पर और उसकी अच्छी और ख़ुशनुमा चीज़ों पर फ़िदा हैं उनके लिए तो क़ुरआन की दावत को रद्द कर देना आसान है। मगर वह शख़्स जो अपने वुजूद में और कायनात के निज़ाम में पहले से तौहीद व आख़िरत की खुली गवाही पा रहा था, फिर क़ुरआन ने आकर ठीक वही बात कही जिसकी गवाही वह पहले से अपने अन्दर भी पा रहा था और बाहर भी, और फिर उसकी और ज़्यादा ताईद (पुष्टि) क़ुरआन से पहले आई हुई

كَذِبًا ۚ أُولَٰٓئِكَ يُعْرَضُونَ عَلَىٰ رَبِّهِمْ وَيَقُولُ الْأَشْهَادُ هَٰٓؤُلَآءِ الَّذِينَ
كَذَبُوا عَلَىٰ رَبِّهِمْ ۚ أَلَا لَعْنَةُ اللَّهِ عَلَى الظَّٰلِمِينَ ﴿١٨﴾ الَّذِينَ يَصُدُّونَ
عَن سَبِيلِ اللَّهِ وَيَبْغُونَهَا عِوَجًا ۚ وَهُم بِالْآخِرَةِ هُمْ كَٰفِرُونَ ﴿١٩﴾
أُولَٰٓئِكَ لَمْ يَكُونُوا مُعْجِزِينَ فِي الْأَرْضِ وَمَا كَانَ لَهُم مِّن دُونِ اللَّهِ

गढ़े?[20] ऐसे लोग अपने रब के सामने पेश होंगे और गवाह गवाही देंगे कि ये हैं वे लोग जिन्होंने अपने रब पर झूठ गढ़ा था। सुनो ख़ुदा की लानत है ज़ालिमों पर[21] (19) — उन ज़ालिमों पर[22] जो ख़ुदा के रास्ते से लोगों को रोकते हैं, उसके रास्ते को टेढ़ा करना चाहते हैं[23] और आख़िरत का इनकार करते हैं। (20)— वे ज़मीन में[24] अल्लाह को बेबस

आसमानी किताब में भी उसे मिल गई, आख़िर वह किस तरह इतनी ज़बरदस्त गवाहियों की तरफ़ से आँखें बन्द करके इन इनकार करनेवालों का हम-ख़याल हो सकता है? इस बात से यह साफ़ मालूम होता है कि नबी (सल्ल.) क़ुरआन उतरने से पहले ग़ैब (परोक्ष) पर ईमान लाने की मंज़िल से गुज़र चुके थे। जिस तरह सूरा-6 अनआम में हज़रत इबराहीम (अलैहि) के बारे में बताया गया है कि वे नबी होने से पहले कायनात की निशानियाँ देखकर तौहीद का इल्म हासिल कर चुके थे, इसी तरह यह आयत साफ़ बता रही है कि नबी (सल्ल.) ने भी ग़ौरो-फ़िक्र से इस हक़ीक़त को पा लिया था और इसके बाद क़ुरआन ने आकर न सिर्फ़ उसे दुरुस्त ठहराया, बल्कि आप (सल्ल.) को सीधे तौर पर हक़ीक़त का इल्म भी दे दिया।

20. यानी यह कहे कि अल्लाह के साथ ख़ुदाई और बन्दगी कराने का हक़ रखने में दूसरे भी शरीक हैं। या यह कहे कि ख़ुदा को अपने बन्दों की हिदायत व गुमराही से कोई दिलचस्पी नहीं है और उसने कोई किताब और कोई नबी हमारी हिदायत के लिए नहीं भेजा है, बल्कि हमें आज़ाद छोड़ दिया है कि जो ढंग चाहें अपनी ज़िन्दगी के लिए अपना लें। या यह कहे कि ख़ुदा ने हमें यूँ ही खेल के तौर पर पैदा किया और यूँ ही हमको ख़त्म कर देगा, कोई जवाबदेही हमें उसके सामने नहीं करनी है और कोई इनाम और सज़ा नहीं होनी है।

21. यह आख़िरत की दुनिया का बयान है कि वहाँ यह एलान होगा।

22. ऊपर से चली आ रही बात से हटकर यह बात कही गई है कि जिन ज़ालिमों पर वहाँ ख़ुदा की लानत का एलान होगा वे वही लोग होंगे जो आज दुनिया में ये हरकतें कर रहे हैं।

23. यानी यह इस सीधी राह को जो उनके सामने पेश की जा रही है पसन्द नहीं करते और चाहते हैं कि यह राह कुछ उनके मन की ख़ाहिशों और उनके जाहिलाना तास्सुबों और उनके अंधविश्वासों और ख़याली उड़ानों के मुताबिक़ टेढ़ी हो जाए तो वे इसे क़बूल करें।

24. यह फिर आख़िरत की दुनिया का बयान है।

مِنْ اَوْلِيَآءَ ۘ يُضٰعَفُ لَهُمُ الْعَذَابُ ؕ مَا كَانُوْا يَسْتَطِيْعُوْنَ السَّمْعَ
وَمَا كَانُوْا يُبْصِرُوْنَ ۝٢٠ اُولٰٓئِكَ الَّذِيْنَ خَسِرُوْٓا اَنْفُسَهُمْ وَضَلَّ
عَنْهُمْ مَّا كَانُوْا يَفْتَرُوْنَ ۝٢١ لَا جَرَمَ اَنَّهُمْ فِى الْاٰخِرَةِ هُمُ
الْاَخْسَرُوْنَ ۝٢٢ اِنَّ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَعَمِلُوا الصّٰلِحٰتِ وَاَخْبَتُوْٓا اِلٰى
رَبِّهِمْ ۙ اُولٰٓئِكَ اَصْحٰبُ الْجَنَّةِ ۚ هُمْ فِيْهَا خٰلِدُوْنَ ۝٢٣ مَثَلُ الْفَرِيْقَيْنِ
كَالْاَعْمٰى وَالْاَصَمِّ وَالْبَصِيْرِ وَالسَّمِيْعِ ؕ هَلْ يَسْتَوِيٰنِ مَثَلًا ؕ اَفَلَا
تَذَكَّرُوْنَ ۝٢٤ وَلَقَدْ اَرْسَلْنَا نُوْحًا اِلٰى قَوْمِهٖٓ ۙ اِنِّىْ لَكُمْ نَذِيْرٌ

करनेवाले न थे और न अल्लाह के मुक़ाबले में कोई उनका हिमायती था। उन्हें अब दोहरा अज़ाब दिया जाएगा।[25] वे न किसी की सुन ही सकते थे और न ख़ुद ही उन्हें कुछ सूझता था। (21) ये वे लोग हैं जिन्होंने अपने आपको ख़ुद घाटे में डाला और वह सब कुछ इनसे खोया गया जो इन्होंनें गढ़ रखा था।[26] (22) लाज़िमी है कि वही आख़िरत में सबसे बढ़कर घाटे में रहें। (23) रहे वे लोग जो ईमान लाए और जिन्होंने अच्छे काम किए और अपने रब ही के होकर रहे, तो यक़ीनन वे जन्नती लोग हैं और जन्नत में वे हमेशा रहेंगे।[27] (24) इन दोनों फ़रीक़ों (पक्षों) की मिसाल ऐसी है जैसे एक आदमी तो हो अंधा, बहरा और दूसरा हो देखने और सुननेवाला, क्या ये दोनों बराबर हो सकते हैं?[28] क्या तुम (इस मिसाल से) कोई सबक़ नहीं लेते?

(25) (और ऐसे ही हालात थे जब) हमने नूह को उसकी क़ौम की तरफ़ भेजा

25. एक अज़ाब ख़ुद गुमराह होने का, दूसरा अज़ाब दूसरों को गुमराह करने और बाद की नस्लों के लिए गुमराही की विरासत छोड़ जाने का। (देखें—सूरा-7 आराफ़, हाशिया -30)

26. यानी वे सब पुराने नज़रिए हवा हो गए जो उन्होंने ख़ुदा और कायनात और अपने वुजूद के बारे में गढ़ रखे थे, और वे सब भरोसे भी झूठे साबित हुए जो उन्होंने अपने माबूदों और सिफ़ारिशियों और सरपरस्तों पर कर रखे थे, और वे गुमान भी ग़लत निकले जो उन्होंने मौत के बाद की ज़िन्दगी के बारे में लगा रखे थे।

27. यहाँ आख़िरत की दुनिया का बयान ख़त्म हुआ।

28. यानी क्या इन दोनों का रवैया और आख़िरकार दोनों का अंजाम एक जैसा हो सकता है?

مُّبِيْنٌ ﴿٢٥﴾ اَنْ لَّا تَعْبُدُوْٓا اِلَّا اللّٰهَ ؕ اِنِّیْٓ اَخَافُ عَلَيْكُمْ عَذَابَ يَوْمٍ
اَلِيْمٍ ﴿٢٦﴾ فَقَالَ الْمَلَاُ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا مِنْ قَوْمِهٖ مَا نَرٰىكَ اِلَّا بَشَرًا
مِّثْلَنَا وَمَا نَرٰىكَ اتَّبَعَكَ اِلَّا الَّذِيْنَ هُمْ اَرَاذِلُنَا بَادِیَ الرَّاْیِ ۚ وَمَا

था।[29] (उसने कहा,) "मैं तुम लोगों को साफ़-साफ़ ख़बरदार करता हूँ (26) कि अल्लाह के सिवा किसी की बन्दगी न करो, वरना मुझे डर है कि तुमपर एक दिन दर्दनाक अज़ाब आएगा।"[30] (27) जवाब में उसकी क़ौम के सरदार, जिन्होंने उसकी बात मानने से इनकार किया था, बोले, "हमारी नज़र में तो तुम इसके सिवा कुछ नहीं हो कि बस एक इनसान हो हम जैसे[31] और हम देख रहे हैं कि हमारी क़ौम में से बस उन लोगों ने, जो हमारे यहाँ गिरे-पड़े थे, बेसोचे-समझे तुम्हारी पैरवी अपना ली है[32] और हम कोई चीज़ भी

ज़ाहिर है कि जो शख़्स न ख़ुद रास्ता देखता है और न किसी ऐसे शख़्स की बात ही सुनता है जो उसे रास्ता बता रहा हो, वह ज़रूर कहीं ठोकर खाएगा और कहीं किसी बड़े हादिसे से दो-चार होगा। इसके बरख़िलाफ़ जो शख़्स ख़ुद भी रास्ता देख रहा हो और किसी सही रास्ता जाननेवाले की हिदायतों से भी फ़ायदा उठाता हो वह ज़रूर अपनी मंज़िल पर सलामती के साथ पहुँच जाएगा। बस यही फ़र्क़ उन लोगों के बीच भी है जिनमें से एक अपनी आँखों से भी कायनात में हक़ीक़त की निशानियों को देखता है और ख़ुदा के भेजे हुए रहनुमाओं की बात भी सुनता है, और दूसरा न दिल की आँखें खुली रखता है कि ख़ुदा की निशानियाँ उसे नज़र आएँ और न पैग़म्बरों की बात ही सुनकर देता है। किस तरह मुमकिन है कि ज़िन्दगी में इन दोनों का रवैया एक जैसा हो? और फिर क्या वजह है कि आख़िरकार उनके अंजाम में फ़र्क़ न हो?

29. मुनासिब होगा कि इस मौक़े पर सूरा-आराफ़, आयत-58 से 64 तक के हाशिए सामने रखे जाएँ।

30. यह वही बात है जो इस सूरा के शुरू में मुहम्मद (सल्ल॰) की ज़बान से अदा हुई है।

31. यह वही जहालत भरा एतिराज़ है जो मक्का के लोग मुहम्मद (सल्ल॰) के मुक़ाबले में पेश करते थे कि जो शख़्स हमारी ही तरह का एक मामूली इनसान है, खाता-पीता है, चलता-फिरता है, सोता और जागता है, बाल-बच्चे रखता है, आख़िर हम कैसे मान लें कि वह ख़ुदा की तरफ़ से पैग़म्बर बनाकर भेजा गया है। (देखें—सूरा-36 यासीन, हाशिया-11)

32. यह भी वही बात है जो मक्का के बड़े लोग और ऊँचे तबक़ेवाले मुहम्मद (सल्ल॰) के बारे में कहते थे कि इनके साथ है कौन? या तो कुछ सिरफिरे लड़के हैं, जिन्हें दुनिया का कुछ तजरिबा नहीं, या कुछ ग़ुलाम और निचले तबक़े के लोग हैं जो अक़्ल से कोरे और कमज़ोर अक़ीदेवाले होते हैं। (देखें—सूरा-6 अनआम, हाशिया-34-37; सूरा-10 यूनुस, हाशिया : 78)

نَرٰى لَكُمْ عَلَيْنَا مِنْ فَضْلٍ بَلْ نَظُنُّكُمْ كٰذِبِيْنَ ﴿٢٧﴾ قَالَ يٰقَوْمِ
اَرَءَيْتُمْ اِنْ كُنْتُ عَلٰى بَيِّنَةٍ مِّنْ رَّبِّيْ وَاٰتٰىنِيْ رَحْمَةً مِّنْ عِنْدِهٖ
فَعُمِّيَتْ عَلَيْكُمْ ؕ اَنُلْزِمُكُمُوْهَا وَاَنْتُمْ لَهَا كٰرِهُوْنَ ﴿٢٨﴾ وَيٰقَوْمِ لَآ
اَسْـَٔلُكُمْ عَلَيْهِ مَالًا ؕ اِنْ اَجْرِيَ اِلَّا عَلَى اللّٰهِ وَمَآ اَنَا بِطَارِدِ الَّذِيْنَ

ऐसी नहीं पाते जिसमें तुम लोग हमसे कुछ बढ़े हुए हो[33], बल्कि हम तो तुम्हें झूठा समझते हैं।" (28) उसने कहा, "ऐ मेरे क़ौमी भाइयो! ज़रा सोचो तो सही कि अगर मैं अपने रब की तरफ़ से एक खुली गवाही पर क़ायम था और फिर उसने मुझको अपनी ख़ास रहमत से भी नवाज़ दिया[34], मगर वह तुमको नज़र न आई, तो आख़िर हमारे पास क्या ज़रिआ है कि तुम मानना न चाहो और हम ज़बरदस्ती उसको तुम्हारे सिर थोप दें? (29) और ऐ मेरे क़ौमी भाइयो! मैं इस काम पर तुमसे कोई माल नहीं माँगता[35], मेरा बदला तो अल्लाह के ज़िम्मे है और मैं उन लोगों को धक्के देने से भी रहा जिन्होंने मेरी

---

33. यानी यह जो तुम कहते हो कि हमपर ख़ुदा की मेहरबानी है और उसकी रहमत है और वे लोग ख़ुदा के ग़ज़ब में मुब्तला हैं जिन्होंने हमारा रास्ता नहीं अपनाया है, तो इसकी कोई अलामत हमें नज़र नहीं आती। मेहरबानी अगर है तो हमपर है कि धन-दौलत और नौकर-चाकर रखते हैं और एक दुनिया हमारी सरदारी मान रही है। तुम टुटपुंजिए लोग आख़िर किस चीज़ में हमसे बढ़े हुए हो कि तुम्हें ख़ुदा का चहेता समझा जाए।

34. यह वही बात है जो अभी पिछले रुकूअ (आयत-7 से 24) में मुहम्मद (सल्ल॰) से कहलवाई जा चुकी है कि पहले मैं ख़ुद बाहरी दुनिया में और अपने अन्दर ख़ुदा की निशानियाँ देखकर तौहीद की हक़ीक़त तक पहुँच चुका था, फिर ख़ुदा ने अपनी रहमत (यानी वह्य) से मुझे नवाज़ा और उन हक़ीक़तों का सीधा इल्म मुझे दे दिया जिनपर मेरा दिल पहले से गवाही दे रहा था। इससे यह भी मालूम हुआ कि तमाम पैग़म्बर नुबूवत से पहले अपने ग़ौर व फ़िक्र से ग़ैब पर ईमान हासिल कर चुके होते थे, फिर अल्लाह तआला उनको नुबूवत का मनसब देते वक़्त उनको छिपी हक़ीक़तें आँखों से दिखाकर उनके ईमान को और पक्का कर देता था।

35. यानी मैं एक बे-ग़रज़ (निस्स्वार्थ) नसीहत करनेवाला हूँ। अपने किसी फ़ायदे के लिए नहीं, बल्कि तुम्हारे ही भले के लिए ये सारी मुश्किलें और तकलीफ़ें बरदाश्त कर रहा हूँ। तुम किसी ऐसे निजी फ़ायदे की निशानदेही नहीं कर सकते जो इस हक़ बात की दावत देने में और उसके लिए जानतोड़ मेहनतें करने और मुसीबतें झेलने में मेरे सामने हों। (देखें—सूरा-23 मोमिनून, हाशिया-70; सूरा-36 यासीन, हाशिया-17; सूरा-42 शूरा, हाशिया-41)

اٰمَنُوْا ۭ اِنَّهُمْ مُّلٰقُوْا رَبِّهِمْ وَلٰكِنِّيْٓ اَرٰىكُمْ قَوْمًا تَجْهَلُوْنَ ۝ وَيٰقَوْمِ
مَنْ يَّنْصُرُنِيْ مِنَ اللّٰهِ اِنْ طَرَدْتُّهُمْ ۭ اَفَلَا تَذَكَّرُوْنَ ۝ وَلَآ اَقُوْلُ
لَكُمْ عِنْدِيْ خَزَاۗىِٕنُ اللّٰهِ وَلَآ اَعْلَمُ الْغَيْبَ وَلَآ اَقُوْلُ اِنِّىْ مَلَكٌ وَّلَآ
اَقُوْلُ لِلَّذِيْنَ تَزْدَرِيْٓ اَعْيُنُكُمْ لَنْ يُّؤْتِيَهُمُ اللّٰهُ خَيْرًا ۭ اَللّٰهُ اَعْلَمُ بِمَا

बात मानी है, वे आप ही अपने रब के पास जानेवाले हैं[36], मगर मैं देखता हूँ कि तुम लोग नासमझी दिखा रहे हो। (30) और ऐ क़ौम! अगर मैं इन लोगों को धुतकार दूँ तो ख़ुदा की पकड़ से कौन मुझे बचाने आएगा? तुम लोगों की समझ में क्या इतनी बात भी नहीं आती? (31) और मैं तुमसे नहीं कहता कि मेरे पास अल्लाह के ख़ज़ाने हैं, न यह कहता हूँ कि मैं ग़ैब का इल्म रखता हूँ, न यह मेरा दावा है कि मैं फ़रिश्ता हूँ।[37] और यह भी मैं नहीं कह सकता कि जिन लोगों को तुम्हारी आँखें हिक़ारत (उपेक्षा) से देखती हैं, उन्हें अल्लाह ने कोई भलाई नहीं दी। उनके मन का हाल अल्लाह ही बेहतर जानता

36. यानी उनकी क़द्रो-क़ीमत जो कुछ भी है वह उनके रब को मालूम है और उसी के सामने जाकर वह खुलेगी। अगर ये क़ीमती हीरे हैं तो मेरे और तुम्हारे फेंक देने से पत्थर न हो जाएँगे, और अगर ये बेक़ीमत पत्थर हैं तो उनके मालिक को इख़्तियार है कि उन्हें जहाँ चाहे फेंके। (देखें—सूरा-6 अनआम, आयत-52; सूरा-18 कहफ़, आयत-28)

37. यह इस बात का जवाब है जो मुख़ालिफ़त करनेवालों ने कही थी कि हमें तो तुम बस अपने ही जैसे एक इनसान नज़र आते हो। इसपर हज़रत नूह (अलैहि.) फ़रमाते हैं कि वाक़ई मैं एक इनसान ही हूँ, मैंने इनसान के सिवा कुछ और होने का दावा कब किया था कि तुम मुझपर यह एतिराज़ करते हो। मेरा दावा जो कुछ है वह तो सिर्फ़ यह है कि ख़ुदा ने मुझे इल्म व अमल का सीधा रास्ता दिखाया है। इसकी आज़माइश तुम जिस तरह चाहो, कर लो। मगर इस दावे की आज़माइश का आख़िर यह कौन-सा तरीक़ा है कि कभी तुम मुझसे ग़ैब की ख़बरें पूछते हो, और कभी ऐसी-ऐसी अनोखी माँगें करते हो कि मानो ख़ुदा के ख़ज़ानों की सारी कुंजियाँ मेरे पास हैं, और कभी इस बात पर एतिराज़ करते हो कि मैं इनसानों की तरह खाता-पीता हूँ और चलता-फिरता हूँ, मानो मैंने फ़रिश्ता होने का दावा किया था। जिस आदमी ने अक़ीदे, अख़लाक़ और रहन-सहन में सही रहनुमाई का दावा किया है उससे इन चीज़ों के बारे में जो चाहो पूछ लो, मगर तुम अजीब लोग हो जो उससे पूछते हो कि फ़लाँ शख़्स की भैंस कटड़ा जनेगी या पड़िया। मानो इनसानी ज़िन्दगी के लिए अख़लाक़ और रहन-सहन के सही उसूल बताने का ताल्लुक़ इस बात से भी है कि भैंस के पेट में क्या है? (देखें—सूरा-6 अनआम, हाशिया-31, 32)

فِىٓ اَنۡفُسِهِمۡ ۖۚ اِنِّىۡۤ اِذًا لَّمِنَ الظّٰلِمِيۡنَ ﴿۳۱﴾ قَالُوۡا يٰنُوۡحُ قَدۡ جٰدَلۡتَنَا
فَاَكۡثَرۡتَ جِدَالَنَا فَاۡتِنَا بِمَا تَعِدُنَاۤ اِنۡ كُنۡتَ مِنَ الصّٰدِقِيۡنَ ﴿۳۲﴾ قَالَ
اِنَّمَا يَاۡتِيۡكُمۡ بِهِ اللّٰهُ اِنۡ شَآءَ وَمَاۤ اَنۡتُمۡ بِمُعۡجِزِيۡنَ ﴿۳۳﴾ وَلَا يَنۡفَعُكُمۡ
نُصۡحِىۡۤ اِنۡ اَرَدْتُّ اَنۡ اَنۡصَحَ لَـكُمۡ اِنۡ كَانَ اللّٰهُ يُرِيۡدُ اَنۡ يُّغۡوِيَكُمۡ ؕ هُوَ
رَبُّكُمۡ وَاِلَيۡهِ تُرۡجَعُوۡنَ ﴿۳۴﴾ اَمۡ يَقُوۡلُوۡنَ افۡتَرٰٮهُ ؕ قُلۡ اِنِ افۡتَرَيۡتُهٗ
فَعَلَىَّ اِجۡرَامِىۡ وَاَنَا بَرِىۡٓءٌ مِّمَّا تُجۡرِمُوۡنَ ﴿۳۵﴾ وَاُوۡحِىَ اِلٰى نُوۡحٍ اَنَّهٗ لَنۡ ع

है, अगर मैं ऐसा कहूँ तो ज़ालिम हूँगा।"

(32) आख़िरकार उन लोगों ने कहा कि, "ऐ नूह! तुमने हमसे झगड़ा किया और बहुत कर लिया, अब तो बस वह अज़ाब ले आओ जिसकी तुम हमें धमकी देते हो, अगर सच्चे हो।" (33) नूह ने जवाब दिया, "वह तो अल्लाह ही लाएगा अगर चाहेगा, और तुम इतना बलबूता नहीं रखते कि उसे रोक दो। (34) अब अगर मैं तुम्हारा कुछ भला करना भी चाहूँ तो मेरा भला चाहना तुम्हें कोई फ़ायदा नहीं दे सकता, जबकि अल्लाह ही ने तुम्हें भटका देने का इरादा कर लिया हो।[38] वही तुम्हारा रब है और उसी की तरफ़ तुम्हें पलटना है।"

(35) ऐ नबी! क्या ये लोग कहते हैं कि इस आदमी ने यह सब कुछ ख़ुद गढ़ लिया है? इनसे कहो, "अगर मैंने यह ख़ुद गढ़ा है तो मुझपर अपने जुर्म की ज़िम्मेदारी है, और जो जुर्म तुम कर रहे हो उसकी ज़िम्मेदारी से मैं बरी हूँ।"[39]

(36) नूह पर वह्य की गई कि तुम्हारी क़ौम में से जो लोग ईमान ला चुके, बस वे

38. यानी अगर अल्लाह ने तुम्हारी हठधर्मी, बुराई से मुहब्बत और भलाई से नफ़रत देखकर यह फ़ैसला कर लिया है कि तुम्हें सीधे रास्ते पर चलने का मुबारक मौक़ा न दे और जिन राहों में तुम ख़ुद भटकना चाहते हो उन्हीं में तुमको भटका दे तो अब तुम्हारी भलाई के लिए मेरी कोई कोशिश कामयाब नहीं हो सकती।

39. बात के अन्दाज़ से ऐसा महसूस होता है कि नबी (सल्ल॰) की ज़बान से हज़रत नूह (अलैहि) का यह क़िस्सा सुनते हुए मुख़ालिफ़त करनेवालों ने एतिराज़ किया होगा कि मुहम्मद (सल्ल॰) ये क़िस्से बना-बनाकर इसलिए पेश करता है कि उन्हें हमपर चस्पाँ करे। जो चोटें वह हमपर

يُّؤْمِنَ مِنْ قَوْمِكَ اِلَّا مَنْ قَدْ اٰمَنَ فَلَا تَبْتَئِسْ بِمَا كَانُوْا
يَفْعَلُوْنَ ۝٣٦ وَاصْنَعِ الْفُلْكَ بِاَعْيُنِنَا وَوَحْيِنَا وَلَا تُخَاطِبْنِيْ فِي الَّذِيْنَ
ظَلَمُوْا ۚ اِنَّهُمْ مُّغْرَقُوْنَ ۝٣٧ وَيَصْنَعُ الْفُلْكَ ۣ وَكُلَّمَا مَرَّ عَلَيْهِ مَلَاٌ

ला चुके, अब कोई माननेवाला नहीं है। उनके करतूतों पर ग़म खाना छोड़ो (37) और हमारी निगरानी में हमारी वह्य के मुताबिक़ एक नाव बनानी शुरू कर दो, और देखो जिन लोगों ने ज़ुल्म किया है, उनके लिए मुझसे कोई सिफ़ारिश न करना। ये सारे-के-सारे अब डूबनेवाले हैं।[40]

(38) नूह नाव बना रहा था और उसकी क़ौम के सरदारों में से जो कोई उसके पास

सीधे-सीधे नहीं करना चाहता उनके लिए एक क़िस्सा गढ़ता है और इस तरह "दूसरों के क़िस्सों" के बहाने हमपर चोट करता है। इसलिए बात के सिलसिले को तोड़कर उनके एतिराज़ का जवाब इस जुमले में दिया गया।

सच्चाई यह है कि घटिया क़िस्म के लोगों का ज़ेहन हमेशा बात के बुरे पहलू की तरफ़ जाया करता है और अच्छाई से उन्हें कोई दिलचस्पी नहीं होती कि बात के अच्छे पहलू पर उनकी नज़र जा सके। एक शख़्स ने अगर कोई हिक्मत और समझदारी की बात कही है या वह तुम्हें कोई फ़ायदेमन्द सबक़ दे रहा है या तुम्हारी किसी ग़लती पर तुमको ख़बरदार कर रहा है तो उससे फ़ायदा उठाओ और अपनी इस्लाह करो। मगर घटिया आदमी हमेशा इसमें बुराई का कोई ऐसा पहलू तलाश करेगा जिससे हिक्मत और नसीहत पर पानी फेर दे और न सिर्फ़ ख़ुद अपनी बुराई पर क़ायम रहे, बल्कि बतानेवाले के ज़िम्मे भी उल्टी कुछ बुराई लगा दे। अच्छी-से-अच्छी नसीहत भी बेकार की जा सकती है अगर सुननेवाला उसे ख़ैरख़ाही के बजाए 'चोट' के मानी में ले ले और उसका ज़ेहन अपनी ग़लती जानने और महसूस करने के बजाए बुरा मानने की तरफ़ चल पड़े। फिर इस क़िस्म के लोग हमेशा अपनी सोच की बुनियाद एक बुनियादी बदगुमानी पर रखते हैं। जिस बात के सचमुच हक़ीक़त होने और एक बनावटी दास्तान होने का एक जैसा इमकान हो, मगर वह ठीक-ठीक तुम्हारे हाल पर चस्पाँ हो रही हो और उसमें तुम्हारी किसी ग़लती की निशानदेही होती हो, तो तुम एक अक़्लमन्द आदमी होगे अगर उसे एक सच्ची हक़ीक़त समझकर उसके सीख देनेवाले पहलू से फ़ायदा उठाओगे, और सिर्फ़ एक बदगुमान और टेढ़ी नज़र के आदमी होगे अगर किसी सुबूत के बग़ैर यह इलज़ाम लगा दोगे कि कहनेवाले ने सिर्फ़ हमपर चस्पाँ करने के लिए यह क़िस्सा गढ़ लिया है। इस वजह से यह फ़रमाया गया कि अगर यह दास्तान मैंने गढ़ी है तो अपने जुर्म का मैं ज़िम्मेदार हूँ, लेकिन जिस जुर्म को तुम कर रहे हो वह तो अपनी जगह क़ायम है और उसकी ज़िम्मेदारी में तुम ही पकड़े जाओगे? न कि मैं।

40. इससे मालूम हुआ कि जब नबी का पैग़ाम किसी क़ौम को पहुँच जाए तो उसे सिर्फ़ उस वक़्त

مِّنْ قَوْمِهٖ سَخِرُوْا مِنْهُ ۭ قَالَ اِنْ تَسْخَرُوْا مِنَّا فَاِنَّا نَسْخَرُ مِنْكُمْ كَمَا
تَسْخَرُوْنَ ۝۳۸ فَسَوْفَ تَعْلَمُوْنَ ۙ مَنْ يَّاْتِيْهِ عَذَابٌ يُّخْزِيْهِ وَيَحِلُّ عَلَيْهِ
عَذَابٌ مُّقِيْمٌ ۝۳۹ حَتّٰٓى اِذَا جَاۗءَ اَمْرُنَا وَفَارَ التَّنُّوْرُ ۙ قُلْنَا احْمِلْ فِيْهَا

से गुज़रता था, वह उसका मज़ाक़ उड़ाता था। उसने कहा, "अगर तुम हमपर हँसते हो तो हम भी तुमपर हँस रहे हैं। (39) बहुत जल्द तुम्हें ख़ुद मालूम हो जाएगा कि किसपर वह अज़ाब आता है जो उसे रुसवा कर देगा और किसपर वह बला टूट पड़ती है जो टाले न टलेगी।"[41]

(40) यहाँ तक कि जब हमारा हुक्म आ गया और वह तन्नूर उबल पड़ा[42] तो हमने

तक मुहलत मिलती है जब तक उसमें कुछ भले आदमियों के निकल आने का इमकान बाक़ी हो। मगर जब उसके अच्छे हिस्से सब निकल चुकते हैं और वह सिर्फ़ ख़राब लोगों का गरोह ही रह जाती है तो अल्लाह उस क़ौम को फिर कोई मुहलत नहीं देता और उसकी रहमत का तक़ाज़ा यही होता है कि सड़े हुए फलों के इस टोकरे को दूर फेंक दिया जाए, ताकि वह अच्छे फलों को भी ख़राब न कर दे। फिर उसपर रहम खाना सारी दुनिया के साथ और आनेवाली इनसानी नस्लों के साथ बेरहमी है।

41. यह एक अजीब मामला है, जिसपर ग़ौर करने से मालूम होता है कि इनसान दुनिया के ज़ाहिर से किस क़द्र धोखा खाता है। जब नूह (अलैहि॰) दरिया से बहुत दूर सूखी जगह पर अपना जहाज़ बना रहे होंगे तो हक़ीक़त में लोगों को यह एक बहुत ही मज़ाकिया काम लगता होगा और वे हँस-हँसकर कहते होंगे कि बड़े मियाँ की दीवानगी आख़िर को यहाँ तक पहुँची कि अब आप सूखी जगह पर जहाज़ चलाएँगे। उस वक़्त किसी के ख़ाब और ख़याल में भी यह बात न आ सकती होगी कि कुछ दिनों बाद यहाँ सचमुच जहाज़ चलेगा। वह इस काम को हज़रत नूह (अलैहि॰) के दिमाग़ की ख़राबी का एक खुला सुबूत ठहराते होंगे और एक-एक से कहते होंगे कि अगर पहले तुम्हें इस शख़्स के पागलपन में कुछ शक था तो लो अब अपनी आँखों से देख लो कि यह क्या हरकत कर रहा है। लेकिन जो शख़्स हक़ीक़त का इल्म रखता था और जिसे मालूम था कि कल यहाँ जहाज़ की क्या ज़रूरत पड़नेवाली है, उसे उन लोगों की जहालत और बेख़बरी पर और फिर उनके बेवक़ूफ़ी भरे इत्मीनान पर उल्टी हँसी आती होगी और वह कहता होगा कि कितने नादान हैं ये लोग कि शामत इनके सिर पर तुली खड़ी है, मैं इन्हें ख़बरदार कर चुका हूँ कि वह बस आने ही वाली है और इनकी आँखों के सामने उससे बचने की तैयारी भी कर रहा हूँ, मगर ये इत्मीनान से बैठे हैं और उल्टा मुझे दीवाना समझ रहे हैं। इस मामले को अगर फैलाकर देखा जाए तो मालूम होगा कि दुनिया के ज़ाहिर और महसूस पहलू के लिहाज़ से

مِنْ كُلٍّ زَوْجَيْنِ اثْنَيْنِ وَاَهْلَكَ اِلَّا مَنْ سَبَقَ عَلَيْهِ الْقَوْلُ وَمَنْ

कहा, "हर क़िस्म के जानवरों का एक-एक जोड़ा नाव में रख लो, अपने घरवालों को भी– सिवाए उन लोगों के जिनकी निशानदेही पहले की जा चुकी है[43]– उसमें सवार करा दो और उन लोगों को भी बिठा लो जो ईमान लाए हैं।"[44] और थोड़े ही लोग थे

अक़्लमन्दी और बेवक़ूफ़ी का जो पैमाना क़ायम किया जाता है वह उस पैमाने से कितना ज़्यादा अलग होता है जो हक़ीक़त के इल्म के लिहाज़ से क़रार पाता है। ज़ाहिरी चीज़ों ही को देखनेवाला आदमी जिस चीज़ को इन्तिहाई अक़्लमन्दी समझता है वह हक़ीक़त को पहचाननेवाले आदमी की निगाह में इन्तिहाई बेवक़ूफ़ी होती है, और ज़ाहिर को देखनेवाले के नज़दीक जो चीज़ बिलकुल बेकार, सरासर दीवानगी और बिलकुल मज़ाकिया बात होती है, हक़ीक़त को पहचाननेवाले के लिए वही सबसे ज़्यादा अक़्लमन्दी, इन्तिहाई संजीदगी और ठीक अक़्ल के तक़ाज़े के मुताबिक़ होती है।

42. इसके बारे में क़ुरआन की तफ़सीर करनेवाले आलिमों ने अलग-अलग बातें कही हैं। मगर हमारे नज़दीक सही वही है जो क़ुरआन के साफ़ अलफ़ाज़ से समझ में आता है कि तूफ़ान की शुरुआत एक ख़ास तन्दूर से हुई जिसके नीचे से पानी की धार फूट पड़ी, फिर एक तरफ़ आसमान से मूसलाधार बारिश शुरू हो गई और दूसरी तरफ़ ज़मीन में जगह-जगह से पानी के चश्मे फूटने लगे। यहाँ सिर्फ़ तन्दूर के उबल पड़ने का ज़िक्र है और आगे चलकर बारिश की तरफ़ भी इशारा है। मगर सूरा-54 क़मर में इसकी तफ़सील दी गई है कि "हमने आसमान के दरवाज़े खोल दिए जिनसे लगातार बारिश बरसने लगी और ज़मीन को फाड़ दिया गया कि हर तरफ़ चश्मे फूट निकले और ये दोनों तरह के पानी उस काम को पूरा करने के लिए मिल गए जो मुक़द्दर कर दिया गया था।" साथ ही लफ्ज 'तन्नूर' पर अलिफ़ लाम दाख़िल करके "अत-तन्नूर" (अल-तन्नूर) कहने से यह ज़ाहिर होता है कि अल्लाह तआला ने एक ख़ास तन्दूर (तन्नूर) को इस काम की शुरुआत के लिए तय कर दिया जो इशारा पाते ही ठीक अपने वक़्त पर उबल पड़ा और बाद में तूफ़ानवाले तन्दूर की हैसियत से जाना जाने लगा। सूरा-23 मोमिनून, आयत-27 में साफ़ बताया गया है कि इस तन्दूर को पहले से नामज़द कर दिया गया था।

43. यानी तुम्हारे घर के जिन लोगों के बारे में पहले बताया जा चुका है कि वे हक़ के इनकारी हैं और अल्लाह तआला की रहमत के हक़दार नहीं हैं, इन्हें कश्ती में न बिठाओ। शायद ये दो ही लोग थे। एक हज़रत नूह (अलैहि) का बेटा जिसके डूब जाने का ज़िक्र अभी आनेवाला है। दूसरी हज़रत नूह (अलैहि॰) की बीवी जिसका ज़िक्र सूरा-66 तहरीम में आया है। हो सकता है ख़ानदान के दूसरे लोग भी हों मगर क़ुरआन में उनका ज़िक्र नहीं है।

44. इससे उन तारीख़दानों (इतिहासकारों) और हसब-नसब (वंशावली) के जानकारों के नज़रिए का ग़लत होना साबित होता है जो तमाम इनसानी नस्लों का सिलसिला हज़रत नूह (अलैहि॰) के

اٰمَنَ ؕ وَمَاۤ اٰمَنَ مَعَهٗۤ اِلَّا قَلِيْلٌ ۝٤٠ وَقَالَ ارْكَبُوْا فِيْهَا بِسْمِ اللّٰهِ
مَجْرٖٮهَا وَمُرْسٰٮهَا ؕ اِنَّ رَبِّيْ لَغَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ۝٤١ وَهِيَ تَجْرِيْ بِهِمْ فِيْ مَوْجٍ
كَالْجِبَالِ ۚ وَنَادٰى نُوْحُ ۨابْنَهٗ وَكَانَ فِيْ مَعْزِلٍ يّٰبُنَيَّ ارْكَبْ مَّعَنَا وَلَا
تَكُنْ مَّعَ الْكٰفِرِيْنَ ۝٤٢ قَالَ سَاٰوِيْۤ اِلٰى جَبَلٍ يَّعْصِمُنِيْ مِنَ الْمَآءِ ؕ
قَالَ لَا عَاصِمَ الْيَوْمَ مِنْ اَمْرِ اللّٰهِ اِلَّا مَنْ رَّحِمَ ۚ وَحَالَ بَيْنَهُمَا الْمَوْجُ

जो नूह के साथ ईमान लाए थे। (41) नूह ने कहा, “सवार हो जाओ इसमें, अल्लाह ही के नाम से है इसका चलना भी और इसका ठहरना भी। मेरा रब बड़ा माफ़ करनेवाला और रहम करनेवाला है।”45

(42) नाव इन लोगों को लिए चली जा रही थी और एक-एक लहर पहाड़ की तरह उठ रही थी। नूह का बेटा दूर फ़ासले पर था। नूह ने पुकारकर कहा, “बेटा! हमारे साथ सवार हो जा, इनकार करनेवालों के साथ न रह।” (43) उसने पलटकर जवाब दिया, “मैं अभी एक पहाड़ पर चढ़ा जाता हूँ जो मुझे पानी से बचा लेगा।” नूह ने कहा, “आज

तीन बेटों तक पहुँचाते हैं। दरअसल इसराइली रिवायतों ने यह ग़लतफ़हमी फैला दी है कि इस तूफ़ान से हज़रत नूह और उनके तीन बेटों और उनकी बीवियों के सिवा कोई न बचा था (देखें—बाइबल, उत्पत्ति, 6:18, 7:7, 9:1, 9:19)। लेकिन क़ुरआन कई जगहों पर इसको साफ़-साफ़ बयान करता है कि हज़रत नूह के ख़ानदान के सिवा उनकी क़ौम की एक अच्छी-ख़ासी तादाद को भी, अगरचे वह थोड़ी थी, अल्लाह ने तूफ़ान से बचा लिया था। साथ ही क़ुरआन बाद की इनसानी नस्लों को सिर्फ़ नूह (अलैहि॰) की औलाद नहीं, बल्कि उन सब लोगों की औलाद क़रार देता है जिन्हें अल्लाह तआला ने उनके साथ कश्ती में बिठाया था, “उनकी औलाद जिन्हें हमने नूह के साथ सवार किया था।” (सूरा-17 बनी-इसराईल, आयत-3) और “आदम की और उन लोगों की औलाद में से जिन्हें हमने नूह के साथ सवार किया था।” (सूरा-19 मरयम, आयत- 58)

45. यह है ईमानवाले की अस्ली शान। वह आलमे-अस्बाब (कारण जगत्) में सारी तदबीरें फ़ितरत के क़ानून के मुताबिक़ इसी तरह अपनाता है जिस तरह दुनियावाले करते हैं, मगर उसका भरोसा उन तदबीरों पर नहीं, बल्कि अल्लाह पर होता है और वह ख़ूब समझता है कि उसकी कोई तदबीर न तो ठीक शुरू हो सकती है, न ठीक चल सकती है और न आख़िरी मंज़िल तक पहुँच सकती है जब तक अल्लाह की मेहरबानी और उसका रहम व करम शामिल न हो।

فَكَانَ مِنَ الْمُغْرَقِيْنَ ﴿٤٣﴾ وَقِيْلَ يٰٓاَرْضُ ابْلَعِىْ مَآءَكِ وَيٰسَمَآءُ اَقْلِعِىْ
وَغِيْضَ الْمَآءُ وَقُضِىَ الْاَمْرُ وَاسْتَوَتْ عَلَى الْجُوْدِىِّ وَقِيْلَ بُعْدًا
لِّلْقَوْمِ الظّٰلِمِيْنَ ﴿٤٤﴾ وَنَادٰى نُوْحٌ رَّبَّهٗ فَقَالَ رَبِّ اِنَّ ابْنِىْ مِنْ اَهْلِىْ

कोई चीज़ अल्लाह के हुक्म से बचानेवाली नहीं है, सिवाए इसके कि अल्लाह ही किसी पर रहम करे।" इतने में एक लहर दोनों के बीच ओट बन गई और वह भी डूबनेवालों में शामिल हो गया।

(44) हुक्म हुआ, "ऐ ज़मीन! अपना सारा पानी निगल जा और ऐ आसमान! रुक जा।" चुनाँचे पानी ज़मीन में बैठ गया, फ़ैसला चुका दिया गया, नाव जूदी पर टिक गई[46], और कह दिया गया कि दूर हुई ज़ालिमों की क़ौम!

(45) नूह ने अपने रब को पुकारा। कहा, "ऐ रब! मेरा बेटा मेरे घरवालों में से है

46. जूदी पहाड़ कुर्दिस्तान के इलाक़े में इब्ने-उमर नाम के जज़ीरे के उत्तर-पूर्व की तरफ़ है। बाइबल में इस कश्ती के ठहरने की जगह अरारात बताई गई है जो आरमीनिया के एक पहाड़ का नाम भी है और पहाड़ों के एक सिलसिले का नाम भी। पहाड़ों के सिलसिले के मानी में जिसको अरारात कहते हैं वह आरमीनिया की ऊँचाई से शुरू होकर दक्षिण में कुर्दिस्तान तक चलता है और जूदी पहाड़ इसी सिलसिले का एक पहाड़ है जो आज भी जूदी ही के नाम से मशहूर है। क़दीम तारीख़ (प्राचीन इतिहास) में कश्ती के ठहरने की यही जगह बताई गई है। चुनाँचे ईसा (अलैहि॰) से ढाई सौ साल पहले बाबिल के एक मज़हबी पेशवा बेरासुस (Berasus) ने पुरानी कलदानी रिवायतों की बिना पर अपने देश का जो इतिहास लिखा है उसमें वह नूह की कश्ती के ठहरने की जगह जूदी ही बताता है। अरस्तू (Aristotle) का शार्गिद अबीडेनुस (Abydenus) भी अपने इतिहास में उसकी तसदीक़ करता है। साथ ही वह अपने ज़माने का हाल बयान करता है कि इराक़ में बहुत-से लोगों के पास उस कश्ती के टुकड़े महफ़ूज़ हैं जिन्हें वे घोल-घोलकर बीमार लोगों को पिलाते हैं।

यह तूफ़ान जिसका ज़िक्र किया गया है, पूरी दुनिया में आनेवाला तूफ़ान था या उस ख़ास इलाक़े में आया था जहाँ हज़रत नूह (अलैहि॰) की क़ौम आबाद थी? यह एक ऐसा सवाल है जिसका फ़ैसला आज तक नहीं हुआ। इसराईली रिवायतों की बुनियाद पर आम ख़याल यही है कि यह तूफ़ान पूरी ज़मीन पर आया था (उत्पत्ति, 7:18 से 24), मगर क़ुरआन में यह बात कहीं नहीं कही गई है। क़ुरआन के इशारों से यह ज़रूर मालूम होता है कि बाद की इनसानी नस्लें उन्हीं लोगों की औलाद से हैं जो नूह (अलैहि॰) के ज़माने में आनेवाले तूफ़ान से बचा लिए गए थे, लेकिन इससे यह लाज़िम नहीं होता कि यह तूफ़ान पूरी ज़मीन पर आया हो, क्योंकि यह

وَاِنَّ وَعۡدَكَ الۡحَـقُّ وَاَنۡتَ اَحۡكَمُ الۡحٰكِمِيۡنَ ۝٤٥ قَالَ يٰـنُوۡحُ اِنَّهٗ لَـيۡسَ
مِنۡ اَهۡلِكَ‌ۚ اِنَّهٗ عَمَلٌ غَيۡرُ صَالِحٍ‌ ‌ۖ فَلَا تَسۡـئَلۡنِ مَا لَـيۡسَ لَـكَ بِهٖ عِلۡمٌ‌ؕ

और तेरा वादा सच्चा है[47] और तू सब हाकिमों से बड़ा और बेहतर हाकिम है।"[48]
(46) जवाब में कहा गया, "ऐ नूह! वह तेरे घरवालों में से नहीं है, वह तो एक बिगड़ा हुआ काम है[49], इसलिए तू इस बात की मुझसे दरख़ास्त न कर जिसकी हक़ीक़त तू नहीं

बात इस तरह भी सही हो सकती है कि उस वक़्त तक इनसानों की आबादी उसी इलाक़े तक महदूद रही हो जहाँ तूफ़ान आया था, और तूफ़ान के बाद जो नस्लें पैदा हुई हों वे धीरे-धीरे पूरी दुनिया में फैल गई हों। इस ख़याल की ताईद दो चीज़ों से होती है। एक यह कि दजला और फ़ुरात की सरज़मीन में तो एक ज़बरदस्त तूफ़ान का सुबूत तरीख़ी इबारतों से, आसारे-क़दीमा (प्राचीन अवशेषों) से और भौगोलिक आँकड़ों से मिलता है, लेकिन ज़मीन के सारे हिस्सों में ऐसा कोई सुबूत नहीं मिलता जिससे पूरी दुनिया में आनेवाले किसी तूफ़ान का यक़ीन किया जा सके। दूसरे यह कि ज़मीन की ज़्यादातर क़ौमों में एक बड़े तूफ़ान की रिवायतें पुराने ज़माने से मशहूर हैं, यहाँ तक कि आस्ट्रेलिया, अमेरिका और न्यूगिनी जैसे दूर-दराज़ इलाक़ों की पुरानी रिवायतों में भी इसका ज़िक्र मिलता है। इससे यह नतीजा निकाला जा सकता है कि किसी वक़्त इन सब क़ौमों के बाप-दादा एक ही इलाक़े में आबाद होंगे, जहाँ यह तूफ़ान आया था और फिर जब उनकी नस्लें ज़मीन के अलग-अलग हिस्सों में फैलीं तो ये रिवायतें उनके साथ गईं। (देखें—सूरा-7 आराफ़, हाशिया-47)

47. यानी तूने वादा किया था कि मेरे घरवालों को इस तबाही से बचा लेगा, तो मेरा बेटा भी मेरे घरवालों ही में से है, लिहाज़ा उसे भी बचा ले।

48. यानी तेरा फ़ैसला आख़िरी फ़ैसला है जिसकी कोई अपील नहीं। और तू जो फ़ैसला भी करता है ख़ालिस इल्म और पूरे इनसाफ़ के साथ करता है।

49. यह ऐसा ही है जैसे एक शख़्स के जिस्म का कोई हिस्सा सड़ गया हो और डॉक्टर ने उसको काट फेंकने का फ़ैसला किया हो। अब वह रोगी डॉक्टर से कहता है कि यह तो मेरे जिस्म का एक हिस्सा है, इसे क्यों काटते हो? और डॉक्टर उसके जवाब में कहता है कि यह तुम्हारे जिस्म का हिस्सा नहीं है, क्योंकि यह सड़ चुका है। इस जवाब का मतलब यह न होगा कि सचमुच वह सड़ा हुआ हिस्सा ज़िस्म से कोई ताल्लुक़ नहीं रखता, बल्कि इसका मतलब दरअस्ल यह होगा कि तुम्हारे ज़िस्म के लिए जिन अंगों (हिस्सों) की ज़रूरत हैं वे तन्दुरुस्त और काम करनेवाले अंग हैं, न कि सड़े हुए अंग जो ख़ुद भी किसी काम के न हों और बाक़ी जिस्म को भी ख़राब कर देनेवाले हों। लिहाज़ा जो अंग बिगड़ चुका है वह अब उस मक़सद के लिहाज़ से तुम्हारे जिस्म का एक हिस्सा नहीं रहा जिसके लिए अंगों से जिस्म का ताल्लुक़ ज़रूरी होता है। बिलकुल इसी तरह एक नेक बाप से यह कहना कि यह बेटा तुम्हारे घरवालों में से नहीं है;

إِنِّىٓ أَعِظُكَ أَن تَكُونَ مِنَ ٱلْجَٰهِلِينَ ۝٤٦ قَالَ رَبِّ إِنِّىٓ أَعُوذُ بِكَ أَنْ

जानता। मैं तुझे नसीहत करता हूँ कि अपने आपको जाहिलों की तरह न बना ले।"[50]
(47) नूह ने फ़ौरन कहा, "ऐ मेरे रब! मैं तेरी पनाह माँगता हूँ इससे कि वह चीज़ तुझसे

क्योंकि अख़लाक़ और अमल के लिहाज़ से बिगड़ चुका है, यह मानी नहीं रखता कि उसके बेटा होने का इनकार किया जा रहा है, बल्कि इसका मतलब सिर्फ़ यह है कि यह बिगड़ा हुआ इनसान तुम्हारे नेक ख़ानदान का मेम्बर नहीं है। वह तुम्हारे नसबी ख़ानदान का एक मेम्बर हो तो हुआ करे, मगर तुम्हारे अख़लाक़ी ख़ानदान से उसका कोई रिश्ता नहीं। और आज जो फ़ैसला किया जा रहा है वह नस्ली या क़ौमी झगड़े का नहीं है कि एक नस्लवाले बचाए जाएँ और दूसरी नस्लवाले तबाह कर दिए जाएँ, बल्कि यह कुफ़्र और ईमान के झगड़े का फ़ैसला है जिसमें सिर्फ़ नेक लोग बचाए जाएँगे और बिगड़े हुए लोग मिटा दिए जाएँगे।

बेटे को बिगड़ा हुआ काम कहकर एक और अहम हक़ीक़त की तरफ़ भी ध्यान दिलाया गया है। ज़ाहिर को देखनेवाला आदमी औलाद को सिर्फ़ इसलिए पाल-पोसकर बड़ा करता है और उससे प्यार करता है कि वह उसके ख़ून से या उसके पेट से पैदा हुई है, इसका लिहाज़ किए बग़ैर कि वह नेक हो या नेक न हो। लेकिन ईमानवाले की निगाह तो हक़ीक़त पर होनी चाहिए। उसे तो औलाद को इस नज़र से देखना चाहिए कि ये कुछ इनसान हैं जिनको अल्लाह तआला ने फ़ितरी तरीक़े से मेरे सिपुर्द किया है, ताकि उनको पाल-पोसकर और तरबियत देकर उस मक़सद के लिए तैयार करूँ जिसके लिए अल्लाह ने दुनिया में इनसान को पैदा किया है। अब अगर उसकी तमाम कोशिशों और मेहनतों के बावजूद कोई शख़्स जो उसके घर पैदा हुआ था, उस मक़सद के लिए तैयार न हो सका और अपने उस रब ही का वफ़ादार ख़ादिम न बना जिसने उसको ईमानवाले बाप के हवाले किया था, तो उस बाप को यह समझना चाहिए कि उसकी सारी मेहनत और कोशिश बेकार हो गई। फिर कोई वजह नहीं कि ऐसी औलाद से उसे कोई दिली लगाव हो।

फिर जब यह मामला औलाद जैसी सबसे प्यारी चीज़ के साथ है तो दूसरे रिश्तेदारों के बारे में ईमानवाले का नज़रिया जो कुछ हो सकता है वह ज़ाहिर है। ईमान एक ऐसी सिफ़त है जिसका ताल्लुक़ आदमी की सोच और उसके अख़लाक़ से है। ईमानवाला इसी सिफ़त के लिहाज़ से ईमानवाला कहलाता है। दूसरे इनसानों के साथ ईमानवाला होने की हैसियत से उसका कोई रिश्ता सिवाए अख़लाक़ी और ईमानी रिश्ते के नहीं है। हाड़-मांस का जिस्म रखनेवाले उसके रिश्तेदार अगर इस सिफ़त में उसके साथ शरीक हैं तो यक़ीनन वे उसके रिश्तेदार हैं, लेकिन अगर वे इस सिफ़त से ख़ाली हैं तो मोमिन सिर्फ़ गोश्त और खाल की हद तक उनसे ताल्लुक़ रखेगा, उसका दिली और रूही ताल्लुक़ उनसे नहीं हो सकता और अगर ईमान व कुफ़्र की कशमकश में वे ईमानवाले के मुक़ाबले में आएँ तो उसके लिए वे और अजनबी हक़ के इनकारी बराबर होंगे।

50. इस बात को देखकर कोई शख़्स यह गुमान न करे कि हज़रत नूह (अलैहि॰) के अन्दर ईमान की रूह की कमी थी, या उनके ईमान में जाहिलियत का कोई असर पाया जाता था। अस्ल

اَسْـَٔلَكَ مَا لَيْسَ لِيْ بِهٖ عِلْمٌ ؕ وَاِلَّا تَغْفِرْ لِيْ وَتَرْحَمْنِيْٓ اَكُنْ مِّنَ
الْخٰسِرِيْنَ ۞ قِيْلَ يٰنُوْحُ اهْبِطْ بِسَلٰمٍ مِّنَّا وَبَرَكٰتٍ عَلَيْكَ وَعَلٰٓى

मागूँ जिसका मुझे इल्म नहीं।[50अ] अगर तूने मुझे माफ़ न किया और रहम न किया तो मैं बरबाद हो जाऊँगा।"[51]

(48) हुक्म हुआ, "ऐ नूह! उतर जा[52], हमारी तरफ़ से सलामती और बरकतें हैं

बात यह है कि पैग़म्बर भी इनसान ही होते हैं, और कोई इनसान भी इतनी क़ुदरतवाला नहीं हो सकता कि हर वक़्त उस सबसे बुलंद मेआरे-कमाल पर क़ायम रहे जो एक ईमानवाले के लिए मुक़र्रर किया गया है। कई बार किसी नाज़ुक नफ़सियाती मौक़े पर नबी जैसे ऊँचे दर्जे के इनसान पर भी थोड़ी देर के लिए उसकी इनसानी कमज़ोरी का असर हो जाता है। लेकिन ज्यों ही उसे यह एहसास होता है, या अल्लाह तआला की तरफ़ से एहसास करा दिया जाता है कि उसका क़दम उस मेआर से नीचे जा रहा है, जो उसके लिए तय किया गया, वह फ़ौरन तौबा करता है और अपनी ग़लती को सुधार लेने में उसे एक लम्हे की भी देर नहीं होती। हज़रत नूह (अलैहि०) की अख़लाक़ी बुलन्दी का इससे बड़ा सुबूत और क्या हो सकता है कि अभी जान-जवान बेटा आँखों के सामने डूबा है और उस मंज़र से कलेजा मुँह को आ रहा है, लेकिन जब अल्लाह तआला उन्हें ख़बरदार करता है कि जिस बेटे ने हक़ (सत्य) को छोड़कर बातिल (असत्य) का साथ दिया उसको सिर्फ़ इसलिए अपना समझना कि ये तुम्हारे ख़ून से पैदा हुआ है, सिर्फ़ एक जाहिलियत का जज़्बा है, तो वे फ़ौरन अपने दिल के ज़ख़्म से बेपरवाह होकर उस अंदाज़ में सोचने लगते हैं जो इस्लाम चाहता है।

50.अ़ यानी ऐसी दरख़ास्त करूँ जिसके सही होने का मुझे इल्म नहीं है।

51. नूह (अलैहि०) के बेटे का यह क़िस्सा बयान करके अल्लाह तआला ने बहुत ही असरदार अंदाज़ में यह बताया है कि उसका इनसाफ़ कितना बेलाग (निष्पक्ष) और उसका फ़ैसला कैसा दो टूक होता है। मक्का के मुशरिक लोग यह समझते थे कि हम चाहे कैसे ही काम करें, मगर हमपर ख़ुदा का ग़ज़ब नहीं आ सकता; क्योंकि हम हज़रत इबराहीम की औलाद और फ़ुलाँ-फ़ुलाँ देवियों और देवताओं से नाता रखते हैं। यहूदियों और ईसाइयों के भी ऐसे ही कुछ गुमान थे और हैं। और बहुत-से बिगड़े हुए मुसलमान भी इस तरह के झूठे भरोसों पर तकिया किए हुए हैं कि हम फ़ुलाँ हज़रत की औलाद और फ़ुलाँ हज़रत का दामन थामे हुए हैं, उनकी सिफ़ारिश हमको ख़ुदा के इनसाफ़ से बचा लेगी, लेकिन यहाँ यह मंज़र दिखाया गया है कि एक निहायत बुलन्द मर्तबेवाला पैग़म्बर अपनी आँखों के सामने अपने जिगर के टुकड़े (बेटे) को डूबते हुए देखता है और तड़पकर बेटे की माफ़ी के लिए दरख़ास्त करता है, लेकिन अल्लाह के दरबार से उल्टी उसपर डाँट पड़ जाती है और बाप की पैग़म्बरी भी एक बद-अमल बेटे को अज़ाब से नहीं बचा सकती।

52. यानी उस पहाड़ से जिसपर कश्ती ठहरी थी।

أُمَمٍ مِّمَّنْ مَّعَكَ ۚ وَأُمَمٌ سَنُمَتِّعُهُمْ ثُمَّ يَمَسُّهُم مِّنَّا عَذَابٌ أَلِيمٌ ﴿٤٨﴾
تِلْكَ مِنْ أَنبَاءِ الْغَيْبِ نُوحِيهَا إِلَيْكَ ۖ مَا كُنتَ تَعْلَمُهَا أَنتَ وَلَا
قَوْمُكَ مِن قَبْلِ هَٰذَا ۖ فَاصْبِرْ ۖ إِنَّ الْعَاقِبَةَ لِلْمُتَّقِينَ ﴿٤٩﴾ وَإِلَىٰ عَادٍ
أَخَاهُمْ هُودًا ۚ قَالَ يَا قَوْمِ اعْبُدُوا اللَّهَ مَا لَكُم مِّنْ إِلَٰهٍ غَيْرُهُ ۖ إِنْ
أَنتُمْ إِلَّا مُفْتَرُونَ ﴿٥٠﴾ يَا قَوْمِ لَا أَسْأَلُكُمْ عَلَيْهِ أَجْرًا ۖ إِنْ أَجْرِيَ إِلَّا

ع

तुझपर और उन गरोहों पर जो तेरे साथ हैं, और कुछ गरोह ऐसे भी हैं जिनकों हम कुछ मुद्दत तक जिन्दगी का सामान बख़्शेंगे फिर उन्हें हमारी तरफ़ से दर्दनाक अज़ाब पहुँचेगा।"

(49) ऐ नबी! ये ग़ैब की ख़बरें हैं जो हम तुम्हारी तरफ़ वह्य कर रहे हैं। इससे पहले न तुम उनको जानते थे और न तुम्हारी क़ौम। तो सब्र करो, आख़िरी अंजाम परहेज़गारों ही के हक़ में है।[53]

(50) और आद की तरफ़ हमने उनके भाई हूद को भेजा।[54] उसने कहा, "ऐ मेरे क़ौमी भाइयो! अल्लाह की बन्दगी करो। तुम्हारा कोई ख़ुदा उसके सिवा नहीं है। तुमने सिर्फ़ झूठ गढ़ रखे हैं।[55] (51) ऐ मेरे क़ौमी भाइयो! इस काम पर मैं तुमसे कोई बदला

53. यानी जिस तरह नूह (अलैहि॰) और उनके साथियों ही का आख़िरकार बोल-बाला हुआ, उसी तरह तुम्हारा और तुम्हारे साथियों का भी होगा। ख़ुदा का क़ानून यही है कि शुरू में हक़ के दुश्मन चाहे कितने ही कामयाब हों, मगर आख़िरी कामयाबी सिर्फ़ उन लोगों का हिस्सा होती है जो ख़ुदा से डरकर सोच और अमल की ग़लत राहों से बचते हुए सही मक़सद के लिए काम करते हैं। लिहाज़ा इस वक़्त जो मुसीबतें और कठिनाइयाँ तुमपर गुज़र रही हैं, जिन मुशकिलों का तुम्हें सामना करना पड़ रहा है और तुम्हारी दावत को दबाने में तुम्हारे मुख़ालिफ़ों को बज़ाहिर जो कामयाबी होती नज़र आ रही है उससे मायूस न हो, बल्कि हिम्मत और सब्र के साथ अपना काम किए चले जाओ।

54. सूरा-7 आराफ़, रुकूअ-5 (आयत 40-47) के हाशिए सामने रहें।

55. यानी वे तमाम दूसरे माबूद जिनकी तुम बन्दगी और इबादत कर रहे हो, जो हक़ीक़त में किसी तरह की भी ख़ुदाई सिफ़त (गुण) और ताक़तें नहीं रखते, बन्दगी और इबादत का कोई हक़ उनको हासिल नहीं है। तुमने ख़ाह-मख़ाह उनको माबूद बना रखा है और बेवजह उनसे ज़रूरतें पूरी होने की आस लगाए बैठे हो।

عَلَى الَّذِىْ فَطَرَنِىْؕ اَفَلَا تَعْقِلُوْنَ ۝ وَيٰقَوْمِ اسْتَغْفِرُوْا رَبَّكُمْ ثُمَّ
تُوْبُوْۤا اِلَيْهِ يُرْسِلِ السَّمَآءَ عَلَيْكُمْ مِّدْرَارًا وَّيَزِدْكُمْ قُوَّةً اِلٰى
قُوَّتِكُمْ وَلَا تَتَوَلَّوْا مُجْرِمِيْنَ ۝ قَالُوْا يٰهُوْدُ مَا جِئْتَنَا بِبَيِّنَةٍ وَّمَا

नहीं चाहता, मेरा बदला तो उसके ज़िम्मे है जिसने मुझे पैदा किया है, क्या तुम अक़्ल से ज़रा काम नहीं लेते?[56] (52) और ऐ मेरी क़ौम के लोगो! अपने रब से माफ़ी चाहो, फिर उसकी तरफ़ पलटो, वह तुमपर आसमान के दहाने खोल देगा और तुम्हारी मौजूदा क़ुव्वत पर और क़ुव्वत बढ़ाएगा।[57] मुजरिमों की तरह मुँह न फेरो।

(53) उन्होंने जवाब दिया, "ऐ हूद! तू हमारे पास कोई खुली गवाही लेकर नहीं

56. यह जुमला अपने अन्दर बड़ी गहराई रखता है जिसमें एक बड़ी दलील समेट दी गई है। इसका मतलब यह है कि मेरी बात को जिस तरह सरसरी तौर पर तुम नज़रअन्दाज़ कर रहे हो और इसपर संजीदगी से ग़ौर नहीं करते, यह इस बात की दलील है कि तुम लोग अक़्ल से काम नहीं लेते। वरना अगर तुम अक़्ल से काम लेनेवाले होते तो ज़रूर सोचते कि जो शख़्स अपनी किसी निजी ग़रज़ और फ़ायदे के बग़ैर दावत और तब्लीग़ और याददिहानी और नसीहत की ये सब मुश्किलें झेल रहा है, जिसकी इस भाग-दौड़ में तुम किसी निजी या ख़ानदानी फ़ायदे का निशान तक नहीं पा सकते, यह ज़रूर अपने पास यक़ीन और भरोसे की कोई ऐसी बुनियाद और ज़मीर (अन्तरात्मा) के इत्मीनान की कोई ऐसी वजह रखता है जिसकी वजह से उसने अपना ऐशो-आराम छोड़कर, अपनी दुनिया बनाने की फ़िक्र से बेपरवाह होकर, अपने आपको इस जोखिम में डाला है कि सदियों के जमे और रचे हुए अक़ीदों, रस्मों और ज़िन्दगी के रंग-ढंग के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाए और उसकी बदौलत दुनिया भर की दुश्मनी मोल ले ले। ऐसे शख़्स की बात कम-से-कम इतनी बेवज़न तो नहीं हो सकती कि बिना सोचे-समझे उसे यूँ ही टाल दिया जाए और उसपर संजीदा सोच-विचार की ज़रा-सी तकलीफ़ भी ज़ेहन को न दी जाए।

57. यह वही बात है जो पहले रुकूअ (आयत : 1-8) में मुहम्मद (सल्ल.) से कहलवाई गई थी कि "अपने रब से माफ़ी माँगो और उसकी तरफ़ पलट आओ तो वह तुमको अच्छा सामाने-ज़िन्दगी देगा।" इससे मालूम हुआ कि आख़िरत ही में नहीं, इस दुनिया में भी क़ौमों की क़िस्मतों का उतार-चढ़ाव अख़लाक़ी बुनियादों ही पर होता है। अल्लाह तआला इस दुनिया पर जो हुकूमत कर रहा है उसका दारोमदार अख़लाक़ी उसूलों पर है, न कि उन फ़ितरी उसूलों पर जो अख़लाक़ी भलाई-बुराई के फ़र्क़ से ख़ाली हों। यह बात कई जगहों पर क़ुरआन में कही गई है कि जब एक क़ौम के पास नबी के ज़रिए से ख़ुदा का पैग़ाम पहुँचता है तो उसकी क़िस्मत उस पैग़ाम के साथ जुड़ जाती है। अगर वह उसे क़बूल कर लेती है तो अल्लाह तआला उसपर

نَحْنُ بِتَارِكِيْٓ اٰلِهَتِنَا عَنْ قَوْلِكَ وَمَا نَحْنُ لَكَ بِمُؤْمِنِيْنَ ۝٥٣ اِنْ نَّقُوْلُ
اِلَّا اعْتَرٰىكَ بَعْضُ اٰلِهَتِنَا بِسُوْٓءٍ ۭ قَالَ اِنِّىْٓ اُشْهِدُ اللّٰهَ وَاشْهَدُوْٓا اَنِّىْ
بَرِيْۗءٌ مِّمَّا تُشْرِكُوْنَ ۝٥٤ مِنْ دُوْنِهٖ فَكِيْدُوْنِيْ جَمِيْعًا ثُمَّ لَا تُنْظِرُوْنِ ۝٥٥

आया है[58], और तेरे कहने से हम अपने माबूदों को नहीं छोड़ सकते, और तुझपर हम ईमान लानेवाले नहीं हैं। (54) हम तो यह समझते हैं कि तेरे ऊपर हमारे माबूदों में से किसी की मार पड़ गई है।"[59]

हूद ने कहा, "मैं अल्लाह की गवाही पेश करता हूँ[60] और तुम गवाह रहो कि यह जो अल्लाह के सिवा दूसरों को तुमने (ख़ुदाई में) साझीदार बना रखा है, उससे मैं बेज़ार हूँ।[61] (55) तुम सब-के-सब मिलकर मेरे ख़िलाफ़ अपनी करनी में कसर न उठा रखो

अपनी नेमतों और बरकतों के दरवाज़े खोल देता है। अगर रद्द कर देती है तो उसे तबाह कर डाला जाता है। यह मानो एक दफ़ा (धारा) है उस अख़लाक़ी क़ानून की जिसपर अल्लाह तआला इनसान के साथ मामला कर रहा है। इसी तरह इस क़ानून की एक दफ़ा यह भी है कि जो क़ौम दुनिया की ख़ुशहाली से धोखा खाकर ज़ुल्म और गुनाह की राहों पर चल निकलती है उसका अंजाम बरबादी है। लेकिन ठीक उस वक़्त जबकि वह अपने उस बुरे अंजाम की तरफ़ अन्धाधुन्ध चली जा रही हो, अगर वह अपनी ग़लती को महसूस कर ले और नाफ़रमानी छोड़कर ख़ुदा की बन्दगी की तरफ़ पलट आए तो उसकी क़िस्मत बदल जाती है, उसके अमल की मुद्दत में बढ़ोत्तरी कर दी जाती है और आनेवाले वक़्त में उसके लिए अज़ाब के बजाए इनाम, तरक़्क़ी और कामयाबी का फ़ैसला लिख दिया जाता है।

58. यानी ऐसी कोई खुली अलामत या ऐसी कोई साफ़ दलील जिससे हम बिना किसी शक-शुब्हे के मालूम कर लें कि अल्लाह ने तुझे भेजा है और जो बात तू पेश कर रहा है वह सच है।

59. यानी तूने किसी देवी या देवता या किसी हज़रत के आस्ताने पर कुछ गुस्ताख़ी की होगी, उसी का ख़मियाज़ा है जो तू भुगत रहा है कि बहकी-बहकी बातें करने लगा है और वही बस्तियाँ जिनमें कल तू इज़्ज़त के साथ रहता था आज वहाँ गालियों और पत्थरों से तेरी ख़ातिर हो रही है।

60. यानी तुम कहते हो कि मैं कोई गवाही लेकर नहीं आया, हालाँकि छोटी-छोटी गवाहियाँ पेश करने के बजाए मैं तो सबसे बड़ी गवाही उस ख़ुदा की पेश कर रहा हूँ जो अपनी सारी ख़ुदाई के साथ कायनात के हर गोशे और हर जलवे में इस बात की गवाही दे रहा है कि जो हक़ीक़तें मैंने तुमसे बयान की हैं ये पूरे तौर पर हक़ हैं, उनमें रत्ती भर झूठ नहीं, और जो तसव्वुर और ख़्याल तुमने क़ायम कर रखे हैं वे बिलकुल झूठे हैं, सच्चाई उनमें ज़र्रा बराबर भी नहीं।

61. यह उनकी इस बात का जवाब है कि तेरे कहने से हम अपने माबूदों को छोड़ने पर तैयार नहीं हैं। कहा, मेरा भी यह फ़ैसला सुन रखो कि तुम्हारे इन माबूदों से मैं बिलकुल बेज़ार हूँ।

إِنِّي تَوَكَّلْتُ عَلَى اللَّهِ رَبِّي وَرَبِّكُمْ مَا مِنْ دَابَّةٍ إِلَّا هُوَ اٰخِذٌ بِنَاصِيَتِهَا
إِنَّ رَبِّي عَلَىٰ صِرَاطٍ مُّسْتَقِيمٍ ﴿٥٦﴾ فَإِن تَوَلَّوْا فَقَدْ أَبْلَغْتُكُم مَّا أُرْسِلْتُ
بِهِ إِلَيْكُمْ ۚ وَيَسْتَخْلِفُ رَبِّي قَوْمًا غَيْرَكُمْ وَلَا تَضُرُّونَهُ شَيْئًا ۚ إِنَّ
رَبِّي عَلَىٰ كُلِّ شَيْءٍ حَفِيظٌ ﴿٥٧﴾ وَلَمَّا جَاءَ أَمْرُنَا نَجَّيْنَا هُودًا وَالَّذِينَ
آمَنُوا مَعَهُ بِرَحْمَةٍ مِّنَّا وَنَجَّيْنَاهُم مِّنْ عَذَابٍ غَلِيظٍ ﴿٥٨﴾ وَتِلْكَ عَادٌ
جَحَدُوا بِآيَاتِ رَبِّهِمْ وَعَصَوْا رُسُلَهُ وَاتَّبَعُوا أَمْرَ كُلِّ جَبَّارٍ عَنِيدٍ ﴿٥٩﴾

और मुझे ज़रा मोहलत न दो[62], (56) मेरा भरोसा अल्लाह पर है जो मेरा रब भी है और तुम्हारा रब भी। कोई जानदार ऐसा नहीं जिसकी चोटी उसके हाथ में न हो। बेशक मेरा रब सीधी राह पर है।[63] (57) अगर तुम मुँह फेरते हो तो फेर लो, जो पैग़ाम देकर मैं तुम्हारे पास भेजा गया था वह मैं तुमको पहुँचा चुका हूँ। अब मेरा रब तुम्हारी जगह दूसरी क़ौम को उठाएगा और तुम उसका कुछ न बिगाड़ सकोगे।[64] यक़ीनन मेरा रब हर चीज़ पर निगराँ है।"

(58) फिर जब हमारा हुक्म आ गया तो हमने अपनी रहमत से हूद को और उन लोगों को, जो उसके साथ ईमान लाए थे, नजात दे दी और एक सख़्त अज़ाब से उन्हें बचा लिया।

(59) ये हैं आद! अपने रब की आयतों से इन्होंने इनकार किया, उसके रसूलों की बात न मानी[65] और हर जब्बार (दमनकारी) हक़ के दुश्मन के पीछे चलते रहे।

---

62. यह उनके उस जुमले का जवाब है कि हमारे माबूदों की तुझपर मार पड़ी है। (देखें--सूरा-10 यूनुस, आयत- 71)
63. यानी वह जो कुछ करता है, सही करता है। उसका हर काम सीधा है। उसके यहाँ अंधेर नगरी नहीं है, बल्कि वह सरासर सच्चाई और इनसाफ़ के साथ ख़ुदाई कर रहा है। यह किसी तरह मुमकिन नहीं है कि तुम गुमराह और बदकार हो और फिर (आख़िरत में) कामयाब रहो, और मैं सच्चाई-पसन्द और नेकी करनेवाला हूँ और फिर टोटे में रहूँ।
64. यह उनकी इस बात का जवाब है कि हम तुझपर ईमान लानेवाले नहीं हैं।
65. अगरचे उनके पास एक ही रसूल आया था, मगर जिस चीज़ की तरफ़ उसने दावत दी थी वह

وَاُتْبِعُوْا فِيْ هٰذِهِ الدُّنْيَا لَعْنَةً وَّيَوْمَ الْقِيٰمَةِ ۭ اَلَآ اِنَّ عَادًا كَفَرُوْا
رَبَّهُمْ ۭ اَلَا بُعْدًا لِّعَادٍ قَوْمِ هُوْدٍ ۝٦٠ وَاِلٰى ثَمُوْدَ اَخَاهُمْ صٰلِحًا ۘ قَالَ
يٰقَوْمِ اعْبُدُوا اللّٰهَ مَا لَكُمْ مِّنْ اِلٰهٍ غَيْرُهٗ ۭ هُوَ اَنْشَاَكُمْ مِّنَ الْاَرْضِ
وَاسْتَعْمَرَكُمْ فِيْهَا فَاسْتَغْفِرُوْهُ ثُمَّ تُوْبُوْٓا اِلَيْهِ ۭ اِنَّ رَبِّيْ قَرِيْبٌ مُّجِيْبٌ ۝٦١

---

(60) आख़िरकार इस दुनिया में भी इनपर फिटकार पड़ी और क़ियामत के दिन भी। सुनो! आद ने अपने रब का इनकार किया। सुनो! दूर फेंक दिए गए आद, हूद की क़ौम के लोग।

(61) और समूद की तरफ़ हमने उनके भाई सालेह को भेजा।[66] उसने कहा, "ऐ मेरी क़ौम के लोगो! अल्लाह की बन्दगी करो। उसके सिवा तुम्हारा कोई ख़ुदा नहीं है। वही है जिसने तुमको ज़मीन से पैदा किया है और यहाँ तुमको बसाया है[67], इसलिए तुम उससे माफ़ी चाहो[68] और उसकी तरफ़ पलट आओ, यक़ीनन मेरा रब क़रीब है और वह दुआओं का जवाब देनेवाला है।"[69]

यही एक दावत थी जो हमेशा हर ज़माने और हर क़ौम में ख़ुदा के रसूल पेश करते रहे हैं। इसी लिए एक रसूल की बात न मानने को सारे रसूलों की नाफ़रमानी बताया गया।

66. सूरा-7 आराफ़, रुकूअ 10 (आयत- 73-84) के हाशिए सामने रहें।

67. यह दलील है उस दावे की जो पहले जुमले में किया गया था कि अल्लाह के सिवा तुम्हारा कोई ख़ुदा और कोई हक़ीक़ी माबूद नहीं है। शिर्क करनेवाले ख़ुद भी इस बात को मानते थे कि उनका पैदा करनेवाला अल्लाह ही है। इसी तसलीमशुदा हक़ीक़त पर दलील की बुनियाद क़ायम करके हज़रत सालेह (अलैहि०) उनको समझाते हैं कि जब वह अल्लाह ही है जिसने ज़मीन के बेजान माद्दों (तत्त्वों) को जोड़कर तुमको यह इनसानी वुजूद दिया, और वह भी अल्लाह ही है जिसने ज़मीन में तुमको आबाद किया, तो फिर अल्लाह के सिवा ख़ुदाई और किसकी हो सकती है और किसी दूसरे को यह हक़ कैसे हासिल हो सकता है कि तुम उसकी बन्दगी और इबादत करो।

68. यानी अब तक जो तुम दूसरों की बन्दगी और इबादत करते रहे हो, इस जुर्म की अपने रब से माफ़ी माँगो।

69. यह मुशरिकों की एक बहुत बड़ी ग़लतफ़हमी का रद्द है जो आमतौर से उन सबमें पाई जाती है और उन अहम वजहों में से एक है जिन्होंने हर ज़माने में इनसान को शिर्क में मुब्तला किया है। ये लोग अल्लाह को अपने राजाओं, महाराजाओं और बादशाहों जैसा ही समझते हैं, जो

قَالُوْا يٰصٰلِحُ قَدْ كُنْتَ فِيْنَا مَرْجُوًّا قَبْلَ هٰذَآ اَتَنْهٰىنَآ اَنْ نَّعْبُدَ مَا

(62) उन्होंने कहा, "ऐ सालेह! इससे पहले तू हमारे बीच ऐसा शख़्स था जिससे बड़ी उम्मीदें की जा रही थीं।[70] क्या तू हमें उन माबूदों की इबादत से रोकना चाहता है

अवाम से दूर अपने महलों में ऐश-आराम किया करते हैं, जिनके दरबार तक आम लोगों में से किसी की पहुँच नहीं हो सकती, जिनकी ख़िदमत में कोई दरख़ास्त पहुँचानी हो तो दरबार में पहुँच रखनेवाले लोगों में से किसी का दामन थामना पड़ता है और फिर अगर ख़ुशक़िस्मती से किसी की दरख़ास्त उनकी ख़िदमत में पहुँच भी जाती है तो उनका .ख़ुदाई का घमण्ड यह गवारा नहीं करता कि .ख़ुद उसका जवाब दें, बल्कि जवाब देने का काम उनके क़रीबी लोगों ही में से किसी के सिपुर्द किया जाता है। इस ग़लत गुमान की वजह से ये लोग ऐसा समझते हैं और होशियार लोगों ने उनको ऐसा समझाने की कोशिश भी की है कि सारे जहाँ के .ख़ुदा का मुक़द्दस आस्ताना आम इनसानों की पहुँच से बहुत ही दूर है। उसके दरबार तक भला किसी आम इनसान की पहुँच कैसे हो सकती है। वहाँ तक दुआओं का पहुँचना और फिर उनका जवाब मिलना तो किसी तरह मुमकिन ही नहीं हो सकता, जब तक कि पाक रूहों का वसीला (ज़रिआ) न ढूँढा जाए और उन मज़हबी ओहदेदारों की ख़िदमतें न हासिल की जाएँ जो ऊपर तक नज़्रें, मन्नतें और अर्ज़ियां पहुँचाने के ढब जानते हैं। यही वह ग़लतफ़हमी है जिसने बन्दे और .ख़ुदा के बीच में बहुत-से छोटे-बड़े माबूदों और सिफ़ारिशियों की एक बड़ी भीड़ खड़ी कर दी और इसके साथ पुरोहितवाद (Priesthood) का यह निज़ाम पैदा किया जिसके ज़रिए के बग़ैर जाहिली मज़हबों की पैरवी करनेवाले जन्म से लेकर मौत तक अपनी कोई मज़हबी रस्म भी अदा नहीं कर सकते।

हज़रत सालेह (अलैहि॰) जाहिलियत के इस पूरे तिलिस्म को सिर्फ़ दो लफ़्ज़ों से तोड़ फेंकते हैं। एक यह कि अल्लाह क़रीब है। दूसरे यह कि वह मुजीब (दुआ का जवाब देनेवाला) है। यानी तुम्हारा यह ख़याल भी ग़लत है कि वह तुमसे दूर है और यह भी ग़लत है कि तुम सीधे तौर पर उसको पुकारकर अपनी दुआओं का जवाब नहीं पा सकते। वह अगरचे बहुत बुलन्द और बरतर है मगर इसके बावजूद वह तुमसे बहुत क़रीब है। तुममें से एक-एक शख़्स उसको अपने पास ही पा सकता है, उससे सरगोशी कर सकता है। तन्हाई और महफ़िल दोनों में एलानिया तौर पर भी और राज़दाना तौर पर भी अपनी अरज़ियाँ .ख़ुद उसके सामने पेश कर सकता है। और फिर वह सीधे तौर पर अपने हर बन्दे की दुआओं का जवाब .ख़ुद देता है, तो जब कायनात के बादशाह का दरबारे-आम हर वक़्त हर शख़्स के लिए खुला है और हर शख़्स के क़रीब ही मौजूद है तो यह तुम किस बेवक़ूफ़ी में पड़े हो कि उसके लिए वास्ते और वसीले ढूँढते फिरते हो। (साथ ही देखें—सूरा-2 बक़रा, हाशिया-188)

70. यानी तुम्हारी होशमन्दी, ज़ेहन की तेज़ी, सूझ-बूझ, सलीक़ा, संजीदगी और भारी-भरकम शख़्सियत को देखकर हम ये उम्मीद लगाए बैठे थे कि बड़े आदमी बनोगे। अपनी दुनिया भी

يَعْبُدُ اٰبَآؤُنَا وَاِنَّنَا لَفِيْ شَكٍّ مِّمَّا تَدْعُوْنَآ اِلَيْهِ مُرِيْبٍ ﴿٦٢﴾ قَالَ يٰقَوْمِ
اَرَءَيْتُمْ اِنْ كُنْتُ عَلٰى بَيِّنَةٍ مِّنْ رَّبِّيْ وَاٰتٰىنِيْ مِنْهُ رَحْمَةً فَمَنْ يَّنْصُرُنِيْ

जिनकी इबादत हमारे बाप-दादा करते थे?[71] तू जिस तरीक़े की तरफ़ हमें बुला रहा है, उसके बारे में हमको बड़ा शक है, जिसने हमें उलझन में डाल रखा है।"[72]

(63) सालेह ने कहा, "ऐ मेरे क़ौमी भाइयो! तुमने कुछ इस बात पर भी ग़ौर किया कि अगर मैं अपने रब की तरफ़ से एक साफ़ गवाही रखता था, और फिर उसने अपनी

ख़ूब बनाओगे और हमें भी दूसरी क़ौमों और क़बीलों के मुक़ाबले में तुम्हारे सोच-विचार और ग़ौरो-फ़िक्र से फ़ायदा उठाने का मौक़ा मिलेगा। मगर तुमने यह तौहीद और आख़िरत का नया राग छेड़कर तो हमारी सारी उम्मीदों पर पानी फेर दिया। याद रहे कि ऐसे ही कुछ ख़यालात मुहम्मद (सल्ल.) के बारे में भी आप (सल्ल.) की क़ौम के लोगों में पाए जाते थे। वे भी नुबूवत से पहले आप (सल्ल.) की बेहतरीन क़ाबिलियतों को तस्लीम करते थे और अपने तौर पर यह समझते थे कि यह शख़्स एक बहुत बड़ा व्यापारी बनेगा और उसकी तेज़ दिमाग़ी से हमको भी बहुत कुछ फ़ायदा पहुँचेगा। मगर जब उनकी उम्मीदों के ख़िलाफ़ आप (सल्ल.) ने तौहीद व आख़िरत और बुलन्द और अच्छे अख़्लाक़ की दावत देनी शुरू की तो वे आप (सल्ल.) से न सिर्फ़ मायूस बल्कि बेज़ार हो गए और कहने लगे कि अच्छा-ख़ासा काम का आदमी था, ख़ुदा जाने इसे क्या जुनून सवार हो गया कि अपनी ज़िन्दगी भी बरबाद की और हमारी उम्मीदों को भी मिट्टी में मिला दिया।

71. यह मानो दलील है इस बात की कि ये माबूद हमारी इबादत के हक़दार हैं और इनकी पूजा किसलिए होती रहनी चाहिए। यहाँ जाहिलियत और इस्लाम के दलील देने के तरीक़े का फ़र्क़ बिलकुल साफ़ नज़र आता है। हज़रत सालेह (अलैहि.) ने कहा था कि अल्लाह के सिवा कोई हक़ीक़ी माबूद नहीं है। और इसपर दलील यह दी थी कि अल्लाह ही ने तुमको पैदा किया और ज़मीन में आबाद किया है। इसके जवाब में उनकी मुशरिक क़ौम कहती है कि हमारे ये माबूद भी इबादत के हक़दार हैं और इनकी इबादत छोड़ी नहीं जा सकती; क्योंकि बाप-दादा के वक़्तों से इनकी इबादत होती चली आ रही है। यानी मक्खी पर मक्खी सिर्फ़ इसलिए मारी जाती रहनी चाहिए कि शुरू में किसी बेवक़ूफ़ ने इस जगह मक्खी मार दी थी, और अब इस जगह पर मक्खी मारते रहने के लिए इसके सिवा किसी मुनासिब और माक़ूल वजह की ज़रूरत ही नहीं है कि यहाँ मुद्दतों से मक्खी मारी जा रही है।

72. यह शक और यह बेचैनी किस मामले में थी? इसको यहाँ साफ़ तौर से नहीं बताया गया है। इसकी वजह यह है कि बेचैनी में तो सब पड़ गए थे, मगर हर एक की बेचैनी अलग तरह की थी। यह हक़ की दावत की ख़ासियतों में से है कि जब वह उठती है तो लोगों के दिल का चैन

مِنَ اللّٰهِ اِنْ عَصَيْتُهٗ ۗ فَمَا تَزِيْدُوْنَنِيْ غَيْرَ تَخْسِيْرٍ ﴿٦٣﴾ وَيٰقَوْمِ هٰذِهٖ
نَاقَةُ اللّٰهِ لَكُمْ اٰيَةً فَذَرُوْهَا تَاْكُلْ فِيْٓ اَرْضِ اللّٰهِ وَلَا تَمَسُّوْهَا بِسُوْٓءٍ
فَيَاْخُذَكُمْ عَذَابٌ قَرِيْبٌ ﴿٦٤﴾ فَعَقَرُوْهَا فَقَالَ تَمَتَّعُوْا فِيْ دَارِكُمْ

रहमत से भी मुझको नवाज़ दिया तो इसके बाद अल्लाह की पकड़ से मुझे कौन बचाएगा अगर मैं उसकी नाफ़रमानी करूँ? तुम मेरे किस काम आ सकते हो सिवाए इसके कि मुझे और ज़्यादा घाटे में डाल दो।[73] (64) और ऐ मेरी क़ौम के लोगो! देखो यह अल्लाह की ऊँटनी तुम्हारे लिए एक निशानी है। इसे ख़ुदा की ज़मीन में चरने के लिए आज़ाद छोड़ दो। इसे ज़रा भी न छेड़ना, वरना कुछ ज़्यादा देर न गुज़रेगी कि तुमपर ख़ुदा का अज़ाब आ जाएगा।"

(65) मगर उन्होंने ऊँटनी को मार डाला। इसपर सालेह ने उनको ख़बरदार कर दिया

ख़त्म हो जाता है और एक आम बेचैनी पैदा हो जाती है। अगरचे हर एक के एहसासात दूसरे से अलग होते हैं मगर इस बेचैनी में सबको कुछ-न-कुछ हिस्सा ज़रूर मिलकर रहता है। इससे पहले जिस इत्मीनान के साथ लोग अपनी गुमराहियों में डूबे रहते थे और कभी यह सोचने की ज़रूरत महसूस ही न करते थे कि हम क्या कर रहे हैं, वह इत्मीनान इस दावत के उठने के बाद बाक़ी नहीं रहता और नहीं रह सकता। जाहिलियत के निज़ाम की कमज़ोरियों पर हक़ की दावत देनेवाले की बेरहम तनक़ीद (आलोचना) हक़ को दुरुस्त साबित करने के लिए उसकी ज़ोरदार और दिल में उतर जानेवाली दलीलें, फिर उसके बुलन्द अख़लाक़, उसका इरादा, उसका बरदाश्त करना, उसके मन की शराफ़त, उसका बिलकुल खरा और हक़परस्ती वाला रवैया और उसकी वह ज़बरदस्त, हिक्मत भरी शान जिसका सिक्का बड़े-से-बड़े हठधर्म मुख़ालिफ़ के दिल पर भी बैठ जाता है, फिर वक़्त के समाज में से सबसे अच्छे लोगों का उसका असर क़बूल करते चले जाना और उनकी ज़िन्दगियों में हक़ की दावत के असर से ग़ैर-मामूली इन्क़िलाब आ जाना, ये सारी चीज़ें मिल-जुलकर उन सब लोगों के दिलों को बेचैन कर डालती हैं जो हक़ आ जाने के बाद भी पुरानी जाहिलियत का बोलबाला रखना चाहते हैं।

73. यानी अगर मैं अपनी गहरी समझ-बूझ के ख़िलाफ़ और उस इल्म के ख़िलाफ़ जो अल्लाह ने मुझे दिया है, सिर्फ़ तुमको ख़ुश करने के लिए गुमराही का तरीक़ा अपना लूँ तो यही नहीं कि ख़ुदा की पकड़ से तुम मुझको बचा न सकोगे, बल्कि तुम्हारी वजह से मेरा जुर्म और ज़्यादा बढ़ जाएगा और अल्लाह तआला मुझे इस बात की और ज़्यादा सज़ा देगा कि मैंने तुमको सीधा रास्ता बताने के बजाए तुम्हें जान-बूझकर उल्टा और गुमराह किया।

ثَلٰثَةَ اَيَّامٍ ؕ ذٰلِكَ وَعْدٌ غَيْرُ مَكْذُوْبٍ ﴿۶۵﴾ فَلَمَّا جَآءَ اَمْرُنَا نَجَّيْنَا صٰلِحًا
وَّالَّذِيْنَ اٰمَنُوْا مَعَهٗ بِرَحْمَةٍ مِّنَّا وَمِنْ خِزْيِ يَوْمِئِذٍ ؕ اِنَّ رَبَّكَ هُوَ
الْقَوِيُّ الْعَزِيْزُ ﴿۶۶﴾ وَاَخَذَ الَّذِيْنَ ظَلَمُوا الصَّيْحَةُ فَاَصْبَحُوْا فِيْ دِيَارِهِمْ
جٰثِمِيْنَ ﴿۶۷﴾ كَاَنْ لَّمْ يَغْنَوْا فِيْهَا ؕ اَلَاۤ اِنَّ ثَمُوْدَاۡ كَفَرُوْا رَبَّهُمْ ؕ اَلَا
ع بُعْدًا لِّثَمُوْدَ ﴿۶۸﴾ وَلَقَدْ جَآءَتْ رُسُلُنَاۤ اِبْرٰهِيْمَ بِالْبُشْرٰى قَالُوْا سَلٰمًا ؕ
قَالَ سَلٰمٌ فَمَا لَبِثَ اَنْ جَآءَ بِعِجْلٍ حَنِيْذٍ ﴿۶۹﴾ فَلَمَّا رَاٰۤ اَيْدِيَهُمْ لَا

कि "बस अब तीन दिन अपने घरों में और रह-बस लो। यह ऐसी मुद्दत है जो झूठी न साबित होगी।"

(66) आख़िरकार जब हमारे फ़ैसले का वक़्त आ गया तो हमने अपनी रहमत से सालेह और उन लोगों को, जो उसके साथ ईमान लाए थे, बचा लिया और उस दिन की रुसवाई से उनको महफ़ूज रखा।[74] बेशक तेरा रब ही हक़ीक़त में ताक़तवर और ज़बरदस्त है। (67) रहे वे लोग जिन्होंने ज़ुल्म किया था, तो एक सख़्त धमाके ने उनको धर लिया और वे अपनी बस्तियों में इस तरह बेहिस व हरकत पड़े-के-पड़े रह गए (68) कि मानो वे वहाँ कभी बसे ही न थे।

सुनो, समूद ने अपने रब से कुफ़्र किया। सुनो! दूर फेंक दिए गए समूद।

(69) और देखो, इबराहीम के पास हमारे फ़रिश्ते ख़ुशख़बरी लिए हुए पहुँचे। कहा, तुमपर सलाम हो। इबराहीम ने जवाब दिया, तुमपर भी सलाम हो। फिर कुछ देर न गुज़री कि इबराहीम एक भुना हुआ बछड़ा (उनकी मेहमानी के लिए) ले आया।[75] (70) मगर

---

74. जज़ीरानुमा (प्रायद्वीप) 'सीना' में जो रिवायतें मशहूर हैं उनसे मालूम होता है कि जब समूद पर अज़ाब आया तो हज़रत सालेह (अलैहि॰) हिजरत करके वहाँ से चले गए थे। चुनाँचे हज़रत मूसा (अलैहि॰) वाले पहाड़ के क़रीब ही एक पहाड़ी का नाम 'नबी सालेह' है और कहा जाता है कि यही जगह उनके क़ियाम (ठहरने) की जगह थी।

75. इससे मालूम हुआ कि फ़रिश्ते हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) के पास इनसानी शक्ल में पहुँचे थे

تَصِلُ إِلَيْهِ نَكِرَهُمْ وَأَوْجَسَ مِنْهُمْ خِيفَةً ۚ قَالُوا لَا تَخَفْ إِنَّا
أُرْسِلْنَا إِلَىٰ قَوْمِ لُوطٍ ﴿٧٠﴾ وَامْرَأَتُهُ قَائِمَةٌ فَضَحِكَتْ فَبَشَّرْنَاهَا

जब देखा कि उनके हाथ खाने पर नहीं बढ़ते[75अ], तो वह उनके बारे में शक में पड़ गया और दिल में उनसे डर महसूस करने लगा।[76] उन्होंने कहा, "डरो नहीं, हम तो लूत की क़ौम की तरफ़ भेजे गए हैं।"[77] (71) इबराहीम की बीवी भी खड़ी हुई थी। वह यह

और शुरू में उन्होंने अपने बारे में नहीं बताया था, इसलिए हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) ने समझा कि ये कोई अजनबी मेहमान हैं और उनके आते ही फ़ौरन उनकी ख़ातिरदारी का इन्तिज़ाम किया।

75.अ. इससे हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) को मालूम हुआ कि ये फ़रिश्ते हैं।

76. क़ुरआन के कुछ आलिमों के नज़दीक यह डर इस वजह से था कि जब उन अजनबी नए आनेवालों ने खाने की तरफ़ हाथ नहीं बढ़ाया, तो हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) को उनकी नीयत पर शक होने लगा और वे इस ख़याल से फ़िक्रमन्द हो गए कि कहीं ये किसी दुश्मनी के इरादे से तो नहीं आए हैं; क्योंकि अरब में जब कोई शख़्स किसी की ख़ातिरदारी क़बूल करने से इनकार करता तो उससे यह समझा जाता था कि वह मेहमान की हैसियत से नहीं आया है, बल्कि क़त्ल व ग़ारत की नीयत से आया है। लेकिन बाद की आयत इस तफ़सीर की ताईद नहीं करती।

77. बात के इस अन्दाज़ से साफ़ ज़ाहिर होता है कि खाने की तरफ़ उनके हाथ न बढ़ने से ही हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) भाँप गए थे कि ये फ़रिश्ते हैं, और चूँकि फ़रिश्तों का खुल्लम-खुल्ला इनसानी शक्ल में आना ग़ैर-मामूली हालात ही में हुआ करता है, इसलिए हज़रत इबराहीम को डर जिस बात पर हुआ वह अस्ल में यही थी कि कहीं उनके घरवालों से या उनकी बस्ती के लोगों से या ख़ुद उनसे कोई ऐसा क़ुसूर तो नहीं हो गया है जिसपर गिरफ़्त के लिए फ़रिश्ते इस सूरत में भेजे गए हैं। अगर बात वह होती जो क़ुरआन के कुछ आलिमों (टीकाकारों) ने समझी है तो फ़रिश्ते यूँ कहते कि "डरो नहीं, हम तुम्हारे रब के भेजे हुए फ़रिश्ते हैं।" लेकिन जब उन्होंने आपका डर दूर करने के लिए कहा कि "हम तो लूत की क़ौम की तरफ़ भेजे गए हैं," तो उससे मालूम हुआ कि उनका फ़रिश्ता होना तो हज़रत इब्राहीम जान गए थे, अलबत्ता परेशानी इस बात की थी कि ये लोग इस फ़ित्ने और आज़माइश की शक्ल में जो तशरीफ़ लाए हैं तो आख़िर वह बदनसीब कौन है जिसकी शामत आनेवाली है।

بِاِسْحٰقَ ۙ وَمِنْ وَّرَآءِ اِسْحٰقَ يَعْقُوْبَ ﴿٧١﴾ قَالَتْ يٰوَيْلَتٰٓى ءَاَلِدُ وَاَنَا عَجُوْزٌ
وَّهٰذَا بَعْلِىْ شَيْخًا ؕ اِنَّ هٰذَا لَشَىْءٌ عَجِيْبٌ ﴿٧٢﴾ قَالُوْۤا اَتَعْجَبِيْنَ مِنْ اَمْرِ
اللّٰهِ رَحْمَتُ اللّٰهِ وَبَرَكٰتُهٗ عَلَيْكُمْ اَهْلَ الْبَيْتِ ؕ اِنَّهٗ حَمِيْدٌ مَّجِيْدٌ ﴿٧٣﴾

सुनकर हँस दी।[78] फिर हमने उसको इसहाक़ की और इसहाक़ के बाद याक़ूब की ख़ुशख़बरी दी।[79] (72) वह बोली, "हाय मेरी कमबख़्ती![80] क्या अब मेरे यहाँ औलाद होगी? जबकि मैं बुढ़िया फूँस हो गई और यह मेरे मियाँ भी बूढ़े हो चुके?[81] यह तो बड़ी अजीब बात है।" (73) फ़रिश्तों ने कहा, "अल्लाह के हुक्म पर ताज्जुब करती हो?[82] इबराहीम के घरवालो! तुम लोगों पर तो अल्लाह की रहमत और उसकी बरकतें हैं, और यक़ीनन अल्लाह बहुत तारीफ़ के क़ाबिल और बड़ी शानवाला है।"

---

78. इससे मालूम हुआ कि फ़रिश्तों के इनसानी शक्ल में आने की ख़बर सुनते ही सारा घर परेशान हो गया था और हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) की बीवी भी घबराई हुई बाहर निकल आई थीं। फिर जब उन्होंने यह सुन लिया कि उनके घर पर या उनकी बस्ती पर कोई आफ़त आनेवाली नहीं है तब कहीं उनकी जान में जान आई और वह .ख़ुश हो गईं।

79. फ़रिश्तों ने हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) के बजाए हज़रत सारा को यह .ख़ुशख़बरी इसलिए सुनाई कि इससे पहले हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) के यहाँ तो उनकी दूसरी बीवी हज़रत हाजरा से हज़रत इसमाईल (अलैहि॰) पैदा हो चुके थे, मगर हज़रत सारा उस वक़्त तक बे-औलाद थीं और इस वजह से दिल उन्हीं का ज़्यादा दुखी था। उनके इस ग़म को दूर करने के लिए फ़रिश्तों ने उन्हें सिर्फ़ यही .ख़ुशख़बरी नहीं सुनाई कि तुम्हारे यहाँ इसहाक़ (अलैहि॰) जैसा बड़े मर्तबेवाला बेटा पैदा होगा, बल्कि यह भी बताया कि इस बेटे के बाद पोता भी याक़ूब (अलैहि॰) जैसा आलीशान पैग़म्बर होगा।

80. इसका मतलब यह नहीं है कि हज़रत सारा सचमुच इसपर .ख़ुश होने के बजाए उल्टी इसको कमनसीबी समझती थीं, बल्कि दरअस्ल यह इस तरह के अलफ़ाज़ में से है जो औरतें आम तौर से ताज्जुब के मौक़ों पर बोला करती हैं और जिनसे लफ़्ज़ी मानी मुराद नहीं होते, बल्कि उनका मक़सद सिर्फ़ हैरत का इज़हार होता है।

81. बाइबल से मालूम होता है कि हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) की उम्र उस वक़्त 100 साल और हज़रत सारा की उम्र 90 साल की थी।

82. मतलब यह है कि अगरचे आम तौर पर इस उम्र में इनसान के यहाँ औलाद नहीं हुआ करती, लेकिन अल्लाह की क़ुदरत से ऐसा होना कुछ नामुमकिन भी नहीं है और जबकि यह ख़ुशख़बरी तुमको अल्लाह की तरफ़ से दी जा रही है तो कोई वजह नहीं कि तुम जैसी एक ईमानवाली औरत इसपर ताज्जुब करे।

فَلَمَّا ذَهَبَ عَنْ اِبْرٰهِیْمَ الرَّوْعُ وَجَآءَتْهُ الْبُشْرٰی یُجَادِلُنَا فِیْ قَوْمِ
لُوْطٍ ﴿٧٤﴾ اِنَّ اِبْرٰهِیْمَ لَحَلِیْمٌ اَوَّاهٌ مُّنِیْبٌ ﴿٧٥﴾ یٰۤاِبْرٰهِیْمُ اَعْرِضْ عَنْ هٰذَا ۚ
اِنَّهٗ قَدْ جَآءَ اَمْرُ رَبِّكَ ۚ وَ اِنَّهُمْ اٰتِیْهِمْ عَذَابٌ غَیْرُ مَرْدُوْدٍ ﴿٧٦﴾

(74) फिर जब इबराहीम की घबराहट दूर हो गई और (औलाद की ख़ुशख़बरी से) उसका दिल ख़ुश हो गया, तो उसने लूत की क़ौम के मामले में हमसे झगड़ा शुरू किया।[83] (75) हक़ीक़त में इबराहीम बहुत बरदाश्त करनेवाला और नर्म दिल आदमी था और हर हाल में हमारी तरफ़ रुजूअ् करता था। (76) (आख़िरकार हमारे फ़रिश्तों ने उससे कहा,) "ऐ इबराहीम! इससे बाज़ आ जाओ, तुम्हारे रब का हुक्म हो चुका है और अब उन लोगों पर वह अज़ाब आकर रहेगा जो किसी के फेरे नहीं फिर सकता।"[84]

83. 'झगड़े' का लफ़्ज़ इस मौक़े पर उस इन्तिहाई मुहब्बत और नाज़-नख़रे के ताल्लुक़ को ज़ाहिर करता है जो हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) अपने ख़ुदा के साथ रखते थे। इस लफ़्ज़ से यह तस्वीर आँखों के सामने फिर जाती है कि बन्दे और ख़ुदा के दरमियान बड़ी देर तक बहस व तकरार जारी रहती है। बन्दा ज़िद कर रहा है कि किसी तरह लूत (अलैहि॰) की क़ौम पर से अज़ाब टाल दिया जाए। ख़ुदा जवाब में कह रहा है कि यह क़ौम अब ख़ैर (भलाई) से बिलकुल ख़ाली हो चुकी है और उसके जुर्म इस हद से गुज़र चुके हैं कि उसके साथ कोई रिआयत की जा सके। मगर बन्दा है कि फिर यही कहे जाता है कि "परवरदिगार, अगर कुछ थोड़ी-सी भलाई भी उसमें बाक़ी हो तो उसे और ज़रा मुहलत दे दे, शायद कि वह भलाई फल ले आए।" बाइबल में इस झगड़े की कुछ तफ़सील भी बयान हुई है, लेकिन क़ुरआन का मुख़्तसर बयान अपने अन्दर उससे ज़्यादा मानी रखता है। (देखें—किताब उत्पत्ति, 18:23-32)

84. इस सिलसिल एः-बयान में हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) का यह वाक़िआ, ख़ासतौर से लूत (अलैहि॰) की क़ौम के क़िस्से की शुरुआत करते हुए बज़ाहिर कुछ बेजोड़-सा महसूस होता है। मगर हक़ीक़त में यह उस मक़सद के लिहाज़ से बिलकुल मौक़े के मुताबिक़ है जिसके लिए पिछली तारीख़ के ये वाक़िआत यहाँ बयान किए जा रहे हैं। इसकी मुनासिबत समझने के लिए नीचे बयान की गई बातों को ध्यान में रखिए—

(1) यह बात क़ुरैश के लोगों से कही जा रही है जो हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) की औलाद होने की वजह ही से तमाम अरब के पीरज़ादे, काबा के मुजाविर और मज़हबी व अख़लाक़ी और सियासी और समाजी पेशवाई के मालिक बने हुए हैं और इस घमण्ड में पड़े हुए हैं कि हमपर ख़ुदा का ग़ज़ब कैसे नाज़िल हो सकता है, जबकि हम ख़ुदा के उस प्यारे बन्दे की औलाद हैं

وَلَمَّا جَآءَتْ رُسُلُنَا لُوْطًا سِيْٓءَ بِهِمْ وَضَاقَ بِهِمْ ذَرْعًا وَّقَالَ هٰذَا

(77) और जब हमारे फ़रिश्ते लूत के पास पहुँचे[85] तो उनके आने से वह बहुत

और वह .ख़ुदा के दरबार में हमारी सिफ़ारिश करने के लिए मौजूद है। इस ग़लत ख़्याल को तोड़ने के लिए पहले तो उन्हें यह मंज़र दिखाया गया कि हज़रत नूह (अलैहि॰) जैसा बड़ा मर्तबेवाला पैग़म्बर अपनी आँखों के सामने अपने जिगर के टुकड़े (बेटे) को डूबते देख रहा है और तड़पकर .ख़ुदा से दुआ करता है कि उसके बेटे को बचा लिया जाए, मगर सिर्फ़ यही नहीं कि उसकी सिफ़ारिश बेटे के कुछ काम नहीं आती, बल्कि इस सिफ़ारिश पर बाप को उलटी डाँट सुननी पड़ती है। उसके बाद अब यह दूसरा मंज़र .ख़ुद हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) का दिखाया जाता है कि एक तरफ़ तो उनपर बेइन्तिहा इनायतें हैं और बहुत प्यार के अन्दाज़ में उनका ज़िक्र हो रहा है, मगर दूसरी तरफ़ जब वही .ख़ुदा के प्यारे दोस्त इबराहीम (अलैहि॰) इनसाफ़ के मामले में दख़ल देते हैं तो उनकी ज़िद और मन्नत-समाजत के बावजूद अल्लाह तआला मुजरिम क़ौम के मामले में उनकी सिफ़ारिश को रद्द कर देता है।

(2) इस तक़रीर का मक़सद यह बात भी क़ुरैश के ज़ेहन में बिठाना है कि अल्लाह तआला का यह क़ानून कि अच्छे कामों का अच्छा बदला मिलेगा और बुरे कामों का बुरा जिससे लोग बिलकुल निडर और मुत्मइन बैठे हुए थे, किस तरह इतिहास के दौरान में लगातार और बाक़ायदगी के साथ ज़ाहिर होता रहा है और .ख़ुद उनके आसपास उसकी कैसी खुली-खुली

घर से बेघर होकर एक अजनबी देश में ठहरे हुए हैं और बज़ाहिर कोई ताक़त उनके पास नहीं है। मगर अल्लाह तआला उनके अच्छे कामों का यह फल उनको देता है कि बाँझ बीवी के पेट से बुढ़ापे में इसहाक़ (अलैहि॰) पैदा होते हैं, फिर उनके यहाँ याक़ूब (अलैहि॰) का जन्म होता है, और उनसे बनी-इसराईल की वह शानदार नस्ल चलती है जिसकी बड़ाई के डंके सदियों तक उसी फ़िलस्तीन और सीरिया में बजते रहे जहाँ हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) एक बेघर मुहाजिर की हैसियत से आकर आबाद हुए थे। दूसरी तरफ़ लूत (अलैहि॰) की क़ौम है जो इसी सरज़मीन के एक हिस्से में अपनी .ख़ुशहाली पर मगन और अपनी बदकारियों में मस्त है। दूर-दूर तक कहीं भी उसको अपने बुरे आमाल के बुरे अंजाम भोगने के आसार नज़र नहीं आ रहे हैं और लूत (अलैहि॰) की नसीहतों को वह चुटकियों में उड़ा रही है। मगर जिस तारीख़ को इबराहीम (अलैहि॰) की नस्ल से एक बड़ी बुलन्द मर्तबेवाली क़ौम के उठाए जाने का फ़ैसला किया जाता है, ठीक वही तारीख़ है जब इस बदकार क़ौम को दुनिया से बिलकुल मिटा देने का हुक्म लागू होता है और वह ऐसे इबरतनाक तरीक़े से मिटा दी जाती है कि आज उसकी बस्तियों का निशान कहीं ढूँढे नहीं मिलता।

85. सूरा-7 आराफ़, रुकूअ-10 (आयत-73-84) के हाशिए सामने रहें।

يَوْمٌ عَصِيبٌ ۝ وَجَآءَهٗ قَوْمُهٗ يُهْرَعُوْنَ اِلَيْهِ ؕ وَمِنْ قَبْلُ كَانُوْا
يَعْمَلُوْنَ السَّيِّاٰتِ ؕ قَالَ يٰقَوْمِ هٰٓؤُلَآءِ بَنَاتِيْ هُنَّ اَطْهَرُ لَكُمْ فَاتَّقُوا
اللّٰهَ وَلَا تُخْزُوْنِ فِيْ ضَيْفِيْ ؕ اَلَيْسَ مِنْكُمْ رَجُلٌ رَّشِيْدٌ ۝ قَالُوْا لَقَدْ
عَلِمْتَ مَا لَنَا فِيْ بَنٰتِكَ مِنْ حَقٍّ ۚ وَاِنَّكَ لَتَعْلَمُ مَا نُرِيْدُ ۝ قَالَ لَوْ

घबराया और दिल तंग हुआ और कहने लगा कि आज बड़ी मुसीबत का दिन है।[86] (78) (उन मेहमानों का आना था कि) उसकी क़ौम के लोग बेइख़्तियार होकर उसके घर की तरफ़ दौड़ पड़े। पहले से वे ऐसी ही बदकारियों के आदी थे। लूत ने उनसे कहा, "भाइयो! ये मेरी बेटियाँ मौजूद हैं, ये तुम्हारे लिए ज़्यादा पाकीज़ा हैं[87], कुछ अल्लाह से डरो और मेरे मेहमानों के मामले में मुझे रुसवा न करो। क्या तुममें कोई भला आदमी नहीं?" (79) उन्होंने जवाब दिया, "तुझे तो मालूम ही है कि तेरी बेटियों में हमारा कोई हिस्सा नहीं है।[88] और तू यह भी जानता है कि हम चाहते क्या हैं।" (80) लूत ने कहा,

86. इस क़िस्से की जो तफ़्सीलात क़ुरआन मजीद में बयान हुई हैं उनके अन्दाज़े-बयान से यह बात साफ़ ज़ाहिर होती है कि ये फ़रिश्ते ख़ूबसूरत लड़कों की शक्ल में हज़रत लूत (अलैहि॰) के यहाँ पहुँचे थे और हज़रत लूत (अलैहि॰) इस बात से बेख़बर थे कि ये फ़रिश्ते हैं। यही वजह थी कि इन मेहमानों के आने से लूत (अलैहि॰) को सख़्त परेशानी और दिलतंगी हुई। वे अपनी क़ौम को जानते थे कि वह कैसी बुरे किरदार की और कितनी बेशर्म हो चुकी है।

87. हो सकता है कि हज़रत लूत (अलैहि॰) का इशारा क़ौम की लड़कियों की तरफ़ हो; क्योंकि नबी अपनी क़ौम के लिए बाप जैसा ही होता है और क़ौम की लड़कियाँ उसकी निगाह में अपनी बेटियों की तरह होती हैं और यह भी हो सकता है कि उनका इशारा ख़ुद अपनी बेटियों की तरफ़ हो। बहरहाल दोनों सूरतों में यह गुमान करने की कोई वजह नहीं है कि हज़रत लूत (अलैहि॰) ने उनसे ज़िना (व्यभिचार) करने के लिए कहा होगा। "यह तुम्हारे लिए ज़्यादा पाक़ीज़ा हैं" का जुमला ऐसा ग़लत मतलब लेने की कोई गुंजाइश नहीं छोड़ता। हज़रत लूत (अलैहि॰) का मंशा साफ़ तौर पर यह था कि अपनी ज़िन्सी ख़ाहिश को उस फ़ितरी और जाइज़ तरीक़े से पूरा करो जो अल्लाह ने तय कर दिया है और उसके लिए औरतों की कमी नहीं है।

88. यह जुमला उन लोगों के नफ़्स (मनोवृत्ति) की पूरी तस्वीर खींच देता है कि वे नीचता और गन्दगी में कितने ज़्यादा डूब गए थे। बात सिर्फ़ इस हद तक ही नहीं रही थी कि वे फ़ितरत और पाक़ीज़गी की राह से हटकर एक गन्दी और फ़ितरत के ख़िलाफ़ राह पर चल पड़े थे,

اَنَّ لِىْ بِكُمْ قُوَّةً اَوْ اٰوِىْٓ اِلٰى رُكْنٍ شَدِيْدٍ ۝٨٠ قَالُوْا يٰلُوْطُ اِنَّا رُسُلُ
رَبِّكَ لَنْ يَّصِلُوْٓا اِلَيْكَ فَاَسْرِ بِاَهْلِكَ بِقِطْعٍ مِّنَ الَّيْلِ وَلَا يَلْتَفِتْ
مِنْكُمْ اَحَدٌ اِلَّا امْرَاَتَكَ ؕ اِنَّهٗ مُصِيْبُهَا مَآ اَصَابَهُمْ ؕ اِنَّ مَوْعِدَهُمُ

"काश, मेरे पास इतनी ताक़त होती कि तुम्हें सीधा कर देता, या कोई मज़बूत सहारा ही होता कि उसकी पनाह लेता।" (81) तब फ़रिश्तों ने उससे कहा, "ऐ लूत! हम तेरे रब के भेजे हुए फ़रिश्ते हैं। ये लोग तेरा कुछ न बिगाड़ सकेंगे। बस, तू कुछ रात रहे अपने घरवालों को लेकर निकल जा। और देखो, तुममें से कोई शख़्स पीछे पलटकर न देखे[89], मगर तेरी बीवी (साथ नहीं जाएगी) क्योंकि इसपर भी वही कुछ गुज़रनेवाला है जो इन

बल्कि नौबत यहाँ तक पहुँच गई थी कि उनका सारा लगाव और सारी दिलचस्पी अब इसी गन्दी राह ही में थी। उनके मन में अब तलब उस गन्दगी ही की रह गई थी और वे फ़ितरत और पाकीज़गी की राह के बारे में यह कहने में कोई शर्म महसूस न करते थे कि यह रास्ता तो हमारे लिए बना ही नहीं है। यह अख़लाक़ की गिरावट और मन के बिगाड़ की आख़िरी मंज़िल है जिससे नीचे गिरने का तसव्वुर भी नहीं किया जा सकता। उस शख़्स का मामला तो बहुत हल्का है जो सिर्फ़ नफ़्स की कमज़ोरी की वजह से हराम काम में पड़ जाता है, मगर हलाल को चाहने के क़ाबिल और हराम को बचने के क़ाबिल चीज़ समझता हो। ऐसा शख़्स कभी सुधर भी सकता है, और न सुधरे तब भी ज़्यादा-से-ज़्यादा यही कहा जा सकता है कि वह एक बिगड़ा हुआ इनसान है। मगर जब किसी शख़्स को सारा लगाव सिर्फ़ हराम ही से हो और वह समझे कि हलाल उसके लिए है ही नहीं तो उसकी गिनती इनसानों में नहीं की जा सकती। वह दरअस्ल एक गन्दा कीड़ा है जो गन्दगी ही में परवरिश पाता है और पाक चीज़ों से उसके मिज़ाज का कोई मेल नहीं होता। ऐसे कीड़े अगर किसी सफ़ाईपसन्द इनसान के घर में पैदा हो जाएँ तो वह पहली फ़ुरसत में फ़िनाइल डालकर उनके बुजूद से अपने घर को पाक कर देता है। फिर भला ख़ुदा अपनी ज़मीन पर उन गन्दे कीड़ों के इकट्ठा होने को कब तक गवारा कर सकता था।

89. मतलब यह है कि अब तुम लोगों को बस यह फ़िक्र होनी चाहिए कि किसी तरह जल्दी-से-जल्दी इस इलाक़े से निकल जाओ। कहीं ऐसा न हो कि पीछे शोर और धमाकों की आवाज़ें सुनकर रास्ते में ठहर जाओ और जो इलाक़ा अज़ाब के लिए चुना जा चुका है उसमें अज़ाब का वक़्त आ जाने के बाद भी तुममें से कोई रुका रह जाए।

الصُّبْحُ ۭ اَلَيْسَ الصُّبْحُ بِقَرِيْبٍ ۝٨١ فَلَمَّا جَاۗءَ اَمْرُنَا جَعَلْنَا عَالِيَهَا
سَافِلَهَا وَاَمْطَرْنَا عَلَيْهَا حِجَارَةً مِّنْ سِجِّيْلٍ ڏ مَّنْضُوْدٍ ۝٨٢ مُّسَوَّمَةً عِنْدَ
رَبِّكَ ۭ وَمَا هِيَ مِنَ الظّٰلِمِيْنَ بِبَعِيْدٍ ۝٨٣ وَاِلٰى مَدْيَنَ اَخَاهُمْ شُعَيْبًا ۭ
قَالَ يٰقَوْمِ اعْبُدُوا اللّٰهَ مَا لَكُمْ مِّنْ اِلٰهٍ غَيْرُهٗ ۭ وَلَا تَنْقُصُوا

लोगों पर गुज़रना है।[90] इनकी तबाही के लिए सुबह का वक़्त तय है– सुबह होते अब देर ही कितनी है!"

(82) फिर जब हमारे फ़ैसले का वक़्त आ पहुँचा तो हमने उस बस्ती को तलपट कर दिया और उसपर पकी हुई मिट्टी के पत्थर ताबड़-तोड़ बरसाए[91], (83) जिनमें से हर पत्थर तेरे रब के यहाँ निशानज़दा था।[92] और ज़ालिमों से यह सज़ा कुछ दूर नहीं है।[93] (84) और मदयनवालों की तरफ़ हमने उनके भाई शुऐब को भेजा।[94] उसने कहा, "ऐ मेरी क़ौम के लोगो! अल्लाह की बन्दगी करो, उसके सिवा तुम्हारा कोई ख़ुदा नहीं है।

---

90. यह तीसरा इबरतनाक वाक़िआ है जो इस सूरा में लोगों को यह सबक़ देने के लिए यहाँ बयान किया गया है कि तुमको किसी बुज़ुर्ग की रिश्तेदारी और किसी बुज़ुर्ग की सिफ़ारिश अपने गुनाहों की सज़ा से नहीं बचा सकती।

91. शायद यह अज़ाब एक सख़्त ज़लज़ले और ज्वालामुखी के फटने की शक्ल में आया था। ज़लज़ले ने उनकी बस्तियों को तलपट किया और ज्वालामुखी के फटने से उनके ऊपर ज़ोर का पथराव हुआ, पकी हुई मिट्टी के पत्थरों से मुराद शायद वह पथरीली मिट्टी हैं जो ज्वालामुखी इलाक़े में ज़मीन के नीचे गर्मी और लावे के असर से पत्थर की शक्ल ले लेती है, आज तक 'बहरे-लूत' के दक्षिण और पूर्व के इलाक़े में इस ज्वालामुखी फटने के आसार हर तरफ़ नज़र आते हैं।

92. यानी हर-हर पत्थर ख़ुदा की तरफ़ से नामज़द किया हुआ था कि उसे तबाहकारी का क्या काम करना है और किस पत्थर को किस मुजरिम पर पड़ना है।

93. यानी आज जो लोग ज़ुल्म के इस रास्ते पर चल रहे हैं वे भी इस अज़ाब को अपने से दूर न समझें। अज़ाब अगर लूत (अलैहि०) की क़ौम पर आ सकता था तो इनपर भी आ सकता है। ख़ुदा को न लूत की क़ौम बेबस कर सकी थी, न ये कर सकते हैं।

94. सूरा-7 आराफ़, रुकूअ-11 (आयत- 85-91) के हाशिए सामने रहें।

الْمِكْيَالَ وَالْمِيْزَانَ اِنِّيْٓ اَرٰىكُمْ بِخَيْرٍ وَّاِنِّيْٓ اَخَافُ عَلَيْكُمْ عَذَابَ
يَوْمٍ مُّحِيْطٍ ۝٨٤ وَيٰقَوْمِ اَوْفُوا الْمِكْيَالَ وَالْمِيْزَانَ بِالْقِسْطِ وَلَا
تَبْخَسُوا النَّاسَ اَشْيَآءَهُمْ وَلَا تَعْثَوْا فِي الْاَرْضِ مُفْسِدِيْنَ ۝٨٥
بَقِيَّتُ اللّٰهِ خَيْرٌ لَّكُمْ اِنْ كُنْتُمْ مُّؤْمِنِيْنَ ۚ وَمَآ اَنَا عَلَيْكُمْ بِحَفِيْظٍ ۝٨٦
قَالُوْا يٰشُعَيْبُ اَصَلٰوتُكَ تَاْمُرُكَ اَنْ نَّتْرُكَ مَا يَعْبُدُ اٰبَآؤُنَآ اَوْ اَنْ

और नाप-तौल में कमी न किया करो। आज मैं तुमको अच्छे हाल में देख रहा हूँ, मगर मुझे डर है कि कल तुमपर ऐसा दिन आएगा जिसका अज़ाब सबको घेर लेगा।
(85) और ऐ मेरे क़ौमी भाइयो! ठीक-ठीक इनसाफ़ के साथ पूरा नापो और तौलो और लोगों को उनकी चीज़ों में घाटा न दिया करो और ज़मीन में फ़साद न फैलाते फिरो।
(86) अल्लाह की दी हुई बचत तुम्हारे लिए बेहतर है अगर तुम ईमानवाले हो। और बहरहाल मैं तुम्हारे ऊपर कोई निगराँ नहीं हूँ।"[95]

(87) उन्होंने जवाब दिया, "ऐ शुऐब! क्या तेरी नमाज़ तुझे यह सिखाती है[96] कि हम इन सारे माबूदों को छोड़ दें जिनकी इबादत हमारे बाप-दादा करते थे? या यह कि

95. यानी मेरा कोई ज़ोर तुमपर नहीं है। मैं तो बस एक नसीहत करनेवाला हूँ और तुम्हारी भलाई चाहता हूँ। ज़्यादा-से-ज़्यादा इतना ही कर सकता हूँ कि तुम्हें समझा दूँ। आगे तुम्हें इख़्तियार है, चाहे मानो, चाहे न मानो। सवाल मेरी पूछ-गच्छ से डरने या न डरने का नहीं है, अस्ल चीज़ .ख़ुदा की पूछ-गच्छ है जिसका अगर तुम्हें कुछ डर हो तो अपनी इन हरकतों को बन्द कर दो।

96. यह दरअस्ल एक ताना भरा जुमला है जिसकी रूह आज भी आप हर उस सोसाइटी में मौजूद पाएँगे जो .ख़ुदा से ग़ाफ़िल और उसकी नाफ़रमानी और बुरे कामों में डूबी हुई हो। चूँकि नमाज़ दीनदारी का ज़ाहिर करनेवाला सबसे पहला और सबसे नुमायाँ अमल है, और दीनदारी को .ख़ुदा के नाफ़रमान और बुराइयों में पड़े हुए लोग एक ख़तरनाक, बल्कि सबसे ज़्यादा ख़तरनाक रोग समझते हैं, इसलिए नमाज़ ऐसे लोगों की सोसाइटी में इबादत के बजाए रोग की अलामत समझी जाती है। किसी शख़्स को अपने दरमियान नमाज़ पढ़ते देखकर उन्हें फ़ौरन यह एहसास हो जाता है कि इस शख़्स पर 'दीनदारी के रोग' का हमला हो गया है। फिर ये लोग दीनदारी की इस ख़ासियत को भी जानते हैं कि यह चीज़ जिस शख़्स के अन्दर पैदा हो जाती है वह सिर्फ़ .ख़ुद अपने कामों को सुधारने पर बस नहीं करता, बल्कि दूसरों को भी दुरुस्त करने की

نَّفْعَلَ فِيْٓ اَمْوَالِنَا مَا نَشٰٓؤُا ۭ اِنَّكَ لَاَنْتَ الْحَلِيْمُ الرَّشِيْدُ ۝۸۷

हमें अपने माल को अपनी मरज़ी के मुताबिक़ इस्तेमाल करने का इख़्तियार न हो?[97] बस तू ही तो एक कुशादादिल और सच्चा आदमी रह गया है!"

कोशिश करता है, और बेदीनी और बदअख़्लाक़ी की ख़राबी बताए बग़ैर उससे रहा नहीं जाता, इसलिए नमाज़ पर उनकी बेचैनी सिर्फ़ इसी हैसियत से नहीं होती कि उनके एक भाई पर दीनदारी का दौरा पड़ गया है, बल्कि इसके साथ ही उन्हें यह खटका भी लग जाता है कि अब जल्द ही अख़्लाक़ और ईमानदारी की नसीहत शुरू होनेवाली है और समाजी ज़िन्दगी के हर पहलू में कीड़े निकालने का एक लम्बा सिलसिला छिड़नेवाला है। यही वजह है कि ऐसी सोसाइटी में नमाज़ सबसे बढ़कर लान-तान का शिकार बनती है और अगर कहीं नमाज़ी आदमी ठीक-ठीक उन्हीं अन्देशों के मुताबिक़, जो उसकी नमाज़ से पहले ही पैदा हो चुके थे, बुराइयों पर रोक-टोक और भलाइयों की नसीहत भी शुरू कर दे तब तो नमाज़ इस तरह कोसी जाती है कि मानो यह सारी बला उसी की लाई हुई है।

97. यह बात इस्लाम के मुक़ाबले में जाहिलियत के नज़रिए को पूरी तरह बयान कर रही है। इस्लाम का नज़रिया यह है कि अल्लाह की बन्दगी के सिवा जो तरीक़ा भी है, ग़लत है और उसकी पैरवी न करनी चाहिए; क्योंकि दूसरे किसी तरीक़े के लिए अक़्ल, इल्म और आसमानी किताबों में कोई दलील नहीं है और यह कि अल्लाह की बन्दगी सिर्फ़ एक महदूद मज़हबी दायरे ही में नहीं होनी चाहिए बल्कि रहन-सहन, समाज, कारोबार, सियासत ग़रज़ ज़िन्दगी के तमाम मैदानों में होनी चाहिए। इसलिए कि दुनिया में इनसान के पास जो कुछ भी है, अल्लाह ही का है और इनसान किसी चीज़ को भी अल्लाह की मरज़ी से आज़ाद होकर पूरे अधिकार के साथ इस्तेमाल करने का हक़ नहीं रखता। इसके मुक़ाबले में जाहिलियत का नज़रिया यह है कि बाप-दादा से जो भी तरीक़ा चला आ रहा हो इनसान को उसी की पैरवी करनी चाहिए और उसकी पैरवी के लिए इस दलील के सिवा किसी और दलील की ज़रूरत नहीं है कि वह बाप-दादा का तरीक़ा है। साथ ही यह कि दीन और धर्म का ताल्लुक़ सिर्फ़ पूजा-पाठ से है, रहे हमारी ज़िन्दगी के आम दुनियावी मामले, तो उनमें हमको पूरी आज़ादी होनी चाहिए कि जिस तरह चाहें काम करें।

इससे यह भी अन्दाज़ा किया जा सकता है कि ज़िन्दगी को मज़हबी और दुनियावी दायरों में अलग-अलग बाँटने का ख़याल आज कोई नया ख़याल नहीं है, बल्कि आज से तीन-साढ़े तीन हज़ार साल पहले हज़रत शुऐब (अलैहि॰) की क़ौम को भी इस बँटवारे पर वैसा ही इसरार था जैसा आज मग़रिबवालों और उनके पूर्वी शागिर्दों को है। यह हक़ीक़त में कोई नई 'रौशनी' नहीं है जो इनसान को आज 'ज़ेहनी तरक़्क़ी' की बदौलत मिल गई हो, बल्कि यह वही पुरानी अंधेरी सोच है जो हज़ारों साल पहले की जाहिलियत में भी उसी शान से पाई जाती थी और इसके ख़िलाफ़ इस्लाम की कशमकश भी आज की नहीं है, बहुत पुरानी है।

قَالَ يٰقَوْمِ اَرَءَيْتُمْ اِنْ كُنْتُ عَلٰى بَيِّنَةٍ مِّنْ رَّبِّيْ وَرَزَقَنِيْ مِنْهُ رِزْقًا
حَسَنًا ؕ وَمَاۤ اُرِيْدُ اَنْ اُخَالِفَكُمْ اِلٰى مَاۤ اَنْهٰىكُمْ عَنْهُ ؕ اِنْ اُرِيْدُ اِلَّا
الْاِصْلَاحَ مَا اسْتَطَعْتُ ؕ وَمَا تَوْفِيْقِيْۤ اِلَّا بِاللّٰهِ ؕ عَلَيْهِ تَوَكَّلْتُ
وَاِلَيْهِ اُنِيْبُ ﴿۸۸﴾ وَيٰقَوْمِ لَا يَجْرِمَنَّكُمْ شِقَاقِيْۤ اَنْ يُّصِيْبَكُمْ مِّثْلُ

(88) शुऐब ने कहा, "भाइयो! तुम ख़ुद ही सोचो कि अगर मैं अपने रब की तरफ़ से एक खुली गवाही पर था और फिर उसने मुझे अपने यहाँ से अच्छी रोज़ी भी दी[98], (तो इसके बाद मैं तुम्हारी गुमराहियों और हरामख़ोरियों में तुम्हारा साथी कैसे हो सकता हूँ?) और मैं हरगिज़ नहीं चाहता कि जिन बातों से मैं तुम्हें रोकता हूँ, उन्हें ख़ुद करूँ।[99] मैं तो सुधार करना चाहता हूँ जहाँ तक भी मेरा बस चले। और यह जो कुछ मैं करना चाहता हूँ उसका सारा दारोमदार अल्लाह की तौफ़ीक़ पर है। उसी पर मैंने भरोसा किया और हर मामले में उसी की तरफ़ मैं रुजू करता हूँ। (89) और ऐ मेरे क़ौमी भाइयो! मेरे

98. 'रिज़्क़' का लफ़्ज़ यहाँ दोहरे मानी दे रहा है। इसका एक मतलब तो वह सच्चा और सही इल्म है जो अल्लाह तआला की तरफ़ से दिया गया हो। और दूसरे मानी वही हैं जो आमतौर से इस लफ़्ज़ से समझे जाते हैं, यानी वे ज़रिए जो ज़िन्दगी गुज़ारने के लिए अल्लाह तआला अपने बन्दों को देता है। पहले मानी के लिहाज़ से यह आयत उसी मज़मून को अदा कर रही है जो इस सूरा में मुहम्मद (सल्ल॰), नूह (अलैहि॰) और सालेह (अलैहि॰) की ज़बान से अदा होता चला आया है कि नुबूवत से पहले भी मैं अपने रब की तरफ़ से हक़ की खुली-खुली गवाही अपने नफ़्स में और कायनात की निशानियों में पा रहा था, और उसके बाद मेरे रब ने सीधे तौर पर ख़ुद ही हक़ का इल्म भी मुझे दे दिया। अब मेरे लिए किस तरह मुमकिन है कि जान-बूझकर उन गुमराहियों और बदअख़लाक़ियों में तुम्हारा साथ दूँ जिनमें तुम पड़े हो। और दूसरे मानी के लिहाज़ से यह आयत उस ताने का जवाब है जो उन लोगों ने हज़रत शुऐब को दिया था कि "बस तुम ही तो एक कुशादा-दिल और सच्चाई-पसन्द आदमी रह गए हो।" इस तेज़ और तीखे हमले का यह ठण्डा जवाब दिया गया है कि भाइयो, अगर मेरे रब ने मुझे हक़ को पहचाननेवाली समझ भी दी हो और हलाल रिज़्क़ भी दिया हो तो आख़िर तुम्हारे तानों से यह मेहरबानी, नामेहरबानी कैसे हो जाएगी। आख़िर मेरे लिए यह कैसे जाइज़ हो सकता है कि जब ख़ुदा ने मुझपर यह मेहरबानी की है तो मैं तुम्हारी गुमराहियों और हरामख़ोरियों को हक़ और हलाल कहकर उसकी नाशुक्री करूँ।

99. यानी मेरी सच्चाई का तुम इस बात से अन्दाज़ा कर सकते हो कि जो कुछ दूसरों से कहता हूँ

مَآ اَصَابَ قَوْمَ نُوْحٍ اَوْ قَوْمَ هُوْدٍ اَوْ قَوْمَ صٰلِحٍ ؕ وَمَا قَوْمُ لُوْطٍ
مِّنْكُمْ بِبَعِيْدٍ ﴿٨٩﴾ وَاسْتَغْفِرُوْا رَبَّكُمْ ثُمَّ تُوْبُوْٓا اِلَيْهِ ؕ اِنَّ رَبِّيْ رَحِيْمٌ
وَّدُوْدٌ ﴿٩٠﴾ قَالُوْا يٰشُعَيْبُ مَا نَفْقَهُ كَثِيْرًا مِّمَّا تَقُوْلُ وَاِنَّا لَنَرٰىكَ فِيْنَا

ख़िलाफ़ तुम्हारी हठधर्मी कहीं यह नौबत न पहुँचा दे कि आख़िरकार तुमपर भी वही अज़ाब आकर रहे जो नूह या हूद या सालेह की क़ौम पर आया था। और लूत की क़ौम तो तुमसे कुछ ज़्यादा दूर भी नहीं है।[100] (90) देखो, अपने रब से माफ़ी माँगो और उसकी तरफ़ पलट आओ। बेशक मेरा रब रहम करनेवाला है और अपनी मख़लूक़ (सृष्टि) से मुहब्बत रखता है।"[101]

(91) उन्होंने जवाब दिया, "ऐ शुऐब! तेरी बहुत-सी बातें तो हमारी समझ ही में नहीं

उसी पर ख़ुद अमल करता हूँ। अगर मैं तुमको ग़ैर-ख़ुदाओं के आस्तानों से रोकता और ख़ुद किसी आस्ताने का मुजाविर बन बैठा होता तो बेशक तुम यह कह सकते थे कि अपनी पीरी चमकाने के लिए दूसरी दुकानों की साख बिगाड़ना चाहता है। अगर मैं तुमको हराम के माल खाने से मना करता और ख़ुद अपने कारोबार में बेईमानियाँ कर रहा होता तो ज़रूर तुम यह शक कर सकते थे कि मैं अपनी साख जमाने के लिए ईमानदारी का ढोल पीट रहा हूँ। लेकिन तुम देखते हो कि मैं ख़ुद उन बुराइयों से बचता हूँ जिनसे तुमको मना करता हूँ। मेरी अपनी ज़िन्दगी उन धब्बों से पाक है जिनसे तुम्हें पाक देखना चाहता हूँ। मैंने अपने लिए भी उसी तरीक़े को पसन्द किया है जिसकी तुम्हें दावत दे रहा हूँ। यह चीज़ इस बात की गवाही के लिए काफ़ी है कि मैं अपनी इस दावत में सच्चा हूँ।

100. यानी लूत (अलैहि॰) की क़ौम का वाक़िआ तो अभी ताज़ा ही है और तुम्हारे क़रीब ही के इलाक़े में पेश आ चुका है। ज़्यादा इमकान यह है कि उस वक़्त लूत (अलैहि॰) की क़ौम की तबाही पर 6-7 सौ साल से ज़्यादा न बीते थे। और जुग़राफ़ी हैसियत (भौगोलिक दृष्टि) से भी शुऐब (अलैहि॰) की क़ौम का मुल्क उस इलाक़े से बिलकुल मिला हुआ था, जहाँ लूत (अलैहि॰) की क़ौम रहती थी।

101. यानी अल्लाह तआला पत्थर-दिल और बेरहम नहीं है। उसको अपने पैदा किए हुए लोगों से कोई दुश्मनी नहीं है कि बिना वजह सज़ा देने ही को उसका जी चाहे और अपने बन्दों को मार-मारकर ही वह ख़ुश हो। तुम लोग अपनी सरकशियों में जब हद से गुज़र जाते हो और किसी तरह बिगाड़ फैलाने से नहीं मानते तब वह न चाहते हुए तुम्हें सज़ा देता है। वरना उसका हाल तो यह है कि तुम चाहे कितने ही क़ुसूर कर चुके हो, जब भी अपने किए हुए पर शर्मिन्दा होकर उसकी तरफ़ पलटोगे उसकी रहमत के दामन को अपने लिए कुशादा पाओगे, क्योंकि

ضَعِيفًا ۚ وَلَوْلَا رَهْطُكَ لَرَجَمْنَاكَ ۖ وَمَا أَنتَ عَلَيْنَا بِعَزِيزٍ ﴿٩١﴾

आतीं।[102] और हम देखते हैं कि तू हमारे बीच एक कमज़ोर आदमी है, तेरी बिरादरी न होती तो हम कभी का पथराव करके तुझे मार डालते, तेरा बलबूता तो इतना नहीं है कि हमपर भारी हो।"[103]

अपने पैदा किए हुए लोगों से वह बहुत मुहब्बत रखता है।

इस बात को नबी (सल्ल॰) ने दो बहुत ही बेहतरीन मिसालों से बयान किया है। एक मिसाल तो आप (सल्ल॰) ने यह दी है कि अगर तुममें से किसी शख़्स का ऊँट एक सूखे रेगिस्तान में खो गया हो और उसके खाने-पीने का सामान भी उसी ऊँट पर हो और वह शख़्स उसको ढूँड-ढूँडकर मायूस हो चुका हो यहाँ तक कि ज़िन्दगी से बेआस होकर एक पेड़ के नीचे लेट गया हो, और ठीक इस हालत में अचानक वह देखे कि उसका ऊँट सामने खड़ा है, तो उस वक्त जैसी कुछ .ख़ुशी उसको होगी, उससे बहुत ज़्यादा .ख़ुशी अल्लाह को अपने भटके हुए बन्दे के पलट आने से होती है। दूसरी मिसाल इससे भी ज़्यादा असरदार है। हज़रत उमर (रज़ि॰) फ़रमाते हैं कि एक बार नबी (सल्ल॰) की ख़िदमत में कुछ जंगी क़ैदी गिरफ़्तार होकर आए। उनमें एक औरत भी थी जिसका दूध पीता बच्चा छूट गया था और वह ममता की मारी ऐसी बेचैन थी कि जिस बच्चे को पा लेती उसे छाती से चिमटाकर दूध पिलाने लगती थी। नबी (सल्ल॰) ने उसका हाल देखकर हम लोगों से पूछा, "क्या तुम लोग यह उम्मीद कर सकते हो कि यह माँ अपने बच्चे को .ख़ुद अपने हाथों आग में फेंक देगी?" हमने कहा, "हरगिज़ नहीं, .ख़ुद फेंकना तो दूर, वह अपने आप गिरता हो तो यह अपनी हद तक तो उसे बचाने में कोई कसर उठा न रखेगी।" अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "अल्लाह का रहम अपने बन्दों पर इससे बहुत ज़्यादा है जो यह औरत अपने बच्चे के लिए रखती है।"

और वैसे भी ग़ौर करने से यह बात अच्छी तरह समझ में आ सकती है। वह अल्लाह तआला ही तो है जिसने बच्चों की परवरिश के लिए माँ-बाप के दिल में मुहब्बत पैदा की है। वरना हक़ीक़त यह है कि अगर .ख़ुदा इस मुहब्बत को पैदा न करता तो माँ और बाप से बढ़कर बच्चों का कोई दुश्मन न होता क्योंकि; सबसे बढ़कर वे उन्हीं के लिए तकलीफ़देह होते हैं। अब हर शख़्स .ख़ुद समझ सकता है कि जो .ख़ुदा माँ और बाप की मुहब्बत और प्यार का पैदा करनेवाला है, .ख़ुद उसके अन्दर अपने पैदा किए हुओं के लिए कैसी कुछ मुहब्बत मौजूद होगी।

102. यह समझ में न आना कुछ इस वजह से न था कि हज़रत शुऐब (अलैहि॰) किसी दूसरी ज़बान में बात करते थे, या उनकी बातें बहुत मुश्किल और पेचीदा होती थीं। बातें तो सब साफ़ और सीधी ही थीं और उसी ज़बान में की जाती थीं जो ये लोग बोलते थे, लेकिन उनके ज़ेहन का साँचा इतना टेढ़ा हो चुका था कि हज़रत शुऐब (अलैहि॰) की सीधी बातें किसी तरह उसमें न उतर सकती थीं। क़ायदे की बात है कि जो लोग तास्सुब और अपने मन की ख़ाहिश

قَالَ يٰقَوْمِ اَرَهْطِيْٓ اَعَزُّ عَلَيْكُمْ مِّنَ اللّٰهِ ۭ وَاتَّخَذْتُمُوْهُ وَرَاۗءَكُمْ
ظِهْرِيًّا ۭ اِنَّ رَبِّيْ بِمَا تَعْمَلُوْنَ مُحِيْطٌ ﴿٩٢﴾ وَيٰقَوْمِ اعْمَلُوْا عَلٰي مَكَانَتِكُمْ
اِنِّىْ عَامِلٌ ۭ سَوْفَ تَعْلَمُوْنَ ۙ مَنْ يَّاْتِيْهِ عَذَابٌ يُّخْزِيْهِ وَمَنْ هُوَ
كَاذِبٌ ۭ وَارْتَقِبُوْٓا اِنِّىْ مَعَكُمْ رَقِيْبٌ ﴿٩٣﴾ وَلَمَّا جَاۗءَ اَمْرُنَا نَجَّيْنَا
شُعَيْبًا وَّالَّذِيْنَ اٰمَنُوْا مَعَهٗ بِرَحْمَةٍ مِّنَّا وَاَخَذَتِ الَّذِيْنَ ظَلَمُوا

(92) शुऐब ने कहा, "भाइयो! क्या मेरी बिरादरी तुमपर अल्लाह से ज़्यादा भारी है कि तुमने (बिरादरी का तो डर रखा और) अल्लाह को बिलकुल पीठ पीछे डाल दिया? जान रखो कि जो कुछ तुम कर रहे हो, वह अल्लाह की पकड़ से बाहर नहीं है। (93) ऐ मेरी क़ौम के लोगो! तुम अपने तरीक़े पर काम किए जाओ और मैं अपने तरीक़े पर करता रहूँगा, जल्दी ही तुम्हें मालूम हो जाएगा कि किसपर रुसवाई का अज़ाब आता है और कौन झूठा है। तुम भी इन्तिज़ार करो और मैं भी तुम्हारे साथ इन्तिज़ार कर रहा हूँ।"

(94) आख़िरकार जब हमारे फ़ैसले का वक़्त आ गया तो हमने अपनी रहमत से शुऐब और उसके साथी ईमानवालों को बचा लिया और जिन लोगों ने ज़ुल्म किया था,

---

की बन्दगी में सख़्ती के साथ पड़े होते हैं और सोचने के किसी ख़ास ढंग पर जम चुके होते हैं, वे अव्वल तो कोई ऐसी बात सुन ही नहीं सकते जो उनके ख़यालात से अलग हो, और अगर सुन भी लें तो उनकी समझ में नहीं आता कि ये किस दुनिया की बातें की जा रही हैं।

103. यह बात सामने रहे कि ठीक यही सूरतेहाल इन आयतों के उतरने के वक़्त मक्का में पेश आ रही थी। उस वक़्त क़ुरैश के लोग भी इसी तरह मुहम्मद (सल्ल.) के ख़ून के प्यासे हो रहे थे और चाहते थे कि आप (सल्ल.) की ज़िन्दगी का ख़ातिमा कर दें। लेकिन सिर्फ़ इस वजह से आप (सल्ल.) पर हाथ डालते हुए डरते थे कि बनी-हाशिम आप (सल्ल.) के पीछे खड़े थे। इसलिए हज़रत शुऐब (अलैहि.) और उनकी क़ौम का यह क़िस्सा ठीक-ठीक क़ुरैश और मुहम्मद (सल्ल.) के मामले पर चस्पाँ करते हुए बयान किया जा रहा है, और आगे हज़रत शुऐब का जो बेहद सबक़आमोज़ जवाब बयान किया गया है उसके अन्दर ये मानी छिपे हैं कि ऐ क़ुरैश के लोगो! तुमको भी मुहम्मद (सल्ल.) की तरफ़ से यही जवाब है।

الصَّيْحَةُ فَأَصْبَحُوا فِي دِيَارِهِمْ جٰثِمِينَ ﴿٩٤﴾ كَأَنْ لَّمْ يَغْنَوْا فِيهَا ۗ أَلَا
ع ٨ بُعْدًا لِّمَدْيَنَ كَمَا بَعِدَتْ ثَمُودُ ﴿٩٥﴾ وَلَقَدْ أَرْسَلْنَا مُوسٰى بِاٰيٰتِنَا
وَسُلْطٰنٍ مُّبِينٍ ﴿٩٦﴾ إِلٰى فِرْعَوْنَ وَمَلَا۟ئِهٖ فَاتَّبَعُوٓا أَمْرَ فِرْعَوْنَ ۚ وَمَآ
أَمْرُ فِرْعَوْنَ بِرَشِيدٍ ﴿٩٧﴾ يَقْدُمُ قَوْمَهٗ يَوْمَ الْقِيٰمَةِ فَأَوْرَدَهُمُ النَّارَ ۖ
وَبِئْسَ الْوِرْدُ الْمَوْرُودُ ﴿٩٨﴾ وَأُتْبِعُوا فِي هٰذِهٖ لَعْنَةً وَّيَوْمَ الْقِيٰمَةِ ۚ

उनको एक सख़्त धमाके ने ऐसा पकड़ा कि वे अपनी बस्तियों में बेहिसो-हरकत पड़े-के-पड़े रह गए, (95) मानो वे कभी वहाँ रहे-बसे ही न थे।

सुनो! मदयनवाले भी दूर फेंक दिए गए जिस तरह समूद फेंके गए थे।

(96-97) और मूसा को हमने अपनी निशानियों और (पैग़म्बर बनाए जाने की) खुली-खुली सनद के साथ फ़िरऔन और उसके दरबारियों की तरफ़ भेजा, मगर उन्होंने फ़िरऔन के हुक्म की पैरवी की, हालाँकि फ़िरऔन का हुक्म सच्चाई पर न था। (98) क़ियामत के दिन वह अपनी क़ौम के आगे-आगे होगा और अपनी पेशवाई में उन्हें दोज़ख़ की तरफ़ ले जाएगा।[104] कैसी बुरी आने की जगह है यह जिसपर कोई पहुँचे! (99) और उन लोगों पर दुनिया में भी लानत पड़ी और क़ियामत के दिन भी पड़ेगी।

104. इस आयत से और क़ुरआन मजीद के कुछ दूसरे बयानों से मालूम होता है कि जो लोग दुनिया में किसी क़ौम या जमाअत के रहनुमा होते हैं वही क़ियामत के दिन भी उसके रहनुमा होंगे। अगर वे दुनिया में नेकी और सच्चाई और हक़ की तरफ़ रहनुमाई करते हैं तो जिन लोगों ने यहाँ उनकी पैरवी की है वे क़ियामत के दिन भी उन्हीं के झण्डे तले जमा होंगे और उनकी पेशवाई में जन्नत की तरफ़ जाएँगे, और अगर वे दुनिया में किसी गुमराही, किसी बदअख़लाक़ी (अनैतिकता) या किसी ऐसी राह की तरफ़ लोगों को बुलाते हैं जो सच्चे दीन की राह नहीं है, तो जो लोग यहाँ उनके पीछे चल रहे हैं वे वहाँ भी उनके पीछे होंगे और उन्हीं की पेशवाई में जहन्नम की तरफ़ जाएँगे। यही बात नबी (सल्ल॰) के इस फ़रमान में पाई जाती है, "क़ियामत के दिन जाहिलियत की शायरी का झण्डा इमरुउल-क़ैस के हाथ में होगा और अरब जाहिलियत के तमाम शाइर (कवि) उसी की पेशवाई में दोज़ख़ की तरफ़ जाएँगे।" अब यह मंज़र हर शख़्स का अपना तसव्वुर और ख़याल उसकी आँखों के सामने खींच सकता है कि ये दोनों तरह के जुलूस किस शान से अपनी तय हो चुकी मंज़िल की तरफ़ जाएँगे। ज़ाहिर है कि जिन लीडरों ने

بِئْسَ الرِّفْدُ الْمَرْفُوْدُ ﴿٩٩﴾ ذٰلِكَ مِنْ اَنْۢبَآءِ الْقُرٰى نَقُصُّهٗ عَلَيْكَ مِنْهَا
قَآئِمٌ وَّحَصِيْدٌ ﴿١٠٠﴾ وَمَا ظَلَمْنٰهُمْ وَلٰكِنْ ظَلَمُوْٓا اَنْفُسَهُمْ فَمَآ اَغْنَتْ
عَنْهُمْ اٰلِهَتُهُمُ الَّتِيْ يَدْعُوْنَ مِنْ دُوْنِ اللّٰهِ مِنْ شَيْءٍ لَّمَّا جَآءَ اَمْرُ
رَبِّكَ ۭ وَمَا زَادُوْهُمْ غَيْرَ تَتْبِيْبٍ ﴿١٠١﴾ وَكَذٰلِكَ اَخْذُ رَبِّكَ اِذَآ اَخَذَ
الْقُرٰى وَهِيَ ظَالِمَةٌ ۭ اِنَّ اَخْذَهٗٓ اَلِيْمٌ شَدِيْدٌ ﴿١٠٢﴾ اِنَّ فِيْ ذٰلِكَ لَاٰيَةً لِّمَنْ
خَافَ عَذَابَ الْاٰخِرَةِ ۭ ذٰلِكَ يَوْمٌ مَّجْمُوْعٌ ۙ لَّهُ النَّاسُ وَذٰلِكَ يَوْمٌ

कैसा बुरा बदला है यह जो किसी को मिले!

(100) यह कुछ बस्तियों की ख़बरें हैं जो हम तुम्हें सुना रहे हैं। इनमें से कुछ अब भी खड़ी हैं और कुछ की फ़सल कट चुकी है। (101) हमने उनपर ज़ुल्म नहीं किया, उन्होंने आप ही अपने ऊपर सितम ढाया और जब अल्लाह का हुक्म आ गया तो उनके वे माबूद, जिन्हें वे अल्लाह को छोड़कर पुकारा करते थे, उनके कुछ काम न आ सके और उन्होंने हलाकत और बरबादी के सिवा उन्हें कुछ फ़ायदा न पहुँचाया।

(102) और तेरा रब जब किसी ज़ालिम बस्ती को पकड़ता है तो फिर उसकी पकड़ ऐसी ही हुआ करती है, सच तो यह है कि उसकी पकड़ बड़ी सख़्त और दर्दनाक होती है। (103) हक़ीक़त यह है कि उसमें एक निशानी है हर उस शख़्स के लिए जो आख़िरत के अज़ाब का डर रखे।[105] वह एक दिन होगा जिसमें सब लोग जमा होंगे और फिर जो

दुनिया में लोगों को गुमराह किया और सच के ख़िलाफ़ राहों पर चलाया है, उनकी पैरवी करनेवाले जब अपनी आँखों से देख लेंगे कि ये ज़ालिम हमको किस भयानक अंजाम की तरफ़ खींच लाए हैं, तो वे अपनी सारी मुसीबतों का ज़िम्मेदार उन्हीं को समझेंगे और उनका जुलूस इस शान के साथ दोज़ख़ की राह पर बढ़ रहा होगा कि आगे-आगे वे होंगे और पीछे-पीछे उनकी पैरवी करनेवालों का हुजूम उनको गालियाँ देता हुआ और उनपर लानतों की बौछार करता हुआ जा रहा होगा। इसके बरख़िलाफ़ जिन लोगों की रहनुमाई ने लोगों को नेमत भरी जन्नतों का हक़दार बनाया होगा उनकी पैरवी करनेवाले अपना यह भला अंजाम देखकर अपने लीडरों को दुआएँ देते हुए और उनपर तारीफ़ों के फूल बरसाते हुए चलेंगे।

105. यानी तारीख़ के इन वाक़िआत में एक ऐसी निशानी है जिसपर अगर इनसान ग़ौर करे तो उसे यक़ीन आ जाएगा कि आख़िरत का अज़ाब ज़रूर सामने आनेवाला है और उसके बारे में

مَّشْهُوْدٌ ﴿١٠٣﴾ وَمَا نُؤَخِّرُهٗٓ اِلَّا لِاَجَلٍ مَّعْدُوْدٍ ﴿١٠٤﴾ يَوْمَ يَاْتِ لَا تَكَلَّمُ

कुछ भी उस दिन होगा सबकी आँखों के सामने होगा। (104) हम उसके लाने में कुछ बहुत ज़्यादा देर नहीं कर रहे हैं, बस एक गिनी-चुनी मुद्दत इसके लिए तय है। (105) जब

पैग़म्बरों की दी हुई ख़बर सच्ची है। साथ ही इसी निशानी से वह यह भी मालूम कर सकता है कि आख़िरत का अज़ाब कैसा सख़्त होगा और यह इल्म उसके दिल में ख़ुदा का डर पैदा करके उसे सीधा कर देगा।

अब रही यह बात कि तारीख़ में यह क्या चीज़ है जो आख़िरत और उसके अज़ाब की अलामत कही जा सकती है, तो हर वह शख़्स उसे आसानी के साथ समझ सकता है जो तारीख़ को सिर्फ़ वाक़िआत का मजमूआ ही न समझता हो बल्कि उन वाक़िआत के असबाब और वजहों पर भी कुछ ग़ौर करता हो और उनसे नतीजे भी निकालने का आदी हो। हज़ारों साल की इनसानी तारीख़ में क़ौमों और जमाअतों का उठना और गिरना जिस तरह लगातार और ज़ाब्ते के साथ सामने आता रहा है, और फिर इस गिरने और उठने में जिस तरह खुले तौर पर कुछ अख़लाक़ी वजहें काम करती रही हैं, और गिरनेवाली क़ौमें जैसी-जैसी इबरतनाक सूरतों से गिरी हैं, ये सब कुछ इस हक़ीक़त की तरफ़ खुला इशारा है कि इनसान इस कायनात में एक ऐसी हुकूमत का ग़ुलाम है जो सिर्फ़ अंधे फ़ितरी कानूनों पर हुकूमत नहीं कर रही है, बल्कि अपना एक सही और मुनासिब अख़लाक़ी क़ानून रखती है जिसके मुताबिक़ वह अख़लाक़ की एक ख़ास हद से ऊपर रहनेवालों को जज़ा (इनाम) देती है, इससे नीचे उतरनेवालों को कुछ मुद्दत तक ढील देती रहती है, और जब वे उससे बहुत ज़्यादा नीचे चले जाते हैं तो फिर उन्हें गिराकर ऐसा फेंकती है कि वे एक दास्ताने-इबरत ही बनकर रह जाते हैं। इन वाक़िआत का हमेशा एक तरतीब (क्रम) के साथ पेश आते रहना इस बात में शक करने की ज़रा भी गुंजाइश नहीं छोड़ता कि आमाल का अच्छा और बुरा बदला इस दुनिया का एक अटल क़ानून है।

फिर जो अज़ाब अलग-अलग क़ौमों पर आए हैं उनपर और ज़्यादा ग़ौर करने से यह अन्दाज़ा भी होता है कि इनसाफ़ के मुताबिक़ आमाल के अच्छे और बुरे बदले के क़ानून के जो अख़लाक़ी तक़ाज़े हैं वे एक हद तक तो उन अज़ाबों से ज़रूर पूरे हुए हैं मगर बड़ी हद तक अभी अधूरे हैं; क्योंकि दुनिया में जो अज़ाब आया उसने सिर्फ़ उस नस्ल को पकड़ा जो अज़ाब के वक़्त मौजूद थी। रहीं वे नस्लें जो शरारतों के बीज बोकर और ज़ुल्म और बुरे कामों की फ़सलें तैयार करके कटाई से पहले ही दुनिया से विदा हो चुकी थीं और जिनके करतूतों का ख़ामियाज़ा बाद की नस्लों को भुगतना पड़ा वे तो जैसे बदले के क़ानून के अमल से साफ़ ही बच निकली हैं। अब अगर हम तारीख़ के मुताले से सल्तनते-कायनात (सृष्टि-व्यवस्था) के मिज़ाज को ठीक-ठीक समझ चुके हैं तो हमारा यह मुताला ही इस बात की गवाही देने के लिए काफ़ी है कि अक़्ल और इनसाफ़ के मुताबिक़ आमाल के बदले के क़ानून के जो अख़लाक़ी तक़ाज़े अभी अधूरे हैं, उनको पूरा करने के लिए यह इनसाफ़ करनेवाली सल्तनत यक़ीनी तौर पर फिर एक दूसरी दुनिया क़ायम करेगी और वहाँ तमाम ज़ालिमों को उनके करतूतों का

نَفْسٌ اِلَّا بِاِذْنِهٖ ۚ فَمِنْهُمْ شَقِيٌّ وَّسَعِيْدٌ ﴿۱۰۵﴾ فَاَمَّا الَّذِيْنَ شَقُوْا فَفِي
النَّارِ لَهُمْ فِيْهَا زَفِيْرٌ وَّشَهِيْقٌ ﴿۱۰۶﴾ خٰلِدِيْنَ فِيْهَا مَا دَامَتِ السَّمٰوٰتُ
وَالْاَرْضُ اِلَّا مَا شَآءَ رَبُّكَ ۗ اِنَّ رَبَّكَ فَعَّالٌ لِّمَا يُرِيْدُ ﴿۱۰۷﴾ وَاَمَّا
الَّذِيْنَ سُعِدُوْا فَفِي الْجَنَّةِ خٰلِدِيْنَ فِيْهَا مَا دَامَتِ السَّمٰوٰتُ

वह आएगा तो किसी को बात करने की मजाल न होगी, सिवाए इसके कि ख़ुदा की इजाज़त से कुछ अर्ज़ करे।[106] फिर कुछ लोग उस दिन बदनसीब होंगे और कुछ नसीबवाले। (106-107) जो बदनसीब होंगे वे दोज़ख़ में जाएँगे (जहाँ गर्मी और प्यास की ज़्यादती से वे हाँफेंगे और फुंकारे मारेंगे और इसी हालत में वे हमेशा रहेंगे, जब तक कि ज़मीन व आसमान क़ायम हैं[107], सिवाए इसके कि तेरा रब कुछ और चाहे। बेशक तेरा रब पूरा इख़्तियार रखता है कि जो चाहे करे।[108] (108) रहे वे लोग जो अच्छे

पूरा-पूरा बदला दिया जाएगा और वह बदला दुनिया के इन अज़ाबों से भी ज़्यादा सख़्त होगा। (देखें—सूरा-7 आराफ़, हाशिया- 30; सूरा-10 यूनुस, हाशिया- 10)

106. यानी ये बेवक़ूफ़ लोग अपनी जगह इस भरोसे में हैं कि फ़ुलाँ हज़रत हमारी सिफ़ारिश करके हमें बचा लेंगे, फ़ुलाँ बुज़ुर्ग अड़कर बैठ जाएँगे और अपने एक-एक शागिर्द को बख़्शवाए बिना न मानेंगे, फ़ुलाँ साहब जो अल्लाह मियाँ के चहेते हैं जन्नत के रास्ते में मचल बैठेंगे और अपने दामन थामनेवालों की बख़्शिश का परवाना लेकर ही टलेंगे। हालाँकि अड़ना और मचलना कैसा, उस जलाल से भरी अदालत में तो किसी बड़े-से-बड़े इनसान और किसी इज़्ज़तदार-से-इज़्ज़तदार फ़रिश्ते को भी कुछ कहने की जुर्अत न होगी और अगर कोई कुछ कह भी सकेगा तो उस वक़्त जबकि सबसे बड़ा बादशाह (अल्लाह) ख़ुद उसे कुछ बोलने की इजाज़त दे दे। तो जो लोग यह समझते हुए ग़ैर-ख़ुदा के आस्तानों पर नज़्रें और नियाज़ें चढ़ा रहे हैं कि ये अल्लाह के यहाँ बहुत पहुँच रखते हैं, और उनकी सिफ़ारिश के भरोसे पर अपने आमालनामे काले किए जा रहे हैं, उनको वहाँ सख़्त मायूसी का सामना करना पड़ेगा।

107. इन लफ़्ज़ों से या तो आख़िरत की दुनिया के ज़मीन और आसमान मुराद हैं, या फिर सिर्फ़ मुहावरे के तौर पर उनको हमेशा रहने के मानी में इस्तेमाल किया गया है। बहरहाल मौजूदा ज़मीन और आसमान तो मुराद नहीं हो सकते; क्योंकि क़ुरआन के बयान के मुताबिक़ ये क़ियामत के दिन बदल डाले जाएँगे और यहाँ जिन वाक़िआत का ज़िक्र हो रहा है वे क़ियामत के बाद सामने आनेवाले हैं।

108. यानी कोई और ताक़त तो ऐसी है ही नहीं जो इन लोगों को इस हमेशा रहनेवाले अज़ाब से

وَالْاَرْضُ اِلَّا مَا شَآءَ رَبُّكَ ۭ عَطَآءً غَيْرَ مَجْذُوْذٍ ۝١٠٨ فَلَا تَكُ فِيْ مِرْيَةٍ
مِّمَّا يَعْبُدُ هٰٓؤُلَآءِ ۭ مَا يَعْبُدُوْنَ اِلَّا كَمَا يَعْبُدُ اٰبَاۗؤُهُمْ مِّنْ قَبْلُ ۭ وَاِنَّا
لَمُوَفُّوْهُمْ نَصِيْبَهُمْ غَيْرَ مَنْقُوْصٍ ۝١٠٩ وَلَقَدْ اٰتَيْنَا مُوْسَى الْكِتٰبَ ع

नसीबवाले निकलेंगे, तो वे जन्नत में जाएँगे और वहाँ हमेशा रहेंगे जब तक ज़मीन व आसमान क़ायम हैं, सिवाए इसके कि तेरा रब कुछ और चाहे।[109] ऐसी बख़्शिश उनको मिलेगी कि जिसका सिलसिला कभी ख़त्म न होगा।

(109) तो ऐ नबी! तू उन माबूदों की तरफ़ से किसी शक में न रह जिनकी ये लोग इबादत कर रहे हैं। ये तो (बस लकीर के फ़क़ीर बने हुए) उसी तरह पूजा-पाठ किए जा रहे हैं जिस तरह पहले इनके बाप-दादा करते थे[110], और हम इनका हिस्सा इन्हें भरपूर देंगे, बिना इसके कि इसमें कुछ काट-कसर हो।

(110) हम इससे पहले मूसा को भी किताब दे चुके हैं और उसके बारे में भी

बचा सके। अलबत्ता अगर अल्लाह तआला ख़ुद ही किसी के अंजाम को बदलना चाहे या किसी को हमेशा रहनेवाला अज़ाब देने के बजाए एक मुद्दत तक अज़ाब देकर माफ़ कर देने का फ़ैसला करे तो उसे ऐसा करने का पूरा इख़्तियार है, क्योंकि अपने क़ानून का बनानेवाला वह ख़ुद ही है, उससे ऊपर कोई क़ानून ऐसा नही है जो उसके इख़्तियारात को महदूद करता हो।

109. यानी उनके जन्नत में ठहरने का दारोमदार भी किसी ऐसे बड़े क़ानून पर नहीं है जिसने अल्लाह को ऐसा करने पर मजबूर कर रखा हो, बल्कि यह सरासर अल्लाह की मेहरबानी होगी कि वह उनको वहाँ रखेगा, अगर वह उनकी क़िस्मत भी बदलना चाहे तो उसे बदलने का पूरा इख़्तियार हासिल है।

110. इसका मतलब यह नहीं है कि नबी (सल्ल॰) सचमुच उन माबूदों की तरफ़ से किसी शक में थे, बल्कि असल में ये बातें नबी (सल्ल॰) को ख़िताब करते हुए आम लोगों को सुनाई जा रही हैं। मतलब यह है कि किसी समझदार आदमी को इस शक में न रहना चाहिए कि ये लोग जो इन माबूदों की इबादत करने और उनसे दुआएँ माँगने में लगे हुए हैं तो आख़िर कुछ तो उन्होंने देखा होगा जिसकी वजह से ये उनसे फ़ायदे की उम्मीदें रखते हैं। हक़ीक़त यह है कि ये इबादत और नज़्रें और नियाज़ें और दुआएँ किसी इल्म, किसी तजरिबे और किसी आँखों देखी सच्चाई की बिना पर नहीं है, बल्कि ये सब कुछ निरी अन्धी पैरवी की वजह से हो रहा है। आख़िर यही आस्ताने पिछली क़ौमों के यहाँ भी तो मौजूद थे। और ऐसी ही उनकी करामतें (चमत्कार) उनमें भी मशहूर थीं। मगर जब ख़ुदा का अज़ाब आया तो वे तबाह हो गईं और ये आस्ताने यूँ ही धरे-के-धरे रह गए।

فَاخْتُلِفَ فِيهِ ۗ وَلَوْلَا كَلِمَةٌ سَبَقَتْ مِنْ رَّبِّكَ لَقُضِيَ بَيْنَهُمْ ۚ وَإِنَّهُمْ
لَفِي شَكٍّ مِّنْهُ مُرِيبٍ ﴿١١٠﴾ وَإِنَّ كُلًّا لَّمَّا لَيُوَفِّيَنَّهُمْ رَبُّكَ أَعْمَالَهُمْ ۚ إِنَّهُ
بِمَا يَعْمَلُونَ خَبِيرٌ ﴿١١١﴾ فَاسْتَقِمْ كَمَا أُمِرْتَ وَمَنْ تَابَ مَعَكَ وَلَا
تَطْغَوْا ۚ إِنَّهُ بِمَا تَعْمَلُونَ بَصِيرٌ ﴿١١٢﴾ وَلَا تَرْكَنُوا إِلَى الَّذِينَ ظَلَمُوا
فَتَمَسَّكُمُ النَّارُ ۙ وَمَا لَكُمْ مِّنْ دُونِ اللَّهِ مِنْ أَوْلِيَاءَ ثُمَّ لَا

इख़्तिलाफ़ किया गया था (जिस तरह आज इस किताब के बारे में किया जा रहा है जो तुम्हें दी गई है)।[111] अगर तेरे रब की तरफ़ से एक बात पहले ही तय न कर दी गई होती तो इन इख़्तिलाफ़ करनेवालों के बीच कभी का फ़ैसला चुका दिया गया होता।[112] यह सच है कि ये लोग उसकी तरफ़ से शक और उलझन में पड़े हुए हैं (111) और यह भी सच बात है कि तेरा रब उन्हें उनके कामों का पूरा-पूरा बदला देकर रहेगा, यक़ीनन वह उनकी सब हरकतों की ख़बर रखता है (112) तो ऐ नबी! तुम और तुम्हारे वे साथी, जो (इनकार और बग़ावत से ईमान और फ़रमाँबरदारी की तरफ़) पलट आए हैं, ठीक-ठीक सीधे रास्ते पर क़दम जमाए रहो जैसा कि तुम्हें हुक्म दिया गया है, और बन्दगी की हद पार न करो। जो कुछ तुम कर रहे हो उसपर तुम्हारा रब निगाह रखता है। (113) इन ज़ालिमों की तरफ़ ज़रा न झुकना, वरना जहन्नम की लपेट में आ जाओगे

111. यानी यह कोई नई बात नहीं है कि आज इस क़ुरआन के बारे में तरह-तरह के लोग तरह-तरह की बातें बना रहे हैं, बल्कि इससे पहले जब मूसा को किताब दी गई थी तो उसके बारे में भी ऐसी ही तरह-तरह की बातें बनाई गई थीं, लिहाज़ा ऐ मुहम्मद, तुम यह देखकर बददिल और मायूस न हो कि ऐसी सीधी-सीधी और साफ़ बातें क़ुरआन में पेश की जा रही हैं और फिर भी लोग इनको क़बूल नहीं करते।

112. यह बात भी नबी (सल्ल॰) और ईमानवालों को मुत्मइन करने और सब्र दिलाने के लिए कही गई है। मतलब यह है कि तुम इस बात के लिए बेचैन न हो कि जो लोग इस क़ुरआन के बारे में इख़्तिलाफ़ कर रहे हैं उनका फ़ैसला जल्द-से-जल्द चुका दिया जाए। अल्लाह तआला पहले ही यह तय कर चुका है कि फ़ैसला तय किए हुए वक़्त से पहले न किया जाएगा, और यह कि दुनिया के लोग फ़ैसला चाहने में जो जल्दबाज़ी करते हैं, अल्लाह फ़ैसला कर देने में वह जल्दबाज़ी न करेगा।

تُنۡصَرُوۡنَ ﴿۱۱۳﴾ وَاَقِمِ الصَّلٰوةَ طَرَفَىِ النَّهَارِ وَزُلَفًا مِّنَ الَّيۡلِ ؕ اِنَّ
الۡحَسَنٰتِ يُذۡهِبۡنَ السَّيِّاٰتِ‌ ؕ ذٰ لِكَ ذِكۡرٰى لِلذّٰكِرِيۡنَ ‌ۚ‏ ﴿۱۱۴﴾ وَاصۡبِرۡ فَاِنَّ
اللّٰهَ لَا يُضِيۡعُ اَجۡرَ الۡمُحۡسِنِيۡنَ‏ ﴿۱۱۵﴾ فَلَوۡلَا كَانَ مِنَ الۡقُرُوۡنِ مِنۡ
قَبۡلِكُمۡ اُولُوۡا بَقِيَّةٍ يَّنۡهَوۡنَ عَنِ الۡفَسَادِ فِى الۡاَرۡضِ اِلَّا قَلِيۡلًا مِّمَّنۡ
اَنۡجَيۡنَا مِنۡهُمۡ‌ ۚ وَاتَّبَعَ الَّذِيۡنَ ظَلَمُوۡا مَاۤ اُتۡرِفُوۡا فِيۡهِ وَكَانُوۡا مُجۡرِمِيۡنَ‏ ﴿۱۱۶﴾

और तुम्हें कोई ऐसा दोस्त और सरपरस्त न मिलेगा जो ख़ुदा से तुम्हें बचा सके, और कहीं से तुमको मदद न पहुँचेगी। (114) और देखो, नमाज़ क़ायम करो दिन के दोनों सिरों पर और कुछ रात गुज़रने पर।[113] हक़ीक़त में नेकियाँ बुराइयों को दूर कर देती हैं। यह एक याददिहानी है उन लोगों के लिए जो ख़ुदा को याद रखनेवाले हैं।[114] (115) और सब्र कर, अल्लाह नेकी करनेवालों का बदला कभी बरबाद नहीं करता।

(116) फिर क्यों न उन क़ौमों में, जो तुमसे पहले गुज़र चुकी हैं, ऐसे भले लोग मौजूद रहे जो लोगों को ज़मीन में फ़साद पैदा करने से रोकते? ऐसे लोग निकले भी तो बहुत कम, जिनको हमने इन क़ौमों में से बचा लिया, वरना ज़ालिम लोग तो उन्हीं मज़ों के पीछे पड़े रहे जिनके सामान उन्हें बहुत ज़्यादा दिए गए थे, और वे मुजरिम बनकर रहे।

113. 'दिन के दोनों सिरों पर' से मुराद सुबह और मग़रिब (सूरज छिपने का वक़्त) है, और 'कुछ रात गुज़रने पर' से मुराद इशा का वक्त है। इससे मालूम हुआ कि यह हुक्म उस ज़माने का है जब नमाज़ के लिए अभी पाँच वक्त तय नहीं किए गए थे। मेराज का वाक़िआ इसके बाद पेश आया जिसमें पाँच वक़्तों की नमाज़ फ़र्ज़ हुई। (तशरीह के लिए देखें—सूरा-17 बनी-इसराईल, हाशिया-95; सूरा- ताहा 20, हाशिया-111; सूरा-30 रूम, हाशिया-124)

114. यानी जो बुराइयाँ दुनिया में फैली हुई हैं और जो बुराइयाँ तुम्हारे साथ इस दावते-हक़ (सत्य-सन्देश) की दुश्मनी में की जा रही हैं, उन सबको दूर करने का असली तरीक़ा यह है कि तुम ख़ुद ज़्यादा-से-ज़्यादा नेक बनो और अपनी नेकी से इस बुराई को हरा दो, और तुमको नेक बनाने का बेहतरीन ज़रिआ यह नमाज़ है जो ख़ुदा की याद को ताज़ा करती रहेगी और उसकी ताक़त से तुम बुराई के इस मुनज़्ज़म तूफ़ान का न सिर्फ़ मुक़ाबला कर सकोगे, बल्कि उसे दूर करके दुनिया में अमली तौर पर भलाई और सुधार का निज़ाम भी क़ायम कर सकोगे। (तशरीह के लिए देखें—सूरा-29 अन्कबूत, हाशिया-77 से 79)

وَمَا كَانَ رَبُّكَ لِيُهْلِكَ الْقُرٰى بِظُلْمٍ وَّاَهْلُهَا مُصْلِحُوْنَ ﴿١١٧﴾ وَلَوْ شَآءَ
رَبُّكَ لَجَعَلَ النَّاسَ اُمَّةً وَّاحِدَةً وَّلَا يَزَالُوْنَ مُخْتَلِفِيْنَ ﴿١١٨﴾ اِلَّا مَنْ
رَّحِمَ رَبُّكَ ۭ وَلِذٰلِكَ خَلَقَهُمْ ۭ وَتَمَّتْ كَلِمَةُ رَبِّكَ لَاَمْلَئَنَّ جَهَنَّمَ مِنَ

(117) तेरा रब ऐसा नहीं है कि बस्तियों को बेवजह तबाह कर दे, हालाँकि उनके निवासी इस्लाह करनेवाले हों।[115] (118) बेशक तेरा रब अगर चाहता तो तमाम इनसानों को एक गिरोह बना सकता था, मगर अब तो वे अलग-अलग तरीक़ों पर ही चलते रहेंगे (119) और बेराह होने से सिर्फ़ वे लोग बचेंगे जिनपर तेरे रब की रहमत है। इसी (चुनने

115. इन आयतों में बहुत ही सबक़आमोज़ तरीक़े से उन क़ौमों की तबाही के अस्ल सबब पर रौशनी डाली गई है जिनका इतिहास पिछली आयतों में बयान हुआ है। इस इतिहास पर तबसिरा (टिप्पणी) करते हुए कहा जाता है कि सिर्फ़ इन्हीं क़ौमों को नहीं, बल्कि पिछली इनसानी इतिहास में जितनी क़ौमें भी तबाह हुई हैं उन सबको जिस चीज़ ने गिराया वह यह थी कि जब अल्लाह तआला ने उन्हें अपनी नेमतें दीं तो वे ख़ुशहाली के नशे में मस्त होकर ज़मीन में बिगाड़ फैलाने लगीं और उनका इज्तिमाई ख़मीर (मिज़ाज) इतना ज़्यादा बिगड़ गया कि या तो उनके अन्दर ऐसे नेक लोग बाक़ी रहे ही नहीं जो उनको बुराइयों से रोकते, या अगर कुछ लोग ऐसे निकले भी तो वे इतने कम थे और उनकी आवाज़ इतनी कमज़ोर थी कि उनके रोकने से बिगाड़ न रुक सका। यही चीज़ है जिसकी बदौलत आख़िरकार ये क़ौमें अल्लाह तआला के ग़ज़ब की हक़दार हुईं, वरना अल्लाह को अपने बन्दों से कोई दुश्मनी नहीं है कि वे तो भले काम कर रहे हों और अल्लाह उनको ख़ाह-मख़ाह अज़ाब में मुब्तला कर दे। यह बात कहने का मक़सद यहाँ तीन बातें ज़ेहन में बिठाना है –
एक यह कि हर समाजी निज़ाम में ऐसे नेक लोगों का मौजूद रहना ज़रूरी है जो भलाई की तरफ़ बुलानेवाले और बुराई से रोकनेवाले हों। इसलिए कि भलाई ही वह चीज़ है जो अस्ल में अल्लाह चाहता है, और लोगों की बुराइयों को अगर अल्लाह बरदाश्त करता भी है तो उस भलाई की ख़ातिर करता है जो उनके अन्दर मौजूद हो, और उसी वक़्त तक करता है जब तक उनके अन्दर भलाई का कुछ इमकान बाक़ी रहे। मगर जब कोई इनसानी गरोह अच्छे लोगों से ख़ाली हो जाए और उसमें सिर्फ़ बुरे लोग ही बाक़ी रह जाएँ, या अच्छे लोग मौजूद हों भी तो कोई उनकी सुनकर न दे और पूरी क़ौम-की-क़ौम अख़लाक़ी बिगाड़ की राह पर बढ़ती चली जाए, तो फिर ख़ुदा का अज़ाब उसके सिर पर इस तरह मंडराने लगता है जैसे पूरे दिनों की हामिला (गर्भवती) कि कुछ नहीं कह सकते कि कब वह बच्चे को जन्म दे दे।
दूसरी यह कि जो क़ौम अपने बीच सब कुछ बरदाश्त करती हो, मगर सिर्फ़ उन्हीं कुछ गिने-चुने

الْجِنَّةِ وَالنَّاسِ اَجْمَعِيْنَ ﴿١١٩﴾ وَكُلًّا نَّقُصُّ عَلَيْكَ مِنْ اَنْۢبَآءِ الرُّسُلِ مَا

और इख़्तियार की आज़ादी) के लिए ही तो उसने इन्हें पैदा किया था।[116], और तेरे रब की वह बात पूरी हो गई जो उसने कही थी कि मैं जहन्नम को जिन्न और इनसान सबसे भर दूँगा।

(120) और ऐ नबी! ये पैग़म्बरों के क़िस्से जो हम तुम्हें सुनाते हैं, वे चीज़ें हैं जिनके

लोगों को बरदाश्त करने के लिए तैयार न हो जो उसे बुराइयों से रोकते और भलाइयों की तरफ़ बुलाते हों, तो समझ लो कि उसके बुरे दिन क़रीब आ गए हैं; क्योंकि अब वह ख़ुद ही अपनी जान की दुश्मन हो गई है। उसे वे सब चीज़ें तो पसन्द हैं जो उसे तबाह करनेवाली हैं, और सिर्फ़ वही एक चीज़ गवारा नहीं है जो उसे ज़िन्दगी देनेवाली है।

तीसरी यह कि एक क़ौम के अज़ाब में घिरने या न घिरने का आख़िरी फ़ैसला जिस चीज़ पर होता है वह यह है कि उसमें भलाई की दावत को क़बूल करनेवाले लोग किस हद तक मौजूद हैं। अगर उसके अन्दर ऐसे लोग इतनी तादाद में निकल आएँ जो बिगाड़ को मिटाने और अच्छे निज़ाम को क़ायम करने के लिए काफ़ी हों तो उसपर आम अज़ाब नहीं भेजा जाता, बल्कि उन अच्छे लोगों को हालात सुधारने का मौक़ा दिया जाता है। लेकिन अगर लगातार कोशिश करने के बावजूद उसमें से इतने आदमी नहीं निकलते जो सुधार के लिए काफ़ी हो सकें, और वह क़ौम अपनी गोद से चन्द हीरे फेंक देने के बाद अपने रवैये से साबित कर देती है कि अब उसके पास कोयले-ही-कोयले बाक़ी रह गए हैं, तो फिर कुछ ज़्यादा देर नहीं लगती कि वह भट्टी सुलगा दी जाती है जो उन कोयलों को फूँक कर रख दे। (तशरीह के लिए देखें—सूरा-51 ज़ारियात, हाशिया-34)

116. यह उस शक और शुब्हे का जवाब है जो आम तौर से ऐसे मौक़ों पर तक़दीर के नाम से पेश किया जाता है। ऊपर गुज़री हुई क़ौमों की तबाही की जो वजह बयान की गई है उसपर यह एतिराज़ किया जा सकता था कि उनमें अच्छे लोगों का मौजूद न रहना या बहुत कम पाया जाना भी तो आख़िर अल्लाह की इच्छा और मरज़ी ही से था, फिर इसका इलज़ाम उन क़ौमों पर क्यों रखा जाए? क्यों न अल्लाह ने उनके अन्दर बहुत-से अच्छे इनसान पैदा कर दिए? इसके जवाब में यह हक़ीक़त साफ़-साफ़ बयान कर दी गई है कि अल्लाह की मरज़ी इनसान के बारे में यह है ही नहीं कि जानवरों और पेड़-पौधों और ऐसी ही दूसरी मख़लूक़ात की तरह उसको भी क़ुदरती तौर पर एक लगे-बँधे रास्ते का पाबन्द बना दिया जाए जिससे हटकर वह चल ही न सके। अगर वह यही चाहता तो फिर ईमान की दावत देने, पैग़म्बर के भेजे जाने और किताबों के उतारे जाने की ज़रूरत ही क्या थी, सारे इनसान फ़रमाँबरदार और ईमानवाले ही पैदा होते और इनकार और नाफ़रमानी का सिरे से कोई इमकान ही न होता। लेकिन अल्लाह ने इनसान के बारे में जो कुछ चाहा है वह दरअसल यह है कि उसको चुनने और

نُثَبِّتُ بِهٖ فُؤَادَكَ ۚ وَجَآءَكَ فِیْ هٰذِهِ الْحَقُّ وَمَوْعِظَةٌ وَّذِكْرٰی
لِلْمُؤْمِنِیْنَ ﴿۱۲۰﴾ وَقُلْ لِّلَّذِیْنَ لَا یُؤْمِنُوْنَ اعْمَلُوْا عَلٰی مَكَانَتِكُمْ ؕ اِنَّا
عٰمِلُوْنَ ﴿۱۲۱﴾ وَانْتَظِرُوْا ۚ اِنَّا مُنْتَظِرُوْنَ ﴿۱۲۲﴾ وَلِلّٰهِ غَیْبُ السَّمٰوٰتِ

ज़रिए से हम तुम्हारे दिल को मज़बूत करते हैं। उनके अन्दर तुमको हक़ीक़त का इल्म मिला और ईमान लानेवालों को नसीहत और बेदारी हासिल हुई। (121) रहे वे लोग जो ईमान नहीं लाते, तो उनसे कह दो कि तुम अपने तरीक़े पर काम करते रहो और हम अपने तरीक़े पर किए जाते हैं, (122) अंजाम का तुम भी इन्तिज़ार करो और हम भी इन्तिज़ार कर रहे हैं। (123) आसमानों और ज़मीन में जो कुछ छिपा हुआ है सब

अपनाने की आज़ादी दी जाए, उसे अपनी पसन्द के मुताबिक़ अलग-अलग राहों पर चलने की क़ुदरत दी जाए, उसके सामने जन्नत और दोज़ख़ दोनों की राहें खोल दी जाएँ और फिर हर इनसान और हर इनसानी गरोह को मौक़ा दिया जाए कि वह उनमें से जिस राह को भी अपने लिए पसन्द करे उसपर चल सके, ताकि हर एक जो कुछ भी पाए अपनी कोशिश और कमाई के नतीजे में पाए। तो जब वह स्कीम जिसके तहत इनसान पैदा किया गया है चुनने की आज़ादी और अपनी मरज़ी से कुफ़्र व ईमान को अपनाने के उसूल पर बनी है तो यह कैसे हो सकता है कि कोई क़ौम ख़ुद तो बढ़ना चाहे बुराई की राह पर और अल्लाह ज़बरदस्ती उसको भलाई के रास्ते पर मोड़ दे। कोई क़ौम ख़ुद अपनी पसन्द से तो इनसान बनानेवाले ऐसे कारख़ाने बनाए जो एक-से-एक बढ़कर बदकार, ज़ालिम और (अल्लाह के) नाफ़रमान आदमी ढाल-ढालकर निकालें और अल्लाह इस मामले में ख़ुद दख़ल देकर उसको वे पैदाइशी नेक इनसान दे दे जो उसके बिगड़े हुए साँचों को ठीक कर दें। इस तरह की दख़लअन्दाज़ी ख़ुदा के दस्तूर में नहीं है। नेक हों या बुरे, दोनों तरह के इनसान हर क़ौम को ख़ुद ही जुटाने होंगे। जो क़ौम कुल मिलाकर बुराई की राह को पसन्द करेगी, जिसमें से कोई क़ाबिले लिहाज़ गरोह ऐसा न उठेगा जो नेकी का झण्डा बुलन्द करे, और जिसने अपने समाजी निज़ाम में इस बात की गुंजाइश ही न छोड़ी होगी कि सुधार की कोशिशें उसके अन्दर फल-फूल सकें, ख़ुदा को क्या पड़ी है कि उसको ज़बरदस्ती नेक बनाए। वह तो उसको उसी अंजाम की तरफ़ धकेल देगा जो उसने खुद अपने लिए चुना है। अलबत्ता ख़ुदा की रहमत की हक़दार अगर कोई क़ौम हो सकती है तो सिर्फ़ वह जिसमें बहुत-से लोग ऐसे निकलें जो ख़ुद भलाई की दावत को आगे बढ़कर क़बूल करनेवाले हों और जिसने अपने समाजी निज़ाम में यह सलाहियत बाक़ी रहने दी हो कि सुधार की कोशिश करनेवाले इसके अन्दर काम कर सकें। (और ज़्यादा तशरीह के लिए देखें—सूरा-6 अनआम, हाशिया-24)

ع ١٠ ١٠ وَالْاَرْضِ وَاِلَيْهِ يُرْجَعُ الْاَمْرُ كُلُّهٗ فَاعْبُدْهُ وَتَوَكَّلْ عَلَيْهِ ؕ وَمَا رَبُّكَ
بِغَافِلٍ عَمَّا تَعْمَلُوْنَ ﴿۱۲۳﴾ ع

अल्लाह की क़ुदरत के कब्ज़े में है और सारा मामला उसी की तरफ़ रुजूअ् किया जाता है। तो ऐ नबी तू उसकी बन्दगी कर और उसी पर भरोसा रख, जो कुछ तुम लोग कर रहे हो तेरा रब उससे बेख़बर नहीं है।[117]

---

117. यानी कुफ़्र व इस्लाम की इस कशमकश के दोनों तरफ़ के लोग जो कुछ कर रहे हैं वह सब अल्लाह की निगाह में है। अल्लाह की सल्तनत कोई 'अंधेर नगरी चौपट राजा' की तरह नहीं है कि इसमें चाहे कुछ भी होता रहे, बेख़बर राजा को उससे कुछ सरोकार न हो। यहाँ हिक्मत और नर्मी की वजह से देर तो ज़रूर है, मगर अंधेर नहीं है। जो लोग सुधार की कोशिश कर रहे हैं वे यक़ीन रखें कि उनकी मेहनतें बरबाद न होंगी और वे लोग भी जो बिगाड़ फैलाने और उसे फैलाए रखने में लगे हुए हैं, जो सुधार की कोशिश करनेवालों पर ज़ुल्म-सितम तोड़ रहे हैं, और जिन्होंने अपना सारा ज़ोर इस कोशिश में लगा रखा है कि सुधार का यह काम किसी तरह चल न सके, उन्हें भी ख़बरदार रहना चाहिए कि उनके ये सारे करतूत अल्लाह के इल्म में हैं और इनकी सज़ा उन्हें ज़रूर भुगतनी पड़ेगी।

☆☆☆

12. सूरा यूसुफ़

(परिचय)

उतरने का ज़माना और वजह

इस सूरा के मज़मून (विषय) से ज़ाहिर होता है कि यह सूरा नबी (सल्ल॰) के मक्का में क़ियाम के ज़माने के आख़िरी दौर में उतरी होगी, जबकि क़ुरैश के लोग इस मसले पर ग़ौर कर रहे थे कि नबी (सल्ल॰) को क़त्ल कर दें या वतन से निकाल दें या क़ैद कर दें। उस ज़माने में मक्का के कुछ इस्लाम-दुश्मनों ने (शायद यहूदियों के इशारे पर) नबी (सल्ल॰) का इम्तिहान लेने के लिए आप (सल्ल॰) से सवाल किया कि बनी-इसराईल के मिस्र जाने की वजह क्या बनी। चूँकि अरब के लोग इस क़िस्से से अनजान थे, उसका नामो-निशान तक उनके यहाँ की रिवायतों में न पाया जाता था, और ख़ुद नबी (सल्ल॰) की ज़बान से भी इससे पहले कभी इसका ज़िक्र न सुना गया था, इसलिए उन्हें उम्मीद थी कि आप (सल्ल॰) या तो उसका तफ़सील से जवाब न दे सकेंगे, या इस वक़्त टालमटोल करके बाद में किसी यहूदी से पूछने की कोशिश करेंगे, और इस तरह आप (सल्ल॰) का भरम खुल जाएगा। लेकिन इस इम्तिहान में उन्हें उल्टी मुँह की खानी पड़ी। अल्लाह तआला ने सिर्फ़ यही नहीं किया कि फ़ौरन उसी वक़्त यूसुफ़ (अलैहि॰) का यह पूरा क़िस्सा आप (सल्ल॰) की ज़बान पर जारी कर दिया, बल्कि इससे आगे बढ़कर इस क़िस्से को क़ुरैश के उस मामले पर चस्पाँ भी कर दिया जो वे यूसुफ़ (अलैहि॰) के भाइयों की तरह नबी (सल्ल॰) के साथ कर रहे थे।

उतरने का मक़सद

इस तरह यह क़िस्सा दो अहम मक्सदों के लिए उतारा गया था—

एक यह कि मुहम्मद (सल्ल॰) की नुबूवत (पैग़म्बरी) का सुबूत, और वह भी मुख़ालिफ़त करनेवालों का अपना मुँह माँगा सुबूत उन्हें दिया जाए और उनके ख़ुद सुझाए गए इम्तिहान में यह साबित कर दिया जाए कि आप (सल्ल॰) सुनी-सुनाई बातें बयान नहीं करते, बल्कि सचमुच आप (सल्ल॰) को वह्य के ज़रिए से इल्म हासिल होता है, इस मक़सद को आयत 3 और 7 में भी साफ़-साफ़ वाज़ेह कर दिया गया है और आयत

102, 103 में भी पूरे ज़ोर के साथ इसको साफ़-साफ़ बयान कर दिया गया है।

दूसरा यह कि क़ुरैश के सरदारों और मुहम्मद (सल्ल॰) के दरमियान उस वक़्त जो मामला चल रहा था उसपर यूसुफ़ (अलैहि॰) के भाइयों और यूसुफ़ (अलैहि॰) के क़िस्से को चस्पाँ करते हुए क़ुरैशवालों को बताया जाए कि आज तुम अपने भाई के साथ वही कुछ कर रहे हो जो यूसुफ़ के भाइयों ने उनके साथ किया था। मगर जिस तरह वे ख़ुदा की मशीयत (इच्छा) से लड़ने में कामयाब न हुए और आख़िकार उसी भाई के क़दमों में आ रहे जिसको उन्होंने कभी इन्तिहाई बेरहमी के साथ कुएँ में फेंका था, उसी तरह तुम्हारी कोशिश भी अल्लाह की तदबीर के मुक़ाबले में कामयाब न हो सकेगी और एक दिन तुम्हें भी अपने उसी भाई से रहम और करम की भीख माँगनी पड़ेगी जिसे आज तुम मिटा देने पर तुले हुए हो। यह मक़सद भी सूरा के शुरू में साफ़-साफ़ बयान कर दिया गया है। चुनाँचे फ़रमाया, "यूसुफ़ और उसके भाइयों के क़िस्से में इन पूछनेवालों के लिए बड़ी निशानियाँ हैं।"

हक़ीक़त यह है कि यूसुफ़ (अलैहि॰) के क़िस्से को मुहम्मद (सल्ल॰) और क़ुरैश के मामले पर चस्पाँ करके क़ुरआन मजीद ने जैसे एक खुली पेशगोई (भविष्यवाणी) कर दी थी जिसे आनेवाले दस साल के वाक़िआत ने लफ़्ज-ब-लफ़्ज सही साबित करके दिखा दिया। इस सूरा के उतरने पर डेढ़-दो साल ही बीते होंगे कि क़ुरैशवालों ने यूसुफ़ (अलैहि॰) के भाइयों की तरह मुहम्मद (सल्ल॰) के क़त्ल की साज़िश की और आप (सल्ल॰) को मजबूरन उनसे जान बचाकर मक्का से निकलना पड़ा। फिर उनकी उम्मीदों के बिलकुल ख़िलाफ़ आप (सल्ल॰) को भी वतन से निकल जाने के बाद वैसी ही तरक़्क़ी और इक़्तिदार (सत्ता) मिला जैसा यूसुफ़ (अलैहि॰) को मिला था। फिर मक्का की फ़तह के मौक़े पर ठीक-ठीक वही कुछ सामने आया जो मिस्र की हुकूमत में यूसुफ़ (अलैहि॰) के सामने उनके भाइयों की आख़िरी हाज़िरी के मौक़े पर सामने आया था। वहाँ जब यूसुफ़ (अलैहि॰) के भाई इन्तिहाई बेबसी और बेचारगी की हालत में उनके आगे हाथ फैलाए खड़े थे और कह रहे थे कि, "हमपर सदक़ा कीजिए, अल्लाह सदक़ा करनेवालों को अच्छा बदला देता है", तो यूसुफ़ (अलैहि॰) ने उनसे बदला लेने की ताक़त रखने के बावजूद उन्हें माफ़ कर दिया और कहा, "आज तुमपर कोई गिरफ़्त नहीं, अल्लाह तुम्हें माफ़ करे। वह सब रहम करनेवालों से बढ़कर रहम करनेवाला है।" इसी तरह यहाँ जब मुहम्मद (सल्ल॰) के सामने हारे हुए क़ुरैश सिर झुकाए खड़े हुए थे और नबी (सल्ल॰) उनके एक-एक ज़ुल्म का बदला लेने की ताक़त रखते थे, तो आप (सल्ल॰) ने उनसे

पूछा, "तुम्हारा क्या ख़याल है कि मैं तुम्हारे साथ क्या सुलूक करूँगा?" उन्होंने कहा, "आप एक मेहरबान और कुशादादिल भाई हैं, और एक मेहरबान और कुशादादिल भाई के बेटे हैं।" इसपर आप (सल्ल.) ने फ़रमाया, "मैं तुम्हें वही जवाब देता हूँ जो यूसुफ़ ने अपने भाइयों को दिया था कि आज तुमपर कोई गिरफ़्त नहीं, जाओ तुम्हें माफ़ किया।"

बहसें और मामले

ये दो पहलू तो इस सूरा में मक़सदी हैसियत रखते हैं। लेकिन इस क़िस्से को भी क़ुरआन मजीद सिर्फ़ क़िस्सा सुनाने और तारीख़ (इतिहास) बयान करने के तौर पर बयान नहीं करता, बल्कि अपने उसूल के मुताबिक़ वह उसे अपने असल पैग़ाम को लोगों तक पहुँचाने के लिए इस्तेमाल करता है।

वह इस पूरी दास्तान में यह बात नुमायाँ करके दिखाता है कि हज़रत इबराहीम, हज़रत इसहाक़, हज़रत याक़ूब और हज़रत यूसुफ़ का दीन वही था जो मुहम्मद (सल्ल.) का है और उसी चीज़ की तरफ़ वे भी दावत देते थे जिसकी तरफ़ आज मुहम्मद (सल्ल.) दे रहे हैं।

फिर वह एक तरफ़ हज़रत याक़ूब (अलैहि.) और हज़रत यूसुफ़ (अलैहि.) के किरदार और दूसरी तरफ़ यूसुफ़ (अलैहि.) के भाइयों, व्यापारियों के क़ाफ़िले, मिस्र के हाकिम, उसकी बीवी, मिस्र के अफ़सरों की बीवियों और मिस्र के अफ़सरों के किरदार एक-दूसरे के मुक़ाबले में रख देता है और महज़ अपने अन्दाज़े-बयान से सुननेवालों और देखनेवालों के सामने यह ख़ामोश सवाल पेश करता है कि देखो, एक नमूने के किरदार तो वे हैं जो इस्लाम यानी ख़ुदा की बन्दगी और आख़िरत के हिसाब के यक़ीन से पैदा होते हैं और दूसरे नमूने के किरदार वे हैं जो कुफ़्र और जाहिलियत और दुनियापरस्ती और ख़ुदा व आख़िरत से बेपरवाही के साँचों में ढलकर तैयार होते हैं। अब तुम ख़ुद अपने मन से पूछो कि वह इनमें से किस नमूने को पसन्द करता है।

फिर इस क़िस्से से क़ुरआन मजीद एक और गहरी हक़ीक़त भी इनसान के ज़ेहन में बिठाता है, और वह यह है कि अल्लाह तआला जो काम करना चाहता है वह हर हाल में पूरा होकर रहता है। इनसान अपनी तदबीरों से उसके मंसूबों को रोकने और बदलने में कभी कामयाब नहीं हो सकता, बल्कि बहुत बार ऐसा होता है कि इनसान एक काम अपने मंसूबे की ख़ातिर करता है और समझता है कि मैंने ठीक निशाने पर तीर मार दिया, मगर नतीजे में साबित होता है कि अल्लाह ने उसी के हाथों से वह काम ले लिया जो उसके मंसूबे के ख़िलाफ़ और अल्लाह के मंसूबे के ठीक मुताबिक़ था। यूसुफ़

(अलैहि॰) के भाई जब उनको कुएँ में फेंक रहे थे तो वे समझ रहे थे कि हमने अपने रास्ते के काँटे को हमेशा के लिए हटा दिया। मगर अस्ल में उन्होंने यूसुफ़ (अलैहि॰) को उस बुलन्दी की पहली सीढ़ी पर अपने हाथों ला खड़ा किया जिसपर अल्लाह उनको पहुँचाना चाहता था और अपनी इस हरकत से उन्होंने ख़ुद अपने लिए अगर कुछ कमाया तो बस यह कि यूसुफ़ (अलैहि॰) के बुलन्दी पर पहुँचने के बाद बजाए इसके कि वे इज़्ज़त के साथ अपने भाई से मिलने जाते, उन्हें शर्मिन्दगी के साथ उसी भाई के आगे सिर झुकाना पड़ा। मिस्र के हाकिम की बीवी यूसुफ़ (अलैहि॰) को जेल भिजवाकर अपने नज़दीक उनसे इन्तिक़ाम ले रही थी, मगर हक़ीक़त में उसने उनके लिए बादशाहत के तख़्त पर पहुँचने का रास्ता साफ़ किया और अपनी उस तदबीर से ख़ुद अपने लिए इसके सिवा कुछ न कमाया कि वक़्त आने पर मुल्क के बादशाह की वफ़ादार और पाकबाज़ बीवी कहलाने के बजाए उसको एलानिया अपनी ख़यानत और बेवफ़ाई को क़बूल करने की शर्मिन्दगी उठानी पड़ी। ये सिर्फ़ दो-चार निराले वाक़िआत नहीं हैं, बल्कि इतिहास ऐसी अनगिनत मिसालों से भरा पड़ा है जो इस हक़ीक़त की गवाही देती हैं कि अल्लाह जिसे उठाना चाहता है, सारी दुनिया मिलकर भी उसको नहीं गिरा सकती, बल्कि दुनिया जिस तदबीर को उसके गिराने की बेहद अचूक और यक़ीनी तदबीर समझकर अपनाती है, अल्लाह उसी तदबीर में से उसके उठने की सूरतें निकाल देता है, और उन लोगों के हिस्से में रुसवाई के सिवा कुछ नहीं आता, जिन्होंने उसे गिराना चाहा था। और इसी तरह इसके बरख़िलाफ़ ख़ुदा जिसे गिराना चाहता है उसे कोई तदबीर संभाल नहीं सकती, बल्कि संभालने की सारी तदबीरें उलटी पड़ती हैं और ऐसी तदबीरें करनेवालों को मुँह की खानी पड़ती है।

इस हक़ीक़ते-हाल को अगर कोई समझ ले तो उसे पहला सबक़ तो यह मिलेगा कि इनसान को अपने मक़सदों और अपनी तदबीरों, दोनों में उन हदों से आगे न बढ़ना चाहिए जो अल्लाह के क़ानून में उसके लिए तय कर दी गई हैं। कामयाबी और नाकामी तो अल्लाह के हाथ में है। लेकिन जो शख़्स पाक मक़सद के लिए सीधी-सीधी जाइज़ तदबीर करेगा वह अगर नाकाम भी हुआ तो बहरहाल उसे बेइज़्ज़ती व रुसवाई न मिलेगी। और जो शख़्स नापाक मक़सद के लिए टेढ़ी तदबीरें करेगा वह आख़िरत में तो लाज़िमन रुसवा होगा ही मगर दुनिया में भी उसके लिए रुसवाई का ख़तरा कुछ कम नहीं है। दूसरा अहम सबक़ इससे अल्लाह पर भरोसा करने और ख़ुद को अल्लाह के सुपुर्द करने का मिलता है। जो लोग हक़ और सच्चाई के लिए कोशिश कर रहे हों और दुनिया उन्हें मिटा देने पर तुली हुई हो वे अगर इस हक़ीक़त को अपने सामने रखें तो

उन्हें इससे बहुत ही ज़्यादा सुकून मिलेगा, और मुख़ालिफ़ ताक़तों की बज़ाहिर निहायत ख़ौफ़नाक तदबीरों को देखकर वे ज़रा भी न डरेंगे, बल्कि नतीजों को अल्लाह पर छोड़ते हुए अपना अख़लाक़ी फ़र्ज़ (नैतिक ज़िम्मेदारी) पूरा किए चले जाएँगे।

मगर सबसे बड़ा सबक़ जो इस क़िस्से से मिलता है वह यह है कि एक ईमानवाला आदमी अगर हक़ीक़ी इस्लामी सीरत रखता हो और उसमें हिकमत और सूझ-बूझ भी पाई जाती हो, तो वह सिर्फ़ अपने अख़लाक़ के ज़ोर से एक पूरे देश को जीत सकता है। यूसुफ़ (अलैहि॰) को देखिए। सतरह (17) साल की उम्र, बिलकुल अकेले, बेसरो-सामान, अजनबी देश, और फिर कमज़ोरी की इन्तिहा यह कि ग़ुलाम बनाकर बेचे गए हैं। इतिहास के उस दौर में ग़ुलामों की जो हैसियत थी वह किसी से छिपी नहीं, उससे भी बढ़कर यह कि एक बड़े अख़लाक़ी जुर्म (नैतिक अपराध) का इलज़ाम लगाकर उन्हें जेल भेज दिया गया, जिसकी सज़ा की मुद्दत भी तय नहीं थी। इस हालत तक गिरा दिए जाने बाद वे सिर्फ़ अपने ईमान और अख़लाक़ के बल पर उठते हैं और आख़िरकार पूरे देश को जीत लेते हैं।

तारीख़ी और जुग़राफ़ी (ऐतिहासिक और भौगोलिक) हालात

इस क़िस्से को समझने के लिए ज़रूरी है कि मुख़्तसर तौर पर इसके बारे में कुछ तारीख़ी और जुग़राफ़ी (ऐतिहासिक और भौगोलिक) जानकारियाँ भी पढ़नेवालों के सामने रहें।

हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) हज़रत याक़ूब (अलैहि॰) के बेटे, हज़रत इसहाक़ (अलैहि॰) के पोते और हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) के परपोते थे। बाइबल के बयान के मुताबिक़ (जिसकी ताईद क़ुरआन के इशारों से भी होती है) हज़रत याक़ूब (अलैहि॰) के बारह बेटे चार बीवियों से थे। हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) और उनके छोटे भाई बिन-यमीन एक बीवी से और बाक़ी दस दूसरी बीवियों से।

फ़िलस्तीन में हज़रत याक़ूब (अलैहि॰) हिब्रून (मौजूदा अल-ख़लील) की घाटी में रहते थे, जहाँ हज़रत इसहाक़ (अलैहि॰) और उनसे पहले हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) रहा करते थे। इसके अलावा हज़रत याक़ूब (अलैहि॰) की कुछ ज़मीन सिक्किम (मौजूदा नाबुलुस) में भी थी।

बाइबल के आलिमों की तहक़ीक़ अगर सही मानी जाए तो हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) का जन्म 1906 ईसा पूर्व के लगभग ज़माने में हुआ और 1890 ईसा पूर्व के क़रीब ज़माने में वह घटना हुई जिससे इस क़िस्से की शुरुआत होती है, यानी ख़ाब देखना और

फिर कुएँ में फेंका जाना। उस वक़्त हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) की उम्र सत्रह (17) साल थी, जिस कुएँ में वे फेंके गए वह बाइबल और तलमूद की रिवायतों के मुताबिक़ सिक्किम के उत्तर में दूतन (मौजूदा दुसान) के क़रीब था, और जिस क़ाफ़िले ने उन्हें कुएँ से निकाला वह जिलआद (पूर्वी उर्दुन) से आ रहा था और मिस्र की तरफ़ जा रहा था। (जिलआद के खण्डहर अब भी उर्दुन नदी के पूरब में इलियालबिस घाटी के किनारे पर मौजूद हैं।)

मिस्र पर उस ज़माने में पन्द्रहवें ख़ानदान की हुकूमत थी, जो मिस्री इतिहास में चरवाहे बादशाहों (HYKSOS KINGS) के नाम से याद किया जाता है। ये लोग अरबी नस्ल के थे और इन्होंने फ़िलस्तीन और शाम (सीरिया) से मिस्र जाकर दो हज़ार वर्ष ईसापूर्व के लगभग ज़माने में मिस्र की सल्तनत पर क़ब्ज़ा कर लिया था। अरब इतिहासकारों और क़ुरआन की तफ़सीर करनेवाले आलिमों ने इनके लिए "अमालीक़" का नाम इस्तेमाल किया है जो मिस्र के बारे में की गई मौजूदा तहक़ीक़ातों के बिलकुल मुताबिक़ हैं। मिस्र में ये लोग अजनबी हमलावर की हैसियत रखते थे और देश के अन्दरूनी झगड़ों की वजह से उन्हें वहाँ अपनी बादशाही क़ायम करने का मौक़ा मिल गया था। यही वजह हुई कि उनकी हुकूमत में हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) को तरक़्क़ी करने का मौक़ा मिला और फिर बनी-इसराईल वहाँ हाथों-हाथ लिए गए, देश के सबसे ज़्यादा उपजाऊ इलाक़े में आबाद किए गए और उनको वहाँ बड़ा असर व रूसूख़ हासिल हुआ; क्योंकि वे उन ग़ैर-मुल्की हुक्मरानों की क़ौम के थे। पन्द्रहवीं शताब्दी ईसापूर्व के आख़िरी दौर तक ये लोग मिस्र पर क़ब्ज़ा जमाए रहे और इनके ज़माने में देश की सारी ताक़त अमली तौर पर बनी-इसराईल के हाथ में रही। उसी दौर की तरफ़ सूरा-5 माइदा, आयत-20 में इशारा किया गया है कि "जब उसने (अल्लाह ने) तुममें नबी पैदा किया और तुम्हें हाकिम बनाया।" उसके बाद देश में एक ज़बरदस्त क़ौमपरस्ताना तहरीक (राष्ट्रवादी आन्दोलन) चली, जिसने हिकसूस हुकूमत का तख़्ता उलट दिया। ढाई लाख की तादाद में अमालीक़ देश से निकाल दिए गए। एक बहुत ही तास्सुबवाला क़िब्ती नस्ल का ख़ानदान इक़्तिदार में आ गया और उसने अमालीक़ लोगों के ज़माने की यादगारों को चुन-चुनकर मिटा दिया और बनी-इसराईल पर उन ज़ुल्मों का सिलसिला शुरू किया, जिनका ज़िक्र हज़रत मूसा (अलैहि॰) के क़िस्से में आता है।

मिस्री इतिहास से यह भी पता चलता है कि उन चरवाहे बादशाहों ने मिस्री देवताओं को नहीं माना था, बल्कि अपने देवता सीरिया से अपने साथ लाए थे और उनकी कोशिश यह थी कि मिस्र में उनका मज़हब राइज हो। यही वजह है कि क़ुरआन मजीद

हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) के ज़माने के बादशाहों को फ़िरऔन के नाम से याद नहीं करता, क्योंकि 'फ़िरऔन' मिस्र की मज़हबी इस्तिलाह (परिभाषा) थी और ये लोग मिस्री मज़हब के क़ायल न थे। लेकिन बाइबल में ग़लती से उसको भी फ़िरऔन ही का नाम दिया गया है। शायद उसके तरतीब देनेवाले समझते होंगे कि मिस्र के सब बादशाह 'फ़िरऔन' ही थे।

मौजूदा ज़माने के खोज करनेवाले लोग, जिन्होंने बाइबल और मिस्री तारीख़ की तुलना की है, आम राय यह रखते हैं कि चरवाहे बादशाहों में से जिस बादशाह का नाम मिस्री इतिहास में अपोफ़िस (Apophis) मिलता है, वही हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) के ज़माने का बादशाह था।

मिस्र की राजधानी उस ज़माने में ममफ़िस (मंफ़) थी जिसके खण्डहर क़ाहिरा के दक्षिण में 14 मील की दूरी पर पाए जाते हैं। हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) 17, 18 साल की उम्र में वहाँ पहुँचे। दो-तीन साल मिस्र के बादशाह के घर रहे। आठ-नौ साल जेल में गुज़ारे। 30 साल की उम्र में मुल्क के हाकिम बने और अस्सी (80) साल तक बिना किसी को साझीदार बनाए पूरे मिस्र देश पर हुकूमत करते रहे। अपनी हुकूमत के 9वें या 10वें साल उन्होंने हज़रत याक़ूब (अलैहि॰) को अपने पूरे ख़ानदान के साथ फ़िलस्तीन से मिस्र बुला लिया और उस इलाक़े में आबाद किया, जो दिमयात और क़ाहिरा के बीच है। बाइबल में इस इलाक़े का नाम जुशन या गुशन बताया गया है। हज़रत मूसा के ज़माने तक ये लोग इसी इलाक़े में आबाद रहे। बाइबल का बयान है कि हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) ने एक सौ दस साल की उम्र में इन्तिक़ाल किया और इन्तिक़ाल के वक़्त बनी-इसराईल को वसीयत की कि जब तुम इस देश से निकलो तो मेरी हड्डियाँ अपने साथ लेकर जाना।

यूसुफ़ (अलैहि॰) के क़िस्से की जो तफ़सीलात बाइबल और तलमूद में बयान की गई हैं उनसे क़ुरआन का बयान बहुत कुछ अलग है, मगर क़िस्से के ख़ास हिस्सों में तीनों एक राय हैं। हम अपने हाशियों में ज़रूरत के मुताबिक़ उन इख़्तिलाफ़ों को वाज़ेह करते जाएँगे।

☆☆☆

آياتها ١١١ ١٢ سُوْرَةُ يُوْسُفَ مَكِّيَّةٌ ٥٣ ركوعاتها ١٢

بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ ○

الٓرٰ تِلْكَ اٰيٰتُ الْكِتٰبِ الْمُبِيْنِ ۞ اِنَّآ اَنْزَلْنٰهُ قُرْءٰنًا عَرَبِيًّا لَّعَلَّكُمْ

تَعْقِلُوْنَ ۞ نَحْنُ نَقُصُّ عَلَيْكَ اَحْسَنَ الْقَصَصِ بِمَآ اَوْحَيْنَآ اِلَيْكَ

12. यूसुफ़

(मक्का में उतरी—आयतें 111)

अल्लाह के नाम से जो बड़ा मेहरबान और रहम करनेवाला है।

(1) अलिफ़-लाम-रा। ये उस किताब की आयतें हैं जो अपना मक़सद साफ़-साफ़ बयान करती हैं। (2) हमने इसे उतारा है क़ुरआन[1] बनाकर अरबी ज़बान में, ताकि तुम (अरबवाले) इसको अच्छी तरह समझ सको।[2] (3) ऐ नबी! हम इस क़ुरआन को तुम्हारी

1. 'क़ुरआन' मसदर (शब्द-उद्गम) है— क़-र-अ, यक़-र-उ' से। इसके असल मानी हैं 'पढ़ना'। मसदर को किसी चीज़ के लिए जब नाम के तौर पर इस्तेमाल किया जाता है तो इससे यह मतलब निकलता है कि उस चीज़ के अन्दर वह मानी मुकम्मल तौर पर पाया जाता है। जैसे जब किसी शख़्स को हम बहादुर कहने के बजाए बहादुरी कहें तो इसका मतलब यह होगा कि उसके अन्दर बहादुरी इतनी ज़्यादा पाई जाती है मानो वह और बहादुरी एक ही चीज़ हैं। लिहाज़ा इस किताब का नाम क़ुरआन (पढ़ना) रखने का मतलब यह हुआ कि यह आम और ख़ास सबके पढ़ने के लिए है और बहुत ज़्यादा पढ़ी जानेवाली चीज़ है।
2. इसका मतलब यह नहीं है कि यह किताब ख़ासतौर से सिर्फ़ अरबवालों ही के लिए उतारी गई है, बल्कि इस जुमले का अस्ल मक़सद यह कहना है कि "ऐ अरबवालो, तुम्हें ये बातें किसी यूनानी या ईरानी ज़बान में तो नहीं सुनाई जा रही हैं, तुम्हारी अपनी ज़बान में हैं, इसलिए तुम न तो यह बहाना कर सकते हो कि ये बातें तो हमारी समझ ही में नहीं आतीं, और न यही मुमकिन है कि इस किताब में ग़ैर-मामूली और हैरान कर देनेवाले जो पहलू हैं, जो इसके अल्लाह का कलाम होने की गवाही देते हैं, वे तुम्हारी निगाहों से छिपे रह जाएँ।"
   कुछ लोग क़ुरआन मजीद में इस तरह के जुमले देखकर एतिराज़ करते हैं कि यह किताब तो अरबवालों के लिए है, दूसरों के लिए उतारी ही नहीं गई है, फिर इसे तमाम इनसानों के लिए हिदायत (मार्गदर्शन) कैसे कहा जा सकता है। लेकिन यह सिर्फ़ एक सरसरी-सा एतिराज़ है, जो

هٰذَا الْقُرْاٰنَ ۖ وَاِنْ كُنْتَ مِنْ قَبْلِهٖ لَمِنَ الْغٰفِلِيْنَ ۝٣ اِذْ قَالَ يُوْسُفُ
لِاَبِيْهِ يٰٓاَبَتِ اِنِّيْ رَاَيْتُ اَحَدَ عَشَرَ كَوْكَبًا وَّالشَّمْسَ وَالْقَمَرَ رَاَيْتُهُمْ
لِيْ سٰجِدِيْنَ ۝٤ قَالَ يٰبُنَيَّ لَا تَقْصُصْ رُءْيَاكَ عَلٰٓى اِخْوَتِكَ فَيَكِيْدُوْا
لَكَ كَيْدًا ۖ اِنَّ الشَّيْطٰنَ لِلْاِنْسَانِ عَدُوٌّ مُّبِيْنٌ ۝٥ وَكَذٰلِكَ يَجْتَبِيْكَ

तरफ़ वह्य करके बेहतरीन अन्दाज़ में वाक़िआत और हक़ीक़तें तुमसे बयान करते हैं, वरना इससे पहले तो (इन चीज़ों से) तुम बिलकुल ही बेख़बर थे।[3]

(4) यह उस वक़्त की बात है जब यूसुफ़ ने अपने बाप से कहा, "अब्बाजान! मैंने ख़ाब देखा है कि ग्यारह सितारे हैं और सूरज और चाँद हैं और वे मुझे सज्दा कर रहे हैं।" (5) जवाब में उसके बाप ने कहा, "बेटा! अपना यह ख़ाब अपने भाइयों को न सुनाना, वरना वे तुझे तकलीफ़ पहुँचाने पर उतारू हो जाएँगे।[4] सच तो यह है कि शैतान आदमी का खुला दुश्मन है। (6) और ऐसा ही होगा (जैसा तूने ख़ाब में देखा है कि) तेरा

हक़ीक़त को समझने की कोशिश किए बिना जड़ दिया जाता है। इनसानों की आम हिदायत के लिए जो चीज़ भी पेश की जाएगी वह बहरहाल इनसानी ज़बानों में से किसी एक ज़बान ही में पेश की जाएगी, और उसके पेश करनेवाले की कोशिश यही होगी कि पहले वह उस क़ौम को अपनी तालीम से पूरी तरह मुतासिर करे जिसकी ज़बान में वह उसे पेश कर रहा है, फिर वही क़ौम दूसरी क़ौमों तक उस तालीम के पहुँचने का ज़रिआ बने। यही एक फ़ितरी तरीक़ा है किसी दावत और तहरीक के पूरी दुनिया में फैलने का।

3. सूरा के परिचय में हम बयान कर चुके हैं कि मक्का के इस्लाम-दुश्मनों में से कुछ लोगों ने नबी (सल्ल.) का इम्तिहान लेने के लिए, बल्कि अपने नज़दीक आप (सल्ल.) का भरम खोलने के लिए, शायद यहूदियों के इशारे पर, आप (सल्ल.) के सामने अचानक यह सवाल किया था कि बनी-इसराईल के मिस्र पहुँचने की क्या वजह बनी? इसी वजह से उनके जवाब में बनी-इसराईल की तारीख़ का यह बाब पेश करने से पहले तमहीद (भूमिका) के रूप में यह बात कही गई है कि ऐ मुहम्मद, तुम इन वाक़िआत से बेख़बर थे, दर अस्ल यह हम हैं जो वह्य के ज़रिए से तुम्हें इनकी ख़बर दे रहे हैं। बज़ाहिर इस जुमले में ख़िताब (सम्बोधन) नबी (सल्ल.) से है, लेकिन अस्ल में बात उन मुख़ालिफ़ों से कही जा रही है, जिनको यक़ीन न था कि आप (सल्ल.) को वह्य के ज़रिए से इल्म हासिल होता है।

4. इससे मुराद हज़रत यूसुफ़ (अलैहि.) के वे दस भाई हैं जो दूसरी माओं से थे। हज़रत याक़ूब (अलैहि.) को मालूम था कि ये सौतेले भाई यूसुफ़ से जलन रखते हैं और अख़लाक़ के लिहाज़

رَبُّكَ وَيُعَلِّمُكَ مِنْ تَأْوِيْلِ الْاَحَادِيْثِ وَيُتِمُّ نِعْمَتَهٗ عَلَيْكَ وَعَلٰٓى اٰلِ
يَعْقُوْبَ كَمَآ اَتَمَّهَا عَلٰٓى اَبَوَيْكَ مِنْ قَبْلُ اِبْرٰهِيْمَ وَاِسْحٰقَ ؕ اِنَّ رَبَّكَ
عَلِيْمٌ حَكِيْمٌ ۝٦ ع لَقَدْ كَانَ فِيْ يُوْسُفَ وَاِخْوَتِهٖٓ اٰيٰتٌ لِّلسَّآئِلِيْنَ ۝٧ اِذْ
قَالُوْا لَيُوْسُفُ وَاَخُوْهُ اَحَبُّ اِلٰٓى اَبِيْنَا مِنَّا وَنَحْنُ عُصْبَةٌ ؕ اِنَّ اَبَانَا

रब तुझे (अपने काम के लिए) चुन लेगा[5] और तुझे बातों की तह तक पहुँचना सिखाएगा[6] और तेरे ऊपर और आले-याक़ूब (याक़ूब के ख़ानदान) पर अपनी नेमत उसी तरह पूरी करेगा जिस तरह इससे पहले वह तेरे बुज़ुर्गों, इबराहीम और इसहाक़, पर कर चुका है। यक़ीनन तेरा रब सब कुछ जाननेवाला और हिकमतवाला है।"[7]

(7) हक़ीक़त यह है कि यूसुफ़ और उसके भाइयों के क़िस्से में इन पूछनेवालों के लिए बड़ी निशानियाँ हैं। (8) यह क़िस्सा यूँ शुरू होता है कि उसके भाइयों ने आपस में कहा, "यह यूसुफ़ और उसका भाई[8] दोनों हमारे बाप को हम सबसे ज़्यादा प्यारे हैं,

से भी ऐसे नेक नहीं हैं कि अपना मतलब निकालने के लिए कोई बुरी कार्रवाई करने में उन्हें कोई झिझक हो, इसलिए उन्होंने अपने नेक बेटे को ख़बरदार कर दिया कि उनसे होशियार रहना। ख़ाब का साफ़ मतलब यह था कि सूरज से मुराद हज़रत याक़ूब (अलैहि॰), चाँद से मुराद उनकी बीवी (हज़रत यूसुफ़ की सौतेली माँ) और ग्यारह सितारों से मुराद ग्यारह भाई हैं।

5. यानी नुबूवत देगा (अपना पैग़म्बर बनाएगा)।

6. अस्ल अरबी में लफ़्ज तावीलुल-अहादीस इस्तेमाल हुआ है जिस का मतलब सिर्फ़ ख़ाब की ताबीर (स्वप्नफल) का इल्म नहीं है जैसा कि समझा गया है, बल्कि इसका मतलब यह है कि अल्लाह तआला तुझे मामले की गहरी समझ और हक़ीक़त तक पहुँचने की तालीम देगा और वह सूझ-बूझ तुझको देगा जिससे तू हर मामले की गहराई में उतरने और उसकी तह को पा लेने के क़ाबिल हो जाएगा।

7. बाइबल और तलमूद का बयान क़ुरआन के इस बयान से अलग है। उनका बयान यह है कि हज़रत याक़ूब (अलैहि॰) ने ख़ाब सुनकर बेटे को ख़ूब डाँटा और कहा, अच्छा अब तू यह ख़ाब देखने लगा है कि मैं और तेरी माँ और तेरे सब भाई तुझे सजदा करेंगे। लेकिन ज़रा ग़ौर करने से आसानी से यह बात समझ में आ सकती है कि हज़रत याक़ूब (अलैहि॰) की पैग़म्बराना सीरत से क़ुरआन का बयान ज़्यादा मेल खाता है, न कि बाइबल और तलमूद का। हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) ने ख़ाब बयान किया था, कोई अपनी तमन्ना और ख़ाहिश नहीं बयान की थी। ख़ाब अगर सच्चा था, और ज़ाहिर है कि हज़रत याक़ूब (अलैहि॰) ने उसका जो मतलब निकाला

لَفِىۡ ضَلٰلٍ مُّبِيۡنِ ۚ ۖ ۝٨ اۨقۡتُلُوۡا يُوۡسُفَ اَوِ اطۡرَحُوۡهُ اَرۡضًا يَّخۡلُ لَكُمۡ

हालाँकि हम एक पूरा जत्था हैं। सच्ची बात यह है कि हमारे बाप बिलकुल ही बहक गए हैं।[9] (9) चलो युसूफ़ को क़त्ल कर दो या उसे कहीं फेंक दो, ताकि तुम्हारे बाप का

वह सच्चा ख़ाब ही समझकर निकाला था, तो इसके साफ़ मानी ये थे कि यह यूसुफ़ (अलैहि॰) की ख़ाहिश नहीं थी बल्कि अल्लाह की लिखी हुई तक़दीर का फ़ैसला था कि एक वक़्त उनको यह बुलन्दी हासिल हो। फिर क्या एक पैग़म्बर तो दूर, एक समझदार आदमी का भी यह काम हो सकता है कि ऐसी बात पर बुरा माने और ख़ाब देखनेवाले को उलटी डाँट पिलाए? और क्या कोई शरीफ़ बाप ऐसा भी हो सकता है जो अपने ही बेटे को आनेवाले दिनों में मिलनेवाली तरक़्क़ी और बुलन्दी की ख़ुशख़बरी सुनकर ख़ुश होने के बजाए उलटा जल-भुन जाए?

8. इससे मुराद हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) के सगे भाई बिनयमीन हैं जो उनसे कई साल छोटे थे। उनके जन्म के वक़्त उनकी माँ का इन्तिक़ाल हो गया था। यही वजह थी कि हज़रत याक़ूब (अलैहि॰) इन दोनों बिन माँ के बच्चों का ज़्यादा ख़याल रखते थे। इसके अलावा इस मुहब्बत की वजह यह भी थी कि उनकी सारी औलाद में सिर्फ़ एक हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) ही ऐसे थे जिनके अन्दर उनको हिदायत और नेकी के मुबारक आसार नज़र आते थे। ऊपर हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) का ख़ाब सुनकर उन्होंने जो कुछ कहा उससे साफ़ ज़ाहिर होता है कि वे अपने इस बेटे की ग़ैर-मामूली सलाहियतों को अच्छी तरह जानते थे। दूसरी तरफ़ उन दस बड़े बेटों की ज़िन्दगी का जो हाल था उसका अन्दाज़ा भी आगे के वाक़िआत से हो जाता है। फिर कैसे उम्मीद की जा सकती है कि एक नेक इनसान ऐसी औलाद से ख़ुश रह सके। लेकिन अजीब बात है कि बाइबल में यूसुफ़ (अलैहि॰) के भाइयों की हसद और जलन की एक ऐसी वजह बयान की गई है जिससे उलटा इलज़ाम हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) पर लगता है। बाइबल का बयान है कि हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) भाइयों की चुग़लियाँ बाप से किया करते थे, इस वजह से भाई उनसे नाराज़ थे।

9. इस जुमले की रूह (अस्ल मतलब) समझने के लिए देहाती क़बायली ज़िन्दगी के हालात को ध्यान में रखना चाहिए। जहाँ कोई रियासत मौजूद न होती और आज़ाद क़बीले एक-दूसरे के बराबर में आबाद होते हैं, वहाँ एक शख़्स की क़ुव्वत का सारा दरोमदार इसपर होता है कि उसके अपने बेटे, पोते, भाई, भतीजे बहुत-से हों जो वक़्त आने पर उसकी जान-माल और आबरू और इज़्ज़त की हिफ़ाज़त के लिए उसका साथ दे सकें। ऐसे हालात में औरतों और बच्चों के मुक़ाबले में फ़ितरी तौर पर आदमी को वे जवान बेटे ज़्यादा प्यारे होते हैं जो दुश्मनों के मुक़ाबले में काम आ सकते हों। इसी वजह से उन भाइयों ने कहा कि हमारे बाप बुढ़ापे में सठिया गए हैं। हम जवान बेटों का जत्था, जो बुरे वक़्त पर उनके काम आ सकता है, उनको इतना प्यारा नहीं है जितने ये छोटे-छोटे बच्चे जो उनके किसी काम नहीं आ सकते, बल्कि उलटे ख़ुद ही हिफ़ाज़त के मुहताज हैं।

وَجْهُ اَبِيْكُمْ وَتَكُوْنُوْا مِنْۢ بَعْدِهٖ قَوْمًا صٰلِحِيْنَ ﴿٩﴾ قَالَ قَآئِلٌ مِّنْهُمْ
لَا تَقْتُلُوْا يُوْسُفَ وَاَلْقُوْهُ فِيْ غَيٰبَتِ الْجُبِّ يَلْتَقِطْهُ بَعْضُ السَّيَّارَةِ
اِنْ كُنْتُمْ فٰعِلِيْنَ ﴿١٠﴾ قَالُوْا يٰٓاَبَانَا مَالَكَ لَا تَاْمَنَّا عَلٰى يُوْسُفَ وَاِنَّا لَهٗ
لَنٰصِحُوْنَ ﴿١١﴾ اَرْسِلْهُ مَعَنَا غَدًا يَّرْتَعْ وَيَلْعَبْ وَاِنَّا لَهٗ لَحٰفِظُوْنَ ﴿١٢﴾

ध्यान सिर्फ़ तुम्हारी ही तरफ़ हो जाए। यह काम कर लेने के बाद फिर नेक बन रहना।"[10] (10) इसपर उनमें से एक बोला, "यूसुफ़ को क़त्ल न करो। अगर कुछ करना ही है तो उसे किसी अंधे कुएँ में डाल दो, कोई आता-जाता क़ाफ़िला उसे निकाल ले जाएगा।" (11) यह बात तय हो जाने पर उन्होंने जाकर अपने बाप से कहा, "अब्बाजान! क्या बात है कि आप यूसुफ़ के मामले में हमपर भरोसा नहीं करते, हालाँकि हम उसके सच्चे ख़ैरख़ाह हैं? कल उसे हमारे साथ भेज दीजिए, कुछ चर-चुग लेगा[10अ] (12) और खेल-कूद से भी दिल बहलाएगा। हम उसकी हिफ़ाज़त को मौजूद हैं।"[11]

---

10. यह जुमला उन लोगों के मन की हालत को अच्छी तरह बयान करता है जो अपने आपको अपने मन की ख़ाहिशों के हवाले कर देने के साथ ईमान और नेकी से भी कुछ रिश्ता जोड़े रखते हैं। ऐसे लोगों का तरीक़ा यह होता है कि जब कभी मन उनसे किसी बुरे काम को करने को कहता है तो वे ईमान के तक़ाज़ों को परे रखकर पहले मन की माँग को पूरा करने पर तुल जाते हैं और जब मन अन्दर से चुटकियाँ लेता है तो उसे यह कहकर तसल्ली देने की कोशिश करते हैं कि ज़रा सब्र कर, यह ज़रूरी गुनाह, जिससे हमारा काम अटका हुआ है, कर गुज़रने दे, फिर अल्लाह ने चाहा तो हम तौबा करके वैसे ही नेक बन जाएँगे, जैसा तू हमें देखना चाहता है।

10अ. उर्दू-हिन्दी मुहावरे में बच्चा अगर जंगल में चल-फिरकर कुछ फल तोड़ता और खाता फिरे तो उसके लिए प्यार भरे अंदाज़ में ये अलफ़ाज बोले जाते हैं।

11. यह बयान भी बाइबल और तलमूद के बयान से अलग है। उनकी रिवायत यह है कि यूसुफ़ (अलैहि०) के भाई अपने मवेशी चराने के लिए सिक्किम की तरफ़ गए हुए थे और उनके पीछे ख़ुद हज़रत याक़ूब (अलैहि०) ने उनकी तलाश में हज़रत यूसुफ़ (अलैहि०) को भेजा था। मगर यह बात समझ से परे है कि हज़रत याक़ूब (अलैहि०) ने यूसुफ़ (अलैहि०) के साथ उनकी हसद और जलन का हाल जानने के बावजूद उन्हें आप अपने हाथों मौत के मुँह में भेजा हो। इसलिए क़ुरआन का बयान ही ज़्यादा मुनासिबे-हाल मालूम होता है।

قَالَ اِنِّیۡ لَیَحۡزُنُنِیۡۤ اَنۡ تَذۡهَبُوۡا بِهٖ وَاَخَافُ اَنۡ یَّاۡكُلَهُ الذِّئۡبُ وَاَنۡتُمۡ
عَنۡهُ غٰفِلُوۡنَ ﴿۱۳﴾ قَالُوۡا لَئِنۡ اَكَلَهُ الذِّئۡبُ وَنَحۡنُ عُصۡبَةٌ اِنَّاۤ اِذًا
لَّخٰسِرُوۡنَ ﴿۱۴﴾ فَلَمَّا ذَهَبُوۡا بِهٖ وَاَجۡمَعُوۡۤا اَنۡ یَّجۡعَلُوۡهُ فِیۡ غَیٰبَتِ الۡجُبِّ ۚ
وَاَوۡحَیۡنَاۤ اِلَیۡهِ لَتُنَبِّئَنَّهُمۡ بِاَمۡرِهِمۡ هٰذَا وَهُمۡ لَا یَشۡعُرُوۡنَ ﴿۱۵﴾
وَجَآءُوۡۤا اَبَاهُمۡ عِشَآءً یَّبۡكُوۡنَ ﴿۱۶﴾ قَالُوۡا یٰۤاَبَانَاۤ اِنَّا ذَهَبۡنَا نَسۡتَبِقُ

(13) बाप ने कहा, "तुम्हारा इसे ले जाना मेरे लिए दुख की बात होती है और मुझे डर है कि कहीं उसे भेड़िया न फाड़ खाए, जबकि तुम उससे ग़ाफ़िल हो।" (14) उन्होंने जवाब दिया, "अगर हमारे होते उसे भेड़िए ने खा लिया, जबकि हम एक जत्था हैं, तब तो हम बड़े ही निकम्मे होंगे।" (15) इस तरह अपनी बात पर ज़ोर देकर जब वे उसे ले गए और उन्होंने तय कर लिया कि उसे एक अन्धे कुएँ में छोड़ दें, तो हमने यूसुफ़ को वह्य की कि "एक वक़्त आएगा जब तू उन लोगों को उनकी यह हरकत जताएगा, ये अपने अमल के नतीजों से बेख़बर हैं।"[12] (16) शाम को वे रोते-पीटते अपने बाप के पास आए (17) और कहा, "अब्बाजान! हम दौड़ का मुक़ाबला करने में लग गए थे और

12. अस्ल अरबी में "वहुम ला यशउरून" के अलफ़ाज कुछ ऐसे अन्दाज़ से आए हैं कि उनसे तीन मतलब निकलते हैं, और तीनों ही समझ में आते हैं। एक यह कि हम यूसुफ़ को यह तसल्ली दे रहे थे और उसके भाइयों को कुछ पता न था कि उसपर वह्य की जा रही है। दूसरे यह कि तू ऐसे हालात में उनकी यह हरकत उन्हें जताएगा जहाँ तेरे होने के बारे में उन्होंने सोचा तक न होगा। तीसरे यह कि आज ये बेसमझे-बूझे एक हरकत कर रहे हैं और नहीं जानते कि आगे इसके नतीजे क्या निकलनेवाले हैं।

बाइबल और तलमूद इस ज़िक्र से ख़ाली हैं कि उस वक़्त अल्लाह तआला की तरफ़ से यूसुफ़ (अलैहि॰) को कोई तसल्ली भी दी गई थी। इसके बजाए तलमूद में जो रिवायत बयान हुई है वह यह है कि जब यूसुफ़ (अलैहि॰) कुएँ में डाले गए तो वे बहुत बिलबिलाए और ख़ूब चिल्ला-चिल्लाकर उन्होंने भाइयों से फ़रियाद की। क़ुरआन का बयान पढ़िए तो महसूस होगा कि एक ऐसे नौजवान का बयान हो रहा है जो आगे चलकर इनसानी इतिहास की बड़ी हस्तियों में जाना जानेवाला है। तलमूद को पढ़िए तो कुछ ऐसा नक़्शा सामने आएगा कि रेगिस्तान में कुछ बद्दू (देहाती) एक लड़के को कुएँ में फेंक रहे हैं और वह वही कुछ कर रहा है जो हर लड़का ऐसे मौक़े पर करेगा।

وَتَرَكْنَا يُوسُفَ عِنْدَ مَتَاعِنَا فَأَكَلَهُ الذِّئْبُ ۖ وَمَا أَنْتَ بِمُؤْمِنٍ لَّنَا
وَلَوْ كُنَّا صٰدِقِيْنَ ﴿١٧﴾ وَجَآءُوْ عَلٰى قَمِيْصِهٖ بِدَمٍ كَذِبٍ ۗ قَالَ بَلْ
سَوَّلَتْ لَكُمْ أَنْفُسُكُمْ أَمْرًا ۗ فَصَبْرٌ جَمِيْلٌ ۗ وَاللّٰهُ الْمُسْتَعَانُ عَلٰى مَا
تَصِفُوْنَ ﴿١٨﴾ وَجَآءَتْ سَيَّارَةٌ فَأَرْسَلُوْا وَارِدَهُمْ فَأَدْلٰى دَلْوَهٗ ۗ قَالَ
يٰبُشْرٰى هٰذَا غُلٰمٌ ۗ وَأَسَرُّوْهُ بِضَاعَةً ۗ وَاللّٰهُ عَلِيْمٌ بِمَا يَعْمَلُوْنَ ﴿١٩﴾

यूसुफ़ को हमने अपने सामान के पास छोड़ दिया था कि इतने में भेड़िया आकर उसे खा गया। आप हमारी बात का यक़ीन न करेंगे, चाहे हम सच्चे ही हों।" (18) और वे यूसुफ़ की कमीज़ पर झूठ-मूठ का ख़ून लगाकर ले आए थे। यह सुनकर उनके बाप ने कहा, "बल्कि तुम्हारे जी ने तुम्हारे लिए एक बड़े काम को आसान बना दिया। अच्छा, सब्र करूँगा और ख़ूब अच्छी तरह सब्र करूँगा[13], जो बात तुम बना रहे हो, उसपर अल्लाह ही से मदद माँगी जा सकती है।[14]

(19) उधर एक क़ाफ़िला आया और उसने अपने सक़्क़े (पानी भरनेवाले) को पानी लाने के लिए भेजा। सक़्क़े ने जो कुएँ में डोल डाला तो (यूसुफ़ को देखकर) पुकार उठा, "मुबारक हो, यहाँ तो एक लड़का है।" उन लोगों ने उसको तिजारत का माल समझकर छिपा लिया, हालाँकि जो कुछ वे कर रहे थे, ख़ुदा उसकी ख़बर रखता था।

13. अस्ल अरबी में "सबरुन जमीलुन" के अलफ़ाज़ हैं जिनका लफ़्ज़ी तर्जमा "अच्छा सब्र" हो सकता है। इससे मुराद ऐसा सब्र है जिसमें शिकायत न हो, फ़रियाद न हो, चीख़-पुकार न हो, ठण्डे दिल से उस मुसीबत को बरदाश्त किया जाए जो एक कुशादा-दिल इनसान पर आ पड़ी हो।

14. हज़रत याक़ूब (अलैहि॰) ने इस बात पर जो असर लिया, यहाँ बाइबल और तलमूद उसका नक़्शा भी कुछ ऐसा खींचती हैं जो किसी मामूली बाप पर पड़नेवाले असर से कुछ भी अलग नहीं है। बाइबल का बयान यह है कि "तब याक़ूब ने अपने कपड़े फाड़ लिए और टाट अपनी कमर से लपेटा और बहुत दिनों तक अपने बेटे के लिए मातम करता रहा।" और तलमूद का बयान है कि, "याक़ूब बेटे की क़मीज़ पहचानते ही औंधे मुँह ज़मीन पर गिर पड़ा और देर तक बग़ैर किसी हरकत के बेसुध पड़ा रहा, फिर उठकर बड़े ज़ोर से चीख़ा कि हाँ, यह मेरे बेटे ही की क़मीज़ है------- और वह सालों तक यूसुफ़ का मातम करता रहा।" देखें—बाइबल (उत्पत्ति

ع

وَشَرَوْهُ بِثَمَنٍ بَخْسٍ دَرَاهِمَ مَعْدُوْدَةٍ ۚ وَكَانُوْا فِيْهِ مِنَ الزَّاهِدِيْنَ ﴿٢٠﴾
وَقَالَ الَّذِى اشْتَرٰىهُ مِنْ مِّصْرَ لِامْرَاَتِهٖٓ اَكْرِمِىْ مَثْوٰىهُ عَسٰٓى اَنْ

(20) आख़िरकार उन्होंने थोड़ी-सी क़ीमत पर कुछ दिरहमों के बदले उसे बेच डाला[15] और वे उसकी क़ीमत के मामले में कुछ ज़्यादा की उम्मीद न रखते थे।

(21) मिस्र के जिस आदमी ने उसे ख़रीदा[16] उसने अपनी बीवी[17] से कहा, "इसको

37:34) इस नक़्शे में हज़रत याक़ूब (अलैहि॰) वही कुछ करते नज़र आते हैं जो हर बाप ऐसे मौक़े पर करेगा। लेकिन क़ुरआन जो नक़्शा पेश कर रहा है उससे हमारे सामने एक ऐसे ग़ैर-मामूली इनसान की तस्वीर आती है जो ऊँचे दर्जे की बरदाश्त रखनेवाला और संजीदा है, इतने बड़े दुख और ग़म की ख़बर सुनकर भी अपने दिमाग़ का सन्तुलन नहीं खोता, अपनी सूझ-बूझ और समझदारी से मामले की ठीक-ठीक हालत को भाँप जाता है कि यह एक बनावटी बात है जो इन हसद और जलन रखनेवाले बेटों ने बनाकर पेश की है, और फिर बड़ा हौसला और बड़ा दिल रखनेवाले इनसानों की तरह सब्र करता है और ख़ुदा पर भरोसा करता है।

15. इस मामले की सादा सूरत यह मालूम होती है कि यूसुफ़ (अलैहि॰) के भाई हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) को कुएँ में फेंककर चले गए थे। बाद में क़ाफ़िलेवालों ने आकर उनको वहाँ से निकाला और मिस्र ले जाकर बेच दिया। मगर बाइबल का बयान है कि यूसुफ़ (अलैहि॰) के भाइयों ने बाद में इसमाईलियों के एक क़ाफ़िले को देखा और चाहा कि यूसुफ़ को कुएँ से निकालकर उनके हाथ बेच दें। लेकिन इससे पहले ही मदयन के सौदागर उन्हें कुएँ से निकाल चुके थे, इन सौदागरों ने हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) को (चाँदी के) बीस रुपये में इसमाईलियों के हाथ बेच डाला। फिर आगे चलकर बाइबल के लेखक यह भूल जाते हैं कि ऊपर वे इसमाईलियों के हाथ हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) को बिकवा चुके हैं, चुनाँचे वे इसमाईलियों के बजाए फिर मदयन ही के सौदागरों से मिस्र में उन्हें दोबारा बिकवाते हैं (देखें—किताब उत्पत्ति 37—25-28 और 36) इसके बरख़िलाफ़ तलमूद का बयान है कि मदयन के सौदागरों ने यूसुफ़ को कुएँ से निकालकर अपना ग़ुलाम बना लिया। फिर हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) के भाइयों ने हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) को उनके क़ब्ज़े में देखकर उनसे झगड़ा किया, आख़िरकार उन्होंने 20 दिरहम देकर यूसुफ़ (अलैहि॰) के भाइयों को राज़ी किया। फिर उन्होंने 20 ही दिरहम में यूसुफ़ (अलैहि॰) को इसमाईलियों के हाथ बेच दिया और इसमाईलियों ने मिस्र ले जाकर उन्हें बेच दिया। यहीं से मुसलमानों में यह रिवायत मशहूर हुई है कि हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) को उनके भाइयों ने बेचा था, लेकिन यह बात अच्छी तरह मालूम रहनी चाहिए कि क़ुरआन इस रिवायत की ताईद नहीं करता।

16. बाइबल में इस शख़्स का नाम फ़ौतीफ़ार लिखा है। क़ुरआन मजीद आगे चलकर उसे अज़ीज़ के लक़ब से याद करता है, और फिर एक दूसरे मौक़े पर यही लक़ब (अज़ीज़) हज़रत यूसुफ़

يَّنْفَعَنَآ اَوْ نَتَّخِذَهٗ وَلَدًا ۭ وَكَذٰلِكَ مَكَّنَّا لِيُوْسُفَ فِي الْاَرْضِ ۡ
وَلِنُعَلِّمَهٗ مِنْ تَاْوِيْلِ الْاَحَادِيْثِ ۭ وَاللّٰهُ غَالِبٌ عَلٰٓي اَمْرِهٖ وَلٰكِنَّ اَكْثَرَ

अच्छी तरह रखना, नामुमकिन नहीं कि यह हमारे लिए फ़ायदेमन्द साबित हो या हम इसे बेटा बना लें।"[18] इस तरह हमने यूसुफ़ के लिए उस सरज़मीन में क़दम जमाने की सूरत निकाली और उसे मामलों के समझने की तालीम देने का इन्तिज़ाम किया।[19] अल्लाह

(अलैहि॰) के लिए भी इस्तेमाल करता है। इससे मालूम होता है कि यह शख़्स मिस्र में कोई बहुत बड़ा ओहदेदार या मंसबवाला था, क्योंकि अज़ीज के मानी ऐसे इक्तिदार (सत्ता) वाले शख़्स के हैं जिससे टक्कर न ली जा सकती हो। बाइबल और तलमूद का बयान है कि वह शाही बॉडीगार्डों का अफ़सर था, और इब्ने-जरीर हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अब्बास से रिवायत करते हैं कि यह शाही ख़ज़ाने का अफ़सर था।

17. तलमूद में उस औरत का नाम ज़लीख़ा (Zelicha) लिखा है और यहीं से यह नाम ("ज़ुलैख़ा" के उच्चारण के साथ) मुसलमानों की रिवायत में मशहूर हुआ, मगर यह जो हमारे यहाँ आमतौर पर समझा जाता है कि बाद में उस औरत से हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) का निकाह हुआ, इसकी कोई असल नहीं है, न क़ुरआन में और न इसराईली तारीख़ (इतिहास) में। हक़ीक़त यह है कि एक नबी के बुलन्द मर्तबे से यह बात बहुत कमतर है कि वह किसी ऐसी औरत से निकाह करे जिसकी बदचलनी का उसे ख़ुद तजरिबा हो चुका हो। क़ुरआन मजीद में हमें यह उसूल बताया गया कि, "बुरी औरतें बुरे मर्दों के लिए हैं और बुरे मर्द बुरी औरतों के लिए, और पाक औरतें पाक मर्दों के लिए हैं और पाक मर्द पाक औरतों के लिए।" (सूरा-24 नूर, आयत-26)

18. तलमूद का बयान है कि उस वक़्त हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) की उम्र 18 साल थी और फ़ौतीफ़ार उनकी शानदार शख़्सियत को देखकर ही समझ गया था कि यह लड़का ग़ुलाम नहीं है, बल्कि किसी बड़े शरीफ़ ख़ानदान से ताल्लुक़ रखता है जिसे हालात की गर्दिश यहाँ खींच लाई है। चुनाँचे जब वह उन्हें ख़रीद रहा था उसी वक़्त उसने सौदागरों से कह दिया था कि यह ग़ुलाम तो नहीं मालूम होता, मुझे शक होता है कि शायद तुम इसे कहीं से चुरा लाए हो। इसी लिए फ़ौतीफ़ार ने उनसे ग़ुलामों का-सा बरताव नहीं किया, बल्कि उन्हें अपने घर और अपनी पूरी जायदाद का कर्ता-धर्ता बना दिया। बाइबल का बयान है कि "उसने अपना सबकुछ यूसुफ़ के हाथ में छोड़ दिया और सिवाए रोटी के जिसे वह खा लेता था, उसे अपनी किसी चीज़ का होश न था।" (उत्पत्ति, 39:6)

19. हज़रत यूसुफ़ की तरबियत उस वक़्त तक रेगिस्तान में बनजारों और चरवाहों के माहौल में हुई थी। कनआन और उत्तरी अरब के इलाक़े में उस वक़्त न कोई मुनज़्ज़म रियासत थी और न तहज़ीब व तमद्दुन (सभ्यता और संस्कृति) ने कोई बड़ी तरक़्क़ी की थी। कुछ आज़ाद क़बीले थे

النَّاسِ لَا يَعْلَمُوْنَ ۝٢١ وَلَمَّا بَلَغَ اَشُدَّهٗۤ اٰتَيْنٰهُ حُكْمًا وَّعِلْمًا ؕ وَكَذٰلِكَ
نَجْزِى الْمُحْسِنِيْنَ ۝٢٢ وَرَاوَدَتْهُ الَّتِىْ هُوَ فِىْ بَيْتِهَا عَنْ نَّفْسِهٖ وَغَلَّقَتِ
الْاَبْوَابَ وَقَالَتْ هَيْتَ لَكَ ؕ قَالَ مَعَاذَ اللّٰهِ اِنَّهٗ رَبِّىْۤ اَحْسَنَ مَثْوَاىَ ؕ

अपना काम करके रहता है, मगर ज़्यादातर लोग जानते नहीं हैं। (22) और जब वह अपनी पूरी जवानी को पहुँचा तो हमने उसे फ़ैसला करने की क़ुव्वत और इल्म दिया[20], इस तरह हम नेक लोगों को बदला देते हैं।

(23) जिस औरत के घर में वह था, वह उसपर डोरे डालने लगी और एक दिन दरवाज़े बन्द करके बोली, "आ जा।" यूसुफ़ ने कहा, "ख़ुदा की पनाह! मेरे रब ने तो

जो वक़्त-वक़्त पर हिजरत करके (बाहर जाते) रहते थे, और कुछ क़बीलों ने मुख़्तलिफ़ इलाक़ों में मुस्तक़िल तौर पर रिहाइश इख़्तियार करके छोटी-छोटी रियासतें भी बना ली थीं। इन लोगों का हाल मिस्र के बराबर में क़रीब-क़रीब वही था जो पाकिस्तान की उत्तर-पश्चिमी सरहद पर आज़ाद इलाक़े के पठान क़बीलों का है। यहाँ हज़रत यूसुफ़ (अलैहि.) को जो तालीम व तरबियत मिली थी उसमें बद्दुओंवाली ज़िन्दगी की ख़ूबियाँ और इबराहीमी ख़ानदान की ख़ुदा-परस्ती व दीनदारी की बातें तो ज़रूर शामिल थी, मगर अल्लाह तआला उस वक़्त के सबसे ज़्यादा तरक़्क़ीयाफ़्ता और तहज़ीबयाफ़्ता देश, यानी मिस्र में उनसे जो काम लेना चाहता था, और उसके लिए जिस जानकारी, जिस तजरिबे और जिस गहरी सूझ-बूझ की ज़रूरत थी उसके फलने-फूलने का कोई मौक़ा बद्दुओंवाली (देहाती) ज़िन्दगी में न था। इसलिए अल्लाह ने अपनी मुकम्मल क़ुदरत से यह इन्तिज़ाम किया कि उन्हें मिस्र देश के एक बड़े ओहदेदार के यहाँ पहुँचा दिया और उसने उनकी ग़ैर-मामूली सलाहियतों को देखकर उन्हें अपना घर और अपनी जागीर सौंप दी। इस तरह यह मौक़ा पैदा हो गया कि उनकी वे तमाम क़ाबिलियतें पूरी तरह फूल-फल सकें जो अब तक अमल में नहीं आई थीं और उन्हें एक छोटी जागीर के इन्तिज़ाम से वह तजरिबा हासिल हो जाए जो आनेवाले दिनों में एक बड़ी हुकूमत का इन्तिज़ाम चलाने के लिए चाहिए था। इसी बात की तरफ़ इस आयत में इशारा किया गया है।

20. क़ुरआन की ज़बान में इन अलफ़ाज़ से मुराद आमतौर से "नुबूवत देना" होता है। हुक्म के मानी फ़ैसला करने की सलाहियत के भी हैं और इक़्तिदार और हुकूमत के भी। तो अल्लाह की तरफ़ से किसी बन्दे को हुक्म दिए जाने का मतलब यह हुआ कि अल्लाह तआला ने उसे इनसानी ज़िन्दगी के मामलों में फ़ैसला करने की सलाहियत भी दी और इख़्तियार भी दिए। रहा इल्म तो इससे मुराद वह ख़ास इल्मे-हक़ीक़त (सत्यज्ञान) है जो पैग़म्बरों को वह्य के ज़रिए से सीधे तौर पर दिया जाता है।

إِنَّهُ لَا يُفْلِحُ الظَّٰلِمُونَ ﴿٢٣﴾ وَلَقَدْ هَمَّتْ بِهِۦ ۖ وَهَمَّ بِهَا لَوْلَآ أَن رَّا
بُرْهَانَ رَبِّهِۦ ۚ كَذَٰلِكَ لِنَصْرِفَ عَنْهُ السُّوٓءَ وَالْفَحْشَآءَ ۚ إِنَّهُ مِنْ

मुझे अच्छी इज़्ज़त और मक़ाम दिया (और मैं यह काम करूँ!)। ऐसे ज़ालिम कभी कामयाबी नहीं पाया करते।"[21] (24) वह उसकी तरफ़ बढ़ी और यूसुफ़ भी उसकी तरफ़ बढ़ता अगर अपने रब की बुरहान (दलील) न देख लेता।[22] ऐसा हुआ, ताकि हम उससे

21. आमतौर पर क़ुरआन का तर्जमा और तफ़सीर लिखनेवालों ने यह समझा है कि यहाँ मेरे रब का लफ़्ज़ हज़रत यूसुफ़ (अलैहि०) ने उस शख़्स के लिए इस्तेमाल किया है जिसके यहाँ वे उस वक़्त काम कर रहे थे और उनके इस जवाब का मतलब यह था कि मेरे मालिक ने तो मुझे इतनी अच्छी तरह रखा है, फिर मैं यह नमक-हरामी कैसे कर सकता हूँ कि उसकी बीवी से बदकारी करूँ। लेकिन मुझे इस तर्जमे और तफ़सीर से सख़्त इख़्तिलाफ़ है। अगरचे अरबी ज़बान के पहलू से यह मतलब लेने की भी गुंजाइश है, क्योंकि अरबी में लफ़्ज़ "रब" मालिक के मानी में इस्तेमाल होता है, लेकिन यह बात एक नबी की शान से बहुत गिरी हुई है कि वह एक गुनाह से रुक जाने में अल्लाह तआला के बजाए किसी बन्दे का लिहाज़ करे और क़ुरआन में इसकी कोई मिसाल भी मौजूद नहीं है कि किसी नबी ने ख़ुदा के सिवा किसी और को अपना रब कहा हो। आगे चलकर आयत 41, 42, और 50 में हम देखते हैं कि हज़रत यूसुफ़ (अलैहि०) अपने और मिस्रवासियों के इस नज़रिये का यह फ़र्क़ बार-बार वाज़ेह करते हैं कि उनका रब तो अल्लाह है और मिस्रियों ने बन्दों को अपना रब बना रखा है। फिर जब आयत के अलफ़ाज़ में यह मतलब लेने की भी गुंजाइश मौजूद है कि हज़रत यूसुफ़ (अलैहि०) ने रब्बी (मेरा रब) अल्लाह को कहा हो, तो क्या वजह है कि हम एक ऐसे मानी को लें जिसमें साफ़तौर पर बुराई का पहलू निकलता है।

22. 'बुरहान' के मानी हैं दलील और हुज्जत के। रब की बुरहान से मुराद ख़ुदा की सुझाई हुई वह दलील है जिसकी वजह से हज़रत यूसुफ़ (अलैहि०) के दिल ने उनके मन को इस बात के क़बूल करने पर राज़ी किया कि इस औरत की मौज-मस्तीवाली दावत को क़बूल करना तेरे लिए मुनासिब नहीं है। और वह दलील थी क्या? इसे पिछले जुमले में बयान किया जा चुका है, यानी यह कि, "मेरे रब ने तो मुझे यह मक़ाम दिया और मैं ऐसा बुरा काम करूँ? ऐसे ज़ालिमों को कभी कामयाबी हासिल नहीं हुआ करती।" यही हक़ की वह दलील थी जिसने हज़रत यूसुफ़ (अलैहि०) को उस नई जवानी की हालत में ऐसे नाज़ुक मौक़े पर गुनाह से रोके रखा। फिर यह जो फ़रमाया कि "यूसुफ़ भी उसकी तरफ़ बढ़ता अगर अपने रब की बुरहान न देख लेता" तो इससे नबियों की पाकदामनी की हक़ीक़त पर भी पूरी रौशनी पड़ जाती है। नबी के मासूम होने के मानी ये नहीं हैं कि उससे गुनाह करने और उसके फ़ैसले और ग़लती करने की ताक़त और

عِبَادِنَا الْمُخْلَصِيْنَ ﴿٢٤﴾ وَاسْتَبَقَا الْبَابَ وَقَدَّتْ قَمِيْصَهٗ مِنْ دُبُرٍ
وَّاَلْفَيَا سَيِّدَهَا لَدَا الْبَابِ ۚ قَالَتْ مَا جَزَآءُ مَنْ اَرَادَ بِاَهْلِكَ سُوْٓءًا
اِلَّآ اَنْ يُّسْجَنَ اَوْ عَذَابٌ اَلِيْمٌ ﴿٢٥﴾ قَالَ هِيَ رَاوَدَتْنِيْ عَنْ نَّفْسِيْ

बुराई और बेशर्मी को दूर कर दें।[23] हक़ीक़त में वह हमारे चुने हुए बन्दों में से था। (25) आख़िरकार यूसुफ़ और वह आगे-पीछे दरवाज़े की तरफ़ भागे और उसने पीछे से यूसुफ़ की क़मीज़ (खींचकर) फाड़ दी। दरवाज़े पर दोनों ने उसके शौहर को मौजूद पाया। उसे देखते ही औरत कहने लगी, "क्या सज़ा है उस आदमी की जो तेरी घरवाली पर नीयत ख़राब करे?" "इसके सिवा और क्या सज़ा हो सकती है कि वह क़ैद किया जाए या उसे सख़्त अज़ाब दिया जाए?" (26) यूसुफ़ ने कहा, "यही मुझे फाँसने की

सकत छीन ली गई है यहाँ तक कि गुनाह करना उसके लिए मुमकिन ही नहीं रहा है, बल्कि इसके मानी ये हैं कि नबी अगरचे गुनाह करने की क़ुदरत रखता है लेकिन इनसान होने की तमाम सिफ़ात रखने के बावजूद, और तमाम इनसानी जज़्बात व एहसासात और ख़्वाहिशें रखते हुए भी वह ऐसा नेकदिल और ख़ुदा से डरनेवाला होता है कि जान-बूझकर कभी गुनाह का इरादा नहीं करता। वह अपने अन्दर अपने रब की ऐसी-ऐसी हुज्जतें और दलीलें रखता है जिनके मुक़ाबले में मन की ख़ाहिश कभी कामयाब नहीं होने पाती और अगर अनजाने में उससे कोई भूल-चूक हो जाती है तो अल्लाह तआला फ़ौरन वाज़ेह तौर पर वह्य के ज़रिए से उसकी इस्लाह (सुधार) कर देता है, क्योंकि उसकी ग़लती अकेले एक शख़्स की ग़लती नहीं है, एक पूरी उम्मत की ग़लती है, वह सीधे रास्ते से बाल बराबर हट जाए तो दुनिया गुमराही में मीलों दूर निकल जाए।

23. इस बात के दो मतलब हो सकते हैं। एक यह कि उसका रब की दलील को देखना और गुनाह से बच जाना हमारी मेहरबानी व हिदायत से हुआ; क्योंकि हम अपने इस चुने हुए बन्दे से बुराई और बेशर्मी को दूर करना चाहते थे। दूसरा मतलब यह भी लिया जा सकता है और यह ज़्यादा गहरा मतलब है कि यूसुफ़ (अलैहि॰) को यह मामला जो पेश आया तो यह भी अस्ल में उनकी तरबियत के सिलसिले में एक ज़रूरी मरहला था। उनको बुराई और बेशर्मी से पाक करने और उनकी मन की पाकीज़गी को उसके इन्तिहाई ऊँचे दर्जे पर पहुँचाने के लिए अल्लाह की मस्लहत में यह ज़रूरी था कि उनके सामने गुनाह का एक ऐसा नाज़ुक मौक़ा पेश आए और उस आज़माइश के वक़्त वह अपने इरादे की पूरी ताक़त परेहज़गारी व तक़वा के पलड़े में डालकर अपने मन के बुरे मैलानों को हमेशा के लिए पूरी तरह हरा दें। ख़ासतौर से तरबियत के उस ख़ास तरीक़े को अपनाने की मस्लहत और अहमियत उस अख़लाक़ी माहौल को निगाह में

وَشَهِدَ شَاهِدٌ مِّنْ اَهْلِهَا ۚ اِنْ كَانَ قَمِيْصُهٗ قُدَّ مِنْ قُبُلٍ فَصَدَقَتْ
وَهُوَ مِنَ الْكٰذِبِيْنَ ۞ وَاِنْ كَانَ قَمِيْصُهٗ قُدَّ مِنْ دُبُرٍ فَكَذَبَتْ وَهُوَ
مِنَ الصّٰدِقِيْنَ ۞ فَلَمَّا رَاٰ قَمِيْصَهٗ قُدَّ مِنْ دُبُرٍ قَالَ اِنَّهٗ مِنْ كَيْدِكُنَّ ؕ

कोशिश कर रही थी।" उस औरत के अपने कुंबेवालों में से एक आदमी ने (हालात का अन्दाज़ा करके) गवाही पेश की[24] कि "अगर यूसुफ़ की क़मीज़ आगे से फटी हो तो औरत सच्ची है और यह झूठा है, (27) और अगर उसकी क़मीज़ पीछे से फटी हो तो औरत झूठी है और यह सच्चा।"[25] (28) जब शौहर ने देखा कि यूसुफ़ की क़मीज़ पीछे

रखने से आसानी से समझ में आ सकती है जो उस वक़्त के मिस्री समाज में पाया जाता था। आगे रुकूअ 4 (आयत 30 से 35) में इस माहौल की जो एक ज़रा-सी झलक दिखाई गई है उससे अन्दाज़ा होता है कि उस वक़्त के मुहज़्ज़ब (सभ्य) मिस्र में आमतौर से और उसके ऊँचे तबक़े में ख़ास तौर से जिन्सी आज़ादी लगभग उसी पैमाने पर थी जिसपर हम अपने ज़माने के पश्चिमवालों और पश्चिम से मुतास्सिर तबक़ों को मौजूद पा रहे हैं। हज़रत यूसुफ़ (अलैहि.) को ऐसे बिगड़े हुए लोगों में रहकर काम करना था, और काम भी एक मामूली आदमी की हैसियत से नहीं, बल्कि मुल्क के हाकिम की हैसियत से करना था। अब यह ज़ाहिर है कि जो इज़्ज़तदार औरत एक ख़ूबसूरत ग़ुलाम के आगे बिछी जा रही थी, वह एक जवान और ख़ूबसूरत हाकिम को फाँसने और बिगाड़ने के लिए क्या कुछ न कर डालती। इसी से बचने के लिए अल्लाह तआला ने पहले ही यह इन्तिज़ाम कर दिया कि एक तरफ़ तो शुरू ही में इस आज़माइश से गुज़ारकर हज़रत यूसुफ़ (अलैहि.) को मज़बूत कर दिया, और दूसरी तरफ़ मिस्र की औरतों को भी उनसे मायूस करके उनके सारे फ़ितनों का दरवाज़ा बन्द कर दिया।

24. इससे यह समझ में आता है कि मामला इस तरह का था कि घर के मालिक के साथ ख़ुद उस औरत के भाई-बन्दों में से भी कोई शख़्स आ रहा होगा और उसने यह झगड़ा सुनकर कहा होगा कि जब ये दोनों एक-दूसरे पर इलज़ाम लगाते हैं और मौक़े का गवाह कोई नहीं है तो सूरते-हाल की गवाही से इस मामले की असलियत का यूँ पता लगाया जा सकता है। कुछ रिवायतों में बयान किया गया है कि यह गवाही देनेवाला एक दूध पीता बच्चा था जो वहाँ पालने में लेटा हुआ था और ख़ुदा ने उसे बोलने की सलाहियत देकर उससे यह गवाही दिलवाई। लेकिन यह रिवायत न तो सही सनद से साबित है और न इस मामले में बिना वजह मोजिज़े से मदद लेने की कोई ज़रूरत ही महसूस होती है। उस गवाह ने सूरतेहाल की जिस गवाही की तरफ़ ध्यान दिलाया है, वह सरासर एक अक़्ल में आनेवाली गवाही है और उसको देखने से एक ही नज़र में मालूम हो जाता है कि यह शख़्स समझदार और तजरिबेकार आदमी

إِنَّ كَيْدَكُنَّ عَظِيمٌ ﴿٢٨﴾ يُوسُفُ أَعْرِضْ عَنْ هَٰذَا ۚ وَاسْتَغْفِرِي
لِذَنبِكِ ۖ إِنَّكِ كُنتِ مِنَ الْخَاطِئِينَ ﴿٢٩﴾ وَقَالَ نِسْوَةٌ فِي الْمَدِينَةِ
امْرَأَتُ الْعَزِيزِ تُرَاوِدُ فَتَاهَا عَن نَّفْسِهِ ۖ قَدْ شَغَفَهَا حُبًّا ۖ إِنَّا لَنَرَاهَا

से फटी है तो उसने कहा, "यह तुम औरतों की चालाकियाँ हैं, वाक़ई बड़े ग़ज़ब की होती हैं तुम्हारी चालें। (29) यूसुफ़! इस मामले को जाने दे (यानी दरगुज़र कर दे)। और ऐ औरत! तू अपने क़ुसूर की माफ़ी माँग, तू ही असल में ख़ताकार थी।"[25अ]

(30) शहर की औरतें आपस में चर्चा करने लगीं कि "अज़ीज़ की बीवी[25ब] अपने नवजवान ग़ुलाम के पीछे पड़ी हुई है। मुहब्बत ने उसको बेक़ाबू कर रखा है। हमारे

था, जो मामले की सूरत सामने आते ही उसकी तह को पहुँच गया। नामुमकिन नहीं कि वह कोई जज या मजिस्ट्रेट हो। (क़ुरआन की तफ़सीर लिखनेवालों के यहाँ दूध पीते बच्चे की गवाही का क़िस्सा अस्ल में यहूदी रियायतों से आया है। देखें—तलमूद के इक़्तिबास, लेखक : पॉल इसहाक़ हरशौन, लन्दन 1880 ई., पृष्ठ-256)

25. मतलब यह है कि अगर यूसुफ़ की क़मीज़ सामने से फटी हो तो यह इस बात की साफ़ अलामत है कि पहल यूसुफ़ की तरफ़ से हुई थी और औरत अपने आपको बचाने के लिए कशमकश कर रही थी। लेकिन अगर यूसुफ़ की क़मीज़ पीछे से फटी है तो इससे साफ़ साबित होता है कि औरत उसके पीछे पड़ी हुई थी और यूसुफ़ उससे बचकर निकल जाना चाहता था। इसके अलावा क़रीने की एक और गवाही भी उस गवाही में छिपी हुई थी, वह यह कि उस गवाह ने ध्यान सिर्फ़ यूसुफ़ (अलैहि.) की क़मीज़ की तरफ़ दिलाया। इससे साफ़ ज़ाहिर हो गया कि औरत के जिस्म या उसके लिबास पर ज़ोर-ज़बरदस्ती की कोई अलामत सिरे से पाई ही न जाती थी, हालाँकि अगर यह मुक़द्दमा बलात्कार की कोशिश का होता तो औरत पर इसकी खुली निशानियाँ पाई जातीं।

25(अ). बाइबल में इस क़िस्से को जिस भौंडे तरीक़े से बयान किया गया है वह देखिए :
"तब उस औरत ने उसका लिबास पकड़ कर कहा कि मेरे साथ हमबिस्तर हो। वह अपना लिबास उसके हाथ में छोड़कर भागा और बाहर निकल गया। जब उसने देखा कि वह अपना लिबास उसके हाथ में छोड़कर भाग गया तो उसने अपने घर के आदमियों के बुलाकर उनसे कहा कि देखो वह एक इब्री को हमारा तिरस्कार करने के लिए हमारे पास ले आया है। यह मुझसे हमबिस्तर होने को अन्दर घुस आया और मैं ऊँची आवाज़ से चिल्लाने लगी। जब उसने देखा कि मैं ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला रही हूँ तो अपना लिबास मेरे पास छोड़कर भागा और बाहर निकल गया। और वह उसका लिबास उसके मालिक के घर लौटने तक अपने पास रखे रही।

فِىْ ضَلٰلٍ مُّبِيْنٍ ۝٣٠ فَلَمَّا سَمِعَتْ بِمَكْرِهِنَّ اَرْسَلَتْ اِلَيْهِنَّ وَاَعْتَدَتْ
لَهُنَّ مُتَّكَاً وَّاٰتَتْ كُلَّ وَاحِدَةٍ مِّنْهُنَّ سِكِّيْنًا وَّقَالَتِ اخْرُجْ عَلَيْهِنَّ ۚ

नज़दीक तो वह खुली ग़लती कर रही है।" (31) उसने जो उनकी ये मक्कारी भरी बातें सुनीं तो उनको बुलावा भेज दिया और उनके लिए तकिएदार मजलिस सजाई[26] और

जब उसके मालिक ने अपनी बीवी की वे बातें जो उसने उससे कहीं सुन लीं कि तेरे ग़ुलाम ने मुझसे ऐसा-ऐसा किया तो उसका ग़ुस्सा भड़का और यूसुफ़ के मालिक ने उसको लेकर क़ैदख़ाने में जहाँ बादशाह के क़ैदी बन्द थे डाल दिया। (उत्पत्ति, 39:12-20)

इस अजीबो-ग़रीब रिवायत का ख़ुलासा यह है कि हज़रत यूसुफ़ (अलैहि०) के जिस्म पर लिबास कुछ इस तरह का था कि इधर ज़ुलैख़ा ने उसपर हाथ डाला और उधर वह पूरा लिबास ख़ुद-ब-ख़ुद उतरकर उसके हाथ में आ गया! फिर मज़े की बात यह कि हज़रत यूसुफ़ (अलैहि०) वह लिबास उसके पास छोड़कर यूँ ही नंगे भाग निकले और उनका लिबास (यानी उनके क़ुसूर का पक्का सुबूत) उस औरत के पास ही रह गया। इसके बाद हज़रत यूसुफ़ (अलैहि०) के मुजरिम होने में आख़िर कौन शक कर सकता था?

यह तो है बाइबल की रिवायत। रही तलमूद, तो उसका बयान है कि फ़ौतीफ़ार ने जब अपनी बीवी से यह शिकायत सुनी तो उसने यूसुफ़ (अलैहि०) को ख़ूब पिटवाया, फिर उनके ख़िलाफ़ अदालत में अपील की और अदालत के अधिकारियों ने हज़रत यूसुफ़ (अलैहि०) की क़मीज़ का जाइज़ा लेकर फ़ैसला किया कि क़ुसूर औरत का है, क्योंकि क़मीज़ पीछे से फटी है, न कि आगे से। लेकिन यह बात हर अक़्लमन्द आदमी थोड़े-से सोच-विचार से आसानी से समझ सकता है कि क़ुरआन की रिवायत तलमूद की रिवायत से ज़्यादा समझ में आनेवाली है। आख़िर किस तरह यह मान लिया जाए कि ऐसा बड़ा एक रुतबेवाला आदमी अपनी बीवी पर अपने ग़ुलाम की ज़ोर-ज़बरदस्त का मामला ख़ुद अदालत में ले गया होगा।

यह एक सबसे ज़्यादा नुमायाँ मिसाल है क़ुरआन और इसराईली रिवायतों के फ़र्क़ की जिससे मग़रिबी मुस्तशरिक़ीन (इस्लाम का नकारात्मक अध्ययन करनेवाले पश्चिमी विद्वानों) के इस इलज़ाम का बकवास होना ज़ाहिर हो जाता है कि मुहम्मद (सल्ल०) ने ये क़िस्से बनी-इसराईल से नक़ल कर लिए हैं। सच यह है कि क़ुरआन ने तो उनका सुधार किया है और अस्ल वाक़िआत दुनिया को बताए हैं।

25.ब. यहाँ अज़ीज़ लफ़्ज इस्तेमाल हुआ है। अज़ीज़ उस शख़्स का नाम न था, बल्कि मिस्र के किसी बड़े असरदार और ताक़तवर शख़्स के लिए इस्तिलाह के तौर पर लक़ब (उपाधि) का इस्तेमाल होता था।

26. यानी ऐसी मजलिस जिसमें मेहमानों के लिए तकिए लगे हुए थे। मिस्र के आसारे-क़दीमा (पुरातत्व अवशेषों) से भी इसकी तसदीक़ होती है कि उनकी मजलिसों में तकियों का इस्तेमाल

فَلَمَّا رَاَيۡنَهٗۤ اَكۡبَرۡنَهٗ وَقَطَّعۡنَ اَيۡدِيَهُنَّ وَقُلۡنَ حَاشَ لِلّٰهِ مَا هٰذَا بَشَرًا ؕ
اِنۡ هٰذَاۤ اِلَّا مَلَكٌ كَرِيۡمٌ ﴿۳۱﴾ قَالَتۡ فَذٰلِكُنَّ الَّذِىۡ لُمۡتُنَّنِىۡ فِيۡهِ ؕ وَلَقَدۡ
رَاوَدْتُّهٗ عَنۡ نَّفۡسِهٖ فَاسۡتَعۡصَمَ ؕ وَلَئِنۡ لَّمۡ يَفۡعَلۡ مَاۤ اٰمُرُهٗ لَيُسۡجَنَنَّ
وَلَيَكُوۡنًا مِّنَ الصّٰغِرِيۡنَ ﴿۳۲﴾ قَالَ رَبِّ السِّجۡنُ اَحَبُّ اِلَىَّ مِمَّا يَدۡعُوۡنَنِىۡۤ

मेहमानी में हर एक के आगे एक-एक छुरी रख दी। (फिर ठीक उस वक़्त जबकि वे फल काट-काटकर खा रही थीं) उसने यूसुफ़ को इशारा किया कि उनके सामने निकल आ। जब उन औरतों की नज़र उसपर पड़ी तो वे दंग रह गईं और अपने हाथ काट बैठीं और बेसाख़्ता पुकार उठीं, "अल्लाह की पनाह! यह आदमी इनसान नहीं है, यह तो कोई बुज़ुर्ग फ़रिश्ता है।" (32) अज़ीज़ की बीवी ने कहा, "देख लिया! यह है वह आदमी जिसके मामले में तुम मुझपर बातें बनाती थीं। बेशक मैंने इसे रिझाने की कोशिश की थी, मगर यह बच निकला। अगर यह मेरा कहना न मानेगा तो क़ैद किया जाएगा और बहुत बेइज़्ज़त व रुसवा होगा।"[27] (33) यूसुफ़ ने कहा, "ऐ मेरे रब! क़ैद मुझे मंज़ूर है

बहुत होता था।

बाइबल में इस ख़ातिरदारी का कोई ज़िक्र नहीं है, अलबत्ता तलमूद में यह वाक़िआ बयान किया गया है, मगर वह क़ुरआन से बहुत अलग है। क़ुरआन के बयान में जो ज़िन्दगी, जो रूह, जो फ़ितरीपन और अख़लाक़ियत पाई जाती है उससे तलमूद का बयान बिलकुल ख़ाली है।

27. इससे अन्दाज़ा होता है कि उस वक़्त मिस्र के ऊँचे तबक़ों की अख़लाक़ी हालत क्या थी। ज़ाहिर है कि अज़ीज़ की बीवी ने जिन औरतों को बुलाया होगा वे अमीरों, रईसों और बड़े ओहदेदारों के घर की बेगमें ही होंगी। उन ऊँचे रुतबे की औरतों के सामने वह अपने महबूब नवजवान को पेश करती है और उसकी ख़ूबसूरत जवानी दिखाकर उनसे यह बात मनवाने की कोशिश करती है कि ऐसे ख़ूबसूरत नवजवान पर मैं मर न मिटती तो आख़िर और क्या करती। फिर ये बड़े घरों की बहू-बेटियाँ ख़ुद भी अपने अमल से मानो इस बात की तसदीक़ करती हैं कि वाक़ई उनमें से हर एक ऐसे हालात में वही कुछ करती जो अज़ीज़ की बेगम ने किया। फिर शरीफ़ औरतों की इस भरी मजलिस में इज़्ज़तदार मेज़बान को खुल्लम-खुल्ला अपने इस इरादे को ज़ाहिर करते हुए कोई शर्म महसूस नहीं होती कि अगर उसका ख़ूबसूरत गुलाम उसके दिल की ख़ाहिश का खिलौना बनने पर राज़ी न हुआ तो वह उसे जेल भिजवा देगी। यह सब कुछ इस बात का पता देता है कि यूरोप और अमेरिका और उनकी नक़ल करनेवाले पूर्वी लोग आज

اِلَيۡهِ وَاِلَّا تَصۡرِفۡ عَنِّىۡ كَيۡدَهُنَّ اَصۡبُ اِلَيۡهِنَّ وَاَكُنۡ مِّنَ الۡجٰهِلِيۡنَ ۝٣٣
فَاسۡتَجَابَ لَهٗ رَبُّهٗ فَصَرَفَ عَنۡهُ كَيۡدَهُنَّ‌ؕ اِنَّهٗ هُوَ السَّمِيۡعُ الۡعَلِيۡمُ ۝٣٤

इसके मुक़ाबले में कि मैं वह काम करूँ जो ये लोग मुझसे चाहते हैं और अगर तूने इनकी चालों को मुझसे दफ़ा न किया तो मैं इनके जाल में फँस जाऊँगा और जाहिलों में शामिल हो रहूँगा।"[28] (34) उसके रब ने उसकी दुआ क़बूल की और उन औरतों की चालें उससे दूर कर दीं।[29] बेशक वही है जो सबकी सुनता और सब कुछ जानता है।

औरतों की जिस आज़ादी और बेशर्मी को बीसवीं शताब्दी की तरक़्क़ियों का करिश्मा समझ रहे हैं वह कोई नई चीज़ नहीं है, बहुत पुरानी चीज़ है। दक़ियानूस से सैकड़ों साल पहले मिस्र में यह इसी शान के साथ पाई जाती थी, जैसी आज इस रौशन ज़माने में पाई जा रही है।

28. ये आयतें हमारे सामने उन हालात का एक अजीब नक़्शा पेश करती हैं जिनमें उस वक़्त हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) मुब्तला थे। उन्नीस-बीस साल का एक ख़ूबसूरत नवजवान है जो बद्दुओंवाली ज़िन्दगी से बेहतरीन तन्दुरुस्ती और भरी जवानी लिए हुए आया है। ग़रीबी, जिलावतनी (वतन से बाहर होने) और जबरी ग़ुलामी के मरहलों से ग़ुजरने के बाद क़िस्मत उसे दुनिया की सबसे बड़ी तरक़्क़ीयाफ़्ता हुकूमत की राजधानी में एक बड़े रईस के यहाँ ले आई है। यहाँ पहले तो ख़ुद उस घर की बेगम ही उसके पीछे पड़ जाती है जिससे उसका दिन-रात का आमना-सामना है। फिर उसकी ख़ूबसूरती की चर्चा पूरे शहर में फैल जाती है और शहर भर के दौलतमन्द घरानों की औरतें उसपर मर मिटती हैं। अब एक तरफ़ वह है और दूसरी तरफ़ सैकड़ों ख़ूबसूरत जाल हैं जो हर वक़्त, हर जगह उसे फाँसने के लिए फैले हुए हैं। हर तरह की तदबीर उसके जज़्बात को भड़काने और उसकी पारसाई को तोड़ने के लिए की जा रही हैं। जिधर जाता है यही देखता है कि गुनाह अपनी सारी ख़ुशनुमाइयों और दिलफ़रेबियों के साथ दरवाज़ा खोले उसके इन्तिज़ार में खड़ा है। कोई तो गुनाह के मौक़े ख़ुद ढूँढता है, मगर यहाँ मौक़े उसको ख़ुद ढूँढ रहे हैं और इस ताक में लगे हुए हैं कि जिस वक़्त भी उसका दिल बुराई की तरफ़ ज़रा-सा भी झुके, वे फ़ौरन अपने आपको उसके सामने पेश कर दें। रात-दिन के चौबीस घण्टे वह इस ख़तरे में गुज़ार रहा है कि कभी एक पल के लिए भी उसके इरादे के बन्धन में कुछ ढील आ जाए तो वह गुनाह के उन अनगिनत दरवाज़ों में से किसी में दाख़िल हो सकता है, जो उसके इन्तिज़ार में खुले हुए हैं। इस हालत में यह ख़ुदापरस्त नवजवान जिस कामयाबी के साथ इन शैतानी बहकावों का मुक़ाबला करता है। वह अपने आप में ख़ुद कुछ कम तारीफ़ के क़ाबिल नहीं है। मगर अपने मन पर क़ाबू रखने के इस हैरतनाक कमाल पर मन और सोच की पाकीज़गी का और ज़्यादा कमाल यह है कि इसपर भी उसके दिल में कभी यह घमण्ड भरा ख़याल नहीं आता कि वाह रे मैं, कैसा मज़बूत है मेरा किरदार कि ऐसी-ऐसी

ثُمَّ بَدَا لَهُمْ مِّنْ بَعْدِ مَا رَاَوُا الْاٰیٰتِ لَیَسْجُنُنَّهٗ حَتّٰی حِیْنٍ ﴿٣٥﴾ ع

(35) फिर उन लोगों को यह सूझी कि एक मुद्दत के लिए उसे क़ैद कर दें, हालाँकि वह (उसकी पाकदामनी और ख़ुद अपनी औरतों के बुरे तौर-तरीक़ों की) खुली निशानियाँ देख चुके थे।[30]

ख़ूबसूरत और जवान औरतें मुझपर फ़िदा हैं और फिर भी मेरे क़दम नहीं फिसलते। इसके बजाए वह अपनी इनसानी कमज़ोरियों का ख़याल करके काँप उठता है और बहुत ही गिड़गिड़ाकर ख़ुदा से मदद की दुआ करता है कि ऐ रब, मैं एक कमज़ोर इनसान हूँ, मेरा इतना बल-बूता कहाँ कि इन बेपनाह शैतानी बहकावों का मुक़ाबला कर सकूँ, तू मुझे सहारा दे और मुझे बचा, डरता हूँ कि कहीं मेरे क़दम फिसल न जाएँ — हक़ीक़त में यह हज़रत यूसुफ़ (अलैहि०) की अख़लाक़ी तरबियत का सबसे अहम और सबसे नाज़ुक मरहला था। ईमानदारी, अमानतदारी, पाकदामनी, हक़ को पहचानने, हक़ पर चलने, ख़ुद पर क़ाबू रखने और मन को क़ाबू में रखने की ग़ैर-मामूली ख़ूबियाँ जो अब तक उनके अन्दर छिपी हुई थीं और जिनसे वे खुद भी बेख़बर थे, वे सब की सब इस कड़ी आज़माइश के दौर में उभर आईं, पूरे ज़ोर के साथ काम करने लगीं और उन्हें ख़ुद भी मालूम हो गया कि उनके अन्दर कौन-कौन-सी क़ुव्वतें पाई जाती हैं और वे उनसे क्या काम ले सकते हैं।

29. दूर करना इस मानी में है कि यूसुफ़ (अलैहि०) के नेक किरदार को ऐसी मज़बूती दे दी गई जिसके मुक़ाबले में उन औरतों की सारी तदबीरें नाकाम होकर रह गईं। साथ ही इस मानी में भी है कि अल्लाह की मशीयत (मरज़ी) ने जेल का दरवाज़ा उनके लिए खुलवा दिया।

30. इस तरह हज़रत यूसुफ़ (अलैहि०) का क़ैद में डाला जाना हक़ीक़त में उनकी अख़लाक़ी जीत थी और साथ ही इस बात का एलान भी था कि मिस्र के अमीर (सरदार) और हाकिम अख़लाक़ी तौर से पूरी तरह हार चुके हैं। अब हज़रत यूसुफ़ (अलैहि०) कोई अनजान और गुमनाम आदमी न रहे थे। सारे देश में और कम-से-कम राजधानी में तो आम और ख़ास सब उनको जान चुके थे। जिस शख़्स की दिल-फ़रेब शख़्सियत पर एक-दो नहीं, ज़्यादातर बड़े घरानों की औरतें फ़िदा हों, और जिसकी आज़माइश में डालनेवाली ख़ूबसूरती से अपने घर बिगड़ते देखकर मिस्र के हाकिमों ने अपनी ख़ैरियत इसी में देखी हो कि उसे क़ैद कर दें, ज़ाहिर है कि ऐसा शख़्स छिपा नहीं रह सकता था। यक़ीनन घर-घर उसकी चर्चा फैल गई होगी, आमतौर पर लोग यह बात भी जान गए होंगे कि यह शख़्स कैसे बुलन्द, मज़बूत और पाकीज़ा अख़लाक़ का इनसान है, और यह भी जान गए होंगे कि इस शख़्स को जेल अपने किसी जुर्म पर नहीं भेजा गया है, बल्कि इसलिए भेजा गया है कि मिस्र के बड़े लोग अपनी औरतों को क़ाबू में रखने के बजाए इस बेगुनाह को जेल भेज देना ज़्यादा आसान पाते थे।

इससे यह भी मालूम हुआ कि किसी शख़्स को इनसाफ़ की शर्तों के मुताबिक़ अदालत में मुजरिम साबित किए बिना, बस यूँही पकड़कर जेल भेज देना, बेईमान हाक़िमों का पुराना तरीक़ा

وَدَخَلَ مَعَهُ السِّجْنَ فَتَيٰنِ ۚ قَالَ اَحَدُهُمَآ اِنِّيْٓ اَرٰىنِيْٓ اَعْصِرُ خَمْرًا ۚ
وَقَالَ الْاٰخَرُ اِنِّيْٓ اَرٰىنِيْٓ اَحْمِلُ فَوْقَ رَاْسِيْ خُبْزًا تَاْكُلُ الطَّيْرُ مِنْهُ ۚ
نَبِّئْنَا بِتَاْوِيْلِهٖ ۚ اِنَّا نَرٰىكَ مِنَ الْمُحْسِنِيْنَ ۝ قَالَ لَا يَاْتِيْكُمَا

(36) जेल में[31] दो ग़ुलाम और भी उसके साथ दाख़िल हुए।[32] एक दिन उनमें से एक ने उससे कहा, "मैंने ख़ाब देखा है कि मैं शराब निचोड़ रहा हूँ।" दूसरे ने कहा, "मैंने देखा कि मेरे सिर पर रोटियाँ रखी हैं और परिन्दे उनको खा रहे हैं।" दोनों ने कहा, "हमें इसकी ताबीर (स्वप्न फल) बताइए। हम देखते हैं कि आप एक नेक आदमी हैं"।[33]

है। इस मामले में भी आज की शैतानी ताक़तें चार हज़ार साल पहले के ज़ालिमों से कुछ बहुत ज़्यादा अलग नहीं हैं। फ़र्क़ अगर है तो बस यह है कि वे 'लोकतन्त्र' का नाम नहीं लेते थे, और ये अपने इन करतूतों के साथ यह नाम भी लेते हैं। वे क़ानून के बिना अपनी ग़ैर-क़ानूनी हरकतें किया करते थे, और ये हर नामुनासिब ज़ुल्म और ज़्यादती के लिए पहले एक 'क़ानून' बना लेते हैं। वे साफ़-साफ़ अपने फ़ायदे के लिए लोगों पर हाथ डालते थे और ये जिसपर हाथ डालते हैं उसके बारे में दुनिया को यक़ीन दिलाने की कोशिश करते हैं कि उससे इनको नहीं, बल्कि देश और क़ौम को ख़तरा था, यानी वे सिर्फ़ ज़ालिम थे। ये इसके साथ झूठे और बेशर्म भी हैं।

31. ज़्यादा इमकान है कि जब हज़रत यूसुफ़ (अलैहि०) क़ैद किए गए, उस वक़्त उनकी उम्र 20-21 साल से ज़्यादा न होगी। तलमूद में बयान किया गया है कि जेल से छूटकर जब वे मिस्र के हाकिम बने तो उनकी उम्र 20 साल थी, और क़ुरआन कहता है कि वे क़ैदख़ानें में बिज़अ सिनीन यानी कई साल रहे। "बिज़अ" लफ़्ज़ अरबी ज़बान में दस तक की गिनती के लिए इस्तेमाल होता है।

32. ये दो ग़ुलाम जो क़ैदख़ाने में हज़रत यूसुफ़ (अलैहि०) के साथ दाख़िल हुए थे उनके बारे में बाइबल की रिवायत है कि उनमें से एक मिस्र के बादशाह के साक़ियों (शराब पिलानेवालों) का सरदार था और दूसरा शाही नानबाइयों (रोटी पकानेवालों) का अफ़सर। तलमूद का बयान है कि इन दोनों को मिस्र के बादशाह ने इस ग़लती पर जेल भेजा था कि एक दावत के मौक़े पर रोटियों में कुछ किरकिराहट पाई गई थी और शराब के एक गिलास में मक्खी निकल आई थी।

33. इससे अन्दाज़ा किया जा सकता है कि क़ैदख़ाने में हज़रत यूसुफ़ किस निगाह से देखे जाते थे। ऊपर जिन वाक़िआत का ज़िक्र गुज़र चुका है उनको सामने रखने से यह बात हैरत के क़ाबिल नहीं रहती कि इन दो क़ैदियों ने आख़िर हज़रत यूसुफ़ (अलैहि०) ही से आकर अपने ख़ाब का मतलब क्यों पूछा और उनसे अक़ीदत के साथ यह क्यों कहा कि "हम देखते हैं कि आप एक

طَعَامٌ تُرْزَقٰنِهٖٓ اِلَّا نَبَّاْتُكُمَا بِتَاْوِيْلِهٖ قَبْلَ اَنْ يَّاْتِيَكُمَا ؕ ذٰلِكُمَا مِمَّا
عَلَّمَنِيْ رَبِّيْ ؕ اِنِّيْ تَرَكْتُ مِلَّةَ قَوْمٍ لَّا يُؤْمِنُوْنَ بِاللّٰهِ وَهُمْ بِالْاٰخِرَةِ
هُمْ كٰفِرُوْنَ ۝٣٧ وَاتَّبَعْتُ مِلَّةَ اٰبَآءِيْٓ اِبْرٰهِيْمَ وَاِسْحٰقَ وَيَعْقُوْبَ ؕ مَا
كَانَ لَنَآ اَنْ نُّشْرِكَ بِاللّٰهِ مِنْ شَيْءٍ ؕ ذٰلِكَ مِنْ فَضْلِ اللّٰهِ عَلَيْنَا وَعَلَى
النَّاسِ وَلٰكِنَّ اَكْثَرَ النَّاسِ لَا يَشْكُرُوْنَ ۝٣٨ يٰصَاحِبَيِ السِّجْنِ
ءَاَرْبَابٌ مُّتَفَرِّقُوْنَ خَيْرٌ اَمِ اللّٰهُ الْوَاحِدُ الْقَهَّارُ ۝٣٩ مَا تَعْبُدُوْنَ

---

(37) यूसुफ़ ने कहा, “यहाँ जो खाना तुम्हें मिला करता है उसके आने से पहले मैं तुम्हें इन ख़ाबों की ताबीर बता दूँगा। यह उन इल्मों में से है जो मेरे रब ने मुझे दिए हैं। सच तो यह है कि मैंने उन लोगों का तरीक़ा छोड़कर जो अल्लाह पर ईमान नहीं लाते और आख़िरत का इनकार करते हैं, (38) अपने बुज़ुर्गों, इबराहीम, इसहाक़ और याक़ूब का तरीक़ा अपनाया है। हमारा यह काम नहीं है कि अल्लाह के साथ किसी को शरीक ठहराएँ। हक़ीक़त में यह अल्लाह की मेहरबानी है हमपर और तमाम इनसानों पर (कि उसने अपने सिवा किसी का बन्दा हमें नहीं बनाया), मगर ज़्यादातर लोग शुक्र नहीं करते। (39) ऐ जेल के साथियो! तुम ख़ुद ही सोचो कि बहुत-से अलग-अलग रब बेहतर हैं या वह एक अल्लाह, जो सबपर ग़ालिब है? (40) उसको छोड़कर तुम जिनकी बन्दगी

नेक आदमी हैं।” जेल के अन्दर और बाहर सब लोग जानते थे कि यह शख़्स कोई मुजरिम नहीं है, बल्कि एक निहायत नेक-दिल आदमी है, सख़्त-से-सख़्त आज़माइशों में अपनी परहेज़गारी का सुबूत दे चुका है, आज पूरे देश में इससे ज़्यादा नेक इनसान कोई नहीं है, यहाँ तक कि देश के मज़हबी पेशवाओं में भी इसकी मिसाल नहीं मिलती। यही वजह थी कि न सिर्फ़ क़ैदी उनको अक़ीदत (श्रद्धा) की निगाह से देखते थे, बल्कि क़ैदख़ाने के अधिकारी और कारिंदे तक भी उनको मानने लगे थे। चुनाँचे बाइबल में है कि “क़ैदख़ाने के दारोग़ा ने सब क़ैदियों को जो क़ैद में थे यूसुफ़ के हाथ में सौंपा और जो कुछ वे करते उसी के आदेश से करते थे, और क़ैदख़ाने का दारोग़ा सब कामों की तरफ़ से जो उसके हाथ में थे, बेफ़िक्र था।” (उत्पत्ति, 39: 22, 23)

مِنْ دُوْنِهٖٓ اِلَّآ اَسْمَآءً سَمَّيْتُمُوْهَآ اَنْتُمْ وَاٰبَآؤُكُمْ مَّآ اَنْزَلَ اللّٰهُ بِهَا مِنْ
سُلْطٰنٍ ؕ اِنِ الْحُكْمُ اِلَّا لِلّٰهِ ؕ اَمَرَ اَلَّا تَعْبُدُوْٓا اِلَّآ اِيَّاهُ ؕ ذٰلِكَ الدِّيْنُ
الْقَيِّمُ وَلٰكِنَّ اَكْثَرَ النَّاسِ لَا يَعْلَمُوْنَ ۞ يٰصَاحِبَيِ السِّجْنِ اَمَّآ
اَحَدُكُمَا فَيَسْقِيْ رَبَّهٗ خَمْرًا ۚ وَاَمَّا الْاٰخَرُ فَيُصْلَبُ فَتَاْكُلُ الطَّيْرُ
مِنْ رَّاْسِهٖ ؕ قُضِيَ الْاَمْرُ الَّذِيْ فِيْهِ تَسْتَفْتِيٰنِ ۞

कर रहे हो, वे इसके सिवा कुछ नहीं हैं कि बस कुछ नाम हैं जो तुमने और तुम्हारे बाप-दाद ने रख लिए हैं, अल्लाह ने उनके लिए कोई सनद नहीं उतारी। हुकूमत और इक़्तिदार अल्लाह के सिवा किसी के लिए नहीं है। उसका हुक्म है कि ख़ुद उसके सिवा तुम किसी की बन्दगी न करो। ज़िन्दगी का यही ठेठ सीधा तरीक़ा है, मगर ज़्यादातर लोग जानते नहीं हैं। (41) ऐ जेल के साथियो! तुम्हारे ख़्वाब की ताबीर यह है कि तुममें से एक तो अपने रब (मिस्र के हाकिम) को शराब पिलाएगा, रहा दूसरा तो उसे सूली पर चढ़ाया जाएगा और परिन्दे उसका सिर नोच-नोचकर खाएँगे। फ़ैसला हो गया उस बात का जो तुम पूछ रहे थे।"[34]

34. यह तक़रीर जो इस पूरे क़िस्से की जान है और ख़ुद क़ुरआन में भी तौहीद (एकेश्वरवाद) की बेहतरीन तक़रीरों में से है, बाइबल और तलमूद में कहीं इसकी तरफ़ हल्का-सा इशारा तक नहीं है। वे हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) को सिर्फ़ एक अक़्लमन्द और परहेज़गार आदमी की हैसियत से पेश करती हैं। मगर क़ुरआन सिर्फ़ यही नहीं कि उनकी सीरत (जीवन-चरित्र) के इन पहलुओं को भी बाइबल और तलमूद के मुक़ाबले में बहुत ज़्यादा रौशन करके पेश करता है, बल्कि इसके अलावा वह हमको यह भी बताता है कि हज़रत युसुफ़ (अलैहि॰) पैग़म्बर की हैसियत से अपना एक मिशन रखते थे और उसकी दावत व तबलीग़ का काम उन्होंने क़ैदख़ाने ही में शुरू कर दिया था।

यह तक़रीर ऐसी नहीं है कि इसपर से यूँही सरसरी तौर से गुज़र जाइए। इसके कई पहलू ऐसे हैं जिनपर ध्यान देने और ग़ौरो-फ़िक्र करने की ज़रूरत है :

(1) यह पहला मौक़ा है जबकि हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) हमको दीने-हक़ (सत्य-धर्म) की तबलीग़ (प्रचार) करते नज़र आते हैं। इससे पहले उनकी ज़िन्दगी के जो पहलू क़ुरआन ने पेश किए हैं उनमें सिर्फ़ उनके बुलन्द अख़लाक़ की मुख़्तलिफ़ ख़ासियतें मुख़्तलिफ़ मरहलों में उभरती रही हैं, मगर इस बात का कोई निशान वहाँ नहीं पाया जाता कि उन्होंने किसी को दीन की

दावत दी हो। इससे साबित होता है कि पहले मरहले सिर्फ़ तैयारी और तरबियत के थे। पैग़म्बरी का काम अमली तौर पर इस क़ैदख़ाने के मरहले में उनके सुपुर्द किया गया है और नबी की हैसियत से यह उनकी पहली दावती तक़रीर है।

(2) यह भी पहला ही मौक़ा है कि उन्होंने लोगों के सामने अपनी असलियत ज़ाहिर की। इससे पहले हम देखते हैं कि वे बेहद सब्र और शुक्र के साथ हर उस हालत को क़बूल करते रहे जो उनको पेश आई। जब क़ाफ़िलेवालों ने उनको पकड़कर ग़ुलाम बनाया, जब वे मिस्र लाए गए, जब उन्हें मिस्र के बड़े अफ़सर के हाथ बेच दिया गया, जब उन्हें जेल भेजा गया, उनमें से किसी मौक़े पर भी उन्होंने यह नहीं बताया कि मैं इबराहीम (अलैहि॰) और इसहाक़ (अलैहि॰) का पोता और याक़ूब (अलैहि॰) का बेटा हूँ। उनके बाप-दादा कोई गुमनाम लोग न थे। क़ाफ़िलेवाले चाहे मदयनवाले हों या इसमाईली, दोनों उनके ख़ानदान से क़रीबी ताल्लुक़ रखनेवाले ही थे। मिस्रवाले भी कम-से-कम हज़रत इब्राहीम से तो अनजान न थे। (बल्कि हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) जिस अन्दाज़ से उनका और हज़रत याक़ूब और इसहाक़ का ज़िक्र कर रहे हैं उससे अन्दाज़ा होता है कि तीनों बुज़ुर्गों की शोहरत मिस्र में पहुँची हुई थी) लेकिन हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) ने कभी बाप-दादा का नाम लेकर अपने आपको उन हालात से निकालने की कोशिश न की जिनमें वे पिछले चार-पाँच साल के दौरान में मुब्तला होते रहे। शायद वे ख़ुद भी अच्छी तरह समझ रहे थे कि अल्लाह तआला जो कुछ उन्हें बनाना चाहता है उसके लिए उनका इन हालात से गुज़रना ही ज़रूरी है। मगर अब उन्होंने सिर्फ़ अपनी दावत व तबलीग़ की ख़ातिर इस हक़ीक़त से परदा उठाया कि मैं कोई नया और निराला दीन पेश नहीं कर रहा हूँ, बल्कि मेरा ताल्लुक़ तौहीद की तरफ़ बुलानेवाली उस आलमगीर तहरीक से है जिसके पेशवा इबराहीम, इसहाक़ और याक़ूब (अलैहि॰) हैं। ऐसा करना इसलिए ज़रूरी था कि हक़ (सत्य) की तरफ़ बुलानेवाला कभी इस दावे के साथ नहीं उठा करता कि वह एक नई बात पेश कर रहा है जो इससे पहले किसी को न सूझी थी, बल्कि पहले क़दम ही पर यह बात खोल देता है कि मैं उस हमेशा से चली आ रही हक़ीक़त की तरफ़ बुला रहा हूँ जो हमेशा से हक़ की तरफ़ बुलानेवाले सभी लोग पेश करते रहे हैं।

(3) फिर हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) ने जिस तरह अपनी तबलीग़ के लिए मौक़ा निकाला उसमें हमको तबलीग़ की हिक्मत का एक अहम सबक़ मिलता है। दो आदमी अपना ख़ाब बयान करते हैं और उनसे अपनी अक़ीदत का इज़हार करते हुए उस ख़ाब का मतलब पूछते हैं। जवाब में वे फ़रमाते हैं कि ख़ाब का मतलब तो मैं तुम्हें ज़रूर बताऊँगा, मगर पहले यह सुन लो कि यह इल्म मुझे कहाँ से मिला है जिसकी बिना पर मैं तुम्हें मतलब बताता हूँ। इस तरह उनकी बात में से अपनी बात कहने का मौक़ा निकालकर वे उनके सामने अपना दीन पेश करना शुरू कर देते हैं। इससे यह सबक़ मिलता है कि सचमुच किसी के दिल में अगर हक़ (सत्य) के पहुँचाने की धुन समाई हुई हो और वह हिकमत भी रखता हो तो कैसी ख़ूबसूरती के साथ वह बातचीत का रुख़ अपनी दावत की तरफ़ फेर सकता है, जिसे दावत की धुन लगी हुई नहीं होती, उसके सामने तो मौक़े-पर-मौक़े आते हैं और वह कभी महसूस नहीं करता कि यह मौक़ा है अपनी बात कहने का। मगर वह जिसे धुन लगी हुई होती है वह मौक़े की ताक में लगा रहता है और उसे पाते ही अपना काम शुरू कर देता है।

अलबत्ता बहुत फ़र्क़ है हिकमतवाले के मौक़ा पहचानने में और उस नादान तबलीग़ करनेवाले की भोंडी तबलीग़ में जो मौक़ा-महल का लिहाज़ किए बिना लोगों के कानों में ज़बरदस्ती अपनी दावत ठूँसने की कोशिश करता है और फिर लीचड़पन और झगड़ालूपन से उन्हें उल्टा दूर करके छोड़ता है।

(4) इससे यह भी मालूम किया जा सकता है कि लोगों के सामने दीन की दावत पेश करने का सही ढंग क्या है। हज़रत यूसुफ़ (अलैहि०) छूटते ही दीन के तफ़सीली उसूल और क़ायदे पेश करने शुरू नहीं कर देते, बल्कि उनके सामने दीन के उस शुरुआती नुक्ते को पेश करते हैं जहाँ से अहले-हक़ (सत्यावादियों) का रास्ता अहले-बातिल (असत्यवादियों) के रास्ते से अलग होता है। यानी तौहीद और शिर्क का फ़र्क़। फिर इस फ़र्क़ को वे ऐसे मुनासिब तरीक़े से वाज़ेह करते हैं कि आम अक़्ल रखनेवाला कोई शख़्स उसे महसूस किए बिना नहीं रह सकता। ख़ासतौर से जो लोग उस वक़्त उनके सामने थे उनके दिलो-दिमाग़ में तो तीर की तरह यह बात उतर गई होगी, क्योंकि वे नौकरी पेशा ग़ुलाम थे और अपनी दिल की गहराइयों में इस बात को अच्छी तरह महसूस कर सकते थे कि एक मालिक का ग़ुलाम होना बेहतर है या बहुत-से मालिकों का, और सारे जहान के मालिक की बन्दगी बेहतर है या बन्दों की बन्दगी। फिर वे यह भी नहीं कहते कि अपना दीन छोड़ दो और मेरे दीन में आ जाओ, बल्कि एक अजीब अन्दाज़ में उनसे कहते हैं कि देखो, अल्लाह की यह कितनी बड़ी मेहरबानी है कि उसने अपने सिवा हमको किसी का बन्दा नहीं बनाया, मगर लोग उसका शुक्र अदा नहीं करते और ख़ाह-मख़ाह ख़ुद गढ़-गढ़कर अपने रब बनाते और उनकी बन्दगी करते हैं। फिर वे अपने मुख़ालिफ़ों के दीन का जायज़ा भी लेते हैं, मगर निहायत मुनासिब तरीक़े से जिसमें दिल दुखाने की ज़रा-सी बात भी नहीं पाई जाती। बस इतना कहने पर बस करते हैं कि ये माबूद जिनमें से किसी को तुम अन्नदाता, किसी को नेमत का ख़ुदा, किसी को ज़मीन का मालिक और किसी को दौलत का रब या सेहत व रोग पर अधिकार रखनेवाला कहते हो, ये सब ख़ाली-ख़ूली नाम ही हैं, इन नामों के पीछ कोई हक़ीक़ी अन्नदाताई और ख़ुदावन्दी और मालिकियत व रबूबियत मौजूद नहीं है। असल मालिक अल्लाह तआला है जिसे तुम भी कायनात (सृष्टि) का बनानेवाला और रब मानते हो और उसने इनमें से किसी के लिए भी ख़ुदा होने और माबूद होने की कोई सनद नहीं उतारी है। उसने तो हुकूमत करने के सारे हक़ और इख़्तियार अपने ही लिए ख़ास कर रखे हैं और उसका हुक्म है कि तुम उसके सिवा किसी की बन्दगी न करो।

(5) इससे यह भी अन्दाज़ा किया जा सकता है कि हज़रत यूसुफ़ (अलैहि०) ने जेल की ज़िन्दगी के ये आठ-दस साल किस तरह बिताए होंगे। लोग समझते हैं कि क़ुरआन में चूँकि उनको एक ही नसीहत का ज़िक्र है, इसलिए उन्होंने सिर्फ़ एक ही बार दीन की दावत देने के लिए ज़बान खोली थी। मगर पहली बात तो एक पैग़म्बर के बारे में यह गुमान करना ही सख़्त बदगुमानी है कि वह अपने अस्ल काम से ग़ाफ़िल होगा। फिर जिस शख़्स की तबलीग़ी धुन का यह हाल था कि दो आदमी ख़ाब का मतलब पूछते हैं और वह इस मौक़े से फ़ायदा उठाकर दीन की तबलीग़ शुरू कर देता है, उसके बारे में यह कैसे सोचा जा सकता है कि उसने जेल के ये कुछ साल चुप रहकर ही गुज़ार दिए होंगे।

وَقَالَ لِلَّذِىْ ظَنَّ اَنَّهٗ نَاجٍ مِّنْهُمَا اذْكُرْنِىْ عِنْدَ رَبِّكَ ۡ فَاَنْسٰهُ
الشَّيْطٰنُ ذِكْرَ رَبِّهٖ فَلَبِثَ فِى السِّجْنِ بِضْعَ سِنِيْنَ ﴿٤٢﴾ وَقَالَ الْمَلِكُ
اِنِّىْۤ اَرٰى سَبْعَ بَقَرٰتٍ سِمَانٍ يَّاْكُلُهُنَّ سَبْعٌ عِجَافٌ وَّسَبْعَ سُنْۢبُلٰتٍ

---

(42) फिर उनमें से जिसके बारे में ख़याल था कि वह रिहा हो जाएगा, उससे यूसुफ़ ने कहा कि "अपने रब (मिस्र के हाकिम) से मेरा ज़िक्र करना।" मगर शैतान ने उसे ऐसा ग़फ़लत में डाला कि वह अपने रब (मिस्र के हाकिम) से उसका ज़िक्र करना भूल गया और यूसुफ़ कई साल जेल में पड़ा रहा।[35]

(43) एक दिन[36] बादशाह ने कहा, "मैंने ख़्वाब में देखा है कि सात मोटी गायें हैं

---

35. इस मक़ाम की तफ़सीर कुछ तफ़सीर लिखनेवाले आलिमों ने यह की है कि "शैतान ने हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) को अपने रब (यानी अल्लाह तआला) की याद से ग़ाफ़िल कर दिया और उन्होंने एक बन्दे से चाहा कि वह अपने रब (यानी मिस्र के हाकिम) से उनका ज़िक्र करके उनकी रिहाई की कोशिश करे, इसलिए अल्लाह तआला ने उनको यह सज़ा दी कि वे कई साल तक जेल में पड़े रहे।" हक़ीक़त में यह तफ़सीर बिलकुल ग़लत है। सही यही है, जैसा कि अल्लामा इब्ने-कसीर और शुरू के इस्लामी आलिमों में से मुजाहिद और मुहम्मद बिन-इसहाक़ वग़ैरा ने कहा है, "शैतान ने उसे भुलावे में डाल दिया उसके रब से ज़िक्र करने से" में जिस शख़्स का ज़िक्र है उससे मुराद वह शख़्स है जिसके बारे में हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) का ख़याल था कि वह रिहाई पानेवाला है, और इस आयत का मानी यह है कि "शैतान ने उसे अपने मालिक से हज़रत यूसुफ़ का ज़िक्र करना भुला दिया।" इस सिलसिले में एक हदीस भी पेश की जाती है कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि "अगर यूसुफ़ (अलैहि॰) ने वह बात न कही होती जो उन्होंने कही तो वे जेल में कई साल न पड़े रहते।" लेकिन अल्लामा इब्ने-कसीर कहते हैं कि, "यह हदीस जितने तरीक़ों से रिवायत की गई है वे सब ज़ईफ़ (कमज़ोर) हैं। कुछ तरीक़ों से यह 'मरफ़ूअन' रिवायत की गई है और उनमें सुफ़ियान-बिन-वकीअ और इबराहीम-बिन-यज़ीद रावी हैं जो दोनों भरोसे के लायक़ नहीं हैं और कुछ तरीक़ों से 'मुर्सलन' रिवायत हुई है और ऐसे मामलों में 'मुरसल' रिवायतों का एतिबार नहीं किया जा सकता।" इसके अलावा 'दरायत' (तार्किकता) के लिहाज़ से भी यह बात समझ में आनेवाली नहीं है कि एक मज़लूम शख़्स का अपनी रिहाई के लिए दुनियावी तदबीर करना ख़ुदा से भुलावे और उसपर भरोसे की कमी की दलील ठहरा दिया गया होगा।

36. बीच में जेल में गुज़ारे कई सालों का हाल छोड़कर अब बयान का सिरा उस जगह से जोड़ा जाता है जहाँ से हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) की दुनियावी तरक़्क़ी शुरू हुई।

خُضْرٍ وَّاُخَرَ يٰبِسٰتٍ ؕ يٰۤاَيُّهَا الْمَلَاُ اَفْتُوْنِیْ فِیْ رُءْيَایَ اِنْ كُنْتُمْ لِلرُّءْيَا
تَعْبُرُوْنَ ۝ قَالُوْۤا اَضْغَاثُ اَحْلَامٍ ۚ وَمَا نَحْنُ بِتَاْوِيْلِ الْاَحْلَامِ
بِعٰلِمِيْنَ ۝ وَقَالَ الَّذِیْ نَجَا مِنْهُمَا وَادَّكَرَ بَعْدَ اُمَّةٍ اَنَا اُنَبِّئُكُمْ
بِتَاْوِيْلِهٖ فَاَرْسِلُوْنِ ۝ يُوْسُفُ اَيُّهَا الصِّدِّيْقُ اَفْتِنَا فِیْ سَبْعِ بَقَرٰتٍ
سِمَانٍ يَّاْكُلُهُنَّ سَبْعٌ عِجَافٌ وَّسَبْعِ سُنْۢبُلٰتٍ خُضْرٍ وَّاُخَرَ يٰبِسٰتٍ ۙ

जिनको सात दुबली गायें खा रही हैं और अनाज की सात बालें हरी हैं और दूसरी सात सूखी। ऐ दरबारवालो! मुझे इस ख़ाब की ताबीर (स्वप्न फल) बताओ, अगर तुम ख़ाबों का मतलब समझते हो।"[37] (44) लोगों ने कहा, "यह तो परेशान ख़ाबों की बातें हैं और हम इस तरह के ख़ाबों का मतलब नहीं जानते।"

(45) उन दो क़ैदियों में से जो शख़्स बच गया था, और उसे एक लम्बी मुद्दत के बाद अब बात याद आई, उसने कहा, "मैं आप लोगों को इसका मतलब बताता हूँ, मुझे ज़रा (कैदख़ाने में यूसुफ़ के पास) भेज दीजिए।"[38]

(46) उसने जाकर कहा, "यूसुफ़, ऐ सरापा सच्चाई[39], मुझे इस ख़ाब का मतलब बता कि सात मोटी गायें हैं जिनको सात दुबली गायें खा रही हैं और सात बालें हरी हैं

37. बाइबल और तलमूद का बयान है कि इन ख़्वाबों से बादशाह बहुत परेशान हो गया था और उसने आम एलान के ज़रिए से अपने देश के तमाम समझ-बूझ रखनेवाले लोगों, काहिनों, मज़हबी पेशवाओं और जादूगरों को इकट्ठा करके उन सबके सामने यह सवाल पेश किया था।

38. क़ुरआन ने यहाँ बहुत ही मुख़्तसर बात कही है। बाइबल और तलमूद से इसकी तफ़सील यह मालूम होती है (और गुमान भी कहता है कि ज़रूर ऐसा हुआ होगा) कि सरदार साक़ी ने यूसुफ़ (अलैहि.) के हालात बादशाह से बयान किए, और जेल में उसके ख़ाब और उसके साथी के ख़ाब की जैसी सही ताबीर उन्होंने दी थी उसका ज़िक्र भी किया और कहा कि मैं उनसे उसका मतलब पूछकर आता हूँ, मुझे जेल में उनसे मिलने की इजाज़त दी जाए।

39. अस्ल अरबी में लफ़्ज़ 'सिद्दीक़' इस्तेमाल हुआ है जो अरबी ज़बान में सच्चाई और ईमानदारी के बहुत ऊँचे दर्जे के लिए इस्तेमाल होता है। इससे अन्दाज़ा किया जा सकता है कि जेल में रहने के दौरान में उस शख़्स ने यूसुफ़ (अलैहि.) के पाक-साफ़ किरदार से कैसा गहरा असर लिया था और यह असर एक लम्बी मुद्दत गुज़र जाने के बाद भी कितना गहरा था। (लफ़्ज़ 'सिद्दीक़' की और ज़्यादा तशरीह के लिए देखें—सूरा-4 निसा, हाशिया नं.-99)

لَّعَلِّيٓ اَرْجِعُ اِلَى النَّاسِ لَعَلَّهُمْ يَعْلَمُوْنَ ﴿٤٦﴾ قَالَ تَزْرَعُوْنَ سَبْعَ
سِنِيْنَ دَاَبًا ۚ فَمَا حَصَدْتُّمْ فَذَرُوْهُ فِيْ سُنْۢبُلِهٖٓ اِلَّا قَلِيْلًا مِّمَّا تَاْكُلُوْنَ ﴿٤٧﴾
ثُمَّ يَاْتِيْ مِنْۢ بَعْدِ ذٰلِكَ سَبْعٌ شِدَادٌ يَّاْكُلْنَ مَا قَدَّمْتُمْ لَهُنَّ اِلَّا قَلِيْلًا مِّمَّا
تُحْصِنُوْنَ ﴿٤٨﴾ ثُمَّ يَاْتِيْ مِنْۢ بَعْدِ ذٰلِكَ عَامٌ فِيْهِ يُغَاثُ النَّاسُ وَفِيْهِ
ع يَعْصِرُوْنَ ﴿٤٩﴾ وَقَالَ الْمَلِكُ ائْتُوْنِيْ بِهٖ ۚ فَلَمَّا جَآءَهُ الرَّسُوْلُ قَالَ

और सात सूखी, शायद कि मैं उन लोगों के पास वापस जाऊँ और शायद कि वे जान लें।"[40] (47) यूसुफ़ ने कहा, "सात साल तक लगातार तुम लोग खेती-बाड़ी करते रहोगे। इस दौरान में जो फ़सलें तुम काटो उनमें से बस थोड़-सा हिस्सा, जो तुम्हारे खाने के काम आए, निकालो और बाक़ी को उसकी बालों ही में रहने दो। (48) फिर सात साल बड़े सख़्त आएँगे। उस ज़माने में वह सब अनाज खा लिया जाएगा जो तुम उस वक़्त के लिए जमा करोगे। अगर कुछ बचेगा तो बस वही जो तुमने बचाकर रखा हो। (49) इसके बाद फिर एक साल ऐसा आएगा जिसमें रहमत की बारिश से लोगों की फ़रियाद को सुन लिया जाएगा और वे रस निचोड़ेंगे।"[41]

(50) बादशाह ने कहा, उसे मेरे पास लाओ। मगर जब बादशाह का भेजा हुआ

40. यानी हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) की क़द्र और उनका ऊँचा मक़ाम जान लें और उनको एहसास हो कि किस दर्जे के आदमी को उन्होंने कहाँ बन्द कर रखा है और उस तरह मुझे अपने इस वादे को पूरा करने का मौक़ा मिल जाए जो मैंने उनसे क़ैद के ज़माने में किया था।

41. अस्ल अरबी में लफ़्ज़ 'यअ्सिरून' इस्तेमाल हुआ है जिसके लफ़्ज़ी मानी 'निचोड़ने' के हैं। इससे मुराद यहाँ हरियाली और ख़ुशहाली की वह हालत बयान करना है जो अकाल के बाद रहमत की बारिश और नील दरिया के चढ़ाव से पैदा होनेवाली थी। जब ज़मीन सैराब (सिंचित) है तो तेल देनेवाले बीज और रस देनेवाले फल और मेवे ख़ूब पैदा होते हैं, और मवेशी भी चारा अच्छा मिलने की वजह के ख़ूब दूध देने लगते हैं।

हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) ने इस ताबीर (स्वप्नफल) में सिर्फ़ बादशाह के सपने का मतलब बताने ही पर बस नहीं किया, बल्कि साथ-साथ यह भी बता दिया कि ख़ुशहाली के शुरू के सात सालों में आनेवाले अकाल के लिए पहले से क्या तदबीर की जाए और अनाज को महफ़ूज़ रखने का क्या बन्दोबस्त किया जाए। फिर इसके अलावा हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) ने अकाल के बाद अच्छे दिन आने की ख़ुशख़बरी भी दे दी जिसका ज़िक्र बादशाह के ख़ाब में न था।

ارْجِعْ إِلَىٰ رَبِّكَ فَسْئَلْهُ مَا بَالُ النِّسْوَةِ الّٰتِي قَطَّعْنَ أَيْدِيَهُنَّ إِنَّ رَبِّي

शख़्स यूसुफ़ के पास पहुँचा तो उसने कहा[42], "अपने रब के पास वापस जा और उससे पूछ कि उन औरतों का क्या मामला है, जिन्होंने अपने हाथ काट लिए थे? मेरा रब तो

42. यहाँ से लेकर बादशाह की मुलाक़ात तक जो कुछ क़ुरआन ने बयान किया है — जो इस क़िस्से का एक बड़ा ही अहम हिस्सा है — इसका कोई ज़िक्र बाइबल और तलमूद में नहीं है। बाइबल का बयान है कि बादशाह के बुलावे पर हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) फ़ौरन चलने के लिए तैयार हो गए। हजामत बनवाई, कपड़े बदले और दरबार में जा हाज़िर हुए। तलमूद इससे भी ज़्यादा घटिया शक्ल में इस घटना को पेश करती है। उसका बयान यह है कि "बादशाह ने अपने कारिन्दों को हुक्म दिया कि यूसुफ़ को मेरे सामने पेश करो, और यह भी हिदायत कर दी कि देखो ऐसा कोई काम न करना कि लड़का घबरा जाए और सही मतलब न बता सके। चुनाँचे शाही नौकरों ने यूसुफ़ को जेल से निकाला, हजामत बनवाई, कपड़े बदलवाए और दरबार में लाकर पेश कर दिया। बादशाह अपने तख़्त पर बैठा था। वहाँ सोने-चाँदी और हीरे-मोतियों की चमक और दरबार की शान देखकर यूसुफ़ हक्का-बक्का रह गया और उसकी आँखें चौंधियाने लगीं। शाही तख़्त की सात सीढ़ियाँ थीं। क़ायदा यह था कि जब कोई इज़्ज़तदार आदमी बादशाह से कुछ कहना चाहता तो वह 6 सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर जाता और बादशाह से बात करता था और जब मामूली तबक़े का कोई आदमी बादशाह से बात करने के लिए बुलाया जाता तो वह नीचे खड़ा रहता और बादशाह तीसरी सीढ़ी तक उतरकर उससे बात करता। यूसुफ़ इस क़ायदे के मुताबिक़ नीचे खड़ा हुआ और ज़मीन तक झुककर उसने बादशाह को सलामी दी और बादशाह ने तीसरी सीढ़ी तक उतरकर उससे बात की।" इस तस्वीर में बनी-इसराईल ने अपने बुलन्द मर्तबेवाले पैग़म्बरों को जितना गिराकर पेश किया है उसको निगाह में रखिए और फिर देखिए कि क़ुरआन उनके क़ैद से निकलने का वाक़िआ किस शान और किस आन-बान के साथ पेश करता है। अब यह फ़ैसला करना हर नज़र रखनेवाले का काम है कि इन दोनों तस्वीरों में से कौन-सी तस्वीर पैग़म्बरी के मर्तबे से ज़्यादा मेल खाती है। इसके अलावा यह बात भी आम अक़्ल रखनेवाले इनसान को खटकती है कि अगर बादशाह की मुलाक़ात के वक़्त तक हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) की हैसियत इतनी ही गिरी हुई थी जितनी तलमूद के बयान से मालूम होती है, तो ख़्वाब का मतलब सुनते ही अचानक उनको पूरी हुकूमत का मुकम्मल सर्वेसर्वा कैसे बना दिया गया। एक तहज़ीब और तमद्दुन वाले देश में इतना बड़ा रुतबा तो आदमी को उसी वक़्त मिला करता है जबकि वह अपनी अख़लाक़ी व ज़ेहनी बरतरी का सिक्का लोगों पर बिठा चुका हो। तो अक़्ल के हिसाब से भी बाइबल और तलमूद के मुक़ाबले में क़ुरआन ही का बयान हक़ीक़त के मुताबिक़ मालूम होता है।

بِكَيْدِهِنَّ عَلِيْمٌ ۝٥٠ قَالَ مَا خَطْبُكُنَّ اِذْ رَاوَدْتُّنَّ يُوْسُفَ عَنْ نَّفْسِهٖ
قُلْنَ حَاشَ لِلّٰهِ مَا عَلِمْنَا عَلَيْهِ مِنْ سُوْٓءٍ قَالَتِ امْرَاَتُ الْعَزِيْزِ الْـٰٔنَ
حَصْحَصَ الْحَقُّ اَنَا رَاوَدْتُّهٗ عَنْ نَّفْسِهٖ وَاِنَّهٗ لَمِنَ الصّٰدِقِيْنَ ۝٥١ ذٰلِكَ

उनकी मक्कारी को जानता ही है।"[43] (51) इसपर बादशाह ने उन औरतों से मालूम किया[44], "तुम्हारा क्या तजरिबा है उस वक़्त का जब तुमने यूसुफ़ को रिझाने की कोशिश की थी?" सबने एक ज़बान होकर कहा, "अल्लाह की पनाह! हमने तो उसमें बुराई की झलक तक न पाई।" अज़ीज़ की बीवी बोल उठी, "अब सच खुल चुका है। वह मैं ही थी जिसने उसको फुसलाने की कोशिश की थी, बेशक वह बिलकुल सच्चा है।"[45]

43. यानी जहाँ तक मेरे रब का मामला है, उसको तो पहले ही मेरी बेगुनाही का हाल मालूम है। मगर तुम्हारे रब को भी मेरी रिहाई से पहले उस मामले की पूरी तरह जाँच कर लेनी चाहिए जिसकी बुनियाद पर मुझे जेल में डाला गया था; क्योंकि मैं किसी शक और बदगुमानी का दाग़ लिए हुए लोगों के सामने नहीं आना चाहता। मुझे रिहा करना है तो पहले खुलेआम यह साबित होना चाहिए कि मैं बेक़ुसूर था, अस्ल क़ुसूरवार तुम्हारी सल्तनत के अफ़सरान और कारिंदे थे जिन्होंने अपनी बेगमों की बदचलनी का ख़मियाज़ा मेरी पाकदामनी पर डाला।

इस मुतालबे को हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) जिन अलफ़ाज़ में पेश करते हैं उनसे साफ़ ज़ाहिर होता है कि मिस्र का बादशाह उस पूरे वाक़िए से पहले ही वाक़िफ़ था जो अज़ीज़ की बेगम की दावत के मौक़े पर पेश आया था, बल्कि वह ऐसा मशहूर वाक़िया था कि उसकी तरफ़ सिर्फ़ एक इशारा ही काफ़ी था।

फिर इस मुतालबे में हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) मिस्र के अज़ीज़ की बीवी को छोड़कर सिर्फ़ हाथ काटनेवाली औरतों के ज़िक्र पर बस करते हैं। यह इस बात का सुबूत है कि ये दिल के बेहद शरीफ़ इनसान थे। उस औरत ने उनके साथ चाहे कितनी ही बुराई की हो, मगर फिर भी उसके शौहर के उनपर एहसानात थे, इसलिए उन्होंने न चाहा कि उसकी इज़्ज़त पर ख़ुद कोई दाग़ लगाएँ।

44. हो सकता है कि शाही महल में उन तमाम औरतों को इकट्ठा करके यह गवाही ली गई हो, और यह भी हो सकता है कि बादशाह ने भरोसे के किसी ख़ास आदमी को भेजकर हर एक से अलग-अलग मालूम किया हो।

45. अन्दाज़ा किया जा सकता है कि उन गवाहियों ने किस तरह आठ-नौ साल पहले के वाक़िआत को ताज़ा कर दिया होगा, किस तरह हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) की शख़्सियत जेल के ज़माने की लम्बी गुमनामी से निकलकर एकाएक फिर उभरकर सामने आ गई होगी, और किस तरह मिस्र

لِيَعْلَمَ اَنِّيْ لَمْ اَخُنْهُ بِالْغَيْبِ وَاَنَّ اللّٰهَ لَا يَهْدِيْ كَيْدَ الْخَآئِنِيْنَ ﴿۵۲﴾

وَمَآ اُبَرِّئُ نَفْسِيْ ۚ اِنَّ النَّفْسَ لَاَمَّارَةٌۢ بِالسُّوْٓءِ اِلَّا مَا رَحِمَ رَبِّيْ ۚ اِنَّ رَبِّيْ

(52) (यूसुफ़ ने कहा)[46] "इससे मेरा मक़सद यह था कि (अज़ीज़) यह जान ले कि मैंने पीठ पीछे उसकी ख़ियानत नहीं की थी और यह कि जो ख़ियानत करते हैं उनकी चालों को अल्लाह कामयाबी की राह पर नहीं लगाता। ——————

(53) मैं कुछ अपने नफ़्स (मन) को बरी नहीं कर रहा हूँ, मन तो बुराई पर उकसाता ही है, सिवाए इसके कि किसी पर मेरे रब की रहमत हो। बेशक मेरा रब बड़ा माफ़

के तमाम शरीफ़ और इज़्ज़तदार, और दरमियानी तबक़े और आम लोगों तक में उनका अख़लाक़ी वक़ार (नैतिक प्रतिष्ठा) क़ायम हो गया होगा। ऊपर बाइबल और तलमूद के हवाले से यह बात गुज़र चुकी है कि बादशाह ने आम एलान करके तमाम हुकूमत के अक़्लमन्दों, आलिमों और पीरों को इकट्ठा किया था और उनमें से कोई भी उसके ख़ाब का मतलब बता नहीं सका था। उसके बाद हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) ने उसका मतलब बताया। इस वाक़िए की वजह से पहले ही से सारे देश की निगाहें हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) पर जम चुकी होंगी। फिर जब बादशाह के बुलावे पर आपने बाहर निकलने से इनकार किया होगा तो सारे लोग अचंभे में पड़ गए होंगे कि यह अजीब तरह का बुलन्द हौसलेवाला इनसान है जिसको आठ-नौ साल की क़ैद के बाद वक़्त का बादशाह मेहरबान होकर बुला रहा है और फिर भी यह बेताब होकर दौड़ नहीं पड़ता। फिर जब लोगों को मालूम हुआ होगा कि यूसुफ़ ने अपनी रिहाई क़बूल करने और उस वक़्त के बादशाह की मुलाक़ात को आने के लिए क्या शर्त पेश की तो सबकी निगाहें इस तहक़ीक़ात के नतीजे पर लग गई होंगी। और जब लोगों ने उसका नतीजा सुना होगा तो देश का बच्चा-बच्चा वाह-वाह करता रह गया होगा कि किस क़द्र पाक-साफ़ किरदार का है यह इनसान जिसके दिल की पाकीज़गी पर आज वही लोग गवाही दे रहे हैं जिन्होंने मिल-जुलकर कल उसे जेल में डाला था! इस सूरतेहाल पर अगर ग़ौर किया जाए तो अच्छी तरह समझ में आ जाता है कि उस वक़्त हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) के बुलन्दी पर पहुँचने के लिए किस तरह हालात बन चुके थे। इसके बाद यह बात कुछ भी ताज्जुब के क़ाबिल नहीं रहती कि हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) ने बादशाह से मुलाक़ात के मौक़े पर ज़मीन के ख़ज़ाने अपने सिपुर्द करने की माँग कैसे बेधड़क पेश कर दी और बादशाह ने उसे क्यों बेझिझक क़बूल कर लिया। अगर बात सिर्फ़ इतनी ही होती कि जेल के एक क़ैदी ने बादशाह के एक ख़ाब की ताबीर बता दी थी तो ज़ाहिर है कि इसपर वह ज़्यादा-से-ज़्यादा किसी इनाम का और आज़ादी पाने का हक़दार हो सकता था। इतनी सी बात इसके लिए तो काफ़ी नहीं हो सकती थी कि वह बादशाह से कहे, "ज़मीन के ख़ज़ाने मेरे हवाले करो" और बादशाह कह दे, "लीजिए सब कुछ हाज़िर है।"

46. यह बात शायद हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) ने उस वक़्त कही होगी जब जेल में उनको तहक़ीक़ात

غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ﴿٥٣﴾ وَقَالَ الْمَلِكُ ائْتُوْنِيْ بِهٖٓ اَسْتَخْلِصْهُ لِنَفْسِيْ ۚ فَلَمَّا

करनेवाला और रहम करनेवाला है।"

(54) बादशाह ने कहा, "उन्हें मेरे पास लाओ, ताकि मैं उनको अपने लिए ख़ास कर लूँ।"

के नतीजे की ख़बर दी गई होगी। क़ुरआन की तफ़सीर बयान करनेवाले कुछ आलिम जिनमें इब्ने-तैमिया और इब्ने-कसीर जैसे बड़े आलिम भी शामिल हैं, इस जुमले को हज़रत यूसुफ़ (अलैहि०) का नहीं, बल्कि अज़ीज़ की बीवी की बात का एक हिस्सा बताते हैं। उनकी दलील यह है कि यह जुमला अज़ीज़ की औरत की बात से जुड़ा हुआ है और बीच में कोई लफ़्ज़ ऐसा नहीं है जिससे यह समझा जाए कि "वह बिलकुल सच्चा है", पर अज़ीज़ की औरत की बात ख़त्म हो गई और बाद की बात हज़रत यूसुफ़ ने कही। वे कहते हैं कि अगर दो आदमियों की बातें एक-दूसरे से जुड़ी हों और इस बात को वाज़ेह न किया गया हो कि यह बात फ़ुलाँ की है और यह फ़ुलाँ की, तो इस हालत में लाज़िमन कोई ऐसी अलामत होनी चाहिए जिससे दोनों की बात में फ़र्क़ किया जा सके, और यहाँ ऐसी कोई अलामत मौजूद नहीं है। इसलिए यही मानना पड़ेगा कि "अब सच्चाई खुल चुकी है" से लेकर "बेशक मेरा रब माफ़ करनेवाला और रहम करनेवाला है" तक पूरी बात अज़ीज़ की औरत ही की है। लेकिन मुझे ताज्जुब है कि इब्ने-तैमिया जैसे बारीकियों तक पहुँचनेवाले आदमी तक की निगाह से यह बात कैसे चूक गई कि बात का अन्दाज़ अपने आपमें ख़ुद एक बहुत बड़ी अलामत है जिसके होते किसी और अलामत की ज़रूरत बाक़ी नहीं रहती। पहला जुमला तो बेशक अज़ीज़ की औरत के मुँह पर फबता है, मगर क्या दूसरा जुमला भी उसकी हैसियत के मुताबिक़ नज़र आता है? यहाँ तो बात का अन्दाज़ साफ़ कह रहा है कि उसके कहनेवाले हज़रत यूसुफ़ (अलैहि०) हैं, न कि मिस्र के शाही अफ़सर की बीवी। इस कलाम में जो मन की नेकी, जो कुशादा दिली नरमी और झुकाव और जो ख़ुदातरसी बोल रही है वह ख़ुद गवाह है कि यह जुमला उस ज़बान से निकला हुआ नहीं हो सकता जिससे "है-त ल-क" (जल्दी से आजा) निकला था। जिससे "मा जज़ा-अ मन अरा-द बिअहलि-क सूअन" (क्या सज़ा है उस शख़्स की जो तेरी घरवाली पर नीयत ख़राब करे) निकला था, और जिससे भरी महफ़िल के सामने यह तक निकल सकता था कि "अगर यह मेरा कहना न मानेगा तो क़ैद किया जाएगा"। ऐसा पाकीज़ा जुमला तो वही ज़बान बोल सकती थी जो इससे पहले "ख़ुदा की पनाह, मेरे रब ने तो मुझे अच्छी इज़्ज़त और मक़ाम दिया" कह चुकी थी, जो "ऐ मेरे रब, क़ैद मुझे मंज़ूर है, इसके मुक़ाबले में कि मैं वह काम करूँ जो ये लोग मुझसे चाहते हैं" कह चुकी थी, जो "अगर तूने इनकी चालों को मुझसे दफ़ा न किया तो मैं इनके जाल में फँस जाऊँगा" कह चुकी थी। ऐसी पाकीज़ा बातों को सरापा सच्चाई यूसुफ़ (अलैहि०) के बजाए अज़ीज़ की बीवी की बात मानना उस वक़्त तक मुमकिन नहीं है जब तक कोई अलामत और दलील इस बात पर दलालत न करे कि इस मरहले पर पहुँचकर उसे तौबा और ईमान और अपना सुधार करने की तौफ़ीक़ मिल गई थी, और अफ़सोस है कि ऐसी अलामत और ऐसी कोई दलील मौजूद नहीं है।

كَلَّمَهٗ قَالَ اِنَّكَ الْيَوْمَ لَدَيْنَا مَكِيْنٌ اَمِيْنٌ ۞ قَالَ اجْعَلْنِيْ عَلٰى
خَزَآئِنِ الْاَرْضِ ۚ اِنِّيْ حَفِيْظٌ عَلِيْمٌ ۞ وَكَذٰلِكَ مَكَّنَّا لِيُوْسُفَ فِي

जब यूसुफ़ ने उससे बात की तो उसने कहा, "अब आप हमारे यहाँ इज़्ज़त और एहतिराम का मक़ाम रखते हैं और आपकी अमानत पर पूरा भरोसा है।"[47] (55) यूसुफ़ ने कहा, "मुल्क के ख़ज़ाने मेरे सुपुर्द कीजिए, मैं हिफ़ाज़त करनेवाला भी हूँ और इल्म भी रखता हूँ।"[47अ]

(56) इस तरह हमने उस धरती पर यूसुफ़ के लिए इक़्तिदार (सत्ता) की राह हमवार

47. यह बादशाह की तरफ़ से मानो एक खुला इशारा था कि हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) को हर ज़िम्मेदारी का ओहदा सौंपा जा सकता है।

47अ. इससे पहले जो बातें वाज़ेह की जा चुकी हैं उनकी रौशनी में देखा जाए तो साफ़ नज़र आएगा कि यह कोई नौकरी की दरख़ास्त नहीं थी जो किसी रुतबे के तलबगार ने वक़्त के बादशाह का इशारा पाते ही झट से पेश कर दी हो। हक़ीक़त में यह उस इंक़िलाब का दरवाज़ा खोलने के लिए आख़िरी चोट थी जो हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) की अख़लाक़ी ताक़त से पिछले दस-बारह साल के अन्दर पल-बढ़कर सामने आने के लिए तैयार हो चुका था और अब जिस दरवाज़े का खुलना सिर्फ़ एक धक्के का मुहताज था। हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) आज़माइशों के लम्बे सिलसिले से गुज़रकर आ रहे थे और ये आज़माइशें किसी गुमनामी के कोने में पेश नहीं आई थीं, बल्कि बादशाह से लेकर आम नागरिकों तक मिस्र का बच्चा-बच्चा उनसे वाक़िफ़ था। इन आज़माइशों में उन्होंने साबित कर दिया था कि वे ईमानदारी, सच्चाई, बरदाश्त, नफ़्स पर क़ाबू, बुलन्द अख़लाक़, अक़्लमंदी, सूझ-बूझ और मामले की समझ रखने में कम-से-कम अपने ज़माने के लोगों के बीच तो अपनी मिसाल नहीं रखते। उनकी शख़्सियत की ये ख़ूबियाँ इस तरह खुल चुकी थीं कि किसी को उनसे इनकार की मजाल न रही थी, ज़बानें उनकी गवाही दे चुकी थीं। दिल उनसे जीते जा चुके थे। ख़ुद बादशाह उनके आगे हथियार डाल चुका था। उनका "हफ़ीज़" (हिफ़ाज़त करनेवाला) और "अलीम" (इल्मवाला) होना अब सिर्फ़ एक दावा न था बल्कि एक साबित हो चुकी हक़ीक़त थी जिसपर सब ईमान ला चुके थे। अब अगर कुछ कमी बाक़ी थी तो वह सिर्फ़ इतनी कि हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) ख़ुद हुकूमत के उन अधिकारों को अपने हाथ में लेने पर रज़ामन्दी ज़ाहिर करें जिनके लिए बादशाह और उसके दरबारी अच्छी तरह जान चुके थे कि उनसे ज़्यादा मुनासिब आदमी और कोई नहीं है। चुनाँचे यही वह कमी थी जो उन्होंने अपने इस जुमले से पूरी कर दी। उनकी ज़बान से इस माँग के निकलते ही बादशाह और उसकी वज़ारत ने जिस तरह उसे ख़ुशी से क़बूल कर लिया वह ख़ुद इस बात का सुबूत है कि यह फल इतना पक चुका था कि अब टूटने के लिए एक इशारे ही के इन्तिज़ार में

था। (तलमूद का बयान है कि हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) को हुकूमत के अधिकार सौंपने का फ़ैसला अकेले बादशाह ही ने नहीं किया था, बल्कि पूरी शाही वज़ारत ने एक होकर इसके हक़ में राय दी थी।)

ये अधिकार जो हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) ने माँगे और जो उनको सौंपे गए किस तरह के थे? नादान लोग यहाँ 'ज़मीन के ख़ज़ाने' के अलफ़ाज़ और आगे चलकर अनाज के बँटवारे का ज़िक्र देखकर अन्दाज़ा लगाते हैं कि शायद यह ख़जाने के अफ़सर, माल के अफ़सर, या अकाल कमिश्नर या मालियात के वज़ीर या ख़ुराक के वजीर की तरह का कोई ओहदा होगा, लेकिन क़ुरआन, बाइबल और तलमूद सबकी एक ही गवाही है कि हक़ीक़त में हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) मिस्र की हुकूमत के सर्वेसर्वा (रूमी ज़बान में डिकटेटर) बनाए गए थे और देश का काला-सफ़ेद सब कुछ उनके अधिकार में दे दिया गया था। क़ुरआन कहता है कि जब हज़रत याक़ूब (अलैहि॰) मिस्र पहुँचे, उस वक़्त हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) हुकूमत के तख़्त पर बैठे थे (और उसने अपने माँ-बाप को तख़्त पर बिठाया)। हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) की अपनी ज़बान से निकला हुआ यह जुमला क़ुरआन में नक़्ल हुआ है कि, "ऐ मेरे रब! तूने मुझे बादशाही दी।" प्याले की चोरी के मौक़े पर सरकारी नौकर हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) के प्याले को बादशाह का प्याला कहते हैं, बादशाह का पैमाना हमको नहीं मिलता, और अल्लाह तआला मिस्र पर उनकी हुकूमत का हाल यह बयान करता है कि मिस्र की पूरी ज़मीन उनकी थी। रही बाइबल तो वह गवाही देती है कि फ़िरऔन ने यूसुफ़ से कहा :

"सो तू मेरे घर का सर्वेसर्वा होगा और मेरी सारी प्रजा तेरे हुक्म पर चलेगी, सिर्फ़ तख़्त का मालिक होने की वजह से मैं बड़ा रहूँगा........ हिन्दी बाइबल में नाम सापनत्पानेह लिखा है। देख मैं तुझे सारे मिस्र देश का हाकिम बनाता हूँ..... और तेरे हुक्म के बिना कोई आदमी इस सारे मिस्र देश में अपना हाथ या पाँव न हिलाने पाएगा और फ़िरऔन ने यूसुफ़ (अलैहि॰) का नाम "दुनिया को नजात दिलानेवाला रखा।" (उत्पत्ति, 41: 39-45)

और तलमूद कहती है कि यूसुफ़ (अलैहि॰) के भाइयों ने मिस्र से वापस जाकर अपने बाप से मिस्र के हाकिम (हज़रत यूसुफ़) की तारीफ़ करते हुए बयान किया :

"अपने देश के वासियों पर उसकी हुकूमत सबसे ऊपर है। उसके हुक्म पर वे निकलते और उसी के हुक्म पर वे दाख़िल होते हैं। उसकी ज़बान सारे देश पर हुकूमत करती है। किसी मामले में फ़िरऔन की इजाज़त की ज़रूरत नहीं होती।"

दूसरा सवाल यह है कि हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) ने ये अधिकार किस मक़सद के लिए माँगे थे? उन्होंने अपनी ख़िदमात इसलिए पेश की थीं कि एक ग़ैर-इस्लामी हुकूमत निज़ाम को उसके ग़ैर-इस्लामी उसूलों और क़ानूनों ही पर चलाएँ? या उनके सामने यह था कि हुकूमत की बागडोर अपने हाथ में लेकर देश के समाजी, अख़लाक़ी और सियासी निज़ाम को इस्लाम के मुताबिक़ ढाल दें? इस सवाल का बेहतरीन जवाब वह है जो अल्लामा ज़मख़शरी ने अपनी तफ़सीर "कश्शाफ़" में दिया है। वे लिखते हैं :

"हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) ने 'मुल्क के ख़ज़ाने मेरे सिपुर्द कीजिए' जो कहा तो उससे उनका मतलब सिर्फ़ यह था कि उनको अल्लाह तआला के हुक्म जारी करने और हक़ क़ायम करने

और इनसाफ़ फैलाने का मौक़ा मिल जाए और वे उस काम को पूरा करने की ताक़त हासिल कर लें जिसके लिए पैग़म्बर भेजे जाते हैं। उन्होंने बादशाही की मुहब्बत और दुनिया के लालच में यह मुतालबा नहीं किया था, बल्कि यह जानते हुए किया था कि कोई दूसरा शख़्स उनके सिवा ऐसा नहीं है जो इस काम को कर सके।"

और सच यह है कि यह सवाल दरअस्ल एक सवाल और पैदा करता है जो इससे भी ज़्यादा अहम और बुनियादी सवाल है और वह यह है कि हज़रत यूसुफ़ (अलैहि०) क्या पैग़म्बर भी थे या नहीं? अगर पैग़म्बर थे तो क्या क़ुरआन में हमको पैग़म्बरी का यही तसव्वुर मिलता है कि इस्लाम की दावत देनेवाला ख़ुद ग़ैर-इस्लामी निज़ाम को ग़ैर-इस्लामी उसूलों पर चलाने के लिए अपनी ख़िदमात पेश करे? बल्कि यह सवाल इसपर भी ख़त्म नहीं होता, इससे भी ज़्यादा नाज़ुक और सख़्त एक दूसरे सवाल पर जाकर ठहरता है, यानी यह कि हज़रत यूसुफ़ (अलैहि०) एक सच्चे आदमी भी थे या नहीं? अगर सच्चे थे तो क्या एक सच्चे इनसान का यही काम है कि जेल में तो वह अपनी पैग़म्बरोंवाली दावत का आग़ाज़ इस सवाल से करे कि "बहुत-से रब बेहतर हैं या वह एक अल्लाह जो सबपर ग़ालिब है," और बार-बार मिस्रवालों पर भी वाज़ेह कर दे कि तुम्हारे इन बहुत-से अलग-अलग ख़ुद गढ़े हुए ख़ुदाओं में से एक यह मिस्र का बादशाह भी है, और साफ़-साफ़ अपने मिशन का बुनियादी अक़ीदा यह बयान करे कि, "हुकूमत का अधिकार एक ख़ुदा के सिवा किसी के लिए नहीं है," मगर जब अमली आज़माइश का वक़्त आए तो वही शख़्स ख़ुद उस हुकूमत के निज़ाम का ख़ादिम, बल्कि इन्तिज़ाम करनेवाला और हिफ़ाज़त करेनवाला और मददगार तक बन जाए, जो मिस्र के बादशाह की सरपरस्ती में चल रहा था और जिसका बुनियादी नज़रिया "हुकूमत के अधिकार ख़ुदा के लिए नहीं, बल्कि बादशाह के लिए हैं," था?

हक़ीक़त यह है कि इस मक़ाम की तफ़सीर में गिरावट के दौर के मुसलमानों ने कुछ उसी ज़ेहनियत का इज़हार किया है जो कभी यहूदियों की ख़ासियत थी। यह यहूदियों का हाल था कि जब वे ज़ेहनी और अख़लाक़ी गिरावट का शिकार हुए तो पिछली तारीख़ में जिन-जिन बुज़ुर्गों की ज़िन्दगियाँ उनको बुलन्दी पर चढ़ने का सबक़ देती थीं उन सबको वे नीचे गिराकर अपनी सतह पर उतार लाए, ताकि अपने लिए और ज़्यादा नीचे गिरने का बहाना पैदा करें। अफ़सोस कि यही कुछ मुसलमानों ने भी किया। उन्हें ग़ैर-इस्लामी हुकूमतों की चाकरी करनी थी, मगर इस गिरावट में गिरते हुए इस्लाम और उसके अलमबरदारों की बुलन्दी देखकर उन्हें शर्म आई, लिहाज़ा इस शर्म को मिटाने और अपने ज़मीर को राज़ी करने के लिए ये अपने साथ बुलन्द मर्तबेवाले पैग़म्बर को भी कुफ़्र की ख़िदमत की गहराई में ले गिरे, जिसकी ज़िन्दगी दर अस्ल उन्हें यह सबक़ दे रही थी कि अगर किसी देश में एक और सिर्फ़ एक ईमानवाला मर्द भी ख़ालिस इस्लामी अख़लाक़ और ईमानी सूझ-बूझ और हिकमतवाला हो तो वह अकेला अपने अख़लाक़ और अपनी हिकमत के ज़ोर से इस्लामी इंक़िलाब ला सकता है, और यह कि ईमानवाले की अख़लाक़ी ताक़त (बशर्ते कि वह इसका इस्तेमाल जानता हो और उसे इस्तेमाल करने का इरादा भी रखता हो) फ़ौज और हथियार और सरो-सामान के बिना भी देश जीत सकती है और सल्तनतों को अपने बस में कर लेती है।

الْاَرْضِ يَتَبَوَّاُ مِنْهَا حَيْثُ يَشَآءُ نُصِيْبُ بِرَحْمَتِنَا مَنْ نَّشَآءُ وَلَا
نُضِيْعُ اَجْرَ الْمُحْسِنِيْنَ ۝٥٦ وَلَاَجْرُ الْاٰخِرَةِ خَيْرٌ لِّلَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَكَانُوْا
يَتَّقُوْنَ ۝٥٧ وَجَآءَ اِخْوَةُ يُوْسُفَ فَدَخَلُوْا عَلَيْهِ فَعَرَفَهُمْ وَهُمْ لَهٗ ع

की। उसे इख़्तियार हासिल था कि उसमें जहाँ चाहे, अपनी जगह बनाए।[48] हम अपनी रहमत से जिसको चाहते हैं, नवाज़ते हैं। नेक लोगों का बदला हमारे यहाँ मारा नहीं जाता, (57) और आख़िरत का बदला उन लोगों के लिए ज़्यादा बेहतर है जो ईमान ले आए और ख़ुदा से डरते हुए काम करते रहे।[49]

(58) युसूफ़ के भाई मिस्र आए और उसके यहाँ हाज़िर हुए।[50] उसने उन्हें पहचान

48. यानी अब मिस्र की सारी ज़मीन उसकी थी। उसकी हर जगह को वह अपनी जगह कह सकता था। वहाँ कोई कोना भी ऐसा न रहा था जो उससे रोका जा सकता हो। यह मानो उस मुकम्मल ग़लबे और हर चीज़ पर छाई हुई हुकूमत का बयान है जो हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) को उस देश पर हासिल थी। पुराने तफ़सीर लिखनेवाले भी इस आयत की यही तफ़सीर (व्याख्या) करते हैं। चुनाँचे इब्ने-ज़ैद के हवाले से अल्लामा इब्ने-जरीर तबरी ने अपनी तफ़सीर में उसके मानी ये बयान किए हैं कि "हमने यूसुफ़ को उन सब चीज़ों का मालिक बना दिया जो मिस्र में थीं, दुनिया के उस हिस्से में वह जहाँ जो कुछ चाहता कर सकता था, वह ज़मीन उसके हवाले कर दी गई थी, यहाँ तक कि अगर वह चाहता कि फ़िरऔन को अपने मातहत कर ले और ख़ुद उससे ऊपर हो जाए तो यह भी कर सकता था।" दूसरा क़ौल अल्लामा तबरी ने मुजाहिद का नक़्ल किया है जो तफ़सीर के मशहूर इमामों में से हैं, उनका ख़याल है कि मिस्र के बादशाह ने यूसुफ़ (अलैहि॰) के हाथ पर इस्लाम क़बूल कर लिया था।

49. यह ख़बरदार करना है इस बात पर कि कोई शख़्स दुनियावी हुकूमत व इक़्तिदार को नेकी व परहेज़गारी का वह असली इनाम और हक़ीक़ी बदला न समझ बैठे जिसकी उसे तमन्ना है, बल्कि ख़बरदार रहे कि बेहतरीन इनाम और वह बदला जिसकी एक ईमानवाले को तलब होनी चाहिए, वह है जो अल्लाह तआला आख़िरत में देगा।

50. यहाँ फिर सात-आठ साल के वाक़िआत बीच में छोड़कर बयान का सिलसिला उस जगह से जोड़ दिया गया है जहाँ से बनी-इसराईल के मिस्र चले जाने और हज़रत याक़ूब (अलैहि॰) को अपने खोए हुए बेटे का पता मिलने की शुरुआत होती है। बीच में जो वाक़िआत छोड़ दिए गए हैं उनका ख़ुलासा यह है कि मिस्र के बादशाह के ख़ाब का जो पेशगी मतलब यूसुफ़ (अलैहि॰) ने बताया था और जिन हालात की हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) ने पेशगी ख़बर दी थी उसके मुताबिक़ हुकूमत के पहले सात साल मिस्र में बेहद ख़ुशहाली के गुज़रे और उन दिनों में उन्होंने

مُنْكِرُوْنَ ۝٥٨ وَلَمَّا جَهَّزَهُمْ بِجَهَازِهِمْ قَالَ ائْتُوْنِيْ بِاَخٍ لَّكُمْ مِّنْ
اَبِيْكُمْ ۚ اَلَا تَرَوْنَ اَنِّيْٓ اُوْفِي الْكَيْلَ وَاَنَا خَيْرُ الْمُنْزِلِيْنَ ۝٥٩ فَاِنْ لَّمْ
تَاْتُوْنِيْ بِهٖ فَلَا كَيْلَ لَكُمْ عِنْدِيْ وَلَا تَقْرَبُوْنِ ۝٦٠ قَالُوْا سَنُرَاوِدُ

लिया, मगर वे उससे अनजान थे।[51] (59) फिर जब उसने उनका सामान तैयार करवा दिया तो चलते वक़्त उनसे कहा, "अपने सौतेले भाई को मेरे पास लाना। देखते नहीं हो कि मैं किस तरह पैमाना भरकर देता हूँ और कैसी अच्छी मेहमाननवाज़ी करनेवाला हूँ। (60) अगर तुम उसे न लाओगे तो मेरे पास तुम्हारे लिए कोई अनाज नहीं है, बल्कि तुम मेरे क़रीब भी न फटकना।"[52] (61) उन्होंने कहा, "हम कोशिश करेंगे कि अब्बाजान उसे

आनेवाले अकाल के लिए पहले से वे तमाम इंतिज़ाम कर लिए जिनका मशवरा बादशाह के ख़ाब की ताबीर बताते वक़्त वे दे चुके थे। इसके बाद अकाल का दौर शुरू हुआ और यह अकाल सिर्फ़ मिस्र ही में न था बल्कि आसपास के देश भी इसकी चपेट में आ गए थे। सीरिया, फ़िलस्तीन, पूर्वी जार्डन, उत्तरी अरब, सब जगह सूखा पड़ा था। इन हालात में हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) के समझदारी से किए गए इन्तिज़ाम की बदौलत सिर्फ़ मिस्र ही वह देश था जहाँ सूखे के बावजूद काफ़ी अनाज जमा था। इसलिए पड़ोसी देशों के लोग मजबूर हुए कि अनाज हासिल करने के लिए मिस्र जाएँ। यही वह मौक़ा था जब फ़िलस्तीन से हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) के भाई अनाज ख़रीदने के लिए मिस्र पहुँचे। शायद यूसुफ़ (अलैहि॰) ने अनाज के बारे में कुछ ऐसा ज़ाब्ता बनाया होगा कि बाहर के देशों में ख़ास इजाज़त-नामों के बिना और ख़ास मिक़दार से ज़्यादा अनाज न जा सकता होगा। इस वजह से जब यूसुफ़ (अलैहि॰) के भाइयों ने दूसरे देश से आकर अनाज हासिल करना चाहा होगा तो उन्हें इसके लिए ख़ास इजाज़त-नामा हासिल करने की ज़रूरत पड़ी होगी और इस तरह हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) के सामने उनकी पेशी की नौबत आई होगी।

51. यूसुफ़ (अलैहि॰) के भाइयों का उनको न पहचानना कोई नामुमकिन बात नहीं है। जिस वक़्त उन्होंने यूसुफ़ (अलैहि॰) को कुएँ में फेंका था, उस वक़्त आप सिर्फ़ सत्रह साल के लड़के थे, और अब उनकी उम्र 38 साल के लगभग थी। इतनी लम्बी मुद्दत आदमी को बहुत कुछ बदल देती है। फिर यह तो वे सोच भी न सकते थे कि जिस भाई को वे कुएँ में फेंक गए थे आज वह मिस्र का सर्वेसर्वा होगा।

52. बात को मुख़्तसर तौर पर बयान करने की वजह से शायद किसी को यह समझने में मुश्किल हो कि हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) जब अपनी शख़्सियत को उनपर ज़ाहिर न करना चाहते थे तो फिर उनके सौतेले भाई का ज़िक्र कैसे आ गया और उसके लाने पर इतनी ज़िद करने के क्या

عَنْهُ اَبَاهُ وَاِنَّا لَفٰعِلُوْنَ ﴿٦١﴾ وَقَالَ لِفِتْيٰنِهِ اجْعَلُوْا بِضَاعَتَهُمْ فِيْ
رِحَالِهِمْ لَعَلَّهُمْ يَعْرِفُوْنَهَآ اِذَا انْقَلَبُوْٓا اِلٰٓى اَهْلِهِمْ لَعَلَّهُمْ
يَرْجِعُوْنَ ﴿٦٢﴾ فَلَمَّا رَجَعُوْٓا اِلٰٓى اَبِيْهِمْ قَالُوْا يٰٓاَبَانَا مُنِعَ مِنَّا الْكَيْلُ

भेजने पर तैयार हो जाएँ, और हम ऐसा ज़रूर करेंगे।" (62) यूसुफ़ ने अपने ग़ुलामों को इशारा किया कि "उन लोगों ने अनाज के बदले में जो माल दिया है, वह चुपके से उनके सामान ही में रख दो।" यह यूसुफ़ ने इस उम्मीद पर किया कि घर पहुँचकर वह अपना वापस पाया हुआ माल पहचान जाएँगे (या इस कुशादादिली पर एहसानमन्द होंगे) और ताज्जुब नहीं कि फिर पलटें।

(63) जब वे अपने बाप के पास गए तो कहा, "अब्बाजान! आगे हमको अनाज देने

मानी थे, क्योंकि इस तरह तो राज़ खुला जाता था। लेकिन थोड़ा-सा ग़ौर करने से बात साफ़ समझ में आ जाती है। वहाँ अनाज के लिए कुछ उसूल थे और हर शख़्स एक तयशुदा मिक़दार ही में अनाज ले सकता था। अनाज लेने के लिए ये दस भाई आए थे, मगर वे अपने बाप और अपने ग्यारहवें भाई का हिस्सा भी माँगते होंगे। इसपर हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) ने कहा होगा कि तुम्हारे बाप के ख़ुद न आने के लिए तो यह मजबूरी समझ में आ सकती है कि वे बहुत बूढ़े और नाबीना (नेत्रहीन) हैं, मगर भाई के न आने की क्या मुनासिब वजह हो सकती है? कहीं तुम एक फ़र्ज़ी नाम से ज़्यादा अनाज पाने और फिर नाजाइज़ कारोबार करने की कोशिश तो नहीं कर रहे हो? उन्होंने जवाब में अपने घर के कुछ हालात बयान किए होंगे और बताया होगा कि वह हमारा सौतेला भाई है और कुछ वजहों से हमारे वालिद उसको हमारे साथ भेजने में झिझकते हैं। तब हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) ने कहा होगा कि ख़ैर इस वक़्त तो हम तुम्हारी ज़बान का एतिबार करके तुमको पूरा अनाज दिए देते हैं, मगर आगे से अगर तुम उसको साथ न लाए तो तुम्हारा एतिबार जाता रहेगा और तुम्हें यहाँ से कोई अनाज न मिल सकेगा। इस हुक्म भरी धमकी के साथ यूसुफ़ (अलैहि॰) ने उनको अपने एहसान और अपनी ख़ातिरदारी से भी क़ाबू करने की कोशिश की; क्योंकि दिल अपने छोटे भाई को देखने और घर के हालात मालूम करने के लिए बेताब था। यह मामले की एक सादा-सी शक्ल है जो ज़रा ग़ौर करने से ख़ुद-ब-ख़ुद समझ में आ जाती है। इस सूरत में बाइबल की उस बढ़ा-चढ़ाकर पेश की गई दास्तान पर भरोसा करने की कोई ज़रूरत नहीं रहती जो किताब 'उत्पत्ति' के अध्याय 42-43 में बड़ा रंग चढ़ाकर पेश की गई है।

فَأَرْسِلْ مَعَنَآ أَخَانَا نَكْتَلْ وَإِنَّا لَهُۥ لَحَٰفِظُونَ ﴿٦٣﴾ قَالَ هَلْ ءَامَنُكُمْ
عَلَيْهِ إِلَّا كَمَآ أَمِنتُكُمْ عَلَىٰٓ أَخِيهِ مِن قَبْلُ ۖ فَٱللَّهُ خَيْرٌ حَٰفِظًا ۖ وَهُوَ
أَرْحَمُ ٱلرَّٰحِمِينَ ﴿٦٤﴾ وَلَمَّا فَتَحُوا۟ مَتَٰعَهُمْ وَجَدُوا۟ بِضَٰعَتَهُمْ رُدَّتْ
إِلَيْهِمْ ۖ قَالُوا۟ يَٰٓأَبَانَا مَا نَبْغِى ۖ هَٰذِهِۦ بِضَٰعَتُنَا رُدَّتْ إِلَيْنَا ۖ وَنَمِيرُ أَهْلَنَا
وَنَحْفَظُ أَخَانَا وَنَزْدَادُ كَيْلَ بَعِيرٍ ۖ ذَٰلِكَ كَيْلٌ يَسِيرٌ ﴿٦٥﴾ قَالَ لَنْ
أُرْسِلَهُۥ مَعَكُمْ حَتَّىٰ تُؤْتُونِ مَوْثِقًا مِّنَ ٱللَّهِ لَتَأْتُنَّنِى بِهِۦٓ إِلَّآ أَن يُحَاطَ
بِكُمْ ۖ فَلَمَّآ ءَاتَوْهُ مَوْثِقَهُمْ قَالَ ٱللَّهُ عَلَىٰ مَا نَقُولُ وَكِيلٌ ﴿٦٦﴾ وَقَالَ
يَٰبَنِىَّ لَا تَدْخُلُوا۟ مِنۢ بَابٍ وَٰحِدٍ وَٱدْخُلُوا۟ مِنْ أَبْوَٰبٍ مُّتَفَرِّقَةٍ ۖ وَمَآ

से मना कर दिया गया है, इसलिए आप हमारे भाई को हमारे साथ भेज दीजिए, ताकि हम अनाज लेकर आएँ, और उसकी हिफ़ाज़त के हम ज़िम्मेदार हैं।" (64) बाप ने जवाब दिया, "क्या मैं उसके मामले में तुमपर वैसा ही भरोसा करूँ जैसा इससे पहले उसके भाई के मामले में कर चुका हूँ? अल्लाह ही बेहतर हिफ़ाज़त करनेवाला है और वह सबसे बढ़कर रहम करनेवाला है।" (65) फिर जब उन्होंने अपना सामान खोला तो देखा कि उनका माल भी उन्हें वापस कर दिया गया है। यह देखकर वे पुकार उठे, "अब्बाजान! और हमें क्या चाहिए, देखिए! यह हमारा माल भी हमें वापस दे दिया गया है। बस अब हम जाएँगे और अपने घरवालों के लिए रसद ले आएँगे। अपने भाई की हिफ़ाज़त भी करेंगे और एक ऊँट भर और ज़्यादा भी ले आएँगे। इतने अनाज की बढ़ोत्तरी आसानी के साथ हो जाएगी।" (66) उनके बाप ने कहा, "मैं इसको हरगिज़ तुम्हारे साथ न भेजूँगा, जब तक कि तुम अल्लाह के नाम से मुझको पैमान (वचन) न दे दो कि इसे मेरे पास ज़रूर वापस लेकर आओगे, सिवाए इसके कि कहीं तुम घेर ही लिए जाओ।" जब उन्होंने उसको अपने-अपने वचन दे दिए तो उसने कहा, "देखो, हमारी इस बात पर अल्लाह निगहबान है।" (67) फिर उसने कहा, "मेरे बच्चो, मिस्र की राजधानी में एक

أُغْنِيْ عَنْكُمْ مِّنَ اللّٰهِ مِنْ شَيْءٍ ۭ اِنِ الْحُكْمُ اِلَّا لِلّٰهِ ۭ عَلَيْهِ تَوَكَّلْتُ ۚ
وَعَلَيْهِ فَلْيَتَوَكَّلِ الْمُتَوَكِّلُوْنَ ﴿٦٧﴾ وَلَمَّا دَخَلُوْا مِنْ حَيْثُ اَمَرَهُمْ
اَبُوْهُمْ ۭ مَا كَانَ يُغْنِيْ عَنْهُمْ مِّنَ اللّٰهِ مِنْ شَيْءٍ اِلَّا حَاجَةً فِيْ نَفْسِ
يَعْقُوْبَ قَضٰىهَا ۭ وَاِنَّهٗ لَذُوْ عِلْمٍ لِّمَا عَلَّمْنٰهُ وَلٰكِنَّ اَكْثَرَ النَّاسِ لَا

दरवाज़े से दाख़िल न होना, बल्कि अलग-अलग दरवाज़ों से जाना[53], मगर मैं अल्लाह की मरज़ी से तुमको नहीं बचा सकता। हुक्म उसके सिवा किसी का भी नहीं चलता। उसी पर मैंने भरोसा किया और जिसको भी भरोसा करना हो, उसी पर करे।" (68) और हुआ भी यही कि जब वे अपने बाप के हुक्म के मुताबिक़ शहर में (अलग-अलग दरवाज़ों से) दाख़िल हुए तो उसकी यह एहतियाती तदबीर अल्लाह की मरज़ी के मुक़ाबले में कुछ भी काम न आ सकी। हाँ, बस याक़ूब के दिल में जो एक खटक थी उसे दूर करने के लिए उसने अपनी-सी कोशिश कर ली। बेशक वह हमारी दी हुई तालीम का इल्मवाला था,

---

53. इससे अन्दाज़ा होता है कि यूसुफ़ (अलैहि॰) के बाद उनके भाई को भेजते वक़्त हज़रत याक़ूब (अलैहि॰) के दिल पर क्या कुछ गुज़र रही होगी। अगरचे ख़ुदा पर भरोसा था और सब्र और उसकी मरज़ी पर राज़ी रहने में उनका मक़ाम बहुत ऊँचा था, मगर फिर भी थे तो इनसान ही। तरह-तरह के अन्देशे दिल में आते होंगे और रह-रहकर इस ख़याल से काँप उठते होंगे कि ख़ुदा जाने अब इस लड़के की शक्ल भी देख सकूँगा या नहीं, इसी लिए वे चाहते होंगे कि अपनी हद तक एहतियात में कोई कसर न उठा रखी जाए।

यह एहतियाती मशवरा कि मिस्र की राजधानी में ये सब भाई एक दरवाज़े से न जाएँ, उन सियासी हालात का तसव्वुर करने से साफ़ समझ में आ जाता है जो उस वक़्त पाए जाते थे। ये लोग मिस्री हुकूमत की सरहद पर आज़ाद क़बाइली इलाक़े के रहनेवाले थे। मिस्र के लोग इस इलाक़े के लोगों को उसी शक की निगाह से देखते होंगे जिस निगाह से भारत की ब्रिटिश सरकार आज़ाद सरहदी इलाक़ेवालों को देखती रही है। हज़रत याक़ूब (अलैहि॰) को यह अन्देशा हुआ होगा कि इस सूखे के ज़माने में अगर ये लोग एक जत्था बने हुए वहाँ दाख़िल होंगे तो शायद उनपर शक किया जाए और यह गुमान किया जाए कि ये यहाँ लूट-मार के मक़सद से आए हैं। पिछली आयत में हज़रत याक़ूब (अलैहि॰) का यह कहना कि, "सिवाए इसके कि कहीं तुम घेर ही लिए जाओ" इस बात की तरफ़ ख़ुद ही यह इशारा कर रहा है कि यह मशवरा सियासी वजहों की बिना पर दिया गया था।

ع ۱ یَعۡلَمُوۡنَ ۞ وَلَمَّا دَخَلُوۡا عَلٰی یُوۡسُفَ اٰوٰۤی اِلَیۡهِ اَخَاهُ قَالَ اِنِّیۡۤ اَنَا
اَخُوۡكَ فَلَا تَبۡتَىِٕسۡ بِمَا كَانُوۡا یَعۡمَلُوۡنَ ۞ فَلَمَّا جَهَّزَهُمۡ بِجَهَازِهِمۡ

मगर ज़्यादातर लोग मामले की हक़ीक़त को जानते नहीं हैं।[54]

(69) ये लोग यूसुफ़ के सामने पहुँचे तो उसने अपने भाई को अपने पास अलग बुला लिया और उसे बता दिया कि "मैं तेरा वही भाई हूँ (जो खोया गया था)। अब तू उन बातों का ग़म न कर जो ये लोग करते रहे हैं।"[55]

(70) जब यूसुफ़ इन भाइयों का सामान लदवाने लगा तो उसने अपने भाई के

54. इसका मतलब यह है कि तदबीर और अल्लाह पर भरोसे के बीच यह ठीक-ठीक तवाज़ुन (सन्तुलन) जो तुम हज़रत याक़ूब (अलैहि॰) की ऊपर बयान की गई बातों में पाते हो यह अस्ल में हक़ीक़त के इल्म की उस बरकत का नतीजा था जो अल्लाह तआला की मेहरबानी से उन्हें मिला था। एक तरफ़ वे इस दुनिया के क़ानूनों के मुताबिक़ जहाँ कामों के लिए ज़रिए और असबाब जुटाए जाते हैं, तमाम ऐसी तदबीरें करते हैं जो अक़्ल व फ़िक्र और तजरिबे की बुनियाद पर अपनाई जा सकती थीं। बेटों को उनका पहला जुर्म याद दिलाकर डाँट-फटकार करते हैं, ताकि वे दोबारा वैसा ही जुर्म करने की जुर्अत न करें, उनसे ख़ुदा के नाम पर वादा और अहद लेते हैं कि सौतेले भाई की हिफ़ाज़त करेंगे, और वक़्त के सियासी हालात को देखते हुए जिस एहतियाती तदबीर की ज़रूरत महसूस होती है उसे भी इस्तेमाल करने का हुक्म देते हैं, ताकि अपनी हद तक कोई बाहरी वजह भी ऐसी न रहने दी जाए जो उन लोगों के घिर जाने की वजह बन जाए। मगर दूसरी तरफ़ हर वक़्त यह बात उनके सामने है और उसका बार-बार इज़हार करते हैं कि कोई इनसानी तदबीर अल्लाह की मरज़ी को लागू होने से नहीं रोक सकती और अस्ल हिफ़ाज़त अल्लाह की हिफ़ाज़त है, और भरोसा अपनी तदबीरों पर नहीं, बल्कि अल्लाह ही की मेहरबानी पर होना चाहिए, यह सही तवाज़ुन (सन्तुलन) अपनी बातों में और अपने कामों में सिर्फ़ वही शख़्स क़ायम कर सकता है जो हक़ीक़त का इल्म रखता हो। जो यह भी जानता हो कि दुनियावी ज़िन्दगी के ज़ाहिरी पहलू में अल्लाह की बनाई हुई फ़ितरत इनसान से किस कोशिश और अमल का तक़ाज़ा करती है, और इससे भी वाक़िफ़ हो कि इस ज़ाहिर के पीछे जो अस्ल हक़ीक़त छिपी है उसकी बिना पर अस्ल काम करनेवाली ताक़त कौन-सी है और उसके होते हुए अपनी कोशिश व अमल पर इनसान का भरोसा कितना बेबुनियाद है। यही वह बात है जिसको अकसर लोग नहीं जानते। उनमें से जिसके ज़ेहन पर ज़ाहिर छाया हुआ होता है वह इस बात से बेपरवाह होकर कि भरोसा ख़ुदा ही पर होना चाहिए तदबीर ही को सबकुछ समझ बैठता है, और जिसके दिल पर बातिल छा जाता है वह तदबीर से बेपरवाह होकर निरे भरोसे ही के बल पर ज़िन्दगी की गाड़ी चलाना चाहता है।

55. इस जुमले में वह सारी दास्तान समेट दी गई है जो 21-22 साल के बाद दोनों एक ही माँ से

جَعَلَ السِّقَايَةَ فِيْ رَحْلِ اَخِيْهِ ثُمَّ اَذَّنَ مُؤَذِّنٌ اَيَّتُهَا الْعِيْرُ اِنَّكُمْ
لَسٰرِقُوْنَ ﴿٧٠﴾ قَالُوْا وَاَقْبَلُوْا عَلَيْهِمْ مَّاذَا تَفْقِدُوْنَ ﴿٧١﴾ قَالُوْا نَفْقِدُ
صُوَاعَ الْمَلِكِ وَلِمَنْ جَآءَ بِهٖ حِمْلُ بَعِيْرٍ وَّاَنَا بِهٖ زَعِيْمٌ ﴿٧٢﴾ قَالُوْا تَاللّٰهِ

सामान में अपना प्याला रख दिया।[56] फिर एक पुकारनेवाले ने पुकारकर कहा, "ऐ क़ाफ़िलेवालो! तुम लोग चोर हो।"[57] (71) उन्होंने पलटकर पूछा, "तुम्हारी क्या चीज़ खो गई?" (72) सरकारी कारिन्दों ने कहा, "बादशाह का पैमाना हमको नहीं मिलता।" (और उनके जमादार ने कहा) "जो आदमी लाकर देगा उसके लिए एक ऊँट के बोझ के बराबर इनाम है, इसका मैं ज़िम्मा लेता हूँ।" (73) उन भाइयों ने कहा, "ख़ुदा की क़सम! तुम

जन्मे भाइयों के मिलने पर पेश आई होगी। हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) ने बताया होगा कि वे किन हालात से गुज़रते हुए इस मर्तबे पर पहुँचे। बिनयामीन ने सुनाया होगा कि उनके पीछे सौतेले भाइयों ने उसके साथ क्या-क्या बुरे सुलूक किए। फिर हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) ने भाई को तसल्ली दी होगी कि अब तुम मेरे पास ही रहोगे, उन ज़ालिमों के पंजे में तुमको दोबारा नहीं जाने दूँगा। हो सकता है कि इसी मौक़े पर दोनों भाइयों में यह भी तय हो गया हो कि बिनयामीन को मिस्र में रोक रखने के लिए क्या तदबीर की जाए जिससे वह परदा पड़ा रहे जो हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) कुछ मसलहत के तहत डाले रखना चाहते थे।

56. प्याला रखने का काम शायद हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) ने अपने भाई की रज़ामन्दी से और उसकी जानकारी में किया था जैसा कि इससे पहलेवाली आयत इशारा कर रही है। हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) अपने मुद्दतों के बिछड़े हुए भाई को उन ज़ालिम सौतेले भाइयों के पंजे से छुड़ाना चाहते होंगे। भाई ख़ुद भी उन ज़ालिमों के साथ वापस न जाना चाहता होगा। मगर खुलेआम यूसुफ़ (अलैहि॰) का उसे रोकना और उसका रुक जाना बिना इसके मुमकिन न था कि हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) अपनी शख़्सियत को ज़ाहिर करते और उसका इज़हार इस मौक़े पर मस्लहत के ख़िलाफ़ था। इसलिए दोनों भाइयों में मशवरा हुआ होगा कि उसे रोकने की यह तदबीर की जाए। अगरचे थोड़ी देर के लिए इसमें भाई का अपमान था कि उसपर चोरी का धब्बा लगता था, लेकिन बाद में यह धब्बा इस तरह आसानी के साथ धुल सकता था कि दोनों भाई अस्ल मामले को दुनिया पर ज़ाहिर कर दें।

57. इस आयत में और बादवाली आयत में भी कहीं ऐसा कोई इशारा मौजूद नहीं है जिससे यह समझा जा सके कि हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) ने अपने नौकरों को इस राज़ में शरीक किया था और उन्हें ख़ुद यह सिखाया था कि क़ाफ़िलेवालों पर झूठा इलज़ाम लगाओ। वाक़िए की सादा सूरत जो समझ में आती है वह यह है कि प्याला ख़ामोशी के साथ रख दिया गया होगा, बाद में जब सरकारी नौकरों ने उसे न पाया होगा तो अन्दाज़ा लगाया होगा कि हो न हो, यह काम इन्ही काफ़िलेवालों में से किसी का है जो यहाँ ठहरे हुए थे।

لَقَدْ عَلِمْتُمْ مَّا جِئْنَا لِنُفْسِدَ فِي الْأَرْضِ وَمَا كُنَّا سٰرِقِيْنَ ﴿٧٣﴾ قَالُوْا
فَمَا جَزَآؤُهٗٓ اِنْ كُنْتُمْ كٰذِبِيْنَ ﴿٧٤﴾ قَالُوْا جَزَآؤُهٗ مَنْ وُّجِدَ فِيْ رَحْلِهٖ فَهُوَ
جَزَآؤُهٗ ؕ كَذٰلِكَ نَجْزِي الظّٰلِمِيْنَ ﴿٧٥﴾ فَبَدَاَ بِاَوْعِيَتِهِمْ قَبْلَ وِعَآءِ
اَخِيْهِ ثُمَّ اسْتَخْرَجَهَا مِنْ وِّعَآءِ اَخِيْهِ ؕ كَذٰلِكَ كِدْنَا لِيُوْسُفَ ؕ مَا كَانَ

लोग ख़ूब जानते हो कि हम इस देश में बिगाड़ पैदा करने नहीं आए हैं और हम चोरियाँ करनेवाले लोग नहीं हैं।" (74) उन्होंने कहा, "अच्छा, अगर तुम्हारी बात झूठी निकली तो चोर की क्या सज़ा है?" (75) उन्होंने कहा, "उसकी सज़ा? जिसके सामान में से चीज़ निकले, वह आप ही अपनी सज़ा में रख लिया जाए। हमारे यहाँ तो ऐसे ज़ालिमों को सज़ा देने का यही तरीक़ा है।"[58] (76) तब यूसुफ़ ने अपने भाई से पहले उनकी ख़ुरजियों की तलाशी लेनी शुरू की, फिर अपने भाई की ख़ुरजी से गुमशुदा चीज़ बरामद कर ली– इस तरह हमने यूसुफ़ की ताईद (मदद) अपनी तदबीर से की।[59] उसका यह काम न था कि बादशाह के दीन (यानी मिस्र के शाही क़ानून) में अपने भाई को पकड़ता

58. ख़याल रहे कि ये भाई इबराहीमी ख़ानदान के लोग थे, लिहाज़ा उन्होंने चोरी के मामले में जो क़ानून बयान किया वह इबराहीमी शरीअत का क़ानून था, यानी यह कि चोर उस शख़्स की गुलामी में दे दिया जाए जिसका माल उसने चुराया हो।

59. यहाँ यह बात ध्यान देने के क़ाबिल है कि वाक़िआत के इस पूरे सिलसिले में वह कौन-सी तदबीर है जो हज़रत यूसुफ़ (अलैहि०) की ताईद में ख़ुदा की तरफ़ से की गई? ज़ाहिर है कि प्याला रखने की तदबीर तो हज़रत यूसुफ़ (अलैहि०) ने ख़ुद की थी। यह भी ज़ाहिर है कि सरकारी नौकरों का चोरी के शक में क़ाफ़िलेवालों को रोकना भी मामूल के मुताबिक़ वह काम था, जो ऐसे मौक़ों पर सब सरकारी नौकर किया करते हैं। फिर वह ख़ास ख़ुदाई तदबीर कौन-सी है? ऊपर की आयतों में तलाश करने से इसके सिवा कोई दूसरी चीज़ ऐसी नहीं मिलती जिसपर इस बात को सही ठहराया जा सकता कि सरकारी नौकरों ने अपने मामूल के ख़िलाफ़ ख़ुद शक के घेरे में आए हुए मुलज़िमों से चोर की सज़ा पूछी, और उन्होंने यह सज़ा बताई जो इबराहीमी शरीअत के मुताबिक़ चोर को दी जाती थी। इसके दो फ़ायदे हुए, एक यह कि हज़रत यूसुफ़ (अलैहि०) को इबराहीमी शरीअत पर अमल करने का मौक़ा मिल गया। दूसरा यह कि भाई को हवालात में भेजने के बजाए अब वे उसे अपने पास रख सकते थे।

لِيَأْخُذَ أَخَاهُ فِي دِينِ الْمَلِكِ إِلَّا أَنْ يَشَاءَ اللَّهُ ۚ نَرْفَعُ دَرَجَاتٍ مَنْ
نَشَاءُ ۗ وَفَوْقَ كُلِّ ذِي عِلْمٍ عَلِيمٌ ﴿٧٦﴾ قَالُوا إِنْ يَسْرِقْ فَقَدْ سَرَقَ أَخٌ

सिवाए इसके कि अल्लाह ही ऐसा चाहे।[60] हम जिसके दर्जे चाहते हैं बुलन्द कर देते हैं, और एक इल्म रखनेवाला ऐसा है जो हर इल्मवाले से बढ़कर है।

(77) उन भाइयों ने कहा, "यह चोरी करे तो कुछ हैरत की बात भी नहीं, इससे

60. यानी यह बात हज़रत यूसुफ़ (अलैहि.) की पैग़म्बरी के रुतबे के मुताबिक़ न थी कि वे अपने एक ज़ाती मामले में मिस्र के बादशाह के क़ानून पर अमल करते। अपने भाई को रोक रखने के लिए उन्होंने ख़ुद जो तदबीर की थी उसमें यह कमी रह गई थी कि भाई को रोका तो ज़रूर जा सकता था मगर मिस्र के बादशाह के सज़ा के क़ानून से काम लेना पड़ता, और यह उस पैग़म्बर की शान के मुताबिक़ न था जिसने हुकूमत के अधिकार ग़ैर-इस्लामी क़ानूनों की जगह इस्लामी शरीअत लागू करने के लिए अपने हाथ में लिए थे। अगर अल्लाह चाहता तो अपने नबी को इस बदनुमा ग़लती में मुब्तला हो जाने देता, मगर उसने यह गवारा न किया कि यह धब्बा उसके दामन पर रह जाए, इसलिए उसने ख़ुद अपनी तदबीर से यह राह निकाल दी कि इत्तिफ़ाक़ से यूसुफ़ (अलैहि.) के भाइयों से चोर की सज़ा पूछ ली गई और उन्होंने इसके लिए इबराहीमी शरीअत का क़ानून बयान कर दिया। यह चीज़ इस लिहाज़ से बिलकुल मौक़े के मुताबिक़ थी कि यूसुफ़ (अलैहि.) के भाई मिस्री बाशिन्दे न थे, एक आज़ाद इलाक़े से आए हुए लोग थे, लिहाज़ा अगर वे ख़ुद अपने यहाँ के दस्तूर के मुताबिक़ अपने आदमी को उस शख़्स की ग़ुलामी में देने के लिए तैयार थे जिसका माल उसने चुराया था, तो फिर मिस्री सज़ा के क़ानून से इस मामले में मदद लेने की कोई ज़रूरत ही न थी। यही वह चीज़ है जिसको बाद की दो आयतों में अल्लाह तआला ने अपने एहसान और अपनी इल्मी बरतरी बताया है। एक बन्दे के लिए इससे बढ़कर ऊँचा दर्जा और क्या हो सकता है कि अगर वह कभी इनसानी कमज़ोरी की वजह से ख़ुद कोई ग़लती कर रहा हो तो अल्लाह तआला ग़ैब (परोक्ष रूप) से उसको बचाने का इन्तिज़ाम कर दे। ऐसा बुलन्द मर्तबा सिर्फ़ उन्हीं लोगों को मिला करता है जो अपनी कोशिश व अमल से बड़ी-बड़ी आज़माइशों में अपना 'इन्तिहाई नेक होना' साबित कर चुके होते हैं और अगरचे हज़रत यूसुफ़ (अलैहि.) इल्मवाले थे, ख़ुद बहुत समझदारी के साथ काम करते थे, मगर फिर भी इस मौक़े पर उनके इल्म में एक कसर रह गई और उसे उस हस्ती ने पूरा किया जो हर इल्मवाले से बढ़कर है।

यहाँ कुछ बातों की वज़ाहत बाक़ी रह गई हैं जिनको हम मुख़्तसर तौर पर बयान करेंगे —

(1) आम-तौर पर इस आयत का तर्जमा यह किया जाता है कि "यूसुफ़ बादशाह के क़ानून के मुताबिक़ अपने भाई को न पकड़ सकता था।" यानी 'मा का-न लि-या-ख़ुज़' का तर्जमा और तफ़सीर करनेवाले उलमा क़ुदरत न होने के मानी में लेते हैं, न कि सही न होने और

मुनासिब न होने के मानी में। लेकिन पहली बात तो यह तर्जमा व तफ़सीर अरबी मुहावरे और क़ुरआनी इस्तेमालों दोनों के लिहाज़ से ठीक नहीं है; क्योंकि अरबी में आमतौर पर 'मा का-न लहू' का मतलब और मानी 'मा यम्बग़ी लहू' (उसे नहीं चाहिए), 'मा सह्-ह लहू' (उसके लिए सही नहीं है) 'मस्तक़ा-म लहू' (उसके लिए ठीक नहीं हैं) वग़ैरा होता है। और क़ुरआन में भी यह ज़्यादातर इसी मानी में आया है। मिसाल के तौर पर 'मा कानल्लाहु अंय यत्तख़िज़ा मिवं वलदिन (अल्लाह का यह काम नहीं कि वह किसी को अपना बेटा बनाए) "मा का-न लना अन्नुशरि-क बिल्लाहि मिन शैइन" (हमारा यह काम नहीं है कि हम अल्लाह के साथ किसी को साझी ठहराएँ), 'मा कानल्लाहु लियुतलि-अकुम अलल-ग़ैब' (अल्लाह का तरीक़ा यह नहीं है कि तुम लोगों पर परोक्ष (ग़ैब) को प्रकट कर दे) 'मा कानल्लाहु लियुज़ी-अ ईमा-न कुम' (अल्लाह तुम्हारे इस ईमान (आस्था) को हरगिज़ अकारथ न करेगा) फ़मा कानल्लाहु लियज़लि-म हुम' (फिर यह अल्लाह का काम न था कि उनपर ज़ुल्म करता), 'मा कानल्लाहु लिय-ज़-रल मोमिनी-न अला मा अन्तुम अलैहि' (अल्लाह ईमानवालों को इस हालत में हरगिज़ न रहने देगा जिसमें तुम लोग इस समय पाए जाते हो) 'मा का-न लि मुअ मिनिन अँय-यक़्तु-ल मुअमिनन' (किसी ईमानवाले का यह काम नहीं है कि दूसरे ईमानवाले को क़त्ल करे), दूसरे अगर इसके वे मानी लिए जाएँ जो तर्जमा और तफ़सीर करनेवाले आमतौर से बयान करते हैं तो बात बिलकुल बेमतलब हो जाती है। बादशाह के क़ानून में चोर को न पकड़ सकने की आख़िर वजह क्या हो सकती है? क्या दुनिया में कभी कोई सल्तनत ऐसी भी रही है जिसका क़ानून चोर को गिरफ़्तार करने की इजाज़त न देता हो?

(2) अल्लाह तआला ने शाही क़ानून के लिए "दीनुल-मलिक" का लफ़्ज़ इस्तेमाल करके ख़ुद उस मतलब की तरफ़ इशारा कर दिया है जो "मा का-न लि-याख़ुज़ु" से लिया जाना चाहिए। ज़ाहिर है कि अल्लाह का पैग़म्बर ज़मीन में 'दीनुल्लाह' (अल्लाह का दीन) जारी करने के लिए भेजा गया था, न कि 'दीनुल-मलिक' (बादशाह का दीन) जारी करने के लिए। अगर हालात की मजबूरी से उसकी हुकूमत में उस वक़्त तक पूरी तरह 'बादशाह के दीन' की जगह 'अल्लाह का दीन' जारी न हो सका था, तब भी कम-से-कम पैग़म्बर का अपना काम तो यह न था कि अपने एक निजी मामले में बादशाह के दीन पर अमल करे। लिहाज़ा हज़रत यूसुफ़ (अलैहि.) का बादशाह के दीन के मुताबिक़ अपने भाई को न पकड़ना इस वजह से नहीं था कि बादशाह के दीन में ऐसा करने की गुंजाइश न थी, बल्कि इसकी वजह सिर्फ़ यह थी कि पैग़म्बर होने की हैसियत से अपनी ज़ाती हद तक अल्लाह के दीन पर अमल करना उनका फ़र्ज़ था और बादशाह के दीन की पैरवी उनके लिए बिलकुल नामुनासिब थी।

(3) देश के क़ानून (Law of the Land) के लिए लफ़्ज़ "दीन" इस्तेमाल करके अल्लाह तआला ने इस बात को पूरी तरह वाज़ेह कर दिया है कि दीन के मानी बहुत वसीअ (व्यापक) हैं। इससे उन लोगों के दीन के तसव्वुर की जड़ कट जाती है जो नबियों की दावत को सिर्फ़ आम मज़हबी मानी में एक ख़ुदा की पूजा कराने और सिर्फ़ कुछ मज़हबी रस्मों और अक़ीदों की पाबन्दी करा लेने तक महदूद समझते हैं, और यह ख़याल करते हैं कि इनसानी समाज,

सियासत, कारोबार, अदालत, क़ानून और ऐसे ही दूसरे दुनियावी मामलों का कोई ताल्लुक़ दीन से नहीं है, या अगर है भी तो उन मामलों के बारे में दीन की हिदायतें सिर्फ़ इख़्तियारी सिफ़ारिशें हैं जिनपर अगर अमल हो जाए तो अच्छा है वरना इनसानों के अपने बनाए हुए ज़ाब्ते और उसूल क़बूल कर लेने में भी कोई हरज नहीं। दीन का यह तसव्वुर गुमराह करनेवाला है जिसका एक मुद्दत से मुसलमानों में चर्चा है, जो बहुत बड़ी हद तक मुसलमानों को ज़िन्दगी के इस्लामी निज़ाम को क़ायम करने की कोशिश से बेपरवाह करने का ज़िम्मेदार है, जिसकी बदौलत मुसलमान कुफ़्र व जाहिलियत की निज़ामे-ज़िन्दगी पर न सिर्फ़ राज़ी हुए बल्कि एक नबी की सुन्नत (तरीक़ा) समझकर उस निज़ाम का हिस्सा बनने और उसको ख़ुद चलाने के लिए भी तैयार हो गए, इस आयत के मुताबिक़ बिलकुल ग़लत साबित होता है। यहाँ अल्लाह तआला साफ़ बता रहा है कि जिस तरह नमाज़, रोज़ा और हज दीन है उसी तरह वह क़ानून भी दीन है जिसपर सोसाइटी का निज़ाम और मुल्क का इंतिज़ाम चलाया जाता है। लिहाज़ा "अल्लाह के नज़दीक दीन सिर्फ़ इस्लाम है" और "जो कोई इस्लाम के सिवा कोई और दीन चाहेगा तो उसे क़बूल न किया जाएगा" वग़ैरा आयतों में जिस दीन की पैरवी का मुतालबा किया गया है उससे मुराद सिर्फ़ नमाज़, रोज़ा ही नहीं है बल्कि इस्लाम का इजतिमाई निज़ाम भी है जिससे हटकर किसी दूसरे निज़ाम की पैरवी ख़ुदा के यहाँ हरगिज़ क़बूल नहीं हो सकती।

(4) सवाल किया जा सकता है कि इससे कम-से-कम यह तो साबित होता है कि उस वक़्त मिस्र की हुकूमत में 'बादशाह का दीन' ही जारी था। अब अगर इस हुकूमत के सबसे बड़े हाकिम हज़रत यूसुफ़ (अलैहि.) ही थे, जैसा कि तुम ख़ुद पहले साबित कर चुके हो, तो इससे लाज़िम आता है कि हज़रत यूसुफ़ (अलैहि.), ख़ुदा के पैग़म्बर, ख़ुद अपने हाथों से देश में 'बादशाह का दीन' जारी कर रहे थे। इसके बाद अगर अपने निजी मामले में हज़रत यूसुफ़ (अलैहि.) ने 'बादशाह के दीन' के बजाए इबराहीमी शरीअत पर अमल किया भी तो इससे क्या फ़र्क़ पड़ा? इसका जवाब यह है कि हज़रत यूसुफ़ (अलैहि.) मुक़र्रर तो अल्लाह का दीन जारी करने ही पर थे और यही पैग़म्बर की हैसियत से उनका मिशन और उनकी हुकूमत का मक़सद था, मगर एक देश का निज़ाम अमली तौर पर एक दिन के अन्दर नहीं बदल जाया करता। आज अगर कोई देश पूरी तरह हमारे अधिकार में हो और हम उसमें इस्लामी निज़ाम क़ायम करने की ख़ालिस नीयत ही से उसका इन्तिज़ाम अपने हाथ में लें, तब भी उसका सामाजिक निज़ाम (व्यवस्था), मआशी (आर्थिक) निज़ाम, सियासी निज़ाम और अदालत और क़ानून के निज़ाम को अमली तौर पर बदलते-बदलते सालों लग जाएँगे और कुछ मुद्दत तक हमको अपने इन्तिज़ाम में भी पहले के क़ानून बरक़रार रखने पड़ेंगे। क्या इतिहास इस बात पर गवाह नहीं है कि ख़ुद नबी (सल्ल.) को भी अरब के निज़ामे-ज़िन्दगी में पूरा इस्लामी इंक़िलाब लाने के लिए नौ-दस साल लगे थे? इस दौरान में आख़िरी पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) की अपनी हुकूमत में कुछ साल शराब पी जाती रही, ब्याज लिया और दिया जाता रहा, जाहिलियत का विरासत का क़ानून जारी रहा, निकाह व तलाक़ के पुराने क़ानून बरक़रार रहे, ख़रीदने-बेचने की बहुत-सी ख़राब सूरतें अमल में

لَّهٗ مِنْ قَبْلُ ۚ فَاَسَرَّهَا يُوْسُفُ فِيْ نَفْسِهٖ وَلَمْ يُبْدِهَا لَهُمْ ۚ قَالَ اَنْتُمْ
شَرٌّ مَّكَانًا ۚ وَاللّٰهُ اَعْلَمُ بِمَا تَصِفُوْنَ ﴿٧٧﴾ قَالُوْا يٰۤاَيُّهَا الْعَزِيْزُ اِنَّ لَهٗۤ اَبًا

पहले इसका भाई (यूसुफ़) भी चोरी कर चुका है।"[61] यूसुफ़ उनकी यह बात सुनकर पी गया, हक़ीक़त उनपर न खोली, बस (मन ही में) इतना कहकर रह गया कि "बड़े ही बुरे हो तुम लोग, (मेरे सामने ही मुझपर) जो इलज़ाम तुम लगा रहे हो उसकी हक़ीक़त ख़ुदा ख़ूब जानता है।"

(78) उन्होंने कहा, 'ऐ इक़्तिदारवाले सरदार (अज़ीज़!)[62] इसका बाप बहुत बूढ़ा

आती रहीं और दीवानी और फ़ौजदारी के इस्लामी क़ानून भी पहले दिन ही पूरे तौर पर लागू नहीं हो गए। तो अगर हज़रत यूसुफ़ (अलैहि.) की हुकूमत में शुरू के आठ-नौ साल तक पहले की पिछली मिस्री बादशाहत के कुछ क़ानून चलते रहे हों तो इसमें ताज्जुब की क्या बात है और इससे यह दलील कैसे निकल आती है कि ख़ुदा का पैग़म्बर मिस्र में ख़ुदा के दीन को नहीं, बल्कि बादशाह के दीन को जारी करने पर मुक़र्रर था। रही यह बात कि जब देश में बादशाह का दीन जारी था ही तो आख़िर हज़रत यूसुफ़ (अलैहि.) को ख़ुद के लिए इसपर अमल करना क्यों उनके रुतबे के मुताबिक़ न था, तो यह सवाल भी नबी (सल्ल.) के तरीक़े पर ग़ौर करने से आसानी से हल हो जाता है। नबी (सल्ल.) की हुकूमत के शुरुआती दौर में जब तक इस्लामी क़ानून जारी न हुए थे, लोग पुराने तरीक़े के मुताबिक़ शराब पीते रहे, मगर क्या नबी (सल्ल.) ने भी पी? लोग ब्याज लेते देते, मगर क्या आप (सल्ल.) ने भी ब्याज का लेन-देन किया? लोग 'मुतआ' (अस्थायी विवाह) करते रहे, दो सगी बहनों को एक साथ अपने निकाह में रखते रहे, मगर क्या नबी (सल्ल.) ने भी ऐसा किया? इससे मालूम होता है इस्लाम की दावत देनेवाले का अमली मजबूरियों की वजह से इस्लामी हुक्मों को एक तरतीब से जारी करना और चीज़ है और इस थोड़े-थोड़े करके हुक्म जारी होनेवाले दौर में जाहिलियत के तरीक़ों पर अमल करना और चीज़। तरतीब के साथ आगे बढ़ने की रुख़सतें दूसरों के लिए हैं। इस्लाम की दावत देनेवाले का अपना यह काम नहीं है कि ख़ुद उन तरीक़ों में से किसी पर अमल करे जिनके मिटाने पर वह मुक़र्रर हुआ है।

61. यह उन्होंने अपनी शर्मिन्दगी मिटाने के लिए कहा। पहले कह चुके थे कि हम लोग चोर नहीं हैं। अब जो देखा कि माल हमारे भाई की ख़ुर्जी (थैले) से बरामद हो गया है, तो फ़ौरन एक झूठी बात बनाकर अपने आपको उस भाई से अलग कर लिया और उसके साथ उसके पहले भाई (यूसुफ़) को भी लपेट लिया। इससे अन्दाज़ा होता है कि हज़रत यूसुफ़ (अलैहि.) के पीछे बिनयामीन के साथ उन भाइयों का क्या सुलूक रहा होगा और किस वजह से उसकी और हज़रत यूसुफ़ (अलैहि.) की यह ख़ाहिश होगी कि वह उनके साथ न जाए।

62. यहाँ लफ़्ज़ 'अज़ीज़' हज़रत यूसुफ़ (अलैहि.) के लिए जो इस्तेमाल हुआ है सिर्फ़ इसकी वजह

شَيْخًا كَبِيْرًا فَخُذْ اَحَدَنَا مَكَانَهٗ ۚ اِنَّا نَرٰىكَ مِنَ الْمُحْسِنِيْنَ ﴿٧٨﴾ قَالَ
مَعَاذَ اللّٰهِ اَنْ نَّاْخُذَ اِلَّا مَنْ وَّجَدْنَا مَتَاعَنَا عِنْدَهٗۤ ۙ اِنَّاۤ اِذًا لَّظٰلِمُوْنَ ﴿٧٩﴾ ع

आदमी है, इसकी जगह आप हममें से किसी को रख लीजिए। हम आपको बड़ा ही नेकदिल इनसान पाते हैं।" (79) यूसुफ़ ने कहा, "अल्लाह की पनाह! दूसरे किसी शख़्स को हम कैसे रख सकते हैं? जिसके पास हमने अपना माल पाया है[63] उसको छोड़कर दूसरे को रखेंगे तो हम ज़ालिम होंगे।"

से क़ुरआन की तफ़सीर लिखनेवाले आलिमों ने यह समझ लिया कि हज़रत यूसुफ़ (अलैहि.) उसी मनसब पर मुक़र्रर हुए थे, जिसपर इससे पहले ज़ुलेख़ा का शौहर मुक़र्रर था। फिर इस पर और ज़्यादा गुमानों की इमारत खड़ी कर ली गई कि पहलेवाला अज़ीज़ मर गया था, हज़रत यूसुफ़ (अलैहि.) उसकी जगह मुक़र्रर किए गए, ज़ुलैख़ा फिर से मोजिज़े (चमत्कार) के ज़रिए से जवान की गई, और मिस्र के बादशाह ने उससे हज़रत यूसुफ़ (अलैहि.) का निकाह कर दिया। हद यह है कि शादी की पहली रात में हज़रत यूसुफ़ (अलैहि.) और ज़ुलैख़ा के बीच में जो बातें हुईं वे तक किसी ज़रिए से हमारे मुफ़स्सिरों को पहुँच गईं। हालाँकि ये सब बातें सरासर वहम हैं। लफ़्ज 'अज़ीज़' के बारे में हम पहले कह चुके हैं कि यह मिस्र में किसी ख़ास मनसब (पद) का नाम न था, बल्कि सिर्फ़ 'हाकिम' के मानी में इस्तेमाल किया गया है। शायद मिस्र में बड़े लोगों के लिए उस तरह का कोई लफ़्ज़ इस्तिलाही (पारिभाषिक) तौर पर चलन में था, जैसे हमारे देश में लफ़्ज़ 'सरकार' बोला जाता है। इसी का तर्जमा क़ुरआन में 'अज़ीज़' किया गया है। रहा ज़ुलैख़ा से हज़रत यूसुफ़ (अलैहि.) का निकाह तो इस अफ़साने की बुनियाद सिर्फ़ यह है कि बाइबल और तलमूद में फ़ौतीफ़रा की बेटी आसनाथ से उनके निकाह की रिवायत बयान की गई है और ज़ुलैख़ा के शौहर का नाम फ़ौतीफ़ार था। ये चीज़ें इसराइली रिवायतों से बयान होती हुई मुफ़स्सिरों तक पहुँची और जैसा कि ज़बानी अफ़वाहों का क़ायदा है, फ़ौतीफ़रा आसानी से फ़ौतीफ़ार बन गया, बेटी की जगह बीवी को मिल गई और बीवी तो हर हाल में ज़ुलैख़ा ही थी, लिहाज़ा उससे हज़रत यूसुफ़ का निकाह करने के लिए फ़ौतीफ़ार को मार दिया गया, और इस तरह 'यूसुफ़-ज़ुलैख़ा' की कहानी पूरी हो गई।

63. एहतियात देखिए कि 'चोर' नहीं कहते, बल्कि सिर्फ़ यह कहते हैं "जिसके पास हमने अपना माल पाया है।" इसी को शरीअत की ज़बान में 'तौरिया' कहते हैं, यानी 'हक़ीक़त पर पर्दा डालना' या 'सच बात को छिपाना'। जब किसी मज़लूम को ज़ालिम से बचाने या किसी बड़े ज़ुल्म को दूर करने की कोई सूरत इसके सिवा न हो कि कुछ सच्चाई के ख़िलाफ़ बात कही जाए या हक़ीक़त के ख़िलाफ़ कोई बहाना किया जाए तो ऐसी सूरत में एक परहेज़गार आदमी साफ़ झूठ बोलने से बचते हुए ऐसी बात कहने या ऐसी तदबीर करने की कोशिश करेगा जिससे हक़ीक़त को छिपाकर बुराई को दूर किया जा सके। ऐसा करना शरीअत और अख़लाक़ी पहलू

فَلَمَّا اسْتَيْـَٔسُوْا مِنْهُ خَلَصُوْا نَجِيًّا ؕ قَالَ كَبِيْرُهُمْ اَلَمْ تَعْلَمُوْۤا اَنَّ
اَبَاكُمْ قَدْ اَخَذَ عَلَيْكُمْ مَّوْثِقًا مِّنَ اللّٰهِ وَمِنْ قَبْلُ مَا فَرَّطْتُّمْ فِیْ
یُوْسُفَ ۚ فَلَنْ اَبْرَحَ الْاَرْضَ حَتّٰی یَاْذَنَ لِیْۤ اَبِیْۤ اَوْ یَحْكُمَ اللّٰهُ لِیْ ۚ وَهُوَ
خَیْرُ الْحٰكِمِیْنَ ﴿۸۰﴾ اِرْجِعُوْۤا اِلٰۤی اَبِیْكُمْ فَقُوْلُوْا یٰۤاَبَانَاۤ اِنَّ ابْنَكَ سَرَقَ ۚ
وَمَا شَهِدْنَاۤ اِلَّا بِمَا عَلِمْنَا وَمَا كُنَّا لِلْغَیْبِ حٰفِظِیْنَ ﴿۸۱﴾

(80) जब वे यूसुफ़ से मायूस हो गए तो एक कोने में जाकर आपस में मशवरा करने लगे। उनमें जो सबसे बड़ा था वह बोला, "तुम जानते नहीं हो कि तुम्हारे बाप तुमसे ख़ुदा के नाम पर क्या वादा ले चुके हैं। और इससे पहले यूसुफ़ के मामले में जो ज़्यादती तुम कर चुके हो वह भी तुमको मालूम है। अब मैं तो यहाँ से हरगिज़ न जाऊँगा, जब तक कि मेरे बाप मुझे इजाज़त न दें, या फिर अल्लाह ही मेरे लिए कोई फ़ैसला कर दे कि वह सबसे अच्छा फ़ैसला करनेवाला है। (81) तुम जाकर अपने बाप से कहो कि 'अब्बाजान! आपके बेटे ने चोरी की है। हमने उसे चोरी करते हुए नहीं देखा, जो कुछ हमें मालूम हुआ है बस वही हम बयान कर रहे हैं, और ग़ैब तो हमारी नज़र में

से जाइज़ है, बशर्ते कि सिर्फ़ काम निकालने के लिए ऐसा न किया जाए, बल्कि किसी बड़ी बुराई को दूर करना हो। अब देखिए कि इस सारे मामले में हज़रत यूसुफ़ (अलैहि.) ने किस तरह जाइज़ 'तौरिया' की शर्तें पूरी की हैं। भाई की रज़ामन्दी से उसके सामान में प्याला रख दिया, मगर नौकरों से यह नहीं कहा कि उसपर चोरी का इलज़ाम लगाओ। फिर जब सरकारी कर्मचारी चोरी के इलज़ाम में उन लोगों को पकड़ लाए तो चुपचाप उठकर उनकी तलाशी ले ली। फिर अब जो इन भाइयों ने कहा कि बिनयामीन की जगह हममें से किसी को रख लीजिए, तो इसके जवाब में भी बस उन्हीं की बात उनपर उलट दी कि तुम्हारा अपना फ़ैसला यह था कि जिसके सामान में से तुम्हारा माल निकले वही रख लिया जाए, सो अब तुम्हारे सामने बिनयामीन के सामान में से हमारा माल निकला है और उसी को हम रखे लेते हैं। दूसरे को उसकी जगह कैसे रख सकते हैं? इस तरह के 'तौरिया' की मिसालें ख़ुद नबी (सल्ल.) के ग़ज़वात (जंगों) में भी मिलती हैं, और किसी दलील से भी उसको अख़लाक़ी तौर पर ग़लत नहीं कहा जा सकता।

وَسْـَٔلِ الْقَرْيَةَ الَّتِيْ كُنَّا فِيْهَا وَالْعِيْرَ الَّتِيْٓ اَقْبَلْنَا فِيْهَا ۭ وَاِنَّا
لَصٰدِقُوْنَ ﴿٨٢﴾ قَالَ بَلْ سَوَّلَتْ لَكُمْ اَنْفُسُكُمْ اَمْرًا ۭ فَصَبْرٌ جَمِيْلٌ ۭ
عَسَى اللّٰهُ اَنْ يَّاْتِيَنِيْ بِهِمْ جَمِيْعًا ۭ اِنَّهٗ هُوَ الْعَلِيْمُ الْحَكِيْمُ ﴿٨٣﴾ وَتَوَلّٰى
عَنْهُمْ وَقَالَ يٰٓاَسَفٰى عَلٰي يُوْسُفَ وَابْيَضَّتْ عَيْنٰهُ مِنَ الْحُزْنِ فَهُوَ
كَظِيْمٌ ﴿٨٤﴾ قَالُوْا تَاللّٰهِ تَفْتَؤُا تَذْكُرُ يُوْسُفَ حَتّٰى تَكُوْنَ حَرَضًا اَوْ
تَكُوْنَ مِنَ الْهٰلِكِيْنَ ﴿٨٥﴾ قَالَ اِنَّمَآ اَشْكُوْا بَثِّيْ وَحُزْنِيْٓ اِلَى اللّٰهِ وَاَعْلَمُ
مِنَ اللّٰهِ مَا لَا تَعْلَمُوْنَ ﴿٨٦﴾ يٰبَنِيَّ اذْهَبُوْا فَتَحَسَّسُوْا مِنْ يُّوْسُفَ

था नहीं। (82) आप उस बस्ती के लोगों से पूछ लीजिए जहाँ हम थे। उस क़ाफ़िले से मालूम कर लीजिए जिसके साथ हम आए हैं। हम अपने बयान में बिलकुल सच्चे हैं।"

(83) बाप ने यह दास्तान सुनकर कहा, "हक़ीक़त में तुम्हारे नफ़्स (मन) ने तुम्हारे लिए एक और बड़ी बात को आसान बना दिया।[64] अच्छा, इसपर भी सब्र करूँगा और बड़ी अच्छी तरह करूँगा। ना मुमकिन नहीं है कि अल्लाह उन सबको मुझसे ला मिलाए। वह सबकुछ जानता है और उसके सब काम हिकमत से भरे हैं।" (84) फिर वह उनकी तरफ़ से मुँह फेरकर बैठ गया और कहने लगा कि "हाय यूसुफ़!" वह दिल-ही-दिल में ग़म से घुटा जा रहा था और उसकी आँखें सफ़ेद पड़ गई थीं (85) बेटों ने कहा, "अल्लाह की क़सम! आप तो बस यूसुफ़ ही को याद किए जाते हैं। नौबत यह आ गई है कि उसके ग़म में अपने आपको घुला देंगे या अपनी जान हलाक कर डालेंगे।" (86) उसने कहा, "मैं अपनी परेशानी और अपने ग़म की फ़रियाद अल्लाह के सिवा किसी से नहीं करता, और अल्लाह को जैसा मैं जानता हूँ, तुम नहीं जानते। (87) मेरे बच्चो! जाकर यूसुफ़

64. यानी तुम्हारे नज़दीक यह मान लेना बहुत आसान है कि मेरा बेटा, जिसके अच्छे किरदार से मैं अच्छी तरह वाक़िफ़ हूँ, एक प्याले की चोरी का जुर्म कर सकता है। पहले तुम्हारे लिए अपने एक भाई को जान-बूझकर गुम कर देना और उसकी क़मीज़ पर झूठा ख़ून लगाकर ले आना बहुत आसान काम हो गया था। अब एक दूसरे भाई को सचमुच चोर मान लेना और मुझे आकर उसकी ख़बर देना भी वैसा ही आसान हो गया।

وَاَخِيْهِ وَلَا تَايْــَٔسُوْا مِنْ رَّوْحِ اللّٰهِ ؕ اِنَّهٗ لَا يَايْــَٔسُ مِنْ رَّوْحِ اللّٰهِ اِلَّا
الْقَوْمُ الْكٰفِرُوْنَ ۝٨٧ فَلَمَّا دَخَلُوْا عَلَيْهِ قَالُوْا يٰۤاَيُّهَا الْعَزِيْزُ مَسَّنَا
وَاَهْلَنَا الضُّرُّ وَجِئْنَا بِبِضَاعَةٍ مُّزْجٰىةٍ فَاَوْفِ لَنَا الْكَيْلَ وَتَصَدَّقْ
عَلَيْنَا ؕ اِنَّ اللّٰهَ يَجْزِى الْمُتَصَدِّقِيْنَ ۝٨٨ قَالَ هَلْ عَلِمْتُمْ مَّا فَعَلْتُمْ
بِيُوْسُفَ وَاَخِيْهِ اِذْ اَنْتُمْ جٰهِلُوْنَ ۝٨٩ قَالُوْٓا ءَاِنَّكَ لَاَنْتَ يُوْسُفُ ؕ قَالَ
اَنَا يُوْسُفُ وَهٰذَاۤ اَخِيْ ؗ قَدْ مَنَّ اللّٰهُ عَلَيْنَا ؕ اِنَّهٗ مَنْ يَّتَّقِ وَيَصْبِرْ فَاِنَّ
اللّٰهَ لَا يُضِيْعُ اَجْرَ الْمُحْسِنِيْنَ ۝٩٠ قَالُوْا تَاللّٰهِ لَقَدْ اٰثَرَكَ اللّٰهُ عَلَيْنَا

और उसके भाई की कुछ टोह लगाओ, अल्लाह की रहमत से मायूस न हो। उसकी रहमत से तो बस काफ़िर ही मायूस हुआ करते हैं।"

(88) जब ये लोग मिस्र जाकर यूसुफ़ के सामने हाज़िर हुए तो उन्होंने अर्ज़ किया कि "ऐ इक़्तिदारवाले सरदार! हम और हमारे घरवाले बड़ी मुसीबत में मुब्तला हैं और हम कुछ मामूली-सी पूँजी लेकर आए हैं। आप हमें भरपूर अनाज दें और हमें ख़ैरात (दान) दें।[65] अल्लाह ख़ैरात देनेवालों को बदला देता है।" (89) (यह सुनकर यूसुफ़ से न रहा गया) उसने कहा, "तुम्हें कुछ यह भी मालूम है कि तुमने यूसुफ़ और उसके भाई के साथ क्या किया था, जबकि तुम नादान थे?" (90) वे चौंककर बोले, "अरे! क्या तुम यूसुफ़ हो?" उसने कहा, "हाँ, मैं यूसुफ़ हूँ और यह मेरा भाई है। अल्लाह ने हमपर एहसान किया। हक़ीक़त यह है कि अगर कोई परहेज़गारी और सब्र से काम ले तो अल्लाह के यहाँ ऐसे नेक लोगों का बदला मारा नहीं जाता।" (91) उन्होंने कहा, "अल्लाह की क़सम! तुमको अल्लाह ने हमपर बड़ाई दी और हक़ीक़त में हम

---

65. यानी हमारी इस गुज़ारिश पर जो कुछ आप देंगे वह मानो आपका सदक़ा होगा। इस अनाज की क़ीमत में जो पूँजी हम दे रहे हैं वह तो बेशक इस क़ाबिल नहीं है कि हमको उतना अनाज दिया जाए, जो हमारी ज़रूरत को काफ़ी हो।

وَاِنۡ كُنَّا لَخٰطِـِٕيۡنَ ﴿۹۱﴾ قَالَ لَا تَثۡرِيۡبَ عَلَيۡكُمُ الۡيَوۡمَ‌ؕ يَغۡفِرُ اللّٰهُ لَكُمۡ‌ۖ
وَهُوَ اَرۡحَمُ الرّٰحِمِيۡنَ ﴿۹۲﴾ اِذۡهَبُوۡا بِقَمِيۡصِىۡ هٰذَا فَاَلۡقُوۡهُ عَلٰى وَجۡهِ اَبِىۡ
يَاۡتِ بَصِيۡرًا‌ ۚ وَاۡتُوۡنِىۡ بِاَهۡلِكُمۡ اَجۡمَعِيۡنَ ﴿۹۳﴾ وَلَمَّا فَصَلَتِ الۡعِيۡرُ قَالَ ع
اَبُوۡهُمۡ اِنِّىۡ لَاَجِدُ رِيۡحَ يُوۡسُفَ لَوۡلَاۤ اَنۡ تُفَنِّدُوۡنِ ﴿۹۴﴾ قَالُوۡا تَاللّٰهِ اِنَّكَ

ख़ताकर थे।" (92) उसने जवाब दिया, "आज तुमपर कोई पकड़ नहीं। अल्लाह तुम्हें माफ़ करे, वह सबसे बढ़कर रहम करनेवाला है। (93) जाओ, मेरी यह कमीज़ ले जाओ और मेरे बाप के मुँह पर डाल दो। उनकी (आँखों की) रौशनी पलट आएगी और अपने सब घरवालों को मेरे पास ले आओ।"

(94) जब यह क़ाफ़िला (मिस्र से) रवाना हुआ तो उनके बाप ने (कनआन में) कहा, "मैं यूसुफ़ की ख़ुशबू महसूस कर रहा हूँ।[66] तुम लोग कहीं यह न कहने लगो कि मैं बुढ़ापे में सठिया गया हूँ।" (95) घर के लोग बोले, "ख़ुदा की क़सम! आप अभी तक

---

66. इससे नबियों (अलैहि॰) की ग़ैर-मामूली क़ुव्वतों का अन्दाज़ा होता है कि अभी क़ाफ़िला हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) की क़मीज़ लेकर मिस्र से चला है और उधर सैकड़ों मील की दूरी पर हज़रत याक़ूब (अलैहि॰) उसकी महक पा लेते हैं। मगर इसी से यह भी मालूम होता है कि नबियों (अलैहि॰) की ये क़ुव्वतें कुछ उनकी ख़ुद की न थीं, बल्कि अल्लाह की मेहरबानी से उनको मिली थीं और अल्लाह जब और जितना चाहता था उन्हें काम करने का मौक़ा देता था। हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) सालों मिस्र में मौजूद रहे और कभी हज़रत याक़ूब (अलैहि॰) को उनकी ख़ुशबू न आई, मगर अब अचानक महसूस करने की ताक़त की तेज़ी का यह हाल हो गया कि अभी उनकी क़मीज़ मिस्र से चली है और वहाँ उनकी महक आनी शुरू हो गई।

यहाँ यह ज़िक्र भी दिलचस्पी से ख़ाली न होगा कि एक तरफ़ क़ुरआन हज़रत याक़ूब (अलैहि॰) को इस पैग़म्बरी की शान के साथ पेश कर रहा है और दूसरी तरफ़ बनी-इसराईल उनको ऐसे रंग में दिखाते हैं जैसा अरब का हर मामूली बद्दू (देहाती) हो सकता है। बाइबल का बयान है कि जब बेटों ने आकर ख़बर दी कि "यूसुफ़ अब तक ज़िन्दा है और वही सारे मिस्र देश का हाकिम है तो याक़ूब का दिल धक से रह गया; क्योंकि उसने उनका यक़ीन न किया...... और जब उनके बाप याक़ूब ने वे गाड़ियाँ देख लीं जो यूसुफ़ ने उनको लाने के लिए भेजी थीं तब उसकी जान में जान आई।" (उत्पत्ति, 45:26, 27)

لَفِیۡ ضَلٰلِكَ الۡقَدِیۡمِ ﴿۹۵﴾ فَلَمَّاۤ اَنۡ جَآءَ الۡبَشِیۡرُ اَلۡقٰىهُ عَلٰى وَجۡهِهٖ فَارۡتَدَّ
بَصِیۡرًا ۚ قَالَ اَلَمۡ اَقُلۡ لَّكُمۡ ۚۙ اِنِّیۡۤ اَعۡلَمُ مِنَ اللّٰهِ مَا لَا تَعۡلَمُوۡنَ ﴿۹۶﴾
قَالُوۡا یٰۤاَبَانَا اسۡتَغۡفِرۡ لَنَا ذُنُوۡبَنَاۤ اِنَّا كُنَّا خٰطِـِٕیۡنَ ﴿۹۷﴾ قَالَ سَوۡفَ
اَسۡتَغۡفِرُ لَكُمۡ رَبِّیۡ ؕ اِنَّهٗ هُوَ الۡغَفُوۡرُ الرَّحِیۡمُ ﴿۹۸﴾ فَلَمَّا دَخَلُوۡا عَلٰى
یُوۡسُفَ اٰوٰۤى اِلَیۡهِ اَبَوَیۡهِ وَقَالَ ادۡخُلُوۡا مِصۡرَ اِنۡ شَآءَ اللّٰهُ اٰمِنِیۡنَ ﴿ؕ۹۹﴾

अपने उसी पुराने ‘ख़ब्त’ में पड़े हुए हैं।”[67]

(96) फिर जब ख़ुशख़बरी लानेवाला आया तो उसने यूसुफ़ की क़मीज़ याक़ूब के मुँह पर डाल दी और यकायक उसकी आँखों की रौशनी लौट आई। तब उसने कहा, “मैं तुमसे कहता न था? मैं अल्लाह की तरफ़ से वह कुछ जानता हूँ जो तुम नहीं जानते।” (97) सब बोल उठे, “अब्बाजान! आप हमारे गुनाहों की बख़्शिश के लिए दुआ करें, सच में हम ख़ताकार थे।” (98) उसने कहा, “मैं अपने रब से तुम्हारे लिए माफ़ी की दरख़्वास्त करूँगा। वह बड़ा माफ़ करनेवाला और रहम करनेवाला है।”

(99) फिर जब ये लोग यूसुफ़ के पास पहुँचे[68] तो उसने अपने माँ-बाप को अपने साथ बिठा लिया[69] और (अपने सब कुन्बेवालों से) कहा, “चलो, अब शहर में चलो, अल्लाह ने चाहा तो अम्न-चैन से रहोगे।”

---

67. इससे मालूम होता है कि पूरे ख़ानदान में हज़रत यूसुफ़ (अलैहि.) के सिवा कोई अपने बाप की अहमियत व क़द्र न जानता था और हज़रत याक़ूब ख़ुद भी उन लोगों की ज़ेहनी और अख़लाक़ी गिरावट से मायूस थे। घर के चिराग़ की रौशनी बाहर फैल रही थी, मगर ख़ुद घरवाले अंधेरे में थे और उनकी निगाह में वह एक ठीकरे से ज़्यादा कुछ न था। फ़ितरत की इस नाइनसाफ़ी का सामना इतिहास की बहुत-सी शख़्सियतों को करना पड़ा है।

68. बाइबल का बयान है कि ख़ानदान के सारे लोग जो इस मौक़े पर मिस्र गए, 67 थे। इस तादाद में दूसरे घरानों की उन लड़कियों को नहीं गिना गया है जो हज़रत याक़ूब (अलैहि.) के यहाँ ब्याह कर आई थीं। उस वक़्त हज़रत याक़ूब (अलैहि.) की उम्र 130 साल थी और इसके बाद वे मिस्र में 17 साल ज़िन्दा रहे।

इस मौक़े पर एक जाननेवाले के ज़ेहन में यह सवाल पैदा होता है कि बनी-इसराईल जब मिस्र में दाख़िल हुए तो हज़रत यूसुफ़ (अलैहि.) समेत उनकी तादाद 68 थी, और जब लगभग 500

साल बाद वे मिस्र से निकले तो वे लाखों की तादाद में थे। बाइबल की रिवायत है कि मिस्र से निकलने के बाद दूसरे साल सीना के रेगिस्तान में हज़रत मूसा (अलैहि॰) ने उनकी जो गिनती कराई थी उसमें सिर्फ़ जंग के क़ाबिल मर्दों की तादाद 6,03,550 थी। इसका मतलब यह है कि औरतें, मर्द, बच्चे सब मिलाकर वे कम-से-कम 20 लाख होंगे। क्या किसी हिसाब से 500 सालों में 68 आदमियों की इतनी औलाद हो सकती है? मिस्र की कुल आबादी अगर उस ज़माने में 2 करोड़ मान ली जाए (जो यक़ीनन बहुत बढ़ा-चढ़ाकर लगाया गया अन्दाज़ होगा) तो इसके मानी ये हैं कि सिर्फ़ बनी-इसराईल वहाँ 10 फ़ीसद थे। क्या एक ख़ानदान सिर्फ़ नस्ल के ज़रिए से इतना बढ़ सकता है? इस सवाल पर ग़ौर करने से एक अहम हक़ीक़त सामने आती है। ज़ाहिर बात है कि 500 साल में एक ख़ानदान तो इतना नहीं बढ़ सकता। लेकिन बनी-इसराईल पैग़म्बरों की औलाद थे, उनके लीडर हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰), जिनकी बदौलत मिस्र में उनके क़दम जमे, ख़ुद पैग़म्बर थे। उनके बाद 4-5 सदी तक देश की हुकूमत उन्हीं लोगों के हाथ में रही। इस दौरान में यक़ीनन उन्होंने मिस्र में इस्लाम की ख़ूब तबलीग़ की होगी। मिस्रवालों में से जो-जो लोग इस्लाम लाए होंगे उनका मज़हब ही नहीं, बल्कि उनका रहन-सहन और ज़िन्दगी का पूरा ढंग ग़ैर-मुस्लिम मिस्रवालों से अलग और बनी-इसराईल के जैसा हो गया होगा। मिस्रवालों ने इन सबको उसी तरह अजनबी ठहराया होगा जिस तरह भारत में हिन्दुओं ने भारतीय मुसलमानों को ठहराया, उनके ऊपर इसराईली का लफ़्ज़ उसी तरह चस्पाँ कर दिया गया होगा जिस तरह ग़ैर-अरब मुसलमानों पर "मुहम्मडन" का लफ़्ज़ आज भी चस्पाँ किया जाता है और वे ख़ुद भी दीनी व तहज़ीबी राब्तों और शादी-ब्याह के ताल्लुक़ात की वजह से ग़ैर-मुस्लिम मिस्रियों से अलग और बनी-इसराईल से जुड़कर रह गए होंगे। यही वजह है कि जब मिस्र में क़ौमपरस्ती का तूफ़ान उठा तो ज़ुल्म सिर्फ़ बनी-इसराईल ही पर नहीं हुए, बल्कि मिस्री मुसलमान भी उनके साथ समान रूप से लपेट लिए गए और जब बनी-इसराईल ने देश छोड़ा तो मिस्री मुसलमान भी उनके साथ ही निकले और उन सबकी गिनती इसराईलियों ही में होने लगी।

हमारे इस अन्दाज़े की ताईद बाइबल के बहुत-से इशारों से होती है। मिसाल के तौर पर 'निर्गमन' में जहाँ बनी-इसराईल के मिस्र से निकलने का हाल बयान हुआ है, बाइबल का लेखक कहता है कि "उनके साथ एक मिला-जुला समूह भी गया।" (12:38) इसी तरह 'गिनती' में वह फिर कहता है कि "जो मिली-जुली भीड़ उन लोगों में थी वह तरह-तरह के लालच करने लगी।" (11:4) फिर धीरे-धीरे इन ग़ैर-इसराईली मुसलमानों के लिए 'अजनबी' और 'परदेसी' के अलफ़ाज़ इस्तेमाल होने लगे। चुनाँचे तौरात में हज़रत मूसा (अलैहि॰) को जो हुक्म दिए गए उनमें हमको यह बात साफ़ तौर से मिलती है :

"तुम्हारे लिए और उस परदेसी के लिए जो तुममें रहता है नस्ल-दर-नस्ल सदा एक ही संविधान रहेगा। ख़ुदावंद के आगे परदेसी भी वैसे ही हों जैसे तुम हो। तुम्हारे लिए और परदेसियों के लिए जो तुम्हारे साथ रहते हैं एक ही मज़हब और एक ही क़ानून हो।" (गिनती, 15:15, 16)

"जो शख़्स बेख़ौफ़ होकर गुनाह करे चाहे वह देसी हो या परदेसी वह ख़ुदावन्द की बेइज़्ज़ती करता है वह शख़्स अपने लोगों में से काट डाला जाएगा।"(गिनती 15:30)

"चाहे भाई-भाई का मामला हो या परदेसी का, तुम उनका फ़ैसला इनसाफ़ के साथ करना। (इस्तिस्ना, 1:16)

وَرَفَعَ اَبَوَيْهِ عَلَى الْعَرْشِ وَخَرُّوْا لَهٗ سُجَّدًا ۚ وَقَالَ يٰۤاَبَتِ هٰذَا تَاْوِيْلُ
رُءْيَايَ مِنْ قَبْلُ ۫ قَدْ جَعَلَهَا رَبِّيْ حَقًّا ؕ وَقَدْ اَحْسَنَ بِيْۤ اِذْ اَخْرَجَنِيْ مِنَ

(100) (शहर में दाख़िल होने के बाद) उसने अपने माँ-बाप को उठाकर अपने पास तख़्त पर बिठाया और सब उसके आगे बेइख़्तियार सजदे में झुक गए।"[70] यूसुफ़ ने कहा, "अब्बाजान! यह ताबीर (मतलब) है मेरे उस ख़ाब की जो मैंने पहले देखा था। मेरे रब ने उसे हक़ीक़त बना दिया। उसका एहसान है कि उसने मुझे जेल से निकाला और आप

अब यह तहक़ीक़ करना मुश्किल है कि अल्लाह की किताब में ग़ैर-इसराईलियों के लिए वह अस्ल लफ़्ज़ क्या इस्तेमाल किया गया था जिसे तर्जमा करनेवालों ने 'परदेसी' बनाकर रख दिया।

69. तलमूद में लिखा है कि जब हज़रत याक़ूब (अलैहि॰) के आने की ख़बर राजधानी में पहुँची तो हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) हुकूमत के बड़े-बड़े हैसियत और मनसबवाले लोगों और फ़ौज को लेकर उनके इस्तिक़बाल के लिए निकले और पूरी इज़्ज़त और शान-शौकत के साथ उनको शहर में लाए। वह दिन वहाँ जश्न का दिन था। औरत, मर्द, बच्चे सब इस जुलूस को देखने के लिए इकट्ठे हो गए थे और सारे देश में ख़ुशी की लहर दौड़ गई थी।

70. इस लफ़्ज़ 'सजदा' से बहुत-से लोगों को ग़लतफ़हमी हुई है। यहाँ तक कि एक गरोह ने तो इसको दलील बनाकर बादशाहों और पीरों के लिए एहतिराम और इस्तिक़बाल वाले सजदे को जाइज़ कहा है। दूसरे लोगों को इसकी बुराई से बचने के लिए इसकी यह वजह बयान करनी पड़ी कि पहले की शरीअतों में सिर्फ़ इबादत का सजदा अल्लाह के सिवा दूसरों के लिए हराम था, बाक़ी रहा वह सजदा जो इबादत के जज़्बे से ख़ाली हो तो वह ख़ुदा के अलावा दूसरों को भी किया जा सकता था, अलबत्ता मुहम्मदी शरीअत में हर तरह का सजदा अल्लाह के सिवा दूसरों के लिए हराम कर दिया गया। लेकिन सारी ग़लतफ़हमियाँ अस्ल में इस वजह से पैदा हुई हैं कि लफ़्ज़ 'सजदा' को मौजूदा इस्लामी ज़बान का हममानी समझ लिया गया, यानी हाथ, घुटने और माथा ज़मीन पर टिकाना। हालाँकि 'सजदा' के अस्ल मानी सिर्फ़ झुकने के हैं और यहाँ यह लफ़्ज़ इसी मानी में इस्तेमाल हुआ है। पुरानी तहज़ीब में यह आम तरीक़ा था (और आज भी कुछ देशों में इसका रिवाज है) कि किसी का शुक्रिया अदा करने के लिए, या किसी का इस्तिक़बाल करने के लिए, या सिर्फ़ सलाम करने के लिए सीने पर हाथ रखकर किसी हद तक आगे की तरफ़ झुकते थे। इसी झुकाव के लिए अरबी में 'सुजूद' और अंग्रेज़ी में Bow के अलफ़ाज़ इस्तेमाल किए जाते हैं। बाइबल में इसकी बहुत-सी मिसालें हमको मिलती हैं कि पुराने ज़माने में यह तरीक़ा आदाब में शामिल था। चुनाँचे हज़रत इबराहीम के बारे में एक जगह लिखा है कि उन्होंने अपने ख़ेमे (तंबू) की तरफ़ तीन आदमियों को आते देखा तो वे उनके

इस्तिक़बाल के लिए दौड़े और ज़मीन तक झुके। अरबी बाइबल में इस मौक़े पर जो अलफ़ाज़ इस्तेमाल किए गए हैं वे ये हैं, "फ़लम्मा नज़-र क-ज़ लि-इस्तिक़बालिहिम मिंबाबिल ख़ैमति व स-ज-द इलल-अरज़ि" (तकवीन, 18:23) फिर जिस मौक़े पर यह ज़िक्र आता है कि बनी-हित्त ने हज़रत सारा के दफ़न के लिए क़ब्र की ज़मीन मुफ़्त दी वहाँ उर्दू बाइबल के अलफ़ाज़ ये हैं- "अब्रहाम ने उठकर और बनी-हित्त के आगे, जो उस देश के लोग हैं, आदाब बजा लाकर उनसे यूँ गुफ़्तगू की।" और जब उन लोगों ने क़ब्र की ज़मीन ही नहीं, बल्कि एक पूरा खेत और एक गुफ़ा भेंट में दे दी तब "अब्रहाम उस देश के लोगों के सामने झुका।" मगर अरबी तर्जमे में दोनों मौक़ों पर आदाब बजा लाने और झुकने के लिए "सजदा करने" ही के अलफ़ाज़ इस्तेमाल हुए है : "फ़क़ा-म इबराही-मु ब स-ज-द लिशिअ्बिल-अर्ज़ि लि-बनी-हित्त।" (तकवीन, 33:7) "फ़ स ज-द इबराही-मु इमा-म शिअ्बल-अर्ज़" (23:12) अंग्रेज़ी बाइबल में इन मौक़ों पर जो अलफ़ाज़ आए है। वे ये हैं : Bowed himself toward the ground-Bowed himself to the people of the land and Abraham bowed.

इस मज़मून (विषय) की मिसालें बाइबल में बहुत ज़्यादा मिलती हैं और उनसे साफ़ मालूम हो जाता है कि इस सजदे का मतलब वह है ही नहीं जो अब इस्लामी ज़बान के लफ़्ज़ 'सजदा' से समझा जाता है।

जिन लोगों ने मामले की इस हक़ीक़त को जाने बिना इसका मतलब बयान करते हुए सरसरी तौर पर यह लिख दिया है कि अगली शरीअतों में अल्लाह के सिवा दूसरों को ताज़ीमी सज्दा करना या इस्तिक़बाल और सलाम करने के लिए सजदा करना जाइज़ था, उन्होंने सिर्फ़ एक बेबुनियाद बात कही है। अगर सजदे से मुराद वह चीज़ हो जिसे इस्लामी ज़बान में सजदा कहा जाता है, तो वह ख़ुदा की भेजी हुई किसी शरीअत में कभी अल्लाह के सिवा किसी और के लिए जाइज़ नहीं रहा है। बाइबल में ज़िक्र आता है कि बाबिल की क़ैद के ज़माने में जब अख़्सवीरस बादशाह ने हामान को अपना सबसे बड़ा सरदार बनाया और हुक्म दिया कि सब लोग उसको ताज़ीमी सजदा किया करें तो 'मर्दकी' ने, जो बनी-इसराईल के बुज़ुर्गों में से थे, यह हुक्म मानने से इनकार कर दिया (आस्त्र, 3:1-2) तलमूद में इस वाक़िए का मतलब बयान करते हुए इसकी जो तफ़सील दी है वह पढ़ने के लायक़ है–

"बादशाह के नौकरों ने कहा : आख़िर तू क्यों हामान को सजदा करने से इनकार करता है? हम भी आदमी हैं मगर शाही हुक्म का पालन करते हैं। उसने जवाब दिया, तुम लोग नादान हो। क्या एक मिट जानेवाला इनसान, जो कल मिट्टी में मिल जानेवाला है, इस क़ाबिल हो सकता है कि उसकी बड़ाई मानी जाए? क्या मैं उसको सजदा करूँ जो एक औरत के पेट से पैदा हुआ, कल बच्चा था, आज जवान है, कल बूढ़ा होगा और परसों मर जाएगा? नहीं, मैं तो उस हमेशा रहनेवाले ख़ुदा ही के आगे झुकूँगा जो ज़िन्दा और क़ायम रहनेवाला है.... वह जो कायनात का पैदा करनेवाला और हाकिम है, मैं तो बस उसी को बड़ा समझूँगा और किसी को नहीं।"

यह तक़रीर क़ुरआन उतरने से लगभग एक हज़ार साल पहले एक इसराईली मोमिन की ज़बान से अदा हुई है और इसमें इस ख़्याल का हल्का-सा निशान नहीं पाया जाता कि अल्लाह के सिवा किसी को किसी मानी में भी 'सजदा' करना जाइज़ है।

السِّجۡنِ وَجَآءَ بِکُمۡ مِّنَ الۡبَدۡوِ مِنۡۢ بَعۡدِ اَنۡ نَّزَغَ الشَّیۡطٰنُ بَیۡنِیۡ
وَبَیۡنَ اِخۡوَتِیۡ ؕ اِنَّ رَبِّیۡ لَطِیۡفٌ لِّمَا یَشَآءُ ؕ اِنَّهٗ هُوَ الۡعَلِیۡمُ الۡحَکِیۡمُ ﴿۱۰۰﴾ رَبِّ
قَدۡ اٰتَیۡتَنِیۡ مِنَ الۡمُلۡکِ وَعَلَّمۡتَنِیۡ مِنۡ تَاۡوِیۡلِ الۡاَحَادِیۡثِ ۚ فَاطِرَ
السَّمٰوٰتِ وَالۡاَرۡضِ ۟ اَنۡتَ وَلِیّٖ فِی الدُّنۡیَا وَالۡاٰخِرَةِ ۚ تَوَفَّنِیۡ مُسۡلِمًا
وَّاَلۡحِقۡنِیۡ بِالصّٰلِحِیۡنَ ﴿۱۰۱﴾ ذٰلِکَ مِنۡ اَنۡۢبَآءِ الۡغَیۡبِ نُوۡحِیۡهِ اِلَیۡکَ ۚ وَمَا

लोगों को सेहरा (रेगिस्तान) से लाकर मुझसे मिलाया, हालाँकि शैतान मेरे और मेरे भाइयों के बीच बिगाड़ पैदा कर चुका था। सच तो यह है कि मेरा रब ग़ैर-महसूस तदबीरों से अपनी मरज़ी पूरी करता है। बेशक वह जाननेवाला और हिकमतवाला है। (101) ऐ मेरे रब! तूने मुझे हुकूमत दी और मुझको बातों की तह तक पहुँचना सिखाया। ज़मीन और आसमान के बनानेवाले, तू ही दुनिया और आख़िरत में मेरा सरपरस्त है। मेरा ख़ातिमा इस्लाम पर कर और आख़िरी अंजाम के तौर पर मुझे नेक लोगों के साथ मिला।"[71]

(102) ऐ नबी! यह क़िस्सा ग़ैब (परोक्ष) की ख़बरों में से है जो हम तुमपर वह्य कर

71. ये कुछ जुमले जो इस मौक़े पर हज़रत यूसुफ़ (अलैहि.) की ज़बान से निकले हैं, हमारे सामने एक सच्चे ईमानवाले की सीरत और किरदार का अजीब दिलकश नक़्शा पेश करते हैं। रेगिस्तानी चरवाहों के ख़ानदान का एक आदमी, जिसको ख़ुद उसके भाइयों ने हसद और जलन के मारे मार डालना चाहा था, ज़िन्दगी के उतार-चढ़ाव देखता हुआ आख़िरकार दुनियावी तरक़्क़ी के सबसे बुलंद मक़ाम पर पहुँच गया है। क़हत और सूखे के शिकार उसके ख़ानदानवाले अब उसके मुहताज होकर उसके सामने आए हैं और हसद रखनेवाले उसके भाई भी, जो उसको मार डालना चाहते थे, उसके शाही तख़्त के सामने सिर झुकाए खड़े हैं। यह मौक़ा दुनिया के आम दस्तूर के मुताबिक़ अपनी बड़ाई जताने, डींगे मारने, गिले और शिकवे करने, और बुरा-भला कहने और तानों के तीर बरसाने का था। मगर एक सच्चा ख़ुदापरस्त इनसान इस मौक़े पर कुछ दूसरे ही अख़लाक़ को ज़ाहिर करता है। वह अपनी इस तरक़्क़ी पर घमंड करने के बजाए उस ख़ुदा के एहसान को तस्लीम करता है जिसने उसे यह रुतबा दिया। वह ख़ानदानवालों को उस ज़ुल्म-सितम पर कुछ भी बुरा-भला नहीं कहता जो शुरू की उम्र में उन्होंने उसपर किए थे। इसके बरख़िलाफ़ वह इस बात पर शुक्र अदा करता है कि ख़ुदा ने इतने दिनों की जुदाई के बाद उन लोगों को मुझसे मिलाया। वह हसद रखनेवाले भाइयों के ख़िलाफ़ शिकायत का एक लफ़्ज़ ज़बान से नहीं निकालता। यहाँ तक कि यह भी नहीं कहता कि उन्होंने मेरे साथ बुराई

كُنْتَ لَدَيْهِمْ اِذْ اَجْمَعُوْٓا اَمْرَهُمْ وَهُمْ يَمْكُرُوْنَ ﴿١٠٢﴾ وَمَآ اَكْثَرُ
النَّاسِ وَلَوْ حَرَصْتَ بِمُؤْمِنِيْنَ ﴿١٠٣﴾ وَمَا تَسْـَٔلُهُمْ عَلَيْهِ مِنْ اَجْرٍ ۭ اِنْ

रहे हैं, वरना तुम उस वक़्त मौजूद न थे जब यूसुफ़ के भाइयों ने आपस में एक राय होकर साज़िश की थी। (103) मगर तुम चाहे कितना ही चाहो, इनमें से ज़्यादातर लोग मानकर देनेवाले नहीं हैं।[72] (104) हालाँकि तुम इस ख़िदमत पर उनसे कोई बदला भी

की थी, बल्कि उनकी सफ़ाई ख़ुद ही इस तरह पेश करता है कि शैतान ने मेरे और उनके दरमियान बुराई डाल दी थी। और फिर उस बुराई के भी बुरे पहलू को छोड़कर उसका यह अच्छा पहलू पेश करता है कि ख़ुदा जिस मक़ाम पर मुझे पहुँचाना चाहता था उसके लिए यह अच्छी और ख़ामोश तदबीर उसने की, यानी भाइयों से शैतान ने जो कुछ कराया उसी में अल्लाह की हिकमत के मुताबिक़ मेरे लिए भलाई थी। कुछ अलफ़ाज़ में यह सब कुछ कह जाने के बाद वह बेइख़्तियार अपने ख़ुदा के आगे झुक जाता है, उसका शुक्र अदा करता है कि तूने मुझे बादशाही दी और वे क़ाबिलियतें दीं जिनकी बदौलत मैं जेल में सड़ने के बजाए आज दुनिया की सबसे बड़ी सल्तनत पर हुकूमत कर रहा हूँ। और आख़िर में ख़ुदा से कुछ माँगता है तो यह कि दुनिया में जब तक ज़िन्दा रहूँ तेरी बन्दगी और ग़ुलामी पर जमा रहूँ और जब इस दुनिया से जाऊँ तो मुझे नेक बन्दों के साथ मिला दिया जाए। कितना बुलन्द और कितना पाकीज़ा है यह सीरत और किरदार का नमूना!

हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) की इस क़ीमती तक़रीर ने भी बाइबल और तलमूद में कोई जगह नहीं पाई है। हैरत है कि ये किताबें क़िस्सों की ग़ैर-ज़रूरी तफ़सीलों से तो भरी पड़ी हैं, मगर जो चीज़ें कोई अख़लाक़ी क़द्र-क़ीमत रखती हैं और जिनसे नबियों की असली तालीम और उनके हक़ीक़ी मिशन और उनकी सीरत और ज़िन्दगियों के सबक़आमोज़ पहलुओं पर रौशनी पड़ती है, उनसे इन किताबों का दामन ख़ाली है।

यहाँ यह क़िस्सा ख़त्म हो रहा है इसलिए पढ़नेवालों को फिर इस हक़ीक़त से ख़बरदार कर देना ज़रूरी है कि यूसुफ़ (अलैहि॰) के क़िस्से के बारे में क़ुरआन की यह रिवायत अपनी जगह एक मुस्तक़िल रिवायत है, बाइबल या तलमूद की नक़्ल नहीं है। तीनों किताबों को सामने रखकर देखने से यह बात वाज़ेह हो जाती है कि क़िस्से के कई अहम हिस्सों में क़ुरआन की रिवायत इन दोनों से अलग है। कुछ चीज़ें क़ुरआन उनसे ज़्यादा बयान करता है, कुछ उनसे कम, और कुछ में उनकी बातों को रद्द करता है। इसलिए किसी के लिए यह कहने की गुंजाइश नहीं है कि मुहम्मद (सल्ल॰) ने जो क़िस्सा सुनाया वह बनी-इसराईल से सुन लिया होगा।

72. यानी इन लोगों की हठधर्मी का अजीब हाल है। तुम्हारी नुबूवत और पैग़म्बरी की आज़माइश के लिए बहुत सोच-समझकर और मशवरे करके जो माँग उन्होंने की थी उसे तुमने भरी महफ़िल में फ़ौरन पूरा कर दिया, अब शायद तुमको यह उम्मीद होगी कि इसके बाद तो उन्हें यह मान

ع ۱۱ هُوَ اِلَّا ذِكْرٌ لِّلْعٰلَمِيْنَ ۝ وَكَاَيِّنْ مِّنْ اٰيَةٍ فِى السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ

नहीं माँगते हो। यह तो एक नसीहत है, जो दुनियावालों के लिए आम है।[73]

(105) ज़मीन[74] और आसमानों में कितनी ही निशानियाँ हैं जिनपर से ये लोग

लेने में कोई झिझक न रहेगी कि तुम यह क़ुरआन ख़ुद नहीं गढ़ते हो, बल्कि सचमुच तुमपर वह्य आती है, मगर यक़ीन जानो कि यह अब भी न मानेंगे और अपने इनकार पर जमे रहने के लिए कोई दूसरा बहाना ढूँढ निकालेंगे, क्योंकि उनके मानने की अस्ल वजह यह नहीं है कि इस बात का इत्मीनान हासिल करने के लिए कि तुम अपनी बात में सच्चे हो ये खुले दिल से कोई मुनासिब दलील चाहते थे और वह अभी तक उन्हें नहीं मिली, बल्कि इसकी वजह सिर्फ़ यह है कि तुम्हारी बात ये मानना चाहते नहीं हैं, इसलिए उनको तलाश दरअसल मानने के लिए किसी दलील की नहीं, बल्कि न मानने के लिए किसी बहाने की है —इस बात को कहने का मक़सद नबी (सल्ल॰) की किसी ग़लतफ़हमी को दूर करना नहीं है। हालाँकि यह बात बज़ाहिर आप (सल्ल॰) ही से कही जा रही है, लेकिन इसका अस्ल मक़सद सामनेवाले गरोह को, जिसके सामने यह तक़रीर की जा रही थी, एक बहुत ही लतीफ़ (सूक्ष्म) और असरदार तरीक़े से उसकी हठधर्मी पर ख़बरदार करना है। उन्होंने अपनी महफ़िल में आप (सल्ल॰) को इम्तिहान के लिए बुलाया था और अचानक यह माँग की थी कि अगर तुम नबी हो तो बताओ कि बनी-इसराईल के मिस्र जाने का क़िस्सा क्या है। इसके जवाब में उनको वहीं और उसी वक़्त पूरा क़िस्सा सुना दिया गया, और आख़िर में यह छोटा-सा जुमला कहकर आईना भी उनके सामने रख दिया गया कि हठधर्मो, इसमें अपनी सूरत देख लो, तुम किस मुँह से इम्तिहान लेने बैठे थे? समझदार इनसान अगर इम्तिहान लेते हैं तो इसलिए लेते हैं कि अगर हक़ (सत्य) साबित हो जाए तो उसे मान लें, मगर तुम वे लोग हो जो अपना मुँह माँगा सुबूत मिल जाने पर भी मानकर नहीं देते।

73. ऊपर ख़बरदार किए जाने के बाद यह दूसरी बार पहले से ज़्यादा ग़ैर-महसूस तरीक़े पर ख़बरदार किया गया है जिसमें मलामत का पहलू कम और समझाने-बुझाने का पहलू ज़्यादा है। बात भी बज़ाहिर नबी (सल्ल॰) से कही जा रही है, मगर अस्ल में बात इस्लाम का इनकार करनेवाले गरोह से की जा रही और इसका मक़सद उस गरोह को यह समझाना है कि अल्लाह के बन्दो! ग़ौर करो, तुम्हारी यह हठधर्मी कितनी ज़्यादा नामुनासिब है। अगर पैग़म्बर ने अपने किसी निजी फ़ायदे के लिए दावत व तबलीग़ का यह काम जारी किया होता या उसने अपनी ज़ात के लिए कुछ भी चाहा होता तो बेशक तुम्हारे लिए यह कहने का मौक़ा था कि हम इस मतलबी आदमी की बात क्यों मानें। मगर तुम देख रहे हो कि यह शख़्स बग़ैर किसी लालच और बदले के काम कर रहा है, तुम्हारी और दुनिया भर की भलाई के लिए नसीहत कर रहा है और इसमें उसका अपना कोई फ़ायदा छिपा नहीं है। फिर उसका मुक़ाबला इस हठधर्मी से करने में आख़िर क्या समझदारी है? जो इनसान सबके भले के लिए एक बात बेग़रज़ी के साथ पेश करे उससे किसी को ख़ाह-मख़ाह ज़िद क्यों हो? खुले दिल से उसकी बात सुनो, दिल को लगती हो तो मानो, न लगती हो तो न मानो।

74. ऊपर के ग्यारह रुकूओं (104 आयतों) में हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) का क़िस्सा ख़त्म हो गया।

يَمُرُّوْنَ عَلَيْهَا وَهُمْ عَنْهَا مُعْرِضُوْنَ ﴿١٠٥﴾ وَمَا يُؤْمِنُ اَكْثَرُهُمْ بِاللّٰهِ اِلَّا
وَهُمْ مُّشْرِكُوْنَ ﴿١٠٦﴾ اَفَاَمِنُوْٓا اَنْ تَاْتِيَهُمْ غَاشِيَةٌ مِّنْ عَذَابِ اللّٰهِ اَوْ

गुज़रते रहते हैं और ज़रा ध्यान नहीं देते।[75] (106) इनमें से ज़्यादातर अल्लाह को मानते हैं, मगर इस तरह कि उसके साथ दूसरों को साझीदार ठहराते हैं?[76] (107) "क्या ये मुत्मइन हैं कि अल्लाह के अज़ाब की कोई बला उन्हें दबोच न लेगी या बेख़बरी में

अगर अल्लाह की तरफ़ से उतरनेवाली वह्य का मक़सद सिर्फ़ क़िस्सा सुनाना होता तो इसी जगह तक़रीर ख़त्म हो जानी चाहिए थी। मगर यहाँ तो क़िस्सा किसी मक़सद की ख़ातिर कहा जाता है और इस मक़सद की तबलीग़ के लिए जो मौक़ा भी मिल जाए उससे फ़ायदा उठाने में झिझक नहीं की जाती। अब चूँकि लोगों ने ख़ुद नबी को बुलाया था और क़िस्सा सुनने के लिए कान लगे हुए थे, इसलिए उनके मतलब की बात ख़त्म करते ही कुछ जुमले अपने मतलब के भी कह दिए गए और बहुत ही मुख़्तसर तौर पर इन कुछ जुमलों ही में नसीहत और दावत का सारा मज़मून समेट दिया गया।

75. इससे मक़सद लोगों को उनकी ग़फ़लत पर ख़बरदार करना है। ज़मीन और आसमानों की हर चीज़ अपने आपमें सिर्फ़ एक चीज़ ही नहीं है, बल्कि एक निशानी भी है जो हक़ीक़त की तरफ़ इशारा कर रही है। जो लोग इन चीज़ों को सिर्फ़ चीज़ होने की हैसियत से देखते हैं वे इनसान का-सा देखना नहीं, बल्कि जानवरों का-सा देखना देखते हैं। पेड़ को पेड़ और पहाड़ को पहाड़ और पानी को पानी तो जानवर भी देखता है, और अपनी-अपनी ज़रूरत के लिहाज़ से हर जानवर इन चीज़ों का इस्तेमाल भी जानता है। मगर जिस मक़सद के लिए इनसान को समझ के साथ सोचनेवाला दिमाग़ भी दिया गया है वे सिर्फ़ इसी हद तक नहीं है कि आदमी इन चीज़ों को देखे और इनका इस्तेमाल मालूम करे, बल्कि अस्ल मक़सद यह है कि आदमी हक़ीक़त की खोज करे और इन निशानियों के ज़रिए से उसका सुराग़ लगाए। इसी मामले में ज़्यादातर इनसान लापरवाही बरत रहे हैं और यही लापरवाही है जिसने उनको गुमराही में डाल रखा है। अगर दिलों पर यह ताला न लगा लिया गया होता तो नबियों की बात समझना और उनकी रहनुमाई से फ़ायदा उठाना लोगों के लिए इतना मुश्किल न हो जाता।

76. यह फ़ितरी नतीजा है उस लापरवाही का जिसकी तरफ़ ऊपर के जुमले में इशारा किया गया है। जब लोगों ने रास्ते के निशान से आँखें बन्द कीं तो सीधे रास्ते से हट गए और आसपास की झाड़ियों में फँसकर रह गए। इसपर भी कम इनसान ऐसे हैं जो मंज़िल को बिलकुल ही गुम कर चुके हों और जिन्हें इस बात से बिलकुल इनकार हो कि ख़ुदा उनका पैदा करनेवाला और रोज़ी देनेवाला है। ज़्यादातर इनसान जिस गुमराही में पड़े हैं वह ख़ुदा के इनकार की गुमराही नहीं, बल्कि शिर्क की गुमराही है। यानी वे यह नहीं कहते कि ख़ुदा नहीं है, बल्कि इस ग़लतफ़हमी में मुब्तला हैं कि ख़ुदा का वुजूद और उसकी सिफ़ात, इख़तियारों और हक़्क़ों में दूसरे

تَأْتِيَهُمُ السَّاعَةُ بَغْتَةً وَّهُمْ لَا يَشْعُرُوْنَ ﴿١٠٧﴾ قُلْ هٰذِهٖ سَبِيْلِيْٓ اَدْعُوْٓا
اِلَى اللّٰهِ ۣ عَلٰى بَصِيْرَةٍ اَنَا وَمَنِ اتَّبَعَنِيْ ۭ وَسُبْحٰنَ اللّٰهِ وَمَآ اَنَا مِنَ
الْمُشْرِكِيْنَ ﴿١٠٨﴾ وَمَآ اَرْسَلْنَا مِنْ قَبْلِكَ اِلَّا رِجَالًا نُّوْحِيْٓ اِلَيْهِمْ مِّنْ

क़ियामत की घड़ी अचानक उनपर न आ जाएगी?"[77] (108) तुम इनसे साफ़ कह दो कि "मेरा रास्ता तो यह है, मैं अल्लाह की तरफ़ बुलाता हूँ, मैं ख़ुद भी पूरी रौशनी में अपना रास्ता देख रहा हूँ और मेरे साथी भी, और अल्लाह पाक है[78] और शिर्क करनेवालों से मेरा कोई वास्ता नहीं।"

(109) ऐ नबी! तुमसे पहले हमने जो पैग़म्बर भेजे थे वे सब भी इनसान ही थे और उन्हीं बस्तियों के रहनेवालों में से थे, और उन्हीं की तरफ़ हम वह्य भेजते रहे हैं। फिर

भी किसी-न-किसी तरह शरीक हैं। यह ग़लतफ़हमी हरगिज़ न पैदा होती, अगर ज़मीन और आसमानों की उन निशानियों को सबक़ लेनेवाली नज़र से देखा जाता जो हर जगह और हर वक़्त ख़ुदा के एक होने का पता दे रही हैं।

77. इसका मक़सद लोगों को चौंकाना है कि ज़िन्दगी की मुहलत को लम्बा समझकर और हाल के अम्न व सुकून को हमेशा रहनेवाला समझकर अंजाम की फ़िक्र को किसी आनेवाले वक़्त पर न टालो। किसी इनसान के पास भी इस बात के लिए कोई ज़मानत नहीं है कि उसकी ज़िन्दगी की मुहलत फ़ुलाँ वक़्त यक़ीनन बाक़ी रहेगी। कोई नहीं जानता कि कब अचानक उसकी गिरफ़्तारी हो जाती है और कहाँ से किस हाल में वह पकड़ बुलाया जाता है। तुम्हारा रात-दिन का तजरिबा है कि मुस्तक़बिल का पर्दा एक लम्हा पहले भी ख़बर नहीं देता कि उसके अन्दर तुम्हारे लिए क्या छिपा हुआ है। इसलिए कुछ फ़िक्र करनी है तो अभी कर लो। ज़िन्दगी के जिस रास्ते पर चले जा रह हो उसमें आगे बढ़ने से पहले ज़रा ठहरकर सोच लो कि क्या यह रास्ता ठीक है? इसके दुरुस्त होने के लिए कोई हक़ीक़ी दलील मौजूद है? इसके सीधा रास्ता होने की कोई दलील कायनात की निशानियों से मिल रही है? इसपर चलने के जो नतीज़े तुमसे पहले के लोग देख चुके हैं और जो नतीजे अब तुम्हारे समाज में ज़ाहिर हो रहे हैं वे इसी बात का पता देते हैं कि तुम ठीक जा रहे हो?

78. यानी उन बातों से पाक जो उससे जोड़ी जा रही हैं। उन कमियों और कमज़ोरियों से पाक जो हर शिर्कवाले अक़ीदे की बिना पर लाज़िमी तौर पर उससे जुड़ जाती हैं। उन ऐबों, ख़ताओं और बुराइयों से पाक जिनका उससे जोड़े जाने का मतलब शिर्क का अक़्ली नतीजा है।

اَهْلِ الْقُرٰى ؕ اَفَلَمْ يَسِيْرُوْا فِي الْاَرْضِ فَيَنْظُرُوْا كَيْفَ كَانَ عَاقِبَةُ
الَّذِيْنَ مِنْ قَبْلِهِمْ ؕ وَلَدَارُ الْاٰخِرَةِ خَيْرٌ لِّلَّذِيْنَ اتَّقَوْا ؕ اَفَلَا
تَعْقِلُوْنَ ﴿۱۰۹﴾ حَتّٰۤى اِذَا اسْتَيْـَٔسَ الرُّسُلُ وَظَنُّوْۤا اَنَّهُمْ قَدْ كُذِبُوْا

क्या ये लोग ज़मीन में चले-फिरे नहीं हैं कि उन क़ौमों का अंजाम इन्हें नज़र न आया जो इनसे पहले गुज़र चुकी हैं? यक़ीनन आख़िरत का घर उन लोगों के लिए और ज़्यादा बेहतर है जिन्होंने (पैग़म्बरों की बात मानकर) तक़वा (परहेज़गारी) का रास्ता अपनाया। क्या अब भी तुम लोग न समझोगे?[79] (पहले पैग़म्बरों के साथ भी यही होता रहा है कि वे मुद्दतों नसीहत करते रहे और लोगों ने सुनकर न दिया) (110) यहाँ तक कि जब पैग़म्बर लोगों से मायूस हो गए और लोगों ने भी समझ लिया कि उनसे झूठ बोला गया

79. यहाँ एक बहुत बड़े मज़मून को दो तीन जुमलों में समेट दिया गया है। इसको अगर किसी तफ़सीली इबारत में बयान किया जाए तो यूँ कहा जा सकता है, "ये लोग तुम्हारी बात की तरफ़ इसलिए ध्यान नहीं देते कि जो शख़्स कल उनके शहर में पैदा हुआ और उन्हीं के दरमियान बच्चे से जवान और जवान से बूढ़ा हुआ उसके बारे में यह कैसे मान लें कि अचानक एक दिन ख़ुदा ने उसे अपना नुमाइन्दा मुक़र्रर कर दिया। लेकिन यह कोई अनोखी बात नहीं है, जिससे आज दुनिया में पहली बार उन्हीं को सामना करना पड़ा हो। इससे पहले भी ख़ुदा अपने नबी भेज चुका है और वे सब भी इनसान ही थे। फिर यह भी कभी नहीं हुआ कि अचानक एक अजनबी शख़्स किसी शहर में निकल आया हो और उसने कहा हो कि मैं पैग़म्बर बनाकर भेजा गया हूँ, बल्कि जो लोग भी इनसानों की इस्लाह के लिए उठाए गए वे सब उनकी अपनी ही बस्तियों के रहनेवाले थे। मसीह, मूसा, इबराहीम, नूह (अलैहिमुस्सलाम) आख़िर कौन थे? अब तुम ख़ुद ही देख लो कि जिन क़ौमों ने इन लोगों की इस्लाह और सुधार की दावत को क़बूल न किया और अपने बेबुनियाद ख़यालात और बेलगाम ख़ाहिशों के पीछ चलते रहे उनका अंजाम क्या हुआ। तुम ख़ुद अपने करोबारी सफ़र में आद, समूद, मदयन और क़ौमे-लूत वग़ैरा के तबाह हो चुके इलाक़ों से गुज़रते रहे हो। क्या वहाँ कोई सबक़ तुम्हें नहीं मिला? यह अंजाम जो उन्होंने दुनिया में देखा, यही तो ख़बर दे रहा है कि आख़िरत में वे इससे बुरा अंजाम देखेंगे और यह कि जिन लोगों ने दुनिया में अपना सुधार कर लिया वे सिर्फ़ दुनिया ही में अच्छे न रहे, आख़िरत में उनका अंजाम इससे भी ज़्यादा अच्छा होगा।"

جَآءَهُمْ نَصْرُنَا ۙ فَنُجِّيَ مَنْ نَّشَآءُ ؕ وَلَا يُرَدُّ بَاْسُنَا عَنِ الْقَوْمِ
الْمُجْرِمِيْنَ ﴿١١٠﴾ لَقَدْ كَانَ فِيْ قَصَصِهِمْ عِبْرَةٌ لِّاُولِي الْاَلْبَابِ ؕ مَا كَانَ
حَدِيْثًا يُّفْتَرٰى وَلٰكِنْ تَصْدِيْقَ الَّذِيْ بَيْنَ يَدَيْهِ وَتَفْصِيْلَ كُلِّ شَيْءٍ
وَّهُدًى وَّرَحْمَةً لِّقَوْمٍ يُّؤْمِنُوْنَ ﴿١١١﴾ ع

था, तो यकायक हमारी मदद पैग़म्बरों को पहुँच गई। फिर जब ऐसा मौक़ा आ जाता है तो हमारा दस्तूर यह है कि जिसे हम चाहते हैं बचा लेते हैं, और मुजरिमों पर से तो हमारा अज़ाब टाला ही नहीं जा सकता।

(111) अगले लोगों के इन क़िस्सों में अक़्ल और होश रखनेवालों के लिए इबरत है। यह जो कुछ क़ुरआन में बयान किया जा रहा है, ये बनावटी बातें नहीं हैं, बल्कि जो किताबें इससे पहले आई हुई हैं उन्हीं की तसदीक़ (पुष्टि) है और हर चीज़ की तफ़सील[80] और ईमान लानेवालों के लिए हिदायत और रहमत।

---

80. यानी हर उस चीज़ की तफ़सील जो इनसान की हिदायत और रहनुमाई के लिए ज़रूरी है। कुछ लोग “हर चीज़ की तफ़सील” से मुराद ख़ाह-मख़ाह दुनिया भर की चीज़ों की तफ़सील ले लेते हैं और फिर उनको इस परेशानी का सामना करना पड़ता है कि क़ुरआन में जंगलों और दवा-इलाज और हिसाब और दूसरे इल्म और फ़न के बारे में कोई तफ़सील नहीं मिलती।

☆☆☆

13. अर-रअ़्द

परिचय

नाम

आयत 13 के जुमले 'व युसब्बिहुर-रअ-दु बिहमदिही वल-मलाइ-कतु मिन ख़ीफ़तिही' के लफ़्ज 'अर-रअ़्द' (बादल की गरज) को इस सूरा का नाम क़रार दिया गया है। इस नाम का यह मतलब नहीं है कि इस सूरा में बादल की गरज के सिलसिले में बहस की गई है, बल्कि यह सिर्फ़ अलामत के तौर पर यह ज़ाहिर करता है कि यह वह सूरा है जिसमें लफ़्ज 'अर-रअ़्द' आया है या जिसमें रअ़्द का ज़िक्र हुआ है।

उतरने का ज़माना

आयत 27 से 31 और आयत 38 से 43 तक के मज़ामीन (विषय) गवाही देते हैं कि यह सूरा भी उसी दौर की है जिसमें सूरा-10 यूनुस; सूरा-11 हूद और सूरा-7 आराफ़ उतरी हैं, यानी नबी (सल्ल॰) के मक्का में क़ियाम के ज़माने का आख़िरी दौर। अन्दाज़े-बयान से साफ़ ज़ाहिर हो रहा है कि नबी (सल्ल॰) को इस्लाम की दावत देते हुए एक लम्बी मुद्दत बीत चुकी है, मुख़ालिफ़ लोग आप (सल्ल॰) को शिकस्त देने और आप (सल्ल॰) के मिशन को नाकाम करने के लिए तरह-तरह की चालें चलते रहे हैं। ईमानवाले बार-बार तमन्नाएँ कर रहे हैं कि काश कोई मोजिज़ा दिखाकर ही इन लोगों को सीधे रास्ते पर लाया जाए और अल्लाह मुसलमानों को समझा रहा है कि ईमान की राह दिखाने का यह तरीक़ा हमारे यहाँ राइज (प्रचलित) नहीं है और अगर हक़ के दुश्मनों की रस्सी लम्बी की जा रही है तो यह ऐसी बात नहीं है जिससे तुम घबरा उठो। फिर आयत-31 से यह भी मालूम होता है कि बार-बार इस्लाम दुश्मनों की हठधर्मी का ऐसा मुज़ाहिरा हो चुका है जिसके बाद यह कहना बिलकुल सही मालूम होता है कि अगर क़ब्रों से मुर्दे भी उठकर आ जाएँ तो ये लोग न मानेंगे, बल्कि इस वाक़िए का भी कोई-न-कोई मतलब निकाल लेंगे। इन सब बातों से यही गुमान होता है कि यह सूरा मक्का के आख़िरी दौर में उतरी होगी।

मर्कज़ी मज़मून (केन्द्रीय विषय)

सूरा का मक़सद पहली ही आयत में पेश कर दिया गया है, यानी यह कि जो कुछ मुहम्मद (सल्ल॰) पेश कर रहे हैं, वही हक़ है, मगर यह लोगों की ग़लती है कि वे इसे नहीं मानते। सारी तक़रीर इसी मर्कज़ी मज़मून (केन्द्रीय विषय) के आसपास घूमती है। इस सिलसिले में बार-बार अलग-अलग तरीक़ों से तौहीद, आख़िरत और रिसालत का हक़ होना साबित किया गया है। उनपर ईमान लाने के अख़लाक़ी और रूहानी फ़ायदे समझाए गए हैं, उनको न मानने के नुक़सान बताए गए हैं और यह बात मन में बिठाने की कोशिश की गई है कि कुफ़्र पूरी तरह से एक बेवक़ूफ़ी और जहालत है। फिर चूँकि इस सारे बयान का मक़सद सिर्फ़ दिमाग़ों को मुत्मइन करना ही नहीं है, दिलों को ईमान की तरफ़ खींचना भी है, इसलिए निरी अक़्ली दलीलों से काम नहीं लिया गया है, बल्कि एक-एक दलील और एक-एक गवाही को पेश करने के बाद ठहरकर तरह-तरह से डराया, धमकाया, उकसाया और प्यार से समझाया गया है, ताकि नासमझ लोग अपनी गुमराही भरी हठधर्मी से बाज़ आ जाएँ।

तक़रीर के बीच में जगह-जगह इस्लाम-मुख़ालिफ़ों के एतिराज़ों का ज़िक्र किए बिना उनके जवाब दिए गए हैं और उन शक और शुबहों को दूर किया गया है जो मुहम्मद (सल्ल॰) की दावत के बारे में लोगों के दिलों में पाए जाते थे, या इस्लाम-मुख़ालिफ़ों की तरफ़ से डाले जाते थे। इसके साथ ईमानवालों को भी जो कई साल की लम्बी और सख़्त जिद्दुजुहद की वजह से थके जा रहे थे और बेचैनी के साथ ग़ैबी मदद के इन्तिज़ार में थे, तसल्ली दी गई है।

☆☆☆

آیاتها ۴۳ ۱۳ سُورَةُ الرَّعْدِ مَدَنِيَّةٌ ۹۶ رکوعاتها ۶

بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ ○

الٓمّٓرٰ ۚ تِلْكَ اٰيٰتُ الْكِتٰبِ ؕ وَالَّذِيْٓ اُنْزِلَ اِلَيْكَ مِنْ رَّبِّكَ الْحَقُّ وَلٰكِنَّ
اَكْثَرَ النَّاسِ لَا يُؤْمِنُوْنَ ① اَللّٰهُ الَّذِيْ رَفَعَ السَّمٰوٰتِ بِغَيْرِ عَمَدٍ

13. अर-रअ़द

(मक्का में उतरी—आयतें 43)

अल्लाह के नाम से जो बहुत मेहरबान और रहम करनेवाला है।

(1) अलिफ़-लाम-मीम-रा। ये अल्लाह की किताब की आयतें हैं, और जो कुछ तुम्हारे रब की तरफ़ से तुमपर उतारा गया है वह बिलकुल हक़ है, मगर (तुम्हारी क़ौम के) ज़्यादातर लोग मान नहीं रहे हैं।[1]

(2) वह अल्लाह ही है जिसने आसमानों को ऐसे सहारों के बिना क़ायम किया जो

1. यह इस सूरा के बारे में इब्तिदाई ज़रूरी बात है जिसमें इस सूरा में बयान की गई बातों के मक़सद को कुछ लफ़्ज़ों में बयान कर दिया गया है। बात का रुख़ नबी (सल्ल0) की तरफ़ है और आप (सल्ल.) को ख़िताब करते हुए अल्लाह तआला फ़रमाता है कि ऐ नबी, तुम्हारी क़ौम के ज़्यादातर लोग इस तालीम को मानने से इनकार कर रहे हैं, मगर हक़ीक़त यह है कि इसे हमने तुमपर उतारा है और यही हक़ है, चाहे लोग इसे मानें या न मानें। इस मुख़्तसर सी इब्तिदाई ज़रूरी बात के बाद अस्ल तक़रीर शुरू हो जाती है जिसमें इनकारियों को यह समझाने की कोशिश की गई है कि यह तालीम क्यों हक़ है और इसके बार में उनका रवैया कितना ज़्यादा ग़लत है। इस तक़रीर को समझने के लिए शुरू ही से यह बात सामने रहनी ज़रूरी है कि नबी (सल्ल.) उस वक़्त जिस चीज़ की तरफ़ लोगों को बुला रहे थे उसमें तीन बुनियादी बातें थीं। एक यह कि ख़ुदाई पूरी की पूरी अल्लाह की है, इसलिए उसके सिवा कोई बन्दगी और इबादत का हक़दार नहीं है। दूसरी यह कि इस ज़िन्दगी के बाद एक दूसरी ज़िन्दगी है जिसमें तुमको अपने कामों का जवाब देना होगा। तीसरी यह कि मैं अल्लाह का रसूल हूँ और जो कुछ पेश कर रहा हूँ अपनी तरफ़ से नहीं, बल्कि ख़ुदा की तरफ़ से पेश कर रहा हूँ। यही तीन बातें हैं जिन्हें मानने से लोग इनकार कर रहे थे। इन्हीं को इस तक़रीर में बार-बार अलग-अलग ढंग से समझाने की कोशिश की गई है और इन्हीं के बारे में लोगों के शकों और एतिराज़ों को दूर किया गया है।

تَرَوْنَهَا ثُمَّ اسْتَوٰى عَلَى الْعَرْشِ وَسَخَّرَ الشَّمْسَ وَالْقَمَرَ ؕ كُلٌّ يَّجْرِىْ

तुम्हें नज़र आते हों[2], फिर वह अपने तख़्ते-सल्तनत (राजसिंहासन) पर विराजमान हुआ[3], और उसने सूरज और चाँद को एक क़ानून का पाबन्द बनाया।[4] इस सारे निज़ाम की हर

2. दूसरे लफ़्ज़ों में आसमानों को महसूस न होने और दिखाई न देनेवाले सहारों पर क़ायम किया। बज़ाहिर कोई चीज़ इस फैली हुई फ़िज़ा (वायुमण्डल) में ऐसी नहीं है जो इन अनगिनत अजरामे फ़लकी (ग्रहों, उपग्रहों और नक्षत्रों) को थामे हुए हो। मगर एक महसूस न होनेवाली ताक़त ऐसी है जो हर एक को उसके मक़ाम और मदार (धुरी) पर रोके हुए है और इन अज़ीमुश्शान अजसाम (विशाल ग्रहों) को ज़मीन पर या एक-दूसरे पर गिरने नहीं देती।
3. इसकी तशरीह (व्याख्या) के लिए देखें— सूरा-7 आराफ़, हाशिया नंबर 41। मुख़्तसर तौर पर इतना इशारा काफ़ी है कि अर्श (यानी कायनात की सल्तनत के केन्द्र) पर अल्लाह के विराजमान होने को जगह-जगह क़ुरआन में जिस मक़सद के लिए बयान किया गया है वह यह है कि अल्लाह ने इस कायनात को सिर्फ़ पैदा ही नहीं कर दिया है, बल्कि वह आप ही इस सल्तनत पर हुकूमत कर रहा है। यह दुनिया जो चली आ रही है और चली जा रही है कोई ख़ुद बख़ुद चलनेवाला कारख़ाना नहीं है, जैसा कि बहुत-से जाहिल समझते हैं, और न बहुत-से ख़ुदाओं की सल्तनत है, जैसा कि बहुत-से दूसरे जाहिल लोग समझे बैठे हैं, बल्कि यह एक बाक़ायदा निज़ाम है जिसे इसका पैदा करनेवाला ख़ुद चला रहा है।
4. यहाँ इस बात का ख़याल रहना चाहिए कि बात उस क़ौम से कही जा रही है जो अल्लाह के वुजूद का इनकार नहीं करती थी, और न इस बात की इनकारी थी कि पैदा करनेवाला अल्लाह है, और न गुमान करती थी कि ये सारे काम जो यहाँ बयान किए जा रहे हैं, अल्लाह के सिवा किसी और के हैं। इसलिए ख़ुद इस बात पर दलील लाने की ज़रूरत न समझी गई कि वाक़ई अल्लाह ही ने आसमानों को क़ायम किया है और उसी ने सूरज और चाँद को एक ज़ाब्ते का पाबन्द बनाया है, बल्कि उन वाक़िआत को, जिन्हें ये लोग ख़ुद ही मानते थे, एक दूसरी बात पर दलील ठहराया गया है, और वह यह कि अल्लाह के सिवा कोई दूसरा इस निज़ामे-कायनात (जगत-व्यवस्था) में इख़्तिदार का मालिक नहीं है जो माबूद ठहराए जाने का हक़दार हो। रहा यह सवाल कि जो शख़्स सिरे से अल्लाह के वुजूद को और इस बात को कि अल्लाह ही दुनिया और आख़िरत का पैदा करनेवाला और चलानेवाला है न मानता हो उसके सामने यह दलील देना कैसे फ़ायदेमन्द हो सकता है? तो इसका जवाब यह है कि अल्लाह तआला मुशरिकों के सामने तौहीद को साबित करने के लिए जो दलीलें देता है वही दलीलें सिरे से ख़ुदा को न माननेवालों के मुक़ाबले में ख़ुदा के वुजूद को साबित करने के लिए भी काफ़ी हैं। तौहीद की सारी दलीलें इस बुनियाद पर क़ायम हैं कि ज़मीन से लेकर आसमानों तक सारी कायनात एक पूरा निज़ाम है और यह पूरा निज़ाम एक ज़बरदस्त क़ानून के तहत चल रहा है जिसमें हर तरफ़ एक हमागीर इख़्तिदार (सर्वव्यापी सत्ता), एक बे-ऐब हिकमत और बे-ख़ता इल्म के आसार दिखाई

لِاَجَلٍ مُّسَمًّى ؕ يُدَبِّرُ الْاَمْرَ يُفَصِّلُ الْاٰيٰتِ لَعَلَّكُمْ بِلِقَآءِ رَبِّكُمْ
تُوْقِنُوْنَ ۝ وَهُوَ الَّذِیْ مَدَّ الْاَرْضَ وَجَعَلَ فِيْهَا رَوَاسِیَ وَاَنْهٰرًا ؕ

चीज़ एक मुक़र्रर वक़्त तक के लिए चल रही है[5], और अल्लाह ही इस सारे काम की तदबीर कर रहा है। वह निशानियाँ खोल-खोलकर बयान करता है[6], शायद कि तुम अपने रब की मुलाक़ात का यक़ीन करो।[7]

(3) और वही है जिसने यह ज़मीन फैला रखी है, उसमें पहाड़ों के खूँटे गाड़ रखे हैं

देते हैं। ये आसार जिस तरह इस बात की दलील बनते हैं कि इस निज़ाम के बहुत-से हाकिम नहीं हैं, इसी तरह इस बात की भी दलील बनते हैं कि इस निज़ाम का एक हाकिम है। इंतिज़ाम का तसव्वुर एक नाज़िम (प्रबंधक) के बग़ैर, क़ानून का तसव्वुर एक हाकिम के बिना, इल्म का तसव्वुर एक आलिम के बिना, और सबसे बढ़कर यह कि पैदा करने का तसव्वुर एक पैदा करनेवाले के बिना सिर्फ़ वही शख़्स कर सकता है जो हठधर्म हो या फिर वह जिसकी अक़्ल मारी गई हो।

5. यानी यह निज़ाम सिर्फ़ इसी बात की गवाही नहीं दे रहा है कि एक हमागीर इक़्तिदार (सर्वव्यापी सत्ता) उसपर हुकूमत कर रही है और एक ज़बरदस्त हिकमत उसमें काम कर रही है, बल्कि उसके तमाम हिस्से और उनमें काम करनेवाली सारी ताक़तें इस बात पर भी गवाह हैं कि इस निज़ाम की कोई चीज़ हमेशा रहनेवाली नहीं है। हर चीज़ के लिए एक वक़्त तय है जिसके पूरा होने तक वह चलती है, और जब उसका वक़्त पूरा हो जाता है तो मिट जाती है। यह हक़ीक़त जिस तरह इस निज़ाम के एक-एक हिस्से के मामले में सही है उसी तरह इस पूरे निज़ाम के बारे में भी सही है। इस कायनात की पूरी बनावट यह बता रही है कि यह हमेशा रहनेवाली नहीं है, इसके लिए भी कोई वक़्त ज़रूर तय है, जब यह ख़त्म हो जाएगी और इसकी जगह कोई दूसरा जहान बनेगा। इसलिए क़ियामत जिसके आने की ख़बर दी गई है उसका आना नामुमकिन नहीं, बल्कि न आना नामुमकिन है।

6. यानी इस बात की निशानियाँ कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) जिन हक़ीक़तों की ख़बर दे रहे हैं वे सचमुच सच्ची हक़ीक़तें हैं। कायनात में हर तरफ़ उनपर गवाही देनेवाले आसार मौजूद हैं। अगर लोग आँखें खोलकर देखें तो उन्हें नज़र आ जाए कि क़ुरआन में जिन-जिन बातों पर ईमान लाने की दावत दी गई है, ज़मीन और आसमान में फ़ैली हुई बेशुमार निशानियाँ उनको सच साबित कर रही हैं।

7. ऊपर कायनात की जिन निशानियों को गवाही में पेश किया गया है उनकी यह गवाही तो बिलकुल खुली हुई और साफ़ है कि इस जहान का पैदा करनेवाला और इसको चलानेवाला एक ही है। लेकिन यह बात कि मौत के बाद दूसरी ज़िन्दगी और अल्लाह की अदालत में इनसान की हाज़िरी और इनाम व सज़ा के बारे में अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने जो ख़बरें दी हैं उनके

وَمِنْ كُلِّ الثَّمَرٰتِ جَعَلَ فِيْهَا زَوْجَيْنِ اثْنَيْنِ يُغْشِي الَّيْلَ النَّهَارَ ۭ
اِنَّ فِيْ ذٰلِكَ لَاٰيٰتٍ لِّقَوْمٍ يَّتَفَكَّرُوْنَ ۝ وَفِي الْاَرْضِ قِطَعٌ مُّتَجٰوِرٰتٌ

और नदियाँ बहा दी हैं। उसी ने हर तरह के फ़लों के जोड़े पैदा किए हैं, और वही दिन पर रात छा देता है।[8] इन सारी चीज़ों में बड़ी निशानियाँ हैं उन लोगों के लिए जो ग़ौर-फ़िक्र से काम लेते हैं।

(4) और देखो, ज़मीन में अलग-अलग ख़ित्ते (भू-भाग) पाए जाते हैं जो एक-दूसर से

सच्ची होने पर भी यही निशानियाँ गवाही देती हैं, ज़रा छिपी हुई-सी है और ज़्यादा ग़ौर करने से समझ में आती है। इसलिए पहली हक़ीक़त पर ख़बरदार करने की ज़रूरत न समझी गई, क्योंकि सुननेवाला सिर्फ़ दलीलों को सुनकर ही समझ सकता है कि इनसे क्या साबित होता है। अलबत्ता दूसरी हक़ीक़त पर ख़ासतौर से ख़बरदार किया गया है कि अपने रब की मुलाक़ात का यक़ीन भी तुमको इन्हीं निशानियों पर ग़ौर करने से हासिल हो सकता है।

ऊपर बयान की गई निशानियों से आख़िरत का सुबूत दो तरह से मिलता है-- एक यह कि जब हम आसमानों की बनावट और सूरज और चाँद के ज़ाब्ते और क़ानून के मुताबिक़ काम करने पर ग़ौर करते हैं तो हमारा दिल यह गवाही देता है कि जिस ख़ुदा ने यह अज़ीमुश्शान अजरामे-फ़लक़ी (आकाशपिंड) पैदा किए हैं, और जिसकी क़ुदरत इतने बड़े-बड़े पिंडों को फ़िज़ा में गर्दिश दे रही है, उसके लिए इनसानों को मौत के बाद दोबारा पैदा कर देना कुछ भी मुश्किल नहीं है।

दूसरे यह कि इसी आसमानी निज़ाम से हमको यह गवाही भी मिलती है कि इसका पैदा करनेवाला इन्तिहाई दर्जे का हिकमतवाला है, और यह बात उसकी हिकमत से बहुत परे मालूम होती है कि वह इनसानों को एक समझ-बूझ रखनेवाली और इख़्तियार और इरादे रखनेवाली मख़लूक़ बनाने के बाद और अपनी ज़मीन की अनगिनत चीज़ों के इस्तेमाल की ताक़त देने के बाद, उसकी ज़िन्दगी के कामों का हिसाब न ले, उसके ज़ालिमों से पूछ-गच्छ और उसके मज़लूमों की फ़रियाद न सुने, उसके नेक लोगों का इनाम और उसके बुरे काम करनेवालों को सज़ा न दे, और उससे कभी यह पूछे ही नहीं कि जो बहुत क़ीमती अमानतें मैंने तेरे सुपुर्द की थीं उनके साथ तूने क्या मामला किया। एक अंधा राजा तो बेशक अपनी सल्तनत के मामले अपने कारिंदों के हवाले करके ग़फ़लत की नींद सो सकता है, लेकिन एक हिकमतवाले और समझ रखनेवाले से इस ग़लती और लापरवाही की उम्मीद नहीं की जा सकती।

इस तरह आसमानों को ग़ौर से देखना हमको न सिर्फ़ आख़िरत के इमकान को क़बूल करने पर आमादा करता है, बल्कि उसके होने का यक़ीन भी दिलाता है।

8. आसमानी चीज़ों (सूरज, चाँद, सितारे वग़ैरा) के बाद ज़मीनी दुनिया की तरफ़ ध्यान दिलाया जाता है और यहाँ भी ख़ुदा की क़ुदरत और हिकमत की निशानियों से इन्हीं दोनों हक़ीक़तों

وَّجَنّٰتٌ مِّنْ اَعْنَابٍ وَّزَرْعٌ وَّنَخِيْلٌ صِنْوَانٌ وَّغَيْرُ صِنْوَانٍ يُّسْقٰى

मिले हुए हैं[9], अंगूर के बाग़ हैं, खेतियाँ हैं, खजूर के पेड़ हैं जिनमें से कुछ इकहरे हैं और

(तौहीद और आख़िरत) पर गवाही दी गई है जिनपर पिछली आयतों में आसमानी दुनिया की निशानियों से गवाही दी गई थी। उन दलीलों का ख़ुलासा यह है:

(1) आसमान की चीज़ों के साथ ज़मीन का ताल्लुक़, ज़मीन के साथ सूरज और चाँद का ताल्लुक़, ज़मीन की अनगिनत मख़्लूक़ात (सृष्टि) की ज़रूरतों से पहाड़ों और नदियों का ताल्लुक़, ये सारी चीज़ें इस बात पर खुली गवाही देती हैं कि इनको न तो अलग-अलग ख़ुदाओं ने बनाया है और न मुख़्तलिफ़ बाइख़्तियार ख़ुदा इनका इन्तिज़ाम कर रहे हैं। अगर ऐसा होता तो इन सब चीज़ों में आपस में इतना तालमेल, इतना ताल्लुक़ न पैदा हो सकता था और न लगातार क़ायम रह सकता था। अलग-अलग ख़ुदाओं के लिए यह कैसे मुमकिन था कि वे मिलकर पूरी कायनात को बनाने और चलाने की ऐसी स्कीम बना लेते जिसकी हर चीज़ ज़मीन से लेकर आसमानों तक एक-दूसरे के साथ जोड़ खाती चली जाए और कभी उनकी मस्लहतों के बीच टकराव न होने पाए।

(2) ज़मीन के इस अज़ीमुश्शान गोले का इस लम्बी-चौड़ी फ़िज़ा में लटके रहना, इसकी सतह पर इतने बड़े-बड़े पहाड़ों का उभरना, इसके सीने पर ऐसी-ऐसी ज़बरदस्त नदियों का जारी होना, इसकी गोद में तरह-तरह के बेहद व बेहिसाब पेड़ों का फलना और लगातार बहुत क़ायदे और पाबंदी के साथ रात और दिन के हैरतअंगेज़ आसार का सामने आना, ये सब चीज़ें उस ख़ुदा की क़ुदरत पर गवाह हैं जिसने उन्हें पैदा किया है। हर चीज़ की ताक़त और क़ुदरत रखनेवाले ख़ुदा के बारे में यह समझना कि वह इनसान को मरने के बाद दोबारा ज़िन्दगी नहीं दे सकता अक़्ल व समझदारी की नहीं, बेवक़ूफ़ी और नासमझी की दलील है।

(3) ज़मीन की बनावट में, उसपर पहाड़ों की पैदाइश में, पहाड़ों से नदियों के बहाव का इन्तिज़ाम करने में, फलों की हर क़िस्म में दो-दो तरह के फल पैदा करने में, और रात के बाद दिन और दिन के बाद रात पाबन्दी के साथ लाने में जो अनगिनत हिकमतें और मस्लहतें पाई जाती हैं वे पुकार-पुकारकर गवाही दे रही हैं कि जिस ख़ुदा ने पैदा करने का यह नक़्शा बनाया है वह इन्तिहाई दर्जे का हिकमतवाला है। ये सारी चीज़ें ख़बर देती हैं कि यह न तो किसी बेइरादा ताक़त का काम है और न यह किसी खिलंडरे का खिलौना। इनमें से हर-हर चीज़ के अन्दर हिकमतवाले की हिकमत और इन्तिहाई आला दर्जे की हिकमत काम करती नज़र आती है। यह सब कुछ देखने के बाद सिर्फ़ एक नादान ही हो सकता है जो यह समझे कि ज़मीन पर इनसान को पैदा करके और उसे ऐसे हंगामे मचाने के मौक़े देकर वह उसको यूँही मिट्टी में गुमकर देगा।

9. यानी सारी ज़मीन को उसने एक जैसा बनाकर नहीं रख दिया है, बल्कि उसमें अनगिनत हिस्से बना दिए हैं जो एक-दूसरे से जुड़े होने के बावजूद शक्ल में, रंग में, जिन माद्दों से मिलकर बना

بِمَآءٍ وَّاحِدٍ ۙ وَنُفَضِّلُ بَعْضَهَا عَلٰى بَعْضٍ فِى الْاُكُلِ ؕ اِنَّ فِىْ ذٰلِكَ لَاٰيٰتٍ
لِّقَوْمٍ يَّعْقِلُوْنَ ۝٤ وَاِنْ تَعْجَبْ فَعَجَبٌ قَوْلُهُمْ ءَاِذَا كُنَّا تُرٰبًا ءَاِنَّا

कुछ दोहरे।[10] सबको एक ही पानी सींचता है, मगर मज़े में हम किसी को बेहतर बना देते हैं और किसी को कमतर। इन सब चीज़ों में बहुत-सी निशानियाँ हैं उन लोगों के लिए जो अक़्ल से काम लेते हैं।[11]

(5) अब अगर तुम्हें ताज्जुब करना है तो ताज्जुब के क़ाबिल लोगों का यह कहना है

है उसमें, ख़ासियतों में, क़ुव्वतों और सलाहियतों में, पैदावार और कीमियावी (रासायनिक) या मादनी (खनिज पदार्थ सम्बन्धी) ख़ज़ानों में एक-दूसरे से बिलकुल अलग हैं। इन अलग-अलग हिस्सों की पैदाइश और उसके अन्दर तरह-तरह की इख़्तिलाफ़ों की मौजूदगी अपने अन्दर इतनी हिक्मतें और मस्लहतें रखती है कि उनकी गिनती नहीं की जा सकती। दूसरे जानदारों को अलग रखकर, सिर्फ़ एक इनसान ही के फ़ायदे को सामने रखकर देखा जाए तो अन्दाज़ा किया जा सकता है कि इनसान के दूसरे मक़सदों और ज़मीन के इन हिस्सों की इख़्तिलाफ़ों के दरमियान जो तालमेल और हमरंगियाँ पाई जाती हैं, और उनकी बदौलत इनसानी समाज को फलने-फूलने के जो मौक़े मिले हैं, वे यक़ीनी तौर पर किसी हिक्मतवाले की सोच और उसके सोचे-समझे मंसूबे और उसके समझदारी भरे इरादे का नतीजा है। इसे सिर्फ़ एक इत्तिफ़ाक़ी हादसा करार देना बड़ी हठधर्मी की बात होगी।

10. खजूर के पेड़ों में कुछ ऐसे होते हैं जिनकी जड़ से एक ही तना निकलता है और कुछ में एक जड़ से दो या ज़्यादा तने निकलते हैं।

11. इस आयत में अल्लाह की तौहीद और उसकी क़ुदरत व हिकमत की निशानियाँ दिखाने के अलावा एक और हक़ीक़त की तरफ़ भी हल्का-सा इशारा किया गया है, और वह यह है कि अल्लाह ने इस कायनात में कहीं भी यकसानियत नहीं रखी है। एक ही ज़मीन है, मगर उसके टुकड़े अपने-अपने रंगों, शक्लों और ख़ासियतों में अलग हैं। एक ही ज़मीन और एक ही पानी है मगर उससे तरह-तरह के अनाज और फल पैदा हो रहे हैं। एक ही पेड़ है और उसका हर फल दूसरे फल से क़िस्म में समान होने के बावजूद शक्ल और आकार और दूसरी ख़ासियतों में अलग है। एक ही जड़ है और उससे दो अलग तने निकलते हैं जिनमें से हर एक अपनी अलग इंफ़िरादी ख़ासियतें रखता है। इन बातों पर जो शख़्स ग़ौर करेगा वह कभी यह देखकर परेशान न होगा कि इनसानी तबीयतों, मिज़ाजों और रुझानों में इतना इख़्तिलाफ़ पाया जाता है। जैसा कि आगे चलकर इसी सूरा में कहा गया है, "अगर अल्लाह चाहता तो सब इनसानों को एक जैसा बना सकता था", मगर जिस हिक्मत पर अल्लाह ने इस कायनात को पैदा किया है वह यकसानियत की नहीं, बल्कि अलग-अलग क़िस्मों और रंगा-रंगी की माँग करती है। सबको एक जैसा बना देने के बाद यह सारी दुनिया ही बेमानी होकर रह जाती।

لَفِیۡ خَلۡقٍ جَدِیۡدٍ ۬ؕ اُولٰٓئِکَ الَّذِیۡنَ کَفَرُوۡا بِرَبِّہِمۡ ۚ وَ اُولٰٓئِکَ الۡاَغۡلٰلُ
فِیۡۤ اَعۡنَاقِہِمۡ ۚ وَ اُولٰٓئِکَ اَصۡحٰبُ النَّارِ ۚ ہُمۡ فِیۡہَا خٰلِدُوۡنَ ﴿۵﴾
وَ یَسۡتَعۡجِلُوۡنَکَ بِالسَّیِّئَۃِ قَبۡلَ الۡحَسَنَۃِ وَ قَدۡ خَلَتۡ مِنۡ قَبۡلِہِمُ

कि "जब हम मरकर मिट्टी हो जाएँगे तो क्या हम नए सिरे से पैदा किए जाएँगे?" ये वे लोग हैं जिन्होंने अपने रब के साथ इनकार का रवैया अपनाया है।[12] ये वे लोग हैं जिनकी गर्दनों में तौक़ पड़े हुए हैं।[13] ये जहन्नमी हैं और जहन्नम में हमेशा रहेंगे।

(6) ये लोग भलाई से पहले बुराई के लिए जल्दी मचा रहे हैं[14], हालाँकि इनसे पहले

12. यानी उनका आख़िरत से इनकार अस्ल में ख़ुदा से और उसकी क़ुदरत और हिक्मत से इनकार है। ये सिर्फ़ इतना ही नहीं कहते कि हमारा मिट्टी में मिल जाने के बाद दोबारा पैदा होना नामुमकिन है, बल्कि उनकी इसी बात में यह ख़याल भी छिपा है कि अल्लाह की पनाह वह ख़ुदा मजबूर और बेबस और नादान व नासमझ है जिसने उनको पैदा किया है।

13. गर्दन में तौक़ पड़ा होना क़ैदी होने की निशानी है। लोगों की गर्दनों में तौक़ पड़े होने का मतलब यह है कि ये लोग अपनी जहालत के, अपनी हठधर्मी के, अपने मन की ख़ाहिशों के और अपने बाप-दादा की अंधी पैरवी के क़ैदी बने हुए हैं। ये आज़ाद होकर सोच-विचार नहीं कर सकते। इन्हें इनके तास्सुबात (पक्षपातों) ने ऐसा जकड़ रखा है कि ये आख़िरत को नहीं मान सकते; हालाँकि उसका मानना पूरे तौर पर माक़ूल (तर्कसंगत) है, और आख़िरत के इनकार पर जमे हुए हैं हालाँकि वह सरासर नामाक़ूल (अतर्कसंगत) है।

14. मक्का के इस्लाम-दुश्मन नबी (सल्ल.) से कहते थे कि अगर तुम सचमुच नबी हो और तुम देख रहे हो कि हमने तुमको झुठला दिया है, तो अब आख़िर हमपर वह अज़ाब आ क्यों नहीं जाता जिसकी तुम हमें धमकियाँ देते हो? उसके आने में बेवजह देर क्यों लग रही है? कभी वे चुनौती के अन्दाज़ में कहते कि, "ऐ हमारे रब, हमारा हिसाब तू अभी कर दे, क़ियामत पर न उठा रख।" (सूरा-38 सॉद, आयत- 16) और कभी कहते, "ऐ अल्लाह, अगर ये बातें जो मुहम्मद पेश कर रहे हैं, सच हैं और तेरी ही तरफ़ से हैं तो हमपर आसमान से पत्थर बरसा या कोई और दर्दनाक अज़ाब उतार दे।" (सूरा-8 अनफ़ाल, आयत- 32) इस आयत में इस्लाम-दुश्मनों की इन्हीं बातों का जवाब दिया गया है कि ये नादान भलाई से पहले बुराई माँगते हैं, अल्लाह की तरफ़ से उनको संभलने के लिए जो मुहलत दी जा रही है उससे फ़ायदा उठाने के बजाय माँग करते हैं कि इस मुहलत को जल्दी ख़त्म कर दिया जाए और उन्होंने ख़ुदा से बग़ावत का जो रवय्या अपना रखा है उस पर फ़ौरन पकड़ कर डाली जाए।

اَلْمَثُلٰتُ ۭ وَاِنَّ رَبَّكَ لَذُوْ مَغْفِرَةٍ لِّلنَّاسِ عَلٰي ظُلْمِهِمْ ۚ وَاِنَّ رَبَّكَ
لَشَدِيْدُ الْعِقَابِ ۝ وَيَقُوْلُ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا لَوْلَآ اُنْزِلَ عَلَيْهِ اٰيَةٌ مِّنْ
رَّبِّهٖ ۭ اِنَّمَآ اَنْتَ مُنْذِرٌ وَّلِكُلِّ قَوْمٍ هَادٍ ۝ اَللّٰهُ يَعْلَمُ مَا تَحْمِلُ كُلُّ ع

(जो लोग इस रविश पर चले हैं, उनपर अल्लाह के अज़ाब की) इबरतनाक मिसालें गुज़र चुकी हैं। हक़ीक़त यह है कि तेरा रब लोगों की ज़्यादतियों के बावजूद उनके साथ माफ़ी से काम लेता है, और यह भी हक़ीक़त है कि तेरा रब सख़्त सज़ा देनेवाला है।

(7) ये लोग, जिन्होंने तुम्हारी बात मानने से इनकार कर दिया है, कहते हैं कि "इस आदमी पर इसके रब की तरफ़ से कोई निशानी क्यों न उतरी?"[15] तुम तो सिर्फ़ ख़बरदार कर देनेवाले हो, और हर क़ौम के लिए एक रहनुमा है।[16]

(8) अल्लाह एक-एक हामिला (गर्भवती) के पेट से बाख़बर है। जो कुछ उसमें

---

15. निशानी से उनकी मुराद ऐसी निशानी थी जिसे देखकर उनको यक़ीन आ जाए कि मुहम्मद (सल्ल॰) अल्लाह के रसूल हैं। वे आप (सल्ल॰) की बात को उसके हक़ होने की दलीलों से समझने के लिए तैयार न थे। वे आप (सल्ल॰) की पाक सीरत (पवित्र जीवनी) से सबक़ लेने के लिए तैयार न थे। उस ज़बरदस्त अख़लाक़ी इंक़िलाब से भी कोई नतीजा निकालने के लिए तैयार न थे जो आप (सल्ल॰) की तालीम के असर से आप (सल्ल॰) के सहाबा (साथियों) की ज़िन्दगियों में ज़ाहिर हो रहा था। वे उन मुनासिब और अक़्ल की कसौटी पर खरी उतरनेवाली दलीलों पर भी ग़ौर करने के लिए तैयार न थे जो उनके शिर्क से भरे मज़हब और उनके जाहिलाना अंधविश्वासों की ग़लतियाँ वाज़ेह करने के लिए क़ुरआन में पेश की जा रही थीं। इन सब चीज़ों को छोड़कर वे चाहते थे कि उन्हें कोई करिश्मा दिखाया जाए जिसकी कसौटी पर वे मुहम्मद (सल्ल॰) की रिसालत (पैग़म्बरी) को जाँच सकें।

16. ये उनकी माँग का मुख़्तसर-सा जवाब है जो सीधे तौर पर उनको देने के बजाए अल्लाह तआला ने अपने पैग़म्बर (सल्ल॰) को मुख़ातब करके दिया है। इसका मतलब यह है कि ऐ नबी, तुम इस फ़िक्र में न पड़ो कि इन लोगों को मुत्मइन करने के लिए आख़िर कौन-सा करिश्मा दिखाया जाए। तुम्हारा काम हर एक को मुत्मइन कर देना नहीं है। तुम्हारा काम तो सिर्फ़ यह है कि ग़फ़लत की नींद में सोए हुए लोगों को चौंका दो और उनको ग़लत रास्ते पर चलने के बुरे अंजाम से ख़बरदार कर दो। यह ख़िदमत हमने हर ज़माने में, हर क़ौम में, एक न एक रहनुमा भेजकर ली है। अब तुमसे यही ख़िदमत ले रहे हैं। इसके बाद जिसका जी चाहे आँखें खोले और जिसका जी चाहे ग़फ़लत में पड़ा रहे। यह मुख़्तसर जवाब देकर अल्लाह तआला उनकी माँग की तरफ़ से मुँह फेर लेता है और उनको ख़बरदार करता है कि तुम किसी

أُنْثٰى وَمَا تَغِيْضُ الْاَرْحَامُ وَمَا تَزْدَادُ ۭ وَكُلُّ شَيْءٍ عِنْدَهٗ بِمِقْدَارٍ ⑧
عٰلِمُ الْغَيْبِ وَالشَّهَادَةِ الْكَبِيْرُ الْمُتَعَالِ ⑨ سَوَاۗءٌ مِّنْكُمْ مَّنْ اَسَرَّ
الْقَوْلَ وَمَنْ جَهَرَ بِهٖ وَمَنْ هُوَ مُسْتَخْفٍۢ بِالَّيْلِ وَسَارِبٌۢ بِالنَّهَارِ ⑩
لَهٗ مُعَقِّبٰتٌ مِّنْۢ بَيْنِ يَدَيْهِ وَمِنْ خَلْفِهٖ يَحْفَظُوْنَهٗ مِنْ اَمْرِ اللّٰهِ ۭ اِنَّ اللّٰهَ

बनता है, उसे भी वह जानता है और जो कुछ उसमें कमी या बेशी होती है, उसकी भी वह ख़बर रखता है।[17] हर चीज़ के लिए उसके यहाँ एक मिक़दार मुकर्रर है। (9) वह छिपी और खुली हर चीज़ को जानता है। वह बुज़ुर्ग है और हर हाल में सबसे बड़ा बनकर रहनेवाला है। (10) तुममें से कोई आदमी चाहे ज़ोर से बात करे या धीरे से, और कोई रात के अंधेरे में छिपा हुआ हो या दिन की रौशनी में चल रहा हो, उसके लिए सब बराबर हैं। (11) हर आदमी के आगे और पीछे उसके मुक़र्रर किए हुए निगराँ लगे हुए हैं, जो अल्लाह के हुक्म से उसकी देखभाल कर रहे हैं।[18] हक़ीक़त यह है कि अल्लाह

अंधेर नगरी में नहीं रहते हो जहाँ किसी चौपट राजा का राज हो। तुम्हारा वास्ता एक ऐसे ख़ुदा से है जो तुममें से एक-एक शख़्स को उस वक़्त से जानता है जबकि तुम अपनी माओं के पेट में बन रहे थे, और ज़िन्दगी भर तुम्हारी एक-एक हरकत पर निगाह रखता है। उसके यहाँ तुम्हारी क़िस्मतों का फ़ैसला पूरे इनसाफ़ के साथ तुम्हारी ख़ूबियों के लिहाज़ से होता है, और ज़मीन व आसमान में कोई ताक़त ऐसी नहीं है जो उसके फ़ैसलों पर असर डाल सके।

17. इससे मुराद यह है कि माओं के पेट में बच्चे के जिस्म के हिस्सों, उसकी कुव्वतों और क़ाबिलियतों, और उसकी सलाहियतों में जो कुछ कमी या बढ़ोत्तरी होती है, अल्लाह की सीधी निगरानी में होती है।

18. यानी बात सिर्फ़ इतनी ही नहीं है कि अल्लाह तआला हर शख़्स को हर हाल में सीधे तौर पर ख़ुद देख रहा है और उसके तमाम कामों और हरकतों से वाक़िफ़ है, बल्कि इसके अलावा अल्लाह के मुक़र्रर किए हुए निगराँ (फ़रिश्ते) भी हर शख़्स के साथ लगे हुए हैं और उसकी ज़िन्दगी के सभी कर्मों का रिकॉर्ड महफ़ूज़ करते हैं। इस हक़ीक़त को बयान करने का मक़सद यह है कि ऐसे ख़ुदा की ख़ुदाई में जो लोग यह समझते हुए ज़िन्दगी गुज़ारते हैं कि उन्हें बेनकेल ऊँट की तरह ज़मीन पर छोड़ दिया गया है और कोई नहीं जिसके सामने वे अपने आमालनामा (कर्मपत्र) के लिए जवाबदेह हों, वे अस्ल में अपनी शामत आप बुलाते हैं।

لَا يُغَيِّرُ مَا بِقَوْمٍ حَتّٰى يُغَيِّرُوْا مَا بِاَنْفُسِهِمْ ۗ وَاِذَاۤ اَرَادَ اللّٰهُ بِقَوْمٍ
سُوْٓءًا فَلَا مَرَدَّ لَهٗ ۚ وَمَا لَهُمْ مِّنْ دُوْنِهٖ مِنْ وَّالٍ ﴿١١﴾ هُوَ الَّذِيْ يُرِيْكُمُ
الْبَرْقَ خَوْفًا وَّطَمَعًا وَّيُنْشِئُ السَّحَابَ الثِّقَالَ ﴿١٢﴾ وَيُسَبِّحُ الرَّعْدُ
بِحَمْدِهٖ وَالْمَلٰٓئِكَةُ مِنْ خِيْفَتِهٖ ۚ وَيُرْسِلُ الصَّوَاعِقَ فَيُصِيْبُ بِهَا مَنْ

किसी क़ौम के हाल को नहीं बदलता जब तक वह ख़ुद अपने औसाफ़ (गुणों) को नहीं बदल देती। और जब अल्लाह किसी क़ौम की शामत लाने का फ़ैसला करले तो फिर वह किसी के टाले नहीं टल सकती, न अल्लाह के मुक़ाबले में ऐसी क़ौम का कोई हिमायती और मददगार हो सकता है।[19]

(12) वही है जो तुम्हारे सामने बिजलियाँ चमकाता है जिन्हें देखकर तुम्हें अंदेशे भी होते हैं और उम्मीदें भी बँधती हैं। वही है जो पानी से लदे हुए बादल उठाता है, (13) बादलों की गरज उसकी हम्द (तारीफ़ और शुक्र) के साथ उसकी पाकी बयान करती है[20] और फ़रिश्ते उसके डर से काँपते हुए उसकी तसबीह (महिमागान) करते हैं।[21] वह कड़कती हुई बिजलियों को भेजता है और कई बार उन्हें जिसपर चाहता है, ठीक उस

19. यानी इस ग़लतफ़हमी में भी न रहो कि अल्लाह के यहाँ कोई पीर या फ़क़ीर, या कोई अगला-पिछला बुज़ुर्ग, या कोई जिन्न या फ़रिश्ता ऐसा ज़ोरावर है कि तुम चाहे कुछ भी करते रहो, वह तुम्हारी नज़्रो-नियाज़ों की रिश्वत लेकर तुम्हें तुम्हारे बुरे कामों की सज़ा से बचा लेगा।

20. यानी बादलों की गरज यह ज़ाहिर करती है कि जिस ख़ुदा ने ये हवाएँ चलाईं, ये भापें उठाईं, ये बोझिल बादल जमा किए, इस बिजली को बारिश का ज़रिआ बनाया और इस तरह ज़मीन की मख़लूक़ात (सृष्टि) के लिए पानी पहुँचाने का इन्तिज़ाम किया, वह तारीफ़ और शुक्र के लायक़ और पाक़ीज़ा है, अपनी हिक्मत और क़ुदरत में मुकम्मल है, अपनी सिफ़ात में बेऐब है, और उसकी ख़ुदाई में कोई शरीक नहीं है। जानवरों की तरह सुननेवाले तो इन बादलों में सिर्फ़ गरज की आवाज़ ही सुनते हैं। मगर जो होश के कान रखते हैं वे बादलों की ज़बान से तौहीद का यह एलान सुनते हैं।

21. फ़रिश्तों के अल्लाह के जलाल और हैबत से काँपने और तसबीह (महिमा) करने का ज़िक्र ख़ास-तौर से यहाँ इसलिए किया कि मुशरिक हर ज़माने में फ़रिश्तों को देवता और माबूद ठहराते रहे हैं और उनका यह गुमान रहा है कि वे अल्लाह तआला के साथ उसकी ख़ुदाई में साझी हैं। इस ग़लत ख़याल को रद्द करने के लिए कहा गया कि वह इख़्तिदारे-आला

يَّشَآءُ وَهُمْ يُجَادِلُوْنَ فِى اللّٰهِ ۚ وَهُوَ شَدِيْدُ الْمِحَالِ ﴿١٣﴾ لَهٗ دَعْوَةُ الْحَقِّ ۚ
وَالَّذِيْنَ يَدْعُوْنَ مِنْ دُوْنِهٖ لَا يَسْتَجِيْبُوْنَ لَهُمْ بِشَىْءٍ اِلَّا كَبَاسِطِ
كَفَّيْهِ اِلَى الْمَآءِ لِيَبْلُغَ فَاهُ وَمَا هُوَ بِبَالِغِهٖ ۚ وَمَا دُعَآءُ الْكٰفِرِيْنَ اِلَّا
فِىْ ضَلٰلٍ ﴿١٤﴾ وَلِلّٰهِ يَسْجُدُ مَنْ فِى السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ طَوْعًا وَّكَرْهًا

हालत में गिरा देता है, जबकि लोग अल्लाह के बारे में झगड़ रहे होते हैं। हक़ीक़त में उसकी चाल बड़ी ज़बरदस्त है।[22]

(14) उसी को पुकारना हक़ है।[23] रहीं वे दूसरी हस्तियाँ जिन्हें उसको छोड़कर ये लोग पुकारते हैं, वे उनकी दुआओं का कोई जवाब नहीं दे सकतीं। उन्हें पुकारना तो ऐसा है जैसे कोई आदमी पानी की तरफ़ हाथ फैलाकर उससे दरख़ास्त करे कि तू मेरे मुँह तक पहुँच जा, हालाँकि पानी उस तक पहुँचनेवाला नहीं। बस इसी तरह हक़ का इनकार करनेवालों की दुआएँ भी कुछ नहीं हैं मगर एक तीर बिना निशाने का। (15) वह तो अल्लाह ही है जिसको ज़मीन व आसमानों की हर चीज़ चाहे-अनचाहे सज्दा कर रही

(सम्प्रभुत्व) में ख़ुदा के साझी नहीं हैं, बल्कि फ़रमाँबरदार ख़ादिम हैं और अपने मालिक के जलाल और हैबत से काँपते हुए उसकी तसबीह कर रहे हैं।

22. यानी उसके पास अनगिनत हरबे हैं और वह जिस वक़्त जिसके ख़िलाफ़ जिस हरबे से चाहे ऐसे तरीक़े से काम ले सकता है कि चोट पड़ने से एक लम्हा पहले भी उसे ख़बर नहीं होती कि किधर से कब चोट पड़नेवाली है। ऐसी क़ादिरे-मुतलक़ (सर्व शक्तिमान) हस्ती के बारे में यूँ बे-सोचे-समझे जो लोग उल्टी-सीधी बातें करते हैं उन्हें कौन अक़्लमन्द कह सकता है?

23. पुकारने से मुराद अपनी ज़रूरतों में मदद के लिए पुकारना है। मतलब यह है कि ज़रूरतें पूरी करने और मुश्किलें हल करने के सारे इख़्तियार उसी के हाथ में हैं, इसलिए सिर्फ़ उसी से दुआएँ माँगना बरहक़ (सत्यानुकूल) है।

24. सजदे से मुराद फ़रमाँबरदारी में झुकना, हुक्म पूरा करना और अपने को हवाले करके सिर झुका देना है। ज़मीन व आसमान की हर चीज़ इस मानी में अल्लाह को सजदा कर रही है कि वह उसके क़ानून का पालन कर रही है और उसकी मरज़ी और हुक्म से बाल बराबर भी आगे नहीं बढ़ सकती। ईमानवाला उसके आगे अपनी मरज़ी और ख़ुशी से झुकता है तो ईमान न रखनेवाले को मजबूरन झुकना पड़ता है, क्योंकि ख़ुदा के क़ुदरती क़ानून से हटना उसकी सकत से बाहर है।

وَّظِلٰلُهُمْ بِالْغُدُوِّ وَالْاٰصَالِ ۩ ﴿۱۵﴾ قُلْ مَنْ رَّبُّ السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ ؕ
قُلِ اللّٰهُ ؕ قُلْ اَفَاتَّخَذْتُمْ مِّنْ دُوْنِهٖۤ اَوْلِيَآءَ لَا يَمْلِكُوْنَ لِاَنْفُسِهِمْ نَفْعًا
وَّلَا ضَرًّا ؕ قُلْ هَلْ يَسْتَوِى الْاَعْمٰى وَالْبَصِيْرُ ۙ اَمْ هَلْ تَسْتَوِى

है[24] और सब चीज़ों के साए सुबह व शाम उसके आगे झुकते हैं।[25]

(16) इनसे पूछो, आसमानों व ज़मीन का रब कौन है? — कहो, अल्लाह।[26] फिर इनसे कहो कि जब सच्चाई यह है तो क्या तुमने उसे छोड़कर ऐसे माबूदों को अपना कारसाज़ ठहरा लिया जो ख़ुद अपने लिए भी किसी फ़ायदे और नुक़सान का इख़्तियार नहीं रखते? कहो, क्या अंधा और आँखोंवाला बराबर हुआ करता है?[27] क्या रौशनी और

25. सायों के सजदा करने से मुराद यह है कि चीज़ों के सायों का सुबह-शाम पश्चिम और पूरब की तरफ़ गिरना इस बात की अलामत है कि ये सब चीज़ें किसी के हुक्म की पाबंद और किसी के क़ानून से बँधी हैं।

26. वाज़ेह रहे कि वे लोग ख़ुद इस बात को मानते थे कि ज़मीन व आसमान का रब अल्लाह है। वे इस सवाल का जवाब इनकार की शक्ल में नहीं दे सकते थे, क्योंकि यह इनकार ख़ुद उनके अपने अक़ीदे के ख़िलाफ़ था। लेकिन नबी (सल्ल०) के पूछने पर वे इक़रार की सूरत में भी इसका जवाब देने से कतराते थे, क्योंकि इक़रार के बाद तौहीद का मानना ज़रूरी हो जाता था, और शिर्क के लिए कोई मुनासिब और अक़्ल में आनेवाली बुनियाद बाक़ी नहीं रहती थी। इसलिए अपने नज़रिए की कमज़ोरी महसूस करके वे सवाल के जवाब में चुप साध जाते थे। यही वजह है कि क़ुरआन में जगह-जगह अल्लाह तआला नबी (सल्ल०) से फ़रमाता है कि इनसे पूछो कि ज़मीन व आसमान का बनानेवाला कौन है? कायनात का रब कौन है? तुमको रोज़ी देनेवाला कौन है? फिर हुक्म देता है कि तुम ख़ुद कहो कि 'अल्लाह', और इसके बाद यूँ दलील देता है कि जब ये सारे काम अल्लाह के हैं तो आख़िर ये दूसरे कौन हैं जिनकी तुम बन्दगी किए जा रहे हो?

27. अन्धे से मुराद वह शख़्स है जिसके आगे कायनात में हर तरफ़ अल्लाह के एक होने के आसार और निशानियाँ फैली हुई हैं, मगर वह उनमें से किसी चीज़ को भी नहीं देख रहा है और आँखोंवाले से मुराद वह है जिसके लिए कायनात के ज़र्रे-ज़र्रे और पत्ते-पत्ते में पैदा करनेवाले को पहचानने के दफ़्तर खुले हुए हैं। अल्लाह तआला के इस सवाल का मतलब यह है कि अक़्ल के अन्धो! अगर तुम्हें कुछ नहीं सूझता तो आख़िर देखने के क़ाबिल आँखें रखनेवाला अपनी आँखें कैसे फोड़ ले? जो शख़्स हक़ीक़त को साफ़-साफ़ देख रहा है उसके लिए किस तरह मुमकिन है कि वह तुम नासमझ लोगों की तरह ठोकरें खाता फिरे?

الظُّلُمٰتُ وَالنُّوۡرُ ۚ اَمۡ جَعَلُوۡا لِلّٰهِ شُرَكَآءَ خَلَقُوۡا كَخَلۡقِهٖ فَتَشَابَهَ الۡخَلۡقُ
عَلَيۡهِمۡ ؕ قُلِ اللّٰهُ خَالِقُ كُلِّ شَىۡءٍ وَّهُوَ الۡوَاحِدُ الۡقَهَّارُ ﴿۱۶﴾ اَنۡزَلَ مِنَ
السَّمَآءِ مَآءً فَسَالَتۡ اَوۡدِيَةٌ ۢ بِقَدَرِهَا فَاحۡتَمَلَ السَّيۡلُ زَبَدًا رَّابِيًا ؕ

अंधेरे बराबर होते हैं?[28] और अगर ऐसा नहीं तो क्या इनके ठहराए हुए साझीदारों ने भी अल्लाह की तरह कुछ पैदा किया है कि उसकी वजह से इनपर पैदा करने का मामला मुश्तबह (सन्दिग्ध) हो गया?[29]— कहो, हर चीज़ का पैदा करनेवाला सिर्फ़ अल्लाह है और वह अकेला है, सबपर ग़ालिब![30]

(17) अल्लाह ने आसमान से पानी बरसाया और हर नदी-नाला अपनी समाई के

28. रौशनी से मुराद इल्मे-हक़ (सत्य-ज्ञान) की वह रौशनी है जो नबी (सल्ल0) और आप (सल्ल॰) की पैरवी करनेवालों को हासिल थी और अंधेरों से मुराद जहालत के वे अंधेरे हैं ज़िनमें हक़ का इनकार करनेवाले भटक रहे थे। सवाल का मतलब यह है कि जिसको रौशनी मिल चुकी है वह किस तरह अपना दीया बुझाकर अंधेरों में ठोकरें खाना क़बूल कर सकता है? अगर तुम रौशनी की क़द्र नहीं पहचानते हो तो न सही। लेकिन जिसने उसे पा लिया है, जो उजाले और अंधेरे के फ़र्क़ को जान चुका है, जो दिन के उजाले में सीधा रास्ता साफ़ देख रहा है वह रौशनी को छोड़कर अंधेरों में भटकते फिरने के लिए कैसे तैयार हो सकता है?

29. इस सवाल का मतलब यह है कि अगर दुनिया में कुछ चीज़ें अल्लाह तआला ने पैदा की होतीं, और कुछ दूसरों ने, और यह मालूम करना मुश्किल होता कि ख़ुदा की बनाई हुई चीज़ें कौन-सी हैं और दूसरों की बनाई हुई कौन-सी तब तो सचमुच शिर्क के लिए कोई मुनासिब बुनियाद हो सकती थी। लेकिन जब ये शिर्क करनेवाले ख़ुद मानते हैं कि इनके माबूदों में से किसी ने एक तिनका और एक बाल तक पैदा नहीं किया है, और जब वे ख़ुद मानते हैं कि पैदा करने के काम में इन मनगढ़त ख़ुदाओं का ज़र्रा बराबर भी कोई हिस्सा नहीं है, तो फिर ये झूठे माबूद पैदा करनेवाले के अधिकारों और उसके हक़ों में आख़िर किस बुनियाद पर साझी ठहरा लिए गए?

30. अस्ल अरबी में लफ़्ज 'क़हहार' इस्तेमाल हुआ है जिसका मतलब है— "वह हस्ती जो अपने ज़ोर से सबपर हुक्म चलाए और सबको अपने मातहत करके रखे।" यह बात कि "अल्लाह ही हर चीज़ को पैदा करनेवाला है" मुशरिकों की अपनी मानी हुई सच्चाई है जिससे उन्हें कभी इनकार न था और यह बात कि "वह अकेला और क़हहार है" इस तस्लीम की हुई हक़ीक़त का लाज़िमी नतीजा है जिससे इनकार करना, पहली हक़ीक़त को मान लेने के बाद, किसी अक़्लमन्द आदमी के लिए मुमकिन नहीं है। इसलिए कि जो हर चीज़ का पैदा करनेवाला है,

وَمِمَّا يُوقِدُونَ عَلَيْهِ فِي النَّارِ ابْتِغَاءَ حِلْيَةٍ أَوْ مَتَاعٍ زَبَدٌ مِّثْلُهُ ۚ
كَذَٰلِكَ يَضْرِبُ اللَّهُ الْحَقَّ وَالْبَاطِلَ ۚ فَأَمَّا الزَّبَدُ فَيَذْهَبُ جُفَاءً ۖ
وَأَمَّا مَا يَنفَعُ النَّاسَ فَيَمْكُثُ فِي الْأَرْضِ ۚ كَذَٰلِكَ يَضْرِبُ اللَّهُ

मुताबिक़ उसे लेकर चल निकला। फिर जब बाढ़ आई तो सतह पर झाग भी आ गए।[31] और ऐसे ही झाग उन धातुओं पर भी उठते हैं जिन्हें गहने और बर्तन वग़ैरा बनाने के लिए लोग पिघलाया करते हैं।[32] इसी मिसाल से हक़ व बातिल (सत्य और असत्य) के मामले को वाज़ेह करता है। जो झाग है, वह उड़ जाया करता है और जो चीज़ इनसानों के लिए फ़ायदेमन्द है, वह ज़मीन में ठहर जाती है। इस तरह अल्लाह मिसालों से अपनी

वह ज़रूर ही अकेला और बेमिसाल है, क्योंकि दूसरी जो चीज़ भी है वह उसी की बनाई हुई है, फिर भला यह कैसे हो सकता है कि कोई पैदा की हुई चीज़ अपने पैदा करनेवाले की ज़ात, सिफ़तों या अधिकारों और हक़ों में उसकी साझी हो? इसी तरह वह ज़रूर ही क़ह्हार भी है, क्योंकि मख़्लूक़ (सृष्टि) का अपने पैदा करनेवाले के तहत होकर रहना मख़्लूक़ होने के तसव्वुर में पूरे तौर पर शामिल है। मुकम्मल इख़्तियार अगर पैदा करनेवाले को हासिल न हो तो वह पैदा ही कैसे कर सकता है। तो जो शख़्स अल्लाह को पैदा करनेवाला मानता हो उसके लिए अक़्ल और दलील की कसौटी पर पूरे उतरनेवाले नतीजों से इनकार करना मुमकिन नहीं रहता, और इसके बाद यह बात सरासर नामुनासिब और अक़्ल के ख़िलाफ़ ठहरती है कि कोई शख़्स पैदा करनेवाले को छोड़कर उन चीज़ों की बन्दगी करे जो पैदा की गई हैं और ग़ालिब को छोड़कर मुश्किलें दूर करने के लिए उनको पुकारे जो मातहत और मग़लूब हों।

31. यहाँ इस इल्म की मिसाल जो नबी (सल्ल.) पर वह्य के ज़रिए से उतारा गया था, आसमानी बारिश से दी गई है और ईमान लानेवाले भली फ़ितरत के लोगों को उन नदी-नालों की तरह ठहराया गया है जो अपनी-अपनी समाई के मुताबिक़ रहमत की बारिश से भरपूर होकर बहने लगते हैं और उस हंगामे और फ़ितना-फ़साद को जो इस्लामी तहरीक के ख़िलाफ़ इनकार और मुख़ालफ़त करनेवालों ने खड़ा कर रखा था, उस झाग और कूड़े-करकट से मिसाल दी गई है जो हमेशा सैलाब के उठते ही सतह पर अपनी उछल-कूद दिखानी शुरू कर देता है।

32. यानी भट्टी जिस काम के लिए गरम की जाती है वह तो है ख़ालिस धातु को तपाकर मुफ़ीद बनाना। मगर यह काम जब भी किया जाता है मैल-कुचैल ज़रूर उभर आता है और इस शान से उभरता और चक्कर खाता है कि कुछ देर तक सतह पर बस वही वह नज़र आता रहता है।

الْأَمْثَالَ ﴿١٧﴾ لِلَّذِينَ اسْتَجَابُوا لِرَبِّهِمُ الْحُسْنَىٰ ۚ وَالَّذِينَ لَمْ يَسْتَجِيبُوا
لَهُ لَوْ أَنَّ لَهُم مَّا فِي الْأَرْضِ جَمِيعًا وَمِثْلَهُ مَعَهُ لَافْتَدَوْا بِهِ ۚ أُولَٰئِكَ

बात समझाता है।

(18) जिन लोगों ने अपने रब की दावत क़बूल कर ली, उनके लिए भलाई है और जिन्होंने उसे क़बूल न किया, वे अगर ज़मीन की सारी दौलत के भी मालिक हों और उतनी ही और जुटा लें, तो वे अल्लाह की पकड़ से बचने के लिए इस सबको बदले में दे डालने पर तैयार हो जाएँगे।[33] ये वे लोग हैं जिनसे बुरी तरह हिसाब लिया जाएगा[34] और

---

33. यानी उस वक़्त उनपर ऐसी मुसीबत पड़ेगी कि वह अपनी जान छुड़ाने के लिए पूरी दुनिया और जो कुछ उसमें है वह दौलत दे डालने में भी झिझकेंगे नहीं।

34. बुरी तरह हिसाब लेने या सख़्त हिसाब लेने का मतलब यह है कि आदमी की किसी ग़लती और किसी भूल को माफ़ न किया जाए, कोई क़ुसूर जो उसने किया हो पूछ-गच्छ किए बिना न छोड़ा जाए।

क़ुरआन हमें बताता है कि अल्लाह तआला इस तरह का हिसाब अपने उन बन्दों से लेगा जो उसके बाग़ी बनकर दुनिया में रहे हैं। इसके बरख़िलाफ़ जिन्होंने अपने ख़ुदा से वफ़ादारी की है और उसके फ़रमाँबरदार बनकर रहे हैं उनसे आसान और हल्का हिसाब लिया जाएगा, उनकी ख़िदमतों के मुक़ाबले में उनकी ग़लतियों को नज़रअन्दाज़ किया जाएगा और उनके मजमूई रवैये की भलाई को सामने रखकर उनकी बहुत-सी कमियों को अनदेखा कर दिया जाएगा। इसकी और ज़्यादा वज़ाहत उस हदीस से होती है जो हज़रत आइशा (रज़ि.) से अबू-दाऊद में रिवायत हुई है। हज़रत आइशा (रज़ि.) फ़रमाती हैं कि मैंने पूछा कि "ऐ अल्लाह के रसूल, मेरे नज़दीक अल्लाह की किताब की सबसे ज़्यादा डरानेवाली आयत वह है जिसमें कहा गया है कि "जो शख़्स कोई बुराई करेगा वह उसकी सज़ा पाएगा।" इसपर अल्लाह के रसूल (सल्ल.) ने फ़रमाया, "आइशा! क्या तुम्हें मालूम नहीं कि ख़ुदा के फ़रमाँबरदार बन्दे को दुनिया में जो तकलीफ़ भी पहुँचती है, यहाँ तक कि अगर कोई काँटा भी उसको चुभता है, तो अल्लाह उसे उसके किसी-न-किसी क़ुसूर की सज़ा ठहराकर दुनिया ही में उसका हिसाब साफ़ कर देता है? आख़िरत में तो जिससे भी पूछ-गच्छ होगी वह सज़ा पाकर रहेगा।" हज़रत आइशा (रज़ि.) ने पूछा, "फिर अल्लाह तआला के यह कहने का मतलब क्या है कि – "जिसका आमालनामा उसके दाहिने हाथ में दिया जाएगा उससे हल्का हिसाब लिया जाएगा।" नबी (सल्ल.) ने जवाब दिया, "इससे मुराद है पेशी (यानी उसकी भलाइयों के साथ उसकी बुराइयाँ भी अल्लाह तआला के सामने पेश ज़रूर होंगी), मगर जिससे पूछ-गच्छ हुई वह तो बस समझ लो कि मारा गया।"

इसकी मिसाल ऐसी है जैसे एक शख़्स अपने वफ़ादार और फ़रमाँबरदार नौकर की छोटी-छोटी

لَهُمْ سُوْٓءُ الْحِسَابِ ۙ وَمَاْوٰىهُمْ جَهَنَّمُ ۗ وَبِئْسَ الْمِهَادُ ﴿۱۸﴾ اَفَمَنْ يَّعْلَمُ ع
اَنَّمَآ اُنْزِلَ اِلَيْكَ مِنْ رَّبِّكَ الْحَقُّ كَمَنْ هُوَ اَعْمٰى ۭ اِنَّمَا يَتَذَكَّرُ اُولُوا
الْاَلْبَابِ ﴿۱۹﴾ الَّذِيْنَ يُوْفُوْنَ بِعَهْدِ اللّٰهِ وَلَا يَنْقُضُوْنَ الْمِيْثَاقَ ﴿۲۰﴾
وَالَّذِيْنَ يَصِلُوْنَ مَآ اَمَرَ اللّٰهُ بِهٖٓ اَنْ يُّوْصَلَ وَيَخْشَوْنَ رَبَّهُمْ وَيَخَافُوْنَ

उनका ठिकाना जहन्नम है, बहुत ही बुरा ठिकाना।

(19) भला यह कैसे हो सकता है कि वह आदमी जो तुम्हारे रब की इस किताब को, जो उसने तुमपर उतारी है, हक़ जानता है और वह आदमी जो इस हक़ीक़त की तरफ़ से अंधा है, दोनों बराबर हो जाएँ?[35] नसीहत तो अक़्लमन्द लोग ही क़बूल किया करते हैं।[36] (20) और उनका रवैया यह होता है कि अल्लाह के साथ अपने वादे को पूरा करते हैं, उसे मज़बूत बाँधने के बाद तोड़ नहीं डालते।[37] (21) उनका रवैया यह होता है

ग़लतियों पर कभी सख़्त पकड़ नहीं करता बल्कि उसके बड़े-बड़े क़ुसूरों को भी उसकी ख़िदमतों को देखते हुए माफ़ कर देता है। लेकिन अगर किसी नौकर की ग़द्दारी व ख़ियानत साबित हो जाए तो उसकी कोई भी खिदमत ऐसी नहीं रहती जिसका लिहाज़ किया जाए और उसके छोटे-बड़े सब क़ुसूर गिनती में आ जाते हैं।

35. यानी न दुनिया में इन दोनों का रवैया एक जैसा हो सकता है और न आख़िरत में इनका अंजाम एक जैसा होगा।

36. यानी ख़ुदा की भेजी हुई इस तालीम और ख़ुदा के रसूल की इस दावत को जो लोग क़बूल किया करते हैं वे अक़्ल के अंधे नहीं, बल्कि सुनने और समझनेवाले तेज़ दिमाग़ के लोग ही होते हैं और फिर दुनिया में उनकी सीरत व किरदार का वह रंग और आख़िरत में उनका वह अंजाम होता है जो बाद की आयतों में बयान हुआ है।

37. इससे मुराद वह अहद है जो अल्लाह तआला ने पैदाइश के वक़्त तमाम इनसानों से लिया था कि वे सिर्फ़ उसी की बन्दगी करेंगे (तशरीह के लिए देखें—सूरा-7 आराफ़, हाशिया-134, 135)। यह अहद हर इनसान से लिया गया है, हर एक की फ़ितरत में छिपा है, और उसी वक़्त पक्का हो जाता है जब आदमी अल्लाह तआला के पैदा करने से वुजूद में आता और उसके पालने-पोसने से परवरिश पाता है। ख़ुदा के रिज़्क़ से पलना, उसकी पैदा की हुई चीज़ों से काम लेना और उसकी दी हुई क़ुव्वतों को इस्तेमाल करना आप-से-आप इनसान को ख़ुदा के साथ बन्दगी के अहद में बाँध देता है, जिसे तोड़ने की जुर्अत कोई समझ रखनेवाला और नमक हलाल आदमी नहीं कर सकता। यह और बात है कि अनजाने में कभी उससे कोई भूल-चूक हो जाए।

سُوْٓءَ الْحِسَابِ ۝٢١ وَالَّذِيْنَ صَبَرُوا ابْتِغَآءَ وَجْهِ رَبِّهِمْ وَاَقَامُوا
الصَّلٰوةَ وَاَنْفَقُوْا مِمَّا رَزَقْنٰهُمْ سِرًّا وَّعَلَانِيَةً وَّيَدْرَءُوْنَ بِالْحَسَنَةِ
السَّيِّئَةَ اُولٰٓئِكَ لَهُمْ عُقْبَى الدَّارِ ۝٢٢ جَنّٰتُ عَدْنٍ يَّدْخُلُوْنَهَا وَمَنْ

कि अल्लाह ने जिन-जिन रिश्तों को बाक़ी रखने का हुक्म दिया हैं,[38] उन्हें बाक़ी रखते हैं, अपने रब से डरते हैं और इस बात का डर रखते हैं कि कहीं उनसे बुरी तरह हिसाब न लिया जाए। (22) उनका हाल यह होता है कि अपने रब की ख़ुशनूदी के लिए सब्र से काम लेते हैं,[39] नमाज़ क़ायम करते हैं, हमारी दी हुई रोज़ी में से खुले और छिपे ख़र्च करते हैं और बुराई को भलाई से दूर करते हैं।[40] आख़िरत का घर इन्हीं लोगों के लिए है, (23,24) यानी ऐसे बाग़ जो उनके हमेशा रहनेवाले घर होंगे। वे ख़ुद भी उनमें

38. यानी वे तमाम समाजी और तमद्दुनी (सांस्कृतिक) रिश्ते जिनके दुरुस्त होने पर इनसान की समाजी ज़िन्दगी का दारोमदार है।

39. यानी अपनी ख़ाहिशों को क़ाबू में रखते हैं, अपने जज़्बात और रुझानों को हदों का पाबन्द बनाते हैं, ख़ुदा की नाफ़रमानी में जिन-जिन फ़ायदों और लज़्ज़तों का लालच नज़र आता है उन्हें देखकर फिसल नहीं जाते, और ख़ुदा की फ़रमाँबरदारी में जिन-जिन नुक़सानों और तकलीफ़ों का अन्देशा होता है उन्हें बरदाश्त कर ले जाते हैं। इस लिहाज़ से ईमानवाले की पूरी ज़िन्दगी हक़ीक़त में सब्र की ज़िन्दगी है, क्योंकि वह अल्लाह की ख़ुशी पाने की उम्मीद पर और आख़िरत के हमेशा रहनेवाले नतीजों की उम्मीद पर इस दुनिया में अपने मन पर क़ाबू रखता है और गुनाह की तरफ़ मन के हर झुकाव का सब्र के साथ मुक़ाबला करता है।

40. यानी वे बुराई के मुक़ाबले में बुराई नहीं, बल्कि नेकी करते हैं। वे बुराई का मुक़ाबला बुराई से नहीं, बल्कि भलाई ही से करते हैं। कोई उनपर चाहे कितना ही ज़ुल्म करे, वे जवाब में ज़ुल्म नहीं, बल्कि इनसाफ़ ही करते हैं। कोई उनके ख़िलाफ़ कितना ही झूठ बोले वे जवाब में सच ही बोलते हैं। कोई उनसे चाहे कितनी ही ख़यानत और बेईमानी करे, वे जवाब में ईमानदारी ही से काम लेते हैं। इसी मानी में है वह हदीस जिसमें नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया है—

"तुम अपने रवैये को लोगों के रवैये का ग़ुलाम बनाकर न रखो। यह कहना ग़लत है कि अगर लोग भलाई करेंगे तो हम भी भलाई करेंगे और लोग ज़ुल्म करेंगे तो हम भी ज़ुल्म करेंगे। तुम अपने मन को एक क़ायदे का पाबन्द बनाओ। अगर लोग नेकी करें तो तुम नेकी करो और अगर लोग तुमसे बुरा सुलूक करें तो तुम ज़ुल्म न करो।"

इसी मानी में है वह हदीस जिसमें नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया है कि मेरे रब ने मुझे नौ (9) बातों का हुक्म दिया है। और उनमें से चार बातें आप (सल्ल०) ने ये बताई कि, 'मैं चाहे किसी से

صَلَحَ مِنْ اٰبَآئِهِمْ وَاَزْوَاجِهِمْ وَذُرِّيّٰتِهِمْ وَالْمَلٰٓئِكَةُ يَدْخُلُوْنَ
عَلَيْهِمْ مِّنْ كُلِّ بَابٍ ۝٢٣ سَلٰمٌ عَلَيْكُمْ بِمَا صَبَرْتُمْ فَنِعْمَ عُقْبَى
الدَّارِ ۝٢٤ وَالَّذِيْنَ يَنْقُضُوْنَ عَهْدَ اللّٰهِ مِنْۢ بَعْدِ مِيْثَاقِهٖ وَيَقْطَعُوْنَ
مَآ اَمَرَ اللّٰهُ بِهٖٓ اَنْ يُّوْصَلَ وَيُفْسِدُوْنَ فِي الْاَرْضِ ۙ اُولٰٓئِكَ لَهُمُ
اللَّعْنَةُ وَلَهُمْ سُوْٓءُ الدَّارِ ۝٢٥ اَللّٰهُ يَبْسُطُ الرِّزْقَ لِمَنْ يَّشَآءُ وَيَقْدِرُ ۭ

दाख़िल होंगे और उनके बाप-दादा और उनकी बीवियों और उनकी औलाद में से जो-जो नेक हैं, वे भी उनके साथ वहाँ जाएँगे। फ़रिश्ते हर तरफ़ से उनके इस्तिक़बाल के लिए आएँगे और उनसे कहेंगे कि "तुमपर सलामती है,[41] तुमने दुनिया में जिस तरह सब्र से काम लिया उसकी वजह से आज तुम इसके हक़दार हुए हो"— तो क्या ही ख़ूब है यह आख़िरत का घर! (25) रहे वे लोग जो अल्लाह के अहद (प्रतिज्ञा) को मज़बूत बाँधने के बाद तोड़ डालते हैं, जो उन रिश्तों को काटते हैं जिन्हें अल्लाह ने जोड़ने का हुक्म दिया है और जो ज़मीन में बिगाड़ फैलाते हैं, वे लानत के क़ाबिल हैं और उनके लिए आख़िरत में बहुत बुरा ठिकाना है।

(26) अल्लाह जिसको चाहता है रोज़ी की कुशादगी बख़्शता है और जिसे चाहता है

ख़ुश हूँ या नाराज़, हर हालत में इनसाफ़ की बात कहूँ, जो मेरा हक़ मारे मैं उसका हक़ अदा करूँ, जो मुझें न दे मैं उसको दूँ, और जो मुझपर ज़ुल्म करे मैं उसको माफ़ कर दूँ"। और इसी मानी में है वह हदीस जिसमें नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया है कि "जो तुझसे ख़ियानत (बेईमानी) करे तू उससे ख़ियानत न कर।" और इसी मानी में है हज़रत उमर (रज़ि॰) की यह बात कि, "जो शख़्स तेरे साथ मामला करने में ख़ुदा से नहीं डरता, उसको सज़ा देने का सबसे अच्छा तरीक़ा यह है कि तू उसके साथ ख़ुदा से डरते हुए मामला कर।"

41. इसका मतलब सिर्फ़ यही नहीं है कि फ़रिश्ते हर तरफ़ से आ-आकर उनको सलाम करेंगे, बल्कि यह भी है कि फ़रिश्ते उनको इस बात की ख़ुशख़बरी देंगे कि अब तुम ऐसी जगह आ गए हो जहाँ तुम्हारे लिए सलामती-ही-सलामती है। अब यहाँ तुम हर आफ़त से, हर तकलीफ़ से, हर मेहनत से, और हर ख़तरे और अन्देशे से महफ़ूज़ हो। (और ज़्यादा तफ़सील के लिए देखें—सूरा-15 हिज्र, हाशिया-29)

ع
وَفَرِحُوا بِالْحَيٰوةِ الدُّنْيَا ۗ وَمَا الْحَيٰوةُ الدُّنْيَا فِي الْاٰخِرَةِ اِلَّا مَتَاعٌ ۝٢٦
وَيَقُوْلُ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا لَوْلَآ اُنْزِلَ عَلَيْهِ اٰيَةٌ مِّنْ رَّبِّهٖ ۗ قُلْ اِنَّ اللّٰهَ
يُضِلُّ مَنْ يَّشَآءُ وَيَهْدِيْٓ اِلَيْهِ مَنْ اَنَابَ ۝٢٧ اَلَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَتَطْمَئِنُّ

नपी-तुली रोज़ी देता है।[42] ये लोग दुनिया की ज़िन्दगी में मगन हैं, हालाँकि दुनिया की ज़िन्दगी आख़िरत के मुक़ाबले में एक थोड़े से सामान के सिवा कुछ भी नहीं है।

(27) ये लोग, जिन्होंने (मुहम्मद सल्ल॰ की पैग़म्बरी को मानने से) इनकार कर दिया है, कहते हैं, "इस आदमी पर इसके रब की तरफ़ से कोई निशानी क्यों न उतरी"[43]— कहो, अल्लाह जिसे चाहता है गुमराह कर देता है और वह अपनी तरफ़ आने का रास्ता उसी को दिखाता है जो उसकी तरफ़ पलटे।[44] (28) ऐसे ही लोग हैं वे जिन्होंने (इस नबी की

---

42. इस आयत का पसमंज़र (पृष्ठभूमि) यह है कि आम जाहिलों की तरह मक्का के इस्लाम-दुश्मन भी अक़ीदे और अमल की अच्छाई-बुराई को देखने के बजाए अमीरी-ग़रीबी के लिहाज़ से इनसानों की क़द्र-क़ीमत का हिसाब लगाते थे। वे समझते थे कि जिसे दुनिया में ख़ूब ऐश का सामान मिल रहा है वह ख़ुदा का प्यारा है, चाहे वह कैसा ही गुमराह और बुरा काम करनेवाला हो, और जो तंगहाल है वह ख़ुदा के ग़ज़ब का शिकार है चाहे वह कैसा ही नेक हो। इसी बुनियाद पर वे क़ुरैश के सरदारों को नबी (सल्ल॰) के ग़रीब साथियों के मुक़ाबले में बड़ा समझते थे और कहते थे कि देख लो, अल्लाह किसके साथ है। इसपर ख़बरदार किया जा रहा है कि रिज़्क़ की कमी-ज़्यादती का मामला अल्लाह के एक दूसरे ही क़ानून से ताल्लुक़ रखता है, जिसमें बहुत-सी दूसरी मस्लहतों के लिहाज़ से किसी को ज़्यादा दिया जाता है और किसी को कम। यह कोई पैमाना नहीं है जिसके लिहाज़ से इसका फ़ैसला किया जाए कि कौन इनसान अख़लाक़ और किरदार के पहलू से अच्छा है और कौन बुरा। इनसानों के दरमियान दर्जों की अस्ल बुनियाद और उनके ख़ुशक़िस्मत और बदक़िस्मत होने की अस्ल कसौटी यह है कि किसने सोच व अमल की सही राह अपनाई और किसने ग़लत, किसने अपने अंदर अच्छी और उम्दा ख़ूबियाँ पैदा कीं और किसने बुरी आदतें और बुरे अख़लाक़ पैदा किए। मगर नादान लोग इसके बजाए यह देखते हैं कि किसको दौलत ज़्यादा मिली और किसको कम।

43. इससे पहले आयत-7 में इस सवाल का जो जवाब दिया जा चुका है उसे सामने रखा जाए। अब दोबारा उनके इसी एतिराज़ को नक़्ल करके एक दूसरे तरीक़े से उसका जवाब दिया जा रहा है।

44. यानी जो अल्लाह की तरफ़ ख़ुद नहीं पलटता और उससे मुँह मोड़ता है उसे ज़बरदस्ती सीधा रास्ता दिखाने का तरीक़ा अल्लाह के यहाँ राइज नहीं है। वह ऐसे शख़्स को उन्हीं रास्तों में भटकने की छूट दे देता है जिनमें वह ख़ुद भटकना चाहता है। वही सारे ज़रिए जो किसी

قُلُوْبُهُمْ بِذِكْرِ اللّٰهِ ۭ اَلَا بِذِكْرِ اللّٰهِ تَطْمَىِٕنُّ الْقُلُوْبُ ۝۲۸ اَلَّذِيْنَ اٰمَنُوْا
وَعَمِلُوا الصّٰلِحٰتِ طُوْبٰى لَهُمْ وَحُسْنُ مَاٰبٍ ۝۲۹ كَذٰلِكَ اَرْسَلْنٰكَ فِيْٓ
اُمَّةٍ قَدْ خَلَتْ مِنْ قَبْلِهَآ اُمَمٌ لِّتَتْلُوَا۟ عَلَيْهِمُ الَّذِيْٓ اَوْحَيْنَآ اِلَيْكَ
وَهُمْ يَكْفُرُوْنَ بِالرَّحْمٰنِ ۭ قُلْ هُوَ رَبِّيْ لَآ اِلٰهَ اِلَّا هُوَ ۚ عَلَيْهِ تَوَكَّلْتُ

दावत को) मान लिया है और उनके दिलों को अल्लाह की याद से इत्मीनान हासिल होता है। ख़बरदार रहो, अल्लाह की याद ही वह चीज़ है जिससे दिलों को इत्मीनान मिला करता है। (29) फिर जिन लोगों ने हक़ की दावत को माना और नेक काम किए, वे ख़ुशनसीब हैं और उनके लिए अच्छा अंजाम है।

(30) ऐ नबी! इसी शान से हमने तुम्हें रसूल बनाकर भेजा है,[45] एक ऐसी क़ौम में जिससे पहले बहुत-सी क़ौमें गुज़र चुकी हैं, ताकि तुम इन लोगों को वह पैग़ाम सुनाओ जो हमने तुमपर उतारा है, इस हाल में कि ये अपने निहायत मेहरबान ख़ुदा के इनकारी बने हुए हैं।[46] इनसे कहो कि वही मेरा रब है, उसके सिवा कोई माबूद नहीं है, उसी पर

हिदायत चाहनेवाले इनसान के लिए हिदायत का सबब बनते हैं, एक गुमराही चाहनेवाले इनसान के लिए गुमराही का सबब बना दिए जाते हैं। जलती हुई शमा भी उसके सामने आती है तो रास्ता दिखाने के बजाय उसकी आँखें चुंधिया देने ही का काम देती है। यही मतलब है अल्लाह के किसी शख़्स को गुमराह करने का।

निशानी की माँग का जो जवाब यहाँ दिया गया है वह अपने अंदाजे-बयान के लिहाज़ से बेमिसाल है। वे कहते थे कि कोई निशानी दिखाओ तो हमें तुम्हारी सच्चाई का यक़ीन आए। जवाब में कहा गया कि नादानो, तुम्हें सीधा रास्ता न मिलने का अस्ल सबब निशानियों की कमी नहीं है, बल्कि तुम्हारे अपने हिदायत चाहने की कमी है। निशानियाँ तो हर तरफ़ बेहद व बेहिसाब फैली हुई हैं, मगर उनमें से कोई भी तुम्हारे लिए रास्ता दिखानेवाली नहीं बनती, क्योंकि तुम ख़ुदा के रास्ते पर जाना ही नहीं चाहते हो। अब अगर कोई और निशानी आए तो वह तुम्हारे लिए कैसे फ़ायदेमन्द हो सकती है? तुम शिकायत करते हो कि कोई निशानी नहीं दिखाई गई। मगर जिन्हें ख़ुदा के रास्ते की तलाश है उन्हें निशानियाँ दिखाई दे रही हैं और वे उन्हें देख-देखकर सीधा रास्ता पा रहे हैं।

45. यानी किसी ऐसी निशानी के बिना जिसकी ये लोग माँग करते हैं।

46. यानी उसकी बन्दगी से मुँह मोड़े हुए हैं, उसकी सिफ़ात (गुणों) और अधिकारों और हक़ों में दूसरों को उसका साझी बना रहे हैं, और उसकी नेमतों के शुक्रिए दूसरों को अदा कर रहे हैं।

وَاِلَيْهِ مَتَابِ ۝٣٠ وَلَوْ اَنَّ قُرْاٰنًا سُيِّرَتْ بِهِ الْجِبَالُ اَوْ قُطِّعَتْ بِهِ
الْاَرْضُ اَوْ كُلِّمَ بِهِ الْمَوْتٰى ۗ بَلْ لِّلّٰهِ الْاَمْرُ جَمِيْعًا ۗ اَفَلَمْ يَايْـَٔسِ
الَّذِيْنَ اٰمَنُوْٓا اَنْ لَّوْ يَشَآءُ اللّٰهُ لَهَدَى النَّاسَ جَمِيْعًا ۗ وَلَا يَزَالُ

मैंने भरोसा किया और उसी की तरफ़ मुझे पलटकर जाना है।

(31) और क्या हो जाता अगर कोई ऐसा क़ुरआन उतार दिया जाता जिसके ज़ोर से पहाड़ चलने लगते, या ज़मीन फट जाती, या मुर्दे क़ब्रों से निकलकर बोलने लगते?[47] (इस तरह की निशानियाँ दिखा देना कुछ मुश्किल नहीं है) बल्कि सारा अधिकार ही अल्लाह के हाथ में हैं।[48] फिर क्या ईमानवाले (अभी तक इनकारवाले की तलब के जवाब में किसी निशानी के ज़ाहिर होने की उम्मीद लगाए बैठे हैं और वे यह जानकर)

---

47. इस आयत को समझने के लिए यह बात सामने रहनी ज़रूरी है कि इसमें बात ग़ैर-मुस्लिमों से नहीं, बल्कि मुसलमानों से कही जा रही है। मुसलमान जब ग़ैर-मुस्लिमों की तरफ़ से बार-बार निशानी की माँग सुनते थे तो उनके दिलों में बेचैनी पैदा होती थी कि काश! इन लोगों को कोई ऐसी निशानी दिखा दी जाती जिससे ये लोग मान जाते! फिर जब वे महसूस करते थे कि इस तरह की किसी निशानी के न आने की वजह से इस्लाम का इनकार करनेवालों को नबी (सल्ल०) की रिसालत (पैग़म्बरी) के बारे में लोगों के दिलों में शक फैलाने का मौक़ा मिल रहा है तो उनकी यह बेचैनी और भी ज़्यादा बढ़ जाती थी। इसपर मुसलमानों से कहा जा रहा है कि अगर क़ुरआन की किसी सूरा के साथ ऐसी और ऐसी निशानियाँ यकायक दिखा दी जातीं तो क्या वाक़ई तुम यह समझते हो कि ये लोग ईमान ले आते? क्या तुम्हें इनसे यह ख़ुशगुमानी है कि ये हक़ क़बूल करने के लिए बिलकुल तैयार बैठे हैं, सिर्फ़ एक निशानी के दिखाए जाने की कमी है? जिन लोगों को क़ुरआन की तालीम में कायनात की निशानियों में, नबी की पाकीज़ा ज़िन्दगी में, सहाबा किराम की ज़िन्दगी में आई इंक़िलाबी तबदीली में हक़ की रौशनी नज़र न आई क्या तुम समझते हो कि वे पहाड़ों के चलने और ज़मीन के फटने और मुर्दों के क़ब्रों से निकल आने में कोई रौशनी पा लेंगे?

48. यानी निशानियों के न दिखाने की अस्ल वजह यह नहीं है अल्लाह तआला उनको दिखाने की क़ुदरत नहीं रखता, बल्कि अस्ल वजह यह है कि इन तरीक़ों से काम लेना अल्लाह की मस्लहत के ख़िलाफ़ है। इसलिए कि अस्ल मक़सद तो सीधा रास्ता दिखाना है, न कि एक नबी की नुबूवत (पैग़म्बरी) को मनवा लेना, और सीधा रास्ता दिखाना इसके बिना मुमकिन नहीं कि लोगों की सोच और समझ का सुधार हो।

الَّذِيْنَ كَفَرُوْا تُصِيْبُهُمْ بِمَا صَنَعُوْا قَارِعَةٌ اَوْ تَحُلُّ قَرِيْبًا مِّنْ
ع دَارِهِمْ حَتّٰى يَاْتِيَ وَعْدُ اللّٰهِ ؕ اِنَّ اللّٰهَ لَا يُخْلِفُ الْمِيْعَادَ ﴿۳۱﴾ وَلَقَدِ
اسْتُهْزِئَ بِرُسُلٍ مِّنْ قَبْلِكَ فَاَمْلَيْتُ لِلَّذِيْنَ كَفَرُوْا ثُمَّ اَخَذْتُهُمْ ۫
فَكَيْفَ كَانَ عِقَابِ ﴿۳۲﴾ اَفَمَنْ هُوَ قَآئِمٌ عَلٰى كُلِّ نَفْسٍۭ بِمَا كَسَبَتْ ۚ
وَجَعَلُوْا لِلّٰهِ شُرَكَآءَ ؕ قُلْ سَمُّوْهُمْ ؕ اَمْ تُنَبِّـُٔوْنَهٗ بِمَا لَا يَعْلَمُ فِى

मायूस नहीं हो गए कि अगर अल्लाह चाहता तो सारे इनसानों को हिदायत दे देता?[49] जिन लोगों ने अल्लाह के साथ इनकार का रवैया अपना रखा है उनपर उनके करतूतों की वजह से कोई-न-कोई आफ़त आती ही रहती है, या उनके घर के क़रीब कहीं उतरती है। यह सिलसिला चलता रहेगा यहाँ तक कि अल्लाह का वादा पूरा हो जाए। यक़ीनन अल्लाह अपने वादे के ख़िलाफ़ काम नहीं करता। (32) तुमसे पहले भी बहुत-से रसूलों का मज़ाक़ उड़ाया जा चुका है, मगर मैंने हमेशा इनकारियों को ढील दी और आख़िरकार उनको पकड़ लिया। फिर देख लो कि मेरी सज़ा कैसी सख़्त थी।

(33) फिर क्या वह जो एक-एक जानदार की कमाई पर नज़र रखता है[50] (उसके मुक़ाबले में ये हिम्मतें की जा रही हैं कि[51]) लोगों ने उसके कुछ साझी ठहरा रखे हैं? ऐ नबी! इनसे कहो, (अगर सचमुच वे अल्लाह के अपने बनाए हुए साझी हैं तो) ज़रा उनके नाम लो कि वे कौन हैं, क्या तुम अल्लाह को एक नई बात की ख़बर दे रहे हो जिसे वह

---

49. यानी अगर समझ-बूझ के बिना सिर्फ़ एक ग़ैर-शऊरी ईमान चाहिए होता तो उसके लिए निशानियाँ दिखाने की तकलीफ़ करने की क्या ज़रूरत थी। यह काम तो इस तरह भी हो सकता था कि अल्लाह सारे इनसानों को ईमानवाला ही पैदा कर देता।

50. यानी जो एक-एक शख़्स के हाल से अलग-अलग वाक़िफ़ है और जिसकी निगाह से न किसी नेक आदमी की नेकी छिपी हुई है, न किसी बुरे आदमी की बुराई।

51. जसारतें (दुस्साहस) ये कि उसके बराबर और मद्दे-मुक़ाबिल (प्रतिद्वन्द्वी) बताए जा रहे हैं, उसकी हस्ती और सिफ़ात और हक़ों में उसकी मख़लूक़ (सृष्टि) को शरीक किया जा रहा है, और उसकी ख़ुदाई में रहकर लोग यह समझ रहे हैं कि हम जो कुछ चाहें करें, हमसे कोई पूछ-गच्छ करनेवाला नहीं।

الْاَرْضِ اَمْ بِظَاهِرٍ مِّنَ الْقَوْلِ ۭ بَلْ زُيِّنَ لِلَّذِيْنَ كَفَرُوْا مَكْرُهُمْ
وَصُدُّوْا عَنِ السَّبِيْلِ ۭ وَمَنْ يُّضْلِلِ اللّٰهُ فَمَا لَهٗ مِنْ هَادٍ ۝ لَهُمْ

अपनी ज़मीन में नहीं जानता? या तुम लोग बस यूँ ही जो मुँह में आता है, कह डालते हो?[52] हक़ीक़त यह है कि जिन लोगों ने दावते-हक़ (सत्य-संदेश) को मानने से इनकार किया है, उनके लिए उनकी मक्कारियाँ[53] ख़ुशनुमा बना दी गई हैं और वे सीधे रास्ते से

52. यानी उसके शरीक जो तुमने बना रखे हैं उनके मामले में तीन ही शक्लें हो सकती हैं —
एक यह कि तुम्हारे पास कोई भरोसेमन्द ख़बर आई हो कि अल्लाह ने फ़ुलाँ-फ़ुलाँ हस्तियों को अपनी सिफ़ात, या अधिकारों, या हक़्क़ों में शरीक ठहराया है। अगर यह सूरत है तो ज़रा मेहरबानी करके हमें भी बताओ कि वे कौन-कौन लोग हैं और उनके ख़ुदा का साझी बनाए जाने की ख़बर आप लोगों को किस ज़रिए से पहुँची है।
दूसरी मुमकिन शक्ल यह है कि अल्लाह को ख़ुद ख़बर नहीं है कि ज़मीन में कुछ लोग उसके साझी बन गए हैं और अब आप उसको यह ख़बर देने चले हैं। अगर यह बात है तो सफ़ाई के साथ अपनी इस पोज़ीशन का इक़रार करो। फिर हम भी देख लेंगे कि दुनिया में कितने ऐसे बेवक़ूफ़ निकलते हैं जो तुम्हारे इस सरासर बेहूदा रास्ते की पैरवी पर क़ायम रहते हैं।
लेकिन अगर ये दोनों बातें नहीं हैं तो फिर तीसरी ही शक्ल बाक़ी रह जाती है, और वह यह है कि तुम बिना किसी सनद (प्रमाण) के और बिना किसी दलील के यूँही जिसको चाहते हो ख़ुदा का रिश्तेदार ठहरा लेते हो, जिसको चाहते हो दाता और फ़रियाद सुननेवाला कह देते हो, और जिसके बारे में चाहते हो दावा कर देते हो कि फ़ुलाँ इलाक़े के सुल्तान फ़ुलाँ साहब हैं और फ़ुलाँ काम फ़ुलाँ हज़रत की ताईद व मदद से पूरे होते हैं।

53. इस शिर्क को मक्कारी कहने की एक वजह यह है कि दर अस्ल आसमान की जिन चीज़ों (सूरज, चाँद, सितारे वग़ैरा) या फ़रिश्तों या रूहों या बुज़ुर्ग इनसानों को ख़ुदाई सिफ़ात व इख़्तियारात का मालिक ठहरा दिया गया है, और जिनको ख़ुदा के ख़ास हक़्क़ों में साझी बना लिया गया है, उनमें से किसी ने भी कभी न इन सिफ़ात व इख़्तियारात का दावा किया, न इन हक़्क़ों की माँग की, और न लोगों को यह तालीम दी कि तुम हमारे आगे इबादत की रस्में अदा करो, हम तुम्हारे काम बनाया करेंगे। यह तो चालाक इनसानों का काम है कि उन्होंने अवाम पर अपनी ख़ुदाई का सिक्का जमाने के लिए और उनकी कमाइयों में हिस्सा बटाने के लिए कुछ बनावटी ख़ुदा गढ़ लिए, लोगों को उनका अक़ीदतमन्द (श्रद्धालु) बनाया और अपने आपको किसी-न-किसी शक्ल में उनका नुमाइंदा ठहराकर अपना उल्लू सीधा करना शुरू कर दिया। दूसरी वजह शिर्क को मक्कारी बताने की यह है कि दर अस्ल यह एक मन का धोखा है और एक चोर दरवाज़ा है जिसके ज़रिए से इनसान दुनियापरस्ती के लिए, अख़लाक़ी बन्दिशों से बचने के लिए

عَذَابٌ فِي الْحَيٰوةِ الدُّنْيَا وَلَعَذَابُ الْاٰخِرَةِ اَشَقُّ ۚ وَمَا لَهُمْ مِّنَ اللّٰهِ
مِنْ وَّاقٍ ۝٣٤ مَثَلُ الْجَنَّةِ الَّتِيْ وُعِدَ الْمُتَّقُوْنَ ۚ تَجْرِيْ مِنْ تَحْتِهَا الْاَنْهٰرُ ۚ
اُكُلُهَا دَآئِمٌ وَّظِلُّهَا ۚ تِلْكَ عُقْبَى الَّذِيْنَ اتَّقَوْا ۖ وَّعُقْبَى الْكٰفِرِيْنَ
النَّارُ ۝٣٥ وَالَّذِيْنَ اٰتَيْنٰهُمُ الْكِتٰبَ يَفْرَحُوْنَ بِمَآ اُنْزِلَ اِلَيْكَ وَمِنَ
الْاَحْزَابِ مَنْ يُّنْكِرُ بَعْضَهٗ ۚ قُلْ اِنَّمَآ اُمِرْتُ اَنْ اَعْبُدَ اللّٰهَ وَلَآ اُشْرِكَ

रोक दिए गए है।[54] फिर जिसको अल्लाह गुमराही में फेंक दे, उसे कोई राह दिखानेवाला नहीं है। (34) ऐसे लोगों के लिए दुनिया की ज़िन्दगी ही में अज़ाब है। और आख़िरत का अज़ाब उससे भी ज़्यादा सख़्त है, कोई ऐसा नहीं जो उन्हें अल्लाह से बचानेवाला हो। (35) ख़ुदातरस इनसानों के लिए जिस जन्नत का वादा किया गया है, उसकी शान यह है कि उसके नीचे नहरें बह रहीं हैं, उसके फल हमेशा रहनेवाले हैं और उसका साया कभी न ख़त्म होनेवाला। यह अंजाम है मुत्तक़ी (परहेज़गार) लोगों का, और हक़ का इनकार करनेवालों का अंजाम यह है कि उनके लिए दोज़ख़ की आग है।

(36) ऐ नबी, जिन लोगों को हमने पहले किताब दी थी, वे इस किताब से जो हमने तुमपर उतारी है, ख़ुश हैं और मुख़्तलिफ़ गरोहों में कुछ लोग ऐसे भी हैं जो उसकी कुछ बातों को नहीं मानते। तुम साफ़ कह दो कि "मुझे तो सिर्फ़ अल्लाह की बन्दगी का हुक्म दिया गया है और इससे मना किया गया है कि किसी को उसके साथ साझी ठहराऊँ।

और ग़ैर ज़िम्मेदारी की ज़िन्दगी गुज़ारने के लिए फ़रार का रास्ता निकालता है।

तीसरी वजह जिसकी बुनियाद पर मुशरिकों के रवैये को मक्कारी बताया गया है आगे आती है।

54. यह इनसानी फ़ितरत है कि जब इनसान एक चीज़ के मुक़ाबले में दूसरी चीज़ को अपनाता है तो वह अपने मन को इत्मीनान दिलाने के लिए और लोगों को अपने सही रास्ते पर होने का यक़ीन दिलाने के लिए अपनी अपनाई हुई चीज़ को हर तरीक़े से दलील देकर सही साबित करने की कोशिश करता है और अपनी रद्द की हुई चीज़ के ख़िलाफ़ हर तरह की बातें छाँटनी शुरू कर देता है। इसी वजह से कहा गया है कि जब उन्होंने हक़ की दावत को मानने से इनकार कर दिया तो फ़ितरत के क़ानून के मुताबिक़ उनके लिए उनकी गुमराही और उस गुमराही पर क़ायम रहने के लिए उनकी मक्कारी ख़ुशनुमा बना दी गई और इसी फ़ितरी क़ानून के मुताबिक़ ये सीधे रास्ते पर आने से रोक दिए गए।

بِهٖ ۭ اِلَيْهِ اَدْعُوْا وَاِلَيْهِ مَاٰبِ ۝۳۶ وَكَذٰلِكَ اَنْزَلْنٰهُ حُكْمًا عَرَبِيًّا ۭ وَلَىِٕنِ
اتَّبَعْتَ اَهْوَاۗءَهُمْ بَعْدَمَا جَاۗءَكَ مِنَ الْعِلْمِ ۙ مَا لَكَ مِنَ اللّٰهِ مِنْ وَّلِيٍّ
وَّلَا وَاقٍ ۝۳۷ۧ وَلَقَدْ اَرْسَلْنَا رُسُلًا مِّنْ قَبْلِكَ وَجَعَلْنَا لَهُمْ اَزْوَاجًا
وَّذُرِّيَّةً ۭ وَمَا كَانَ لِرَسُوْلٍ اَنْ يَّاْتِيَ بِاٰيَةٍ اِلَّا بِاِذْنِ اللّٰهِ ۭ لِكُلِّ اَجَلٍ
كِتَابٌ ۝۳۸ يَمْحُوا اللّٰهُ مَا يَشَاۗءُ وَيُثْبِتُ ښ وَعِنْدَهٗٓ اُمُّ الْكِتٰبِ ۝۳۹

इसलिए मैं उसी की तरफ़ दावत देता हूँ और उसी की तरफ़ मेरा पलटना है।"[55] (37) इसी हिदायत के साथ हमने यह अरबी में फ़रमान तुमपर उतारा है। अब अगर तुमने इस इल्म के बावजूद, जो तुम्हारे पास आ चुका है, लोगों की ख़ाहिशों की पैरवी की तो अल्लाह के मुक़ाबले में न कोई तुम्हारा हिमायती और मददगार है और न कोई उसकी पकड़ से तुम्हें बचा सकता है।

(38) तुमसे पहले भी हम बहुत-से रसूल भेज चुके हैं और उन्हें हमने बीवी-बच्चोंवाला ही बनाया था।[56] और किसी रसूल की भी यह ताक़त न थी कि अल्लाह की इजाज़त के बिना कोई निशानी ख़ुद ला दिखाता।[57] हर दौर के लिए एक किताब है। (39) अल्लाह जो कुछ चाहता है मिटा देता है और जिस चीज़ को चाहता है क़ायम रखता है। 'उम्मुल-किताब' (मूल ग्रंथ) उसी के पास है।[58]

---

55. यह एक ख़ास बात का जवाब है जो उस वक़्त मुख़ालिफ़ों की तरफ़ से कही जा रही थी। वे कहते थे कि अगर यह साहब सचमुच वही तालीम लेकर आए हैं जो पिछले पैग़म्बर लाए थे, जैसा कि इनका दावा है, तो आख़िर क्या बात है कि यहूदी व ईसाई, जो पिछले पैग़म्बरों की पैरवी करनेवाले हैं आगे बढ़कर इनका इस्तिक़बाल नहीं करते। इसपर कहा जा रहा है कि उनमें से कुछ लोग इसपर ख़ुश हैं और कुछ नाराज़, मगर ऐ नबी! चाहे कोई ख़ुश हो या नाराज़, तुम साफ़ कह दो कि मुझे तो ख़ुदा की तरफ़ से यह तालीम दी गई है और मैं बहरहाल इसी की पैरवी करूँगा।

56. यह एक और एतिराज़ का जवाब है जो नबी (सल्ल.) पर किया जाता था। वे कहते थे कि यह अच्छा नबी है जो बीवी और बच्चे रखता है। भला पैग़म्बरों को भी नफ़सानी ख़ाहिशों से कोई ताल्लुक़ हो सकता है?

57. यह भी एक एतिराज़ का जवाब है। मुख़ालिफ़ लोग कहते थे कि मूसा सफ़ेद चमकता हुआ

وَاِنۡ مَّا نُرِيَنَّكَ بَعۡضَ الَّذِىۡ نَعِدُهُمۡ اَوۡ نَتَوَفَّيَنَّكَ فَاِنَّمَا عَلَيۡكَ
الۡبَلٰغُ وَعَلَيۡنَا الۡحِسَابُ ۝ اَوَلَمۡ يَرَوۡا اَنَّا نَاۡتِى الۡاَرۡضَ نَـنۡقُصُهَا مِنۡ

(40) और ऐ नबी! जिस बुरे अंजाम की धमकी हम इन लोगों को दे रहे हैं, उसका कोई हिस्सा चाहे हम तुम्हारे जीते जी दिखा दें या उसके ज़ाहिर होने से पहले हम तुम्हें उठा लें, बहरहाल तुम्हारा काम सिर्फ़ पैग़ाम पहुँचा देना है और हिसाब लेना हमारा काम है।[59] (41) क्या ये लोग देखते नहीं हैं कि हम इस सरज़मीन (भू-भाग) पर चले आ रहे

हाथ और असा (लाठी) लाए थे। मसीह अंधों को देखनेवाला बना देते और कोढ़ियों को तन्दुरुस्त कर देते थे। सालेह (अलैहि॰) ने ऊँटनी का निशान दिखाया था। तुम क्या निशानी लेकर आए हो? इसका जवाब यह दिया गया है कि जिस नबी ने जो चीज़ भी दिखाई है अपने इख़्तियार और अपनी ताक़त से नहीं दिखाई है। अल्लाह ने जिस वक़्त जिसके ज़रिए से जो कुछ ज़ाहिर करना मुनासिब समझा वह सामने आया। अब अगर अल्लाह की मस्लहत होगी तो जो वह चाहेगा दिखाएगा। पैग़म्बर ख़ुद किसी ख़ुदाई इख़्तियार का दावेदार नहीं है कि तुम उससे निशानी दिखाने की माँग करते हो।

58. यह भी मुख़ालिफ़ों के एक एतिराज़ का जवाब है। वे कहते थे कि पहले आई हुई किताबें जब मौजूद थीं तो इस नई किताब की क्या ज़रूरत थी? तुम कहते हो कि उनमें फेर-बदल हो गया है, अब वे मंसूख़ (निरस्त) हैं और इस नई किताब की पैरवी का हुक्म दिया गया है। मगर ख़ुदा की किताब में फ़ेर-बदल कैसे हो सकता है? ख़ुदा ने उसकी हिफ़ाज़त क्यों न की? और कोई ख़ुदाई किताब मंसूख़ कैसे हो सकती है? तुम कहते हो कि यह उसी ख़ुदा की किताब है जिसने तौरात व इंजील उतारी थी। मगर यह क्या बात है कि तुम्हारा तरीक़ा तौरात के कुछ हुक्मों के ख़िलाफ़ है? मसलन कुछ चीज़ें जिन्हें तौरातवाले हराम कहते हैं तुम उन्हें हलाल समझकर खाते हो। उन एतिराज़ों के जवाब बाद की सूरतों में ज़्यादा तफ़सील के साथ दिए गए हैं। यहाँ उनका सिर्फ़ एक मुख़्तसर जामे (व्यापक) जवाब देकर छोड़ दिया गया है।
"उम्मुल-किताब" के मानी हैं "अस्ल किताब" यानी वह मंबा (उद्गम) व सरचश्मा (मूलस्रोत) जिससे तमाम आसमानी किताबें निकली हैं।

59. मतलब यह है कि तुम इस फ़िक्र में न पड़ो कि जिन लोगों ने तुम्हारी हक़ की इस दावत को झुठला दिया है उनका अंजाम क्या होता है और कब वह सामने आता है। तुम्हारे सुपुर्द जो काम किया गया है उसे पूरी यकसूई के साथ किए चले जाओ और फ़ैसला हमपर छोड़ दो। यहाँ बात बज़ाहिर नबी (सल्ल0) से कही जा रही है, मगर अस्ल में बात उन मुख़ालिफ़ों को सुनानी मक़सूद है जो चैलेंज के अन्दाज़ में बार-बार नबी (सल्ल॰) से कहते थे कि हमारी जिस शामत की धमकियाँ तुम हमें दिया करते हो आख़िर वह आ क्यों नहीं जाती?

أَطْرَافِهَا ۚ وَاللَّهُ يَحْكُمُ لَا مُعَقِّبَ لِحُكْمِهِ ۚ وَهُوَ سَرِيعُ الْحِسَابِ ﴿٤١﴾ وَقَدْ
مَكَرَ الَّذِينَ مِن قَبْلِهِمْ فَلِلَّهِ الْمَكْرُ جَمِيعًا ۖ يَعْلَمُ مَا تَكْسِبُ كُلُّ
نَفْسٍ ۗ وَسَيَعْلَمُ الْكُفَّارُ لِمَنْ عُقْبَى الدَّارِ ﴿٤٢﴾ وَيَقُولُ الَّذِينَ كَفَرُوا
لَسْتَ مُرْسَلًا ۚ قُلْ كَفَىٰ بِاللَّهِ شَهِيدًا بَيْنِي وَبَيْنَكُمْ وَمَنْ عِندَهُ
عِلْمُ الْكِتَابِ ﴿٤٣﴾ ع

हैं और इसका दायरा हर तरफ़ से तंग करते चले आते हैं?[60] अल्लाह हुकूमत कर रहा है, कोई उसके फ़ैसलों पर नज़रसानी करनेवाला नहीं है, और उसे हिसाब लेते कुछ देर नहीं लगती। (42) इनसे पहले जो लोग हो गुज़रे हैं वे भी बड़ी-बड़ी चालें चल चुके हैं,[61] मगर अस्ल फ़ैसला करनेवाली चाल तो पूरी-की-पूरी अल्लाह ही के हाथ में है। वह जानता है कि कौन क्या कुछ कमाई कर रहा है, और बहुत जल्द हक़ के ये इनकारी देख लेंगे कि अंजाम किसका बेहतर होता है।

(43) ये इनकारी कहते हैं कि तुम अल्लाह के भेजे हुए नहीं हो। कहो, "मेरे और तुम्हारे बीच अल्लाह की गवाही काफ़ी है और फिर हर उस आदमी की गवाही जो आसमानी किताब का इल्म रखता है।"[62]

---

60. यानी क्या तुम्हारे मुख़ालिफ़ों को नज़र नहीं आ रहा है कि इस्लाम का असर अरब की सरज़मीन के कोने-कोने में फैलता जा रहा है और चारों तरफ़ से इनपर घेरा तंग होता चला जाता है? ये इनकी शामत के आसार नहीं हैं, तो क्या हैं?
अल्लाह तआला का यह कहना कि "हम इस सरज़मीन पर चले आ रहे हैं" एक बहुत लतीफ़ (सूक्ष्म और कोमल) अन्दाज़े-बयान है। चूँकि हक़ की दावत अल्लाह की तरफ़ से होती है और अल्लाह उसके पेश करनेवालों के साथ होता है, इसलिए ज़मीन के किसी हिस्से में इस दावत के फैलने को अल्लाह तआला यूँ बयान करता है कि हम ख़ुद इस हिस्से में बढ़े चले आ रहे हैं।
61. यानी आज यह कोई नई बात नहीं है कि हक़ की आवाज़ को दबाने के लिए झूठ और फ़रेब और ज़ुल्म के हथियार इस्तेमाल किए जा रहे हैं। पिछली तारीख़ में बहुत बार ऐसी ही चालों से हक़ की दावत को शिकस्त देने की कोशिशें की जा चुकी हैं।
62. यानी हर वह शख़्स जो सचमुच आसमानी किताबों का इल्म रखता है इस बात की गवाही देगा कि जो कुछ मैं पेश कर रहा हूँ वह वही तालीम है जो पिछले पैग़म्बर लेकर आए थे।

☆☆☆

[illegible]

14. इबराहीम

परिचय

नाम

इस सूरा का नाम इसकी आयत-35 के जुमले "याद करो वह वक़्त जब इबराहीम ने दुआ की थी कि रब! इस शहर (मक्का) को अम्न और सुकून का शहर बना" से लिया गया है। इस नाम का मतलब यह नहीं है कि इस सूरा में हज़रत इबराहीम की ज़िन्दगी के हालात बयान हुए हैं, बल्कि यह भी ज़्यादातर सूरतों के नामों की तरह अलामत के तौर पर है, यानी वह सूरा जिसमें इबराहीम (अलै.) का ज़िक्र आया है।

उतरने का ज़माना

आम अन्दाज़े-बयान मक्का के आख़िरी दौर की सूरतों का-सा है। सूरा-13 (रअ़द) से क़रीब ज़माने ही की उतरी सूरा मालूम होती है। ख़ास तौर से आयत-13 के अल्फ़ाज़ "इनकार करनेवालों ने अपने रसूलों से कहा कि या तो तुम्हें हमारी मिल्लत (पंथ) में वापस आना होगा वरना हम तुम्हें अपने देश से निकाल देंगे" का साफ़ इशारा इस तरफ़ है कि उस वक़्त मक्का में मुसलमानों पर ज़ुल्मो-सितम अपनी इन्तिहा को पहुँच चुका था और मक्कावाले पिछली काफ़िर क़ौमों की तरह अपने यहाँ के ईमानवालों को शहर से निकाल देने पर तुल गए थे। इसी बुनियाद पर उन्हें वह धमकी सुनाई गई जो उन्हीं के जैसे रवैये पर चलनेवाली पिछली क़ौमों को दी गई थी कि "हम ज़ालिमों को हलाक करके रहेंगे" और ईमानवालों को वही तसल्ली दी गई जो उनके अगलों को दी जाती रही है कि "हम इन ज़ालिमों को ख़त्म करने के बाद तुम ही को ज़मीन के इस हिस्से पर आबाद करेंगे।"

इस तरह आख़िरी आयतों के तेवर भी यही बताते हैं कि यह सूरा मक्का के आख़िरी दौर से ताल्लुक़ रखती है।

मर्कज़ी मज़मून और मक़सद

जो लोग नबी (सल्ल.) के रसूल होने का इनकार कर रहे थे और आप (सल्ल.) के पैग़ाम को नाकाम करने के लिए हर तरह की बुरी से बुरी चालें चल रहे थे, उन्हें

समझाया-बुझाया गया और ख़बरदार किया गया, लेकिन समझाने-बुझाने के मुक़ाबले इस सूरा में ख़बरदार करने, मलामत करने और डाँट-फटकार का अंदाज़ ज़्यादा तेज़ है। इसकी वजह यह है कि समझाने-बुझाने का हक़ इससे पहले की सूरतों में अच्छी तरह अदा किया जा चुका था और इसके बावजूद क़ुरैश के इस्लाम दुश्मनों की हठधर्मी, दुश्मनी, मुख़ालफ़त, शरारत और ज़ुल्मो-सितम दिन-ब-दिन बढ़ता ही चला जा रहा था।

☆☆☆

﴿ اٰيَاتُهَا ٥٢ ﴾ ﴿ ١٤ سُوْرَةُ اِبْرٰهِيْمَ مَكِّيَّةٌ ٧٢ ﴾ ﴿ رُكُوْعَاتُهَا ٧ ﴾

بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ ○

الٓرٰ ۚ كِتٰبٌ اَنْزَلْنٰهُ اِلَيْكَ لِتُخْرِجَ النَّاسَ مِنَ الظُّلُمٰتِ اِلَى النُّوْرِ ۙ
بِاِذْنِ رَبِّهِمْ اِلٰى صِرَاطِ الْعَزِيْزِ الْحَمِيْدِ ۙ ① اللّٰهِ الَّذِيْ لَهٗ مَا فِي

14. इबराहीम

(मक्का में उतरी – आयतें-52)

अल्लाह के नाम से जो बेइन्तिहा मेहरबान और रहम फ़रमानेवाला है।

(1) अलिफ़-लाम-रा। ऐ नबी! यह एक किताब है, जिसको हमने तुम्हारी तरफ़ उतारा है, ताकि तुम लोगों को अंधेरों से निकालकर रौशनी में लाओ; उनके रब की मेहरबानी से, उस ख़ुदा के रास्ते पर[1] जो ज़बरदस्त और अपनी ज़ात में आप महमूद

1. यानी अंधेरों से निकालकर रौशनी में लाने का मतलब शैतानी रास्तों से हटाकर ख़ुदा के रास्ते पर लाना है। दूसरे लफ़्ज़ों में हर वह शख़्स जो ख़ुदा की राह पर नहीं है, वह अस्ल में जहालत के अंधेरों में भटक रहा है, चाहे वह अपने आपको कितना ही रौशन ख़याल समझ रहा हो और अपने दावे में इल्म की रौशनी से कितना ही जगमगा रहा हो। इसके बरख़िलाफ़ जिसने ख़ुदा का रास्ता पा लिया वह इल्म की रौशनी में आ गया है, चाहे वह एक अनपढ़ देहाती ही क्यों न हो। फिर यह जो कहा कि तुम इनको अपने रब की इजाज़त या उसकी मेहरबानी से ख़ुदा के रास्ते पर लाओ, तो इसमें अस्ल में इस हक़ीक़त की तरफ़ इशारा है कि कोई तब्लीग़ करनेवाला, चाहे वह नबी ही क्यों न हो, सीधा रास्ता पेश कर देने से ज़्यादा कुछ नहीं कर सकता। किसी को इस रास्ते पर ले आना उसके बस में नहीं है। इसका दारोमदार सरासर अल्लाह की मेहरबानी और उसकी इजाज़त पर है। अल्लाह किसी पर मेहरबान हो तो वह हिदायत पा सकता है, वरना पैग़म्बर जैसा बेहतरीन तबलीग़ करनेवाला पूरा ज़ोर लगाकर भी उसको हिदायत नहीं दे सकता। रही अल्लाह की तौफ़ीक़ (मेहरबानी), तो उसका क़ानून बिलकुल अलग है जिसे क़ुरआन में कई जगहों पर साफ़-साफ़ बयान कर दिया गया है। इससे साफ़ मालूम होता है कि ख़ुदा की तरफ़ से हिदायत की ख़ुशनसीबी उसी को मिलती है जो ख़ुद हिदायत चाहता हो, ज़िद और हठधर्मी और तास्सुब (पक्षपात) से पाक हो, अपने मन का बन्दा अपनी ख़ाहिशों का ग़ुलाम न हो, खुली आँखों से देखे, खुले कानों से सुने, साफ़ दिमाग़ से सोचे-समझे और मुनासिब बातों को बेलाग तरीक़े से माने।

السَّمٰوٰتِ وَمَا فِي الْاَرْضِ ؕ وَوَيْلٌ لِّلْكٰفِرِيْنَ مِنْ عَذَابٍ شَدِيْدِ ۙ ﴿٢﴾
الَّذِيْنَ يَسْتَحِبُّوْنَ الْحَيٰوةَ الدُّنْيَا عَلَى الْاٰخِرَةِ وَيَصُدُّوْنَ عَنْ
سَبِيْلِ اللّٰهِ وَيَبْغُوْنَهَا عِوَجًا ؕ اُولٰٓئِكَ فِيْ ضَلٰلٍۢ بَعِيْدٍ ﴿٣﴾ وَمَآ اَرْسَلْنَا
مِنْ رَّسُوْلٍ اِلَّا بِلِسَانِ قَوْمِهٖ لِيُبَيِّنَ لَهُمْ ؕ فَيُضِلُّ اللّٰهُ مَنْ يَّشَآءُ

(प्रशंसनीय) है।[2] (2) और ज़मीन व आसमानों में मौजूद सारी चीज़ों का मालिक है।

और सख़्त तबाह करनेवाली सज़ा है हक़ क़ुबूल करने से इनकार करनेवालों के लिए (3) जो दुनिया की ज़िन्दगी को आख़िरत पर तरजीह देते है[3], जो अल्लाह के रास्ते से लोगों को रोक रहे हैं और चाहते हैं कि यह रास्ता (उनकी ख़्वाहिशों के मुताबिक़) टेढ़ा हो जाए।[4] ये लोग गुमराही में बहुत दूर निकल गए हैं।

(4) हमने अपना पैग़ाम देने के लिए जब कभी कोई रसूल भेजा है, उसने अपनी क़ौम ही की ज़बान में पैग़ाम दिया है, ताकि वह उन्हें अच्छी तरह खोलकर बात

---

2. 'हमीद' लफ़्ज़ का मतलब भी अगरचे वही है जो 'महमूद' का है मगर दोनों लफ़्ज़ों में एक बारीक फ़र्क़ है। 'महमूद' किसी शख़्स को उसी वक़्त कहेंगे जबकि उसकी तारीफ़ की गई हो या की जाती हो। मगर 'हमीद' ख़ुद-बख़ुद तारीफ़ का हक़दार है, चाहे कोई उसकी तारीफ़ करे या न करे। इस लफ़्ज़ का पूरा मतलब ख़ूबियोंवाला और तारीफ़ के क़ाबिल जैसे अल्फ़ाज़ से अदा नहीं हो सकता, इसी लिए हमने इसका तर्जमा 'अपनी ज़ात में आप महमूद' किया है।
3. या दूसरे अलफ़ाज़ में जिन्हें सारी फ़िक्र बस दुनिया की है, आख़िरत की परवाह नहीं है। जो दुनिया के फ़ायदों और लज़्ज़तों और आरामों की ख़ातिर आख़िरत का नुक़सान तो मोल ले सकते हैं, मगर आख़िरत की कामयाबियों और ख़ुशहालियों के लिए दुनिया का कोई नुक़सान, कोई तकलीफ़ और कोई ख़तरा, बल्कि किसी लज़्ज़त से महरूम (वंचित) रहना तक बरदाश्त नहीं कर सकते। जिन्होंने दुनिया और आख़िरत दोनों का मुक़ाबला करके ठंडे दिल से दुनिया को पसन्द कर लिया है और आख़िरत के बारे में फ़ैसला कर चुके हैं कि जहाँ-जहाँ उसका फ़ायदा दुनिया के फ़ायदे से टकराएगा, वहाँ उसे क़ुरबान करते चले जाएँगे।
4. यानी वे अल्लाह की मरज़ी के मातहत होकर नहीं रहना चाहते, बल्कि यह चाहते हैं कि अल्लाह का दीन उनकी मरज़ी के मुताबिक़ होकर रहे। उनके हर ख़याल, हर नज़रिये और हर वहम व गुमान को अपने अक़ीदों में दाख़िल करे और किसी ऐसे अक़ीदे को अपने निज़ामे-फ़िक्र (चिन्तन-व्यवस्था) में न रहने दे जो उनकी खोपड़ी में न समाता हो। उनकी हर रस्म, हर आदत और हर ख़सलत को जाइज़ ठहराए और किसी ऐसे तरीक़े की पैरवी की उनसे माँग न करे जो

وَيَهْدِيْ مَنْ يَّشَآءُ ۭ وَهُوَ الْعَزِيْزُ الْحَكِيْمُ ۝ وَلَقَدْ اَرْسَلْنَا مُوْسٰى
بِاٰيٰتِنَآ اَنْ اَخْرِجْ قَوْمَكَ مِنَ الظُّلُمٰتِ اِلَى النُّوْرِ ڏ وَذَكِّرْهُمْ بِاَيّٰىمِ

समझाए[5], फिर अल्लाह जिसे चाहता है भटका देता है और जिसे चाहता है सीधा रास्ता दिखाता है[6], वह सबपर हावी और हिकमतवाला है।[7]

(5) हम इससे पहले मूसा को भी अपनी निशानियों के साथ भेज चुके हैं। उसे भी हमने हुक्म दिया था कि अपनी क़ौम को अंधेरों से निकालकर रौशनी में ला और उन्हें

उन्हें पसन्द न हो। वह इनका हाथ बँधा ग़ुलाम हो कि जिधर-जिधर ये अपने मन के शैतान की पैरवी में मुड़ें उधर वह भी मुड़ जाए, और कहीं न तो वह उन्हें टोके और न किसी जगह पर उन्हें अपने रास्ते की तरफ़ मोड़ने की कोशिश करे। वे अल्लाह की बात सिर्फ़ उसी सूरत में मान सकते हैं, जबकि वह इस तरह का दीन उनके लिए भेजे।

5. इसके दो मतलब हैं। एक यह कि अल्लाह तआला ने जो नबी जिस क़ौम में भेजा उसपर उसी क़ौम की ज़बान में अपना कलाम उतारा, ताकि वह क़ौम उसे अच्छी तरह समझे, और उसे यह बहाना पेश करने का मौक़ा न मिल सके कि आपकी भेजी हुई तालीम तो हमारी समझ ही में न आती थी, फिर हम उसपर ईमान कैसे लाते। दूसरा मतलब यह है कि अल्लाह तआला ने सिर्फ़ मोजिज़ा दिखाने के लिए कभी यह नहीं किया कि रसूल तो भेजा अरब में और वह कलाम सुनाए चीनी या जापानी ज़बान में। इस तरह के करिश्मे दिखाने और लोगों के अजीब और अद्‌भुत चीज़ों को पसन्द करने के मिज़ाज के मुताबिक़ काम करने के मुक़ाबले में अल्लाह तआला की निगाह में तालीम और नसीहत और समझाने-बुझाने की अहमियत ज़्यादा रही है, जिसके लिए ज़रूरी था कि एक क़ौम को उसी ज़बान में पैग़ाम पहुँचाया जाए जिसे वह समझती हो।

6. यानी बावजूद इसके कि पैग़म्बर सारी तब्लीग़ व नसीहत उसी ज़बान में करता है जिसे सारी क़ौम समझती है, फिर भी सबको हिदायत नहीं मिल जाती; क्योंकि किसी कलाम या पैग़ाम के सिर्फ़ सबकी समझ में आनेवाला होने से यह लाज़िम नहीं हो जाता कि सब सुननेवाले उसे मान जाएँ। हिदायत और गुमराही का देना या न देना बहरहाल अल्लाह के हाथ में है। वही जिसे चाहता है अपने इस कलाम के ज़रिए से हिदायत देता है, और जिसके लिए चाहता है उसी कलाम को उलटी गुमराही का सबब बना देता है।

7. यानी लोगों का अपने आप हिदायत पा लेना या भटक जाना तो इस वजह से मुमकिन नहीं है कि वे पूरी तरह ख़ुदमुख़्तार नहीं हैं, बल्कि अल्लाह की ताक़त और ग़ल्बे के मातहत हैं। लेकिन अल्लाह अपनी इस ताक़त को अंधाधुंध इस्तेमाल नहीं करता कि यूँ ही बिना किसी मुनासिब वजह के जिसे चाहे हिदायत दे और जिसे चाहे ख़ाह-मख़ाह भटका दे। वह सबपर ग़ालिब होने और इख़्तियार रखने के साथ हिकमतवाला और सूझ-बूझ रखनेवाला भी है। उसके यहाँ से

اللّٰهِ ۭ اِنَّ فِيْ ذٰلِكَ لَاٰيٰتٍ لِّكُلِّ صَبَّارٍ شَكُوْرٍ ۝ وَاِذْ قَالَ مُوْسٰى
لِقَوْمِهِ اذْكُرُوْا نِعْمَةَ اللّٰهِ عَلَيْكُمْ اِذْ اَنْجٰىكُمْ مِّنْ اٰلِ فِرْعَوْنَ
يَسُوْمُوْنَكُمْ سُوْۗءَ الْعَذَابِ وَيُذَبِّحُوْنَ اَبْنَاۗءَكُمْ وَيَسْتَحْيُوْنَ

तारीख़े-इलाही (ईश्वरीय इतिहास)[8] के सबक़आमोज़ वाक़िआत सुनाकर नसीहत कर। इन वाक़िआत में बड़ी निशानियाँ हैं[9] हर उस शख़्स के लिए जो सब्र और शुक्र करनेवाला हो।[10]

(6) याद करो जब मूसा ने अपनी क़ौम से कहा, "अल्लाह के उस एहसान को याद रखो जो उसने तुमपर किया है, उसने तुम्हें फ़िरऔनवालों से छुड़ाया जो तुमको सख़्त तकलीफ़ें देते थे, तुम्हारे लड़कों को क़त्ल कर डालते थे और तुम्हारी लड़कियों को ज़िन्दा

जिसको हिदायत मिलती है मुनासिब वजहों से मिलती है और जिसको सीधे रास्ते से महरूम करके भटकने के लिए छोड़ दिया जाता है वह ख़ुद अपनी गुमराही की वजह से उस सुलूक का हक़दार होता है।

8. 'अय्याम' का लफ़्ज इस्तेमाल हुआ है। यह लफ़्ज अरबी ज़बान में इस्तलाही तौर पर ऐतिहासिक घटनाओं की यादगार के लिए बोला जाता है। 'अय्यामुल्लाह' से मुराद इनसानी तारीख़ के वे अहम अध्याय हैं जिनमें अल्लाह तआला ने पिछले ज़माने की क़ौमों और बड़ी-बड़ी शख़्सियतों को उनके कामों के लिहाज़ से इनाम या सज़ा दी है।

9. यानी इन ऐतिहासिक घटनाओं में ऐसी निशानियाँ मौजूद हैं जिनसे एक आदमी ख़ुदा के एक होने (तौहीद) का सुबूत भी पा सकता है और इस हक़ीक़त की भी अनगिनत गवाहियाँ जुटा सकता है कि कामों के हिसाब से बदला दिए जाने का क़ानून एक आलमगीर क़ानून है, और वह सरासर हक़ और बातिल के इल्मी व अख़लाक़ी फ़र्क़ पर क़ायम है, और उसके तक़ाज़े पूरे करने के लिए एक दूसरी दुनिया, यानी आख़िरत की दुनिया ज़रूरी है। साथ ही इन वाक़िआत में वे निशानियाँ भी मौजूद हैं जिनसे एक आदमी बातिल और ग़लत अक़ीदों व नज़रियों पर ज़िन्दगी की इमारत उठाने के बुरे नतीजे मालूम कर सकता है और उनसे सबक़ हासिल कर सकता है।

10. यानी ये निशानियाँ तो अपनी जगह मौजूद हैं मगर उनसे फ़ायदा उठाना सिर्फ़ उन्हीं लोगों का काम है जो अल्लाह की आज़माइशों से सब्र और बहादुरी से गुज़रनेवाले, और अल्लाह की नेमतों को ठीक-ठीक महसूस करके उनका सही शुक्रिया अदा करनेवाले हों। छिछोरे और ओछे और नाशुक्रे लोग अगर इन निशानियों को समझ भी लें तो उनकी ये अख़लाक़ी कमज़ोरियाँ उन्हें इस समझ से फ़ायदा उठाने नहीं देतीं।

نِسَآءَكُمْ ۭ وَفِيْ ذٰلِكُمْ بَلَاۗءٌ مِّنْ رَّبِّكُمْ عَظِيْمٌ ۝ وَاِذْ تَاَذَّنَ رَبُّكُمْ لَىِٕنْ
شَكَرْتُمْ لَاَزِيْدَنَّكُمْ وَلَىِٕنْ كَفَرْتُمْ اِنَّ عَذَابِيْ لَشَدِيْدٌ ۝ وَقَالَ مُوْسٰٓى

बचा रखते थे। इसमें तुम्हारे रब की तरफ़ से तुम्हारी बड़ी आज़माइश थी। (7) और याद रखो तुम्हारे रब ने ख़बरदार कर दिया था कि अगर शुक्रगुज़ार[11] बनोगे तो मैं तुम्हें और ज़्यादा नवाज़ूँगा और अगर नेमत की नाशुक्री करोगे तो मेरी सज़ा बहुत सख़्त है"[12]

11. यानी अगर हमारी नेमतों का हक़ पहचानकर उनका सही इस्तेमाल करोगे, और हमारे हुक्मों के मुक़ाबले में सरकशी व घमण्ड न करोगे, और हमारा एहसान मानकर हमारे फ़रमाँबरदार बने रहोगे।

12. इस मज़मून (विषय) की तक़रीर बाइबल की किताब व्यवस्था विवरण में बड़ी तफ़सील से नक़्ल की गई है। इस तक़रीर में हज़रत मूसा (अलैहि॰) अपनी मौत से कुछ दिन पहले बनी-इसराईल को उनके इतिहास के सारे अहम वाक़िआत याद दिलाते हैं। फिर तौरात के उन तमाम हुक्मों को दोहराते हैं जो अल्लाह तआला ने उनके ज़रिए से बनी-इसराईल को भेजे थे। फिर एक लम्बा ख़ुतबा (भाषण) देते हैं जिसमें बताते हैं कि अगर उन्होंने अपने रब की फ़रमाँबरदारी की तो कैसे इनामों से नवाज़े जाएँगे और अगर नाफ़रमानी का रवैया अपनाया तो उसकी कैसी सख़्त सज़ा दी जाएगी। यह ख़ुत्बा किताब व्यवस्था विवरण के अध्याय नम्बर 4, 6, 8, 10, 11 और 28 से 30 में फैला हुआ है और उसके कुछ-कुछ हिस्से निहायत दर्जे के असरदार और इबरतनाक हैं। मिसाल के तौर पर उसके कुछ जुमले हम यहाँ नक़्ल करते हैं जिनसे पूरे ख़ुत्बे का अन्दाज़ा हो सकता है :

"सुन ऐ इसराईल! ख़ुदावन्द हमारा ख़ुदा हमारा एक ही ख़ुदावन्द है। तू अपने सारे दिल और अपनी सारी जान और अपनी सारी ताक़त से ख़ुदावन्द अपने ख़ुदा के साथ मुहब्बत रख। और ये बातें जिनका हुक्म आज मैं तुझे देता हूँ तेरे दिल पर लिखे रहें और तू इनको अपनी औलाद के मन में बिठाना और घर बैठे और राह चलते और लेटते और उठते उनका ज़िक्र करना।"

(अध्याय-6, आयतें 4-7)

"तो ऐ इसराईल! ख़ुदावन्द तेरा ख़ुदा तुझसे इसके सिवा और क्या चाहता है कि तू ख़ुदावन्द अपने ख़ुदा का डर रखे और उसकी सब राहों पर चले और उससे मुहब्बत रखे और अपने सारे दिल और सारी जान से ख़ुदावन्द अपने ख़ुदा की बन्दगी करे और ख़ुदावन्द के जो हुक्म और क़ानून मैं तुझको आज बताता हूँ उनपर अमल करे, ताकि तेरी भलाई हो। देख आसमान और ज़मीन और जो कुछ ज़मीन में है यह सब ख़ुदावन्द तेरे ख़ुदा ही का है।"

(अध्याय-10 आयतें 12-14)

"और अगर तू ख़ुदावन्द अपने ख़ुदा की बात को दिल से मानकर उसके इन सब हुक्मों पर जो आज के दिन मैं तुझे देता हूँ एहतियात से अमल करे तो ख़ुदावन्द तेरा ख़ुदा दुनिया की सब

إِنْ تَكْفُرُوٓا أَنْتُمْ وَمَنْ فِي الْأَرْضِ جَمِيعًا ۙ فَإِنَّ اللَّهَ لَغَنِيٌّ حَمِيدٌ ⑧

(8) और मूसा ने कहा कि "अगर तुम इनकार करो और ज़मीन के सारे रहनेवाले भी इनकारी हो जाएँ तो अल्लाह बेनियाज़ और अपनी ज़ात में आप महमूद (प्रशंसनीय) है।"[13]

क़ौमों से ज़्यादा तुझको देगा और अगर तू ख़ुदावन्द अपने ख़ुदा की बात सुने तो ये सब बरकतें तुझपर उतरेंगी और तुझको मिलेंगी। शहर में भी तू मुबारक होगा और खेत में मुबारक ख़ुदावन्द तेरे दुश्मनों को जो तुझपर हमला करें तेरे मुक़ाबले में हराएगा...... ख़ुदावन्द तेरे भण्डार गृहों में और सब कामों में जिनमें तू हाथ डाले बरकत का हुक्म देगा...... तुझको अपनी पाक क़ौम बनाकर रखेगा और दुनिया की सब क़ौमें यह देखकर कि तू ख़ुदावन्द के नाम से कहलाता है तुझसे डर जाएँगी तू बहुत-सी कौमों को क़र्ज़ देगा पर ख़ुद क़र्ज़ नहीं लेगा और ख़ुदावन्द तुझको दुम नहीं, बल्कि सिर ठहराएगा और तू पस्त नहीं, बल्कि ऊपर ही रहेगा।" (अध्याय-28, आयत 1-13)
"लेकिन अगर तू ऐसा न करे कि ख़ुदावन्द अपने ख़ुदा की बात सुनकर उसके सब हुक्मों और क़ानूनों पर जो आज के दिन मैं तुझको देता हूँ एहतियात से अमल करे तो ये सब फिटकारें तुझपर होंगी और तुझको लगेंगी, शहर में भी तू फिटकारा हुआ होगा और खेत में भी फिटकारा हुआ...... ख़ुदावन्द उन सब कामों में जिनको तू हाथ लगाए लानत और फिटकार और बेचैनी को तुझपर उतारेगा...... महामारी तुझसे लिपटी रहेगी आसमान जो तेरे सिर पर है पीतल का और ज़मीन जो तेरे नीचे है लोहे की हो जाएगी...... ख़ुदावन्द तुझको तेरे दुश्मनों के आगे हार दिलाएगा। तो उनके मुक़ाबले के लिए तू एक ही रास्ते से जाएगा मगर उनके सामने सात-सात रास्तों से भागेगा...... औरत से मंगनी तो तू करेगा, मगर दूसरा उससे सहवास करेगा। तू घर बनाएगा, लेकिन उसमें बसने न पाएगा। तू अंगूर के बाग लगाएगा, पर उसका फल न खा सकेगा, तेरा बैल तेरी आँखों के सामने ज़िब्हा किया जाएगा......। भूखा और प्यासा और नंगा और सब चीज़ों का मुहताज होकर तू अपने उन दुश्मनों की सेवा करेगा जिनको ख़ुदावन्द तेरे ख़िलाफ़ – भेजेगा और दुश्मन तेरी गर्दन पर लोहे का जुआ रखेगा जब तक वह तेरा नाश न कर दे...... ख़ुदावन्द तुझको धरती के एक सिरे से दूसरे सिरे तक तमाम क़ौमों में बिखेर देगा।"
(अध्याय-28, आयत 15-64)

13. इस जगह हज़रत मूसा और उनकी क़ौम के मामले की तरफ़ यह मुख़्तसर-सा इशारा करने का मक़सद मक्कावालों को यह बताना है कि अल्लाह जब किसी क़ौम पर एहसान करता है और जवाब में वह क़ौम नमक-हरामी और सरकशी दिखाती है तो फिर ऐसी क़ौम को वह इबरतनाक अंजाम देखना पड़ता है जो तुम्हारी आँखों के सामने बनी-इसराईल देख रहे हैं। अब क्या तुम भी ख़ुदा की नेमत और उसके एहसान का जवाब नाशुक्री से देकर यही अंजमा देखना चाहते हो?
यहाँ यह बात भी साफ़ तौर से ध्यान में रहे कि अल्लाह तआला अपनी जिस नेमत की क़द्र

اَلَمْ يَاْتِكُمْ نَبَؤُا الَّذِيْنَ مِنْ قَبْلِكُمْ قَوْمِ نُوْحٍ وَّعَادٍ وَّثَمُوْدَ ۬ۛ
وَالَّذِيْنَ مِنْۢ بَعْدِهِمْ ۛؕ لَا يَعْلَمُهُمْ اِلَّا اللّٰهُ ؕ جَآءَتْهُمْ رُسُلُهُمْ
بِالْبَيِّنٰتِ فَرَدُّوْۤا اَيْدِيَهُمْ فِيْۤ اَفْوَاهِهِمْ وَقَالُوْۤا اِنَّا كَفَرْنَا بِمَاۤ اُرْسِلْتُمْ
بِهٖ وَاِنَّا لَفِيْ شَكٍّ مِّمَّا تَدْعُوْنَنَاۤ اِلَيْهِ مُرِيْبٍ ۝٩ قَالَتْ رُسُلُهُمْ اَفِي

(9) क्या तुम्हें[14] उन क़ौमों के हालात नहीं पहुँचे जो तुमसे पहले गुज़र चुकी हैं? नूह की क़ौम, आद, समूद और उनके बाद आनेवाली बहुत-सी क़ौमें जिनकी गिनती अल्लाह ही को मालूम है? उनके रसूल जब उनके पास साफ़-साफ़ बातें और खुली-खुली निशानियाँ लिए हुए आए तो उन्होंने अपने मुँह में हाथ दबा लिए[15] और कहा कि "जिस पैग़ाम के साथ तुम भेज गए हो, हम उसको नहीं मानते और जिस चीज़ की तरफ़ तुम हमें बुलाते हो, उसकी तरफ़ से हम सख़्त उलझन भरे शक में पड़े हुए हैं।"[16] (10) उनके

करने का यहाँ क़ुरैश से मुतालबा कर रहा है वह ख़ास तौर से उसकी यह नेमत है कि उसने हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) को उनके बीच पैदा किया और आपके ज़रिए से उनके पास वह अज़ीमुश्शान तालीम भेजी जिसके बारे में हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) बार-बार क़ुरैश से कहा करते थे कि, "मेरी एक बात मान लो, अरब और अजम (ग़ैर-अरब) सब तुम्हारे मातहत हो जाएँगे।"

14. हज़रत मूसा की तक़रीर ऊपर ख़त्म हो गई। अब सीधे तौर पर मक्का के इस्लाम दुश्मनों से बात कही जा रही है।

15. अलफ़ाज का मतलब क्या है इस बारे क़ुरआन मजीद की तफ़सीर लिखनेवाले आलिमों की राय अलग-अलग है। हमारे नज़दीक सबसे ज़्यादा (अरबी से) क़रीब मतलब वह है जिसे अदा करने के लिए हम उर्दू या हिन्दी में कहते हैं कानों पर हाथ रखे, या दाँतों में उँगली दबाई। इसलिए कि बाद के जुमले में साफ़ तौर पर इनकार और अचम्भे, दोनों बातें पाई जाती हैं और कुछ इसमें ग़ुस्से का अन्दाज़ भी है।

16. यानी ऐसा शक जिसकी वजह से इत्मीनान और सुकून की हालत विदा हो गई है। यह हक़ की दावत की ख़ासियत है कि जब वह उठती है तो इसकी वजह से एक खलबली ज़रूर मच जाती है और इनकार व मुख़ालफ़त करनेवाले भी पूरे इत्मीनान के साथ न उसका इनकार कर सकते हैं, न उसकी मुख़ालफ़त। वे चाहे कितनी ही शिद्दत के साथ उसे रद्द करें और कितना ही ज़ोर उसकी मुख़ालफ़त में लगाएँ, दावत की सच्चाई, उसकी मुनासिब दलीलें, उसकी खरी-खरी और बेलाग बातें, उसकी दिल मोह लेनेवाली ज़बान, उसकी दावत देनेवाले की बेदाग़ सीरत, उसपर ईमान लानेवालों की ज़िन्दगियों में आनेवाली साफ़-साफ़ तब्दीली और अपनी सच्ची बातों के ऐन

اللّٰهِ شَكٌّ فَاطِرِ السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ ؕ يَدْعُوْكُمْ لِيَغْفِرَ لَكُمْ مِّنْ
ذُنُوْبِكُمْ وَيُؤَخِّرَكُمْ اِلٰٓى اَجَلٍ مُّسَمًّى ؕ قَالُوْٓا اِنْ اَنْتُمْ اِلَّا بَشَرٌ مِّثْلُنَا ؕ
تُرِيْدُوْنَ اَنْ تَصُدُّوْنَا عَمَّا كَانَ يَعْبُدُ اٰبَآؤُنَا فَاْتُوْنَا بِسُلْطٰنٍ مُّبِيْنٍ ۝

रसूलों ने कहा, "क्या अल्लाह के बारे में शक है जो आसमानों और ज़मीन का पैदा करनेवाला है?[17] वह तुम्हें बुला रहा है ताकि तुम्हारे क़ुसूर माफ़ करे और तुम्हें एक तय की हुई मुद्दत तक मोहलत दे।"[18] उन्होंने जवाब दिया, "तुम कुछ नहीं हो मगर वैसे ही इनसान जैसे हम हैं।[19] तुम हमें उन हस्तियों की बन्दगी से रोकना चाहते हो जिनकी बन्दगी बाप-दादा से होती चली आ रही है। अच्छा तो लाओ कोई खुली दलील।"[20]

मुताबिक़ उनके पाकीज़ा आमाल (पवित्र कर्म), ये सारी चीज़ें मिल-जुलकर कट्टर से कट्टर मुख़ालिफ़ के दिल में भी एक बेचैनी पैदा कर देती हैं। हक़ की दावत देनेवालों को बेचैन करनेवाला ख़ुद भी चैन से महरूम हो जाता है।

17. रसूलों ने यह बात इसलिए कही कि हर ज़माने के मुशरिक ख़ुदा के वुजूद को मानते थे और यह भी मानते थे कि ज़मीन और आसमानों का बनानेवाला वही है। इसी बुनियाद पर रसूलों ने फ़रमाया कि आख़िर तुम्हें शक किस चीज़ में है? हम जिस चीज़ की तरफ़ तुम्हें बुलाते हैं वह इसके सिवा और क्या है कि आसमानों और ज़मीन का बनानेवाला अल्लाह तुम्हारी बन्दगी का अस्ल हक़दार है। फिर क्या अल्लाह के बारे में तुमको शक है?

18. एक मुक़र्रर मुद्दत से मुराद लोगों की मौत का वक़्त भी हो सकता है और क़ियामत भी। जहाँ तक क़ौमों का ताल्लुक़ है उनके उठने और गिरने के लिए अल्लाह के यहाँ मुद्दत का तय किया जाना उनके औसाफ़ (गुणों) की शर्त के साथ जुड़ा होता है। एक अच्छी क़ौम अगर अपने अन्दर बिगाड़ पैदा कर ले तो उसके अमल की मुहलत घटा दी जाती है और उसे तबाह कर दिया जाता है और एक बिगड़ी क़ौम अगर अपनी बुरी आदतों को अच्छी आदतों से बदल ले तो उसके अमल की मुहलत बढ़ा दी जाती है, यहाँ तक कि वह क़ियामत तक भी चल सकती है। इसी बात की तरफ़ सूरा-13 रअ्द की आयत-11 इशारा करती है कि अल्लाह तआला किसी क़ौम के हाल को उस वक़्त तक नहीं बदलता जब तक कि वह अपनी आदतों को न बदल दे।

19. उनका मतलब यह था कि तुम हर हैसियत से बिलकुल हम जैसे इनसान ही नज़र आते हो। खाते हो, पीते हो, सोते हो, बीवी-बच्चे रखते हो, भूख-प्यास, बीमारी-दुख, सर्दी-गर्मी, हर चीज़ के एहसास में और हर इनसानी कमज़ोरी में हमारे जैसे हो। तुम्हारे अन्दर कोई ग़ैर-मामूलीपन हमें नज़र नहीं आता जिसकी बुनियाद पर हम यह मान लें कि तुम कोई पहुँचे हुए लोग हो और ख़ुदा तुमसे बात करता है और फ़रिश्ते तुम्हारे पास आते हैं।

20. यानी कोई ऐसी सनद (सुबूत) जिसे हम आँखों से देखें और हाथों से छुएँ और जिससे हमको

قَالَتْ لَهُمْ رُسُلُهُمْ اِنْ نَّحْنُ اِلَّا بَشَرٌ مِّثْلُكُمْ وَلٰكِنَّ اللّٰهَ يَمُنُّ عَلٰى
مَنْ يَّشَآءُ مِنْ عِبَادِهٖ ؕ وَمَا كَانَ لَنَآ اَنْ نَّاْتِيَكُمْ بِسُلْطٰنٍ اِلَّا بِاِذْنِ
اللّٰهِ ؕ وَعَلَى اللّٰهِ فَلْيَتَوَكَّلِ الْمُؤْمِنُوْنَ ۝١١ وَمَا لَنَآ اَلَّا نَتَوَكَّلَ عَلَى اللّٰهِ
وَقَدْ هَدٰىنَا سُبُلَنَا ؕ وَلَنَصْبِرَنَّ عَلٰى مَآ اٰذَيْتُمُوْنَا ؕ وَعَلَى اللّٰهِ
فَلْيَتَوَكَّلِ الْمُتَوَكِّلُوْنَ ۝١٢ وَقَالَ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا لِرُسُلِهِمْ لَنُخْرِجَنَّكُمْ ع
مِّنْ اَرْضِنَآ اَوْ لَتَعُوْدُنَّ فِيْ مِلَّتِنَا ؕ فَاَوْحٰٓى اِلَيْهِمْ رَبُّهُمْ لَنُهْلِكَنَّ

---

(11) उनके रसूलों ने उनसे कहा, "सच में हम कुछ नहीं हैं मगर तुम ही जैसे इनसान, लेकिन अल्लाह अपने बन्दों में से जिसे चाहता है, नवाज़ता है[21] और यह हमारे अधिकार में नहीं है कि तुम्हें कोई सनद ला दें। सनद तो अल्लाह ही की इजाज़त से आ सकती है, और अल्लाह ही पर ईमानवालों को भरोसा करना चाहिए। (12) और हम क्यों न अल्लाह पर भरोसा करें, जबकि हमारी ज़िन्दगी की राहों में उसने हमारी रहनुमाई की है? जो तकलीफ़ें तुम लोग हमें दे रहे हो उनपर हम सब्र करेंगे, और भरोसा करनेवालों का भरोसा अल्लाह ही पर होना चाहिए।"

(13-14) आख़िरकार हक़ के इनकारियों ने अपने रसूलों से कह दिया कि "या तो तुम्हें हमारी मिल्लत (पंथ) में वापस आना होगा[22] वरना हम तुम्हें अपने देश से निकाल

यक़ीन आ जाए कि वाक़ई ख़ुदा ने तुमको भेजा है और यह पैग़ाम जो तुम लाए हो ख़ुदा ही का पैग़ाम है।

21. यानी बेशक हम हैं तो इनसान ही, मगर अल्लाह ने तुम्हारे बीच हमको ही हक़ का इल्म और सोचने-समझने की पूरी सलाहियत देने के लिए चुना है। इसमें हमारे बस की कोई बात नहीं। यह तो अल्लाह के इख़्तियारों का मामला है। वह अपने बन्दों में से जिसको जो कुछ चाहे दे। हम न यह कर सकते हैं कि जो कुछ हमारे पास आया है वह तुम्हारे पास भिजवा दें और न यही कर सकते हैं कि जो हक़ीक़तें हमपर खुल गई हैं उनसे आँखें बन्द कर लें।

22. इसका यह मतलब नहीं है कि पैग़म्बर नुबूवत के मनसब पर मुक़र्रर होने से पहले अपनी गुमराह क़ौमों की मिल्लत में शामिल हुआ करते थे, बल्कि इसके मानी यह हैं कि नुबूवत से पहले चूँकि वे एक तरह की ख़ामोश ज़िन्दगी गुज़ारते थे, क़िसी दीन की तब्लीग़ और उस वक़्त

الظّٰلِمِیْنَ ﴿۱۳﴾ وَلَنُسْکِنَنَّکُمُ الْاَرْضَ مِنْۢ بَعْدِهِمْ ؕ ذٰلِكَ لِمَنْ خَافَ
مَقَامِیْ وَخَافَ وَعِیْدِ ﴿۱۴﴾ وَاسْتَفْتَحُوْا وَخَابَ كُلُّ جَبَّارٍ عَنِیْدٍ ﴿۱۵﴾
مِّنْ وَّرَآئِهٖ جَهَنَّمُ وَیُسْقٰی مِنْ مَّآءٍ صَدِیْدٍ ﴿۱۶﴾ یَّتَجَرَّعُهٗ وَلَا یَكَادُ
یُسِیْغُهٗ وَیَاْتِیْهِ الْمَوْتُ مِنْ كُلِّ مَكَانٍ وَّمَا هُوَ بِمَیِّتٍ ؕ وَمِنْ وَّرَآئِهٖ

देंगे।" तब उनके रब ने उनपर वह्य भेजी कि "हम इन ज़ालिमों को हलाक कर देंगे और उनके बाद तुम्हें ज़मीन में आबाद करेंगे।[23] यह इनाम है उसका जो मेरे सामने जवाबदेही का डर रखता हो और मेरी धमकी से डरता हो।" (15) उन्होंने फ़ैसला चाहा था (तो यूँ उनका फ़ैसला हुआ) और हर सरकश हक़ के दुश्मन ने मुँह की खाई[24], (16-17) फिर उसके बाद आगे उसके लिए जहन्नम है। वहाँ उसे कचलहू का-सा पानी पीने को दिया जाएगा, जिसे वह ज़बरदस्ती गले से उतारने की कोशिश करेगा और मुश्किल ही से उतार सकेगा। मौत हर तरफ़ से उसपर छाई रहेगी, मगर वह मरने न पाएगा और आगे एक

के किसी राइज दीन का रद्द (,खंडन) नहीं करते थे, इसलिए उनकी क़ौम यह समझती थी कि वे हमारी ही मिल्लत में हैं, और नुबूवत का काम शुरू कर देने के बाद उनपर यह इलज़ाम लगाया जाता था कि वह अपने बाप-दादा की मिल्लत से निकल गए हैं। हालाँकि वे नुबूवत से पहले भी कभी मुशरिकों की मिल्लत में शामिल न हुए थे कि उससे निकल जाने का इलज़ाम उनपर लग सकता।

23. यानी घबराओ नहीं, ये कहते हैं कि तुम इस मुल्क में नहीं रह सकते, मगर हम कहते हैं कि अब ये इस ज़मीन में न रहने पाएँगे। अब तो जो तुम्हें मानेगा वही यहाँ रहेगा।

24. यह बात ध्यान में रहे कि यहाँ इस ऐतिहासिक बयान के अन्दाज़ में दरअस्ल मक्का के इस्लाम दुश्मनों को उन बातों का जवाब दिया जा रहा है जो वे नबी (सल्ल.) से किया करते थे। ज़िक्र बज़ाहिर पिछले नबियों और उनकी क़ौमों के वाक़िआत का है, मगर चस्पाँ हो रहा है वह उन हालात पर जो इस सूरा के उतरने के ज़माने में पेश आ रहे थे। इस जगह पर मक्का के काफ़िरों को बल्कि अरब के मुशरिकों को मानो साफ़-साफ़ ख़बरदार कर दिया गया कि तुम्हारे मुस्तक़बिल (भविष्य) का दारोमदार अब उस रवैये पर है जो मुहम्मद (सल्ल.) की दावत के मुक़ाबले में तुम अपनाओगे। अगर उसे क़बूल कर लोगे तो अरब की ज़मीन में रह सकोगे, और अगर उसे रद्द कर दोगे तो यहाँ से तुम्हारा नामो-निशान तक मिटा दिया जाएगा। चुनाँचे इस बात को ऐतिहासिक घटनाओं ने एक साबितशुदा हक़ीक़त बना दिया। इस पेशीनगोई पर पूरे पन्द्रह साल भी न बीते थे कि अरब की ज़मीन में एक मुशरिक भी बाक़ी न रहा।

عَذَابٌ غَلِيظٌ ﴿١٧﴾ مَثَلُ الَّذِينَ كَفَرُوا بِرَبِّهِمْ أَعْمَالُهُمْ كَرَمَادٍ
اشْتَدَّتْ بِهِ الرِّيحُ فِي يَوْمٍ عَاصِفٍ لَا يَقْدِرُونَ مِمَّا كَسَبُوا عَلَىٰ
شَيْءٍ ذَٰلِكَ هُوَ الضَّلَالُ الْبَعِيدُ ﴿١٨﴾ أَلَمْ تَرَ أَنَّ اللَّهَ خَلَقَ السَّمَاوَاتِ
وَالْأَرْضَ بِالْحَقِّ إِنْ يَشَأْ يُذْهِبْكُمْ وَيَأْتِ بِخَلْقٍ جَدِيدٍ ﴿١٩﴾ وَمَا ذَٰلِكَ

सख़्त अज़ाब उसकी जान का लागू रहेगा।

(18) जिन लोगों ने अपने रब से कुफ़्र (इनकार) किया है उनके आमाल की मिसाल उस राख की-सी है जिसे एक तूफ़ानी दिन की आँधी ने उड़ा दिया हो। वे अपने किए का कुछ भी फल न पा सकेंगे।[25] यही परले दर्जे की गुमराही है। (19) क्या तुम देखते नहीं हो कि अल्लाह ने आसमानों और ज़मीन की पैदाइश को हक़ पर क़ायम किया है?[26] वह चाहे तो तुम लोगों को ले जाए और एक नई ख़िलक़त (सृष्टि) तुम्हारी जगह

25. यानी जिन लोगों ने अपने रब के साथ नमक-हरामी, बेवफ़ाई, ख़ुदमुख़्तारी और नाफ़रमानी व सरकशी का रवैया अपनाया, और फ़रमाँबरदारी व बन्दगी का वह तरीक़ा अपनाने से इनकार कर दिया जिसकी दावत ख़ुदा के सभी पैग़म्बर लेकर आए हैं, उनकी ज़िन्दगी का पूरा कारनामा और ज़िन्दगी भर के कामों का सारा सरमाया आख़िरकार ऐसे बेनतीजा और बेमतलब साबित होगा जैसे एक राख का ढेर था जो इकट्ठा हो-होकर लम्बी मुद्दत में बड़ा भारी टीला-सा बन गया था, मगर सिर्फ़ एक ही दिन की आँधी ने उसको ऐसा उड़ाया कि उसका एक-एक कण बिखर कर रह गया। नज़रों को धोखे में डालनेवाली उनकी तहज़ीब, उनका शानदार रहन-सहन, उनके हैरतअंगेज़ कल-कारख़ाने, उनकी ज़बरदस्त सल्तनतें, उनकी आलीशान यूनिवर्सिटियाँ उनके इल्म और फ़न (ज्ञान और कलाएँ) और उनके हल्के-फुल्के और भारी-भरकम साहित्य के अपार भण्डार, यहाँ तक कि उनकी इबादतें और उनकी ज़ाहिरी नेकियाँ और उनके बड़े-बड़े ख़ैराती और भलाई के कारनामे भी, जिनपर वे दुनिया में फ़ख़्र करते हैं, सब के सब आख़िरकार राख का एक ढेर ही साबित होंगे जिसे क़ियामत के दिन की आँधी बिलकुल साफ़ कर देगी और आख़िरत में उसका एक ज़र्रा भी उनके पास इस क़ाबिल न रहेगा कि उसे ख़ुदा के तराज़ू में रखकर कुछ भी वज़न पा सकें।

26. यह दलील है उस दावे की जो ऊपर किया गया था। मतलब यह है कि इस बात को सुनकर तुम्हें ताज्जुब क्यों होता है? क्या तुम देखते नहीं हो कि यह ज़मीन व आसमान की तख़्लीक़ (रचना) का अज़ीमुश्शान कारख़ाना हक़ पर क़ायम हुआ है, न कि बातिल (असत्य) पर? यहाँ

عَلَى اللّٰهِ بِعَزِيْزٍ ۝ وَبَرَزُوْا لِلّٰهِ جَمِيْعًا فَقَالَ الضُّعَفٰٓؤُا لِلَّذِيْنَ

ले आए। (20) ऐसा करना उसपर कुछ भी मुश्किल नहीं है।[27]

(21) और ये लोग जब इकट्ठे अल्लाह के सामने बेनक़ाब[28] होंगे तो उस वक़्त इनमें

जिस चीज़ की बुनियाद हक़ीक़त और सच्चाई पर न हो, बल्कि सिर्फ़ ये बेअस्ल गुमान और अटकल पर जिसकी नींव रख दी गई हो, उसे कोई पायदारी हासिल नहीं हो सकती। उसके लिए टिकाऊ होने का कोई इमकान नहीं है। उसके भरोसे पर काम करनेवाला कभी अपने एतिमाद में कामयाब नहीं हो सकता। जो शख़्स पानी पर नक़्श बनाए और रेत पर महल बनाए वह अगर यह उम्मीद रखता है कि उसका नक़्श बाक़ी रहेगा और उसका महल खड़ा रहेगा तो उसकी यह उम्मीद कभी पूरी नहीं हो सकती; क्योंकि पानी की यह हक़ीक़त नहीं हैं कि वह नक़्श क़बूल करे और रेत की यह हक़ीक़त नहीं है कि वह इमारतों के लिए मज़बूत बुनियाद बन सके। इसलिए सच्चाई और हक़ीक़त को नज़र-अन्दाज़ करके जो शख़्स झूठी उम्मीदों पर अपने अमल की बुनियाद रखे उसे नाकाम होना ही चाहिए। यह बात अगर तुम्हारी समझ में आती है तो फिर यह सुनकर तुम्हें हैरत किस लिए होती है कि ख़ुदा की इस कायनात में जो शख़्स अपने आपको ख़ुदा की बन्दगी व फ़रमाँबरदारी से आज़ाद मानकर काम करेगा या ख़ुदा के सिवा किसी और की ख़ुदाई मानकर, जिसकी हक़ीक़त में ख़ुदाई नहीं है, ज़िन्दगी गुज़ारेगा, उसकी ज़िन्दगी का सब किया-धरा बर्बाद हो जाएगा? जब हक़ीक़त यह नहीं है कि इनसान यहाँ अपनी मर्ज़ी का मालिक हो, या ख़ुदा के सिवा किसी और का बन्दा हो, तो इस झूठ पर, हक़ीक़त के ख़िलाफ़ इस गढ़ी हुई बात पर, अपने ख़यालात व अमल के पूरे निज़ाम की बुनियाद रखनेवाला इनसान तुम्हारी राय में पानी पर लकीरें बनानेवाले बेवक़ूफ़ के जैसा अंजाम न देखेगा तो उसके लिए और किस अंजाम की तुम उम्मीद रखते हो?

27. दावे पर दलील पेश करने के बाद फ़ौरन ही यह जुमला नसीहत के तौर पर कहा गया है और साथ-साथ इसमें एक शक को भी दूर किया गया है जो ऊपर की दो टूक बात सुनकर आदमी के दिल में पैदा हो सकता है। एक शख़्स पूछ सकता है कि अगर बात वही है जो इन आयतों में कही गई है तो यहाँ हर बातिल-परस्त (असत्यवादी) और ग़लत रास्ते पर चलनेवाला आदमी मिट क्यों नहीं जाता? इसका जवाब यह है कि नादान! क्या तू समझता है कि उसे फ़ना कर देना अल्लाह के लिए कुछ मुश्किल है? या अल्लाह से उसका कोई रिश्ता है कि उसकी शरारतों के बावजूद अल्लाह ने महज़ रिश्ते का ख़याल करते हुए उसे मजबूरन छूट दे रखी है? अगर यह बात नहीं है, और तू ख़ुद जानता है कि नहीं है, तो फिर तुझे समझना चाहिए कि एक बातिल-परस्त और ग़लत काम करनेवाली क़ौम हर वक़्त इस ख़तरे में मुब्तला है कि उसे हटा दिया जाए और किसी दूसरी क़ौम को उसकी जगह काम करने का मौक़ा दे दिया जाए। इस ख़तरे के अमली तौर पर सामने आने में अगर देर लग रही है तो इस ग़लतफ़हमी के नशे में मस्त न हो जा कि ख़तरा सिरे से मौजूद ही नहीं है। मुहलत के एक-एक लम्हे को ग़नीमत जान

اسْتَكْبَرُوْٓا اِنَّا كُنَّا لَكُمْ تَبَعًا فَهَلْ اَنْتُمْ مُّغْنُوْنَ عَنَّا مِنْ عَذَابِ اللّٰهِ
مِنْ شَيْءٍ ۭ قَالُوْا لَوْ هَدٰىنَا اللّٰهُ لَهَدَيْنٰكُمْ ۭ سَوَاۗءٌ عَلَيْنَآ اَجَزِعْنَآ اَمْ
صَبَرْنَا مَا لَنَا مِنْ مَّحِيْصٍ ۝21ۧ وَقَالَ الشَّيْطٰنُ لَمَّا قُضِيَ الْاَمْرُ اِنَّ اللّٰهَ ع ١٥
وَعَدَكُمْ وَعْدَ الْحَقِّ وَوَعَدْتُّكُمْ فَاَخْلَفْتُكُمْ ۭ وَمَا كَانَ لِيَ عَلَيْكُمْ

से जो दुनिया में कमज़ोर थे, वे उन लोगों से जो बड़े बने हुए थे, कहेंगे, "दुनिया में हम तुम्हारे मातहत थे, अब क्या तुम अल्लाह के अज़ाब से हमें बचाने के लिए भी कुछ कर सकते हो?" वे जवाब देंगे, "अगर अल्लाह ने हमें छुटकारे की कोई राह दिखाई होती तो हम ज़रूर तुम्हें भी दिखा देते। अब तो बराबर है, चाहे हम रोएँ-पीटें या सब्र करें, बहरहाल हमारे बचने की कोई शक्ल नहीं।"[29]

(22) और जब फ़ैसला चुका दिया जाएगा तो शैतना कहेगा, "सच तो यह है कि अल्लाह ने जो वादे तुमसे किए थे, वे सब सच्चे थे और मैंने जितने वादे किए, उनमें से

और अपने ख़याल व अमल के बातिल निज़ाम की नापायदारी को महसूस करके उसे जल्दी से जल्दी पायदार बुनियादों पर क़ायम कर ले।

28. अस्ल अरबी में लफ़्ज़ इस्तेमाल हुआ है जो बुरुज़ से बना है, जिसके मानी सिर्फ़ निकलकर सामने आना और पेश होना ही नहीं है बल्कि इसमें ज़ाहिर होने और खुल जाने का मतलब भी शामिल है। इसी लिए हमने इसका तर्जमा बेनक़ाब होकर सामने आ जाना किया है। हक़ीक़त के लिहाज़ से तो बन्दे हर वक़्त अपने रब के सामने बेनक़ाब हैं। मगर आख़िरत की पेशी के दिन जब वे सब के सब अल्लाह की अदालत में हाज़िर होंगे तो उन्हें ख़ुद भी मालूम होगा कि हम उस सब हाकिमों से बड़े हाकिम और हिसाब के दिन के मालिक के सामने बिलकुल बेनक़ाब हैं, हमारा कोई काम बल्कि कोई ख़याल और दिल के कोनों में छिपा हुआ कोई इरादा तक उससे छिपा नहीं है।

29. यह तम्बीह है उन सब लोगों के लिए जो दुनिया में आँखें बन्द करके दूसरों के पीछे चलते हैं, या अपनी कमज़ोरी को दलील बनाकर ताक़तवर ज़ालिमों के कहे पर चलते हैं। उनको बताया जा रहा है कि आज जो तुम्हारे लीडर और पेशवा और अफ़सर और हाकिम बने हुए हैं, कल इनमें से कोई भी तुम्हें ख़ुदा के अज़ाब से ज़र्रा बराबर भी न बचा सकेगा। इसलिए आज ही सोच लो कि तुम जिसके पीछे चल रहे हो जिसका हुक्म मान रहे हो वह ख़ुद कहाँ जा रहा है और तुम्हें कहाँ पहुँचाकर छोड़ेगा।

مِّنْ سُلْطٰنٍ اِلَّآ اَنْ دَعَوْتُكُمْ فَاسْتَجَبْتُمْ لِيْ ۚ فَلَا تَلُوْمُوْنِيْ وَلُوْمُوْٓا
اَنْفُسَكُمْ ۭ مَآ اَنَا بِمُصْرِخِكُمْ وَمَآ اَنْتُمْ بِمُصْرِخِيَّ ۭ اِنِّيْ كَفَرْتُ بِمَآ
اَشْرَكْتُمُوْنِ مِنْ قَبْلُ ۭ اِنَّ الظّٰلِمِيْنَ لَهُمْ عَذَابٌ اَلِيْمٌ ﴿٢٢﴾

कोई भी पूरा न किया।[30] मेरा तुमपर कोई ज़ोर तो था नहीं, मैंने इसके सिवा कुछ नहीं किया कि अपने रास्ते की तरफ़ तुम्हें बुलाया और तुमने मेरी दावत को क़बूल किया।[31] अब मुझे बुरा-भला न कहो, अपने आप ही को मलामत करो। यहाँ न मैं तुम्हारी फ़रियाद सुन सकता हूँ और न तुम मेरी। इससे पहले जो तुमने मुझे ख़ुदाई (प्रभुता) में साझीदार बना रखा था[32], मैं उसकी ज़िम्मेदारी से अलग हूँ। ऐसे ज़ालिमों के लिए तो दर्दनाक सज़ा यक़ीनी है।"

30. यानी तुम्हारे तमाम गिले-शिकवे इस हद तक तो बिलकुल सही हैं कि अल्लाह सच्चा था और मैं झूठा था। इस हक़ीक़त से मुझे हरगिज़ इनकार नहीं है। अल्लाह के वादे और उसके डरावे, तुम देख ही रहे हो कि इनमें से हर बात ज्यों की त्यों सच्ची निकली और मैं ख़ुद मानता हूँ कि जो भरोसे मैंने तुम्हें दिलाए, जिन फ़ायदों के लालच तुम्हें दिए, जिन लुभावनी उम्मीदों के जाल में तुमको फाँसा, और सबसे बढ़कर यह यक़ीन जो तुम्हें दिलाया कि पहली बात तो यह है कि आख़िरत-वाख़िरत कुछ भी नहीं है, सब सिर्फ़ ढकोसला है, और अगर हुई भी तो फ़ुलाँ हज़रत की सिफ़ारिश से तुम साफ़ बच निकलोगे, बस उनकी ख़िदमत में भेंटों और चढ़ावों की रिश्वत पेश करते रहो और फिर जो चाहो करते फिरो, नजात का ज़िम्मा उनका, ये सारी बातें जो मैं तुमसे कहता रहा और अपने एजेंटों के ज़रिए से कहलवाता रहा, यह सब सिर्फ़ धोखा था।

31. यानी अगर आप लोग ऐसा कोई सुबूत रखते हों कि आप ख़ुद सीधे रास्ते पर चलना चाहते थे और मैंने ज़बरदस्ती आपका हाथ पकड़कर आपको ग़लत रास्ते पर खींच लिया, तो ज़रूर उसे पेश कीजिए, जो चोर की सज़ा सो मेरी। लेकिन आप ख़ुद मानेंगे कि हक़ीक़त यह नहीं है। मैंने इससे ज़्यादा कुछ नहीं किया कि हक़ की दावत के मुक़ाबले में अपनी बातिल (असत्य) की दावत आपके सामने पेश की, सच्चाई के मुक़ाबले में झूठ की तरफ़ आपको बुलाया, नेकी के मुक़ाबले में बुराई की तरफ़ आपको पुकारा। मानने और न मानने के तमाम अधिकार आप ही लोगों के पास थे। मेरे पास आपको मजबूर करने की कोई ताक़त न थी। अब अपनी इस दावत का ज़िम्मेदार तो बेशक मैं ख़ुद हूँ और उसकी सज़ा भी पा रहा हूँ। मगर आपने जो इसे क़बूल किया इसकी ज़िम्मेदारी आप मुझ पर कहाँ डालने चले हैं, अपने ग़लत चुनाव और अपने अधिकार के ग़लत इस्तेमाल की ज़िम्मेदारी तो आपको ख़ुद ही उठानी चाहिए।

32. यहाँ फिर अक़ीदे के शिर्क के मुक़ाबले में एक दूसरी तरह के शिर्क, यानी अमली शिर्क के

وَاُدْخِلَ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَعَمِلُوا الصّٰلِحٰتِ جَنّٰتٍ تَجْرِيْ مِنْ تَحْتِهَا
الْاَنْهٰرُ خٰلِدِيْنَ فِيْهَا بِاِذْنِ رَبِّهِمْ ۭ تَحِيَّتُهُمْ فِيْهَا سَلٰمٌ ۝۲۳ اَلَمْ تَرَ

(23) इसके बरख़िलाफ़ जो लोग दुनिया में ईमान लाए हैं और जिन्होंने अच्छे काम किए हैं, वे ऐसे बाग़ों में दाख़िल किए जाएँगे जिनके नीचे नहरें बहती होंगी। वहाँ वे अपने रब की इजाज़त से हमेशा रहेंगे और वहाँ उनका इस्तिक़बाल 'सलामती की

वुजूद का एक सुबूत मिलता है। ज़ाहिर बात है कि शैतान को अक़ीदे की हैसियत से तो कोई भी न ख़ुदाई में शरीक ठहराता है और न उसकी इबादत करता है। सब उसपर लानत ही भेजते हैं। अलबत्ता उसकी फ़रमाँबरदारी और ग़ुलामी और उसके तरीक़े की अंधी या आँखों देखे पैरवी ज़रूर की जा रही है, और उसी के लिए यहाँ शिर्क का लफ़्ज़ इस्तेमाल किया गया है। मुमकिन है कोई साहब जवाब में कहें कि यह तो शैतान का क़ौल (कथन) है, जिसे अल्लाह ने नक़्ल किया है। लेकिन हम कहेंगे कि अव्वल तो उसकी बात को अल्लाह तआला ख़ुद ग़लत ठहरा देता, अगर वह ग़लत होती। दूसरे अमली शिर्क का सिर्फ़ यही एक सुबूत क़ुरआन में नहीं है, बल्कि इसके कई सुबूत पिछली सूरतों में गुज़र चुके हैं और आगे आ रहे हैं। मिसाल के तौर पर यहूदियों और ईसाइयों को यह इल्ज़ाम कि वे अपने 'अहबार' और 'रुहबान' को अल्लाह के सिवा अपना रब बनाए हुए है (सूरा-9 तौबा, आयत-31)। जाहिलियत की रस्में ईजाद करनेवालों के बारे में यह कहना कि उनकी पैरवी करनेवालों ने उन्हें ख़ुदा का शरीक बना रखा है (सूरा-8 अनआम, आयत-137)। मन की ख़ाहिशों की बन्दगी करनेवालों के बारे में यह कहना कि उन्होंने अपने मन की ख़ाहिश को ख़ुदा बना लिया है (सूरा-25 फ़ुरक़ान, आयत-43)। नाफ़रमान बन्दों के बारे में यह कहना कि वे शैतान की इबादत करते रहे हैं (सूरा-36 यासीन, आयत-60)। इनसानों के बनाए हुए क़ानूनों पर चलनेवालों को इन अलफ़ाज़ में मलामत कि अल्लाह की इजाज़त के बिना जिन लोगों ने तुम्हारे लिए शरीअत बनाई है वे तुम्हारे "साझी" हैं (सूरा-26 शूरा, आयत-21)। ये सब क्या उसी अमली शिर्क की मिसालें नहीं हैं जिसका यहाँ ज़िक्र हो रहा है? इन मिसालों से साफ़ पता चलता है कि शिर्क की सिर्फ़ यही एक शक्ल नहीं है कि कोई शख़्स अपने अक़ीदे के मुताबिक़ अल्लाह के सिवा किसी को ख़ुदाई में शरीक ठहराए। उसकी एक दूसरी शक्ल यह भी है कि वह ख़ुदाई सनद (दलील) के बग़ैर, या अल्लाह के हुक्मों के ख़िलाफ़, उसकी पैरवी और फ़रमाँबरदारी करता चला जाए। ऐसा पैरोकार और फ़रमाँबरदार अगर अपने पेशवा और उस शख़्स पर जिसकी वह पैरवी कर रहा है लानत भेजते हुए भी अमली तौर पर यह रवैया अपना रहा हो तो क़ुरआन के मुताबिक़ वह उसको ख़ुदाई में शरीक बनाए हुए है, चाहे शरई तौर पर उसे अक़ीदे में शिर्क करनेवालों के ख़ाने में न रखा जाए। (और ज़्यादा तफ़्सील के लिए देखें—सूरा-6 अनआम, हाशिया-87,107; सूरा-18 कहफ़, हाशिया-50

كَيْفَ ضَرَبَ اللّٰهُ مَثَلًا كَلِمَةً طَيِّبَةً كَشَجَرَةٍ طَيِّبَةٍ اَصْلُهَا ثَابِتٌ
وَّفَرْعُهَا فِى السَّمَآءِ ﴿٢٤﴾ تُؤْتِيْٓ اُكُلَهَا كُلَّ حِيْنٍ بِاِذْنِ رَبِّهَا ۗ وَيَضْرِبُ

मुबारकबाद' से होगा।[33] (24-25) क्या तुम देखते नहीं हो कि अल्लाह ने कलिमा-तय्यिबा[34] को किस चीज़ से मिसाल दी है? इसकी मिसाल ऐसी है जैसे एक अच्छी ज़ात का पेड़ जिसकी जड़ ज़मीन में गहरी जमी हुई है और शाखाएँ आसमान तक पहुँची हुई हैं।[35] हर पल अपने रब के हुक्म से अपने फल दे रहा है।[36] ये मिसालें अल्लाह इसलिए

33. अस्ल अरबी में लफ़्ज 'तहिय-य' इस्तेमाल हुआ है, इसके मानी हैं 'लम्बी अम्र की दुआ'। मगर अरबी ज़बान में इस्तिलाह के तौर पर यह लफ़्ज़ इस्तिक़बाल (स्वागत) के लिए बोला जाता है जो लोग आमना-सामना होने पर सबसे पहले एक-दूसरे से कहते हैं। उर्दू में उसका हम मानी लफ़्ज या तो 'सलाम' है या फिर अलैक-सलैक। लेकिन यह लफ़्ज इस्तेमाल करने से तर्जमा ठीक नहीं होता, इसलिए हमने इसका तर्जमा 'इस्तिक़बाल' किया है।
'तहिय-य तुहुम' के मानी यह भी हो सकते हैं कि उनके दरमियान आपस में एक-दूसरे के इस्तिक़बाल का तरीक़ा यह होगा, और ये मानी भी हो सकते हैं कि उनका इस तरह इस्तिक़बाल होगा। साथ ही 'सलामुन' में सलामती की दुआ का मतलब भी शामिल है और सलामती की मुबारकबाद का भी। हमने मौक़े से मेल खाता हुआ वह मतलब लिया है जो तर्जमे में लिखा है।

34. 'कलिमए-तैयि-ब' के लफ़्ज़ी मानी तो 'पाकीज़ा बात' के हैं, मगर इससे मुराद वह हक़ बात और सही अक़ीदा है जिसकी बुनियाद सरासर हक़ीक़त और सच्चाई पर हो। यह बात और अक़ीदा क़ुरआन मजीद के मुताबिक़ लाज़िमन वही हो सकता है, जिसमें तौहीद (एकेश्वरवाद) का इक़रार, नबियों और आसमानी किताबों का इक़रार, और आख़िरत का इक़रार हो, क्योंकि क़ुरआन इन्हीं बातों को बुनियादी सच्चाइयों की हैसियत से पेश करता है।

35. दूसरे अलफ़ाज में इसका मतलब यह हुआ कि ज़मीन से लेकर आसमान तक चूँकि कायनात के सारे निज़ाम की बुनियाद उसी हक़ीक़त पर है जिसका इक़रार एक ईमानवाला अपने कलिमा-ए-तय्यिबा में करता है, इसलिए किसी गोशे में भी फ़ितरत का क़ानून उससे नहीं टकराता, किसी चीज़ की भी अस्ल और फ़ितरत उससे नफ़रत नहीं करती, कहीं कोई हक़ीक़त और सच्चाई उससे टकराती नहीं। इसी लिए ज़मीन और उसका पूरा निज़ाम उससे सहयोग करता है, और आसमान और उसका पूरा आलम उसका इस्तिक़बाल करता है।

36. यानी वह ऐसा फलने-फूलने और फल देनेवाला कलिमा है कि जो शख़्स या क़ौम इसे बुनियाद बनाकर अपनी ज़िन्दगी का निज़ाम इसपर तामीर करे, उसको हर वक़्त इसके मुफ़ीद नतीजे हासिल होते रहते हैं। वह फ़िक्र में सुलझाव, तबीअत में सलामती, मिज़ाज में एतिदाल (संतुलन),

اللّٰهُ الْاَمْثَالَ لِلنَّاسِ لَعَلَّهُمْ يَتَذَكَّرُوْنَ ﴿٢٥﴾ وَمَثَلُ كَلِمَةٍ خَبِيْثَةٍ
كَشَجَرَةٍ خَبِيْثَةِ ٍاجْتُثَّتْ مِنْ فَوْقِ الْاَرْضِ مَا لَهَا مِنْ قَرَارٍ ﴿٢٦﴾
يُثَبِّتُ اللّٰهُ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا بِالْقَوْلِ الثَّابِتِ فِي الْحَيٰوةِ الدُّنْيَا وَفِي

देता है कि लोग इनसे सबक़ लें। (26) और 'कलिमए-ख़बीसा'[37] की मिसाल एक बदज़ात पेड़ की-सी है जो ज़मीन की सतह से उखाड़ फेंका जाता है, उसके लिए कोई जमाव नहीं है।[38] (27) ईमान लानेवालों को अल्लाह एक पक्की बात की बुनियाद पर

सीरत में मज़बूती, अख़लाक़ में पाकीज़गी, रूह में ताज़गी, जिस्म में पाकी-सफ़ाई, बर्ताव में ख़ुशगवारी, मामलात में सच्चाई, बातचीत में सच्चाई-पसन्दी, क़ौल-क़रार में पुख़्तगी, सामाजिक मामलों में अच्छा सुलूक, तहज़ीब में फ़ज़ीलत (बड़ाई), रहन-सहन में तवाज़ुन, रोज़ी-रोज़गार में इंसाफ़ और हमदर्दी, सियासत में ईमानदारी, जंग में शराफ़त, सुलह और समझौते में ख़ुलूस और अहद-पैमान में मज़बूती पैदा करता है। वह एक ऐसा पारस है जिसका असर अगर कोई ठीक-ठीक क़बूल कर ले तो सोना बन जाए।

37. यह लफ़्ज़ कलिमए-तय्यिबा का उलट है, जिसका इस्तेमाल हालाँकि हर हक़ीक़त के ख़िलाफ़ और झूठी बात पर हो सकता है, मगर यहाँ इससे मुराद हर वह बातिल अक़ीदा (मिथ्या धारणा) है जिसको इनसान अपने निज़ामे-ज़िन्दगी की बुनियाद बनाए, चाहे वह दहरियत (भौतिकवाद) हो, इल्हाद (नास्तिकता) हो, बेदीनी हो, शिर्क व बुत-परस्ती हो या कोई और ऐसा ख़याल जो पैग़म्बरों के वास्ते से न आया हो।

38. दूसरे अलफ़ाज़ में इसका मतलब यह हुआ कि बातिल अक़ीदा चूँकि हक़ीक़त के ख़िलाफ़ है इसलिए फ़ितरत का क़ानून कहीं भी उससे मेल नहीं खाता। कायनात का हर ज़र्रा उसको झुठलाता है। ज़मीन व आसमान की हर चीज़ उसको रद्द करती है। ज़मीन में उसका बीज बोने की कोशिश की जाए तो हर वक़्त वह उसे उगलने के लिए तैयार रहती है। आसमान की तरफ़ उसकी शाखाएँ बढ़ना चाहें तो वह उन्हें नीचे धकेलता है। इनसान को अगर इम्तिहान के लिए चुनने की आज़ादी और अमल की मुहलत न दी गई होती तो यह नापाक पेड़ कहीं उगने ही न पाता। मगर चूँकि अल्लाह तआला ने इनसान को अपने रुझान के मुताबिक़ काम करने का मौक़ा दिया है, इसलिए जो नादान लोग फ़ितरत के क़ानून से लड़-भिड़कर यह पेड़ लगाने की कोशिश करते हैं, उनके ज़ोर मारने से ज़मीन उसे थोड़ी बहुत जगह दे देती है, हवा और पानी से कुछ न कुछ ग़िज़ा (भोजन) भी इसे मिल जाती है, और फ़िज़ा भी इसकी शाखाओं को फैलने के लिए न चाहते हुए कुछ मौक़ा देने पर तैयार हो जाती है। लेकिन जब तक यह दरख़्त क़ायम रहता है कड़वे, कसैले, ज़हरीले फल देता रहता है, और हालात के बदलते ही हादिसों का एक झटका उसको जड़ से उखाड़ फेंकता है।

ع الْاٰخِرَةِ ۚ وَيُضِلُّ اللّٰهُ الظّٰلِمِيْنَ ۙ وَيَفْعَلُ اللّٰهُ مَا يَشَآءُ ﴿٢٧﴾ اَلَمْ تَرَ اِلَى

दुनिया और आख़िरत दोनों में जमाव और मज़बूती देता है[39], और ज़ालिमों को अल्लाह भटका देता है।[40] अल्लाह को इख़्तियार है जो चाहे करे।

'कलिमए-तय्यिबा' और 'कलिमए-ख़बीसा' के इस फ़र्क़ को हर वह शख़्स आसानी से महसूस कर सकता है जो दुनिया के मज़हबी, अख़्लाक़ी, फ़ितरी और सामाजिक इतिहास का अध्ययन करे। वह देखेगा कि इतिहास के आरम्भ से आज तक कलिमए-तय्यिबा एक ही रहा है, मगर ख़बीस क़लिमे बेशुमार पैदा हो चुके हैं। कलिमए-तय्यिबा कभी जड़ से न उखाड़ा जा सका, मगर ख़बीस कलिमों की फ़ेहरिस्त हज़ारों मुर्दा कलिमों के नामों से भरी पड़ी है, यहाँ तक कि उनमें से बहुतों का हाल यह है कि आज इतिहास के पन्नों के सिवा कहीं उनका नामो-निशान तक नहीं पाया जाता। अपने ज़माने में जिन कलिमों का बड़ा ज़ोर-शोर रहा है आज उनका ज़िक्र किया जाए तो लोग हैरान रह जाएँ कि कभी इनसान ऐसी-ऐसी बेवक़ूफ़ियों को भी मानता रहा है।

फिर कलिमए-तय्यिबा को जब, जहाँ और जिस शख़्स या क़ौम ने भी सही मानों में अपनाया उसकी ख़ुशबू से उसका माहौल महक उठा और उसकी बरकतों से सिर्फ़ उसी शख़्स या क़ौम ने फ़ायदा नहीं उठाया, बल्कि उसके आसपास की दुनिया भी उनसे मालामाल हो गई। मगर किसी कलिमए-ख़बीस ने जहाँ जिस इनफ़िरादी (व्यक्तिगत) या इज्तिमाई ज़िन्दगी में भी जड़ पकड़ी उसकी सड़ांध से सारा माहौल बदबूदार हो गया और उसके काँटों की चुभन से न उसका माननेवाला अम्न में रहा, न कोई ऐसा शख़्स जिसको उसका सामना करना पड़ा हो।

इस सिलसिले में यह बात भी समझ लेनी चाहिए कि यहाँ मिसाल के अन्दाज़ में उसी बात को समझाया गया है जो ऊपर आयत-18 में यूँ बयान हुई थी, "अपने रब से कुफ़्र (इनकार) करनेवालों के आमाल की मिसाल उस राख की-सी है जिसे एक तूफ़ानी दिन की आँधी ने उड़ा दिया हो।" और यही मज़मून इससे पहले सूरा-13 रअ्द, आयत-17 में एक दूसरे अन्दाज़ से सैलाब और पिघलाई हुई धातुओं की मिसाल में बयान हो चुका है।

39. यानी दुनिया में उनको इस कलिमे की वजह से एक पायदार नज़रिया, एक मज़बूत निज़ामे-फ़िक्र (चिन्तन-व्यवस्था) और एक व्यापक विचारधारा मिलती है जो मसले को हल करने और हर गुत्थी को सुलझाने के लिए 'मास्टर की' (चाबी) की हैसियत रखती है। सीरत की मज़बूती और अख़्लाक़ का दुरुस्त होना हासिल होता है जिसे समय के उतार-चढ़ाव डिगा नहीं सकते। ज़िन्दगी के ऐसे ठोस उसूल मिलते हैं जो एक तरफ़ उनके दिल को सुकून और दिमाग़ को इत्मीनान देते हैं और दूसरी तरफ़ उन्हें कोशिश व अमल की राहों में भटकने, ठोकरें खाने और रंग बदलते रहने का शिकार होने से बचाते हैं। फिर जब वे मौत की सीमा पार करके आख़िरत की दुनिया की हदों में क़दम रखते हैं तो वहाँ किसी तरह की हैरानी और परेशानी उन्हें नहीं होती; क्योंकि वहाँ सब कुछ बिलकुल उनकी उम्मीदों के ठीक मुताबिक़ होता है। वे उस दुनिया में दाख़िल होते हैं मानो उसके हालात को पहले ही से जानते थे। वहाँ कोई मरहला

ٱلَّذِينَ بَدَّلُوا نِعۡمَتَ ٱللَّهِ كُفۡرًا وَأَحَلُّوا قَوۡمَهُمۡ دَارَ ٱلۡبَوَارِ ﴿٢٨﴾ جَهَنَّمَ
يَصۡلَوۡنَهَاۖ وَبِئۡسَ ٱلۡقَرَارُ ﴿٢٩﴾ وَجَعَلُوا لِلَّهِ أَندَادًا لِّيُضِلُّوا عَن
سَبِيلِهِۦۗ قُلۡ تَمَتَّعُوا فَإِنَّ مَصِيرَكُمۡ إِلَى ٱلنَّارِ ﴿٣٠﴾ قُل لِّعِبَادِيَ
ٱلَّذِينَ ءَامَنُوا يُقِيمُوا ٱلصَّلَوٰةَ وَيُنفِقُوا مِمَّا رَزَقۡنَٰهُمۡ سِرًّا
وَعَلَانِيَةً مِّن قَبۡلِ أَن يَأۡتِيَ يَوۡمٌ لَّا بَيۡعٌ فِيهِ وَلَا خِلَٰلٌ ﴿٣١﴾ ———

(28) तुमने देखा उन लोगों को जिन्होंने अल्लाह की नेमत पाई और उसे नाशुक्री से बदल डाला और (अपने साथ) अपनी क़ौम को भी तबाही के घर में झोंक दिया —— (29) यानी जहन्नम, जिसमें वे झुलसे जाएँगे और वह सबसे बुरा ठिकाना है —— (30) और अल्लाह के कुछ हमसर (समकक्ष) ठहरा लिए, ताकि वे उन्हें अल्लाह के रास्ते से भटका दें। इनसे कहो, अच्छा मज़े कर लो, आख़िकार तुम्हें पलटकर जाना दोज़ख़ ही में है।

(31) ऐ नबी, मेरे जो बन्दे ईमान लाए हैं उनसे कह दो कि नमाज़ क़ायम करें और जो कुछ हमने उनको दिया है उसमें से खुले और छिपे (भलाई के रास्ते में) ख़र्च करें[41] इससे पहले कि वह दिन आए जिसमें न ख़रीदना-बेचना होगा और न दोस्ती हो सकेगी।[42]

ऐसा पेश नहीं आता जिसकी उन्हें पहले ख़बर न दे दी गई हो और जिसके लिए उन्होंने पहले से तैयारी न कर रखी हो। इसलिए वहाँ हर मंज़िल से वे पूरे जमाव के साथ गुज़रते है। उनका हाल वहाँ हक़ के उस इनकारी से बिलकुल अलग होता है जिसे मरते ही अपनी उम्मीदों के सरासर ख़िलाफ़ एक दूसरी ही सूरतेहाल से अचानक सामना होता है।

40. यानी जो ज़ालिम कलिमए-तय्यिबा को छोड़कर किसी कलिमए-ख़बीसा की पैरवी करते हैं, अल्लाह तआला उनके ज़ेहन को उलझनों में डाल देता हैं और उनकी कोशिशों को अकारथ कर देता है। वे किसी पहलू से भी सोच व अमल की सही राह नहीं पा सकते। उनका कोई तीर भी निशाने पर नहीं बैठता।

41. मतलब यह है कि ईमानवालों का रवैया इनकार करनेवालों से अलग होना चाहिए। वे तो नेमत की नाशुक्री करनेवाले हैं। इन्हें शुक्रगुज़ार होना चाहिए और इस शुक्रगुज़ारी की अमली सूरत यह है कि नमाज़ क़ायम करें और ख़ुदा की राह में अपने माल ख़र्च करें।

42. यानी न तो वहाँ कुछ दे दिलाकर ही नजात ख़रीदी जा सकेगी और न किसी की दोस्ती काम

اَللّٰهُ الَّذِىۡ خَلَقَ السَّمٰوٰتِ وَالۡاَرۡضَ وَاَنۡزَلَ مِنَ السَّمَآءِ مَآءً
فَاَخۡرَجَ بِهٖ مِنَ الثَّمَرٰتِ رِزۡقًا لَّكُمۡ‌ ۚ وَسَخَّرَ لَكُمُ الۡفُلۡكَ لِتَجۡرِىَ فِى
الۡبَحۡرِ بِاَمۡرِهٖ‌ ۚ وَسَخَّرَ لَكُمُ الۡاَنۡهٰرَ ۞ ٣٢ وَسَخَّرَ لَكُمُ الشَّمۡسَ وَالۡقَمَرَ
دَآئِبَيۡنِ‌ ۚ وَسَخَّرَ لَكُمُ الَّيۡلَ وَالنَّهَارَ‌ ۞ ٣٣ وَاٰتٰٮكُمۡ مِّنۡ كُلِّ مَا سَاَلۡتُمُوۡهُ‌

(32) अल्लाह वही तो है[43] जिसने ज़मीन और आसमानों को पैदा किया और आसमान से पानी बरसाया, फिर उसके ज़रिये से तुम्हें रोज़ी पहुँचाने के लिए तरह-तरह के फल पैदा किए, जिसने नाव को तुम्हारे लिए सधाया कि समुद्र में उसके हुक्म से चले, और नदियों को तुम्हारे लिए सधाया, (33) जिसने सूरज और चाँद को तुम्हारे लिए सधाया कि लगातार चले जा रहे हैं और रात और दिन को तुम्हारे लिए सधाया[44], (34) जिसने वह सब कुछ तुम्हें दिया जो तुमने माँगा।[45] अगर तुम अल्लाह की नेमतों

आएगी कि वह तुम्हें ख़ुदा की पकड़ से बचा ले।

43. यानी वह अल्लाह जिसकी नेमतों की नाशुक्री की जा रही है, जिसकी बन्दगी और फ़रमाँबरदारी से मुँह मोड़ा जा रहा है, जिसके साथ ज़बरदसती के साझी ठहराए जा रहे हैं, वह वही तो है जिसके ये और ये एहसान हैं।

44. "तुम्हारे लिए सधाया" को आमतौर पर लोग ग़लती से "तुम्हारे मातहत कर दिया" के मानी में ले लेते हैं, और फिर इस मज़मून की आयतों से अजीब-अजीब मानी निकालने लगते हैं। यहाँ तक कि कुछ लोग तो यहाँ तक समझ बैठे कि आयतों के मुताबिक़ आसमानों और ज़मीन की चीज़ों को वश में करना इनसान का सबसे बड़ा मक़सद है। हालाँकि इनसान के लिए इन चीज़ों को सधाने का मतलब इसके सिवा कुछ नहीं है कि अल्लाह तआला ने उनको ऐसे क़ानूनों का पाबन्द बना रखा है जिनकी बदौलत वह इनसान के लिए फ़ायदेमंद हो गई हैं। नाव अगर क़ुदरत के कुछ ख़ास क़ानूनों की पाबन्द न होती तो इनसान कभी समुद्री सफ़र न कर सकता। नदियाँ अगर ख़ास क़ानूनों में जकड़ी हुई न होतीं तो कभी उनसे नहरें न निकाली जा सकतीं। सूरज और चाँद और दिन-रात अगर ज़ाब्तों में कसे हुए न होते तो यहाँ ज़िन्दगी ही मुमकिन न होती, एक फलता-फूलता इनसानी समाज वुजूद में आना तो दूर की बात है।

45. यानी तुम्हारी फ़ितरत की हर माँग पूरी की, तुम्हारी ज़िन्दगी के लिए जो-जो कुछ चाहिए था जुटाया गया, तुम्हारे बाक़ी रहने और तरक़्क़ी के लिए जिन-जिन वसायल (संसाधनों) की ज़रूरत थी, सब जुटा दिए।

وَاِنْ تَعُدُّوْا نِعْمَتَ اللّٰهِ لَا تُحْصُوْهَا ۭ اِنَّ الْاِنْسَانَ لَظَلُوْمٌ كَفَّارٌ ۝۳۴
وَاِذْ قَالَ اِبْرٰهِيْمُ رَبِّ اجْعَلْ هٰذَا الْبَلَدَ اٰمِنًا وَّاجْنُبْنِيْ وَبَنِيَّ اَنْ
نَّعْبُدَ الْاَصْنَامَ ۝۳۵ رَبِّ اِنَّهُنَّ اَضْلَلْنَ كَثِيْرًا مِّنَ النَّاسِ ۚ فَمَنْ
تَبِعَنِيْ فَاِنَّهٗ مِنِّيْ ۚ وَمَنْ عَصَانِيْ فَاِنَّكَ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ۝۳۶ رَبَّنَآ اِنِّيْٓ
اَسْكَنْتُ مِنْ ذُرِّيَّتِيْ بِوَادٍ غَيْرِ ذِيْ زَرْعٍ عِنْدَ بَيْتِكَ الْمُحَرَّمِ ۙ رَبَّنَا

को गिनना चाहो तो गिन नहीं सकते। हक़ीक़त तो यह है कि इनसान बड़ा ही बेइनसाफ़ और नाशुक्रा है।

(35) याद करो वह वक़्त जब इबराहीम ने दुआ की थी[46] कि परवरदिगार! इस शहर[47] को अमन का शहर बना और मुझे और मेरी औलाद को बुतपरस्ती से बचा। (36) परवरदिगार! इन बुतों ने बहुतों को गुमराही में डाला है[48], (मुमकिन है कि मेरी औलाद को भी ये गुमराह कर दें, इसलिए उनमें से) जो मेरे तरीक़े पर चले वह मेरा है और जो मेरे ख़िलाफ़ तरीक़ा अपनाए तो यक़ीनन तू माफ़ करनेवाला और मेहरबान है।[49] (37) परवरदिगार! मैंने एक बेआबो-गयाह (निर्जल और ऊसर) घाटी में अपनी औलाद के

46. आम एहसानों का ज़िक्र करने के बाद अब उन ख़ास एहसानों का ज़िक्र किया जा रहा है जो अल्लाह तआला ने क़ुरैश पर किए थे और इसके साथ यह भी बताया जा रहा है कि तुम्हारे बाप इबराहीम (अलैहि॰) ने यहाँ आकर किन तमन्नाओं के साथ तुम्हें बसाया था, उसकी दुआओं के जवाब में कैसे-कैसे एहसान हमने तुमपर किए, और अब तुम अपने बाप की तमन्नाओं और अपने रब के एहसानों का जवाब किन गुमराहियों और बद-आमालियों से दे रहे हो।

47. यानी मक्का।

48. यानी ख़ुदा से फेरकर अपना दीवाना बना लिया है। यह अलामती अन्दाज़े-बयान है। बुत चूँकि बहुतों की गुमराही का सबब बने है, इसलिए गुमराह करने के काम को उनसे जोड़ दिया गया है।

49. यह हज़रत इबराहीम की कमाल दर्जे की नर्म-दिली और इनसानों के हाल पर उनकी इन्तिहाई मेहरबानी है कि वह किसी हाल में भी इनसान को ख़ुदा के अज़ाब में गिरफ़्तार होते नहीं देख सकते, बल्कि आख़िरी वक़्त तक माफ़ कर देने और छोड़ देने की इल्तिजा करते रहते हैं। रोज़ी

لِيُقِيْمُوا الصَّلٰوةَ فَاجْعَلْ اَفْـِٕدَةً مِّنَ النَّاسِ تَهْوِيْۤ اِلَيْهِمْ
وَارْزُقْهُمْ مِّنَ الثَّمَرٰتِ لَعَلَّهُمْ يَشْكُرُوْنَ ۝٣٧ رَبَّنَاۤ اِنَّكَ تَعْلَمُ مَا
نُخْفِيْ وَمَا نُعْلِنُ ؕ وَمَا يَخْفٰى عَلَى اللّٰهِ مِنْ شَيْءٍ فِي الْاَرْضِ وَلَا فِي
السَّمَآءِ ۝٣٨ اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ الَّذِيْ وَهَبَ لِيْ عَلَى الْكِبَرِ اِسْمٰعِيْلَ وَاِسْحٰقَ ؕ

एक हिस्से को तेरे मोहरतम घर के पास ला बसाया है। परवरदिगार! यह मैंने इसलिए किया है कि ये लोग यहाँ नमाज़ क़ायम करें, इसलिए तू लोगों के दिलों को इनका ख़ाहिशमन्द बना और इन्हें खाने को फल दे[50], शायद कि ये शुक्रगुज़ार बनें। (38) परवरदिगार! तू जानता है जो कुछ हम छिपाते हैं और जो कुछ ज़ाहिर करते हैं।[51] —— और[52] वाक़ई अल्लाह से कुछ भी छिपा हुआ नहीं है, न ज़मीन में, न आसमानों में —— (39) 'शुक्र है उस अल्लाह का जिसने मुझे इस बुढ़ापे में इसमाईल और इसहाक़

के मामले में तो वे यहाँ तक कह देने में भी पीछे न हटे कि "और इसके रहनेवालों में से जो अल्लाह और आख़िरत को मानें, उन्हें हर क़िस्म के फलों की रोज़ी दे।" (सूरा-2 अल-बक़रा, आयत-126), लेकिन जहाँ आख़िरत की पकड़ का सवाल आया वहाँ उनकी ज़बान से यह न निकला कि जो मेरे तरीक़े के ख़िलाफ़ चले उसे सज़ा दे डालना, बल्कि कहा तो यह कहा कि उनके मामले में क्या अर्ज़ करूँ, तू माफ़ करनेवाला, रहम करनेवाला है। और यह कुछ अपनी ही औलाद के साथ इस सिर से पैर तक रहम व मेहरबानीवाले इनसान का ख़ास रवैया नहीं है, बल्कि जब फ़रिश्ते लूत (अलैहि०) की क़ौम जैसी बदकार क़ौम को तबाह करने जा रहे थे उस वक़्त भी अल्लाह तआला बड़ी मुहब्बत के अन्दाज़ में फ़रमाता है कि "इबराहीम हमसे झगड़ने लगा।" (सूरा-11 हूद, आयत -74) यही हाल हज़रत ईसा (अलैहि०) का है कि जब अल्लाह तआला उनके सामने ईसाइयों की गुमराही साबित कर देता है तो वे कहते हैं कि "अगर आप इनको सज़ा दें तो ये आपके बन्दे हैं और अगर माफ़ कर दें तो आप पूरा अधिकार रखनेवाले और हिक्मतवाले हैं।" (सूरा-5. अल-माइदा, आयत-118)

50. यह उसी दुआ की बरकत है कि पहले सारा अरब मक्का की तरफ़ हज और उमरे के लिए खिंचकर आता था, और अब दुनिया भर के लोग खिंच-खिंचकर वहाँ जाते हैं। फिर यह भी उसी दुआ की बरकत है कि हर ज़माने में हर तरह के फल, अनाज और रिज़्क़ के दूसरे सामान वहाँ पहुँचते रहते हैं, हालाँकि इस बंजर घाटी में जानवरों के लिए चारा तक पैदा नहीं होता।

51. यानी ऐ ख़ुदा जो कुछ मैं ज़बान से कह रहा हूँ वह भी तू सुन रहा है और जो जज़्बात मेरे दिल में छिपे हुए हैं उनको भी तू जानता है।

إِنَّ رَبِّي لَسَمِيعُ الدُّعَاءِ ﴿٣٩﴾ رَبِّ اجْعَلْنِي مُقِيمَ الصَّلَوٰةِ وَمِن ذُرِّيَّتِي ۚ
رَبَّنَا وَتَقَبَّلْ دُعَاءِ ﴿٤٠﴾ رَبَّنَا اغْفِرْ لِي وَلِوَالِدَيَّ وَلِلْمُؤْمِنِينَ يَوْمَ
يَقُومُ الْحِسَابُ ﴿٤١﴾ وَلَا تَحْسَبَنَّ اللَّهَ غَافِلًا عَمَّا يَعْمَلُ الظَّالِمُونَ ۚ إِنَّمَا ع ۱۸
يُؤَخِّرُهُمْ لِيَوْمٍ تَشْخَصُ فِيهِ الْأَبْصَارُ ﴿٤٢﴾ مُهْطِعِينَ مُقْنِعِي رُءُوسِهِمْ
لَا يَرْتَدُّ إِلَيْهِمْ طَرْفُهُمْ ۖ وَأَفْئِدَتُهُمْ هَوَاءٌ ﴿٤٣﴾ وَأَنذِرِ النَّاسَ يَوْمَ
يَأْتِيهِمُ الْعَذَابُ فَيَقُولُ الَّذِينَ ظَلَمُوا رَبَّنَا أَخِّرْنَا إِلَىٰ أَجَلٍ قَرِيبٍ

जैसे बेटे दिए, सच तो यह है कि मेरा रब ज़रूर दुआ सुनता है।(40) ऐ मेरे परवरदिगार! मुझे नमाज़ क़ायम करनेवाला बना और मेरी औलाद से भी (ऐसे लोग उठा, जो ये काम करें)। परवरदिगार! मेरी दुआ क़बूल कर। (41) परवरदिगार! मुझे और मेरे माँ-बाप को और सब ईमान लानेवालों को उस दिन माफ़ कर दीजियो, जबकि हिसाब क़ायम होगा।"[53]

(42) अब ये ज़ालिम लोग जो कुछ कर रहे हैं, अल्लाह को तुम इससे ग़ाफ़िल न समझो। अल्लाह तो इन्हें टाल रहा है उस दिन के लिए जब हाल यह होगा कि आँखें फटी की फटी रह गई हैं। (43) सर उठाए भागे चले जा रहे हैं, नज़रें ऊपर जमी हैं[54] और दिल उड़े जाते हैं। (44) ऐ नबी! उस दिन से तुम इन्हें डराओ जबकि अज़ाब इन्हें आ लेगा। उस वक़्त ये ज़ालिम कहेंगे कि "ऐ हमारे रब, हमें थोड़ी-सी मोहलत और दे

52. यह बीच में अलग से कही गई बात है जो अल्लाह तआला ने हज़रत इबराहीम (अलैहि०) की बात की तसदीक़ (पुष्टि) में कही है।
53. हज़रत इबराहीम (अलैहि०) ने मग़फ़िरत की इस दुआ में अपने बाप को उस वादे की वजह से शरीक कर लिया था जो उन्होंने वतन से निकलते वक़्त किया था कि "मैं अपने रब से आपके लिए माफ़ी की दुआ करूँगा।" (सूरा-20 मरयम, आयत-47) मगर बाद में जब उन्हें एहसास हुआ कि वह तो अल्लाह का दुश्मन था तो उन्होंने उससे अलग होने का साफ़ एलान कर दिया (सूरा-9 तौबा, आयत-114)।
54. यानी क़ियामत का जो हौलनाक नज़ारा उनके सामने होगा। उसको इस तरह टकटकी लगाए देख रहे होंगे मानो कि उनके दीदे पथरा गए हैं, न पलक झपकेगी, न नज़र हटेगी।

نُّجِبْ دَعْوَتَكَ وَنَتَّبِعِ الرُّسُلَ ؕ اَوَلَمْ تَكُوْنُوْٓا اَقْسَمْتُمْ مِّنْ قَبْلُ مَا
لَكُمْ مِّنْ زَوَالٍ ﴿٤٤﴾ وَّسَكَنْتُمْ فِيْ مَسٰكِنِ الَّذِيْنَ ظَلَمُوْٓا اَنْفُسَهُمْ
وَتَبَيَّنَ لَكُمْ كَيْفَ فَعَلْنَا بِهِمْ وَضَرَبْنَا لَكُمُ الْاَمْثَالَ ﴿٤٥﴾ وَقَدْ
مَكَرُوْا مَكْرَهُمْ وَعِنْدَ اللّٰهِ مَكْرُهُمْ ؕ وَاِنْ كَانَ مَكْرُهُمْ لِتَزُوْلَ مِنْهُ
الْجِبَالُ ﴿٤٦﴾ فَلَا تَحْسَبَنَّ اللّٰهَ مُخْلِفَ وَعْدِهٖ رُسُلَهٗ ؕ اِنَّ اللّٰهَ عَزِيْزٌ ذُو
انْتِقَامٍ ﴿٤٧﴾ يَوْمَ تُبَدَّلُ الْاَرْضُ غَيْرَ الْاَرْضِ وَالسَّمٰوٰتُ وَبَرَزُوْا

दे, हम तेरी दावत को क़बूल करेंगे और रसूलों की पैरवी करेंगे।" (मगर उन्हें साफ़ जवाब दिया जाएगा कि) क्या तुम वही लोग नहीं हो जो इससे पहले क़समें खा-खाकर कहते थे कि हमारा तो कभी ज़वाल (पतन) होना ही नहीं है? (45) हालाँकि तुम उन क़ौमों की बस्तियों में रह-बस चुके थे जिन्होंने अपने ऊपर आप ज़ुल्म किया था और देख चुके थे कि हमने उनसे क्या सुलूक किया और उनकी मिसालें दे-देकर हम तुम्हें समझा भी चुके थे। (46) उन्होंने अपनी सारी ही चालें चल देखीं, मगर उनकी हर चाल का तोड़ अल्लाह के पास था, अगरचे उनकी चालें ऐसी ग़ज़ब की थीं कि पहाड़ उनसे टल जाएँ।[55]

(47) तो ऐ नबी! तुम हरगिज़ यह गुमान न करो कि अल्लाह कभी अपने रसूलों से किए हुए वादों के ख़िलाफ़ करेगा।[56] अल्लाह ज़बरदस्त है और बदला लेनेवाला है। (48) डराओ इन्हें उस दिन से जबकि ज़मीन और आसमान बदलकर कुछ से कुछ कर

---

55. यानी तुम यह भी देख चुके थे कि तुमसे पहले की क़ौमों ने ख़ुदा के क़ानूनों को ख़िलाफ़वर्ज़ी के नतीजों से बचने और पैग़म्बरों की दावत को नाकाम करन के लिए कैसी-कैसी ज़बरदस्त चालें चलीं, और यह भी देख चुके थे कि अल्लाह की एक ही चाल से वे किस तरह मात खा गईं। मगर फिर भी तुम हक़ के ख़िलाफ़ चालबाज़ियाँ करने से न रुके और यही समझते रहे कि तुम्हारी चालें ज़रूर कामयाब होंगी।

56. इस जुमले में बात का रुख़ बज़ाहिर नबी (सल्ल॰) की तरफ़ है, मगर अस्ल में मक़सद सुनाना आपकी मुख़ालिफ़त करनेवालों को है। उन्हें यह बताया जा रहा है कि अल्लाह ने पहले भी

لِلّٰهِ الْوَاحِدِ الْقَهَّارِ ﴿٤٨﴾ وَتَرَى الْمُجْرِمِيْنَ يَوْمَىِٕذٍ مُّقَرَّنِيْنَ فِى
الْاَصْفَادِ ﴿٤٩﴾ سَرَابِيْلُهُمْ مِّنْ قَطِرَانٍ وَّتَغْشٰى وُجُوْهَهُمُ النَّارُ ﴿٥٠﴾
لِيَجْزِىَ اللّٰهُ كُلَّ نَفْسٍ مَّا كَسَبَتْ ۭ اِنَّ اللّٰهَ سَرِيْعُ الْحِسَابِ ﴿٥١﴾ هٰذَا
بَلٰغٌ لِّلنَّاسِ وَلِيُنْذَرُوْا بِهٖ وَلِيَعْلَمُوْٓا اَنَّمَا هُوَ اِلٰهٌ وَّاحِدٌ وَّلِيَذَّكَّرَ
اُولُوا الْاَلْبَابِ ﴿٥٢﴾

दिए जाएँगे[57] और सब के सब एक अकेले ज़बरदस्त क़ुव्वत रखनेवाले अल्लाह के सामने बेनक़ाब हाज़िर हो जाएँगे। (49) उस दिन तुम मुजरिमों को देखोगे कि ज़ंजीरों में हाथ-पाँव जकड़े होंगे, (50) तारकोल[58] के कपड़े पहने हुए होंगे और आग के शोले उनके चेहरों पर छाए जा रहे होंगे। (51) यह इसलिए होगा कि अल्लाह हर जानदार को उसके किए का बदला देगा। अल्लाह को हिसाब लेते कुछ देर नहीं लगती।

(52) यह एक पैग़ाम है सब इंसानों के लिए और यह भेजा गया है इसलिए कि उनको इसके ज़रिये से ख़बरदार कर दिया जाए और वे जान लें कि हक़ीक़त में अल्लाह बस एक ही है, और जो अक़्ल रखते हैं वे होश में आ जाएँ।

अपने रसूलों से जो वादे किए थे वे पूरे किए और उनके मुख़ालिफ़ों को नीचा दिखाया, और अब भी जो वादा वह अपने रसूल मुहम्मद (सल्ल॰) से कर रहा है उसे पूरा करेगा और उन लोगों को तहस-नहस कर देगा जो उसकी मुख़ालिफ़त कर रहे हैं।

57. इस आयत से और क़ुरआन के दूसरे इशारों से मालूम होता है कि क़ियामत में ज़मीन व आसमान बिलकुल मिट नहीं जाएँगे, बल्कि सिर्फ़ मौजूदा तबई निज़ाम (भौतिक व्यवस्था) को अस्त-व्यस्त कर डाला जाएगा। उसके बाद पहले सूर फूँके जाने और आख़िरी सूर फूंके जाने के बीच एक ख़ास मुद्दत में, जिसे अल्लाह ही जानता है, ज़मीन और आसमानों की मौजूदा हालत बदल दी जाएगी और एक दूसरा क़ुदरती निज़ाम, दूसरे क़ुदरती क़ानूनों के साथ बना दिया जाएगा। वही आख़िरत की दुनिया होगी। फिर आख़िरी सूर फूँके जाने के साथ ही तमाम वे इनसान जो आदम की पैदाइश से लेकर क़ियामत तक पैदा हुए थे, नए सिरे से ज़िन्दा किए जाएँगे और अल्लाह तआला के सामने पेश होंगे। इसी का नाम क़ुरआन की ज़बान में 'हश्र' है

जिसके लुग़वी (शाब्दिक) मानी समेटना और इकट्ठा करना है। क़ुरआन के इशारों और हदीस के साफ़ बयानों से यह बात साबित है कि हश्र इसी ज़मीन पर बरपा होगा, यहीं अदालत क़ायम होगी, यहीं आमाल का वजन करने के लिए मीज़ान (तराज़ू) लगाई जाएगी और ज़मीन के मामले ज़मीन ही पर निपटाए जाएँगे। साथ ही यह भी क़ुरआन व हदीस से साबित है कि हमारी वह दूसरी ज़िन्दगी जिसमें ये मामले पेश आँएगे, सिर्फ़ रूहानी नहीं होगी, बल्कि ठीक उसी तरह जिस्म व रूह के साथ हम ज़िन्दा किए जाएँगे जिस तरह आज ज़िन्दा हैं, और हर शख़्स ठीक उसी शख़्सियत के साथ वहाँ मौजूद होगा जिसे लिए हुए वह दुनिया से रुख़सत हुआ था।

58. अस्ल अरबी में लफ़्ज 'क़तिरान' इस्तेमाल हुआ है। क़ुरआन के कुछ तर्जमा करनेवालों ने 'क़तिरान' का मतलब गन्धक और कुछ ने पिघला हुआ ताँबा बयान किया है। मगर अस्ल में अरबी में 'क़तिरान' का लफ़्ज़ डामर और तारकोल के लिए इस्तेमाल होता है।

☆☆☆

15. अल-हिज्र

परिचय

नाम

आयत नम्बर-80 में 'हिज्र' लफ़्ज़ आया है, उसी को इस सूरा का नाम दे दिया गया है।

उतरने का ज़माना

मज़ामीन (विषय) और अन्दाज़े-बयान से साफ़ पता चलता है कि इस सूरा के उतरने का ज़माना सूर-14 (इबराहीम) के ज़माने से मिला हुआ है। इसके पसमंज़र में दो चीज़ें बिलकुल साफ़ दिखाई देती हैं। एक यह कि नबी (सल्ल०) को दावत (पैग़ाम) पहुँचाते हुए एक मुद्दत बीत चुकी है और उस क़ौम की, जिसको पैग़ाम दिया जा रहा है, लगातार हठधर्मी, मज़ाक़ उड़ाने, मुख़ालिफ़त करने और ज़ुल्मो-सितम की हद हो गई है, जिसके बाद अब समझाने-बुझाने का मौक़ा कम और ख़बरदार करने और डराने का मौक़ा ज़्यादा है। दूसरे यह कि अपनी क़ौम के इनकार, हठधर्मी और रुकावटों के पहाड़ तोड़ते-तोड़ते नबी (सल्ल०) थके जा रहे हैं और दिल टूटने की कैफ़ियत बार-बार आपपर छा रही है, जिसे देखकर अल्लाह आपको तसल्ली दे रहा है और आपकी हिम्मत बँधा रहा है।

बहसें और मर्कज़ी मज़मून

यही दो मज़मून इस सूरा में बयान हुए हैं— एक यह कि ख़बरदार उन लोगों को किया गया है जो नबी (सल्ल०) की दावत का इनकार कर रहे थे और आपका मज़ाक़ उड़ाते और आपके काम में तरह-तरह की रुकावटें पैदा करते थे और दूसरा यह कि नबी (सल्ल०) को तसल्ली दी गई और आपकी हिम्मत बढ़ाई गई है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि यह सूरा समझाने और नसीहत करने से ख़ाली है। क़ुरआन में कहीं भी अल्लाह ने सिर्फ़ ख़बरदार करने या सिर्फ़ डराने-धमकाने से काम नहीं लिया है, कड़ी से कड़ी धमकियों और मलामतों के बीच भी वह समझाने-बुझाने और नसीहत करने में कमी

नहीं करता। चुनाँचे इस सूरा में भी एक तरफ़ तौहीद (एकेश्वरवाद) की दलीलों की तरफ़ मुख़्तसर तौर पर इशारे किए गए हैं और दूसरी तरफ़ आदम और इबलीस का क़िस्सा सुनाकर नसीहत फ़रमाई गई है।

☆☆☆

بِسۡمِ اللّٰهِ الرَّحۡمٰنِ الرَّحِيۡمِ ○

الٓرٰ تِلۡكَ اٰيٰتُ الۡكِتٰبِ وَقُرۡاٰنٍ مُّبِيۡنٍ ①

رُبَمَا يَوَدُّ الَّذِيۡنَ كَفَرُوۡا لَوۡ كَانُوۡا مُسۡلِمِيۡنَ ② ذَرۡهُمۡ يَاۡكُلُوۡا
وَيَتَمَتَّعُوۡا وَيُلۡهِهِمُ الۡاَمَلُ فَسَوۡفَ يَعۡلَمُوۡنَ ③ وَمَاۤ اَهۡلَكۡنَا مِنۡ
قَرۡيَةٍ اِلَّا وَلَهَا كِتَابٌ مَّعۡلُوۡمٌ ④ مَا تَسۡبِقُ مِنۡ اُمَّةٍ اَجَلَهَا وَمَا

---

15. अल-हिज्र

(मक्का में उतरी – आयतें-99)

अल्लाह के नाम से जो बेइन्तिहा मेहरबान और रहम फ़रमानेवाला है।

(1) अलिफ़-लाम-रा। ये आयते हैं अल्लाह की किताब और वाज़ेह क़ुरआन की।[1]

(2) नामुमकिन नहीं कि एक वक़्त वह आ जाए जब वही लोग जिन्होंने आज (इस्लाम की दावत को क़बूल करने से) इनकार कर दिया है, पछता-पछताकर कहेंगे कि काश! हमने फ़रमाँबरदारी के साथ सिर झुका दिया होता। (3) छोड़ो इन्हें खाएँ-पिएँ, मज़े करें और भुलावे में डाले रखे इनको झूठी उम्मीद। बहुत जल्द इन्हें मालूम हो जाएगा। (4) हमने इससे पहले जिस बस्ती को भी तबाह किया है, उसके लिए अमल की एक ख़ास मोहलत लिखी जा चुकी थी।[2] (5) कोई क़ौम न अपने तय किए गए वक़्त से

---

1. यह इस सूरा के बारे में बतानेवाली मुख़्तसर तमहीद है जिसके बाद फ़ौरन ही अस्ल मौज़ू (विषय) पर तक़रीर शुरू हो जाती है।
   अस्ल अरबी में क़ुरआन के लिए 'मुबीन' लफ़्ज़ सिफ़त के तौर पर इस्तेमाल हुआ है। इसका मतलब यह है कि ये आयतें उस क़ुरआन की हैं जो अपना मक़सद साफ़-साफ़ ज़ाहिर करता है।
2. मतलब यह है कि कुफ़्र (इनकार) करते ही फ़ौरन तो हमने कभी किसी क़ौम को भी नहीं पकड़ लिया है, फिर ये नादान लोग क्यों इस ग़लतफ़हमी में पड़े हैं कि नबी के साथ झुठलाने और उसका मज़ाक़ उड़ाने का जो रवैया इन्होंने अपना रखा है उसपर चूँकि अभी तक इन्हें सज़ा नहीं दी गई, इसलिए यह नबी सिरे से नबी ही नहीं है। हमारा क़ायदा यह है कि हम हर क़ौम के लिए पहले से तय कर लेते हैं कि उसको सुनने, समझने और संभलने के लिए इतनी मुहलत दी

يَسْتَأْخِرُوْنَ ۝٥ وَقَالُوْا يٰۤاَيُّهَا الَّذِيْ نُزِّلَ عَلَيْهِ الذِّكْرُ اِنَّكَ لَمَجْنُوْنٌ ۝٦
لَوْ مَا تَاْتِيْنَا بِالْمَلٰٓئِكَةِ اِنْ كُنْتَ مِنَ الصّٰدِقِيْنَ ۝٧ مَا نُنَزِّلُ
الْمَلٰٓئِكَةَ اِلَّا بِالْحَقِّ وَمَا كَانُوْۤا اِذًا مُّنْظَرِيْنَ ۝٨ اِنَّا نَحْنُ نَزَّلْنَا الذِّكْرَ

पहले हलाक हो सकती है, न उसके बाद छूट सकती है।

(6) ये लोग कहते हैं, "ऐ वह शख़्स जिसपर ज़िक्र[3] उतरा है[4], तू यक़ीनन दीवाना है। (7) अगर तू सच्चा है तो हमारे सामने फ़रिश्तों को ले क्यों नहीं आता?"— (8) हम फ़रिश्तों को यूँ ही नहीं उतार दिया करते। वे जब उतरते हैं तो हक़ (सत्य) के साथ उतरते हैं, और फिर लोगों को मोहलत नहीं दी जाती।[5] (9) रहा यह ज़िक्र तो इसको

जाएगी, और इस हद तक उसकी शरारतों और बुराइयों के बावजूद पूरे सहन और बर्दाश्त के साथ उसे अपनी मनमानी करने का मौक़ा दिया जाता रहेगा। यह मुहलत जब तक बाक़ी रहती है, और हमारी तय की हुई हद जिस वक़्त तक आ नहीं जाती, हम ढील देते रहते हैं। (अमल की मुहलत की तशरीह के लिए देखें—सूरा-14 इबराहीम, हाशिया-18)

3. 'ज़िक्र' का लफ़्ज़ क़ुरआन में इस्तिलाही तौर पर अल्लाह के कलाम के लिए इस्तेमाल हुआ है जो सरासर नसीहत बनकर आता है। पहले जितनी किताबें पैग़म्बरों पर उतरी थीं वे सब भी 'ज़िक्र' थीं और यह क़ुरआन भी 'ज़िक्र' है। ज़िक्र के अस्ल मानी हैं 'याद दिलाना', 'होशियार करना' और 'नसीहत करना'।

4. यह जुमला वे लोग हँसी-मज़ाक के तौर पर कहते थे। वे तो इस बात को मानते ही नहीं थे कि यह ज़िक्र नबी (सल्ल॰) पर उतरा है, न इस बात को मान लेने के बाद वे आपको दीवाना कह सकते थे। अस्ल में उनके कहने का मतलब यह था कि "ऐ वह शख़्स जिसका दावा यह है कि मुझपर ज़िक्र उतरा है।" यह उसी तरह की बात है जैसी फ़िरऔन ने हज़रत मूसा की दावत (पैग़ाम) सुनने के बाद अपने दरबारियों से कही थी कि "यह पैग़म्बर साहब जो तुम लोगों की तरफ़ भेजे गए हैं, इनका दिमाग़ दुरुस्त नहीं है।"

5. यानी फ़रिश्ते सिर्फ़ तमाशा दिखाने के लिए नहीं उतारे जाते कि जब किसी क़ौम ने कहा 'बुलाओ फ़रिश्तों को' और वे फ़ौरन हाज़िर हुए, न फ़रिश्ते इस ग़रज़ के लिए कभी भेजे जाते हैं कि वे आकर लोगों के सामने हक़ीक़त को बेनक़ाब करें और ग़ैब (परोक्ष) के परदे को फाड़कर यह सब कुछ दिखा दें जिसपर ईमान लाने की दावत पैग़म्बरों (अलैहि॰) ने दी है। फ़रिश्तों को भेजने का वक़्त तो वह आख़िरी वक़्त होता है जब किसी क़ौम का फ़ैसला चुका देने का इरादा कर लिया जाता है। उस वक़्त बस फ़ैसला चुकाया जाता है, यह नहीं कहा जाता कि अब ईमान लाओ तो छोड़े देते हैं। ईमान लाने की जितनी मुहलत भी है उसी वक़्त तक है

وَاِنَّا لَهٗ لَحٰفِظُوْنَ ۝٩ وَلَقَدْ اَرْسَلْنَا مِنْ قَبْلِكَ فِيْ شِيَعِ الْاَوَّلِيْنَ ۝١٠
وَمَا يَاْتِيْهِمْ مِّنْ رَّسُوْلٍ اِلَّا كَانُوْا بِهٖ يَسْتَهْزِءُوْنَ ۝١١ كَذٰلِكَ نَسْلُكُهٗ
فِيْ قُلُوْبِ الْمُجْرِمِيْنَ ۝١٢ لَا يُؤْمِنُوْنَ بِهٖ وَقَدْ خَلَتْ سُنَّةُ الْاَوَّلِيْنَ ۝١٣
وَلَوْ فَتَحْنَا عَلَيْهِمْ بَابًا مِّنَ السَّمَآءِ فَظَلُّوْا فِيْهِ يَعْرُجُوْنَ ۝١٤ لَقَالُوْٓا

हमने उतारा है और हम ख़ुद इसके निगहबान हैं।[6]

(10) ऐ नबी! हम तुमसे पहले बहुत-सी गुज़री हुई क़ौमों में रसूल भेज चुके हैं। (11) कभी ऐसा नहीं हुआ कि उनके पास कोई रसूल आया हो और उन्होंने उसका मज़ाक़ न उड़ाया हो। (12) मुजरिमों के दिलों में तो हम इस 'ज़िक्र' को इसी तरह (छड़ की तरह) गुज़ारते हैं। (13) वे इसपर ईमान नहीं लाया करते।[7] पुराने ज़माने से उस ढंग के लोगों का यही तरीक़ा चला आ रहा है। (14, 15) अगर हम उनपर आसमान का

जब तक कि हक़ीक़त बेनक़ाब नहीं हो जाती। उसके बेनक़ाब हो जाने के बाद ईमान लाने का क्या सवाल।

"हक़ के साथ उतरते हैं" का मतलब "हक़ लेकर उतरना" है। यानी वे इसलिए आते हैं कि बातिल (असत्य) को मिटाकर हक़ को उसकी जगह क़ायम कर दें। या दूसरे अलफ़ाज़ में यूँ समझिए कि वे अल्लाह तआला का फ़ैसला लेकर आते हैं और उसे लागू करके छोड़ते हैं।

6. यानी यह 'ज़िक्र' जिसके लानेवाले को तुम 'दीवाना' कह रहे हो, यह हमारा उतारा हुआ है, उसने ख़ुद नहीं गढ़ा है। इसलिए यह गाली उसको नहीं, हमें दी गई है। और यह ख़याल तुम अपने दिल से निकाल दो कि तुम इस 'ज़िक्र' का कुछ बिगाड़ सकोगे। यह सीधे-तौर पर हमारी हिफ़ाज़त में है। न तुम्हारे मिटाए मिट सकेगा, न तुम्हारे दबाए दब सकेगा, न तुम्हारे तानों और एतिराज़ों से इसकी क़द्र घट सकेगी, न तुम्हारे रोके उसकी दावत रुक सकेगी, न इसमें फेर-बदल करने का कभी किसी को मौक़ा मिल सकेगा।

7. अस्ल अरबी में 'नस्लुकुहू' और 'ला युअमिनू-न बिही' अलफ़ाज इस्तेमाल हुए हैं। आम तौर पर क़ुरआन का तर्जमा और तफ़सीर लिखनेवालों ने 'नस्लुकुहू' में 'हू' की ज़मीर (सर्वनाम) मज़ाक़ उड़ाने से और 'ला युअमिनू-न बिही' की ज़मीर ज़िक्र से जोड़ी है और मतलब यह बयान किया है कि "हम इसी तरह इस मज़ाक़ उड़ाने को मुजरिमों के दिलों में दाख़िल करते हैं और वे इस ज़िक्र पर ईमान नहीं लाते," अगरचे अरबी क़ायदे के लिहाज़ से इसमें कोई हरज नहीं है, लेकिन हमारे नज़दीक व्याकरण के एतिबार से भी ज़्यादा सही यह है कि दोनों ज़मीरें (सर्वनाम) ज़िक्र से जोड़ी जाएँ।

ع ١٥
اِنَّمَا سُكِّرَتْ اَبْصَارُنَا بَلْ نَحْنُ قَوْمٌ مَّسْحُوْرُوْنَ ﴿١٥﴾ وَلَقَدْ جَعَلْنَا فِي
السَّمَآءِ بُرُوْجًا وَّزَيَّنّٰهَا لِلنّٰظِرِيْنَ ﴿١٦﴾ وَحَفِظْنٰهَا مِنْ كُلِّ شَيْطٰنٍ

कोई दरवाज़ा खोल देते और वे दिन-दहाड़े उसमें चढ़ने भी लगते, तब भी वे यही कहते कि हमारी आँखों को धोखा हो रहा है, बल्कि हमपर जादू कर दिया गया है।

(16, 17) यह हमारी कारीगरी है कि आसमान में हमने बहुत-से मज़बूत क़िले[8] बनाए, उनको देखनेवालों के लिए सजाया[9] और हर मरदूद (फिटकारे हुए) शैतान से

'स-ल-क' के मानी अरबी ज़बान में किसी चीज़ को दूसरी चीज़ में चलाने, गुज़ारने और पिरोने के हैं, जैसे धागे को सूई के नाके में गुज़ारना। तो आयत का मतलब यह है कि ईमानवालों के अन्दर तो यह ज़िक्र दिल की ठण्डक और रूह की ग़िज़ा (भोजन) बनकर उतरता है, मगर मुजरिमों के दिलों में यह बारूद का पलीता बनकर लगता है और उनके अन्दर उसे सुनकर ऐसी आग भड़क उठती है मानो एक गर्म (लोहे की) छड़ थी जो सीने के पार हो गई।

8. अस्ल अरबी में लफ़्ज़ 'बुरूज' इस्तेमाल हुआ है जो 'बुर्ज' की जमा (बहुवचन) है। 'बुर्ज' अरबी ज़बान में क़िले, महल और मज़बूत इमारत को कहते हैं। क़दीम इल्मे हय्यत (खगोल विज्ञान) में 'बुर्ज' का लफ़्ज़ इस्तिलाही तौर पर उन बारह मंज़िलों के लिए इस्तेमाल होता था जिनपर सूरज की धुरी को बाँटा गया था। इस वजह से कुछ तफ़सीर लिखनेवालों ने यह समझा कि क़ुरआन का इशारा उन्हीं बुरूज की तरफ़ है। कुछ दूसरे मुफ़स्सिरों ने इससे मुराद सय्यारे (ग्रह) लिए हैं। लेकिन बाद के मज़मून पर ग़ौर करने से लगता है कि शायद इससे मुराद ऊपरी दुनिया के वे इलाक़े हैं जिनमें से हर इलाक़े को बहुत मज़बूत सरहदों ने दूसरे इलाक़े से अलग कर रखा है। अगरचे फैली हुई फ़ज़ा में न दिखाई देनेवाली ये सरहदें खिंची हुई हैं, लेकिन इनको पार करके किसी चीज़ का एक इलाक़े से दूसरे इलाक़े में चले जाना बहुत मुश्किल काम है। इस मतलब के लिहाज़ से हम 'बुरूज' को महफ़ूज़ इलाकों (Fortified Spheres) के मानी में लेना ज़्यादा सही समझते हैं।

9. यानी हर इलाक़े में कोई न कोई चमकता ग्रह या तारा रख दिया और इस तरह सारा जहान जगमगा उठा। दूसरे अलफ़ाज़ में हमने इस बेहिसाब फैली हुई कायनात को एक भयानक ढंडार बनाकर नहीं रख दिया बल्कि एक ऐसी ख़ूबसूरत और हसीन दुनिया बनाई जिसमें हर तरफ़ निगाहों को लुभानेवाले जलवे फैले हुए हैं। इस कारीगरी में सिर्फ़ एक सबसे बड़े कारीगर की कारीगरी और एक सबसे बड़े हकीम की हिकमत ही नज़र नहीं आती है, बल्कि एक इन्तिहाई आला दर्जे का पाकीज़ा ज़ौक़ रखनेवाले आर्टिस्ट की आर्ट भी नुमायाँ है। यही बात एक दूसरी जगह यूँ कही गई है, "वह ख़ुदा कि जिसने हर चीज़ जो बनाई, ख़ूब ही बनाई।"

رَّجِيْمٍ ﴿١٧﴾ اِلَّا مَنِ اسْتَرَقَ السَّمْعَ فَاَتْبَعَهٗ شِهَابٌ مُّبِيْنٌ ﴿١٨﴾ وَالْاَرْضَ
مَدَدْنٰهَا وَاَلْقَيْنَا فِيْهَا رَوَاسِيَ وَاَنْۢبَتْنَا فِيْهَا مِنْ كُلِّ شَيْءٍ

उनको महफ़ूज़ कर दिया।[10] (18) कोई शैतान इनमें राह नहीं पा सकता, सिवाय इसके कि कुछ सुन-गुन ले ले।[11] और जब वह सुन-गुन लेने की कोशिश करता है तो एक रौशन शोला उसका पीछा करता है।[12]

(19, 20) हमने ज़मीन को फैलाया, उसमें पहाड़ जमाए, उसमें हर तरह की वनस्पति

10. यानी जिस तरह ज़मीन के दूसरे जानदार ज़मीन के इलाक़े में क़ैद हैं उसी तरह जिन्न शैतान भी इसी इलाक़े में क़ैद हैं, ऊपरी दुनिया तक उनकी पहुँच नहीं है। इसका मक़सद अस्ल में उन लोगों की उस आम ग़लतफ़हमी को दूर करना है जिसमें पहले भी आम लोग मुब्तला थे और आज भी हैं। वे समझते हैं कि शैतान और उसकी औलाद के लिए सारी कायनात खुली पड़ी है, जहाँ तक वे चाहें उड़ान भर सकते हैं। क़ुरआन इसके जवाब में बताता है कि शैतान एक ख़ास हद से आगे नहीं जा सकते, उन्हें हर जगह उड़ान भरने और पहुँचने की ताक़त हरगिज़ नहीं दी गई है।

11. यानी वे शैतान जो अपने साथियों को ग़ैब (परोक्ष) की ख़बरें लाकर देने की कोशिश करते हैं, जिनकी मदद से बहुत-से काहिन, जोगी, आमिल और फ़क़ीर-नुमा बहरूपिये ग़ैब की बातें जानने का ढोंग रचाया करते हैं, उनके पास हक़ीक़त में ग़ैब की बातें जानने के ज़रिए बिलकुल नहीं हैं। वे कुछ सुनगुन लेने की कोशिश ज़रूर करते हैं, क्योंकि उनकी बनावट इनसानों के मुक़ाबले में फ़रिश्तों की बनावट से कुछ ज़्यादा क़रीब है, लेकिन हक़ीक़त में उनके पल्ले कुछ पड़ता नहीं है।

12. अस्ल अरबी आयत में 'शिहाबुम-मुबीन' लफ़्ज़ का इस्तेमाल हुआ है जिसके मानी हैं 'रौशन शोला,' दूसरी जगह क़ुरआन मजीद में इसके लिए 'शिहाबे-साक़िब' लफ़्ज़ का इस्तेमाल हुआ है, यानी 'अंधेरे को छेदनेवाला शोला।' इससे मुराद ज़रूरी नहीं कि वह टूटनेवाला तारा ही हो जिसे हमारी ज़बान में 'शिहाबे-साक़िब' (उलका पिंड) कहा जाता है। मुमकिन है कि ये दूसरी तरह की किरणें हों, जैसे कायनाती किरणें (Cosmic Rays) या उनसे भी ज़्यादा तेज़ किसी और क़िस्म की जो अभी हमारी जानकारी में न आई हों। और यह भी हो सकता है कि यही शिहाबे-साक़िब मुराद हों जिन्हें कभी-कभी हमारी आँखें ज़मीन की तरफ़ गिरते हुए देखती हैं। मौजूदा दौर के जायज़े से यह मालूम हुआ है कि दूरबीन से दिखाई देनेवाले शिहाबे-साक़िब जो इस फैली हुई फ़ज़ा से ज़मीन की तरफ़ आते दिखाई देते हैं, उनकी तादाद का औसत 10 ख़रब रोज़ाना है, जिनमें से दो करोड़ के लगभग हर रोज़ ज़मीन के ऊपरी इलाक़े में दाख़िल होते हैं और मुश्किल से एक ज़मीन की सतह तक पहुँचता है। उनकी रफ़्तार ऊपरी फ़ज़ा में लगभग

مَّوۡزُوۡنٍ ﴿۱۹﴾ وَجَعَلۡنَا لَكُمۡ فِيۡهَا مَعَايِشَ وَمَنۡ لَّسۡتُمۡ لَهٗ بِرٰزِقِيۡنَ ﴿۲۰﴾

ठीक-ठीक नपी-तुली मिक़दार के साथ उगाई,[13] और उसमें रोज़ी के असबाब जुटाए, तुम्हारे लिए भी और उन बहुत-से जानदारों के लिए भी जिनको रोज़ी देनेवाले तुम नहीं हो।

---

26 मील प्रति सेकेण्ड होती है और कई बार 50 मील प्रति सेकेण्ड तक देखी गई है। कई बार ऐसा भी हुआ है कि नंगी आँखों ने भी टूटनेवाले तारों की ग़ैरमामूली बारिश देखी हैं। चुनाँचे यह चीज़ रिकॉर्ड पर मौजूद है कि 13 नवम्बर 1833 ई॰ को उत्तरी अमेरिका के पूर्वी इलाक़े में सिर्फ़ एक जगह पर आधी रात से लेकर सुबह तक दो लाख शिहाबे-साक़िब गिरते हुए देखे गए (इंसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका, 1946 ई0, भाग-15, पृष्ठ-337-339)। हो सकता है कि यही बारिश ऊपरी दुनिया की तरफ़ शैतानों की उड़ान में रुकावट बनती हो, क्योंकि ज़मीन की ऊपरी हदों से गुज़रकर फैली हुई फ़ज़ा में 10 खरब रोज़ाना के औसत से टूटनेवाले तारों की बरसात उनके लिए उस फ़ज़ा को पार करना बिलकुल नामुमकिन बना देती होगी।

इससे कुछ उन 'महफ़ूज़ क़िलों' की बनावट का अन्दाज़ा भी हो सकता है जिनका ज़िक्र ऊपर हुआ है। बज़ाहिर फ़ज़ा बिलकुल साफ़-सथरी है, जिसमें कहीं कोई दीवार या छत बनी दिखाई नहीं देती, लेकिन अल्लाह तआला ने इसी फ़ज़ा में कई इलाक़ों को कुछ ऐसी नज़र न आनेवाली दीवारों से घेर रखा है जो एक इलाक़े को दूसरे इलाक़ों की आफ़तों से महफ़ूज़ रखती हैं। यह इन्हीं दीवारों की बरकत है कि जो शिहाबे-साक़िब दस खरब रोज़ाना के औसत से ज़मीन की तरफ़ गिरते हैं वे सब जलकर भस्म हो जाते हैं और मुश्किल से एक ज़मीन की सतह तक पहुँच सकता है। दुनिया में शिहाबी पत्थरों (Meteorites) के जो नमूने पाए जाते हैं और दुनिया के अजाइब घरों में मौजूद हैं, उनमें सबसे बड़ा 645 पौंड का एक पत्थर है जो गिरकर 11 फ़ुट ज़मीन में धँस गया था। इसके अलावा एक जगह पर 36.5 टन का लोहे का एक टुकड़ा पाया गया है जिसके वहाँ मौजूद होने की कोई वजह वैज्ञानिक इसके सिवा बयान नहीं कर सके हैं कि यह भी आसमान से गिरा हुआ है। अन्दाज़ा कीजिए कि अगर ज़मीन की ऊपरी सीमाओं को मज़बूत दीवारों से सुरक्षित न कर दिया गया होता तो इन टूटनेवाले तारों की बारिश ज़मीन का क्या हाल कर देती, यही दीवारें हैं जिनके लिए क़ुरआन मजीद ने 'बुरूज' (सुरक्षित क़िलों) का लफ़्ज इस्तेमाल किया है।

13. इससे अल्लाह तआला की क़ुदरत व हिक्मत के एक और अहम निशान की तरफ़ ध्यान दिलाया गया है। पेड़-पौधों की हर क़िस्म में नस्ल चलाने की इतनी ज़बरदस्त ताक़त है कि अगर उसके सिर्फ़ एक पौधे ही की नस्ल को ज़मीन में बढ़ने का मौक़ा मिल जाता तो कुछ साल के अन्दर ज़मीन पर बस वही वह नज़र आती, किसी दूसरी क़िस्म के पेड़-पौधों के लिए कोई जगह न रहती। मगर यह एक हिक्मतवाले और क़ादिरे-मुतलक (सर्व-शक्तिमान) की सोची-समझी स्कीम है, जिसके मुताबिक़ अनगिनत प्रकार के पेड़-पौधे इस ज़मीन पर उग रहे हैं

وَاِنْ مِّنْ شَیْءٍ اِلَّا عِنْدَنَا خَزَآىِٕنُهٗ وَمَا نُنَزِّلُهٗۤ اِلَّا بِقَدَرٍ مَّعْلُوْمٍ ۝٢١
وَاَرْسَلْنَا الرِّیٰحَ لَوَاقِحَ فَاَنْزَلْنَا مِنَ السَّمَآءِ مَآءً فَاَسْقَیْنٰكُمُوْهُۚ وَمَاۤ
اَنْتُمْ لَهٗ بِخٰزِنِیْنَ ۝٢٢ وَاِنَّا لَنَحْنُ نُحْیٖ وَنُمِیْتُ وَنَحْنُ الْوٰرِثُوْنَ ۝٢٣ وَلَقَدْ
عَلِمْنَا الْمُسْتَقْدِمِیْنَ مِنْكُمْ وَلَقَدْ عَلِمْنَا الْمُسْتَاْخِرِیْنَ ۝٢٤ وَاِنَّ

(21) कोई चीज़ ऐसी नहीं जिसके ख़ज़ाने हमारे पास न हों, और जिस चीज़ को भी हम उतारते हैं, एक तय की हुई मिक्दार में उतारते हैं।[14]

(22) फलदायक हवाओं को हम ही भेजते हैं, फिर आसमान से पानी बरसाते हैं, और उस पानी से तुम्हें सैराब करते हैं। इस दौलत के ख़ज़ानेदार तुम नहीं हो।

(23) ज़िन्दगी और मौत हम देते हैं और हम ही सबके वारिस होनेवाले हैं।[15] (24) पहले जो लोग तुममें से हो गुज़रे हैं, उनको भी हमने देख रखा है और बाद के आनेवाले भी

और हर क़िस्म की पैदावार अपनी एक ख़ास हद पर पहुँचकर रुक जाती है। इसी मंज़र का एक और पहलू यह है कि हर क़िस्म की बनावट, फैलाव, उठान और फूलने-फलने की एक हद मुक़र्रर है जिससे पेड़-पौधों की कोई क़िस्म भी आगे नहीं बढ़ सकती। साफ़ मालूम होता है कि किसी ने हर पेड़, हर पौधे और हर बेल-बूटे के लिए जिस्म, क़द, शक्ल, पत्ते, फूल और पैदावार की एक मिक़्दार पूरे नाप-तौल और हिसाब और गिनती के साथ मुक़र्रर कर रखी है।

14. यहाँ इस हक़ीक़त पर ख़बरदार किया गया कि यह मामला सिर्फ़ पेड़-पौधों के साथ ख़ास नहीं है, बल्कि तमाम चीज़ों के मामले में आम है। हवा, पानी, रौशनी, गर्मी, सर्दी, जमी हुई चीज़ें, पेड़-पौधों, जानवरों, गरज़ हर चीज़, हर क़िस्म, हर जिंस और हर क़ुव्वत व ताक़त के लिए एक हद मुक़र्रर है जिसपर वह ठहरी हुई है और एक मिक़दार (पैमाना) मुक़र्रर है जिससे न वह घटती है, न बढ़ती है। इसी मिक़दार मुक़र्रर करने और कमाल दर्जे की हिकमत भरी मिक़दार मुक़र्रर करने ही का यह करिश्मा है कि ज़मीन से लेकर आसमानों तक कायनात के पूरे निज़ाम में यह तवाज़ुन (संतुलन) और यह तनासुब दिखाई दे रहा है। अगर यह कायनात एक इत्तिफ़ाक़ी हादिसा होती या बहुत-से ख़ुदाओं की कारीगरी व कारगुज़ारी का नतीजा होती तो किस तरह मुमकिन था कि अनगिनत अलग-अलग तरह की चीज़ों और क़ुव्वतों के दरमियान ऐसा मुकम्मल तवाज़ुन और तनासुब क़ायम होता और लगातार क़ायम रह सकता?

15. यानी तुम्हारे बाद हम ही बाक़ी रहनेवाले हैं। तुम्हें जो कुछ भी मिला हुआ है सिर्फ़ थोड़े दिनों के इस्तेमाल के लिए मिला हुआ है। आख़िरकार हमारी दी हुई हर चीज़ को यूँही छोड़कर तुम ख़ाली हाथ विदा हो जाओगे और यह सब चीज़ें ज्यों की त्यों हमारे ख़ज़ाने में रह जाएँगी।

رَبَّكَ هُوَ يَحْشُرُهُمْ ۚ إِنَّهُ حَكِيمٌ عَلِيمٌ ۝٢٥ وَلَقَدْ خَلَقْنَا الْإِنسَانَ مِن
صَلْصَالٍ مِّنْ حَمَإٍ مَّسْنُونٍ ۝٢٦ وَالْجَانَّ خَلَقْنَاهُ مِن قَبْلُ مِن نَّارِ
السَّمُومِ ۝٢٧ وَإِذْ قَالَ رَبُّكَ لِلْمَلَائِكَةِ إِنِّي خَالِقٌ بَشَرًا مِّن صَلْصَالٍ

हमारी निगाह में हैं। (25) यक़ीनन तुम्हारा रब इन सबको इकट्ठा करेगा, वह हिक्मतवाला भी है और सबकुछ जाननेवाला भी।[16]

(26) हमने इनसान को सड़ी हुई मिट्टी के सूखे गारे से बनाया।[17] (27) और उससे पहले जिन्नों को हम आग की लपट से पैदा कर चुके थे।[18] (28) फिर याद करो उस

16. यानी उसकी हिकमत यह माँग करती है कि वह सबको इकट्ठा करे और उसका इल्म सबपर इस तरह हावी है कि कोई जानदार उससे छूट नहीं सकता, बल्कि किसी अगले-पिछले इनसान की मिट्टी का कोई कण भी उससे गुम नहीं हो सकता। इसलिए जो शख़्स आख़िरत की ज़िन्दगी को नामुमकिन समझता है वह ख़ुदा की हिक्मत की सिफ़त से अनजान है और जो शख़्स हैरत से पूछता है कि "जब मरने के बाद हमारी धूल का कण-कण बिखर जाएगा तो हम कैसे दोबारा पैदा किए जाएँगे?" वह ख़ुदा के इल्म की सिफ़त को नहीं जानता।

17. यहाँ क़ुरआन इस बात को साफ़-साफ़ बयान करता है कि इनसान हैवानी हालतों से तरक़्क़ी करता हुआ इनसानियत की हदों में नहीं आया है, जैसा कि नए दौर के डार्विनवाद से मुतास्सिर क़ुरआन की तफ़सीर करनेवाले साबित करने की कोशिश कर रहे हैं, बल्कि उसकी पैदाइश की शुरुआत सीधे तौर पर ज़मीनी माद्दों (तत्वों) से हुई है जिनकी कैफ़ियत को अल्लाह तआला ने 'सड़ी हुई मिट्टी के सूखे गारे' के अलफ़ाज़ में बयान किया है। 'हमा-अ' अरबी ज़बान में ऐसी स्याह कीचड़ को कहते हैं जिसके अन्दर बू पैदा हो चुकी हो, या दूसरे लफ़्ज़ों में ख़मीर उठ आया हो। 'मस्नून' के दो मानी हैं। एक मतलब है ऐसी सड़ी हुई मिट्टी जिसमें सड़ने की वजह से चिकनाई पैदा हो गई हो दूसरा मतलब है 'क़ालब' (शक्ल) में ढली हुई जिसको एक ख़ास शक्ल दे दी गई हो। 'सलसाल' उस सूखे गारे को कहते हैं जो सूख जाने के बाद बजने लगे। ये अलफ़ाज़ साफ़ ज़ाहिर करते हैं कि ख़मीर उठी हुई मिट्टी का एक पुतला बनाया गया था जो बनने के बाद सूखा और फिर उसके अन्दर रूह फूँकी गई।

18. अस्ल अरबी में लफ़्ज़ 'समूम' इस्तेमाल हुआ है। 'समूम' गर्म हवा को कहते हैं, और नार (आग) को समूम से जोड़ देने की हालत में उसका मतलब आग के बजाय तेज़ हरारत (गर्मी) के हो जाता है। इससे उन आयतों की तशरीह हो जाती है जिनमें क़ुरआन मजीद में यह कहा गया है कि जिन्न आग से पैदा किए गए हैं। (और ज़्यादा तशरीह के लिए देखें—सूरा-55 अर-रहमान, हाशिए-14 से 16)

مِّنْ حَمَاٍ مَّسْنُوْنٍ ﴿٢٨﴾ فَاِذَا سَوَّيْتُهٗ وَنَفَخْتُ فِيْهِ مِنْ رُّوْحِيْ فَقَعُوْا لَهٗ
سٰجِدِيْنَ ﴿٢٩﴾ فَسَجَدَ الْمَلٰٓئِكَةُ كُلُّهُمْ اَجْمَعُوْنَ ﴿٣٠﴾ اِلَّآ اِبْلِيْسَ ؕ اَبٰٓى اَنْ
يَّكُوْنَ مَعَ السّٰجِدِيْنَ ﴿٣١﴾ قَالَ يٰٓاِبْلِيْسُ مَا لَكَ اَلَّا تَكُوْنَ مَعَ

मौक़े को जब तुम्हारे रब ने फ़रिश्तों से कहा कि "मैं सड़ी हुई मिट्टी के सूखे गारे से एक बशर (इनसान) पैदा कर रहा हूँ। (29) जब मैं उसे पूरा बना चुकूँ और उसमें अपनी रूह से कुछ फूँक दूँ[19] तो तुम सब उसके आगे सजदे में गिर जाना।" (30) चुनाँचे तमाम फ़रिश्तों ने सजदा किया, (31) सिवाय इबलीस के कि उसने सजदा करनेवालों का साथ देने से इनकार कर दिया।[20] (32) रब ने पूछा, "ऐ इबलीस! तुझे क्या हुआ कि तूने

19. इससे मालूम हुआ कि इनसान के अन्दर जो रूह फूँकी गई है वह अस्ल में अल्लाह की सिफ़ात का एक अक्स (प्रतिच्छाया) या परतौ (प्रतिबिम्ब) है। ज़िन्दगी, इल्म, क़ुदरत (क्षमता), इरादा, अधिकार और दूसरी जितनी सिफ़ात इनसान में पाई जाती हैं, जिनके मजमूए (संग्रह) ही का नाम रूह है, यह अस्ल में अल्लाह तआला ही की सिफ़ात का एक हल्का-सा परतौ (प्रतिबिम्ब) है जो इस मिट्टी से बने जिस्म पर डाला गया है, और इसी अक्स की वजह से इनसान ज़मीन पर ख़ुदा का ख़लीफ़ा और फ़रिश्तों सहित ज़मीन पर मौजूद तमाम चीज़ों का मसजूद (जिसे सजदा किया जाए) क़रार पाया है।

यूँ तो हर वह सिफ़त जो जानदारों में पाई जाती है, वह अल्लाह ही की किसी न किसी सिफ़त से पैदा हुई है। जैसा कि हदीस में आया है कि "अल्लाह तआला ने रहमत को सौ हिस्सों में बाँटा, फिर उनमें से 99 हिस्से अपने पास रखे और सिर्फ़ एक हिस्सा ज़मीन में उतारा। यह उसी एक हिस्से की बरकत है जिसकी वजह से जानदार आपस में एक-दूसरे पर रहम करते हैं यहाँ तक कि अगर एक जानवर अपने बच्चे पर से अपना खुर उठाता है ताकि उसे नुक़सान न पहुँच जाए, तो यह भी अस्ल में उसी रहमत के हिस्से का असर है।" (बुख़ारी, मुस्लिम) मगर जो चीज़ इनसान को दूसरे जानदारों पर फ़ज़ीलत (बड़ाई) देती है वह यह है कि जिस जामे तरीक़े के साथ अल्लाह के गुणों का अक्स उसपर डाला गया है उसे किसी दूसरे जानदार पर नहीं डाला गया।

यह एक ऐसी बारीक बात है जिसके समझने में ज़रा-सी ग़लती भी आदमी कर जाए तो इस ग़लत-फ़हमी में पड़ सकता है कि अल्लाह की सिफ़ात में से एक हिस्सा पाना ख़ुदाई का कोई हिस्सा पा-लेने के बराबर है। हालाँकि ख़ुदाई इससे बहुत ही परे है कि कोई जानदार उसका ज़रा-सा हिस्सा भी पा सके।

20. तक़ाबुल (तुलना) के लिए सूरा-2 बक़रा, आयत-30; सूरा-4 निसा, आयत-116 और सूरा-7

السّٰجِدِيْنَ ﴿٣٢﴾ قَالَ لَمْ اَكُنْ لِّاَسْجُدَ لِبَشَرٍ خَلَقْتَهٗ مِنْ صَلْصَالٍ مِّنْ
حَمَاٍ مَّسْنُوْنٍ ﴿٣٣﴾ قَالَ فَاخْرُجْ مِنْهَا فَاِنَّكَ رَجِيْمٌ ﴿٣٤﴾ وَّاِنَّ عَلَيْكَ
اللَّعْنَةَ اِلٰى يَوْمِ الدِّيْنِ ﴿٣٥﴾ قَالَ رَبِّ فَاَنْظِرْنِيْۤ اِلٰى يَوْمِ يُبْعَثُوْنَ ﴿٣٦﴾
قَالَ فَاِنَّكَ مِنَ الْمُنْظَرِيْنَ ﴿٣٧﴾ اِلٰى يَوْمِ الْوَقْتِ الْمَعْلُوْمِ ﴿٣٨﴾ قَالَ
رَبِّ بِمَاۤ اَغْوَيْتَنِيْ لَاُزَيِّنَنَّ لَهُمْ فِي الْاَرْضِ وَلَاُغْوِيَنَّهُمْ اَجْمَعِيْنَ ﴿٣٩﴾

सजदा करनेवालों का साथ न दिया?" (33) उसने कहा, "मेरा यह काम नहीं है कि मैं इस इनसान को सजदा करूँ जिसे तूने सड़ी हुई मिट्टी के सूखे गारे से पैदा किया है।" (34) रब ने फ़रमाया, "अच्छा, तू निकल जा यहाँ से; क्योंकि तू मरदूद (फिटकारा हुआ) है, (35) और अब बदले के दिन तक तुझपर फिटकार है।"[21] (36) उसने कहा, "मेरे रब! यह बात है तो फिर मुझे उस दिन तक के लिए मोहलत दे, जबकि सब इनसान दोबारा उठाए जाएँगे।" (37, 38) फ़रमाया, "अच्छा, तुझे मोहलत है उस दिन तक जिसका वक़्त हमें मालूम है।" (39, 40) वह बोला, "मेरे रब! जैसा तूने मुझे बहकाया उसी तरह अब मैं ज़मीन में इनके लिए दिलफ़रेबियाँ पैदा करके इन सबको बहका दूँगा[22],

---

आराफ़, आयत-11 सामने रहें। इसके साथ ही हमारे उन हाशियों पर भी एक निगाह डाल ली जाए जो उन जगहों पर लिखे गए हैं।

21. यानी क़ियामत तक तू फिटकारा हुआ ही रहेगा, इसके बाद जब बदले का दिन क़ायम होगा तो फिर तुझे तेरी नाफ़रमानियों की सज़ा दी जाएगी।

22. यानी जिस तरह तूने इस मामूली और कमतर मख़लूक़ को सजदा करने का हुक्म देकर मुझे मजबूर कर दिया कि तेरा हुक्म न मानूँ, उसी तरह अब मैं इन इनसानों के लिए दुनिया को ऐसा लुभावना बना दूँगा कि ये सब उससे धोखा खाकर तेरे नाफ़रमान बन जाएँगे। दूसरे अलफ़ाज़ में इब्लीस का मतलब यह था कि मैं ज़मीन की ज़िन्दगी और उसकी लज़्ज़तों और उसके थोड़े दिनों के फ़ायदों को इनसान के लिए ऐसा ख़ुशनुमा बना दूँगा कि वे ख़िलाफ़त और उसकी ज़िम्मेदारियों और आख़िरत की पूछ-गच्छ को भूल जाएँगे और ख़ुद तुझे भी या तो भुला देंगे या तुझे याद रखने के बावजूद तेरे हुक्मों के ख़िलाफ़ चलेंगे।

إِلَّا عِبَادَكَ مِنْهُمُ الْمُخْلَصِينَ ۝٤٠ قَالَ هَٰذَا صِرَاطٌ عَلَيَّ مُسْتَقِيمٌ ۝٤١
إِنَّ عِبَادِي لَيْسَ لَكَ عَلَيْهِمْ سُلْطَانٌ إِلَّا مَنِ اتَّبَعَكَ مِنَ الْغَاوِينَ ۝٤٢
وَإِنَّ جَهَنَّمَ لَمَوْعِدُهُمْ أَجْمَعِينَ ۝٤٣ لَهَا سَبْعَةُ أَبْوَابٍ لِّكُلِّ بَابٍ

सिवाय तेरे बन्दों के जिन्हें तूने इनमें से ख़ालिस कर लिया हो।" (41) फ़रमाया, "यह रास्ता है जो सीधा मुझ तक पहुँचता है।[23] (42, 43) बेशक, मेरे जो सच्चे बन्दे हैं उनपर तेरा बस न चलेगा। तेरा बस तो सिर्फ़ उन बहके हुए लोगों ही पर चलेगा जो तेरी पैरवी करें[24] और उन सबके लिए जहन्नम की धमकी है।"[25]

(44) यह जहन्नम (जिससे इबलीस की पैरवी करनेवालों को डराया गया है) इसके

23. अस्ल अरबी में 'हाज़ा सिरातुन अलय-य मुस्तक़ीम' के अल्फ़ाज़ आए हैं। इनके दो मतलब हो सकते हैं। एक मतलब वह है जो हमने तर्जमे में बयान किया है और दूसरा मतलब यह है कि "यह बात ठीक है, मैं भी इसका पाबन्द रहूँगा।"

24. इस जुमले के भी दो मतलब हो सकते हैं। एक वह जो तर्जमे में अपनाया गया है। और दूसरा मतलब यह कि मेरे बन्दों (यानी आम इनसानों) पर तुझे कोई ताक़त हासिल न होगी कि तू उन्हें ज़बरदस्ती नाफ़रमान बना दे, अलबत्ता जो ख़ुद ही बहके हुए हों और आप ही तेरी पैरवी करना चाहें उन्हें तेरी राह पर जाने के लिए छोड़ दिया जाएगा, उन्हें हम ज़बरदस्ती इससे रोके रखने की कोशिश न करेंगे।

पहले मतलब के लिहाज़ से बात का ख़ुलासा यह होगा कि बन्दगी का तरीक़ा अल्लाह तक पहुँचने का सीधा रास्ता है, जो लोग इस रास्ते को अपनाएँगे उनपर शैतान का बस न चलेगा, उन्हें अल्लाह अपने लिए ख़ालिस कर लेगा और शैतान ख़ुद भी इसे मानता है कि वे उसके फंदे में न फँसेंगे। अलबत्ता जो लोग ख़ुद बन्दगी से मुँह मोड़कर अपनी कामयाबी और ख़ुशनसीबी की राह गुम कर देंगे वे इब्लीस के हत्थे चढ़ जाएँगे और फिर जिधर-जिधर वह उन्हें धोखा देकर ले जाना चाहेगा, वे उसके पीछे भटकते और दूर से दूर निकलते चले जाएँगे।

दूसरे मतलब के लिहाज़ से इस बयान का ख़ुलासा यह होगा— शैतान ने इनसानों को बहकाने के लिए अपना तरीक़ा यह बयान किया कि वह ज़मीन की ज़िन्दगी को उनके लिए ख़ुशनुमा बनाकर उन्हें ख़ुदा से ग़ाफ़िल और बन्दगी की राह से मोड़ेगा। अल्लाह तआला ने उसकी यह बात मानते हुए फ़रमाया कि यह शर्त मैंने मानी, और इसको और ज़्यादा वाज़ेह करते हुए यह बात भी साफ़ कर दी कि तुझे सिर्फ़ धोखा देने का अधिकार दिया जा रहा है, यह अधिकार नहीं दिया जा रहा कि तू हाथ पकड़कर उन्हें ज़बरदस्ती अपनी राह पर खींच ले जाए। शैतान ने अपने नोटिस से उन बन्दों को अलग रखा जिन्हें अल्लाह अपने लिए ख़ालिस कर ले। इससे यह

مِنْهُمْ جُزْءٌ مَّقْسُوْمٌ ﴿٤٤﴾ اِنَّ الْمُتَّقِيْنَ فِيْ جَنّٰتٍ وَّعُيُوْنٍ ﴿٤٥﴾ اُدْخُلُوْهَا

सात दरवाज़े हैं। हर दरवाज़े के लिए उनमें से एक हिस्सा ख़ास कर दिया गया है।[26] (45, 46) इसके बरख़िलाफ़ मुत्तक़ी (परहेज़गार) लोग[27] बाग़ों और चश्मों में होंगे और

ग़लतफ़हमी पैदा हो रही थी कि शायद अल्लाह तआला बिना किसी मुनासिब वजह के यूँही जिसको चाहेगा ख़ालिस कर लेगा और वह शैतान की पहुँच से बच जाएगा। अल्लाह तआला ने यह कहकर बात साफ़ कर दी कि जो ख़ुद बहका हुआ होगा वही तेरी पैरवी करेगा। दूसरे अलफ़ाज़ में जो बहका हुआ न होगा वह तेरी पैरवी न करेगा और वही हमारा वह ख़ास बन्दा होगा जिसे हम ख़ास अपना कर लेंगे।

25. इस जगह यह क़िस्सा जिस ग़रज़ के लिए बयान किया गया है उसे समझने के लिए ज़रूरी है कि मौक़ा-महल (सन्दर्भ) को साफ़ तौर पर ज़ेहन में रखा जाए। पहले और दूसरे रुकूअ् (आयत 25 तक) के मज़मून पर ग़ौर करने से यह बात साफ़ समझ में आ जाती है कि बयान के इस सिलसिले में आदम व इबलीस का यह क़िस्सा बयान करने का मक़सद इस्लाम दुश्मनों को इस हक़ीक़त पर ख़बरदार करना है कि तुम अपने पैदाइशी दुश्मन, शैतान के फंदे में फँस गए हो और उस पस्ती (पतन) में गिरे चले जा रहे हो जिसमें वह अपनी हसद और जलन की वजह से तुम्हें गिराना चाहता है। इसके बरख़िलाफ़ यह नबी तुम्हें उस फंदे से निकालकर उस बुलन्दी की तरफ़ ले जाने की कोशिश कर रहा है जो अस्ल में इनसान होने की हैसियत से तुम्हारा फ़ितरी मक़ाम है। लेकिन तुम अजीब बेवक़ूफ़ लोग हो कि अपने दुश्मन को दोस्त और अपने ख़ैर-ख़ाह को दुश्मन समझ रहे हो।

इसके साथ यह हक़ीक़त भी इसी क़िस्से से उनपर वाज़ेह की गई है कि तुम्हारे लिए नजात का रास्ता सिर्फ़ एक है, और वह अल्लाह की बन्दगी है। इस रास्ते को छोड़कर तुम जिस राह पर भी जाओगे वह शैतान की राह है जो सीधी जहन्नम की तरफ़ जाती है।

तीसरी बात जो इस क़िस्से के ज़रिए से उनको समझाई गई है, यह है कि अपनी इस ग़लती के ज़िम्मेदार तुम ख़ुद हो। शैतान का कोई काम इससे ज़्यादा नहीं है कि वह दुनियावी ज़िन्दगी की ज़ाहिरी बातों से तुमको धोखा देकर तुम्हें बन्दगी की राह से फेरने की कोशिश करता है। इससे धोखा खाना तुम्हारा अपना काम है जिसकी कोई ज़िम्मेदारी तुम्हारे अपने सिवा किसी और पर नहीं है। (इसकी और ज़्यादा तशरीह के लिए देखें—सूर-14 इबराहीम, आयत-22 और हाशिया-31)

26. जहन्नम के ये दरवाज़े उन गुमराहियों और गुनाहों के लिहाज़ से हैं जिनपर चलकर आदमी अपने लिए दोज़ख़ की राह खोलता है। जैसे कोई नास्तिकता के रास्ते से दोज़ख़ की तरफ़ जाता है, कोई शिर्क के रास्ते से, कोई निफ़ाक़ (कपटाचार) के रास्ते से, कोई नफ़्स-परस्ती (मनमानी करने) और बदकारियों और बुराइयों के रास्ते से, कोई ज़ुल्मो-सितम और लोगों को सताने के

بِسَلٰمٍ اٰمِنِيْنَ ۝٤٦ وَنَزَعْنَا مَا فِيْ صُدُوْرِهِمْ مِّنْ غِلٍّ اِخْوَانًا عَلٰى سُرُرٍ
مُّتَقٰبِلِيْنَ ۝٤٧ لَا يَمَسُّهُمْ فِيْهَا نَصَبٌ وَّمَا هُمْ مِّنْهَا بِمُخْرَجِيْنَ ۝٤٨
نَبِّئْ عِبَادِيْٓ اَنِّيْٓ اَنَا الْغَفُوْرُ الرَّحِيْمُ ۝٤٩ وَاَنَّ عَذَابِيْ هُوَ الْعَذَابُ
الْاَلِيْمُ ۝٥٠ وَنَبِّئْهُمْ عَنْ ضَيْفِ اِبْرٰهِيْمَ ۝٥١ اِذْ دَخَلُوْا عَلَيْهِ فَقَالُوْا

उनसे कहा जाएगा कि दाख़िल हो जाओ इनमें सलामती के साथ, बिना किसी डर और ख़तरे के। (47) उनके दिलों में जो थोड़ी-बहुत खोट-कपट होगी, उसे हम निकाल देंगे।[28] वे आपस में भाई-भाई बनकर आमने-सामने तख़्तों पर बैठेंगे। (48) उन्हें न वहाँ किसी मशक़्क़त से पाला पड़ेगा और न वे वहाँ से निकाले जाएँगे।[29]

(49) ऐ नबी! मेरे बन्दों को ख़बर दे दो कि मैं बहुत माफ़ करनेवाला और रहम करनेवाला हूँ, (50) मगर इसके साथ मेरा अज़ाब भी बड़ा दर्दनाक अज़ाब है।

(51) और इन्हें ज़रा इबराहीम के मेहमानों का क़िस्सा सुनाओ।[30] (52) जब वे

रास्ते से, कोई गुमराही को फैलाने और बेदीनी क़ायम करने के रास्ते से और कोई बेहयाई और बुराई फैलाने के रास्ते से।

27. यानी वे लोग जो शैतान की पैरवी से बचे रहे हों और जिन्होंने अल्लाह से डरते हुए उसका बन्दा बनकर ज़िन्दगी गुज़ारी हो।

28. यानी नेक लोगों के दरमियान आपस की ग़लतफ़हमियों की बुनियाद पर दुनिया में अगर कुछ मनमुटाव पैदा हो गया होगा तो जन्नत में दाख़िल होने के वक़्त उसे दूर कर दिया जाएगा और उनके दिल एक-दूसरे की तरफ़ से बिलकुल साफ़ कर दिए जाएँगे। (और ज़्यादा तशरीह के लिए देखें—सूरा-7, आराफ़, हाशिया-32)

29. इसकी तशरीह उस हदीस से होती है जिसमें नबी (सल्ल.) ने ख़बर दी है कि "जन्नतवालों से कह दिया जाएगा कि अब तुम हमेशा तन्दुरुस्त रहोगे, कभी बीमार न पड़ोगे और अब तुम हमेशा ज़िन्दा रहोगे, कभी मौत तुमको न आएगी और अब तुम हमेशा जवान रहोगे, कभी बुढ़ापा तुमपर न आएगा और अब तुम हमेशा वही रहोगे, कभी कूच करने की तुम्हें ज़रूरत न होगी।" इसकी और ज़्यादा तशरीह उन आयतों व हदीसों से होती है जिनमें बताया गया है कि जन्नत में इनसान को अपनी रोज़ी और अपनी ज़रूरतें पूरी करने के लिए कोई मेहनत न करनी पड़ेगी, सब कुछ उसे बिना मेहनत व कोशिश मिलेगा।

30. यहाँ हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) और उनके बाद फ़ौरन ही लूत (अलैहि॰) की क़ौम का क़िस्सा जिस मक़सद के लिए सुनाया जा रहा है उसको समझने के लिए इस सूरा की शुरू की आयतों

سَلٰمًا ؕ قَالَ اِنَّا مِنۡكُمۡ وَجِلُوۡنَ ﴿۵۲﴾ قَالُوۡا لَا تَوۡجَلۡ اِنَّا نُبَشِّرُكَ بِغُلٰمٍ
عَلِيۡمٍ ﴿۵۳﴾ قَالَ اَبَشَّرۡتُمُوۡنِىۡ عَلٰٓى اَنۡ مَّسَّنِىَ الۡكِبَرُ فَبِمَ تُبَشِّرُوۡنَ ﴿۵۴﴾ قَالُوۡا
بَشَّرۡنٰكَ بِالۡحَـقِّ فَلَا تَكُنۡ مِّنَ الۡقٰنِطِيۡنَ ﴿۵۵﴾ قَالَ وَمَنۡ يَّقۡنَطُ مِنۡ
رَّحۡمَةِ رَبِّهٖۤ اِلَّا الضَّآلُّوۡنَ ﴿۵۶﴾ قَالَ فَمَا خَطۡبُكُمۡ اَيُّهَا الۡمُرۡسَلُوۡنَ ﴿۵۷﴾
قَالُوۡۤا اِنَّاۤ اُرۡسِلۡنَاۤ اِلٰى قَوۡمٍ مُّجۡرِمِيۡنَ ﴿۵۸﴾ اِلَّاۤ اٰلَ لُوۡطٍ ؕ اِنَّا لَمُنَجُّوۡهُمۡ

उसके यहाँ आए और कहा, "सलाम हो तुमपर" तो उसने कहा, "हमें तुमसे डर लगता है।"[31] (53) उन्होंने जवाब दिया, "डरो नहीं, हम तुम्हें एक बड़े सयाने लड़के की ख़ुशख़बरी देते हैं।"[32] (54) इबराहीम ने कहा, "क्या तुम इस बुढ़ापे में मुझे औलाद की ख़ुशख़बरी देते हो? ज़रा सोचो तो सही कि यह कैसी ख़ुशख़बरी तुम मुझे दे रहे हो?" (55) उन्होंने जवाब दिया, "हम तुम्हें सच्ची ख़ुशख़बरी दे रहे हैं, तुम मायूस न हो।" (56) इबराहीम ने कहा, "अपने रब की रहमत से मायूस तो गुमराह लोग ही हुआ करते हैं।" (57) फिर इबराहीम ने पूछा, "ऐ अल्लाह के भेजे हुए लोगो! वह मुहिम क्या है जिसपर आप लोग तशरीफ़ लाए हैं?"[33] (58) वे बोले, "हम एक मुजरिम क़ौम की तरफ़

को निगाह में रखना ज़रूरी है। आयत नं. 7-8 में मक्का के इस्लाम-दुश्मनों की यह बात नक़्ल की गई है कि वे नबी (सल्ल.) से कहते थे कि "अगर तुम सच्चे नबी हो तो हमारे सामने फ़रिश्तों को ले क्यों नहीं आते?" इसका मुख़्तसर जवाब वहाँ सिर्फ़ इस क़द्र देकर छोड़ दिया गया था कि "फ़रिश्तों को हम यूँ ही नहीं उतार दिया करते, उन्हें तो हम जब भेजते हैं हक़ के साथ ही भेजते हैं।" अब उसका तफ़सील से जवाब यहाँ इन दोनों क़िस्सों के अन्दाज़ में दिया जा रहा है। यहाँ उन्हें बताया जा रहा कि एक 'हक़' तो वह है जिसे लेकर फ़रिश्ते इबराहीम (अलैहि.) के पास आए थे, और दूसरा हक़ वह है जिसे लेकर वे लूत (अलैहि.) की क़ौम के पास पहुँचे थे। अब तुम ख़ुद देख लो कि तुम्हारे पास इनमें से कौन-सा हक़ लेकर फ़रिश्ते आ सकते हैं। इबराहीमवाले हक़ के लायक़ तो ज़ाहिर है कि तुम नहीं हो। अब क्या उस हक़ के साथ फ़रिश्तों को बुलवाना चाहते हो जिसे लेकर वे लूत (अलैहि.) की क़ौम में उतरे थे?

31. तुलना के लिए देखें—सूरा-11 हूद, आयत-69 से 83, हाशियों सहित।

32. यानी हज़रत इसहाक़ (अलैहि.) के पैदा होने की ख़ुशख़बरी, जैसा कि सूरा-11 हूद में वाज़ेह तौर पर बयान हुआ है।

33. हज़रत इबराहीम (अलैहि.) के इस सवाल से साफ़ ज़ाहिर होता है कि फ़रिश्तों का इनसानी

أَجْمَعِينَ ۝٥٩ إِلَّا امْرَأَتَهُ قَدَّرْنَا إِنَّهَا لَمِنَ الْغٰبِرِينَ ۝٦٠ فَلَمَّا جَاءَ اٰلَ ع
لُوطٍ الْمُرْسَلُونَ ۝٦١ قَالَ إِنَّكُمْ قَوْمٌ مُّنكَرُونَ ۝٦٢ قَالُوا بَلْ جِئْنٰكَ
بِمَا كَانُوا فِيهِ يَمْتَرُونَ ۝٦٣ وَاٰتَيْنٰكَ بِالْحَقِّ وَإِنَّا لَصٰدِقُونَ ۝٦٤ فَأَسْرِ
بِأَهْلِكَ بِقِطْعٍ مِّنَ الَّيْلِ وَاتَّبِعْ أَدْبَارَهُمْ وَلَا يَلْتَفِتْ مِنكُمْ أَحَدٌ

भेजे गए हैं।[34] (59, 60) सिर्फ़ लूत के घरवाले इससे अलग हैं, उन सबको हम बचा लेंगे, सिवाय उसकी बीवी के जिसके लिए (अल्लाह फ़रमाता है कि) हमने तय कर दिया है कि वह पीछे रह जानेवालों में शामिल रहेगी।"

(61, 62) फिर जब ये लोग लूत के यहाँ पहुँचे[35] तो उसने कहा, "आप लोग अजनबी मालूम होते हैं।"[36] (63) उन्होंने जवाब दिया, "नहीं, बल्कि हम वही चीज़ लेकर आए हैं जिसके आने में ये लोग शक कर रहे थे। (64) हम तुमसे सच कहते हैं कि हम हक़ के साथ तुम्हारे पास आए हैं, (65) इसलिए अब तुम कुछ रात रहे अपने घरवालों को लेकर

शक्ल में आना हमेशा ग़ैर-मामूली हालात ही में हुआ करता है और कोई बड़ी मुहिम ही होती है जिसपर वे भेजे जाते हैं।

34. मुख़्तसर इशारा यह बता रहा है कि लूत (अलैहि॰) की क़ौम के जुर्मों का पैमाना उस वक़्त इतना भर चुका था कि हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) जैसे बाख़बर आदमी के सामने उसका नाम लेने की बिलकुल ज़रूरत न थी, बस "एक मुजरिम क़ौम" कह देना बिलकुल काफ़ी था।

35. तक़ाबुल (तुलना) के लिए देखें—सूरा-7 आराफ़, आयत 73 से 84; सूरा-11 हूद, आयत-69 से 83।

36. यहाँ बात मुख़्तसर तौर से बयान की गई है। सूरा-11 हूद में इसकी तफ़सील यह दी गई है कि उन लोगों के आने से हज़रत लूत (अलैहि॰) बहुत घबराए और बहुत दिल-तंग हुए और उनको देखते ही अपने दिल में कहने लगे कि आज बड़ा सख़्त वक़्त आया है। इस घबराहट की वजह जो क़ुरआन के बयान से इशारे के तौर पर और रिवायतों से साफ़-साफ़ मालूम होती है यह है कि ये फ़रिश्ते बहुत ख़ूबसूरत लड़कों की शक्ल में हज़रत लूत के यहाँ पहुँचे थे और हज़रत लूत (अलैहि॰) अपनी क़ौम की बदमाशी से वाक़िफ़ थे, इसलिए आप बहुत परेशान हुए कि आए हुए मेहमानों को वापस भी नहीं किया जा सकता, और उन्हें इन बदमाशों से बचाना भी मुश्किल है।

وَّامۡضُوۡا حَيۡثُ تُؤۡمَرُوۡنَ ﴿۶۵﴾ وَقَضَيۡنَاۤ اِلَيۡهِ ذٰلِكَ الۡاَمۡرَ اَنَّ دَابِرَ
هٰٓؤُلَاۤءِ مَقۡطُوۡعٌ مُّصۡبِحِيۡنَ ﴿۶۶﴾ وَجَآءَ اَهۡلُ الۡمَدِيۡنَةِ يَسۡتَبۡشِرُوۡنَ ﴿۶۷﴾

निकल जाओ और ख़ुद उनके पीछे-पीछे चलो।[37] तुममें से कोई पलटकर न देखे।[38] (66) बस सीधे चले जाओ जिधर जाने का तुम्हें हुक्म दिया जा रहा है।" और उसे हमने अपना यह फ़ैसला पहुँचा दिया कि सुबह होते-होते इन लोगों की जड़ काट दी जाएगी।

(67) इतने में शहर के लोग ख़ुशी के मारे बेताब होकर लूत के घर चढ़ आए।[39]

---

37. यानी इस मक़सद से अपने घरवालों के पीछे चलो कि उनमें से कोई ठहरने न पाए।

38. इसका यह मतलब नहीं है कि पलटकर देखते ही तुम पत्थर के हो जाओगे, जैसा कि बाइबल में बयान हुआ है, बल्कि इसका मतलब यह है कि पीछे की आवाज़ें और शोर-गुल सुनकर तमाशा देखने के लिए न ठहर जाना। यह न तमाशा देखने का वक़्त है और न मुजरिम क़ौम की बरबादी पर आँसू बहाने का। एक पल के लिए भी अगर तुमने अज़ाब पानेवाली क़ौम के इलाक़े में दम ले लिया तो नामुमकिन नहीं कि तुम्हें भी इस बरबादी की बारिश से कुछ नुक़सान पहुँच जाए।

39. इससे अन्दाज़ा किया जा सकता है कि इस क़ौम की बद-अख़लाक़ी किस हद को पहुँच चुकी थी। बस्ती के एक शख़्स के घर कुछ ख़ूबसूरत मेहमानों का आ जाना इस बात के लिए काफ़ी था कि उसके घर पर लफंगों की एक भीड़ उमड़ आए और खुल्लम-खुल्ला वे उससे माँग करें कि अपने मेहमानों को बदकारी के लिए हमारे हवाले कर दे। उनकी पूरी आबादी में कोई ऐसा शख़्स बाक़ी न रहा था जो इन हरकतों के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाता, और न उनकी क़ौम में कोई अख़लाक़ी अहसास बाक़ी रह गया था जिसकी वजह से लोगों को खुल्लम-खुल्ला ये ज़्यादतियाँ करते हुए कोई शर्म महसूस होती हज़रत लूत (अलैहि.) जैसे पाकीज़ा इनसान और अख़्लाक़ की तालीम देनेवाले के घर पर भी जब बदमाशों का हमला इस बेख़ौफ़ी के साथ हो सकता था तो अन्दाज़ा किया जा सकता है कि आम इनसानों के साथ इन बस्तियों में क्या कुछ हो रहा होगा। तलमूद में इस क़ौम के जो हालात लिखे हैं उनका एक ख़ुलासा हम यहाँ देते हैं जिससे कुछ ज़्यादा तफ़सील के साथ मालूम होगा कि यह क़ौम अख़्लाक़ी बिगाड़ की किस इन्तिहा को पहुँच चुकी थी। इसमें लिखा है कि एक बार एक 'ऐलामी, (अजनबी) मुसाफ़िर उनके इलाक़े से गुज़र रहा था। रास्ते में शाम हो गई और उसे मजबूर होकर उनके शहर सुदूम में ठहरना पड़ा। उसके साथ उसके सफ़र का सामान था। किसी से उसने मेज़बानी की दरख़्वास्त न की। बस एक पेड़ के नीचे उतर गया। मगर सुदूम का एक आदमी ज़िद करके उसे उठाकर अपने घर ले गया। रात उसे अपने घर रखा और सुबह होने से पहले उसका गधा, उसकी काठी और तिजारत के माल सहित उड़ा दिया। उसने शोर मचाया, मगर किसी ने उसकी फ़रियाद न सुनी,

قَالَ اِنَّ هٰٓؤُلَاۤءِ ضَيۡفِىۡ فَلَا تَفۡضَحُوۡنِ ۞ وَاتَّقُوا اللّٰهَ وَلَا تُخۡزُوۡنِ ۞
قَالُوۡۤا اَوَلَمۡ نَنۡهَكَ عَنِ الۡعٰلَمِيۡنَ ۞ قَالَ هٰٓؤُلَاۤءِ بَنٰتِىۡۤ اِنۡ كُنۡتُمۡ

(68) लूत ने कहा, "भाइयो! ये मेरे मेहमान हैं, मेरी फ़ज़ीहत न करो, (69) अल्लाह से डरो, मुझे रुसवा न करो।" (70) वे बोले, "क्या हम बार-बार तुम्हें मना नहीं कर चुके हैं कि दुनिया-भर के ठेकेदार न बनो?" (71) लूत ने आजिज़ होकर कहा, "अगर तुम्हें कुछ

बल्कि बस्ती के लोगों ने उसका रहा-सहा माल भी लूटकर उसे निकाल बाहर किया।

एक बार हज़रत सारा ने हज़रत लूत (अलैहि॰) के घरवालों की ख़ैरियत मालूम करने के लिए अपने ग़ुलाम इलयाज़िर को सुदूम भेजा। इलयाज़िर जब शहर में दाख़िल हुआ तो उसने देखा कि एक सुदूम-वासी एक अजनबी को मार रहा है। इलयाज़िर ने उसे शर्म दिलाई कि तुम मजबूर मुसाफ़िरों से यह सुलूक करते हो। मगर जवाब में सरे-बाज़ार इलयाज़िर का सिर फाड़ दिया गया।

एक बार एक ग़रीब आदमी कहीं से उनके शहर में आया और किसी ने उसे खाने को कुछ न दिया। वह भूख-प्यास से बेहाल होकर एक जगह गिरा पड़ा था कि हज़रत लूत (अलैहि॰) की बेटी ने उसे देख लिया और उसके लिए खाना पहुँचाया। इसपर हज़रत लूत (अलैहि॰) और उनकी बेटी को बहुत बुरा-भला कहा गया और उन्हें धमकियाँ दी गईं कि इन हरकतों के साथ तुम लोग हमारी बस्ती में नहीं रह सकते।

इस तरह के कई वाक़िआत बयान करने के बाद तलमूद का लेखक लिखता है कि अपनी रोज़ाना की ज़िन्दगी में ये लोग सख़्त ज़ालिम, धोखेबाज़ और बद-मामला थे। कोई मुसाफ़िर उनके इलाक़े से ख़ैरियत से न गुज़र सकता था। कोई ग़रीब उनकी बस्तियों से रोटी का एक टुकड़ा न पा सकता था। बहुत बार ऐसा होता कि बाहर का आदमी उनके इलाक़े में पहुँचकर भूखे रहकर मर जाता और यह उसके कपड़े उतारकर उसकी लाश को नंगा दफ़न कर देते। बाहर के व्यापारी अगर बदक़िस्मती से वहाँ चले जाते तो खुले-आम लूट लिए जाते और उनकी फ़रियाद को ठहाकों में उड़ा दिया जाता। अपनी घाटी को उन्होंने एक बाग़ बना रखा था, जिसका सिलसिला मीलों तक फैला हुआ था। बाग़ में वे बहुत ही बेशर्मी के साथ खुले-आम बदकारियाँ करते थे और एक लूत (अलैहि॰) की ज़बान के सिवा कोई ज़बान उनको टोकनेवाली न थी। क़ुरआन मजीद में इस पूरी दास्तान को समेटकर सिर्फ़ दो जुमलों में बयान कर दिया गया है कि "वे पहले से बहुत बुरे-बुरे काम कर रहे थे" (सूरा-11 हूद, आयत 78)। और "तुम मर्दों से अपनी नफ़्सानी ख़्वाहिश पूरी करते हो, मुसाफ़िरों को लूटते हो और अपनी मजलिसों में खुल्लम-खुल्ला बदकारियाँ करते हो।" (सूरा-29 अनकबूत, आयत-29)

فٰعِلِيْنَ ﴿٧١﴾ لَعَمْرُكَ اِنَّهُمْ لَفِيْ سَكْرَتِهِمْ يَعْمَهُوْنَ ﴿٧٢﴾ فَاَخَذَتْهُمُ
الصَّيْحَةُ مُشْرِقِيْنَ ﴿٧٣﴾ فَجَعَلْنَا عَالِيَهَا سَافِلَهَا وَاَمْطَرْنَا عَلَيْهِمْ حِجَارَةً

करना ही है तो ये मेरी बेटियाँ मौजूद हैं।"[40]

(72) तेरी जान की क़सम ऐ नबी! उस वक़्त उनपर एक नशा-सा चढ़ा हुआ था जिसमें वे आपे से बाहर हुए जाते थे।

(73) आख़िरकार पौ फटते ही उनको एक ज़बरदस्त धमाके ने आ लिया (74) और हमने उस बस्ती को तलपट करके रख दिया और उनपर पकी हुई मिट्टी के पत्थरों की

40. इसकी तशरीह सूरा-11 हूद के हाशिया-87 में बयान की जा चुकी है। यहाँ सिर्फ़ इतना इशारा काफ़ी है कि ये बातें एक शरीफ़ आदमी की ज़बान पर ऐसे वक़्त में आई हैं जबकि वह बिलकुल तंग आ चुका था और बदमाश लोग उसकी सारी चीख़-पुकार से बेपरवाह होकर उसके मेहमानों पर टूटे पड़ रहे थे।

इस मौक़े पर एक बात को साफ़ कर देना ज़रूरी है। सूरा-11 हूद में वाक़िआ जिस तरतीब से बयान किया गया है उसमें यह बात साफ़-साफ़ कही गई है कि हज़रत लूत (अलैहि.) को बदमाशों के इस हमले के वक़्त तक यह मालूम न था कि उनके मेहमान हक़ीक़त में फ़रिश्ते हैं। वे उस वक़्त तक यही समझ रहे थे कि ये कुछ मुसाफ़िर लड़के हैं जो उनके यहाँ आकर ठहरे हैं। उन्होंने अपने फ़रिश्ते होने की हक़ीक़त उस वक़्त खोली जब बदमाशों की भीड़ मेहमानों के ठिकाने पर पिल पड़ी और हज़रत लूत (अलैहि.) ने तड़पकर कहा, "काश! मुझे तुम्हारे मुक़ाबले की ताक़त हासिल होती या मेरा कोई सहारा होता जिससे मैं हिमायत हासिल करता।" इसके बाद फ़रिश्तों ने उनसे कहा कि अब तुम अपने घरवालों को लेकर यहाँ से निकल जाओ और हमें इनसे निबटने के लिए छोड़ दो। वाक़िआत की इस तरतीब को निगाह में रखने से पूरा अन्दाज़ा हो सकता है कि हज़रत लूत (अलैहि.) ने ये अलफ़ाज़ किस मुश्किल मौक़े पर तंग आकर कहे थे। इस सूरा में चूँकि वाक़िआत को उनके सामने आने की तरतीब के लिहाज़ से नहीं बयान किया जा रहा है, बल्कि उस ख़ास पहलू को ख़ास-तौर पर नुमायाँ करना मक़सद है जिसे ज़ेहन में बिठाने के लिए ही यह क़िस्सा यहाँ नक़्ल किया गया है, इसलिए एक आम पढ़नेवाले को यहाँ यह ग़लतफ़हमी होती है कि फ़रिश्ते शुरू ही में अपने बारे में हज़रत लूत (अलैहि.) को बता चुके थे और अब अपने मेहमानों की आबरू बचाने के लिए उनकी यह सारी चीख़-पुकार सिर्फ़ एक ड्रामाई अंदाज़ की थी।

مِّنْ سِجِّيْلٍ ۝٧٤ اِنَّ فِيْ ذٰلِكَ لَاٰيٰتٍ لِّلْمُتَوَسِّمِيْنَ ۝٧٥ وَاِنَّهَا لَبِسَبِيْلٍ
مُّقِيْمٍ ۝٧٦ اِنَّ فِيْ ذٰلِكَ لَاٰيَةً لِّلْمُؤْمِنِيْنَ ۝٧٧ وَاِنْ كَانَ اَصْحٰبُ الْاَيْكَةِ
لَظٰلِمِيْنَ ۝٧٨ فَانْتَقَمْنَا مِنْهُمْ ۘ وَاِنَّهُمَا لَبِاِمَامٍ مُّبِيْنٍ ۝٧٩ وَلَقَدْ
كَذَّبَ اَصْحٰبُ الْحِجْرِ الْمُرْسَلِيْنَ ۝٨٠ وَاٰتَيْنٰهُمْ اٰيٰتِنَا فَكَانُوْا عَنْهَا

बारिश बरसा दी।[41]

(75) इस वाक़िए में बड़ी निशानियाँ हैं उन लोगों के लिए जो सूझ-बूझवाले हैं। (76, 77) और वह इलाक़ा (जहाँ यह वाक़िआ पेश आया था) आम रास्ते पर वाक़े (स्थित) है।[42] उसमें सबक़ लेने का सामान है उन लोगों के लिए जो ईमानवाले हैं।

(78, 79) और ऐकावाले[43] ज़ालिम थे, तो देख लो कि हमने भी उनसे इन्तिक़ाम लिया है, और इन दोनों क़ौमों के उजड़े हुए इलाक़े खुले रास्ते पर वाक़े हैं।[44]

(80) हिज्र[45] के लोग भी रसूलों को झुठला चुके हैं। (81) हमने अपनी आयतें उनके

41. ये पकी हुई मिट्टी के पत्थर हो सकते हैं कि शिहाबे-साक़िब की तरह के हों, और यह भी हो सकता है कि ज्वालामुखी फटने (Volcanic eruption) की वजह से ज़मीन से निकलकर उड़े हों और फिर उनपर बारिश की तरह बरस गए हों और यह भी हो सकता हैं कि एक तेज़ आँधी ने यह पथराव किया हो।

42. यानी हिजाज़ से शाम (सीरिया) और इराक़ से मिस्र जाते हुए यह तबाह हो चुका इलाक़ा रास्ते में पड़ता है और आमतौर से क़ाफ़िलों के लोग तबाही की उन निशानियों को देखते हैं जो इस पूरे इलाक़े में आज तक नुमायाँ है। यह इलाक़ा बहरे-लूत (मृतसागर) (Dead Sea) के पूर्व और दक्षिण में पाया जाता है और ख़ास तौर से इसके दक्षिणी हिस्से के बारे में भूगोल के जानकारों का बयान है कि यहाँ इतनी ज़्यादा वीरानी पाई जाती है जिसकी मिसाल ज़मीन पर कहीं और नहीं देखी गई।

43. यानी हज़रत शुऐब (अलैहि.) की क़ौम के लोग। इस क़ौम का नाम बनी मदयान था। मदयन उनके केन्द्रीय नगर को भी कहते थे और उनके पूरे इलाक़े को भी। रहा ऐका, तो यह तबूक का पुराना नाम था। इस लफ़्ज़ के मानी 'घना जंगल' के हैं। आजकल ऐका एक पहाड़ी नाले का नाम है जो 'जबलुल्लौज़' नामी पहाड़ से 'अफ़ल' नामी वादी में आकर गिरता है। (तशरीह के लिए देखें—सूरा-42 अश-शुअरा, हाशिया-115)

44. मदयन और ऐकावालों का इलाक़ा भी हिजाज़ से फ़िलस्तीन व शाम (सीरिया) जाते हुए रास्ते में पड़ता है।

45. यह समूद की क़ौम का केन्द्रीय नगर था। इसके खण्डहर मदीना के उत्तर-पश्चिम में मौजूदा

مُعْرِضِيْنَ ﴿٨١﴾ وَكَانُوْا يَنْحِتُوْنَ مِنَ الْجِبَالِ بُيُوْتًا اٰمِنِيْنَ ﴿٨٢﴾
فَاَخَذَتْهُمُ الصَّيْحَةُ مُصْبِحِيْنَ ﴿٨٣﴾ فَمَآ اَغْنٰى عَنْهُمْ مَّا كَانُوْا يَكْسِبُوْنَ ﴿٨٤﴾
وَمَا خَلَقْنَا السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضَ وَمَا بَيْنَهُمَآ اِلَّا بِالْحَقِّ ۭ وَاِنَّ السَّاعَةَ
لَاٰتِيَةٌ فَاصْفَحِ الصَّفْحَ الْجَمِيْلَ ﴿٨٥﴾ اِنَّ رَبَّكَ هُوَ الْخَلّٰقُ الْعَلِيْمُ ﴿٨٦﴾

पास भेजीं, अपनी निशानियाँ उनको दिखाईं, मगर वे सबको नज़र-अंदाज़ ही करते रहे।
(82) वे पहाड़ काट-काटकर मकान बनाते थे और अपनी जगह बिलकुल बेख़ौफ़ और
मुत्मइन थे। (83, 84) आख़िरकार एक ज़बरदस्त धमाके ने उनको सुबह होते आ लिया
और उनकी कमाई उनके कुछ काम न आई।[46]

(85) हमने ज़मीन और आसमानों को और उनकी सब मौजूद चीज़ों को हक़ के सिवा किसी और बुनियाद पर पैदा नहीं किया है,[47] और फ़ैसले की घड़ी यक़ीनन आनेवाली है। तो ऐ नबी! तुम (इन लोगों की बदतमीज़ियों पर) शरीफ़ों की तरह माफ़ी
से काम लो। (86) यक़ीनन तुम्हारा रब सबका पैदा करनेवाला है और सब कुछ जानता

'अल-उला' नामी शहर से कुछ मील के फ़ासले पर है। मदीना से तबूक जाते हुए यह मक़ाम आम रास्ते पर मिलता है और क़ाफ़िले इस घाटी में से होकर गुज़रते हैं, मगर नबी (सल्ल.) की हिदायत के मुताबिक़ कोई यहाँ ठहरता नहीं है। आठवीं सदी हिजरी में इब्ने-बतूता हज को जाते हुए यहाँ पहुँचा था। वह लिखता है कि "यहाँ लाल रंग के पहाड़ों में समूद की क़ौम की इमारतें मौजूद हैं जो उन्होंने चट्टानों को तराश-तराशकर उनके अन्दर बनाई थीं। उनके बेल-बूटे इस वक़्त तक ऐसे ताज़ा हैं जैसे आज बनाए गए हों। उन मकानों में अब भी सड़ी-गली इनसानी हड्डियाँ पड़ी हुई मिलती हैं।" (और ज़्यादा तशरीह के लिए देखें—सूरा-7 आराफ़, हाशिया-57)

46. यानी उनके वे पत्थर के घर जो उन्होंने पहाड़ों को तराश-तराशकर उनके अन्दर बनाए थे उनकी कुछ भी हिफ़ाज़त न कर सके।

47. यह बात नबी (सल्ल.) को सुकून व तसल्ली देने के लिए कही जा रही है। मतलब यह है कि इस वक़्त बज़ाहिर बातिल (असत्य) का जो ग़लबा तुम देख रहे हो और हक़ के रास्ते में जिन मुश्किलों और मुसीबतों का तुम्हें सामना करना पड़ रहा है, उससे घबराओ नहीं। यह एक थोड़े दिनों तक रहनेवाली कैफ़ियत है, लगातार और हमेशा रहनेवाली हालत नहीं है। इसलिए कि ज़मीन व आसमान का यह पूरा निज़ाम हक़ पर बना है, न कि बातिल पर। कायनात की फ़ितरत हक़ के साथ मेल खाती है, न कि बातिल के साथ लिहाज़ा यहाँ अगर क़ायम और बाक़ी रहनेवाला है तो वह हक़ है, न कि बातिल। और ज़्यादा तशरीह के लिए देखें—सूरा-14 इबराहीम, हाशिए-25,26 और 35 से 39)

وَلَقَدْ اٰتَيْنٰكَ سَبْعًا مِّنَ الْمَثَانِيْ وَالْقُرْاٰنَ الْعَظِيْمَ ۝٨٧ لَا تَمُدَّنَّ

है।[48] (87) हमने तुमको सात ऐसी आयतें दे रखी हैं जो बार-बार दोहराई जाने के लायक़ हैं,[49] और तुम्हें अज़ीम क़ुरआन दिया है।[50] (88) तुम उस दुनिया के सामान की

48. यानी पैदा करनेवाला होने की हैसियत से वह अपने पैदा किए हुओं पर पूरा ग़लबा और क़ब्ज़ा रखता है, किसी जानदार की यह ताक़त नहीं है कि उसकी पकड़ से बच सके और इसके साथ वह पूरी तरह बाख़बर भी है, जो कुछ इन लोगों के सुधार के लिए तुम कर रहे हो उसे भी वह जानता है और जिन हथकंडों से ये तुम्हारे सुधार की कोशिश को नाकाम करने की कोशिश कर रहे हैं उनको भी वह जानता है। लिहाज़ा तुम्हें घबराने और बेसब्र होने की कोई ज़रूरत नहीं। मुत्मइन रहो कि वक़्त आने पर ठीक-ठीक इनसाफ़ के मुताबिक़ फ़ैसला चुका दिया जाएगा।

49. यानी सूरा-1 फ़ातिहा की आयतें। अगरचे कुछ लोगों ने इससे मुराद ये सात बड़ी-बड़ी सूरतें भी ली हैं जिनमें दो-दो सौ आयतें हैं, यानी सूरा-2 बक़रा, सूरा-3 आले-इमरान, सूरा-4 निसा, सूरा-5 माइदा, सरा-6 अनआम, सूरा-7 आराफ़ और सूरा-10 यूनुस या सूरा-8 अनफ़ाल व सूरा-9 तौबा। लेकिन गुज़रे हुए बड़े आलिमों में से ज़्यादातर इसपर एक राय हैं कि इससे सूरा फ़ातिहा ही मुराद है, बल्कि इमाम बुख़ारी ने दो मर्फ़ूअ् रिवायतें भी इस बात के सुबूत में पेश की हैं कि ख़ुद नबी (सल्ल0) ने 'सबअम-मिनल-मसानी' (बार-बार दोहराई जानेवाली सात आयतों) से मुराद सूरा फ़ातिहा बताई है।

50. यह बात भी नबी (सल्ल.) और आपके साथियों की तस्कीन व तसल्ली के लिए कही गई है। वक़्त यह था जब नबी (सल्ल.) और आपके साथी सब के सब बहुत ही तंगहाली में मुब्तला थे। नुबूवत के काम की भारी ज़िम्मेदारियाँ संभालते ही नबी (सल्ल.) की तिजारत लगभग ख़त्म हो चुकी थी और हज़रत ख़दीज़ा (रजि.) की पूँजी भी दस-बारह साल के अर्से में ख़र्च हो चुकी थी। मुसलमानों में से कुछ कमसिन नौजवान थे जो घरों से निकाल दिए गए थे, कुछ कारीगर या कारोबारी थे जिनके कारोबार इस वजह से बिलकुल ठप हो गए थे, क्योंकि उनसे किसी तरह का लेन देन बिल्कुल बंद कर दिया गया था और कुछ बेचारे पहले ही ग़ुलाम या नौकर-चाकर थे जिनकी कोई माली हैसियत न थी। इसके साथ यह बात भी थी कि नबी (सल्ल.) समेत तमाम मुसलमान मक्का और उसके आसपास की बस्तियों में बहुत ही मज़लूमी की ज़िन्दगी गुज़ार रहे थे। हर तरफ़ से ताने सुन रहे थे, हर जगह से रुस्वाई, नफ़रत और मज़ाक़ का निशाना बने हुए थे, और दिली व रूहानी तकलीफ़ों के साथ जिस्मानी तकलीफ़ों से भी कोई बचा हुआ न था। दूसरी तरफ़ क़ुरैश के सरदार दुनिया की नेमतों से मालामाल और हर तरह की ख़ुशहालियों में मगन थे। इन हालात में कहा जा रहा है कि तुम मायूस क्यों होते हो, तुमको तो हमने वह दौलत दी है जिसके मुक़ाबले में दुनिया की सारी नेमतें बेकार है। रश्क के क़ाबिल तुम्हारी यह इल्मी व अख़लाक़ी दौलत है, न कि उन लोगों की दुनियावी दौलत जो तरह-तरह के हराम तरीक़ों से कमा रहे हैं और तरह-तरह के हराम रास्तों में इस कमाई को उड़ा रहे हैं और

عَيْنَيْكَ إِلَىٰ مَا مَتَّعْنَا بِهٖٓ أَزْوَاجًا مِّنْهُمْ وَلَا تَحْزَنْ عَلَيْهِمْ وَاخْفِضْ
جَنَاحَكَ لِلْمُؤْمِنِينَ ﴿٨٨﴾ وَقُلْ إِنِّيٓ أَنَا النَّذِيرُ الْمُبِينُ ﴿٨٩﴾ كَمَآ أَنزَلْنَا
عَلَى الْمُقْتَسِمِينَ ﴿٩٠﴾ الَّذِينَ جَعَلُوا الْقُرْآنَ عِضِينَ ﴿٩١﴾ فَوَرَبِّكَ
لَنَسْأَلَنَّهُمْ أَجْمَعِينَ ﴿٩٢﴾ عَمَّا كَانُوا يَعْمَلُونَ ﴿٩٣﴾ فَاصْدَعْ بِمَا تُؤْمَرُ

तरफ़ आँख उठाकर न देखो जो हमने इनमें से अलग-अलग तरह के लोगों को दे रखा है, और न इनके हाल पर अपना दिल कुढ़ाओ।[51] इन्हें छोड़कर ईमान लानेवालों की तरफ़ झुको (89) और (न माननेवालों से) कह दो कि मैं तो साफ़-साफ़ ख़बरदार करनेवाला हूँ। (90, 91) यह उसी तरह का तंबीह है जैसी हमने उन फूट डालनेवालों की तरफ़ भेजी थी जिन्होंने अपने क़ुरआन को टुकड़े-टुकड़े कर डाला है।[52] (92, 93) तो क़सम है तेरे रब की, हम ज़रूर इन सबसे पूछेंगे कि तुम क्या करते रहे हो?

आख़िरकार बिलकुल कंगाल होकर अपने रब के सामने हाज़िर होनेवाले हैं।

51. यानी उनके इस हाल पर न कुढ़ो कि अपने ख़ैर-ख़्वाह को अपना दुश्मन समझ रहे हैं, अपनी गुमराहियों और अख़लाक़ी ख़राबियों को अपनी ख़ूबियाँ समझे बैठे हैं, ख़ुद उस रास्ते पर जा रहे हैं और अपनी सारी क़ौम को उसपर लिए जा रहे हैं जिसका यक़ीनी अंजाम तबाही है, और जो शख़्स इन्हें सलामती की राह दिखा रहा है उसकी सुधार की कोशिश को नाकाम बनाने के लिए एड़ी-चोटी का सारा ज़ोर लगाए डालते हैं।

52. इस गरोह से मुराद यहूदी हैं। उनको "मुक़्तसिमीन" (फूट डालनेवाले) इस अर्थ में कहा गया है कि उन्होंने दीन (धर्म) को टुकड़े-टुकड़े कर डाला। उसकी कुछ बातों को माना, और कुछ को न माना, और इसमें तरह-तरह की कमी-बेशी करके बीसियों फ़िरक़े (सम्प्रदाय) बना लिए। उनके "क़ुरआन" से मुराद तौरात है जो उनको उसी तरह दी गई थी जिस तरह उम्मते-मुहम्मदिया को क़ुरआन दिया गया है और इस "क़ुरआन" को टुकड़े-टुकड़े कर डालने से मुराद वही काम है जिसे सूरा-2, अल-बक़रा, आयत 85 में यूँ बयान किया गया है कि "क्या तुम अल्लाह की किताब की कुछ बातों पर ईमान लाते हो और कुछ से इनकार करते हो?" फिर यह जो फ़रमाया कि यह तम्बीह (चेतावनी) जो आज तुमको दी जा रही है यह वैसी ही चेतावनी है जैसी तुमसे पहले यहूदियों को दी जा चुकी है तो इसका मक़सद अस्ल में यहुदियों के हाल से सबक़ देना है। मतलब यह है कि यहूदियों ने ख़ुदा की भेजी हुई चेतावनियों से लापरवाही बरतकर जो अंजाम देखा है वह तुम्हारी आँखों के सामने है। अब सोच लो, क्या तुम भी यही अंजाम देखना चाहते हो?

وَاَعۡرِضۡ عَنِ الۡمُشۡرِكِيۡنَ ﴿۹۴﴾ اِنَّا كَفَيۡنٰكَ الۡمُسۡتَهۡزِءِيۡنَ ﴿۹۵﴾ الَّذِيۡنَ
يَجۡعَلُوۡنَ مَعَ اللّٰهِ اِلٰهًا اٰخَرَ‌ۚ فَسَوۡفَ يَعۡلَمُوۡنَ ﴿۹۶﴾ وَلَقَدۡ نَعۡلَمُ اَنَّكَ
يَضِيۡقُ صَدۡرُكَ بِمَا يَقُوۡلُوۡنَ ﴿۹۷﴾ فَسَبِّحۡ بِحَمۡدِ رَبِّكَ وَكُنۡ مِّنَ
السّٰجِدِيۡنَ ﴿۹۸﴾ وَاعۡبُدۡ رَبَّكَ حَتّٰى يَاۡتِيَكَ الۡيَقِيۡنُ ﴿۹۹﴾ ع

(94) तो ऐ नबी! जिस चीज़ का तुम्हें हुक्म दिया जा रहा है, उसे हाँके-पुकार कह दो और शिर्क करनेवालों की ज़रा परवाह न करो। (95, 96) तुम्हारी तरफ़ से हम मज़ाक़ उड़ानेवालों की ख़बर लेने के लिए काफ़ी हैं जो अल्लाह के साथ किसी और को भी ख़ुदा क़रार देते हैं, बहुत जल्द उन्हें मालूम हो जाएगा।

(97) हमें मालूम है कि जो बातें ये लोग तुमपर बनाते हैं, उनसे तुम्हारे दिल को बड़ी कुढ़न होती है। (98) (इसका इलाज यह है कि) अपने रब की हम्द (बड़ाई) के साथ उसकी तस्बीह (महिमागान) करो, उसको सजदा करो (99) और उस आख़िरी घड़ी तक अपने रब की बन्दगी करते रहो जिसका आना यक़ीनी है।[53]

---

53. यानी हक़ की तबलीग़ (सत्य-प्रचार) और सुधार की दावत देने की कोशिशों में जिन तकलीफ़ों और मुसीबतों का तुमको सामना करना पड़ता है, उनके मुक़ाबले की ताक़त अगर तुम्हें मिल सकती है तो सिर्फ़ नमाज़ और अल्लाह की बन्दगी पर जमे रहने से मिल सकती है। यही चीज़ तुम्हें तसल्ली भी देगी, तुममें सब्र भी पैदा करेगी, तुम्हारा हौसला भी बढ़ाएगी और तुमको इस क़ाबिल भी बना देगी कि दुनिया भर की गालियों और मज़म्मतों और मुख़ालिफ़तों के मुक़ाबले में उस काम पर डटे रहो जिसे पूरा करने में तुम्हारे रब की ख़ुशी है।

☆☆☆

16. अन-नह्ल

परिचय

नाम

आयत 68 के जुमले 'व औहा रब्बु-क इलन्नह्ल' (और तेरे रब ने मधुमक्खी पर वह्य की) से लिया गया है। 'नह्ल' लफ़्ज़ का मतलब है— मधुमक्खी। इस सूरा में नह्ल यानी मधुमक्खी के बारे में बहस नहीं की गई है, बल्कि यह लफ़्ज सिर्फ़ अलामत के तौर पर इस्तेमाल हुआ है।

उतरने का ज़माना

बहुत-सी अन्दरूनी गवाहियों से इसके उतरने के ज़माने पर रौशनी पड़ती है। जैसे आयत-41 के जुमले 'वल्लज़ी-न हाजरू फ़िल्लाहि मिम-बअ्दि मा ज़ुलिमू' (जो लोग ज़ुल्म सहने के बाद अल्लाह के लिए हिजरत कर गए) से साफ़ मालूम होता है कि उस वक़्त हबशा की हिजरत हो चुकी थी।

आयत-106 'मन क-फ़-र बिल्लाहि मिम-बअ्दि ईमानिही' (जो आदमी ईमान लाने के बाद इनकार करे) से मालूम होता है कि उस वक़्त ज़ुल्मो-सितम पूरी शिद्दत के साथ से हो रहा था और यह सवाल पैदा हो गया था कि अगर कोई शख़्स नाक़ाबिले-बर्दाश्त तकलीफ़ से मजबूर होकर कुफ़्र (अधर्म) की बात कह बैठे तो उसका क्या हुक्म है।

आयत 112-114 का साफ़ इशारा इस तरफ़ है कि नबी (सल्ल॰) के पैग़म्बर बनाए जाने के बाद मक्का में जो ज़बरदस्त सूखा (अकाल) पड़ गया था, वह इस सूरा के उतरते वक़्त ख़त्म हो चुका था।

इस सूरा में एक आयत-115 ऐसी है जिसका हवाला सूरा-6 अनआम की आयत-119 में दिया गया है, और दूसरी आयत 118 ऐसी है जिसमें सूरा-6 अनआम की आयत-146 का हवाला दिया गया है, यह इस बात की दलील है कि ये दोनों सूरतें क़रीब-क़रीब के ज़माने में उतरी हैं।

इन गवाहियों से पता चलता है कि इस सूरा के उतरने का ज़माना भी मक्का का आख़िरी दौर ही है।

मौज़ूअ् (विषय) और मर्कज़ी मज़मून

शिर्क को रद्‌द करना, तौहीद को साबित करना, पैग़म्बर की दावत को न मानने के बुरे नतीजों पर ख़बरदार करना और समझाना-बुझाना और हक़ की मुख़ालिफ़त और उसके लिए रुकावटें खड़ी करने पर डाँट-फटकार।

बहसें

सूरा की शुरुआत बिना किसी तमहीद (भूमिका) के अचानक ख़बरदार कर देनेवाले जुम्ले से होती है। मक्का के इस्लाम दुश्मन बार-बार कहते थे कि 'जब हम तुम्हें झुठला चुके हैं और खुल्लम-खुल्ला तुम्हारी मुख़ालिफ़त कर रहे हैं तो आख़िर वह अल्लाह का अज़ाब आ क्यों नहीं जाता जिसकी तुम हमें धमकियाँ देते हो।' इस बात को वे बार-बार इस तरह दोहराते थे कि उनके नज़दीक यह मुहम्मद (सल्ल.) के पैग़म्बर न होने का सबसे ज़्यादा वाज़ेह सुबूत था। इसपर फ़रमाया कि बेवक़ूफ़ो! अल्लाह का अज़ाब तो तुम्हारे सिर पर तुला खड़ा है, अब इसके टूट पड़ने के लिए जल्दी न मचाओ, बल्कि जो ज़रा-सी मोहलत बाक़ी है उससे फ़ायदा उठाकर बात समझने की कोशिश करो। इसके बाद फ़ौरन ही समझाने-बुझाने के लिए बात शुरू हो जाती है और नीचे लिखी बातें बार-बार एक के बाद एक सामने आनी शुरू हो जाती हैं—

1. दिल लगती दलीलों और बाहरी दुनिया और इनसान के अन्दर पाई जानेवाली निशानियों की खुली-खुली गवाहियों से समझाया जाता है कि शिर्क बातिल (असत्य) है और तौहीद ही हक़ (सत्य) है।
2. इनकार करनेवालों के एतिराजों, शकों, हुज्जतों और हीले-बहानों का एक-एक करके जवाब दिया जाता है।
3. बातिल पर जमे रहने और हक़ के मुक़ाबले में घमंड के बुरे नतीजों से डराया जाता है।
4. उन अख़लाक़ी और अमली तब्दीलियों को मुख़्तसर तौर पर मगर दिल में बैठ जानेवाले अन्दाज़ में बयान किया जाता है जो मुहम्मद (सल्ल.) का लाया हुआ दीन इनसानी ज़िन्दगी में लाना चाहता है। और इस सिलसिले में मुशरिकों को बताया जाता है कि ख़ुदा को रब मानना, जिसका उन्हें दावा था, सिर्फ़ ख़ाली-ख़ूली मान लेना ही नहीं है, बल्कि अपने कुछ तक़ाज़े भी रखता है जो अक़ीदों, अख़लाक़ और अमली ज़िन्दगी में ज़ाहिर होने चाहिएँ।
5. नबी (सल्ल.) और आपके साथियों की ढारस बँधाई जाती है और साथ-साथ यह भी बताया जाता है कि इस्लाम दुश्मनों की रुकावटों और ज़ुल्मों के मुक़ाबले में उनका रवैया क्या होना चाहिए।

آياتها ١٢٨ ١٦ سُوْرَةُ النَّحْلِ مَكِّيَّةٌ ٧٠ ركوعاتها ١٦

بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ ○

اَتٰۤى اَمْرُ اللّٰهِ فَلَا تَسْتَعْجِلُوْهُ ؕ سُبْحٰنَهٗ وَتَعٰلٰى عَمَّا يُشْرِكُوْنَ ① يُنَزِّلُ
الْمَلٰٓئِكَةَ بِالرُّوْحِ مِنْ اَمْرِهٖ عَلٰى مَنْ يَّشَآءُ مِنْ عِبَادِهٖۤ اَنْ اَنْذِرُوْۤا اَنَّهٗ

16. अन-नह्ल

(मक्का में उतरी– आयतें-128)

अल्लाह के नाम से जो बेइन्तिहा मेहरबान और रहम फ़रमानेवाला है।

(1) आ गया अल्लाह का फ़ैसला[1], अब उसके लिए जल्दी न मचाओ। पाक है वह और बहुत ऊँचा है उस शिर्क से जो ये लोग कर रहे हैं।[2] (2) वह इस रूह[3] को अपने

---

1. यानी बस वह आया ही चाहता है—उसके ज़ाहिर होने और लागू होने का वक़्त क़रीब आ लगा है—इस बात को गुज़री हुई बात के अन्दाज़ में या तो इसके इन्तिहाई यक़ीनी और बहुत क़रीब होने का एहसास दिलाने के लिए कहा गया, या फिर इसलिए कि क़ुरैश के इस्लाम दुश्मनों की सरकशी व बदअमली का पैमाना भर चुका था और आख़िरी फ़ैसला कर देनेवाला क़दम उठाए जाने का वक़्त आ गया था।
   सवाल पैदा होता है कि यह 'फ़ैसला' क्या था और किस शक्ल में आया? हम यह समझते हैं (अल्लाह ही बेहतर जानता है) कि इस फ़ैसले से मुराद नबी (सल्ल॰) की मक्का से हिजरत है जिसका हुक्म थोड़ी मुद्दत बाद ही दिया गया। क़ुरआन के पढ़ने से मालूम होता है कि नबी जिन लोगों के दरमियान भेजा जाता है उनके झुठलाने और इनकार करने की आख़िरी सरहद पर पहुँचकर ही उसे हिजरत का हुक्म दिया जाता है और यह हुक्म उनकी क़िस्मत का फ़ैसला कर देता है। इसके बाद या तो उनपर तबाह कर डालनेवाला अज़ाब आ जाता है, या फिर नबी और उसकी पैरवी करनेवालों के हाथों उनकी जड़ काटकर रख दी जाती है। यही बात इतिहास से भी मालूम होती है। हिजरत जब की गई तो मक्का के इस्लाम दुश्मन समझे कि फ़ैसला उनके हक़ में है। मगर आठ-दस साल के अन्दर ही दुनिया ने देख लिया कि न सिर्फ़ मक्का से बल्कि पूरे अरब की ज़मीन ही से कुफ़्र व शिर्क की जड़ें उखाड़कर फेंक दी गईं।
2. पहले जुमले और दूसरे जुमले का आपसी ताल्लुक़ समझने के लिए पसमंज़र (पृष्ठभूमि) को निगाह में रखना ज़रूरी है। इस्लाम-दुश्मन जो नबी (सल्ल॰) को बार-बार चैलेंज कर रहे थे कि अब क्यों नहीं आ जाता ख़ुदा का वह फ़ैसला जिससे तुम हमें डरावे दिया करते हो, इसके पीछे

لَآ اِلٰهَ اِلَّآ اَنَا فَاتَّقُوْنِ ۝٢ خَلَقَ السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضَ بِالْحَقِّ ۭ تَعٰلٰى عَمَّا

जिस बन्दे पर चाहता है अपने हुक्म से फ़रिश्तों के ज़रिए उतार देता है।[4] (इस हिदायत के साथ कि लोगों को) "ख़बरदार कर दो, मेरे सिवा कोई तुम्हारा माबूद नहीं है, इसलिए तुम मुझी से डरो।"[5] (3) उसने आसमानों व ज़मीन को हक़ के साथ पैदा किया है, वह

अस्ल में उनका यह ख़्याल काम कर रहा था कि उनका शिर्कवाला मज़हब ही सच्चा है और मुहम्मद (सल्ल॰) ख़ाह मख़ाह अल्लाह का नाम ले-लेकर एक ग़लत मज़हब पेश कर रहे हैं जिसे अल्लाह की तरफ़ से कोई मंज़ूरी हासिल नहीं है। उनकी दलील यह थी कि आख़िर यह कैसे हो सकता है कि हम अल्लाह से फिरे हुए होते और मुहम्मद (सल्ल॰) उसके भेजे हुए नबी होते और फिर भी जो कुछ हम उनके साथ कर रहे हैं उसपर हमारी शामत न आ जाती। इसलिए ख़ुदाई फ़ैसले का एलान करते ही फ़ौरन यह कहा गया कि इसके लागू होने में देरी की वजह हरगिज़ वह नहीं है जो तुम समझे बैठे हो। अल्लाह इससे बहुत बुलन्द और बहुत पाकीज़ा है कि कोई उसका शरीक हो।

3. यानी नुबूवत (पैग़म्बरी) की रूह को जिससे भरकर नबी काम और बात करता है। यह वह्य और यह पैग़म्बरवाली स्प्रिट चूँकि अख़लाक़ी ज़िन्दगी में वही मक़ाम रखती है जो क़ुदरती ज़िन्दगी में रूह का मक़ाम है, इसलिए क़ुरआन में कई जगहों पर इसके लिए रूह का लफ़्ज़ इस्तेमाल किया गया है। इसी हक़ीक़त को न समझने की वजह से ईसाइयों ने रूहुल-क़ुदुस (Holy Ghost) को तीन ख़ुदाओं में से एक ख़ुदा बना डाला।

4. फ़ैसला तलब करने के लिए इस्लाम के दुश्मन जो चैलेंज कर रहे थे, उसके पीछे चूँकि मुहम्मद (सल्ल॰) की नुबूवत का इनकार भी मौजूद था, इसलिए शिर्क को रद्द करने के साथ और इसके फ़ौरन बाद आपकी नुबूवत को सही साबित किया गया है। वे कहते थे कि ये बनावटी बातें हैं जो यह शख़्स बना रहा है। अल्लाह इसके जवाब में फ़रमाता है कि नहीं यह हमारी भेजी हुई रूह है जिससे लबालब होकर यह शख़्स पैग़म्बरी का काम कर रहा है।

फिर यह जो फ़रमाया कि अपने जिस बन्दे पर अल्लाह चाहता है यह रूह उतारता है, तो यह इस्लाम-दुश्मनों के उन एतिराज़ों का जवाब है जो वे नबी (सल्ल॰) पर करते थे कि अगर ख़ुदा को नबी ही भेजना था तो क्या बस अब्दुल्लाह का बेटा मुहम्मद (सल्ल॰) ही इस काम के लिए रह गया था, मक्का और ताइफ़ के सारे बड़े-बड़े सरदार मर गए थे कि उनमें से किसी पर भी निगाह न पड़ सकी। इस तरह के फ़ुज़ूल एतिराज़ों का जवाब इसके सिवा और क्या हो सकता था, और यही कई जगहों पर क़ुरआन में दिया गया है कि ख़ुदा अपने काम को ख़ुद जानता है, तुमसे मशवरा लेने की ज़रूरत नहीं है, वह अपने बन्दों में से जिसको मुनासिब समझता है आप ही अपने काम के लिए चुन लेता है।

5. इस जुमले से यह हक़ीक़त वाज़ेह की गई कि पैग़म्बरी की रूह जहाँ जिस इनसान पर भी उतरी है यही एक दावत लेकर आई है कि ख़ुदाई सिर्फ़ एक अल्लाह की है और बस वही अकेला

يُشۡرِكُوۡنَ ۞ خَلَقَ الۡاِنۡسَانَ مِنۡ نُّطۡفَةٍ فَاِذَا هُوَ خَصِيۡمٌ مُّبِيۡنٌ ۞
وَالۡاَنۡعَامَ خَلَقَهَا ۚ لَكُمۡ فِيۡهَا دِفۡءٌ وَّمَنَافِعُ وَمِنۡهَا تَاۡكُلُوۡنَ ۞

बहुत बुलंद और ऊँचा है, उस शिर्क से जो ये लोग करते हैं।[6]

(4) उसने इनसान को एक ज़रा-सी बूँद से पैदा किया और देखते-देखते खुले तौर पर वह एक झगड़ालू हस्ती बन गया।[7] (5) उसने जानवर पैदा किए जिनमें तुम्हारे लिए

इसका हक़दार है कि उससे तक़वा किया जाए। कोई दूसरा इस लायक़ नहीं कि उसकी नाराज़ी का डर, उसकी सज़ा का डर और उसकी नाफ़रमानी के बुरे नतीजों का अन्देशा इनसानी अख़लाक़ का लंगर और इनसानी सोच व अमल के पूरे निज़ाम की धुरी बनकर रहे।

6. दूसरे अलफ़ाज़ में इसका मतलब यह है कि शिर्क का इनकार और तौहीद को साबित करना जिसकी दावत ख़ुदा के पैग़म्बर देते हैं, इसी की गवाही ज़मीन व आसमान में मौजूद हर चीज़ दे रही है। यह कारख़ाना कोई ख़याली गोरखधंधा नहीं है, बल्कि सरासर हक़ीक़त पर बना एक निज़ाम है। इसमें तुम जिस तरफ़ चाहो निगाह उठाकर देख लो, शिर्क की गवाही कहीं से न मिलेगी, अल्लाह के सिवा दूसरे की ख़ुदाई कहीं चलती नज़र न आएगी, किसी चीज़ की बनावट यह गवाही न देगी कि उसका वुजूद किसी और का भी एहसानमन्द है। फिर जब यह ठोस हक़ीक़त पर बना हुआ निज़ाम ख़ालिस तौहीद पर चल रहा है, तो आख़िर तुम्हारे इस शिर्क का सिक्का किस जगह चल सकता है जबकि इसकी तह में वहम व गुमान के सिवा हक़ीक़त और सच्चाई का हल्का-सा निशान तक नहीं है?—— इसके बाद कायनात की निशानियों से और ख़ुद इनसान के अपने वुजूद से वे गवाहियाँ पेश की जाती हैं जो एक तरफ़ तौहीद की और दूसरी तरफ़ रिसालत (पैग़म्बरी) की दलीलें बन जाती हैं।

7. इसके दो मतलब हो सकते हैं, और शायद दोनों ही मुराद हैं। एक यह कि अल्लाह ने नुत्फ़े (वीर्य) की मामूली-सी बूँद से वह इनसान पैदा किया जो बहस करने और दलीलें देने की क़ाबिलियत रखता है और अपने मक़सद को बयान करने के लिए दलीले पेश कर सकता है। दूसरे यह कि जिस इनसान को ख़ुदा ने नुत्फ़े जैसी मामूली चीज़ से पैदा किया है, उसकी ख़ुदी (स्वाभिमान) की सरकशी तो देखो कि वह ख़ुद ख़ुदा ही के मुक़ाबले में झगड़ने पर उतर आया है। पहले मतलब के लिहाज़ से यह आयत उसी दलील की एक कड़ी है जो आगे लगातार कई आयतों में पेश की गयी है (जिसकी तशरीह हम इस बयान के सिलसिले के आख़िर में करेंगे) और दूसरे मतलब के लिहाज़ से यह आयत इनसान को ख़बरदार करती है कि बढ़-बढ़कर बातें करने से पहले ज़रा अपने वुजूद को देख किस शक्ल में तू कहाँ से निकलकर कहाँ पहुँचा, किस जगह तूने शुरू में परवरिश पाई, फिर किस रास्ते से निकलकर दुनिया में आया, फिर किन मरहलों से गुज़रता हुआ तू जवानी की उम्र को पहुँचा और अब अपने आपको भूलकर तू किसके मुँह आ रहा है।

وَلَكُمْ فِيهَا جَمَالٌ حِينَ تُرِيحُونَ وَحِينَ تَسْرَحُونَ ۞ وَتَحْمِلُ
أَثْقَالَكُمْ إِلَىٰ بَلَدٍ لَّمْ تَكُونُوا بَالِغِيهِ إِلَّا بِشِقِّ الْأَنفُسِ ۚ إِنَّ رَبَّكُمْ
لَرَءُوفٌ رَّحِيمٌ ۞ وَالْخَيْلَ وَالْبِغَالَ وَالْحَمِيرَ لِتَرْكَبُوهَا وَزِينَةً ۚ
وَيَخْلُقُ مَا لَا تَعْلَمُونَ ۞ وَعَلَى اللَّهِ قَصْدُ السَّبِيلِ وَمِنْهَا جَائِرٌ ۚ وَلَوْ

लिबास भी है और खाना भी, और तरह-तरह के दूसरे फ़ायदे भी। (6) उनमें तुम्हारे लिए ख़ूबसूरती है जबकि सुबह तुम उन्हें चरने के लिए भेजते हो और जबकि शाम उन्हें वापस लाते हो। (7) वे तुम्हारे लिए बोझ ढोकर ऐसी-ऐसी जगहों तक ले जाते हैं, जहाँ तुम कड़ी मेहनत के बिना नहीं पहुँच सकते। सच तो यह है कि तुम्हारा रब बड़ा ही रहमदिल और मेहरबान है। (8) उसने घोड़े और ख़च्चर और गधे पैदा किए, ताकि तुम उनपर सवार हो और वे तुम्हारी ज़िन्दगी की रौनक़ बनें। वह और बहुत-सी चीज़ें (तुम्हारे फ़ायदे के लिए) पैदा करता है जिनका तुम्हें इल्म तक नहीं है[8] (9) और अल्लाह ही के ज़िम्मे है सीधा रास्ता बताना, जबकि रास्ते टेढ़े भी मौजूद हैं।[9] अगर वह चाहता तो तुम सबको

8. यानी बहुत-सी ऐसी चीज़ें हैं जो इनसान की भलाई के लिए काम कर रही हैं और इनसान को ख़बर तक नहीं है कि कहाँ-कहाँ कितने ख़ादिम उसकी ख़िदमत में लगे हुए हैं और क्या ख़िदमत कर रहे हैं।
9. ख़ुदा एक है, वह रहम करनेवाला और पालनहार है, इन बातों की दलीलें पेश करते हुए यहाँ इशारे में नुबूवत की भी एक दलील पेश कर दी गई है। इस दलील का मुख़्तसर बयान यह है— दुनिया में इनसान के लिए सोच व अमल के बहुत-से अलग-अलग रास्ते मुमकिन हैं और अमली तौर पर मौजूद हैं। ज़ाहिर है कि ये सारे रास्ते एक ही वक़्त में तो हक़ नहीं हो सकते। सच्चाई तो एक ही है और ज़िन्दगी का सही नज़रिया सिर्फ़ वही हो सकता है जो उस सच्चाई के मुताबिक़ हो और अमल के अनगिनत मुमकिन रास्तों में से सही रास्ता भी सिर्फ़ वही हो सकता है जो ज़िन्दगी के सही नज़रिए पर बना हो।
इस सही नज़रिए और सही राहे-अमल से वाक़िफ़ होना इनसान की सबसे बड़ी ज़रूरत है, बल्कि अस्ल बुनियादी ज़रूरत यही है, क्योंकि दूसरी तमाम चीज़ें तो इनसान की सिर्फ़ उन ज़रूरतों को पूरा करती हैं जो एक ऊँचे दर्जे का जानवर होने की हैसियत से उसको हुआ करती हैं। मगर यह एक ज़रूरत ऐसी है जो इनसान होने की हैसियत से उसके साथ लगी हुई है। यह अगर पूरी न हो तो इसका मतलब यह है कि आदमी की सारी ज़िन्दगी ही नाकाम हो गई।

ع ٢

شَآءَ لَهَدٰىكُمْ اَجْمَعِيْنَ ۝ هُوَ الَّذِيْۤ اَنْزَلَ مِنَ السَّمَآءِ مَآءً لَّكُمْ مِّنْهُ

सीधा रास्ता दिखा देता।[10]

(10) वही है जिसने आसमान से तुम्हारे लिए पानी बरसाया जिससे तुम ख़ुद भी

अब ग़ौर करो कि जिस ख़ुदा ने तुम्हें वुजूद में लाने से पहले तुम्हारे लिए यह कुछ सरो-सामान जुटाकर रखा और जिसने वुजूद में लाने के बाद तुम्हारी हैवानी ज़िन्दगी की एक-एक ज़रूरत को पूरा करने का इतनी बारीकी के साथ इतने बड़े पैमाने पर इन्तिज़ाम किया, क्या उससे तुम यह उम्मीद रखते हो कि उसने तुम्हारी इनसानी ज़िन्दगी की इस सबसे बड़ी और अस्ली ज़रूरत को पूरा करने का इन्तिज़ाम न किया होगा?

यही इन्तिज़ाम तो है जो नुबूवत के ज़रिए से किया गया है। अगर तुम नुबूवत को नहीं मानते तो बताओ कि तुम्हारे ख़याल में ख़ुदा ने इनसान की हिदायत के लिए और कौन-सा इन्तिज़ाम किया है? इसके जवाब में तुम न यह कह सकते हो कि ख़ुदा ने हमें रास्ता तलाश करने के लिए अक़्ल व समझ दे रखी है, क्योंकि इनसानी अक़्ल व समझ पहले ही अनगिनत अलग-अलग रास्ते निकाल बैठी है जो सीधे रास्ते की सही खोज में उसकी नाकामी का खुला सुबूत है और न तुम यही कह सकते हो कि ख़ुदा ने हमें राह दिखाने का कोई इन्तिज़ाम नहीं किया है, क्योंकि ख़ुदा के साथ इससे बढ़कर बदगुमानी और कोई नहीं हो सकती कि वह जानवर होने की हैसियत से तो तुम्हारी परवरिश और तुम्हारे फूलने-फलने का इतना तफ़सील से और पूरा इन्तिज़ाम करे, मगर इनसान होने की हैसयित से तुमको यूँ ही अंधेरों में भटकने और ठोकरें खाने के लिए छोड़ दे। (और ज़्यादा तशरीह के लिए देखें—सूरा-55 रहमान, हाशिया-2, 3)

10. यानी अगरचे यह भी हो सकता था कि अल्लाह तआला अपनी इस ज़िम्मेदरी को (जो इनसानों को राह दिखाने के लिए उसने ख़ुद अपने ऊपर डाली है) इस तरह अदा करता कि सारे इनसानों को पैदाइशी तौर पर दूसरे तमाम बेइख़्तियार मख़लूक़ की तरह सीधे रास्ते पर लगा देता। मगर वह ऐसा करना नहीं चाहता था। उसकी मरजी और स्कीम एक ऐसे इख़्तियार रखनेवाली मख़लूक को वुजूद में लाने का तक़ाज़ा कर रही थी जो अपनी पसन्द और अपने चुनाव से सही और ग़लत, हर तरह के रास्तों पर जाने की आज़ादी रखती हो। इसी आज़ादी के इस्तेमाल के लिए उसको इल्म के ज़रिए (साधन) दिए गए, अक़्ल व फ़िक्र (चिंतन) की सलाहियतें दी गईं। ख़ाहिश और इरादे की ताक़तें दी गईं, अपने अन्दर और बाहर की अनगिनत चीज़ों को इस्तेमाल के इख़्तियारात दिए गए, और अन्दर और बाहर में हर तरफ़ अनगिनत ऐसे असबाब (साधन) रख दिए गए जो उसके लिए हिदायत और गुमराही दोनों का सबब बन सकते हैं। ये सब कुछ बेमतलब हो जाता अगर वह पैदाइशी तौर पर सीधे रास्ते पर चलनेवाला बना दिया जाता और तरक़्क़ी के उन सबसे ऊँचे दर्जों तक भी इनसान का पहुँचना मुमकिन न रहता जो सिर्फ़ आज़ादी के सही इस्तेमाल ही के नतीजे में उसको मिल सकते हैं। इसलिए अल्लाह

شَرَابٌ وَّمِنۡهُ شَجَرٌ فِيۡهِ تُسِيۡمُوۡنَ ۝١٠ يُنۡۢبِتُ لَكُمۡ بِهِ الزَّرۡعَ
وَالزَّيۡتُوۡنَ وَالنَّخِيۡلَ وَالۡاَعۡنَابَ وَمِنۡ كُلِّ الثَّمَرٰتِ‌ؕ اِنَّ فِىۡ ذٰلِكَ
لَاٰيَةً لِّقَوۡمٍ يَّتَفَكَّرُوۡنَ ۝١١ وَسَخَّرَ لَكُمُ الَّيۡلَ وَالنَّهَارَ ۙ وَالشَّمۡسَ
وَالۡقَمَرَ‌ؕ وَالنُّجُوۡمُ مُسَخَّرٰتٌۢ بِاَمۡرِهٖ‌ؕ اِنَّ فِىۡ ذٰلِكَ لَاٰيٰتٍ لِّقَوۡمٍ
يَّعۡقِلُوۡنَ ۝١٢ وَمَا ذَرَاَ لَكُمۡ فِى الۡاَرۡضِ مُخۡتَلِفًا اَلۡوَانُهٗ‌ؕ اِنَّ فِىۡ ذٰلِكَ
لَاٰيَةً لِّقَوۡمٍ يَّذَّكَّرُوۡنَ ۝١٣ وَهُوَ الَّذِىۡ سَخَّرَ الۡبَحۡرَ لِتَاۡكُلُوۡا مِنۡهُ لَحۡمًا
طَرِيًّا وَّتَسۡتَخۡرِجُوۡا مِنۡهُ حِلۡيَةً تَلۡبَسُوۡنَهَا‌ۚ وَتَرَى الۡفُلۡكَ مَوَاخِرَ فِيۡهِ

सैराब होते हो और तुम्हारे जानवरों के लिए भी चारा पैदा होता है। (11) वह इस पानी के ज़रिये से खेतियाँ उगाता है और ज़ैतून और खजूर और अंगूर और तरह-तरह के दूसरे फल पैदा करता है। इसमें एक बड़ी निशानी है उन लोगों के लिए जो सोच-विचार करते हैं।

(12) उसने तुम्हारी भलाई के लिए रात और दिन को और सूरज और चाँद को सधा रखा है और सब तारे भी उसी के हुक्म से सधे हुए हैं। इसमें बहुत निशानियाँ हैं उन लोगों के लिए जो अक़्ल से काम लेते हैं। (13) और यह जो बहुत-सी रंग-बिरंग की चीज़ें उसने तुम्हारे लिए ज़मीन में पैदा कर रखी हैं, इनमें भी ज़रूर निशानी है उन लोगों के लिए जो सबक़ हासिल करनेवाले हैं।

(14) वही है जिसने तुम्हारे लिए समुद्र को सधा रखा है, ताकि तुम उससे तरो-ताज़ा गोश्त लेकर खाओ और उससे ज़ीनत (शोभा) की वे चीज़ें निकालो जिन्हें तुम पहना करते हो। तुम देखते हो कि नाव समुद्र का सीना चीरती हुई चलती है, यह सब कुछ

तआला ने इनसान की रहनुमाई के लिए ज़बरदस्ती हिदायत देने का तरीक़ा छोड़कर रिसालत का तरीक़ा अपनाया, ताकि इनसान की आज़ादी भी बनी रहे, और उसके इम्तिहान का मक़सद भी पूरा हो, और सीधा रास्ता भी सबसे ज़्यादा मुनासिब तरीक़े से उसके सामने पेश कर दिया जाए।

وَلِتَبْتَغُوْا مِنْ فَضْلِهٖ وَلَعَلَّكُمْ تَشْكُرُوْنَ ﴿١٤﴾ وَاَلْقٰى فِي الْاَرْضِ
رَوَاسِيَ اَنْ تَمِيْدَ بِكُمْ وَاَنْهٰرًا وَّسُبُلًا لَّعَلَّكُمْ تَهْتَدُوْنَ ﴿١٥﴾ وَعَلٰمٰتٍ ۭ
وَبِالنَّجْمِ هُمْ يَهْتَدُوْنَ ﴿١٦﴾ اَفَمَنْ يَّخْلُقُ كَمَنْ لَّا يَخْلُقُ ۭ اَفَلَا تَذَكَّرُوْنَ ﴿١٧﴾

इसलिए है कि तुम अपने रब की मेहरबानी तलाश करो[11] और उसके शुक्रगुज़ार बनो।

(15) उसने ज़मीन में पहाड़ों की मेख़ें गाड़ दीं, ताकि ज़मीन तुमको लेकर ढुलक न जाए।[12] उसने नदियाँ बहाईं और क़ुदरती रास्ते बनाए[13] ताकि तुम हिदायत पाओ। (16) उसने ज़मीन में रास्ता बतानेवाली निशानियाँ रख दीं[14], और तारों से भी लोग रास्ता पाते हैं।[15]

(17) फिर क्या वह जो पैदा करता है और वे जो कुछ भी नहीं पैदा करते, दोनों

11. यानी हलाल तरीक़ों से अपनी रोज़ी हासिल करने की कोशिश करो।

12. इससे मालूम होता है कि ज़मीन की सतह पर पहाड़ों के उभार का अस्ल फ़ायदा यह है कि उसकी वजह से ज़मीन के घूमने में और उसकी रफ़्तार में कंट्रोल पैदा होता है। क़ुरआन मजीद में कई जगहों पर पहाड़ों के इस फ़ायदे को नुमायाँ करके बताया गया है जिससे हम यह समझते हैं कि दूसरे तमाम फ़ायदे बुनियादी फ़ायदे नहीं हैं और अस्ल फ़ायदा यही ज़मीन की हरकत को कंट्रोल से बाहर होने से बचाकर कंट्रोल (Regulate) करना है।

13. यानी वे रास्ते जो नदी-नालों और दरियाओं के साथ बनते चले जाते हैं। उन क़ुदरती रास्तों की अहमियत ख़ुसूसियत के साथ पहाड़ी इलाक़ों में महसूस होती है, अगरचे मैदानी इलाक़ों में भी वे कुछ कम अहम नहीं है।

14. यानी ख़ुदा ने सारी ज़मीन बिलकुल एक जैसी बनाकर नहीं रख दी, बल्कि हर हिस्से को अलग-अलग ख़ास अलामतों (Landmarks) से अलग किया। इसके बहुत-से दूसरे फ़ायदों के साथ एक फ़ायदा यह भी है कि आदमी अपने रास्ते और अपनी मंज़िल को अलग पहचान लेता है। इस नेमत की क़द्र आदमी को उसी वक़्त मालूम होती है, जबकि उसे कभी ऐसे रेगिस्तानी इलाक़ों में जाने का मौक़ा मिला हो जहाँ इस तरह के अलग नज़र आनेवाले निशान तक़रीबन न होने के बराबर होते हैं और आदमी हर वक़्त भटक जाने का ख़तरा महसूस करता है। इससे भी बढ़कर समुद्री सफ़र में आदमी को इस शानदार नेमत का एहसास होता है, क्योंकि वहाँ रास्ते के निशान बिलकुल ही नहीं होते। लेकिन रेगिस्तानों और समुद्रों में भी अल्लाह ने इनसान की रहनुमाई का, फ़ितरी इन्तिज़ाम कर रखा है और वे हैं तारे जिन्हें देख-देखकर इनसाने पुरान ज़माने से आज तक अपना रास्ता मालूम कर रहा है।

यहाँ फिर ख़ुदा के एक होने उसके मेहरबान और रब हाने की दलीलों के बीच एक हल्का-सा

इशारा पैग़म्बरी की दलील की तरफ़ कर दिया गया है। इस जगह को पढ़ते हुए ज़ेहन ख़ुद-बख़ुद इस मज़मून की तरफ़ पलटता है कि जिस ख़ुदा ने तुम्हारी दुनियावी ज़िन्दगी में तुम्हारी रहनुमाई के लिए ये कुछ इन्तिज़ाम किए हैं क्या वह तुम्हारी अख़लाक़ी ज़िन्दगी से इतना बेपरवाह हो सकता है कि यहाँ तुम्हारी हिदायत का कुछ भी इन्तिज़ाम न करे? ज़ाहिर है कि दुनियावी ज़िन्दगी में भटक जाने का बड़े से बड़ा नुक़्सान भी अख़लाक़ी ज़िन्दगी में भटकने के नुक़सान से कई दर्जे कम है। फिर जिस मेहरबान रब को हमारी दुनियावी भलाई की इतनी फ़िक्र है कि पहाड़ों में हमारे लिए रास्ते बनाता है, मैदानों में रास्ता बतानेवाले निशान खड़े करता है, रेगिस्तानों और समुद्रों में हमको सफ़र की सही दिशा बताने के लिए आसमानों पर चिराग़ रौशन करता है, उससे यह बदगुमानी कैसे की जा सकती है कि उसने हमारी अख़लाक़ी कामयाबी के लिए कोई रास्ता न बनाया होगा, उस रास्ते को नुमायाँ करने के लिए कोई निशान न खड़ा किया होगा, और उसे साफ़-साफ़ दिखाने के लिए कोई चमकता चिराग़ रौशन न किया होगा?

15. यहाँ तक दुनिया में फैली हुई और इनसान के अन्दर पाई जानेवाली बहुत-सी निशानियाँ जो एक के बाद एक लगातार बयान की गई हैं, उनका मक़सद यह ज़ेहन में बिठाना है कि इनसान अपने वुजूद से लेकर ज़मीन और आसमान के कोने-कोने तक जिधर चाहे नज़र दौड़ाकर देख ले, हर चीज़ पैग़म्बर के बयान को सच्चा बता रही है और कहीं से भी शिर्क की —— और साथ-साथ नास्तिकता की भी ——ताईद में कोई गवाही नहीं मिलती। यह एक मामूली बूँद से बोलता-चालता और हुज्जत और दलील देता हुआ इनसान बनाकर खड़ा करना, यह उसकी ज़रूरत के ठीक मुताबिक़ बहुत-से जानवर पैदा करना जिनके बाल और खाल, ख़ून और दूध, गोश्त और पीठ, हर चीज़ में इनसानी फ़ितरत की बहुत-सी माँगों का, यहाँ तक कि उसके ज़ौक़े जमाल (सौन्दर्य प्रियता) की माँग का जवाब मौजूद है। यह आसमान से बारिश का इन्तिज़ाम, और यह ज़मीन में तरह-तरह के फलों और अनाजों और चारों की हरियाली का इन्तिज़ाम, जिसके अनगिनत हिस्से आपस में एक-दूसरे के साथ जोड़ खाते चले जाते हैं और फिर इनसान की भी फ़ितरी ज़रूरतों के ठीक मुताबिक़ हैं। यह रात और दिन का बाक़ायदा आना-जाना और यह चाँद-सूरज और तारों की इंतिहाई मुनज़्ज़म (व्यवस्थित) हरकतें जिनका ज़मीन की पैदावार और इनसान की मस्लहतों से इतना गहरा ताल्लुक़ है। यह ज़मीन में समुद्रों का होना और यह उनके अन्दर इनसान की बहुत-सी फ़ितरी और जमाली माँगों का जवाब, यह पानी का कुछ ख़ास क़ानूनों से जकड़ा हुआ होना, और फिर उसके ये फ़ायदे कि इनसान समुद्र जैसी डरावनी चीज़ का सीना चीरता हुआ उसमें अपने जहाज़ चलाता है और एक देश से दूसरे देश तक सफ़र और कारोबार करता फिरता है। ये धरती के सीने पर पहाड़ों के उभार और ये इनसान के वुजूद के लिए उनके फ़ायदे। यह ज़मीन की सतह की बनावट से लेकर आसमान की बुलन्द फ़ज़ाओं तक अनगिनत अलामतों और पहचान के निशानों का फैलाव और फिर इस तरह उनका इनसान के लिए फ़ायदेमन्द होना। ये सारी चीज़ें साफ़ गवाही दे रही हैं कि एक ही हस्ती ने यह मंसूबा सोचा है, उसी ने अपने मंसूबे के मुताबिक़ इन सबको डिज़ाइन किया है, उसी ने इस डिज़ाइन पर इनको पैदा किया है, वही हर पल इस दुनिया में नित नई चीज़ें बना-बनाकर इस तरह ला

وَاِنْ تَعُدُّوْا نِعْمَةَ اللّٰهِ لَا تُحْصُوْهَا ۭ اِنَّ اللّٰهَ لَغَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ﴿١٨﴾ وَاللّٰهُ
يَعْلَمُ مَا تُسِرُّوْنَ وَمَا تُعْلِنُوْنَ ﴿١٩﴾ وَالَّذِيْنَ يَدْعُوْنَ مِنْ دُوْنِ اللّٰهِ لَا

बराबर हैं?[16] क्या तुम होश में नही आते? (18) अगर तुम अल्लाह की नेमतों को गिनना चाहो तो गिन नहीं सकते। सच तो यह है कि वह बड़ा ही माफ़ करनेवाला और रहम करनेवाला है,[17] (19) हालाँकि वह तुम्हारे खुले को भी जानता है और छिपे को भी।[18]

(20) और वे दूसरी हस्तियाँ जिन्हें अल्लाह को छोड़कर लोग पुकारते हैं, वे किसी

रहा है कि पूरी स्कीम और उसके इन्तिज़ाम में ज़रा फ़र्क़ नहीं आता, और वही ज़मीन से लेकर आसमानों तक इस शानदार कारख़ाने को चला रहा है। एक बेवक़ूफ़ या एक हठधर्म के सिवा और कौन यह कह सकता है कि यह सब कुछ एक इत्तिफ़ाक़ी हादिसा है? या यह कि इस कमाल दर्जे की मुनज़्ज़म (सुव्यवस्थित), एक-दूसरे से जुड़ी बँधी हुई और सन्तुलित कायनात के अलग-अलग काम या अलग-अलग हिस्से, अलग-अलग ख़ुदाओं के बनाए हुए और अलग-अलग ख़ुदाओं के इन्तिज़ाम के तहत हैं?

16. यानी अगर तुम यह मानते हो (जैसा कि हक़ीक़त में मक्का के इस्लाम-दुश्मन भी मानते थे और दुनिया के दूसरे मुशरिक भी मानते हैं) कि पैदा करनेवाला अल्लाह ही है और इस कायनात के अन्दर तुम्हारे ठहराए हुए साझीदारों में से किसी का कुछ भी पैदा किया हुआ नही हैं, तो फिर कैसे हो सकता है ख़ालिक़ (पैदा करनेवाले) के बनाए हुए निज़ाम में उन हस्तियों की हैसियत, जिन्होंने कुछ भी पैदा नहीं किया, ख़ुद पैदा करनेवाले के बराबर या किसी तरह उसके जैसी हो? किस तरह मुमकिन है कि अपनी बनाई हुई कायनात में जो इख़्तियारात पैदा करनेवाले के हैं वही न पैदा करनेवालों के भी हों, और अपने पैदा किए हुए जानदारों और दूसरी चीज़ों पर जो हक़ पैदा करनेवाले को हासिल हैं वही हक़ न पैदा करनेवालों को भी हासिल हों? कैसे माना जा सकता है कि पैदा करनेवाले और न पैदा करनेवाले की सिफ़ात (गुण) एक जैसी होंगी, या वे एक क़िस्म के लोग होंगे, यहाँ तक कि उनके बीच बाप और औलाद का रिश्ता होगा?

17. पहले और दूसरे जुमले के दरमियान एक पूरी दास्तान अनकही छोड़ दी है, इसलिए कि वह इतनी ज़्यादा खुली हुई है कि उसके बयान की ज़रूरत नहीं। उसकी तरफ़ सिर्फ़ यह हल्का-सा इशारा ही काफ़ी है कि अल्लाह के बेहिसाब एहसानों का ज़िक्र करने के फ़ौरन बाद उसके ग़फ़ूर (माफ़ कर देनेवाला) और रहीम (रहम करनेवाला) होने का ज़िक्र कर दिया जाए। इसी से मालूम हो जाता है कि जिस इनसान का बाल-बाल अल्लाह के एहसानों में बँधा हुआ है वह अपने एहसान करनेवाले की नेमतों का जवाब कैसी-कैसी नमक-हरामियों बेवफ़ाइयों, ग़द्दारियों और सरकशियों से दे रहा है और फिर उसका मुहसिन कैसा रहमदिल और नर्मदिल है कि इन सारी हरकतों के बावजूद कई सालों तक एक नमकहराम शख़्स को और सैकड़ों सालों तक एक

يَخْلُقُوْنَ شَيْـًٔا وَّهُمْ يُخْلَقُوْنَ ۝٢٠ اَمْوَاتٌ غَيْرُ اَحْيَآءٍ ۚ وَمَا يَشْعُرُوْنَ ۙ
اَيَّانَ يُبْعَثُوْنَ ۝٢١ اِلٰـهُكُمْ اِلٰهٌ وَّاحِدٌ ۚ فَالَّذِيْنَ لَا يُؤْمِنُوْنَ بِالْاٰخِرَةِ

ع ٢ ١٢ ٨

चीज़ को भी पैदा करनेवाली नहीं हैं, बल्कि ख़ुद पैदा की हुई हैं। (21) मुर्दा हैं, न कि ज़िन्दा। और उनको कुछ मालूम नहीं है कि उन्हें कब (दोबारा ज़िन्दा करके) उठाया जाएगा।[19]

(22) तुम्हारा ख़ुदा बस एक ही ख़ुदा है। मगर जो लोग आख़िरत को नहीं मानते

बग़ावत करनेवाली क़ौम को अपनी नेमतों से नवाज़ता चला जाता है। यहाँ वे भी देखने में आते हैं जो किसी पैदा करनेवाले के वुजूद ही का खुल्लम-खुल्ला इनकार करते हैं और फिर भी नेमतों से मालामाल हुए जा रहे हैं। वे भी पाए जाते हैं जो पैदा करनेवाले के वुजूद, सिफ़ात (गुण) इख़्तियारों, हक़ों सबमें न पैदा करनेवाली हस्तियों को उसका साझी ठहरा रहे हैं और नेमतें देनेवाले की नेमतों का शुक्रिया नेमतें न देनेवालों को अदा कर रहे हैं, फिर भी नेमत देनेवाला हाथ नेमत देने से नहीं रुकता। वे भी हैं जो ख़ालिक़ को पैदा करनेवाला और नेमतें देनेवाला मानने के बावजूद उसके मुक़ाबले में सरकशी व नाफ़रमानी ही को अपनी आदत और उसकी फ़रमाँबरदारी से आज़ादी ही को अपना तरीक़ा बनाए रखते हैं, फिर भी तमाम उम्र उसके बेहद व बेहिसाब एहसानों का सिलसिला उनपर जारी रहता है।

18. यानी कोई बेवक़ूफ़ यह न समझे कि ख़ुदा के इनकार, उसका साझी ठहराने और गुनाह करने के बावजूद नेमतों का सिलसिला बन्द न होना कुछ इस वजह से है कि अल्लाह को लोगों के करतूतों की ख़बर नहीं है। यह कोई अंधी बाँट और ग़लत मेहरबानी नहीं है जो अनजाने में हो रही हो। यह तो वह बर्दाश्त और अनदेखी करना है जो मुजरिमों के छिपे भेदों बल्कि दिल की छिपी हुई नीयतों तक से वाक़िफ़ होने के बावजूद किया जा रहा है, और यह वह फ़ैयाज़ी (दानशीलता) और दिल की कुशादगी है जो कि सारे जहान के रब ही को शोभा देती है

19. ये अलफ़ाज़ साफ़ बता रहे हैं कि यहाँ ख़ासतौर पर जिन बनावटी माबूदों को रद्द किया जा रहा है, वे फ़रिश्ते या जिन्न या शैतान या लकड़ी-पत्थर की मूर्तियाँ नहीं हैं, बल्कि क़ब्र में दफ़न हो चुके लोग हैं। इसलिए कि फ़रिश्ते और शैतान तो ज़िन्दा हैं, उनके लिए "मुर्दा हैं न कि ज़िन्दा" के अलफ़ाज़ इस्तेमाल नहीं किए जा सकते। और लकड़ी और पत्थर की मूर्तियों के मामले में "मौत के बाद उठाए जाने" का कोई सवाल नहीं है, इसलिए "उन्हें कुछ पता नहीं कि वे कब उठाए जाएँगे" के अलफ़ाज़ उन्हें भी बहस से अलग कर देते हैं। अब लाज़मी तौर पर इस आयत में "वे दूसरी हस्तियाँ जिन्हें अल्लाह को छोड़कर लोग पुकारते हैं" से मुराद वे पैग़म्बर, वली, शहीद, नेक लोग और दूसरे ग़ैर-मामूली इनसान ही हैं जिनको उनके हद से ज़्यादा अक़ीदतमन्द (श्रद्धालु) दाता, मुश्किला-कुशा, फ़रियाद-रस, ग़रीब-नवाज़, गंज बख़्श और न जाने

قُلُوْبُهُمْ مُّنْكِرَةٌ وَّهُمْ مُّسْتَكْبِرُوْنَ ﴿٢٢﴾ لَا جَرَمَ اَنَّ اللّٰهَ يَعْلَمُ مَا
يُسِرُّوْنَ وَمَا يُعْلِنُوْنَ ۭ اِنَّهٗ لَا يُحِبُّ الْمُسْتَكْبِرِيْنَ ﴿٢٣﴾ وَاِذَا قِيْلَ لَهُمْ
مَّاذَآ اَنْزَلَ رَبُّكُمْ ۙ قَالُوْٓا اَسَاطِيْرُ الْاَوَّلِيْنَ ﴿٢٤﴾ لِيَحْمِلُوْٓا اَوْزَارَهُمْ

उनके दिलों में इनकार बसकर रह गया है और वे घमंड में पड़ गए हैं।[20] (23) अल्लाह यक़ीनन इनके सब करतूत जानता है, छिपे हुए भी और खुले हुए भी। वह उन लोगों को हरगिज़ पसन्द नहीं करता जो घमंड में पड़े हों।

(24) और[21] जब कोई उनसे पूछता है कि तुम्हारे रब ने यह क्या चीज़ उतारी है तो कहते हैं, "अजी, वे तो अगले वक़्तों की घिसी-पिटी कहानियाँ हैं।"[22] (25) ये बातें वे

क्या-क्या ठहराकर अपनी ज़रूरतें पूरी करने के लिए पुकारना शुरू कर देते हैं। इसके जवाब में अगर कोई यह कहे कि अरब में इस तरह के माबूद नहीं पाए जाते थे तो हम अर्ज़ करेंगे कि यह अरब में पाई जानेवाली जाहिलियत के इतिहास से उसके वाक़िफ़ न होने का सुबूत है। कौन पढ़ा-लिखा नहीं जानता है कि अरब के कई क़बीले, रबीआ, कल्ब, तग़लिब, क़ुज़ाआ, किनाना, हर्स, कअ्ब, किन्दा वग़ैरह में बहुत ज़्यादा तादाद में ईसाई और यहूदी पाए जाते थे, और ये दोनों मज़हब बुरी तरह पैग़म्बरों, वलियों और शहीदों की इबादत में पड़े हुए थे। फिर अरब के ज़्यादातर नहीं तो बहुत-से माबूद वे गुज़रे हुए इनसान ही थे जिन्हें बाद की नस्लों ने ख़ुदा बना लिया था। बुख़ारी में इब्ने-अब्बास (रज़ि.) की रिवायत है कि वद्द, सुवाअ, यग़ूस, यऊक़, नस्र ये सब नेक लोगों के नाम हैं जिन्हें बाद के लोग बुत बना बैठे। हज़रत आइशा (रज़ि.) की रिवायत है कि 'इसाफ़' और 'नाइला' दोनों इनसान थे। इसी तरह की रिवायतें 'लात' और 'मुनात' और 'उज़्ज़ा' के बारे में भी मौजूद हैं और मुशरिकों का यह अक़ीदा भी रिवायतों में आया है कि 'लात' और 'उज़्ज़ा' अल्लाह के ऐसे प्यारे थे कि अल्लाह जाड़ा लात के यहाँ और गर्मी 'उज़्ज़ा' के यहाँ गुज़ारते थे। (अल्लाह उन बुराइयों से पाक है जो ये लोग बयान करते हैं।)

20. यानी आख़िरत के इनकार ने उनको इतना ज़्यादा ग़ैर-ज़िम्मेदार, बेफ़िक्र और दुनिया की ज़िन्दगी में मस्त बना दिया है कि अब उन्हें किसी हक़ीक़त का इनकार कर देने में डर नहीं रहा, किसी सच्चाई की उनके दिल में क़द्र बाक़ी नहीं रही, किसी अख़लाक़ी बन्दिश को अपने मन पर बरदाश्त करने के लिए वे तैयार नहीं रहे, और उन्हें यह पता लगाने की परवाह ही नहीं रही कि जिस तरीक़े पर वे चल रहे हैं वह सही है या नहीं।

21. यहाँ से तक़रीर का रुख़ दूसरी तरफ़ फिरता है। नबी (सल्ल.) की दावत के मुक़ाबले में जो शरारतें मक्का के इस्लाम दुश्मनों की तरफ़ से हो रही थीं, जो हुज्जतें नबी (सल्ल.) के ख़िलाफ़ पेश की जा रही थीं, जो हीले और बहाने ईमान न लाने के लिए गढ़े जा रहे थे, जो एतिराज़

كَامِلَةً يَّوْمَ الْقِيٰمَةِ ۙ وَمِنْ اَوْزَارِ الَّذِيْنَ يُضِلُّوْنَهُمْ بِغَيْرِ عِلْمٍ ؕ اَلَا
سَآءَ مَا يَزِرُوْنَ ﴿٢٥﴾ قَدْ مَكَرَ الَّذِيْنَ مِنْ قَبْلِهِمْ فَاَتَى اللّٰهُ بُنْيَانَهُمْ
مِّنَ الْقَوَاعِدِ فَخَرَّ عَلَيْهِمُ السَّقْفُ مِنْ فَوْقِهِمْ وَاَتٰىهُمُ الْعَذَابُ
مِنْ حَيْثُ لَا يَشْعُرُوْنَ ﴿٢٦﴾ ثُمَّ يَوْمَ الْقِيٰمَةِ يُخْزِيْهِمْ وَيَقُوْلُ اَيْنَ
شُرَكَآءِيَ الَّذِيْنَ كُنْتُمْ تُشَآقُّوْنَ فِيْهِمْ ؕ قَالَ الَّذِيْنَ اُوْتُوا الْعِلْمَ اِنَّ

इसलिए करते हैं कि क़ियामत के दिन अपने बोझ भी पूरे उठाएँ और साथ-साथ कुछ लोगों के बोझ भी समेटें जिन्हें ये जहालत की वजह से गुमराह कर रहे हैं। देखो, कैसी सख़्त ज़िम्मेदारी है जो यह अपने लिए ले रहे हैं। (26) इनसे पहले भी बहुत-से लोग (हक़ को नीचा दिखाने के लिए) ऐसी ही मक्कारियाँ कर चुके हैं, तो देख लो कि अल्लाह ने उनकी चालों की इमारत जड़ से उखाड़ फ़ेंकी और उसकी छत ऊपर से उनके सिर पर आ रही और ऐसी तरफ़ से उनपर अज़ाब आया, जिधर से उसके आने का उनको गुमान तक न था। (27) फिर क़ियामत के दिन अल्लाह उन्हें रुसवा करेगा और उनसे कहेगा, "बताओ अब कहाँ हैं मेरे वे शरीक जिनके लिए तुम (हक़ को माननेवालों से) झगड़े किया करते थे?"— जिन लोगों[23] को दुनिया में इल्म हासिल था वे कहेंगे, "आज रुसवाई

नबी (सल्ल.) पर किए जा रहे थे, उनको एक-एक करके लिया जाता है और उनपर समझाया और डाँटा जाता है और नसीहत की जाती है।

22. नबी (सल्ल.) की दावत (पैग़ाम) की चर्चा जब चारों तरफ़ फैली तो मक्का के लोग जहाँ कहीं जाते थे उनसे पूछा जाता था कि तुम्हारे यहाँ जो साहब नबी बनकर उठे हैं ये क्या तालीम देते हैं? क़ुरआन किस तरह की किताब है? इसमें क्या बातें बयान की गई हैं? वग़ैरह-वग़ैरह। इस तरह के सवालों का जवाब मक्का के इस्लाम दुश्मन हमेशा ऐसे अलफ़ाज में देते थे जिनसे पूछनेवाले के दिल में नबी (सल्ल.) और आपकी लाई हुई किताब (क़ुरआन) के बारे में कोई न कोई शक बैठ जाए, या कम से कम उसको आपके और आपकी नुबूवत के मामले से कोई दिलचस्पी बाक़ी न रहे।

23. पहले जुमले और दूसरे जुमले के बीच एक लतीफ़ ख़ला (सूक्ष्म रिक्तता) है जिसे सुननेवाले का ज़ेहन थोड़े ग़ौर-फ़िक्र से ख़ुद भर सकता है। इसकी तफ़सील यह है कि जब अल्लाह तआला यह सवाल करेगा तो सारे हश्र के मैदान में एक सन्नाटा छा जाएगा। इनकार करनेवालों और

الْخِزْيَ الْيَوْمَ وَالسُّوْءَ عَلَى الْكٰفِرِيْنَ ﴿٢٧﴾ الَّذِيْنَ تَتَوَفّٰىهُمُ الْمَلٰٓئِكَةُ
ظَالِمِيْٓ اَنْفُسِهِمْ ۖ فَاَلْقَوُا السَّلَمَ مَا كُنَّا نَعْمَلُ مِنْ سُوْٓءٍ ؕ بَلٰٓى اِنَّ اللّٰهَ
عَلِيْمٌۢ بِمَا كُنْتُمْ تَعْمَلُوْنَ ﴿٢٨﴾ فَادْخُلُوْٓا اَبْوَابَ جَهَنَّمَ خٰلِدِيْنَ فِيْهَا ؕ
فَلَبِئْسَ مَثْوَى الْمُتَكَبِّرِيْنَ ﴿٢٩﴾ وَقِيْلَ لِلَّذِيْنَ اتَّقَوْا مَاذَآ اَنْزَلَ

और बदनसीबी है हक़ का इनकार करनेवालों के लिए।" (28) हाँ[24], उन्हीं इनकार करनेवालों के लिए जो अपने ऊपर ज़ुल्म करते हुए जब फ़रिश्तों के हाथों गिरफ़्तार होते हैं[25] तो (सरकशी छोड़कर) फ़ौरन डगें डाल देते हैं और कहते हैं, "हम तो कोई क़ुसूर नहीं कर रहे थे।" फ़रिश्ते ज़वाब देते हैं, "कर कैसे नहीं रहे थे! अल्लाह तुम्हारे करतूतों को ख़ूब जानता है। (29) अब जाओ, जहन्नम के दरवाज़ों में घुस जाओ। वहीं तुम्हें हमेशा रहना है।"[26] बस सच्चाई तो यह है कि बहुत ही बुरा ठिकाना है घमंडियों के लिए।

(30) दूसरी तरफ़ जब अल्लाह का डर रखनेवालों से पूछा जाता है कि यह क्या

शिर्क करनेवालों की ज़बानें बन्द हो जाएँगी। उनके पास इस सवाल का कोई जवाब न होगा। इसलिए वे अपनी साँसे थामकर रह जाएँगे और इल्म रखनेवालों के बीच आपस में ये बातें होंगी।

24. यह जुमला इल्म रखनेवालों की बात पर इज़ाफ़ा (वृद्धि) करते हुए अल्लाह तआला ख़ुद तशरीह के तौर पर फ़रमा रहा है। जिन लोगों ने इसे भी इल्मवालों ही की बात समझा है उन्हें बड़े घुमाव-फ़िराव से बात बनानी पड़ी है और फिर भी बात पूरी नहीं बन सकी है।

25. यानी जब मौत के वक़्त फ़रिश्ते उनकी रूहें उनके जिस्म से निकालकर अपने क़ब्ज़े में ले लेते हैं।

26. यह आयत और इसके बादवाली आयत, जिसमें रूह निकालने के बाद परहेज़गारों और फ़रिश्तों की बातचीत का ज़िक्र है, क़ुरआन मजीद की उन बहुत-सी आयतों में से है जो साफ़ तौर पर क़ब्र के अज़ाब व सवाब का सुबूत देती हैं। हदीस में 'क़ब्र' का लफ़्ज़ मजाज़ी तौर पर (लाक्षणिक रूप में) 'आलमे-बरज़ख़' के लिए इस्तेमाल हुआ है, और इससे मुराद वह आलम है जिसमें मौत की आख़िरी हिचकी से लेकर मौत के बाद उठाए जाने के पहले झटके तक इनसानी रूहें रहेंगी। हदीस को न माननेवालों का पूरा ज़ोर इस बात पर है कि यह आलम बिलकुल शून्य जैसा होगा जिसमें कोई एहसास और शुऊर (चेतना) न होगा और किसी क़िस्म का अज़ाब या सवाब न होगा। लेकिन यहाँ देखिए कि इनकार करनेवालों की रूहें जब निकाली जाती हैं तो वे

मौत की सरहद के पार का हाल बिलकुल अपनी उम्मीदों के ख़िलाफ़ पाकर हैरान रह जाती हैं और फ़ौरन सलाम ठोंककर फ़रिश्तों को यक़ीन दिलाने की कोशिश करती हैं कि हम कोई बुरा काम नहीं कर रहे थे। जवाब में फ़रिश्ते उनको डाँट बताते हैं और जहन्नम में डाले जाने की पहले से ख़बर देते हैं। दूसरी तरफ़ परहेज़गारों और नेक लोगों की रूहें जब निकाली जाती हैं तो फ़रिश्ते उनको सलाम करते हैं और जन्नती होने की पेशगी मुबारकबाद देते हैं। क्या बरज़ख़ की ज़िन्दगी, एहसास, शुऊर, अज़ाब और सवाब का इससे भी ज़्यादा खुला हुआ कोई सुबूत चाहिए? इसी से मिलता-जुलता मज़मून सूरा-14 निसा, आयत-97 में गुज़र चुका है, जहाँ हिजरत न करनेवाले मुसलमानों से रूह निकालने के बाद फ़रिश्तों की बात-चीत का ज़िक्र आया है और इन सबसे ज़्यादा साफ़ अलफ़ाज़ में बरज़ख़ के अज़ाब का बयान सूरा-40 मोमिन, आयत-45, 46 में किया गया है जहाँ अल्लाह तआला फ़िरऔन और फ़िरऔन के लोगों के बारे में फ़रमाता है कि "एक सख़्त अज़ाब उनको घेरे हुए है, यानी सुबह-शाम वे आग के सामने पेश किए जाते हैं, फिर जब क़ियामत की घड़ी आ जाएगी तो हुक्म दिया जाएगा कि फ़िरऔन के लोगों को ज़्यादा सख़्त अज़ाब में दाख़िल करो।"

हक़ीक़त यह है कि क़ुरआन और हदीस, दोनों से मौत और क़ियामत के बीच की हालत का एक ही नक़्शा मालूम होता है, और वह यह है कि मौत सिर्फ़ जिस्म व रूह के अलग होने का नाम है, न कि बिलकुल ही वुजूद मिट जाने का। जिससे अलग हो जाने के बाद रूह मिट नहीं जाती बल्कि उस पूरी शख़्सियत के साथ ज़िन्दा रहती है, जो दुनिया की ज़िन्दगी के तजरिबों और ज़ेहनी व अख़्लाक़ी कमाइयों से बनी थी। इस हालत में रूह के शुऊर, एहसास, जायज़ों और तजरिबों की कैफ़ियत ख़्वाब से मिलती-जुलती होती है। एक मुजरिम रूह से फ़रिश्तों की पूछ-गच्छ और फिर उसका अज़ाब और तकलीफ़ में मुब्तला होना और दोज़ख़ के सामने पेश किया जाना, सब कुछ उस कैफ़ियत से मिलता-जुलता होता है जो एक क़त्ल के मुजरिम पर फाँसी की तारीख़ से एक दिन पहले एक डरावने ख़्वाब की शक्ल में गुज़रती होगी। इसी तरह एक पाकीज़ा रूह का इस्तिक़बाल, और फिर उसका जन्नत की ख़ुशख़बरी सुनना और उसका जन्नत की हवाओं और ख़ुशबुओं से फ़ायदा उठाना, यह सब भी उस नौकर के ख़्वाब से मिलता-जुलता होगा जो अच्छी कारगुज़ारी के बाद सरकारी बुलावे पर हेड क्वार्टर में हाज़िर हुआ हो और मुलाक़ात के वादे की तारीख़ से एक दिन पहले आइंदा मिलनेवाले इनामों से भरा एक सुहाना सपना देख रहा हो। यह सपना दूसरा सूर (नरसिंघा) फूँके जाने से एकदम टूट जाएगा और एकाएक हश्र के मैदान में अपने आपको जिस्म व रूह के साथ ज़िन्दा पाकर मुजरिम हैरत से कहेंगे कि "अरे यह कौन हमें हमारे सोने की जगह से उठा लाया?" मगर ईमानवाले पूरे इत्मीनान से कहेंगे कि "यह वही चीज़ है जिसका रहमान ने वादा किया था और रसूलों का बयान सच्चा था।" मुजरिमों को उस वक़्त फ़ौरी तौर पर यह महसूस होगा कि वे अपने सोने की जगह में (जहाँ मौत के बिस्तर पर उन्होंने दुनिया में जान दी थी) शायद कोई एक घंटा भर सोए होंगे और अब अचानक इस हादिसे से आँखे खुलते ही कहीं भागे चले जा रहे हैं। मगर ईमानवाले दिल के पूरे इत्मीनान के साथ कहेंगे कि "अल्लाह के दफ़्तर में तो तुम हश्र के दिन तक ठहरे रहे हो और यही हश्र का दिन है मगर तुम इस चीज़ को जानते न थे।"

رَبُّكُمْ قَالُوْا خَيْرًا ۭ لِلَّذِيْنَ اَحْسَنُوْا فِيْ هٰذِهِ الدُّنْيَا حَسَنَةٌ ۭ وَلَدَارُ
الْاٰخِرَةِ خَيْرٌ ۭ وَلَنِعْمَ دَارُ الْمُتَّقِيْنَ ۝٣٠ جَنّٰتُ عَدْنٍ يَّدْخُلُوْنَهَا
تَجْرِيْ مِنْ تَحْتِهَا الْاَنْهٰرُ لَهُمْ فِيْهَا مَا يَشَاۗءُوْنَ ۭ كَذٰلِكَ يَجْزِي اللّٰهُ
الْمُتَّقِيْنَ ۝٣١ الَّذِيْنَ تَتَوَفّٰىهُمُ الْمَلٰۗىِٕكَةُ طَيِّبِيْنَ ۙ يَقُوْلُوْنَ سَلٰمٌ
عَلَيْكُمُ ۙ ادْخُلُوا الْجَنَّةَ بِمَا كُنْتُمْ تَعْمَلُوْنَ ۝٣٢

चीज़ है जो तुम्हारे रब की तरफ़ से उतरी है? तो वे जवाब देते हैं कि "बेहतरीन चीज़ उतरी है।"[27] इस तरह के नेक काम करनेवालों के लिए इस दुनिया में भी भलाई है और आख़िरत का घर तो ज़रूर ही उनके हक़ में बेहतर है। बड़ा अच्छा घर है मुत्तक़ियों (परहेज़गारों) का, (31) हमेशा रहने की जन्नतें जिनमें वे दाख़िल होंगे, नीचे नहरें बह रही होंगी और सब कुछ वहाँ ठीक उनकी ख़ाहिश के मुताबिक़ होगा।[28] यह बदला देता है अल्लाह मुत्तक़ियों को, (32) उन मुत्तक़ियों को जिनकी रूहें पाकीज़गी की हालत में जब फ़रिश्ते निकालते हैं तो कहते हैं, "सलाम हो तुमपर, जाओ जन्नत में अपने आमाल (कर्मों) के बदले।"

---

27. यानी मक्का से बाहर के लोग जब ख़ुदा से डरनेवाले और सच्चे लोगों से नबी (सल्ल॰) और अपकी लाई हुई तालीम के बारे में सवाल करते हैं तो उनका जवाब झूठे और बेईमान इस्लाम-दुश्मनों के जवाब से बिलकुल अलग होता है। वे झूठा प्रोपगण्डा नहीं करते। वे आम लोगों को बहकाने और ग़लफ़हमियों में डालने की कोशिश नहीं करते। वे नबी (सल्ल॰) की और आपकी लाई हुई तालीम की तारीफ़ करते हैं और लोगों को सही सूरतेहाल से बाख़बर करते हैं।
28. यह है जन्नत की अस्ल तारीफ़ (परिचय)। वहाँ इनसान जो कुछ चाहेगा वही उसे मिलेगा और कोई चीज़ उसकी मर्ज़ी और पसन्द के ख़िलाफ़ न होगी। दुनिया में किसी रईस, किसी मालदार से मालदार, किसी बड़े से बड़े बादशाह को भी यह नेमत कभी हासिल नहीं हुई है और न यहाँ उसके मिलने का कोई इमकान है। मगर जन्नत में रहनेवाले हर शख़्स को आराम व ख़ुशी का यह इन्तिहाइ दर्जा हासिल होगा कि उसकी ज़िन्दगी में हर वक़्त हर तरफ़ सब कुछ उसकी ख़ाहिश और पसन्द के बिलकुल मुताबिक़ होगा। उसका हर अरमान निकलेगा। उसकी हर आरज़ू पूरी होगी, उसकी हर चाहत अमल में आकर रहेगी।

هَلْ يَنْظُرُوْنَ اِلَّآ اَنْ تَاْتِيَهُمُ الْمَلٰٓئِكَةُ اَوْ يَاْتِيَ اَمْرُ رَبِّكَ ؕ كَذٰلِكَ
فَعَلَ الَّذِيْنَ مِنْ قَبْلِهِمْ ؕ وَمَا ظَلَمَهُمُ اللّٰهُ وَلٰكِنْ كَانُوْٓا اَنْفُسَهُمْ
يَظْلِمُوْنَ ﴿۳۳﴾ فَاَصَابَهُمْ سَيِّاٰتُ مَا عَمِلُوْا وَحَاقَ بِهِمْ مَّا كَانُوْا بِهٖ
يَسْتَهْزِءُوْنَ ﴿۳۴﴾ وَقَالَ الَّذِيْنَ اَشْرَكُوْا لَوْ شَآءَ اللّٰهُ مَا عَبَدْنَا مِنْ ع
دُوْنِهٖ مِنْ شَيْءٍ نَّحْنُ وَلَآ اٰبَآؤُنَا وَلَا حَرَّمْنَا مِنْ دُوْنِهٖ مِنْ شَيْءٍ ؕ

---

(33) ऐ नबी! अब जो ये लोग इन्तिज़ार कर रहे हैं तो इसके सिवा अब और क्या बाक़ी रह गया है कि फ़रिश्ते ही आ पहुँचें, या तेरे रब का फ़ैसला लागू हो जाए?[29] इसी तरह की ढिठाई इनसे पहले बहुत-से लोग कर चुके हैं। फिर जो कुछ उनके साथ हुआ वह उनपर अल्लाह का ज़ुल्म न था, बल्कि उनका अपना ज़ुल्म था जो उन्होंने ख़ुद अपने ऊपर किया। (34) उनके करतूतों की ख़राबियाँ आख़िरकार उनके सिर आ लगीं और वही चीज़ उनपर छाकर रही जिसकी वे हँसी उड़ाया करते थे।

(35) ये मुशरिक (अल्लाह का शरीक ठहरानेवाले।) कहते हैं, "अगर अल्लाह चाहता तो न हम और न हमारे बाप-दादा उसके सिवा किसी और की इबादत करते और न उसके हुक्म के बिना किसी चीज़ को हराम ठहराते[30]।" ऐसे ही बहाने इनसे पहले के

---

29. ये चन्द बातें नसीहत और ख़बरदार करने के लिए कही जा रही हैं। मतलब यह है कि जहाँ तक समझाने का ताल्लुक़ था, तुमने एक-एक हक़ीक़त पूरी तरह खोलकर समझा दी, दलीलों से उसका सुबूत दे दिया। कायनात के पूरे निज़ाम से उसकी गवाहियाँ पेश कर दीं। किसी समझदार आदमी के लिए शिर्क पर जमे रहने की कोई गुंजाइश नहीं छोड़ी। अब ये लोग एक साफ़-सीधी बात को मान लेने में क्यों झिझक रहे हैं? क्या इसका इन्तिज़ार कर रहे हैं कि मौत का फ़रिश्ता सामने आ खड़ा हो, तो ज़िन्दगी के आख़िरी लम्हे में मानेंगे? या ख़ुदा का अज़ाब सिर पर आ जाए तो उसकी पहली चोट खा लेने के बाद मानेंगे?
30. मुशरिकों की इस हुज्जत (कुतर्क) को सूर-6 अनआम, आयत-148, 149 में भी नक़्ल करके इसका जवाब दिया गया है। वह जगह और उसके हाशिए अगर निगाह में रहें तो समझने में ज़्यादा आसानी होगी। (देखें—सूरा-6 अनआम, हाशिए-124 से 126)

كَذٰلِكَ فَعَلَ الَّذِيْنَ مِنْ قَبْلِهِمْ ۚ فَهَلْ عَلَى الرُّسُلِ اِلَّا الْبَلٰغُ
الْمُبِيْنُ ۝ وَلَقَدْ بَعَثْنَا فِيْ كُلِّ اُمَّةٍ رَّسُوْلًا اَنِ اعْبُدُوا اللّٰهَ
وَاجْتَنِبُوا الطَّاغُوْتَ ۚ فَمِنْهُمْ مَّنْ هَدَى اللّٰهُ وَمِنْهُمْ مَّنْ حَقَّتْ

लोग भी बनाते[31] रहे हैं। तो क्या रसूलों पर साफ़-साफ़ बात पहुँचा देने के सिवा और भी कोई ज़िम्मेदारी है? (36) हमने हर उम्मत (समुदाय) में एक रसूल भेज दिया और उसके ज़रिये से सबको ख़बरदार कर दिया कि "अल्लाह की बन्दी करो और ताग़ूत (बढ़े हुए नाफ़रमान) की बन्दगी से बचो।"[32] इसके बाद इनमें से किसी को अल्लाह ने सीधा

31. यानी यह कोई नई बात नहीं है कि आज तुम लोग अल्लाह की मर्ज़ी को अपनी गुमराही और बुरे कामों के लिए दलील बना रहे हो। यह तो बड़ी पुरानी दलील है जिसे हमेशा से बिगड़े हुए लोग अपने आपको धोखा देने और नसीहत करनेवालों का मुँह बन्द करने के लिए इस्तेमाल करते रहे हैं। यह मुशरिकों की हुज्जत का पहला जवाब है। इस जवाब का पूरा मज़ा उठाने के लिए यह बात ज़ेहन में रहनी ज़रूरी है कि अभी कुछ लाइनों पहले मुशरिकों के उस प्रोपगण्डे का ज़िक्र गुज़र चुका है, जो वे क़ुरआन के ख़िलाफ़ यह कह-कहकर किया करते थे कि "अजी, वे तो पुराने वक़्तों की घिसी-पिटी कहानियाँ है।" मानो उनको नबी पर एतिराज़ यह था कि यह साहब नई बात कौन-सी लाए हैं वही पुरानी बातें दोहरा रहे हैं जो नूह (अलैहि॰) के ज़माने में आए हुए तूफ़ान के वक़्त से लेकर आजतक हज़ारों बार कही जा चुकी हैं। इसके जवाब में यहाँ उनकी दलील (जिसे वे बड़े ज़ोर की दलील समझते हुए पेश करते थे) का ज़िक्र करने के बाद यह हल्का-सा इशारा किया गया है कि लोगो! आप ही कौन से मॉडर्न हैं, यह शानदार दलील जो आप लाए हैं इसमें बिलकुल कोई नई बात नहीं है, वही घिसी-पिटी बात है जो हज़ारों सालों से गुमराह लोग कहते चले आ रहे हैं, आपने भी उसी को दोहरा दिया है।

32. यानी तुम अपने शिर्क और अपने इख़्तियार से चीज़ों को हलाल-हराम ठहराने के हक़ में हमारी मर्ज़ी को जाइज़ होने की दलील कैसे बता सकते हो, जबकि हमने हर उम्मत में अपने रसूल भेजे और उनके ज़रिए से लोगों को साफ़-साफ़ बता दिया कि तुम्हारा काम सिर्फ़ हमारी बन्दगी करना है, ताग़ूत की बन्दगी के लिए तुम पैदा नहीं किए गए हो। इसी तरह जबकि हम पहले ही मुनासिब ज़रिओं से तुमको बता चुके हैं कि तुम्हारी इन गुमराहियों को हमारी रिज़ा (ख़ुशी) हासिल नहीं है, तो इसके बाद हमारी मशीयत (वक़्ती छूट) की आड़ लेकर तुम्हारा अपनी गुमराहियों को जाइज़ ठहराना साफ़ तौर पर यह मतलब रखता है कि तुम चाहते थे कि हम समझानेवाले रसूल भेजने के बजाय ऐसे रसूल भेजते जो हाथ पकड़कर तुमको ग़लत रास्तों से खींच लेते और ज़बरदस्ती तुम्हें सीधे रास्ते पर चलनेवाला बनाते। (मशीयत और रिज़ा के फ़र्क़ को समझने के लिए देखें—सूरा-6 अनआम, हाशिया-80 सूरा-39 ज़ुमर, हाशिया-20)

عَلَيْهِ الضَّلٰلَةُ ؕ فَسِيْرُوْا فِي الْاَرْضِ فَانْظُرُوْا كَيْفَ كَانَ عَاقِبَةُ
الْمُكَذِّبِيْنَ ۝٣٦ اِنْ تَحْرِصْ عَلٰى هُدٰىهُمْ فَاِنَّ اللّٰهَ لَا يَهْدِيْ مَنْ يُّضِلُّ
وَمَا لَهُمْ مِّنْ نّٰصِرِيْنَ ۝٣٧ وَاَقْسَمُوْا بِاللّٰهِ جَهْدَ اَيْمَانِهِمْ ۙ لَا يَبْعَثُ اللّٰهُ
مَنْ يَّمُوْتُ ؕ بَلٰى وَعْدًا عَلَيْهِ حَقًّا وَّلٰكِنَّ اَكْثَرَ النَّاسِ لَا يَعْلَمُوْنَ ۝٣٨
لِيُبَيِّنَ لَهُمُ الَّذِيْ يَخْتَلِفُوْنَ فِيْهِ وَلِيَعْلَمَ الَّذِيْنَ كَفَرُوْٓا اَنَّهُمْ كَانُوْا

रास्ता दिखाया और किसी पर गुमराही छा गई।[33] फिर ज़रा ज़मीन में चल-फिरकर देख लो कि झुठलानेवालों का क्या अंजाम हो चुका है[34] —— (37) ऐ नबी! तुम चाहे इनकी हिदायत के लिए कितने ही हरीस (लालायित) हो, मगर अल्लाह जिसको भटका देता है फिर उसे रास्ता नहीं दिखाया करता और इस तरह के लोगों की मदद कोई नहीं कर सकता।

(38) ये लोग अल्लाह के नाम से कड़ी-कड़ी क़समें खाकर कहते हैं कि "अल्लाह किसी मारनेवाले को फिर से ज़िन्दा करके न उठाएगा" —— उठाएगा क्यों नहीं! यह तो एक वादा है जिसे पूरा करना उसने अपने लिए ज़रूरी कर लिया है, मगर ज़्यादातर लोग जानते नहीं हैं। (39) और ऐसा होना इसलिए ज़रूरी है कि अल्लाह इनके सामने उस हक़ीक़त को खोल दे जिसके बारे में ये इख़्तिलाफ़ कर रहे हैं और हक़ (सत्य) के

33. यानी हर पैग़म्बर के आने के बाद उसकी क़ौम दो हिस्सों में बँट गई। कुछ लोगों ने उसकी बात मानी (और यह मान लेना अल्लाह की तौफ़ीक़ से था) और कुछ लोग अपनी गुमराही पर जमे रहे। (और ज़्यादा तशरीह के लिए देखें—सूरा 6 अनआम, हाशिया-28)

34. यानी तजरिबे से बढ़कर सच्चाई का पता लगाने के लिए भरोसे के क़ाबिल कसौटी और कोई नहीं है। अब तुम ख़ुद देख लो कि इनसानी इतिहास के लगातार तजरिबे क्या साबित कर रहे हैं। अल्लाह का अज़ाब फ़िरऔन और फ़िरआनियों पर आया या बनी-इसराईल पर? सालेह (अलैहि॰) के झुठलानेवालों पर आया था माननेवालो पर? हूद (अलैहि॰) और नूह (अलैहि॰) और दूसरे पैग़म्बरों के झुठलानेवालों पर आया या ईमानवालों पर? क्या सचमुच इन ऐतिहासिक तुजरिबों से यही नतीजा निकलता है कि जिन लोगों को हमारी मशीयत ने शिर्क और शरीअत गढ़ने के जुर्म का मौक़ा दिया था उनको हमारी रिज़ा हासिल थी? इसके बरख़िलाफ़ ये वाक़िआत तो साफ़-साफ़ यह साबित कर रहे हैं कि समझाने-बुझाने और नसीहत के बावजूद जो

كٰذِبِيْنَ ۝٣٩ اِنَّمَا قَوْلُنَا لِشَيْءٍ اِذَآ اَرَدْنٰهُ اَنْ نَّقُوْلَ لَهٗ كُنْ فَيَكُوْنُ ۝٤٠ ع

इनकारियों को मालूम हो जाए कि वे झूठे थे।[35] (40) (रहा इसका इमकान तो) हमें किसी चीज़ को वुजूद में लाने के लिए इससे ज़्यादा कुछ नहीं करना होता कि उसे हुक्म दें कि 'हो जा' और बस वह हो जाती है।[36]

लोग इन गुमराहियों पर जमे रहते हैं उन्हें हमारी मशीयत एक हद तक जुर्म का मौक़ा देती चली जाती है और फिर उनकी नाव अच्छी तरह भर जाने के बाद डुबो दी जाती है।

35. यह मरने के बाद की ज़िन्दगी और हश्र क़ायम होने की अक़्ली और अख़लाक़ी ज़रूरत है। दुनिया में जबसे इनसान पैदा हुआ है, हक़ीक़त के बारे में अनगिनत इख़्तिलाफ़ पैदा हुए हैं। इन्हीं इख़्तिलाफ़ात की बुनियाद पर नस्लों और क़ौमों और ख़ानदानों में फूट पड़ी है। इन्हीं की वजह से अलग-अलग नज़रिये रखनेवालों ने अपने अलग-अलग मज़हब अलग समाज बनाए या अपनाए हैं। एक-एक नज़रिये की हिमायत और वकालत में हज़ारों-लाखों आदमियों ने अलग-अलग ज़मानों में जान, माल, आबरू हर चीज़ की बाज़ी लगा दी है। और अनगिनत मौक़े पर उन अलग-अलग नज़रिये को माननेवालों में ऐसी ज़बरदस्त खींच-तान हुई है कि एक ने दूसरे को बिलकुल मिटा देने की कोशिश की है, और मिटनेवाले ने मिटते-मिटते भी अपना नज़रिया नहीं छोड़ा है। अक़्ल चाहती है कि ऐसे अहम और संजीदा इख़्तिलाफ़ों के बारे में कभी तो सही और यक़ीनी तौर पर मालूम हो कि असल में उनके अन्दर हक़ क्या था और बातिल क्या, सीधे रास्ते पर कौन था और ग़लत रास्ते पर कौन। इस दुनिया में तो कोई इमकान इस परदे के उठने का दिखाई नहीं देता। इस दुनिया का निज़ाम ही कुछ ऐसा है कि इसमें हक़ीक़त पर से परदा उठ नहीं सकता। लिहाज़ा लाज़िमी तौर पर अक़्ल के इस तक़ाज़े को पूरा करने के लिए एक दूसरी ही दुनिया चाहिए।

और यह सिर्फ़ अक़्ल का तक़ाज़ा ही नहीं है, बल्कि अख़लाक़ का तक़ाजा भी है; क्योंकि इन इख़्तिलाफ़ात और इन कशमकशों में बहुत-से फ़रीक़ों (पक्षों) ने हिस्सा लिया। किसी ने ज़ुल्म किया है और किसी ने सहा है। किसी ने क़ुरबानियाँ की है और किसी ने उन क़ुरबानियों को वुसूल किया है। हर एक ने अपने नज़रिये के मुताबिक़ एक अख़लाक़ी फ़लसफ़ा (दर्शन) और एक अख़लाक़ी रवैया अपनाया है और उससे अरबों और खरबों इनसानों की ज़िन्दगियाँ बुरे या भले तौर पर मुतास्सिर हुई हैं। आख़िर कोई वक़्त तो होना चाहिए जबकि इन सबका अख़लाक़ी नतीजा इनाम या सज़ा की शक्ल में ज़ाहिर हो। इस दुनिया का निज़ाम अगर सही और पूरे अख़लाक़ी नतीजे ज़ाहिर नहीं कर सकता तो एक दूसरी दुनिया होनी चाहिए जहाँ ये नतीजे ज़ाहिर हो सकें।

36. यानी लोग समझते हैं कि मरने के बाद इनसान को दोबारा पैदा करना और तमाम अगले-पिछले इनसानों को एक साथ ज़िन्दा करके उठाना कोई बड़ा ही मुश्किल काम है। हालाँकि अल्लाह की क़ुदरत का हाल यह है कि वह अपने किसी इरादे को पूरा करने के लिए

وَالَّذِيْنَ هَاجَرُوْا فِي اللّٰهِ مِنْ بَعْدِ مَا ظُلِمُوْا لَنُبَوِّئَنَّهُمْ فِي الدُّنْيَا
حَسَنَةً ۭ وَلَاَجْرُ الْاٰخِرَةِ اَكْبَرُ ۘ لَوْ كَانُوْا يَعْلَمُوْنَ ﴿٤١﴾ الَّذِيْنَ صَبَرُوْا
وَعَلٰي رَبِّهِمْ يَتَوَكَّلُوْنَ ﴿٤٢﴾ وَمَآ اَرْسَلْنَا مِنْ قَبْلِكَ اِلَّا رِجَالًا نُّوْحِيْٓ
اِلَيْهِمْ فَسْــَٔـلُوْٓا اَهْلَ الذِّكْرِ اِنْ كُنْتُمْ لَا تَعْلَمُوْنَ ﴿٤٣﴾ بِالْبَيِّنٰتِ وَالزُّبُرِ ۭ

---

(41) जो लोग ज़ुल्म सहने के बाद अल्लाह के लिए हिजरत कर गए हैं उन्हें हम दुनिया ही में अच्छा ठिकाना देंगे और आख़िरत का बदला तो बहुत बड़ा है।[37] काश, जान लें (42) वे मज़लूम ज़िन्होंने सब्र से काम लिया है और जो अपने रब के भरोसे पर काम कर रहे हैं (कि कैसा अच्छा अंजाम उनका इंतिज़ार कर रहा है)!

(43) ऐ नबी! हमने तुमसे पहले भी जब कभी रसूल भेजे हैं, आदमी ही भेजे हैं जिनकी तरफ़ हम अपने पैग़ामात वह्य किया करते थे।[38] ज़िक्रवालों[39] से पूछ लो अगर तुम लोग ख़ुद नहीं जानते। (44) पिछले रसूलों को भी हमने रौशन निशानियाँ और

किसी सरो-सामान, किसी सबब और ज़रिए और किसी तरह के हालात दुरुस्त होने का मुहताज नहीं है। उसका हर इरादा सिर्फ़ उसके हुक्म से पूरा होता है। उसका हुक्म ही सरो-सामान वुजूद में लाता है। उसके हुक्म ही से असबाबो-वसाइल (साधन और संसाधन) पैदा हो जाते हैं। उसका हुक्म ही उसकी मरज़ी के बिलकुल मुताबिक़ हालात तैयार कर लेता है। इस वक़्त जो दुनिया मौजूद है, यह भी सिर्फ़ हुक्म से वुजूद में आई है और दूसरी दुनिया भी आनन-फ़ानन सिर्फ़ एक हुक्म से वुजूद में आ सकती है।

37. यह इशारा है उन मुहाजिरों की तरफ़ जो इस्लाम दुश्मनों के बरदाश्त न होनेवाले ज़ुल्मों से तंग आकर मक्का से हबशा की तरफ़ हिजरत कर गए थे। आख़िरत का इनकार करनेवालों की बात का जवाब देने के बाद एकाएक हबशा के मुहाजिरों का ज़िक्र छेड़ देने में एक बारीक नुक्ता छिपा हुआ है। इसका मक़सद मक्का के इस्लाम-दुश्मनों को ख़बरदार करना है कि ज़ालमो! ये ज़ुल्म-ज़्यादतियाँ करने के बाद अब तुम समझते हो कि कभी तुमसे पूछ-गच्छ और मज़लूमों की फ़रियाद सुनने का वक़्त ही न आएगा।

38. यहाँ मक्का के मुशरिकों के एक एतिराज़ को नक़्ल किए बिना उसका जवाब दिया जा रहा है। एतिराज़ वही है जो पहले भी तमाम पैग़म्बरों पर हो चुका था और नबी (सल्ल०) के ज़माने के लोगों ने भी आप (सल्ल०) पर कई बार किया था कि तुम हमारी ही तरह के इनसान हो, फिर हम कैसे मान लें कि ख़ुदा ने तुमको पैग़म्बर बनाकर भेजा है।

39. यानी अहले-किताब के उलमा, और वे दूसरे लोग जो चाहे सिक्का बन्द उलमा न हों, मगर

وَاَنْزَلْنَآ اِلَيْكَ الذِّكْرَ لِتُبَيِّنَ لِلنَّاسِ مَا نُزِّلَ اِلَيْهِمْ وَلَعَلَّهُمْ
يَتَفَكَّرُوْنَ ۝٤٤ اَفَاَمِنَ الَّذِيْنَ مَكَرُوا السَّيِّاٰتِ اَنْ يَّخْسِفَ اللّٰهُ بِهِمُ

किताबें देकर भेजा था और अब यह 'ज़िक्र' तुमपर उतारा है, ताकि तुम लोगों के सामने उस तालीम को खोलकर साफ़-साफ़ बयान करते जाओ जो उनके लिए उतारी गई है।[40] और ताकि लोग (ख़ुद भी) सोच-विचार करें।

(45) फिर क्या वे लोग जो (पैग़म्बर की दावत की मुख़ालिफ़त में) बुरी से बुरी चालें

बहरहाल आसमानी किताबों की तालीमात के जानकार और पिछले पैग़म्बरों पर गुज़रे हुए हालात से आगाह हों।

40. तशरीह करना और वज़ाहत करना सिर्फ़ ज़बान ही से नहीं बल्कि अपने अमल से भी, और अपनी रहनुमाई में एक पूरी मुस्लिम सोसायटी बना कर भी, और 'अल्लाह के ज़िक्र' के मंशा के मुताबिक़ उसके निज़ाम को चलाकर भी।

इस तरह अल्लाह तआला ने वह हिक्मत बयान कर दी है जिसका तक़ाज़ा यह था कि लाज़िमन एक इनसान ही को पैग़म्बर बनाकर भेजा जाए। 'ज़िक्र' फ़रिश्तों के ज़रिए से भी भेजा जा सकता था। सीधे तौर पर छापकर एक-एक इनसान तक भी पहुँचाया जा सकता था। मगर सिर्फ़ ज़िक्र भेज देने से वह मक़सद पूरा नहीं हो सकता था जिसके लिए अल्लाह तआला की हिक्मत और रहमत व रबूबियत उसके उतारे जाने का तक़ाजा कर रही थी। उस मक़सद को पूरा करने के लिए ज़रूरी था कि इस 'ज़िक्र' को एक सबसे ज़्यादा क़ाबिल इनसान लेकर आए। वह इसको थोड़ा-थोड़ा करके लोगों के सामने पेश करे। जिनकी समझ में कोई बात न आए उसका मतलब समझाए। जिन्हें कुछ शक हो उनका शक दूर करे। जिन्हें कोई एतिराज़ हो उनके एतिराज़ का जवाब दे। जो न मानें और मुख़ालफ़त करें और रुकावट बनें उनके मुक़ाबले में वह उस तरह का रवैया बरतकर दिखाए जो इस 'ज़िक्र' के माननेवालों की शान के मुताबिक़ है। जो मान लें उन्हें ज़िन्दगी के हर हिस्से और हर पहलू के बारे में हिदायतें दे, उनके सामने ख़ुद अपनी ज़िन्दगी को नमूना बनाकर पेश करे, और उनको इनफ़िरादी (व्यक्तिगत) व इज्तिमाई तर्बियत देकर सारी दुनिया के सामने एक ऐसी सोसायटी को मिसाल के तौर पर रख दे जिसका पूरा इज्तिमाई निज़ाम 'ज़िक्र' के मंशा की शरह (व्याख्या) हो।

यह आयत जिस तरह नुबूवत के उन इनकार करनेवालों की दलील को काटनेवाली थी जो ख़ुदा का 'ज़िक्र' इनसान के ज़रिए से आने को नहीं मानते थे, उसी तरह आज ये उन हदीस के इनकारियों की हुज्जत को भी काटनेवाली है जो नबी की तशरीह और वज़ाहत (स्पष्टीकरण) के बिना सिर्फ़ 'ज़िक्र' को ले लेना चाहते हैं। वे चाहे इस बात को मानते हों कि नबी ने तशरीह और स्पष्टीकरण कुछ भी नहीं किया था, सिर्फ़ ज़िक्र पेश कर दिया था, या यह कहते हों कि मानने के लायक़ सिर्फ़ ज़िक्र है न कि नबी की तशरीह, या यह कहते हों कि अब हमारे लिए

الْاَرْضَ اَوْ يَاْتِيَهُمُ الْعَذَابُ مِنْ حَيْثُ لَا يَشْعُرُوْنَ ۝ اَوْ يَاْخُذَهُمْ

चल रहे हैं, इस बात से बिलकुल ही निडर हो गए हैं कि अल्लाह उन्हें ज़मीन में धँसा दे, या ऐसे हिस्से से उनपर अज़ाब ले आए जिधर से उसके आने का उनको वहम व गुमान

सिर्फ़ ज़िक्र काफ़ी है, नबी की तशरीह की कोई ज़रूरत नहीं, या इस बात को मानते हों कि अब सिर्फ़ ज़िक्र ही भरोसे के लायक़ हालत में बाक़ी रह गया है, नबी की तशरीह या तो बाक़ी ही नहीं रही या बाक़ी है भी तो भरोसे के लायक़ नहीं है, ग़रज़ इन चारों बातों में से जिस बात को भी ये मानते हों, उनका तरीक़ा बहरहाल क़ुरआन की इस आयत से टकराता है।

अगर ये पहली बात को मानते हैं तो इसका मतलब यह है कि नबी ने उस मक़सद ही को ख़त्म कर दिया जिसकी ख़ातिर ज़िक्र को फ़रिश्तों के हाथ भेजने या सीधे तौर पर लोगों तक पहुँचा देने के बजाय उसे तब्लीग़ का ज़रिआ बनाया गया था।

और अगर वे दूसरी या तीसरी बात को मानते हैं तो इसका मतलब यह है कि अल्लाह ने (अल्लाह की पनाह) यह फ़ुज़ूल हरकत की कि अपना 'ज़िक्र' एक नबी के ज़रिए से भेजा; क्योंकि नबी के आने का नतीजा भी वही है जो नबी के बिना सिर्फ़ ज़िक्र के छपी हुई शक्ल में उतारे जाने का हो सकता था।

और अगर वे चौथी बात को मानते हैं तो दर अस्ल यह क़ुरआन और मुहम्मद (सल्ल0) की नुबूवत, दोनों के मंसूख़ (निरस्त) हो जाने का एलान है जिसके बाद अगर कोई सही मस्लक (मत) बाक़ी रह जाता है तो वह सिर्फ़ उन लोगों का मस्लक है जो एक नई नुबूवत और नई वह्य को मानते हैं। इसलिए कि इस आयत से अल्लाह तआला ख़ुद क़ुरआन मजीद के उतरने के मक़सद को पूरा होने के लिए नबी की तशरीह को ज़रूरी ठहरा रहा है और नबी की ज़रूरत ही इस तरह साबित कर रहा है कि वह ज़िक्र के मक़सद को साफ़-साफ़ बयान करे। अब अगर हदीस के इनकार करनेवालों का यह कहना सही है कि नबी की वज़ाहत व तशरीह दुनिया में बाकी नहीं रही है तो इसके दो नतीजे खुले हुए हैं। पहला नतीजा यह है कि पैरवी के नमूने की हैसियत से मुहम्मद (सल्ल.) की नुबूवत ख़त्म हो गई और हमारा ताल्लुक़ मुहम्मद (सल्ल.) के साथ सिर्फ़ उस तरह का रह गया जैसा हूद, सालेह और शुऐब (अलैहि.) के साथ है कि हम उन्हें सच्चा समझते हैं, उनपर ईमान लाते हैं, मगर उनका कोई अमली नमूना हमारे पास नहीं हैं जिसकी हम पैरवी करें। यह चीज़ नई नुबूवत की ज़रूरत आप से आप साबित कर देती है, सिर्फ़ एक बेवक़ूफ़ ही इसके बाद इस बात पर अड़ा रह सकता है कि नबी आने का सिलसिला ख़त्म हो गया। दूसरा नतीजा यह है कि अकेला क़ुरआन नबी की तशरीह और बयान के बिना ख़ुद अपने भेजनेवाले के कहने के मुताबिक़ हिदायत के लिए नाकाफ़ी है, इसलिए क़ुरआन के माननेवाले चाहे कितने ही ज़ोर से चीख़-चीख़कर उसे अपनी जगह काफ़ी बताएँ, मुद्दई सुस्त की हिमायत में चुस्त गवाहों की बात हरगिज़ नहीं चल सकती और एक नई किताब के उतारे जाने की ज़रूरत आप से आप ख़ुद क़ुरआन के मुताबिक़ साबित हो जाती है। अल्लाह उन्हें तबाह करे, इस तरह ये लोग हक़ीक़त में इनकार हदीस के ज़रिए से दीन की जड़ खोद रहे हैं।

فِيْ تَقَلُّبِهِمْ فَمَا هُمْ بِمُعْجِزِيْنَ ﴿٤٦﴾ اَوْ يَاْخُذَهُمْ عَلٰى تَخَوُّفٍ فَاِنَّ
رَبَّكُمْ لَرَءُوْفٌ رَّحِيْمٌ ﴿٤٧﴾ اَوَلَمْ يَرَوْا اِلٰى مَا خَلَقَ اللّٰهُ مِنْ شَيْءٍ
يَّتَفَيَّؤُا ظِلٰلُهٗ عَنِ الْيَمِيْنِ وَالشَّمَآئِلِ سُجَّدًا لِّلّٰهِ وَهُمْ دٰخِرُوْنَ ﴿٤٨﴾
وَلِلّٰهِ يَسْجُدُ مَا فِي السَّمٰوٰتِ وَمَا فِي الْاَرْضِ مِنْ دَآبَّةٍ وَّالْمَلٰٓئِكَةُ
وَهُمْ لَا يَسْتَكْبِرُوْنَ ﴿٤٩﴾ يَخَافُوْنَ رَبَّهُمْ مِّنْ فَوْقِهِمْ وَيَفْعَلُوْنَ مَا

तक न हो, (46-47) या अचानक चलते-फिरते उनको पकड़ ले या ऐसी हालत में उनको पकड़े जबकि उन्हें ख़ुद आनेवाली मुसीबत का खटका लगा हुआ हो और वे उससे बचने की फ़िक्र में चौकन्ने हों? वह जो कुछ भी करना चाहे, ये लोग उसको बेबस करने की ताक़त नहीं रखते। सच तो यह है कि तुम्हारा रब बड़ा ही नर्म और रहम करनेवाला है।

(48) और क्या ये लोग अल्लाह की पैदा की हुई किसी चीज़ को भी नहीं देखते कि उसका साया किस तरह अल्लाह के सामने सजदा करते हुए दाएँ और बाएँ गिरता है?[41] सब के सब इस तरह आजिज़ी ज़ाहिर कर रहे हैं। (49) ज़मीन और आसमानों में जितने जानदार हैं और जितने फ़रिश्ते हैं, सब अल्लाह के आगे सज्दे में हैं[42]। वे हरगिज़ सरकशी नहीं करते, (50) अपने रब से जो उनके ऊपर है, डरते हैं और जो कुछ हुक्म

---

41. यानी तमाम जिस्मानी चीज़ों के साए इस बात की अलामत हैं कि पहाड़ हों या पेड़, जानवर हों या इनसान, सब के सब एक हमागीर (व्यापक) क़ानून की पकड़ में जकड़े हुए हैं, सबके माथे पर बन्दगी का निशान लगा हुआ है, अल्लाह की सिफ़ात में किसी का कोई मामूली-सा हिस्सा भी नहीं है। साया पड़ना एक चीज़ के माद्दी (भौतिक) होने की अलामत है, और माद्दी होना इस बात का खुला सुबूत है कि वह पैदा किया हुआ है।

42. यानी ज़मीन ही की नहीं, आसमानों की भी वे तमाम हस्तियाँ जिनको पुराने ज़माने से लेकर आज तक लोग देवी-देवता और ख़ुदा के रिश्तेदार ठहराते आए हैं, दरअस्ल ग़ुलाम और मातहत हैं। इनमें से किसी का भी ख़ुदाई में कोई हिस्सा नहीं।
इसके अलावा इस आयत से एक इशारा इस तरफ़ भी निकल आया कि जानदार सिर्फ़ ज़मीन ही में नहीं हैं, बल्कि ऊपरी दुनिया के ग्रहों में भी हैं। यही बात सूरा-42 शूरा, आयत-29 में भी कही गई है।

يُؤْمَرُونَ ۞ وَقَالَ اللّٰهُ لَا تَتَّخِذُوٓا اِلٰهَيْنِ اثْنَيْنِ ۚ اِنَّمَا هُوَ اِلٰهٌ وَّاحِدٌ ۚ
فَاِيَّايَ فَارْهَبُوْنِ ۞ وَلَهٗ مَا فِي السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ وَلَهُ الدِّيْنُ
وَاصِبًا ۭ اَفَغَيْرَ اللّٰهِ تَتَّقُوْنَ ۞ وَمَا بِكُمْ مِّنْ نِّعْمَةٍ فَمِنَ اللّٰهِ ثُمَّ اِذَا
مَسَّكُمُ الضُّرُّ فَاِلَيْهِ تَجْـَٔرُوْنَ ۞ ثُمَّ اِذَا كَشَفَ الضُّرَّ عَنْكُمْ اِذَا
فَرِيْقٌ مِّنْكُمْ بِرَبِّهِمْ يُشْرِكُوْنَ ۞ لِيَكْفُرُوْا بِمَآ اٰتَيْنٰهُمْ ۭ فَتَمَتَّعُوْا ۪

दिया जाता है उसी के मुताबिक़ काम करते हैं।

(51) अल्लाह का हुक्म है कि "दो ख़ुदा न बना लो,[43] ख़ुदा तो बस एक ही है, इसलिए तुम मुझी से डरो। (52) उसी का है वह सब कुछ जो आसमानों में है और जो ज़मीन में है, और ख़ालिस उसी का दीन (सारी कायनात में) चल रहा है।[44] फिर क्या अल्लाह को छोड़कर तुम किसी और का डर रखोगे?[45]

(53) तुम्हें जो नेमत भी हासिल है, अल्लाह ही की तरफ़ से है। फिर जब कोई सख़्त वक़्त तुमपर आता है तो तुम लोग ख़ुद अपनी फ़रियादें लेकर उसी की तरफ़ दौड़ते हो[46], (54) मगर जब अल्लाह उस वक़्त को टाल देता है तो यकायकी तुममें से एक गरोह अपने रब के साथ दूसरों को (इस मेहरबानी के शुक्रिए में) साझीदार बनाने लगता है[47], (55) ताकि अल्लाह के एहसान की नाशुक्री करे। अच्छा, मज़े कर लो, बहुत जल्द तुम्हें

43. दो ख़ुदाओं से मना करने में दो से ज़्यादा ख़ुदाओं से मना करना आप से आप शामिल है।
44. दूसरे अलफ़ाज़ में उसी की फ़रमाँबरदारी पर इस पूरी कायनात का निज़ाम क़ायम है।
45. दूसरे अलफ़ाज़ में क्या अल्लाह के बजाय किसी और का डर और किसी और की नाराज़ी से बचने का ज़ज़्बा तुम्हारी ज़िन्दगी के निज़ाम की बुनियाद बनेगा?
46. यानी यह तौहीद की एक साफ़ गवाही तुम्हारे अपने वुजूद में मौजूद है। सख़्त मुसीबत के वक़्त जब तमाम मनगढ़ंत ख़यालों का रंग हट जाता है तो थोड़ी देर के लिए तुम्हारी अस्ल फ़ितरत उभर आती है जो अल्लाह के सिवा किसी इलाह, किसी रब और किसी इख़्तियार रखनेवाले मालिक को नहीं जानती। (और ज़्यादा तशरीह के लिए देखें—सूरा-6 अनआम, हाशिया-29 व 41, यूनुस, हाशिया-31)
47. यानी अल्लाह के शुक्रिए के साथ-साथ किसी बुज़ुर्ग या किसी देवी-देवता के शुक्रिए की भी भेंटें और चढ़ावे चढ़ाने शुरू कर देता है और अपनी बात-बात से यह ज़ाहिर करता है कि उसके

فَسَوْفَ تَعْلَمُوْنَ ﴿٥٥﴾ وَيَجْعَلُوْنَ لِمَا لَا يَعْلَمُوْنَ نَصِيْبًا مِّمَّا رَزَقْنٰهُمْ ۭ
تَاللّٰهِ لَتُسْــَٔلُنَّ عَمَّا كُنْتُمْ تَفْتَرُوْنَ ﴿٥٦﴾ وَيَجْعَلُوْنَ لِلّٰهِ الْبَنٰتِ سُبْحٰنَهٗ ۙ
وَلَهُمْ مَّا يَشْتَهُوْنَ ﴿٥٧﴾ وَاِذَا بُشِّرَ اَحَدُهُمْ بِالْاُنْثٰى ظَلَّ وَجْهُهٗ مُسْوَدًّا
وَّهُوَ كَظِيْمٌ ﴿٥٨﴾ يَتَوَارٰى مِنَ الْقَوْمِ مِنْ سُوْۗءِ مَا بُشِّرَ بِهٖ ۭ اَيُمْسِكُهٗ
عَلٰي هُوْنٍ اَمْ يَدُسُّهٗ فِي التُّرَابِ ۭ اَلَا سَاۗءَ مَا يَحْكُمُوْنَ ﴿٥٩﴾ لِلَّذِيْنَ لَا

मालूम हो जाएगा।

(56) ये लोग जिनकी हक़ीक़त से वाक़िफ़ नहीं हैं[48], उनके हिस्से हमारी दी हुई रोज़ी में से मुक़र्रर करते हैं।[49] —— ख़ुदा की क़सम! ज़रूर तुमसे पूछा जाएगा कि यह झूठ तुमने कैसे गढ़ लिए थे?

(57) ये ख़ुदा के लिए बेटियाँ ठहराते हैं[50] पाक है अल्लाह! और इनके लिए वह जो यह ख़ुद चाहें?[51] (58) जब इनमें से किसी को बेटी पैदा होने की ख़ुशख़बरी दी जाती है तो उसके चेहरे पर कलौंस छा जाती है और वह बस ख़ून का-सा घूँट पीकर रह जाता है। (59) लोगों से छिपता फिरता है कि इस बुरी ख़बर के बाद क्या किसी को मुँह दिखाए। सोचता है कि ज़िल्लत के साथ बेटी को लिए रहे या मिट्टी में दबा दे? — देखो,

---

नज़दीक अल्लाह की इस मेहरबानी में उन हज़रत की मेहरबानी का भी दख़ल था, बल्कि अल्लाह हरगिज़ मेहरबानी न करता अगर वे हज़रत मेहरबान होकर अल्लाह को मेहरबानी पर आमादा न करते।

48. यानी जिनके बारे में इल्म के किसी भरोसेमंद ज़रिए से इन्हें यह पता नहीं चला है कि अल्लाह ने उनको वाक़ई अपना शरीक बन रखा है, और अपनी ख़ुदाई के कामों में से कुछ काम या अपनी सल्तनत के इलाक़ों में से कुछ इलाक़े उनको सौंप रखे हैं।

49. यानी उनकी नज़्र-नियाज़ और भेंट के लिए अपनी आमदनियों और अपनी ज़मीन की पैदावार में से एक मुक़र्रर हिस्सा अलग निकाल रखते हैं।

50. अरब के मुशरिकों के माबूदों में देवता कम थे, देवियाँ ज़्यादा थीं, और उन देवियों के बारे में उनका अक़ीदा यह था कि ये ख़ुदा की बेटियाँ हैं। इसी तरह फ़रिश्तों को भी वे ख़ुदा की बेटियाँ क़रार देते थे।

51. यानी बेटे।

يُؤْمِنُوْنَ بِالْاٰخِرَةِ مَثَلُ السَّوْءِ ۚ وَلِلّٰهِ الْمَثَلُ الْاَعْلٰى ۗ وَهُوَ الْعَزِيْزُ
الْحَكِيْمُ ۝٦٠ وَلَوْ يُؤَاخِذُ اللّٰهُ النَّاسَ بِظُلْمِهِمْ مَّا تَرَكَ عَلَيْهَا مِنْ دَآبَّةٍ ع ١٠ ١٣
وَّلٰكِنْ يُّؤَخِّرُهُمْ اِلٰٓى اَجَلٍ مُّسَمًّى ۚ فَاِذَا جَآءَ اَجَلُهُمْ لَا يَسْتَاْخِرُوْنَ
سَاعَةً وَّلَا يَسْتَقْدِمُوْنَ ۝٦١ وَيَجْعَلُوْنَ لِلّٰهِ مَا يَكْرَهُوْنَ وَتَصِفُ
اَلْسِنَتُهُمُ الْكَذِبَ اَنَّ لَهُمُ الْحُسْنٰى ۗ لَا جَرَمَ اَنَّ لَهُمُ النَّارَ وَاَنَّهُمْ
مُّفْرَطُوْنَ ۝٦٢ تَاللّٰهِ لَقَدْ اَرْسَلْنَآ اِلٰٓى اُمَمٍ مِّنْ قَبْلِكَ فَزَيَّنَ لَهُمُ

कैसे बुरे हुक्म हैं जो ये ख़ुदा के बारे में लगाते हैं।[52] (60) बुरी सिफ़तवाले कहे जाने के लायक़ तो वे लोग हैं जो आख़िरत का यक़ीन नहीं रखते। रहा अल्लाह, तो उसके लिए तो सबसे बेहतरीन सिफ़ात (गुण) हैं, वही तो सबपर ग़ालिब और हिक्मत में मुकम्मल है।

(61) अगर कहीं अल्लाह लोगों को उनकी ज़्यादती पर फ़ौरन ही पकड़ लिया करता तो ज़मीन पर किसी जानदार को न छोड़ता। लेकिन वह सबको एक तयशुदा वक़्त तक मोहलत देता है, फिर जब वह वक़्त आ जाता है तो उससे कोई एक घड़ी भर भी आगे-पीछे नहीं हो सकता। (62) आज ये लोग वे चीज़ें अल्लाह के लिए ठहरा रहे हैं जो ख़ुद अपने लिए इन्हें नापसन्द हैं, और झूठ कहती हैं इनकी ज़बानें कि इनके लिए भला ही भला है। इनके लिए तो एक ही चीज़ है, और वह है दोज़ख़ की आग। ज़रूर ये सबसे पहले उसमें पहुँचाए जाएँगे।

(63) ख़ुदा की क़सम! ऐ नबी! तुमसे पहले भी बहुत-सी क़ौमों में हम रसूल भेज

---

52. यानी अपने लिए जिस बेटी को ये लोग इतनी ज़्यादा बेइज़्ज़ती और शर्म की वजह समझते हैं, उसी को ख़ुदा के लिए बेझिझक पसन्द कर लेते हैं। इस बात से हटकर कि ख़ुदा के लिए औलाद ठहराना अपने आप में एक सख़्त जहालत और गुस्ताख़ी है, अरब के मुशरिकों की इस हरकत पर यहाँ इस ख़ास पहलू से पकड़ इसलिए की गई है कि अल्लाह के बारे में उनके ख़यालों की गिरावट साफ़-साफ़ बयान की जाए और यह बताया जाए कि शिर्कवाले अक़ीदों ने अल्लाह के मामले में उनको कितना निडर और गुस्ताख़ बना दिया है और वे कितने ज़्यादा बेहिस हो चुके हैं कि इस तरह की बातें करते हुए कोई बुराई तक महसूस नहीं करते।

الشَّيْطٰنُ اَعْمَالَهُمْ فَهُوَ وَلِيُّهُمُ الْيَوْمَ وَلَهُمْ عَذَابٌ اَلِيْمٌ ﴿٦٣﴾ وَمَآ
اَنْزَلْنَا عَلَيْكَ الْكِتٰبَ اِلَّا لِتُبَيِّنَ لَهُمُ الَّذِى اخْتَلَفُوْا فِيْهِ ۙ وَهُدًى
وَّرَحْمَةً لِّقَوْمٍ يُّؤْمِنُوْنَ ﴿٦٤﴾ وَاللّٰهُ اَنْزَلَ مِنَ السَّمَآءِ مَآءً فَاَحْيَا بِهِ
الْاَرْضَ بَعْدَ مَوْتِهَا ۭ اِنَّ فِىْ ذٰلِكَ لَاٰيَةً لِّقَوْمٍ يَّسْمَعُوْنَ ﴿٦٥﴾ وَاِنَّ لَكُمْ ع ٥ ١٣
فِى الْاَنْعَامِ لَعِبْرَةً ۭ نُسْقِيْكُمْ مِّمَّا فِىْ بُطُوْنِهٖ مِنْۢ بَيْنِ فَرْثٍ وَّدَمٍ لَّبَنًا

चुके हैं, (और पहले भी यही होता रहा है कि) शैतान ने उनके बुरे करतूत उन्हें ख़ूबसूरत बनाकर दिखाए (और रसूलों की बात उन्होंने मानकर न दी)। वही शैतान आज इन लोगों का भी सरपरस्त बना हुआ है और ये दर्दनाक सज़ा के हक़दार बन रहे हैं। (64) हमने यह किताब तुमपर इसलिए उतारी है कि तुम उन इख़्तिलाफ़ात की हक़ीक़त इनपर खोल दो जिनमें ये पड़े हुए हैं। यह किताब रहनुमाई और रहमत बनकर उतरी है उन लोगों के लिए जो इसे मान लें।[53]

(65) (तुम हर बरसात में देखते हो कि) अल्लाह ने आसमान से पानी बरसाया और यकायक मुरदा पड़ी हुई ज़मीन में उसकी बदौलत जान डाल दी। यक़ीनन इसमें एक निशानी है सुननेवालों के लिए।[53अ]

(66) और तुम्हारे लिए मवेशियों में भी एक सबक़ मौजूद है। उनके पेट से गोबर

53. दूसरे अलफ़ाज़ में, इस किताब के उतरने से इन लोगों को इस बात का बेहतरीन मौक़ा मिला है कि अंधविश्वासों और दूसरों की पैरवी में अपनाए गए ख़यालों की बुनियाद पर जिन अनगिनत अलग-अलग मस्लकों और मज़हबों में ये बँट गए हैं उनके बजाय सच्चाई की एक ऐसी पायदार बुनियाद पा लें जिसपर ये सब एक राय हो सकें। अब जो लोग इतने बेवक़ूफ़ हैं कि इस नेमत के आ जाने पर भी अपनी पिछली हालत ही को तर्जीह दे रहे हैं वे तबाही और रुस्वाई के सिवा ओर कोई अंजाम देखनेवाले नहीं हैं। अब तो सीधा रास्ता पाएगा और वही बरकतों और रहमतों से मालामाल होगा जो इस किताब को मान लेगा।

53(अ) यानी यह मंज़र हर साल तुम्हारी आँखों के सामने गुज़रता है कि ज़मीन बिलकुल चटियल मैदान पड़ी हुई है, ज़िन्दगी के कोई आसार मौजूद नहीं, न घास-फूस है, न बेल-बूटे, न फूल-पत्ती और न किसी क़िस्म के कीड़े-मकोड़े। इतने में बारिश का मौसम आ गया और एक-दो छींटे पड़ते ही उसी ज़मीन से ज़िन्दगी के चश्मे (स्रोत) उबलने शुरू हो गए। ज़मीन के नीचे दबी हुई

خَالِصًا سَآئِغًا لِّلشّٰرِبِیْنَ ۝٦٦ وَمِنْ ثَمَرٰتِ النَّخِیْلِ وَالْاَعْنَابِ
تَتَّخِذُوْنَ مِنْهُ سَكَرًا وَّرِزْقًا حَسَنًا ؕ اِنَّ فِیْ ذٰلِكَ لَاٰیَةً لِّقَوْمٍ

और ख़ून के बीच हम एक चीज़ तुम्हें पिलाते है यानी ख़ालिस दूध[54], जो पीनेवालों के लिए निहायत ख़ुशगवार है।

(67) (इसी तरह) खजूर के पेड़ों और अंगूर की बेलों से भी एक चीज़ तुम्हें पिलाते हैं जिसे तुम नशाआवर भी बना लेते हो और पाक रोज़ी भी।[55] यक़ीनन इसमें एक

अनगिनत जड़ें एकाएक जी उठीं और हर एक के अन्दर से वही पौधे फिर निकल आए जो पिछली बरसात में पैदा होने के बाद मर चुके थे। अनगिनत कीड़े-मकोड़े जिनका नामो-निशान तक गर्मी के ज़माने में बाक़ी न रहा था, एकाएक फिर उसी शान से निकल आए जैसे पिछली बरसात में देखे गए थे। ये सब कुछ अपनी ज़िन्दगी में बार-बार तुम देखते हो, और फिर भी तुम्हें नबी की ज़बान से यह सुनकर हैरत होती है कि अल्लाह तमाम इनसानों को मरने के बाद दोबारा ज़िन्दा करेगा। इस हैरत की वजह इसके सिवा और क्या है कि तुम्हारा देखना बेअक़्ल जानवरों के जैसे देखना है। तुम कायनात के करिश्मों को तो देखते हो, मगर उनके पीछे बनानेवाले की क़ुदरत और हिक्मत के निशानों को नहीं देखते। वरना यह मुमकिन न था कि नबी का बयान सुनकर तुम्हारा दिल न पुकार उठता कि सचमुच ये निशानियाँ उसके बयान की ताईद कर रही हैं।

54. "गोबर और ख़ून के बीच" का मतलब यह है कि जानवर जो खाना खाते हैं उससे एक तरफ़ तो ख़ून बनता है, और दूसरी तरफ़ गोबर। मगर इन्हीं जानवरों की मादाओं में उसी खाने से एक तीसरी चीज़ भी पैदा हो जाती है जो ख़ासियत, रंग, गंध, फ़ायदे और मक़सद में इन दोनों से बिलकुल अलग हैं। फिर ख़ास तौर पर मवेशियों में इस चीज़ की पैदावार इतनी ज़्यादा होती है कि वे अपने बच्चों की ज़रूरत पूरी करने के बाद इनसान के लिए भी यह बेहतरीन ग़िज़ा (भोजन) बहुत ज़्यादा मिक़दार (मात्रा) में जुटाते रहते हैं।

55. इसमें एक हल्का-सा इशारा इस बात की तरफ़ भी है कि फलों के इस रस में वह माद्दा (तत्त्व) भी मौजूद है जो इनसान के लिए ज़िन्दगी-बख़्श खाना बन सकता है, और वह माद्दा भी मौजूद है जो सड़कर अल्कोहल में तब्दील हो जाता है। अब इसका दारोमदार इनसान के अपने चुनाव व पसन्द की ताक़त पर है कि वह इस सरचश्मे से पाक रोज़ी हासिल करता है या अक़्ल व समझ को ख़त्म कर देनेवाली शराब। एक और दूसरा इशारा शराब के हराम होने की तरफ़ भी है कि वह पाक रिज़्क़ नहीं है।

يَّعْقِلُوْنَ ۞ وَاَوْحٰى رَبُّكَ اِلَى النَّحْلِ اَنِ اتَّخِذِيْ مِنَ الْجِبَالِ بُيُوْتًا

निशानी है अक़्ल से काम लेनेवालों के लिए।

(68) और देखो, तुम्हारे रब ने शहद की मक्खी पर यह बात वह्य कर दी[56] कि

56. वह्य लफ़्ज़ के मानी हैं छिपे हुए और हल्के इशारे के जिसे इशारा करनेवाले और इशारा पानेवाले के सिवा कोई और महसूस न कर सके। इसी हिसाब से यह लफ़्ज़ 'इल्क़ा' (दिल में बात डाल देने) और 'इलहाम' (छिपे तरीक़े से तालीम और नसीहत करना) के मानी में इस्तेमाल होता है। अल्लाह तआला अपनी मख़लूक़ (सृष्टि) को जो तालीम देता है वह चूँकि किसी स्कूल और मदरसे में नहीं दी जाती, बल्कि ऐसे ग़ैर-महसूस तरीक़ों से दी जाती है कि बज़ाहिर कोई तालीम देता और कोई तालीम पाता नज़र नहीं आता, इसलिए इसके लिए क़ुरआन में वह्य, इल्हाम और इल्क़ा के अलफ़ाज़ इस्तेमाल किए गए हैं। अब ये तीनों अलफ़ाज़ अलग अलग ख़ास मानों में इस्तेमाल होने लगे हैं। लफ़्ज़ 'वह्य' नबियों के लिए ख़ास हो गया है। इल्हाम को वलियों और अल्लाह के ख़ास बन्दों के लिए ख़ास कर दिया गया है और इल्क़ा इनके मुक़ाबले में आम लोगों के लिए बोला जाता है।

लेकिन क़ुरआन में यह फ़र्क़ नहीं पाया जाता। यहाँ आसमानों पर भी वह्य होती है जिसके मुताबिक़ उनका सारा निज़ाम चलता है, "और उसने हर आसमान को उसका काम वह्य किया (समझाया)।" (सूरा-41 हा-मीम अस-सजदा, आयत-12) ज़मीन पर भी वह्य होती है जिसका इशारा पाते ही वह अपनी आप-बीती सुनाने लगती है। "उस दिन वह (ज़मीन) अपने हालात बयान करेगी, क्योंकि इस बात की तेरे रब ने उसपर वह्य की होगी।" (सूरा-99 अज़-ज़िलज़ाल, आयत-4-5) फ़रिश्तों पर भी वह्य होती है जिसके मुताबिक़ वे काम करते है– "जब तेरे रब की तरफ़ से फ़रिश्तों पर वह्य की गई कि मैं तुम्हारे साथ हूँ" (सूरा-18 अनफ़ाल, आयत-12)। शहद की मक्खी को उसका पूरा काम वह्य (फ़ितरी तालीम) के ज़रिए से सिखाया जाता है, जैसा कि इस आयत में आप देखे रहे हैं और यह वह्य सिर्फ़ शहद की मक्खी ही को नहीं की जाती, बल्कि मछली को तैरना, परिन्दों को उड़ना, नवजात बच्वें को दूध पीना भी अल्लाह की वह्य ही सिखाया करती है। फिर एक इनसान को सोच-विचार, जाँच-पड़ताल और खोजबीन के बिना जो सही तदबीर या सही राय या सोचने व अमल करने की सही राह सुझाई जाती है। वह भी वह्य है, "और हमने मूसा की माँ को वह्य की कि उसको दूध पिला" (सूरा-28 अल-क़सस, आयत-7), और इस वह्य से कोई इनसान भी महरूम नहीं है। दुनिया में जितनी भी खोज़ें हुई हैं, जितनी फ़ायदेमन्द ईजादें हुई हैं, बड़े-बड़े इंतिज़ाम और तदबीर करनेवालों, जीत हासिल करनेवालों, ग़ौरो-फ़िक्र करनेवाले (चिन्तकों) और लिखनेवालों ने जो कारनामे अंजाम दिए हैं उन सबमें यही वह्य काम करती नज़र आती है, बल्कि आम इनसानों को आए दिन इस तरह के तजरिबे होते रहते हैं कि कभी बैठे-बैठे दिल में एक बात आई, कोई तदबीर सूझ गई, या सपने

وَّمِنَ الشَّجَرِ وَمِمَّا يَعْرِشُوْنَ ﴿٦٨﴾ ثُمَّ كُلِيْ مِنْ كُلِّ الثَّمَرٰتِ فَاسْلُكِيْ
سُبُلَ رَبِّكِ ذُلُلًا ۭ يَخْرُجُ مِنْۢ بُطُوْنِهَا شَرَابٌ مُّخْتَلِفٌ اَلْوَانُهٗ فِيْهِ
شِفَاۗءٌ لِّلنَّاسِ ۭ اِنَّ فِيْ ذٰلِكَ لَاٰيَةً لِّقَوْمٍ يَّتَفَكَّرُوْنَ ﴿٦٩﴾ ——————

पहाड़ों में, और पेड़ों में, और टट्टियों पर चढ़ाई हुई बेलों में अपने छत्ते बना (69) और हर तरह के फलों का रस चूस और अपने रब की हमवार की हुई राहों पर चलती रह।[57] इस मक्खी के अन्दर से रंग-बिरंग का एक शरबत निकलता है जिसमें शिफ़ा (आरोग्य) है लोगों के लिए।[58] यक़ीनन इसमें भी एक निशानी है उन लोगों के लिए जो सोच-विचार करते हैं।[59]

में कुछ देख लिया, और बाद में तजरिबे से पता चला कि वह एक सही रहनुमाई थी, जो ग़ैब से उन्हें मिली थी।

इन बहुत-सी क़िस्मों में से एक ख़ास तरह की वह्य वह है जिससे पैग़म्बर (अलैहि०) नवाज़े जाते हैं और यह वह्य अपनी ख़ूबियों में दूसरी क़िस्मों से बिलकुल अलग होती है। इसमें वह्य किए जानेवाले को अच्छी तरह मालूम होता है कि यह वह्य ख़ुदा की तरफ़ से आ रही है। उसे उसके अल्लाह की तरफ़ से होने का पूरा यक़ीन होता है। उसमें अक़ीदे, हुक्म, क़ानून और हिदायतें सब शामिल होती हैं और उसे उतारने का मक़सद यह होता है कि नबी उसके ज़रिए से इनसानों को सीधा रास्ता दिखाए।

57. "रब की हमवार की हुई राहों" का इशारा उस पूरे निज़ाम और काम के तरीक़े की तरफ़ है जिसपर शहद की मक्खियों का एक गरोह काम करता है। उनके छत्तों की बनावट, उनके गरोह का इंतिज़ाम, उनके अलग-अलग काम करनेवालों में काम का बँटवारा, खाना हासिल करने के लिए उनका लगातार आना-जाना, उनका बाक़ायदगी के साथ शहद बना-बनाकर इकट्ठा करते जाना, ये सब वे राहें हैं जो उनके अमल के लिए उनके रब ने इस तरह हमवार और आसान कर दी हैं कि उन्हें कभी सोचने-विचारने की ज़रूरत नहीं पड़ती। बस एक लगा-बँधा निज़ाम है जिसपर एक लगे-बँधे तरीके पर चीनी के ये अनगिनत छोटे-छोटे कारख़ाने हज़ारों सालों से काम किए चले जा रहे हैं।

58. शहद का एक फ़ायदेमन्द और मज़ेदार खाना होना तो ज़ाहिर है, इसलिए इसका ज़िक्र नहीं किया गया। अलबत्ता उसके अन्दर शिफ़ा होना किसी हद तक एक छिपी बात है, इसलिए इससे वाक़िफ़ कर दिया गया। शहद अव्वल तो कुछ रोगों में अपनी जगह ख़ुद फ़ायदेमन्द है, क्योंकि उसके अन्दर फूलों और फलों का रस, और उनका ग्लूक्रोज़ अपनी बेहतरीन शक्ल में मौजूद

होता है। फिर शहद की यह ख़ासियत कि वह ख़ुद भी नहीं सड़ता और दूसरी चीज़ों को भी अपने अन्दर एक मुद्दत तक महफ़ूज़ रखता हैं, उसे इस क़ाबिल बना देता है कि दवाएँ तैयार करने में उससे मदद ली जाए। चुनाँचे अल्कोहल के बजाय दुनिया की दवा बनाने के काम में वह सदियों से इसी मक़सद के लिए इस्तेमाल होता रहा है। इसके अलावा शहद की मक्खी अगर किसी ऐसे इलाक़े में काम करती है जहाँ कोई ख़ास जड़ी-बूटी बहुतायत में पाई जाती हो तो उस इलाक़े का शहद सिर्फ़ शहद ही नहीं होता, बल्कि उस जड़ी-बूटी का बेहतरीन जौहर भी होता है और उस रोग के लिए फ़ायदेमन्द होता है जिसकी दवा उस जड़ी-बूटी में ख़ुदा ने पैदा की है। शहद की मक्खी से यह काम अगर बाक़ायदगी से लिया जाए, और अलग-अलग जड़ी बूटियों के जौहर उससे निकलवाकर उनके शहद अलग-अलग रख लिए जाएँ तो हमारा ख़याल है कि ये शहद लेबोरेटरी में निकाले हुए जौहरों से ज़्यादा फ़ायदेमन्द साबित होंगे।

59. इस पूरे बयान का मक़सद नबी (सल्ल॰) की दावत के दूसरे हिस्से की सच्चाई साबित करना है। इस्लाम का इनकार करनेवाले और मुशरिक लोग दो ही बातों की वजह से आपकी मुख़ालिफ़त कर रहे थे। एक यह कि आप आख़िरत की ज़िन्दगी का नक़्शा पेश करते हैं जो अख़लाक़ के पूरे निज़ाम का नक़्शा बदल डालता है। दूसरे यह कि आप कहते हैं कि सिर्फ़ एक अल्लाह की इबादत करो, उसी की फ़रमाबरदारी करो और उसी को मुश्किल-कुशा और फ़रियाद सुननेवाला समझो, इससे वह पूरा निज़ामे-ज़िन्दगी ग़लत क़रार पाता है जो शिर्क या नास्तिकता की बुनियाद पर बना हो। मुहम्मद (सल्ल॰) के पैग़ाम के इन्ही दोनों हिस्सों को सही साबित करने के लिए यहाँ कायनात की निशानियों की तरफ़ ध्यान दिलाया गया है। बयान का मक़सद यह है कि अपने आस-पास की दुनिया पर निगाह डालकर देख लो, ये निशानियाँ जो हर तरफ़ पाई जाती हैं नबी के बयान को सही ठहरा रही हैं या तुम्हारे अंधविश्वास और ख़यालात को? नबी कहता है कि तुम मरने के बाद दोबारा उठाए जाओगे। तुम इसे एक अनहोनी बात कहते हो। मगर ज़मीन हर बारिश के मौसम में इस बात का सुबूत देती है कि दोबारा पैदाइश न सिर्फ़ मुमकिन है, बल्कि रोज़ तुम्हारी आँखों के सामने हो रही है। नबी कहता है कि यह कायनात बे-ख़ुदा नहीं है। तुम्हारे नास्तिक इस बात को एक बेसुबूत दावा ठहराते हैं। मगर मवेशियों की बनावट, खजूरों और अंगूरों की बनावट और शहद की मक्खियों की बनावट गवाही दे रही है कि एक हिकमतवाले और रहमवाले रब ने इन चीज़ों को डिज़ाइन किया है, वरना यह कैसे मुमकिन था कि इतने जानवर और इतने पेड़ और इतनी मक्खियाँ मिल-जुलकर इनसान के लिए ऐसी-ऐसी अच्छी मज़ेदार और फ़ायदेमन्द चीज़ें इस बाक़यादगी के साथ पैदा करती रहतीं। नबी कहता है कि अल्लाह के सिवा कोई तुम्हारी इबादत और तारीफ़ और शुक्र व वफ़ा का हक़दार नहीं है। तुम्हारे मुशरिक इसपर नाक-भौं चढ़ाते हैं और अपने बहुत-से माबूदों की नज़्रें-नियाज़ें पूरी करने पर अड़े रहते हैं। मगर तुम ख़ुद ही बताओ कि यह दूध और ये खजूरें और ये अंगूर और ये शहद जो तुम्हारी बेहतरीन खाने की चीज़ें हैं, ख़ुदा के सिवा और किस की दी हुई नेमतें हैं? किस देवी या देवता या वली ने तुम्हें रिज़्क़ पहुँचाने के लिए ये इन्तिज़ाम किए है?

وَاللّٰهُ خَلَقَكُمْ ثُمَّ يَتَوَفّٰىكُمْ ۙۚ وَمِنْكُمْ مَّنْ يُّرَدُّ اِلٰٓى اَرْذَلِ الْعُمُرِ لِكَيْ
لَا يَعْلَمَ بَعْدَ عِلْمٍ شَيْـًٔا ۭ اِنَّ اللّٰهَ عَلِيْمٌ قَدِيْرٌ ﴿٧٠﴾ وَاللّٰهُ فَضَّلَ بَعْضَكُمْ ع ٥ ١٥
عَلٰي بَعْضٍ فِي الرِّزْقِ ۚ فَمَا الَّذِيْنَ فُضِّلُوْا بِرَاۗدِّيْ رِزْقِهِمْ عَلٰي مَا
مَلَكَتْ اَيْمَانُهُمْ فَهُمْ فِيْهِ سَوَاۗءٌ ۭ اَفَبِنِعْمَةِ اللّٰهِ يَجْحَدُوْنَ ﴿٧١﴾ وَاللّٰهُ
جَعَلَ لَكُمْ مِّنْ اَنْفُسِكُمْ اَزْوَاجًا وَّجَعَلَ لَكُمْ مِّنْ اَزْوَاجِكُمْ بَنِيْنَ

(70) और देखो, अल्लाह ने तुम्हें पैदा किया, फिर वह तुम्हें मौत देता है[60] और तुममें से कोई सबसे बुरी उम्र को पहुँचा दिया जाता है, ताकि सब कुछ जानने के बाद फिर कुछ न जाने।[61] हक़ यह है कि अल्लाह ही इल्म में भी कामिल (पूर्ण) है और क़ुदरत में भी।

(71) और देखो, अल्लाह ने तुममें से कुछ को कुछ पर रोज़ी में बड़ाई दी है। फिर जिन लोगों को यह बड़ाई दी गई है वे ऐसे नहीं हैं कि अपनी रोज़ी अपने ग़ुलामों की तरफ़ फेर दिया करते हों, ताकि दोनों इस रोज़ी में बराबर के हिस्सेदार बन जाएँ। तो क्या अल्लाह ही का एहसान मानने से इन लोगों को इनकार है?[62]

(72) और वह अल्लाह ही है जिसने तुम्हार लिए तुम्हीं में से तुम्हारी बीवियाँ बनाईं और उसी ने इन बीवियों से तुम्हें बेटे-पोते दिए और अच्छी-अच्छी चीज़ें तुम्हें खाने को

60. यानी हक़ीक़त सिर्फ़ इतनी ही नहीं है कि तुम्हारी परवरिश और तुम्हें रिज़्क़ पहुँचाने का सारा इन्तिज़ाम अल्लाह के हाथ में है, बल्कि हक़ीक़त यह भी है कि तुम्हारी ज़िन्दगी और मौत, दोनों अल्लाह के बस में हैं। कोई दूसरा न ज़िन्दगी देने का इख़्तियार रखता है, न मौत देने का।

61. यानी यह इल्म जिसपर तुम नाज़ करते हो और जिसकी बदौलत ही ज़मीन के दूसरे जानदारों पर तुमको बढ़कर दर्जा हासिल है, यह भी ख़ुदा का दिया हुआ है। तुम अपनी आँखों से यह इब्रतनाक मंज़र देखते रहते हो कि जब किसी इनसान को अल्लाह तआला बहुत ज़्यादा लम्बी उम्र दे देता है तो वही शख़्स जो कभी जवानी में दूसरों को अक़्ल सिखाता था, किस तरह गोश्त का एक लोथड़ा बनकर रह जाता है जिसे अपने तन-बदन का भी होश नहीं रहता।

62. आज के दौर में इस आयत से जो अजीब-ग़रीब मतलब निकाले गए हैं वे इस बात की सबसे बुरी मिसाल हैं कि क़ुरआन की आयतों को उनके सन्दर्भ से अलग करके एक-एक आयत के अलग मतलब लेने से कैसी-कैसी और कभी न ख़त्म होनेवाली बहसों का दरवाज़ा खुल जाता

है। लोगों ने इस आयत को इस्लाम के फ़लसफ़-ए मईशत (आर्थिक दर्शन) की बुनियाद और मईशत के क़ानून की एक अहम दफ़ा ठहराया है। उनके नज़दीक आयत का मंशा यह है कि जिन लोगों को अल्लाह ने रिज़्क़ में बड़ाई दी उन्हें अपना रिज़्क़ अपने नौकरों और ग़ुलामों की तरफ़ ज़रूर लौटा देना चाहिए, अगर न लौटाएँगे तो अल्लाह की नेमत के इनकारी ठहरेंगे। हालाँकि बात के इस सिलसिले में मईशत के क़ानून के बयान का सिरे से कोई मौक़ा ही नहीं है। ऊपर से तमाम तक़रीर शिर्क को ग़लत ठहराने और तौहीद को सही साबित करने में होती चली आ रही है और आगे भी लगातार यही मज़मून चल रहा है। इस बातचीत के बीच में यकायक मईशत के क़ानून की एक दफ़ा बयान कर देने का आख़िर कौन-सा तुक है? आयत को उसके प्रसंग और संदर्भ में रखकर देखा जाए तो साफ़ मालूम होता है कि यहाँ इसके बिलकुल बरख़िलाफ़ विषय बयान हो रहा है। यहाँ यह दलील दी जा रही है कि तुम ख़ुद अपने माल में अपने ग़ुलामों और नौकरों को जब बराबर का दर्जा नहीं देते— हालाँकि यह माल ख़ुदा का दिया हुआ है— तो आख़िर किस तरह यह बात तुम सही समझते हो कि जो एहसान अल्लाह ने तुमपर किए हैं उनके शुक्रिए में अल्लाह के साथ उसके अधिकार न रखनेवाले ग़ुलामों को भी साझीदार बना लो और अपनी जगह यह समझ बैठो कि अधिकारों और हक़ों में अल्लाह के ये ग़ुलाम भी उसके साथ बराबर के हिस्सेदार हैं?

दलील देने का ठीक यही अन्दाज़ इसी मज़मून से सूरा-30 रूम, आयत -28 में अपनाया गया हैं। वहाँ इसके अलफ़ाज़ ये हैं— "अल्लाह तुम्हारे सामने एक मिसाल ख़ुद तुम्हारे अपने वुजूद से पेश करता है। क्या तुम्हारे उस रिज़्क़ में जो हमने तुम्हें दे रखा हैं तुम्हारे ग़ुलाम तुम्हारे साझीदार हैं, यहाँ तक कि तुम और वे उसमें बराबर हों? और तुम उनसे उसी तरह डरते हो जिस तरह अपने बराबरवालों से डरा करते हो? इस तरह अल्लाह खोल-खोलकर निशानियाँ पेश करता है उन लोगों के लिए जो अक़्ल से काम लेते हैं।"

दोनों आयतों का आपस में मुक़ाबला करने से साफ़-साफ़ मालूम होता है कि दोनों में एक ही मक़सद के लिए एक ही मिसाल से दलील दी गई है और इनमें से हर एक दूसरी की तफ़सीर कर रही है।

शायद लोगों को ग़लत-फ़हमी "अ-फ़-बिनिअ्-मतिल्लाहि यज-हदून" (तो क्या ये अल्लाह की नेमत का इनकार करते हैं) के अलफ़ाज़ से हुई है। उन्होंने मिसाल देने के बाद उसी से जुड़ा हुआ यह जुमला देखकर समझा कि हो न हो इसका मतलब यही होगा कि अपने मातहतों की तरफ़ रिज़्क़ न फेर देना ही अल्लाह की नेमत का इनकार है। हालाँकि जो शख़्स क़ुरआन की कुछ भी समझ रखता है वह इस बात को जानता है कि अल्लाह की नेमतों का शुक्रिया अल्लाह के बजाय दूसरों को अदा करना इस किताब की निगाह में अल्लाह की नेमतों का इनकार है। यह बात क़ुरआन में इतनी ज़्यादा बार दोहराई गई है कि तिलावत करने और क़ुरआन में ग़ौर-फ़िक्र करने की आदत रखनेवालों को तो इसमें किसी तरह का कोई शक नहीं हो सकता, अलबत्ता इंडेक्सों की मदद से अपने मतलब की आयतें निकालकर लेख तैयार करनवाले लोग इससे नावाक़िफ़ हो सकते हैं।

अल्लाह की नेमत के इनकार का यह मतलब समझ लेने के बाद इस जुमले का यह मतलब

وَحَفَدَةً وَّرَزَقَكُمْ مِّنَ الطَّيِّبٰتِ ۭ اَفَبِالْبَاطِلِ يُؤْمِنُوْنَ وَبِنِعْمَتِ اللّٰهِ هُمْ يَكْفُرُوْنَ ﴿۷۲﴾ وَيَعْبُدُوْنَ مِنْ دُوْنِ اللّٰهِ مَا لَا يَمْلِكُ لَهُمْ رِزْقًا

दीं। फिर क्या ये लोग (यह सब कुछ देखते और जानते हुए भी) बातिल (असत्य) को मानते हैं[63] और अल्लाह के एहसान का इनकार करते हैं।[64] (73) और अल्लाह को

साफ़-साफ़ समझ में आ जाता है कि जब ये लोग मालिक और ग़ुलाम का फ़र्क़ ख़ूब जानते हैं, और ख़ुद अपनी ज़िन्दगी में हर वक़्त इस फ़र्क़ को सामने रखते हैं, तो क्या फिर एक अल्लाह ही के मामले में उन्हें इस बात पर ज़िद है कि उसके बन्दों को उसका साझीदार और हिस्सेदार ठहराएँ और जो नेमतें उन्होंने उससे पाई हैं उनका शुक्रिया उसके बन्दों को अदा करें?

63. "बातिल (असत्य) को मानते हैं", यानी यह बेबुनियाद और बेहक़ीक़त अक़ीदा रखते हैं कि उनकी क़िस्मतें बनाना और बिगाड़ना, उनकी मुराद पूरी करना और दुआएँ सुनना, उन्हें औलाद देना, उनको रोज़गार दिलावाना, उनके मुक़द्दमे जितवाना और उन्हें बीमारियों से बचाना कुछ देवियों-देवताओं और जिन्नों और अगले-पिछले बुज़ुर्गों के इख़्तियार में है।

64. अगरचे मक्का के मुशरिक इस बात से इनकार नहीं करते थे कि सारी नेमतें अल्लाह की दी हुई हैं, और इन नेमतों पर अल्लाह का एहसान मानने से भी उन्हें इनकार न था, लेकिन जो ग़लती वे करते थे वह यह थी कि इन नेमतों पर अल्लाह का शुक्रिया अदा करने के साथ-साथ वह उन बहुत-सी हस्तियों का शुक्रिया भी ज़बान और अमल से अदा करते थे, जिनको उन्होंने बिना किसी सुबूत और बिना किसी दलील के इस नेमत देने में दख़ल देनेवाला और साझीदार ठहरा रखा था। इसी चीज़ को क़ुरआन "अल्लाह के एहसान का इनकार" क़रार देता है। क़ुरआन में यह बात एक बुनियादी उसूल के तौर पर पेश की गई है कि एहसान करनेवाले के एहसान का शुक्रिया एहसान न करनवाले को अदा करना असल में एहसान करनेवाले के एहसान का इनकार करना है। इसी तरह क़ुरआन यह बात भी उसूल के तौर पर बयान करता है कि एहसान करनेवाले के बारे में बिना किसी दलील और सुबूत के यह गुमान कर लेना कि उसने ख़ुद अपनी मेहरबानी से यह एहसान नहीं किया है, बल्कि फ़ुलाँ शख़्स की वजह से, या फ़ुलाँ की रिआयत से, या फ़ुलाँ की सिफ़ारिश से, या फ़ुलाँ के दख़ल देने से किया है, यह भी दरअस्ल उसके एहसान का इनकार ही है।

ये दोनों उसूली बातें सरासर इनसाफ़ और आम अक़्ल के मुताबिक़ हैं। हर शख़्स ख़ुद जरा-सा ग़ौर करने से इनका सही होना समझ सकता है। मान लीजिए कि आप एक ज़रूरतमन्द आदमी पर तरस खाकर उसकी मदद करते हैं, और वह उसी वक़्त उठकर आपके सामने एक दूसरे आदमी का शुक्रिया अदा कर देता है जिसका उस मदद करने में कोई हाथ न था। आप चाहे अपने कुशादा (खुले) दिल होने की वजह से उसकी इस ग़लत हरकत को अनदेखा कर दें और आगे भी उसकी मदद करने का सिलसिला जारी रखें, मगर अपने दिल में यह ज़रूर समझेंगे कि

مِّنَ السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ شَيْـًٔا وَّلَا يَسْتَطِيْعُوْنَ ۝ فَلَا تَضْرِبُوْا لِلّٰهِ
الْاَمْثَالَ ۭ اِنَّ اللّٰهَ يَعْلَمُ وَاَنْتُمْ لَا تَعْلَمُوْنَ ۝ ضَرَبَ اللّٰهُ مَثَلًا عَبْدًا
مَّمْلُوْكًا لَّا يَقْدِرُ عَلٰي شَيْءٍ وَّمَنْ رَّزَقْنٰهُ مِنَّا رِزْقًا حَسَنًا فَهُوَ يُنْفِقُ

छोड़कर उनको पूजते हैं जिनके हाथ में न आसमानों से उन्हें कुछ भी रिज़्क़ देना है, न ज़मीन से और न यह काम वे कर ही सकते हैं? (74) तो अल्लाह के लिए मिसालें न गढ़ो।[65] अल्लाह जानता है, तुम नहीं जानते।

(75) अल्लाह एक मिसाल देता है।[66] एक तो है ग़ुलाम जो दूसरे का मातहत है और ख़ुद कोई इख़्तियार नहीं रखता। दूसरा आदमी ऐसा है जिसे हमने अपनी तरफ़ से अच्छी रोज़ी दी है और वह उसमें से खुले और छिपे ख़ूब ख़र्च करता है। बताओ, क्या ये दोनों

यह एक बहुत बदतमीज़ और एहसान-फ़रामोश आदमी है। फिर अगर पूछने पर आपको मालूम हो कि इस शख़्स ने यह हरकत यह समझते हुए की थी कि आपने उसकी जो कुछ भी मदद की है वह अपनी नेक दिली और फ़य्याज़ी (दानशीलता) की वजह से नहीं की बल्कि उस दूसरे शख़्स की ख़ातिर की है, हालाँकि यह हक़ीक़त न थी, तो आप ज़रूर ही इसे अपनी तौहीन समझेंगे। उसकी इस बेहूदा बहानेबाज़ी का साफ़ मतलब आपके नज़दीक यह होगा कि वह आपसे सख़्त बदगुमान है और आपके बारे में यह राय रखता है कि आप कोई रहमदिल और मेहरबान इनसान नहीं हैं, बल्कि सिर्फ़ किसी की दोस्ती और यारी का ख़याल करनेवाले आदमी हैं, चन्द लगे-बंधे दोस्तों के ज़रिए से कोई आए तो आप उसकी मदद उन दोस्तों की ख़ातिर कर देते हैं, वरना आपके हाथ से किसी को कुछ फ़ायदा नहीं पहुँच सकता।

65. "अल्लाह के लिए मिसालें न गढ़ो", यानी अल्लाह को दुनियावी बादशाहों और राजाओं-महाराजाओं की तरह न समझो कि जिस तरह कोई उनके दरबारियों और उनके क़रीबी कर्मचारियों के ज़रिए के बिना उन तक अपनी दरख़ास्त नहीं पहुँचा सकता, इसी तरह अल्लाह के बार में भी तुम यह गुमान करने लगो कि वह अपने शाही महल में फ़रिश्तों, वलियों और दूसरे क़रीबी लोगों के बीच घिरा बैठा है और किसी का कोई काम इन वास्तों के बिना उसके यहाँ से नहीं बन सकता।

66. यानी अगर मिसालों ही से बात समझानी है तो अल्लाह सही मिसालों से तुमको हक़ीक़त समझाता है। तुम जो मिसालें दे रहे हो वे ग़लत हैं, इसलिए तुम उनसे ग़लत नतीजे निकाल बैठते हो।

مِنْهُ سِرًّا وَّجَهْرًا ۭ هَلْ يَسْتَوٗنَ ۭ اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ ۭ بَلْ اَكْثَرُهُمْ لَا يَعْلَمُوْنَ ﴿٧٥﴾
وَضَرَبَ اللّٰهُ مَثَلًا رَّجُلَيْنِ اَحَدُهُمَآ اَبْكَمُ لَا يَقْدِرُ عَلٰي شَيْءٍ وَّهُوَ
كَلٌّ عَلٰي مَوْلٰىهُ ۙ اَيْنَـمَا يُوَجِّهْهُّ لَا يَاْتِ بِخَيْرٍ ۭ هَلْ يَسْتَوِيْ هُوَ ۙ وَمَنْ

बराबर हैं? —— अल-हम्दु लिल्लाह![67] मगर अकसर लोग (इस सीधी बात को) नहीं जानते।[68]

(76) अल्लाह एक और मिसाल देता है। दो आदमी हैं। एक गूँगा-बहरा है, कोई काम नहीं कर सकता, अपने मालिक पर बोझ बना हुआ है, जिधर भी वह उसे भेजे,

---

67. ऊपर आयत में जो सवाल किया गया है कि बताओ क्या दोनों बराबर हैं और फिर 'अल्हम्दुलिल्लाह' कहा गया है तो सवाल और 'अलहम्दुलिल्लाह' के बीच एक लतीफ़ ख़ला (सूक्ष्म रिक्तता) है जिसे भरने के लिए ख़ुद लफ़्ज़ 'अलहम्दुलिल्लाह' ही में साफ़ इशारा मौजूद है। ज़ाहिर है कि नबी (सल्ल.) की ज़बान से यह सवाल सुनकर मुशरिकों के लिए इसका यह जवाब देना तो किसी तरह मुमकिन न था कि दोनों बराबर हैं। ज़रूर ही इसके जवाब में किसी ने साफ़-साफ़ इक़रार किया होगा कि वाक़ई दोनों बराबर नहीं हैं, और किसी ने इस अन्देशे से ख़ामोशी इख़तियार कर ली होगी कि इक़रारी जवाब देने की सूरत में इस बात का भी इक़रार करना होगा जो इस दलील के नतीजे में पैदा होगी और उससे ख़ुद-ब-ख़ुद उनका शिर्क ग़लत साबित हो जाएगा। इसलिए नबी ने दोनों का जवाब पाकर फ़रमाया, 'अलहम्दुलिल्लाह! इक़रार करनेवालों के इक़रार पर भी 'अलहम्दुलिल्लाह' और ख़ामोश रह जानेवालों की ख़ामोशी पर भी 'अलहम्दुलिल्लाह'। पहली सूरत में इसका मतलब यह हुआ कि, "ख़ुदा का शुक्र है, इतनी बात तो तुम्हारी समझ में आई।" दूसरी सूरत में इसका मतलब यह है कि, "चुप हो गए? अहलहम्दुलिल्लाह! अपनी सारी हठधर्मियों के बावुजूद दोनों को बराबर कह देने की हिम्मत तुम भी न कर सके।"

68. यानी इसके बावजूद कि इनसानों के दरमियान वे साफ़ तौर पर अधिकारवाले और बेअधिकार के फ़र्क़ को महसूस करते हैं, और इस फ़र्क़ का ध्यान रखकर ही दोनों के साथ अलग-अलग रवैया अपनाते हैं, फिर भी वे ऐसे जाहिल व नादान बने हुए हैं कि ख़ालिक़ (पैदा करनेवाले) और मख़लूक़ (पैदा किए जानेवाले) का फ़र्क़ उनकी समझ में नहीं आता। ख़ालिक़ के वुजूद और सिफ़ात और हक़ों और इख़्तियार सबमें वे मख़लूक़ को उसका शरीक समझ रहे हैं और मख़लूक़ के साथ वह रवैया अपना रहे हैं जो सिर्फ़ ख़ालिक़ के साथ ही अपनाया जा सकता है। इस अस्बाब की दुनिया में कोई चीज़ माँगनी हो तो घर के मालिक से माँगेंगे, न कि घर के नौकर से। मगर तमाम मेहरबानियाँ करनेवाले से ज़रूरत की चीज़ें माँगनी हों तो कायनात के मालिक को छोड़कर उसके बन्दों के आगे हाथ फैला देंगे।

ع ١٠

يَأْمُرُ بِالْعَدْلِ ۙ وَهُوَ عَلٰى صِرَاطٍ مُّسْتَقِيْمٍ ﴿٧٦﴾ وَلِلّٰهِ غَيْبُ السَّمٰوٰتِ
وَالْاَرْضِ ۭ وَمَآ اَمْرُ السَّاعَةِ اِلَّا كَلَمْحِ الْبَصَرِ اَوْ هُوَ اَقْرَبُ ۭ اِنَّ اللّٰهَ

कोई भला काम उससे बन न आए। दूसरा शख़्स ऐसा है कि इनसाफ़ का हुक्म देता है और ख़ुद सीधे रास्ते पर क़ायम है। बताओ, क्या ये दोनों बराबर हैं?[69]

(77) और ज़मीन और आसमानों की छिपी हक़ीक़तों का इल्म तो अल्लाह ही को है[70], और क़ियामत के आने का मामला कुछ देर न लेगा मगर बस इतनी कि जिसमें आदमी की पलक झपक जाए, बल्कि इससे भी कुछ कम।[71] सच तो यह है कि अल्लाह

69. पहली मिसाल में अल्लाह और बनावटी माबूदों के फ़र्क़ को सिर्फ़ इख़्तियार और बेइख़्तियारी के एतिबार से नुमायाँ किया गया था। अब इस दूसरी मिसाल में वही फ़र्क़ और ज़्यादा खोलकर सिफ़ात के लिहाज़ से बयान किया गया है। मतलब यह है कि अल्लाह और इन बनावटी माबूदों के दरमियान फ़र्क़ सिर्फ़ इतना ही नहीं है कि एक अधिकार रखनेवाला मालिक है और दूसरा बेइख़्तियार ग़ुलाम, बल्कि इसके अलावा यह फ़र्क़ भी है कि यह ग़ुलाम न तुम्हारी पुकार सुनता है, न उसका जवाब दे सकता है, न कोई काम पूरे अधिकार से ख़ुद कर सकता है। उसकी अपनी ज़िन्दगी का सारा दारोमदार उसके मालिक की ज़ात पर है। और मालिक अगर कोई काम उसपर छोड़ दे तो वह कुछ भी नहीं बना सकता। इसके बरख़िलाफ़ उसके मालिक का हाल यह है कि सिर्फ़ बोलनेवाला ही नहीं, बल्कि हिकमत के साथ बोलनेवाला है। दुनिया को इनसाफ़ का हुक्म देता है, और सिर्फ़ सब कुछ करने का अधिकार ही नहीं रखता, बल्कि जो कुछ करता है सही करता है, सच्चाई के साथ और सही तरीक़े से करता है। बताओ यह कौन-सी अक़्लमन्दी है कि तुम ऐसे मालिक और ऐसे ग़ुलाम को एक जैसा समझ रहे हो?

70. बाद के जुमले से मालूम होता है कि यह अस्ल में जवाब है मक्का के इस्लाम-दुश्मनों के उस सवाल का जो वे अकसर नबी (सल्ल॰) से किया करते थे कि अगर वाक़ई वह क़ियामत आनेवाली है जिसकी तुम हमें ख़बर देते हो तो आख़िर वह किस तारीख़ को आएगी। यहाँ उनके सवाल को नक़्ल किए बिना उसका जवाब दिया जा रहा है।

71. यानी क़ियामत धीरे-धीरे किसी लम्बी मुद्दत में न आएगी, न उसके आने से पहले तुम दूर से उसको आते देखोगे कि संभल सको और कुछ उसके लिए तैयारी कर सको। वह तो किसी दिन अचानक पलक झपकते, बल्कि उससे भी कम वक़्त में आ जाएगी। लिहाज़ा जिसको ग़ौर करना हो संजीदगी के साथ ग़ौर करे, और अपने रवैये के बारे में जो फ़ैसला भी करना हो जल्दी कर ले। किसी को इस भरोसे पर न रहना चाहिए कि अभी तो क़ियामत दूर है, जब आने लगेगी तो अल्लाह से मामला ठीक कर लेंगे— तौहीद की तफ़सीर के दरमियान यकायक क़ियामत का यह ज़िक्र इसलिए किया गया है कि लोग तौहीद और शिर्क के दरमियान किसी एक अक़ीदे के

عَلٰى كُلِّ شَیْءٍ قَدِیْرٌ ﴿۷۷﴾ وَاللّٰهُ اَخْرَجَكُمْ مِّنْۢ بُطُوْنِ اُمَّهٰتِكُمْ لَا
تَعْلَمُوْنَ شَیْـًٔا ۙ وَّجَعَلَ لَكُمُ السَّمْعَ وَالْاَبْصَارَ وَالْاَفْـِٕدَةَ ۙ لَعَلَّكُمْ
تَشْكُرُوْنَ ﴿۷۸﴾ اَلَمْ یَرَوْا اِلَى الطَّیْرِ مُسَخَّرٰتٍ فِیْ جَوِّ السَّمَآءِ ؕ مَا
یُمْسِكُهُنَّ اِلَّا اللّٰهُ ؕ اِنَّ فِیْ ذٰلِكَ لَاٰیٰتٍ لِّقَوْمٍ یُّؤْمِنُوْنَ ﴿۷۹﴾

सब कुछ कर सकता है।

(78) अल्लाह ने तुम्हें तुम्हारी माओं के पेटों से निकाला इस हालत में कि तुम कुछ न जानते थे। उसने तुम्हें कान दिए, आँखें दीं और सोचनेवाले दिल दिए[72], इसलिए कि तुम शुक्रगुज़ार बनो।[73]

(79) क्या इन लोगों ने कभी परिन्दों को नहीं देखा कि आसमान की फ़ज़ा में किस तरह सधे हुए हैं? अल्लाह के सिवा किसने इनको थाम रखा है? इसमें बहुत-सी निशानियाँ हैं उन लोगों के लिए जो ईमान लाते हैं।

चुनने के सवाल को सिर्फ़ एक नज़रियाती सवाल न समझ बैठें। उन्हें यह एहसास रहना चाहिए कि एक फ़ैसले की घड़ी किसी नामालूम वक़्त पर अचानक आ जानेवाली है और उस वक़्त इसी चुनाव के सही या ग़लत होने पर आदमी की कामयाबी व नाकामी का दारोमदार होगा। इस बात से ख़बरदार करने के बाद फिर तक़रीर का सिलसिला शुरू हो जाता है जो ऊपर से चला आ रहा था।

72. यानी वे ज़रिए जिनसे तुम्हें दुनिया में हर तरह की जानकारी हासिल हुई और तुम इस लायक़ हुए कि दुनिया के काम चला सको। इनसान का बच्चा पैदाइश के वक़्त जितना बेबस और बेख़बर होता है उतना किसी जानवर का नहीं होता। मगर यह सिर्फ़ अल्लाह के दिए हुए इल्म (सुनने, देखने और सोचने-समझने) के ज़रिए ही हैं, जिनकी बदौलत वह तरक़्क़ी करके ज़मीन पर मौजूद तमाम चीज़ों पर हुक्मरानी करने के लायक़ बन जाता है।

73. यानी उस ख़ुदा के शुक्रगुज़ार जिसने ये अनमोल नेमतें तुमको दीं। इन नेमतों की इससे बढ़कर नाशुक्री और क्या हो सकती है कि इन कानों से आदमी सब कुछ सुने मगर एक ख़ुदा ही की बात न सुने, इन आँखों से सब कुछ देखे मगर एक ख़ुदा ही की आयतें न देखे और इस दिमाग़ से सब कुछ सोचे मगर एक यही बात न सोचे कि मुझपर एहसान करनवाला वह कौन है जिसने ये इनाम मुझे दिए हैं।

وَاللّٰهُ جَعَلَ لَكُمْ مِّنْۢ بُيُوْتِكُمْ سَكَنًا وَّجَعَلَ لَكُمْ مِّنْ جُلُوْدِ
الْاَنْعَامِ بُيُوْتًا تَسْتَخِفُّوْنَهَا يَوْمَ ظَعْنِكُمْ وَيَوْمَ اِقَامَتِكُمْ ۙ وَمِنْ
اَصْوَافِهَا وَاَوْبَارِهَا وَاَشْعَارِهَاۤ اَثَاثًا وَّمَتَاعًا اِلٰى حِيْنٍ ۝٨٠ وَاللّٰهُ
جَعَلَ لَكُمْ مِّمَّا خَلَقَ ظِلٰلًا وَّجَعَلَ لَكُمْ مِّنَ الْجِبَالِ اَكْنَانًا وَّجَعَلَ
لَكُمْ سَرَابِيْلَ تَقِيْكُمُ الْحَرَّ وَسَرَابِيْلَ تَقِيْكُمْ بَاْسَكُمْ ؕ كَذٰلِكَ يُتِمُّ

(80) अल्लाह ने तुम्हारे लिए तुम्हारे घरों को सुकून की जगह बनाया। उसने जानवरों की खालों से तुम्हारे लिए ऐसे मकान पैदा किए[74] जिन्हें तुम सफ़र और ठहरने, दोनों हालतों में हल्का पाते हो।[75] उसने जानवरों के ऊन फ़र (समूर) और ऊन और बालों से तुम्हारे लिए पहनने और बरतने की बहुत-सी चीज़े पैदा कर दीं, जो ज़िन्दगी की मुक़र्रर मुद्दत तक तुम्हारे काम आती हैं। (81) उसने अपनी पैदा की हुई बहुत-सी चीज़ों से तुम्हारे लिए साए का इन्तिज़ाम किया, पहाड़ों में तुम्हारे लिए पनाहगाहें बनाईं और तुम्हें ऐसे लिबास दिए जो तुम्हें गर्मी से बचाते हैं[76] और कुछ दूसरे लिबास जो आपस की जंग में तुम्हारी हिफ़ाज़त करते हैं।[77] इस तरह वह तुमपर अपनी नेमतें पूरी करता है[78]

74. यानी चमड़े के तम्बू जिनका चलन अरब में बहुत है।
75. यानी आप कूच करना चाहते हो तो इन्हें आसानी से तह करके उठा ले जाते हो और जब ठहरना चाहते हो तो आसानी से उनको खोलकर डेरा जमा लेते हो।
76. सर्दी से बचाने का ज़िक्र या तो इसलिए नहीं किया गया कि गर्मी में कपड़ों का इस्तेमाल इनसानी समाज का इन्तिहाई दर्जा है और इन्तिहाई दर्जे का ज़िक्र कर देने के बाद शुरुआती दर्जों के ज़िक्र की ज़रूरत नहीं रहती, या फिर इसे ख़ास तौर पर इसलिए बयान किया गया है कि जिन देशों में निहायत ख़तरनाक क़िस्म की गर्म हवाएँ चलती हैं वहाँ सर्दी के लिबास से भी बढ़कर गर्मी का लिबास अहमियत रखता है। ऐसे देशों में अगर आदमी सिर, गर्दन, कान और सारा जिस्म अच्छी तरह ढाँककर न निकले तो गर्म हवा उसे झुलसाकर रख दे, बल्कि कई बार तो आँखों को छोड़कर पूरा मुँह तक लपेट लेना पड़ता है।
77. यानी ज़िरह बकतर (कवच)।
78. नेमत पूरी होने से मुराद यह है कि अल्लाह तआला ज़िन्दगी के हर पहलू में इनसान की ज़रूरतों का पूरी बारीकी से जायज़ा लेता है और फिर एक-एक ज़रूरत को पूरा करने का

نِعْمَتَهٗ عَلَيْكُمْ لَعَلَّكُمْ تُسْلِمُوْنَ ﴿٨١﴾ فَاِنْ تَوَلَّوْا فَاِنَّمَا عَلَيْكَ الْبَلٰغُ
الْمُبِيْنُ ﴿٨٢﴾ يَعْرِفُوْنَ نِعْمَتَ اللّٰهِ ثُمَّ يُنْكِرُوْنَهَا وَاَكْثَرُهُمُ الْكٰفِرُوْنَ ﴿٨٣﴾ ع
وَيَوْمَ نَبْعَثُ مِنْ كُلِّ اُمَّةٍ شَهِيْدًا ثُمَّ لَا يُؤْذَنُ لِلَّذِيْنَ كَفَرُوْا وَلَا

शायद कि तुम फ़रमाँबरदार बनो। (82) अब अगर ये लोग मुँह मोड़ते हैं तो ऐ नबी! तुमपर साफ़-साफ़ हक़ का पैग़ाम पहुँचा देने के सिवा और कोई ज़िम्मेदारी नहीं है। (83) ये अल्लाह के एहसान को पहचानते हैं, फिर उसका इनकार करते हैं[79] और इनमें ज़्यादातर लोग ऐसे हैं जो हक़ को मानने के लिए तैयार नहीं हैं।

(84) (इन्हें कुछ होश भी है कि उस दिन क्या बनेगी) जबकि हम हर उम्मत (समुदाय) में से एक गवाह[80] खड़ा करेंगे, फिर इनकार करनेवालों को न दलीलें पेश करने

इन्तिज़ाम करता है। मिसाल के तौर पर इसी मामले को लीजिए कि बाहरी असरात से इनसान के जिस्म को बचाने की ज़रूरत थी। इसके लिए अल्लाह ने किस-किस पहलू से कितना-कितना और कैसा कुछ सरो-सामान पैदा किया, इसकी तफ़सील अगर कोई लिखने बैठे तो एक पूरी किताब तैयार हो जाए। यह मानो लिबास और मकान के पहलू में अल्लाह की नेमत का पूरा होना है। या मिसाल के तौर पर खाने-पीने के मामले को लीजिए। उसके लिए कितने बड़े पैमाने पर कैसी-कैसी अलग-अलग क़िस्मों के साथ कैसी-कैसी छोटी से छोटी ज़रूरतों तक का लिहाज़ करके अल्लाह तआला ने बेहदो-हिसाब ज़रिए जुटाए, उनका अगर कोई जायजा लेने बैठ तो शायद खाने के चीज़ों की क़िस्मों और उनके नामों की फ़ेहरिस्त (लिस्ट) ही एक मोटी किताब बन जाए। यह मानो खाने-पीने की चीज़ों के पहलू में अल्लाह की नेमत का पूरा होना है। इसी तरीक़े से अगर इनसानी ज़िन्दगी के एक-एक हिस्से का जायज़ा लेकर देखा जाए तो मालूम होगा कि हर हिस्से में अल्लाह ने हमपर अपनी नेमतें पूरी कर रखी हैं।

79. इनकार से मुराद वही रवैया है जिसका हम पहले ज़िक्र कर चुके हैं। इस्लाम को न माननेवाले मक्का के लोगों को इस बात से इनकार न था कि ये सारे एहसान अल्लाह ने उनपर किए हैं, मगर उनका अक़ीदा यह था कि अल्लाह ने ये एहसान उनके बुज़ुर्गों और देवताओं के दख़ल देने से किए हैं, और इसी वजह से वे उन एहसानों का शुक्रिया अल्लाह के साथ, बल्कि कुछ अल्लाह से भी बढ़कर उन बिचौलियों को अदा करते थे। इसी हरकत को अल्लाह तआला नेमत का इनकार और एहसान-फ़रामोशी और नाशुक्री बता रहा है।

80. यानी उस उम्मत का नबी, या कोई ऐसा शख़्स जिसने नबी के गुज़र जाने के बाद उस उम्मत को तौहीद और ख़ालिस ख़ुदा की दावत दी हो, शिर्क और शिर्कवाले अंधविश्वासों और रस्मों पर ख़बरदार किया हो, और क़ियामत के दिन की जवाबदेही से ख़बरदार कर दिया हो। यह इस

هُمْ يُسْتَعْتَبُوْنَ ﴿٨٤﴾ وَاِذَا رَاَ الَّذِيْنَ ظَلَمُوا الْعَذَابَ فَلَا يُخَفَّفُ
عَنْهُمْ وَلَا هُمْ يُنْظَرُوْنَ ﴿٨٥﴾ وَاِذَا رَاَ الَّذِيْنَ اَشْرَكُوْا شُرَكَآءَهُمْ قَالُوْا
رَبَّنَا هٰٓؤُلَآءِ شُرَكَآؤُنَا الَّذِيْنَ كُنَّا نَدْعُوْا مِنْ دُوْنِكَ ۚ فَاَلْقَوْا اِلَيْهِمُ
الْقَوْلَ اِنَّكُمْ لَكٰذِبُوْنَ ﴿٨٦﴾ وَاَلْقَوْا اِلَى اللّٰهِ يَوْمَئِذِ ا۟لسَّلَمَ وَضَلَّ

का मौक़ा दिया जाएगा[81], न उनसे तौबा व इस्तिग़फ़ार (क्षमा-याचना) ही की माँग की जाएगी।[82] (85) ज़ालिम लोग जब एक बार अज़ाब देख लेंगे तो उसके बाद न उनके अज़ाब में कोई कमी की जाएगी और न उन्हें एक लम्हा भर की मुहलत दी जाएगी। (86) और जब वे लोग, जिन्होंने दुनिया में शिर्क किया था, अपने ठहराए हुए शरीकों को देखेंगे तो कहेंगे, "ऐ परवरदिगार! यही हैं हमारे वे शरीक जिन्हें हम तुझे छोड़कर पुकारा करते थे।" इसपर उनके वे माबूद उन्हें साफ़ जवाब देंगे कि "तुम झूठे हो।"[83] (87) उस वक़्त ये सब अल्लाह के आगे झुक जाएँगे और उनकी वे सारी झूठी गढ़ी बातें रफ़ूचक्कर

बात की गवाही देगा कि मैंने हक़ का पैग़ाम इन लोगों को पहुँचा दिया था, इसलिए जो कुछ इन्होंने किया वह अनजाने में नहीं किया, बल्कि जानते-बूझते किया।

81. यह मतलब नहीं है कि उन्हें सफ़ाई पेश करने की इजाज़त न दी जाएगी, बल्कि मतलब यह है कि उनके जुर्म ऐसे खुले नाक़ाबिले-इनकार और लाजवाब कर देनेवाली गवाहियों से साबित कर दिए जाएँगे कि उनके लिए सफ़ाई पेश करने की कोई गुंजाइश न रहेगी।

82. यानी उस वक़्त उनसे यह नहीं कहा जाएगा कि अब अपने रब से अपने क़ुसूरों की माफ़ी माँग लो; क्योंकि वह फ़ैसले का वक़्त होगा, माफ़ी माँगने का वक़्त गुज़र चुका होगा। क़ुरआन और हदीस दोनों का इस बारे में कहना है कि तौबा व इस्तिग़फ़ार की जगह दुनिया है, न कि आख़िरत और दुनिया में भी इसका मौक़ा सिर्फ़ उसी वक़्त तक है जब तक मौत की निशानियाँ सामने नहीं आ जातीं। जिस वक़्त आदमी को यक़ीन हो जाए कि उसका आख़िरी वक़्त आ पहुँचा है उस वक़्त की तौबा क़बुल किए जाने के क़ाबिल नहीं है। मौत की सरहद में दाख़िल होते ही आदमी के अमल की मुहलत ख़त्म हो जाती है और सिर्फ़ इनाम या सज़ा ही का हक़दार होना बाक़ी रह जाता है।

83. इसका मतलब यह नहीं है कि वे अपनी जगह ख़ुद इस हक़ीक़त का इनकार करेंगे कि मुशरिक उन्हें ज़रूरत पूरी करने और मुश्किलें हल करने के लिए पुकारा करते थे, बल्कि असल में वे इस हक़ीक़त के बारे में अपनी जानकारी और मालूमात और उसपर अपनी रज़ामन्दी व ज़िम्मेदारी का इनकार करेंगे। वे कहेंगे कि हमने कभी तुमसे यह नहीं कहा था कि तुम ख़ुदा को छोड़कर

عَنْهُمْ مَّا كَانُوْا يَفْتَرُوْنَ ﴿٨٧﴾ اَلَّذِيْنَ كَفَرُوْا وَصَدُّوْا عَنْ سَبِيْلِ اللّٰهِ
زِدْنٰهُمْ عَذَابًا فَوْقَ الْعَذَابِ بِمَا كَانُوْا يُفْسِدُوْنَ ﴿٨٨﴾ وَيَوْمَ نَبْعَثُ
فِيْ كُلِّ اُمَّةٍ شَهِيْدًا عَلَيْهِمْ مِّنْ اَنْفُسِهِمْ وَجِئْنَا بِكَ شَهِيْدًا عَلٰى
هٰٓؤُلَآءِ ۭ وَنَزَّلْنَا عَلَيْكَ الْكِتٰبَ تِبْيَانًا لِّكُلِّ شَيْءٍ وَّهُدًى وَّرَحْمَةً

हो जाएँगी जो दुनिया में करते रहे थे।[84] (88) जिन लोगों ने ख़ुद कुफ़्र का रास्ता अपनाया और दूसरों को अल्लाह की राह से रोका, उन्हें हम अज़ाब पर अज़ाब देंगे[85] उस फ़साद (बिगाड़) के बदले जो वे दुनिया में पैदा करते रहे।

(89) (ऐ नबी! इन्हें उस दिन से ख़बरदार कर दो) जबकि हम हर उम्मत (समुदाय) में ख़ुद उसी के अन्दर से एक गवाह उठा खड़ा करेंगे जो उसके मुक़ाबले में गवाही देगा, और इन लोगों के मुक़ाबले में गवाही देने के लिए हम तुम्हें लाएँगे। और (यह उसी गवाही की तैयारी है कि) हमने यह किताब तुमपर उतार दी है जो हर चीज़ को साफ़-साफ़ बयान करनेवाली है[86] और हिदायत और रहमत और ख़ुशख़बरी है उन लोगों

हमें पुकारा करो, न हम तुम्हारी इस हरकत पर राज़ी थे, बल्कि हमें तो ख़बर तक न थी कि तुम हमें पुकार रहे हो। तुमने अगर हमें दुआ सुननेवाला, पुकार कर ज़वाब देनेवाला, हाथ थामनेवाला, फ़रियाद सुननेवाला क़रार दिया था तो यह सब बिलकुल झूठी बात थी जो तुमने गढ़ ली थी और इसके ज़िम्मेदार तुम ख़ुद थे। अब हमें इसकी ज़िम्मेदारी में लपेटने की कोशिश क्यों करते हो।

84. यानी ये सब ग़लत साबित होंगी। जिन-जिन सहारों पर वे दुनिया में भरोसा किए हुए थे वे सारे के सारे गुम हो जाएँगे। किसी फ़रियाद सुननेवाले को वहाँ फ़रियाद सुनने के लिए मौजूद न पाएँगे। कोई मुश्किलकुशा उनकी मुश्किल हल करने के लिए नहीं मिलेगा। कोई आगे बढ़कर यह कहनेवाला न होगा कि ये मुझे वसीला (ज़रिया) बनाते थे, इन्हें कुछ न कहा जाए।

85. यानी एक अज़ाब ख़ुद कुफ़्र (इनकार) करने का और दूसरा अज़ाब दूसरों को अल्लाह की राह से रोकने का।

86. यानी हर ऐसी चीज़ का साफ़-साफ़ बयान जिसपर हिदायत और गुमराही और कामयाबी व नाकामी का दारोमदार है, जिसका जानना सीधे रास्ते पर चलने के लिए ज़रूरी है, जिससे हक़ और बातिल (असत्य) का फ़र्क़ नुमायाँ होता है– ग़लती से लोग 'तिबयानल-लिकुल्लि शैइन' (हर चीज़ को साफ़-साफ़ बयान कर देनेवाली है) और इसके जैसी मानीवाली आयतों का मतलब

وَّبُشْرٰى لِلْمُسْلِمِيْنَ ﴿٨٩﴾ اِنَّ اللّٰهَ يَأْمُرُ بِالْعَدْلِ وَالْاِحْسَانِ وَاِيْتَآئِ ع ١٢/١٨

के लिए जो फ़रमाँबरदार हो गए हैं।[87]

(90) अल्लाह अदल (इनसाफ़) और एहसान और रिश्ते जोड़ने का हुक्म देता है[88]

यह ले लेते हैं कि क़ुरआन में सब कुछ बयान कर दिया गया है। फिर वे इसे निबाहने के लिए क़ुरआन से साइंस और फ़ुनून (कलाओं) के अजीब-अजीब मज़मून निकालने की कोशिश शुरू कर देते हैं।

87. यानी जो लोग आज इस किताब को मान लेंगे और फ़रमाँबरदारी की राह अपना लेंगे उनको यह ज़िन्दगी के हर मामले में सही रहनुमाई देगी और इसकी पैरवी की वजह से उनपर अल्लाह की रहमतें होंगी और उन्हें यह किताब ख़ुशख़बरी देगी कि फ़ैसले के दिन अल्लाह की अदालत से वे कामयाब होकर निकलेंगे। इसके बरख़िलाफ़ जो लोग इसे न मानेंगे वे सिर्फ़ यही नहीं कि हिदायत और रहमत से महरूम रहेंगे, बल्कि क़ियामत के दिन जब ख़ुदा का पैग़म्बर उनके मुक़ाबले में गवाही देने खड़ा होगा तो यही दस्तावेज़ उनके ख़िलाफ़ एक ज़बरदस्त दलील होगी; क्योंकि पैग़म्बर यह साबित कर देगा कि उसने यह चीज़ उन्हें पहुँचा दी थी जिसमें हक़ और बातिल का फ़र्क़ खोलकर रख दिया गया था।

88. इस छोटे से जुमले में तीन ऐसी चीज़ों का हुक्म दिया गया है जिनपर पूरे इनसानी समाज के दुरुस्त होने का दारोमदार है :

पहली चीज़ अदल (इनसाफ़) है जिसका तसव्वुर दो हमेशा रहनेवाली हक़ीक़तों से बना है। एक यह कि लोगों के दरमियान हुक़ूक़ में तवाज़ुन (सन्तुलन) और तनासुब (अनुपात) क़ायम हो। दूसरे यह कि हर एक को उसका हक़ पूरा-पूरा दे दिया जाए। उर्दू और हिन्दी ज़बान में इस मतलब को लफ़्ज़ 'इनसाफ़' और 'न्याय' में अदा किया जाता है, मगर यह लफ़्ज ग़लतफ़हमी पैदा करनेवाला है। इससे ख़ाह-मख़ाह यह ख़याल पैदा होता है कि दो आदमियों के बीच हक़ों का बाँटना आधे-आधे की बुनियाद पर हो और फिर इसी से 'अदल' का मतलब बराबर-बराबर बाँटना समझ लिया गया है जो सरासर फ़ितरत के ख़िलाफ़ है। दर अस्ल अदल जिस चीज़ का तक़ाज़ा करता है वह तवाज़ुन और तनासुब (सन्तुलन और अनुपात) है, न कि बराबरी। कुछ हैसियतों से तो अदल बेशक समाज के लोगों में बराबरी चाहता है, जैसे शरीयत के हक़ों में मगर कुछ दूसरी हैसियतों से बराबरी बिलकुल अदल के ख़िलाफ़ है, मसलन माँ-बाप और औलाद के बीच समाजी व अख़लाक़ी बराबरी, और आला दर्जे के काम करनेवालों और कमतर दर्जे के काम करनेवालों के बीच में मुआवज़ों की बराबरी। तो अल्लाह तआला ने जिस चीज़ का हुक्म दिया है वह हक़ों में बराबरी नहीं, बल्कि सन्तुलन और अनुपात है, और इस हुक्म का तक़ाज़ा यह है कि हर शख़्स को उसके अख़लाक़ी, समाजी, मआशी (आर्थिक), क़ानूनी और सियासी व रहन-सहन के हुक़ूक़ पूरी ईमानदारी के साथ अदा किए जाएँ।

दूसरी चीज़ एहसान है जिससे मुराद है अच्छा सुलूक, उदारतापूर्ण व्यवहार, हमदर्दी भरा रवैया,

रवादारी, अच्छा अख़लाक़, माफ़ी, एक-दूसरे की रिआयत, एक-दूसरे का ख़याल, दूसरे को उसके हक़ से कुछ ज़्यादा देना और ख़ुद अपने हक़ से कुछ कम पर राज़ी हो जाना। यह अद्ल से कुछ बढ़कर एक चीज़ है जिसकी अहमियत समाजी ज़िन्दगी में अद्ल से भी ज़्यादा है। अद्ल अगर समाज की बुनियाद है तो एहसान उसका जमाल (ख़ूबसूरती) और उसका कमाल (सबसे ऊँचा दर्जा) है। अद्ल अगर समाज को नागवारियों और तल्ख़ियों से बचाता है तो एहसान उसमें ख़ुशगवारियाँ और मिठास पैदा करता है। कोई समाज सिर्फ़ इस बुनियाद पर खड़ा नहीं रह सकता कि उसका हर फ़र्द (व्यक्ति) हर वक़्त नाप-तौलकर देखता रहे कि उसका क्या हक़ है और उसे वुसूल करके छोड़े, और दूसरे का कितना हक़ है, उसे बस उतना ही दे दे। ऐसे एक ठंडे और खुर्रे समाज में कशमकश तो न होगी मगर मुहब्बत और शुक्रगुज़ारी और कुशादा-दिली और क़ुरबानी और ख़ुलूस ख़ैर-ख़ाही की क़द्रों (मूल्यों) से वह महरूम रहेगा जो अस्ल ज़िन्दगी में आनन्द और मिठास पैदा करनेवाली और समाजी भलाइयों को बढ़ानेवाली क़द्रें हैं।

तीसरी चीज़ जिसका इस आयत में हुक्म दिया गया है सिला-रहमी (रिश्तों को जोड़ना) है जो रिश्तेदारों के मामले में एहसान की एक ख़ास सूरत तय करती है। इसका मतलब सिर्फ़ यही नहीं है कि आदमी अपने रिश्तेदारों के साथ अच्छा बर्ताव करे और ख़ुशी-ग़मी में उनके साथ शरीक हो और जायज़ हदों के अन्दर उनका हिमायती और मददगार बने, बल्कि इसका मतलब यह है कि हर हैसियत रखनेवाला शख़्स अपने माल पर सिर्फ़ अपने और अपने बाल-बच्चों ही के हक़ न समझे बल्कि अपने रिश्तेदारों के हक़ों को भी माने। अल्लाह की शरीअत हर ख़ानदान के ख़ुशहाल लोगों को इस बात का ज़िम्मेदार क़रार देती है कि वे अपने ख़ानदान के लोगों को भूखा-नंगा न छोड़ें। उसकी निगाह में एक समाज की इससे बदतर कोई हालत नहीं है कि उसके अन्दर एक शख़्स ऐश कर रहा हो और उसी के ख़ानदान में उसके अपने भाई-बन्धु रोटी-कपड़े तक को मुहताज हों। वह ख़ानदान को समाज का एक अहम हिस्सा क़रार देती है और यह उसूल पेश करती है कि हर ख़ानदान के ग़रीब लोगों का पहला हक़ अपने ख़ानदान के ख़ुशहाल लोगों पर है, फिर दूसरों पर उनके हक़ आते हैं। और हर ख़ानदान के ख़ुशहाल लोगों पर पहला हक़ उनके अपने ग़रीब रिश्तेदारों का है, फिर दूसरों के हक़ उनपर आते हैं। यही बात है जिसको नबी (सल्ल.) ने अपनी बहुत-सी बातों में साफ़-साफ़ बयान किया है। चुनाँचे कई हदीसों में यह बात साफ़-साफ़ बयान की गई कि आदमी के सबसे पहले हक़दार उसके माँ-बाप, उसके बीवी-बच्चे और उसके भाई-बहन हैं, फिर वे जो उनके बाद ज़्यादा क़रीब हों, और फिर जो उनके बाद ज़्यादा क़रीब हों। और यही उसूल है जिसकी बुनियाद पर हज़रत उमर (रज़ि.) ने एक यतीम बच्चे के चचेरे भाइयों को मजबूर किया कि वे उसकी परवरिश के ज़िम्मेदार हों और एक दूसरे यतीम के हक़ में फ़ैसला करते हुए आपने फ़रमाया कि अगर इसका कोई बहुत दूर का रिश्तेदार भी मौजूद होता तो मैं उसपर इसकी परवरिश लाज़िम कर देता —— अन्दाज़ा किया जा सकता है कि जिस समाज की हर इकाई (Unit) इस तरह अपने-अपने लोगों को संभाल ले उसमें मआशी हैसियत से कितनी ख़ुशहाली, सामाजिक हैसियत से कितनी मिठास और अख़लाक़ी हैसियत से कितनी पाकीज़गी व बुलन्दी पैदा हो जाएगी।

ذِي الْقُرْبٰى وَيَنْهٰى عَنِ الْفَحْشَآءِ وَالْمُنْكَرِ وَالْبَغْيِ ۚ يَعِظُكُمْ لَعَلَّكُمْ
تَذَكَّرُوْنَ ﴿٩٠﴾ وَاَوْفُوْا بِعَهْدِ اللّٰهِ اِذَا عٰهَدْتُّمْ وَلَا تَنْقُضُوا الْاَيْمَانَ
بَعْدَ تَوْكِيْدِهَا وَقَدْ جَعَلْتُمُ اللّٰهَ عَلَيْكُمْ كَفِيْلًا ؕ اِنَّ اللّٰهَ يَعْلَمُ مَا
تَفْعَلُوْنَ ﴿٩١﴾ وَلَا تَكُوْنُوْا كَالَّتِيْ نَقَضَتْ غَزْلَهَا مِنْۢ بَعْدِ قُوَّةٍ اَنْكَاثًا ؕ
تَتَّخِذُوْنَ اَيْمَانَكُمْ دَخَلًاۢ بَيْنَكُمْ اَنْ تَكُوْنَ اُمَّةٌ هِيَ اَرْبٰى مِنْ اُمَّةٍ ؕ

और बुराई और बेहयाई और ज़ुल्म व ज़्यादती से मना करता है।[89] वह तुम्हें नसीहत करता है, ताकि तुम सबक़ लो। (91) अल्लाह के अहद (वादा) को पूरा करो जबकि तुमने उससे कोई अहद बाँधा हो, और अपनी क़समें पक्की करने के बाद तोड़ न डालो, जबकि तुम अल्लाह को अपने ऊपर गवाह बना चुके हो। अल्लाह तुम्हारे सब कामों की ख़बर रखता है। (92) तुम्हारी हालत उस औरत की-सी न हो जाए जिसने आप ही मेहनत से सूत काता और फिर आप ही उसे टुकड़े-टुकड़े कर डाला।[90] तुम अपनी क़समों को आपस के मामलों में चालबाज़ी और धोखादेही का हथियार बनाते हो ताकि एक

---

89. ऊपर की तीन भलाइयों के मुक़ाबले में अल्लाह तीन बुराइयों से रोकता है जो इन्फ़िरादी (व्यक्तिगत) हैसयित से लोगों को, और समाजी हैसियत से पूरे समाज को ख़राब करनेवाली हैं। पहली चीज़ "फ़हशा" है जिसमें तमाम बेहूदा और शर्मनाक काम आ जाते हैं। हर वह बुराई जो अपने आप में निहायत बुरी हो, फ़ुहश (अश्लील) है। जैसे कंजूसी, ज़िना (व्यभिचार), नंगापन, हमजिंसियत (समलैंगिकता), जिन औरतों से शादी हराम है उनसे शादी करना, चोरी करना, शराब पीना, भीख माँगना, गालियाँ बकना और बदकलामी करना वग़ैरह। इसी तरह खुल्लम-खुल्ला बुरे काम करना और बुराइयों को फैलाना भी फ़ुहश है, मसलन झूठा प्रोपगंडा, आरोप लगाना, छिपे जुर्मों को फैलाना, बदकारियों पर उभारनेवाली कहानियाँ और ड्रामे और फ़िल्में, नंगी तस्वीरें, औरतों का बन-सँवरकर आम लोगों के सामने आना, खुल्लम-खुल्ला मर्दों और औरतों का आपस में घुलना-मिलना और स्टेज पर औरतों का नाचना-थिरकना और आदाएँ दिखाना वग़ैरह।
दूसरी चीज़ 'मुनकर' है जिससे मुराद हर वह बुराई है जिसे इनसान आम तौर पर बुरा जानते हैं, हमेशा से बुरा कहते रहे हैं, और अल्लाह की तमाम शरीअतों ने जिससे मना किया है।
तीसरी चीज़ 'बग़्य' (सरकशी) है जिसका मतलब है हद पार करना और दूसरे के हक़ मारना, चाहे वे हक़ अल्लाह के हों या दुनियावालों के।

90. यहाँ तरतीब से तीन तरह के मुआहदों (वचनों) को उनकी अहमियत के लिहाज़ से

إِنَّمَا يَبْلُوكُمُ اللَّهُ بِهِ ۚ وَلَيُبَيِّنَنَّ لَكُمْ يَوْمَ الْقِيَامَةِ مَا كُنتُمْ فِيهِ
تَخْتَلِفُونَ ﴿٩٢﴾ وَلَوْ شَاءَ اللَّهُ لَجَعَلَكُمْ أُمَّةً وَاحِدَةً وَلَٰكِن يُضِلُّ مَن

क़ौम दूसरी क़ौम से बढ़कर फ़ायदे हासिल करे, हालाँकि अल्लाह उस अहद व समझौते के ज़रिए से तुमको आज़माइश में डालता है[91], और ज़रूर वह क़ियामत के दिन तुम्हारे तमाम इख़्तिलाफ़ों की हक़ीक़त तुमपर खोल देगा।[92] (93) अगर अल्लाह की मर्ज़ी यह

अलग-अलग बयान करके उनकी पाबन्दी का हुक्म दिया गया है। एक वह अहद जो इनसान ने ख़ुदा के साथ बाँधा हो, और यह अपनी अहमियत में सबसे बढ़कर है। दूसरा वह अहद जो एक इनसान या गरोह ने दूसरे इनसान या गरोह से बाँधा हो और उसपर अल्लाह की क़सम खाई हो, या किसी न किसी तौर पर अल्लाह का नाम लेकर अपनी बात की मज़बूती का यक़ीन दिलाया हो। यह दूसरे दर्जे की अहमियत रखता है। तीसरा वह अहद व पैमान जो अल्लाह का नाम लिए बिना किया गया हो। इसकी अहमियत ऊपर की दोनों क़िस्मों के बाद है। लेकिन पाबन्दी इन सबकी ज़रूरी है और ख़िलाफ़वर्ज़ी इनमें से किसी की भी जायज़ नहीं है।

91. यहाँ ख़ास तौर से अहद तोड़ने की उस सबसे बुरी क़िस्म पर मलामत (निंदा) की गई है जो दुनिया में सबसे बढ़कर बिगाड़ की वजह होती है और जिसे बड़े-बड़े ऊँचे दर्जे के लोग भी सवाब का काम समझकर करते और अपनी क़ौम से तारीफ़ पाते हैं। क़ौमों और गरोहों की राजनीतिक, मआशी (आर्थिक) और मज़हबी कशमकश में यह आए दिन होता रहता है कि एक क़ौम का लीडर एक वक़्त में दूसरी क़ौम से एक समझौता करता है और दूसरे वक़्त में सिर्फ़ अपने क़ौमी फ़ायदे की ख़ातिर या तो उसे खुलेआम तोड़ देता है या अन्दर ही अन्दर उसकी ख़िलाफ़वर्ज़ी करके नाजायज़ फ़ायदा उठाता है। ये हरकतें ऐसे-ऐसे लोग तक कर गुज़रते हैं जो अपनी ज़ाती ज़िन्दगी में बड़े सच्चे होते हैं। और इन हरकतों पर सिर्फ़ यही नहीं कि उनकी पूरी क़ौम में से मलामत की कोई आवाज़ नहीं उठती, बल्कि हर तरफ़ से उनकी पीठ ठोंकी जाती है और इस तरह की चालबाज़ियों को डिप्लोमेसी का कमाल समझा जाता हैं। अल्लाह तआला इसपर ख़बरदार करता है कि हर अहद अस्ल में अहद करनेवाले शख़्स और क़ौम के अख़लाक़ व ईमानदारी की आज़माइश है और जो लोग इस आज़माइश में नाकाम होंगे वे अल्लाह की अदालत में पकड़ से न बच सकेंगे।

92. यानी यह फ़ैसला तो क़ियामत ही के दिन होगा कि जिन इख़्तिलाफ़ों की वजह से तुम्हारे बीच कशमकश हो रही है उनमें सच्चाई पर कौन है और झूठ पर कौन। लेकिन बहरहाल, चाहे कोई सरासर हक़ पर ही क्यों न हो, और उसका दुश्मन बिलकुल गुमराह और बातिल-परस्त (असत्यवादी) ही क्यों न हो, उसके लिए यह किसी तरह जायज़ नहीं हो सकता कि वह अपने गुमराह दुश्मन के मुक़ाबले में अहद तोड़ने और झूठ बोलने और धोखा देने के हथियार इस्तेमाल

يَّشَآءُ وَيَهْدِيْ مَنْ يَّشَآءُ ۗ وَلَتُسْـَٔلُنَّ عَمَّا كُنْتُمْ تَعْمَلُوْنَ ۝٩٣

होती (कि तुममें कोई इख़्तिलाफ़ न हो) तो वह तुम सबको एक ही उम्मत बना देता[93], मगर वह जिसे चाहता है गुमराही में डालता है और जिसे चाहता है सीधा रास्ता दिखा देता है।[94] और ज़रूर तुमसे तुम्हारे आमाल की पूछ-गच्छ होकर रहेगी।

करे। अगर वह ऐसा करेगा तो क़ियामत के दिन अल्लाह के इम्तिहान में नाकाम होगा, क्योंकि हक़्क़-परस्ती सिर्फ़ नज़रिये और मक़सद ही में सच्चाई की माँग नहीं करती, काम के तरीक़े और ज़रिए में भी सच्चाई ही चाहती है। यह बात ख़ास तौर से उन मज़हबी गरोहों को ख़बरदार करने के लिए कही जा रही है जो हमेशा इस ग़लत-फ़हमी में मुब्तला रहे हैं कि हम चूँकि ख़ुदा के तरफ़दार हैं और हमारे सामनेवाला ख़ुदा का बाग़ी (विद्रोही) है इसलिए हमें हक़्क़ पहुँचता है कि उसे जिस तरीक़े से भी हो सके नुक़सान पहुँचाएँ। हमपर ऐसी कोई पाबन्दी नहीं है कि ख़ुदा के बाग़ियों के साथ मामला करने में भी सच्चाई, ईमानदारी और वादा पूरा करने का ख़याल रखें। ठीक यही बात थी जो अरब के यहूदी कहा करते थे कि "लै-स अलैना फ़िल उम्मिय्यीन" यानी अरब के मुशरिकों के मामले में हमपर कोई पाबन्दी नहीं है। उनसे हर तरह की ख़ियानत की जा सकती है, जिस चाल और तदबीर से भी ख़ुदा के प्यारों का भला हो और दुश्मनों को नुक़सान पहुँचे वह बिलकुल जायज़ है, उसपर कोई पूछ-गच्छ न होगी।

93. यहाँ पिछले मज़मून (विषय) को और ज़्यादा तफ़सील से बयान किया गया है। इसका मतलब यह है कि अगर कोई अपने आपको अल्लाह का तरफ़दार समझकर भले और बुरे हर तरीक़े से अपने मज़हब को (जिसे वह ख़ुदाई मज़हब समझ रहा है) बढ़ावा देने और दूसरे मज़हबों को मिटा देने की कोशिश करता है, तो उसकी यह हरकत सरासर अल्लाह तआला के मंशा के ख़िलाफ़ है; क्योंकि अगर अल्लाह की मर्ज़ी वाक़ई यह होती कि इनसान से मज़हबी इख़्तिलाफ़ का इख़्तियार छीन लिया जाए और चाहे-अनचाहे सारे इनसानों को एक ही मज़हब की पैरवी करनेवाला बनाकर छोड़ा जाए तो उसके लिए अल्लाह को अपने नाम के 'तरफ़दारों' की और उनके ओछे हथकंडों से मदद लेने की कोई ज़रूरत न थी। यह काम तो वह ख़ुद अपनी ताक़त से कर सकता था। वह सबको ईमानवाला और फ़रमाँबरदार पैदा कर देता और कुफ़्र (इनकार) व गुनाह (नाफ़रमानी) की ताक़त छीन लेता। फिर किसकी मजाल थी कि ईमान और फ़रमाँबरदारी की राह से बाल बराबर भी हिल सकता?

94. यानी इनसान को इख़्तियार व चुनने की आज़ादी अल्लाह ने ख़ुद ही दी है, इसलिए इनसानों की राहें दुनिया में अलग-अलग हैं। कोई गुमराही की तरफ़ जाना चाहता है और अल्लाह उसके लिए गुमराही के असबाब जुटा देता है, और कोई सीधी राह का तलबगार होता है और अल्लाह उसकी हिदायत का इन्तिज़ाम कर देता है।

وَلَا تَتَّخِذُوٓا اَيۡمَانَكُمۡ دَخَلًا بَيۡنَكُمۡ فَتَزِلَّ قَدَمٌۢ بَعۡدَ ثُبُوۡتِهَا
وَتَذُوۡقُوا السُّوۡٓءَ بِمَا صَدَدۡتُّمۡ عَنۡ سَبِيۡلِ اللّٰهِ‌ۚ وَلَكُمۡ عَذَابٌ عَظِيۡمٌ ﴿۹۴﴾
وَلَا تَشۡتَرُوۡا بِعَهۡدِ اللّٰهِ ثَمَنًا قَلِيۡلًا‌ ؕ اِنَّمَا عِنۡدَ اللّٰهِ هُوَ خَيۡرٌ لَّكُمۡ اِنۡ
كُنۡتُمۡ تَعۡلَمُوۡنَ ﴿۹۵﴾ مَا عِنۡدَكُمۡ يَنۡفَدُ وَمَا عِنۡدَ اللّٰهِ بَاقٍ‌ؕ وَلَنَجۡزِيَنَّ

(94) (और ऐ मुसलमानो!) तुम अपनी क़समों को आपस में एक-दूसरे को धोखा देने का ज़रिआ न बना लेना। कहीं ऐसा न हो कि कोई क़दम जमने के बाद उखड़ जाए।[95] और तुम इस जुर्म की सज़ा में कि तुमने लोगों को अल्लाह की राह से रोका, बुरा नतीजा देखो और कड़ी सज़ा भुगतो। (95) अल्लाह के अहद[96] को थोड़े-से फ़ायदे के बदले न बेच डालो[97], जो कुछ अल्लाह के पास है वह तुम्हारे लिए ज़्यादा अच्छा है, अगर तुम जानो। (96) जो कुछ तुम्हारे पास है वह ख़र्च हो जानेवाला है और जो कुछ अल्लाह के पास है वही बाक़ी रहनेवाला है, और हम ज़रूर सब्र से काम लेनेवालों को[98]

95. यानी कोई शख़्स इस्लाम के सच होने को मान लेने के बाद तुम्हारी बदअख़लाक़ी देखकर इस दीन से नफ़रत करने लगे और इस वजह से वह ईमानवालों के गरोह में शामिल होने से रुक जाए कि इस गरोह के जिन लोगों से उसको वास्ता पड़ा हो उनका अख़लाक़ और मामलों में उसने इस्लाम के इनकारियों से कुछ भी अलग न पाया हो।

96 यानी उस अहद को जो तुमने अल्लाह के नाम पर किया हो, या अल्लाह के दीन के नुमाइन्दा होने की हैसियत से किया हो।

97. यह मतलब नहीं है कि उसे बड़े फ़ायदे के बदले बेच सकते हो, बल्कि मतलब यह है कि दुनिया का जो फ़ायदा भी है वह अल्लाह के अहद की क़ीमत में थोड़ा है। इसलिए इस बहुत ही क़ीमती चीज़ को उस छोटी चीज़ के बदले बेचना बहरहाल घाटे का सौदा है।

98. "सब्र के काम लेनेवालों को" यानी उन लोगों को जो हर लालच और ख़ाहिश और मन के जज़्बों के मुक़ाबले में हक़ और सच्चाई पर क़ायम रहें, हर उस नुक़सान को बरदाश्त कर लें जो इस दुनिया में सच्चाई का रवैया अपनाने से पहुँचता हो, हर उस फ़ायद को ठुकरा दें जो दुनिया में नाज़ायज़ तरीक़े अपनाने से हासिल हो सकता हो, और अच्छे अमल के फ़ायदेमन्द नतीजों के लिए उस वक़्त तक इन्तिज़ार करने के लिए तैयार हों जो मौजूदा दुनियावी ज़िन्दगी ख़त्म हो जाने के बाद दूसरी दुनिया में आनेवाला है।

الَّذِيْنَ صَبَرُوْٓا اَجْرَهُمْ بِاَحْسَنِ مَا كَانُوْا يَعْمَلُوْنَ ۝٩٦ مَنْ عَمِلَ صَالِحًا
مِّنْ ذَكَرٍ اَوْ اُنْثٰى وَهُوَ مُؤْمِنٌ فَلَنُحْيِيَنَّهٗ حَيٰوةً طَيِّبَةً ۚ وَلَنَجْزِيَنَّهُمْ
اَجْرَهُمْ بِاَحْسَنِ مَا كَانُوْا يَعْمَلُوْنَ ۝٩٧ فَاِذَا قَرَاْتَ الْقُرْاٰنَ فَاسْتَعِذْ
بِاللّٰهِ مِنَ الشَّيْطٰنِ الرَّجِيْمِ ۝٩٨ اِنَّهٗ لَيْسَ لَهٗ سُلْطٰنٌ عَلَى الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا

उनके अज्र (इनाम) उनके बेहतरीन आमाल के मुताबिक़ देंगे। (97) जो शख़्स भी अच्छा काम करेगा, चाहे वह मर्द हो या औरत, बशर्ते कि हो वह ईमानवाला, उसे हम दुनिया में पाकीज़ा ज़िन्दगी बसर कराएँगे[99], और (आख़िरत में) ऐसे लोगों को उनके बदले उनके बेहतरीन आमाल के मुताबिक़ देंगे।[100]

(98) फिर जब तुम क़ुरआन पढ़ने लगो तो फिटकारे हुए शैतान से अल्लाह की पनाह माँग लिया करो।[101] (99) उसे उन लोगों पर ग़लबा नहीं हासिल होता जो ईमान

99. इस आयत में इस्लाम के माननेवालों और इस्लाम के न माननेवालों दोनों ही गरोहों के उन तमाम कमनज़र और बेसब्र लोगों की ग़लत-फ़हमी दूर की गई है, जो यह समझते हैं कि सच्चाई और ईमानदारी और परहेज़गारी का रवैया अपनाने से आदमी की आख़िरत चाहे बन जाती हो मगर उसकी दुनिया ज़रूर बिगड़ जाती है। अल्लाह तआला उनके जवाब में कहता है कि तुम्हारा यह ख़्याल ग़लत है। इस सही रवैये से सिर्फ़ आख़िरत ही नहीं बनती, दुनिया भी बनती है। जो लोग हक़ीक़त में ईमानदार और पाकबाज़ और मामले के खरे होते हैं उनकी दुनियावी ज़िन्दगी भी बेईमान और बद-अमल लोगों के मुक़ाबले में साफ़ तौर से बेहतर रहती है। जो साख़ और सच्ची इज़्ज़त अपनी बेदाग़ सीरत की वजह से उन्हें मिलती है वह दूसरों को नहीं मिलती। जो सुथरी और पाकीज़ा कामयाबियाँ उन्हें हासिल होती हैं वे उन लोगों को नहीं मिलतीं जिनकी हर कामयाबी ग़न्दे और घिनौने तरीक़ों का नतीजा होती है। वे मामूली रहन-सहन के बावजूद भी दिल के जिस इत्मीनान और ज़मीर (अन्तरात्मा) की जिस ठण्डक से भरे होते हैं उसका कोई मामूली-सा हिस्सा भी महलों में रहनेवाले बुराइयों और गुनाहों में पड़े हुए लोग नहीं पा सकते।

100. यानी आख़िरत में उनका मर्तबा उनके बेहतर से बेहतर आमाल के लिहाज़ से मुक़र्रर होगा। दूसरे अल्फ़ाज़ में जिस शख़्स ने दुनिया में छोटी और बड़ी, हर तरह की नेकियाँ की होंगी उसे वह ऊँचा मर्तबा दिया जाएगा जिसका वह अपनी बड़ी से बड़ी नेकी के लिहाज़ से हक़दार होगा।

101. इसका मतलब सिर्फ़ इतना ही नहीं है कि बस ज़बान से "अऊज़ु बिल्लाहि मिनश-शैतानिर्रजीम" (मैं पनाह लेता हूँ अल्लाह की धुतकारे हुए शैतान से) कह दिया जाए, बल्कि

وَعَلٰى رَبِّهِمْ يَتَوَكَّلُوْنَ ﴿٩٩﴾ اِنَّمَا سُلْطٰنُهٗ عَلَى الَّذِيْنَ يَتَوَلَّوْنَهٗ وَالَّذِيْنَ

ع هُمْ بِهٖ مُشْرِكُوْنَ ﴿١٠٠﴾ وَاِذَا بَدَّلْنَآ اٰيَةً مَّكَانَ اٰيَةٍ ۙ وَّاللّٰهُ اَعْلَمُ بِمَا

يُنَزِّلُ قَالُوْٓا اِنَّمَآ اَنْتَ مُفْتَرٍ ۭ بَلْ اَكْثَرُهُمْ لَا يَعْلَمُوْنَ ﴿١٠١﴾ ———

लाते और अपने रब पर भरोसा करते हैं। (100) उसका ज़ोर तो उन्हीं लोगों पर चलता है जो उसको अपना सरपरस्त बनाते और उसके बहकाने से शिर्क करते हैं।

(101) जब हम एक आयत की जगह दूसरी आयत उतारते हैं —— और अल्लाह बेहतर जानता है कि वह क्या उतारे —— तो ये लोग कहते हैं कि तुम यह क़ुरआन ख़ुद गढ़ते हो।[102] अस्ल बात यह है कि इनमें से अक्सर लोग हक़ीक़त को नहीं जानते हैं।

इसके साथ सचमुच दिल में यह ख़्वाहिश और अमली तौर पर यह कोशिश भी होनी चाहिए कि आदमी क़ुरआन पढ़ते वक़्त शैतान के गुमराह करनेवाले वसवसों (बुरे ख़यालों) से बचा रहे, ग़लत और बेवजह के शक-शुब्हों में न पड़े, क़ुरआन की हर बात को उसकी सही रौशनी में देखे, और अपने ख़ुद के गढ़े हुए नज़रिये या बाहर से हासिल किए हुए ख़यालात की मिलावट से क़ुरआन के अलफ़ाज़ को वे मतलब न पहनाने लगे जो अल्लाह तआला के मंशा के ख़िलाफ़ हों। इसके साथ आदमी के दिल में यह एहसास भी मौजूद होना चाहिए कि शैतान सबसे बढ़कर जिस चीज़ के पीछे पड़ा है वह यही है कि इनसान क़ुरआन से हिदायत न हासिल करने पाए। यही वजह है कि आदमी जब इस किताब की तरफ़ रूजू करता है तो शैतान उसे बहकाने और हिदायत पाने से रोकने और सोचने-समझने की ग़लत राहों पर डालने के लिए एड़ी-चोटी का ज़ोर लगा देता है। इसलिए आदमी को इस किताब को पढ़ते वक़्त बहुत ही चौकन्ना रहना चाहिए और हर वक़्त ख़ुदा से मदद माँगते रहना चाहिए कि कहीं शैतान की उकसाहटें उसे हिदायत के इस सरचश्मे से फ़ायदा उठाने से महरूम न कर दें; क्योंकि जिसने यहाँ से हिदायत न पाई वह फिर कहीं हिदायत न पा सकेगा और जो इस किताब से गुमराही हासिल कर बैठा उसे फिर दुनिया की कोई चीज़ गुमराहियों के चक्कर से न निकाल सकेगी।

बात के इस सिलसिले में यह आयत जिस ग़रज़ के लिए आई है वह यह है कि आगे चलकर उन एतिराज़ों का जवाब दिया जा रहा है जो मक्का के मुशरिक क़ुरआन मजीद पर किया करते थे। इसलिए पहले भूमिका के तौर पर यह कहा गया कि क़ुरआन को उसकी असली रौशनी में सिर्फ़ वही शख़्स देख सकता है जो शैतान के गुमराह करनेवाले वसवसे डालने से चौकन्ना हो और उनसे बचे रहने के लिए अल्लाह से पनाह माँगे। वरना शैतान कभी आदमी को इस क़ाबिल नहीं रहने देता कि वह सीधी तरह क़ुरआन को और उसकी बातों को समझ सके।

102. एक आयत की जगह दूसरी आयत उतारने से मुराद एक हुक्म के बाद दूसरा हुक्म भेजना भी हो सकता है; क्योंकि क़ुरआन मजीद के हुक्म थोड़े-थोड़े करके उतारे गए हैं और कई बार एक

قُلْ نَزَّلَهٗ رُوْحُ الْقُدُسِ مِنْ رَّبِّكَ بِالْحَقِّ لِيُثَبِّتَ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا

(102) इनसे कहो कि इसे तो 'रूहुल-क़ुदुस' (पवित्र आत्मा) ने ठीक-ठीक मेरे रब की तरफ़ से थोड़ा-थोड़ा करके उतारा है[103] ताकि ईमान लानेवालों के ईमान को मज़बूत

ही मामले में कुछ साल के वक़्फ़ों से एक के बाद दूसरा दो-दो, तीन-तीन हुक्म भेजे गए हैं। मिसाल के तौर पर शराब का मामला, या ज़िना (व्यभिचार) की सज़ा का मामला। लेकिन हमको यह मानी लेने में इस वजह से झिझक है कि सूरा नहल की यह आयत मक्की दौर में उतरी है, और जहाँ तक हमें मालूम है इस दौर में हुक्मों को सिलसिलेवार थोड़ा-थोड़ा उतारने की कोई मिसाल पेश नहीं आई थी। इसलिए हम यहाँ "एक आयत की जगह दूसरी आयत उतारने" का मतलब यह समझते हैं कि क़ुरआन मजीद की अलग-अलग जगहों पर कभी एक मज़मून को एक मिसाल से समझाया गया है और कभी वही मज़मून समझाने के लिए दूसरी मिसाल से काम लिया गया है। एक ही क़िस्सा बार-बार आया है और हर बार उसे दूसरे अलफ़ाज़ में बयान किया गया है। एक मामले का कभी एक पहलू पेश किया गया है और कभी उसी मामले का दूसरा पहलू सामने लाया गया है। एक बात के लिए कभी एक दलील पेश की गई है और कभी दूसरी दलील; एक बात एक वक़्त में मुख़्तसर तौर पर कही गई है और दूसरे वक़्त में तफ़सील के साथ। यही चीज़ थी जिसे मक्का के इस्लाम-दुश्मन इस बात की दलील ठहराते थे कि मुहम्मद (सल्ल॰) अल्लाह की पनाह, यह क़ुरआन ख़ुद गढ़ते हैं। उनकी दलील यह थी कि अगर यह कलाम अल्लाह की तरफ़ से नाज़िल होता तो पूरी बात एक ही बार में कह दी जाती, अल्लाह कोई इनसान की तरह कम इल्म रखनेवाला थोड़ा ही है कि सोच-सोचकर बात करे, धीरे-धीरे मालूमात हासिल करता रहे, और एक बात ठीक बैठती नज़र न आए तो दूसरे तरीक़े से बात करे। यह तो इनसानी इल्म की कमज़ोरियाँ हैं जो तुम्हारे इस कलाम में नज़र आ रही हैं।

103. 'रुहुल-क़ुदुस' का लफ़्ज़ी तर्जमा है 'पाक रूह' (पवित्र आत्मा) या 'पाकीज़गी की रूह' और इस्तिलाहन (पारिभाषिक रूप से) यह लक़ब हज़रत जिब्रील (अलैहि॰) को दिया गया है। यहाँ वह्य लानेवाले फ़रिश्ते का नाम लेने के बजाय उसका लक़ब इस्तेमाल करने का मक़सद सुननेवालों को इस हक़ीक़त पर ख़बरदार करना है कि इस कलाम को एक ऐसी रूह लेकर आ रही है जो इनसानी कमज़ोरियों और ख़राबियों से पाक है। वह न ख़ियानत करनेवाली है कि अल्लाह कुछ भेजे और वह अपनी तरफ़ से कमी-बेशी करके कुछ और बना दे। न झूठ बोलने और गढ़नेवाली है कि ख़ुद कोई बात गढ़कर अल्लाह के नाम से बयान कर दे। न बुरी नीयतवाली है कि अपने मतलब के लिए धोखे और छल से काम ले। वह सरासर एक मुक़द्दस और पाक रूह है जो अल्लाह का कलाम पूरी अमानत के साथ लाकर पहुँचाती है।

وَهُدًى وَّبُشْرٰى لِلْمُسْلِمِيْنَ ۞ وَلَقَدْ نَعْلَمُ اَنَّهُمْ يَقُوْلُوْنَ اِنَّمَا
يُعَلِّمُهٗ بَشَرٌ ۭ لِسَانُ الَّذِيْ يُلْحِدُوْنَ اِلَيْهِ اَعْجَمِيٌّ وَّهٰذَا لِسَانٌ عَرَبِيٌّ

करे[104] और फ़रमाँबरदारों को ज़िन्दगी के मामलों में सीधी राह बताए[105] और उन्हें कामयाबी और ख़ुशनसीबी की ख़ुशख़बरी दे।[106]

(103) हमें मालूम है कि ये लोग तुम्हारे बारे में कहते हैं कि इस शख़्स को एक आदमी सिखाता-पढ़ाता है[107], हालाँकि उनका इशारा जिस आदमी की तरफ़ है उसकी

104. यानी उसके थोड़ा-थोड़ा करके इस कलाम को लेकर आने और एक ही बार में सब कुछ न ले आने की वजह यह नहीं है कि अल्लाह के इल्म व समझ में कोई कमी है, जैसा कि तुमने अपनी नादानी से समझा, बल्कि इसकी वजह यह है कि इनसान की समझने और हासिल करने की ताक़त में कमी है जिसकी वजह से वह एक ही वक़्त में सारी बात को न समझ सकता है और न एक वक़्त की समझी हुई बात में पक्का हो सकता है। इसलिए अल्लाह तआला की हिक्मत का यह तक़ाज़ा हुआ कि रूहुल-क़ुदुस (पवित्र आत्मा) इस कलाम को थोड़ा-थोड़ा करके लाए, कभी मुख़्तसर बात करे और कभी उस बात की तफ़सील बताए, कभी एक तरीक़े से बात समझाए और कभी दूसरे तरीक़े से, कभी बयान का एक अन्दाज़ अपनाए और कभी दूसरा, और एक ही बात को बार-बार तरीक़े-तरीक़े से ज़ेहन में बिठाने की कोशिश करे, ताकि अलग-अलग क़ाबलियत और सलाहियतें रखनेवाले हक़ के तलबगार ईमान ला सकें और ईमान लाने के बाद इल्म व यक़ीन और समझ-बूझ में पुख़्ता हो सकें।

105. यह इस थोड़ा-थोड़ा उतारे जाने की दूसरी मस्लहत है। यानी कि जो लोग ईमान लाकर फ़रमाँबरदारी की राह चल रहे हैं उनको दावते-इस्लामी के काम में और ज़िन्दगी के पेश आनेवाले मामलों में जिस मौक़े पर जिस तरह की हिदायतें चाहिए हों वे उसी वक़्त दे दी जाएँ। ज़ाहिर है कि न उन्हें वक़्त से पहले भेजना मुनासिब हो सकता है और न एक ही वक़्त में सारी हिदायतें दे देना फ़ायदेमन्द है।

106. यह उसकी तीसरी मस्लहत है। यानी यह कि फ़रमाँबरदारों को जिन रुकावटों और मुख़ालिफ़तों का सामना करना पड़ रहा है और जिस-जिस तरह उन्हें सताया और तंग किया जा रहा है, और दावते-इस्लामी के काम में मुश्किलों के जो पहाड़ रास्ते की रुकावट बन रहे हैं, उनकी वजह से वह बार-बार इसके मुहताज होते हैं कि ख़ुशख़बरियों से उनकी हिम्मत बँधाई जाती रहे और उनको आख़िरी नतीज़ों की कामयाबी का यक़ीन दिलाया जाता रहे, ताकि वे उम्मीद रखें और मायूस न होने पाएँ।

107. रिवायतों में अलग-अलग लोगों के बारे में बयान किया गया है कि मक्का के इस्लाम-दुश्मन उनमें से किसी पर यह गुमान करते थे। एक रिवायत में उसका नाम 'जब्र' बयान किया गया है जो आमिर-बिन-हज़रमी का एक रूमी ग़ुलाम था। दूसरी रिवायत में हुवैतिब-बिन-अब्दुल-उज़्ज़ा

مُّبِيْنٌ ۞ اِنَّ الَّذِيْنَ لَا يُؤْمِنُوْنَ بِاٰيٰتِ اللّٰهِ ۙ لَا يَهْدِيْهِمُ اللّٰهُ وَلَهُمْ
عَذَابٌ اَلِيْمٌ ۞ اِنَّمَا يَفْتَرِى الْكَذِبَ الَّذِيْنَ لَا يُؤْمِنُوْنَ بِاٰيٰتِ اللّٰهِ ۚ
وَاُولٰٓئِكَ هُمُ الْكٰذِبُوْنَ ۞ مَنْ كَفَرَ بِاللّٰهِ مِنْ بَعْدِ اِيْمَانِهٖٓ اِلَّا مَنْ
اُكْرِهَ وَقَلْبُهٗ مُطْمَئِنٌّۢ بِالْاِيْمَانِ وَلٰكِنْ مَّنْ شَرَحَ بِالْكُفْرِ صَدْرًا

ज़बान अजमी (ग़ैर-अरबी) है और यह साफ़ अरबी ज़बान है। (104) हक़ीक़त यह है कि जो लोग अल्लाह की आयतों को नहीं मानते, अल्लाह उन्हें कभी सही बात तक पहुँचने की तौफ़ीक़ नहीं देता और ऐसे लोगों के लिए दर्दनाक अज़ाब है। (105) (झूठी बातें नबी नहीं गढ़ता, बल्कि) झूठ वे लोग गढ़ रहे हैं जो अल्लाह की आयतों को नहीं मानते[108], वही हक़ीक़त में झूठे हैं।

(106) जो आदमी ईमान लाने के बाद इनकार करे (वह अगर) मजबूर किया गया हो और दिल उसका ईमान पर मुत्मइन हो (तब तो ठीक), मगर जिसने दिल की

के एक ग़ुलाम का नाम लिया गया है जिसे 'आइश' या 'यईश' कहते थे। एक और रिवायत में 'यसार' का नाम लिया गया है जिसकी कुन्नियत अबू-फ़ुकैहा थी और जो मक्का की एक औरत का यहूदी ग़ुलाम था। एक और रिवायत 'बलआन' या 'बलआम' नाम के एक रूमी ग़ुलाम के बारे में है। बहरहाल इनमें से जो भी हो, मक्का के इस्लाम-दुश्मनों ने सिर्फ़ यह देखकर कि एक शख़्स तौरात व इंजील पढ़ता है और मुहम्मद (सल्ल.) की उससे मुलाक़ात है, बेझिझक यह इलज़ाम गढ़ दिया कि इस क़ुरआन को अस्ल में वह तैयार कर रहा है और मुहम्मद (सल्ल.) इसे अपनी तरफ़ से ख़ुदा का नाम ले-लेकर पेश कर रहे हैं। इससे न सिर्फ़ यह अन्दाज़ा होता है कि नबी (सल्ल.) के मुख़ालिफ़ आपके ख़िलाफ़ झूठी बातें गढ़ने में कितने ज़्यादा निडर थे, बल्कि यह सबक़ भी मिलता है कि लोग अपने ज़माने के लोगों की क़द्र व क़ीमत पहचानने में कितने बेइनसाफ़ होते हैं। उन लोगों के सामने इनसानी-इतिहास की एक अज़ीम शख़्सियत थी जिसकी मिसाल न उस वक़्त दुनिया भर में कहीं मौजूद थी और न आज तक पाई गई है। मगर इन अक़्ल के अंधों को उसके मुक़ाबले में एक अजमी (ग़ैर-अरब) ग़ुलाम, जो कुछ तौरात व इंजील पढ़ लेता था, ज़्यादा क़ाबिल नज़र आ रहा था और वे समझ रहे थे कि यह अनमोल मोती उस कोयले से चमक हासिल कर रहा है।

108. दूसरा तर्जमा इस आयत का यह भी हो सकता है कि "झूठ तो वे लोग गढ़ा करते हैं जो अल्लाह की आयतों पर ईमान नहीं लाते।"

فَعَلَيۡهِمۡ غَضَبٌ مِّنَ اللّٰهِ ۚ وَلَهُمۡ عَذَابٌ عَظِيۡمٌ ۞ ذٰلِكَ بِاَنَّهُمُ
اسۡتَحَبُّوا الۡحَيٰوةَ الدُّنۡيَا عَلَى الۡاٰخِرَةِ ۙ وَاَنَّ اللّٰهَ لَا يَهۡدِى الۡقَوۡمَ

रज़ामन्दी से कुफ़्र (अधर्म) को क़बूल कर लिया उसपर अल्लाह का ग़ज़ब (प्रकोप) है और ऐसे सब लोगों के लिए बड़ा अज़ाब है।[109] (107) यह इसलिए कि उन्होंने आख़िरत के मुक़ाबले में दुनिया की ज़िन्दगी को पसन्द कर लिया, और अल्लाह का क़ायदा है कि

109. इस आयत में उन मुसलमानों के मामले से बहस की गई है जिनपर उस वक़्त सख़्त ज़ुल्म किए जा रहे थे और नाक़ाबिले बर्दाश्त तकलीफ़ें दे-देकर इस्लाम से इनकार करने पर मजबूर किया जा रहा था। उनको बताया गया है कि अगर तुम किसी वक़्त ज़ुल्म से मजबूर होकर सिर्फ़ जान बचाने के लिए कुफ़्र की कोई बात ज़बान से अदा कर दो, और तुम्हारे दिल में कुफ़्र (इनकार) का अक़ीदा न हो, तो माफ़ कर दिया जाएगा। लेकिन अगर दिल से तुमने कुफ़्र क़ुबूल कर लिया तो दुनिया में चाहे जान बचा लो, ख़ुदा के अज़ाब से न बच सकोगे।
इसका यह मतलब नहीं है कि जान बचाने के लिए कुफ़्र का कलिमा कह देना चाहिए, बल्कि यह सिर्फ़ छूट है अगर ईमान दिल में रखते हुए आदमी मजबूरी में ऐसा कह दे तो पकड़ न होगी। मज़बूती और पुख़्तगी की बात तो यही है कि चाहे आदमी का जिस्म तिक्का-बोटी कर डाला जाए बहरहाल वह हक़ की बात ही का एलान करता रहे। दोनों की मिसालें नबी (सल्ल.) के मुबारक ज़माने में पाई जाती हैं। एक तरफ़ ख़ब्बाब-बिन अरत (रज़ि.) हैं जिनको आग के अंगारों पर लेटाया गया यहाँ तक कि उनके जिस्म की चर्बी पिघलने से आग बुझ गई, मगर वे सख़्ती के साथ अपने ईमान पर जमे रहे। बिलाल हब्शी (रज़ि.) हैं जिनको लोहे की ज़िरह पहनाकर चिलचिलाती धूप में खड़ा कर दिया गया फिर तपती हुई रेत पर लिटाकर घसीटा गया मगर वे "अहद, अहद" (ख़ुदा एक है, ख़ुदा एक है) ही कहते रहे। हबीब-बिन-ज़ैद-बिन-आसिम (रज़ि.) हैं जिनके बदन का एक-एक हिस्सा महाझूठे मुसैलमा कज़्ज़ाब के हुक्म से काटा जाता था और फिर माँग की जाती थी कि ये मुसैलमा को नबी मान लें, मगर हर बार वे उसके पैग़म्बर होने के दावे को मानने से इनकार करते थे यहाँ तक कि इसी हालत में कट-कटकर उन्होंने जान दे दी। दूसरी तरफ़ अम्मार-बिन-यासिर (रज़ि.) हैं जिनकी आँखों के सामने उनके बाप और उनकी माँ को सख़्त अज़ाब दे-देकर शहीद कर दिया गया, फिर उनको इतनी नाक़ाबिले-बर्दाश्त तकलीफ़ दी गई कि आख़िरकार उन्होंने जान बचाने के लिए वह सब कुछ कह दिया जो इस्लाम के दुश्मन उनसे कहलवाना चाहते थे। फिर वे रोते हुए नबी (सल्ल.) की ख़िदमत में हाज़िर हुए और अर्ज़ किया, "ऐ अल्लाह के रसूल! मुझे न छोड़ा गया जब तक कि मैंने आपको बुरा और उनके माबूदों को अच्छा न कह दिया।" नबी (सल्ल.) ने पूछा, "अपने दिल का क्या हाल पाते हो?" उन्होंने कहा, "ईमान पर पूरी तरह मुत्मइन।" इसपर नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया, अगर वे फिर इस तरह का ज़ुल्म करें तो तुम फिर यही बातें कह देना।"

الْكٰفِرِيْنَ ﴿۱۰۷﴾ اُولٰٓئِكَ الَّذِيْنَ طَبَعَ اللّٰهُ عَلٰى قُلُوْبِهِمْ وَسَمْعِهِمْ
وَاَبْصَارِهِمْ ۚ وَاُولٰٓئِكَ هُمُ الْغٰفِلُوْنَ ﴿۱۰۸﴾ لَا جَرَمَ اَنَّهُمْ فِى الْاٰخِرَةِ
هُمُ الْخٰسِرُوْنَ ﴿۱۰۹﴾ ثُمَّ اِنَّ رَبَّكَ لِلَّذِيْنَ هَاجَرُوْا مِنْۢ بَعْدِ مَا فُتِنُوْا ثُمَّ
جٰهَدُوْا وَصَبَرُوْٓا ۙ اِنَّ رَبَّكَ مِنْۢ بَعْدِهَا لَغَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ﴿۱۱۰﴾ يَوْمَ تَاْتِىْ كُلُّ ع
نَفْسٍ تُجَادِلُ عَنْ نَّفْسِهَا وَتُوَفّٰى كُلُّ نَفْسٍ مَّا عَمِلَتْ وَهُمْ لَا
يُظْلَمُوْنَ ﴿۱۱۱﴾ وَضَرَبَ اللّٰهُ مَثَلًا قَرْيَةً كَانَتْ اٰمِنَةً مُّطْمَئِنَّةً يَّاْتِيْهَا
رِزْقُهَا رَغَدًا مِّنْ كُلِّ مَكَانٍ فَكَفَرَتْ بِاَنْعُمِ اللّٰهِ فَاَذَاقَهَا اللّٰهُ لِبَاسَ

वह उन लोगों को नजात (मुक्ति) का रास्ता नहीं दिखाता जो उसकी नेमत को झुठलाएँ। (108) ये वे लोग हैं जिनके दिलों और कानों और आँखों पर अल्लाह ने मुहर लगा दी है, ये ग़फ़लत में डूब चुके हैं। (109) ज़रूर है कि आख़िरत में यही घाटे में रहें,[110] (110) इसके बरख़िलाफ़ जिन लोगों का हाल यह है कि जब (ईमान लाने की वजह से) वे सताए गए तो उन्होंने घर-बार छोड़ दिए, हिजरत की, अल्लाह के रास्ते में सख़्तियाँ झेलीं और सब्र से काम लिया[111], उनके लिए यक़ीनन तेरा रब माफ़ करनेवाला और रहम करनेवाला है। (111) (इन सबका फ़ैसला उस दिन होगा) जबकि हर कोई अपने ही बचाव की फ़िक्र में लगा हुआ होगा और हर एक को उसके किए का बदला पूरा-पूरा दिया जाएगा और किसी पर ज़र्रा बराबर ज़ुल्म न होने पाएगा।

(112) अल्लाह एक बस्ती की मिसाल देता है। वह अम्न व सुकून की ज़िन्दगी बिता रही थी और हर तरफ़ से उसको भरपूर रोज़ी पहुँच रही थी कि उसने अल्लाह की नेमतों

---

110. ये जुमले उन लोगों के बारे में कहे गए हैं जिन्होंने हक़ की राह को कठिन पाकर ईमान से तौबा कर ली थी और फिर अपनी उसी क़ौम में जा मिले थे, जो इस्लाम की इनकारी और ख़ुदा के साथ दूसरों को शरीक करनेवाली था।

111. इशारा है मुसलमानों की तरफ़ जो हिजरत करके हबशा चले गए थे।

الْجُوْعِ وَالْخَوْفِ بِمَا كَانُوْا يَصْنَعُوْنَ ﴿١١٢﴾ وَلَقَدْ جَآءَهُمْ رَسُوْلٌ مِّنْهُمْ
فَكَذَّبُوْهُ فَأَخَذَهُمُ الْعَذَابُ وَهُمْ ظٰلِمُوْنَ ﴿١١٣﴾ فَكُلُوْا مِمَّا رَزَقَكُمُ اللّٰهُ
حَلٰلًا طَيِّبًا ۖ وَّاشْكُرُوْا نِعْمَتَ اللّٰهِ إِنْ كُنْتُمْ إِيَّاهُ تَعْبُدُوْنَ ﴿١١٤﴾ إِنَّمَا
حَرَّمَ عَلَيْكُمُ الْمَيْتَةَ وَالدَّمَ وَلَحْمَ الْخِنْزِيْرِ وَمَآ أُهِلَّ لِغَيْرِ اللّٰهِ بِهٖ ۚ

की नाशुक्री शुरू कर दी। तब अल्लाह ने उसके रहनेवालों को उनके करतूतों का यह मज़ा चखाया कि भूख और डर की मुसीबतें उनपर छा गईं। (113) उनके पास अपनी क़ौम में से एक रसूल आया, मगर उन्होंने उसको झुठला दिया। आख़िरकार अज़ाब ने उनको आ लिया, जबकि वे ज़ालिम हो चुके थे।[112]

(114) तो ऐ लोगो! अल्लाह ने जो कुछ हलाल और पाक रोज़ी तुम्हें दी है उसे खाओ और अल्लाह के एहसान का शुक्र अदा करो[113] अगर तुम सच में उसी की बन्दगी करनेवाले हो।[114] (115) अल्लाह ने जो कुछ तुमपर हराम कि है वह है मुर्दार और ख़ून और सुअर का गोश्त और वह जानवर जिसपर अल्लाह के सिवा किसी और का नाम लिया गया हो। अलबत्ता भूख से मजबूर होकर अगर कोई इन चीज़ों को खा ले, बिना

112. यहाँ जिनकी मिसाल पेश की गई है उसकी कोई निशानदेही नहीं की गई है। न तफ़सीर लिखनेवाले यह तय कर सके हैं कि यह कौन-सी बस्ती है। बज़ाहिर इब्ने-अब्बास (रज़ि.) ही की यह बात सही मालूम होती है कि यहाँ ख़ुद मक्का को नाम लिए बिना मिसाल के तौर पर पेश किया गया है। इस सूरत में डर और भूख की जिस मुसीबत के छा जाने का यहाँ ज़िक्र किया गया है, उससे मुराद वह अकाल होगा जो नबी (सल्ल.) के पैग़म्बर बनाए जाने के बाद एक मुद्दत तक मक्कावालों पर छाया रहा।

113. इससे मालूम होता है कि इस सूरा के उतरने के वक़्त वह अकाल ख़त्म हो चुका था जिसकी तरफ़ ऊपर इशारा गुज़र चुका है।

114. यानी अगर वाक़ई तुम अल्लाह की बन्दगी को माननेवाले हो, जैसा कि तुम्हारा दावा है, तो हराम-हलाल ख़ुद ठहरानेवाले न बनो। जिस रिज़्क़ को अल्लाह ने हलाल व पाक-साफ़ क़रार दिया है उसे खाओ और शुक्रअदा करो और जो कुछ अल्लाह के क़ानून में हराम व ख़राब है उससे परहेज़ करो।

فَمَنِ اضْطُرَّ غَيْرَ بَاغٍ وَّلَا عَادٍ فَإِنَّ اللّٰهَ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ﴿١١٥﴾ وَلَا تَقُوْلُوْا
لِمَا تَصِفُ اَلْسِنَتُكُمُ الْكَذِبَ هٰذَا حَلٰلٌ وَّهٰذَا حَرَامٌ لِّتَفْتَرُوْا عَلَى
اللّٰهِ الْكَذِبَ ۭ اِنَّ الَّذِيْنَ يَفْتَرُوْنَ عَلَى اللّٰهِ الْكَذِبَ لَا يُفْلِحُوْنَ ﴿١١٦﴾
مَتَاعٌ قَلِيْلٌ ۖ وَّلَهُمْ عَذَابٌ اَلِيْمٌ ﴿١١٧﴾ وَعَلَى الَّذِيْنَ هَادُوْا حَرَّمْنَا مَا

इसके कि वह अल्लाह के क़ानून के ख़िलाफ़ काम करना चाहता हो या ज़रूरत की हद से आगे बढ़नेवाला हो, तो यक़ीनन अल्लाह माफ़ करनेवाला और रहम करनेवाला है।[115] (116) और यह जो तुम्हारी ज़बानें झूठे हुक्म लगाया करती हैं कि यह चीज़ हलाल है और वह हराम, तो इस तरह के हुक्म लगाकर अल्लाह पर झूठ न बाँधा करो।[116] जो लोग अल्लाह पर झूठ गढ़ते हैं वे हरगिज़ कामयाबी नहीं पाया करते। (117) दुनिया का ऐश कुछ दिनों का है। आख़िरकार उनके लिए दर्दनाक सज़ा है।

(118) वे चीज़ें[117] हमने ख़ास तौर से यहूदियों के लिए हराम की थीं जिनका ज़िक्र

115. यह हुक्म सूरा-2 बक़रा, आयत-3 सूरा-5 माइदा, आयत-173 और सूरा-6 अनआम, आयत-35 में भी गुज़र चुका है।

116. यह आयत साफ़-साफ़ बताती है कि ख़ुदा के सिवा हलाल और हराम ठहराने का हक़ किसी को भी नहीं। दूसरे अलफ़ाज़ में क़ानून बनानेवाला सिर्फ़ अल्लाह है दूसरा जो शख़्स भी जाइज़ और नाजाइज़ का फ़ैसला करने की जुर्अत करेगा वह अपनी हद पार करेगा, सिवाय यह कि वह अल्लाह के क़ानून को सनद मानकर उसकी हिदायतों से नतीजा निकालते हुए यह कहे कि फ़ुलाँ चीज़ या फ़ुलाँ काम जाइज़ है और फ़ुलाँ नाजाइज़।

हलाल और हराम ठहराने के इस ख़ुद-मुख़्ताराना रवैये को अल्लाह पर झूठ और तोहमत इसलिए कहा गया कि जो शख़्स इस तरह के हुक्म लगाता है उसका यह काम दो हाल से ख़ाली नहीं हो सकता। वह इस बात का दावा करता है कि जिसे वह अल्लाह की किताब की सनद से बेपरवाह होकर जाइज़ या नाजाइज़ कह रहा है उसे ख़ुदा ने जाइज़ या नाजाइज़ ठहराया है। या उसका दावा यह है कि अल्लाह ने हलाल व हराम ठहराने के अधिकारों से हाथ उठाकर इनसान को ख़ुद अपनी ज़िन्दगी का क़ानून बनाने के लिए आज़ाद छोड़ दिया है। इनमें से जो दावा भी वह करे वह ज़रूर ही झूठ और अल्लाह पर झूठ गढ़ना है।

117. यह पूरा पैराग्राफ़ उन एतिराज़ों के जवाब में है जो ऊपर बयान किए गए हुक्म पर किए जा रहे थे। मक्का के इस्लाम दुश्मनों का पहला एतिराज़ यह था कि बनी-इसराईल की शरीअत में

قَصَصْنَا عَلَيْكَ مِنْ قَبْلُ ۚ وَمَا ظَلَمْنٰهُمْ وَلٰكِنْ كَانُوْٓا اَنْفُسَهُمْ
يَظْلِمُوْنَ ﴿۱۱۸﴾ ثُمَّ اِنَّ رَبَّكَ لِلَّذِيْنَ عَمِلُوا السُّوْٓءَ بِجَهَالَةٍ ثُمَّ تَابُوْا مِنْۢ

इससे पहले हम तुमसे कर चुके हैं[118], और यह उनपर हमारा ज़ुल्म न था, बल्कि उनका अपना ही ज़ुल्म था जो वे अपने ऊपर कर रहे थे। (119) अलबत्ता जिन लोगों ने अनजाने में जहालत की वजह से बुरा काम किया और फिर तौबा करके अपने अमल को

तो और भी बहुत-सी चीज़ हराम हैं जिनको तुमने हलाल कर रखा है। अगर वह शरीअत ख़ुदा की तरफ़ से थी तो तुम ख़ुद उसकी ख़िलाफ़वर्ज़ी कर रहे हो और अगर वह भी ख़ुदा की तरफ़ से थी और यह तुम्हारी शरीअत भी ख़ुदा की तरफ़ से है तो दोनों में यह इख़्तिलाफ़ कैसा है? दूसरा एतिराज़ यह था कि बनी-इसराईल की शरीअत में 'सब्त' के हराम होने का जो क़ानून था उसको भी तुमने उड़ा दिया है। यह तुम्हारा अपनी मरज़ी से किया हुआ काम है या अल्लाह ही ने अपनी दो शरीअतों में एक-दूसरे के ख़िलाफ़ हुक्म दे रखे है?

118. इशारा है सूरा-6 अनआम की आयत-146 "और जो लोग यहूदी हो गए उनपर हमने तमाम नाख़ूनवाले (जानवर) हराम कर दिए" की तरफ़ जिसमें बताया गया है कि यहूदियों पर उनकी नाफ़रमानियों की वजह से ख़ासतौर से कौन-सी चीज़ें हराम की गई थीं।

इस जगह एक मुश्किल पेश आती है। सूरा-16 नह्ल की इस आयत में सूरा-6 अनआम की एक आयत का हवाला दिया गया है जिससे मालूम होता है कि सूरा अनआम, आयत-119 इससे पहले उतर चुकी थी। लेकिन एक जगह पर सूरा अनआम में कहा गया है कि "आख़िर क्या वजह है कि तुम वह कुछ न खाओ जिसपर अल्लाह का नाम लिया गया हो, हालाँकि हराम चीज़ों की तफ़सील वह तुम्हें बता चुका है।" इसमें सूरा नह्ल की तरफ़ साफ़ इशारा है, क्योंकि मक्की सूरतों में सूरा अनआम के सिवा बस यही एक सूरा है जिसमें हराम चीज़ों की तफ़सील बयान हुई है। अब सवाल पैदा होता है कि इनमें से कौन-सी सूरा पहले उतरी थी और कौन-सी बाद में? हमारे नज़दीक इसका सही जवाब यह है कि पहले सूरा नह्ल उतरी थी, जिसका हवाला सूरा अनआम की ऊपर बयान की गई आयत में दिया गया है। बाद में किसी मौक़े पर मक्का के इस्लाम-दुश्मनों ने सूरा नह्ल की इन आयतों पर वे एतिराज़ किए, जो अभी हम बयान कर चुके हैं। उस वक़्त सूरा अनआम उतर चुकी थी। इसलिए उनको जवाब दिया गया कि हम पहले, यानी सूरा अनआम में बता चुके हैं कि यहूदियों पर कुछ चीज़ें ख़ास तौर पर हराम की गई थीं और चूँकि यह एतिराज़ सूरा नह्ल पर किया गया था इसलिए इसका जवाब भी सूरा नह्ल ही में ऊपर से चली आ रही बात से हटकर बयान की गई बात के तौर पर दर्ज किया गया।

بَعْدِ ذٰلِكَ وَاَصْلَحُوْۤا اِنَّ رَبَّكَ مِنْۢ بَعْدِهَا لَغَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ﴿۱۱۹﴾ اِنَّ اِبْرٰهِيْمَ ع ١٥ ٢١
كَانَ اُمَّةً قَانِتًا لِّلّٰهِ حَنِيْفًا ؕ وَلَمْ يَكُ مِنَ الْمُشْرِكِيْنَ ﴿۱۲۰﴾ شَاكِرًا
لِّاَنْعُمِهٖ ؕ اِجْتَبٰىهُ وَهَدٰىهُ اِلٰى صِرَاطٍ مُّسْتَقِيْمٍ ﴿۱۲۱﴾ وَاٰتَيْنٰهُ فِى الدُّنْيَا
حَسَنَةً ؕ وَاِنَّهٗ فِى الْاٰخِرَةِ لَمِنَ الصّٰلِحِيْنَ ﴿۱۲۲﴾ ثُمَّ اَوْحَيْنَاۤ اِلَيْكَ اَنِ
اتَّبِعْ مِلَّةَ اِبْرٰهِيْمَ حَنِيْفًا ؕ وَمَا كَانَ مِنَ الْمُشْرِكِيْنَ ﴿۱۲۳﴾ اِنَّمَا جُعِلَ
السَّبْتُ عَلَى الَّذِيْنَ اخْتَلَفُوْا فِيْهِ ؕ وَاِنَّ رَبَّكَ لَيَحْكُمُ بَيْنَهُمْ يَوْمَ

सुधार लिया तो यक़ीनन तौबा व सुधार के बाद तेरा रब उनके लिए माफ़ करनेवाला और रहम करनेवाला है। (120) सच तो यह है कि इबराहीम अपनी ज़ात से एक पूरी उम्मत (समुदाय) था[119], अल्लाह का फ़रमाँबरदार और यकसू (एकाग्रचित)। वह कभी मुशरिक (बहुदेववादी) न था, (121) अल्लाह की नेमतों का शुक्र अदा करनेवाला था। अल्लाह ने उसको चुन लिया और सीधा रास्ता दिखाया, (122) दुनिया में उसको भलाई दी और आख़िरत में वह यक़ीनन भले लोगों में से होगा। (123) फिर हमने तुम्हारी तरफ़ यह वह्य भेजी कि यकसू होकर इबराहीम के तरीक़े पर चलो, और वह मुशरिकों में से न था।[120] (124) रहा सब्त, तो वह हमने उन लोगों पर मुसल्लत किया था। जिन्होंने उसके

119. यानी वह अकेला इनसान अपनी जगह ख़ुद एक उम्मत था। जब दुनिया में कोई मुसलमान न था तो एक तरफ़ वह अकेला इस्लाम का अलमबरदार था और दूसरी तरफ़ सारी दुनिया कुफ़्र की अलमबरदार थी। ख़ुदा के उस अकेले बन्दे ने वह काम किया जो एक उम्मत के करने का था। वह एक शख़्स न था बल्कि एक पूरा इदारा (संस्था) था।

120. यह एतिराज़ करनेवालों के पहले एतिराज़ का मुकम्मल जवाब है। इस जवाब के दो हिस्से हैं। एक यह कि ख़ुदा की शरीअत में टकराव नहीं है, जैसा कि तुमने यहूदियों के मज़हबी क़ानून और शरीअते-मुहम्मदी के ज़ाहिरी फ़र्क़ को देखकर समझ लिया है, बल्कि असल में यहूदियों को ख़ास तौर पर उनकी नाफ़रमानियों की सज़ा में कुछ नेमतों से महरूम किया गया था जिनसे दूसरों को महरूम करने की कोई वजह नहीं। दूसरा हिस्सा यह है कि मुहम्मद (सल्ल.) को जिस तरीक़े की पैरवी का हुक्म दिया गया है वह इबराहीम (अलैहि.) का तरीक़ा है और तुम्हें मालूम है कि इबराहीमी मिल्लत में वे चीज़े हराम न थीं जो यहूदियों के यहाँ हराम हैं। मसलन यहूदी

الْقِيٰمَةِ فِيْمَا كَانُوْا فِيْهِ يَخْتَلِفُوْنَ ۞ اُدْعُ اِلٰى سَبِيْلِ رَبِّكَ بِالْحِكْمَةِ
وَالْمَوْعِظَةِ الْحَسَنَةِ وَجَادِلْهُمْ بِالَّتِيْ هِيَ اَحْسَنُ ۚ اِنَّ رَبَّكَ هُوَ اَعْلَمُ

हुक्मों में इख़्तिलाफ़ किया[121], और यक़ीनन तेरा रब क़ियामत के दिन उन सब बातों का फ़ैसला कर देगा जिनमें वे इख़्तिलाफ़ करते रहे हैं।

(125) ऐ नबी! अपने रब के रास्ते की तरफ़ दावत दो हिक्मत (तत्त्वदर्शिता) और अच्छी नसीहत के साथ,[122] और लोगों से बहस करो ऐसे तरीक़े पर जो बेहतरीन हो।[123]

ऊँट नहीं खाते, मगर इबराहीमी मिल्लत में यह हलाल था। यहूदियों के यहाँ शुतुर्मुर्ग, बत्तख़, ख़रगोश वग़ैरह हराम हैं, मगर इबराहीमी मिल्लत में ये सब चीज़ें हलाल थीं। इस जवाब के साथ-साथ मक्का के इस्लाम-दुश्मनों को इस बात पर भी ख़बरदार कर दिया गया कि न तुम को इबराहीम (अलैहि॰) से कोई वास्ता है न यहूदियों को, क्योंकि तुम दोनों ही शिर्क कर रहे हो। इबराहीमी मिल्लत का अगर कोई सही पैरवी करनेवाला है तो वह यह नबी और इसके साथी हैं जिनके अक़ीदों और आमाल में ज़र्रा बराबर भी शिर्क का शक तक नहीं पाया जाता।

121. यह मक्का के इस्लाम-दुश्मनों के दूसरे एतिराज़ का जवाब है। इसमें यह बयान करने की ज़रूरत न थी कि 'सब्त' भी यहूदियों के लिए ख़ास था और इबराहीमी मिल्लत में 'सब्त' के हराम होने का कोई वुजूद न था, क्योंकि इस बात को मक्का के इस्लाम-दुश्मन ख़ुद भी जानते थे। इसलिए सिर्फ़ इतना ही इशारा करने पर बस किया गया कि यहूदियों के यहाँ सब्त के क़ानून में जो सख़्तियाँ तुम पाते हो ये शुरुआती हुक्म में न थीं, बल्कि ये बाद में यहूदियों की शरारतों और हुक्मों की ख़िलाफ़वर्ज़ियों की वजह से उनपर डाल दी गई थीं। क़ुरआन मजीद के इस इशारे को आदमी अच्छी तरह नहीं समझ सकता, जब तक कि वह एक तरफ़ बाइबल के उन मक़ामों को न देखे जहाँ सब्त के हुक्म बयान हुए हैं (मसलन देखिए— निष्कासन-अध्याय 20:8-11, 23:12-13, 31:12-17, 35:2-3, गिनती अध्याय 15:23-36) और दूसरी तरफ़ उन जसारतों (दुस्साहसों) को न जानता हो जो यहूदी सब्त की हुरमत को तोड़ने में ज़ाहिर करते रहे (मसलन देखिए—यरमियाह अध्याय 17:21-27, हिज़क़ी-एल, अध्याय 20:12-24)

122. यानी दावत में दो चीज़ों का ध्यान रखना चाहिए।— एक हिक्मत और दूसरे अच्छी नसीहत। हिक्मत का मतलब यह है कि बेवक़ूफ़ों की तरह अंधाधुंध तब्लीग़ न की जाए, बल्कि अक़्लमन्दी के साथ सामनेवाले की ज़ेहनियत, सलाहियत और हालात को समझकर, साथ ही मौक़ा देखकर बात की जाए। हर तरह के लोगों को एक ही लकड़ी से न हाँका जाए। जिस शख़्स या गरोह से वास्ता पड़े, पहले उसके रोग का पता लगाया जाए, फिर ऐसी दलीलों से उसका इलाज किया जाए जो उसके दिलो-दिमाग़ की गहराइयों से उसके रोग की जड़ निकाल सकती हों।

بِمَنۡ ضَلَّ عَنۡ سَبِيۡلِهٖ وَهُوَ اَعۡلَمُ بِالۡمُهۡتَدِيۡنَ ۞ ١٢٥ وَاِنۡ عَاقَبۡتُمۡ
فَعَاقِبُوۡا بِمِثۡلِ مَا عُوۡقِبۡتُمۡ بِهٖ ؕ وَلَٮِٕنۡ صَبَرۡتُمۡ لَهُوَ خَيۡرٌ لِّلصّٰبِرِيۡنَ ۞ ١٢٦
وَاصۡبِرۡ وَمَا صَبۡرُكَ اِلَّا بِاللّٰهِ وَلَا تَحۡزَنۡ عَلَيۡهِمۡ وَلَا تَكُ فِىۡ ضَيۡقٍ مِّمَّا

तुम्हारा रब ही ज़्यादा बेहतर जानता है कि कौन उसकी राह से भटका हुआ है और कौन सीधे रास्ते पर है। (126) और अगर तुम लोग बदला लो तो बस उतना ही ले लो जितनी तुमपर ज़्यादती की गई हो, लेकिन अगर तुम सब्र करो तो यक़ीनन यह सब्र करनेवालों ही के हक़ में बेहतर है। (127) ऐ नबी! सब्र से काम किए जाओ—— और तुम्हारा यह सब्र अल्लाह ही की तौफ़ीक़ से है—— इन लोगों की हरकतों पर रंज न करो

अच्छी नसीहत के दो मतलब हैं– एक यह कि सामनेवाले को सिर्फ़ दलीलों ही से मुत्मइन करने पर बस न किया जाए, बल्कि उसके जज़्बात को भी अपील किया जाए। बुराइयों और गुमराहियों को सिर्फ़ अक़्ली हैसियत ही से ग़लत साबित न किया जाए, बल्कि इनसान की फ़ितरत में उनके लिए जो पैदाइशी नफ़रत पाई जाती है उसे भी उभारा जाए और उनके बुरे नतीजों से डराया जाए। हिदायत और अच्छे अमल का सिर्फ़ सही होना और उसकी ख़ूबी ही अक़्ली तौर पर साबित न की जाए, बल्कि उनकी तरफ़ लगाव और शौक़ भी पैदा किया जाए। दूसरा मतलब यह है कि नसीहत ऐसे तरीक़े से की जाए जिससे दिलसोज़ी और ख़ैरख़ाही टपकती हो। सामनेवाला यह न समझे कि नसीहत करनेवाला उसे कमतर समझ रहा है और अपनी बुलन्दी के एहसास से मज़ा ले रहा है, बल्कि उसे यह महसूस हो कि नसीहत करनेवाले के दिल में उसके सुधार के लिए एक तड़प मौजूद है और वह हक़ीक़त में उसकी भलाई चाहता है।

123. यानी वह सिर्फ़ मुनाज़रा-बाज़ी (शास्त्रार्थ), अक़्ली और ज़ेहनी दंगल की तरह न हो। इसमें बेतुकी बहसें और इल्ज़ाम-तराशियाँ और चोटें और फब्तियाँ न हों। इसका मक़सद सामनेवाले को चुप कर देना और अपनी चर्बज़बानी के डंके बजा देना न हो, बल्कि उसमें मिठास हो। आला दर्जे का शरीफ़ाना अख़लाक़ हो। समझ में आनेवाली और दिल को लगनेवाली दलीलें हों। सामनेवाले के अन्दर ज़िद और बात की पच और हठधर्मी पैदा न होने दी जाए। सीधे-सीधे तरीक़े से उसको बात समझाने की कोशिश की जाए और जब महसूस हो कि वह बेतुकी बहस करने पर उतर आया है तो उसे उसके हाल पर छोड़ दिया जाए, ताकि वह गुमराही में और ज़्यादा दूर न निकल जाए।

يَمۡكُرُوۡنَ ﴿۱۲۷﴾ اِنَّ اللّٰهَ مَعَ الَّذِيۡنَ اتَّقَوْا وَّالَّذِيۡنَ هُمۡ مُّحۡسِنُوۡنَ ﴿۱۲۸﴾

और न इनकी चालबाज़ियों पर दिल तंग हो। (128) अल्लाह उन लोगों के साथ है जो तक़्वा (परेहज़गारी) से काम लेते हैं और एहसान पर अमल करते हैं।[124]

124. यानी जो ख़ुदा से डरकर हर तरह के बुरे तरीक़ों से बचते हैं और हमेशा नेक रवैये पर क़ायम रहते हैं। दूसरे उनके साथ चाहे कितनी ही बुराई करें वे उनका जवाब बुराई से नहीं, बल्कि भलाई ही से दिए जाते हैं।

☆☆☆

17. बनी-इसराईल

परिचय

नाम

आयत 4 के जुमले 'व क़ज़ैना इला बनी-इसराई-ल फ़िल-किताब' (हमने किताब में बनी-इसराईल को इस बात से ख़बरदार कर दिया था) से लिया गया है। मगर इसमें गुफ़्तुगू बनी-इसराईल के बारे में नहीं है, बल्कि यह नाम भी अकसर क़ुरआनी सूरतों की तरह सिर्फ़ निशानी के तौर पर रखा गया है।

उतरने का ज़माना

पहली ही आयत इस बात की निशानदेही कर देती है कि यह सूरत मेराज के मौक़े पर उतरी है। मेराज का वाक़िआ हदीस और सीरत की बहुत-सी रिवायतों के मुताबिक़ हिजरत से एक साल पहले पेश आया था, इसलिए यह सूरा भी उन्हीं सूरतों में से है जो मक्की दौर के आख़िरी ज़माने में उतरीं।

पसमंज़र (पृष्ठभूमि)

उस वक़्त नबी (सल्ल.) को तौहीद की आवाज़ बुलन्द करते हुए 12 साल गुज़र चुके थे। आप (सल्ल.) की मुख़ालिफ़त करनेवाले आप (सल्ल.) का रास्ता रोकने की सारी कोशिशें कर चुके थे। मगर उनकी तमाम रुकावटों के बावजूद आपकी आवाज़ अरब के कोने-कोने में पहुँच गई थी। अरब का कोई क़बीला ऐसा न रहा था जिसमें दो-चार आदमी आप (सल्ल.) की दावत का असर क़बूल न कर चुके हों। ख़ुद मक्का में ऐसे सच्चे लोगों का एक छोटा-सा जत्था बन चुका था, जो हर ख़तरे को हक़ की इस दावत की कामयाबी के लिए बरदाश्त करने को तैयार था। मदीना में औस और ख़ज़रज के ताक़तवर क़बीलों की बड़ी तादाद आप (सल्ल.) की हिमायती बन चुकी थी। अब वह वक़्त क़रीब आ लगा था जब आप (सल्ल.) को मक्का से मदीना की तरफ़ चले जाने और जो मुसलमान इधर-उधर बिखरे हुए थे उनको समेटकर इस्लाम के उसूलों पर एक राज्य क़ायम कर देने का मौक़ा मिलनेवाला था।

इन हालात में मेराज हुई, और वापसी पर यह पैग़ाम नबी (सल्ल.) ने दुनिया को सुनाया।

मौज़ू और बहसें

इस सूरत में ख़बरदार करना, समझाना और तालीम देना तीनों एक मुनासिब अन्दाज़ में जमा कर दिए गए हैं।

ख़बरदार मक्का के इस्लाम-दुश्मनों को किया गया है कि बनी-इसराईल और दूसरी क़ौमों के अंजाम से सबक़ लो और ख़ुदा की दी हुई मुहलत के अन्दर, जिसके ख़त्म होने का ज़माना क़रीब आ लगा है, संभल जाओ, और उस दावत को क़बूल कर लो जिसे मुहम्मद (सल्ल०) और क़ुरआन के ज़रिए से पेश किया जा रहा है, वरना मिटा दिए जाओगे और तुम्हारी जगह दूसरे लोग ज़मीन पर बसाए जाएँगे। इसके साथ ही बनी-इसराईल को भी, जो हिजरत के बाद बहुत जल्द वह्य के मुख़ातब होनेवाले थे, ख़बरदार किया गया है कि पहले जो सज़ाएँ तुम्हें मिल चुकी हैं उनसे सबक़ हासिल करो और अब जो मौक़ा तुम्हें मुहम्मद (सल्ल०) के आने से मिल रहा है उससे फ़ायदा उठाओ, यह आख़िरी मौक़ा भी अगर तुमने खो दिया और फिर अपना पिछला रवैया दोहराया तो दर्दनाक अंजाम से दो-चार होगे।

समझाने-बुझाने के पहलू में बड़े दिलनशीन तरीक़े से समझाया गया है कि इनसान की ख़ुशनसीबी-बदनसीबी और कामयाबी-नाकामी का दारोमदार अस्ल में किन चीज़ों पर है। तौहीद, आख़िरत, नुबूवत और क़ुरआन के हक़ पर होने की दलीलें दी गई हैं। उन शक और शुबहों को दूर किया गया है जो इन बुनियादी हक़ीक़तों के बारे में मक्का के इस्लाम-दुश्मनों की तरफ़ से पेश किए जाते थे और दलीलें देने के साथ बीच-बीच में इनकार करनेवालों की जहालत पर उन्हें डाँटा-फटकारा भी गया है।

तालीम के पहलू में अख़लाक़ और रहन-सहन के वे बड़े-बड़े उसूल बयान किए गए हैं जिनपर ज़िन्दगी के निज़ाम को क़ायम करना मुहम्मद (सल्ल०) की दावत के पेशे-नज़र था। यह इस्लाम का मंशूर (घोषणा-पत्र) था जो इस्लामी राज्य के क़ायम होने से एक साल पहले अरबवालों के सामने पेश किया गया था, इसमें साफ़ तौर पर बता दिया गया कि यह ख़ाका है जिसपर मुहम्मद (सल्ल०) अपने देश की और फिर पूरी इनसानियत की ज़िन्दगी को तामीर करना चाहते हैं।

इन सब बातों के साथ नबी (सल्ल०) को हिदायत की गई है कि मुश्किलों के इस तूफ़ान में मज़बूती के साथ अपनी बात पर जमे रहें और कुफ़्र के साथ समझौते के बारे में सोचें भी नहीं। साथ ही मुसलमानों को, जो कभी-कभी इस्लाम-दुश्मनों के ज़ुल्मो-सितम और उनकी बेतुकी बहसों और उनके झूठ और बुहतान के तूफ़ानों पर बेसाख़्ता झुंझला उठते थे, समझाया गया है कि पूरे सब्र व सुकून के साथ हालात का मुक़ाबला करते रहें और तबलीग़ व इस्लाह के काम में अपने जज़्बात पर क़ाबू रखें। इस सिलसिलें में नफ़्स

(मन) के सुधार और नफ़्स को पाक करने के लिए उनको नमाज़ का नुस्ख़ा बताया गया है, कि यह वह चीज़ है जो तुमको उन आला ख़ूबियों से मालामाल कर देगा जिनसे सच्चे रास्ते में जिददोजुहद करनेवालों को मालामाल होना चाहिए। रिवायतों से मालूम होता है कि यह पहला मौक़ा है जब पाँच वक़्त की नमाज़ वक़्तों की पाबन्दी के साथ मुसलमानों पर फ़र्ज़ की गई।

☆☆☆

اٰیاتها ١١١ ﴿١٧ سُوْرَةُ بَنِیْٓ اِسْرَآءِیْلَ مَکِّیَّةٌ ٥٠﴾ رکوعاتها ١٢

بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِیْمِ ○

سُبْحٰنَ الَّذِیْٓ اَسْرٰی بِعَبْدِهٖ لَیْلًا مِّنَ الْمَسْجِدِ الْحَرَامِ اِلَی الْمَسْجِدِ
الْاَقْصَا الَّذِیْ بٰرَکْنَا حَوْلَهٗ لِنُرِیَهٗ مِنْ اٰیٰتِنَا ؕ اِنَّهٗ هُوَ السَّمِیْعُ
الْبَصِیْرُ ① وَاٰتَیْنَا مُوْسَی الْکِتٰبَ وَجَعَلْنٰهُ هُدًی لِّبَنِیْٓ اِسْرَآءِیْلَ

17 बनी-इसराईल

(मक्का में उतरी-आयतें 111)

अल्लाह के नाम से जो बेइन्तिहा मेहरबान और रहम फ़रमानेवाला है।

(1) पाक है वह जो ले गया एक रात अपने बन्दे को मस्जिदे-हराम (मोहतरम काबा) से दूर की उस मस्जिद तक जिसके माहौल को उसने बरकत दी है, ताकि उसे अपनी कुछ निशानियाँ दिखाए।[1] हक़ीक़त में वही है सब कुछ सुनने और देखनेवाला।

(2) हमने इससे पहले मूसा को किताब दी थी और उसे बनी-इसराईल के लिए

1. यह वही वाक़िआ है जो इस्तिलाह में 'मेराज' और 'इसरा' के नाम से मशहूर है। ज़्यादातर और भरोसेमन्द रिवायतों के मुताबिक़ यह वाक़िआ हिजरत से एक साल पहले पेश आया। हदीस और सीरत की किताबों में इस वाक़िए की तफ़सीलें बहुत-से सहाबा (रज़ि॰) से रिवायत हुई हैं, जिनकी तादाद 25 तक पहुँचती है। उनमें सबसे ज़्यादा तफ़सीली रिवायतें हज़रत अनस-बिन-मालिक (रज़ि॰), हज़रत मालिक-बिन-सअ्सअः (रज़ि॰), हज़रत अबू-ज़र-ग़िफ़ारी (रज़ि॰) और हज़रत अबू-हुरैरा से रिवायत हुई हैं। इनके अलावा हज़रत उमर (रज़ि॰), हज़रत अली (रज़ि॰), हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद (रजि॰), हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अब्बास (रज़ि॰), हज़रत अबू-सईद ख़ुदरी (रज़ि॰), हज़रत हुज़ैफ़ा-बिन-यमान (रज़ि॰), हज़रत आइशा (रज़ि॰) और कई दूसरे सहाबियों ने भी इसके कुछ हिस्से बयान किए हैं।
क़ुरआन मजीद यहाँ सिर्फ़ मस्जिदे-हराम (यानी काबा) से मस्जिदे-अक़्सा (यानी बैतुल-मक़दिस) तक नबी (सल्ल॰) के जाने का ज़िक्र करता है, और इस सफ़र का मक़सद यह बताता है कि अल्लाह तआला अपने बन्दे को अपनी कुछ निशानियाँ दिखाना चाहता था। इससे ज़्यादा कोई तफ़सील क़ुरआन में नहीं बताई गई। हदीस में जो तफ़सीलात आई हैं उनका ख़ुलासा यह है कि

रात के वक़्त फ़रिश्ते जिबरील (अलैहि॰) आप (सल्ल॰) को उठाकर मस्जिदे-हराम से मस्जिदे-अक़्सा तक बुराक़ पर ले गए। वहाँ आप (सल्ल॰) ने नबियों (अलैहि॰) के साथ नमाज़ अदा की। फिर वे आप (सल्ल॰) को ऊपरी दुनिया की तरफ़ ले चले और वहाँ मुख़्तलिफ़ आसमानी तबकों में अलग-अलग जलीलुलक़द्र (महान) पैग़म्बरों से आपकी मुलाक़ात हुई। आख़िरकार आप (सल्ल॰) इन्तिहाई बुलन्दियों पर पहुँचकर अपने रब के सामने हाज़िर हुए और इस हाज़िरी के मौक़े पर दूसरी अहम हिदायतों के अलावा आप (सल्ल॰) को पाँच वक़्तों की नमाज़ के फ़र्ज़ किए जाने का हुक्म हुआ। इसके बाद आप बैतुल-मक़दिस की तरफ़ पलटे और वहाँ से मस्जिदे-हराम वापस तशरीफ़ लाए। इस सिलसिले में बहुत-सी रिवायतों से मालूम होता है कि आप (सल्ल॰) को जन्नत और दोज़ख़ भी दिखाई गई। साथ ही भरोसेमन्द रिवायतें भी यह बताती हैं कि दूसरे दिन जब आप (सल्ल॰) ने इस वाक़िए का लोगों से ज़िक्र किया तो मक्का के इस्लाम-दुश्मनों ने इसका बहुत मज़ाक़ उड़ाया और मुसलमानों में से भी कुछ के ईमान डगमगा गए।

हदीस की ये तफ़सीलात क़ुरआन के ख़िलाफ़ नहीं हैं, बल्कि उसके बयान को और ज़्यादा तफ़सील से बयान किया है, और ज़ाहिर है कि बढ़ी हुई तफ़सील को क़ुरआन के ख़िलाफ़ कहकर रद्द नहीं किया जा सकता। फिर भी अगर कोई शख़्स उन तफ़सीलात के किसी हिस्से को न माने जो हदीस में आई हैं तो उसे काफ़िर नहीं कहा जा सकता, अलबत्ता जो वाक़िआ क़ुरआन बयान कर रहा है उसका इनकार करना कुफ़्र कहलाएगा।

इस सफ़र की कैफ़ियत क्या थी? यह ख़ाब की हालत में पेश आया था या जागने की हालत में? और क्या नबी (सल्ल॰) जिस्मानी तौर पर ख़ुद तशरीफ़ ले गए थे या अपनी जगह बैठे-बैठे महज़ रूहानी तौर पर ही आप (सल्ल॰) को यह सब दिखाया गया? इन सवालों के जवाब क़ुरआन मजीद के अलफ़ाज़ ख़ुद दे रहे हैं। "सुब्हानल्लज़ी असरा...." (पाक है वह जो ले गया..) से बयान शुरू करना ख़ुद बता रहा है कि यह कोई बहुत बड़ा ग़ैर-मामूली वाक़िआ था जो अल्लाह तआला की ग़ैर-महदूद (असीम) क़ुदरत से ज़ाहिर हुआ। ज़ाहिर है कि ख़ाब में किसी शख़्स का इस तरह की चीज़ें देख लेना या रूहानी तौर पर देखना यह अहमियत नहीं रखता कि उसे बयान करने के लिए इस तमहीद (भूमिका) की ज़रूरत हो कि तमाम कमज़ोरियों और ख़राबियों से पाक है वह ज़ात जिसने अपने बन्दे को यह ख़ाब दिखाया या रूहानी तौर पर ये कुछ दिखाया। फिर ये अलफ़ाज़ भी कि "एक रात अपने बन्दे को ले गया" जिस्मानी सफ़र की साफ़ दलील हैं। ख़ाब के सफ़र, या रूहानी सफ़र के लिए ये अलफ़ाज़ किसी तरह मुनासिब नहीं हो सकते। लिहाज़ा हमारे लिए यह माने बिना कोई चारा नहीं कि यह सिर्फ़ एक रूहानी तजरिबा न था बल्कि एक जिस्मानी सफ़र और आँखों देखा नज़ारा था, जो अल्लाह तआला ने नबी (सल्ल॰) को कराया।

अब अगर एक रात में हवाई जहाज़ के बिना मक्का से बैतुल-मक़दिस जाना और आना अल्लाह की क़ुदरत से मुमकिन था, तो आख़िर उन दूसरी तफ़सीलात ही को नामुमकिन कहकर क्यों रद्द कर दिया जाए, जो हदीस में बयान हुई हैं? मुमकिन और नामुमकिन की बहस तो सिर्फ़ उस सूरत में पैदा होती है, जबकि किसी जानदार के अपने इख़्तियार से किसी काम करने के

मामले पर बात हो रही हो। लेकिन जब ज़िक्र यह हो कि ख़ुदा ने फ़ुलाँ काम किया, तो फिर इमकान का सवाल वही शख़्स उठा सकता है जिसे ख़ुदा के क़ादिरे-मुतलक़ (सर्वशक्तिमान) होने का यक़ीन न हो। इसके अलावा जो दूसरी तफ़सीलात हदीस में आई हैं उनपर हदीस को न माननेवालों की तरफ़ से कई एतिराज़ात किए जाते हैं, मगर उनमें से सिर्फ़ दो ही एतिराज़ ऐसे हैं जो कुछ वज़न रखते हैं।

एक यह कि इससे अल्लाह तआला का किसी ख़ास जगह पर रहना ज़रूरी हो जाता है, वरना उसके सामने बन्दे की पेशी के लिए क्या ज़रूरत थी कि उसे सफ़र करा के एक ख़ास जगह तक ले जाया जाता?

दूसरा यह कि नबी (सल्ल॰) को दोज़ख़ और जन्नत का मुशाहदा और कुछ लोगों के अज़ाब में घिरे होने का मुआयना कैसे करा दिया गया, जबकि अभी बन्दों के मुक़द्दमों का फ़ैसला ही नहीं हुआ है? यह क्या कि इनाम व सज़ा का फ़ैसला तो होना है क़ियामत के बाद और कुछ लोगों को सज़ा दे डाली गई अभी से?

लेकिन अस्ल में ये दोनों एतिराज़ भी कम समझदारी का नतीजा हैं। पहला एतिराज़ इसलिए ग़लत है कि ख़ालिक़ (पैदा करनेवाला) अपनी ज़ात में तो बेशक हर तरह की पाबन्दी से आज़ाद है, मगर मख़लूक़ (पैदा किए हुओं) के साथ मामला करने में वह अपनी किसी कमज़ोरी की बुनियाद पर नहीं, बल्कि मख़लूक़ की कमज़ोरियों की वजह से महदूद ज़रिए इख़्तियार करता है। मिसाल के तौर पर जब वह मख़लूक़ से बात करता है तो बात का वह महदूद तरीक़ा इस्तेमाल करता है जिसे एक इनसान सुन और समझ सके, हालाँकि उसका कलाम अपनी जगह ख़ुद एक ऐसी शान रखता है जो किसी भी तरह की पाबन्दी से आज़ाद है। इसी तरह जब वह अपने बन्दे को अपनी सल्तनत की अज़ीमुश्शान निशानियाँ दिखाना चाहता है तो उसे ले जाता है और जहाँ जो चीज़ दिखानी होती है उसी जगह दिखाता है, क्योंकि वह सारी कायनात को एक ही वक़्त में उस तरह नहीं देख सकता जिस तरह ख़ुदा देखता है। ख़ुदा को किसी चीज़ को देखने के लिए कहीं जाने की ज़रूरत नहीं होती, मगर बन्दे को होती है। यही मामला ख़ालिक़ के सामने हाज़िर होने का भी है कि ख़ालिक़ अपने आपमें ख़ुद किसी जगह पर ठहरा हुआ नहीं है, मगर बन्दा उसकी मुलाक़ात के लिए एक जगह का मुहताज है जहाँ उसके लिए अल्लाह के जलवों को मरकूज़ (केन्द्रित) किया जाए। वरना उस हस्ती से जो किसी भी तरह की पाबन्दियों से आज़ाद है उस बन्दे के लिए मुलाक़ात मुमकिन नहीं है जो पाबन्दियों में जकड़ा हुआ है।

रहा दूसरा एतिराज़ तो वह इसलिए ग़लत है कि मेराज के मौक़े पर बहुत-सी हक़ीक़तें नबी (सल्ल॰) को दिखाई गई थीं, उनमें कुछ हक़ीक़तों को मिसाल के तौर पर दिखाया गया था। मसलन एक फ़ितना फैलानेवाली बात की यह मिसाल कि एक ज़रा-से सुराख़ में से एक मोटा-सा बैल निकला और फिर उसमें वापस न जा सका। या बदकारों (व्यभिचारियों) की यह मिसाल कि उनके पास ताज़ा और बेहतरीन गोश्त मौजूद है, मगर वे उसे छोड़कर सड़ा हुआ गोश्त खा रहे हैं। इसी तरह बुरे आमाल की जो सज़ाएँ आप (सल्ल॰) को दिखाई गईं वे भी मिसाल के रंग में आख़िरत की दुनिया में मिलनेवाली सज़ाएँ पहले ही दिखाई गई थीं।

अस्ल बात जो मेराज के सिलसिले में समझ लेनी चाहिए वह यह है कि पैग़म्बरों (अलैहि॰) में से

اَلَّا تَتَّخِذُوْا مِنْ دُوْنِيْ وَكِيْلًا ۝٢ ذُرِّيَّةَ مَنْ حَمَلْنَا مَعَ نُوْحٍ ۭ اِنَّهٗ كَانَ
عَبْدًا شَكُوْرًا ۝٣ وَقَضَيْنَآ اِلٰى بَنِيْٓ اِسْرَاۗءِيْلَ فِي الْكِتٰبِ لَتُفْسِدُنَّ فِي

हिदायत का ज़रिआ बनाया था[2], इस ताकीद के साथ कि मेरे सिवा किसी को अपना वकील न बनाना।[3] (3) तुम उन लोगों की औलाद हो जिन्हें हमने नूह के साथ नाव पर सवार किया था,[4] और नूह एक शुक्रगुज़ार बन्दा था। (4) फिर हमने अपनी किताब[5] में

हर एक को अल्लाह तआला ने उनके ओहदे के हिसाब से आसमानों और ज़मीन की चीज़ें दिखाई हैं और माद्दी (भौतिक) परदों को बीच से हटाकर आँखों से वे हक़ीक़तें दिखाई हैं जिनपर बिन देखे ईमान लाने की दावत देने पर वे मुक़र्रर किए गए थे, ताकि उनका मक़ाम एक फ़लसफ़ी (दार्शनिक) के मक़ाम से बिलकुल अलग हो जाए। फ़लसफ़ी जो कुछ भी कहता है अनुमान और अटकल से कहता है, वह ख़ुद अगर अपनी हैसियत जानता हो तो कभी अपनी किसी राय की सच्चाई पर गवाही न देगा। मगर पैग़म्बर जो कुछ कहते हैं वे सीधे तौर पर इल्म और देखने की बुनियाद पर कहते हैं और वे दुनियावालों के सामने यह गवाही दे सकते हैं कि हम इन बातों को जानते हैं और ये हमारी आँखों देखी हक़ीक़तें हैं।

2. मेराज का ज़िक्र सिर्फ़ एक जुमले में करके यकायक बनी-इसराईल का यह ज़िक्र जो शुरू कर दिया गया है, सरसरी निगाह में ये आदमी को कुछ बेजोड़-सा महसूस होता है। मगर सूरा के मक़सद को अच्छी तरह समझ लिया जाए तो उसका जोड़ आसानी से समझ में आ जाता है। सूरा का अस्ल मक़सद मक्का के इस्लाम-दुश्मनों को ख़बरदार करना है। शुरू में मेराज का ज़िक्र सिर्फ़ इसलिए किया गया है कि सामनेवालों को आगाह कर दिया जाए कि ये बातें तुमसे वह शख़्स कर रहा है जो अभी-अभी अल्लाह तआला की अज़ीमुश्शान निशानियाँ देखकर आ रहा है। इसके बाद अब बनी-इसराईल के इतिहास से सबक़ याद दिलाया जाता है कि अल्लाह की तरफ़ से किताब पानेवाले जब अल्लाह के मुक़ाबले में सिर उठाते हैं तो देखो फिर उनको कैसी दर्दनाक सज़ा दी जाती है।
3. वकील, यानी जिसपर एतिमाद और भरोसे का दारोमदार हो, जिसपर पूरा भरोसा किया जाए, जिसके सुपुर्द अपने मामले कर दिए जाएँ, जिसकी तरफ़ हिदायत और मदद पाने के लिए रुजूअ् किया जाए।
4. यानी नूह और उनके साथियों की औलाद होने की हैसियत से तुम्हारी शान के मुताबिक़ यही है कि तुम सिर्फ़ एक अल्लाह ही को अपना वकील बनाओ, क्योंकि जिनकी तुम औलाद हो वह अल्लाह ही को वकील बनाने की बदौलत तूफ़ान की तबाही से बचे थे।
5. किताब से मुराद यहाँ तौरात नहीं है, बल्कि आसमानी सहीफ़ों (किताबों) का मजमूआ (संग्रह) है जिसके लिए क़ुरआन में इस्तिलाह (परिभाषा) के तौर पर लफ़्ज 'अल-किताब' कई जगह इस्तेमाल हुआ है।

الْاَرْضِ مَرَّتَيْنِ وَلَتَعْلُنَّ عُلُوًّا كَبِيْرًا ۞ فَاِذَا جَآءَ وَعْدُ اُوْلٰىهُمَا
بَعَثْنَا عَلَيْكُمْ عِبَادًا لَّنَآ اُولِىْ بَاْسٍ شَدِيْدٍ فَجَاسُوْا خِلٰلَ الدِّيَارِ ۭ

बनी-इसराईल को इस बात पर भी ख़बरदार कर दिया था कि तुम दो बार ज़मीन में बड़े बिगाड़ पैदा करोगे और बड़ी सरकशी दिखाओगे[6]। (5) आख़िरकार जब उनमें से पहली सरकशी का मौक़ा पेश आया, तो ऐ बनी-इसराईल, हमने तुम्हारे मुक़ाबले पर अपने ऐसे बन्दे उठाए जो बहुत ही ज़ोरआवर थे और वे तुम्हारे देश में घुसकर हर तरफ़ फैल गए।

6. बाइबल की पाक किताबों के मजमूए में ये चेतावनियाँ अलग-अलग जगहों पर मिलती हैं। पहले फ़साद और उसके बुरे नतीजों पर बनी-इसराईल को ज़बूर, यशायाह, यिर्मयाह और यहेजकेल में ख़बरदार किया गया है, और दूसरे बिगाड़ और उसकी सख़्त सज़ा की पेशनगोई हज़रत मसीह ने की है जो मत्ती और लूक़ा की इंजीलों में मौजूद है। नीचे हम उन किताबों की वे इबारतें नक़्ल करते हैं जिनमें ये बातें बयान की गई हैं, ताकि क़ुरआन के इस बयान की पूरी सच्चाई सामने आ जाए।

पहले बिगाड़ पर सबसे पहले हज़रत दाऊद (अलैहि॰) ने ख़बरदार किया था, जिसके अलफ़ाज़ ये हैं :

"जिन लोगों के विषय में यहोवा ने उन्हें आज्ञा दी थी उनका उन्होंने सत्यानाश न किया, बल्कि उन्हीं जातियों से हिलमिल गए और उनके व्यवहारों को सीख लिया, और उनकी मूर्तियों की पूजा करने लगे और वे उनके लिए फन्दा बन गईं। उन्होंने अपने बेटे-बेटियों को पिशाचों (शैतानों के लिए बलिदान (क़ुरबान) किया, और अपने निर्दोष (मासूम) बेटे-बेटियों का ख़ून बहाया....... तब यहोवा का क्रोध अपनी प्रजा पर भड़का और उसको अपने निज भाग (अपने आप) से घृणा आई। तब उसने उनको अन्य जातियों के वश में कर दिया और उनके बैरियों ने उनपर प्रभुता की (उन पर ग़ालिब हुए)।" (बाइबल, भजन संहिता 106/34-41)

इस इबारत में उन वाक़िआत को जो बाद में होनेवाले थे, इस तरह बयान किया गया है मानो वे हो चुके हैं। ये आसमानी किताबों का बयान करने का अपना ख़ास अंदाज़ है। फिर जब यह बड़ा बिगाड़ हो गया तो उसके नतीजे में आनेवाली तबाही की ख़बर यशायाह नबी अपने सहीफ़े में इस तरह देते हैं–

"हाय यह जाति (क़ौम) पाप से कैसी भरी है! यह समाज अधर्म से कैसा लदा हुआ है! इस वंश के लोग कैसे कुकर्मी हैं, ये बाल-बच्चे कैसे बिगड़े हुए हैं! उन्होंने यहोवा (परमेश्वर) को छोड़ दिया, उन्होंने इस्राएल (इसराईल) के पवित्र (मुक़द्दस) होने को तुच्छ (हक़ीर) जाना! वे पराए बनकर दूर हो गए हैं। तुम बलवा कर-करके क्यों अधिक मार खाना चाहते हो?" (बाइबल, यशायाह, 1/4-5)

"जो नगरी सती-साध्वी (नेक) थी वह कैसे व्यभिचारिण हो गई! वह न्याय से भरी थी और उसमें धर्म पाया जाता था, लेकिन अब उसमें हत्यारे ही पाए जाते हैं।—— तेरे हाकिम (सरदार) हठीले और चोरों से मिले हैं। वे सबके सब घूस खानेवाले और भेंट (तोहफ़े) के लालची हैं। वे अनाथ (यतीम) का न्याय नहीं करते और न विधवा (बेवा) का मुक़द्दमा अपने पास आने देते हैं। इस कारण प्रभु सेनाओं के यहोवा, इस्राएल के शक्तिमान की यह वाणी (कलाम) है : 'सुनो, मैं अपने शत्रुओं को दूर करके शान्ति पाऊँगा और अपने बैरियों से पलटा (इंतिक़ाम) लूँगा।" (बाइबल, यशायाह 1/21-24)

"वे पूर्व देश के व्यवहार पर तन-मन से चलते हैं और पलिश्तियों (फ़िलिस्तियों) के समान टोना करते हैं, और परदेशियों के साथ हाथ मिलाते हैं।....... उनका देश मूर्तियों से भरा है, वे अपने हाथों की बनाई हुई वस्तुओं को जिन्हें उन्होंने अपनी उँगलियों से सँवारा है, दण्डवत् (सजदा) करते हैं।" (बाइबल, यशायाह 2/6-8)

"क्योंकि सिय्योन (यरूशलेम) की स्त्रियाँ घमण्ड करतीं और सिर ऊँचे किए आँखें मटकाती और घुँघरुओं को छमछमाती हुई ठुमुक-ठुमुक चलती हैं। इसलिए प्रभु यहोवा उनके सिर को गंजा करेगा और उनके तन को उघरवाएगा।........ तेरे पुरुष (मर्द) तलवार से, और शूरवीर (बहादुर) युद्ध में मारे जाएँगे। और उसके फाटक ठण्डी साँस भरेंगे और विलाप करेंगे और वह भूमि पर अकेली बैठी रहेंगी।" (बाइबल, यशायाह 3/16-26)

"सुन, प्रभु उनपर उस प्रबल और गहरे महानद को अर्थात् अश्शूर के राजा को उसके सारे प्रताप के साथ चढ़ा लाएगा, और वह उनके सब नालों को भर देगा, और सारे तटों से छलककर बहेगा।" (बाइबल, यशायह 8/7)

"वे बलवा करनेवाले लोग और झूठ बोलनेवाले लड़के हैं, जो यहोवा (ख़ुदा) की शिक्षा को सुनना नहीं चाहते। वे दर्शियों से कहते है : दर्शी मत बनो, और नबियों से कहते हैं, हमारे लिए ठीक नबूवत मत करो, हमसे चिकनी-चुपड़ी बातें बोलो, धोखा देनेवाली नबूवत करो। मार्ग से मुड़ो, पथ से हटो, और इस्राएल के पवित्र को हमारे सामने से दूर करो। इस कारण इस्राएल का पवित्र यों कहता है, तुम लोग जो मेरे इस वचन को निकम्मा जानते और अंधेर और कुटिलता पर भरोसा करके उन्हीं पर टेक लगाते हो; इस कारण यह अधर्म तुम्हारे लिए ऊँची दीवार का टूटा हुआ भाग होगा जो फटकर गिरने पर हो, और वह अचानक पलभर में टूटकर गिर पड़ेगा, और कुम्हार के बर्तन के समान फूटकर ऐसा चकनाचूर होगा कि उसके टुकड़ों का एक ठीकरा भी न मिलेगा जिससे अँगीठी में से आग ली जाए या हौद में से जल निकाला जाए।" (बाइबल, यशायाह 30/9-14)

फिर जब सैलाब के बन्द बिलकुल टूटने को थे तो यिर्मयाह नबी की आवाज़ बुलन्द हुई और उन्होंने कहा —

"यहोवा (ख़ुदा) यों कहता है कि तुम्हारे पुरखाओं (पुरखों) ने मुझमें कौन-सी ऐसी कुटिलता पाई कि मुझसे दूर हट गए और निकम्मी वस्तुओं के पीछे होकर स्वयं निकम्मे हो गए?....... मैं तुमको इस उपजाऊ देश में ले आया कि उसका फल और उत्तम उपज खाओ, परन्तु मेरे इस देश में आकर तुमने इसे अशुद्ध (नापाक) किया, और मेरे इस निज भाग (विरासत) को घृणित कर दिया है।...... बहुत समय पहले मैंने तेरा जूआ तोड़ डाला और तेरे बंधन खोल दिए लेकिन

तूने कहा, 'मैं सेवा न करूँगी।' और सब ऊँचे-ऊँचे टीलों पर और सब हरे पेड़ों के नीचे तू व्यभिचारिण (बदकार) का-सा काम करती रही (अर्थात हर ताक़त के आगे झुकी और हर बुत को सजदा किया)........ जैसे चोर पकड़े जाने पर लज्जित होता है उसी तरह इस्राएल (इसराईल) का घराना राजाओं, हाकिमों, याजकों और भविष्यद्वक्ताओं (काहिनों) समेत लज्जित होगा। वे काठ (लकड़ी) से कहते हैं कि तू मेरा बाप है, और पत्थर से कहते हैं कि तूने मुझे जन्म दिया है। इस प्रकार उन्होंने मेरी ओर मुँह नहीं पीठ ही फेरी है, लेकिन विपत्ति (मुसीबत) के वक़्त वे कहते हैं कि उठकर हमें बचा। लेकिन जो देवता तूने बना लिए हैं वे कहाँ रहे? अगर वे तेरी मुसीबत के वक़्त तुझको बचा सकते हैं तो अभी उठें, क्योंकि हे यहूदा तेरे नगरों के बराबर तेरे देवता भी बहुत-से हैं।" (बाइबल, यिर्मयाह 2/5-28)

"यहोवा ख़ुदावन्द ने मुझसे यह भी कहा, 'क्या तूने देखा कि भटकनेवाली इस्राएल (क़ौम) ने क्या किया है? उसने सब ऊँचे पहाड़ों पर और सब हरे पेड़ों के नीचे जा-जाकर व्यभिचार (यानी बुतपरस्ती) किया है .... और उसकी विश्वासघाती बहिन यहूदा (यानी यरूशलेम के यहूदी राज्य) ने यह (हाल) देखा। फिर मैंने देखा, जब मैंने भटकनेवाली इस्राएल को उसके व्यभिचार (अर्थात् शिर्क) करने के कारण त्यागकर उसे त्यागपत्र दे दिया (यानी अपनी रहमत से महरूम कर दिया) तो भी उसकी विश्वासघाती बहिन यहूदा (क़ौम) न डरी, बल्कि जाकर वह भी व्यभिचारिण बन गई। उसके निर्लज्ज-व्यभिचारिणी होने के कारण देश भी अशुद्ध (नापाक) हो गया। उसने पत्थर और काठ के साथ भी व्यभिचारण (यानी बुतपरस्ती) किया," (बाइबल, यिर्मयाह 3/6-9)

"यरूशलेम की सड़कों में इधर-उधर दौड़कर देखो! उसके चौकों में ढूँढ़ो, अगर कोई ऐसा (आदमी) मिल सके जो न्याय से काम करे और सच्चाई का खोजी हो; तो मैं उसका पाप क्षमा करूँगा।........ मैं कैसे तेरा पाप माफ़ करूँ, तेरे लड़कों ने मुझको छोड़कर उनकी क़सम खाई है जो परमेश्वर नहीं हैं। जब मैंने उनका पेट भर दिया तब उन्होंने व्यभिचार किया और वेश्याओं के घरों में भीड़ की भीड़ जाते थे। वे खिलाए-पिलाए बे-लगाम घोड़ों की तरह हो गए, वे अपने-अपने पड़ोसी की स्त्री पर हिनहिनाने लगे। क्या मैं ऐसे कामों का उन्हें दण्ड न दूँ? यहोवा की यह वाणी है, क्या मैं ऐसी जाति से अपना बदला न लूँ?" (बाइबल, यिर्मयाह 5/1-9)

"ऐ इस्राएल (इसराईल) के घराने! देख, मैं तुम्हारे खिलाफ़ दूर से ऐसी जाति को चढ़ा लाऊँगा जो सामर्थी (ताक़तवर) और प्राचीन है, उसकी भाषा तुम न समझोगे, और न यह जानोगे कि वे लोग क्या कह रहे हैं। उनका तर्कश खुली क़ब्र है और वे सब-के-सब शूरवीर हैं। तुम्हारे पके खेत और भोजन-वस्तुएँ जो तेरे बेटे-बेटियों के खाने के लिए हैं उन्हें वे खा जाएँगे। वे तुम्हारी भेड़-बकरियों और गाय-बैलों को खा डालेंगे; वे तुम्हारे अंगूरों और अंजीरों को खा जाएँगे। और जिन गढ़वाले नगरों पर तुम भरोसा रखते हो उन्हें वे तलवार के बल से नष्ट कर देंगे। (बाइबल, यिर्मयाह 5/15-17)

"इन लोगों की लाशें आकाश के परिन्दों और ज़मीन के दरिन्दों का भोजन होंगी और उनको भगानेवाला कोई न रहेगा। उस समय मैं ऐसा करूँगा कि यहूदा के नगरों में और यरूशलेम की सड़कों में न तो हर्ष और आनन्द का शब्द सुनाई पड़ेगा और न दूल्हे और न दुल्हिन का; क्योंकि देश उजाड़ ही उजाड़ (वीरान) हो जाएगा।" (बाइबल, यिर्मयाह 7/33-34)

"इनको मेरे सामने से निकाल दो कि वे निकल जाएँ! यदि वे तुझसे पूछें कि हम कहाँ निकल जाएँ? तो उनसे कहना कि यहोवा (ख़ुदावन्द) यों कहता है : जो मरनेवाले हैं वे मरने को चले जाएँ, जो तलवार से मरनेवाले हैं वे तलवार से मरने को, जो आकाल से मरनेवाले हैं वे आकाल से मरने को और जो बन्दी बननेवाले हैं वे बँधुआई में चले जाएँ। (बाइबल, यिर्मयाह 15/1-2)
फिर ठीक वक़्त पर यहेजकेल नबी उठे और उन्होंने यरूशलेम को संबोधित करके कहा :
"ऐ नगर, तू अपने बीच में हत्या करता है जिससे तेरा वक़्त आ जाए और अपनी ही हानि करने और अशुद्ध होने के लिए मूरतें बनाता है........ देख, इस्राएल (इसराईल) के प्रधान लोग अपने-अपने बल के अनुसार तुझमें हत्या करनेवाले हुए हैं। तुझमें माता-पिता तुच्छ जाने गए हैं; तेरे बीच परदेशी पर अंधेर किया गया; और अनाथ और विधवा तुझमें पीसी गई हैं। तूने मेरी पाक चीज़ों को तुच्छ जाना और मेरे विश्रामदिनों को नापाक किया है। तुझमें लुच्चे लोग हत्या करने को तत्पर हुए और तेरे लोगों ने पहाड़ों पर भोजन किया है; तेरे बीच महापाप किया गया है। तुझमें पिता की देह उघारी गई, तुझमें ऋतुमती स्त्री से ही सम्भोग किया गया है। किसी ने तुझमें पड़ोसी की बीवी के साथ घिनौना काम किया और किसी ने अपनी बहू को बिगाड़कर महापाप किया है; और किसी ने अपनी बहिन, अपने बाप की बेटी को भ्रष्ट किया है। तुझमें हत्या करने के लिए उन्होंने घूस ली है; तूने ब्याज और सूद लिया और अपने पड़ोसियों को पीस-पीसकर अन्याय से लाभ उठाया; और मुझको तूने भूला दिया है,....... जिन दिनों मैं तेरा न्याय करूँगा, क्या उनमें तेरा ह्रदय दृढ़ और तेरे हाथ स्थिर रह सकेंगे?........ मैं तेरे लोगों को जाति-जाति में तितर-बितर करूँगा और देश-देश में छितरा दूँगा, और तेरी नापाकी को तुझमें से नष्ट करूँगा। तू जाति-जाति के देखते हुए अपनी ही नज़र में अपवित्र ठहरेगी; तब तू जान लेगा कि मैं यहोवा (पूज्य-प्रभु) हूँ।" (यहेजकेल 22/3-16)
ये थीं वे तम्बीहात (चेतावनियाँ) जो बनी-इसाईल को पहले बड़े बिगाड़ के मौक़े पर की गईं। फिर दूसरे बड़े बिगाड़ और उसके भयानक नतीजों पर हज़रत मसीह (अलैहि॰) ने उनको ख़बरदार किया। मत्ती अध्याय 23 में मसीह (अलैहि॰) का एक तफ़सीली ख़ुत्बा दर्ज है जिसमें वे अपनी क़ौम की ज़बरदस्त अख़लाक़ी गिरावट की आलोचना करने के बाद फ़रमाते है :
"ऐ यरूशलेम! ऐ यरूशलेम! तू भविष्यद्वक्ताओं (नबियों) को मार डालता है और जो तेरे पास भेजे गए उनपर पथराव करता है। कितनी ही बार मैंने चाहा कि जैसे मुर्गी अपने बच्चों को अपने पंखों के नीचे इकट्ठा करती है, वैसे ही मैं भी तेरे बालकों को इकट्ठा कर लूँ, परन्तु तुमने न चाहा। देखो, तुम्हारा घर तुम्हारे लिए उजाड़ छोड़ा जाता है।" (मत्ती-23/37-38)
"मैं तुमसे सच कहता हूँ, यहाँ पत्थर पर पत्थर भी न छूटेगा जो ढाया न जाएगा।" (बाइबल, मत्ती 24/2)
फिर जब रूमी हुकूमत के कर्मचारी हज़रत मसीह (अलैहि॰) को सूली पर चढ़ाने के लिए ले जा रहे थे और लोगों की एक भीड़ जिसमें औरतें भी थीं, रोती-पीटती उनके पीछे जा रही थीं, हज़रत मसीह (अलैहि॰) ने उनकी तरफ़ मुड़कर कहा :
"ऐ यरूशलेम की बेटियो! मेरे लिए मत रोओ; बल्कि अपने और अपने बच्चों के लिए रोओ। क्योंकि देखो, वे दिन आते हैं जिनमें लोग कहेंगे कि धन्य हैं वे जो बाँझ हैं और वे गर्भ जो न जने और वे स्तन जिन्होंने दूध न पिलाया। उस वक़्त वे पहाड़ों से कहने लगें कि हम पर गिरो और टीलों से कि हमें ढाँप लो।" (बाइबल, लूक़ा 23/28-30)

وَكَانَ وَعْدًا مَّفْعُوْلًا ۝ ثُمَّ رَدَدْنَا لَكُمُ الْكَرَّةَ عَلَيْهِمْ وَاَمْدَدْنٰكُمْ

यह एक वादा था जिसे पूरा होकर ही रहना था।[7] (6) इसके बाद हमने तुम्हें उनपर

7. इससे मुराद वह हौलनाक तबाही है जो आशूरियों और बाबिलवालों के हाथों बनी-इसराईल पर आई। इसका तारीख़ी पसमंज़र समझने के लिए सिर्फ़ वे इक़्तिबासात (उद्धरण) काफ़ी नहीं हैं जो ऊपर हम नबियों की किताबों से नक़्ल कर चुके हैं, बल्कि एक मुख़्तसर तारीख़ी बयान भी ज़रूरी है ताकि एक जानकारी चाहनेवाले के सामने वे तमाम सबब आ जाएँ जिनकी वजह से अल्लाह तआला ने एक किताब रखनेवाली क़ौम को क़ौमों की इमामत के मंसब से गिराकर एक हारी हुई, ग़ुलाम और बहुत ही पिछड़ी हुई क़ौम बनाकर रख दिया।

हज़रत मूसा के इन्तिक़ाल के बाद जब बनी-इसराईल फ़िलस्तीन में दाख़िल हुए तो यहाँ अलग-अलग क़ौमें आबाद थीं। हित्ती, अम्मौरी, कनआनी, फिरिज़्ज़ी, हवी, यबूसी, फ़िलिस्ती वग़ैरा। इन क़ौमों में बहुत बुरे क़िस्म का शिर्क पाया जाता था। इनके सबसे बड़े माबूद का नाम 'एल' था जिसे ये देवताओं का बाप कहते थे और उसकी मिसाल आमतौर से सांड से दी जाती थी। उसकी बीवी का नाम 'अशीरा' था और उससे देवताओं और देवियों की एक पूरी नस्ल चली थी जिनकी तादाद 70 तक पहुँचती थी। उसकी औलाद में सबसे ज़्यादा ज़बरदस्त 'बअल' था जिसको बारिश और पैदावार का देवता और ज़मीन व आसमान का मालिक समझा जाता था। उत्तरी इलाक़ों में उसकी बीवी 'उनास' कहलाती थी और फ़िलस्तीन में 'इस्तारात' ये दोनों औरतें इश्क़ और नस्ल बढ़ाने की देवियाँ थीं। इनके अलावा कोई देवता मौत का मालिक था, किसी देवी के क़ब्ज़े में सेहत थी, किसी देवता को महामारी और अकाल लाने के इख़्तियार दिए गए थे, और यूँ सारी ख़ुदाई बहुत-से माबूदों में बट गई थी। उन देवताओं और देवियों की तरफ़ ऐसी-ऐसी बुरी सिफ़ात और काम जोड़े जाते थे कि अख़लाक़ी हैसियत से इन्तिहाई बदकिरदार इनसान भी उनके साथ अपना ताल्लुक़ जोड़ना पसन्द न करें। अब यह ज़ाहिर है कि जो लोग ऐसी कमीनी हस्तियों को ख़ुदा बनाएँ और उनकी इबादत करें वे अख़लाक़ की इंतिहाई घटिया गिरावटों में गिरने से कैसे बच सकते हैं, यही वजह है कि उनके जो हालात आसारे-क़दीमा (प्राचीन अवशेषों) की खुदाइयों से मिले हैं वे इन्तिहाई गिरावट की गवाही देते हैं। उनके यहाँ बच्चों की क़ुरबानी का आम रिवाज था। उनकी इबादतगाहें बदकारी के अड्डे बने हुए थे। औरतों को देवदासियाँ बनाकर इबादतगाहों में रखना और उनसे बदकारियाँ करना इबादत के कामों में दाख़िल था और इसी तरह की और बहुत-सी बद-अखलाक़ियाँ उनमें फैली हुई थीं।

तौरात में हज़रत मूसा के ज़रिए से बनी-इसराईल को जो हिदायतें दी गई थीं, उनमें साफ़-साफ़ कह दिया गया था कि तुम उन क़ौमों को हलाक करके उनके क़ब्ज़े से फ़िलस्तीन की सर-ज़मीन छीन लेना और उनके साथ रहने-बसने और उनकी अख़लाक़ी व एतिक़ादी ख़राबियों में मुब्तला होने से परहेज़ करना।

लेकिन बनी-इसराईल जब फ़िलस्तीन में दाख़िल हुए तो वे इस हिदायत को भूल गए। उन्होंने मिल-जुलकर और मुत्तहिद होकर अपनी कोई हुकूमत क़ायम नहीं की। वे क़बाइली असबियत

(पक्षपात) में मुब्तला थे। उनके हर क़बीले ने इस बात को पसन्द किया कि जीते हुए इलाक़े का एक हिस्सा लेकर अलग हो जाए। इस आपसी फूट की वजह से उनका कोई क़बीला भी इतना ताक़तवर न हो सका कि अपने इलाक़े को मुशरिकों से पूरी तरह पाक कर देता। आख़िकार उन्हें यह गवारा करना पड़ा कि मुशरिक उनके साथ रहें-बसें। और इतना ही नहीं बल्कि उनके जीते हुए इलाक़ों में जगह-जगह उन मुशरिक क़ौमों की छोटी-छोटी शहरी रियासतें भी मौजूद रहीं जिनको बनी-इसराईल अपने तहत न कर सके। इसी बात की शिकायत ज़बूर की उस इबारत में की गई है जिसे हमने हाशिया नंबर 6 के शुरू में नक़्ल किया है।

इसका पहला ख़ामियाज़ा तो बनी-इसराईल को यह भुगतना पड़ा कि उन क़ौमों के ज़रिए से उनके अन्दर शिर्क घुस आया और इसके साथ धीरे-धीरे दूसरी अख़लाक़ी गन्दगियाँ भी राह पाने लगीं। चुनाँचे इसकी शिकायत बाइबल की किताब 'न्यायियों, में यूँ की गई है :

"इस्राएली (बनी-इसराईल) वह करने लगे जो यहोवा (ख़ुदावन्द) की नज़र में बुरा है और बाल नामक देवताओं की उपासना करने लगे; वे अपने पूर्वजों के परमेश्वर यहोवा को, जो उन्हें मिस्र देश से निकाल लाया था, त्यागकर पराए देवताओं अर्थात् आसपास के लोगों के देवताओं की उपासना करने लगे और उन्हें दण्डवत् किया; और यहोवा को रिस दिलाई। वे यहोवा को त्यागकर बाल देवताओं और अशतोरेत देवियों की पूजा करने लगे। इसलिए यहोवा का कोप इस्राएलियों पर भड़क उठा।" (2/11-14)

इसके बाद दूसरा ख़मियाज़ा उन्हें यह भुगतना पड़ा कि जिन क़ौमों की शहरी रियासतें उन्होंने छोड़ दी थीं उन्होंने और फ़िलिस्तियों ने, जिनका पूरा इलाक़ा बनी-इसराईल के मातहत होने से रह गया था, बनी-इसराईल के ख़िलाफ़ एक मुत्तहिदा महाज़ (संयुक्त मोर्चा) क़ायम किया और लगातार हमले करके फ़िलस्तीन के बड़े हिस्से से उनको बेदख़ल कर दिया, यहाँ तक कि उनसे ख़ुदावन्द के अहद (वचन) का सन्दूक़ (ताबूते-सकीना) तक छीन लिया। आख़िकार बनी-इसराईल को एक बादशाह के तहत अपनी एक मुत्तहिदा सल्तनत (संयुक्त राज्य) क़ायम करने की ज़रूरत महसूस हुई, और उनकी दरख़ास्त पर हज़रत शमूएल नबी ने 1020 ईसा पूर्व में तालूत को उनका बादशाह बनाया। (इसकी तफ़सील सूरा-2 बक़रा आयत 246-248 और आयत 268-270 में गुज़र चुकी है।

इस मुत्तहिदा (संयुक्त) हुकूमत के तीन बादशाह हुए। तालूत (1020 से 1004 ई॰पू॰), हज़रत दाऊद (अलैहि॰) (1004 से 965 ई॰पू॰) और हज़रत सुलैमान (अलैहि॰) (965 से 926 ई॰ पू॰)। इन बादशाहों ने उस काम को पूरा किया जिसे बनी-इसराईल ने हज़रत मूसा के बाद अधूरा छोड़ दिया था। सिर्फ़ पूर्वी तट पर फ़ीनीक़ियों की और दक्षिणी तट पर फ़िलिस्तियों की हुकूमतें बाक़ी रह गईं जिन्हें जीता न जा सका और सिर्फ़ उनसे टैक्स लेने पर बस किया गया।

हज़रत सुलैमान (अलैहि॰) के बाद बनी-इसराईल पर दुनियापरस्ती का फिर सख़्त ग़लबा हुआ और उन्होंने आपस में लड़कर अपनी दो अलग सल्तनतें क़ायम कर लीं। उत्तरी फ़िलस्तीन और पूर्वी जॉर्डन में इसराईली हुकूमत, जिसकी राजधानी सामिरिय्या क़रार पाई। और दक्षिणी फ़िलस्तीन और अदूम के इलाक़े में यहूदी हुकूमत जिसकी राजधानी यरूश्लम रही। इन दोनों सल्तनतों में सख़्त दुश्मनी और कशमकश पहले दिन से शुरू हो गई और आख़िर तक रही।

इनमें से इसराईली हुकूमत के हुक्मराँ और बाशिन्दे पड़ोसी क़ौमों के शिर्कवाले अक़ीदों और अख़लाक़ी बिगाड़ से सबसे पहले और सबसे ज़्यादा मुतासिर हुए और यह हालत अपनी इन्तिहा को उस वक़्त पहुँच गई, जब इस हुकूमत का हाकिम 'अहाब' ने सीदोन की मुशरिक शहज़ादी, जिसका नाम ईजेबेल या जेज़ेबेल (Jezebel) था, से शादी कर ली। उस वक़्त हुकूमत की ताक़त और ज़रिओं से शिर्क और बद-अख़लाकियाँ सैलाब की तरह इसराईलियों में फैलनी शुरू हुईं। हज़रत इलियास (एलिय्याह) और हज़रत अल-यसअ (अलैहि०) ने इस सैलाब को रोकने की बहुत कोशिश की मगर यह क़ौम जिस गिरावट की तरफ़ जा रही थी उससे न रुकी। आख़िकार अल्लाह का ग़ज़ब अश्शिरियों की शक्ल में इसराईल हुकूमत की तरफ़ मुड़ा और 9वीं शताब्दी ईसा पूर्व से फ़िलस्तीन पर अशूरी फ़ातिहीन (विजेताओं) के लगातार हमले शुरू हो गए। इस दौर में आमोस नबी (787 से 747 ई० पू०) और फिर होशे नबी (747 से 735 ई० पू०) ने उठकर इसराईलियों को एक के बाद एक बराबर ख़बरदार किया, मगर जिस ग़फ़लत के नशे में वे चूर थे वह ख़बरदार करने के तीखेपन से और ज़्यादा तेज़ हो गया। यहाँ तक कि आमोस नबी को इसराईल के बादशाह ने देश से निकल जाने और सामरिया की सल्तनत की हदों में अपनी नुबूवत बन्द कर देने का नोटिस दे दिया। इसके बाद कुछ ज़्यादा मुद्दत न गुज़री थी कि ख़ुदा का अज़ाब इसराईली सल्तनत और उसके बाशिन्दों पर टूट पड़ा। सन् 721 ई०पू० में अशूर के कट्टर हुक्मराँ शल्मनेसेर ने सामरिया (शोमरोन) को जीतकर इसराईली सल्तनत का ख़ातिमा कर दिया। हज़ारों इसराईली क़त्ल किए गए। 27 हज़ार से ज़्यादा असरदार इसराईलियों को देश से निकालकर अशूरी सल्तनत के पूर्वी ज़िलों में तितर-बितर कर दिया गया और दूसरे इलाक़ों से लाकर ग़ैर-क़ौमों को इसराईल के इलाक़े में बसाया गया जिनके बीच रह-बसकर बचे-खुचे इसराईली लोग भी अपनी क़ौमी तहज़ीब (संस्कृति) से दिन-पर-दिन ज़्यादा बेगाने होते चले गए।

बनी-इसराईल की दूसरी हुकूमत जो यहूदिया के नाम से दक्षिणी फ़िलस्तीन में क़ायम हुई वह भी हज़रत सुलैमान (अलैहि०) के बाद बहुत जल्दी शिर्क और बद-अख़लाक़ी में मुब्तला हो गई, मगर अक़ीदे और अख़लाकी हैसियत से उसकी गिरावट की रफ़्तार इसराईली सल्तनत के मुक़ाबले में धीमी थी इसलिए उसको मुहलत भी कुछ ज़्यादा दी गई। अगरचे इसराईली सल्तनत की तरह इसपर भी अश्शिरियों ने एक के बाद एक हमले किए उसके शहरों को तबाह किया उसकी राजधानी का घेराव किया, लेकिन यह हुकूमत अश्शिरियों के हाथों ख़त्म न हो सकी बल्कि सिर्फ़ मातहत बनकर रह गई। फिर जब हज़रत यशायाह और हज़रत यर्मियाह की लगातार कोशिशों के बावजूद यहूदिया के लोग बुतपरस्ती और बद-अख़लाकियों से न रुके तो 598 ईसा पूर्व में बाबिल के बादशाह बख़्त नसर ने यरूशलम सहित पूरे यहूदिया राज्य को अपने तहत कर लिया और यहूदिया का बादशाह उसके पास क़ैदी बनकर रहा। यहूदियों की बद-आमालियों का सिलसिला इसपर भी ख़त्म न हुआ और हज़रत यिर्मियाह के समझाने के बावजूद वे अपने आमाल (कर्म) ठीक करने के बजाए बाबिल के ख़िलाफ़ बग़ावत करके अपनी क़िस्मत बदलने की कोशिश करने लगे। आख़िर 587 ईसा पूर्व में बख़्त नसर ने एक सख़्त हमला करके यहूदिया के तमाम बड़े-छोटे शहरों की ईंट से ईंट बजा दी, यरूशलम और हैकले सुलैमानी को इस तरह तबाह किया कि उसकी एक दीवार भी अपनी जगह खड़ी न रही, यहूदियों की बहुत

بِاَمْوَالٍ وَّبَنِيْنَ وَجَعَلْنٰكُمْ اَكْثَرَ نَفِيْرًا ۞ اِنْ اَحْسَنْتُمْ اَحْسَنْتُمْ
لِاَنْفُسِكُمْ ۗ وَاِنْ اَسَاْتُمْ فَلَهَا ؕ فَاِذَا جَآءَ وَعْدُ الْاٰخِرَةِ لِيَسُوْٓءٗا

ग़लबे का मौक़ा दे दिया और तुम्हें माल और औलाद से मदद दी और तुम्हारी तादाद पहले से बढ़ा दी।[8] (7) देखो, तुमने भलाई की तो वह तुम्हारे अपने ही लिए भलाई थी, और बुराई की तो वह तुम्हारे अपने ख़ुद के लिए बुराई साबित हुई। फिर जब दूसरे वादे

बड़ी तादाद को उनके इलाक़े से निकालकर देश-देश में बिखेर दिया और जो यहूदी अपने इलाक़े में रह गए वे भी पड़ोसी क़ौमों के हाथों बुरी तरह रुसवा और दबे-कुचले होकर रहे।

यह था वह पहला बिगाड़ जिससे बनी-इसराईल को ख़बरदार किया गया था, और यह थी वह पहली सज़ा जो उसके बदले में उनको दी गई थी।

8. यह इशारा है उस मुहलत की तरफ़ जो यहूदियों (यानी यहूदियावालों) को बाबिल की क़ैद से रिहाई के बाद दी गई। जहाँ तक सामरिया और इसराईल के लोगों का ताल्लुक़ है, वह तो अख़लाक़ी और अक़ीदे की पस्तियों में गिरने के बाद फिर न उठे, मगर यहूदिया के निवासियों में कुछ लोग ऐसे मौजूद थे जो भलाई पर क़ायम और भलाई की दावत देनेवाले थे। उसने उन लोगों में भी सुधार का काम जारी रखा जो यहूदिया में बचे-खुचे रह गए थे और उन लोगों को भी तौबा करने और पलटने पर उभारा जो बाबिल और दूसरे इलाक़ों में वतन से निकाल दिए गए थे। आख़िरकार अल्लाह की रहमत उनकी मददगार हुई। बाबिल की हुकूमत का ख़ातिमा हुआ। 539 ईसा पूर्व में ईरानी फ़ातेह (विजेता) साइरस (Cyrus) ने बाबिल को फ़तह किया और उसके दूसरे ही साल उसने हुक्म जारी कर दिया कि बनी-इसराईल को अपने वतन वापस जाने और वहाँ दोबारा आबाद होने की आम इजाज़त है। चुनाँचे इसके बाद यहूदियों के क़ाफ़िले-पर-क़ाफ़िले यहूदिया की तरफ़ जाने शुरू हो गए, जिनका सिलसिला मुद्दतों जारी रहा। साइरस ने यहूदियों को हैकल सुलैमानी दोबारा बनाने की इजाज़त भी दी, मगर एक अर्से तक पड़ोसी क़ौमें जो इस इलाक़े में आबाद हो गई थीं, रुकावटें खड़ी करती रहीं। आख़िर दारयूस (दारा) अव्वल ने 522 ईसा पूर्व यहूदिया के आख़िरी बादशाह के पोते ज़रू बाबिल को यहूदिया का गवर्नर मुक़र्रर किया और उसने हाग्गै (हज्जी) नबी जकर्याह नबी और काहिनों के सरदार येशू की निगरानी में मुक़द्दस हैकल को नए सिरे से तामीर किया। फिर 458 ईसा पूर्व में देश से निकाल दिए गए एक गरोह के साथ हज़रत उज़ैर (एज़्रा) यहूदिया पहुँचे और ईरान के बादशाह अर्तक्षत्र (Artaxerxes) ने एक फ़रमान के मुताबिक़ उनको इजाज़त दी :

"हे एज़्रा! तेरे परमेश्वर से मिली हुई बुद्धि के अनुसार जो तुझमें है, न्यायियों और विचार करनेवालों को नियुक्त कर जो महानद (दरिया) के पार रहनेवाले उन सब लोगों में जो तेरे परमेश्वर की व्यवस्था (शरीअत) जानते हों न्याय किया करें, और जो-जो उन्हें न जानते हों,

उनको तुम सिखाया करो। जो कोई तेरे परमेश्वर की व्यवस्था (शरीअत) और राजा की व्यवस्था न माने उसको फुर्ती से दण्ड दिया जाए, चाहे प्राणदण्ड, चाहे देश निकाला, चाहे माल ज़ब्त किया जाना, चाहे क़ैद करना।" (बाइबल, एज़्रा 7/25-26)

इस फ़रमान से फ़ायदा उठाकर हज़रत उज़ैर (अलैहि०) ने मूसा (अलैहि०) के दीन को दोबारा ज़िन्दा करने का बहुत बड़ा काम अंजाम दिया। उन्होंने यहूदी क़ौम के तमाम भले और सुधारवादी लोगों को हर तरफ़ से जमा करके एक मज़बूत निज़ाम क़ायम किया। बाइबल की पाँच किताबों को, जिनमें तौरात थी, तरतीब देकर शाया (प्रकाशित) किया, यहूदियों की दीनी तालीम (धार्मिक शिक्षा) का इन्तिज़ाम किया, शरीअत के क़ानूनों को लागू करके अक़ीदे और अख़लाक़ की उन बुराइयों को दूर करना शुरू किया जो बनी-इसराईल के अन्दर ग़ैर-क़ौमों के असर से घुस आई थीं, उन तमाम मुशरिक औरतों को तलाक़ दिलवाई जिनसे यहूदियों ने ब्याह कर रखे थे। और बनी-इसराईल से नए सिरे से ख़ुदा की बन्दगी और उसके दस्तूर की पैरवी का अहद (वचन) लिया।

445 ईसा पूर्व में नहेम्याह की रहनुमाई और सरदारी में एक और जिलावतन (निष्कासित) गरोह यहूदिया वापस आया और ईरान के बादशाह ने नहेम्याह को यरूशलेम का हाकिम मुक़र्रर करके इस बात की इजाज़त दी कि वह उसके नगर को घेरनेवाली दीवार खड़ी करे। इस तरह डेढ़ सौ साल बाद बैतुल-मक़दिस फिर से आबाद हुआ और यहूदी मज़हब व तहज़ीब का मर्कज़ बन गया। मगर उत्तरी फ़िलस्तीन और सामरिया के इसराईलियों ने हज़रत उज़ैर की उन बातों से कोई फ़ायदा न उठाया जो उन्होंने सुधार और दीन को दोबारा ज़िन्दा करने के सिलसिले में अंजाम दी थीं, बल्कि बैतुल-मक़दिस के मुक़ाबले में अपना एक मज़हबी मर्कज़ जरज़ीम पहाड़ पर तामीर करके उसको अहले-किताब का क़िब्ला बनाने की कोशिश की। इस तरह यहूदियों और सामरियों के बीच दूरी और ज़्यादा बढ़ गई।

ईरानी सल्तनत के ज़वाल (पतन) और सिकन्दर आज़म की फ़तूहात (विजयों) और फिर यूनानियों की तरक़्क़ी से यहूदियों को कुछ मुद्दत के लिए एक सख़्त धक्का लगा। सिकन्दर की मौत के बाद उसकी सल्तनत जिन तीन राज्यों में बँटी थी, उनमें से शाम (सीरिया) का इलाक़ा उस सलूक़ी (Seleucid) सल्तनत के हिस्से में आया जिसकी राजधानी अन्ताकिया थी और उसके हुक्मराँ अंट्यूकस सामें (तृतीय) ने 198 ईसा पूर्व में फ़िलस्तीन पर क़ब्ज़ा कर लिया। ये यूनानी विजेता जो मज़हबी तौर पर मुशरिक और अख़लाक़ी तौर से हर पाबन्दी से आज़ाद रहना पसन्द करते थे, यहूदी मज़हब व तहज़ीब को सख़्त नागवार महसूस करते थे। उन्होंने उसके मुक़ाबले में सियासी और मआशी (आर्थिक) दबाव से यूनानी तहज़ीब को बढ़ावा देना शुरू किया और ख़ुद यहूदियों में से अच्छे-ख़ासे लोग उनके हथियार बन गए। इस बाहरी दख़लअंदाजी ने यहूदी क़ौम में फूट डाल दी। एक गरोह ने यूनानी लिबास, यूनानी ज़बान, यूनानी रहन-सहन और यूनानी खेलों को अपना लिया और दूसरा गरोह अपनी तहज़ीब पर सख़्ती के साथ क़ायम रहा। 175 ईसा पूर्व में अंट्यूकस चहारुम (चतुर्थ) (जिसका लक़ब एपी फ़ानीस यानी ख़ुदा का मज़हर था) जब तख़्त पर बैठा तो उसने पूरी जाबिराना (दमनकारी) ताक़त से काम लेकर यहूदी मज़हब व तहज़ीब को जड़ से उखाड़ फेंकना चाहा। उसने

وُجُوهَكُمْ وَلِيَدْخُلُوا الْمَسْجِدَ كَمَا دَخَلُوهُ أَوَّلَ مَرَّةٍ وَّلِيُتَبِّرُوْا مَا
عَلَوْا تَتْبِيْرًا ۞ عَسٰى رَبُّكُمْ اَنْ يَّرْحَمَكُمْ ۚ وَاِنْ عُدْتُّمْ عُدْنَا ۘ وَجَعَلْنَا

का वक़्त आया तो हमने दूसरे दुश्मनों को तुमपर मुसल्लत किया, ताकि वे तुम्हारे चेहरे बिगाड़ दें और मस्जिद (बैतुल-मक़्दिस) में उसी तरह घुस जाएँ जिस तरह पहले दुश्मन घुसे थे और जिस चीज़ पर उनका हाथ पड़े उसे तबाह करके रख दें[9]– (8) हो सकता है कि अब तुम्हारा रब तुमपर रहम करे, लेकिन अगर तुमने फिर अपने पुराने रवैये को दोहराया तो हम भी फिर अपनी सज़ा को दोहराएँगे, और नेमत का इनकार करनेवाले

बैतुल-मक़दिस के हैकल में ज़बरदस्ती बुत रखवाए और यहूदियों को मजबूर किया कि उनको सजदा करें। उसने क़ुरबानगाह पर क़ुरबानी बन्द कराई, उसने यहूदियों को शिर्कवाली क़ुरबानगाहों पर क़ुरबानियाँ करने का हुक्म दिया। उसने उन सब लोगों के लिए मौत की सज़ा तय की जो अपने घरों में तौरात का नुस्ख़ा रखें, या सब्त के हुक्मों पर अमल करें या अपने बच्चों के ख़तने कराएँ। लेकिन यहूदी इस ज़ुल्म और ज़्यादती के आगे झुके नहीं और उनके अन्दर एक ज़बरदस्त तहरीक (आन्दोलन) उठी जो तारीख़ में मक्काबी बग़ावत के नाम से मशहूर है। हालाँकि इस कशमकश में यूनान से मुतास्सिर यहूदियों की सारी हमदर्दियाँ यूनानियों के साथ थीं, और उन्होंने अमली तौर पर मक्काबी बग़ावत को कुचलने में अन्ताकिया के ज़ालिमों का पूरा साथ दिया, लेकिन आम यहूदियों में हज़रत उज़ैर की फूँकी हुई दीनदारी की रूह का इतना ज़बरदस्त असर था कि वे सब मक्काबियों के साथ हो गए और आख़िकार उन्होंने यूनानियों को निकालकर अपनी एक आज़ाद दीनी रियासत क़ायम कर ली, जो 67 ईसा पूर्व तक क़ायम रही। इस रियासत की हदें फैलकर धीरे-धीरे उस पूरे इलाक़े पर हावी हो गईं जो कभी यहूदिया और इसराईल की रियासतों के मातहत थे, बल्कि फ़िलिस्तिया का भी एक बड़ा हिस्सा उसके क़ब्ज़े में आ गया, जो हज़रत दाऊद और सुलैमान (अलैहि०) के ज़माने में भी कब्ज़ें में न आया था।

इन्हीं वाक़िआत की तरफ़ क़ुरआन मजीद की यह आयत-6 इशारा करती है।

9. इस दूसरे बिगाड़ और उसकी सज़ा का तारीख़ी पसमंज़र यह है :

मक्काबियों की तहरीक जिस अख़लाक़ी व दीनी रूह के साथ उठी थी वह धीरे-धीरे मिटती चली गई और उसकी जगह ख़ालिस दुनियापरस्ती और बेरूह ज़ाहिरदारी और दिखावे ने ले ली। आख़िकार उनके बीच फूट पड़ गई और उन्होंने ख़ुद (रूमी) विजेता पोम्पी को फ़िलस्तीन आने की दावत दी। चुनाँचे पोम्पी 63 ईसा पूर्व में इस देश की तरफ़ मुड़ा और उसने बैतुल-मक़दिस पर क़ब्ज़ा करके यहूदियों की आज़ादी का ख़ातिमा कर दिया। लेकिन रोमी विजेताओं की यह मुस्तक़िल पॉलिसी थी कि वे जीते हुए इलाक़ों पर सीधे तौर पर अपनी हुकूमत क़ायम करने के

बजाए मक़ामी हुक्मरानों के ज़रिए से अपना काम निकलवाना ज़्यादा पसन्द करते थे। इसलिए उन्होंने फ़िलस्तीन में अपने मातहत एक देसी रियासत क़ायम कर दी जो आख़िर में 40 ईसा पूर्व में एक होशियार यहूदी जिसका नाम हेरोदेस (Herod) था के क़ब्ज़े में आई। यह शख़्स हेरोदेस महान (Herod the Great) के नाम से मशहूर है। उसकी हुकूमत पूरे फ़िलस्तीन और पूर्वी जार्डन पर 40 से 4 ईसा पूर्व तक रही। उसने एक तरफ़ मज़हबी पेशवाओं की सरपरस्ती करके यहूदियों को खुश रखा, और दूसरी तरफ़ रोमी तहज़ीब को बढ़ावा देकर और रोमी हुकूमत की तरफ़दारी का ज़्यादा-से-ज़्यादा मुज़ाहिरा करके क़ैसर (बादशाह) की भी ख़ुशनूदी हासिल की। उस ज़माने में यहूदियों की दीनी व अख़लाक़ी हालत गिरते-गिरते गिरावट की आख़िरी हद को पहुँच चुकी थी। हेरोदेस के बाद उसकी रियासत तीन हिस्सों में बट गई।

उसका एक बेटा अरख़िलाऊस (Archelaus), सामरिया (Samaria), यहूदिया (Judah) और उत्तरी इदूमिया (Northern Edom) का हुक्मराँ हुआ। मगर 6 ईसा पूर्व में कैसर औगुस्तुस (Caesar Augustus) ने उसको हटाकर उसकी पूरी रियासत अपने गवर्नर के मातहत कर दी और 41 ई॰ तक यही इन्तिज़ाम क़ायम रहा। यही ज़माना था जब हज़रत मसीह (अलैहि॰) बनी-इसराईल के सुधार के लिए उठे और यहूदियों के तमाम मज़हबी पेशवाओं ने मिलकर उनकी मुख़ालिफ़त की और रूमी गवर्नर पुन्तियुस पिलातुस (Pontius Pilate) से उनको मौत की सज़ा दिलवाने की कोशिश की।

हेरोदेस का दूसरा बेटा हेरोदेस अन्तिपास (Herod Antipas) उत्तरी फ़िलस्तीन (Northern Palestine) के इलाक़े गलील और पूर्वी जॉर्डन का मालिक हुआ और यही वह शख़्स है जिसने एक नर्तकी की फ़रमाइश पर हज़रत यह्या (अलैहि॰) का सिर काटकर उसको भेंट किया।

उसका तीसरा बेटा फ़िलिप्पुस, हर्मोन पर्वत से यरमूक नदी तक के इलाक़े का मालिक हुआ और यह अपने बाप और भाइयों से भी बढ़कर रूमी व यूनानी तहज़ीब में डूबा हुआ था। उसके इलाक़े में किसी भली बात के फलने-फूलने की इतनी गुंजाइश भी न थी, जितनी फ़िलस्तीन के दूसरे इलाक़ों में थी।

सन् 41 ई० में हेरोदेस महान के पोते हेरोदेस अग्रिप्पा (प्रथम) को रोमियों ने उन तमाम इलाक़ों का हुक्मराँ बना दिया जिनपर हेरोदेस महान अपने ज़माने में हुक्मराँ था। उस शख़्स ने इक़्तिदार में आने के बाद मसीह (अलैहि॰) की पैरवी करनेवालों पर ज़ुल्मों की इन्तिहा कर दी और अपना पूरा ज़ोर ख़ुदातरसी और अख़लाक़ के सुधारने की इस तहरीक (आन्दोलन) को कुचलने में लगा डाला, जो हवारियों की रहनुमाई में चल रही थी।

उस दौर में आम यहूदियों और उनके मज़हबी पेशवाओं की जो हालत थी उसका सही अन्दाज़ा करने के लिए उन तनक़ीदों (आलोचनाओं) को देखना चाहिए जो मसीह (अलैहि॰) ने अपने ख़ुतबों में उनपर की हैं। ये सब ख़ुतबे चारों इंजीलों में मौजूद हैं। फिर इसका अन्दाज़ा करने के लिए यह बात काफ़ी है कि उस क़ौम की आँखों के सामने यह्या (अलैहि॰) जैसे पाकीज़ा इनसान का सर क़लम किया गया, मगर एक आवाज़ भी उस बड़े ज़ुल्म के ख़िलाफ़ न उठी। और पूरी क़ौम के मज़हबी पेशवाओं ने मसीह (अलैहि॰) के लिए मौत की सज़ा की माँग की, मगर थोड़े-से इनसानों के सिवा कोई न था जो इस बदक़िस्मती पर मातम करता। हद यह है

جَهَنَّمَ لِلْكٰفِرِيْنَ حَصِيْرًا ۞ اِنَّ هٰذَا الْقُرْاٰنَ يَهْدِيْ لِلَّتِيْ هِيَ اَقْوَمُ
وَيُبَشِّرُ الْمُؤْمِنِيْنَ الَّذِيْنَ يَعْمَلُوْنَ الصّٰلِحٰتِ اَنَّ لَهُمْ اَجْرًا كَبِيْرًا ۞

लोगों के लिए हमने जहन्नम को क़ैदख़ाना बना रखा है।[10]

(9) हक़ीक़त यह है कि यह क़ुरआन वह राह दिखाता है जो बिलकुल सीधी है। जो लोग इसे मानकर भले काम करने लगें, उन्हें यह ख़ुशख़बरी देता है कि उनके लिए बड़ा

कि जब पुन्तियुस पिलातुस ने इन मुसीबत के मारे लोगों से पूछा कि आज तुम्हारी ईद का दिन है और क़ायदे के मुताबिक़ मैं सज़ा-ए-मौत के हक़दार मुजरिमों में से एक को छोड़ देने का अधिकार रखता हूँ, बताओ यीशु (ईसामसीह) को छोड़ूँ या बरअब्बा डाकू को? तो उनकी पूरी भीड़ ने एक आवाज़ में कहा कि बरअब्बा को छोड़ दे। लूका 23/13-25 यह मानो अल्लाह तआला की तरफ़ से आख़िरी हुज्जत थी, जो उस क़ौम पर क़ायम की गई।

इसपर थोड़ा ज़माना ही गुज़रा था कि यहूदियों और रूमियों के बीच सख़्त कशमकश शुरू हो गई और 64 और 66 ई॰ के बीच यहूदियों ने खुली बग़ावत कर दी। हेरोदेस अग्रिप्पा द्वितीय (Herod Agrippa-II) और रूमी हुकूमत का मुख़्तार (Procurator) फ़्लोरिस, दोनों इस बग़ावत को ख़त्म करने में नाकाम हुए। आख़िकार रूमी सल्तनत ने एक सख़्त फ़ौजी कार्रवाई से उस बग़ावत को कुचल डाला और 70 ई॰ में टाइटस (Titus) ने तलवार के बल पर यरूशलेम को जीत लिया। इस मौक़े पर क़त्ले-आम में 133000 लोग मारे गए, 67000 लोग गिरफ़्तार करके ग़ुलाम बनाए गए, हज़ारों आदमी पकड़-पकड़कर मिस्र के खदानों (खानों) में काम करने के लिए भेज दिए गए, हज़ारों आदमियों को पकड़कर अलग-अलग शहरों में भेजा गया, ताकि रंगभूमि व अखाड़ों (Amphitheatres) और महा-रंगशालाओं (Colliseums) में उनको जंगली जानवरों से फड़वाने या तलवार-बाज़ी के खेल का निशाना बनने के लिए इस्तेमाल किया जाए। तमाम लम्बे क़द की और ख़ूबसूरत लड़कियाँ फ़ातेहीन (विजेताओं) के लिए चुन ली गईं, और यरूशलम के शहर और हैकल को गिराकर मिट्टी में मिला दिया गया। उसके बाद फ़िलस्तीन से यहूदी असर और इक़्तिदार ऐसा मिटा कि दो हज़ार साल तक उसको फिर सिर उठाने का मौक़ा न मिला, और यरूशलम का हैकल मुक़द्दस फिर कभी न बन सका। बाद में बादशाह हैड्रियान (Hadrian) ने इस शहर को दोबारा आबाद किया, मगर अब उसका नाम एलिया था और उसमें लम्बी मुद्दत तक यहूदियों को दाख़िल होने की इजाज़त न थी।

यह थी वह सज़ा जो बनी-इसराईल को दूसरे बड़े बिगाड़ के बदले में मिली।

10. इससे यह शक न होना चाहिए कि यह पूरी तक़रीर बनी-इसराईल को सुनाई जा रही है। सामने तो मक्का के इस्लाम-मुख़ालिफ़ ही हैं, मगर चूँकि उनको ख़बरदार करने के लिए यहाँ बनी-इसराईल के इतिहास की कुछ इब्रतनाक गवाहियाँ पेश की गई थीं, इसलिए ऊपर से चली

وَّاَنَّ الَّذِيْنَ لَا يُؤْمِنُوْنَ بِالْاٰخِرَةِ اَعْتَدْنَا لَهُمْ عَذَابًا اَلِيْمًا ۝ وَيَدْعُ
الْاِنْسَانُ بِالشَّرِّ دُعَآءَهٗ بِالْخَيْرِ ۭ وَكَانَ الْاِنْسَانُ عَجُوْلًا ۝ وَجَعَلْنَا
الَّيْلَ وَالنَّهَارَ اٰيَتَيْنِ فَمَحَوْنَآ اٰيَةَ الَّيْلِ وَجَعَلْنَآ اٰيَةَ النَّهَارِ مُبْصِرَةً

अज्र है, (10) और जो लोग आख़िरत को न मानें, उन्हें यह ख़बर देता है कि उनके लिए हमने दर्दनाक अज़ाब तैयार कर रखा है।[11]

(11) इनसान बुराई उस तरह माँगता है जिस तरह भलाई माँगनी चाहिए। इनसान बड़ा ही जल्दबाज़ वाक़े हुआ है।[12]

(12) देखो, हमने रात और दिन को दो निशानियाँ बनाया है। रात की निशानी को हमने बेनूर बनाया और दिन की निशानी को रौशन कर दिया, ताकि तुम अपने रब की

आ रही बात से हटकर यह जुमला बनी-इसराईल को मुख़ातब करके कह दिया गया ताकि उन इस्लाही (सुधारवादी) तक़रीरों के लिए तमहीद (भूमिका) का काम दे, जिनकी नौबत एक ही साल बाद मदीना में आनेवाली थी।

11. कहने का मतलब यह है कि जो शख़्स या गरोह या क़ौम इस क़ुरआन के ख़बरदार करने और समझाने-बुझाने से सीधे रास्ते पर न आए, उसे फिर उस सज़ा के लिए तैयार रहना चाहिए, जो बनी-इसराईल ने भुगती है।

12. यह जवाब है मक्का के इस्लाम दुश्मनों की उन बेवक़ूफ़ी भरी बातों का जो वे बार-बार नबी (सल्ल॰) से कहते थे कि बस ले आओ वह अज़ाब जिससे तुम हमें डराया करते हो। ऊपर के बयान के बाद फ़ौरन ही यह बात कहने का मक़सद इस बात पर ख़बरदार करना है कि बेवक़ूफ़ो! भलाई माँगने के बजाए अज़ाब माँगते हो? तुम्हें कुछ अन्दाज़ा भी है कि ख़ुदा का अज़ाब जब किसी क़ौम पर आता है तो उसकी क्या गत बनती है?

इसके साथ इस जुमले में इशारे के तौर पर मुसलमानों के लिए भी तंबीह (चेतावनी) थी जो इस्लाम-दुश्मनों के ज़ुल्मो-सितम और उनकी हठधर्मियों से तंग आकर कभी-कभी उनपर अज़ाब आने की दुआ करने लगते थे, हालाँकि अभी उन्हीं इस्लाम दुश्मनों में बहुत-से वे लोग मौजूद थे जो आगे चलकर ईमान लानेवाले और दुनिया भर में इस्लाम का झण्डा बुलन्द करनेवाले थे। इसपर अल्लाह तआला फ़रमाता है कि इनसान बड़ा बे-सब्र (उतावला) वाक़े हुआ है, हर वह चीज़ माँग बैठता है जिसकी वक़्त पर ज़रूरत महसूस होती है, हालाँकि बाद में उसे ख़ुद तजरिबे से मालूम हो जाता है कि अगर उस वक़्त उसकी दुआ क़बूल कर ली जाती, तो वह उसके लिए अच्छा न होता।

لِّتَبْتَغُوا فَضْلًا مِّن رَّبِّكُمْ وَلِتَعْلَمُوا عَدَدَ السِّنِينَ وَالْحِسَابَ ۚ وَكُلَّ شَيْءٍ فَصَّلْنَاهُ تَفْصِيلًا ﴿١٢﴾ وَكُلَّ إِنسَانٍ أَلْزَمْنَاهُ طَائِرَهُ فِي عُنُقِهِ ۖ

मेहरबानी तलाश कर सको और महीने और साल का हिसाब मालूम कर सको। इसी तरह हमने हर चीज़ को अलग-अलग छाँटकर रखा है।[13]

(13) इनसान का शगुन हमने उसके अपने गले में लटका रखा है[14] और क़ियामत

13. मतलब यह है कि रंगा-रंगी देखकर यकसानी और यकरंगी के लिए बेचैन न हो। इस दुनिया का तो सारा कारख़ाना ही इख़्तिलाफ़ (भिन्नता), फ़र्क़ और रंगा-रंगी की बदौलत चल रहा है। मिसाल के तौर पर तुम्हारे सामने सबसे ज़्यादा नुमायाँ निशानियाँ यह रात और दिन हैं जो रोज़ तुमपर तारी होते रहते हैं। देखो कि इनकी रंगा-रंगी में कितनी अज़ीमुश्शान मस्लहतें मौजूद हैं। अगर तुमपर हमेशा एक ही हालत छाई रहती तो क्या किसी भी चीज़ का वुजूद बाक़ी रह सकता था? तो जिस तरह तुम देख रहे हो कि कायनात में फ़र्क़ और भिन्नता के साथ अनगिनत मस्लहतें जुड़ी हैं, इसी तरह इनसानी मिज़ाजों और ख़यालों और रुझानों में भी जो फ़र्क़ पाया जाता है, उसमें बड़ी मस्लहतें हैं। भलाई इसमें नहीं है कि अल्लाह तआला फ़ितरत से परे अपने दख़ल से उसको मिटाकर सब इनसानों को ज़बरदस्ती नेक और ईमानवाला बना दे, या हक़ के इनकारियों और अल्लाह के नाफ़रमानों को हलाक करके दुनिया में सिर्फ़ ईमानवालों और फ़रमाँबरदारों ही को बाक़ी रखा करे। इसकी ख़ाहिश करना तो उतना ही ग़लत है जितना यह ख़ाहिश करना कि सिर्फ़ दिन-ही-दिन रहा करे, रात का अंधेरा सिरे से कभी छाया ही न करे। अलबत्ता भलाई जिस चीज़ में है वह यह है कि हिदायत की रौशनी जिन लोगों के पास है वे उसे लेकर गुमराही का अंधकार दूर करने के लिए लगातार कोशिश करते रहें, और जब रात की तरह कोई अंधेरे का दौर आए तो वे सूरज की तरह उसका पीछा करें, यहाँ तक कि दिन का उजाला ज़ाहिर हो जाए।

14. यानी हर इनसान की ख़ुशनसीबी-बदनसीबी और उसके अंजाम की भलाई और बुराई के सबब और वजहें ख़ुद उसके अपने वुजूद ही में मौजूद हैं। अपने औसाफ़, अपनी सीरत व किरादार (चरित्र व आचरण) और भले-बुरे का फ़र्क़ करने, फैसला गुणों और चुनाव की क़ुव्वत के इस्तेमाल से वह ख़ुद अपने आपको ख़ुशनसीबी का हक़दार भी बनाता है और बद नसीबी का हक़दार भी। नादान लोग अपनी क़िस्मत के शगुन बाहर लेते फिरते हैं और हमेशा बाहरी वजहों ही को अपनी बद नसीबी का ज़िम्मेदार ठहराते हैं। मगर हक़ीक़त यह है कि उनकी भलाई-बुराई का परवाना उनके अपने गले का हार है। वे अपने गिरेबान में मुँह डालें तो देख लें कि जिस चीज़ ने उनको बिगाड़ और तबाही के रास्ते पर डाला और आख़िकार नुक़सान उठानेवाला बनाकर छोड़ा वे उनकी अपनी ही बुरी सिफ़ात और बुरे फ़ैसले थे, न यह कि बाहर से आकर कोई चीज़ ज़बरदस्ती उनपर सवार हो गई थी।

وَنُخْرِجُ لَهٗ يَوْمَ الْقِيٰمَةِ كِتٰبًا يَّلْقٰىهُ مَنْشُوْرًا ⑬ اِقْرَاْ كِتٰبَكَ ۭ كَفٰى
بِنَفْسِكَ الْيَوْمَ عَلَيْكَ حَسِيْبًا ⑭ مَنِ اهْتَدٰى فَاِنَّمَا يَهْتَدِيْ
لِنَفْسِهٖ ۚ وَمَنْ ضَلَّ فَاِنَّمَا يَضِلُّ عَلَيْهَا ۭ وَلَا تَزِرُ وَازِرَةٌ وِّزْرَ اُخْرٰى ۭ

के दिन हम एक नविश्ता (लिखित लेख) उसके लिए निकालेंगे, जिसे वह खुली किताब की तरह पाएगा– (14) पढ़ अपना आमालनामा (कर्म-पत्र), आज अपना हिसाब लगाने के लिए तू ख़ुद ही काफ़ी है।

(15) जो कोई सीधा रास्ता अपनाए, उसका सीधे रास्ते पर चलना उसके अपने लिए ही फ़ायदेमन्द है, और जो गुमराह हो उसकी गुमराही का वबाल उसी पर है।[15] कोई बोझ उठानेवाला दूसरे का बोझ न उठाएगा।[16] और हम अज़ाब देनेवाले नहीं हैं, जब तक कि

15. यानी सीधा रास्ता अपनाकर कोई शख़्स ख़ुदा पर, या रसूल पर, या सुधार की कोशिश करनेवालों पर कोई एहसान नहीं करता, बल्कि ख़ुद अपना ही भला करता है। और इसी तरह गुमराही अपनाकर या उसपर जमे रहकर वह किसी का कुछ नहीं बिगाड़ता, अपना ही नुक़सान करता है। ख़ुदा और रसूल और हक़ की तरफ़ बुलानेवाले इनसान को ग़लत रास्तों से बचाने और सही राह दिखाने की जो कोशिश करते हैं वे अपनी किसी ग़रज़ के लिए नहीं, बल्कि इनसान के भले के लिए करते हैं। एक अक़्लमन्द आदमी का काम यह है कि जब दलील से उसके सामने हक़ का हक़ होना और बातिल का बातिल होना साफ़ बयान कर दिया जाए तो वह तास्सुबात (दुराग्रहों) और अपने ही फ़ायदों की बन्दगी को छोड़कर सीधी तरह बातिल (असत्य) पर चलने से रुक जाए और हक़ (सत्य) को अपना ले। तास्सुब या मतलब-परस्ती से काम लेगा तो वह आप ही अपना बुरा चाहनेवाला होगा।

16. यह एक बहुत ही अहम उसूली हक़ीक़त है जिसे क़ुरआन मजीद में जगह-जगह ज़ेहन में बिठाने की कोशिश की गई है, क्योंकि उसे समझे बिना इनसान का रवैया कभी दुरुस्त नहीं हो सकता। इस जुमले का मतलब यह कि हर इनसान अपनी एक मुस्तक़िल (स्थायी) अख़लाक़ी ज़िम्मेदारी रखता है और अपनी शख़्सी हैसियत में अल्लाह तआला के सामने जवाबदेह है। इस ज़ाती ज़िम्मेदारी में कोई दूसरा शख़्स उसके साथ शरीक नहीं है। दुनिया में चाहे कितने ही आदमी, कितनी ही क़ौमें और कितनी ही नस्लें और पीढ़ियाँ एक काम या काम के एक तरीक़े में शरीक हों, बहरहाल ख़ुदा की आख़िरी अदालत में उस मिल-जुलकर किए गए काम का जाइज़ा लेकर एक-एक इनसान की ज़ाती ज़िम्मेदारी पहचानकर उसे अलग कर लिया जाएगा और उसको जो कुछ भी इनाम या सज़ा मिलेगी, उस अमल की मिलेगी जिसका वह ख़ुद अपनी निजी हैसियत में ज़िम्मेदार साबित होगा। इस इनसाफ़ के तराज़ू में न यह मुमकिन होगा कि दूसरों के किए

وَمَا كُنَّا مُعَذِّبِيْنَ حَتّٰى نَبْعَثَ رَسُوْلًا ۝١٥ وَاِذَآ اَرَدْنَآ اَنْ نُّهْلِكَ قَرْيَةً
اَمَرْنَا مُتْرَفِيْهَا فَفَسَقُوْا فِيْهَا فَحَقَّ عَلَيْهَا الْقَوْلُ فَدَمَّرْنٰهَا تَدْمِيْرًا ۝١٦

(लोगों को हक़ और बातिल का फ़र्क़ समझाने के लिए) एक पैग़म्बर न भेज दें।[17]

(16) जब हम किसी बस्ती को हलाक करने का इरादा करते हैं तो उसके ख़ुशहाल लोगों को हुक्म देते हैं और वे उसमें नाफ़रमानियाँ करने लगते हैं, तब अज़ाब का फ़ैसला उस आबादी पर चस्पाँ हो जाता है और हम उसे बरबाद करके रख देते हैं।[18]

का वबाल उसपर डाल दिया जाए, और न यही मुमकिन होगा कि उसके करतूतों के गुनाह का बोझ किसी और पर पड़ जाए। इसलिए एक अक़्लमन्द आदमी को यह न देखना चाहिए कि दूसरे क्या कर रहे हैं, बल्कि उसे हर वक़्त इस बात पर निगाह रखनी चाहिए कि वह ख़ुद क्या कर रहा है, अगर उसे अपनी निजी ज़िम्मेदारी का सही एहसास हो तो दूसरे चाहे कुछ कर रहे हों, वह बहरहाल उसी रवैये पर जमा रहेगा जिसकी जवाबदेही ख़ुदा के सामने वह कामयाबी के साथ कर सकता हो।

17. यह एक और उसूली हक़ीक़त है जिसे क़ुरआन बार-बार अलग-अलग तरीक़ों से इनसान के ज़ेहन में बिठाने की कोशिश करता है। इसकी तशरीह यह है कि अल्लाह तआला के अदालती निज़ाम में पैग़म्बर एक बुनियादी अहमियत रखता है। पैग़म्बर और उसका लाया हुआ पैग़ाम ही बन्दों पर ख़ुदा की हुज्जत (दलील) है। यह हुज्जत क़ायम न हो तो बन्दों को अज़ाब देना इनसाफ़ के ख़िलाफ़ होगा, क्योंकि इस सूरत में वे यह बहाना पेश कर सकेंगे कि हमें आगाह किया ही न गया था फिर अब हमपर यह गिरफ़्त कैसी, मगर जब यह हुज्जत क़ायम हो जाए तो उसके बाद इनसाफ़ का तक़ाज़ा यही है कि उन लोगों को सज़ा दी जाए जिन्होंने ख़ुदा के भेजे हुए पैग़ाम से मुँह मोड़ा हो, या उसे पाकर फिर उससे मुँह फेरा हो। बेवक़ूफ़ लोग इस तरह की आयतें पढ़कर इस सवाल पर ग़ौर करने लगते हैं कि जिन लोगों के पास किसी नबी का पैग़ाम नहीं पहुँचा उनकी पोज़ीशन क्या होगी। हालाँकि एक अक़्लमन्द आदमी को ग़ौर इस बात पर करना चाहिए कि तेरे पास तो पैग़ाम पहुँच चुका है। अब तेरी अपनी पोज़ीशन क्या है। रहे दूसरे लोग तो यह अल्लाह ही बेहतर जानता है कि किसके पास, कब, किस तरह और किस हद तक उसका पैग़ाम पहुँचा और उसने उसके मामले में क्या रवैया अपनाया और क्यों अपनाया। ग़ैब की बातें जाननेवाले (अल्लाह) के सिवा कोई भी यह नहीं जान सकता कि किसपर अल्लाह की हुज्जत पूरी हुई है और किसपर नहीं हुई।

18. इस आयत में हुक्म से मुराद क़ुदरत का हुक्म और फ़ितरत का क़ानून है। यानी क़ुदरती तौर पर हमेशा ऐसा ही होता है कि जब किसी क़ौम की शामत आनेवाली होती है तो उसके ख़ुशहाल लोग नाफ़रमान हो जाते हैं। हलाक करने के इरादे का मतलब यह नहीं है कि अल्लाह

وَكَمْ أَهْلَكْنَا مِنَ الْقُرُونِ مِنْ بَعْدِ نُوحٍ ۗ وَكَفَىٰ بِرَبِّكَ بِذُنُوبِ
عِبَادِهِ خَبِيرًا بَصِيرًا ﴿١٧﴾ مَنْ كَانَ يُرِيدُ الْعَاجِلَةَ عَجَّلْنَا لَهُ فِيهَا مَا
نَشَاءُ لِمَنْ نُرِيدُ ثُمَّ جَعَلْنَا لَهُ جَهَنَّمَ يَصْلَاهَا مَذْمُومًا مَدْحُورًا ﴿١٨﴾

(17) देख लो, कितनी ही नस्लें हैं जो नूह के बाद हमारे हुक्म से तबाह हुईं। तेरा रब अपने बन्दों के गुनाहों से पूरी तरह बाख़बर है और सब कुछ देख रहा है।

(18) जो कोई (इस दुनिया में) जल्दी हासिल होनेवाले फ़ायदों[19] की ख़ाहिश रखता हो, उसे हम यहीं दे देते हैं जो कुछ भी जिसे देना चाहें, फिर उसकी क़िस्मत में जहन्नम लिख देते हैं जिसे वह तापेगा फिटकारा हुआ और रहमत से महरूम होकर।[20]

तआला यूँ ही बेक़ुसूर किसी बस्ती को हलाक करने का इरादा कर लेता है, बल्कि इसका मतलब यह है कि जब कोई इनसानी आबादी बुराई के रास्ते पर चल पड़ती है और अल्लाह फ़ैसला कर लेता है कि उसे तबाह करना है तो यह फ़ैसला इस तरीक़े से सामने आता है।

अस्ल में जिस हक़ीक़त पर इस आयत में ख़बरदार किया गया है वह यह है कि एक समाज को आख़िकार जो चीज़ तबाह करती है वह उसके खाते-पीते, ख़ुशहाल लोगों और ऊँचे तबक़ों (वर्गों) का बिगाड़ है। जब किसी क़ौम की शामत आने को होती है तो उसके दौलतमन्द और इक़्तिदारवाले लोग नाफ़रमानियों और गुनाहों पर उतर आते हैं, ज़ुल्मो-सितम और बदकारियाँ और शरारतें करने लगते हैं और आख़िरकार यही फ़ितना पूरी क़ौम को ले डूबता है। इसलिए जो समाज आप अपना दुश्मन न हो उसे फ़िक्र रखनी चाहिए कि उसके यहाँ हुकूमत की बागडोर और मआशी दौलत की कुंजियाँ उन लोगों के हाथों में न हों जो तंग-दिल और बदअख़लाक़ हों।

19. अस्ल अरबी में 'आजिला' लफ़्ज़ इस्तेमाल हुआ है, जिसका मतलब है जल्दी मिलनेवाली चीज़। और इस्तिलाही (पारिभाषिक) तौर पर क़ुरआन मजीद इस लफ़्ज़ को दुनिया के लिए इस्तेमाल करता है, जिसके फ़ायदे और नतीजे इसी ज़िन्दगी में हासिल हो जाते हैं। इसके मुक़ाबले की इस्तिलाह 'आख़िरत' है, जिसके फ़ायदों और नतीजों को मौत के बाद दूसरी ज़िन्दगी तक टाल दिया गया है।

20. मतलब यह है कि जो शख़्स आख़िरत को नहीं मानता, या आख़िरत तक सब्र करने के लिए तैयार नहीं है और अपनी कोशिशों का मक़सद सिर्फ़ दुनिया और उसकी कामयाबियों और ख़ुशहालियों ही को बनाता है, उसे जो कुछ भी मिलेगा बस दुनिया में मिल जाएगा। आख़िरत में वह कुछ नहीं पा सकता। और बात सिर्फ़ यहीं तक न रहेगी कि उसे कोई ख़ुशहाली आख़िरत में नसीब न होगी, बल्कि इसके अलावा दुनियापरस्ती और आख़िरत की जवाबदेही व ज़िम्मेदारी

وَمَنْ اَرَادَ الْاٰخِرَةَ وَسَعٰى لَهَا سَعْيَهَا وَهُوَ مُؤْمِنٌ فَاُولٰٓئِكَ كَانَ
سَعْيُهُمْ مَّشْكُوْرًا ۝١٩ كُلًّا نُّمِدُّ هٰٓؤُلَآءِ وَهٰٓؤُلَآءِ مِنْ عَطَآءِ رَبِّكَ ۭ وَمَا
كَانَ عَطَآءُ رَبِّكَ مَحْظُوْرًا ۝٢٠ اُنْظُرْ كَيْفَ فَضَّلْنَا بَعْضَهُمْ عَلٰى بَعْضٍ ۭ
وَلَلْاٰخِرَةُ اَكْبَرُ دَرَجٰتٍ وَّاَكْبَرُ تَفْضِيْلًا ۝٢١

(19) और जो आख़िरत की ख़ाहिश रखता हो और उसके लिए कोशिश करे जैसी कि उसके लिए कोशिश करनी चाहिए, और हो वह ईमानवाला, तो ऐसे हर आदमी की कोशिश की क़द्र की जाएगी।[21] (20) इनको भी और उनको भी, दोनों फ़रीक़ों को हम (दुनिया में) ज़िन्दगी का सामान दिए जा रहे हैं, यह तेरे रब की देन है, और तेरे रब की देन को रोकनेवाला कोई नहीं है।[22] (21) मगर देख लो, दुनिया ही में हमने एक गरोह को दूसरे पर कैसी फ़ज़ीलत (प्रतिष्ठा) दे रखी है और आख़िरत में उसके दर्जे और भी ज़्यादा होंगे, और उसकी बड़ाई और भी ज़्यादा बढ़-चढ़कर होगी।[23]

से बेपरवाही उसके रवैये को बुनियादी तौर पर ऐसा ग़लत करके रख देगी कि आख़िरत में वह उल्टा जहन्नम का हक़दार होगा।

21. यानी उसके काम की क़द्र की जाएगी और जितनी और जैसी कोशिश भी उसने आख़िरत की कामयाबी के लिए की होगी, उसका फल वह ज़रूर पाएगा।

22. यानी दुनिया में रोज़ी और ज़िन्दगी का सामान दुनिया-परस्तों को भी मिल रहा है और आख़िरत के तलबगारों को भी। दिया हुआ अल्लाह ही का है, किसी और का नहीं है। न दुनिया-परस्तों में यह ताक़त है कि आख़िरत के तलबगारों को रोज़ी से महरूम कर दें, और न आख़िरत के तलबगार ही यह क़ुदरत रखते हैं कि दुनिया-परस्तों तक अल्लाह की नेमत न पहुँचने दें।

23. यानी दुनिया ही में यह फ़र्क़ नुमायाँ हो जाता है कि आख़िरत के तलबगार दुनिया-परस्त लोगों पर बड़ाई रखते हैं। यह बड़ाई इस एतिबार से नहीं है कि इनके खाने और लिबास और मकान और सवारियाँ और रहन-सहन व तहज़ीब के ठाठ उनसे कुछ बढ़कर हैं, बल्कि इस एतिबार से है कि ये जो कुछ भी पाते हैं सच्चाई, ईमानदारी और अमानतदारी के साथ पाते हैं, और वह जो कुछ पा रहे हैं ज़ुल्म से, बेईमानियों से, और तरह-तरह की हरामख़ोरियों से पा रहे हैं। फिर आख़िरत के तलबगारों को जो कुछ मिलता है वह एतिदाल (सन्तुलन) के साथ ख़र्च होता है, उसमें से हक़दारों के हक़ अदा होते हैं, उसमें से माँगनेवाले और महरूम का हिस्सा भी निकलता

لَا تَجْعَلْ مَعَ اللّٰهِ اِلٰهًا اٰخَرَ فَتَقْعُدَ مَذْمُوْمًا مَّخْذُوْلًا ﴿۲۲﴾ وَقَضٰى رَبُّكَ ع ۱۳ ۲
اَلَّا تَعْبُدُوْٓا اِلَّآ اِيَّاهُ وَبِالْوَالِدَيْنِ اِحْسَانًا ۭ اِمَّا يَبْلُغَنَّ عِنْدَكَ الْكِبَرَ

(22) तू अल्लाह के साथ कोई दूसरा माबूद न बना[24], वरना मलामत किया हुआ और बेसहारा होकर बैठा रह जाएगा।

(23) तेरे रब ने फ़ैसला कर दिया[25] है कि तुम लोग किसी की इबादत न करो, मगर सिर्फ़ उसकी।[26] माँ-बाप के साथ अच्छा सुलूक करो। अगर तुम्हारे पास इनमें से

है, और उसमें से ख़ुदा की ख़ुशनूदी के लिए दूसरे भले कामों पर भी माल ख़र्च किया जाता है। इसके बरख़िलाफ़ दुनिया-परस्तों को जो कुछ मिलता है वह ज़्यादातर अय्याशियों और हरामकारियों और तरह-तरह के बिगाड़ पैदा करने और फ़ितना फैलानेवाले कामों में पानी की तरह बहाया जाता है। इसी तरह तमाम हैसियतों से आख़िरत के तलबगारों की ज़िन्दगी ख़ुदातरसी और अख़लाक़ की पाकीज़गी का ऐसा नमूना होती है जो पेवन्द लगे हुए कपड़ों और घास-फूस की झोंपड़ियों में भी इतना ज़्यादा रौशन नज़र आता है कि दुनिया-परस्त की ज़िन्दगी उसके मुक़ाबले में हर खुली आँखवाले को अंधेरी नज़र आती है। यही वजह है कि बड़े-बड़े ज़ालिम बादशाहों और दौलतमन्द अमीरों के लिए भी उनके जैसे दूसरे इनसानों के दिलों में कोई सच्ची इज़्ज़त और मुहब्बत और अक़ीदत कभी पैदा न हुई और इसके बरख़िलाफ़ भूखे रहनेवाले, टाट और चटाई पर सोनेवाले की बड़ाई को ख़ुद दुनियापरस्त लोग भी मानने पर मजबूर हो गए। ये खुली-खुली अलामतें इस हक़ीक़त की तरफ़ साफ़ इशारा कर रही हैं कि आख़िरत की हमेशा रहनेवाली कामयाबियाँ इन दोनों गरोहों में से किसके हिस्से में आनेवाली हैं।

24. दूसरा तर्जमा इस जुमले का यह भी हो सकता है कि अल्लाह के साथ कोई और ख़ुदा न गढ़े या और को ख़ुदा न क़रार दे ले।

25. यहाँ वे बड़े-बड़े बुनियादी उसूल पेश किए जा रहे हैं जिनपर इस्लाम पूरी इनसानी ज़िन्दगी के निज़ाम की इमारत क़ायम करना चाहता है। यह मानो नबी (सल्ल.) की दावत का मंशूर (घोषणापत्र) है जिसे मक्की दौर के ख़ातिमे और आनेवाले मदनी दौर की शुरुआत में पेश किया गया, ताकि दुनियाभर को मालूम हो जाए कि इस नए इस्लामी समाज और रियासत की बुनियाद किन फ़िक्री, अख़लाक़ी (नैतिक), समाजी, मआशी (आर्थिक) और क़ानूनी उसूलों पर रखी जाएगी। इस मौक़े पर सूरा-6 अनआम की आयत 152-155 और उनके हाशियों पर भी एक निगाह डाल लेना फ़ायदेमन्द होगा।

26. इसका मतलब सिर्फ़ इतना ही नहीं है कि अल्लाह के सिवा किसी की परस्तिश और पूजा न करो, बल्कि यह भी है कि बन्दगी और ग़ुलामी और बिना आना-कानी किए फ़रमाँबरदारी भी सिर्फ़ उसी की करो, उसी के हुक्म को हुक्म और उसी के क़ानून को क़ानून मानो और उसके

اَحَدُهُمَآ اَوْ كِلٰهُمَا فَلَا تَقُلْ لَّهُمَآ اُفٍّ وَّلَا تَنْهَرْهُمَا وَقُلْ لَّهُمَا قَوْلًا
كَرِيْمًا ﴿٢٣﴾ وَاخْفِضْ لَهُمَا جَنَاحَ الذُّلِّ مِنَ الرَّحْمَةِ وَقُلْ رَّبِّ ارْحَمْهُمَا
كَمَا رَبَّيٰنِيْ صَغِيْرًا ﴿٢٤﴾ رَبُّكُمْ اَعْلَمُ بِمَا فِيْ نُفُوْسِكُمْ ۭ اِنْ تَكُوْنُوْا
صٰلِحِيْنَ فَاِنَّهٗ كَانَ لِلْاَوَّابِيْنَ غَفُوْرًا ﴿٢٥﴾ وَاٰتِ ذَا الْقُرْبٰى حَقَّهٗ وَالْمِسْكِيْنَ
وَابْنَ السَّبِيْلِ وَلَا تُبَذِّرْ تَبْذِيْرًا ﴿٢٦﴾ اِنَّ الْمُبَذِّرِيْنَ كَانُوْٓا اِخْوَانَ

कोई एक या दोनों, बूढ़े होकर रहें तो उन्हें उफ़ तक न कहो, न उन्हें झिड़ककर जवाब दो, बल्कि उनसे एहतिराम के साथ बात करो, (24) और नरमी और रहम के साथ उनके सामने झुककर रहो और दुआ किया करो कि "पालनहार! इनपर रहम कर जिस तरह इन्होंने रहमत और मुहब्बत के साथ मुझे बचपन में पाला था।" (25) तुम्हारा रब ख़ूब जानता है कि तुम्हारे दिलों में क्या है। अगर तुम नेक बनकर रहो तो वह ऐसे सब लोगों के लिए माफ़ करनेवाला है (26) जो अपनी ग़लती पर ख़बरदार होकर बन्दगी के रवैये की तरफ़ पलट आएँ।[27] नातेदार को उसका हक़ दो और मुहताज और मुसाफ़िर को उसका हक़। फ़ुज़ूलख़र्ची न करो। (27) फ़ुज़ूलख़र्च लोग शैतान के भाई हैं

सिवा किसी को इक़्तिदारे आला (संप्रभुत्व) तसलीम न करो। यह सिर्फ़ एक मज़हबी अक़ीदा, और सिर्फ़ निजी रवैये के लिए एक हिदायत ही नहीं है बल्कि उस पूरी अख़लाक़ी, समाजी और सियासी निज़ाम की बुनियाद भी है जो मदीना तय्यिबा पहुँचकर नबी (सल्ल.) ने अमली तौर पर क़ायम किया। इसकी इमारत इसी नज़रिये पर उठाई गई थी कि अल्लाह तआला ही दुनिया का मालिक और बादशाह है, और उसी की शरीअत मुल्क का क़ानून है।

27. इस आयत में यह बताया गया है कि अल्लाह के बाद इनसानों में सबसे बढ़कर हक़ माँ-बाप का है। औलाद को माँ-बाप का फ़रमाँबरदार, ख़िदमत गुज़ार और उनका अदब करनेवाला होना चाहिए। समाज का इज्तिमाई अख़लाक़ ऐसा होना चाहिए जो औलाद को माँ-बाप से बेपरवाह बनानेवाला न हो, बल्कि उनका एहसानमन्द और उनके एहतिराम का पाबन्द बनाए, और बुढ़ापे में उसी तरह उनकी ख़िदमत करना सिखाए जिस तरह बचपन में वे उसकी परवरिश कर चुके हैं और नाज़-नख़रे उठा चुके हैं। यह आयत भी सिर्फ़ एक अख़लाक़ी सिफ़ारिश नहीं है, बल्कि इसी की बुनियाद पर बाद में माँ-बाप के वे शरई हक़ और अधिकार मुक़र्रर किए गए जिनकी तफ़सीलात हमको हदीस और फ़िक़्ह में मिलती हैं। इसके अलावा इस्लामी समाज की ज़ेहनी व

الشَّيٰطِيْنِ ۭ وَكَانَ الشَّيْطٰنُ لِرَبِّهٖ كَفُوْرًا ۝ وَاِمَّا تُعْرِضَنَّ عَنْهُمُ
ابْتِغَاۗءَ رَحْمَةٍ مِّنْ رَّبِّكَ تَرْجُوْهَا فَقُلْ لَّهُمْ قَوْلًا مَّيْسُوْرًا ۝ وَلَا
تَجْعَلْ يَدَكَ مَغْلُوْلَةً اِلٰى عُنُقِكَ وَلَا تَبْسُطْهَا كُلَّ الْبَسْطِ فَتَقْعُدَ

और शैतान अपने रब का नाशुक्रा है। (28) अगर उनसे (यानी ज़रूरतमन्द नातेदारों, मुहताजों और मुसाफ़िरों से) तुम्हें कतराना हो, इस वजह से कि अभी तुम अल्लाह की उस रहमत को जिसके तुम उम्मीदवार हो तलाश कर रहे हो, तो उन्हें नर्म जवाब दे दो।[28] (29) न तो अपना हाथ गरदन से बाँध रखो और न उसे बिलकुल ही खुला

अख़लाक़ी तरबियत में और मुसलामनों के तहज़ीबी आदाब (सांस्कृतिक शिष्टाचार) में माँ-बाप का एहतिराम करने, उनका कहा मानने और उनके हक़्क़ों की निगरानी को एक अहम हिस्से की हैसियत से शामिल किया गया। इन चीज़ों ने हमेशा-हमेशा के लिए यह उसूल तय कर दिया कि इस्लामी हुकूमत अपने क़ानूनों, इन्तिज़ामी हुक्मों और तालीमी पॉलिसी के ज़रिए से ख़ानदान के इदारे को मज़बूत और महफ़ूज़ करने की कोशिश करेगी न कि उसे कमज़ोर बनाने की।

28. इन तीन दफ़ाओं (धाराओं) का मंशा यह है कि आदमी अपनी कमाई और अपनी दौलत को सिर्फ़ अपने लिए ही ख़ास न रखे, बल्कि अपनी ज़रूरतें एतिदाल (सन्तुलन) के साथ पूरी करने के बाद अपने रिश्तेदारों, अपने पड़ोसियों और दूसरे ज़रूरतमन्द लोगों के हक़ भी अदा करे। समाजी ज़िन्दगी में मदद, हमदर्दी, हक़ पहचानने और हक़ पहुँचाने की रूह बाक़ी और काम करती रहे। हर रिश्तेदार दूसरे रिश्तेदार का मददगार, और हर हैसियतवाला इनसान अपने पास के ज़रूरतमन्द इनसान का मददगार हो। एक मुसाफ़िर जिस बस्ती में भी जाए अपने आपको ख़ातिरदारी करनेवाले लोगों के दरमियान पाए। समाज में हक़ का तसव्वुर (धारणा) इतना आम हो कि हर शख़्स उन सब इनसानों के हक़ अपने आपपर और अपने माल पर महसूस करे जिनके बीच वह रहता हो। उनकी ख़िदमत करे तो यह समझते हुए करे कि उनका हक़ अदा कर रहा है, न यह कि एहसान का बोझ उनपर लाद रहा है। अगर किसी की ख़िदमत नहीं कर सकता तो उससे माफ़ी माँगे और ख़ुदा से उसका मेहरबानी तलब करे, ताकि यह अल्लाह के बन्दों की ख़िदमत करने के क़ाबिल हो।

इस्लामी मंशूर (घोषणापत्र) की ये दफ़ाएँ भी सिर्फ़ इनफ़िरादी (व्यक्तिगत) अख़लाक़ की तालीम ही न थीं, बल्कि आगे चलकर मदीना तय्यिबा के समाज और रियासत में इन्हीं की बुनियाद पर वाजिब सदक़ों और नफ़्ल (अपनी मरज़ी से दिए जानेवाले) सदक़ों के हुक्म दिए गए, वसीयत और विरासत और वक़्फ़ के तरीक़े मुक़र्रर किए गए, यतीमों के हक़्क़ों की हिफ़ाज़त का इन्तिज़ाम किया गया, हर बस्ती पर मुसाफ़िर का यह हक़ क़ायम किया गया कि कम-से-कम तीन दिन

مَلُوۡمًا مَّحۡسُوۡرًا ۝٢٩ اِنَّ رَبَّكَ يَبۡسُطُ الرِّزۡقَ لِمَنۡ يَّشَآءُ وَيَقۡدِرُ ؕ اِنَّهٗ

छोड़ दो कि मलामत किया हुआ और बेबस मजबूर बनकर रह जाओ।[29] (30) तेरा रब जिसके लिए चाहता है रोज़ी कुशादा करता है और जिसके लिए चाहता है, तंग कर

तक उसकी ख़ातिरदारी की जाए और फिर उसके साथ-साथ समाज का अख़लाक़ी निज़ाम अमली तौर पर ऐसा बनाया गया कि पूरे समाजी माहौल में फ़ैय्याज़ी (दानशीलता), हमदर्दी और मदद की रूह काम करने लगी, यहाँ तक कि लोग आप-ही-आप क़ानूनी हक़्क़ों के अलावा उन अख़लाक़ी हक़्क़ों को भी समझने और अदा करने लगे जिन्हें न क़ानून के ज़ोर से माँगा जा सकता है न दिलवाया जा सकता है।

29. 'हाथ बाँधना' से मुराद है कंजूसी करना, और उसे खुला छोड़ देने से मुराद है फ़ुज़ूलख़र्ची। दफ़ा 4 के साथ दफ़ा 6 के इस जुमले को मिलाकर पढ़ने से मंशा साफ़ यह मालूम होता है कि लोगों में इतना एतिदाल (सन्तुलन) होना चाहिए कि वे न कंजूस बनकर दौलत की गर्दिश को रोकें और न फ़ुज़ूलख़र्च बनकर अपनी माली ताक़त को बरबाद करें। इसके बरख़िलाफ़ उनके अन्दर बीच का रास्ता इख़्तियार करने का ऐसा सही एहसास मौजूद होना चाहिए कि वे जाइज़ ख़र्च से भी न रुके रहें और नामुनासिब ख़र्च की ख़राबियों में मुब्तला भी न हों। घमण्ड और दिखावे के ख़र्च, अय्याशी और गुनाह के कामों में किए जानेवाले ख़र्च, और तमाम ऐसे ख़र्च जो इनसान की हक़ीक़ी ज़रूरतों और फ़ायदेमन्द कामों में ख़र्च होने के बजाए दौलत को ग़लत रास्तों में बहा दें, अस्ल में ख़ुदा की नेमत की नाशुक्री है। जो लोग इस तरह अपनी दौलत को ख़र्च करते हैं, वे शैतान के भाई हैं।

ये दफ़ाएँ भी सिर्फ़ अख़लाक़ी तालीम और इनफ़िरादी हिदायतों तक महदूद नहीं हैं, बल्कि साफ़ इशारा इस बात की तरफ़ कर रही हैं कि एक अच्छे समाज को अख़लाक़ी तरबियत, समाजी दबाव और क़ानूनी पाबन्दियों के ज़रिए से माल के बेजा ख़र्च की रोकथाम करनी चाहिए। चुनाँचे आगे चलकर मदीना तय्यिबा की रियासत में इन दोनों दफ़ाओं के मक़सद को कई अमली तरीक़ों से ज़ाहिर किया गया। एक तरफ़ फ़ुज़ूलख़र्ची और अय्याशी की बहुत-सी सूरतों को क़ानून के ज़रिए हराम किया गया। दूसरी तरफ़ क़ानूनी तदबीरों के ज़रिए से माल के ग़लत ख़र्च की रोकथाम की गई। तीसरी तरफ़ समाज-सुधार के ज़रिए से उन बहुत-सी रस्मों को ख़त्म किया गया जिनमें फ़ुज़ूलख़र्चियाँ की जाती थीं, फिर हुकूमत को ये अधिकार दिए गए कि फ़ुज़ूलख़र्ची की नुमायाँ सूरतों को अपने इन्तिज़ामी हुक्मों के ज़रिए से रोक दे। इसी तरह ज़कात व सदक़ों के हुक्मों से कंजूसी का ज़ोर भी तोड़ा गया और इस बात के इमकान बाक़ी न रहने दिए गए कि लोग माल-दौलत को जमाकर के दौलत की गर्दिश को रोक दें। इन तदबीरों के अलावा समाज में एक ऐसी आम राय पैदा की गई जो फ़य्याज़ी और फ़ुज़ूलख़र्ची का फ़र्क़ ठीक-ठीक जानती थी और कंजूसी और एतिदाल में ख़ूब फ़र्क़ करती थी। इस आम राय ने कंजूसों को रुसवा किया। एतिदाल और बीच का रास्ता इख़्तियार करनेवालों को इज़्ज़तदार

كَانَ بِعِبَادِهٖ خَبِيْرًۢا بَصِيْرًا ﴿۳۰﴾ وَلَا تَقْتُلُوْٓا اَوْلَادَكُمْ خَشْيَةَ اِمْلَاقٍ ؕ ع
نَحْنُ نَرْزُقُهُمْ وَاِيَّاكُمْ ؕ اِنَّ قَتْلَهُمْ كَانَ خِطْاً كَبِيْرًا ﴿۳۱﴾ ———

देता है। वह अपने बन्दों के हाल की ख़बर रखता है और उन्हें देख रहा है।[30] (31) अपनी औलाद को ग़रीबी के डर से क़त्ल न करो। हम उन्हें भी रोज़ी देंगे और तुम्हें भी। हक़ीकत में उनका क़त्ल एक बड़ी ख़ता है।[31] ———

बनाया। फ़ुज़ूलख़र्चों की मलामत (निन्दा) की और फ़य्याज़ (दानशील) लोगों को पूरी सोसायटी का सबसे महकता और खिला हुआ फूल क़रार दिया। उस वक़्त की ज़ेहनी व अख़लाक़ी तरबियत का यह असर आज तक मुस्लिम समाज में मौजूद है कि मुसलमान जहाँ भी हैं कंजूसों और दौलत जमा करके रखनेवालों को बुरी निगाह से देखते हैं, और फ़य्याज़ इनसान आज भी उनकी निगाह में इज़्ज़त और एहतिराम के क़ाबिल है।

30. यानी अल्लाह तआला ने अपने बन्दों के दरमियान रिज़्क़ देने में कम-ज़्यादा का जो फ़र्क़ रखा है इनसान उसकी मस्लहतें और उसमें छिपी हिकमतों को नहीं समझ सकता, इसलिए रोज़ी बाँटने के फ़ितरी निज़ाम में इनसान को अपनी बनावटी तदबीरों से दख़लअन्दाज़ न होना चाहिए। फ़ितरी ग़ैर-बराबरी को बनावटी बराबरी में तबदील करना, या इस ग़ैर-बराबरी को फ़ितरत की हदों से बढ़ाकर बेइनसाफ़ी की हद तक पहुँचा देना, दोनों ही समान रूप से ग़लत हैं। एक सही मआशी निज़ाम वही है जो ख़ुदा के मुक़र्रर किए हुए रिज़्क़ बाँटने के तरीक़े से ज़्यादा क़रीब हो।

इस जुमले में फ़ितरत के क़ानून के जिस क़ायदे की तरफ़ रहनुमाई की गई थी उसकी वजह से मदीना के इस्लाही (सुधारवादी) प्रोग्राम में यह ख़याल सिरे से कोई जगह न पा सका कि रिज़्क़ (रोज़ी) और रोज़ी पाने के वसाइल (संसाधनों) में फ़र्क़ और एक-दूसरे से बढ़कर होना अपनी जगह ख़ुद कोई बुराई है जिसे मिटाना और एक ऐसी सोसायटी पैदा करना जिसमें सिरे से तबक़े ही मौजूद न हों किसी दर्जे में भी मतलूब हो। इसके बरख़िलाफ़ मदीना तय्यिबा में इनसानी समाज अच्छी और भली बुनियादों पर क़ायम करने के लिए जो राहे-अमल अपनाई गई वह यह थी कि अल्लाह की फ़ितरत ने इनसानों के बीच जो फ़र्क़ रखे हैं उनको असूल फ़ितरी हालत पर बाक़ी रखा जाए और ऊपर की दी हुई हिदायतों के मुताबिक़ सोसायटी के अख़लाक़, तरीक़ों और अमल के क़ानूनों का इस तरह सुधार कर दिया जाए कि रोज़ी का फ़र्क़ किसी ज़ुल्म व बेइनसाफ़ी का सबब बनने के बजाए उन अनगिनत अख़लाक़ी, रूहानी और समाजी फ़ायदों और बरकतों का ज़रिआ बन जाए जिनकी ख़ातिर ही दर असूल कायनात के पैदा करनेवाले ने अपने बन्दों के दरमियान यह फ़र्क़ रखा है।

31. यह आयत उन मआशी (आर्थिक) बुनियादों को बिलकुल ढा देती है जिनपर पुराने ज़माने से आज तक अलग-अलग दौर में बर्थ-कंट्रोल की तहरीक उठती रही है। ग़रीबी का डर पुराने

وَلَا تَقْرَبُوا الزِّنٰٓى اِنَّهٗ كَانَ فَاحِشَةً ۭ وَسَاۗءَ سَبِيْلًا ۝ وَلَا تَقْتُلُوا
النَّفْسَ الَّتِيْ حَرَّمَ اللّٰهُ اِلَّا بِالْحَقِّ ۭ وَمَنْ قُتِلَ مَظْلُوْمًا فَقَدْ

(32) ज़िना (व्यभिचार) के क़रीब न फटको। वह बहुत बुरा काम है और बड़ा ही बुरा रास्ता।[32] (33) किसी जान को क़त्ल न करो जिसे अल्लाह ने हराम किया है[33], मगर हक़ के साथ।[34] और जो शख़्स मज़लूम की हैसियत से क़त्ल किया गया हो उसके वली

ज़माने में बच्चों का क़त्ल और भ्रूण हत्या पर उभारनेवाली और आमादा करनेवाली चीज़ हुआ करता था, और आज वह एक तीसरी तदबीर, यानी गर्भ ठहरने से रोकने की तरफ़ दुनिया को ढकेल रहा है। लेकिन इस्लामी मंशूर (घोषणापत्र) की यह दफ़ा इनसान को हिदायत करती है कि वे खानेवालों को घटाने की ख़तरनाक कोशिश छोड़कर उन बनानेवाली कोशिशों में अपनी क़ुव्वतें और क़ाबिलियतें लगाए जिनसे अल्लाह के बनाए हुए फ़ितरी क़ानून के मुताबिक़ रिज़्क़ में बढ़ोतरी हुआ करती है। इस दफ़ा के मुताबिक़ यह बात इनसान की बड़ी ग़लतियों में से एक है कि वह बार-बार रोज़गार के ज़रिओं की तंगी के डर से नस्ल बढ़ाने का सिलसिला रोक देने पर आमादा हो जाता है। यह इनसान को ख़बरदार करती है कि रिज़्क़ पहुँचाने का इन्तिज़ाम तेरे हाथ में नहीं है, बल्कि उस ख़ुदा के हाथ में है जिसने तुझे ज़मीन में बसाया है। जिस तरह वह पहले आनेवालों को रोज़ी देता रहा है, बाद के आनेवालों को भी देगा। इतिहास का तजरिबा भी यही बताता है कि दुनिया के अलग-अलग देशों में खानेवाली आबादी जितनी बढ़ती गई है, उतने ही, बल्कि बहुत बार उससे बहुत ज़्यादा माली और मआशी ज़रिए बढ़ते चल गए हैं, लिहाज़ा ख़ुदा के पैदा करने के इन्तिज़ामों में इनसान की ग़लत दख़लअंदज़ियाँ बेवक़ूफ़ी के सिवा कुछ नहीं हैं।

यह इसी तालीम का नतीजा है कि क़ुरआन उतरने के दौर से लेकर आज तक किसी दौर में भी मुसलमानों के अन्दर नस्ल ख़त्म करने का कोई आम रुझान पैदा नहीं होने पाया।

32. “ज़िना (व्यभिचार) के क़रीब न फटको” यह हुक्म एक-एक शख़्स के लिए भी है और पूरे समाज के लिए भी। अलग-अलग शख़्सों के लिए इस हुक्म का मतलब यह है कि वे सिर्फ़ ज़िना (व्यभिचार) ही से बचने पर बस न करें, बल्कि ज़िना की तरफ़ बढ़नेवाली और उन शुरुआती हरकतों से भे दूर रहें जो इस रास्ते की तरफ़ ले जाती हैं। रहा समाज, तो इस हुक्म के मुताबिक़ उसका फ़र्ज़ यह है कि वह समाजी ज़िन्दगी में ज़िना, ज़िना पर उभारनेवाली हरकतों, और ज़िना के असबाब पर रोक लगाए, और इस मक़सद के लिए क़ानून से, तालीम और तरबियत से, इज्तिमाई माहौल के सुधार से, समाजी ज़िन्दगी के मुनासिब गठन से, और दूसरी तमाम असरदार तदबीरों से काम ले।

यह दफ़ा आख़िकार इस्लामी निज़ामे-ज़िन्दगी के एक बड़े बाब (अध्याय) की बुनियाद बनी। इसके मंशा के मुताबिक़ ज़िना और ज़िना के झूठे इलज़ाम को फ़ौजदारी जुर्म ठहराया गया, पर्दे

جَعَلْنَا لِوَلِيِّهٖ سُلْطٰنًا فَلَا يُسْرِفْ فِّي الْقَتْلِ ۭ اِنَّهٗ كَانَ مَنْصُوْرًا ۝۳۳

(सरपरस्त) को हमने क़िसास की माँग का हक़ दिया है[35], तो चाहिए कि वह क़त्ल में हद

के हुक्म जारी किए गए, बेहयाई और बेशर्मी के फैलाने को सख़्ती के साथ रोक दिया गया, शराब और संगीत और नाच और तस्वीरों पर (जो ज़िना से सबसे क़रीबी रिश्ता रखते हैं) बन्दिशें लगाई गईं और शादी-ब्याह का एक ऐसा क़ानून बनाया गया जिससे निकाह (शादी) आसान हो गया और ज़िना के समाजी असबाब की जड़ कट गई।

33. किसी जान के क़त्ल से मुराद सिर्फ़ दूसरे इनसान का क़त्ल ही नहीं है, बल्कि ख़ुद अपने आपको क़त्ल करना भी है। इसलिए कि जान, जिसको अल्लाह ने एहतिराम के क़ाबिल ठहराया है, उसकी तारीफ़ (परिभाषा) में दूसरी जानों की तरह इनसान की अपनी जान भी दाख़िल है। लिहाज़ा जितना बड़ा जुर्म और गुनाह इनसान का क़त्ल है, उतना ही बड़ा जुर्म और गुनाह ख़ुदकुशी (आत्महत्या) भी है। आदमी की बड़ी ग़लतफ़हमियों में से एक यह है कि वह अपने आपको अपनी जान का मालिक, और अपनी इस मिल्कियत को अपने अधिकार से ख़ुद तबाह कर देने का अधिकारी समझता है। हालाँकि यह जान अल्लाह की मिल्कियत है, और हम इसको तबाह करना तो दूर, इसके किसी ग़लत इस्तेमाल के अधिकारी भी नहीं हैं। दुनिया की इस इम्तिहानगाह में अल्लाह तआला जिस तरह भी हमारा इम्तिहान ले, इसी तरह हमें आख़िर वक़्त तक इम्तिहान देते रहना चाहिए, चाहे इम्तिहान के हालात अच्छे हों या बुरे। अल्लाह के दिए हुए वक़्त को जान-बूझकर ख़त्म करके इम्तिहानगाह से भाग निकलने की कोशिश अपने आप में ख़ुद ग़लत है, उसपर कहाँ यह कि यह फ़रार भी एक ऐसे बड़े जुर्म के ज़रिए से किया जाए, जिसे अल्लाह ने साफ़ अलफ़ाज़ में हराम ठहराया है। इसका दूसरा मतलब यह है कि आदमी दुनिया की छोटी-छोटी तकलीफ़ों और ज़िल्लतों और रुसवाइयों से बचकर बहुत बड़ी और हमेशा रहनेवाली तकलीफ़ और रुसवाई की तरफ़ भागता है।

34. बाद में इस्लामी क़ानून ने 'हक़ के मुताबिक़ क़त्ल' को सिर्फ़ पाँच हालतों में महदूद कर दिया : एक जान-बूझकर क़त्ल करने के मुजरिम से क़िसास (ख़ून का बदला), दूसरी सच्चे दीन के रास्ते में रुकावटें खड़ी करनेवालों से जंग, तीसरी इस्लामी निज़ामे-हुकूमत को उलटने की कोशिश करनेवालों को सज़ा। चौथी शादीशुदा मर्द या औरत को ज़िना करने की सज़ा। पाँचवीं हक़ से फिर जाने की सज़ा। सिर्फ़ यही पाँच हालतें हैं जिनमें इनसानी जान का एहतिराम ख़त्म हो जाता है और उसे क़त्ल करना जाइज़ हो जाता है।

35. अस्ल अलफ़ाज हैं "उसके वली को हमने सुल्तान अता किया है।" सुल्तान से मुराद यहाँ "हुज्जत" (दलील) है जिसकी बुनियाद पर वह क़िसास की माँग कर सकता है। इससे इस्लामी क़ानून का यह उसूल निकलता है कि क़त्ल के मुक़द्दमें में अस्ल मुद्दई हुकूमत नहीं बल्कि मरनेवाले के वारिस हैं, और वे क़ातिल को माफ़ करने और क़िसास के बजाए ख़ूँबहा (क़त्ल का माली जुर्माना) लेने पर राज़ी हो सकते हैं।

وَلَا تَقْرَبُوْا مَالَ الْيَتِيْمِ اِلَّا بِالَّتِيْ هِيَ اَحْسَنُ حَتّٰى يَبْلُغَ اَشُدَّهٗ ۖ
وَاَوْفُوْا بِالْعَهْدِ ۚ اِنَّ الْعَهْدَ كَانَ مَسْـُٔوْلًا ﴿٣٤﴾ وَاَوْفُوا الْكَيْلَ اِذَا
كِلْتُمْ وَزِنُوْا بِالْقِسْطَاسِ الْمُسْتَقِيْمِ ۭ ذٰلِكَ خَيْرٌ وَّاَحْسَنُ تَاْوِيْلًا ﴿٣٥﴾

से न बढ़े[36], उसकी मदद की जाएगी।[37] (34) यतीम के माल के पास न फटको मगर अच्छे तरीक़े से, यहाँ तक कि वह अपनी जवानी को पहुँच जाए।[38] अहद (वचन) की पाबन्दी करो। बेशक अहद के बारे में तुमको जवाबदेही करनी होगी[39]। (35) पैमाने से दो तो पूरा भरकर दो और तौलो तो ठीक तराज़ू से तौलो।[40] यह अच्छा तरीक़ा है और

36. क़त्ल में हद से गुज़रने की कई शक्लें हो सकती हैं और वे सब मना हैं। मसलन इन्तिक़ाम के जोश में मुजरिम के अलावा दूसरों को क़त्ल करना, या मुजरिम को तकलीफ़ दे-देकर मारना, या मार देने के बाद उसकी लाश पर ग़ुस्सा निकालना, या ख़ूँबहा (क़त्ल का माली जुर्माना) लेने के बाद फिर उसे क़त्ल करना वग़ैरा।

37. चूँकि उस वक़्त तक इस्लामी हुकूमत क़ायम न हुई थी, इसलिए इस बात को नहीं खोला गया कि उसकी मदद कौन करेगा। बाद में जब इस्लामी हुकूमत क़ायम हो गई तो यह तय कर दिया गया कि उसकी मदद करना उसके क़बीले या उसके साथियों का काम नहीं, बल्कि इस्लामी हुकूमत और उसके अदालती निज़ाम का काम है। कोई शख़्स या गरोह अपने आप क़त्ल का इन्तिक़ाम लेने का अधिकार नहीं रखता, बल्कि यह ज़िम्मेदारी इस्लामी हुकूमत की है कि इनसाफ़ पाने के लिए उससे मद, माँगी जाए।

38. यह भी सिर्फ़ एक अख़लाक़ी हिदायत न थी, बल्कि आगे चलकर जब इस्लामी हुकूमत क़ायम हुई तो यतीमों के हक़ों की हिफ़ाज़त के लिए इन्तिज़ामी और क़ानूनी, दोनों तरह की तदबीरें अपनाई गईं, जिनकी तफ़सील हमको हदीस और फ़िक़्ह की किताबों में मिलती है। फिर इसी से यह बड़ा उसूल लिया गया कि इस्लामी रियासत अपने उन तमाम शहरियों के मफ़ाद (हितों) की हिफ़ाज़त करनेवाली है जो अपने मफ़ाद की ख़ुद हिफ़ाज़त करने के क़ाबिल न हों। नबी (सल्ल०) का इरशाद, "मैं हर उस शख़्स का सरपरस्त हूँ जिसका कोई सरपरस्त न हो" इसी तरफ़ इशारा करता है, और यह इस्लामी क़ानून के एक बड़े बाब (अध्याय) की बुनियाद है।

39. यह भी सिर्फ़ इनफ़िरादी (वैयक्तिक) अख़लाक़ियात ही की एक दफ़ा न थी, बल्कि इस्लामी हुकूमत क़ायम हुई तो इसी को पूरी क़ौम की देश और विदेश पॉलिसी की बुनियाद ठहराया गया।

40. यह हिदायत भी सिर्फ़ लोगों के आपसी मामलों तक महदूद न रही, बल्कि इस्लामी हुकूमत के क़ायम होने के बाद यह बात हुकूमत की ज़िम्मेदारियों में शामिल की गई कि वह मण्डियों और

وَلَا تَقْفُ مَا لَيْسَ لَكَ بِهٖ عِلْمٌ ؕ اِنَّ السَّمْعَ وَالْبَصَرَ وَالْفُؤَادَ كُلُّ
اُولٰٓئِكَ كَانَ عَنْهُ مَسْئُوْلًا ۝٣٦ وَلَا تَمْشِ فِي الْاَرْضِ مَرَحًا ۚ اِنَّكَ لَنْ

नतीजे के एतिबार से भी यही अच्छा है[41] (36) किसी ऐसी चीज़ के पीछे न लगो जिसका तुम्हें इल्म न हो। यक़ीनन आँख, कान और दिल सभी की पूछ-गच्छ होनी है।[42] (37) ज़मीन में अकड़कर न चलो, तुम न ज़मीन को फाड़ सकते हो, न पहाड़ों की

बाज़ारों में नाप-तौल की निगरानी करे और कम तौलने और डण्डी मारने को ताक़त के बल पर बन्द कर दे। फिर इसी से यह बड़ा उसूल लिया गया कि तिजारत और माली लेन-देन में हर तरह की बेईमानियों और हक़ मारने के रास्तों को रोकना हुकूमत की ज़िम्मेदारियों में से है।

41. यानी दुनिया में भी और आख़िरत में भी। दुनिया में उसका अंजाम इस लिए बेहतर है कि इससे आपसी एतिमाद क़ायम होता है, बेचनेवाला और ख़रीदनेवाला दोनों एक-दूसरे पर भरोसा करते हैं, और यह चीज़ आख़िकार तिजारत के फैलाव और आम ख़ुशहाली का सबब साबित होती है। रही आख़िरत तो वहाँ अंजाम की भलाई का सारा दारोमदार ही ईमान और परहेज़गारी पर है।

42. इस दफ़ा का मंशा यह है कि लोग अपनी इनफ़िरादी (वैयक्तिक) और समाजी ज़िन्दगी में वहम व गुमान के बजाए "इल्म" (ज्ञान) की पैरवी करें। इस्लामी समाज में इस मंशा को अख़लाक़ में, क़ानून में, सियासत और मुल्क के इंतिज़ाम में, उलूम-फ़ुनून (कला-विज्ञान) और तालीम के निज़ाम में, यानी ज़िन्दगी के हर हिस्से में बड़े पैमाने पर बयान किया गया और उन अनगिनत ख़राबियों से सोच व अमल को महफ़ूज़ कर दिया गया, जो इल्म के बजाए गुमान की पैरवी करने से इनसानी ज़िन्दगी में ज़ाहिर होती हैं। अख़लाक़ में हिदायत की गई कि बदगुमानी से बचो और किसी शख़्स या गरोह पर बिना जाँच पड़ताल किए कोई इलज़ाम न लगाओ। क़ानून में यह मुस्तक़िल उसूल तय कर दिया गया कि सिर्फ़ शक पर किसी के ख़िलाफ़ कोई कार्रवाई न की जाए। जुर्मों की तफ़तीश में यह क़ायदा मुकर्रर किया गया कि गुमान पर किसी को पकड़ना और मार-पीट करना या हवालात में दे देना बिलकुल नाजाइज़ है। ग़ैर-क़ौमों के साथ बरताव में यह पॉलिसी तय कर दी गई कि सच्चाई का पता लगाए बिना किसी के ख़िलाफ़ कोई क़दम न उठाया जाए और न ही शक की बुनियाद पर अफ़वाहें फैलाई जाएँ। तालीम के निज़ाम में भी उन नामनिहाद (तथाकथित) इल्मों (ज्ञानों) को नापसन्द किया गया, जिनका दारोमदार गुमान और अटकलों और लम्बे-लम्बे अन्दाज़ों पर है। और सबसे बढ़कर यह कि अक़ीदों में अंधविश्वास की जड़ काट दी गई और ईमान लानेवालों को यह सिखाया गया कि सिर्फ़ उस चीज़ को मानें, जो ख़ुदा और रसूल के दिए हुए इल्म के मुताबिक़ साबित हो।

تَخْرِقَ الْاَرْضَ وَلَنْ تَبْلُغَ الْجِبَالَ طُوْلًا ﴿٣٧﴾ كُلُّ ذٰلِكَ كَانَ سَيِّئُهٗ
عِنْدَ رَبِّكَ مَكْرُوْهًا ﴿٣٨﴾ ذٰلِكَ مِمَّاۤ اَوْحٰۤى اِلَيْكَ رَبُّكَ مِنَ الْحِكْمَةِ ؕ
وَلَا تَجْعَلْ مَعَ اللّٰهِ اِلٰهًا اٰخَرَ فَتُلْقٰى فِىْ جَهَنَّمَ مَلُوْمًا مَّدْحُوْرًا ﴿٣٩﴾
اَفَاَصْفٰىكُمْ رَبُّكُمْ بِالْبَنِيْنَ وَاتَّخَذَ مِنَ الْمَلٰۤئِكَةِ اِنَاثًا ؕ اِنَّكُمْ
ع لَتَقُوْلُوْنَ قَوْلًا عَظِيْمًا ﴿٤٠﴾ وَلَقَدْ صَرَّفْنَا فِىْ هٰذَا الْقُرْاٰنِ لِيَذَّكَّرُوْا ؕ

ऊँचाई को पहुँच सकते हो।[43]

(38) इन मामलों में से हर एक का बुरा पहलू तेरे रब के नज़दीक नापसंदीदा है।[44] (39) ये वे हिकमत की बातें हैं जो तेरे रब ने तुझपर वह्य की हैं।

और देख! अल्लाह के साथ कोई दूसरा माबूद न बना बैठ, वरना तू जहन्नम में डाल दिया जाएगा मलामत किया हुआ और हर भलाई से महरूम होकर।[45]— (40) कैसी अजीब बात है कि तुम्हारे रब ने तुम्हें तो बेटे दिए और ख़ुद अपने लिए फ़रिश्तों को बेटियाँ बना लिया?[46] बड़ी झूठी बात है जो तुम लोग ज़बानों से निकालते हो।

(41) हमने इस क़ुरआन में तरह-तरह से लोगों को समझाया कि होश में आएँ, मगर

43. मतलब यह है कि ज़ालिमों और घमण्डियों के तरीक़ों से बचो। यह हिदायत भी इनफ़िरादी रवैये और क़ौमी रवैये दोनों पर समान रूप से हावी है और यह इसी हिदायत का नतीजा था कि मदीना तय्यिबा में जो हुकूमत इस मंशूर (घोषणापत्र) पर क़ायम हुई उसके हुक्मरानों, गवर्नरों और सिपहसालारों की ज़िन्दगी में ज़ालिमानापन और घमण्ड का हल्का-सा असर तक नहीं पाया जाता था। यहाँ तक कि ठीक जंग की हालत में भी कभी उनकी ज़बान से घमण्ड व ग़ुरूर की कोई बात न निकली। उनके उठने-बैठने, चाल-ढाल, लिबास, मकान, सवारी और आम बरताव में नर्मी और लचक, बल्कि फ़क़ीरी व दर्वेशी की शान पाई जाती थी, और जब वे फ़ातेह (विजेता) की हैसियत से किसी शहर में दाख़िल होते थे, उस वक़्त भी अकड़ और घमण्ड से अपना रोब बिठाने की कोशिश न करते थे।

44. यानी इनमें से जो चीज़ भी मना है उसका करना अल्लाह को नापसन्द है। या दूसरे अलफ़ाज़ में, जिस हुक्म की भी नाफ़रमानी की जाए, वह नापसन्दीदा है।

45. बज़ाहिर तो बात नबी (सल्ल॰) से की जा रही है, मगर ऐसे मौक़ों पर अल्लाह तआला अपने नबी को मुख़ातब करके जो बात फ़रमाया करता है उसका अस्ल मुख़ातब हर इनसान हुआ करता है।

46. तशरीह के लिए देखें—सूरा-16 नह्ल, आयतें 57 से 59, साथ ही उसके हाशिए।

وَمَا يَزِيۡدُهُمۡ اِلَّا نُفُوۡرًا ۝٤١ قُلۡ لَّوۡ كَانَ مَعَهٗۤ اٰلِهَةٌ كَمَا يَقُوۡلُوۡنَ اِذًا
لَّابۡتَغَوۡا اِلٰى ذِى الۡعَرۡشِ سَبِيۡلًا ۝٤٢ سُبۡحٰنَهٗ وَتَعٰلٰى عَمَّا يَقُوۡلُوۡنَ عُلُوًّا
كَبِيۡرًا ۝٤٣ تُسَبِّحُ لَهُ السَّمٰوٰتُ السَّبۡعُ وَالۡاَرۡضُ وَمَنۡ فِيۡهِنَّ‌ؕ وَاِنۡ

वे हक़ (सत्य) से और ज़्यादा दूर ही भागे जा रहे हैं। (42) ऐ नबी! इनसे कहो कि अगर अल्लाह के साथ दूसरे ख़ुदा भी होते, जैसा कि ये लोग कहते हैं, तो अर्श (सिंहासन) के मालिक के मक़ाम पर पहुँचने की ज़रूर कोशिश करते।[47] (43) पाक है वह और बहुत बुलन्द है उन बातों से जो ये लोग कह रहे हैं। (44) उसकी पाकी तो सातों आसमान और ज़मीन और वे सारी चीज़ें बयान कर रही हैं जो आसमानों और ज़मीन में हैं।[48] कोई

47. यानी वे ख़ुद अर्श का मालिक बनने की कोशिश करते। इसलिए कि कुछ हस्तियों का ख़ुदाई में शरीक होना दो हाल से ख़ाली नहीं हो सकता। या तो वे सब अपनी-अपनी जगह मुस्तक़िल ख़ुदा हों या उनमें से एक अस्ल ख़ुदा हो और बाक़ी उसके बन्दे हों जिन्हें उसने कुछ ख़ुदाई अधिकार दे रखे हों। पहली सूरत में यह किसी तरह मुमकिन न था कि ये सब आज़ाद और पूरा अधिकार रखनेवाले ख़ुदा हमेशा हर मामले में, एक-दूसरे के इरादे में ताल-मेल करके इस अथाह कायनात के इन्तिज़ाम को इतने मुकम्मल तालमेल, यकसानियत (समानता), और तनासुब व तवाज़ुन (अनुपात व सन्तुलन) के साथ चला सकते। ज़रूरी था कि उनके मंसूबों और इरादों में क़दम-क़दम पर टकराव होता और हर एक अपनी ख़ुदाई दूसरे ख़ुदाओं की मदद के बिना चलती न देखकर यह कोशिश करता कि वह अकेला सारी कायनात का मालिक बन जाए। रही दूसरी सूरत, तो बन्दे का हौसला ख़ुदाई अधिकार तो दूर, ख़ुदाई के ज़रा-से इमकान और शाइबे (लेशमात्र) को सहन नहीं कर सकता। अगर कहीं किसी जानदार को ज़रा-सी ख़ुदाई भी दे दी जाती तो वह फट पड़ता, कुछ पलों के लिए भी बन्दा बनकर रहने पर राज़ी न होता और फ़ौरन ही पूरी दुनिया का ख़ुदा बन जाने की फ़िक्र शुरू कर देता।

जिस कायनात में गेहूँ का एक दाना और घास का एक तिनका भी उस वक़्त तक पैदा न होता हो, जब तक कि ज़मीन व आसमान की सारी क़ुव्वतें मिलकर उसके लिए काम न करें, उसके बारे में सिर्फ़ एक इन्तिहा दर्जे का जाहिल और कम अक़्ल आदमी ही यह सोच सकता है कि उसका इन्तिज़ाम एक से ज़्यादा पूरा या आधा अधिकार रखनेवाले ख़ुदा चला रहे होंगे। वरना जिसने कुछ भी इस निज़ाम के मिज़ाज और तबीअत को समझने की कोशिश की हो, वह तो इस नतीजे पर पहुँचे बिना नहीं रह सकता कि यहाँ ख़दाई बिलकुल एक ही की है और उसके साथ किसी दर्जे में भी किसी और के शरीक होने का बिलकुल इमकान नहीं है।

48. यानी सारी कायनात और उसकी हर चीज़ अपने पूरे वुजूद से इस हक़ीक़त पर गवाही दे रही

مِّنْ شَيْءٍ اِلَّا يُسَبِّحُ بِحَمْدِهٖ وَلٰكِنْ لَّا تَفْقَهُوْنَ تَسْبِيْحَهُمْ ۭ اِنَّهٗ كَانَ
حَلِيْمًا غَفُوْرًا ۝ وَاِذَا قَرَاْتَ الْقُرْاٰنَ جَعَلْنَا بَيْنَكَ وَبَيْنَ الَّذِيْنَ لَا
يُؤْمِنُوْنَ بِالْاٰخِرَةِ حِجَابًا مَّسْتُوْرًا ۝ وَّجَعَلْنَا عَلٰي قُلُوْبِهِمْ اَكِنَّةً اَنْ

चीज़ ऐसी नहीं जो उसकी हम्द (प्रशंसा) के साथ उसकी तसबीह (महिमागान) न कर रही हो।[49] मगर तुम उनकी तसबीह समझते नहीं हो। हक़ीक़त यह है कि वह बड़ा ही बुर्दबार (सहनशील) और माफ़ करनेवाला है।[50]

(45) जब तुम क़ुरआन पढ़ते हो तो हम तुम्हारे और आख़िरत पर ईमान न लानेवालों के बीच एक परदा डाल देते हैं, (46) और उनके दिलों पर ऐसा ग़िलाफ़ चढ़ा

है कि जिसने उसको पैदा किया है और जो उसकी परवरदिगारी और निगहबानी कर रहा है, उसकी हस्ती हर ऐब और कमज़ोरी से पाक है, और वह इससे बिलकुल पाक है कि ख़ुदाई में कोई उसका शरीक और हिस्सेदार हो।

49. हम्द के साथ तसबीह करने का मतलब यह है कि हर चीज़ न सिर्फ़ यह कि अपने पैदा करनेवाले और रब का ऐबों और ख़राबियों और कमज़ोरियों से पाक (मुक्त) होना ज़ाहिर कर रही है, बल्कि इसके साथ वह उसका तमाम ख़ूबियोंवाला और तमाम तारीफ़ों का हक़दार होना भी बयान करती है। एक-एक चीज़ अपने पूरे वुजूद से यह बता रही है कि इसका बनानेवाला और इन्तिज़ाम संभालनेवाला वह है जिसपर सारी ख़ूबियाँ और सारे कमालात ख़त्म हो गए हैं और हम्द (तारीफ़) अगर है तो उसी के लिए है।

50. यानी यह उसकी सहन, बरदाश्त और माफ़ कर देने की शान है कि तुम उसके सामने गुस्ताख़ियों पर गुस्ताख़ियाँ किए जाते हो, और उसपर तरह-तरह के झूठे इलज़ाम लगाते हो और फिर भी वह अनदेखा किए चला जाता है। न रिज़्क़ बन्द करता है, न अपनी नेमतों से महरूम करता है और न हर गुस्ताख़ पर फ़ौरन बिजली गिरा देता है। फिर यह भी उसकी सहन करने और उसके माफ़ करने ही का एक करिश्मा है कि वह लोगों को भी और क़ौमों को भी समझने और संभलने के लिए काफ़ी मुहलत देता है, नबियों और सुधार का काम करनेवालों और दीन की तबलीग़ करनेवालों को उनको समझाने-बुझाने और उनकी रहनुमाई के लिए बार-बार उठाता है और जो भी अपनी ग़लती को महसूस करके सीधा रास्ता अपना ले उसकी पिछली ग़लतियों को माफ़ कर देता है।

يَّفْقَهُوْهُ وَفِيْٓ اٰذَانِهِمْ وَقْرًا ۭ وَاِذَا ذَكَرْتَ رَبَّكَ فِي الْقُرْاٰنِ وَحْدَهٗ
وَلَّوْا عَلٰٓي اَدْبَارِهِمْ نُفُوْرًا ۝ نَحْنُ اَعْلَمُ بِمَا يَسْتَمِعُوْنَ بِهٖٓ اِذْ

देते हैं कि वे कुछ नहीं समझते और उनके कानों में बोझ पैदा कर देते हैं।[51] और जब तुम क़ुरआन में अपने एक ही रब का ज़िक्र करते हो तो वे नफ़रत से मुँह मोड़ लेते

51. यानी आख़िरत पर ईमान न लाने का यह क़ुदरती नतीजा है कि आदमी के दिल पर ताले लग जाएँ और उसके कान उस दावत के लिए बन्द हो जाएँ जो क़ुरआन पेश करता है। ज़ाहिर है कि क़ुरआन की तो दावत ही इस बुनियाद पर है कि दुनियावी ज़िन्दगी के ज़ाहिरी पहलू से धोखा न खाओ। यहाँ अगर कोई हिसाब लेनेवाला और तलब करनेवाला नज़र नहीं आता तो यह न समझो कि तुम किसी के सामने ज़िम्मेदार और जवाबदेह हो ही नहीं। यहाँ अगर शिर्क, दुनियापरस्ती, कुफ़्र, तौहीद सब ही नज़रिये आज़ादी से अपनाए जा सकते हैं, और दुनियावी लिहाज़ से कोई ख़ास फ़र्क़ पड़ता नज़र नहीं आता तो यह न समझो कि उनके कोई अलग-अलग नतीजे हैं ही नहीं जो सामने आनेवाले हैं। यहाँ अगर गुनाह और नाफ़रमानी और परहेज़गारी और फ़रमाँबरदारी, हर तरह कि रवैये अपनाए जा सकते हैं और अमली तौर पर उनमें से किसी रवैये का कोई एक लाज़िमी नतीजा सामने नहीं आता तो यह न समझो कि कोई अटल अख़लाक़ी क़ानून सिरे से है ही नहीं। दर अस्ल हिसाब माँगा जाना और जवाब दिया जाना सब कुछ है, मगर वह मरने के बाद दूसरी ज़िन्दगी में होगा। तौहीद (एकेश्वरवाद) का नज़रिया सच और बाक़ी सब नज़रिये झूठ हैं, मगर उनके असली और पूरे नतीजे मौत के बाद की ज़िन्दगी में ज़ाहिर होंगे और वहीं वह हक़ीक़त खुलेगी जो इस ज़ाहिरी पर्दे के पीछे छिपी हुई है। एक अटल अख़लाक़ी क़ानून ज़रूर है जिसके लिहाज़ से नाफ़रमानी नुक़सानदेह और फ़रमाँबरदारी फ़ायदेमन्द है, मगर इस क़ानून के मुताबिक़ आख़िरी और अटल फ़ैसले भी बाद की ज़िन्दगी ही में होंगे। इसलिए तुम दुनिया की इस कुछ दिनों की ज़िन्दगी पर फ़िदा न हो और उसके शक से भरे नतीजों पर भरोसा न करो, बल्कि उस जवाबदेही पर निगाह रखो जो तुम्हें आख़िरकार अपने ख़ुदा के सामने करनी होगी, और वह सही एतिक़ादी और अख़लाक़ी रवैया अपनाओ जो तुम्हें आख़िरत के इम्तिहान में कामयाब करे। यह है-- क़ुरआन की दावत। अब यह बिलकुल एक नफ़्सियाती (मनोवैज्ञानिक) हक़ीक़त है कि जो शख़्स सिरे से आख़िरत ही को मानने के लिए तैयार नहीं है और जिसका सारा भरोसा इसी दुनिया की दिखाई देने और महसूस होनेवाली चीज़ों पर और यहीं के तजरिबों पर है, वह कभी क़ुरआन की इस दावत को ध्यान देने के क़ाबिल नहीं समझ सकता। उसके कान के पर्दे से तो यह आवाज़ टकरा-टकरा कर हमेशा उचटती ही रहेगी, कभी दिल तक पहुँचने का रास्ता न पाएगी। इसी नफ़्सियाती हक़ीक़त को अल्लाह तआला इन अलफ़ाज़ में बयान करता है कि जो आख़िरत को नहीं मानता, हम उसके दिल और उसके कान क़ुरआन की दावत के लिए बन्द कर देते हैं। यानी यह हमारा फ़ितरी क़ानून है जो उसपर यूँ लागू होता है।

يَسْتَمِعُوْنَ اِلَيْكَ وَاِذْ هُمْ نَجْوٰٓى اِذْ يَقُوْلُ الظّٰلِمُوْنَ اِنْ تَتَّبِعُوْنَ اِلَّا
رَجُلًا مَّسْحُوْرًا ۞ اُنْظُرْ كَيْفَ ضَرَبُوْا لَكَ الْاَمْثَالَ فَضَلُّوْا فَلَا

हैं।[52] (47) हमें मालूम है कि जब वे कान लगाकर तुम्हारी बात सुनते हैं तो अस्ल क्या सुनते हैं, और जब बैठकर आपस में कानाफूसियाँ करते हैं तो क्या कहते हैं। ये ज़ालिम आपस में कहते हैं कि यह तो एक जादू का मारा आदमी है जिसके पीछे तुम लोग जा रहे हो।[53]— (48) देखो, कैसी बातें हैं जो ये लोग तुमपर छाँटते हैं ये भटक गए हैं, इन्हें

यह भी ध्यान रहे कि यह मक्का के इस्लाम-मुख़ालिफ़ों की अपनी कही हुई बात थी जिसे अल्लाह तआला ने उनपर उलट दिया है। सूरा-14 हा-मीम-सजदा, आयत-5, में उनकी यह बात नक़्ल की गई है कि "वे कहते हैं कि ऐ मुहम्मद, तू जिस चीज़ की तरफ़ हमें बुलाता है उसके लिए हमारे दिल बन्द हैं और हमारे कान बहरे हैं और हमारे और तेरे बीच परदा रुकावट बन गया है। तो तू अपना काम कर, हम अपना काम किए जा रहे हैं।" यहाँ उनकी इसी बात को दोहराकर अल्लाह तआला यह बता रहा है कि यह कैफ़ियत जिसे तुम अपनी ख़ूबी समझकर बयान कर रहे हो, यह अस्ल में एक फिटकार है जो तुम्हारे आख़िरत के इनकार की बदौलत ठीक फ़ितरत के क़ानून के मुताबिक़ तुमपर पड़ी है।

52. यानी उन्हें यह बात सख़्त नागवार होती है कि तुम बस अल्लाह ही को रब ठहराते हो, उनके बनाए हुए दूसरे रबों का कोई ज़िक्र नहीं करते। उनको यह रवैया ज़रा भी पसन्द नहीं आता कि आदमी बस अल्लाह-ही-अल्लाह की रट लगाए चला जाए। न बुज़ुर्गों की करामतों का कोई ज़िक्र, न आस्तानों से मिलनेवाले फ़ायदों को मानना, न उन शख़्सियतों की ख़िदमत में कोई नज़राना जिनपर उनके ख़याल में, अल्लाह ने अपनी ख़ुदाई के अधिकार बांट रखे हैं। वे कहते हैं कि यह अजीब शख़्स है जिसके नज़दीक ग़ैब का इल्म है तो अल्लाह को, क़ुदरत है तो अल्लाह की, अधिकार हैं तो बस एक अल्लाह ही के। आख़िर ये हमारे आस्तानोंवाले भी कोई चीज़ हैं या नहीं जिनके यहाँ से हमें औलाद मिलती है, बीमारों की बीमारी दूर होती है, कारोबार चमकते हैं और मुँह माँगी मुरादें पूरी होती हैं। (और ज़्यादा तशरीह के लिए देखें—सूरा-39 अज़-ज़ुमर, आयत-45, हाशिया-64)

53. यह इशारा है उन बातों की तरफ़ जो मक्का के इस्लाम-दुश्मनों के सरदार आपस में किया करते थे। उनका हाल यह था कि छिप-छिपकर क़ुरआन सुनते और फिर आपस में मशवरे करते थे कि इसका तोड़ क्या होना चाहिए। बहुत बार तो उन्हें अपने ही आदमियों में से किसी पर शक भी हो जाता था कि शायद यह शख़्स क़ुरआन सुनकर कुछ मुतास्सिर हो गया है। इसलिए वे सब मिलकर उसको समझाते थे कि अजी, यह किसके फेर में आ रहे हो, यह शख़्स तो जादू का मारा है, यानी किसी दुश्मन ने इसपर जादू कर दिया है, इसलिए बहकी-बहकी बातें करने लगा है।

يَسْتَطِيْعُوْنَ سَبِيْلًا ﴿٤٨﴾ وَقَالُوْٓا ءَاِذَا كُنَّا عِظَامًا وَّ رُفَاتًا ءَاِنَّا
لَمَبْعُوْثُوْنَ خَلْقًا جَدِيْدًا ﴿٤٩﴾ قُلْ كُوْنُوْا حِجَارَةً اَوْ حَدِيْدًا ﴿٥٠﴾ اَوْ خَلْقًا
مِّمَّا يَكْبُرُ فِيْ صُدُوْرِكُمْ ۚ فَسَيَقُوْلُوْنَ مَنْ يُّعِيْدُنَا ۭ قُلِ الَّذِيْ فَطَرَكُمْ
اَوَّلَ مَرَّةٍ ۚ فَسَيُنْغِضُوْنَ اِلَيْكَ رُءُوْسَهُمْ وَيَقُوْلُوْنَ مَتٰى هُوَ ۭ قُلْ
عَسٰٓى اَنْ يَّكُوْنَ قَرِيْبًا ﴿٥١﴾ يَوْمَ يَدْعُوْكُمْ فَتَسْتَجِيْبُوْنَ بِحَمْدِهٖ

रास्ता नहीं मिलता।[54]

(49) वे कहते हैं, "जब हम सिर्फ़ हड्डियाँ और मिट्टी होकर रह जाएँगे तो क्या हम नए सिरे से पैदा करके उठाए जाएँगे?" (50) इनसे कहो, "तुम पत्थर या लोहा भी हो जाओ, (51) या इससे भी ज़्यादा सख़्त कोई चीज़ जो तुम्हारे मन में ज़िन्दगी पाने से बहुत दूर हो" (फिर भी तुम उठकर रहोगे)। वे ज़रूर पूछेंगे, "कौन है वह जो हमें फिर ज़िन्दगी की तरफ़ पलटाकर लाएगा?" जवाब में कहो, "वही जिसने पहली बार तुमको पैदा किया" वे सर हिला-हिलाकर पूछेंगे[55], "अच्छा, तो यह होगा कब?" तुम कहो, "क्या अजब वह वक़्त क़रीब ही आ लगा हो। (52) जिस दिन वह तुम्हें पुकारेगा तो तुम

54. यानी ये तुम्हारे बारे में कोई एक राय ज़ाहिर नहीं करते, बल्कि अलग-अलग वक़्तों में बिलकुल अलग-अलग और एक-दूसरे से टकराती हुई बातें कहते हैं। कभी कहते हैं तुम ख़ुद जादूगर हो, कभी कहते हैं तुमपर किसी ने जादू कर दिया है। कभी कहते हैं तुम शाइर हो। कभी कहते हैं तुम दीवाने हो। उनकी ये आपस में टकराती हुई बातें ख़ुद इस बात का सुबूत हैं कि हक़ीक़त इनको मालूम नहीं है, वरना ज़ाहिर है कि वे आए दिन एक नई बात छाँटने के बजाए कोई एक ही क़तई राय ज़ाहिर करते। साथ ही इससे यह भी मालूम होता है कि वे ख़ुद अपनी किसी बात पर भी मुत्मइन नहीं हैं। एक इलज़ाम रखते हैं। फिर आप ही महसूस करते हैं कि यह फ़िट नहीं होता। इसके बाद दूसरा इलज़ाम लगाते हैं। और उसे भी लगता हुआ न पाकर एक तीसरा इलज़ाम गढ़ लेते हैं। इस तरह उनका हर नया इलज़ाम उनके पहले इलज़ाम को ग़लत साबित कर देता है, और इससे पता चल जाता है कि सच्चाई से उनका कोई नाता नहीं है, सिर्फ़ दुश्मनी की वजह से एक-से-एक बढ़कर झूठ गढ़े जा रहे हैं।

55. अस्ल अरबी में लफ़्ज़ "इनग़ाज़" इस्तेमाल हुआ है जिसका मतलब है सिर को ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर की तरफ़ हिलाना, जिस तरह हैरत के इज़हार के लिए, या मज़ाक़ उड़ाने के लिए आदमी करता है।

٥ ع ٢ وَتَظُنُّوْنَ اِنْ لَّبِثْتُمْ اِلَّا قَلِيْلًا ﴿٥٢﴾ وَقُلْ لِّعِبَادِيْ يَقُوْلُوا الَّتِيْ هِيَ
اَحْسَنُ ۭ اِنَّ الشَّيْطٰنَ يَنْزَغُ بَيْنَهُمْ ۭ اِنَّ الشَّيْطٰنَ كَانَ لِلْاِنْسَانِ
عَدُوًّا مُّبِيْنًا ﴿٥٣﴾ رَبُّكُمْ اَعْلَمُ بِكُمْ ۭ اِنْ يَّشَاْ يَرْحَمْكُمْ اَوْ اِنْ يَّشَاْ

उसकी हम्द (तारीफ़) करते हुए उसकी पुकार के जवाब में निकल आओगे और तुम्हारा गुमान उस वक़्त यह होगा कि हम बस थोड़ी देर ही इस हालत में पड़े रहे हैं।"[56]

(53) और ऐ नबी! मेरे बन्दों[57] से कह दो कि ज़बान से वह बात निकाला करें जो बेहतरीन हो।[58] अस्ल में यह शैतान है जो इनसानों के बीच बिगाड़ डलवाने की कोशिश करता है। हक़ीक़त यह है कि शैतान इनसान का खुला दुश्मन है।[59] (54) तुम्हारा रब तुम्हारे हाल को ख़ूब जानता है, वह चाहे तो तुमपर रहम करे

---

56. यानी दुनिया में मरने के वक़्त से लेकर क़ियामत में उठने के वक़्त तक की मुद्दत तुमको कुछ घण्टों से ज़्यादा महसूस न होगी। तुम उस वक़्त यह समझोगे कि हम ज़रा देर सोए पड़े थे कि यकायक इस महशर (क़ियामत) के शोर ने हमें जगा उठाया।
और यह जो कहा कि तुम अल्लाह की हम्द (तारीफ़) करते हुए उठ खड़े होगे, तो यह एक बड़ी हक़ीक़त की तरफ़ एक हल्का-सा इशारा है। इसका मतलब यह है कि ईमानवाले और इनकार करनेवाले हर एक की ज़बान पर उस वक़्त अल्लाह की हम्द (बड़ाई) होगी। मोमिन की ज़बान पर इसलिए कि पहली ज़िन्दगी में उसका अक़ीदा व यक़ीन और उसका वज़ीफ़ा यही था। और इनकारी की ज़बान पर इसलिए कि उसकी फ़ितरत में यह चीज़ डाल दी गई थी, मगर अपनी बेवक़ूफ़ी से वह उसपर परदा डाले हुए था। अब नए सिरे से ज़िन्दगी पाते वक़्त सारे बनावटी परदे हट जाएँगे और अस्ल फ़ितरत की गवाही बिना इरादा उसकी ज़बान पर जारी हो जाएगी।

57. यानी ईमानवालों से।

58. यानी कुफ़्र करनेवालों और शिर्क करनेवालों से और अपने दीन (धर्म) की मुख़ालिफ़त करनेवालों से बातचीत और बहस करने में तेज़-तेज़ न बोलें और बात को हक़ीक़त से बहुत बढ़ा-चढ़ाकर पेश न करें। मुख़ालिफ़त करनेवाले चाहे कैसी ही नागवार बातें करें, मुसलमानों को बहरहाल न तो कोई बात हक़ के ख़िलाफ़ ज़बान से निकालनी चाहिए और न ग़ुस्से में आपे से बाहर होकर बेहूदगी का जवाब बेहूदगी से देना चाहिए। उन्हें ठण्डे दिल से वही बात करनी चाहिए जो जँची-तुली हो, हक़ हो और उनकी दावत के वक़ार के मुताबिक़ हो।

59. यानी जब कभी तुम्हें मुख़ालिफ़ों की बात का जवाब देते वक़्त ग़ुस्से की आग अपने-अन्दर भड़कती महसूस हो, और तबीयत बेइख़्तियार जोश में आती नज़र आए, तो फ़ौरन समझ लो कि

يُعَذِّبْكُمْ ۭ وَمَآ اَرْسَلْنٰكَ عَلَيْهِمْ وَكِيْلًا ۝٥٤ وَرَبُّكَ اَعْلَمُ بِمَنْ فِي
السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ ۭ وَلَقَدْ فَضَّلْنَا بَعْضَ النَّبِيّٖنَ عَلٰي بَعْضٍ وَّاٰتَيْنَا
دَاوٗدَ زَبُوْرًا ۝٥٥ قُلِ ادْعُوا الَّذِيْنَ زَعَمْتُمْ مِّنْ دُوْنِهٖ فَلَا يَمْلِكُوْنَ

और चाहे तो तुम्हें अज़ाब दे दे।[60] और ऐ नबी! हमने तुमको लोगों पर हवालेदार बनाकर नहीं भेजा है।[61]

(55) तेरा रब ज़मीन और आसमानों के रहनेवालों को ज़्यादा जानता है। हमने कुछ पैग़म्बरों को कुछ से बढ़कर रुतबे दिए[62] और हमने ही दाऊद को ज़बूर दी थी।[63]

(56) इनसे कहो, पुकार देखो उन माबूदों को जिनको तुम अल्लाह के सिवा (अपना

यह शैतान है जो तुम्हें उकसा रहा है ताकि दीन की दावत का काम ख़राब हो। उसकी कोशिश यह है कि तुम भी अपने मुख़ालिफ़ों की तरह सुधार का काम छोड़कर उस झगड़े-फ़साद में लग जाओ जिसमें वह तमाम इनसानों को लगाए रखना चाहता है।

60. यानी ईमानवालों की ज़बान पर कभी ऐसे दावे न आने चाहिएँ कि हम जन्नती हैं और फ़ुलाँ शख़्स या गरोह दोज़ख़ी है। इस चीज़ का फ़ैसला अल्लाह के इख़्तियार में है। वही सब इनसानों की ज़ाहिरी व अन्दरूनी हालत और उनके हाल (वर्तमान) और मुस्तक़बिल (भविष्य) को जानता है। उसी को यह फ़ैसला करना है कि किसपर रहमत करे किसे अज़ाब दे। इनसान उसूली हैसियत से यह तो ज़रूर कह सकता है कि अल्लाह की किताब के मुताबिक़ किस तरह के इनसान रहमत के हक़दार हैं और किस तरह के इनसान अज़ाब के हक़दार। मगर किसी इनसान को यह कहने का हक़ नहीं है कि फ़ुलाँ शख़्स को अज़ाब दिया जाएगा और फ़ुलाँ शख़्स माफ़ कर दिया जाएगा।

शायद यह नसीहत इस वजह से की गई है कि कभी-कभी इस्लाम-दुश्मनों की ज़्यादतियों से तंग आकर मुसलमानों की ज़बान से ऐसे जुमले निकल जाते होंगे कि तुम लोग दोज़ख़ में जाओगे, या तुमको ख़ुदा अज़ाब देगा।

61. यानी नबी का काम दावत देना है। लोगों की क़िस्मतें उसके हाथ में नहीं दे दी गई हैं कि वह किसी के लिए रहमत और किसी के लिए अज़ाब का फ़ैसला करता फिरे। इसका यह मतलब नहीं है कि ख़ुद नबी (सल्ल॰) से इस तरह की कोई ग़लती हुई थी जिसकी बुनियाद पर अल्लाह तआला ने आप (सल्ल॰) को ख़बरदार किया, बल्कि अस्ल में इसका मक़सद मुसलमानों को ख़बरदार करना है। उनको बताया जा रहा है कि जब नबी तक का यह मंसब नहीं है तो तुम जन्नत और दोज़ख़ के ठेकदार कहाँ बने जा रहे हो।

62. यह जुमला अस्ल में मक्का के इस्लाम-दुश्मनों से कहा गया है, हालाँकि बज़ाहिर बात नबी

كَشْفَ الضُّرِّ عَنْكُمْ وَلَا تَحْوِيلًا ۝٥٧ أُولَٰٓئِكَ الَّذِينَ يَدْعُونَ يَبْتَغُونَ

कारसाज़) समझते हो, वह किसी तकलीफ़ को तुमसे न हटा सकते हैं, न बदल सकते हैं।[64] (57) जिनको ये लोग पुकारते हैं, वे तो ख़ुद अपने रब के हुज़ूर पहुँच हासिल करने

(सल्ल॰) से कही जा रही है। जैसा कि अपने जमाने के (समकालीन) लोगों का आमतौर से क़ायदा होता है, नबी (सल्ल॰) के ज़माने के और उनकी अपनी क़ौम के लोगों को आप (सल्ल॰) के अन्दर कोई ख़ूबी और बड़ाई दिखाई न देती थी। वे आप (सल्ल॰) को अपनी बस्ती का एक मामूली इनसान समझते थे, और जिन मशहूर शख़्सियतों को गुज़रे हुए कुछ सदियाँ गुज़र चुकी थीं, उनके बारे में यह समझते थे कि अज़मत (महानता) तो बस उनपर ख़त्म हो गई है। इसलिए आप (सल्ल॰) की ज़बान से नुबूवत का दावा सुनकर वे एतिराज़ किया करते थे कि यह शख़्स शेख़ी बघारता है, अपने आपको न जाने क्या समझ बैठा है, भला कहाँ यह और कहाँ अगले वक़्तों के वे बड़े-बड़े पैग़म्बर जिनकी बुज़ुर्गी का सिक्का एक दुनिया मान रही है। इसका मुख़्तसर जवाब अल्लाह तआला ने यह दिया है कि ज़मीन और आसमान की सारी चीज़ें हमारी निगाह में हैं। तुम नहीं जानते कि कौन क्या है और किसका क्या मर्तबा है। अपनी मेहरबानी के हम ख़ुद मालिक हैं और पहले भी एक-से-एक बढ़कर बुलन्द रुतबेवाले नबी पैदा कर चुके हैं।

63. यहाँ ख़ास तौर पर दाऊद (अलैहि॰) को ज़बूर दिए जाने का ज़िक्र शायद इस वजह से किया गया है कि दाऊद (अलैहि॰) बादशाह थे, और बादशाह आम तौर से ख़ुदा से ज़्यादा दूर हुआ करते हैं। नबी (सल्ल॰) के ज़माने के लोग जिस वजह से आप (सल्ल॰) की पैग़म्बरी और इस बात को मानने से इनकार करते थे कि आप (सल्ल॰) अल्लाहवाले हैं, वह उनके अपने बयान के मुताबिक़ यह थी कि आप (सल्ल॰) आम इनसानों की तरह बीवी-बच्चे रखते थे, खाते-पीते थे, बाज़ारों में चल-फिरकर ख़रीद-फ़रोख़्त करते थे, और वे सारे ही काम करते थे जो कोई दुनियादार आदमी अपनी इनसानी ज़रूरतों के लिए किया करता है। मक्का के इस्लाम-दुश्मनों का कहना यह था कि तुम तो एक दुनियादार आदमी हो, तुम्हारा ख़ुदा से क्या ताल्लुक़? पहुँचे हुए लोग तो वे होते हैं जिन्हें अपने तन-बदन का होश भी नहीं होता, बस एक कोने में बैठे अल्लाह की याद में गुम रहते हैं। वे कहाँ और घर के आटे-दाल की फ़िक्र कहाँ! इसपर कहा जा रहा है कि एक पूरी बादशाहत के इन्तिज़ाम से बढ़कर दुनियादारी और क्या होगी। मगर इसके बावजूद दाऊद को पैग़म्बरी और किताब दी गई।

64. इससे साफ़ मालूम होता है कि अल्लाह के सिवा किसी दूसरे को सजदा करना ही शिर्क नहीं है, बल्कि ख़ुदा के सिवा किसी दूसरी हस्ती से दुआ माँगना या उसको मदद के लिए पुकारना भी शिर्क है। दुआ और मदद माँगना, अपनी हक़ीक़त के एतिबार से इबादत ही हैं और अल्लाह को छोड़कर दूसरों से दरख़ास्त करनेवाला वैसा ही मुजरिम है जैसा एक बुतपरस्त मुजरिम है। साथ ही इससे यह भी मालूम हुआ कि अल्लाह के सिवा किसी को भी कुछ इख़्तियार हासिल

إِلَىٰ رَبِّهِمُ الْوَسِيلَةَ أَيُّهُمْ أَقْرَبُ وَيَرْجُونَ رَحْمَتَهُ وَيَخَافُونَ عَذَابَهُ ۚ
إِنَّ عَذَابَ رَبِّكَ كَانَ مَحْذُورًا ﴿٥٧﴾ وَإِن مِّن قَرْيَةٍ إِلَّا نَحْنُ مُهْلِكُوهَا
قَبْلَ يَوْمِ الْقِيَامَةِ أَوْ مُعَذِّبُوهَا عَذَابًا شَدِيدًا ۚ كَانَ ذَٰلِكَ فِي الْكِتَابِ
مَسْطُورًا ﴿٥٨﴾ وَمَا مَنَعَنَا أَن نُّرْسِلَ بِالْآيَاتِ إِلَّا أَن كَذَّبَ بِهَا
الْأَوَّلُونَ ۚ وَآتَيْنَا ثَمُودَ النَّاقَةَ مُبْصِرَةً فَظَلَمُوا بِهَا ۚ وَمَا نُرْسِلُ

का ज़रिआ तलाश कर रहे हैं कि कौन उससे ज़्यादा क़रीब हो जाए और वे उसकी रहमत के उम्मीदवार और उसके अज़ाब से डरे हुए हैं।[65] हक़ीक़त यह है कि तेरे रब का अज़ाब है ही डरने के लायक़।

(58) और कोई बस्ती ऐसी नहीं जिसे हम क़ियामत से पहले हलाक न करें या सख़्त अज़ाब न दें[66], यह ख़ुदा की किताब में लिखा हुआ है।

(59) और हमको निशानियाँ[67] भेजने से नहीं रोका, मगर इस बात ने कि इनसे पहले के लोग उनको झुठला चुके हैं। (चुनाँचे देख लो) समूद को हमने एलानिया ऊँटनी

नहीं है। न कोई दूसरा किसी मुसीबत को टाल सकता है, न किसी बुरी हालत को अच्छी हालत से बदल सकता है। इस तरह का अक़ीदा ख़ुदा के सिवा जिस हस्ती के बारे में भी रखा जाए, बहरहाल एक शिर्क भरा अक़ीदा है।

65. ये अलफ़ाज़ ख़ुद गवाही दे रहे हैं कि मुशरिकों के जिन माबूदों और फ़रियाद के सुननेवालों का यहाँ ज़िक्र किया जा रहा है उनसे मुराद पत्थर के बुत नहीं हैं, बल्कि या तो फ़रिश्ते हैं या गुज़रे हुए ज़माने के बुज़ुर्ग इनसान। मतलब साफ़-साफ़ यह है कि पैग़म्बर हो या वली या फ़रिश्ते, किसी की भी यह ताक़त नहीं है कि तुम्हारी दुआएँ सुने और तुम्हारी मदद को पहुँचे। तुम ज़रूरतें पूरी करने के लिए उनको वसीला बना रहे हो, और उनका हाल यह है कि वे ख़ुद अल्लाह की रहमत के उम्मीदवार और उसके अज़ाब से डरते हैं, और उससे ज़्यादा-से-ज़्यादा क़रीब होने के वसीले ढूँढ़ रहे हैं।

66. यानी हमेशा की ज़िन्दगी किसी को भी हासिल नहीं है। हर बस्ती को या तो क़ुदरती मौत मरना है, या ख़ुदा के अज़ाब से तबाह होना है। तुम कहाँ इस ग़लतफ़हमी में पड़ गए कि हमारी ये बस्तियाँ हमेशा खड़ी रहेंगी?

67. यानी महसूस होनेवाले मोजिज़े (चमत्कार) जो पैग़म्बरी की दलील की हैसियत से पेश किए जाएँ, जिनकी माँग क़ुरैश के इस्लाम-मुख़ालिफ़ बार-बार नबी (सल्ल.) से किया करते थे।

بِالْاٰيٰتِ اِلَّا تَخْوِيْفًا ﴿٥٩﴾ وَاِذْ قُلْنَا لَكَ اِنَّ رَبَّكَ اَحَاطَ بِالنَّاسِ ؕ وَمَا
جَعَلْنَا الرُّءْيَا الَّتِيْٓ اَرَيْنٰكَ اِلَّا فِتْنَةً لِّلنَّاسِ وَالشَّجَرَةَ الْمَلْعُوْنَةَ فِي

लाकर दी और उन्होंने उसपर ज़ुल्म किया।[68] हम निशानियाँ इसी लिए तो भेजते हैं कि लोग उन्हें देखकर डरें।[69] (60) याद करो ऐ नबी! हमने तुमसे कह दिया था कि तेरे रब ने इन लोगों को घेर रखा है।[70] और यह जो कुछ अभी हमने तुम्हें दिखाया है[71], इसको

68. मतलब यह है कि ऐसा मोजिज़ा देख लेने के बाद जब लोग उसको झुठलाते हैं, तो फिर हर हाल में उनपर अज़ाब आना ज़रूरी हो जाता है, और फिर ऐसी क़ौम को तबाह किए बिना नहीं छोड़ा जाता। पिछला इतिहास इस बात का गवाह है कि बहुत-सी क़ौमों ने साफ़-साफ़ मोजिज़े देख लेने के बाद भी उनको झुठलाया और फिर तबाह कर दी गईं। अब यह सरासर अल्लाह की रहमत है कि वह ऐसा कोई मोजिज़ा नहीं भेज रहा है, इसका मतलब यह है कि वह तुम्हें समझने और संभलने के लिए मुहलत दे रहा है। मगर तुम ऐसे बेवक़ूफ़ लोग हो कि मोजिज़े की माँग कर-करके समूद के जैसा अंजाम देखना चाहते हो।

69. यानी मोजिज़ा दिखाने का मक़सद तमाशा दिखाना तो कभी नहीं रहा है। इसका मक़सद तो हमेशा यही रहा है कि लोग उन्हें देखकर ख़बरदार हो जाएँ, उन्हें मालूम हो जाए कि नबी के पीछे पूरी क़ुदरत रखनेवाले (अल्लाह) की बेपनाह ताक़त है, और वे जान लें कि उसकी नाफ़रमानी का अंजाम क्या हो सकता है।

70. यानी तुम्हारी पैग़म्बराना दावत के इब्तिदाई दौर में ही, जबकि क़ुरैश के इन इस्लाम दुश्मनों ने तुम्हारी मुख़ालिफ़त करनी और रुकावटें खड़ी करनी शुरू की थीं, हमने साफ़-साफ़ यह एलान कर दिया था कि हमने इन लोगों को घेरे में ले रखा है। ये एड़ी-चोटी का ज़ोर लगाकर देख लें, ये किसी तरह तेरी दावत का रास्ता न रोक सकेंगे, और यह काम जो तूने अपने हाथ में लिया है, इनके हर रुकावट डालने के बावजूद होकर रहेगा। अब अगर इन लोगों को मोजिज़ा देखकर ही ख़बरदार (होना है) तो उन्हें यह मोजिज़ा दिखाया जा चुका है कि जो कुछ शुरू में कह दिया गया था वह पूरा होकर रहा, इनकी कोई मुख़ालिफ़त भी इस्लाम के पैग़ाम को फैलने से न रोक सकी, और ये तेरा बाल तक टेढ़ा न कर सके। इनके पास आँखें हों तो ये इस हक़ीक़त को देखकर ख़ुद समझ सकते हैं कि नबी की इस दावत के पीछे अल्लाह का हाथ काम कर रहा है। यह बात कि अल्लाह ने मुख़ालिफ़त करनेवालों को घेरे में ले रखा है, और नबी की दावत अल्लाह की हिफ़ाज़त में है, मक्का के शुरू के दौर की सूरतों में कई जगह कही गई है, मसलन सूरा-85 बुरूज, आयत-19, 20 में फ़रमाया, "मगर कुफ़्र करनेवाले ये लोग झुठलाने में लगे हुए हैं, और अल्लाह ने इनको हर तरफ़ से घेरे में ले रखा है।"

71. इशारा है मेराज की तरफ़। इसके लिए यहाँ लफ़्ज 'रुअ्या' जो इस्तेमाल हुआ है यह 'ख़्वाब'

ع ٨ ٦
الْقُرْاٰنِ ؕ وَنُخَوِّفُهُمْ ۙ فَمَا يَزِيْدُهُمْ اِلَّا طُغْيَانًا كَبِيْرًا ۝٦٠ وَاِذْ قُلْنَا
لِلْمَلٰٓئِكَةِ اسْجُدُوْا لِاٰدَمَ فَسَجَدُوْٓا اِلَّآ اِبْلِيْسَ ؕ قَالَ ءَاَسْجُدُ لِمَنْ

और उस पेड़ को जिसपर क़ुरआन में लानत की गई है,[72] हमने इन लोगों के लिए बस एक फ़ितना बनाकर रख दिया।[73] हम इन्हें ख़बरदार-पर-ख़बरदार किए जा रहे हैं, मगर हर बार ख़बरदार करना इनकी सरकशी ही में बढ़ोत्तरी किए जाता है।

(61) और याद करो जबकि हमने फ़रिश्तों से कहा कि आदम को सजदा करो, तो सबने सजदा किया, मगर इबलीस ने न किया।[74] उसने कहा, "क्या मैं उसको सजदा

(सपने) के मानी में नहीं है बल्कि आँखों देखने के मानी में है। ज़ाहिर है कि अगर वह सिर्फ़ ख़ाब होता और नबी (सल्ल॰) ने उसे ख़ाब ही की हैसियत से इस्लाम-दुश्मनों के सामने बयान किया होता तो कोई वजह न थी कि वह उनके लिए फ़ितना बन जाता। ख़ाब एक से एक अजीब देखा जाता है, और लोगों से बयान भी किया जाता है, मगर वह किसी के लिए भी ऐसे अचंभे की चीज़ नहीं होता कि लोग उसकी वजह से ख़ाब देखनेवाले का मज़ाक़ उड़ाएँ और उसपर झूठे दावे या जुनून का इलज़ाम लगाने लगें।

72. यानी ज़क़्क़ूम, जिसके बारे में क़ुरआन में ख़बर दी गई है कि वह दोज़ख़ की तह में पैदा होगा और दोज़ख़ियों को उसे खाना पड़ेगा। उसपर लानत करने से मुराद उसका अल्लाह की रहमत से दूर होना है। यानी वह अल्लाह की रहमत का निशान नहीं है कि उसे अपनी मेहरबानी की वजह से अल्लाह ने लोगों के खाने के लिए पैदा किया हो, बल्कि वह अल्लाह की लानत का निशान है जिसे लानत किए गए लोगों के लिए उसने पैदा किया है, ताकि वे भूख से तड़पकर उसपर मुँह मारें और ज़्यादा तकलीफ़ उठाएँ। सूरा-14 दुख़ान (आयतें-43, 46) में इस पेड़ की जो तशरीह की गई है वह यही है कि दोज़ख़ी जब उसको खाएँगे तो वह उनके पेट में ऐसी आग लगाएगा जैसे उनके पेट में पानी खौल रहा हो।

73. यानी हमने इनकी भलाई के लिए तुमको मेराज के ज़रिए बहुत-सी हक़ीक़तें दिखाईं, ताकि तुम जैसे सच्चे व अमानतदार इनसान के ज़रिए से इन लोगों को सही-सही बातें मालूम हों और यह ख़बरदार होकर सीधे रास्ते पर आ जाएँ, मगर इन लोगों ने उलटा उसपर तुम्हारा मज़ाक़ उड़ाया। हमने तुम्हारे ज़रिए से इनको ख़बरदार किया कि यहाँ की हरामख़ोरियाँ आख़िकार तुम्हें ज़क़्क़ूम के निवाले खिलवाकर रहेंगी, मगर इन्होंने उसपर एक ठहाका लगाया और कहने लगे, ज़रा इस शख़्स को देखो, एक तरफ़ कहता है कि दोज़ख़ में बहुत आग भड़क रही होगी, और दूसरी तरफ़ ख़बर देता है कि वहाँ पेड़ उगेंगे!

74. तक़ाबुल (तुलना) के लिए देखें—सूरा-2 बक़रा, आयतें-30 से 39; सूरा-4 निसा, आयतें-117 से 121; सूरा-7 आराफ़, आयतें-11 से 25; सूरा-15 हिज्र आयतें-26 से 42 और सूरा-14 इबराहीम,

خَلَقْتَ طِيْنًا ﴿٦١﴾ قَالَ اَرَءَيْتَكَ هٰذَا الَّذِىْ كَرَّمْتَ عَلَىَّ لَىِٕنْ اَخَّرْتَنِ
اِلٰى يَوْمِ الْقِيٰمَةِ لَاَحْتَنِكَنَّ ذُرِّيَّتَهٗۤ اِلَّا قَلِيْلًا ﴿٦٢﴾ قَالَ اذْهَبْ فَمَنْ
تَبِعَكَ مِنْهُمْ فَاِنَّ جَهَنَّمَ جَزَآؤُكُمْ جَزَآءً مَّوْفُوْرًا ﴿٦٣﴾ وَاسْتَفْزِزْ مَنِ
اسْتَطَعْتَ مِنْهُمْ بِصَوْتِكَ وَاَجْلِبْ عَلَيْهِمْ بِخَيْلِكَ وَرَجِلِكَ

करूँ जिसे तूने मिट्टी से बनाया है?" (62) फिर वह बोला, "देख तो सही, क्या यह इस क़ाबिल था कि तूने इसे मुझपर फ़ज़ीलत (बड़ाई) दी? अगर तू मुझे क़ियामत के दिन तक मुहलत दे तो मैं इसकी पूरी नस्ल की जड़ उखाड़ डालूँ[75], बस थोड़े ही लोग मुझसे बच सकेंगे।" (63) अल्लाह ने फ़रमाया, "अच्छा तो जा, इनमें से जो भी तेरी पैरवी करें, तुझ समेत उन सबके लिए जहन्नम ही भरपूर बदला है। (64) तू जिस-जिस को अपनी दावत से फिसला सकता है, फिसला ले[76], उनपर अपने सवार और पयादे चढ़ा ला[77],

आयत-22।
बात के इस सिलसिले में यह क़िस्सा अस्ल में यह बात ज़ेहन में बिठाने के लिए बयान किया जा रहा है कि अल्लाह के मुक़ाबले में इनकार करनेवाले इन लोगों की यह सरकशी और तम्बीहों (चेतावनियों) से इनकी यह बेपरवाही और टेढ़ेपन पर इनकी यह हठधर्मी ठीक-ठीक उस शैतान की पैरवी है जो शुरू से इनसान का दुश्मन है, और इस रवैये को अपनाकर हक़ीक़त में ये लोग उस जाल में फँस रहे हैं, जिसमें आदम (अलैहि॰) की औलाद को फाँसकर तबाह कर देने के लिए शैतान ने इनसानी इतिहास के शुरुआत में चैलेंज किया था।

75. "जड़ से उखाड़ डालूँ" यानी उनके क़दम सलामती की राह से उखाड़ फेंकूँ। अरबी में लफ़्ज "इहतिनाक" इस्तेमाल हुआ है जिसके अस्ल मानी किसी चीज़ को जड़ से उखाड़ देने के हैं। चूँकि इनसान का अस्ल मक़ाम अल्लाह की ख़िलाफ़त (प्रतिनिधित्व) है, जिसका तक़ाज़ा फ़रमाँबरदारी में जमे रहना है, इसलिए इस मक़ाम से उसका हट जाना बिलकुल ऐसा है जैसे किसी पेड़ का जड़ से उखाड़ फेंका जाना।

76. अस्ल अरबी लफ़्ज़ 'इस्तिफ़ज़ाज़' इस्तेमाल हुआ है, जिस के मानी इस्तिख़फ़ाफ़, यानी किसी को हल्का और कमज़ोर पाकर उसे बहा ले जाना या उसके क़दम फिसला देना है।

77. इस जुमले में शैतान को उस डाकू जैसा बताया गया है जो किसी बस्ती पर अपने सवार और प्यादे चढ़ा लाए और उनको इशारा करता जाए कि इधर लूटो, उधर छापा मारो, और वहाँ तबाही मचाओ। शैतान के सवारों और प्यादों से मुराद वे सब जिन्न और इनसान हैं जो अनगिनत अलग-अलग शक्लों और हैसियतों में इबलीस के मिशनों में लगे हैं।

وَشَارِكْهُمْ فِي الْأَمْوَالِ وَالْأَوْلَادِ وَعِدْهُمْ ۚ وَمَا يَعِدُهُمُ
الشَّيْطٰنُ اِلَّا غُرُوْرًا ﴿٦٤﴾ اِنَّ عِبَادِيْ لَيْسَ لَكَ عَلَيْهِمْ سُلْطٰنٌ ۚ
وَكَفٰى بِرَبِّكَ وَكِيْلًا ﴿٦٥﴾

माल और औलाद में उनके साथ साझा लगा[78], और उनको वादों के जाल में फाँस[79] — और शैतान के वादे एक धोखे के सिवा और कुछ भी नहीं— (65) यक़ीनन मेरे बन्दों पर तुझे कोई ज़ोर हासिल न होगा[80] और भरोसे के लिए तेरा रब काफ़ी है।[81]

78. यह एक ऐसा जुमला है जो अपने अन्दर गहरे मानी रखता है जिसमें शैतान और उसकी पैरवी करनेवालों के आपसी ताल्लुक़ की पूरी तस्वीर खींच दी गई है। जो शख़्स माल कमाने और उसको ख़र्च करने में शैतान के इशारों पर चलता है, उसके साथ मानो शैतान मुफ़्त का साझेदार बना हुआ है। मेहनत में उसका कोई हिस्सा नहीं, जुर्म और गुनाह और ग़लत कामों के बुरे नतीजों में वह हिस्सेदार नहीं, मगर उसके इशारों पर यह बेवक़ूफ़ इस तरह चल रहा है जैसे इसके करोबार में वह बराबर का हिस्सेदार, बल्कि बड़ा हिस्सेदार है। इसी तरह औलाद तो आदमी की अपनी होती है, और उसे पालने-पोसने में सारे पापड़ आदमी ख़ुद बेलता है, मगर शैतान के इशारों पर वह उस औलाद को गुमराही और बदअख़लाक़ी की तरबियत इस तरह देता है, मानो उस औलाद का अकेला वही बाप नहीं है, बल्कि शैतान भी बाप होने में उसका शरीक है।

79. यानी उनको ग़लत उम्मीदें दिला। उनको झूठी उम्मीदों के चक्कर में डाल। उनको सब्ज़ बाग़ दिखा।

80. इसके दो मतलब हैं, और दोनों अपनी-अपनी जगह सही हैं। एक यह कि मेरे बन्दों, यानी इनसानों पर तुझे यह ज़ोर हासिल न होगा कि तू उन्हें जबरदस्ती अपनी राह पर खींच ले जाए। तुझे सिर्फ़ बहकाने और फुसलाने और ग़लत मशवरे देने और झूठे वादे करने का अधिकर दिया जाता है, मगर तेरी बात को क़बूल करना या न करना इन बन्दों का अपना काम होगा। तेरा ऐसा क़ब्ज़ा उनपर न होगा कि वे तेरी राह पर जाना चाहें या न चाहें, तू हर हाल में हाथ पकड़कर उनको घसीट ले जाए। दूसरा मतलब यह है कि मेरे ख़ास बन्दों, यानी नेक लोगों पर तेरा बस न चलेगा। कमज़ोर और इरादे के कमज़ोर लोग तो ज़रूर तेरे वादों से धोखा खाएँगे, मगर जो लोग मेरी बन्दगी पर मज़बूती से जमे हों, वे तेरे क़ाबू में न आ सकेंगे।

81. यानी जो लोग अल्लाह पर भरोसा करें, और जिनका भरोसा उसी की रहनुमाई और तौफ़ीक़ और मदद पर हो, उनका भरोसा हरगिज ग़लत साबित न होगा। उन्हें किसी और सहारे की ज़रूरत न होगी, अल्लाह उनकी हिदायत के लिए भी काफ़ी होगा और उनके सहारे और मदद के लिए भी। अलबत्ता जिनका भरोसा अपनी ताक़त पर हो, या अल्लाह के सिवा किसी और पर हो, वे इस आज़माइश से सही-सलामत न गुज़र सकेंगे।

رَبُّكُمُ الَّذِىۡ يُزۡجِىۡ لَكُمُ الۡفُلۡكَ فِى الۡبَحۡرِ لِتَبۡتَغُوۡا مِنۡ فَضۡلِهٖ‌ ؕ اِنَّهٗ
كَانَ بِكُمۡ رَحِيۡمًا ﴿۶۶﴾ وَاِذَا مَسَّكُمُ الضُّرُّ فِى الۡبَحۡرِ ضَلَّ مَنۡ تَدۡعُوۡنَ
اِلَّاۤ اِيَّاهُ‌ ۚ فَلَمَّا نَجّٰٮكُمۡ اِلَى الۡبَرِّ اَعۡرَضۡتُمۡ‌ ؕ وَكَانَ الۡاِنۡسَانُ كَفُوۡرًا‏ ﴿۶۷﴾
اَفَاَمِنۡتُمۡ اَنۡ يَّخۡسِفَ بِكُمۡ جَانِبَ الۡبَرِّ اَوۡ يُرۡسِلَ عَلَيۡكُمۡ حَاصِبًا ثُمَّ

(66) तुम्हारा हक़ीक़ी रब तो वह है जो समुद्र में तुम्हारी नाव चलाता है[82], ताकि तुम उसका फ़ज़्ल (रोज़ी) तलाश करो।[83] हक़ीक़त यह है कि वह तुम्हारे हाल पर बहुत ही मेहरबान है (67) जब समुद्र में तुमपर मुसीबत आती है तो उस एक के सिवा दूसरे जिन-जिन को तुम पुकारा करते हो, वे सब गुम हो जाते हैं।[84] मगर जब वह तुमको बचाकर ख़ुश्की (ज़मीन) पर पहुँचा देता है तो तुम उससे मुँह मोड़ जाते हो। इनसान हक़ीक़त में बड़ा नाशुक्रा है। (68) अच्छा, तो क्या तुम इस बात से बिलकुल निडर हो

82. ऊपर से जो बात चली आ रही है उससे इसका ताल्लुक़ समझने के लिए इस रुकूअ के शुरुआती मज़मून पर फिर एक निगाह डाल ली जाए। इसमें यह बताया गया है कि इबलीस पहले दिन से इनसान के पीछे पड़ा हुआ है, ताकि उसको आरज़ुओं और तमन्नाओं और झूठे वादों के जाल में फाँसकर सीधे रास्ते से हटा ले जाए और यह साबित कर दे कि वह उस बुज़ुर्गी का हक़दार नहीं है, जो उसे ख़ुदा ने दी है। इस ख़तरे से ऊपर कोई चीज़ इनसान को बचा सकती है तो वह सिर्फ़ यह है कि इनसान अपने रब की बन्दगी पर जमा रहे और हिदायत व मदद के लिए उसी की तरफ़ मुड़े और उसी पर पूरा भरोसा करे। इसके सिवा दूसरी जो राह इनसान अपनाएगा, शैतान के फंदों से न बच सकेगा– इस तक़रीर से यह बात ख़ुद-ब-ख़ुद निकल आई कि जो लोग तौहीद (एकेश्वरवाद) की दावत को रद्द कर रहे हैं और शिर्क पर अड़े जाते हैं वे अस्ल में अपनी तबाही के पीछे पड़े हैं। इसी हिसाब से यहाँ तौहीद को सही और शिर्क को ग़लत साबित किया जा रहा है।

83. यानी उन मआशी (आर्थिक) और समाजी और इल्मी और ज़ेहनी फ़ायदों को हासिल करने की कोशिश करो जो समुद्री सफ़र से हासिल होते हैं।

84. यानी यह इस बात की दलील है कि तुम्हारी असली फ़ितरत एक ख़ुदा के सिवा किसी रब को नहीं जानती, और तुम्हारे अपने दिल की गहराइयों में यह एहसास मौजूद है कि फ़ायदे और नुक़सान के असली अधिकारों का मालिक बस वही एक है। वरना आख़िर इसकी वजह क्या है कि जो असल वक़्त सहारा और मदद देने का है उस वक़्त तुमको एक ख़ुदा के सिवा कोई दूसरा मददगार नहीं सूझता? (ज़्यादा तफ़सील के लिए देखें–सूरा-10 यूनुस, हाशिया-31)

لَا تَجِدُوْا لَكُمْ وَكِيْلًا ﴿٦٨﴾ اَمْ اَمِنْتُمْ اَنْ يُّعِيْدَكُمْ فِيْهِ تَارَةً اُخْرٰى
فَيُرْسِلَ عَلَيْكُمْ قَاصِفًا مِّنَ الرِّيْحِ فَيُغْرِقَكُمْ بِمَا كَفَرْتُمْ ۙ ثُمَّ لَا
تَجِدُوْا لَكُمْ عَلَيْنَا بِهٖ تَبِيْعًا ﴿٦٩﴾ وَلَقَدْ كَرَّمْنَا بَنِيْٓ اٰدَمَ وَحَمَلْنٰهُمْ فِي
الْبَرِّ وَالْبَحْرِ وَرَزَقْنٰهُمْ مِّنَ الطَّيِّبٰتِ وَفَضَّلْنٰهُمْ عَلٰى كَثِيْرٍ مِّمَّنْ
خَلَقْنَا تَفْضِيْلًا ﴿٧٠﴾ يَوْمَ نَدْعُوْا كُلَّ اُنَاسٍۭ بِاِمَامِهِمْ ۚ فَمَنْ اُوْتِيَ ع
كِتٰبَهٗ بِيَمِيْنِهٖ فَاُولٰٓئِكَ يَقْرَءُوْنَ كِتٰبَهُمْ وَلَا يُظْلَمُوْنَ فَتِيْلًا ﴿٧١﴾

कि अल्लाह कभी ख़ुश्की पर ही तुमको ज़मीन में धँसा दे या तुमपर पथराव करनेवाली आँधी भेज दे और तुम उससे बचानेवाला कोई मददगार न पाओ? (69) और क्या तुम्हें इसका कोई अन्देशा नहीं कि अल्लाह फिर किसी वक़्त समुद्र में तुमको ले जाए और तुम्हारी नाशुक्री के बदले तुमपर तेज़ तूफ़ानी हवा भेजकर तुम्हें डुबो दे और तुमको ऐसा कोई न मिले जो उससे तुम्हारे इस अंजाम की पूछ-गच्छ कर सके?— (70) यह तो हमारी मेहरबानी है कि हमने बनी-आदम (आदम की औलाद) को बुज़ुर्गी दी और उन्हें ख़ुश्की व तरी में सवारियाँ दीं और उनको पाकीज़ा चीज़ों से रोज़ी दी और अपने बहुत-से पैदा किए हुओं पर नुमायाँ बड़ाई दी।[85] (71) फिर ख़याल करो उस दिन का जबकि हम हर इनसानी गरोह को उसके पेशवा (रहनुमा) के साथ बुलाएँगे। उस वक़्त जिन लोगों को उनका आमालनामा (कर्म-पत्र) सीधे हाथ में दिया गया, वे अपना कारनामा पढ़ेंगे[86] और

---

85. यानी यह एक बिलकुल खुली हुई हक़ीक़त है कि इनसानों को ज़मीन और उसकी चीज़ों पर इक़्तिदार (सत्ता) किसी जिन्न या फ़रिश्ते या सय्यारे (ग्रह) ने नहीं दिया है, न किसी वली या नबी ने अपनी जाति को यह इक़्तिदार दिलवाया है। यक़ीनन यह अल्लाह ही की बख़्शिश और उसकी मेहरबानी है। फिर इससे बढ़कर बेवक़ूफ़ी और जहालत क्या हो सकती है कि इनसान इस रुतबे पर पहुँचकर अल्लाह के बजाय उनके आगे झुके जिन्हें ख़ुद ख़ुदा ने पैदा किया है।

86. यह बात क़ुरआन मजीद में कई जगहों पर बयान की गई है कि क़ियामत के दिन नेक लोगों को उनका आमालनामा (कर्मपत्र) सीधे हाथ में दिया जाएगा और वे ख़ुशी-ख़ुशी उसे देखेंगे,

وَمَنْ كَانَ فِيْ هٰذِهٖۤ اَعْمٰى فَهُوَ فِى الْاٰخِرَةِ اَعْمٰى وَاَضَلُّ سَبِيْلًا ۝٧٢ وَاِنْ
كَادُوْا لَيَفْتِنُوْنَكَ عَنِ الَّذِيْۤ اَوْحَيْنَاۤ اِلَيْكَ لِتَفْتَرِيَ عَلَيْنَا غَيْرَهٗ ۖ
وَاِذًا لَّاتَّخَذُوْكَ خَلِيْلًا ۝٧٣ وَلَوْلَاۤ اَنْ ثَبَّتْنٰكَ لَقَدْ كِدْتَّ تَرْكَنُ
اِلَيْهِمْ شَيْـًٔا قَلِيْلًا ۝٧٤ اِذًا لَّاَذَقْنٰكَ ضِعْفَ الْحَيٰوةِ وَضِعْفَ الْمَمَاتِ

उनपर ज़र्रा भर भी ज़ुल्म न होगा (72) और जो इस दुनिया में अंधा बनकर रहा, वह आख़िरत में भी अंधा ही रहेगा, बल्कि रास्ता पाने में अंधे से भी ज़्यादा नाकाम।

(73) ऐ नबी! इन लोगों ने इस कोशिश में कोई कमी उठा नहीं रखी कि तुम्हें फ़ितने में डालकर उस वह्य से फेर दें जो हमने तुम्हारी तरफ़ भेजी है, ताकि तुम हमारे नाम पर अपनी तरफ़ से कोई बात गढ़ो।[87] अगर तुम ऐसा करते तो वे ज़रूर तुम्हें अपना दोस्त बना लेते, (74) और नामुमकिन न था कि अगर हम तुम्हें मज़बूत न रखते तो तुम उनकी तरफ़ कुछ-न-कुछ झुक जाते। (75) लेकिन अगर तुम ऐसा करते तो हम तुम्हें दुनिया में भी दोहरे अज़ाब का मज़ा चखाते और आख़िरत में भी दोहरे अज़ाब का,

---

बल्कि दूसरों को भी दिखाएँगे। रहे बुरे काम करनेवाले लोग, तो उनके काले करतूतों का लेखा-जोखा उनको बाएँ हाथ में दिया जाएगा और वे उसे लेते ही पीठ-पीछे छिपाने की कोशिश करेंगे। (देखें—सूरा-69 हाक़्क़ा, आयत-19 से 28 और सूरा-84 इनशिक़ाक़, आयत-7 से 13)

87. यह उन हालात की तरफ़ इशारा है जो पिछले दस बारह साल से नबी (सल्ल॰) को मक्का में पेश आ रहे थे। मक्का के इस्लाम-दुश्मन इस बात पर तुले थे कि जिस तरह भी हो आप (सल्ल॰) को तौहीद की इस दावत से हटा दें जिसे आप पेश कर रहे थे और किसी-न-किसी तरह आप (सल्ल॰) को मजबूर कर दें कि आप (सल्ल॰) उनके शिर्क और जहिलियत की रस्मों से कुछ-न-कुछ समझौता कर लें। इस ग़रज़ के लिए उन्होंने आप (सल्ल॰) को फ़ितने में डालने की हर कोशिश की। फ़रेब भी दिए, लालच भी दिलाए, धमकियाँ भी दीं, झूठे प्रोपेगंडे का तूफ़ान भी उठाया, ज़ुल्मो-सितम भी किया, माली दबाव भी डाला, समाजी बायकॉट (बहिष्कार) भी किया, और वह सब कुछ कर डाला जो किसी इनसान के मज़बूत इरादे को तोड़ देने के लिए किया जा सकता था।

ثُمَّ لَا تَجِدُ لَكَ عَلَيْنَا نَصِيْرًا ﴿٧٥﴾ وَاِنْ كَادُوْا لَيَسْتَفِزُّوْنَكَ مِنَ
الْاَرْضِ لِيُخْرِجُوْكَ مِنْهَا وَاِذًا لَّا يَلْبَثُوْنَ خِلٰفَكَ اِلَّا قَلِيْلًا ﴿٧٦﴾ سُنَّةَ
مَنْ قَدْ اَرْسَلْنَا قَبْلَكَ مِنْ رُّسُلِنَا وَلَا تَجِدُ لِسُنَّتِنَا تَحْوِيْلًا ﴿٧٧﴾ ع ٨

फिर हमारे मुक़ाबले में तुम कोई मददगार न पाते।[88]

(76) और ये लोग इस बात पर भी तुले रहे हैं कि तुम्हारे क़दम इस सरज़मीन से उखाड़ दें और तुम्हें यहाँ से निकाल बाहर करें, लेकिन अगर ये ऐसा करेंगे तो तुम्हारे बाद ये ख़ुद ज़्यादा देर न ठहर सकेंगे।[89]

(77) यह काम करने का हमारा मुस्तक़िल (स्थायी) तरीक़ा है जो उन सब रसूलों के मामले में हमने बरता है जिन्हें तुमसे पहले हमने भेजा था[90], और हमारे काम के तरीके में तुम कोई बदलाव न पाओगे।

---

88. अल्लाह तआला इस सारी रूदाद पर तबसिरा (समीक्षा) करते हुए दो बातें फ़रमाता है। एक यह कि तुम हक़ (सत्य) को हक़ जान लेने के बाद बातिल (असत्य) से कोई समझौता कर लेते तो यह बिगड़ी हुई क़ौम तो ज़रूर तुमसे ख़ुश हो जाती, मगर ख़ुदा का ग़जब (प्रकोप) तुमपर भड़क उठता और तुम्हें दुनिया व आख़िरत, दोनों में दोहरी सज़ा दी जाती। दूसरी यह कि इनसान चाहे वह पैग़म्बर ही क्यों न हो, ख़ुद अपने बलबूते पर बातिल के इन तूफ़ानों का मुक़ाबला नहीं कर सकता जब तक कि अल्लाह की मदद और उसकी मेहरबानी शामिल न हो। यह सरासर अल्लाह का दिया हुआ सब्र व जमाव था जिसकी बदौलत नबी (सल्ल॰) हक़ और सच्चाई के मक़ाम पर पहाड़ की तरह जमे रहे और कोई आँधी-तूफ़ान आप (सल्ल॰) को बाल बराबर भी अपनी जगह से न हटा सका।

89. यह साफ़ भविष्यवाणी है जो उस वक़्त तो सिर्फ़ एक धमकी नज़र आती थी मगर दस-ग्यारह साल के अन्दर ही पूरी तरह सच्ची साबित हुई। इस सूरा के उतरने पर एक ही साल गुज़रा था कि मक्का के इस्लाम-दुश्मनों ने नबी (सल्ल॰) को वतन से निकल जाने पर मजबूर कर दिया और इसपर आठ साल से ज़्यादा न गुज़रे थे कि आप (सल्ल॰) फातेह (विजेता) की हैसियत से मक्का मुअज़्ज़मा में दाख़िल हुए। और फिर दो साल के अन्दर-अन्दर अरब की ज़मीन मुशरिकों के वुजूद से पाक कर दी गई। फिर जो भी इस देश में रहा मुसलमान बनकर रहा, मुशरिक बनकर वहाँ न ठहर सका।

90. यानी सारे नबियों के साथ अल्लाह का यही मामला रहा है कि जिस क़ौम ने उनको क़त्ल किया या देश से बाहर निकाला, फिर वह ज़्यादा देर तक अपनी जगह न ठहर सकी। फिर या

اَقِمِ الصَّلٰوةَ لِدُلُوْكِ الشَّمْسِ اِلٰى غَسَقِ الَّيْلِ وَقُرْاٰنَ الْفَجْرِ ۭ اِنَّ قُرْاٰنَ

(78) नमाज़ क़ायम करो[91], सूरज के ढलने[92] से लेकर रात के अंधेरे[93] तक और फ़ज्र के क़ुरआन को ज़रूरी ठहराओ,[94] क्योंकि फ़ज्र का क़ुरआन मशहूद (जिसपर गवाही

तो ख़ुदा के अज़ाब ने उसे मिटा दिया या किसी दुश्मन क़ौम को उसपर सवार कर दिया गया, या ख़ुद उस नबी की पैरवी करनेवालों से उसको शिकस्त दे दी गई।

91. मुश्किलों और मुसीबतों के इस तूफ़ान का ज़िक्र करने के बाद फ़ौरन ही नमाज़ क़ायम करने का हुक्म देकर अल्लाह तआला ने यह हल्का-सा इशारा किया है कि वह जमाव जो इन हालात में एक मोमिन को चाहिए है, नमाज़ क़ायम करने से हासिल होता है।

92 अस्ल अरबी में दुलूकुश-शम्स इस्तेमाल हुआ है जिसका तर्जमा हमने 'सूरज का ढलना' किया है। अगर्चे कुछ सहाबा और ताबिईन ने 'दुलूक' से मुराद 'डूबना' भी लिया है, लेकिन ज़्यादातर लोगों की राय यही है कि इससे मुराद सूरज का आधे दिन (दोपहर) से ढल जाना है। हज़रत उमर, इब्ने-उमर, अनस-बिन-मालिक (रज़ि॰), अबू-बरज़ा असलमी, हसन बसरी, शाबी, अता, मुजाहिद और एक रिवायत के मुताबिक़ इब्ने-अब्बास भी इसी को मानते हैं। इमाम मुहम्मद बाक़र और इमाम जाफ़र सादिक़ से भी यही बात बयान की गई है, बल्कि कुछ हदीसों में ख़ुद नबी (सल्ल॰) से भी 'दुलूकुश-शम्स' की यही तशरीह नक़्ल हुई है, अगर्चे उनकी सनद कुछ ज़्यादा मजबूत नहीं है।

93. अस्ल अरबी में 'ग़सक़ुल-लैल' इस्तेमाल हुआ है। कुछ के नज़दीक इसका मतलब 'रात का पूरी तरह अंधेरी हो जाना' है और कुछ इससे आधी रात मुराद लेते हैं। अगर पहली बात मानी जाए तो इससे इशा के शुरू का वक़्त मुराद होगा, और अगर दूसरी बात सही मानी जाए तो फिर यह इशारा इशा के आख़िर वक़्त की तरफ़ है।

94. 'फ़ज्र' का लुग़वी मानी (शाब्दिक अर्थ) है 'पौ फटना'। यानी वह वक़्त जब पहले-पहले सुबह की सफ़ेदी रात के अंधेरे को फ़ाड़कर ज़ाहिर होती है।

फ़ज्र के क़ुरआन से मुराद फ़ज्र की नमाज़ है। क़ुरआन मजीद में नमाज़ के लिए कहीं तो 'सलात' का लफ़्ज़ इस्तेमाल हुआ है और कहीं उसके अलग-अलग हिस्सों में से किसी हिस्से का नाम लेकर पूरी नमाज़ मुराद ली गई है मसलन तसबीह, हम्द, ज़िक्र, क़ियाम, रुकूअ, सजदे वग़ैरा। इसी तरह यहाँ फ़ज्र के वक़्त क़ुरआन पढ़ने का मतलब सिर्फ़ क़ुरआन पढ़ना नहीं, बल्कि नमाज़ में क़ुरआन पढ़ना है। इस तरीक़े से क़ुरआन मजीद ने एक इशारा यह कर दिया है कि नमाज़ में क्या-क्या चीज़ें होनी चाहिएँ। और इन्हीं इशारों की रहनुमाई में नबी (सल्ल॰) ने नमाज़ की वह शक्ल मुक़र्रर फ़रमाई है जो मुसलमानों में राइज है।

الْفَجْرِ كَانَ مَشْهُوْدًا ﴿٧٨﴾ وَمِنَ الَّيْلِ فَتَهَجَّدْ بِهٖ نَافِلَةً لَّكَ ۖ عَسٰٓى اَنْ

दी गई हो) होता है।[95] (79) और रात को 'तहज्जुद' पढ़ो,[96] यह तुम्हारे लिए नफ़्ल है,[97]

95. फ़ज्र के क़ुरआन के मशहूद होने का मतलब यह है कि ख़ुदा के फ़रिश्ते उसके गवाह बनते हैं, जैसा कि हदीसों में साफ़-साफ़ बयान हुआ है। अगरचे फ़रिश्ते हर नमाज़ और हर नेकी के गवाह हैं, लेकिन जब ख़ास तौर पर फ़ज्र की नमाज़ की क़िरअत (क़ुरआन-पढ़ने) पर उनकी गवाही का ज़िक्र किया गया है तो इसका साफ़ मतलब यह है कि उसे एक ख़ास अहमियत हासिल है। इसी वजह से नबी (सल्ल॰) ने फ़ज्र की नमाज़ में लम्बी क़िरअत करने का तरीक़ा अपनाया और इसी की पैरवी सहाबा किराम ने की और बाद के इमामों ने इसे मुस्तहब (पसन्दीदा) क़रार दिया।

इस आयत में मुख़्तसर तौर से यह बताया गया है कि पाँच वक़्तों की नमाज़ जो मेराज के मौक़े पर फ़र्ज़ की गई थी, उसके वक़्तों को किस तरह मुक़र्रर किया जाए। हुक्म हुआ कि एक नमाज़ तो सूरज निकलने से पहले पढ़ ली जाए, और बाक़ी चार नमाज़ें सूरज ढलने के बाद से रात के अंधेरे तक पढ़ी जाएँ। फिर इस हुक्म की तशरीह के लिए जिबरील (अलैहि॰) भेजे गए, जिन्होंने नमाज़ के ठीक-ठीक वक़्तों की तालीम नबी (सल्ल॰) को दी। चुनाँचे अबू-दाऊद और तिरमिज़ी में इब्ने-अब्बास की रिवायत है कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया —

"जिबरील ने दो बार मुझको बैतुल्लाह (काबा) के क़रीब नमाज़ पढ़ाई। पहले दिन ज़ुहर की नमाज़ ऐसे वक़्त पढ़ाई जबकि सूरज अभी ढला ही था और साया एक जूते के फ़ीते से ज़्यादा लम्बा न था, फिर अस्र की नमाज़ ऐसे वक़्त पढ़ाई जबकि हर चीज़ का साया उसके अपने क़द के बराबर था, फिर मग़रिब की नमाज़ ठीक उस वक़्त पढ़ाई जबकि रोज़ेदार रोज़ा खोलता है, फिर इशा की नमाज़ शाम की लाली ग़ायब होते ही पढ़ा दी और फ़ज्र की नमाज़ उस वक़्त पढ़ाई जब रोज़ेदार पर खाना-पीना हराम हो जाता है। दूसरे दिन उन्होंने मुझे ज़ुहर की नमाज़ उस वक़्त पढ़ाई जबकि हर चीज़ का साया उसके क़द के बराबर था, और अस्र की नमाज़ उस वक़्त जबकि हर चीज़ का साया उसके क़द से दो गुना हो गया, और मग़रिब की नमाज़ उस वक़्त जबकि रोज़ेदार रोज़ा खोलता है और इशा की नमाज़ एक तिहाई रात गुज़र जाने पर, और फ़ज्र की नमाज़ अच्छी तरह रौशनी फैल जाने पर। फिर जिबरील ने पलटकर मुझसे कहा कि ऐ मुहम्मद, यही वक़्त नबियों के नमाज़ पढ़ने के हैं, और नमाज़ों के सही वक़्त इन दोनों वक़्तों के दरमियान हैं।" (यानी पहले दिन हर वक़्त की शुरुआत और दूसरे दिन हर वक़्त की इन्तिहा बताई गई। हर वक़्त की नमाज़ इन दोनों के दरमियान होनी चाहिए।)

क़ुरआन मजीद में ख़ुद भी नमाज़ के इन पाँचों वक़्तों की तरफ़ मुख़्तलिफ़ मौक़ों पर इशारे किए गए हैं। चुनाँचे सूरा-11 हूद में फ़रमाया—

"नमाज़ क़ायम कर दिन के दोनों किनारों पर (यानी फ़ज्र और मग़रिब) और कुछ रात गुज़रने पर (यानी इशा)।" (आयत-114)

सूरा ता-हा में इरशाद हुआ —

"और अपने रब की हम्द के साथ उसकी तसबीह (महिमागान) कर सूरज निकलने से पहले (फ़ज्र) और सूरज डूबने से पहले (अस्र) और रात के वक़्तों में फिर तसबीह कर (इशा) और दिन के सिरों पर (यानी सुबह, ज़ुहर और मग़रिब)।" (आयत-130)

फिर सूरा-30 रूम में कहा गया—

"तो अल्लाह की तसबीह करो, जबकि तुम शाम करते हो (मग़रिब) और जब सुबह करते हो (फ़ज्र)। उसी के लिए हम्द है आसमानों में और ज़मीन में। और उसकी तसबीह करो दिन के आख़िरी हिस्से में (अस्र) और जबकि तुम दोपहर करते हो (ज़ुहर)।" (आयतें 17, 18)

नमाज़ के वक़्तों का यह निज़ाम मुक़र्रर करने में जिन मस्लहतों का लिहाज़ रखा गया है उनमें से एक अहम मस्लहत यह भी है कि सूरज की पूजा करनेवालों की पूजा के वक़्तों से बचा जाए। सूरज हर ज़माने में मुशरिकों का सबसे बड़ा, या बहुत बड़ा माबूद रहा है, और उसके निकलने और डूबने के वक़्त ख़ास तौर पर उनकी पूजा के वक़्त रहे हैं, इसलिए इन वक़्तों में नमाज़ पढ़ना हराम कर दिया गया। इसके अलावा सूरज की पूजा ज़्यादातर उसके ऊपर उठने के वक़्तों में की जाती रही है, इसलिए इस्लाम में हुक्म दिया गया कि तुम दिन की नमाज़ें सूरज ढलने के बाद पढ़नी शुरू करो और सुबह की नमाज़ सूरज निकलने से पहले पढ़ लिया करो। इस मस्लहत को नबी (सल्ल॰) ने ख़ुद कई हदीसों में बयान किया है। चुनाँचे एक हदीस में अम्र-बिन-अ-ब-सा रिवायत करते हैं कि मैंने नबी (सल्ल॰) से नमाज़ के वक़्तों के बारे में पूछा तो आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"सुबह की नमाज़ पढ़ो और जब सूरज निकलने लगे तो नमाज़ से रुक जाओ, यहाँ तक कि सूरज ऊँचा हो जाए; क्योंकि सूरज जब निकलता है तो शैतान के सींगों के दरमियान निकलता है और उस वक़्त ग़ैर-मुस्लिम उसको सजदा करते हैं।"

फिर आप (सल्ल॰) ने अस्र की नमाज़ का ज़िक्र करने के बाद फ़रमाया—

"फिर नमाज़ से रुक जाओ यहाँ तक कि सूरज डूब जाए, क्योंकि सूरज शैतान के सींगों के दरमियान डूबता है और उस वक़्त ग़ैर-मुस्लिम उसको सजदा करते हैं।" (हदीस : मुस्लिम)।

इस हदीस में सूरज का शैतान के सींगों के दरमियान निकलना और डूबना मिसाल के लिए बयान किया गया है। इसका मक़सद यह तसव्वुर दिलाना है कि शैतान सूरज के निकलने और डूबने के वक़्तों को लोगों के लिए एक बड़ा फ़ितना बना देता है। मानो जब लोग उसको निकलते और डूबते देखकर सजदा करते हैं तो ऐसा लगता है कि शैतान उसे अपने सिर पर लिए आया है और सिर ही पर लिए जा रहा है। इस मिसाल की गाँठ नबी (सल्ल॰) ने ख़ुद अपने इस जुमले में खोल दी है कि "उस वक़्त ग़ैर-मुस्लिम उसको सजदा करते हैं।"

96\. 'तहज्जुद' का मतलब है नींद तोड़कर उठना। इसलिए रात के वक़्त तहज्जुद करने का मतलब यह है कि रात का एक हिस्सा सोने के बाद फिर उठकर नमाज़ पढ़ी जाए।

97\. 'नफ़्ल' का मतलब है 'फ़र्ज़ के अलावा।' इससे ख़ुद-ब-ख़ुद यह इशारा निकल आया कि वे पाँच नमाज़ें जिनके वक़्तों का निज़ाम पहली आयत में बयान किया गया था, फ़र्ज़ हैं, और छठी नमाज़ फ़र्ज़ के अलावा है।

يَّبۡعَثَكَ رَبُّكَ مَقَامًا مَّحۡمُوۡدًا ۝٧٩ وَقُلۡ رَّبِّ اَدۡخِلۡنِىۡ مُدۡخَلَ صِدۡقٍ
وَّاَخۡرِجۡنِىۡ مُخۡرَجَ صِدۡقٍ وَّاجۡعَلۡ لِّىۡ مِنۡ لَّدُنۡكَ سُلۡطٰنًا نَّصِيۡرًا ۝٨٠

नामुमकिन नहीं कि तुम्हारा रब तुम्हें मक़ामे-महमूद'[98] 'तारीफ़ के क़ाबिल मकाम पर पहुँचा दे।

(80) और दुआ करो कि परवरदिगार! मुझको जहाँ भी तू ले जा, सच्चाई के साथ ले जा और जहाँ से भी निकाल, सच्चाई के साथ निकाल[99], और अपनी तरफ़ से एक इक़्तिदार को मेरा मददगार बना दे।[100]

98. यानी दुनिया और आख़िरत में तुमको ऐसे मर्तबे पर पहुँचा दे जहाँ तुम सबके पसन्दीदा होकर रहो, हर तरफ़ से तुमपर तारीफ़ों की बारिश हो, और तुम्हारी हस्ती एक तारीफ़ के क़ाबिल हस्ती बनकर रहे। आज तुम्हारे मुख़ालिफ़ लोग तुम्हें गालियाँ दे रहे और बुरा-भला कह रहे हैं और देश भर में तुमको बदनाम करने के लिए उन्होंने झूठे इलज़ामों का एक तूफ़ान खड़ा कर रखा है, मगर वह वक़्त दूर नहीं है जबकि दुनिया तुम्हारी तारीफ़ों से गूँज उठेगी और आख़िरत में भी तुम सारी दुनिया के पसन्दीदा बनकर रहोगे। क़ियामत के दिन नबी (सल्ल॰) का 'शफ़ाअत' के मक़ाम पर खड़ा होना भी इसी पसन्दीदा मर्तबे का एक हिस्सा है।

99. इस दुआ की तलक़ीन से साफ़ मालूम होता है कि हिजरत का वक़्त अब बिलकुल क़रीब आ लगा था। इसलिए कि तुम्हारी दुआ यह होनी चाहिए कि सच्चाई का दामन किसी हाल में तुमसे न छूटे, जहाँ से भी निकलो सच्चाई की ख़ातिर निकलो और जहाँ भी जाओ सच्चाई के साथ जाओ।

100. यानी या तो मुझे ख़ुद इक़्तिदार (सत्ता) दे, या किसी हुकूमत को मेरा मददगार बना दे, ताकि उसकी ताक़त से मैं दुनिया के इस बिगाड़ को ठीक कर सकूँ, बेहयाई और गुनाहों के इस सैलाब को रोक सकूँ, और तेरे इनसाफ़ से भरे क़ानून को लागू कर सकूँ। यही मतलब है इस आयत का जो हसन बसरी और क़तादा ने बयान किया है, और इसी को इब्ने-जरीर और इब्ने-कसीर जैसे बड़े तफ़सीर लिखनेवालों ने अपनाया है और इसी की ताईद नबी (सल्ल॰) की यह हदीस करती है कि "अल्लाह तआला हुकूमत की ताक़त से उन चीज़ों की रोक-थाम कर देता है जिनकी रोक-थाम क़ुरआन से नहीं करता।" इससे मालूम हुआ कि इस्लाम दुनिया में जो सुधार चाहता है वह सिर्फ़ नसीहतों से नहीं हो सकता, बल्कि उसको अमल में लाने के लिए सियासी ताक़त भी दरकार है। फिर जबकि यह दुआ अल्लाह तआला ने अपने नबी को ख़ुद सिखाई है तो इससे यह भी साबित हुआ कि दीन क़ायम करने और शरीअत लागू करने और अल्लाह की मुक़र्रर की हुई सज़ाएँ जारी करने के लिए हुकूमत चाहना और उसको पाने की कोशिश करना न सिर्फ़ जाइज़, बल्कि ज़रूरी और तारीफ़ के क़ाबिल है और वे लोग ग़लती पर

وَقُلْ جَآءَ الْحَقُّ وَزَهَقَ الْبَاطِلُ ۚ إِنَّ الْبَاطِلَ كَانَ زَهُوقًا ﴿٨١﴾ وَنُنَزِّلُ
مِنَ الْقُرْآنِ مَا هُوَ شِفَاءٌ وَرَحْمَةٌ لِّلْمُؤْمِنِينَ ۙ وَلَا يَزِيدُ الظَّالِمِينَ إِلَّا
خَسَارًا ﴿٨٢﴾ وَإِذَا أَنْعَمْنَا عَلَى الْإِنسَانِ أَعْرَضَ وَنَأَىٰ بِجَانِبِهِ ۖ وَإِذَا مَسَّهُ

(81) और एलान कर दो कि "हक़ आ गया और बातिल मिट गया, बातिल तो मिटने ही वाला है।"[101]

(82) हम इस क़ुरआन के उतरने के सिलसिले में वह कुछ उतार रहे हैं जो माननेवालों के लिए तो शिफ़ा और रहमत है, मगर ज़ालिमों के लिए घाटे के सिवा और किसी चीज़ में बढ़ोत्तरी नहीं करता।[102] (83) इनसान का हाल यह है कि जब हम उसे

हैं जो इसे दुनियापरस्ती या दुनियातलबी कहते हैं। दुनियापरस्ती अगर है तो यह कि कोई शख़्स अपने लिए हुकूमत का तलबगार हो। रहा ख़ुदा के दीन के लिए हुकूमत का तलबगार होना तो यह दुनियापरस्ती नहीं, बल्कि बिलकुल ख़ुदापरस्ती ही का तक़ाज़ा है। अगर जिहाद के लिए तलवार का तलबगार होना गुनाह नहीं है तो शरीअत के हुक्मों को जारी करने के लिए सियासी ताक़त का तलबगार होना आख़िर कैसे गुनाह हो जाएगा?

101. यह एलान उस वक़्त किया गया था जबकि मुसलमानों की एक बड़ी तादाद मक्का छोड़कर हब्शा में पनाह लिए हुए थी, और बाक़ी मुसलमान सख़्त बेसहारा और मज़लूमों की-सी हालत में मक्का और उसके आसपास में ज़िन्दगी गुज़ार रहे थे और ख़ुद नबी (सल्ल.) की जान हर वक़्त ख़तरे में थी। उस वक़्त बाज़ाहिर बातिल (असत्य) ही का ज़ोर था और हक़ (सत्य) के छा जाने के आसार दूर-दूर तक नज़र न आते थे। मगर इसी हालत में नबी (सल्ल.) को हुक्म दे दिया गया कि तुम साफ़-साफ़ इन बातिलपरस्तों को सुना दो कि हक़ आ गया और बातिल मिट गया। ऐसे वक़्त में यह अजीब एलान लोगों को महज़ ज़बान का फाग महसूस हुआ और उन्होंने उसे ठहाकों में उड़ा दिया। मगर इसपर नौ बरस ही गुज़रे थे कि नबी (सल्ल.) इसी शहर मक्का में फ़ातेह (विजेता) की हैसियत से दाख़िल हुए और आप (सल्ल.) ने काबा में जाकर उस बातिल को मिटा दिया जो 360 बुतों की शक्ल में वहाँ सजा रखा था। बुख़ारी में हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद (रज़ि.) का बयान है कि मक्का की फ़तह के दिन नबी (सल्ल.) काबा के बुतों पर चोट मारते जा रहे थे और आप (सल्ल.) की ज़बान पर ये अलफ़ाज़ जारी थे कि "हक़ आ गया और बातिल मिट गया। यक़ीनन बातिल तो मिटने ही वाला था। हक़ आ गया और अब बातिल के लिए कुछ नहीं हो सकता।"

102. यानी जो लोग इस क़ुरआन को अपना रहनुमा और अपने लिए क़ानून की किताब मान लें उनके लिए तो यह ख़ुदा की रहमत और उनके तमाम ज़ेहनी, नफ़्सानी, अख़लाक़ी और समाजी

الشَّرُّ كَانَ يَـُٔوسًا ۝٨٣ قُلْ كُلٌّ يَّعْمَلُ عَلٰى شَاكِلَتِهٖ فَرَبُّكُمْ اَعْلَمُ بِمَنْ

هُوَ اَهْدٰى سَبِيْلًا ۝٨٤ وَيَسْـَٔلُوْنَكَ عَنِ الرُّوْحِ قُلِ الرُّوْحُ مِنْ اَمْرِ

رَبِّيْ وَمَآ اُوْتِيْتُمْ مِّنَ الْعِلْمِ اِلَّا قَلِيْلًا ۝٨٥ وَلَئِنْ شِئْنَا لَنَذْهَبَنَّ

नेमत देते हैं तो वह ऐंठता और पीठ मोड़ लेता है, और जब ज़रा मुसीबत का सामना होता है तो मायूस होने लगता है। (84) ऐ नबी! उन लोगों से कह दो कि "हर एक अपने तरीक़े पर चल रहा है, अब यह तुम्हारा रब ही बेहतर जानता है कि सीधी राह पर कौन है।"

(85) ये लोग तुमसे रूह के बारे में पूछते हैं। कहो, "यह रूह मेरे रब के हुक्म से आती है, मगर तुम लोगों ने इल्म (ज्ञान) का थोड़ा हिस्सा ही पाया है।"[103] (86) और ऐ

रोगों का इलाज है। मगर जो ज़ालिम इसे रद्द करके और इसकी रहनुमाई से मुँह मोड़कर अपने ऊपर आप ज़ुल्म करें उनको यह क़ुरआन उस हालत पर भी नहीं रहने देता जिसपर वे उसके उतरने से या उसके जानने से पहले थे, बल्कि यह उन्हें उलटा इससे ज़्यादा घाटे में डाल देता है। इसकी वजह यह है कि जब तक क़ुरआन न आया था, या जब तक वे उससे वाक़िफ़ न हुए थे, उनका घाटा सिर्फ़ जहालत का घाटा था। मगर जब क़ुरआन उनके सामने आ गया और उसने हक़ और बातिल का फ़र्क़ खोलकर रख दिया तो उनपर ख़ुदा की हुज्जत पूरी हो गई। अब अगर वे उसे रद्द करके गुमराही पर अड़े रहते हैं तो इसका मतलब यह है कि वे जाहिल नहीं, बल्कि ज़ालिम और बातिलपरस्त और हक़ से भागनेवाले हैं। अब उनकी हैसियत वह है जो ज़हर और तिरयाक़ (ज़हर के असर को ख़त्म करनेवाली दवा), दोनों का देखकर ज़हर चुननेवाले की होती है। अब अपनी गुमराही के वे पूरे ज़िम्मेदार, और हर गुनाह जो इसके बाद वे करें उसकी पूरी सज़ा के हक़दार हैं। यह घाटा जहालत का नहीं, बल्कि शरारत का घाटा है जिसे जहालत के घाटे से बढ़कर ही होना चाहिए। यही बात है जो नबी (सल्ल.) ने एक बहुत छोटे लेकिन मानी से भरपूर जुमले में बयान की है कि "क़ुरआन या तो तेरे लिए हुज्जत है या फिर तेरे ख़िलाफ़ हुज्जत।"

103. आम तौर पर यह समझा जाता है कि यहाँ रूह से मुराद जान है, यानी लोगों ने नबी (सल्ल.) से ज़िन्दगी की रूह के बारे में पूछा था कि उसकी हक़ीक़त क्या है, और इसका जवाब यह दिया गया कि वह अल्लाह के हुक्म से आती है। लेकिन हमें यह मतलब लेने में बड़ी झिझक है, इसलिए कि यह मतलब सिर्फ़ उसी सूरत में लिया जा सकता है, जबकि मौक़ा और महल नज़रअन्दाज़ कर दिया जाए और बात का जो सिलसिला चल रहा है उससे इसे बिलकुल अलग करके इस आयत को एक अलग जुमले की हैसियत से ले लिया जाए। वरना अगर चली आ

بِالَّذِىۡۤ اَوۡحَيۡنَاۤ اِلَيۡكَ ثُمَّ لَا تَجِدُ لَكَ بِهٖ عَلَيۡنَا وَكِيۡلًا ۙ‏ ﴿۸۶﴾ ———

नबी! हम चाहें तो वह सब कुछ तुमसे छीन लें जो हमने वह्य के ज़रिए से तुमको दिया है, फिर तुम हमारे मुक़ाबले में कोई हिमायती न पाओगे जो उसे वापस दिला सके।

रही बात के सिलसिले में रखकर देखा जाए तो रूह को जान के मानी में लेने से जुमले में सख़्त बेताल्लुक़ी महसूस होती है और इस बात की कोई सही वजह समझ में नहीं आती कि जहाँ पहले तीन आयतों में क़ुरआन को बीमारियाँ दूर करने का नुस्ख़ा बताया गया है और क़ुरआन का इनकार करनेवालों को ज़ालिम और नेमतों के नाशुक्रे ठहराया गया है, और जहाँ बाद की आयतों में फिर क़ुरआन के अल्लाह का कलाम होने पर दलील दी गई है, वहाँ आख़िर किस ताल्लुक़ से यह बात आ गई कि जानदारों में जान ख़ुदा के हुक्म से आती है?
इबारत के सिलसिले को निगाह में रखकर देखा जाए तो साफ़ महसूस होता है कि यहाँ रूह से मुराद "वह्य" या वह्य लानेवाला फ़रिश्ता ही हो सकता है। मुशरिकों का सवाल अस्ल में यह था कि यह क़ुरआन तुम कहाँ से लाते हो? इस पर अल्लाह तआला फ़रमाता है कि ऐ नबी! तुमसे ये लोग रूह के बारे में मालूम करते हैं, यानी यह पूछते हैं कि क़ुरआन कहाँ से आता है, या क़ुरआन के आने का ज़रिआ क्या है? इन्हें बता दो कि यह रूह मेरे रब के हुक्म से आती है, मगर तुम लोगों ने इल्म से इतना कम हिस्सा पाया है कि तुम इनसान के बताए हुए कलाम (वाणी) और रब की वह्य के ज़रिए उतरनेवाले कलाम का फ़र्क़ नहीं समझते और इस कलाम पर यह शक करते हो कि इसे कोई इनसान गढ़ रहा है।
यह तफ़सीर न सिर्फ़ इस लिहाज़ से ज़्यादा सही मालूम होती है कि इस जुमले से पहले और बाद की तक़रीर का ताल्लुक़ इसी तफ़सीर का तक़ाजा करता है, बल्कि ख़ुद क़ुरआन मजीद में भी दूसरी जगहों पर यह मज़मून लगभग इन्हीं अलफ़ाज़ में बयान किया गया है। चुनाँचे सूरा-40 मोमिन, आयत-15 में कहा गया है, "वह अपने हुक्म से अपने जिस बन्दे पर चाहता है रूह उतारता है, ताकि वह लोगों के इकट्ठे होने के दिन से आगाह कर दे।" और सूरा-42 शूरा, आयत-52 में फ़रमाया, "और इसी तरह हमने तेरी तरफ़ एक रूह अपने हुक्म से भेजी। तू न जानता था किताब क्या होती है और ईमान क्या है।"
पिछले बुज़ुर्गों में से इब्ने-अब्बास, क़तादा और हसन बसरी (रह०) ने भी यही तफ़सीर अपनाई है। इब्ने-जरीर ने इस बात को क़तादा के हवाले से इब्ने-अब्बास से जोड़ा है, मगर यह अजीब बात लिखी है कि इब्ने-अब्बास इस ख़याल को छिपाकर बयान करते थे। और रूहुल-मआनी' के लेखक, हसन बसरी और क़तादा का यह क़ौल (बात) नक़्ल करते हैं कि "रूह से मुराद जिबरील हैं और सवाल अस्ल में यह था कि वे कैसे उतरते हैं और किस तरह नबी (सल्ल०) के दिल में वह्य डाली जाती है।"

اِلَّا رَحۡمَةً مِّنۡ رَّبِّكَ ؕ اِنَّ فَضۡلَهٗ كَانَ عَلَيۡكَ كَبِيۡرًا ۝۸۷ قُلْ لَّٮِٕنِ
اجۡتَمَعَتِ الۡاِنۡسُ وَالۡجِنُّ عَلٰٓى اَنۡ يَّاۡتُوۡا بِمِثۡلِ هٰذَا الۡقُرۡاٰنِ لَا يَاۡتُوۡنَ
بِمِثۡلِهٖ وَلَوۡ كَانَ بَعۡضُهُمۡ لِبَعۡضٍ ظَهِيۡرًا ۝۸۸ وَلَقَدۡ صَرَّفۡنَا لِلنَّاسِ فِىۡ

(87) यह तो जो कुछ तुम्हें मिला है, तुम्हारे रब की रहमत से मिला है, हक़ीक़त यह है कि उसकी मेहरबानी तुमपर बहुत बड़ी है।[104] (88) कह दो कि अगर इनसान और जिन्न, सब-के-सब मिलकर इस क़ुरआन जैसी कोई चीज़ लाने की कोशिश करें तो न ला सकेंगे, चाहे वे सब एक-दूसरे के मददगार ही क्यों न हों।[105]

(89) हमने इस क़ुरआन में लोगों को तरह-तरह से समझाया, मगर ज़्यादातर लोग

104. बात बज़ाहिर नबी (सल्ल॰) से कही गई है, मगर मक़सद दरअस्ल इस्लाम-मुख़ालिफ़ों को सुनाना है, जो क़ुरआन को नबी (सल्ल॰) का अपना गढ़ा हुआ या किसी इनसान का छिपकर सिखाया हुआ कलाम कहते थे। उनसे कहा जा रहा है कि यह कलाम पैग़म्बर ने नहीं गढ़ा, बल्कि हमने दिया है और हम इसे छीन लें तो न पैग़म्बर की यह ताक़त है कि वह ऐसा कलाम तैयार करके ला सके और न कोई दूसरी ताक़त ऐसी है जो उसको ऐसी मोजिज़ाना (चामत्कारिक) किताब पेश करने के क़ाबिल बना सके।

105. यह चैलेंज इससे पहले क़ुरआन मजीद में तीन जगहों पर गुज़र चुका है। सूरा-2 बक़रा, आयतें-23-24; सूरा-10 यूनुस, आयत-38 और सूरा-11 हूद, आयत-13। आगे सूरा-52 तूर, आयतें-33-34 में भी यही बात आ रही है। इन सब जगहों पर यह बात इस्लाम-मुख़ालिफ़ों के इस इल्ज़ाम के जवाब में कही गई है कि मुहम्मद (सल्ल॰) ने ख़ुद यह क़ुरआन गढ़ लिया है और यूँ ही उसे ख़ुदा का कलाम बनाकर पेश कर रहे हैं। इसके अलावा सूरा-10 यूनुस, आयत-16 में इसी इलज़ाम को ग़लत बताते हुए यह भी कहा गया कि "ऐ नबी! उनसे कहो कि अगर अल्लाह ने यह न चाहा होता कि मैं यह क़ुरआन तुम्हें सुनाऊँ तो मैं हरगिज़ न सुना सकता था बल्कि अल्लाह तुम्हें इसकी ख़बर तक न देता। आख़िर मैं तुम्हारे बीच एक उम्र बिता चुका हूँ, क्या तुम इतना भी नहीं समझते?"

इन आयतों में क़ुरआन के अल्लाह का कलाम होने पर जो दलील दी गई है उसमें दर अस्ल तीन दलीलें हैं—

एक यह कि यह क़ुरआन अपनी ज़बान, अन्दाज़े-बयान, दलील देने के अन्दाज़, बहसों, तालीमों और ग़ैब की ख़बरों के लिहाज़ से एक मोजिज़ा (चमत्कार) है जिसकी मिसाल लाना इनसान के बस से बाहर है। तुम कहते हो कि इसे एक इनसान ने गढ़ लिया है, मगर हम कहते हैं कि तमाम दुनिया के इनसान मिलकर भी इस शान की किताब तैयार नहीं कर सकते, बल्कि अगर

هٰذَا الْقُرْاٰنِ مِنْ كُلِّ مَثَلٍ ۫ فَاَبٰۤى اَكْثَرُ النَّاسِ اِلَّا كُفُوْرًا ﴿٨٩﴾ وَقَالُوْا
لَنْ نُّؤْمِنَ لَكَ حَتّٰى تَفْجُرَ لَنَا مِنَ الْاَرْضِ يَنْۢبُوْعًا ﴿٩٠﴾ اَوْ تَكُوْنَ لَكَ
جَنَّةٌ مِّنْ نَّخِيْلٍ وَّعِنَبٍ فَتُفَجِّرَ الْاَنْهٰرَ خِلٰلَهَا تَفْجِيْرًا ﴿٩١﴾ اَوْ تُسْقِطَ

इनकार ही पर जमे रहे (90) और उन्होंने कहा, "हम तेरी बात न मानेंगे, जब तक कि तू हमारे लिए ज़मीन को फाड़कर एक चश्मा न जारी कर दे (91) या तेरे लिए खजूरों और अंगूरों का एक बाग़ पैदा हो और तू उसमें नहरें बहा दे (92) या तू आसमान को

वे जिन्न जिन्हें मुशरिकों ने अपना माबूद बना रखा है, और जिनके माबूद होने पर यह किताब खुल्लम-खुल्ला चोट कर रही है, क़ुरआन का इनकार करनेवालों की मदद पर इकट्ठे हो जाएँ तो वे भी उनको इस क़ाबिल नहीं बना सकते कि क़ुरआन के मेयार की किताब तैयार करके इस चुनौती को रद्द कर सकें।

दूसरी यह कि मुहम्मद (सल्ल॰) कहीं बाहर से अचानक तुम्हारे दरमियान नहीं आ गए हैं, बल्कि इस क़ुरआन के उतरने से पहले भी 40 साल तुम्हारे बीच रह चुके हैं। क्या नुबूवत (पैग़म्बरी) के दावे से एक दिन पहले भी कभी तुमने उनकी ज़बान से इस तरह का कलाम, और इन मसलों और मज़मूनों पर शामिल कलाम सुना था? अगर नहीं सुना था और यक़ीनन नहीं सुना था तो क्या यह बात तुम्हारी समझ में आती है कि किसी शख़्स की ज़बान, ख़यालात, मालूमात और सोचने और बयान करने के अन्दाज़ में अचानक ऐसी तबदीली पैदा हो सकती है?

तीसरी यह कि मुहम्मद (सल्ल॰) तुम्हें क़ुरआन सुनाकर कहीं ग़ायब नहीं हो जाते, बल्कि तुम्हारे बीच ही रहते-सहते हैं। तुम उनकी ज़बान से क़ुरआन भी सुनते हो और दूसरी बातें और तक़रीरें भी सुना करते हो। क़ुरआन के कलाम और मुहम्मद (सल्ल॰) की अपनी बातचीत में ज़बान और अन्दाज़ का इतना नुमायाँ फ़र्क़ है कि किसी एक इनसान के दो इतने ज़्यादा अलग-अलग स्टाइल कभी हो नहीं सकते। यह फ़र्क़ सिर्फ़ उसी ज़माने में वाज़ेह नहीं था जबकि नबी (सल्ल॰) अपने देश के लोगों में रहते-सहते थे, बल्कि आज भी हदीस की किताबों में आप (सल्ल॰) के सैकड़ों क़ौल (कथन) और ख़ुतबे (अभिभाषण) मौजूद हैं। उनकी ज़बान और अन्दाज़ क़ुरआन की ज़बान और अन्दाज़ से इतने ज़्यादा अलग हैं कि अरबी ज़बान और अदब (साहित्य) की बारीकियों की समझ रखनेवाला अगर जाइज़ा ले तो वह यह कहने की जुर्अत नहीं कर सकता कि ये दानों एक ही शख़्स के कलाम हो सकते हैं। (और ज़्यादा तशरीह के लिए देखें—सूरा-10 यूनुस, हाशिया-21; सूरा-52 तूर, हाशिया-22-27)

السَّمَآءَ كَمَا زَعَمْتَ عَلَيْنَا كِسَفًا اَوْ تَاْتِيَ بِاللّٰهِ وَالْمَلٰٓئِكَةِ قَبِيْلًا ﴿٩٢﴾ اَوْ
يَكُوْنَ لَكَ بَيْتٌ مِّنْ زُخْرُفٍ اَوْ تَرْقٰى فِي السَّمَآءِ ؕ وَلَنْ نُّؤْمِنَ لِرُقِيِّكَ
حَتّٰى تُنَزِّلَ عَلَيْنَا كِتٰبًا نَّقْرَؤُهٗ ؕ قُلْ سُبْحَانَ رَبِّيْ هَلْ كُنْتُ اِلَّا بَشَرًا
رَّسُوْلًا ﴿٩٣﴾ وَمَا مَنَعَ النَّاسَ اَنْ يُّؤْمِنُوْٓا اِذْ جَآءَهُمُ الْهُدٰٓى اِلَّآ اَنْ ع ١٠

टुकड़े-टुकड़े करके हमारे ऊपर गिरा दे, जैसा कि तेरा दावा है। या अल्लाह और फ़रिश्तों को रू-ब-रू हमारे सामने ले आए (93) या तेरे लिए सोने का एक घर बन जाए, या तू आसमान पर चढ़ जाए और तेरे चढ़ने का भी हम यक़ीन न करेंगे, जब तक कि तू हमारे ऊपर एक ऐसी तहरीर (लेख) न उतार लाए जिसे हम पढ़ें।" — ऐ नबी! इनसे कहो, "पाक है मेरा परवरदिगार, क्या मैं एक पैग़ाम लानेवाले इनसान के सिवा और भी कुछ हूँ?"[106]

(94) लोगों के सामने जब कभी हिदायत आई तो उसपर ईमान लाने से उनको

106. मोजिज़ों (चमत्कारों) की माँग का एक जवाब इससे पहले आयत-59 'वमा म-न-अना अन-नुरसि-ल बिल-आयाति' "और हमको निशानियाँ भेजने से नहीं रोका" में गुज़र चुका है। अब यहाँ इसी माँग का दूसरा जवाब दिया गया है। इस मुख़्तसर से जवाब में जो बेहतरीन अन्दाज़ इख़्तियार किया गया है वह तारीफ़ से परे है। मुख़ालिफ़ों की माँग यह थी कि अगर तुम पैग़म्बर हो तो अभी ज़मीन की तरफ़ एक इशारा करो और यकायक एक पानी का चश्मा फूट पड़े, या फ़ौरन एक लहलहाता बाग़ पैदा हो जाए और उसमें नहरें जारी हो जाएँ। आसमान की तरफ़ इशारा करो और तुम्हारे झुठलानेवालों पर आसमान टुकड़े-टकड़े होकर गिर जाए। एक फूँक मारो और पलक झपकते में सोने का एक महल बनकर तैयार हो जाए। एक आवाज़ दो और हमारे सामने ख़ुदा और उसके फ़रिश्ते फ़ौरन आ खड़े हों और वे गवाही दें कि हम ही ने मुहम्मद (सल्ल॰) को पैग़म्बर बनाकर भेजा है। हमारी आँखों के सामने आसमान पर चढ़ जाओ और अल्लाह मियाँ से एक ख़त हमारे नाम लिखवा लाओ, जिसे हम हाथ से छुएँ और आँखों से पढ़ें। — इन लम्बी-चौड़ी माँगों का बस यह जवाब देकर छोड़ दिया गया कि " इनसे कहो, पाक है मेरा परवरदिगार! क्या मैं एक पैग़ाम लानेवाले इनसान के सिवा और भी कुछ हूँ?" यानी बेवक़ूफ़ो। क्या मैंने ख़ुदा होने का दावा किया था कि तुम ये माँगें मुझसे करने लगे? मैंने तुमसे कब कहा था कि मैं सब कुछ कर सकता हूँ? मैंने कब कहा था कि ज़मीन व आसमान पर मेरी हुकूमत चल रही है? मेरा दावा तो पहले दिन से यही था कि मैं ख़ुदा की तरफ़ से

قَالُوْٓا اَبَعَثَ اللّٰهُ بَشَرًا رَّسُوْلًا ۝٩٤ قُلْ لَّوْ كَانَ فِي الْاَرْضِ مَلٰٓئِكَةٌ يَّمْشُوْنَ مُطْمَئِنِّيْنَ لَنَزَّلْنَا عَلَيْهِمْ مِّنَ السَّمَآءِ مَلَكًا رَّسُوْلًا ۝٩٥

किसी चीज़ ने नहीं रोका मगर उनकी इसी बात ने कि "क्या अल्लाह ने इनसान को पैग़म्बर बनाकर भेज दिया?"[107] (95) इनसे कहो, "अगर ज़मीन में फ़रिश्ते इत्मीनान से चल-फिर रहे होते तो हम ज़रूर आसमान से किसी फ़रिश्ते ही को उनके लिए पैग़म्बर बनाकर भेजते।"[108]

पैग़ाम लानेवाला एक इनसान हूँ। तुम्हें जाँचना है तो मेरे पैग़ाम को जाँचो। ईमान लाना है तो इस पैग़ाम के सच्चे और अक़्ल के मुताबिक़ होने को देखकर ईमान लाओ। इनकार करना है तो इस पैग़ाम में कोई ख़राबी निकालकर दिखाओ। मेरी सच्चाई का इत्मीनान करना है तो एक इनसान होने की हैसियत से मेरी ज़िन्दगी को, मेरे अख़लाक़ को, मेरे काम को देखो। यह सब कुछ छोड़कर तुम मुझसे यह क्या माँग करने लगे कि ज़मीन फाड़ो और आसमान गिराओ? आख़िर पैग़म्बरी का इन कामों से क्या ताल्लुक़ है?

107. यानी हर ज़माने के जाहिल लोग इसी ग़लतफ़हमी में मुब्तला रहे हैं कि इनसान कभी पैग़म्बर नहीं हो सकता। इसी लिए जब कोई रसूल आया तो उन्होंने यह देखकर कि खाता है, पीता है, बीवी-बच्चे रखता है, हाड़-मांस का बना हुआ है, फ़ैसला कर दिया कि पैग़म्बर नहीं है, क्योंकि इनसान है। और जब वह गुज़र गया तो एक मुद्दत के बाद उसके अक़ीदतमन्दों में ऐसे लोग पैदा होने शुरू हो गए जो कहने लगे कि वह इनसान नहीं था, क्योंकि पैग़म्बर था। चुनाँचे किसी ने उसको ख़ुदा बनाया, किसी ने उसे ख़ुदा का बेटा कहा, और किसी ने कहा कि ख़ुदा उसमें समा गया था। मतलब यह कि इनसान होना और पैग़म्बर होना ये दोनों बातें एक वुजूद में जमा होना जाहिलों के लिए हमेशा एक पहेली ही बना रहा। (और ज़्यादा तशरीह के लिए देखें—सूरा-36 या-सीन, हाशिया-11)

108. यानी पैग़म्बर का काम सिर्फ़ इतना ही नहीं है कि आकर पैग़ाम सुना दिया करे, बल्कि उसका काम यह भी है कि उस पैग़ाम के मुताबिक़ इनसानी ज़िन्दगी को सुधारे। उसे इनसानी हालात पर उस पैग़ाम के उसूलों को चस्पाँ करना होता है। उसे ख़ुद अपनी ज़िन्दगी में उन उसूलों को अमली जामा पहनाकर दिखाना होता है। उसे उन अनगिनत अलग-अलग इनसानों के ज़ेहन की गुत्थियाँ सुलझानी पड़ती हैं जो उसका पैग़ाम सुनने और समझने की कोशिश करते हैं। उसे माननेवालों को एकजुट करना और उनकी तरबियत करनी होती है, ताकि उस पैग़ाम की तालीमात के मुताबिक़ एक समाज वुजूद में आए। उसे इनकार और मुख़ालिफ़त करनेवालों और रुकावट डालनेवालों के मुक़ाबले में जिद्दोजुहद करनी होती है ताकि बिगाड़ की तरफ़दारी

قُلۡ كَفٰى بِاللّٰهِ شَهِيۡدًۢا بَيۡنِىۡ وَبَيۡنَكُمۡ‌ؕ اِنَّهٗ كَانَ بِعِبَادِهٖ خَبِيۡرًۢا
بَصِيۡرًا ۝٩٦ وَمَنۡ يَّهۡدِ اللّٰهُ فَهُوَ الۡمُهۡتَدِ‌ۚ وَمَنۡ يُّضۡلِلۡ فَلَنۡ تَجِدَ لَهُمۡ
اَوۡلِيَآءَ مِنۡ دُوۡنِهٖ‌ؕ وَنَحۡشُرُهُمۡ يَوۡمَ الۡقِيٰمَةِ عَلٰى وُجُوۡهِهِمۡ عُمۡيًا

(96) ऐ नबी! इनसे कह दो कि मेरे और तुम्हारे बीच बस एक अल्लाह की गवाही काफ़ी है। वह अपने बन्दों के हाल की ख़बर रखता है और सब कुछ देख रहा है।[109]

(97) जिसको अल्लाह रास्ता दिखाए वही रास्ता पानेवाला है, और जिसे वह गुमराही में डाल दे, तो उसके सिवा ऐसे लोगों के लिए तू कोई और मददगार नहीं पा सकता।[110]

करनेवाली ताक़तों को नीचा दिखाया जाए, और वह सुधार अमल में आ सके जिसके लिए ख़ुदा ने अपना पैग़म्बर भेजा है। ये सारे काम जबकि इनसानों ही में करने के हैं तो इनके लिए इनसान नहीं तो और कौन भेजा जाता? फ़रिश्ता तो ज़्यादा-से-ज़्यादा बस यही करता कि आता और पैग़ाम पहुँचाकर चला जाता। इनसानों में इनसान की तरह रहकर इनसान के जैसे काम करना और फिर इनसानी ज़िन्दगी में अल्लाह की मरज़ी के मुताबिक़ सुधार करके दिखा देना किसी फ़रिश्ते का काम न था। इसके लिए तो इनसान ही मुनासिब हो सकता था।

109. यानी जिस-जिस तरह से मैं तुम्हें समझा रहा हूँ और तुम्हारी हालत के सुधार के लिए कोशिश कर रहा हूँ उसे भी अल्लाह जानता है और जो-जो कुछ तुम मेरी मुख़ालिफ़त में कर रहे हो उसको भी अल्लाह देख रहा है। फ़ैसला आख़िरकार उसी को करना है इसलिए बस उसी का जानना और देखना काफ़ी है।

110. यानी जिसकी गुमराह पसन्दी और हक़ के ख़िलाफ़ हठधर्मी की वजह से अल्लाह ने उसपर हिदायत के दरवाज़े बन्द कर दिए हों और जिसे अल्लाह ही ने उन गुमराहियों की तरफ़ धकेल दिया हो जिनकी तरफ़ वह जाना चाहता था, तो अब और कौन है जो उसको सीधे रास्ते पर ला सके? जिस शख़्स ने सच्चाई से मुँह मोड़कर झूठ पर मुत्मइन होना चाहा, और जिसकी इस बुराई को देखकर अल्लाह ने भी उसके लिए वे साधन जुटा दिए जिनसे सच्चाई के ख़िलाफ़ उसकी नफ़रत में और झूठ पर उसके इत्मीनान में और ज़्यादा बढ़ोत्तरी होती चली जाए, उसे आख़िर दुनिया की कौन-सी ताक़त झूठ से फेरकर सच्चाई पर मुत्मइन कर सकती है? अल्लाह का यह क़ायदा नहीं कि जो ख़ुद भटकना चाहे उसे ज़बरदस्ती हिदायत दे, और किसी दूसरी हस्ती में यह ताक़त नहीं कि लोगों के दिलों को बदल दे।

وَّبُكْمًا وَّصُمًّا ۭ مَاْوٰىهُمْ جَهَنَّمُ ۭ كُلَّمَا خَبَتْ زِدْنٰهُمْ سَعِيْرًا ﴿٩٧﴾ ذٰلِكَ النصف
جَزَاۗؤُهُمْ بِاَنَّهُمْ كَفَرُوْا بِاٰيٰتِنَا وَقَالُوْٓا ءَاِذَا كُنَّا عِظَامًا وَّرُفَاتًا ءَاِنَّا
لَمَبْعُوْثُوْنَ خَلْقًا جَدِيْدًا ﴿٩٨﴾ اَوَلَمْ يَرَوْا اَنَّ اللّٰهَ الَّذِيْ خَلَقَ السَّمٰوٰتِ
وَالْاَرْضَ قَادِرٌ عَلٰٓي اَنْ يَّخْلُقَ مِثْلَهُمْ وَجَعَلَ لَهُمْ اَجَلًا لَّا رَيْبَ
فِيْهِ ۭ فَاَبَى الظّٰلِمُوْنَ اِلَّا كُفُوْرًا ﴿٩٩﴾ قُلْ لَّوْ اَنْتُمْ تَمْلِكُوْنَ خَزَاۗىِٕنَ رَحْمَةِ
رَبِّيْٓ اِذًا لَّاَمْسَكْتُمْ خَشْيَةَ الْاِنْفَاقِ ۭ وَكَانَ الْاِنْسَانُ قَتُوْرًا ﴿١٠٠﴾ ع

उन लोगों को हम क़ियामत के दिन औंधे मुँह खींच लाएँगे, अंधे, गूँगे और बहरे[111], उनका ठिकाना जहन्नम है। जब कभी उसकी आग धीमी होने लगेगी, हम उसे और भड़का देंगे। (98) यह बदला है उनकी उस हरकत का कि उन्होंने हमारी आयतों का इनकार किया और कहा, “क्या जब हम सिर्फ़ हड्डियाँ और मिट्टी होकर रह जाएँगे तो नए सिरे से हमको पैदा करके उठा खड़ा किया जाएगा?” (99) क्या उनको यह न सूझा कि जिस ख़ुदा ने ज़मीन और आसमानों को पैदा किया है, वह इन जैसों को पैदा करने की ज़रूर क़ुदरत रखता है? उसने इनके हश्र के लिए एक वक़्त मुक़र्रर कर रखा है जिसका आना तय है, मगर ज़ालिम इसपर अड़े हुए हैं कि वे इसका इनकार ही करेंगे।

(100) ऐ नबी! इनसे कहो, “अगर कहीं मेरे रब की रहमत के ख़ज़ाने तुम्हारे क़ब्ज़े में होते तो तुम ख़र्च हो जाने के डर से ज़रूर उनको रोक रखते।” हक़ीक़त में इनसान बड़ा तंगदिल है।[112]

111. यानी जैसे वे दुनिया में बनकर रहे कि न हक़ (सत्य) देखते थे, न हक़ सुनते थे और न हक़ बोलते थे, वैसे ही वे क़ियामत में उठाए जाएँगे।

112. यह इशारा उसी मज़मून की तरफ़ है जो इससे पहले आयत-55 “और तेरा रब ज़मीन और आसमानों में जो कुछ है उसे ज़्यादा जानता है” में गुज़र चुका है। मक्का के मुशरिक लोग जिन नफ़सियाती (मनोवैज्ञानिक) वजहों से नबी (सल्ल॰) की नुबूवत का इनकार करते थे उनमें से एक अहम वजह यह थी कि इस तरह उन्हें आप (सल्ल॰) की बड़ाई और ऊँचे रुतबे को मानना पड़ता था, और अपने ज़माने के किसी आदमी और अपने बराबर के शख़्स की बड़ाई मानने के

وَلَقَدْ اٰتَيْنَا مُوْسٰى تِسْعَ اٰيٰتٍ بَيِّنٰتٍ فَسْـَٔلْ بَنِيْٓ اِسْرَآءِيْلَ اِذْ
جَآءَهُمْ فَقَالَ لَهٗ فِرْعَوْنُ اِنِّيْ لَاَظُنُّكَ يٰمُوْسٰى مَسْحُوْرًا ﴿١٠١﴾ قَالَ لَقَدْ
عَلِمْتَ مَآ اَنْزَلَ هٰٓؤُلَآءِ اِلَّا رَبُّ السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ بَصَآئِرَ ۚ وَاِنِّيْ

(101) हमने मूसा को नौ निशानियाँ दी थीं, जो साफ़ तौर से दिखाई दे रही थीं।[113] अब यह तुम ख़ुद बनी-इसराईल से पूछ लो कि जब मूसा उनके यहाँ आए तो फ़िरऔन ने यही कहा था न कि "ऐ मूसा! मैं समझता हूँ कि तू ज़रूर एक जादू का मारा आदमी है।"[114] (102) मूसा ने उसके जवाब में कहा, "तू ख़ूब जानता है कि ये सूझबूझ बढ़ाने

लिए इनसान मुश्किल ही से तैयार हुआ करता है। इसी पर कहा जा रहा है कि जिन लोगों की कंजूसी का हाल यह है कि किसी के हक़ीक़ी मर्तबे का इक़रार व एतिराफ़ करते हुए भी उनका दिल दुखता है, उन्हें अगर कहीं ख़ुदा ने अपनी रहमत के ख़ज़ानों की कुंजियाँ हवाले कर दी होतीं तो वे किसी को फूटी कौड़ी भी न देते।

113. ध्यान रहे कि यहाँ फिर मक्का के इस्लाम-मुख़ालिफ़ों को मोजिज़ों की माँगों का जवाब दिया गया है, और यह तीसरा जवाब है। इस्लाम के न माननेवाले कहते थे कि हम तुमपर ईमान न लाएँगे जब तक तुम यह और यह काम करके न दिखाओ। जवाब में उनसे कहा जा रहा है कि तुमसे पहले फ़िरऔन को ऐसे ही साफ़ मोजिज़े, एक-दो नहीं, एक के बाद एक नौ दिखाए गए थें, फिर तुम्हें मालूम है कि जो न मानना चाहता था उसने उन्हें देखकर क्या कहा? और यह भी ख़बर है कि जब उसने मोजिज़े देखकर भी नबी को झुठलाया तो अंजाम क्या हुआ?

वे नौ निशानियाँ जिनका यहाँ ज़िक्र किया गया है, इससे पहले सूरा-7 आराफ़ में गुज़र चुकी हैं। यानी असा (लाठी), जो अजगर बन जाता था, यदे-बैज़ा (सफ़ेद हाथ) जो बग़ल से निकालते ही सूरज की तरह चमकने लगता था, जादूगरों के जादू को सबके सामने हरा देना, एक एलान के मुताबिक़ सारे देश में अकाल पड़ जाना, और फिर एक के बाद एक तूफ़ान, टिड्डी दल, सुरसुरियों, मेंढकों और ख़ून की बलाओं का टूट पड़ना।

114. यह वही ख़िताब है जो मक्का के मुशरिक लोग नबी (सल्ल०) को दिया करते थे। इसी सूरा की आयत 47 में उनकी कही हुई यह बात गुज़र चुकी है कि "तुम तो एक जादू के मारे आदमी के पीछे चले जा रहे हो।" अब उनको बताया जा रहा हैं कि ठीक यही ख़िताब फ़िरऔन ने मूसा (अलैहि०) को दिया था।

इस जगह इसी सिलसिले की एक बात और भी है जिसकी तरफ़ हम इशारा कर देना ज़रूरी समझते हैं। मौजूदा दौर में हदीस को न माननेवालों ने हदीसों पर जो एतिराज़ किए हैं उनमें से एक एतिराज़ यह है कि हदीस के मुताबिक़ एक बार नबी (सल्ल०) पर जादू का असर हो गया

لَاَظُنُّكَ يٰفِرۡعَوۡنُ مَثۡبُوۡرًا ﴿۱۰۲﴾ فَاَرَادَ اَنۡ يَّسۡتَفِزَّهُمۡ مِّنَ الۡاَرۡضِ

वाली निशानियाँ ज़मीन और आसमानों के रब के सिवा किसी ने नहीं उतारी हैं,[115] और मेरा ख़याल यह है कि ऐ फ़िरऔन! तू ज़रूर शामत का मारा हुआ एक आदमी है।"[116]

था, हालाँकि क़ुरआन के मुताबिक़ इस्लाम को न माननेवालों का नबी (सल्ल॰) पर यह झूठा इलज़ाम था कि आप (सल्ल॰) एक जादू के मारे आदमी हैं। हदीस के न माननेवाले कहते हैं कि इस तरह हदीस के रावियों (बयान करनेवालों) ने क़ुरआन को झुठलाया और मक्का के इस्लाम-दुश्मनों की बात को सही ठहराया है। लेकिन यहाँ देखिए की ठीक इसी तरह क़ुरआन के मुताबिक़ हजरत मूसा (अलैहि॰) पर भी फ़िरऔन का यह झूठा इलज़ाम था कि आप एक जादू के मारे आदमी हैं और फिर क़ुरआन ख़ुद ही सूरा-20 ताहा में कहता है कि "जब जादूगरों ने अपने अंक्षर फेंके तो यकायक उनके जादू से मूसा को यह महसूस होने लगा कि उनकी लाठियाँ और रस्सियाँ दौड़ रही हैं, तो मूसा अपने दिल में डर-सा गया।" क्या ये अलफ़ाज़ साफ़ तौर पर दलील नहीं दे रहे है कि हज़रत मूसा उस वक़्त जादू से मुतास्सिर हो गए थे? और क्या उसके बारे में भी हदीस के इनकार करनेवाले यह कहने के लिए तैयार हैं कि यहाँ क़ुरआन ने ख़ुद अपने को झुठलाया और फ़िरऔन के झूठे बयान को सही ठहराया है?

दरअस्ल इस तरह के एतिराज़ उठानेवालों को यह मालूम नहीं है कि मक्का के इस्लाम-दुश्मन और फ़िरऔन किस मानी में नबी (सल्ल॰) और हज़रत मूसा को "जादू का मारा" कहते थे। उनका मतलब यह था कि किसी दुश्मन ने जादू करके उनको दीवाना बना दिया है और इसी दीवानगी के असर से ये नुबूवत (पैग़म्बरी) का दावा करते और एक निराला पैग़ाम सुनाते हैं। क़ुरआन उनके इसी इलज़ाम को झूठा ठहराता है। रहा वक़्ती तौर पर किसी शख़्स के जिस्म या जिस्म के किसी हिस्से का जादू से मुतास्सिर हो जाना तो यह बिलकुल ऐसा ही है जैसे किसी शख़्स को पत्थर मारने से चोट लग जाए। इस चीज़ का न इस्लाम-दुश्मनों ने इलज़ाम लगाया था, न क़ुरआन ने इसको ग़लत कहा, और न इस तरह के किसी वक़्ती असर से नबी (सल्ल॰) के मंसब पर कोई आँच आती है। नबी पर अगर ज़हर का असर हो सकता था, नबी अगर ज़ख़्मी हो सकता था, तो उसपर जादू का असर भी हो सकता था। इससे नुबूवत के मंसब पर आँच आने की क्या वजह हो सकती है। नुबूवत के मंसब में अगर अड़चन हो सकती है तो यह बात कि नबी की अक़्ली व ज़ेहनी क़ुव्वतें जादू के असर में आ जाएँ, यहाँ तक कि उसका काम और बात सब जादू ही के असर में होने लगे। हक़ की मुख़ालिफ़त करनेवाले हज़रत मूसा (अलैहि॰) और नबी (सल्ल॰) पर यही इलज़ाम लगाते थे और इसी को क़ुरआन ने ग़लत बताया है।

115. यह बात हज़रत मूसा (अलैहि॰) ने इसलिए कही कि किसी देश में अकाल पड़ जाना, या लाखों मील ज़मीन पर फैले हुए इलाक़े में मेंढकों का एक बला की तरह निकलना, या पूरे देश के अनाज के गोदामों में घुन लग जाना, और ऐसी ही दूसरी आम मुसीबतें किसी जादूगर के

فَأَغْرَقْنٰهُ وَمَنْ مَّعَهٗ جَمِيْعًا ﴿١٠٣﴾ وَّقُلْنَا مِنْۢ بَعْدِهٖ لِبَنِيْٓ اِسْرَآءِيْلَ
اسْكُنُوا الْاَرْضَ فَاِذَا جَآءَ وَعْدُ الْاٰخِرَةِ جِئْنَا بِكُمْ لَفِيْفًا ﴿١٠٤﴾
وَبِالْحَقِّ اَنْزَلْنٰهُ وَبِالْحَقِّ نَزَلَ ؕ وَمَآ اَرْسَلْنٰكَ اِلَّا مُبَشِّرًا وَّنَذِيْرًا ﴿١٠٥﴾

(103) आख़िरकार फ़िरऔन ने इरादा किया कि मूसा और बनी-इसराईल को ज़मीन से उखाड़ फेंके, मगर हमने उसको और उसके साथियों को इकट्ठा डुबो दिया (104) और इसके बाद बनी-इसराईल से कहा कि अब तुम ज़मीन में बसो[117], फिर जब आख़िरत के वादे का वक़्त आ पहुँचेगा तो हम तुम सबको एक साथ ला हाज़िर करेंगे।

(105) इस क़ुरआन को हमने हक़ के साथ उतारा है और हक़ ही के साथ यह उतरा है, और ऐ नबी! तुम्हें हमने इसके सिवा और किसी काम के लिए नहीं भेजा कि (जो मान ले उसे) ख़ुशख़बरी दे दो और (जो न माने उसे) ख़बरदार कर दो।[118]

जादू, या किसी इनसानी ताक़त के करतब से नहीं आ सकतीं। फिर जबकि हर बला के आने से पहले हज़रत मूसा (अलैहि०) फ़िरऔन को नोटिस दे देते थे कि अगर तूने अपनी हठधर्मी न छोड़ी तो यह बला तेरी सल्तनत पर मुसल्लत की जाएगी, और ठीक उनके बयान के मुताबिक़ वही बला पूरी सल्तनत पर टूट पड़ती थी, तो इस सूरत में सिर्फ़ एक दीवाना या एक बहुत ही हठधर्म आदमी ही यह कह सकता था कि इन बलाओं का टूट पड़ना ज़मीन व आसमानों के रब के सिवा किसी और की कारिस्तानी का नतीजा है।

116. यानी मैं तो जादू का मारा नहीं हूँ मगर तू ज़रूर शामत का मारा है। तेरा इन ख़ुदाई निशानियों को एक-के-बाद एक देखने के बाद भी अपनी ज़िद पर क़ायम रहना साफ़ बता रहा है कि तेरी शामत आ गई है।

117. यह है अस्ल मक़सद इस क़िस्से को बयान करने का। मक्का के मुशरिक लोग इस फ़िक्र में थे कि मुसलमानों को और नबी (सल्ल॰) को अरब की धरती से मिटा दें। इसपर उन्हें यह सुनाया जा रहा है कि यही कुछ फ़िरऔन ने मूसा (अलैहि॰) और बनी-इसराईल के साथ करना चाहा था। मगर हुआ यह कि फ़िरऔन और उसके साथी मिटा दिए गए और ज़मीन पर मूसा (अलैहि॰) और उनकी पैरवी करनेवाले ही बसाए गए। अब अगर इसी रास्ते पर तुम चलोगे तो तुम्हारा अंजाम इससे कुछ भी अलग न होगा।

118. यानी तुम्हारे ज़िम्मे यह काम नहीं किया गया है कि जो लोग क़ुरआन की तालीमात को जाँचकर हक़ (सत्य) और बातिल (असत्य) का फ़ैसला करने के लिए तैयार नहीं हैं, उनको तुम पानी के चश्मे निकालकर और बाग़ उगाकर और आसमान फ़ाड़कर किसी-न-किसी तरह

وَقُرْاٰنًا فَرَقْنٰهُ لِتَقْرَاَهٗ عَلَى النَّاسِ عَلٰى مُكْثٍ وَّنَزَّلْنٰهُ تَنْزِيْلًا ۝۱۰۶ قُلْ
اٰمِنُوْا بِهٖۤ اَوْ لَا تُؤْمِنُوْا ؕ اِنَّ الَّذِيْنَ اُوْتُوا الْعِلْمَ مِنْ قَبْلِهٖۤ اِذَا يُتْلٰى
عَلَيْهِمْ يَخِرُّوْنَ لِلْاَذْقَانِ سُجَّدًا ۝۱۰۷ وَّيَقُوْلُوْنَ سُبْحٰنَ رَبِّنَاۤ اِنْ كَانَ
وَعْدُ رَبِّنَا لَمَفْعُوْلًا ۝۱۰۸ وَيَخِرُّوْنَ لِلْاَذْقَانِ يَبْكُوْنَ وَيَزِيْدُهُمْ
خُشُوْعًا ۩ ۝۱۰۹ قُلِ ادْعُوا اللّٰهَ اَوِ ادْعُوا الرَّحْمٰنَ ؕ اَيًّا مَّا تَدْعُوْا فَلَهُ

(106) और इस क़ुरआन को हमने थोड़ा-थोड़ा करके उतारा है, ताकि तुम ठहर-ठहरकर इसे लोगों को सुनाओ, और इसे हमने (मौक़े-मौक़े से) तरतीब के साथ उतारा है।[119]
(107) ऐ नबी! इन लोगों से कह दो कि तुम इसे मानो या न मानो, जिन लोगों को इससे पहले इल्म दिया गया है[120] उन्हें जब यह सुनाया जाता है तो वे मुँह के बल सजदे में गिर जाते हैं (108) और पुकार उठते हैं, "पाक है हमारा रब! उसका वादा तो पूरा होना ही था।"[121] (109) और वे मुँह के बल रोते हुए गिर जाते हैं और उसे सुनकर उनका ख़ुशूअ़ (विनम्रता) और बढ़ जाता है।[122]

(110) ऐ नबी! इनसे कहो, "अल्लाह कहकर पुकारो या रहमान कहकर, जिस नाम

ईमानवाला बनाने की कोशिश करो, बल्कि तुम्हारा काम सिर्फ़ यह है कि लोगों के सामने हक़ बात पेश कर दो और फिर उन्हें साफ़-साफ़ बता दो कि जो इसे मानेगा वह अपना ही भला करेगा और जो न मानेगा वह बुरा अंजाम देखेगा।

119. यह मुख़ालिफ़त करनेवालों के इस शक का जवाब है कि अल्लाह मियाँ को पैग़ाम भेजना था तो पूरा पैग़ाम एक ही वक़्त में क्यों न भेज दिया? यह आख़िर ठहर-ठहरकर थोड़ा-थोड़ा पैग़ाम क्यों भेजा जा रहा है? क्या ख़ुदा को भी इनसानों की तरह सोच-सोचकर बात करने की ज़रूरत पड़ती है? इस शक का तफ़सीली जवाब सूरा-16 नहल, आयतें-101, 102 में गुज़र चुका है और वहाँ हम इसकी तशरीह भी कर चुके हैं, इसलिए यहाँ उसको दोहराने की ज़रूरत नहीं है।

120. यानी वे अहले-किताब जो आसमानी किताबों की तालीमात को जानते हैं और उनके अन्दाज़े-कलाम (भाषा-शैली) को पहचानते हैं।

121. यानी क़ुरआन को सुनकर वे फ़ौरन समझ जाते हैं कि जिस नबी के आने का वादा पिछले नबियों के सहीफ़ों (ग्रन्थों) में किया गया था वह आ गया है।

122. अच्छे और नेक अहले-किताब के इस रवैये का ज़िक्र क़ुरआन में कई जगहों पर किया गया है। मसलन सूरा-3 आले-इमरान, आयतें-113 से 115, 199 और सूरा-5 माइदा, आयतें—82-85।

الْأَسْمَاءُ الْحُسْنَىٰ ۚ وَلَا تَجْهَرْ بِصَلَاتِكَ وَلَا تُخَافِتْ بِهَا وَابْتَغِ بَيْنَ
ذَٰلِكَ سَبِيلًا ﴿١١٠﴾ وَقُلِ الْحَمْدُ لِلَّهِ الَّذِي لَمْ يَتَّخِذْ وَلَدًا وَلَمْ يَكُن لَّهُ
شَرِيكٌ فِي الْمُلْكِ وَلَمْ يَكُن لَّهُ وَلِيٌّ مِّنَ الذُّلِّ ۖ وَكَبِّرْهُ تَكْبِيرًا ﴿١١١﴾ ع ۱۱ ۱۲

से भी पुकारो उसके लिए सब अच्छे ही नाम हैं।"[123] और अपनी नमाज़ न ज़्यादा ऊँची आवाज़ से पढ़ो और न ज़्यादा धीमी आवाज़ से, इन दोनों के बीच औसत दर्जे का लहजा (स्वर) अपनाओ।[124] (111) और कहो, तारीफ़ है उस अल्लाह के लिए जिसने न किसी को बेटा बनाया, न कोई बादशाही में उसका शरीक है और न वह बेबस है कि कोई उसका सहारा हो।[125] और उसकी बड़ाई बयान करो, सबसे ऊँचे दर्जे की बड़ाई।"

123. यह जवाब है मुशरिकों के इस एतिराज़ का कि ख़ालिक़ (पैदा करनेवाले) के लिए "अल्लाह" का नाम तो हमने सुना था, मगर यह "रहमान" का नाम तुमने कहाँ से निकाला? उनके यहाँ चूँकि अल्लाह तआला के लिए यह नाम राइज न था, इसलिए वे इसपर नाक-भौं चढ़ाते थे।

124. इब्ने-अब्बास (रज़ि.) का बयान है कि मक्का में जब नबी (सल्ल.) या दूसरे सहाबा नमाज़ पढ़ते वक़्त बुलन्द आवाज़ से क़ुरआन पढ़ते थे तो इस्लाम-दुश्मन शोर मचाने लगते और कई बार गालियों की बौछार शुरू कर देते थे। इसपर हुक्म हुआ कि न तो इतने ज़ोर से पढ़ो कि इस्लाम को न माननेवाले सुनकर हँगामा करें और न इतने ज़्यादा धीमे पढ़ो कि तुम्हारे अपने साथी भी न सुन सकें। यह हुक्म सिर्फ़ उन्हीं हालात के लिए था। मदीना में जब हालात बदल गए तो यह हुक्म बाक़ी न रहा। अलबत्ता जब कभी मुसलमानों को मक्का के जैसे हालात का सामना करना पड़े, उन्हें इसी हिदायत के मुताबिक़ अमल करना चाहिए।

125. इस जुमले में एक लतीफ़ (सूक्ष्म) तंज़ है उन मुशरिकों के अक़ीदों पर जो अलग-अलग देवताओं और बुज़ुर्ग इनसानों के बारे में यह समझते हैं कि अल्लाह मियाँ ने अपनी ख़ुदाई के अलग-अलग शोबे या अपनी सल्तनत के मुख़्तलिफ़ इलाक़े उनके इन्तिज़ाम में दे रखे हैं। इस बेकार के अक़ीदे का साफ़ मतलब यह है कि अल्लाह तआला ख़ुद अपनी ख़ुदाई का बोझ नहीं संभाल सकता इसलिए वह अपने मददगार तलाश कर रहा है। इसी वजह से कहा गया कि अल्लाह बेबस नहीं है कि उसे कुछ डिपूटियों और मददगारों की ज़रूरत हो।

☆☆☆

इण्डेक्स
तफ़हीमुल-क़ुरआन-2

अ

● अख़लाक़ और अख़लाक़ी तालीमात

★ दीन में अख़लाक़ की अहमियत
सूरा-16, आ-94, 95, हा-95

★ इस बात को मानने के अख़लाक़ी नतीजे कि अल्लाह को हर मौजूद और ग़ैब कि बातों का इल्म है
सूरा-11, आ-4, 5, हा-3, 4

★ वे बेहतरीन अख़लाक़ जो एक मुसलमान के अन्दर पाए जाने चाहिएँ
सूरा-13, आ-19 से 22, हा-36 से 40; सूरा-14, आ-5, हा-10; सूरा-16, आ-90, 91, हा-88

★ वे बुराइयाँ जिनसे रोका गया है
सूरा-13, आ-25; सूरा-16, आ-90, 91, हा-88, 89

★ नेक लोगों के अख़लाक़ और फ़ासिक़ों के अख़लाक़ का फ़र्क़
सूरा-7, हा-33; सूरा-11, आ-9 से 11, हा-10, 11

★ समाज को बिगाड़नेवाले असबाब (कारक) और उनकी रोकथाम
सूरा-17, आ-16, 17, हा-18

★ समाज में अधिकारों का वसीअ् (व्यापक) तसव्वुर
सूरा-17, आ-23 से 37, हा-28

★ अमानत का व्यापक अर्थ
सूरा-8, आ-27, हा-22

★ मक़सद की पाकी के साथ ज़राए (साधन) भी पाक होने चाहिएँ
सूरा-16, हा-92

★ फ़र्ज़ पहचानने की अहमियत
सूरा-9, हा-119

★ सब्र की अख़लाक़ी अहमियत
सूरा-11, आ-11, हा-11

★ फ़ैयाज़ी (दानशीलता) और तवाज़ो (विनम्रता और सत्कार) की शिक्षा
सूरा-17, आ-26 से 28

★ ख़र्च में बीच की राह अपनाने की तालीम
सूरा-17, आ-29, हा-29

★ समाजी ज़िन्दगी में इनसाफ़ और एहसान की तालीम
सूरा-16, आ-90, हा-88

★ शर्म इनसानी फ़ितरत (प्रकृति) का तक़ाज़ा है
सूरा-7, आ-22, हा-13

★ नसीहत को ग़लत रंग में लेने का नुक़सान
सूरा-11, हा-39

★ मुआहिदों (सन्धियों) की पाबन्दी का हुक्म
सूरा-8, आ-58, हा-43; सूरा-16 आ-91, 95; सूरा-17, आ-34, हा-39

★ वादा तोड़ना बहुत बड़ा गुनाह है
सूरा-8, आ-56; सूरा-16, आ-95

★ अहदो-पैमान को धोखा देने का ज़रिआ नहीं बनाना चाहिए
सूरा-16, आ-94, हा-95

★ क़ौमी फ़ायदों और हितों के लिए अहद को तोड़ना बहुत बड़ा गुनाह है
सूरा-16, आ-92, हा-91

★ मज़हबी बहानों से अहद तोड़ना ख़ुदा के यहाँ क़बूल नहीं
सूरा-16, आ-92, हा-92

★ मुसलमान अगर अहद तोड़ें तो दोहरे मुजरिम हैं
सूरा-16, आ-94

★ फ़साद फैलानेवालों की पैरवी की मुख़ालिफ़त
सूरा-7, आ-142

★ अमानत में ख़ियानत की मनाही
सूरा-8, आ-27, 58

★ फ़ुज़ूलख़र्ची की मनाही
सूरा-17, आ-26, 29, हा-28, 29

★ बुख़्ल और कंजूसी की मनाही
सूरा-17, आ-29, हा-29

★ ज़िना (व्यभिचार) से बचने का हुक्म
सूरा-17, आ-32, हा-32

★ समलैंगिकता (अमले-क़ौमे-लूत) की बुराई
सूरा-7, आ-81, हा-64

★ घमण्ड की मज़म्मत (भर्त्सना)

सूरा-7, आ-13, 146, हा-104; सूरा-16, आ-23; सूरा-17, आ-37, हा-43
★ सिर्फ़ गुमान की बुनियाद पर किसी के ख़िलाफ़ कार्यवाही नहीं करनी चाहिए
सूरा-17, आ-36, हा-42; ज़्यादा जानकारी के लिए देखें 'बन्दों के अधिकार', 'क़ुरआनः इसका अख़लाक़ी नुक़्ता-ए-नज़र' और 'इसका फ़लसफ़ा-ए-अख़लाक़'
● अज्र (इनाम)
★ कैसे लोग इसके हक़दार हैं?
सूरा-8, आ-27, 28; सूरा-11, आ-11, हा-12; सूरा-12, आ-57, हा-49
★ अल्लाह के यहाँ किसी हक़दार का अज्र मारा नहीं जाता
सूरा-7, आ-170; सूरा-9, आ-120; सूरा-11, आ-115; सूरा-12, आ-56, 90
★ अल्लाह नेकी का अज्र आदमी के अमल से ज़्यादा देता है
सूरा-10, आ-26, हा-33
★ नेकी का बदला देने में अल्लाह का क़ानून बुराई की सज़ा से अलग है
सूरा-9, आ-120, 121; सूरा-10, आ-26, 27, हा-33; सूरा-16, आ-96, 97
★ अल्लाह के पास बहुत बड़ा अज्र है
सूरा-8, आ-28; सूरा-9, आ-22
★ बड़ा अज्र कैसे लोगों के लिए है?
सूरा-17, आ-9
★ अस्ल अहमियत आख़िरत के अज्र की है
सूरा-12, आ-57
★ सब्र का अज्र
सूरा-16, आ-96, हा-98
★ ईमान और नेक आमाल (कर्मों) का अज्र
सूरा-16, आ-97
● अज़ाब
★ गुमराह लोगों के लिए दुनिया ही में अज़ाब है
सूरा-13, आ-33, 34
★ बड़े अज़ाब से पहले छोटे-छोटे अज़ाब तंबीह के तौर पर आते हैं
सूरा-13, आ-31
★ दुनिया में आनेवाले अज़ाब की हिकमत
सूरा-11, हा-40
★ दुनिया के अज़ाब की असल हैसियत
सूरा-7, हा-6; सूरा-11, हा-105
★ सज़ा देने से पहले अल्लाह नाफ़रमानों को सम्भलने के लिए काफ़ी मुहलत देता है
सूरा-10, आ-11, 12, हा-15; सूरा-10, हा-30; सूरा-13, आ-31, 32; सूरा-15, आ-3, 4, हा-2; सूरा-16, आ-61
★ दुनिया में अज़ाब नाज़िल होने का क़ानून
सूरा-7, आ-4, 5, 59, हा-50; सूरा-7, आ-73, हा-65; सूरा-7, आ-94, 95, हा-77; सूरा-7, आ-97 से 99, 130 से 136, 162 से 167, 182, 183; सूरा-8, आ-25, हा-20; सूरा-8, आ-32 से 34, 52 से 55; सूरा-9, आ-38, 39; सूरा-10, आ-11 से 14; सूरा-10, आ-50, 98, 102; सूरा-11 का परिचय; सूरा-11, आ-37, हा-40, 49; सूरा-11, आ-59, 60, 64, 81 से 83, 94, 95, 99, 102, 116, 117, हा-115; सूरा-12, आ-110; सूरा-13, आ-31, 32; सूरा-14, आ-7, 8; सूरा-15, आ-3, 4, हा-2; सूरा-16, आ-26, 45 से 47, 61; सूरा-17, आ-15, 16, 58
★ दुनिया में अज़ाब नाज़िल होने की मुख़्तलिफ़ शक्लें
सूरा-7, आ-64, 78, 84, 91, 95, 96, 130 से 136, 152, 167; सूरा-8, आ-35, हा-29; सूरा-8, आ-54; सूरा-9, आ-14, 26, 39, 52, 55, 85, 101; सूरा-10, आ-13, 73, 90 से 92; सूरा-11, आ-36 से 44, 67, हा-88; सूरा-11, आ-83, 94, 95; सूरा-15, आ-60, 73, 74; सूरा-16, आ-45, 46
★ ख़ुदा का अज़ाब ऐसे रुख़ से आता है जिधर आदमी का वहमो-गुमान भी नहीं जा सकता
सूरा-16, आ-26, 45
★ नबी के झुठलाने पर अज़ाब कब नाज़िल होता है?
सूरा-8, आ-33, हा-27; सूरा-11, आ-36, 37
★ अज़ाब से सचेत करने के अख़लाक़ी फ़ायदे
सूरा-12, हा-75
★ अल्लाह के अज़ाब की शिद्दत
सूरा-10, आ-50 से 52; सूरा-15, आ-50
★ अल्लाह के अज़ाब से बेफ़िक्र न होना चाहिए
सूरा-12, आ-107, हा-77
★ ख़ुदा का अज़ाब टाला नहीं जा सकता
सूरा-10, आ-53; सूरा-11, आ-8, 33, 76; सूरा-12, आ-110

★ इससे कोई बचा नहीं रह सकता
सूरा-11, आ-43; सूरा-13, आ-34
★ क़ब्र के अज़ाब (यानी बरज़ख़ के अज़ाब) का सुबूत
सूरा-8, आ-50; सूरा-16, आ-28, 29
★ आख़िरत में अज़ाब का क़ानून
सूरा-7, आ-37 से 41; सूरा-8, आ-50; सूरा-17, आ-15
★ आख़िरत का अज़ाब कैसे लोगों के लिए है?
सूरा-9, आ-34, 61, 68, 79, 90, 101; सूरा-10, आ-4, 52, 70; सूरा-11, आ-3, 20; सूरा-13, आ-34, 35; सूरा-14, आ-2, 3, 22; सूरा-16, आ-27, 88
★ दर्दनाक अज़ाब के हक़दार कौन हैं?
सूरा-16, आ-63, 104, 116, 117; सूरा-17, आ-10
★ अज़ाबे-अज़ीम (बड़ी यातना) किन लोगों के लिए है?
सूरा-16, आ-94, 106
★ हमेशगी का अज़ाब
सूरा-10, आ-52
★ उसकी कैफ़ियत
सूरा-16, आ-84, 85
★ उससे बचानेवाला कोई नहीं
सूरा-14, आ-21, हा-29
★ वह है ही डरने के लायक़ चीज़
सूरा-17, आ-57
● अद्ल (न्याय)
★ मानी और तशरीह और समाज में इसकी अहमियत
सूरा-16, हा-88
● अनसार
★ उन्होंने किन हौसलों के साथ नबी (सल्ल.) को मदीना आने की दावत दी थी?
सूरा-8 का परिचय
★ उनको इस्लाम-दुश्मनों का अल्टिमेटम
सूरा-8 परिचय
★ जंगे-बद्र में उनकी जाँनिसारी
सूरा-8 का परिचय
★ इस्लाम ने उनकी आपस की दुश्मनी को किस तरह ख़त्म किया?
सूरा-8, आ-63, हा-46
● अमले-सालेह (नेक अमल)
★ इसके मानी
सूरा-9, आ-120
★ सालेहीन (नेक लोगों) की सिफ़ात
सूरा-11, आ-11
★ इसका नेक अंजाम
सूरा-7, आ-35; और जानकारी के लिए देखें 'ईमान'
● अम्र-बिल-मारूफ़ व नह्य अनिल-मुनकर
★ इसकी अहमियत इनसानी ज़िन्दगी में
सूरा-7, आ-164 से 166, हा-125; सूरा-11, हा-115; सूरा-15, हा-39
★ वह अहले-ईमान की ख़ुसूसियत है
सूरा-9, आ-71, 112
★ वह नबी (सल्ल.) की दावत का एक अहम पहलू है
सूरा-7, आ-157
● अम्बिया
देखें 'नुबूवत'
● अरब
★ जाहिलियत में उनकी रस्में
सूरा-7, हा-15; सूरा-9 का परिचय; सूरा-9, हा-1; सूरा-9, आ-37, हा-37
★ वे अपनी इन रस्मों को ख़ुदा के दीन की तालीम समझते थे
सूरा-7, आ-28, हा-17, 18
★ उनका शिर्क किस नौइयत का था? (देखें 'शिर्क : अरब के मुशरिकों का शिर्क किस नौइयत का था?')
★ उनके जाहिलाना ख़यालात
सूरा-7, हा-18; सूरा-10, आ-18
★ उनका इबादत का तरीक़ा
सूरा-8, आ-35, हा-28
★ उनके यहाँ औरतों की हैसियत
सूरा-16, आ-57 से 59, हा-52
★ उनका अपने बाप-दादा की पैरवी करने पर इसरार
सूरा-7, आ-28
★ इस्लामी हुकूमत की इब्तिदा में बद्दुओं की हालत
सूरा-9, आ-97, हा-95
★ अरब से जिहालत दूर करने के लिए इस्लामी हुकूमत की कोशिशें
सूरा-9, हा-120
★ वह हमागीर (सर्वव्यापी) इंक़िलाब जो इस्लाम ने अरब में बरपा किया
सूरा-9, हा-54, 57; ज़्यादा जानकारी के लिए देखें 'शिर्क' और 'मुहम्मद' (सल्ल.)

● अर्श

★ अल्लाह के अर्श पर मुस्तवी (बैठने) होने का मतलब
सूरा-7, आ-54, हा-41; सूरा-10, आ-3, हा-4

★ क़ुरआन में 'इस्तवा अलल-अर्श' (अर्श पर विराजमान) होने का मज़मून बार-बार किस लिए बयान किया गया है?
सूरा-7, आ-54, हा-41; सूरा-13, आ-2, हा-3

★ अर्शे-अज़ीम
सूरा-9, आ-129

★ उसके पानी पर होने का मतलब
सूरा-11, आ-7, हा-7

● अल्लाह

★ हाकिमों का हाकिम
सूरा-11, आ-45, हा-48

★ रहम करनेवाला बड़ा रहीम (अरहमुर-राहिमीन)
सूरा-7, आ-151; सूरा-12, आ-64, 92

★ देखनेवाला (बसीर)
सूरा-8, आ-39; सूरा-17, आ-1, 17, 30, 96,

★ तौबा क़बूल करनेवाला, पलटकर रुजूअ करनेवाला
सूरा-9, आ-104, 118

★ हकीम (हिकमतवाला)
सूरा-8, आ-10, 49, 63, 67, 71; सूरा-9, आ-15, 28, 40, 60, 71, 97, 106, 110; सूरा-11, आ-1; सूरा-12, आ-6, 83, 100; सूरा-14, आ-4, हा-7; सूरा-15, आ-25, हा-16; सूरा-16, आ-60

★ हलीम
सूरा-17, आ-44, हा-50

★ हमीद
सूरा-11, आ-73; सूरा-14, आ-1, 8, हा-2

★ ख़बीर
सूरा-11, आ-1; सूरा-17, आ-17, 30, 96

★ ख़ल्लाक़
सूरा-15, आ-86, हा-48

★ ख़ैरुल-हाकिमीन
सूरा-7, आ-87; सूरा-10, आ-109; सूरा-12, आ-80

★ ख़ैरुल-ग़ाफ़िरीन
सूरा-7, आ-155

★ ख़ैरुल-फ़ातिहीन
सूरा-7, आ-89

★ ख़ैरुल-माकिरीन
सूरा-8, आ-30 (उसके लिए शब्द मकर किस मानी में इस्तेमाल होता है सूरा-10, हा-30)

★ ज़मीन और आसमानों का रब (रब्बुस्समावाति वल अर्ज़)
सूरा-13, आ-16; सूरा-17, आ-102

★ तमाम जहानों का रब (रब्बुल-आलमीन)
सूरा-7, आ-54, 61, 67, 104, 121; सूरा-10, आ-37

★ रहमान
सूरा-13, आ-30; सूरा-17, आ-110

★ रहीम
सूरा-7, आ-153, 167; सूरा-8, आ-69, 70; सूरा-9, आ-5, 27, 91, 99, 102, 104, 117, 118; सूरा-10, आ-107; सूरा-11, आ-41, 90; सूरा-12, आ-53, 98; सूरा-14, आ-36, हा-49; सूरा-15, आ-49; सूरा-16, आ-7, 47, 110, 115, 119; सूरा-17, आ-66

★ रऊफ़ (माफ़ करनेवाला)
सूरा-9, आ-117; सूरा-16, आ-7, 47

★ सरीउल-हिसाब (जल्द हिसाब करनेवाला)
सूरा-13, आ-41; सूरा-14, आ-51

★ सरीउल-इक़ाब
सूरा-7, आ-167

★ समीअ (सुननेवाला)
सूरा-7, आ-200; सूरा-8, आ-17, 42, 53, 61; सूरा-9, आ-98, 103; सूरा-10, आ-65; सूरा-12, आ-34; सूरा-17, आ-1

★ शदीदुल-इक़ाब
सूरा-8, आ-13, 25, 48, 52; सूरा-13, आ-6

★ आलिमुल-ग़ैब वश्शहादा
सूरा-9, आ-94, 105; सूरा-13, आ-9

★ अज़ीज़
सूरा-8, आ-10, 49, 63, 67; सूरा-9, आ-40, 71; सूरा-11, आ-66; सूरा-14, आ-1, 4, 47; सूरा-16, आ-60

★ अल्लामुल-ग़ुयूब
सूरा-9, आ-78

★ अलीम (सब कुछ जाननेवाला)
सूरा-7, आ-200; सूरा-8, आ-17, 42, 53, 61, 71; सूरा-9, आ-15, 28, 60, 97, 98, 103, 106, 110; सूरा-10, आ-65; सूरा-12, आ-6, 34, 83, 100; सूरा-15, आ-25, 86; सूरा-16, आ-70

★ ग़फ़ूर

सूरा-7, आ-153, 167; सूरा-8, आ-69, 70; सूरा-9, आ-5, 27, 91, 99, 102; सूरा-10, आ-107; सूरा-11, आ-41; सूरा-12, आ-53, 98; सूरा-14, आ-36; सूरा-15, आ-49; सूरा-16, आ-110, 115, 119; सूरा-17, आ-25, 44

★ ग़नी

सूरा-10, आ-68; सूरा-14, आ-8

★ फ़ातिरुस्-समावाति वल अर्ज़

सूरा-12, आ-101; सूरा-14, आ-10

★ क़दीर (क़ुदरतवाला)

सूरा-16, आ-70

★ क़वी (क़ुव्वतवाला)

सूरा-8, आ-52; सूरा-11, आ-66

★ क़ह्हार (ज़बरदस्त)

सूरा-12, आ-39; सूरा-13, आ-16; सूरा-14, आ-48

★ कबीर

सूरा-13, आ-9

★ मुतआल

सूरा-13, आ-9

★ मजीद

सूरा-11, आ-73

★ वाहिद

सूरा-12, आ-39; सूरा-13, आ-16; सूरा-14, आ-48

★ वदूद

सूरा-11, आ-90

★ बड़ी बरकतवाला

सूरा-7, आ-54, हा-43

★ बड़े अज्रवाला

सूरा-8, आ-28

★ बड़ा फ़ज़्ल फ़रमानेवाला

सूरा-8, आ-29

★ हर ऐब, नुक़्स और कमज़ोरी से पाक

सूरा-12, आ-108, हा-78

★ उसी के लिए हम्द है

सूरा-17, आ-111

★ उसके लिए आला सिफ़ात हैं

सूरा-16, आ-60

★ उसके लिए अच्छे ही नाम हैं

सूरा-7, आ-180; सूरा-17, आ-110

★ उसकी सिफ़ात तमाम मख़लूक़ात (सृष्टि) की सिफ़ात का मम्बअ (स्रोत) हैं

सूरा-15, हा-19

★ उसको दुनियावी बादशाहों जैसा समझना सही नहीं

सूरा-16, आ-74, हा-65

★ ख़ुदाई सिफ़ात और इनसानी सिफ़ात का फ़र्क़

सूरा-17, हा-1

★ इनसानी आँख उसे नहीं देख सकती

सूरा-7, आ-143

★ वह सीधे रास्ते पर है

सूरा-11, आ-56, हा-63

★ ज़मीन और आसमान की हर चीज़ उसकी तसबीह (महिमागान) कर रही है

सूरा-17, आ-44, हा-49

★ ज़मीन और आसमान की हर चीज़ उसके आगे अपना सिर झुकाए हुए है

सूरा-13, आ-15, हा-24; सूरा-16, आ-48, 49, हा-42

★ तमाम मख़लूक़ात उसके आगे झुकी हुई हैं

सूरा-16, आ-49, हा-42

★ वह बन्दों के क़रीब है

सूरा-11, आ-61

★ दुआएँ सुनता और उनका जवाब देता है

सूरा-11, आ-61, हा-69; सूरा-14, आ-39

★ उससे बढ़कर अपने वादों का पूरा करनेवाला नहीं

सूरा-9, आ-111

★ वह अपने वादों को नहीं तोड़ता

सूरा-13, आ-31

★ वही मलजा व मावा (पनाह मिलने की जगह) है

सूरा-13, आ-30

★ बेहतरीन सहायक और मददगार, बेहतरीन मुहाफ़िज़

सूरा-8, आ-40; सूरा-12, आ-64

★ ईमानवालों का मौला (सरपरस्त)

सूरा-9, आ-51

★ उसके सिवा कोई माबूद नहीं

सूरा-7, आ-59, 65, 73, 85, 140, 158; सूरा-9, आ-31, 129; सूरा-11, आ-14, 50, 61, 84; सूरा-13, आ-30; सूरा-14, आ-52; सूरा-16, आ-2, 22, 51

★ वही इबादत का हक़दार है

सूरा-7, आ-59, 65, 73, 85; सूरा-9, आ-31; सूरा-10, आ-3; सूरा-11, आ-2, 26, 50, 61, 84, 123; सूरा-12, आ-40

★ उसके सिवा किसी को माबूद न बनाया जाए
सूरा-17, आ-23, हा-26; सूरा-17, आ-39
★ वह इससे बालातर है कि कोई उसका शरीक हो
सूरा-16, आ-1, हा-2
★ बादशाही में कोई उसका शरीक नहीं
सूरा-17, आ-111
★ उसका कोई बेटा नहीं
सूरा-10, आ-68, हा-68; सूरा-17, आ-111
★ उसके सिवा किसी को 'वकील' (कारसाज़) न बनाया जाए
सूरा-17, आ-2, हा-3
★ उसके सिवा किसी से दुआ न माँगी जाए
सूरा-13, आ-14, हा-23
★ उसी की मदद माँगनी चाहिए
सूरा-7, आ-128
★ उसी की पनाह माँगनी चाहिए
सूरा-7, आ-200; सूरा-16, आ-98
★ ख़ौफ़ और चाह उसी से होनी चाहिए
सूरा-7, आ-56, हा-45
★ उसी के ग़ज़ब से डरना चाहिए
सूरा-9, आ-13
★ उसी पर भरोसा करना चाहिए
सूरा-8, आ-61; सूरा-9, आ-51, 129
★ वही भरोसे के लिए काफ़ी है
सूरा-17, आ-65, हा-81
★ वही मदद के लिए काफ़ी है
सूरा-8, आ-62 से 64; सूरा-9, आ-129; सूरा-15, आ-95
★ उस पर भरोसा करना कभी ग़लत साबित न होगा
सूरा-17, आ-65, हा-81
★ उसकी इजाज़त के बग़ैर कोई सिफ़ारिश नहीं कर सकता
सूरा-10, आ-3, हा-5
★ फ़िक्र उसी की रिज़ा की होनी चाहिए
सूरा-9, आ-96
★ उसकी ख़ुशी सबसे बड़ी नेमत है
सूरा-9, आ-72
★ उसको अपना वली (सरपरस्त) न बनानेवाले गुमराह हैं
सूरा-7, आ-30
★ वह दुनिया की हर चीज़ की रहनुमाई करता है
सूरा-16, आ-68, हा-56

★ वही सही रहनुमाई करनेवाला है
सूरा-10, आ-35
★ सीधा रास्ता बताना उसके ज़िम्मे है
सूरा-16, आ-9
★ इनसान की भलाई उसी की हिदायत की पैरवी में है
सूरा-7, आ-3, हा-4; सूरा-10, आ-108, 109
★ वह अपने बन्दों से बड़ी मुहब्बत रखता है
सूरा-11, आ-90, हा-101
★ उसकी रहमत हर चीज़ पर छाई हुई है
सूरा-7, आ-156, हा-111
★ उसकी फ़रमाँरवाई में असल चीज़ रहम है न कि ग़ज़ब
सूरा-7, आ-156, हा-111
★ उसकी रहमत से मायूस होना काफ़िरों और गुमराहों का काम है
सूरा-12, आ-87; सूरा-15, आ-56
★ वह बहुत दरगुज़र करनेवाला है
सूरा-13, आ-6
★ वह अपने बन्दों की तौबा क़बूल करता है
सूरा-9, आ-104
★ गुनाहगार बन्दे की तौबा उसे बहुत ही महबूब है
सूरा-9, आ-118, हा-119
★ वह सज़ा देने में जल्दी नहीं करता, बल्कि सम्भलने के लिए मुहलत पर मुहलत देता है
सूरा-10, आ-11, हा-15, 30; सूरा-13, आ-31, 32; सूरा-15, आ-4, हा-2; सूरा-16, आ-61
★ उसकी शाने-हलीमी व ग़फ़्फ़ारी
सूरा-17, आ-44, हा-50
★ उसकी बेपायाँ रहमत और शाने-करीमी
सूरा-16, हा-18
★ इनसान पर उसके एहसानात
सूरा-14, आ-32 से 34; सूरा-16, आ-4 से 16, 78 से 81; सूरा-17, आ-66 से 70 हा-83
★ इनसान उसके सामने जवाबदेह है
सूरा-7, आ-6, हा-6; सूरा-11, आ-18; सूरा-15, आ-92, 93; सूरा-16, आ-56, 93, सूरा-17, आ-15, 36, हा-16
★ उसी की तरफ़ सबको पलटकर आना है
सूरा-10, आ-4, हा-8; सूरा-10, आ-23, 46, 56; सूरा-11, आ-4, 34
★ वह बन्दों के हक़ में ज़ालिम नहीं है

सूरा-8, आ-51; सूरा-9, आ-70, हा-79; सूरा-10, आ-44, हा-52; सूरा-11, आ-101, 117, हा-115

★ उसका इनसाफ़ बेलाग है
सूरा-7, आ-83, 84; सूरा-9, आ-120, 121; सूरा-11 का परिचय; सूरा-11, आ-42 से 47, हा-51, 84, 90

★ वह नेक किरदार लोगों की नाक़द्री नहीं करता
सूरा-11, आ-3, हा-3

★ उसके यहाँ किसी मुस्तहिक़ का अज्र मारा नहीं जाता
सूरा-7, आ-170; सूरा-9, आ-120; सूरा-11, आ-115; सूरा-12, आ-56, 90

★ वह भलाई का अज्र आदमी के अमल से ज़्यादा देता है
सूरा-9, आ-120, 121; सूरा-10, आ-26, हा-33

★ वह किसी को उसके जुर्म से बढ़कर सज़ा नहीं देता
सूरा-10, आ-27, हा-34

★ वह इन्तिक़ाम लेनेवाला है
सूरा-14, आ-47

★ उसकी पकड़ बड़ी सख़्त है
सूरा-11, आ-102

★ वह बेहयाई का हुक्म नहीं देता
सूरा-7, आ-28, हा-18

★ वह हद से गुज़रनेवालों को पसन्द नहीं करता
सूरा-7, आ-31, 55

★ वह फ़ासिक़ों को पसन्द नहीं करता
सूरा-9, आ-96

★ वह मुतकब्बिरों को पसन्द नहीं करता
सूरा-16, आ-23

★ वह ख़ियानत करनेवालों को पसन्द नहीं करता
सूरा-8, आ-58

★ उसके ग़ज़ब के हक़दार कैसे लोग हैं?
सूरा-7, आ-71, 152; सूरा-8, आ-16

★ वह सिर्फ़ पाकीज़ा लोगों को पसन्द करता है
सूरा-9, आ-108

★ वह मुत्तक़ियों को पसन्द करता है
सूरा-9, आ-4, 7

★ वह मुहसिनों के साथ है
सूरा-16, आ-128

★ वह तमाम चीज़ों का ख़ालिक़ (पैदा करनेवाला) है
सूरा-7, आ-54, 189; सूरा-9, आ-36; सूरा-10, आ-3, 34; सूरा-11, आ-7, 61; सूरा-13, आ-16; सूरा-14, आ-32, 33; सूरा-16, आ-3 से 5; सूरा-17, आ-99

★ उसने कायनात को बे-मक़सद नहीं बनाया है
सूरा-10, आ-5

★ उसने आसमान और ज़मीन को बरहक़ पैदा किया है
सूरा-14, आ-19, हा-26; सूरा-15, आ-85; सूरा-16, आ-3

★ उसी ने इनसान को ज़मीन पर बसाया है
सूरा-11, आ-61, हा-67

★ वही इनसान का मालिक और रब है
सूरा-7, आ-54; सूरा-10, आ-3, 30, 32; सूरा-11, आ-34, 56; सूरा-13, आ-30

★ वही सारी कायनात का मालिक, मुन्तज़िम (प्रबन्धकर्ता) और फ़रमाँरवा है
सूरा-7, आ-54, हा-41, 42; सूरा-7, आ-128, 158; सूरा-9, आ-116, 129; सूरा-10, आ-3, 31, 55, 66, 68; सूरा-12, आ-40, 67; सूरा-13, आ-2, 16, 41; सूरा-14, आ-2; सूरा-16, आ-12 से 14 और 51 से 53; सूरा-17, हा-47

★ हर चीज़ के ख़ज़ानों का मालिक
सूरा-15, आ-21

★ हर चीज़ की तक़दीर मुक़र्रर करनेवाला
सूरा-15, आ-21, हा-14

★ हर चीज़ पर निगराँ
सूरा-11, आ-57

★ हर चीज़ पर वकील
सूरा-11, आ-12

★ तमाम इख़्तियारात उसी के हाथ में हैं
सूरा-13, आ-31

★ तमाम मामलात फ़ैसले के लिए उसी की तरफ़ रुजूअ होते हैं
सूरा-8, आ-44; सूरा-11, आ-123

★ उसके फ़ैसले अटल हैं
सूरा-13, आ-11

★ कोई उसके फ़ैसलों पर नज़रे-सानी करनेवाला नहीं
सूरा-13, आ-41

★ वह बेनियाज़ है, इसका मुहताज नहीं है कि लोग उसको ख़ुदा मानें तब ही वह ख़ुदा हो
सूरा-10, आ-68; सूरा-14, आ-8, हा-13

★ उसके इख़्तियारात ग़ैरमहदूद हैं
सूरा-11, आ-107

★ हर चीज़ पर क़ादिर
सूरा-8, आ-41; सूरा-9, आ-39; सूरा-11, आ-4; सूरा-16, आ-77

★ आसमान और ज़मीन में जो कुछ छिपा हुआ है उसी के क़ब्ज़ा-ए-क़ुदरत में है
सूरा-11, आ-123

★ वह आजिज़ (मजबूर) नहीं
सूरा-17, आ-111

★ उसके लिए कोई बात नामुमकिन नहीं
सूरा-17, हा-1

★ सिर्फ़ उसका हुक्म ही उसके इरादे को पूरा करने के लिए काफ़ी है
सूरा-16, आ-40, हा-36

★ उसके लिए एक क़ौम को हटाकर दूसरी क़ौम को ले आना कुछ मुश्किल नहीं
सूरा-14, आ-19, 20, हा-27

★ उसकी पकड़ से कोई बचा नहीं सकता
सूरा-13, आ-34, 37

★ उसकी गिरिफ़्त से कोई बाहर नहीं
सूरा-8, आ-47; सूरा-11, आ-56, 92; सूरा-15, हा-48

★ उसकी चाल का कोई तोड़ नहीं, उसकी चालें ज़बरदस्त हैं
सूरा-7, आ-183; सूरा-13, आ-13, हा-22; सूरा-13, आ-42

★ उसके मुक़ाबले में किसी की कोई तदबीर नहीं चल सकती
सूरा-8, आ-59; सूरा-9, आ-2, 3; सूरा-11, आ-33; सूरा-12 का परिचय; सूरा-12, आ-67, 68, हा-54; सूरा-13, आ-11; सूरा-14, आ-46; सूरा-16, आ-46, 47

★ उसके मुक़ाबले में कोई किसी की मदद नहीं कर सकता
सूरा-9, आ-116; सूरा-11, आ-113; सूरा-13, आ-11

★ वह जिसके साथ हो उसका कोई मुक़ाबला नहीं कर सकता
सूरा-8, आ-19

★ उसका कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता
सूरा-9, आ-39; सूरा-11, आ-57

★ उसकी बातें बदल नहीं सकतीं
सूरा-10, आ-64

★ उसी का बोल-बाला है
सूरा-9, आ-40

★ फ़तह व कामरानी उसी के बख़्शने से हासिल होती है
सूरा-8, आ-10, 66

★ वह अपना काम करके रहता है
सूरा-12, आ-21

★ वह ग़ैर महसूस तरीक़े से अपनी मरज़ी पूरी करता है
सूरा-7, आ-99, हा-78; सूरा-7, आ-182, 183; सूरा-12, आ-100

★ इज़्ज़त सारी की सारी उसी के इख़्तियार में है
सूरा-10, आ-65

★ उसकी मरज़ी के बग़ैर कोई नेमत किसी को नहीं मिल सकती
सूरा-10, आ-100, हा-103

★ उसकी डाली हुई मुसीबत को कोई दूर नहीं कर सकता
सूरा-10, आ-107

★ ज़िन्दगी और मौत उसी के इख़्तियार में है
सूरा-7, आ-158; सूरा-9, आ-116; सूरा-10, आ-31, 56; सूरा-15, आ-23; सूरा-16, आ-70

★ इनसान की समाअत (सुनने की ताक़त) और बीनाई (देखने की ताक़त) का मालिक व मुख़्तार वही है
सूरा-10, आ-31

★ वह जो चाहता है करता है
सूरा-14, आ-27

★ जिसको चाहता है अपनी ज़मीन का वारिस बनाता है
सूरा-7, आ-128, 137

★ जो कुछ वह चाहता है वही होता है
सूरा-7, आ-188; सूरा-10, आ-49; सूरा-11, आ-33, 34

★ अपनी रहमत से जिसको चाहे नवाज़े
सूरा-12, आ-56

★ जिस बन्दे पर चाहे फ़ज़्ल फ़रमाए
सूरा-10, आ-107

★ जिसे चाहे बुलन्द दर्जा दे
सूरा-12, आ-76

★ उसकी अता को रोकनेवाला कोई नहीं
सूरा-17, आ-20

★ वह जिसका भला करना चाहे उसे कोई रोक नहीं सकता
सूरा-10, आ-107

★ जिसे चाहे माफ़ करे और जिसे चाहे सज़ा दे
सूरा-7, आ-156; सूरा-9, आ-14, 15, 26, 27, 106; सूरा-11, आ-34; सूरा-17, आ-54, हा-60

★ उसकी क़ुदरत और हिकमत के करिश्मे
सूरा-7, आ-54, हा-40 से 43; सूरा-7, आ-57, 58; सूरा-10, आ-3, 5, 6, 31, 67; सूरा-11, आ-7; सूरा-13, आ-2, 4, 12, 13, 16; सूरा-14, आ-32 से 34; सूरा-15, आ-16 से 25; सूरा-16, आ-4 से 16, 66 से 69, 72, 79 से 82; सूरा-17, आ-66

★ दुनिया में जो कुछ किसी को मिल रहा है उसी के देने से मिल रहा है
सूरा-17, आ-20

★ वही रिज़्क़ देनेवाला है
सूरा-10, आ-31, 32; सूरा-13, आ-26; सूरा-16, आ-71, 72

★ हर जानदार का रिज़्क़ उसके ज़िम्मे है
सूरा-11, आ-6

★ रिज़्क़ की तंगी और कुशादगी उसी के इख़्तियार में है
सूरा-17, आ-30

★ आसमान और ज़मीन में जो कुछ है सबको वह जानता है
सूरा-16, आ-77

★ हर इल्म रखनेवाले से बड़ा इल्म रखनेवाला है
सूरा-12, आ-76

★ आसमान और ज़मीन की कोई चीज़ उससे छिपी हुई नहीं
सूरा-14, आ-38

★ उसका इल्म हर चीज़ पर हावी है
सूरा-7, आ-89; सूरा-8, आ-75; सूरा-9, आ-78, 115; सूरा-11, आ-5; सूरा-13, आ-8 से 10; सूरा-14, आ-38; सूरा-16, आ-23

★ तमाम मख़लूक़ात के हाल से बाख़बर है
सूरा-17, आ-55

★ हर जानदार के जीने और मरने की जगह को जानता है
सूरा-11, आ-6, हा-6

★ तमाम इनसानों के आमाल पर नज़र रखता है
सूरा-7, आ-7; सूरा-8, आ-72; सूरा-9, आ-16; सूरा-10, आ-36, 61, 65; सूरा-11, आ-111, 112, 123; सूरा-16, आ-28, 91; सूरा-17, आ-17, 30, 54, 96

★ एक-एक आदमी के हाल पर निगाह रखता है
सूरा-13, आ-33, हा-50; सूरा-13, आ-42

★ दिलों के छिपे भेद तक जानता है
सूरा-8, आ-24, हा-19; सूरा-8, आ-43; सूरा-11, आ-5, 31

★ तमाम अगली-पिछली नस्लों का हाल जानता है
सूरा-15, आ-24

★ नाफ़रमानों के करतूतों से वह ग़ाफ़िल नहीं है
सूरा-14, आ-42

★ उसकी मारिफ़त की निशानियाँ
देखें 'आयत'

★ उसकी हस्ती की दलीलें
देखें 'तौहीद' और 'शिर्क'

● **अशहुरे-हुरुम**
सूरा-9, आ-36

● **असबात**
सूरा-7, आ-160

● **असहाबुस-सब्त**
सूरा-7, आ-163 से 166, हा-122 से 126

● **अहकामुल-क़ुरआन**

★ उसूली अहकाम
सूरा-7, आ-3, हा-4; सूरा-7, आ-29 से 33, हा-19 से 26; सूरा-7, आ-56, हा-44, सूरा-7, आ-59, हा-48; सूरा-7, आ-65; सूरा-7, आ-73, 74, 85 से 87, 142 से 146, हा-102 से 105; सूरा-8, आ-20 से 25, हा-16 से 18; सूरा-8, आ-45 से 47, हा-37; सूरा-9, आ-23, 24, 36, 38, 39, 113, 119, 120; सूरा-10, आ-57 से 60, हा-60 से 63; सूरा-11, आ-85, हा-95, सूरा-11, आ-112 से 115; सूरा-16, आ-90 से 92, 106, 125 से 127, हा-88 से 91; सूरा-17, आ-22 से 37

★ अक़ीदों से मुताल्लिक़
सूरा-7, आ-158, 180, हा-142; सूरा-10, आ-101 से 107, हा-105 से 108; सूरा-12, आ-40, 41; सूरा-13, आ-36, सूरा-16, आ-36, हा-32; सूरा-17, आ-22, 23, 36

★ इबादतों से मुताल्लिक़
सूरा-7, आ-29, हा-19; सूरा-7 आ-31, हा-20; सूरा-7, आ-55; सूरा-7, आ-205, 206, हा-154 से 157; सूरा-9, आ-60, 108; सूरा-10, आ-3, सूरा-11, आ-26, 50, 61, 84; सूरा-11, आ-112, 114; सूरा-17, आ-23, हा-26; सूरा-17, आ-78, 79, हा-91 से 98

★ इस्लामी स्टेट और इस्लामी निज़ाम के बारे में देखें 'इस्लामी स्टेट' और 'इस्लाम का समाजी निज़ाम'

★ क़ानूनी एहकाम के लिए देखें 'क़ानूने-इस्लाम'

★ जंग के बारे मे देखें 'जिहाद', 'क़ानून' और 'अल्लाह के रास्ते में क़िताल'

★ अख़लाक़ के बारे में देखें 'अख़लाक़ और अख़लाक़ी तालीमात', 'क़ुरआन : इसका अख़लाक़ी नुक्ता-ए-नज़र, इसका फ़लसफ़ा-ए-अख़लाक़'

★ दावत और तबलीग़ के बारे में देखें 'हिकमते-तबलीग़', और 'दावते-हक़'

★ मसाजिद के बारे में देखें 'मस्जिदे-हराम' और 'मसाजिदुल्लाह'

★ तमद्दुन व मआशरत (सभ्यता और संस्कृति) के ताल्लुक़ से
सूरा-7, आ-26, 27; सूरा-9, आ-36, 37; सूरा-17, आ-23 से 29, 32 से 35, हा-36 से 38

★ मआशी (आर्थिक) मामलात के बारे में
सूरा-7, आ-85, 86, हा-70; सूरा-9, आ-34 से 35; सूरा-11, आ-84, 85, हा-96; सूरा-17, आ-26 से 35, हा-28 से 30, 40

★ विरासत के बारे में
सूरा-8, आ-75, हा-53

★ खाने-पीने की चीज़ों के बारे में
सूरा-10, आ-59, 60, हा-61; सूरा-16, आ-114, 115, हा-113, 114

● अहद

★ क़ुरआन में इसका वसीअ् (व्यापक) मतलब
सूरा-7, आ-102, हा-82

★ वह अहद जो कायनात की इब्तिदा में तमाम इनसानों से लिया गया था
सूरा-7, आ-172 से 174, हा-134, 135; सूरा-13, आ-20, हा-37

★ वह अहद जो ईमान लाते ही ख़ुदा और बन्दे के बीच क़ायम हो जाता है
सूरा-9, आ-111, हा-106, 108

★ अल्लाह के साथ अहद बाँधने का मतलब
सूरा-13, आ-20, हा-37

★ अल्लाह के अहद को थोड़ी क़ीमत पर बेचने का मतलब
सूरा-16, आ-95, हा-97

★ अहद की तीन क़िस्में और उनका हुक्म
सूरा-16, आ-91 से 93, हा-90 से 94

★ अहद को तोड़ना बदतरीन गुनाह है
सूरा-8, आ-56, हा-41

★ क़ौम के फ़ायदों के लिए अहद तोड़ना सख़्त बुरा काम है
सूरा-16, आ-92, हा-91

★ अहद तोड़ने के लिए मज़हबी बहाने ख़ुदा के नज़दीक क़ाबिले-क़बूल नहीं हैं
सूरा-16, आ-92, 93, हा-92, 93

★ मुसलमान अगर अहद को तोड़ें तो दोहरे गुनाहगार
सूरा-16, आ-94, 95

● अहले-किताब (किताबवाले)

★ मक्की दौर में उनसे ख़िताब की शुरुआत
सूरा-7 का परिचय

★ उनको नबी (सल्ल.) पर ईमान लाने की दावत दी जाती है
सूरा-7, आ-157, 158, हा-112

★ अरब में अहले-किताब उलमा की हैसियत
सूरा-10, आ-94, 95, हा-96

★ उनके आलिमों की हक़-दुश्मनी
सूरा-9, आ-34, हा-33

★ उनके आलिमों और दरवेशों की हरामख़ोरियाँ
सूरा-9, आ-34

★ इस्लाम अपनी सच्चाई के लिए किताबवालों की तसदीक़ (पुष्टि) का मुहताज नहीं
सूरा-13, आ-36, हा-55

★ उनका ईमान का दावा क्यों भरोसेमन्द नहीं?
सूरा-9, आ-29, हा-26; सूरा-9, आ-30 से 32

★ उनके ख़िलाफ़ जंग का हुक्म
सूरा-9, आ-29, हा-28

★ आसमानी किताबों का इल्म रखनेवाले नबी (सल्ल.) की दावत को ग़लत नहीं कह सकते
सूरा-13, आ-43, हा-62

★ सच्चे अहले-किताब क़ुरआन के नाज़िल होने पर ख़ुश थे
सूरा-13, आ-36

★ वे क़ुरआन को हक़ मानते हैं
सूरा-17, आ-107 से 109, हा-120

आ

● **आख़िरत**

★ तौहीद (एकेश्वरवाद) के बाद इस्लाम का दूसरा बुनियादी अक़ीदा
सूरा-10, आ-4

★ इसकी दलीलें
सूरा-7, आ-6, हा-6; सूरा-7, हा-30; सूरा-10, आ-4, हा-9; सूरा-10, आ-34, सूरा-11, आ-7, हा-8; सूरा-11, आ-103, हा-105; सूरा-12, हा-79; सूरा-13, हा-7, 11, 12; सूरा-15, हा-16

★ इसके इमकान की दलीलें
सूरा-16, आ-38 से 40, हा-35, 36; सूरा-16, आ-65, हा-53ए; सूरा-16, आ-69, 70, हा-59

★ इसकी ज़रूरत
सूरा-10, आ-4, हा-9 और 10; सूरा-16, आ-38 से 40, हा-35, 36

★ इसके होने पर कायनात के निज़ाम से दलीलें
सूरा-10, आ-5, 6, हा-9 से 11

★ इसका होना अक़्ल और इनसाफ़ का तक़ाज़ा है
सूरा-10, हा-10; सूरा-11, हा-105 से 109

★ इसके हक़ में तजरिबी दलीलें
सूरा-10, हा-11, 12

★ आख़िरत के अक़ीदे के अख़लाक़ी नतीजे
सूरा-8, हा-19, 20; सूरा-9, आ-38, हा-39; सूरा-9, आ-80, 95, 96; सूरा-11, आ-102, हा-105; सूरा-14, आ-21, हा-29

★ आख़िरत के इनकारियों की उस दलील का जवाब कि बहुत-से लोग आख़िरत को न मानने के बावजूद अख़लाक़वाले होते हैं
सूरा-10, हा-13

★ आख़िरत का इनकार असल में ख़ुदा का इनकार है
सूरा-13, आ-5, हा-12

★ आख़िरत को न मानने के नतीजे
सूरा-7, आ-147; सूरा-10, आ-7, 8, 11; सूरा-16, आ-22, हा-20; सूरा-17, आ-18, हा-20; सूरा-17, आ-45, 46, हा-51

★ आख़िरत पर दुनिया को तरजीह देने के नतीजे
सूरा-9, आ-37, 38, हा-39; सूरा-14, आ-2, 3, हा-3; सूरा-16, आ-106, 107, हा-109

★ आख़िरत का इनकार करने की ग़ैरमाक़ूलियत
सूरा-7, हा-30; सूरा-13, आ-5, हा-12

★ आख़िरत का इनकार करनेवाले बदतरीन सिफ़ात के लोग हैं
सूरा-16, आ-60

★ आख़िरत का इनकार करनेवालों का अंजाम
सूरा-7, आ-44, 45, 51, 147, हा-105; सूरा-10, आ-7, 8, हा-12; सूरा-10, आ-45, हा-54; सूरा-11, आ-18 से 21; सूरा-17, आ-10

★ आख़िरत की दुनिया का नक़्शा बयान करने का मक़सद
सूरा-10 का परिचय, मौज़ू और मज़मून

★ आख़िरत की दुनिया का नक़्शा
सूरा-7, आ-44 से 51, हा-35; सूरा-11, आ-98, 99, हा-104; सूरा-14, आ-48 से 51, हा-57

★ अल्लाह की निगाह में असल अहमियत आख़िरत की है
सूरा-8, आ-67; सूरा-12, आ-57, हा-49; सूरा-16, आ-95, 96

★ वही अमल मक़बूल है जो आख़िरत के लिए किया जाए
सूरा-17, आ-19, हा-21

★ आख़िरत के अक़ीदे की अहमियत
सूरा-16, हा-71; सूरा-16, आ-93 से 96

★ आख़िरत के मुक़ाबले में दुनिया की बेहक़ीक़ती
सूरा-9, आ-38, हा-39; सूरा-10, आ-45, हा-53; सूरा-13, आ-26, हा-42; सूरा-16, आ-93 से 96

★ ईमानवाले के अज्र को आख़िरत पर क्यों टाला गया
सूरा-9, हा-106 (4)

★ आख़िरत के अक़ीदे की तफ़सील
सूरा-10, आ-4

★ वहाँ की कामयाबी किसी की ज़ाती या ख़ानदानी ठेकेदारी नहीं है
सूरा-7, हा-131

★ वहाँ कोई शख़्स फ़िदया (प्रतिदान) देकर न छूट सकेगा
सूरा-10, आ-54; सूरा-13, आ-18

★ वहाँ नजात ख़रीदी न जा सकेगी
सूरा-14, आ-31, हा-42

★ वहाँ दोस्तियाँ काम न आएँगी
सूरा-14, आ-31, हा-42

★ वहाँ पेश्वा अपने पैरोकारों के किसी काम न आ सकेंगे
सूरा-14, आ-21, हा-29

★ वहाँ अल्लाह की पकड़ से बचानेवाला कोई न होगा
सूरा-10, आ-27; सूरा-14, आ-21, हा-29

★ जो दुनिया में अन्धा बनकर रहा वह वहाँ भी अन्धा ही रहेगा
सूरा-17, आ-72

★ वहाँ हर शख़्स अपने किए का नतीजा देख लेगा
सूरा-10, आ-30

★ वहाँ अल्लाह बता देगा कि लोग दुनिया में क्या करके आए हैं
सूरा-9, आ-94 और 105; सूरा-10, आ-23

★ जो शख़्स आख़िरत की भलाई चाहनेवाला न हो उसके लिए वहाँ कोई भलाई नहीं है
सूरा-11, आ-15, 16, हा-16

★ वहाँ तमाम इख़्तिलाफ़ात की हक़ीक़त खोल दी जाएगी
सूरा-16, आ-92, हा-92

★ वहाँ सब अल्लाह के सामने बेनक़ाब होंगे
सूरा-14, आ-21, हा-28; सूरा-14, आ-48

★ वहाँ अगली पिछली तमाम नस्लों को जमा किया जाएगा
सूरा-10, आ-28; सूरा-17, हा-103

★ हर गरोह अपने उस पेशवा की क़ियादत व रहनुमाई में होगा जिसकी पैरवी वह दुनिया में करता रहा था
सूरा-11, आ-96 से 99, हा-104; सूरा-17, आ-71

★ हर शख़्स की व्यक्तिगत ज़िम्मेदारी अलग-अलग छाँट दी जाएगी
सूरा-17, आ-15, हा-16

★ वहाँ कोई शख़्स यह बहाना बनाकर न छूट सकेगा कि वह गुमराह लोगों में पैदा हुआ था
सूरा-7, आ-172, 173, हा-135

★ वहाँ किस चीज़ की पूछगछ होनी है?
सूरा-7, आ-6, हा-6, 7

★ अंजाम की भलाई का दारोमदार किस चीज़ पर है?
सूरा-17, हा-41

★ वहाँ काम आनेवाली चीज़ें क्या हैं?
सूरा-9, हा-39; सूरा-13, आ-20, 21

★ वहाँ इनाम और सज़ा रिसालत (पैग़म्बरी) के इक़रार और इनकार की बुनियाद पर होगी
सूरा-17, आ-15, हा-17

★ वहाँ अदालत किस तरह होगी?
सूरा-7, आ-8, 9, हा-8; सूरा-10, आ-28 से 30; सूरा-11, आ-18

★ वहाँ किस तरह इनसान पर हुज्जत क़ायम की जाएगी?
सूरा-7, आ-172 से 174, हा-134, 135; सूरा-10, आ-28 से 30, हा-36; सूरा-16, आ-84, हा-81, 82; सूरा-16, आ-89, हा-86, 87

★ वहाँ किस ख़ुदा की अदालत में मुजरिमों की पेशी होगी?
सूरा-9, आ-105, हा-100

★ आमाल-नामा किस तरह दिया जाएगा?
सूरा-17, आ-71, हा-86

★ गवाह पेश होंगे
सूरा-11, आ-18; सूरा-16, आ-84, 89, हा-80, 87

★ आमाल का हिसाब किस तरह लिया जाएगा?
सूरा-13, आ-18, हा-34

★ आमाल के तौले जाने का मतलब
सूरा-7, आ-8, 9, हा-8

★ सख़्त और नर्म हिसाब लेने का मतलब और उसका क़ायदा
सूरा-13, आ-18, हा-34

★ अल्लाह को हिसाब लेने में देर न लगेगी
सूरा-13, आ-41

★ वहाँ बुरे रहनुमा और उनके पैरो (अनुयायी) आपस में दुश्मन होंगे
सूरा-7, आ-37 से 39, हा-30, 31

★ वहाँ शैतान अपने पैरोकारों को मुलज़िम ठहराएगा
सूरा-14, आ-22, हा-30, 31

★ मुशरिकों के माबूद उनको झूठा क़रार देंगे
सूरा-16, आ-86, हा-83

★ मुशरिकों के माबूद उन्हें कहीं न मिलेंगे कि सिफ़ारिश के लिए आएँ
सूरा-16, आ-27

★ वहाँ मुशरिकों का शिफ़ाअत का अक़ीदा ग़लत साबित होगा
सूरा-7, आ-53; सूरा-11, आ-105, हा-106

★ वहाँ मुशरिकों के ख़यालात की ग़लती खुल जाएगी
सूरा-7, आ-37, 38; सूरा-10, आ-28 से 30, हा-37; सूरा-11, आ-20, 21, हा-26; सूरा-16, आ-38, 39, हा-35; सूरा-16, आ-86 से 88, हा-83, 84

★ वहाँ साबित हो जाएगा कि नबी ही हक़ पर थे
सूरा-7, आ-43, 53

★ वहाँ साबित हो जाएगा कि अल्लाह के वादे सच्चे थे
सूरा-7, आ-44; सूरा-14, आ-22
★ रसूलों को न माननेवाले पछताएँगे
सूरा-14, आ-44; सूरा-15, आ-2 से 4
★ हक़ का इनकार करनेवालों को पछताना पड़ेगा
सूरा-7, आ-53, हा-39; सूरा-10, आ-54
★ काफ़िर वहाँ की हर चीज़ को अपनी उम्मीदों के ख़िलाफ़ पाएँगे
सूरा-14, हा-39
★ ईमानवालों के लिए वहाँ की तमाम कैफ़ियतें जानी-बूझी होंगी
सूरा-14, हा-39
★ वहाँ की कामयाबी सिर्फ़ मुत्तक़ियों (परहेज़गारों) के लिए है
सूरा-7, आ-169, हा-131; सूरा-12, आ-109; ज़्यादा जानकारी के लिए देखें 'हश्र', 'मौत के बाद ज़िन्दगी' और 'क़ियामत'

● **आज़माइश**
★ इनसान को पैदा किए जाने का मक़सद इनसान की आज़माइश है
सूरा-11, आ-7, हा-8
★ दुनिया की ज़िन्दगी असल में इम्तिहान की मुहलत है
सूरा-10 का परिचय
★ आज़माइश का मक़सद
सूरा-7, आ-168
★ आज़माइश की अहमियत इनसानी ज़िन्दगी में
सूरा-7, आ-155, हा-110
★ अल्लाह की तरफ़ से इनसान की आज़माइश किस-किस तरह होती है?
सूरा-7, आ-130, 131, 155, 163 से 165, हा-124; सूरा-8, आ-28, हा-23; सूरा-10, आ-14, हा-18; सूरा-10, आ-19, हा-26; सूरा-16, आ-92, हा-91; सूरा-17, आ-60, हा-73
★ ईमानवालों की आज़माइश किस-किस तरह की जाती है?
सूरा-7, आ-141; सूरा-8, आ-17; सूरा-9, हा-106
★ तरबियत और प्रशिक्षण के लिए आज़माइश
सूरा-12, आ-24, हा-23; 28
★ मोमिन और मुनाफ़िक़ का फ़र्क़ आज़माइशों में डालने से किस तरह खुलता है?
सूरा-9, आ-124 से 126, हा-125

● **आद**
सूरा-9, आ-70; सूरा-11, आ-50; सूरा-14, आ-9
★ उनका इलाक़ा और इतिहास
सूरा-7, हा-51
★ नूह (अलैहि.) की क़ौम के बाद ख़लीफ़ा बनाए गए
सूरा-7, आ-69
★ उनकी असल गुमराही क्या थी?
सूरा-7, आ-70, हा-53
★ हज़रत हूद (अलैहि.) के साथ उनका मामला और अंजाम
सूरा-7, आ-65 से 72; सूरा-11, आ-53 से 60, हा-58 से 65

● **आदम (अलैहि.)**
★ आदम और हव्वा (अलैहि.) का क़िस्सा
सूरा-7, आ-11 से 25; सूरा-15, आ-26 से 43; सूरा-17, आ-61 से 65
★ वे नतीजे जो आदम और हव्वा (अलैहि.) के क़िस्से से निकलते हैं
सूरा-7, हा-13
★ उनको सारे इनसानों का नुमाइन्दा होने की हैसियत से सजदा कराया गया था
सूरा-7, आ-11, हा-10; सूरा-15, आ-29
★ उन पर शिर्क के इलज़ाम का रद्द
सूरा-7, हा-146

● **आयत/आयात**
★ अल्लाह की आयतों को झुठलाने का बुरा अंजाम
सूरा-7, आ-36, 37, 40 से 42, 51, 64, 72, 136, 147, 176, 177, 182; सूरा-8, आ-52, 54; सूरा-10, आ-95; सूरा-11, आ-59, 60
★ आयात (हक़ को पहचानने और अल्लाह की क़ुदरत की निशानियों के मानी में)
सूरा-7, आ-26, 58, 126, 133, 146, 174; सूरा-10, आ-24, 67, 97; सूरा-11, आ-102, 103; सूरा-12, आ-7, 105; सूरा-13, आ-2, से 4; सूरा-14, आ-5; सूरा-16, आ-1 से 13, 65, 67, 69, 79; सूरा-17, आ-1, 12
★ अल्लाह की आयतों की तरफ़ तवज्जोह दिलाने का मक़सद
सूरा-7, आ-174
★ अल्लाह की आयतों से ग़फ़लत बरतने का नतीजा
सूरा-10, आ-7, 8; सूरा-15, आ-81 से 84

★ अल्लाह की आयतों से मकर (चालबाज़ियाँ) करने का मतलब
सूरा-10, आ-21, हा-29
★ अल्लाह की आयतों की मदद से हक़ीक़त की तलाश का सही तरीक़ा
सूरा-10, आ-67, हा-65; तफ़सील के लिए देखें 'क़ुरआन : वह हक़ीक़त की तलाश के किस तरीक़े की तरफ़ इनसान की रहनुमाई करता है।'
★ अल्लाह की आयतें ग़ौरो-फ़िक्र करनेवालों के लिए बयान की जाती हैं
सूरा-10, आ-24
★ अल्लाह की आयतें इल्म रखनेवालों के लिए बयान की जाती हैं
सूरा-10, आ-5
★ अल्लाह की आयतों से हिदायत पाने की लाज़िमी शर्तें
सूरा-10, आ-6, हा-11; सूरा-10, आ-67, हा-65
★ आयत (इबरत की निशानी के मानी में)
सूरा-10, आ-92, हा-92
★ आयत (मोजिज़े और चमत्कार के मानी में)
सूरा-7, आ-73, हा-58; सूरा-7, आ-103, 106, 126, 132, 133, 203; सूरा-10, आ-20, 75; सूरा-11, आ-64, 96; सूरा-13, आ-7, 27, 38; सूरा-17, आ-59, 101
★ आयत (अल्लाह की किताब, उसके हुक्मों और हिदायतों के मानी में)
सूरा-10, आ-15, 71, 73; सूरा-11, आ-1; सूरा-12, आ-1; सूरा-13, आ-1; सूरा-15, आ-1; सूरा-16, आ-101; सूरा-17, आ-98
★ अल्लाह की आयतों के साथ ज़ुल्म करने का अंजाम
सूरा-7, आ-9
★ अल्लाह की आयतों का मज़ाक़ उड़ानेवाले काफ़िर हैं
सूरा-9, आ-64, 65
★ जो लोग अल्लाह की आयतों को नहीं मानते अल्लाह उनको हिदायत नहीं देता
सूरा-16, आ-104
★ अल्लाह की आयतों का इल्म रखने के बावुजूद उनसे मुँह मोड़ने का नतीजा
सूरा-7, आ-175, 176
★ अल्लाह की आयतों को थोड़ी क़ीमत पर बेचने का मतलब
सूरा-9, आ-9, हा-12
★ अल्लाह अपनी आयतों को इल्म रखनेवालों के लिए बयान करता है
सूरा-7, आ-32; सूरा-9, आ-11
★ अल्लाह की रहमत के हक़दार वही लोग हैं जो उसकी आयतों पर ईमान लाएँ
सूरा-7, आ-156
★ अल्लाह की आयतें इनसान को बुलन्दी अता करने के लिए हैं
सूरा-7, आ-176
★ अल्लाह की आयतों की तिलावत का असर ईमानवालों पर
सूरा-8, आ-2, हा-2
● आराफ़
★ आराफ़वाले कौन हैं?
सूरा-7, आ-46, हा-34
★ आराफ़वालों की जन्नतवालों और दोज़ख़वालों से बातचीत
सूरा-7, आ-47 से 51
● आसमान
★ इनकी हक़ीक़त
सूरा-13, आ-2, हा-2; सूरा-15, आ-16 से 18, हा-8 से 12
★ सात आसमान
सूरा-17, आ-44

इ

● इंजील
★ इसमें नबी (सल्ल.) का ज़िक्रे-ख़ैर
सूरा-7, हा-113
★ इसमें बनी-इसराईल को तम्बीहात (चेतावनियाँ)
सूरा-7, आ-167, हा-128; सूरा-17, हा-6
★ इसकी और क़ुरआन की मुताबिक़त
सूरा-9, हा-107
● इक़ामते-दीन (दीन को क़ायम करना)
देखें 'दावते-हक़'
● इक़ामते-सलात (नमाज़ को क़ायम करना)
देखें 'नमाज़'
● इनफ़ाक़ फ़ी सबीलिल्लाह
(अल्लाह की राह में ख़र्च करना)
★ अल्लाह के क़रीब होने का ज़रिआ
सूरा-9, आ-99

★ सच्चे ईमानवालों की ख़ुसूसियत
सूरा-8, आ-3, 4
★ मुनाफ़िक़ों का इससे बेज़ार होना
सूरा-9, आ-98, हा-96
★ मुनाफ़िक़ का अल्लाह की राह में ख़र्च करना मक़बूल नहीं
सूरा-9, आ-53
★ अल्लाह की राह में माल ख़र्च न करनेवालों का अंजाम
सूरा-9, आ-34, 35
★ अल्लाह की राह में ख़र्च किया हुआ माल बर्बाद नहीं होता
सूरा-8, आ-60; सूरा-9, आ-120, 121
★ इस्लामी रियासत की ज़रूरतों पर माल ख़र्च करना अल्लाह की राह में माल ख़र्च करना है
सूरा-8, आ-60; तफ़सील के लिए देखें 'ज़कात'

● इनसान

★ इनसान को पैदा किए जाने से मुताल्लिक़ क़ुरआन का बयान
सूरा-7, आ-11, हा-10; सूरा-7, आ-189; सूरा-15, आ-26 से 29
★ डार्विन का नज़रिय-ए-इर्तिक़ा (विकासवादी विचारधारा) और क़ुरआन
सूरा-7, हा-10; सूरा-15, हा-17
★ फ़रिश्तों से इसको सजदा कराया गया
सूरा-7, आ-11; सूरा-15, आ-29, 30; सूरा-17, आ-61
★ दुनिया में इसकी हैसियत
सूरा-7, हा-10
★ रूहे-इनसानी की हैसियत
सूरा-15, आ-29, हा-19
★ ख़िलाफ़त की हक़ीक़त
सूरा-15, हा-19
★ दूसरी मख़लूक़ात के मुक़ाबले में इसकी फ़ज़ीलत का सबब
सूरा-15, हा-19
★ इस पर ख़ुदा के एहसानात
देखें 'अल्लाह' : इनसान पर उसके एहसानात
★ ख़ुदा ने इसे इन्तिख़ाब और इरादे की आज़ादी बख़्शी है
सूरा-16, आ-9, हा-10; सूरा-16, आ-93, हा-94;
तफ़सील के लिए देखें 'तक़दीर'
★ वह आज़माइश के लिए पैदा किया गया है
सूरा-11, आ-7, हा-8
★ इसको कायनात के आग़ाज़ में ही हक़ीक़त का इल्म दिया गया था
सूरा-7, आ-172, 173, हा-135
★ इसके इल्म की हक़ीक़त
सूरा-16, आ-70, हा-61
★ इसके लिए कायनात को किस मानी में मुसख़्ख़र किया गया है?
सूरा-14, आ-33, हा-44; सूरा-16, आ-12 से 14
★ तमाम इनसान एक ही जोड़े से पैदा हुए हैं
सूरा-7, आ-189
★ इनसानी रूह मरकर ख़त्म नहीं होती
सूरा-8, आ-50; सूरा-16, आ-27 से 32, हा-26
★ इनसानी फ़ितरत बुराई को पसन्द नहीं करती
सूरा-7, हा-13
★ इसमें बुलन्दी और हमेशा रहने की तलब मौजूद है
सूरा-7, हा-13
★ शर्म और हया इसमें रखी गई है
सूरा-7, हा-13
★ इसके तहतश्शऊर (अचेतन) में तौहीद (एकेश्वरवाद) की गवाही मौजूद है
सूरा-7, हा-135; सूरा-10, आ-22; सूरा-17, हा-56, 84
★ दुनिया में आने से पहले इससे तौहीद का इक़रार लिया गया था
सूरा-7, आ-172, 173, हा-134, 135
★ शुरू में तमाम इनसानों का मज़हब एक था
सूरा-10, आ-19
★ इनसानों के बीच तबीअतों, अफ़कार (विचारधाराओं) और तौर-तरीक़ों में इख़्तिलाफ़ फ़ितरत के तक़ाज़ों के ठीक मुताबिक़ है
सूरा-11, आ-118, 119, हा-116; सूरा-13, हा-11; सूरा-16, आ-92, 93; सूरा-17, हा-13
★ इनसानी फ़ितरत की कमज़ोरियाँ
सूरा-10, आ-12; सूरा-11, आ-9, 10; सूरा-16, आ-4; सूरा-17, आ-11, 83, 100, हा-12
★ इनसान से शैतान की अज़ली (हमेशा की) दुश्मनी
सूरा-7, आ-11 से 25; सूरा-15, आ-30 से 43, हा-25; सूरा-17, हा-74

★ इसकी फ़ज़ीलत को ग़लत साबित करने के लिए शैतान का चैलेंज
सूरा-17, आ-61, 62
★ इसको बहकाने के लिए शैतान को क़ियामत तक की मुहलत
सूरा-7, आ-14, 15; सूरा-15, आ-36 से 38
★ शैतान को इस पर किस क़िस्म के इख़्तियारात दिए गए?
सूरा-7, आ-17, हा-12; सूरा-15, आ-42, हा-24, 25; सूरा-17, आ-64, 65, हा-80
★ जन्नत में शैतान और इनसान का पहला मुक़ाबला और उसके नतीजे
सूरा-7, हा-13
★ इसको बहकाने के लिए शैतान की चालें
सूरा-7, आ-20, 21, हा-13; सूरा-7, आ-27, 175, हा-139; सूरा-8, आ-48; सूरा-14, आ-22; सूरा-15, आ-39; सूरा-16, आ-63; सूरा-17, आ-64
★ कैसे इनसानों पर शैतान का बस चलता है?
सूरा-16, आ-100; सूरा-17, आ-65, हा-80
★ कैसे इनसान शैतान के धोखे से महफ़ूज़ रहते हैं?
सूरा-15, आ-39, से 42, हा-24; सूरा-16, आ-98, 99; सूरा-17, आ-65, हा-80
★ इसके लिए शैतान के फन्दे से बचने की एक ही सूरत
सूरा-8, आ-2, 3
★ इसके लिए काम का सही तरीक़ा क्या है?
सूरा-7, हा-13; सूरा-7, आ-35, 55, 75
★ इसकी नजात का दारोमदार किस चीज़ पर है?
सूरा-7, हा-33
★ इसकी हक़ीक़ी तरक़्क़ी किस राह में है?
सूरा-7, आ-206, हा-155
★ इसकी तबाही किस रास्ते में है?
सूरा-7, आ-36, 37, 51
★ इसकी रहनुमाई के लिए नुबूवत की ज़रूरत
सूरा-7, हा-15, 16; सूरा-16, आ-9, हा-9
★ वह हिकमत (तत्त्वदर्शिता) जिसकी बिना पर ख़ुदा ने इसकी रहनुमाई के लिए इनसानों ही में से कुछ को नबी बनाया
सूरा-16, आ-9, हा-10; सूरा-16, आ-44, हा-40
★ इसकी रहनुमाई के लिए अल्लाह की हिदायतें
देखें 'इस्लाम : इसकी बुनियादी तालीमात'
★ इसके अख़लाक़ी पस्ती (नैतिक पतन) में मुब्तिला होने के असबाब
सूरा-7, आ-20, 27, हा-16; सूरा-7. आ-175, 176, हा-139, 155
★ इसके गुमराह होने के असबाब
देखें 'ज़लालत : उसके असबाब'
★ वह अपनी गुमराही के लिए ख़ुद ज़िम्मेदार है
सूरा-7, आ-173, हा-135; सूरा-14, आ-21, 22; सूरा-15, आ-36 से 44, हा-24, 25
★ वह तमाम उन लोगों की गुमराही का भी ज़िम्मेदार है जो उसके ज़रिए से गुमराह हों
सूरा-16, आ-25
★ वह उन असरात का भी ज़िम्मेदार है जो उसके अमल से दूसरों की ज़िन्दगी पर पड़ते हों
सूरा-7, आ-37, 38 हा-30
★ गुमराही क़बूल करनेवाले की ज़िम्मेदारी गुमराह करनेवाले से कम नहीं है
सूरा-7, हा-31
★ हर इनसान अपनी एक मुस्तक़िल अख़लाक़ी ज़िम्मेदारी रखता है, जिसमें कोई उसका शरीक नहीं
सूरा-17, आ-15, हा-16
★ अपनी बुरी और भली क़िस्मत के लिए इनसान की अपनी ज़िम्मेदारी
सूरा-17, आ-13, 14, हा-14
★ इनसान की ज़िम्मेदारी उसकी अपनी सकत (क्षमता) के लिहाज़ से है
सूरा-7, आ-42
★ वह अपने आमाल (कर्मों) के लिए ख़ुदा के सामने ख़ुद जवाबदेह है
सूरा-7, आ-6; सूरा-11, आ-18; सूरा-15, आ-92, 93; सूरा-16, आ-56, 93; सूरा-17, हा-16; सूरा-17, आ-36
● इबराहीम (अलैहि.)
★ सूरा-11, आ-69, 76, हा-75, 76, 77, 78, 79, 81, 83, 84; सूरा-12, आ-6, हा-70
● इबराहीम (अलैहि.) का क़िस्सा
★ सूरा-11, आ-69 से 76, हा-75 से 83; सूरा-14, आ-35 से 41, हा-46 से 53; सूरा-15, आ-51 से 60, हा-30 से 33
★ क़ौमे-इबराहीम
सूरा-9, आ-70

★ आप (अलैहि.) की सिफ़ात
सूरा-9, आ-114, हा-113; सूरा-11, आ-75, सूरा-14, हा-49; सूरा-16, आ-120, हा-119
★ आप (अलैहि.) शिर्क से बिलकुल पाक थे
सूरा-16, आ-120, 123
★ आप(अलैहि.) अपनी ज़ात में एक उम्मत थे
सूरा-16, आ-120, हा-119
★ अल्लाह के साथ आप (अलैहि.) का ताल्लुक़
सूरा-11, आ-75
★ आप (अलैहि.) का दीन क्या था?
सूरा-12, आ-38
★ फ़लस्तीन में आप (अलैहि.) के क़ियाम की जगह
सूरा-12 का परिचय, तारीख़ी पसे-मंज़र (ऐतिहासिक पृष्ठभूमि)
★ मिस्र में आप (अलैहि.) ग़ैर-मारूफ़ (अप्रसिद्ध) न थे
सूरा-12, हा-34(2)
★ आप (अलैहि.) ने अपने बाप के लिए मग़फ़िरत की दुआ क्यों की थी?
सूरा-9, आ-114, हा-112; सूरा-14, आ-41, हा-53
★ अपनी औलाद को मक्का में बसाते वक़्त आप (अलैहि.) की दुआ
सूरा-14, आ-35 से 41, हा-46 से 51
★ आप (अलैहि.) के यहाँ फ़रिश्तों का आना और हज़रत इसहाक़ (अलैहि.) की पैदाइश की ख़ुशख़बरी देना
सूरा-15, आ-51 से 56, हा-32
★ बुढ़ापे में औलाद की पैदाइश
सूरा-15, आ-54
● इबराहीम (अलैहि.) की मिल्लत और यहूदियों की शरीअत का फ़र्क़
सूरा-16, हा-120, 121
★ प्यारे नबी (सल्ल.) को इबराहीमी मिल्लत की पैरवी का हुक्म क्यों दिया गया?
सूरा-16, आ-120 से 124, हा-120 से 121
● इबलीस
सूरा-7, आ-11; सूरा-15, आ-31, 32; सूरा-17, आ-61; ज़्यादा तफ़सील के लिए देखें 'शैतान'
● इरतिदाद (दीन से फिर जाना)
★ इसके अख़लाक़ी असबाब
सूरा-16, आ-107
★ इसके अख़लाक़ी व नफ़सियाती (मनोवैज्ञानिक) नतीजे
सूरा-16, आ-107 से 109
★ आख़िरत में इसकी सज़ा
सूरा-16, आ-106, हा-109; सूरा-16, आ-109, हा-110
★ दुनिया में इसकी सज़ा
सूरा-9, आ-12, हा-15
★ राज़ी-ख़ुशी कुफ़्र का कलिमा कहनेवाले और ज़बरदस्ती कुफ़्र पर मजबूर किए जानेवाले की हैसियत और हुक्म का फ़र्क़
सूरा-16, आ-106
★ हज़रत अबू-बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) की ख़िलाफ़त में इरतिदाद बरपा होने के असबाब
सूरा-9, आ-97, 98, हा-95
★ सिद्दीक़ी दौर में आनेवाले इरतिदाद के फ़ितने के लिए क़ुरआन की पेशबन्दी
सूरा-9, आ-1, हा-2
★ इस्लाम से फिर जानेवालों के ख़िलाफ़ हज़रत अबू-बक्र (रज़ि.) की जंगी कार्यवाई क़ुरआन के ठीक मुताबिक़ थी
सूरा-9, आ-12, हा-15
★ ज़कात न देनेवालों के ख़िलाफ़ हज़रत अबू-बक्र (रज़ि.) ने किस दलील की बुनियाद पर जंग की?
सूरा-9, आ-5, हा-7
● इबादत
★ मानी और तशरीह
सूरा-9, आ-31; सूरा-10, आ-3, हा-6
★ इसकी हक़ीक़त
सूरा-17, हा-64
★ किसी को क़ानून बनानेवाला मानकर उसके अम्रो-नही (आदेशों और निषेधाज्ञाओं) की बे चूँ-चरा पैरवी करना उसकी इबादत करना है
सूरा-9, आ-31, हा-31
★ इनसान को एक ही माबूद की इबादत का हुक्म दिया गया है
सूरा-9, आ-31
★ सिर्फ़ अल्लाह की इबादत होनी चाहिए
सूरा-7, आ-59, 65, 73, 85; सूरा-9, आ-31
★ इबादत का सही तरीक़ा
सूरा-7, आ-29 से 31, हा-19, 20
★ शिर्क करनेवालों और जाहिलों की इबादत और

इस्लामी इबादत का उसूली फ़र्क़
सूरा-7, हा-20
- ● इलक़ा
- ★ वह्य और इलक़ा का अन्तर
सूरा-16, हा-56
- ● इलयास (अलैहि.)
- ★ उनका ज़माना और बनी-इसराईल की इस्लाह के लिए उनकी कोशिशें
सूरा-17, हा-7
- ● इलहाद
- ★ मानी और तशरीह
सूरा-7, आ-180, हा-142
- ● इलहाम
- ★ वह्य और इलहाम का अन्तर
सूरा-16, हा-56
- ● इसमाईल (अलैहि.)
सूरा-11, हा-79; सूरा-14, आ-39
- ★ इसमाईल (अलैहि.) की नसल हज़रत यूसुफ़ के ज़माने में
सूरा-12, हा-15, 34
- ● इसराफ़ (फ़ुज़ूलख़र्ची)
देखें 'अख़लाक़' और 'मुसरिफ़ीन'
- ● इसहाक़ (अलैहि.)
सूरा-11, आ-71, हा-79, 84; सूरा-12, आ-6; सूरा-14, आ-39
- ★ उनकी पैदाइश की ख़ुशख़बरी
सूरा-11, आ-71, हा-79; सूरा-15, आ-53, हा-32
- ★ फ़लस्तीन में उनके ठहरने की जगह
सूरा-12 का परिचय, तारीख़ी पसे-मंज़र (ऐतिहासिक पृष्ठभूमि)
- ★ उनका दीन क्या था?
सूरा-12, आ-38
- ★ उनकी तारीफ़
सूरा-15, आ-53, हा-32
- ● इस्लाम
- ★ इसकी बुनियादी तालीमात
सूरा-7, आ-29, 33, हा-19; सूरा-10, आ-104 से 106, हा-108, 109; सूरा-12, आ-37 से 40; सूरा-13, आ-36; सूरा-16, आ-36, 90, 91, हा-88, 89; सूरा-17, आ-22 से 39
- ★ वह तमाम नबियों का दीन था
सूरा-7, आ-126; सूरा-10, आ-72, 84, 90
- ★ इसमें रहबानियत (संन्यास) नहीं है
सूरा-7, आ-31, 32, हा-20 से 22
- ★ वे कम-से-कम शर्तें जिनके बग़ैर यह नहीं माना जा सकता कि एक शख़्स ने इस्लाम क़बूल कर लिया है
सूरा-9, आ-5, हा-7; ज़्यादा जानकारी के लिए देखें 'ईमान' और 'दीन'
- ● इस्लामी निज़ामे-जमाअत
- ★ इस्लामी समाज किन चीज़ों से मिलकर बनता है?
सूरा-8, आ-74, 75
- ★ इस्लामी समाज में शामिल होने और शामिल रहने की बुनियादी शर्तें
सूरा-9, आ-11, 12, हा-14
- ★ ईमानवालों की जमाअत कैसी होनी चाहिए?
सूरा-9, हा-119
- ★ ईमानवालों को एक-दूसरे का सहायक और मददगार होना चाहिए
सूरा-8, आ-74, 75
- ★ आपसी ताल्लुक़ात को ठीक रखने का हुक्म
सूरा-8, आ-1
- ★ झगड़े और इख़्तिलाफ़ से बचने का हुक्म
सूरा-8, आ-46
- ★ अमीर की इताअत का हुक्म
सूरा-8, आ-1, 20, 24, 46
- ★ इज्तिमाई ज़िन्दगी में अमानत का हुक्म और ग़द्दारी और ख़ियानत से बचने की ताकीद
सूरा-8, आ-27, हा-22
- ★ समाज को बिगाड़नेवाले असबाब और उनकी रोकथाम की तदबीरें
सूरा-17, आ-16, 17, हा-18
- ★ समाज-सुधार के ज़रिए
सूरा-17, हा-29, 32
- ★ समाज को ज़िना और ज़िना पर उभारनेवाली चीज़ों से पाक रखने की हिदायतें
सूरा-17, आ-32, हा-32
- ★ समाज में फ़ासिक़ों और फ़ाजिरों के साथ क्या बर्ताव होना चाहिए?
सूरा-9, आ-84, हा-88
- ★ संदिग्ध लोगों के रवैये पर निगाह रखी जाए
सूरा-9, आ-105, हा-99
- ★ समाज में मुनाफ़िक़ों को शामिल करने का नुक़सान
सूरा-9, आ-47, 48, हा-82

★ मुनाफ़िक़ों के साथ क्या बर्ताव होना चाहिए?
सूरा-9, आ-73, 83, 84, 95, 105, 123, हा-82, 94, 99, 121

● इस्लामी रियासत

★ इस्लाम के लिए इसकी अहमियत और ज़रूरत
सूरा-17, आ-80, हा-100

★ इसका एलानिया (घोषणा पत्र) जो मक्का के आख़िरी दौर में पेश किया गया
सूरा-17 का परिचय; सूरा-17, आ-23 से 40, हा-25 से 44

★ इसकी तालीमी पॉलीसी
सूरा-9, आ-122, हा-120

★ इसकी समाजी और मआशी (आर्थिक) पॉलिसी
सूरा-17, हा-29

★ इसमें ख़ानदान की अहमियत
सूरा-17, आ-26 से 28

★ इसकी दाख़िली और ख़ारिजी सियासत की बुनियाद अहदो-पैमान और क़ौल व क़रार की पाबन्दी पर होनी चाहिए
सूरा-17, आ-34, हा-39

★ समाज को ज़िना और ज़िना पर आमादा करनेवाले कामों से पाक रखना उसका फ़र्ज़ है
सूरा-17, आ-32, हा-32

★ यतीमों के हक़ों की हिफ़ाज़त उसके ज़िम्मे लाज़िम ज़िम्मेदारियों में से है
सूरा-17, आ-34, हा-38

★ यह उन तमाम लोगों के हितों की हिफ़ाज़त करनेवाली है जो अपने हितों की हिफ़ाज़त ख़ुद करने के क़ाबिल न हों
सूरा-17, हा-38

★ तिजारत को बेईमानियों से पाक रखना उसके फ़राइज़ में से है
सूरा-17, आ-35, हा-40

★ इसके हाकिमों को ग़ुरूर और तकब्बुर से पाक होना चाहिए
सूरा-17, आ-37, हा-43

★ मुनाफ़िक़ों के बारे में उसकी पॉलिसी
सूरा-9, आ-73, हा-82; सूरा-9, आ-123, हा-121

★ अन्तर्राष्ट्रीय मुआहिदों (सन्धियों) का सम्मान
सूरा-17, आ-34

★ दारुल-इस्लाम के तमाम बसनेवाले इस्लामी रियासत के किए हुए मुआहिदों के पाबन्द हैं
सूरा-8, आ-72, हा-51

★ काफ़िरों के ग़ुलाम मुसलमानों की मदद इस्लामी रियासत पर किस सूरत में वाजिब है?
सूरा-8, हा-51

★ इस्लामी रियासत को बैनुल-अक़वामी (अन्तर्राष्ट्रीय) पेचीदगियों से बचाने के लिए एक अहम संवैधानिक क़ायदा
सूरा-8, आ-72, हा-50

★ तहक़ीक़ के बग़ैर किसी के ख़िलाफ़ कार्यवाई करना मना है
सूरा-17, आ-36, हा-42

★ इसकी बैनुल-अक़वामी (अन्तर्राष्ट्रीय) सियासत दिलेराना होनी चाहिए
सूरा-8, आ-62, हा-45

★ इसकी ज़रूरतों पर माल ख़र्च करना अल्लाह के रास्ते में ख़र्च करना है
सूरा-8, आ-60, हा-44

● इस्तिकबार (देखें 'तकब्बुर' और 'अख़लाक़')

ई

● ईमान

★ किन चीज़ों पर ईमान लाना ज़रूरी है?
सूरा-7, आ-157, 158; सूरा-9, आ-19, 99

★ ईमान की हक़ीक़त
सूरा-9, आ-29, हा-26; सूरा-9, आ-111, हा-106; सूरा-10, आ-9, हा-13

★ ग़ैब पर ईमान की हिकमत और मस्लिहत
सूरा-10, हा-11, 26; सूरा-15, हा-5

★ मोमिन के अज्र को आख़िरत पर क्यों टाला गया है?
सूरा-9, हा-106

★ मौत के आसार देखकर ईमान लाना बेकार है
सूरा-10, आ-90, 91

★ अल्लाह के अज़ाब को देखकर ईमान लाना बेकार है
सूरा-10, आ-97, 98

★ क्या चीज़ें ईमान में रुकावट बनती हैं?
सूरा-10, आ-40, हा-48; सूरा-10, आ-42, 43, हा-50, 51; सूरा-10, आ-74, 75 हा-71; सूरा-10, आ-94; सूरा-10, आ-100, हा-103; सूरा-11, आ-15, हा-15; सूरा-13, आ-5, हा-12, 13; सूरा-13, आ-16, हा-26; सूरा-14, आ-10; सूरा-17, आ-94, 95, हा-107

★ अल्लाह की मरज़ी यह नहीं है कि इनसान की इन्तिख़ाब की आज़ादी छीनकर उसको ज़बरदस्ती मोमिन बनाए
सूरा-10, आ-99, हा-101, 102
★ ईमान की नेमत अल्लाह की मरज़ी के बग़ैर नहीं मिलती
सूरा-10, आ-100, हा-103; तफ़सील के लिए देखें 'तक़दीर'
★ ईमान न लानेवालों का सरपरस्त शैतान होता है
सूरा-7, आ-27
★ उस मोमिन का हुक्म जिसे कुफ़्र पर मजबूर किया गया हो
सूरा-16, आ-106, हा-109
★ मोमिन का ईमान क़ुरआन से बढ़ता और विकसित होता है
सूरा-9, आ-124
★ ईमान के घटने और बढ़ने का मतलब
सूरा-8, आ-2, हा-2; सूरा-9, आ-124, हा-124
★ ईमान में कमी-बेशी न होने का सही मतलब
सूरा-8, आ-2, हा-2
★ मोमिन के लिए क़ुरआन शिफ़ा और रहमत और हिदायत है
सूरा-7, आ-52, हा-37; सूरा-7, आ-203; सूरा-10, आ-57; सूरा-12, आ-111; सूरा-16, आ-64; सूरा-17, आ-82
★ ईमानवालों की भलाई किस चीज़ में है?
सूरा-7, आ-85; सूरा-11, आ-85, 86
★ ईमानवालों की आज़माइश किस-किस तरह की जाती है?
सूरा-8, आ-17; सूरा-9, आ-16, हा-18; सूरा-9, हा-106
★ ईमान के तक़ाज़े
सूरा-8, आ-1 से 4, 20, 21, 24, 27, 29, 39 से 41; सूरा-9, आ-13, 23, 24, 38, 44, 62, 99, हा-106; सूरा-9, आ-113, 119; सूरा-10, आ-84; सूरा-11 का परिचय; सूरा-13, आ-19 से 22; सूरा-14, आ-31; सूरा-16, आ-110, हा-109; सूरा-17, आ-19
★ मोमिन की सिफ़ात
सूरा-8, आ-1 से 3, 74, 75; सूरा-9, आ-13, 18, 19, 59, 71, 88, 99, 111, 112, 119; सूरा-10, आ-104; सूरा-11, हा-45; सूरा-11, आ-112 से 115; सूरा-13, आ-19 से 22, 28; सूरा-14, आ-12
★ ईमान की सच्चाई का मेयार
सूरा-8 और सूरा-9 का परिचय; सूरा-9, आ-13, हा-16; सूरा-9, आ-23, 24, 38, 39, 44, 45, 86 से 89, 91, 92, 99, 102 से 105, हा-99; सूरा-9, हा-119; सूरा-11 का परिचय; सूरा-16, आ-110, 111
★ मोमिन की निगाह दुनियावी फ़ायदों के बजाय आख़िरत के फ़ायदों पर होनी चाहिए
सूरा-8, आ-67; सूरा-12, आ-57, हा-49
★ ईमान के लिए अल्लाह और रसूल (सल्ल.) की वफ़ादारी लाज़िमी शर्त है
सूरा-9, आ-91, हा-92
★ ईमानवालों को नहीं चाहिए कि वे अपनी जान को रसूल से ज़्यादा प्यारी रखें
सूरा-9, आ-120
★ ईमानवालों को नहीं चाहिए कि वे कुफ़्र और इस्लाम की जंग में पीछे रह जाएँ
सूरा-7, आ-44, 45, 120
★ ईमानवालों को नहीं चाहिए कि वे ग़ैर-मुस्लिमों को अपना जिगरी दोस्त बनाएँ
सूरा-9, आ-16, हा-18; सूरा-9, आ-23, 24
★ मोमिन का यह काम नहीं है कि वह अपने मुशरिक रिश्तेदार के लिए मग़फ़िरत की दुआ करे
सूरा-9, आ-113, हा-111
★ ईमानवालों को एक-दूसरे का मददगार होना चाहिए
सूरा-8, आ-74
★ ईमानवालों की जमाअत कैसी होनी चाहिए?
सूरा-9, हा-119
★ ईमानवालों को अल्लाह ही पर भरोसा करना चाहिए
सूरा-9, आ-51, हा-51
★ ईमानवालों की मदद के लिए अल्लाह काफ़ी है
सूरा-8, आ-64; सूरा-15, आ-95
★ मोमिन की कामयाबी और नाकामी का मेयार
सूरा-9, आ-52
★ मोमिन की ज़ेहनियत और उसके सोचने का अन्दाज़
सूरा-11, हा-49; सूरा-16, आ-94
★ ईमान और कुफ़्र का फ़र्क़
सूरा-14, हा-1
★ ईमान और कुफ़्र का फ़र्क़, नतीजे और तजरिबे के

लिहाज़ से
सूरा-14, आ-26, हा-38
★ मोमिन और काफ़िर का फ़र्क़
सूरा-8, आ-65, 66 हा-47, 48; सूरा-9, हा-52; सूरा-11, आ-24, हा-28; सूरा-11, आ-88; सूरा-12 का परिचय; सूरा-13, आ-16, हा-27; सूरा-13, आ-19 से 21; सूरा-14, आ-29 से 31; सूरा-15, हा-50
★ मोमिन और मुनाफ़िक़ का फ़र्क़
सूरा-9, हा-80; सूरा-9, आ-124 से 125
★ गुनाहगार मोमिन और मुनाफ़िक़ का फ़र्क़
सूरा-9, आ-102 से 104, हा-99
★ मुनाफ़िक़ और गुनाहगार मोमिन में फ़र्क़ कैसे किया जा सकता है?
सूरा-9, हा-99
★ हक़ीक़ी मोमिन और क़ानूनी मुसलमान का फ़र्क़
सूरा-9, हा-91, 106
★ ईमान के असरात इनसानी सीरत व किरदार पर
सूरा-7, आ-126, हा-92; सूरा-14, आ-24, 25, हा-36 से 39
★ सच्चे ईमानवाले शैतान के फ़ितने से महफ़ूज़ रहते हैं
सूरा-16, आ-98, 99, हा-101
★ ईमान सिर्फ़ आख़िरत ही में नहीं दुनिया में नफ़ा देनेवाला है
सूरा-7, हा-74; सूरा-7, आ-96; सूरा-10, आ-62 से 64; सूरा-11, आ-3, हा-3; सूरा-11, आ-52, हा-57; सूरा-14, हा-36, 38; सूरा-16, आ-97, हा-99
★ दुनिया और आख़िरत की नेमतें ईमानवालों ही का हक़ हैं
सूरा-7, आ-32,
★ ईमानवालों के लिए ख़ुशख़बरी
सूरा-9, आ-112; सूरा-10, आ-2, 64; सूरा-17, आ-9, 105
★ अल्लाह से डरनेवाले (मुत्तक़ी) मोमिन के लिए डर और ग़म नहीं है
सूरा-10, आ-62, 63
★ तमाम मुत्तक़ी ईमानवाले अल्लाह के दोस्त हैं
सूरा-10, आ-62, 63
★ अल्लाह का दुश्मन ईमानवालों का दुश्मन है और ईमानवालों का दुश्मन अल्लाह का दुश्मन है
सूरा-8, आ-60
★ अल्लाह मोमिन की तौबा क़बूल करता है
सूरा-7, आ-153
★ अल्लाह की रहमत के हक़दार वही लोग हैं जो उसकी आयतों पर ईमान लाएँ
सूरा-7, आ-156
★ ईमान और नेक अमल का नेक अंजाम
सूरा-7, आ-42; सूरा-8, आ-2 से 4; सूरा-9, आ-72, 88, 89, 111; सूरा-10, आ-2, 4, 9, 62 से 64; सूरा-11, आ-23; सूरा-13, आ-29; सूरा-14, आ-23, 27; सूरा-16, आ-97; सूरा-17, आ-9, 19
★ अल्लाह पर ईमान रखनेवालों पर अल्लाह की इनायतें
सूरा-8, आ-17 से 19, हा-14; सूरा-9, हा-119
★ ईमानवालों के लिए अल्लाह के यहाँ सच्ची इज़्ज़त और सरफ़राज़ी है
सूरा-10, आ-2, हा-2
★ अल्लाह पर यह हक़ है कि मोमिन को अज़ाब न दे
सूरा-10, आ-103
★ इताअत और फ़रमाँबरदारी करनेवाले मोमिन का हिसाब दुनिया ही में तकलीफ़ें डालकर साफ़ कर दिया जाता है
सूरा-13, हा-34
● ईसा (अलैहि.)
★ ईसाइयों का उनको अल्लाह का बेटा कहना
सूरा-9, आ-30
★ उनके अख़लाक़ और ख़ूबियाँ
सूरा-14, हा-49
★ उनके दौर में बनी-इसराईल की अख़लाक़ी और मज़हबी और सियासी हालत
सूरा-17, हा-9
● ईसाई
★ इनके ईमान में क्या ख़राबी है?
सूरा-9, आ-29, 31, हा-26, 27, 31
★ इनकी गुमराहियाँ
सूरा-9, आ-30, 31, हा-31
★ अल्लाह के बेटे होने के अक़ीदे की तरदीद
सूरा-10, आ-68, हा-68

उ

● उज़ैर (अलैहि.)
★ यहूद का उनको अल्लाह का बेटा कहना
सूरा-9, आ-30, हा-29

★ बनी-इसराईल के इतिहास में उनका मर्तबा
सूरा-9, हा-29
★ हज़रत मूसा (अलैहि.) की शरीअत की तजदीद (नवीनीकरण) के लिए उनके कारनामे
सूरा-17, हा-8
● उम्मत
★ पैग़म्बर की उम्मत से क्या मुराद है?
सूरा-10, हा-55

ए

● एहसान
★ मानी और तशरीह
सूरा-16, आ-90, हा-88, 124
★ समाज में इसकी अहमियत
सूरा-16, हा-88
★ मुहसिनीन (एहसान करनेवाले) कौन हैं?
सूरा-9, आ-91, 120 और 121
★ अल्लाह की रहमत मुहसिनों के क़रीब है
सूरा-7, आ-56
★ मुहसिनों पर अल्लाह के इनाम
सूरा-7, आ-161
★ अल्लाह मुहसिनों के साथ है
सूरा-16, आ-128

ऐ

● ऐका
सूरा-15, आ-78, हा-43

औ

● औरत
★ अरब जाहिलियत में इसकी हैसियत
सूरा-16, आ-57 से 59
● औहामे-जाहिलियत (अज्ञानकाल का अन्धविश्वास)
देखें 'शिर्क' और 'अरब'

क़

● क़ज़ा व क़द्र
देखें 'तक़दीर'
● क़त्ल
देखें 'क़ानूने-इस्लाम'
● क़त्ले-औलाद
★ इसका हराम किया जाना
सूरा-17, आ-31
● कलिमा तैयिबा
★ इसकी तशरीह
सूरा-14, हा-34
★ इसको मानने के फ़ायदे दुनिया और आख़िरत में
सूरा-14, आ-24 से 27
★ कलिमा तैयिबा और कलिमा ख़बीसा का तक़ाबुल (तुलना)
सूरा-14, आ-24 से 26, हा-34 से 38
● क़सम
★ इसकी अख़लाक़ी व दीनी अहमियत
सूरा-16, आ-94, हा-95
★ इसके तोड़ने की मनाही
सूरा-16, आ-91, हा-90
● क़ादियानी "नुबूवत"
★ इसकी कुछ दलीलें और उनका जवाब
सूरा-10, हा-23

क़ानूने-इस्लाम

● उसूले-क़ानून और उसूली अहकाम
★ हलाल और हराम की हदें मुक़र्रर करने का हक़ अल्लाह के सिवा किसी को नहीं है
सूरा-9, आ-31, हा-31; सूरा-10, आ-59, हा-61; सूरा-16, आ-116, हा-116
★ ख़ुदा के क़ानून में हीलाबाज़ी (बहानेबाज़ी) करके नाजाइज़ को जाइज़ कर लेना ख़ुदा की नाफ़रमानी का एक काम है
सूरा-9, आ-37
★ हीला का मतलब
सूरा-9, हा-37
★ गुमान (अटकल) इल्म की जगह नहीं ले सकता
सूरा-10, आ-36
★ सिर्फ़ शक और गुमान की बुनियाद पर किसी के ख़िलाफ़ कार्रवाई करना ठीक नहीं है
सूरा-9, हा-101; सूरा-17, आ-36, हा-42
★ किसी को ईमान लाने पर मजबूर नहीं किया जा सकता
सूरा-10, आ-99, हा-102
★ जिस आदमी से ज़बरदस्ती गुनाह कराया जाए वह क़ाबिले-माफ़ी है
सूरा-16, आ-106
★ मजबूरी की हालत की शर्तें और हदें
सूरा-16, आ-115
★ बदला असल ज़्यादती से बढ़कर नहीं होना चाहिए
सूरा-16, आ-126

★ झूठ और तौरिये का फ़र्क़, तौरिया करने का मौक़ा और उसकी शर्तें
सूरा-12, हा-63

● जंगी क़ानून

★ इस्लामी जंगी क़ानून का इरतिक़ा (विकास)
सूरा-8, हा-1

★ जंग का अख़लाक़ी और इन्तिज़ामी सुधार
सूरा- 8, हा-1

★ दुश्मन अगर इस्लाम क़बूल कर ले तो उसके ख़िलाफ़ जंग बन्द कर दी जाए
सूरा-9, आ-5, 6

★ वे कम-से-कम शर्तें जिनके बग़ैर यह नहीं माना जा सकता कि दुश्मन ने इस्लाम क़बूल कर लिया है
सूरा-9, आ-5, हा-7; सूरा-9, आ-11, हा-14

★ जंगी क़ैदियों के फ़िदये का मसला
सूरा-8, आ-69, हा-49

★ ग़नीमत के मालों की हैसियत और उनके बँटवारे का क़ायदा
सूरा-8, आ-1, हा-1; सूरा-8, आ-41, हा-32

★ ग़नीमत के माल में अल्लाह और उसके रसूल के हिस्से और क़रीबी रिश्तेदारों के हिस्से से क्या मुराद है?
सूरा-8, हा-32

★ जिज़्ये का हुक्म और उसकी तशरीह
सूरा-9 का परिचय; सूरा-9, आ-29, हा-28;
ज़्यादा तफ़सील के लिए देखें 'जिहाद' और 'क़िताल-फ़ी-सबीलिल्लाह'

● दस्तूरी क़ानून

★ ख़ुदा की क़ानूनी हाकिमियत
सूरा-12, आ-40; सूरा-17, आ-22, 23, हा-26

★ क़ानून बनाने का असूल इख़्तियार अल्लाह के सिवा किसी को नहीं
सूरा-9, आ-31, हा-31; सूरा-10, आ-59, हा-62; सूरा-16, आ-114, हा-114; सूरा-16, आ-116, हा-116

★ इस्लामी समाज की मेम्बरी (सदस्यता) की शर्तें
सूरा-9, आ-11, हा-14

★ नमाज़ और ज़कात की अहमियत इस्लाम के दस्तूरी क़ानून में
सूरा-9, आ-5, हा-7; सूरा-9, आ-11, हा-14

★ क़ानूनी मुसलमान और हक़ीक़ी मुसलमान की हैसियतों का फ़र्क़
सूरा-9, आ-88 से 90, हा-91, 106

★ निफ़ाक़ और कुफ़्र के शक के बावजूद लोग क़ानूनी हैसियत से मुसलमान ही गिने जाएँगे जिनका कुफ़्र या निफ़ाक़ साबित न हो जाए
सूरा-9, आ-90, हा-91

★ हिजरत के असरात और नतीजे दस्तूरी क़ानून में
सूरा-8, आ-72, हा-50

★ ईमानवालों की सियासी हैसियत
सूरा-8, आ-72, हा-50

★ इस्लामी रियासत के वाजिबात में वे ईमानवाले शामिल नहीं हैं जो दारुल-इस्लाम की रिआया न हों
सूरा-8, हा-51

★ इस्लामी रियासत किन मुसलमानों की वली (सरपरस्त) है और किन की नहीं है?
सूरा-8, आ-72, हा-50

★ रियासत के तमाम बसनेवाले उसकी अख़लाक़ी ज़िम्मेदारियों में शरीक हैं
सूरा-8, आ-72, हा-51; जानकारी के लिए देखें 'इस्लामी रियासत'

● फ़ौजदारी क़ानून

★ इरतिदाद (इस्लाम से फिर जाने) की सज़ा
सूरा-9, आ-12, हा-15

★ इरतिदाद पर मजबूर किया जानेवाला शख़्स पकड़ के क़ाबिल नहीं है
सूरा-16, आ-106, हा-109

★ अमले-क़ौमे-लूत (समलैंगिकता) की सज़ा
सूरा-7, आ-80 से 84, हा-64 से 68

★ क़त्ले-नफ़्स की हुरमत (किसी जान को हलाक किया जाना हराम है)
सूरा-17, आ-33, हा-33

★ आत्महत्या भी क़त्ले-नफ़्स (किसी जान को हलाक करना) है
सूरा-17, हा-33

★ वे पाँच सूरतें जिनमें आदमी की जान ली जा सकती है
सूरा-17, हा-34

★ क़िताल की माँग का हक़ सबसे पहले मक़तूल के सरपरस्तों को पहुँचता है
सूरा-17, आ-33, हा-35

★ क़िसास (बदला) लेना दावा करनेवालों का अपना

काम नहीं बल्कि क़िसास दिलवाना अदालत का काम है
सूरा-17, हा-37
★ क़िसास में हद से आगे बढ़ना मना है
सूरा-17, आ-33, हा-36
● **बैनुल-अक़वामी (अन्तर्राष्ट्रीय) क़ानून**
★ मुआहिदों (सन्धियों) को पूरा करने का हुक्म
सूरा-8, आ-56 से 58, 72; सूरा-9, आ-4 से 7; सूरा-16, आ-91 से 93, हा-90 से 93, सूरा-16, आ-95; सूरा-17, आ-34
★ मुआहिदों की पाबन्दी के लिए लाज़िमी शर्त
सूरा-9, हा-8
★ मुआहिदे तोड़नेवालों के साथ मुआहिदे की पाबन्दी नहीं की जा सकती
सूरा-9, आ-7, 8
★ मुआहिदे तोड़ देनेवाले गरोह के साथ क्या मामला किया जाए?
सूरा-8, आ-56, 57; सूरा-9 का परिचय; सूरा-9, आ-1, 13
★ अल्टीमेटम का तरीक़ा
सूरा-9 का परिचय; सूरा-9, आ-1, 2, 5
★ अल्टीमेटम की मुद्दत गुज़रने से पहले कोई जंगी कार्रवाई न की जाए
सूरा-9, आ-5, हा-6
★ वे इस्तिसनाई (अपवाद की) सूरतें जिनमें मुआहिदे के ख़त्म होने का नोटिस दिए बग़ैर जंगी कार्रवाई की जा सकती है
सूरा-8, हा-43
★ जंग के दौरान दुश्मन क़ौम के लोगों को मुस्तामिन (जिसको अमान दी गई हो) की सूरत में दाख़िल होने की इजाज़त देना
सूरा-9, आ-6
★ अगर दुश्मन हराम (आदर) के महीनों की हुरमत (प्रतिष्ठा) का लिहाज़ न करे तो मुसलमान भी न करेंगे
सूरा-9, आ-36
★ जंग के क़ैदी
सूरा-8, हा-49
★ दुश्मन अगर सुलह (सन्धि) की दरख़ास्त करे तो अल्लाह के भरोसे पर क़बूल कर ली जाए
सूरा-8, आ-61

● **मआशी (आर्थिक) क़ानून**
★ कम नापना और कम तौलना हराम है
सूरा-7, आ-85; सूरा-11, आ-84
★ औज़ान और पैमानों की निगरानी हुकूमत की ज़िम्मेदारियों में से है
सूरा-17, आ-35, हा-40
★ माल जमा करके रखना और उसे ख़ुदा की राह में ख़र्च न करना सख़्त गुनाह है
सूरा-9, आ-34; ज़्यादा जानकारी के लिए देखें 'क़ुरआन : इसका मआशी नुक़्ता-ए-नज़र'
● **मीरास का क़ानून**
★ मीरास के हुक़ूक़ की बुनियाद रिश्तेदारी पर है न कि सिर्फ़ इस्लामी बिरादरी पर
सूरा-8, आ-75, हा-53
● **शहादत का क़ानून**
★ शहादत-बिल-क़राइन (परिस्थितिजन्य-साक्ष्य)
सूरा-12, आ-26, हा-24
● **समाजी क़ानून**
★ कुफ़्र और शिर्क करनेवालों के साथ किस क़िस्म के ताल्लुक़ात रखे जा सकते हैं और किस क़िस्म के नहीं?
सूरा-9, आ-6, 7, 16, 23, 28, 113, 114, हा-111, 112
★ मुनाफ़िक़ों के साथ समाज में क्या बर्ताव होना चाहिए?
सूरा-9, आ-73, हा-82; सूरा-9, आ-84, हा-88; सूरा-9, आ-94, 95, हा-94; सूरा-9, आ-106, हा-101; ज़्यादा जानकारी के लिए देखें 'इस्लामी जमाअत का निज़ाम'
● **काफ़िर**
देखें 'कुफ़्र'
● **किताब**
★ किताबे-इलाही या कुतुबे-इलाही के मानी में
सूरा-7, आ-169, 170; सूरा-10, आ-37; सूरा-11, आ-110; सूरा-13, आ-38, 39; सूरा-15, आ-1; सूरा-17, आ-2
★ उम्मुल-किताब
सूरा-13, आ-39
★ अल्लाह की किताब से फ़ायदा उठाने की सही सूरत
सूरा-7, आ-145, हा-102
★ अल्लाह की किताब की पैरवी पर जमे रहने का

मुतालबा
सूरा-7, आ-145

★ किताब : हुक्म या फ़रमाने-इलाही के मानी में
सूरा-8, आ-68; सूरा-9, आ-36; सूरा-11, आ-1

★ किताब : क़ुरआन की सूरा के मानी में
सूरा-7, आ-2, हा-1

★ किताब : फ़ैसला और नविश्त-ए-तक़दीर के मानी में
सूरा-17, आ-58

★ किताब : क़ुरआन के मानी में
सूरा-7, आ-52; सूरा-12, आ-1; सूरा-13, आ-1; सूरा-14, आ-1; सूरा-15, आ-1

★ किताब : लौहे-महफ़ूज़ या अल्लाह के दफ़्तर के मानी में
सूरा-10, आ-61; सूरा-11, आ-6

★ कुफ़्र : नेमतों की नाशुक्री के मानी में
सूरा-14, आ-7

★ कुफ़्र की हक़ीक़त
सूरा-9, हा-106; सूरा-13, आ-30, हा-46

★ क़ुरआन को न माननेवाले काफ़िर हैं
सूरा-11, आ-17

★ क़ुरआन की किसी एक बात का इनकार भी कुफ़्र है
सूरा-17, हा-1

★ आख़िरत के न माननेवाले काफ़िर हैं
सूरा-11, आ-7, 8, 19; सूरा-13, आ-5

★ अल्लाह की आयतों का मज़ाक़ उड़ानेवाले और ख़ुदा और रसूल का मज़ाक़ बनानेवाले काफ़िर हैं
सूरा-9, आ-64 से 66, 74, हा-83

★ अल्लाह के क़ानून में बहानेबाज़ी कुफ़्र-पर-कुफ़्र है
सूरा-9, आ-37

★ मुनाफ़िक़ाना ईमान का इज़हार कुफ़्र है
सूरा-9, आ-49, 54, 55, 66, 74, 80 से 85, 90, हा-91; सूरा-9, आ-107, 123, हा-121

★ मोमिन और ग़ैर-मोमिन का फ़र्क़
सूरा-11, हा-28

★ कुफ़्र करनेवाले ही अल्लाह की रहमत से मायूस होते हैं
सूरा-12, आ-87

★ कुफ़्र एक नाशुक्री है
सूरा-14, आ-28; सूरा-16, आ-83, हा-79

★ वह फ़ितरत के ख़िलाफ़ है
सूरा-14, आ-26, हा-38

★ कुफ़्र के अख़लाक़ी और ज़ेहनी नतीजे
सूरा-13, आ-33, हा-52

★ कुफ़्र करनेवालों का अन्दाज़े-फ़िक्र
सूरा-7, आ-90, हा-74

★ काफ़िराना रवैया
सूरा-8, आ-36

★ ज़िन्दगी के काफ़िराना रवैये और मुसलमानाना रवैये में फ़र्क़
सूरा-9, हा-106

★ नतीजों और तारीख़ी तजरिबों के लिहाज़ से कुफ़्र और ईमान का मुक़ाबला
सूरा-14, हा-38

★ कुफ़्र करनेवाले की अख़लाक़ी ताक़त लाज़िमी तौर पर ईमानवालों की ताक़त से कम होती है
सूरा-8, आ-65, 66, हा-47, 48

★ कुफ़्र करनेवाले अल्लाह की मस्जिदों के मुतवल्ली होने के क़ाबिल नहीं हैं
सूरा-9, आ-17, हा-19

★ कुफ़्र करनेवाले बदतरीन मख़लूक़ हैं
सूरा-8, आ-55

★ इनके बुरे आमाल इनके लिए ख़ुशनुमा बना दिए जाते हैं
सूरा-9, आ-37

★ कुफ़्र पर इसरार करनेवालों के दिलों पर ठप्पा लगा दिया जाता है
सूरा-7, आ-101, हा-81

★ इनका कुफ़्र अल्लाह के लिए नहीं बल्कि ख़ुद इन्हीं के लिए नुक़सानदेह है
सूरा-14, आ-8

★ ये अल्लाह की ताईद से महरूम रहते हैं
सूरा-8, आ-19

★ अल्लाह इनको रुसवा करनेवाला है
सूरा-9, आ-2

★ ये सज़ा के हक़दार हैं
सूरा-8, आ-53, 54; सूरा-14, आ-2, 3, 7

★ इनके लिए मग़फ़िरत नहीं
सूरा-9, आ-80

★ इनके तमाम आमाल बरबाद हो जाएँगे
सूरा-7, आ-147; सूरा-14, आ-18, 19, हा-25, 26

★ मरते वक़्त फ़रिश्ते इनके साथ क्या बरताव करते हैं?

सूरा-8, आ-50; सूरा-16, आ-28, 29, हा-26

★ आख़िरत में वे अपनी ग़लतियों को ख़ुद स्वीकार करेंगे

सूरा-7, आ-37

★ इनका अंजाम

सूरा-7, आ-38, 51; सूरा-8, आ-14, 36, 50; सूरा-9, आ-17, 68, 73; सूरा-10, आ-4, 70; सूरा-11, आ-17, 60, 68; सूरा-13, आ-5, 35; सूरा-14, आ-2, 28 से 30; सूरा-16, आ-27, 84, 85, 88; सूरा-17, आ-8, 97, 98

★ इनका अंजाम किसी अफ़सोस के लायक़ नहीं

सूरा-7, आ-93

● **क़िताल-फ़ी-सबीलिल्लाह**

★ इस्लाम में जंग का मक़सद और बुनियादी नज़रिया

सूरा-8, हा-1 और 20; सूरा-8, आ-39; सूरा-9 का परिचय; सूरा-9, आ-29, हा-28

★ दीन में क़िताल-फ़ी-सबीलिल्लाह की अहमियत

सूरा-9, आ-111, 120

★ क़िताल-फ़ी-सबीलिल्लाह में हिस्सा लेना ठीक उस मुआहिदे का तक़ाज़ा है जो ईमान लाने के साथ ही मोमिन और ख़ुदा के दरमियान क़ायम हो जाता है

सूरा-9, आ-111, हा-106

★ ख़ुदा की राह में जंग से जी चुराना काफ़िराना और मुनाफ़िक़ाना रवैया है

सूरा-9, आ-81 से 90, हा-91

★ ईमानवालों को कुफ़्र और इस्लाम की जंग में पीछे नहीं रहना चाहिए

सूरा-9, आ-44, हा-119

★ जिन लोगों को इस्लामी हुकूमत जंग के लिए तलब करे उन सब पर फ़ौजी ख़िदमत फ़र्ज़े-ऐन है

सूरा-9, आ-39, हा-40

★ जब जंग के लिए तलब कर लिया जाए तो ज़ाती सहूलत और परेशानी का ख़याल किए बग़ैर हर मुसलमान को निकलना चाहिए

सूरा-9, आ-41, हा-43

★ मगर हर वह शख़्स लाज़िमी तौर पर मुनाफ़िक़ नहीं है जो लब्बैक न कहे

सूरा-9, आ-102 से 105, हा-99

★ लब्बैक न कहनेवाले मोमिनों के साथ क्या मामला किया जाए?

सूरा-9, हा-99; सूरा-9, आ-117 से 119, हा-115 से 119

★ जंग पर न जाने के लिए जाइज़ मजबूरियाँ क्या हो सकती हैं?

सूरा-9, आ-91, 92, हा-92, 93

★ जाइज़ मजबूरी भी सिर्फ़ उसी की क़बूल होगी जो अल्लाह और रसूल का सच्चा वफ़ादार हो

सूरा-9, आ-91, हा-92

★ बेजा मजबूरी बयान करनेवालों या बिला मजबूरी बैठे रह जानेवालों के साथ क्या मामला किया जाए?

सूरा-9, आ-81 से 84, 92 से 96

★ बुज़दिली एक गंदगी है जो शैतान आदमी के दिल में डालता है

सूरा-8, आ-11

★ मैदाने-जंग से फ़रार हराम है

सूरा-8, आ-15 से 16, हा-13

★ मुसलमानों को अपनी फ़ौजी ताक़त हर वक़्त मज़बूत रखने का हुक्म

सूरा-8, आ-60, हा-44

★ फ़ौजी ज़रूरतों पर माल ख़र्च करने में कंजूसी न की जाए

सूरा-8, आ-60

★ इस्लामी जंग के आदाब

सूरा-8, आ-45 से 47

★ इस्लाम-दुश्मन फ़ौजों के से रंग-ढंग इख़्तियार करने की मनाही

सूरा-8, आ-47, हा-38

★ दुश्मन की फ़ौजी ताक़त तोड़ देना वह असल मक़सद है जिस पर मैदाने-जंग में फ़ौज की निगाह जमी रहनी चाहिए

सूरा-8, आ-67 से 69, हा-49

★ जंगी क़ैदियों को इस्लाम की तबलीग़

सूरा-8, आ-70

★ जंग के दौरान दुश्मन को तबलीग़ की जाती रहे

सूरा-9, आ-6

★ ज़ालिमों और मुआहिदे तोड़नेवालों के ख़िलाफ़ जंग का हुक्म

सूरा-9, आ-13, 14, हा-16

★ अहले-किताब के ख़िलाफ़ जंग का हुक्म

सूरा-9, आ-29, हा-26

★ दीन से फिर जानेवालों के ख़िलाफ़ जंग का हुक्म

सूरा-9, आ-12, हा-15

● **क़िबला**

★ मर्कज़ और मरजअ के मानी में
सूरा-10, आ-87

● क़ियामत

★ क़ियामत का दिन
सूरा-7, आ-167; सूरा-10, आ-60; सूरा-11, आ-60, 99; सूरा-16, आ-25, 27

★ क़ियामत होने की दलीलें
सूरा-13, आ-2, हा-7

★ इससे पहले सब हलाक हो जाएँगे
सूरा-17, आ-58

★ पूछ-गछ का दिन
सूरा-7, आ-172, 173, हा-135

★ फ़ैसले का दिन
सूरा-10 आ-93

★ जज़ा और सज़ा का दिन
सूरा-15, आ-35

★ हिसाब लेने का दिन
सूरा-14, आ-41

★ फ़ैसले की घड़ी
सूरा-7, आ-187; सूरा-12, आ-107; सूरा-15, आ-85; सूरा-16, आ-77

★ तमाम इनसानों के ज़िन्दा करके उठाए जाने का दिन
सूरा-15, आ-36

★ तमाम इनसानों के एक ही वक़्त में जमा किए जाने का दिन
सूरा-10, आ-28, 45; सूरा-11, आ-103

★ अल्लाह से मुलाक़ात का दिन
सूरा-7, आ-51; सूरा-10, आ-45

★ शैतान को इस दिन तक के लिए मुहलत दी गई है
सूरा-7, आ-14, 15; सूरा-15, आ-36 से 38; सूरा-17, आ-62, 63

★ वह अचानक आएगा
सूरा-7, आ-187; सूरा-12, आ-107; सूरा-16, आ-77, हा-71

★ उसका वक़्त मुक़र्रर है
सूरा-11, आ-104; सूरा-15, आ-38

★ उसका वक़्त ख़ुदा के सिवा किसी को मालूम नहीं
सूरा-7, आ-187; सूरा-15, आ-38

★ उसकी कैफ़ियत
सूरा-7, आ-187; सूरा-11, आ-105 से 108; सूरा-14, आ-42 से 44, 48 से 51

★ उस रोज़ मुर्दों के ज़िन्दा होकर उठने की कैफ़ियत
सूरा-16, हा-26

★ उस दिन मोमिन और ग़ैर-मोमिन सब ख़ुदा की हम्द करेंगे
सूरा-17, आ-52, हा-56

★ उस दिन सबको अपनी-अपनी पड़ी होगी
सूरा-16, आ-111

★ गुमराह लोग किस हालत में लाए जाएँगे?
सूरा-17, आ-97

★ ख़ुदा की अदालत में तमाम इनसानों की पेशी
सूरा-17, आ-71

★ नामा-ए-आमाल पेश होंगे
सूरा-17, आ-13, 14

★ आमाल के वज़न पर फ़ैसला होगा
सूरा-7, आ-8, 9, हा-8, 9

★ हरेक को उसके किए का पूरा बदला दिया जाएगा
सूरा-16, आ-111

★ तमाम इख़्तिलाफ़ात की हक़ीक़त खोल दी जाएगी और उनका फ़ैसला कर दिया जाएगा
सूरा-10, आ-93; सूरा-16, आ-92, 124

★ उस दिन ख़ुदा की नेमतें सिर्फ़ ईमानवालों के लिए होंगी
सूरा-7, आ-32; ज़्यादा जानकारी के लिए देखें 'आख़िरत' और 'हश्र'

● क़िसास (बदला)
देखें 'क़ानूने-इस्लाम'

● क़ुरआन

★ लफ़्ज़ क़ुरआन के मानी
सूरा-12, आ-2, हा-1

★ 'किताबे-इलाही' के वसी (व्यापक) मानी में इस नाम का इस्तेमाल
सूरा-15, आ-91, हा-52

★ इसका लानेवाला रूहुल-क़ुदुस है
सूरा-16, आ-102, हा-103

★ इसको अल्लाह तआला ने नाज़िल किया है
सूरा-7, आ-2; सूरा-10, आ-37, 94; सूरा-11 का परिचय; सूरा-11, आ-14, 17; सूरा-12, आ-2; सूरा-13, आ-37; सूरा-14, आ-1; सूरा-15, आ-9; सूरा-16, आ-64, 102; सूरा-17, आ-39, 82, 85, हा-103; सूरा-17, आ-105, 106

★ इसके कलामे-इलाही होने की दलीलें

सूरा-10, आ-16, 17, हा-21, 22; सूरा-10, आ-37, 38; सूरा-11, आ-13, 14; सूरा-17, आ-86 से 88, हा-105

★ वह अल्लाह के सिवा किसी का कलाम नहीं हो सकता
सूरा-10, आ-37

★ दुनिया को इसके जैसा बनाकर लाने का चैलेंज
सूरा-10, आ-38, हा-46; सूरा-11, आ-13; सूरा-17, आ-88, हा-105

★ यह वह मोजिज़ा है जो नबी (सल्ल.) को दिया गया
सूरा-7, आ-203, हा-151

★ किन-किन हैसियतों से वह मोजिज़ा है?
सूरा-10, हा-46; सूरा-17, हा-105

★ इसके सच्चा होने की दलीलें और सुबूत
सूरा-7, हा-128, 143; सूरा-12 का परिचय; सूरा-12, आ-102 से 104, हा-71 से 73; सूरा-17, हा-89, 100

★ वह सरासर हक़ है और हक़ ही के साथ नाज़िल हुआ है
सूरा-10, आ-94, 108; सूरा-11, आ-17; सूरा-13, आ-1, हा-1; सूरा-17, आ-105

★ वह बिलकुल सीधी राह दिखाता है
सूरा-17, हा-11

★ वह एक हुक्म है ख़ुदा की तरफ़ से
सूरा-13, आ-37

★ वह सब इनसानों के लिए ख़ुदा का पैग़ाम है
सूरा-14, आ-52

★ इस ख़याल का रद्द कि वह सिर्फ़ अरबों के लिए नाज़िल हुआ है
सूरा-12, आ-2, हा-2

★ वह अरबी ज़बान में उतरा है
सूरा-12, आ-2; सूरा-13, आ-37

★ वह इसलिए नाज़िल किया गया है कि लोग इसे समझें
सूरा-12, आ-2; सूरा-16, आ-44

★ इसके उतरने का तरीक़ा
सूरा-12 का परिचय; सूरा-16, आ-102; सूरा-17, आ-106

★ इसके तदरीज (क्रम) के साथ उतरने की हिकमत
सूरा-16, आ-102, हा-104; सूरा-17, आ-106, हा-119

★ इसके ताज़ा अहकाम का एलान किस तरह किया जाता था?
सूरा-9, हा-126

★ इसकी तरतीब
सूरा-9 का परिचय

★ इसके मुफ़स्सल होने और इसमें हर चीज़ की तफ़सील होने का मतलब
सूरा-7, हा-36; सूरा-12, हा-80; सूरा-16, हा-86

★ ख़ुदा ने इसकी हिफ़ाज़त की ज़िम्मेदारी ख़ुद ली है
सूरा-15, आ-9, हा-6

★ सहाबा किराम ने इसकी हिफ़ाज़त का किस दर्जे एहतिमाम किया है?
सूरा-9 का परिचय

★ इसकी तारीफ़
सूरा-7, आ-52, 203, 204, हा-152, 153; सूरा-10, आ-1, 57; सूरा-11, आ-1, हा-2; सूरा-12, आ-1, 104, 111; सूरा-15, आ-1; सूरा-16, आ-64, 89

★ इसकी बरकतें
सूरा-7, आ-204

★ दुनिया की हर दौलत से ज़्यादा क़ीमती
सूरा-10, आ-58

★ सबसे बड़ी नेमत
सूरा-15, आ-87, हा-50

★ इसको ज़िक्र किस मानी में कहा गया है?
सूरा-7, हा-135

★ माननेवालों के लिए हिदायत, शिफ़ा और रहमत है
सूरा-7, आ-52; सूरा-17, आ-82

★ इससे मुँह मोड़नेवाले घाटे में रहेंगे
सूरा-17, आ-82, हा-102

★ इसके नाज़िल होने का मक़सद
सूरा-7, आ-2; सूरा-14, आ-1, 52; सूरा-16, आ-64, 89; सूरा-17, आ-41

★ इसकी दावत
सूरा-7, आ-3, 56; सूरा-17, हा-51

★ इसकी दावत पहुँच जाने के बाद आदमी पर ख़ुदा की हुज्जत पूरी हो जाती है
सूरा-17, आ-82

★ सही दिमाग़वाला आदमी इसकी दावत को क़बूल किए बग़ैर नहीं रह सकता
सूरा-11, आ-17, हा-17, 19

★ इसकी दावत वही है जो पिछली तमाम आसमानी

किताबों की थी
सूरा-10, आ-94
★ आख़िरत को न माननेवाले इसकी हिदायत से क्यों महरूम रहते हैं?
सूरा-17, आ-45, 46, हा-51
★ मुजरिमों को इसकी तालीम सख़्त नागवार गुज़रती है
सूरा-15, आ-12
★ शैतान को सबसे ज़्यादा नागवार है कि आदमी इससे फ़ायदा उठाए
सूरा-16, हा-101
★ इसकी किसी एक बात का इनकार भी कुफ़्र है
सूरा-17, हा-1
★ इससे हिदायत हासिल करने के लिए मुताले (अध्ययन) का सही तरीक़ा
सूरा-16, आ-98, हा-101
★ इसको सुनने के आदाब
सूरा-7, आ-204
★ इसको पढ़ने के आदाब
सूरा-16, आ-98, हा-101
★ इसकी तफ़सीर का यह तरीक़ा ग़लत है कि मौक़ा-महल से अलग करके इसकी किसी आयत का मतलब निकाला जाए
सूरा-16, हा-62; सूरा-17, हा-103
★ इसको समझने के लिए नबी (सल्ल.) की क़ौली और अमली तशरीह ज़रूरी है
सूरा-16, आ-44, हा-40
★ हदीस की किसी बात का क़ुरआन से ज़्यादा होना यह मानी नहीं रखता कि वह क़ुरआन के ख़िलाफ़ है
सूरा-17, हा-1
★ ईमानवालों पर इसके असरात
सूरा-9, आ-124
★ मुनाफ़िक़ पर इसके असरात
सूरा-9, आ-125
★ इसका इस्तिक़बाल अरब के रास्तबाज़ लोग किस तरह कर रहे थे?
सूरा-16, हा-27
★ इसकी दावत को रोकने के लिए इस्लाम-मुख़ालिफ़ क्या तरीक़े इख़्तियार कर रहे थे?
सूरा-16, हा-22
★ इस पर मक्का के इस्लाम-दुश्मनों का एतिराज़ और उनके जवाब
सूरा-8, आ-31 से 34, हा-26, 27; सूरा-10 का परिचय; सूरा-10, आ-15, 16, हा-21; सूरा-10 आ-38, हा-46; सूरा-13, हा-58; सूरा-16, आ-101 से 105
★ इसके बयान का तरीक़ा
सूरा-7, आ-54, हा-41, 50; सूरा-7, आ-92, 93, हा-76; सूरा-7, आ-175, 176, हा-138, सूरा-10, आ-34, 35, 42 से 44, 94, 95, हा-96; सूरा-10, आ-99, हा-102; सूरा-12 और 13 का परिचय; सूरा-14, आ-47, 48, हा-56; सूरा-15 और 16 का परिचय; सूरा-16, आ-1, 15, 16, 18, 19, हा-17, 23; सूरा-16, आ-41, हा-37; सूरा-16, आ-75, हा-67; सूरा-16, आ-101, 103; सूरा-17 का परिचय
★ मक्की दौर की आख़िरी सूरतों का अन्दाज़े-बयान
सूरा-7, 10, 11, 13, 14, 15, 17 के परिचय
★ इसके दलीलें देने का तरीक़ा
सूरा-7, आ-29, 32, 54, 71, 184 से 186, 191 से 198; सूरा-10, आ-2, 4 से 6, हा-9 से 11, सूरा-10, आ-7, 8, हा-12; सूरा-10, आ-16, 17, हा-21; सूरा-10, आ-22, 31 से 35, हा-47; सूरा-10, आ-66 से 68 हा-69; सूरा-10, आ-105, हा-108; सूरा-11, आ-7, 8, 13, 14, 51, 61, हा-67, 69; सूरा-11, आ-102, 103; सूरा-13, आ-2 से 4, 14 से 16, 33; सूरा-14, आ-19, 20; सूरा-16, आ-1 से 11, 15 से 21, 35 से 39, 65 से 67, 70 से 73
★ वह इनसान की अक़्ल व फ़िक्र से अपील करता है
सूरा-7, आ-184, 185; सूरा-10, आ-16, 24, 31, 32, 34, 35, 66, 67; सूरा-11, आ-24, 51, हा-56; सूरा-12, आ-107 से 111; सूरा-13, आ-3, 4, हा-7 से 11; सूरा-13, आ-16, 19; सूरा-14, आ-52; सूरा-16, आ-12, 13, 17, 67, 69
★ कायनात के निज़ाम के बारे में इसका बयान
सूरा-7, आ-54; सूरा-10, आ-3, 5, 6; सूरा-13, आ-2 से 5, हा-2 से 11; सूरा-13, आ-8 से 11, हा-17, 18; सूरा-14, आ-19, हा-26; सूरा-14, आ-32 से 34; सूरा-15, आ-16 से 25, 85, 86; सूरा-16, आ-3 से 16, 48; सूरा-17, आ-12, हा-13; सूरा-17, आ-44
★ फ़ितरत से परे हक़ीक़तों के बारे में इसका बयान
सूरा-7, आ-11 से 27, हा-10 से 15; सूरा-7, आ-37, 46 से 51, हा-35; सूरा-7, आ-54, 172 से

174, हा-134, 135; सूरा-11, आ-7; सूरा-15, आ-26 से 43; सूरा-16, आ-92, 93, हा-93; सूरा-17, आ-13, 14, 46, हा-51, 72, 73

★ इनसान की पैदाइश के बारे में इसका बयान
देखें 'इनसान'

★ मज़ाहिब की असलियत के बारे में इसका बयान
सूरा-10, आ-19, हा-26

★ वह तमाम आसमानी किताबों की तस्दीक़ (पुष्टि) करता है
सूरा-10, आ-37, हा-45; सूरा-12, आ-111, हा-80

★ आसमानी किताबें इसकी ताईद करती हैं
सूरा-10, आ-94, हा-96

★ पहले आई हुई किताबों की तालीमात को वह तफ़सील के साथ बयान करता है
सूरा-10, आ-37, हा-45

★ वह बनी-इसराईल के नबियों को ख़ुद बनी-इसराईल की लगाई हुई तुहमतों से पाक करता है
सूरा-7, आ-150, हा-108

★ इसका फ़लसफ़ा-ए-तारीख़ (इतिहास-दर्शन)
सूरा-7, आ-4 से 6, हा-5; सूरा-7, आ-34, हा-27; सूरा-7, आ-56, हा-44; सूरा-7, आ-59, हा-47; सूरा-7, आ-64, 94 से 102, हा-77 से 82; सूरा-7, आ-127, हा-93; सूरा-8, आ-52 से 54, हा-40; सूरा-9, आ-69, 70; सूरा-10, हा-12; सूरा-10, आ-13, 14, हा-18; सूरा-10, आ-19, हा-26; सूरा-10, आ-49, हा-58; सूरा-10, आ-100 से 103, हा-105; सूरा-11 का परिचय; सूरा-11, आ-52, हा-56, 84; सूरा-11, आ-100 से 105, 116 से 119, हा-115, 116; सूरा-13, आ-11, 17; सूरा-14, आ-5, 6, हा-8, 9, 18, 24; सूरा-15, आ-4, 5, हा-2; सूरा-16, आ-36, हा-33, 34; सूरा-17, आ-16, 17, हा-18

★ इसका फ़लसफ़ा-ए-अख़लाक़
सूरा-7, आ-22, हा-13; सूरा-7, आ-38, 39, हा-30, 31; सूरा-7, आ-43, 79, 147, हा-104; सूरा-7, आ-155, हा-110; सूरा-7, आ-165, हा-125, 139; सूरा-8, आ-11, हा-9; सूरा-8, आ-23 से 29, हा-19 से 23; सूरा-8, आ-62, 63, हा-45, 46; सूरा-8, आ-67; सूरा-9, आ-110, हा-105; सूरा-10, आ-7, 8, हा-12, 13; सूरा-11, आ-116, से 119, हा-115, 116; सूरा-12 का परिचय; सूरा-16, हा-92; सूरा-16, आ-94 से 97; सूरा-17, आ-13 से 15, हा-14 से 16; सूरा-17, आ-19, हा-51

★ इसका अख़लाक़ी नुक़्ता-ए-नज़र
सूरा-7, आ-13, हा-11; सूरा-7, आ-43, हा-33; सूरा-9, आ-18 से 23, 51 से 54; सूरा-10, आ-17, हा-23; सूरा-11, आ-3, हा-3, 88; सूरा-13, आ-26, हा-42; सूरा-16, आ-94 से 97; सूरा-17, आ-18 से 20, हा-51

★ इसकी अख़लाक़ी तालीमात के लिए देखें "अख़लाक़"

★ इसका फ़लसफ़ा-ए-तमद्दुन व मुआशरत
सूरा-7, आ-20 से 23, हा-13; सूरा-7, आ-32, 55, 56, हा-44; सूरा-7, आ-188, 189; सूरा-16, हा-88; सूरा-17, आ-31, 32, हा-31, 32

★ इसका इल्मुन्नफ़्स
सूरा-7, हा-13; सूरा-7, आ-94, 95, हा-77; सूरा-7, आ-102; हा-81, 102; सूरा-7, आ-173, हा-135; सूरा-8, हा-47; सूरा-11, आ-91, 92; सूरा-13, आ-33, हा-54; सूरा-15, आ-11 से 13, हा-7; सूरा-16, आ-103; सूरा-17, हा-51

★ इसमें इस्लामी फ़लसफ़े की बुनियादें
सूरा-10, आ-66, 67, हा-65

★ वह हक़ीक़त की तलाश के किस तरीक़े की तरफ़ रहनुमाई करता है?
सूरा-7, आ-184 से 186; सूरा-10, आ-4 से 8, हा-6 से 12; सूरा-10, आ-66, 67, हा-65; सूरा-10, आ-101 से 103, हा-105; सूरा-12, आ-107, 108, हा-77; सूरा-13, आ-3, 4, हा-8, 9, 44; सूरा-14, आ-5, हा-9, 10

★ इसका मआशी नुक़्ता-ए-नज़र
सूरा-17, आ-30, हा-30; सूरा-17, आ-66, हा-83

★ इश्तिराकियत (साम्यवाद) के हक़ में इससे एक ग़लत दलील
सूरा-16, आ-71, हा-62

★ इसमें क़िस्से किस ग़रज़ के लिए बयान किए गए हैं?
सूरा-7, हा-47, 49, 50, 76, 77; सूरा-11 का परिचय; सूरा-11, हा-103; सूरा-11, आ-120; सूरा-12, हा-74; सूरा-12, आ-111; सूरा-14, हा-24, 46; सूरा-14, आ-45; सूरा-17, हा-2, 10

★ आदम और हव्वा (अलैहि॰) का क़िस्सा बयान करने

का मक़सद
सूरा-7, हा-13; सूरा-15, हा-25; सूरा-17, हा-74

★ हज़रत नूह (अलैहि॰) का क़िस्सा बयान करने का मक़सद
सूरा-7, हा-47; सूरा-10 का परिचय; सूरा-10, आ-71, हा-69; सूरा-11 हा-39

★ हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) का क़िस्सा बयान करने का मक़सद
सूरा-11, हा-84; सूरा-14, हा-46, सूरा-15, आ-51, हा-30

★ हज़रत लूत (अलैहि॰) का क़िस्सा बयान करने का मक़सद
सूरा-11, हा-84, 90; सूरा-15, आ-51, हा-30

★ हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) का क़िस्सा बयान करने का मक़सद
सूरा-12 का परिचय

★ मूसा (अलैहि॰) और बनी-इसराईल का क़िस्सा बयान करने का मक़सद
सूरा-7, हा-83; सूरा-10 का परिचय; सूरा-10, हा-74; सूरा-14, हा-13; सूरा-17, हा-10, 113, 114, 117

★ क़ुरआनी क़िस्सों का मतलब क़ुरैश ख़ूब समझते थे
सूरा-11, हा-39

★ क़िस्से बयान करने में क़ुरआन का तरीक़ा
सूरा-12 का परिचय

★ मुस्तशरिक़ीन (पश्चिम के विद्वान जो इस्लाम पर आक्षेप करते हैं) के इस इलज़ाम की तरदीद कि वह बनी-इसराईल से रिवायतें नक़ल करता है
सूरा-12, हा-25अ, 71

● क़ुरआनी क़िस्से

★ हज़रत आदम और हव्वा (अलैहि॰) का क़िस्सा
सूरा-7, आ-11 से 25; सूरा-15, आ-26 से 43; सूरा-17, आ-61 से 65

★ हज़रत नूह (अलैहि॰) का क़िस्सा
सूरा-7, आ-59 से 64; सूरा-10, आ-71 से 73; सूरा-11, आ-25 से 48

★ हज़रत हूद (अलैहि॰) का क़िस्सा
सूरा-7, आ-65 से 72; सूरा-11, आ-50 से 60

★ हज़रत सालेह (अलैहि॰) का क़िस्सा
सूरा-7, आ-73 से 79; सूरा-11, आ-61 से 68

★ हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) का क़िस्सा
सूरा-11, आ-69 से 76; सूरा-14, आ-35 से 41; सूरा-15, आ-51 से 60

★ हज़रत लूत (अलैहि॰) का क़िस्सा
सूरा-7, आ-80 से 84; सूरा-11, आ-69 से 83; सूरा-15, आ-61 से 77

★ हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) का क़िस्सा
सूरा-12 का परिचय; सूरा-12, आ-1 से 101

★ हज़रत शुऐब (अलैहि॰) का क़िस्सा
सूरा-7, आ-85 से 93; सूरा-11, आ-84 से 95

★ हज़रत मूसा (अलैहि॰) का क़िस्सा
सूरा-7, आ-103 से 160; सूरा-10, आ-75 से 92; सूरा-11, आ-96 से 99; सूरा-14, आ-5 से 8; सूरा-17, आ-101 से 104

● क़ुरआनी दुआएँ

★ हज़रत आदम (अलैहि॰) और हव्वा (अलैहि॰) की दुआ-ए-इस्तिग़फ़ार
सूरा-7, आ-23

★ आराफ़वालों की दुआ
सूरा-7, आ-47

★ हज़रत शुऐब (अलैहि॰) की दुआ
सूरा-7, आ-89

★ मिस्र के जादूगरों की दुआ ईमान लाने के बाद
सूरा-7, आ-126

★ हज़रत मूसा (अलैहि॰) की दुआ-ए-इस्तिग़फ़ार
सूरा-7, आ-151, 155, 156

★ बनी-इसराईल की दुआ फ़िरऔन के ज़ुल्म से नजात पाने के लिए
सूरा-10, आ-85, 86

★ हज़रत मूसा (अलैहि॰) की बद्दुआ फ़िरऔन के हक़ में
सूरा-10, आ-88

★ हज़रत नूह (अलैहि॰) की दुआ-ए-इस्तिग़फ़ार
सूरा-11, आ-47

★ हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) की दुआ मिस्र की औरतों के फ़ितने से बचने के लिए
सूरा-12, आ-33

★ हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) की आख़िरी दुआ
सूरा-12, आ-101

★ हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) की दुआ अपनी औलाद को मक्का में आबाद करते वक़्त
सूरा-14, आ-35 से 41

★ वह दुआ जो मक्की दौर के इन्तिहाई सख़्त ज़माने में नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) को सिखाई गई

सूरा-17, आ-80, 81

- ● क़ुरआनी मिसालें
- ★ नुबूवत (पैग़म्बरी) के लिए बाराने-रहमत की मिसाल
सूरा-7, आ-57, 58, हा-46
- ★ इल्मे-हक़ रखने के बावजूद दुनिया-परस्ती में मुब्तला होनेवालों की मिसाल
सूरा-7, आ-175, 176, हा-139
- ★ ख़ुदा से बेख़ौफ़ होकर ज़िन्दगी बसर करनेवालों की मिसाल
सूरा-9, आ-109, हा-103
- ★ दुनिया की ज़िन्दगी की मिसाल
सूरा-10, आ-24
- ★ ख़ुदा को छोड़कर दूसरों से दुआ माँगनेवालों की मिसाल
सूरा-13, आ-14
- ★ हक़ और बातिल की कशमकश की मिसाल
सूरा-13, आ-17, हा-31
- ★ काफ़िरों के आमाल अकारथ जाने की मिसाल
सूरा-14, आ-18, हा-25
- ★ कलिमा तैयिबा और कलिमा ख़बीसा की मिसाल
सूरा-14, आ-24 से 26, हा-37, 38
- ★ मुशरिकों के माबूदों की मिसाल
सूरा-16, आ-75, 76, हा-69
- ● क़ुरैश
- ★ अरब में इनके असरात
सूरा-8, हा-28; सूरा-11, हा-84
- ★ इनका माद्दा परस्ताना (भौतिकवादी) नुक़्ता-ए-नज़र
सूरा-13, आ-26, हा-42
- ★ इनके मज़हबी और नसली दावों पर क़ुरआन की चोट
सूरा-8, आ-34, 35, हा-28, 29; सूरा-9, आ-18 से 20, हा-21
- ★ अल्लाह का एलान कि इनको काबा का मुतवल्ली होने का हक़ नहीं पहुँचता जब तक कि ये इस्लाम-मुख़ालिफ हैं
सूरा-8, आ-34, 35
- ★ उनका सुलह हुदैबिया को एलानिया तोड़ डालना
सूरा-8, हा-43
- ★ उनकी आख़िरी हार
सूरा-9 का परिचय;
ज़्यादा तफ़सीलात के लिए देखें 'मुहम्मद' (सल्ल.)

ख़

- ● ख़िलाफ़त
- ★ इनसान को ज़मीन पर ख़िलाफ़त देने से पहले हलफ़े-वफ़ादारी (वफ़ादारी का अहद) लिया गया
सूरा-7, हा-134
- ★ ख़िलाफ़त इम्तिहान और आज़माइश के मक़सद से दी जाती है
सूरा-7, आ-129; सूरा-10, आ-14, हा-18
- ★ हज़रत नूह (अलैहि.) की क़ौम के बाद आद ख़लीफ़ा बनाए गए
सूरा-7, आ-69
- ★ आद को धमकी दी गई कि ख़ुदा तुम्हारी जगह दूसरों को ख़लीफ़ा बनाएगा
सूरा-11, आ-57
- ★ आद के बाद समूद ख़लीफ़ा बनाए गए
सूरा-7, आ-74
- ★ बनी-इसराईल को ख़िलाफ़त देने का वादा
सूरा-7, आ-129
- ● ख़ुसरान (नुक़सान)
- ★ कैसे लोगों के लिए है?
सूरा-7, आ-9, हा-9; सूरा-7, आ-52, 53, 93, 99, 149, 178; सूरा-8, आ-37, हा-30; सूरा-9, आ-69; सूरा-10, आ-45, 95; सूरा-11, आ-21, 22, 63, हा-73; सूरा-16, आ-109; सूरा-17, आ-82, हा-102

ग़/ग

- ● ग़नीमत (देखें 'क़ानूने-इस्लाम')
- ● गुनाह
- ★ असल गुनाह क्या है?
सूरा-7, आ-30, 31
- ★ गुनाह की हक़ीक़त
सूरा-7, आ-33, हा-25
- ★ इज्तिमाई गुनाह क्या है?
सूरा-7, आ-75 से 78, 165, हा-125; सूरा-8, आ-25, हा-20
- ★ वे बड़े गुनाह जिनके साथ कोई नेकी फ़ायदेमन्द नहीं होती
सूरा-8, हा-13; ज़्यादा जानकारी के लिए देखें 'अख़लाक़'
- ● गुमराही
देखें 'ज़लालत'

● ग़ुलामी

★ ग़ुलामों की आज़ादी की सूरतें जो इस्लाम में पैदा की गई हैं

सूरा-9, हा-65

ज/ज़

● जंग

देखें 'जिहाद' और 'क़िताल फ़ी सबीलिल्लाह'

● जंगे-तबूक

★ इसके असबाब

सूरा-9 का परिचय

★ इसकी अहमियत

सूरा-9 का परिचय; सूरा-9, आ-41

★ इसके हालात

सूरा-9 का परिचय

★ इसके असरात अरब की सियासत पर

सूरा-9 का परिचय

★ इसका फ़ैसला किन हालात में किया गया?

सूरा-9 का परिचय; सूरा-9, आ-42, हा-44

★ वह ख़ुतबा जो जंग पर उभारने के लिए नाज़िल हुआ

सूरा-9, आ-38, 39, हा-38

★ नबी (सल्ल.) की दिलेराना पॉलिसी

सूरा-9 का परिचय

★ उन सच्चे मुसलमानों की कैफ़ियत जो जंग पर न जा सके

सूरा-9, आ-91, 92, हा-92, 93

★ मुनाफ़िक़ों का रवैया

सूरा-9 का परिचय; सूरा-9, आ-42 से 50, हा-45, 48; सूरा-9, आ-52, 53, हा-53; सूरा-9, आ-64, 65, हा-73; सूरा-9, आ-74, हा-84; सूरा-9, आ-79, हा-87; सूरा-9, आ-90, 93 से 96, 107, 108, हा-102

★ मस्जिदे-ज़िरार और अबू-आमिर राहिब की सरगर्मियाँ

सूरा-9 का परिचय; सूरा-9, आ-107, 108, हा-102

★ मदीना के आसपास के बद्दुओं का रवैया

सूरा-9, आ-97 से 99 हा-95

★ लड़ाई न होने की असल वजह

सूरा-9 का परिचय

★ इस मौक़े पर इस्लामी समाज की क्या कमज़ोरियाँ सामने आईं और उन्हें दूर करने के लिए क्या तदबीरें की गईं?

सूरा-9, आ-122, हा-120

★ वह ख़ुतबा जो जंग के बाद नाज़िल हुआ

सूरा-9, आ-73, हा-81

★ जंग से पीछे ठहर जानेवालों पर ग़ुस्सा

सूरा-9, आ-81, 82

★ उन ईमानवालों का मामला जो नफ़्स की कमज़ोरी की वजह से जंग में न गए

सूरा-9, आ-102 से 106, हा-99 से 101; सूरा-9, आ-114 से 118, हा-115 से 119

★ जंग से वापसी पर उन लोगों से पूछगछ जो पीछे रह गए थे

सूरा-9, हा-118

★ मुनाफ़िक़ों से पूछगछ

सूरा-9, हा-118

★ क़ुसूरवार मोमिनों से पूछगछ

सूरा-9, हा-118

★ हज़रत काब-बिन-मालिक का सबक़-आमोज़ वाक़िआ

सूरा-9, हा-119

● जंगे-बद्र

★ इसके असबाब

सूरा-8 का परिचय

★ इसकी अहमियत

सूरा-8 का परिचय; सूरा-8, आ-7, हा-7; सूरा-8 आ-19, हा-15

★ इस्लाम-दुश्मन किन इरादों के साथ आए थे?

सूरा-8 का परिचय; सूरा-8, आ-19, हा-15; सूरा-8, हा-38

★ किस शान के साथ आए थे?

सूरा-8, आ-47, हा-38

★ उनके लश्कर की तादाद

सूरा-8 का परिचय

★ नबी (सल्ल.) ने जंग के लिए निकलने का फ़ैसला किन हालात में किया था?

सूरा-8 का परिचय

★ आप (सल्ल.) का मक़सदे-जंग

सूरा-8 का परिचय

★ अल्लाह के पेशे-नज़र क्या मक़सद था?

सूरा-8, आ-7, हा-7, आ-42

★ जंग के लिए निकलते वक़्त मुसलमानों की कैफ़ियत

सूरा-8, आ-5, 6, हा-4; सूरा-8, आ-42

★ उनकी तादाद

सूरा-8 का परिचय

★ जंग की तैयारी
सूरा-8 का परिचय
★ जंग की शुरुआत किस तरह हुई? (मग़ाज़ी की रिवायतों और क़ुरआन के बयान का इख़्तिलाफ़)
सूरा-8, हा-4
★ नबी (सल्ल.) की दुआ
सूरा-8 का परिचय
★ इस्लाम-दुश्मनों के साथ शैतान था, मगर ख़ुदा का अज़ाब देखकर भाग गया
सूरा-8, आ-48
★ मुसलमानों की मदद ख़ुदा ने किस-किस तरह की?
सूरा-8, आ-9 से 12, 43, 44
★ ईमानवालों की आज़माइश
सूरा-8, आ-17
★ मुहाजिरीन और अनसार की जाँनिसारी
सूरा-8 और सूरा-11 का परिचय
★ मुनाफ़िक़ों का रवैया
सूरा-8 का परिचय; सूरा-8, आ-49, हा-39, 41
★ मदीना के यहूदियों का रवैया
सूरा-8, आ-56, हा-41
★ क़ुरैश की ताक़त पर पहला सख़्त वार
सूरा-8 का परिचय
★ क़ुरैश की हार उनके ख़िलाफ़ अल्लाह का फ़ैसला थी
सूरा-8, आ-19, हा-15; सूरा-8, आ-42
★ वह उनके हक़ में ख़ुदा का अज़ाब थी
सूरा-8, आ-53, हा-29
★ क़त्ल हुए इस्लाम-दुश्मनों का अंजाम
सूरा-8, आ-50, 51
★ ग़नीमत के माल के बँटवारे पर मुसलमानों में इख़्तिलाफ़ और उसका फ़ैसला
सूरा-8, आ-1, हा-1; सूरा-8, आ-41, हा-32
★ मुसलमानों की एक ग़लती जिस पर इताब (ग़ज़ब और ग़ुस्सा) फ़रमाया गया
सूरा-8, आ-68, 69, हा-49
★ जंग के असरात और नतीजे
सूरा-8 का परिचय
★ जंग पर क़ुरआन का तबसिरा
सूरा-8 का परिचय
★ जंगी क़ैदियों से ख़िताब
सूरा-8, आ-70, 71

● जंगे-मुअता
★ इसके असरात और नतीजे
सूरा-9 का परिचय
● जंगे-हुनैन
★ आख़िरी लड़ाई जिसमें अरब के इस्लाम-दुश्मनों की ताक़त हमेशा के लिए टूट गई
सूरा-9 का परिचय
★ इसमें मुसलमानों की शुरुआती हार के असबाब
सूरा-9, आ-25, हा-23
★ इसमें किस तरह अल्लाह ने मुसलमानों की मदद की?
सूरा-9, आ-25, 26, हा-23
★ इसके असरात इस्लाम की इशाअत पर
सूरा-9, आ-27, हा-24
● ज़कात
सूरा-9, आ-18, 71; सूरा-13, आ-22
★ नेमत के शुक्र का फ़ितरी तक़ाज़ा यह है कि आदमी ख़ुदा की राह में माल ख़र्च करे
सूरा-14, आ-31, हा-41
★ अल्लाह की रहमत के हक़दार सिर्फ़ वही लोग हैं जो ज़कात दें
सूरा-7, आ-156,
★ वह हमेशा अल्लाह के दीन के अरकान (बुनियादी सुतूनों) में शामिल रही है
सूरा-7, आ-156, हा-112
★ वह अल्लाह ही को पहुँचती है
सूरा-9, आ-103, 104
★ अल्लाह सदक़ा देनेवालों को अच्छा बदला देता है
सूरा-12, आ-88
★ वह नफ़्स के तज़किए का एक ज़रिआ है
सूरा-9, आ-103
★ वह तौबा को असरदार बनाने का एक ज़रिआ है
सूरा-9, हा-99
★ इसकी अहमियत इस्लाम के दस्तूरी क़ानून में
सूरा-9, आ-11, हा-14
★ इसकी अहमियत इस्लाम के जंगी क़ानून में
सूरा-9, आ-5, हा-7
★ ज़कात न देनेवालों के ख़िलाफ़ जंग करने के लिए हज़रत अबू-बक्र (रज़ि.) की दलील
सूरा-9, आ-5, हा-7
★ वह अज़ीम इंक़िलाब जो ज़कात की तंज़ीम ने अरब

की ज़िन्दगी में बरपा किया
सूरा-9, आ-58, हा-57

★ ज़कात की वुसूली इस्लामी हुकूमत के ज़िम्मे है
सूरा-9, आ-103

★ ज़कात के हक़दार
सूरा-9, आ-60, हा-61 से 68

★ बनू-हाशिम पर ज़कात लेना हराम है
सूरा-9, हा-63

★ क्या बनू-हाशिम ख़ुद आपस में एक-दूसरे को ज़कात दे सकते हैं?
सूरा-9, हा-63

★ फ़क़ीर और मिस्कीन की तशरीह
सूरा-9, हा-61, 62

★ क्या मुअल्लिफ़तुल-क़ुलूब का हिस्सा ख़त्म हो चुका है?
सूरा-9, हा-64

★ ग़ुलामों की आज़ादी के लिए ज़कात के माल का इस्तेमाल
सूरा-9, हा-65

★ क़र्ज़दारों की मदद के लिए इसका इस्तेमाल
सूरा-9, हा-66

★ 'फ़ी-सबीलिल्लाह' की तशरीह
सूरा-9, हा-67

★ मुसाफ़िर नवाज़ी के लिए ज़कात का इस्तेमाल
सूरा-9, आ-60, हा-68

● **जज़ा (इनाम) और सज़ा**

★ ख़ुदा के जज़ा और सज़ा के क़ानून की दलीलें इनसानी तारीख़ में
सूरा-11, आ-102, 103, हा-105

★ हर शख़्स की जज़ा (बदला) उसके अमल के मुताबिक़
सूरा-7, आ-147, हा-105; सूरा-7, आ-180; सूरा-8, आ-51; सूरा-10, आ-52, सूरा-14, आ-51

★ हर एक को उसके किए का पूरा बदला दिया जाएगा
सूरा-11, आ-111

★ अल्लाह की नाफ़रमानी करके कोई बड़ी-से-बड़ी हस्ती भी सज़ा से नहीं बच सकती
सूरा-10, आ-15

★ नेकियों का बदला देने में अल्लाह का क़ानून बुराई की सज़ा से मुख़्तलिफ़ है
सूरा-9, आ-120, 121; सूरा-10, आ-26, 27, हा-33, 34; सूरा-16, आ-96, 97

★ इताअत और फ़रमाँबरदारी करनेवाले मोमिन का हिसाब दुनिया ही में तकलीफ़ें डालकर साफ़ कर दिया जाता है
सूरा-13, आ-18, हा-34

★ अमल का बदला ठीक-ठीक इनसाफ़ के साथ होगा
सूरा-10, आ-47, हा-56; सूरा-10, आ-54

★ ख़ुदा का बेलाग इनसाफ़
सूरा-7, आ-83, 84; सूरा-11 का परिचय; सूरा-11, आ-42 से 49, हा-51, 84, 90; सूरा-15, आ-59, 60; सूरा-17, आ-15, हा-16

● **जन्नत**

★ कैसे लोगों के लिए है?
सूरा-7, आ-42; सूरा-9, आ-20, 21, 72, 88, 89, 100, 111; सूरा-10, आ-9, 26; सूरा-11, आ-23, 108; सूरा-13, आ-22, 23, 35; सूरा-14, आ-23; सूरा-15, आ-45; सूरा-16, आ-30, 31

★ इसकी कैफ़ियत
सूरा-7, आ-43; सूरा-9, आ-21, 72, 100; सूरा-10, आ-9, 10; सूरा-11, आ-108; सूरा-13, आ-23, 35; सूरा-14, आ-23; सूरा-15, आ-45 से 48; सूरा-16, आ-30 से 32

★ इसका दवाम (हमेशा क़ायम रहना)
सूरा-7, आ-42; सूरा-9, आ-21, 22, 72, 89, 100; सूरा-10, आ-26; सूरा-11, आ-23, 108; सूरा-13, आ-23, सूरा-16, आ-31

★ इनसान अपने नेक अमल की बदौलत इसे पाएगा
सूरा-7, आ-43, हा-33

★ जन्नतवालों पर ख़ुदा की मेहरबानियाँ
सूरा-7, आ-43, 49

★ जन्नतवालों के अख़लाक़
सूरा-7, आ-43, हा-33; सूरा-10, आ-10, हा-14

★ वहाँ दाख़िल होने से पहले दुनियावी ज़िन्दगी के सब दाग़ धो दिए जाएँगे
सूरा-7, आ-43, हा-32

★ जन्नतवालों के दिलों से आपसी दुश्मनियाँ निकाल दी जाएँगी
सूरा-7, आ-43, हा-32; सूरा-15, आ-47, हा-28

★ कौन लोग जन्नत में दाख़िल नहीं हो सकते?
सूरा-7, आ-40

★ उसकी नेमतें हक़ के इनकारियों के लिए हराम हैं
सूरा-7, आ-50

★ जन्नतियों और दोज़ख़ियों की आपसी बातचीत
सूरा-7, आ-50, 51
★ वहाँ आदम और हव्वा (अलैहि.) का क़ियाम और इम्तिहान
सूरा-7, आ-19 से 23, हा-13
● ज़बूर
सूरा-17, आ-55, हा-63
● ज़ब्ते-विलादत (बर्थ कंट्रोल)
सूरा-17, आ-31, हा-31
● जब्रो-क़द्र
'देखें तक़दीर'
● ज़लालत (गुमराही)
★ इसको इख़्तियार करके आदमी ख़ुद अपना ही नुक़सान करता है
सूरा-10, आ-108; सूरा-17, आ-15, हा-15
★ गुमराह करनेवाला उन तमाम लोगों के गुनाह में शरीक है जो इसकी वजह से गुमराह हों
सूरा-16, आ-25
★ गुमराही क़बूल करनेवाले की ज़िम्मेदारी गुमराह करनेवाले से कम नहीं है
सूरा-7, आ-39, हा-31
★ आदमी अपनी गुमराही का ख़ुद ज़िम्मेदार है
सूरा-15, आ-39 से 43, हा-25
★ ज़लाले-बईद (दूर की गुमराही) क्या है?
सूरा-14, आ-3, 18
★ बातिल और झूटा अक़ीदा इख़्तियार करने के नतीजे
सूरा-14, आ-27, हा-40
★ जो अल्लाह से हिदायत न पाए उसे कोई हिदायत नहीं दे सकता
सूरा-17, आ-97, हा-110
★ गुमराही की वजहें
★ अन्धी पैरवी
सूरा-7, आ-28, 70, 173; सूरा-10, आ-36, 78; सूरा-11, आ-62, 87, 109; सूरा-14, आ-10
★ अल्लाह की सिफ़ात का सही तसव्वुर न होना
सूरा-11, आ-61, हा-69
★ अल्लाह को भूल जाना
सूरा-7, हा-154
★ अल्लाह की रहनुमाई छोड़कर शैतानों की रहनुमाई क़बूल करना
सूरा-7, आ-30
★ अल्लाह के सामने जवाबदेही से ग़ाफ़िल हो जाना
सूरा-7, आ-51
★ यह ख़याल कि हमको मरकर बस मिट्टी में मिल जाना है, दूसरी कोई ज़िन्दगी नहीं जहाँ हमें अपने आमाल का हिसाब देना हो
सूरा-13, आ-5, हा-12
★ आख़िरत का इनकार और इसकी वजह से अपने आपको ग़ैर-ज़िम्मेदार समझ लेना
सूरा-16, आ-22, हा-20; सूरा-17, आ-45, 46, हा-51
★ यह उम्मीद कि हम चाहे कुछ करें अल्लाह के यहाँ कुछ सिफ़ारिशी हमें बचा लेंगे
सूरा-7, आ-169, हा-129; सूरा-11, हा-106
★ दूसरों को अल्लाह के मुक़ाबले का या उस जैसा समझ बैठना
सूरा-14, आ-30
★ ख़ुदा की दी हुई इरादे और इन्तिख़ाब की आज़ादी का ग़लत इस्तेमाल
सूरा-16, आ-9, हा-10
★ इल्म को छोड़कर अटकल और अनुमान की पैरवी करना
सूरा-10, आ-36, हा-44
★ ख़ुदा के दिए हुए हवास और उसकी बख़्शी हुई अक़्ल से काम न लेना
सूरा-7, आ-148, 179; सूरा-8, आ-22; सूरा-10, आ-100; सूरा-13, आ-16, 19, 27, हा-44; सूरा-17, आ-72
★ ख़ुदा की आयतों से ग़फ़लत बरतना
सूरा-7, आ-136, 146; सूरा-12, हा-75
★ इतिहास का अहमक़ाना तसव्वुर और इसकी इबरतनाक हक़ीक़तों से ग़फ़लत बरतना
सूरा-7, आ-94, 95, हा-77; सूरा-7, आ-100, 101, हा-79, 80; सूरा-13, आ-6; सूरा-14, आ-45 से 47, हा-55
★ अपने ज़मीर (अन्तरात्मा) को धोखे में डालना
सूरा-10, आ-21, हा-29
★ हक़ के ख़िलाफ़ ज़िद और हठधर्मी
सूरा-7, आ-101 से 103, हा-81 से 84, 88; सूरा-7, आ-132, 133, हा-94; सूरा-7, आ-146; सूरा-10, आ-73, 74, हा-71; सूरा-15, आ-14, 15; सूरा-16, आ-33

★ घमण्ड और तकब्बुर
सूरा-7, आ-13, हा-11; सूरा-7, आ-36, 40, 133, 146; सूरा-16, आ-22, 23, हा-20
★ अपनी गुमराही और ग़लत कामों के लिए अक़ीदा-ए-जब्र की आड़ लेना
सूरा-7, आ-16, 17, हा-12; सूरा-16, आ-35 से 37, हा-31, 32
★ दीन के मामले में सिरे से संजीदा ही न होना
सूरा-7, आ-51
★ अपने आमाल के बजाय दूसरों को अपनी बदक़िस्मती का ज़िम्मेदार ठहराना
सूरा-7, आ-131
★ दिखावे की दुनिया से धोखा खाना और दुनिया-परस्ती में गुम हो जाना
सूरा-7, आ-51; सूरा-11, आ-12, 15, 27, हा-33; सूरा-15, आ-39, हा-22; सूरा-17, आ-46, हा-51
★ ख़ुशहाली में मग्न हो जाना
सूरा-10, आ-12
★ यह ख़याल कि दुनिया की नेमतें अल्लाह के दरबार में क़बूल होने की और ख़स्ताहाली गज़ब में गिरफ़्तार होने की यक़ीनी अलामतें हैं
सूरा-10, हा-23; सूरा-11, आ-27, हा-33
★ यह ख़याल कि सच्चाई और दयानत इख़्तियार करने से आदमी की दुनिया बरबाद हो जाती है
सूरा-7, आ-90, हा-74
★ इस्लाम-मुख़ालिफ़ों के ग़ल्बे और शानो-शौकत को देखकर धोखा खाना
सूरा-10, आ-88, 89, हा-90
★ गुमराह क़ौमों के सियासी और ज़ेहनी ग़ल्बे का असर
सूरा-7, आ-138, हा-98
★ यह ख़याल कि इनसान नबी नहीं हो सकता और नबी इनसान नहीं हो सकता
सूरा-7, आ-63, 69; सूरा-10, आ-2, हा-2; सूरा-11, आ-27, हा-31; सूरा-16, आ-43, 44, हा-40; सूरा-17, आ-94, 95, हा-107, 108
★ नबियों की तालीमात को भुला देना
सूरा-7, आ-165
★ अल्लाह की आयतों का इल्म रखने के बावजूद मन की ख़ाहिशों की पैरवी करना
सूरा-7, आ-175, 176, हा-139
★ ख़ुदा के क़ानून में बहानेबाज़ियाँ करना
सूरा-9, आ-36, 37
★ गुमराही के असबाब का जामे (सारगर्भित) बयान
सूरा-10, आ-42 से 44, हा-50, 51; सूरा-11, आ-87, हा-97; सूरा-14, आ-2, 3; सूरा-17, आ-15, 16, 94, 95, हा-107, 108
● जहन्नम
★ कैसे लोगों के लिए है?
सूरा-7, आ-18, 36 से 38, 40, 41, 179, हा-140; सूरा-8, आ-13 से 16, 36, 37, 50, 51; सूरा-9, आ-17, 34, 35, 49, 63, 68, 73, 81, 95, 109, 113; सूरा-10, आ-7, 8, 26, 27; सूरा-11, आ-15 से 17, 106; सूरा-13, आ-5, 18, 35; सूरा-14, आ-14 से 16, 28 से 30, 49 से 51; सूरा-15, आ-42, 43; सूरा-16, आ-29, 62; सूरा-17, आ-8, 18, 39, 63, 97
★ इसकी कैफ़ियत
सूरा-9, आ-81; सूरा-10, आ-4, 27; सूरा-11, आ-106; सूरा-13, आ-5; सूरा-14, आ-16, 17, 29, 49, 50; सूरा-15, आ-44, हा-26
★ इसका दवाम (हमेशा क़ायम रहना)
सूरा-7, आ-36; सूरा-9, आ-17, 63, 68; सूरा-10, आ-27; सूरा-11, आ-107, हा-107; सूरा-13, आ-5; सूरा-16, आ-29
★ इसकी तरफ़ जाने के सात रास्ते
सूरा-15, आ-44, हा-26
★ वह जिन्नों और इनसानों से भरी जाएगी
सूरा-11, आ-119
★ हर गुमराह गरोह के पेशवा ही उसको क़ियामत के दिन जहन्नम की तरफ़ ले जाएँगे
सूरा-11, आ-98, हा-104
★ जहन्नमवालों की एक-दूसरे से लड़ाई
सूरा-7, आ-38
★ जन्नतवालों और दोज़ख़वालों की आपसी बातचीत
सूरा-7, आ-49 से 50
★ इसका यह पेड़ जिस पर क़ुरआन में लानत की गई है
सूरा-17, आ-60, हा-72
● जादू
★ इसकी हक़ीक़त
सूरा-7, हा-89
★ मोजिज़े और जादू का फ़र्क़

सूरा-7, हा-89, 90, 91, 94; सूरा-17, हा-114

★ नबी और जादूगर का फ़र्क़

सूरा-10, हा-75

★ क्या एक नबी पर जादू हो सकता है?

सूरा-17, आ-101, हा-114

● **ज़िक्र अल्लाह की किताब के मानी में**

सूरा-7, आ-63, 69; सूरा-15, आ-6, 9, हा-3; सूरा-16, आ-44

● **ज़िक्र अल्लाह की याद के मानी में**

सूरा-7, आ-205, हा-154

★ अल्लाह को बहुत ज़्यादा याद करने का हुक्म

सूरा-8, आ-45

★ अल्लाह का ज़िक्र किस तरह किया जाए?

सूरा-7, आ-205, 206, हा-154

★ अल्लाह के ज़िक्र के असरात इनसानी दिल पर

सूरा-13, आ-28, 29

● **ज़िक्र क़ुरआन के मानी में**

सूरा-12, आ-104; सूरा-15, आ-6, 9, हा-3; सूरा-16, आ-44

● **ज़िक्र याददिहानी के मानी में**

सूरा-7, आ-2, हा-3, 135

● **ज़िना**

★ इसकी मनाही और समाज को इसके असबाब और मुहर्रिकात से पाक रखने का हुक्म

सूरा-17, आ-32, हा-32

● **ज़िन्दगी मौत के बाद**

सूरा-7, आ-25, 29; सूरा-16, आ-21

★ यह एक वादा है जिसे अल्लाह पूरा करके रहेगा

सूरा-16, आ-38

★ इसका इनकार करनेवाले काफ़िर हैं

सूरा-11, आ-7

★ वह सिर्फ़ रूहानी नहीं बल्कि वैसी ही जिस्मानी ज़िन्दगी होगी जैसी हमारी मौजूदा ज़िन्दगी है

सूरा-14, आ-48, हा-57; सूरा-17, आ-49 से 52, 98, 99

★ क़ियामत के दिन मुर्दों के जी उठने की कैफ़ियत

सूरा-16, हा-26; सूरा-17, आ-49 से 52, हा-56

★ इसकी अक़्ली और अख़लाक़ी ज़रूरत

सूरा-16, आ-38, 39, हा-35

★ इसकी सम्भावनाएँ और घटित होने की दलीलें

सूरा-7, आ-57, 58, हा-46; सूरा-10, आ-4, हा-9, 10; सूरा-15, हा-16; सूरा-16, आ-40, हा-36, 53अ, 59; सूरा-17, आ-98 से 100

★ मौत और क़ियामत के बीच बरज़ख़ी ज़िन्दगी की कैफ़ियत

सूरा-16, आ-28 से 32, हा-23 से 28; तफ़सील के लिए देखें 'आख़िरत', 'हश्र' और 'क़ियामत'

● **जिन्न**

सूरा-7, आ-38, 179, 184; सूरा-11, आ-119; सूरा-17, आ-88

★ जिन्नों की तख़लीक़ का माद्दा (जिन्नों को किस चीज़ से बनाया गया?)

सूरा-15, आ-27, हा-18

● **जिबरील**

★ इनका लक़ब 'रूहुल-क़ुदुस'

सूरा-16, आ-102, हा-103

★ क़ुरआन लानेवाले

सूरा-16, आ-102

● **जिहाद-फ़ी-सबीलिल्लाह**

★ जिहाद के मानी

सूरा-9, आ-73, हा-82

★ 'जिहाद-फ़ी-सबीलिल्लाह' क्या है?

सूरा-9, आ-60, हा-67

★ जिहाद और क़िताल का फ़र्क़

सूरा-9, हा-67

★ इस्लाम में इसकी अहमियत

सूरा-9 का परिचय; सूरा-9, आ-16, 24, हा-18, 120

★ ईमान की कसौटी

सूरा-9, आ-45, हा-46; सूरा-9, आ-54, 86 से 93, हा-99, 106, 119

★ इसकी फ़ज़ीलत

सूरा-9, आ-19, 20, 120

★ इसका अज्र (इनाम)

सूरा-9, आ-120, 121; सूरा-16, आ-110, 111

★ इसी में अहले-ईमान की भलाई है

सूरा-9, आ-41

★ इससे जी चुरानेवाले मुनाफ़िक़ हैं

सूरा-9, आ-81 से 84

★ मुजाहिदीन की मदद के लिए ज़कात का माल इस्तेमाल करना

सूरा-9, आ-60, हा-67

★ मुनाफ़िक़ों और हक़ के इनकारियों के ख़िलाफ़

जिहाद का मतलब
सूरा-9, आ-73, हा-82

● **जिहालत**

★ क़ुरआन की निगाह में 'जिहालत' क्या है?
सूरा-7, आ-138, 139; सूरा-11, आ-46; सूरा-12, आ-89; सूरा-14, आ-1, हा-1

● **ज़ुलैख़ा**

★ इससे हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) की शादी की ग़लत रिवायत
सूरा-12, हा-17, 62

● **ज़ुल्म**

★ गुनाह और ख़ुदा की नाफ़रमानी ज़ुल्म है
सूरा-7, आ-19 से 23, 162, 165; सूरा-8, आ-25, सूरा-11, आ-83, 94; सूरा-12, आ-23, 75; सूरा-13, आ-6; सूरा-16, आ-85, 118

★ ख़ुदा के क़ानून की ख़िलाफ़वर्ज़ी करना अपने ऊपर आप ज़ुल्म करना है
सूरा-9, आ-36, हा-35

★ तास्सुब और ज़िद की बिना पर हक़ को न मानना अपने ऊपर आप ज़ुल्म करना है
सूरा-10, आ-43, 44; सूरा-11, आ-101; सूरा-16, आ-33

★ हक़ के ख़िलाफ़ बात कहना ज़ुल्म है
सूरा-11, आ-31

★ रसूलों की दावत पर ईमान न लानेवाले ज़ालिम हैं
सूरा-10, आ-13, 54

★ अल्लाह के नबियों को झुठलाना ज़ुल्म है
सूरा-7, आ-37; सूरा-9, आ-70, हा-79; सूरा-11, आ-37, 67, 94; सूरा-14, आ-13; सूरा-15, आ-78

★ अल्लाह की आयतों को झुठलानेवाले ज़ालिम हैं
सूरा-7, आ-40, 41, 103, हा-84, सूरा-7, आ-176, 177; सूरा-8, आ-54; सूरा-10, आ-17, 39

★ मोजिज़ा देख लेने के बावजूद ईमान लाने से इनकार ज़ुल्म है
सूरा-17, आ-59, हा-68

★ नुबूवत (पैग़म्बरी) का झूठा दावा करनेवाला ज़ालिम है
सूरा-7, आ-37; सूरा-10, आ-17, हा-22

★ झूठी बात घड़कर अल्लाह की तरफ़ मंसूब करनेवाला ज़ालिम है
सूरा-7, आ-37, सूरा-10, आ-17, हा-22, सूरा-11, आ-18

★ अल्लाह की नेमतों का जवाब कुफ़्र और शिर्क से देनेवाले ज़ालिम हैं
सूरा-14, आ-34, 42

★ झूठा अक़ीदा इख़्तियार करनेवाले ज़ालिम हैं
सूरा-14, आ-27

★ शिर्क करनेवाले ज़ालिम हैं
सूरा-7, आ-148 से 150; सूरा-10, आ-106; सूरा-14, आ-22

★ आख़िरत का इनकार करनेवाले ज़ालिम हैं
सूरा-7, आ-44, 45; सूरा-11, आ-18, 19; सूरा-17, आ-98, 99

★ ख़ुदा के दिए हुए हवास (शुऊर) और उसकी बख़्शी हुई अक़्ल से काम न लेने वाले ज़ालिम हैं
सूरा-7, आ-44, 45; सूरा-11, आ-18, 19

★ ऐशपरस्ती में नेक और बद को भूल जानेवाले ज़ालिम हैं
सूरा-11, आ-116

★ अल्लाह के रास्ते से रोकनेवाले ज़ालिम हैं
सूरा-7, आ-44, 45; सूरा-11, आ-18, 19

★ मुनाफ़िक़ (कपटाचारी) ज़ालिम हैं
सूरा-9, आ-47, 109

★ इस्लाम-दुश्मनों से मुहब्बत रखनेवाले ज़ालिम हैं
सूरा-9, आ-23

★ क़ुरआन की दावत पहुँच जाने के बाद उससे मुँह मोड़नेवाले ज़ालिम हैं
सूरा-17, आ-82, हा-102

★ ज़ालिमों को हिदायत नहीं दी जाती
सूरा-9, आ-19, 109

★ ज़ालिमों के लिए फ़लाह और कामयाबी नहीं
सूरा-12, आ-23

★ ज़ालिमों पर ख़ुदा की लानत
सूरा-7, आ-44; सूरा-11, आ-18

★ ज़ालिमों से ख़ुदा का अज़ाब दूर नहीं
सूरा-11, आ-83

★ ज़ालिमों का अंजाम
सूरा-7, आ-5, 9, 40, 41, 162, 165; सूरा-8, आ-54; सूरा-10, आ-13, 52; सूरा-11, आ-18, 44, 67; सूरा-14, आ-13; सूरा-16, आ-33

त

- तक़दीर
- ★ हर चीज़ की हद और मिक़दार मुक़र्रर कर दी गई है जिससे कोई चीज़ आगे नहीं बढ़ सकती
  सूरा-15, आ-21, हा-14
- ★ क़िस्मतों का बनाना और बिगाड़ना अल्लाह के इख़्तियार में है
  सूरा-7, आ-131
- ★ अल्लाह के फ़ैसलों को कोई ताक़त लागू करने से नहीं रोक सकती
  सूरा-13, आ-11
- ★ अल्लाह की मरज़ी के मुक़ाबले में इनसानी तदबीरें कारगर नहीं होतीं
  सूरा-12 का परिचय; सूरा-12, आ-67, 68, हा-54
- ★ अल्लाह जिसे चाहे अपने फ़ज़्ल से ग़नी कर दे
  सूरा-9, आ-28
- ★ उसके फ़ज़्ल को कोई रोक नहीं सकता
  सूरा-10, आ-107
- ★ उसकी डाली हुई मुसीबत को कोई दूर नहीं कर सकता
  सूरा-10, आ-107
- ★ रिज़्क़ की कमी-बेशी उसके इख़्तियार में है
  सूरा-13, आ-26, हा-42; सूरा-17, आ-30, हा-30
- ★ फ़तह उसी की मरज़ी से हासिल होती है
  सूरा-8, आ-66
- ★ लोगों के दिलों को जोड़ना और इत्तिफ़ाक़ पैदा करना उसी का काम है
  सूरा-8, आ-63
- ★ वह जिसको चाहता है अपनी ज़मीन का वारिस बनाता है
  सूरा-7, आ-128, 137
- ★ हर शख़्स अपनी लिखी हुई तक़दीर के मुताबिक़ अपना हिस्सा पाता है
  सूरा-7, आ-37, हा-29
- ★ हर क़ौम के लिए अमल की एक मुहलत मुक़र्रर कर दी जाती है
  सूरा-7, आ-34; सूरा-10, आ-49; सूरा-14, आ-10; सूरा-15, आ-4
- ★ कोई क़ौम न ख़ुदा की दी हुई मुहलत के ख़त्म होने से पहले मिट सकती है न उसके बाद बाक़ी रह सकती है
  सूरा-15, आ-5; सूरा-16, आ-61
- ★ हिदायत और गुमराही अल्लाह के इख़्तियार में है
  सूरा-10, आ-25 से 27; सूरा-14, आ-4, हा-6; सूरा-16, आ-36, 37; सूरा-17, आ-97, हा-110
- ★ अल्लाह जिसे गुमराही में फेंक दे उसे कोई हिदायत नहीं दे सकता
  सूरा-13, आ-33
- ★ अल्लाह की तौफ़ीक़ के बग़ैर कोई किसी को सीधे रास्ते पर नहीं ला सकता
  सूरा-14, आ-1, हा-1
- ★ बुरे लोगों के आमाल उनके लिए ख़ुशनुमा बना दिए जाते हैं
  सूरा-10, आ-12
- ★ ख़ुदा की तौफ़ीक़ के बग़ैर कोई शख़्स हक़ के रास्ते पर साबित क़दम नहीं रह सकता
  सूरा-17, हा-88
- ★ इनसान को इरादे और इख़्तियार की आज़ादी देना और कुफ़्र और ईमान के फ़ैसले में मुख़्तार छोड़ना ठीक अल्लाह की मरज़ी के मुताबिक़ था
  सूरा-10, आ-99, हा-101; सूरा-13, आ-31, हा-49; सूरा-16, आ-9, हा-10
- ★ इनसानी इख़्तिलाफ़ात की असल वजह यह है कि अल्लाह ने इनसान को इन्तिख़ाब और इरादे की आज़ादी बख़्शी है
  सूरा-11, आ-118, 119, हा-116; सूरा-16, आ-93, हा-94
- ★ बुरी और भली क़िस्मत में इनसान की अपनी ज़िम्मेदारी
  सूरा-17, आ-13, हा-14
- ★ हिदायत इख़्तियार करनेवाला ख़ुद अपना भला करता है और गुमराही इख़्तियार करनेवाला ख़ुद अपना नुक़सान करता है
  सूरा-10, आ-108; सूरा-17, आ-15, हा-15
- ★ इनसानी इख़्तियार की हक़ीक़त
  सूरा-9, हा-106
- ★ इनसानी तदबीर और इलाही तक़दीर का आपसी ताल्लुक़
  सूरा-11, आ-41, हा-45; सूरा-11, आ-88
- ★ इनसान के इरादों के पूरा होने का दारोमदार अल्लाह की मरज़ी पर है
  सूरा-7, आ-89, हा-73

★ अल्लाह पर अपनी गुमराही की ज़िम्मेदारी डालना शैतानी अमल है
सूरा-7, हा-12
★ गुमराह लोग अपनी गुमराही के लिए जब्र के अक़ीदे की आड़ लेने में ग़लती पर हैं
सूरा-16, आ-35, हा-31
★ अपनी गुमराही के जाइज़ और सही होने में जब्र के अक़ीदे से दलील लानेवालों को क़ुरआन का जवाब
सूरा-16, आ-35 से 37, हा-32 से 34
★ क़ौमों की तक़दीर बनाने और बिगाड़ने के बारे में अल्लाह का क़ानून
सूरा-8, आ-53, हा-40; सूरा-9, आ-39, 70, हा-79; सूरा-11, आ-52, हा-57; सूरा-11, आ-116 से 119, हा-115, 116; सूरा-13, आ-11; सूरा-14, आ-18, हा-25; सूरा-17, आ-16, हा-18
★ हिदायत देने और गुमराह करने के मामले में अल्लाह का क़ानून
सूरा-11, हा-49; सूरा-13, आ-27, हा-44; सूरा-14, आ-4, हा-6, 7; सूरा-14, आ-27, हा-39, 40
★ अल्लाह के किसी को हिदायत देने और किसी को गुमराह करने का मतलब
सूरा-7, हा-110; सूरा-7, आ-178, हा-140; सूरा-9, आ-115, हा-114; सूरा-11, आ-34, हा-38; सूरा-14, आ-27, हा-40; सूरा-16, आ-93, हा-94; सूरा-17, आ-97, हा-110
★ अल्लाह के किसी को फ़ितने में डालने का मतलब
सूरा-9, आ-126, हा-125
★ अल्लाह की तरफ़ से दिलों और कानों पर मुहर लगाए जाने का मतलब
सूरा-17, आ-45, 46, हा-51
★ कुछ लोगों के जहन्नम के लिए पैदा किए जाने का मतलब
सूरा-7, हा-140
★ कैसे लोगों के दिलों पर मुहर लगाई जाती है?
सूरा-7, आ-100, 101, हा-80, 81; सूरा-9, आ-86, 87, 93; सूरा-10, आ-74; सूरा-16, आ-107 से 109
★ कैसे लोगों को गुमराही में डाला जाता है?
सूरा-7, आ-146, 185, 186
★ गुमराही में डालने की सूरतें क्या हैं?
सूरा-7, आ-146
★ कैसे लोगों को नेकी और ईमान की तौफ़ीक़ नहीं दी जाती?
सूरा-8, आ-22, 23; सूरा-9, आ-46, हा-46, 47; सूरा-10, आ-31 से 33, 88, 89, 94 से 97, 100, हा-103, 104
★ कैसे लोगों को हिदायत से महरूम रखा जाता है?
सूरा-9, आ-19, 24, 37, 80, 109; सूरा-16, आ-37, 104, 107
★ कैसे लोगों के दिल हक़ से फेर दिए जाते हैं?
सूरा-9, आ-127, हा-127
★ कैसे लोगों को भटकने के लिए छोड़ दिया जाता है?
सूरा-10, आ-11, हा-29
★ कैसे लोगों पर कुफ़्र मुसल्लत कर दिया जाता है?
सूरा-9, आ-85 से 87
★ कैसे लोगों के दिलों में मुनाफ़िक़त पैदा की जाती है?
सूरा-9, आ-76, 77
★ कैसे लोगों को बुराई से बचाया जाता है?
सूरा-12, हा-60
★ कैसे लोगों को हिदायत बख़्शी जाती है?
सूरा-10, आ-9, हा-13; सूरा-13, आ-27, हा-44; सूरा-14, आ-1, हा-1
★ तक़दीर के अक़ीदे के अख़लाक़ी नतीजे
सूरा-9, आ-50, 51, हा-51; सूरा-12 का परिचय
● **तकब्बुर**
★ इसकी मज़म्मत और मनाही
सूरा-17, आ-37, हा-43
★ बन्दे को तकब्बुर का हक़ नहीं है
सूरा-7, आ-13, हा-11; सूरा-7, आ-146, हा-104
★ तकब्बुर और घमण्ड की हक़ीक़त
सूरा-10, आ-75, हा-73
★ अल्लाह घमण्डियों को पसन्द नहीं करता
सूरा-16, आ-23
★ घमण्ड के नतीजे
सूरा-7, आ-13, हा-11; सूरा-7, आ-36, 40, 133, 146, 206; सूरा-16, आ-29
● **तक़लीद**
★ तमाम गुमराह क़ौमें अपने बाप-दादा की तक़लीद पर इसरार कर रही हैं
सूरा-14, आ-10
★ आद क़ौम का बाप-दादा की तक़लीद पर इसरार
सूरा-7, आ-70
★ समूद का इसरार
सूरा-11, आ-62

★ शुऐब (अलैहि.) की क़ौम का बाप-दादा की तक़लीद पर इसरार
सूरा-11, आ-87
★ फ़िरऔन की क़ौम का इसरार
सूरा-10, आ-78
★ अरब के मुशरिकों का इसरार
सूरा-7, आ-28
★ अन्धी तक़लीद गुमराही के असबाब में से अहमतरीन सबब है
सूरा-11, आ-109, हा-110
● तक़वा (अल्लाह का डर)
★ इसके मानी
सूरा-7, आ-63, 65, 171
★ तक़वा सिर्फ़ ख़ुदा से होना चाहिए
सूरा-16, आ-2, हा-5, आ-52, हा-45
★ तक़वा की जड़ ईमान के बग़ैर क़ायम नहीं हो सकती
सूरा-7, हा-112
★ हिदायत हासिल करने के लिए तक़वा ज़रूरी शर्त है
सूरा-10, आ-6, हा-11
★ हर उस ज़िन्दगी का अंजाम तबाही है जिसकी बुनियाद तक़वा पर न हो
सूरा-9, आ-109, हा-103
★ तक़वा के तक़ाज़े
सूरा-8, आ-1, 56; सूरा-9, आ-4, हा-5; सूरा-9, आ-36, 119, 123, हा-123; सूरा-10, आ-31; सूरा-12, आ-57
★ मुत्तक़ियों (अल्लाह का डर रखनेवालों) की सिफ़ात और उनका रवैया
सूरा-7, आ-201, 202, हा-150; सूरा-8, आ-69; सूरा-9, आ-7, 44
★ तमाम मुत्तक़ी ईमानवाले अल्लाह के दोस्त हैं
सूरा-10, आ-62, 63
★ अल्लाह मुत्तक़ियों को पसन्द करता है
सूरा-9, आ-4, 7
★ अल्लाह मुत्तक़ियों के साथ है
सूरा-9, आ-36, 123; सूरा-16, आ-128
★ मुत्तक़ी लोग ही अल्लाह की रहमत के हक़दार हैं
सूरा-7, आ-156
★ मुत्तक़ियों के लिए दुनिया में भी भलाई है
सूरा-16, आ-30
★ तक़वा के लिबास की तारीफ़
सूरा-7, आ-26, हा-16
★ तक़वा का अंजाम
सूरा-7, आ-35, 63, 96, 128, 169; सूरा-8, आ-29; सूरा-10, आ-62, 63; सूरा-11, आ-49; सूरा-12, आ-90, 109; सूरा-13, आ-35; सूरा-15, आ-45; सूरा-16, आ-30 से 32,
★ मुत्तक़ियों की रूह का इस्तिक़बाल आलमे-बरज़ख़ में किस तरह होता है?
सूरा-16, आ-32
● तज़किया-ए-नफ़्स
★ सदक़ा इसके अहम ज़रिओं में से है
सूरा-9, आ-103
● तनासुख़ (आवागमन)
★ इसकी तरदीद
सूरा-7, हा-30
● तलमूद
सूरा-7, हा-63; सूरा-10, हा-79, 91; सूरा-12 का परिचय; सूरा-12, हा-7, 11, 12, 14, 15 से 18, 25अ, 26, 32, 34, 37, 38, 42, 47अ, 62, 69, 70, 71; सूरा-15, हा-39
★ क़ुरआन और तलमूद के इख़्तिलाफ़ात
सूरा-12, हा-7, 11, 12, 14, 15, 16, 25अ, 26, 34, 42, 71
● तवक्कुल (भरोसा)
★ इसकी हक़ीक़त
सूरा-11, हा-45
★ इसके अमली असरात
सूरा-12 का परिचय
★ दुनियावी असबाब और तदबीरों से काम लेना तवक्कुल के ख़िलाफ़ नहीं है
सूरा-12, हा-35
★ तदबीर और तवक्कुल का सही ताल्लुक़
सूरा-12, आ-64, 66, 67, 68, हा-53, 54
★ तवक्कुल का वसीअ् (व्यापक) मफ़हूम
सूरा-17, आ-65, हा-81
★ अल्लाह पर तवक्कुल ईमान का तक़ाज़ा है
सूरा-8, आ-2; सूरा-10, आ-84
★ वह एक ज़बरदस्त ताक़त पर भरोसा है
सूरा-8, आ-49
★ वह कभी ग़लत साबित नहीं होगा
सूरा-17, आ-65, हा-81

★ वह इरादे की मज़बूती का ज़रिआ है
सूरा-7, आ-89; सूरा-8, आ-64; सूरा-10, आ-71; सूरा-11, आ-88; सूरा-13, आ-30
★ वह मुश्किलों में नाउम्मीदी और बेइत्मीनानी से बचाता है
सूरा-9, आ-51, हा-51; सूरा-11, आ-123, हा-117; सूरा-12, आ-18, हा-14; सूरा-14, आ-12
★ वह दिलेरी पैदा करता है
सूरा-8, आ-62, हा-45; सूरा-10, आ-84, हा-81; सूरा-11, आ-56
★ वह इस्तिग़ना (बेनियाज़ी) पैदा करता है
सूरा-9, आ-129
★ वह आदमी को शैतान के फ़ितनों से महफ़ूज़ रखता है
सूरा-16, आ-99
● तसबीह
★ मानी और तशरीह
सूरा-7, हा-156; सूरा-17, हा-49
★ सुब्हानल्लाह का मतलब
सूरा-10, हा-67; सूरा-12, हा-78
★ आसमान और ज़मीन की हर चीज़ तसबीह कर रही है
सूरा-17, आ-44
★ बेजान मख़लूक़ किस तरह ख़ुदा की तसबीह करती है?
सूरा-13, आ-12, 13, हा-20
● ताबूते-सकीना
सूरा-17, हा-7
● तालीम
★ इस्लाम में तालीम का मक़सद
सूरा-9, हा-120
★ इस्लामी रियासत की तालीमी पॉलिसी क्या होनी चाहिए?
सूरा-9, हा-120
★ इस्लामी हुकूमत में अरब की जिहालत को दूर करने के लिए क्या कोशिशें की गईं?
सूरा-9, हा-120
★ मौजूदा मज़हबी तालीम की बुनियादी कमियाँ
सूरा-9, हा-120
★ तालीमी निज़ाम में वे उलूम नापसन्दीदा हैं जिनकी बुनियाद सिर्फ़ अन्दाज़ों और गुमानों पर हो
सूरा-17, आ-36, हा-42
● तालूत
★ ज़माना और सल्तनत की मुद्दत
सूरा-17, हा-7
● तौबा
★ वह ईमान के साथ ही फ़ायदेमन्द होती है
सूरा-7, आ-153
★ इसकी हक़ीक़त
सूरा-9, आ-112, हा-108
★ मौत के आसार तारी हो जाने के बाद इसका मौक़ा नहीं रहता
सूरा-16, आ-84, हा-82
★ कैसे लोगों की तौबा क़बूल होती है?
सूरा-9, आ-102, 103, हा-99; सूरा-9, आ-117; सूरा-16, आ-119
★ अल्लाह को अपने गुनाहगार बन्दे की तौबा कितनी महबूब है?
सूरा-11, आ-90, हा-101
★ शर्मसार मोमिन की तौबा किस शान से क़बूल की जाती है?
सूरा-9, आ-118, हा-119
★ तौबा को असरदार और प्रभावी बनाने का तरीक़ा
सूरा-9, हा-99
★ तौबा और इस्तिग़फ़ार के नतीजे
सूरा-11, आ-3, 47, 52; सूरा-16, आ-119
● तौरात
★ वह बनी-इसराईल का क़ुरआन थी
सूरा-15, आ-91, हा-52
★ हज़रत मूसा को अता की गई थी
सूरा-17, आ-2
★ इसके अहकाम जो पत्थर की तख़्तियों पर लिखकर दिए गए
सूरा-7, आ-145
★ इसकी तारीफ़ (परिचय)
सूरा-7, आ-154
★ हज़रत उज़ैर (अलैहि॰) ने इसे नए सिरे से मुरत्तब किया
सूरा-17, हा-8
★ इसमें फ़लस्तीन की क़ौमों को मिटा देने का हुक्म
सूरा-17, हा-7
★ इसके साथ यहूदियों का सुलूक
सूरा-15, आ-91, हा-52

★ इसमें यहूदियों के फेर-बदल
सूरा-9, हा-107
★ इसमें नबी (सल्ल.) का ज़िक्रे-ख़ैर
सूरा-7, आ-157, हा-113
★ क़ुरआन का इससे दलील पेश करना
सूरा-7, आ-169, हा-130
● तौहीद (एकेश्वरवाद)
★ इसकी तशरीह और इसकी हक़ीक़त
सूरा-9, आ-31; सूरा-10, आ-3, हा-43; सूरा-10, आ-104 से 109; सूरा-12, आ-39, 40; सूरा-16, आ-2, 3; सूरा-17, आ-22, 23
★ इसकी दलीलें
सूरा-7, आ-6, हा-6; सूरा-7, आ-54, हा-41; सूरा-7, आ-172 से 174, हा-135; सूरा-10, आ-31, 32, हा-38; सूरा-10, आ-34, 35, हा-41, 43, 65; सूरा-11, आ-14, हा-14; सूरा-11, आ-61, हा-67; सूरा-12, आ-39, 40, हा-34; सूरा-13, आ-2 से 4, हा-11; सूरा-13, आ-12 से 16; सूरा-15, आ-23 से 25, हा-14; सूरा-16, आ-2, 3, हा-6; सूरा-16, आ-17, हा-15, 16; सूरा-16, आ-48 से 56, हा-46; सूरा-16, आ-70, 71, हा-62, 64; सूरा-17, आ-42, हा-47; सूरा-17, आ-66 से 69
★ तौहीद की दलीलें ही ख़ुदा की हस्ती की दलीलें भी हैं
सूरा-13, आ-2, हा-4
★ इस बात का सुबूत कि तौहीद का अक़ीदा इनसान की फ़ितरत (स्वभाव) में छिपा हुआ है
सूरा-7, आ-173, 174, हा-135, 136; सूरा-10, आ-22, हा-31; सूरा-17, आ-67, हा-56, 84
★ तौहीद के अक़ीदे के तक़ाज़े
सूरा-7, आ-56, हा-44, 45; सूरा-9, आ-31, हा-31; सूरा-10, आ-3, हा-6; सूरा-10, आ-104 से 106, हा-109; सूरा-12, आ-40; सूरा-13, आ-14; सूरा-14, हा-32; सूरा-16, आ-2, हा-5; सूरा-16, आ-51 से 55, 71, हा-64; सूरा-17, आ-22, 23, हा-26; सूरा-17, आ-56

द

● दहरियत (ख़ुदा के वुजूद से इनकार)
★ इसको रद्द करने के लिए तौहीद की दलीलें ही काफ़ी हैं
सूरा-13, आ-2 से 4, हा-4 से 11
● दाऊद (अलैहि.)
★ उनका ज़माना और सल्तनत की मुद्दत
सूरा-17, हा-7
★ उनकी सीरत
सूरा-17, आ-55, हा-63
★ उनको ज़बूर दी गई
सूरा-17, आ-55, हा-63
● दावते-हक़
★ इसका सही तरीक़ा
देखें 'हिकमते-तबलीग़'
★ इसकी कामयाबी का दारोमदार सरोसामान पर नहीं है
सूरा-7, हा-83; सूरा-12 का परिचय; सूरा-12, हा-47अ
★ अल्लाह उसके साथ है
सूरा-13, आ-41, हा-60
★ इसके मुक़ाबले में मुख़ालिफ़ों की चालें कामयाब नहीं हो सकतीं
सूरा-13, आ-42, हा-61
★ इसके ख़िलाफ़ चालबाज़ियाँ करनेवाले आख़िरकार अल्लाह के अज़ाब में मुब्तिला होकर रहते हैं
सूरा-16, आ-26
★ आख़िरी कामयाबी इसी के लिए है
सूरा-13, आ-42
★ इसका ज़ाहिर होना सोसाइटी में किस तरह खलबली डालता है?
सूरा-11, आ-62, हा-72; सूरा-14, आ-9, हा-16
★ इसके नाज़ुक मरहले
सूरा-10, आ-85, 86, हा-83
★ इसके रास्ते की रुकावटें
सूरा-10, आ-88, हा-87, 88
★ इसमें सब्र की अहमियत
सूरा-10, आ-89, हा-90; सूरा-10, आ-109; सूरा-11, हा-11, 112; सूरा-11, आ-115; सूरा-15, आ-85, 86, हा-47, 48; सूरा-17 का परिचय; सूरा-17, हा-12
★ इसमें समझ-बूझ और सही तर्ज़े-फ़िक्र की ज़रूरत की अहमियत
सूरा-10, आ-89, हा-90
★ इसमें नमाज़ की अहमियत
सूरा-11, आ-114, हा-114; सूरा-15, आ-98, 99, हा-53; सूरा-17 का परिचय

★ इसमें नमाज़े-बा-जमाअत की अहमियत
सूरा-10, आ-87, हा-84
★ वे चीज़ें जिनसे हक़ की दावत देनेवाले को ताक़त मिलती है
सूरा-15, आ-97, 98, हा-53
★ हक़ की दावत देनेवाले को किसी की परवाह किए बग़ैर हक़ का इज़हार और एलान करना चाहिए
सूरा-15, आ-94
★ उसको दीन में मुसालिहत (नाहक़ से सुलह) और मुदाहिनत (हक़ छोड़ने) पर आमादा नहीं होना चाहिए
सूरा-11, आ-113; सूरा-17 का परिचय; सूरा-17, आ-73 से 75, हा-87, 88
★ उसको लोगों की ख़ाहिशात का पालन नहीं करना चाहिए
सूरा-13, आ-37
★ उसको जाहिली क़ानूनों की पैरवी से बचना चाहिए
सूरा-12, हा-60
★ उसको दुनिया-परस्तों की शानो-शौकत की तरफ़ आँख उठाकर न देखना चाहिए
सूरा-15, आ-88
★ उसको इख़्तिलाफ़ात से न घबराना चाहिए
सूरा-11, आ-110, हा-112; सूरा-17, हा-13
★ उसको मुख़ालिफ़ों की बेहूदगियों का मुक़ाबला किस तरह करना चाहिए?
सूरा-15, आ-85, 86, हा-47, 48
★ उसको नेकी के ज़रिए बुराइयों को दफ़ा करना चाहिए
सूरा-11, आ-114, हा-114
★ उसे इस बात की फ़िक्र नहीं होनी चाहिए कि ख़ुदा उसके मुख़ालिफ़ों को दुनिया में क्या सज़ा देता है?
सूरा-13, आ-40, हा-59

● दीन
★ मानी और तशरीह
सूरा-9, आ-33, हा-32; सूरा-10, हा-43
★ जिसका क़ानून मुल्क में राइज हो उसी का दीन मुल्क का दीन है
सूरा-12, आ-76, हा-60
★ उन लोगों के ख़याल की ग़लती जो 'दीन' को सिर्फ़ पूजा-पाठ और 'मज़हबी रस्मो-रिवाज' में महदूद समझते हैं
सूरा-12, हा-60
★ अल्लाह का दीन ही सारी दुनिया के निज़ाम का दीन है
सूरा-16, आ-52
★ अपने दीन को अल्लाह के लिए ख़ालिस करने का मतलब
सूरा-7, आ-29, हा-19; सूरा-10, आ-22
★ दीन पूरा-का-पूरा अल्लाह के लिए होना चाहिए
सूरा-8, आ-39
★ दीने-हक़ को पूरे 'अद-दीन' पर ग़ालिब करने का मतलब
सूरा-9, आ-33, हा-32
★ उन लोगों के ख़याल की ग़लती जो ग़ैर-शरई क़ानूनों की पैरवी के लिए हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) की ज़िन्दगी से दलील लाते हैं
सूरा-12, हा-60
★ दीन को खेल और तफ़रीह बना लेने का बुरा अंजाम
सूरा-7, आ-51

● दीने-हक़
देखें 'इस्लाम'

● दुआ
★ ग़ैरुल्लाह से दुआ और मदद माँगना शिर्क है
सूरा-17, आ-56, हा-64
★ सिर्फ़ अल्लाह ही से दुआ माँगना बरहक़ है
सूरा-13, आ-14, हा-23
★ दूसरों से दुआ माँगना बातिल है
सूरा-7, आ-194, 197; सूरा-13, आ-14
★ अल्लाह के सिवा दूसरों को पुकारने का बुरा अंजाम
सूरा-7, आ-37
★ मुशरिकों के ग़ैरुल्लाह से दुआ माँगने की असल वजह
सूरा-11, आ-61, हा-69
★ ग़ैरुल्लाह से दुआ माँगना वह बुराई है जिसे मिटाने के लिए नबी आए
सूरा-7, आ-56, हा-45
★ अल्लाह से दुआ माँगने की लाज़िमी शर्तें
सूरा-7, आ-29, हा-19
★ अल्लाह को किस तरह पुकारना चाहिए?
सूरा-7, आ-55
★ अल्लाह अपने हर बन्दे से क़रीब है और दुआओं का जवाब देता है
सूरा-11, आ-61

★ दुआ के क़बूल करने या न करने का दारोमदार अल्लाह की मरज़ी पर है
सूरा-10, आ-3, हा-5
★ नबी तक की दुआ रद्द कर दी जाती है
सूरा-11, आ-45, 46; ज़्यादा तफ़सील के लिए देखें 'क़ुरआनी दुआएँ'
● दुनिया
★ इम्तिहान की जगह
सूरा-7, आ-129; सूरा-10, आ-14, 19, हा-26; सूरा-11, आ-7, हा-8
★ दुनिया की ज़िन्दगी अस्ल में वह वक़्त है जो इम्तिहान के लिए इनसान को दिया गया है
सूरा-10 का परिचय
★ दुनिया की ज़िन्दगी की हक़ीक़त
सूरा-10, आ-23, 24; सूरा-15, आ-23, हा-15
★ आख़िरत के मुक़ाबले में उसकी बेहक़ीक़ती
सूरा-9, आ-38, हा-39; सूरा-10, आ-45, हा-53; सूरा-13, आ-26; सूरा-16, आ-95, हा-97
★ दुनिया की ज़िन्दगी में आदमी का इम्तिहान किस तरह लिया जा रहा है?
सूरा-10, हा-11
★ ग़ाफ़िल इनसान दुनिया की ज़िन्दगी के ज़ाहिरी पहलू से किस तरह धोखा खाते हैं?
सूरा-11, आ-38, 39, हा-41
★ दुनिया की नेमतों की दो क़िस्में, मताए-ग़ुरूर (धोखे का सामान) और मताए-हसन (अच्छा सामान)
सूरा-11, हा-3
★ दुनिया की नेमतों को नादान लोग हमेशा से अल्लाह की बारगाह में क़बूल होने की पहचान समझते रहे हैं
सूरा-11, आ-27, हा-33
★ दुनिया की नेमतें इस बात की पहचान नहीं हैं कि नेमत पानेवाला अल्लाह का महबूब है
सूरा-9, आ-55, हा-54; सूरा-9, आ-69, 85; सूरा-10, हा-23; सूरा-11, आ-3, हा-3; सूरा-13, आ-26, हा-42
★ गुमराह लोगों का हमेशा यह नज़रिया रहा है कि ईमानदारी और सच्चाई इख़्तियार करने से आदमी की दुनिया बरबाद हो जाती है
सूरा-7, आ-90, हा-74; सूरा-11, आ-3, हा-3
★ इस ख़याल की ग़लती
सूरा-11, हा-56; सूरा-16, आ-97, हा-99
★ दुनिया की कामयाबियों का नाम क़ुरआन की ज़बान में 'फ़लाह' नहीं है
सूरा-10, हा-23
★ जो शख़्स सिर्फ़ दुनिया चाहता हो उसके लिए आख़िरत में जहन्नम के सिवा कुछ नहीं है
सूरा-11, आ-15, 16, हा-16; सूरा-17, आ-18, हा-20
★ दुनिया को आख़िरत पर तरजीह (प्राथमिकता) देनेवाले लाज़िमन हिदायत से महरूम रहते हैं
सूरा-16, आ-107
★ दुनिया की ज़िन्दगी से धोखा खाने का बुरा अंजाम
सूरा-7, आ-51
★ आख़िरत से बेपरवाह होकर दुनिया की ज़िन्दगी पर मुत्मइन होने का अंजाम
सूरा-10, आ-7, 8, हा-12
★ दुनिया को आख़िरत पर तरजीह (प्राथमिकता) देने का अंजाम
सूरा-9, आ-38, हा-39; सूरा-14, आ-3, हा-3; सूरा-16, आ-107
★ दुनिया में ख़ुदा के नाफ़रमानों और ज़ालिमों को ख़ुदा की नेमतें क्यों मिलती हैं?
सूरा-7, आ-32, हा-23
● दुआ दुनिया
● दोज़ख़
देखें 'जहन्नम'

न

● नफ़्ल
★ मानी और तशरीह
सूरा-8, हा-1; सूरा-17, हा-97
● नमाज़
सूरा-7, आ-170; सूरा-8, आ-3; सूरा-9, आ-5, 11, 18, 54, 71; सूरा-10, आ-87; सूरा-11, आ-87, 114; सूरा-13, आ-22; सूरा-14, आ-31, 37; सूरा-17, आ-78, 110
★ नेमत के शुक्र का फ़ितरी तक़ाज़ा यह है कि आदमी नमाज़ क़ायम करे
सूरा-14, आ-31, हा-41
★ इसके अख़लाक़ी व रूहानी फ़ायदे
सूरा-11, आ-114, हा-114
★ इसकी अख़लीक़ी व इज्तिमाई अहमियत
सूरा-11, हा-96

★ इसकी अहमियत इस्लामी निज़ामे-ज़िन्दगी में
सूरा-10, आ-87, हा-84
★ इसकी अहमियत तहरीके-इक़ामते-दीन में
सूरा-11, आ-114, हा-114; सूरा-15, आ-97 से 99, हा-53; सूरा-17 का परिचय; सूरा-17, आ-78, हा-91
★ इसकी अहमियत इस्लाम के दस्तूरी क़ानून में
सूरा-9, हा-14, 15
★ इसकी अहमियत इस्लाम के जंगी क़ानून में
सूरा-9, हा-7
★ इसपर ताने कसना जाहिलों का पुराना तरीक़ा रहा है
सूरा-11, आ-87, हा-96
★ इक़ामते-सलात (नमाज़ क़ायम करने) के मतलब में जमाअत के साथ नमाज़ भी शामिल है
सूरा-10, हा-84
★ इक़ामते-सलात (नमाज़ क़ायम करना) मोमिन और मुनाफ़िक़ का फ़र्क़ खोल देती है।
सूरा-9, आ-54
★ पाँच वक़्त नमाज़ फ़र्ज़ है
सूरा-17 का परिचय; सूरा-17, हा-1, 95, 97
★ नमाज़ के औक़ात
सूरा-11, आ-114, हा-113; सूरा-17, आ-78, 79, हा-92 से 97
★ नमाज़ के औक़ात की हिकमतें
सूरा-17, हा-95
★ नमाज़ के अंशों और हिस्सों के बारे में क़ुरआन के इशारे
सूरा-17, आ-78, हा-95
★ फ़ज्र की नमाज़ की अहमियत
सूरा-17, हा-95
★ फ़ज्र की नमाज़ में लम्बी क़िरअत (क़ुरआन के पढ़े जाने) की हिकमत
सूरा-17, हा-95
★ तहज्जुद, उसकी फ़ज़ीलत, उसके फ़ायदे और उसकी शरई हैसियत
सूरा-17, आ-79, हा-96, 97
★ नमाज़ में इमाम के पीछे क़ुरआन पढ़े जाने का मसला
सूरा-7, हा-153
★ मुनाफ़िक़ की जनाज़े की नमाज़ जाइज़ नहीं
सूरा-9, आ-84, हा-88
★ फ़ासिक़ और फ़ाजिर (नाफ़रमान और बुरे लोग) की जनाज़े की नमाज़ क़ौम के बड़े और ज़िम्मेदार लोगों को नहीं पढ़नी चाहिए
सूरा-9, हा-88
★ मक्का में नमाज़ हल्की आवाज़ में पढ़ने का हुक्म किस लिए दिया गया था?
सूरा-17, आ-110, हा-124
● नसारा
देखें 'ईसाइयत'
● नसी
★ इसकी तशरीह
सूरा-9, हा-37
★ इसकी रोकथाम
सूरा-9 का परिचय; सूरा-9, हा-37
● निफ़ाक़
देखें 'मुनाफ़िक़'
● नुबूवत (पैग़म्बरी)
★ वह एक वहबी (अता की हुई) चीज़ है न कि कस्बी (कमाकर या मेहनत करके हासिल की हुई)
सूरा-16, आ-2, हा-4
★ हर उम्मत के लिए एक रसूल है
सूरा-10, आ-47, हा-55; सूरा-13, आ-7
★ इनसान उसकी रहनुमाई का क्यों मुहताज है?
सूरा-7, हा-15, 16; सूरा-16, आ-9, हा-9
★ इसके हक़ में अक़्ली दलीलें
सूरा-10, हा-2; सूरा-16, हा-9, 14
★ तमाम नबी इनसान थे
सूरा-7, आ-63, 69; सूरा-11, आ-27, 31, हा-37; सूरा-12, आ-109; सूरा-13, आ-38; सूरा-14, आ-10, 11; सूरा-16, आ-43
★ दुनिया में उन्हीं लोगों ने अपने जैसे इनसानों को नबी मानने से इनकार किया है जो इल्म नहीं रखते
सूरा-7, आ-63, 69; सूरा-10, आ-2; सूरा-11, आ-27, हा-31; सूरा-14, आ-10, हा-19; सूरा-17, हा-63; सूरा-17, आ-94, हा-107
★ वह हिकमत जिसकी बिना पर अल्लाह तआला ने इनसान की रहनुमाई के लिए नुबूवत का तरीक़ा इख़्तियार फ़रमाया
सूरा-16, हा-10; सूरा-16, आ-44, हा-40
★ इनसानों की हिदायत के लिए इनसान ही नबी होना चाहिए
सूरा-17, आ-94, 95, हा-107, 108

★ नुबूवत किसी को अता करना अल्लाह की नेमत का पूरा होना और अल्लाह की रहमत है
सूरा-12, आ-6; सूरा-17, आ-87

★ सच्चे नबी और झूठे नबी का फ़र्क़
सूरा-10, हा-23

★ नबी की सच्चाई किन बातों से पहचानी जाती है?
सूरा-11, आ-29, हा-35, 56; सूरा-11, आ-88, हा-99; सूरा-12, आ-104, हा-71, 73; सूरा-13, हा-15

★ नुबूवत का झूठा दावेदार सबसे बड़ा ज़ालिम है
सूरा-7, आ-37; सूरा-10, आ-17, हा-22

★ नबी की ख़िताबत (तक़रीर के अन्दाज़) और दुनिया-परस्तों की ख़िताबत का फ़र्क़
सूरा-10, हा-3

★ नबी और फ़लसफ़ी (दार्शनिक) का फ़र्क़
सूरा-17, हा-1

★ नबी और जादूगर का फ़र्क़
सूरा-10, हा-75

★ नुबूवत से पहले नबियों की ज़िन्दगी कैसी होती थी?
सूरा-14, हा-22

★ नुबूवत से पहले तमाम नबी अक़्ले-सलीम के सही इस्तेमाल से तौहीद की हक़ीक़त पा चुके होते थे
सूरा-11, आ-17, हा-17, 19; सूरा-11, आ-28, हा-34; सूरा-11, आ-63, 88, हा-98

★ वह्य क़बूल करने के लिए नबी को किस तरह तैयार किया जाता है?
सूरा-7, आ-142, हा-99

★ नबियों को वह इल्म दिया जाता है जो आम इनसानों को हासिल नहीं होता
सूरा-7, आ-62

★ नबी को अल्लाह हक़ीक़त को पहचाननेवाला और मामलों को समझनेवाला बनाता है
सूरा-12, आ-6, हा-6

★ नबियों को हुक्म और इल्म दिया जाता है
सूरा-12, आ-22, हा-20

★ वे रहमान के ख़ास शागिर्द होते हैं
सूरा-12, आ-37

★ नबियों को हक़ीक़तों का मुशाहिदा कराया जाता है
सूरा-17, हा-1

★ नबी किस चीज़ में आम इनसानों से मुमताज़ होते हैं?
सूरा-14, आ-11, हा-21

★ नबियों पर सिर्फ़ वही वह्य नहीं आती जो तबलीग़ के लिए हो, बल्कि उनको दूसरी हिदायतें भी मिलती हैं
सूरा-11, आ-36, 37

★ नबी ख़ुदा का बरगुज़ीदा (चुना हुआ) होता है
सूरा-12, आ-6

★ नबियों की ग़ैर-मामूली क़ुव्वतें
सूरा-12, आ-94, हा-66

★ नबी ग़ैब (परोक्ष) के जाननेवाले और फ़ौक़ुल-बशरी (इनसानों से परे) सिफ़ात के मालिक नहीं होते
सूरा-11, आ-31, हा-37

★ नबी ग़ैब (परोक्ष) की बातें बस उतनी ही जानते हैं जितनी अल्लाह तआला उन्हें बताता है
सूरा-12, आ-96

★ नबियों के मान-सम्मान (इस्मत) की हक़ीक़त
सूरा-11, आ-46, हा-50; सूरा-12, आ-24, हा-22, 60

★ लोगों की क़िस्मतों का फ़ैसला करना नबी का काम नहीं
सूरा-12, आ-76, 77

★ नबी की ज़िम्मेदारी किस हद तक है?
सूरा-16, आ-35

★ नबी का यह काम नहीं होता कि वह लोगों को सीधे रास्ते पर लाकर ही छोड़े
सूरा-10, आ-108; सूरा-11, आ-28, 86, हा-95; सूरा-17, आ-105

★ नबी को मुज़क्किर किस मानी में कहा जाता है?
सूरा-7, हा-135

★ नबी का काम सिर्फ़ वह्ये-इलाही की पैरवी करना है
सूरा-10, आ-109

★ नबी का काम क्या है और क्या नहीं है?
सूरा-13, आ-7, हा-16; सूरा-14, आ-1, हा-1; सूरा-16, आ-2, हा-5; सूरा-17, हा-108

★ नबियों को भेजे जाने का मक़सद
सूरा-7, हा-44, 135; सूरा-9, आ-33, हा-32

★ इनसानियत के लिए नबी को भेजा जाना वही हैसियत रखता है जो ज़मीन के लिए बारिश की है
सूरा-7, आ-57, 58, हा-46

★ इनसानियत की फ़लाह का दारोमदार नबियों की पैरवी पर है
सूरा-7, आ-35, 36

★ नबी का आना एक क़ौम की क़िस्मत के फ़ैसले की घड़ी होती है
सूरा-10, आ-47, हा-55, 56

★ नबी की पैरवी के बग़ैर ख़ुदा-परस्ती के कोई मानी नहीं
सूरा-9, हा-106

★ नबी क़ाबिले-एतिमाद होते हैं
सूरा-7, आ-68

★ अपनी क़ौम के भलाई चाहनेवाले होते हैं
सूरा-7, आ-62, 68, 79, 93

★ वे कोई हक़ के ख़िलाफ़ बात नहीं कहते
सूरा-7, आ-105

★ नबी अपने काम में बे-ग़रज़ होता है
सूरा-10, आ-72; सूरा-11, आ-29, 51

★ नबियों की दावत
सूरा-10, हा-75, 76; सूरा-16, आ-36, हा-32

★ तमाम नबियों की तालीम और दावत एक थी
सूरा-7, आ-59, 65, 67, 68, 73, 85, हा-98; सूरा-10, आ-72, हा-74; सूरा-11, आ-25, 26, 50, हा-65; सूरा-11, आ-61, 84; सूरा-12 का परिचय; सूरा-12, आ-38, 39; सूरा-14, आ-10, हा-17; सूरा-16, आ-2, हा-5; सूरा-16, आ-35, 36, हा-32

★ तमाम नबियों का दीन एक था
सूरा-12, हा-34

★ कोई नबी किसी नए मज़हब की बुनियाद रखनेवाला नहीं था
सूरा-12, हा-34

★ तमाम नबी अपनी क़ौम की ज़बान ही में ख़ुदा का पैग़ाम लाते थे
सूरा-14, आ-4, हा-5

★ नबियों का यह काम नहीं था कि क़ानूने-इलाही के सिवा किसी दूसरे क़ानून की पैरवी करें
सूरा-12, हा-60

★ नबी ख़ुदा की नाफ़रमान हुकूमतों की इताअत के लिए नहीं आते थे
सूरा-7, हा-88

★ नबी सिर्फ़ मज़हब की नहीं बल्कि पूरे निज़ामे-ज़िन्दगी की इस्लाह के लिए आते थे
सूरा-7, हा-88; सूरा-12, हा-60

★ ख़ुदा की इताअत के साथ नबी की इताअत का हुक्म
सूरा-8, आ-1, 20, 24, 46; सूरा-9, आ-71, हा-80

★ नबियों को मोजिज़े किस मक़सद के लिए दिए गए?
सूरा-7, हा-87; सूरा-17, आ-59, हा-59

★ नबी ख़ुद मोजिज़े दिखाने की ताक़त नहीं रखता
सूरा-13, आ-38, हा-57; सूरा-14, आ-11

★ नबी का फ़र्ज़ है कि बेख़ौफ़ होकर अपनी दावत पेश करे
सूरा-7, आ-2, हा-2

★ नबियों के बीच मर्तबों का फ़र्क़ है
सूरा-17, आ-55, हा-62

★ एक रसूल की नाफ़रमानी तमाम रसूलों की नाफ़रमानी है
सूरा-11, आ-59, हा-65

★ नुबूवत की अहलियत
सूरा-7, आ-6, हा-7; सूरा-12, आ-24, हा-22, 27; सूरा-17, आ-15, हा-17

★ इस सवाल का जवाब कि जिस शख़्स को किसी नबी की दावत नहीं पहुँची उसकी पोज़ीशन क्या है?
सूरा-17, हा-17

★ जो क़ौम सीधे तौर पर नबी की मुख़ातब हो उसकी पोज़ीशन उन क़ौमों से मुख़्तलिफ़ है जिन्हें किसी और ज़रिए से पैग़ाम पहुँचे
सूरा-7, हा-50

★ नबी की मुख़ालिफ़त ख़ुदा की मुख़ालिफ़त है और उसकी सज़ा बड़ी सख़्त है
सूरा-8, आ-13, 14

★ नबी को झुठलानेवाले अज़ाब के हक़दार हैं
सूरा-16, आ-63

★ नबियों की मुख़ालिफ़त करके कोई क़ौम तबाही से नहीं बच सकती
सूरा-17, आ-77, हा-90

★ नबी के झुठलानेवालों पर अज़ाब कब नाज़िल होता है?
सूरा-8, आ-33, 34, हा-27

★ नबी किन हालात में बद्दुआ करता है?
सूरा-10, हा-89

★ मुजरिमों ने हमेशा नबियों का मज़ाक़ उड़ाया है
सूरा-15, आ-11

★ नबी को तकलीफ़ देने का अंजाम
सूरा-9, आ-61

★ नबी के साथ मुनाफ़िक़ाना रवैया बरतने का अंजाम
सूरा-7 का परिचय

★ अल्लाह और रसूल का मुक़ाबिला करनेवालों का अंजाम
सूरा-9, आ-63

★ हलाक होनेवाली क़ौमों ने नबियों का इस्तिक़बाल किस तरह किया है?
सूरा-14, आ-9 से 14

★ नबियों को झुठलाने का बुरा अंजाम
सूरा-7, आ-36, 64, 72, 76 से 78, 84, 90, 91, 94, 95, हा-77; सूरा-7, आ-96; सूरा-9, आ-70; सूरा-10, आ-13, 17, 73; सूरा-11, आ-43, 44, 58, 59, 60, 66 से 68, 82, 83, 94, 95; सूरा-12, आ-109, 110; सूरा-13, आ-32; सूरा-14, आ-13 से 17; सूरा-15, आ-78 से 84; सूरा-16, आ-36, 37, 113

★ नबियों की बात न माननेवालों को आख़िरत में पछताना पड़ेगा
सूरा-7, आ-53, हा-39; सूरा-10, आ-54, हा-59; सूरा-14, आ-44

★ आख़िरत में साबित हो जाएगा कि नबी ही हक़ पर थे
सूरा-7, आ-43, 53

● नूह (अलैहि.)
सूरा-9, आ-70; सूरा-11, आ-89; सूरा-14, आ-9; सूरा-17, आ-17

★ उनका क़िस्सा
सूरा-7, आ-59 से 64; सूरा-10, आ-71 से 73; सूरा-11, आ-25 से 48

★ उसके बयान करने का मक़सद
सूरा-7, हा-47; सूरा-10 का परिचय; सूरा-10, हा-69; सूरा-11, हा-31, 32, 39

★ नूह (अलैहि.) की क़ौम किस इलाक़े में आबाद थी?
सूरा-7, हा-47

★ हज़रत नूह (अलैहि.) की तारीफ़
सूरा-17, आ-3

★ नुबूवत से पहले अपनी अक़्ल व फ़िक्र से तौहीद की हक़ीक़त जान चुके थे
सूरा-11, आ-28, हा-34

★ नुबूवत के मंसब पर बिठाया जाना
सूरा-7, आ-59, हा-47; सूरा-11, आ-25

★ उनकी दावत (पैग़ाम)
सूरा-7, आ-59, हा-48; सूरा-11, आ-26

★ उनका मज़हब भी इस्लाम ही था
सूरा-10, आ-72

★ उनका इक़रार कि न मैं ग़ैब का इल्म रखता हूँ न फ़ौक़ुल-बशरी (इनसान से परे) क़ुव्वतों का मालिक हूँ
सूरा-11, आ-31, हा-37

★ उनकी क़ौम का यह ख़याल कि हम अपने जैसे इनसान को नबी कैसे मान लें
सूरा-7, आ-63, हा-49; सूरा-11, आ-27

★ उनकी क़ौम की असली गुमराही क्या थी?
सूरा-7, हा-48; सूरा-11, आ-27

★ उन पर सिर्फ़ नौजवान और ग़रीब लोग ही ईमान लाए
सूरा-11, आ-27, हा-32

★ अज़ाब के लिए क़ौम की माँग
सूरा-11, आ-32

★ कश्ती बनाने का हुक्म
सूरा-11, आ-37

★ कश्ती ख़ास अल्लाह की निगरानी में बनाई गई
सूरा-11, आ-37

★ कश्ती बनाते देखकर क़ौम के लोग नूह (अलैहि.) का मज़ाक़ उड़ाते थे
सूरा-11, आ-38

★ एक तनूर से तूफ़ान की शुरुआत
सूरा-11, आ-40, हा-42

★ तूफ़ान की कैफ़ियत
सूरा-11, हा-42

★ कश्ती में कौन-कौन सवार किए गए?
सूरा-11, आ-40, हा-43, 44

★ कश्ती के तमाम सवार होनेवाले बचा लिए गए और यही ज़मीन में आबाद हुए
सूरा-7, आ-64, हा-47; सूरा-10, आ-73

★ हज़रत नूह (अलैहि.) की बीवी और उनके बेटे का अज़ाब में पड़ना
सूरा-11, हा-43

★ नूह (अलैहि.) के बेटे का हाल
सूरा-11, आ-42 से 46

★ कश्ती के ठहरने की जगह और वह जगह जहाँ जूदी पहाड़ है
सूरा-7, हा-47; सूरा-11, हा-46

★ क्या तूफ़ाने-नूह पूरी दुनिया में आया था?
सूरा-11, हा-46

★ तूफ़ाने-नूह की रिवायत (क़िस्सा) दुनिया भर की क़ौमों में पाई जाती है
सूरा-7, हा-47
★ तमाम इनसान उन लोगों की औलाद हैं जो हज़रत नूह (अलैहि.) के साथ कश्ती पर सवार किए गए थे
सूरा-17, आ-3, हा-4
★ यह ग़लतफ़हमी कैसे पैदा हुई कि तमाम मौजूदा इनसान सिर्फ़ हज़रत नूह (अलैहि.) की औलाद हैं?
सूरा-11, हा-44

फ़/फ

● फ़रिश्ता
★ इनके बारे में मुशरिकों के अक़ीदे
सूरा-13, आ-13, हा-21; सूरा-16, हा-50; सूरा-17, आ-40
★ फ़रिश्तों की सिफ़ात
सूरा-7, आ-206
★ रसूल फ़रिश्ते के मानी में
सूरा-7, आ-37; सूरा-10, आ-21; सूरा-11, आ-69
★ ये अल्लाह की तसबीह (महिमागान) करते हैं और उसके डर से काँपते हैं
सूरा-13, आ-13
★ ये अल्लाह के आगे सिर सजदे में रखे हुए हैं
सूरा-16, आ-49
★ बन्दगी से मुँह नहीं मोड़ सकते
सूरा-16, आ-49
★ ख़ुदा से डरते हैं
सूरा-16, आ-50
★ हुक्मों पर बे-चूँ-चरा अमल करते हैं
सूरा-16, आ-50
★ हर शख़्स के साथ लगे हुए हैं
सूरा-13, आ-11, हा-18
★ इनसानों के आमाल को लिख रहे हैं
सूरा-10, आ-21, हा-30
★ नेकी के गवाह होते हैं
सूरा-17, आ-78, हा-95
★ इनसानों की रूहें क़ब्ज़ करते हैं
सूरा-7, आ-37; सूरा-8, आ-50
★ इनका इनसानी शक्ल में आना
सूरा-11, आ-69, 70, हा-75 से 77; सूरा-11, आ-77, हा-86; सूरा-11, आ-81; सूरा-15, आ-57, हा-33; सूरा-15, आ-61, हा-36, 40
★ ये नुमायाँ सूरत में कब भेजे जाते हैं?
सूरा-15, आ-7, 8, हा-5; सूरा-15, आ-57, हा-33
★ वह्य लाने की ज़िम्मेदारी पर होते हैं
सूरा-16, आ-2
★ क़ुरआन लानेवाला फ़रिश्ता
सूरा-16, आ-102, हा-103
★ बद्र की जंग में इनका मुसलमानों की मदद के लिए आना
सूरा-8, आ-9 से 13, हा-10
★ इन्हें आदम (अलैहि.) को सज्दा करने का हुक्म दिया गया
सूरा-7, आ-11, हा-10; सूरा-15, आ-29 से 32; सूरा-17, आ-61
★ वे जन्नतियों का इस्तिक़बाल (स्वागत) करेंगे
सूरा-13, आ-23, 24, हा-41
● फ़लाह (कामयाबी, सफलता)
★ इसका मतलब क़ुरआन की ज़बान में
सूरा-10, आ-17, हा-23
★ इसके पाने का रास्ता
सूरा-7, आ-69; सूरा-8, आ-45
★ यह कैसे लोगों के लिए है?
सूरा-7, आ-8, 157; सूरा-9, आ-88; सूरा-12, आ-23
★ कैसे लोग इसे नहीं पा सकते?
सूरा-10, आ-17, हा-23; सूरा-10, आ-69, 77; सूरा-12, आ-23; सूरा-16, आ-116
● फ़साद
★ फ़साद फ़िल-अर्ज़ (ज़मीन पर फ़साद) क्या है?
सूरा-7, हा-44; सूरा-13, आ-25
★ इसकी मनाही
सूरा-7, आ-56, 74, 85
★ उसे रोकने की कोशिश न करने के नतीजे
सूरा-11, आ-116, 117, हा-115
★ कुफ़्र एक फ़साद है
सूरा-16, आ-88
★ कुफ़्र का ग़लबा फ़साद है
सूरा-8, आ-73, हा-52
★ हक़ की राह से रोकना फ़साद है
सूरा-16, आ-88
★ मुफ़सिदीन (फ़सादी) कौन हैं?
सूरा-7, आ-103, 142; सूरा-10, आ-40, 91; सूरा-11, आ-85

★ मुफ़सिदीन (फ़सादियों) की पैरवी नहीं करनी चाहिए
सूरा-7, आ-142
★ उनके काम को अल्लाह सुधरने नहीं देता
सूरा-10, आ-81
● फ़हशा
★ मानी और तशरीह
सूरा-16, हा-89
● फ़ासिक़
देखें 'फ़िस्क़'
● फ़िक़्ह
★ इसके मानी
सूरा-9, हा-120
★ मौजूदा दौर में राइज इसका मतलब न समझने की ग़लती और इसका असर मुसलमानों के तसव्वुरे-दीन और दीनी तालीम पर
सूरा-9, हा-120
● फ़ितना
★ फ़ितना आज़माइश के मानी में
'देखें 'आज़माइश'
★ कुफ़्र के ग़ल्बे के मानी में
सूरा-8, आ-73
★ शरारत के मानी में
सूरा-9, आ-47, 48
★ ज़ुल्मो-सितम के मानी में
सूरा-10, आ-83 से 85; सूरा-17, आ-73
★ ज़ालिमों के लिए ईमानवालों के फ़ितना बनने का मतलब
सूरा-10, आ-85, हा-83
★ इज्तिमाई फ़ितना और उसके नतीजे
सूरा-8, आ-25, हा-20
★ वह फ़ितना क्या है जिसको मिटाने के लिए इस्लाम में जंग का हुक्म दिया गया है?
सूरा-8, आ-39, हा-31
★ इरतिदाद (दीन से फिर जाने) का फ़ितना
देखें 'इरतिदाद'
● फ़िरऔन
★ इसके मानी
सूरा-7, हा-85
★ मिस्र के सब बादशाह फ़िरऔन ही न थे
सूरा-12 का परिचय
★ हज़रत मूसा (अलैहि.) के ज़माने के फ़िरऔन कौन-कौन थे?
सूरा-7, हा-85, 93
★ फ़िरऔन की क़ौम की असल गुमराही क्या थी?
सूरा-7, आ-104, 105; सूरा-11, आ-96, 97
★ उसे ख़ौफ़ होता है कि हज़रत मूसा (अलैहि.) की दावत से मिस्र में सियासी इंक़िलाब बरपा हो जाएगा
सूरा-7, आ-109, 110, हा-88; सूरा-10, आ-78, हा-76
★ उसकी सियासी चालें
सूरा-7, आ-123, हा-91, 92
★ उसके ज़ुल्म
सूरा-7, आ-124, 127, 141; सूरा-10, आ-83, हा-79; सूरा-14, आ-6
★ उसकी हठधर्मी
सूरा-7, हा-88; सूरा-7, आ-130 से 136; सूरा-10, आ-75; सूरा-17, आ-101, 102, हा-115
★ उसकी क़ौम पर एक-के-बाद एक बलाओं और मुसीबतों का उतरना
सूरा-7, आ-130 से 136
★ उसके हक़ में हज़रत मूसा (अलैहि.) की बद्दुआ
सूरा-10, आ-88, हा-86, 89
★ डूबते वक़्त उसका ईमान लाना
सूरा-10, आ-90, हा-91
★ उसे और उसके लश्कर को इबरतनाक सज़ा
सूरा-8, आ-54
★ अल्लाह ने उसकी लाश को इबरत बनने के लिए महफ़ूज़ कर दिया
सूरा-10, आ-92, हा-92
★ क़ियामत के दिन उसकी क़ौम उसी की क़ियादत में जहन्नम की तरफ़ जाएगी
सूरा-11, आ-98, हा-104
● फ़िस्क़
★ फ़ासिक़ीन कौन हैं?
सूरा-7, आ-102, हा-82; सूरा-7, आ-145, 163; सूरा-9, आ-8, 24, 53, 80, 96
★ इनको हिदायत नहीं दी जाती
सूरा-9, आ-24, 80
★ इनको दुनिया में क्या सज़ा दी जाती है?
सूरा-7, आ-101, 102, 145 से 147, हा-103; सूरा-7, आ-163 से 166; सूरा-10, आ-33
★ इनसे अल्लाह हरगिज़ राज़ी न होगा
सूरा-9, आ-96

● फ़ौज़ (कामयाबी)

★ फ़ौज़े-अज़ीम (बड़ी कामयाबी) क्या है?
सूरा-9, आ-72, 89, 100, 111; सूरा-10, आ-64

★ फ़ाइज़ीन कौन हैं?
सूरा-9, आ-20

ब

● बग़ी (बग़ावत, सरकशी)

★ इसके मानी और तशरीह
सूरा-16, हा-89

● बनी-इसराईल
सूरा-11, हा-84; सूरा-17, आ-101 से 103

★ इनकी तारीख़ का इबरतनाक पहलू
सूरा-7, हा-83; सूरा-17, हा-6

★ इनका अस्ल मज़हब इस्लाम ही था
सूरा-10, हा-79; सूरा-10, आ-84, हा-81; सूरा-10, आ-90

★ दीन में इनकी तफ़रिक़ा (फूट) डालने की कोशिशें जिहालत की बिना पर न थीं बल्कि इल्म के बावजूद थीं
सूरा-10, आ-93, हा-95

★ इनकी तारीख़ हज़रत यूसुफ़ (अलैहि.) के दौर से हज़रत मूसा की पैदाइश तक
सूरा-12 का परिचय

★ इनका मिस्र पहुँचना
सूरा-12, हा-66

★ मिस्र में दाख़िले के वक़्त इनकी तादाद
सूरा-12, हा-68

★ हज़रत यूसुफ़ (अलैहि.) और उनके बाद आनेवाले इस्लाम के मुबल्लिग़ों की कोशिशों से मिस्रियों में इस्लाम की कितनी इशाअत हुई?
सूरा-12, हा-68

★ हज़रत मूसा (अलैहि.) के नबी बनाए जाने के वक़्त इनकी हालत
सूरा-10, आ-83, हा-79

★ इनपर मिस्र की ग़ुलामी के असरात
सूरा-7, हा-98, 107

★ हज़रत मूसा (अलैहि.) फ़िरऔन से इनकी रिहाई का मुतालबा करते हैं
सूरा-7, आ-105, हा-86; सूरा-7, आ-134

★ इनपर फ़िरऔन के ज़ुल्म
सूरा-7, आ-127, 141; सूरा-10, आ-83; सूरा-14, आ-6

★ ज़ुल्म दो फ़िरऔनों के दौर में हुए
सूरा-7, हा-93

★ इनको ख़िलाफ़त देने का वादा
सूरा-7, आ-129

★ इनको दुनिया की क़ौमों पर बड़ाई दी गई
सूरा-7, आ-140

★ मिस्र में हज़रत मूसा (अलैहि.) ने इनकी तंज़ीम किस तरह की?
सूरा-10, आ-87, हा-84

★ मिस्र से इनका निकाला जाना
सूरा-7, आ-138; सूरा-10, आ-90

★ समुद्र को किस जगह पर पार किया गया?
सूरा-7, हा-98

★ मिस्र से निकलते ही एक बनावटी ख़ुदा का मुतालबा करते हैं
सूरा-7, आ-138

★ सीना पर्वत के दामन में क़ियाम
सूरा-7, हा-99

★ बियाबान सीना में इनपर अल्लाह के एहसानात
सूरा-7, आ-160, हा-119

★ बछड़े को माबूद बना लेते हैं
सूरा-7, आ-148, हा-107

★ शिर्क से इनकी तौबा
सूरा-7, आ-149

★ हज़रत मूसा का ग़ुस्सा
सूरा-7, आ-150

★ बनी-इसराईल के सत्तर नुमाइन्दे गाय को पूजने के लिए माफ़ी माँगने जाते हैं
सूरा-7, आ-155

★ शरीअत दी जाती है
सूरा-7, आ-142, 145 से 147

★ इनसे अहद लिया जाता है
सूरा-7, आ-169 से 171, हा-132

★ बियाबान सीना में इनकी पहली मरदुम-शुमारी जनगणना)
सूरा-12, हा-68

★ इनकी इज्तिमाई तंज़ीम किस शक्ल में की गई?
सूरा-7, आ-159, 160, हा-118

★ इनकी हिदायत के लिए तौरात का नाज़िल किया

जाना
सूरा-17, आ-2
★ इनको हज़रत मूसा (अलैहि.) की आख़िरी वसीयतें
सूरा-14, आ-6 से 8, हा-12
★ इनकी तारीख़ हज़रत मूसा (अलैहि.) की वफ़ात से बुख़्ते-नसर के हमले तक
सूरा-17, हा-7
★ इनकी तारीख़ बाबिल की ग़ुलामी से छूटने के बाद हज़रत मसीह (अलैहि.) के दौर तक
सूरा-17, हा-8
★ इनकी तारीख़ मसीह (अलैहि.) के दौर में
सूरा-17, हा-9
★ इनकी अख़लाक़ी और मज़हबी गिरावट
सूरा-7, हा-108, 115; सूरा-7, आ-168, हा-129
★ इनकी नाफ़रमानियाँ
सूरा-7, आ-161 से 171
★ इनपर आसमान से अज़ाब का नाज़िल होना
सूरा-7, आ-162
★ इनको सब्त का क़ानून तोड़ने की सज़ा
सूरा-7, आ-165, 166
★ बनी-इसराईल के नबी इनको बदकार औरत का नाम देते हैं
सूरा-7, हा-107
★ इनको बनी-इसराईल के नबियों के द्वारा लगातार तंबीह किया जाना
सूरा-7, हा-128
★ इतिहास में इनके दो बड़े फ़साद जिन पर बनी-इसराईल के नबियों ने इन्हें लगातार ख़बरदार किया
सूरा-17, आ-4, हा-6
★ पहले फ़साद की सज़ा
सूरा-17, आ-5, हा-7
★ दूसरे फ़साद की सज़ा
सूरा-7, आ-7, हा-9
★ इनपर क़ियामत तक ऐसे ज़ालिम मुसल्लत किए जाते रहेंगे जो उन्हें सख़्त अज़ाब देंगे
सूरा-7, आ-167, हा-128
★ वे असबाब जिनकी बिना पर ये क़ौमों की इमामत के मंसब से हटाए गए
सूरा-17, हा-7
★ सारे बनी-इसराईल बिगड़े हुए ही न थे
सूरा-7, आ-159, हा-117
★ इनको नबी (सल्ल.) पर ईमान लाने की दावत दी जाती है
सूरा-7, आ-157, 158, हा-112; सूरा-17 का परिचय
★ इनकी शरीअत में कुछ उन चीज़ों के हराम होने की वजह जो मुहम्मद (सल्ल.) की शरीअत में हलाल हैं
सूरा-16, आ-118, 120, हा-117 से 120
● बरकत
★ इसके मानी और तशरीह
सूरा-7, हा-43
★ अल्लाह के बरकतवाला होने का मतलब
सूरा-7, आ-54, हा-43
● बरज़ख़
★ मौत और क़ियामत के बीच बरज़ख़ी ज़िन्दगी की कैफ़ियत
सूरा-16, आ-28 से 32, हा-26
★ क़ब्र का अज़ाब (यानी बरज़ख़ का अज़ाब) का सुबूत
सूरा-8, आ-50, 51; सूरा-11, आ-28, हा-26
★ सवाबे-बरज़ख़ का सुबूत
सूरा-16, आ-31, 32
● बशारत
★ इसके मानी और तशरीह
सूरा-10, हा-85
● बाइबल
सूरा-7, हा-47, 63, 75, 101, 118, 123, 128, 132; सूरा-9, हा-107; सूरा-10, हा-79, 91; सूरा-11, हा-44, 46, 81, 83; सूरा-12 का परिचय; सूरा-12, हा-7, 8, 11, 12, 14, 15, 16, 17, 18, 25अ, 26, 32, 33, 34, 37, 38, 42, 47अ, 52, 62, 66, 68, 69, 70, 71; सूरा-14, हा-12; सूरा-16, आ-121; सूरा-17, आ-6, 7, 8
★ बाइबल और क़ुरआन के इख़्तिलाफ़ात
सूरा-7, हा-63, 108, 113; सूरा-10, हा-91; सूरा-11, हा-44, 46; सूरा-12 की विषयवार्ता; सूरा-12, हा-7, 8, 11, 12, 14, 16, 25अ, 26, 34, 42, 52, 66, 71; सूरा-15, हा-38
★ बाइबल के सहीफ़ा-ए-यूनुस की हक़ीक़त
सूरा-10, हा-98, 99
★ आसमानी सहीफ़ों का मजमूआ
सूरा-17, आ-4, हा-5

भ

● **भलाई का हुक्म देना और बुराई से रोकना**
देखें 'अम्र-बिल-मारुफ़ व नह्य अनिल-मुनकर'

म

● **मक्का**
देखें 'इबराहीम' (अलैहि.), 'मुहम्मद' (सल्ल.), 'क़ुरैश'

● **मक़ामे-महमूद**
★ इससे क्या मुराद है?
सूरा-17, आ-79, हा-98

● **मग़फ़िरत**
★ कैसे लोगों के लिए है?
सूरा-7, आ-153; सूरा-8, आ-2 से 4, 70, 74; सूरा-11, आ-11
★ कैसे लोगों के लिए नहीं है?
सूरा-9, आ-80
★ मग़फ़िरत की शर्त
सूरा-8, आ-29, 38
★ मुशरिक के लिए मग़फ़िरत की दुआ जाइज़ नहीं
सूरा-9, आ-113, हा-111

● **मज़ाहिब (मज़हब)**
★ मज़हबी तफ़रिक़े और इख़्तिलाफ़ की असल
सूरा-10, आ-19, हा-25, 26; सूरा-16, आ-93, हा-93
★ इन इख़्तिलाफ़ों की हक़ीक़त क़ियामत के दिन खोली जाएगी
सूरा-10, आ-93; सूरा-11, आ-110; सूरा-16, आ-92
★ उनका फ़ैसला मौजूदा दुनियावी ज़िन्दगी में क्यों नहीं कर दिया जाता?
सूरा-10, आ-19, हा-26
★ मज़हबी तहक़ीक़ात के ग़लत तरीक़ों पर क़ुरआन की पकड़ और सही तरीक़े की रहनुमाई
सूरा-10, हा-65
★ झूठे मज़हबों के ख़िलाफ़ क़ुरआन की दलीलें
सूरा-7, आ-28, 29, हा-17, 18; सूरा-7, आ-32, हा-22; सूरा-10, आ-35, 36, हा-43, 44

● **मदयन**
★ असहाबे-मदयन (मदयनवाले)
सूरा-9, आ-70
★ असहाबुल-ऐका
सूरा-15, आ-78, हा-43
★ इलाक़ा और तारीख़
सूरा-7, हा-69; सूरा-15, हा-43, 44
★ मदयन के लोग हज़रत यूसुफ़ (अलैहि.) के ज़माने में
सूरा-12, हा-15, 34
★ उनकी अख़लाक़ी और मज़हबी हालत
सूरा-7, आ-85, 86, हा-69, 70; सूरा-11, आ-84 से 86
★ उनकी असल गुमराही क्या थी?
सूरा-7, आ-85, हा-70; सूरा-11, आ-85, 87, हा-96, 97
★ हज़रत शुऐब (अलैहि.) की रहनुमाई क़बूल न करने के लिए उनके बहाने
सूरा-7, आ-90, हा-74
★ उनका इबरतनाक अंजाम
सूरा-7, आ-91, 92, हा-75; सूरा-11, आ-94, 95

● **मदीना**
देखें 'अनसार', 'मुहम्मद' (सल्ल.), 'मुनाफ़िक़ीन' और 'यहूद'

● **मन व सलवा**
सूरा-7, आ-160, हा-119

● **मलाइका**
देखें 'फ़रिश्ता'

● **मशीयते-इलाही**
देखें 'तक़दीर'

● **मसकनत**
★ मानी और तशरीह
सूरा-9, हा-62
★ मिस्कीन की तारीफ़ (परिभाषा) के लिए देखें 'ज़कात'

● **मसीह**
देखें 'ईसा' (अलैहि.)

● **मसीही-मसीहियत**
देखें 'ईसाइयत'

● **मस्जिदे-अक़्सा**
सूरा-17, आ-1

● **मस्जिदे-ज़िरार**
देखें 'जंगे-तबूक' और 'मुनाफ़िक़ीन : जंगे-तबूक के मौक़े पर उनका रवैया'

● **मस्जिदे-हराम (यानी ख़ाना काबा)**
सूरा-17, आ-1
★ कुफ़्र करनेवाले इसके मुतवल्ली नहीं हो सकते
सूरा-8, आ-34, हा-28

★ इसके जाइज़ मुतवल्ली सिर्फ़ तक़वावाले लोग हैं
सूरा-8, आ-34, हा-28
★ मुशरिक लोग इसकी तौलियत (इन्तिज़ाम) से अमलन बेदख़ल किए जाते हैं
सूरा-9 का परिचय; सूरा-9, आ-17
★ मुशरिकों के लिए इसके क़रीब जाना भी मना है
सूरा-9, आ-28, हा-25
● **मसाजिदुल्लाह (अल्लाह की मस्जिदें)**
★ शिर्क और कुफ़्र करनेवाले उनके मुतवल्ली नहीं हो सकते
सूरा-9, आ-17, हा-19
★ उनकी तौलियत (इन्तिज़ाम) के हक़दार कौन लोग हैं?
सूरा-9, आ-18
★ इनमें मुशरिकीन के दाख़िले का शरई हुक्म
सूरा-9, हा-25
★ नमाज़ पढ़ने के क़ाबिल वह मस्जिद है जिसकी बुनियाद तक़वा पर हो, न कि वह जो फ़ितनापरदाज़ी के लिए बनाई जाए
सूरा-9, आ-108, हा-102
● **मीज़ान (तराज़ू, तुला)**
★ क़ियामत के रोज़ आमाल तौले जाने का मतलब
सूरा-7, आ-8, 9, हा-8, 9
● **मीसाक़ (अहद, वादा)**
★ मानी और तशरीह
सूरा-8, आ-72, हा-51
● **मुत्तक़ी**
देखें 'तक़वा'
● **मुनकर**
★ मानी और तशरीह
सूरा-16, हा-89
● **मुनाफ़िक़-मुनाफ़िक़ीन (कपटाचारी)**
★ इनकी सिफ़ात और रवैया
सूरा-8, आ-20, 21, हा-16; सूरा-9, आ-49 से 57, हा-56; सूरा-9, आ-64 से 67, 75, 76, 97, 98,
★ वे असल में हक़ के इनकारी हैं
सूरा-9, आ-49, 54, 55, 66, 74, 80, 84, 85, 90, 107, हा-105; सूरा-9, आ-123 से 125
★ वे फ़ासिक़ (नाफ़रमान) हैं
सूरा-9, आ-53, 67, 80, 84, 96
★ मुनाफ़िक़त एक गन्दगी है
सूरा-9, आ-95, 125
★ असबाबे-निफ़ाक़ (निफ़ाक़ की वजहें)
सूरा-9, आ-75 से 77, 97, हा-95, 120; सूरा-9, आ-127
★ क़ुरआन का अध्ययन मुनाफ़िक़ की गन्दगी में उल्टा इज़ाफ़ा करता है
सूरा-9, आ-125
★ मुनाफ़िक़त के असरात इनसानी सीरत पर
सूरा-9, आ-110, हा-105
★ मोमिन और मुनाफ़िक़ का फ़र्क़
सूरा-9, हा-80
★ गुनाहगार मोमिन और मुनाफ़िक़ का फ़र्क़
सूरा-9, आ-102 से 105, हा-99
★ मोमिन और मुनाफ़िक़ का फ़र्क़ कैसे खुलता है?
सूरा-9, आ-126, हा-125
★ जमाअत के साथ नमाज़ मुनाफ़िक़ को मोमिन से अलग नुमायाँ करके रख देती है
सूरा-9, आ-54
★ मुनाफ़िक़ और गुनाहगार मोमिन में फ़र्क़ कैसे मालूम किया जाए?
सूरा-9, हा-99
★ इस्लामी समाज में मुनाफ़िक़ों के शामिल रहने का नुक़सान
सूरा-9, आ-47, 48, 94, 95, 123, हा-121
★ मदीना के मुनाफ़िक़ों की अख़लाक़ी व ज़ेहनी हालत
सूरा-9, आ-56 से 58, हा-56, 57; सूरा-9, आ-61, 62, हा-69; सूरा-9, आ-97, 98, हा-95, 96; सूरा-9, आ-101, 107, हा-102, 124, 127,
★ जंगे-बद्र के मौक़े पर उनका रवैया
सूरा-8 का परिचय; सूरा-8, आ-48 से 50, हा-39
★ जंगे-तबूक के मौक़े पर उनका रवैया
सूरा-9 का परिचय; सूरा-9, आ-42 से 53, हा-44 से 53; सूरा-9, आ-65, हा-73; सूरा-9, आ-74, हा-83, 84; सूरा-9, आ-79, हा-87; सूरा-9, आ-81, 90, 93, 107 हा-102
★ नबी (सल्ल.) पर उनके एतिराज़ात
सूरा-9, आ-58; हा-57; सूरा-9, आ-61, हा-69
★ उनको कुचलने के लिए क़ुरआन के आख़िरी हुक्म
सूरा-9 का परिचय
★ उनके ख़िलाफ़ नबी (सल्ल.) की तदबीरें
सूरा-9 का परिचय; सूरा-9 हा-82, 88
★ उनके साथ इस्लामी सोसाइटी में क्या बर्ताव होना चाहिए?
सूरा-9, आ-73, हा-82; सूरा-9, आ-83, 84, हा-88;

सूरा-9, आ-94, 95, हा-94; सूरा-9, आ-105, 123, हा-121, 122

★ उनके बारे में इस्लामी हुकूमत की पॉलिसी
सूरा-9, आ-73, हा-82; सूरा-9 आ-123, हा-121, 122

★ मुनाफ़िक़ों का इनफ़ाक़-फ़ी-सबीलिल्लाह (अल्लाह की राह में ख़र्च) क़बूल नहीं
सूरा-9, आ-53

★ उनके लिए मग़फ़िरत की दुआ नहीं
सूरा-9, आ-80

★ मुनाफ़िक़ों का अंजाम
सूरा-7 का परिचय; सूरा-9, आ-55, 61, 63, 66 से 68, 73, 74, 85, 95, 101, 125

● **मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम)**

★ नबी-ए-उम्मी
सूरा-7, आ-157, 158, हा-112

★ नज़ीरे-मुबीन (खुली-खुली निशानियों के साथ डरानेवाले)
सूरा-7, आ-184

★ नज़ीर व बशीर (डरानेवाले और ख़ुशख़बरी देनेवाले)
सूरा-7, आ-188; सूरा-11, आ-2, 12

★ तमाम इनसानों की तरफ़ रसूल बनाकर भेजे गए
सूरा-7, आ-158; सूरा-10, हा-55

★ अहले-किताब को भी आप (सल्ल.) पर ईमान लाने की दावत दी गई
सूरा-7, आ-157, 158; सूरा-17 का परिचय

★ तौरात और इंजील में आप (सल्ल.) का ज़िक्र
सूरा-7, आ-157, हा-113

★ आप (सल्ल.) पर ईमान लानेवाले ही फ़लाह पाएँगे
सूरा-7, आ-157

★ आप (सल्ल.) की दावत क़बूल करने के नतीजे
सूरा-11, आ-3, हा-3

★ क़बूल न करने के नतीजे
सूरा-11, आ-3, हा-4

★ आप (सल्ल.) को तकलीफ़ देनेवाले का अंजाम
सूरा-9, आ-61, हा-69

★ आख़िरत में आप (सल्ल.) उन सब लोगों पर गवाह होंगे जिन तक आपकी दावत पहुँची है
सूरा-16, आ-89, हा-87

★ आप (सल्ल.) की नुबूवत की दलीलें
सूरा-7, आ-184, 185; सूरा-10, आ-16, हा-21; सूरा-12 का परिचय; सूरा-12, आ-102, 103, हा-72; सूरा-17, आ-93, हा-106

★ आप (सल्ल.) की दावत
सूरा-10 का परिचय; सूरा-10, आ-3, हा-6, 74; सूरा-11 का परिचय; सूरा-11, आ-2 से 4; सूरा-12, आ-108; सूरा-13, हा-1; सूरा-13, आ-30, 36; सूरा-16, हा-59

★ आप (सल्ल.) की दावत वही थी जो तमाम नबियों की रही है
सूरा-10, हा-74; सूरा-11, आ-17

★ आप (सल्ल.) के लाए हुए दीन की बुनियादी तालीमात
देखें 'इस्लाम'

★ आप (सल्ल.) किस काम के लिए भेजे गए?
सूरा-7, आ-157; सूरा-9, आ-33; सूरा-14, आ-1

★ काफ़िर आप (सल्ल.) के क्यों मुख़ालिफ़ थे?
सूरा-16, हा-59; सूरा-17, आ-46, हा-52

★ आप (सल्ल.) का काम सिर्फ़ क़ुरआन पहुँचा देना ही न था बल्कि अपने क़ौल और अमल से क़ुरआन के मंशा की तशरीह करना भी था
सूरा-16, आ-44, हा-40

★ आप (सल्ल.) का नबी की हैसियत से आना एक बड़ी नेमत थी
सूरा-14, हा-13

★ आप (सल्ल.) के नबी बनकर आने का मतलब यह था कि अब अरबवालों को ख़िलाफ़त का मौक़ा दिया जा रहा है
सूरा-10, आ-14, हा-18

★ क़ुरैश से आप (सल्ल.) का यह कहना कि अगर तुम मेरी दावत मान लो तो अरब और अजम के हुक्मराँ हो जाओगे
सूरा-14, हा-13

★ अरबवालों को चेतावनी कि अब तुम्हारी क़िस्मत का दारोमदार उस रवैये पर है जो तुम मुहम्मद (सल्ल.) की दावत के मुक़ाबले में इख़्तियार करोगे
सूरा-14, हा-24

★ आप (सल्ल.) को दलीले-नुबूवत के तौर पर क़ुरआन के सिवा कोई मोजिज़ा नहीं दिया गया
सूरा-7, आ-203, हा-152; सूरा-13, आ-30

★ मोजिज़ा न देने की वजह
सूरा-13, आ-31, हा-48

★ इस्लाम-मुख़ालिफ़ों की तरफ़ से मोजिज़ों की माँग और उनके जवाब
सूरा-7, आ-203, हा-151, 152; सूरा-10, आ-20, हा-27, 105; सूरा-11, आ-12, हा-13; सूरा-13,

आ-7, हा-15; सूरा-13, आ-27, 30, 31, हा-47, 48; सूरा-13, आ-38, हा-57; सूरा-15, आ-6 से 8, हा-5, 30; सूरा-17, आ-59, 60, हा-67 से 70; सूरा-17, आ-90 से 93, हा-106, 113

★ आप (सल्ल.) नुबूवत से पहले अक़्ल व फ़िक्र के सही इस्तेमाल से तौहीद की हक़ीक़त पा चुके थे
सूरा-11, हा-19

★ आप (सल्ल.) नुबूवत से पहले वे बातें नहीं जानते थे जो आप (सल्ल.) को वह्य के ज़रिए बताई गईं
सूरा-11, आ-49; सूरा-12, आ-3, हा-3

★ आप (सल्ल.) का काम सिर्फ़ अल्लाह की वह्य की पैरवी करना था
सूरा-7, आ-203; सूरा-10, आ-15

★ आप (सल्ल.) ग़ैब का इल्म नहीं रखते थे
सूरा-7, आ-188, हा-145; सूरा-9, आ-101

★ आप (सल्ल.) को क़ियामत के वक़्त का इल्म न था
सूरा-7, आ-187

★ ख़ुद अपने फ़ायदे और नुक़सान के मुख़्तार न थे
सूरा-7, आ-188; सूरा-10, आ-49

★ आप (सल्ल.) की बशरियत यानी आप (सल्ल.) का इनसान होना
सूरा-10, आ-2, हा-2; सूरा-16, आ-43; सूरा-17, आ-93, हा-106

★ उस रिवायत पर बहस जिसमें आप (सल्ल.) पर जादू का असर होने का ज़िक्र है
सूरा-17, हा-114

★ इस्लाम-दुश्मनों के मुक़ाबले में आप (सल्ल.) की इस्तिक़ामत अल्लाह की तौफ़ीक़ से थी
सूरा-17, आ-74

★ नुबूवत से पहले आप (सल्ल.) की ज़िन्दगी
सूरा-10, आ-16, हा-21

★ नबी बनाए जाने से पहले आप (सल्ल.) के बारे में मक्कावालों के ख़यालात
सूरा-10, हा-21; सूरा-11, हा-70

★ आप (सल्ल.) ने कभी जाहिलियत के क़ानून की पैरवी नहीं की
सूरा-12, हा-60

★ नुबूवत के काम में बिलकुल बेग़रज़ थे
सूरा-12, आ-104, हा-73

★ आप (सल्ल.) की बसीरत (तत्त्वदर्शिता)
सूरा-9 का परिचय

★ शुजाअत और बहादुरी
सूरा-9 का परिचय; सूरा-9, हा-23, 42

★ फ़ैयाज़ी और फ़राख़-हौसलगी (दानशीलता और हृदयविशालता)
सूरा-9, हा-24, 88

★ ख़ुदा के बन्दों से मुहब्बत और ख़ैरख़ाही
सूरा-9, आ-128; सूरा-11 का परिचय

★ आप (सल्ल.) की सिफ़ात एक रहनुमा और क़ौम के सरदार की हैसियत से
सूरा-9, आ-61, हा-119

★ आप (सल्ल.) की सिफ़ात एक मुदब्बिर (विचारक) की हैसियत से
सूरा-9 का परिचय

★ आप (सल्ल.) की सिफ़ात एक सिपहसालार की हैसियत से
सूरा-9 का परिचय

★ आप (सल्ल.) ने अरब में इस्लामी अहकाम को किस तरह तदरीज (क्रम) के साथ राइज किया?
सूरा-12, हा-60

★ वे नुक़सानात जो आप (सल्ल.) को हक़ की दावत के लिए उठाने पड़े
सूरा-15, हा-50

★ वे हिदायतें जो आप (सल्ल.) को हक़ की तबलीग़ के लिए दी गईं
सूरा-7, आ-199 से 206, हा-105 से 157; सूरा-10, आ-33; सूरा-11, आ-112 से 115; सूरा-12, हा-34; सूरा-12, आ-104, हा-72, 73; सूरा-15, आ-85 से 99, हा-48 से 53; सूरा-16, आ-125 से 128, हा-122 से 124; सूरा-17 का परिचय; सूरा-17, आ-53, 54, हा-58 से 61; ज़्यादा जानकारी के लिए देखें 'दावते-हक़'

★ ख़ुदा की तरफ़ से आप (सल्ल.) को मक़ामे-महमूद पर पहुँचाने का वादा
सूरा-17, आ-79, हा-98

★ मक्का में आप (सल्ल.) की और क़ुरैश के इस्लाम-दुश्मनों की कशमकश
सूरा-7, हा-49, 76, 83, 143; सूरा-7, आ-195 से 198; सूरा-8, आ-30, हा-25; सूरा-11, आ-5, हा-5; सूरा-11, आ-13; सूरा-15, आ-10 से 12, हा-6, 50; सूरा-15, आ-97 से 99, हा-53; सूरा-16, आ-24, हा-21; सूरा-17, हा-87, 124

★ आप (सल्ल.) की दावत पर उनकी हैरानी
सूरा-10, आ-2, हा-2

★ वे आप (सल्ल.) की क़द्र न पहचानते थे
सूरा-17, आ-55, हा-62, 112

★ उनके इलज़ामात, एतिराज़ात, शुब्हात और मुख़ालिफ़त की वजहें
सूरा-7, आ-184; सूरा-10, आ-2, हा-2, 3; सूरा-10, आ-15, हा-15; सूरा-11, आ-7, हा-9; सूरा-11, आ-27, हा-31 से 33; सूरा-11, आ-35; सूरा-12, आ-109; सूरा-13, आ-37, 38, हा-56, 58; सूरा-13, आ-43; सूरा-15, आ-6, 7, हा-4; सूरा-16 का परिचय; सूरा-16, हा-4; सूरा-16, आ-35, हा-31; सूरा-16, आ-43, हा-38, 59; सूरा-16, आ-103, हा-107; सूरा-16 आ-118 से 124, हा-117 से 121; सूरा-17, आ-47, हा-53; सूरा-17, आ-55, हा-62, 63; सूरा-17, आ-87, 88, हा-104, 105, 114

★ आप (सल्ल.) को नबी बनाए जाने के आग़ाज़ में सात साला क़हत (सूखा) और उस ज़माने में और उसके बाद इस्लाम-मुख़ालिफ़ों का रवैया
सूरा-7, हा-77; सूरा-10, हा-15; सूरा-10, आ-21, हा-29; सूरा-16, हा-112

★ इस्लाम-मुख़ालिफ़ों की हठधर्मियाँ
सूरा-7, हा-77; सूरा-10, आ-21, हा-29, 69; सूरा-12, हा-72; परिचय सूरा-13, आ-1, हा-1; सूरा-15, आ-14, 15

★ आप (सल्ल.) की दावत को नीचा दिखाने के लिए उनकी चालें
सूरा-16, आ-24, हा-22

★ आप (सल्ल.) के साथ उनका रवैया यूसुफ़ (अलैहि) के भाइयों के जैसा था
सूरा-12 का परिचय

★ उनकी माँग कि दीन में कुछ तब्दीली करके आप (सल्ल.) उनके साथ सुलह का मामला कर लें
सूरा-10, आ-15, हा-19

★ उनका बार-बार चैलेंज के तौर पर आप (सल्ल.) से अज़ाब के नाज़िल होने की माँग और उसके जवाब
सूरा-8, आ-32, 33, हा-26, 27; सूरा-11, आ-7, 8; सूरा-13, हा-14; सूरा-16 का परिचय; सूरा-16, आ-1, हा-2; सूरा-17, आ-11, हा-12

★ आप (सल्ल.) को झुठला देने के बावजूद मक्कावालों पर अज़ाब क्यों न आया?
सूरा-8, आ-32, 33, हा-26, 27; सूरा-17, आ-11, हा-12

★ इस्लाम-दुश्मन आप (सल्ल.) पर हाथ डालते हुए क्यों डरते थे?
सूरा-11, हा-103

★ मक्की दौर में इस्लाम और मुसलमानों का हाल
सूरा-8 का परिचय; सूरा-8, आ-26; सूरा-16, हा-109

★ इस दौर में ज़्यादातर ईमानलानेवाले नौजवान थे
सूरा-10, हा-78

★ वह दुआ जो उस दौर के इन्तिहाई सख़्त ज़माने में आप (सल्ल.) को सिखाई गई
सूरा-17, आ-80, हा-99, 100

★ अल्लाह की तरफ़ से आप (सल्ल.) को सब्र व सबात (हक़ पर जमे रहने) की ताकीद
सूरा-10, आ-109; सूरा-11, आ-12, हा-13

★ मेराज का वाक़िआ और उसका तारीख़ी पसे-मंज़र (ऐतिहासिक पृष्ठभूमि)
सूरा-17 का परिचय; सूरा-17, आ-1, हा-1; ज़्यादा तशरीह के लिए देखें 'मेराज'

★ मक्की दौर में दावते-इस्लामी का कितना और क्या काम हुआ?
सूरा-8, 17 का परिचय

★ मक्की दौर के आख़िरी ज़माने में इस्लामी निज़ामे-हयात का मंशूर जो आप (सल्ल.) ने ख़ुदा की तरफ़ से पेश किया
सूरा-17, आ-23 से 39, हा-25 से 43

★ अरब के सच्चे लोग आप (सल्ल.) की दावत का इस्तिक़बाल किस तरह कर रहे थे?
सूरा-16, आ-30, हा-27

★ मदनी दौर का आग़ाज़ किस तरह हुआ?
सूरा-8 का परिचय

★ बैअते-अक़बा
सूरा-8 का परिचय

★ हिजरत
सूरा-8 का परिचय; सूरा-9, आ-40, हा-42

★ ग़ारे-सौर का वाक़िआ
सूरा-9, आ-40, हा-42

★ मक्का के इस्लाम-दुश्मन आप (सल्ल.) की हिजरत को क्यों ख़तरनाक समझते थे?
सूरा-8 का परिचय

★ हिजरत के असरात व नतीजे
सूरा-8 का परिचय

★ मदीनावालों को इस्लाम-दुश्मनों का अल्टीमेटम और मुसलमानों के लिए हज की बन्दिश
सूरा-8 का परिचय

★ हिजरत के बाद मक्का के इस्लाम-दुश्मनों ने मुसलमानों को किस-किस तरह तंग करने की कोशिश की?
सूरा-8 का परिचय

★ हिजरत के बाद आप (सल्ल.) की तदबीरें
सूरा-8 का परिचय; सूरा-8, हा-41, 53
★ हिजरत के बाद मदीने की तरक़्क़ी
सूरा-9, हा-85
★ क़ुरैश से जंगी छेड़-छाड़ की शुरुआत
सूरा-8 का परिचय
★ बद्र की लड़ाई
देखें 'जंगे-बद्र'
★ सुलह हुदैबिया के टूट जाने के बाद आप (सल्ल.) ने किन वजहों से मक्का पर अचानक हमला कर दिया?
सूरा-8, हा-43
★ मक्का की फ़तह और क़ुरैश की आख़िरी हार
सूरा-9 का परिचय
★ तबूक की जंग
देखें 'जंगे-तबूक'
★ तबूक के सफ़र में समूद के आसारे-क़दीमा पर आप (सल्ल.) का पहुँचना और मुसलमानों को उनसे इबरत दिलाना
सूरा-7, हा-57
★ तबूक के सफ़र में आप (सल्ल.) को शहीद करने के लिए मुनाफ़िक़ों की साज़िश
सूरा-9, आ-74, हा-84
★ अरब पर इस्लाम के ग़ल्बे के पूरा होने के आख़िरी मरहले
सूरा-9 का परिचय; सूरा-9, हा-2, 16, 19, 23, 24
★ शिर्क को मिटा देने के लिए आप (सल्ल.) की आख़िरी कोशिश
सूरा-9 का परिचय
★ जाहिली रस्मों का इस्तीसाल (उन्मूलन)
सूरा-9 का परिचय; सूरा-9, हा-1; सूरा-9, आ-37
★ मुशरिकों के हज करने पर पाबन्दी
सूरा-9, हा-1; सूरा-9, आ-28, हा-25
★ हज्जतुल-वदा
सूरा-9, हा-1, 37
★ हज के पुराने तरीक़ों का सुधार
सूरा-9, हा-1
★ काबा की तौलियत (प्रबन्ध) से मुशरिकों की बेदख़ली
सूरा-9, आ-17 से 19, हा-19 से 21; ज़्यादा जानकारी के लिए देखें 'नुबूवत'
● मुशरिक
देखें 'शिर्क'
● मुशरिकीने-अरब
देखें 'शिर्क और अरब'
● मुसरिफ़ (फ़ज़ूल-ख़र्ची करनेवाले)
★ कैसे लोग मुसरिफ़ हैं?
सूरा-10, हा-80
● मुस्लिह, मुस्लिहीन
★ कैसे लोग हैं?
सूरा-7, आ-170
● मुहसिन
देखें 'एहसान'
● मुहाजिरीन
★ जंगे-बद्र में उनकी जाँनिसारी
सूरा-8 का परिचय
● मूसा (अलैहि.)
सूरा-7, आ-103 से 160; सूरा-10, आ-75 से 92; सूरा-11, आ-17, 96 से 100, 110; सूरा-12 का परिचय; सूरा-14, आ-5 से 8; सूरा-17, आ-101 से 104
★ उनका ज़माना
सूरा-7, हा-85
★ नुबूवत से पहले की ज़िन्दगी
सूरा-7, हा-88
★ शख़्सियत और क़ाबिलियतें
सूरा-7, हा-88
★ नबी बनाए जाने के वक़्त बनी-इसराईल की हालत
सूरा-10, आ-83, हा-79
★ उनकी दावत
सूरा-7, आ-105, हा-86
★ नबी बनाए जाने का मक़सद
सूरा-10, हा-74; सूरा-14, आ-5
★ वे मोजिज़े जो उनको दिए गए
सूरा-7, आ-106 से 108, हा-87; सूरा-7, आ-117, 130, हा-94; सूरा-7, आ-133, 160; सूरा-17, आ-101, 102, हा-113 से 115
★ मिस्र में उन्होंने बनी-इसराईल की तंज़ीम किस तरह की?
सूरा-10, आ-87, हा-84
★ फ़िरऔन को उनसे सियासी इंक़िलाब का ख़तरा क्यों पैदा हुआ?
सूरा-7, आ-110, हा-88; सूरा-10, आ-78, हा-76
★ उसने उनके मुक़ाबले में जादूगरों को क्यों बुलवाया?
सूरा-7, हा-91
★ जादूगरों से मुक़ाबला

सूरा-7, आ-115 से 126; सूरा-10, आ-80 से 82

★ उनका ईमान लाना और यकायक उनके अन्दर एक अख़लाक़ी इंक़िलाब पैदा हो जाना
सूरा-7, आ-120 से 126, हा-91, 92

★ फ़िरऔन के हक़ में उनकी बद्दुआ
सूरा-10, आ-88, हा-86

★ मिस्र से बनी-इसराईल को लेकर निकलते हैं
सूरा-7, आ-137, 138; सूरा-10, आ-90

★ बनी-इसराईल के साथ ग़ैर-इसराईली मुसलमानों की भी एक बड़ी तादाद थी।
सूरा-12, हा-68

★ समुन्दर पार करने की जगह
सूरा-7, हा-98

★ बनी-इसराईल उनसे एक बनावटी ख़ुदा माँगते हैं
सूरा-7, आ-138, हा-98

★ उनको शरीअत और किताब अता की जाती है
सूरा-7, हा-99; सूरा-7, आ-145; सूरा-17, आ-2

★ अल्लाह को देखने की दरख़ास्त और फिर इस जसारत पर तौबा
सूरा-7, आ-143

★ अल्लाह तआला का उनसे कलाम करना
सूरा-7, आ-144

★ हज़रत हारून (अलैहि.) को अपना ख़लीफ़ा बनाते हैं
सूरा-7, आ-142, हा-100

★ उनके पीछे बनी-इसराईल का बछड़े को माबूद बना लेना
सूरा-7, आ-148 से 150, हा-107, 108

★ सीना के रेगिस्तान में पहली बार बनी-इसराईल की मरदुमशुमारी (जनगणना) कराते हैं
सूरा-12, हा-68

★ उनका आख़िरी ख़ुतबा और बनी-इसराईल को वसीयतें
सूरा-14, आ-6 से 8, हा-12; ज़्यादा जानकारी के लिए देखें 'बनी-इसराईल'

● **मेराज**

★ इसका ज़माना
सूरा-17 का परिचय

★ इसकी तफ़सीलात जो हदीसों में आई हैं
सूरा-17, हा-1

★ हदीस की तफ़सीलात क़ुरआन के ख़िलाफ़ नहीं हैं
सूरा-17, हा-1

★ वह एक जिस्मानी सफ़र और आँखों देखा मंज़र था
सूरा-17, हा-1

★ इसके इमकान (मुमकिन होने) की बहस
सूरा-17, हा-1

★ हदीस का इनकार करनेवालों के एतिराज़ात और उनका जवाब
सूरा-17, हा-1

★ तमाम नबियों को इस तरह के मुशाहिदे कराए गए हैं
सूरा-17, हा-1

★ इसके लिए रूअया (ख़्वाब दिखाने) का लफ़्ज़ किस मानी में इस्तेमाल हुआ है?
सूरा-17, आ-60, हा-71

● **मोजिज़ात**

★ मोजिज़े की हक़ीक़त
सूरा-7, हा-87

★ मोजिज़ों के बरहक़ होने की दलील
सूरा-7, हा-87

★ मोजिज़े और जादू का फ़र्क़
सूरा-7, आ-116 से 119, हा-94; सूरा-17, हा-114, 115

★ मोजिज़ों को तबई और आदी वाक़िआत साबित करनेवालों की ग़लती
सूरा-7, हा-87

★ मोजिज़ों की वह ख़ास क़िस्म जो दलीले-नुबूवत के तौर पर दी जाती है
सूरा-17, आ-59, हा-67

★ नबियों को मोजिज़े किस लिए दिए जाते हैं?
सूरा-7, हा-87; सूरा-17, आ-59, हा-68, 69

★ हज़रत सालेह (अलैहि.) की ऊँटनी का मोजिज़ा
सूरा-7, आ-73, हा-58; सूरा-7, आ-77; सूरा-11, आ-64; सूरा-17, आ-59

★ हज़रत इबराहीम (अलैहि.) के यहाँ बुढ़ापे में औलाद की पैदाइश
सूरा-11, आ-71; सूरा-15, आ-53 से 55

★ हज़रत यूसुफ़ (अलैहि.) का मोजिज़ा
सूरा-12, आ-93

★ वे मोजिज़े जो हज़रत मूसा (अलैहि.) को दिए गए
सूरा-7, आ-106 से 108, हा-87; सूरा-7, आ-117, 130 से 136, 160; सूरा-17, आ-101, 102, हा-113 से 115

★ नबी (सल्ल.) को दलीले-नुबूवत के तौर पर सिर्फ़ क़ुरआन का मोजिज़ा दिया गया
सूरा-7, आ-203, हा-152; सूरा-13, आ-30

★ नबी (सल्ल.) को हिस्सी (महसूस तौर पर दिखाई

देनेवाले) मोजिज़े के बजाय अक़्ली मोजिज़ा देने की वजह
सूरा-13, हा-47, 48
★ मक्का के इस्लाम-मुख़ालिफ़ों की तरफ़ से मोजिज़ों की लगातार माँगें और उनके जवाब
सूरा-7, आ-203, हा-151, 152; सूरा-10, आ-20, हा-27; सूरा-10, आ-101, हा-105; सूरा-11, आ-12, हा-13; सूरा-13, आ-7, हा-15; सूरा-13, आ-27, 30, 31, हा-47, 48; सूरा-13, आ-38, हा-57; सूरा-15, आ-6 से 9, हा-5, 30; सूरा-17, आ-59, 60, हा-67 से 70, आ-90 से 93, हा-106, 113
● **मोमिन**
देखें 'ईमान'

य

● **यतीम**
★ यतीमों के हक़
सूरा-17, आ-34
★ इनके हक़ों और हितों की हिफ़ाज़त इस्लामी रियासत की ज़िम्मेदारियों में से है
सूरा-17, हा-38
● **यसअ, अल-यसअ (अलैहि.)**
★ उनका ज़माना और बनी-इसराईल की इस्लाह और सुधार के लिए उनकी कोशिशें
सूरा-17, हा-7
● **यहया (अलैहि.)**
★ उनके ज़माने में यहूदियों की अख़लाक़ी व मज़हबी और सियासी हालत
सूरा-17, हा-9
★ उनका सिर एक नाचनेवाली की फ़रमाइश पर क़लम किया गया
सूरा-17, हा-9
● **यहूद**
★ उनका अख़लाक़ी और मज़हबी पतन और उसके असबाब
सूरा-7, आ-157, हा-112; सूरा-9, हा-107; सूरा-16, हा-92
★ उनकी गुमराहियाँ
सूरा-9, आ-30, हा-29
★ उनके ईमान में क्या ख़राबी है?
सूरा-9, आ-29, हा-26, 27; सूरा-9, आ-31, हा-31
★ अपने नबियों की सीरतों के बारे में उनके ग़लत तसव्वुरात
सूरा-12, हा-7, 12, 14, 42, 66
★ अपने नबियों पर उनकी तोहमतें
सूरा-7, हा-63, 108
★ तौरात के साथ उनका सुलूक
सूरा-9, हा-107; सूरा-15, हा-52
★ उनका सब्त के एहकाम की खुल्लम-खुल्ला ख़िलाफ़वर्ज़ी करना
सूरा-7, हा-123
★ उनकी शरारतों के सबब उन पर शरीअत की क़ैद बढ़ा दी गई
सूरा-16, आ-117 से 124, हा-117 से 121
★ मदीना के यहूदियों का रवैया
सूरा-8, हा-41; ज़्यादा तफ़सील के लिए देखें 'अहले-किताब', 'बनी-इसराईल', 'मुहम्मद' (सल्ल.)
● **याक़ूब (अलैहि.)**
★ उनकी पैदाइश की ख़ुशख़बरी
सूरा-11, आ-71, हा-79
★ फ़लस्तीन में उनके रहने की जगह
सूरा-12 का परिचय
★ उनकी सोचने-समझने की आला दर्जे की सलाहियत
सूरा-12, आ-6, हा-7; सूरा-12, आ-18, हा-14; सूरा-12, आ-67, 68, हा-53, 54; सूरा-12, आ-83, 84
★ उनका बुलन्द दर्जे का अख़लाक़
सूरा-12, आ-18, हा-13
★ उनका अल्लाह पर भरोसा
सूरा-12, आ-67, 83
★ वे अल्लाह के दिए हुए इल्म से 'इल्मवाले' थे
सूरा-12, आ-68
★ उनका सब्र
सूरा-12, आ-83
★ उनका अल्लाह से ताल्लुक़
सूरा-12, आ-86
★ उनकी ग़ैर-मामूली क़ुव्वतें
सूरा-12, आ-94, हा-66
★ हज़रत यूसुफ़ (अलैहि.) की जुदाई में उनका हाल
सूरा-12, आ-84, 85
★ उनकी आँखों की रौशनी का पलट आना
सूरा-12, आ-96
★ उनका मिस्र जाना
सूरा-12, आ-99, हा-68
★ मिस्र में वे पहले भी अनजान न थे
सूरा-12, हा-34
★ उनकी उम्र और मिस्र में उनके ठहरने का ज़माना
सूरा-12, हा-68

★ उनका दीन क्या था?
सूरा-12, आ-38

● **यूनुस (अलैहि.)**

★ उनके हालात
सूरा-10, आ-98, हा-98

★ उनकी क़ौम का ईमान अल्लाह का अज़ाब सामने आ जाने के बाद क्यों क़बूल किया गया?
सूरा-10, आ-98, हा-99

★ बाइबल के सहीफ़ा-ए-यूनुस की हक़ीक़त
सूरा-10, हा-99

★ क़ौमे-यूनुस की आख़िरी तबाही
सूरा-10, हा-100

● **यूसुफ़ (अलैहि.)**

★ यूसुफ़ (अलैहि.) का क़िस्सा
सूरा-12 का परिचय; सूरा-12, आ-1 से 101

★ वे नतीजे जो उनके क़िस्से से निकलते हैं
सूरा-12 का परिचय; सूरा-12, हा-47अ

★ वह मक़सद जिसके लिए यह क़िस्सा क़ुरआन में बयान हुआ है
सूरा-12 का परिचय

★ यूसुफ़ (अलैहि.) का क़िस्सा और नबी (सल्ल.) के हालात में यकसानियत
सूरा-12 का परिचय

★ सूरा यूसुफ़ नबी (सल्ल.) की रिसालत का एक खुला सुबूत है
सूरा-12, आ-102, 103, हा-72

★ हज़रत यूसुफ़ (अलैहि.) के हालात
सूरा-12 का परिचय

★ उनके ज़माने में मिस्र का शाही ख़ानदान
सूरा-12 का परिचय

★ उनके भाइयों का हसद (जलन)
सूरा-12, आ-5, हा-4; सूरा-12, आ-8, 9

★ उनकी नुबूवत की पेशीनगोई
सूरा-12, आ-6, हा-5

★ वे अपने वालिद को क्यों महबूब थे?
सूरा-12, आ-8, हा-8

★ भाइयों की साज़िश
सूरा-12, आ-9 से 18, हा-9 से 12

★ यूसुफ़ (अलैहि.) के भाइयों की अख़लाक़ी हालत
सूरा-12, आ-11 से 18, 77

★ कुएँ में फेंका जाना
सूरा-12, आ-15

★ ग़ुलाम बनाकर बेचे गए
सूरा-12, आ-19, 20, हा-15

★ क़ाफ़िलेवालों की बेईमानी
सूरा-12, आ-19, 20, हा-15

★ अज़ीज़े-मिस्र के यहाँ पहुँचते हैं
सूरा-12, आ-21

★ लफ़्ज़ 'अज़ीज़' के मानी
सूरा-12, हा-16, 62

★ मिस्र में पहुँचने के वक़्त उनकी उम्र
सूरा-12, हा-18

★ अल्लाह ने उनको दुनिया के मामलों से वाक़िफ़ करने के लिए क्या इन्तिज़ाम किया?
सूरा-12, आ-21, हा-19

★ अल्लाह की तरफ़ से 'हुक्म' और 'इल्म' का अतिया
सूरा-12, आ-22, हा-20

★ इस ख़याल की ग़लती कि हज़रत यूसुफ़ (अलैहि.) ने अज़ीज़े-मिस्र को अपना रब कहा
सूरा-12, हा-21

★ ज़ुलैख़ा की बदनीयती और उनका उससे बच जाना
सूरा-12, आ-23 से 25

★ वह खुली दलील क्या थी जिसने उनको गुनाह से बचाया?
सूरा-12, आ-24, हा-22

★ अल्लाह की तरफ़ से उनकी अख़लाक़ी तरबियत
सूरा-12, आ-24, हा-23

★ उस ज़माने के मिस्र की अख़लाक़ी हालत
सूरा-12, हा-23, 27, 28

★ ज़ुलैख़ा की मक्कारी
सूरा-12, आ-25

★ इस ख़याल की ग़लती कि हज़रत यूसुफ़ (अलैहि.) के हक़ में गवाही देनेवाला कोई बच्चा था
सूरा-12, हा-24

★ ज़ुलैख़ा का झूठ कैसे खुला?
सूरा-12, आ-26 से 28, हा-25

★ मिस्र की औरतों में ज़ुलैख़ा के इश्क़ का चर्चा
सूरा-12, आ-30

★ मिस्र की औरतों का हज़रत यूसुफ़ (अलैहि.) पर रीझना
सूरा-12, आ-31

★ हज़रत यूसुफ़ (अलैहि.) की इज़्ज़त पर ज़ुलैख़ा की पहली गवाही
सूरा-12, आ-32

★ क़ैद की धमकी देकर उनसे बदकारी की माँग करती है
सूरा-12, आ-32

- ★ ये गुनाह को कर गुज़रने के मुक़ाबले में क़ैद को क़बूल करते हैं
  सूरा-12, आ-33, हा-28
- ★ गुनाह से बचने के लिए अल्लाह से दुआ माँगते हैं
  सूरा-12, आ-33
- ★ उनकी सीरत की मज़बूती, इरफ़ाने-नफ़्स और इनाबत इलल्लाह (अपने को पहचानना और अल्लाह की तरफ़ पलटना)
  सूरा-12, आ-33, हा-28
- ★ बेगुनाह क़ैद किए जाते हैं
  सूरा-12, आ-35
- ★ मिस्र का सेफ़्टी एक्ट
  सूरा-12, हा-30
- ★ मिस्र के सेफ़्टी एक्ट में भी क़ैद के लिए कोई मुद्दत मुक़र्रर न थी
  सूरा-12, हा-30, 31
- ★ इस सेफ़्टी एक्ट में 'मुल्की मफ़ाद' के नाम से किन क़ुसूरों पर लोग पकड़े जाते थे?
  सूरा-12, हा-30
- ★ मिस्र में हज़रत यूसुफ़ (अलैहि.) की शोहरत की शुरुआत
  सूरा-12, हा-30
- ★ मिस्र के अमीर तबक़े पर उनकी अख़लाक़ी जीत
  सूरा-12, हा-30
- ★ जेल में उनका अख़लाक़ी असर
  सूरा-12, आ-36, हा-33; सूरा-12, आ-46, हा-39
- ★ जेल के दो क़ैदी अपना ख़ाब सुनाते हैं
  सूरा-12, आ-36, 41
- ★ जेल में तौहीद का बयान
  सूरा-12, आ-37 से 40, हा-34
- ★ हज़रत यूसुफ़ (अलैहि.) ने रिसालत की तबलीग़ का काम कब शुरू किया?
  सूरा-12, हा-34
- ★ पहली बार अपनी ख़ानदानी हैसियत पर से पर्दा उठाते हैं
  सूरा-12, हा-34
- ★ उनके तबलीग़ के तरीक़े की हिकमतें
  सूरा-12, हा-34
- ★ जेल से रिहाई की तदबीर और इस ख़याल की ग़लती कि उनकी यह तदबीर ख़ुदा को भूल जाने का नतीजा थी
  सूरा-12, आ-42, हा-35
- ★ जेल में उनका काम
  सूरा-12, हा-34
- ★ मिस्र के फ़रमाँरवा का ख़ाब और मिस्र के मज़हबी पेशवाओं का उसकी ताबीर बताने में नाकाम रहना
  सूरा-12, आ-43, 44
- ★ हज़रत यूसुफ़ (अलैहि.) से ताबीर पूछी जाती है
  सूरा-12, आ-46
- ★ ताबीर के साथ-साथ सूखे से बचने की तदबीर भी बताते हैं
  सूरा-12, आ-47 से 49, हा-41
- ★ शाही दरबार में पेश किए जाते हैं
  सूरा-12, हा-42
- ★ रिहाई से पहले उस मामले की जाँच की माँग करते हैं जिस पर उनको क़ैद किया गया था
  सूरा-12, आ-50, हा-43
- ★ उनकी शराफ़त
  सूरा-12, हा-43
- ★ उनकी पाकदामनी पर मिस्र की सभी औरतों की गवाही
  सूरा-12, आ-51
- ★ ख़ुद ज़ुलैख़ा भी दोबारा गवाही देती है
  सूरा-12, आ-51, हा-45
- ★ उनके ऊँचाई के मर्तबे पर पहुँचने की वजहें
  सूरा-12, हा-45, 47अ
- ★ उनका नफ़्स (मन) की बड़ाई से पाक होना
  सूरा-12, आ-53
- ★ बादशाह से मुलाक़ात और उसकी तरफ़ से मंसब की पेशकश
  सूरा-12, आ-54, हा-47अ
- ★ मिस्र की सल्तनत के मुख़्तारे-कुल (मुकम्मल बाइख़्तियार) बनाए जाते हैं
  सूरा-12, आ-54 से 56, हा-47अ
- ★ उनके लिए 'अज़ीज़' का लक़ब
  सूरा-12, आ-78, हा-62; सूरा-12, आ-88
- ★ उस रिवायत की ग़लती कि ज़ुलैख़ा से उनकी शादी हुई
  सूरा-12, हा-17, 62
- ★ इस ख़याल की ग़लती कि उन्होंने निज़ामे-कुफ़्र को चलाने के लिए हुकूमते-मिस्र की नौकरी की थी
  सूरा-12, हा-47अ
- ★ उन लोगों के ख़याल की ग़लती जो कुफ़्र के क़ानूनों की पैरवी के लिए हज़रत यूसुफ़ (अलैहि.) की सीरत को दलील बनाते हैं
  सूरा-12, हा-60

★ यह रिवायत कि मिस्र का फ़रमाँरवा मुसलमान हो गया था
सूरा-12, हा-48
★ हज़रत यूसुफ़ (अलैहि.) का बेहतरीन इन्तिज़ाम
सूरा-12, हा-50
★ यूसुफ़ (अलैहि.) के भाइयों का पहली बार आना
सूरा-12, आ-58, हा-50
★ हज़रत यूसुफ़ (अलैहि.) उनसे अपने भाई बिन-यमीन को लाने की फ़रमाइश करते हैं
सूरा-12, आ-59, 60, हा-52
★ बिन-यमीन उनके सगे भाई थे
सूरा-12, हा-8
★ बिन-यमीन की हिफ़ाज़त के लिए हज़रत याक़ूब (अलैहि.) की एहतियाती तदबीरें
सूरा-12, आ-67, हा-53
★ यूसुफ़ (अलैहि.) के भाइयों के दूसरी बार आने, बिन-यमीन से उनकी मुलाक़ात और उनको रोक रखने के लिए उनकी तदबीरें
सूरा-12, आ-69 से 76
★ अल्लाह ने हज़रत यूसुफ़ (अलैहि.) को मिस्र के शाही क़ानून पर अमल करने से किस तरह बचा लिया?
सूरा-12, आ-76, हा-60
★ हज़रत यूसुफ़ (अलैहि.) की सूझ-बूझ
सूरा-12, आ-77
★ उनका बिन-यमीन को रोक रखना
सूरा-12, आ-78 से 80, हा-63
★ उनका तौरिया (असल पर पर्दा डालना)
सूरा-12, हा-63
★ यूसुफ़ (अलैहि.) के भाइयों की वापसी और हज़रत याक़ूब (अलैहि.) का हाल
सूरा-12, आ-83 से 87
★ यूसुफ़ (अलैहि.) के भाइयों के तीसरी बार आने और हज़रत यूसुफ़ (अलैहि.) का उनपर अपने-आपको ज़ाहिर करना
सूरा-12, आ-88 से 90
★ भाइयों का अपनी ग़लती को क़बूल करना और उनका उन्हें माफ़ करना
सूरा-12, आ-91, 92
★ हज़रत यूसुफ़ (अलैहि.) का मोजिज़ा, हज़रत याक़ूब (अलैहि.) की आँख की खोई हुई रौशनी का वापस आ जाना
सूरा-12, आ-93 से 96
★ बनी-इसराईल और हज़रत याक़ूब (अलैहि.) का मिस्र पहुँचना
सूरा-12, आ-99, हा-68
★ हज़रत यूसुफ़ (अलैहि.) की आख़िरी तक़रीर माँ-बाप और भाइयों के सामने
सूरा-12, आ-100, 101
★ उस ख़ाब की ताबीर जो बचपन में उन्होंने देखा था
सूरा-12, आ-100
★ माँ-बाप और भाइयों ने उनको 'सजदा' किस मानी में किया था?
सूरा-12, हा-70
★ हज़रत यूसुफ़ (अलैहि.) की सीरत पर तबसिरा (समीक्षा)
सूरा-12, हा-71

र

● रब
★ अल्लाह ही तमाम कायनात का रब है
सूरा-7, आ-54, 61, 67, 104, 121; सूरा-10, आ-37; सूरा-13, आ-16; सूरा-17, आ-102
★ वही इनसान का रब है
सूरा-7, आ-54; सूरा-10, आ-3, हा-6; सूरा-10, आ-32, हा-38; सूरा-11, आ-34, 56; सूरा-13, आ-30
★ किसी को क़ानून बनानेवाला मानकर उसके 'अम्रो-नही' (आदेश और निषेध) पर बे-चूँ-चरा अमल करना असल में उसको रब बनाना है
सूरा-9, आ-31, हा-31
★ किसी को बादशाह और मुल्क का मुख़्तारे-मुतलक़ तसलीम करना उसे रब मानना है
सूरा-12, आ-40, हा-34; सूरा-12, आ-42, 50
● रसूल
★ फ़रिश्ते के मानी में देखें 'फ़रिश्ता'
● रसूल
★ नबी के मानी में देखें 'नुबूवत'
● रहबानियत
★ कोई रहबानी मज़हब ख़ुदा की तरफ़ से नहीं हो सकता
सूरा-7, आ-32, हा-22
★ इस्लाम में रहबानियत नहीं है
सूरा-7, आ-31, हा-21
● रहमत
★ निज़ामे-आलम अल्लाह की रहमत पर क़ायम है
सूरा-7, आ-156, हा-111

★ रहमत बारिश के मानी में
सूरा-7, आ-57
★ इल्मे-हक़ अल्लाह की रहमत है
सूरा-11, आ-28, 63
★ नुबूवत अल्लाह की रहमत है
सूरा-17, आ-87
★ इख़्तिलाफ़ से बच जाना अल्लाह की रहमत है
सूरा-11, आ-118, 119
★ गुनाह से बच जाना अल्लाह की रहमत है
सूरा-12, आ-53
★ अल्लाह की रहमत से मायूस होना सिर्फ़ हक़ के इनकारियों और गुमराहों का काम है
सूरा-12, आ-87; सूरा-15, आ-56
★ अल्लाह की रहमत कैसे लोगों के लिए है?
सूरा-7, आ-56, 63, 156; सूरा-9, आ-20, 21, 71, 99; सूरा-11, आ-73, 94
★ उसकी रहमत हासिल करने का ज़रिआ
सूरा-7, आ-204, हा-153

● **रिज़्क़**
★ इसका वसीअ् (व्यापक) मतलब
सूरा-10, आ-59, हा-60; सूरा-11, आ-88, हा-98
★ रिज़्क़ की तक़सीम का ख़ुदाई इन्तिज़ाम
सूरा-17, आ-30, हा-30
★ रिज़्क़ की कमी-बेशी का दारोमदार अख़लाक़ के अच्छे और बुरे होने पर नहीं होता
सूरा-13, आ-26, हा-42
★ हर जानदार का रिज़्क़ अल्लाह के ज़िम्मे है
सूरा-11, आ-6; तफ़सील के लिए देखें 'अल्लाह', 'तक़दीर' और 'दुनिया'

● **रिसालत**
देखें 'नुबूवत'

● **रूह**
★ वहय के मानी में
सूरा-16, आ-2, हा-3; सूरा-17, आ-85, हा-103
(इनसानी रूह के मानी में देखें 'इनसान')

● **रूहुल-क़ुदुस**
सूरा-16, आ-102, हा-103

ल

● **लानत**
★ इसके मानी
सूरा-17, हा-72
★ ख़ुदा की लानत के हक़दार कैसे लोग हैं?
सूरा-7, आ-44, 45; सूरा-9, आ-68; सूरा-11, आ-18, 59, 60, 96 से 99; सूरा-13, आ-25

● **लिबास**
★ इनसानी फ़ितरत इसका तक़ाज़ा क्यों करती है?
सूरा-7, आ-22, 26, 27, हा-13, 16
★ इसका मक़सद
सूरा-7, आ-26
★ वह अल्लाह की निशानियों में से है
सूरा-7, आ-26,
★ इसकी अख़लाक़ी ज़रूरत तबई ज़रूरत पर मुक़द्दम है
सूरा-7, हा-16
★ तक़वा का लिबास क्या है?
सूरा-7, आ-26, हा-16
★ लिबास के मामले में इस्लामी नुक़्ता-ए-नज़र
सूरा-7, आ-26, हा-16
★ इसके मामले में शैतान के शागिर्दों की बुनियादी ग़लतफ़हमी
सूरा-7, हा-16
★ इबादत के वक़्त कैसा लिबास होना चाहिए?
सूरा-7, आ-31, हा-20

● **लूत (अलैहि.)**
★ इनका क़िस्सा
सूरा-7, आ-80 से 84; सूरा-11, आ-70, 74, 77 से 83; सूरा-15, आ-58 से 77
★ हज़रत लूत (अलैहि.) की क़ौम का इलाक़ा
सूरा-7, हा-63
★ क़ौमे-लूत ही की बस्तियों को 'मो-तफ़िकात' (उलट दी जानेवाली बस्तियाँ) कहते हैं
सूरा-9, आ-70, हा-78;
★ यह इलाक़ा आज तक तबाही का इबरतनाक नमूना बना हुआ है
सूरा-15, आ-76, 77, हा-42
★ क़ौमे-लूत की अख़लाक़ी पस्ती
सूरा-7, आ-81, 82, हा-64, 65, 68; सूरा-11, आ-78, 79, हा-88; सूरा-15, आ-67 से 71, हा-39 से 40
★ क़ौमे-लूत के हक़ में हज़रत इबराहीम (अलैहि.) की सिफ़ारिश रद्द कर दी गई
सूरा-14, हा-49; सूरा-11, आ-74 से 76
★ हज़रत लूत (अलैहि.) की बीवी का अंजाम
सूरा-7, आ-83, 84, हा-66; सूरा-15, आ-59, 60

व

● **वली**
★ इनसान जिसकी भी बे-चूँ-चरा इताअत करे उसको

अपना वली बनाता है
सूरा-7, हा-4
★ अल्लाह के सिवा किसी को अपना वली न बनाओ
सूरा-7, आ-3, हा-4
★ ईमान न लानेवालों का वली शैतान होता है
सूरा-7, आ-27
★ अल्लाह ही नेक लोगों का वली है
सूरा-7, आ-196
★ तमाम मुत्तक़ी अहले-ईमान (अल्लाह का डर रखनेवाले) अल्लाह के वली (दोस्त) होते हैं
सूरा-10, आ-62, 63
★ वली की तशरीह एक दस्तूरी इस्तिलाह (परिभाषा) की हैसियत से
सूरा-8, हा-50
● वह्य
★ ख़यालात डाले जाने के मानी में
सूरा-12, आ-15
★ ग़ैर-नबी की तरफ़ वह्य
सूरा-12, आ-15
★ फ़रिश्तों की तरफ़ वह्य
सूरा-8, आ-12
★ 'वह्य', 'इलक़ा' और 'इलहाम' में फ़र्क़
सूरा-16, हा-56
★ लफ़्ज़ वह्य का इस्तेमाल किन-किन मानी में होता है?
सूरा-16, हा-56
★ नबियों की तरफ़ रिसालत (पैग़म्बरी) की वह्य
सूरा-10 का परिचय; सूरा-12, आ-109
★ रिसालत की वह्य के लिए 'रूह' लफ़्ज़ का इस्तेमाल
सूरा-16, आ-2, हा-3; सूरा-17, आ-85
★ वह्ये-रिसालत ख़ुदा की रहमत है
सूरा-11, आ-28, 63
★ रहमत की बारिश से उसकी मुशाबिहत (उपमा)
सूरा-13, आ-17, हा-31
★ वह्ये-रिसालत के लिए सिर्फ़ 'इल्म' दिए जाने की इस्तिलाह (परिभाषा)
सूरा-12, आ-22, हा-20
★ नबियों पर सिर्फ़ वही वह्य नहीं आती जो लोगों तक पहुँचाने के लिए हो, बल्कि दूसरी हिदायतें भी मिलती हैं
सूरा-7, आ-117, 160; सूरा-10, आ-87; सूरा-11, आ-36
★ क़ुरआन का वह्य के ज़रिए उतरना
सूरा-10, आ-15; सूरा-11, आ-12, हा-13; सूरा-11, आ-49; सूरा-12, आ-3, 102; सूरा-13, आ-30
● विरासत
देखें 'क़ानूने-इस्लाम'
● विरासते-ज़मीन
★ अल्लाह जिसको चाहता है अपनी ज़मीन का वारिस बनाता है
सूरा-7, आ-100, 128, 137

श

● शफ़ाअत
★ इसका मुशरिकाना अक़ीदा और उसका रद्द
सूरा-10, आ-18; सूरा-13, आ-11, हा-19; सूरा-16, आ-72 से 74, हा-64, 65; सूरा-16, आ-83, हा-79
★ शफ़ाअत का इस्लामी अक़ीदा
सूरा-10, आ-3, हा-5
★ इस्लामी अक़ीदे और मुशरिकाना अक़ीदे का फ़र्क़
सूरा-11, हा-84, 106
★ अपने बेटे के हक़ में हज़रत नूह (अलैहि.) की शफ़ाअत रद्द की गई
सूरा-11, आ-45, 46
★ लूत (अलैहि.) की क़ौम के हक़ में हज़रत इबराहीम (अलैहि.) की शफ़ाअत क़बूल न हुई
सूरा-11, आ-74 से 76
★ नबी (सल्ल.) से फ़रमाया गया कि अगर तुम सत्तर बार भी मुनाफ़िक़ों के लिए मग़फ़िरत की दुआ करोगे तो अल्लाह उन्हें माफ़ न करेगा
सूरा-9, आ-80
★ आख़िरत में मुशरिकों का शफ़ाअत का अक़ीदा ग़लत साबित हो जाएगा
सूरा-7, आ-53; सूरा-11, आ-20, 21, हा-26; सूरा-11, आ-105, हा-106
● शराब
★ इसके हराम होने के बारे में शुरुआती इशारे
सूरा-16, आ-67, हा-55
● शरीअत
★ इसका दिया जाना अल्लाह की मेहरबानी है
सूरा-10, आ-60, हा-63
★ अल्लाह की शरीअत में बाहम कोई टकराव या विरोधाभास नहीं है
सूरा-16, आ-123, हा-120
★ शरीअतों के अलग-अलग होने के असबाब
सूरा-16, आ-119
★ शरिअत में बहुत-सी क़ैद बहुत-सी क़ौमों पर सज़ा के

तीर पर भी लगाई गई हैं
सूरा-16, आ-118 से 124, हा-117 से 121

★ यहूदी शरीअत और मुहम्मद (सल्ल.) की शरीअत में फ़र्क़ की वजह
सूरा-16, हा-120, 121

● शहद

★ इसका इनसान के लिए शिफ़ा (बीमारी का इलाज) होना
सूरा-16, आ-69, हा-58

● शहादत
देखें 'क़ानूने-इस्लाम'

● शहाब

★ वह शोला जो शैतान का पीछा करता है
सूरा-15, आ-18, हा-12

● शिर्क

★ इसकी हक़ीक़त और तशरीह
सूरा-7, आ-191 से 198, हा-147 से 149; सूरा-9, आ-31, हा-31; सूरा-10, आ-18, 105, 106, हा-109; सूरा-14, आ-30; सूरा-15, आ-96; सूरा-16, आ-73, 76, हा-69; सूरा-17, आ-56, हा-64

★ सिर्फ़ पत्थर के बुत पूजना ही शिर्क नहीं है बल्कि वलियों और नबियों को मदद के लिए पुकारना भी शिर्क है
सूरा-16, आ-21, हा-19

★ तवस्सुल और शफ़ाअत (वास्ता बनना और सिफ़ारिश) के मुशरिकाना तसव्वुरात
सूरा-10, आ-18, हा-24; सूरा-16, आ-73, 74, हा-64, 65; सूरा-16, आ-84, हा-81

★ शिर्कवाले मज़हब के तीन हिस्से
सूरा-7, आ-194, 195, हा-148

★ शिर्के-ख़फ़ी (छिपा हुआ शिर्क) और उसके नुक़सानात
सूरा-10, हा-109

★ शिर्क की एक मुस्तक़िल क़िस्म, अमली शिर्क और उसकी तशरीह
सूरा-14, आ-22, हा-32

★ मुशरिकों को सिर्फ़ एक ख़ुदा का ज़िक्र हमेशा नागवार होता है
सूरा-17, आ-46, हा-52

★ अरब मुशरिकों की ज़ेहनियत
सूरा-17, आ-47, हा-53

★ अरब के मुशरिकों का शिर्क किस क़िस्म का था?
सूरा-7, आ-191 से 198, हा-147, 148; सूरा-10, आ-18, 31 से 33, हा-107; सूरा-13, आ-2, हा-4; सूरा-13, आ-16, हा-26; सूरा-16, आ-21, हा-19; सूरा-16, आ-51 से 60, हा-43 से 52; सूरा-16, आ-72, 73, हा-64; सूरा-17, आ-46 से 48, हा-52, 53

★ इनसान के शिर्क में पड़ जाने के असबाब
सूरा-11, आ-61, 62, हा-69, 70; सूरा-12, आ-107, हा-77

★ इनसानी नस्ल में पुरोहितों और पादरियों की पैदाइश कैसे हुई?
सूरा-11, हा-69

★ शिर्क के ख़िलाफ़ क़ुरआन की दलीलें
सूरा-7, आ-71, हा-54, 55; सूरा-7, आ-148, 189 से 198, हा-146 से 149; सूरा-10, आ-18, हा-24; सूरा-10, आ-22 से 24, हा-31; सूरा-10, आ-31, 32, हा-38; सूरा-10, आ-34, 35, हा-42, 43; सूरा-10, आ-67 से 70, हा-65 से 68, 107; सूरा-10, आ-105, 106, हा-109; सूरा-11, आ-14, हा-14; सूरा-11, आ-61, हा-67 से 69; सूरा-11, आ-101, 109; सूरा-12, आ-39, 40, हा-34; सूरा-12, आ-108, हा-78; सूरा-13, आ-14 से 16, हा-23 से 30; सूरा-13, आ-33, हा-52; सूरा-16, आ-1 से 3, हा-2 से 6; सूरा-16, आ-17, हा-15, 16; सूरा-16, आ-20, 21, 35, 36, हा-31, 32; सूरा-16, आ-51 से 60, हा-43 से 52; सूरा-16, आ-70 से 75; सूरा-17, आ-39 से 43, 56, 57, हा-64, 65; सूरा-17, आ-66, 67, 76, हा-89; सूरा-17, आ-111, हा-125

★ इसके लिए अल्लाह ने कोई सनद नाज़िल नहीं की
सूरा-7, आ-33, 71, हा-55

★ इसकी बुनियाद सिर्फ़ अटकल और अनुमान पर है
सूरा-10, आ-66

★ इसके हक़ में कोई दलील और सनद नहीं
सूरा-10, आ-68

★ यह एक जिहालत और अज्ञान है
सूरा-7, आ-138

★ यह सिर्फ़ झूठ है
सूरा-11, आ-50, हा-55

★ यह सरासर बातिल और झूठ है
सूरा-7, आ-139

★ यह ज़ुल्म है
सूरा-7, आ-148 से 150; सूरा-10, आ-106; सूरा-14, आ-22

★ वह मकर और जाल है
सूरा-13, आ-33, हा-53
★ यह अल्लाह की नाशुक्री है
सूरा-12, आ-38
★ मुशरिक सिर्फ़ अन्धी पैरवी करनेवाले हैं
सूरा-10, आ-36, हा-44; सूरा-11, आ-62, हा-71; सूरा-11, आ-109, हा-110
★ उनके माबूदों को कुछ पता नहीं कि उनकी पूजा और इबादत की जा रही है
सूरा-10, आ-28, 29, हा-37
★ उनके माबूद कभी उन्हें ख़ुदा के अज़ाब से न बचा सके
सूरा-11, आ-98 से 101
★ आख़िरत में उनके माबूद ख़ुद उन्हें झूठा क़रार देंगे
सूरा-16, आ-86, हा-83
★ आख़िरत में साबित हो जाएगा कि उनके तमाम अक़ीदे और धारणाएँ झूठी थीं
सूरा-10, आ-30; सूरा-11, हा-106
★ इस बात का सुबूत कि मुशरिकों के अपने तहतश-शुऊर (अवचेतन मन) में शिर्क का झूठा होना और तौहीद का अक़ीदा मौजूद है
सूरा-10, आ-22, हा-31
★ मुशरिकों का सरपरस्त शैतान होता है
सूरा-16, आ-100
★ इनके तमाम आमाल बरबाद हो जाएँगे
सूरा-9, आ-17
★ शिर्क के नतीजे दुनिया में
सूरा-7, आ-152; सूरा-9, आ-17
★ इसके नतीजे आख़िरत में
सूरा-7, आ-152; सूरा-9, आ-17; सूरा-14, आ-30; सूरा-16, आ-27; सूरा-17, आ-39
★ मुशरिक किस मानी में नापाक हैं?
सूरा-9, आ-28, हा-25
★ मुशरिक के लिए मग़फ़िरत की दुआ जाइज़ नहीं
सूरा-9, आ-113, हा-111
★ मस्जिदों में मुशरिकों के दाख़िले का मसला
सूरा-9, हा-25
● शुऐब (अलैहि.)
★ उनका क़िस्सा
सूरा-7, आ-85 से 93, हा-69 से 76; सूरा-11, आ-84 से 95, हा-94 से 102
★ उनकी सीरत
सूरा-11, आ-88, 89, हा-98, 99
★ अपनी क़ौम में उनकी हैसियत
सूरा-11, आ-91
★ उन ही की क़ौम का नाम असहाबुल-ऐका था
सूरा-15, आ-78, हा-43
● शुक्र
★ इसके मानी
सूरा-14, हा-11, 12
★ अल्लाह की नेमतों का फ़ितरी तक़ाज़ा
सूरा-7, आ-10; सूरा-16, आ-14
★ इस्लाम में इसकी अहमियत
सूरा-14, आ-5, हा-10
★ शैतान इनसान को नाशुक्रा बनाना चाहता है
सूरा-7, आ-17, हा-12
★ शिर्क अल्लाह की नाशुक्री है
सूरा-12, आ-38
★ अल्लाह की शरीअत को क़बूल न करना और ख़ुद क़ानून बनाना अल्लाह की नाशुक्री है
सूरा-10, आ-60, हा-63
★ मुहसिन (एहसान करनेवाले) के एहसान का शुक्र दूसरों को अदा करना अस्ल में मुहसिन के एहसान का इनकार है
सूरा-16, आ-72, 73, हा-64; सूरा-16, आ-83, हा-79; सूरा-17, आ-67
★ अल्लाह की नेमतों का शुक्र दूसरों को अदा करना नाशुक्री है
सूरा-16, आ-53 से 55, हा-48
★ अल्लाह की दी हुई नेमतों का सही शुक्र यह है कि इनसे सही काम लिया जाए
सूरा-16, आ-78, हा-73
★ अल्लाह की दी हुई नेमतों का सही शुक्र यह है कि अल्लाह की बन्दगी की जाए
सूरा-14, आ-31, हा-41; सूरा-14, आ-37
★ अल्लाह की दी हुई नेमतों का सही शुक्र यह है कि उसकी आयतों से सबक़ लिया जाए
सूरा-7, आ-58
★ अल्लाह की दी हुई नेमतों का सही शुक्र यह है कि उसकी और उसके रसूल की पुकार पर लब्बैक कहा जाए
सूरा-8, आ-26, हा-21
★ अल्लाह की दी हुई नेमतों का सही शुक्र यह है कि जो कुछ अल्लाह दे उसपर मुत्मइन रहा जाए
सूरा-7, आ-144

★ शुक्र का इनाम
सूरा-14, आ-7

● **शैतान**

★ इसके तख़लीक़ (बनाए जाने) का माद्दा (यानी यह किस चीज़ से बना है?)
सूरा-7, आ-12; सूरा-15, आ-27, हा-18

★ इसका तकब्बुर
सूरा-7, आ-12, 13; सूरा-15, आ-31 से 33

★ इसकी ख़ुसूसियात
सूरा-7, आ-3, हा-4, सूरा-7, आ-27; सूरा-8, आ-48

★ ख़ुदा का नाशुक्रा
सूरा-17, आ-27

★ अपनी गुमराही के लिए ख़ुदा को मुलज़िम ठहराता है
सूरा-7, आ-16, 17, हा-12; सूरा-15, आ-39, हा-22

★ मरदूदे-बारगाह (अल्लाह के दरबार से फिटकारा हुआ)
सूरा-15, आ-34

★ क़ियामत तक के लिए उस पर लानत
सूरा-15, आ-35

★ ख़ुदाई ताक़त का मुक़ाबला करने से डरता है
सूरा-8, आ-48

★ इसकी परवाज़ ग़ैर-महदूद नहीं है
सूरा-15, आ-17, हा-10

★ इसको ग़ैब को पढ़ने के ज़राए (साधन) हासिल नहीं हैं
सूरा-15, आ-18, हा-11

★ फ़रिश्तों से सुन-गुन लेने की कोशिश करता है
सूरा-15, आ-18, हा-11

★ इसका आदम को सजदा करने से इनकार
सूरा-7, आ-11, 12; सूरा-15, आ-31; सूरा-17, आ-61

★ इसका इनसान से हसद
सूरा-17, आ-62

★ इनसान की फ़ज़ीलत (बड़ाई) ग़लत साबित करने के लिए ख़ुदा को चैलेंज देता है
सूरा-7, आ-14 से 17, हा-12; सूरा-17, आ-62

★ इनसान को बहकाने का पक्का इरादा करता है
सूरा-7, आ-16, 17; सूरा-15, आ-39

★ इसको क़ियामत तक के लिए मुहलत दी जाती है कि अपने इस पक्के इरादे को पूरा करे
सूरा-7, आ-14, 15; सूरा-15, आ-36 से 38; सूरा-17, आ-62, 63

★ इनसान पर इसको किस क़िस्म के इख़्तियारात दिए गए हैं?
सूरा-7, हा-12; सूरा-15, आ-42, हा-24; सूरा-17, आ-64, 65, हा-80

★ जन्नत में इनसान से उसका पहला मुक़ाबला और उसके नतीजे
सूरा-7, आ-19 से 23, हा-13

★ वह इनसान का अज़ली (आदिकाल का) दुश्मन है
सूरा-7, आ-16, 17, 22, 24; सूरा-12, आ-5; सूरा-15, आ-33, हा-25; सूरा-17, आ-53

★ इसके वादे सिर्फ़ धोखा हैं
सूरा-17, आ-64

★ आदमी को बेशर्म बनाना चाहता है
सूरा-7, आ-20, 27, हा-13, 15

★ इसकी रहनुमाई क़बूल करने से आदमी अपनी फ़ितरत से फिर जाता है
सूरा-7, हा-16

★ इसकी पैरवी आदमी को लाज़िमन गुमराह कर देती है
सूरा-7, आ-30

★ इनसान को गुमराह करने के लिए उसकी चालें
सूरा-7, हा-13; सूरा-8, आ-48; सूरा-14, आ-22; सूरा-15, आ-39, 40, हा-22; सूरा-16, आ-63; सूरा-17, आ-64

★ वह किस तरह इनसान को दुनियापरस्ती में मुब्तिला करता है?
सूरा-7, आ-175, 176, हा-139

★ वह आदमी को आदमी से लड़ाना चाहता है
सूरा-17, आ-53

★ आदमी के दिल में बुज़दिली पैदा करता है
सूरा-8, आ-11, हा-8, 9

★ ईमान न लानेवालों का सरपरस्त
सूरा-7, आ-27

★ गुमराहों का सरपरस्त
सूरा-16, आ-63

★ इसके इग़वा के बावजूद इसके पैरवी करनेवाले गुमराही के ख़ुद ज़िम्मेदार हैं
सूरा-14, आ-22, हा-31; सूरा-15, हा-24

★ वह आख़िरत में किस तरह अपने पैरोकारों को मुलज़िम ठहराएगा?
सूरा-14, आ-22

★ इसका और इसके पैरोकारों का आपसी ताल्लुक़ किस क़िस्म का है?
सूरा-17, आ-64, हा-78

★ फ़ुज़ूल-ख़र्ची करनेवाले इसके भाई हैं
सूरा-17, आ-27
★ कैसे लोगों पर इसका बस चलता है?
सूरा-16, आ-100; सूरा-17, आ-65, हा-80
★ कैसे लोग इसके धोखे से महफ़ूज़ रहते हैं?
सूरा-15, आ-40 से 42; सूरा-16, आ-99; सूरा-17, आ-65
★ हक़ की दावत को नाकाम करने के लिए इसकी चालें
सूरा-7, आ-200 से 202; सूरा-17, आ-53
★ इसको सबसे ज़्यादा नागवार यह है कि आदमी क़ुरआन की रहनुमाई से फ़ायदा उठाए
सूरा-16, आ-98, हा-101

स

● सजदा
★ इस्तिलाही (पारिभाषिक) सजदे और लुग़वी (शाब्दिक) सजदे का फ़र्क़
सूरा-12, हा-70
★ इस ख़याल की ग़लती कि पिछली शरीअतों में ग़ैरुल्लाह को सजदा करना जाइज़ था
सूरा-12, हा-70
★ ज़मीन और आसमान की हर चीज़ का ख़ुदा को सजदा करना
सूरा-13, आ-15, हा-24; सूरा-16, आ-48, 49, हा-41, 42
★ क़ुरआन में कितने सजदे हैं?
सूरा-7, हा-157
★ सज्दा-ए-तिलावत, इसकी हिकमत और इसके अहकाम
सूरा-7, हा-157
● सदक़ा
देखें 'ज़कात'
★ सब्त के आदेशों के मामले में मुहम्मद (सल्ल.) की शरीअत और यहूदी शरीअत के बीच फ़र्क़ क्यों है?
सूरा-16, आ-118 से 124, हा-117 से 121
● सबअ मसानी (सात दोहराई जानेवाली)
सूरा-15, आ-87; हा-49
● सब्त
★ यहूदी शरीअत में इसका क़ानून
सूरा-7, हा-123; सूरा-16, आ-124, हा-121
★ बनी-इसराईल के सब्त के क़ानून को तोड़ने की सज़ा
सूरा-7, आ-165, 166, हा-125
● सब्र
सूरा-7, आ-126, 128; सूरा-10, आ-109
★ इसके मानी
सूरा-8, हा-37; सूरा-11, आ-11, हा-11; सूरा-13, हा-39; सूरा-16, हा-98; सूरा-17 का परिचय
★ सब्रे-जमील क्या है?
सूरा-12, आ-18, हा-13; सूरा-12, आ-83
★ इस्लाम में इसकी अहमियत
सूरा-13, आ-22, हा-39; सूरा-14, आ-5, हा-10
★ इसकी अख़लाक़ी अहमियत
सूरा-8, आ-65, 66, हा-48; सूरा-11, आ-11, हा-11
★ हक़ की दावत में इसकी अहमियत
सूरा-10, आ-89, हा-90; सूरा-11, आ-49, हा-53; सूरा-11, आ-115; सूरा-14, आ-12; सूरा-15, आ-85; सूरा-16, आ-126, 127; सूरा-17 का परिचय; सूरा-17, हा-12
★ इसकी बरकतें और नतीजे
सूरा-7, आ-137; सूरा-12, आ-90; सूरा-13, आ-24
★ अल्लाह सब्र करनेवालों के साथ है
सूरा-8, आ-46, हा-37; सूरा-8, आ-66
★ इसका अज्र
सूरा-16, आ-96, हा-98; सूरा-16, आ-110
● समूद
सूरा-9, आ-70; सूरा-11, आ-95; सूरा-14, आ-9
★ आद के बाद ज़मीन में ख़लीफ़ा बनाए जाते हैं
सूरा-7, आ-74
★ उनकी तारीख़, इलाक़ा और आसारे-क़दीमा
सूरा-7, हा-57, 59; सूरा-15, हा-45
★ उनका दारुस्सल्तनत (राजधानी), हिज्र
सूरा-15, आ-80, हा-45
★ हज़रत सालेह (अलैहि.) की दावत के मुक़ाबले में उनका रवैया और अंजाम
सूरा-7, आ-73 से 79, हा-57 से 61; सूरा-11, आ-61 से 68; सूरा-15, आ-80 से 84; सूरा-17, आ-59, हा-68
● सलात
(दुआ-ए-रहमत के मानी में)
सूरा-9, आ-99, 103
● सलात नमाज़ के मानी में
देखें नमाज़
● सहाबा किराम
★ इनके ईमान के सच्चा होने पर क़ुरआन की फ़ैसलाकुन गवाही
सूरा-8, आ-74

★ इनके अल्लाह की बारगाह में क़बूल होने और जन्नती होने पर क़ुरआन की गवाही
सूरा-9, आ-100
★ वे जानते थे कि नबी (सल्ल.) का साथ देने के क्या मानी हैं
सूरा-8 की विषयवार्ता
★ इनकी क़ुरबानियाँ जंगे-बद्र में
सूरा-8 का परिचय
★ इनकी क़ुरबानियाँ जंगे-तबूक के मौक़े पर
सूरा-9 का परिचय
★ क़ुरआन की हिफ़ाज़त के लिए उनका एहतिमाम
सूरा-9 हा परिचय
★ उनकी जमाअत का नज़्म व ज़ब्त और बुलन्द-तरीन अख़लाक़ी मेयार
सूरा-9, आ-119

● **साअत (क़ियामत या फ़ैसले की घड़ी)**
सूरा-7, आ-187; सूरा-12, आ-107; सूरा-15, आ-85; सूरा-16, आ-77

● **सालेह (अलैहि.)**
★ उनका क़िस्सा
सूरा-7, आ-73 से 79, हा-57 से 61; सूरा-11, आ-61 से 68
★ उनकी तालीम (शिक्षाएँ)
सूरा-7, आ-73; सूरा-11, आ-61
★ पैग़म्बरी से पहले अपनी क़ौम में उनकी हैसियत
सूरा-11, आ-62, हा-70
★ उनका मोजिज़ा (चमत्कार)
सूरा-7, आ-73, हा-58; सूरा-7, आ-77; सूरा-11, आ-64, 65
★ समूद की तबाही के बाद जज़ीरा नुमा-ए-सीना (प्रायद्वीप) में उनका क़ियाम
सूरा-7, हा-99; सूरा-11, आ-66, हा-74
★ क़ौमे-सालेह
सूरा-11, आ-89

● **सिद्दीक़**
★ इसके मानी
सूरा-12, हा-39

● **सिला-रहमी (रिश्ते-नातो को जोड़ना)**
★ इसका मतलब और समाज में इसकी अहमियत
सूरा-16, आ-90, हा-88

● **सिह्र**
देखें 'जादू'

● **सुलह हुदैबिया**
★ इसके असरात और नतीजे
सूरा-9 का परिचय
★ मक्का के इस्लाम-दुश्मनों का इसको एलानिया तोड़ना
सूरा-8, हा-43

● **सुलैमान (अलैहि.)**
★ इनका ज़माना और सल्तनत की मुद्दत
सूरा-17, हा-7
★ इनका बहरी (समुद्री) बेड़ा
सूरा-7, हा-122
★ इनके बाद सल्तनत की बरबादी
सूरा-17, हा-7

● **सूर**
★ सूर फूँके जाने की कैफ़ियत
सूरा-14, हा-57

ह

● **हक़**
★ तशरीह
सूरा-10, हा-43
★ अल्लाह ने कायनात के निज़ाम को हक़ के साथ पैदा किया है
सूरा-10, आ-5; सूरा-14, आ-19, हा-26; सूरा-15, आ-85, हा-47; सूरा-16, आ-3, हा-6
★ हक़ की तरफ़ रहनुमाई सिर्फ़ अल्लाह ही कर सकता है
सूरा-10, आ-35
★ हक़ का इख़्तियार करना आदमी के लिए मुफ़ीद और रद्द करना उसी के लिए नुक़सानदेह है
सूरा-10, आ-108
★ हक़ का इल्म रखनेवाले और इससे ग़ाफ़िल रहनेवाले बराबर नहीं हो सकते
सूरा-13, आ-19, हा-35
★ हक़ को क़बूल न करने के नतीजे
सूरा-13, आ-18, हा-33, 34
★ अल्लाह हक़ को हक़ साबित करके ही रहता है
सूरा-10, आ-82
★ हक़ आख़िरकार ग़ालिब होकर ही रहता है
सूरा-13, आ-17

● **हज**
★ इसके पुराने तरीक़ों का सुधार
सूरा-9, आ-1, हा-1; सूरा-9, हा-37

★ हज्जे-अकबर के दिन से क्या मुराद है?
सूरा-9, आ-3, हा-4

★ हज्जतुल-वदाअ
देखें 'मुहम्मद' (सल्ल.)

● **हनीफ़**

★ मानी और तशरीह
सूरा-10, आ-105, हा-108

● **हब्ते-आमाल (आमाल का बरबाद हो जाना)**

★ हब्ते-अमल के मानी
सूरा-7, आ-147, हा-105

★ इसकी वजहें
सूरा-11, आ-15, 16; सूरा-14, आ-18, 19, हा-25, 26

★ कैसे लोगों के आमाल बरबाद होते हैं?
सूरा-7, आ-147, हा-105; सूरा-9, आ-17, हा-19; सूरा-9, आ-69; सूरा-11, आ-15, 16; सूरा-14, आ-18

● **हम्द**

★ इसके मानी
सूरा-17, हा-49

★ ज़मीन और आसमान की हर चीज़ अल्लाह की हम्द कर रही है
सूरा-17, आ-44, हा-49

★ बेजान मख़लूक़ किस तरह अल्लाह की हम्द करती है?
सूरा-13, हा-20

● **हलाल और हराम**

★ इनसान को ख़ुद हलाल और हराम की हुदूद मुक़र्रर कर लेने का हक़ नहीं है
सूरा-10, आ-59, हा-61; सूरा-16, आ-114 से 117, हा-116

★ क्या चीज़ें हराम की गई हैं?
सूरा-16, आ-115

★ हराम चीज़ किन हालात में किन शर्तों के साथ खाई जा सकती है?
सूरा-16, आ-115, हा-115

● **हवा (मन की इच्छा)**

★ मन की इच्छाओं की पैरवी करने के नतीजे
सूरा-7, आ-175, 176, हा-139

● **हव्वा (अलैहि.)**

★ क़ुरआन इसकी तरदीद करता है कि आदम (अलैहि.) को बहकाने में वे शैतान की एजेंट बनीं
सूरा-7, हा-13

★ हयात बादल-मौत
देखें 'मौत के बाद ज़िन्दगी'

★ हयातुद्-दुनिया
देखें 'दुनिया'

● **हश्र**

★ इसके मानी
सूरा-14, हा-57

★ वह इसी ज़मीन पर होगा
सूरा-14, हा-57

★ इसमें तमाम अगली-पिछली नसलों को इकट्ठा किया जाएगा
सूरा-15, आ-25; ज़्यादा तफ़सील के लिए देखें 'आख़िरत' और 'क़ियामत'

● **हारून (अलैहि.)**
सूरा-7, आ-122

★ हज़रत मूसा (अलैहि.) की ग़ैर-मौजूदगी में उनकी जानशीनी (प्रतिनिधित्व) करते हैं
सूरा-7, आ-142, हा-100

★ उनकी ख़िलाफ़त के ज़माने में बनी-इसराईल का बछड़े को माबूद बनाना
सूरा-7, आ-148

★ उनपर यहूद का झूठा इलज़ाम
सूरा-7, हा-108

● **हिकमते-तबलीग़**
सूरा-7 का परिचय; सूरा-7, आ-175, हा-138; सूरा-7, आ-199 से 204, हा-150 से 153; सूरा-10, आ-31, 32, हा-39; सूरा-11, आ-114, 115, हा-114; सूरा-12, आ-37 से 41, हा-34; सूरा-12, आ-104, 105; हा-73, 74, 75; सूरा-16, आ-125 से 128, हा-122, 123; सूरा-17, आ-53 से 55, हा-60 से 62;
तफ़सील के लिए देखें 'दावते-हक़'

● **हिकमते-तशरीअ (क़ानून लागू किए जाने की हिकमत)**

★ नए एहकाम जारी करने से पहले मुनासिब माहौल पैदा करना ज़रूरी है
सूरा-12, हा-60

★ एहकाम को लागू करने में तदरीज (क्रम)
सूरा-12, आ-60

★ नमाज़ के औक़ात में क्या हिकमतें सामने रखी गई हैं?
सूरा-17, हा-95

★ इस्लाम में इबादतों के लिए चाँद की तारीख़ों को

क्यों अपनाया गया?
सूरा-9, हा-37
● **हिजरत**
★ दुनिया और आख़िरत में इसका बदला
सूरा-16, आ-41, 110, 111
★ हबशा को हिजरत
सूरा-16, हा-37
★ नबी (सल्ल.) की हिजरत के लिए देखें 'मुहम्मद' (सल्ल.)
★ हिजरत के क़ानूनी असरात व नतीजे के लिए देखें 'क़ानूने-इस्लाम' और 'दस्तूरी क़ानून'
● **हिज्र**
★ समूद का दारुस्सल्तनत (राजधानी)
सूरा-15, आ-80, हा-45
● **हिदायत**
★ इसका वसीअ और व्यापक मतलब
सूरा-7, हा-4, सूरा-10, हा-43
★ हक़ की हिदायत के मानी
सूरा-10, हा-43
★ इनसान को सही रहनुमाई सिर्फ़ अल्लाह की नाज़िल की हुई तालीम ही में मिल सकती है
सूरा-7, हा-4; सूरा-10, हा-43
★ अल्लाह की रहनुमाई के बग़ैर किसी को हिदायत नहीं मिल सकती
सूरा-7, आ-43, 178, 186
★ अल्लाह जिसको चाहता है हिदायत देता है
सूरा-10, आ-25
★ हिदायत देना अल्लाह का काम है
सूरा-16, आ-36
★ जो अल्लाह से हिदायत न पाए उसे कोई हिदायत नहीं दे सकता
सूरा-17, आ-97, हा-110
★ अल्लाह कैसे लोगों को हिदायत देता है?
सूरा-10, आ-9, हा-13
★ वह कैसे लोगों को हिदायत नहीं देता?
सूरा-16, आ-36, 37
★ हिदायत पानेवाले कौन हैं?
सूरा-9, आ-18
★ आख़िरत का इनकार करनेवाले हिदायत पानेवाले नहीं हैं
सूरा-10, आ-45
★ हिदायत हासिल करने के लिए लाज़िमी शर्त
सूरा-10, आ-5, 6, हा-11
★ हिदायत पाने की एक ही सूरत ईमान और फ़रमाँबरदारी है
सूरा-7, आ-158
★ हिदायत हासिल करनेवाला ख़ुद अपना भला करता है
सूरा-10, आ-108; सूरा-17, आ-15
● **हिसाब**
देखें 'आख़िरत'
● **हुक़ूक़ुल-इबाद (बन्दों के हक़)**
★ माँ-बाप के हुक़ूक़
सूरा-17, आ-23 से 25, हा-27
★ औलाद और नस्ल के हुक़ूक़
सूरा-17, आ-31
★ रिश्तेदारों के हुक़ूक़
सूरा-16, हा-88; सूरा-17, आ-26
★ यतीमों के हुक़ूक़
सूरा-17, आ-34, हा-38
★ मिस्कीनों के हुक़ूक़
सूरा-9, आ-60, हा-62; सूरा-17, आ-26
★ मुसाफ़िरों के हुक़ूक़
सूरा-9, आ-60, हा-67; सूरा-17, आ-26
★ इज्तिमाई और मुआशरती हुक़ूक़ का वसीअ् (व्यापक) तसव्वुर
सूरा-17, हा-28
● **हुदूदुल्लाह (अल्लाह की हदें)**
★ इनसे नावाक़फ़ियत आदमी को मुनाफ़िक़त और जाहिलियत में मुब्तिला करती है
सूरा-9, आ-97, हा-95
★ इनकी हिफ़ाज़त ईमानवालों की ख़ुसूसियत है
सूरा-9, आ-112
★ हुदूदुल्लाह और उनकी हिफ़ाज़त का वसीअ् (व्यापक) मतलब
सूरा-9, आ-112, हा-110
● **हूद (अलैहि.)**
★ उनका क़िस्सा
सूरा-7, आ-65 से 72; सूरा-11, आ-50 से 60
★ उनकी तालीम
सूरा-7, आ-65, 69
★ हूद (अलैहि.) की क़ौम
सूरा-11, आ-89

☆☆☆